

भारतीय राष्ट्रवाद बनाम विश्व

डॉ. अर्चना दुबे

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
भोपाल परिसर, भोपाल

इस भौतिक संसार में जन्म से मृत्यु तक मनुष्य की पहचान उसके अपने देश में और देश के बाहर जिस रूप में की जाती है वह है उसकी नागरिकता। व्यक्ति किसी देश के नागरिक के रूप में उसकी लघुत्तम इकाई है और देश महत्तम इकाई। एक महत्तम इकाई होने के कारण वह उन्हें वह सब प्रदान करता है जिसके वे अधिकारी हैं बदले में उन नागरिकों के भी अपने देश के प्रति कुछ कर्तव्य हैं जिनका निर्वाह उन्हें हर स्थिति में करना होता है। संवैधानिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से उसका प्रथम कर्तव्य उस भूमि के प्रति होता है जहाँ उसने जन्म लिया है इस कर्तव्य और इससे जुड़ी समस्त भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण जिस विचारधारा से होता है वह विचारधारा है- राष्ट्रवादी विचारधारा। राष्ट्रवाद एक विराट वाद् है जिसकी सम्पूर्ति उसके उत्थान की कामना उसके मूल्यों, उसकी संस्कृति उसकी भाषा के रक्षण और उसके प्रति सर्वस्व समर्पण की कामना से होती है।

विश्व के प्राचीनतम राष्ट्रों में परिगणित राष्ट्र आर्यावर्त जिसे बाद में भारतवर्ष के नाम से जाना गया धर्म, दर्शन, संस्कृति और ज्ञान का प्रमुख केन्द्र रहा है। धर्म का प्रादुर्भाव मानव द्वारा मानव के लिए हुआ है जो चरमसत्ता की अनुभूति एवं प्राप्ति का मानवीय प्रयास है। यह मानव-जीवन की एक प्रबल प्रेरक शक्ति है जिसने मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रायः समस्त पहलुओं को प्रभावित किया है। वस्तुतः विज्ञान, तकनीकी या अन्यान्य वस्तुओं के प्रभाव से अधिक गहन प्रभाव धर्म का मानवीय भावनाओं एवं विचारों पर पड़ता है। भारतवर्ष की प्रधान विशेषता उसके बहुजातीय, बहुवर्णीय, बहुधर्मीय, बहुसांस्कृतिक, बहुभाषीय समरसता के होने में है। मानव जाति के इतिहास में ईश्वरीय सत्ता के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के मार्गों के वैभिन्न्य की स्वीकृति से ही अनेक धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ है। वैश्विक विस्तार की प्रक्रिया के अन्तर्गत वे धर्मावलम्बी जो विभिन्न राष्ट्रों में जाकर बस गए हैं उस राष्ट्र की एक धार्मिक इकाई के रूप में अपने धार्मिक सिद्धान्तों का अनुपालन कर रहे हैं। भारत इस दृष्टि से एक ऐसा राष्ट्र राज्य है जहाँ सहिष्णुता, समानता, अखंडता, उदारता, मित्रता एवं सर्वधर्म सद्भाव को प्रधानता दी गई है। विश्व के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद के ऋषि इसी दृष्टि से सभी ओर से शुद्ध विचारों को आमन्त्रित करते हैं। भारत और भारतेतर सभी धर्मों और उसके सृष्टा- महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, जीसस और मुहम्मद को यहाँ न केवल परमात्मा के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया बल्कि उनके सिद्धान्तों को भी अंगीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और 'सत्यमेव जयते' इस धारणा का प्रतीक है कि भारत एक ऐसा राष्ट्र है जो स्वान्त सुखाय नहीं परहिताय में विश्वास करता है जो सभी के सुखी होने की कामना करता है जो सत्य और आचारित सत्य का प्रतिपालन करता है, यह अवधारणा भारतीय हृदय को स्वार्थ से ऊपर उठाकर परोपकार की ओर प्रेरित करने वाली अवधारणा है।

भारतीय संस्कृति के उन्नायकों ने धर्म को सदैव जीवन के महान सिद्धान्तों एवं आदर्शों को आत्मसात करने की एक सतत ऊर्ध्वगामी साधना माना है। ऐसे उन्नायकों में सन्त कबीर, नानक, सूर, तुलसी, मीराबाई, रैदास, जायसी, रहीम जैसे भक्त कवि और अनेक आधुनिक कवि आते हैं, इन सन्तों ने आत्मा की पवित्रता को महत्त्वपूर्ण मानते हुए धर्म के वास्तविक और उन्नत रूप को लोक के समक्ष रखा 'जाति पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' कहकर कबीर उस मानव धर्म का प्रतिपादन करते हैं जो रंग, नस्ल, धर्म और भाषा के आधार पर मनुष्यों को बाँटने का विरोध करता है। वास्तव में मानवतावाद वह उदारवादी दृष्टिकोण है जो भारतीय दर्शन, साहित्य, कला और राजनीति में दृष्टिगोचर होता है। मानव धर्म या मानवतावाद के निर्धारण में भारतीय चिंतन का विशेष योगदान रहा है क्योंकि भारतीय जीवन प्रत्येक वस्तु व विषय के साथ मानव को एकात्म करता है। एकात्मकता की मूल अवधारणा वास्तव में समग्र मानव जाति के हित चिन्तन से ही जुड़ी हुई है अर्थात् मानव कैसा सोचे, क्या खाए, क्या पिए, कैसा व्यवहार करे और कैसे विकास का मार्ग प्रशस्त करे इसके लिए कुछ मानवीय मूल्य निर्धारित किए गए ताकि सभी को गरिमापूर्ण जीवन जीने का और विकास का अवसर प्राप्त हो सके। जब सभी को विकास के अवसर प्राप्त होंगे तो वैमनस्य और पक्षपात समाप्त होगा। प्रति व्यक्ति के विकसित होने पर संपूर्ण राष्ट्र विकसित होगा। किसी भी राष्ट्र की शक्ति-उसकी अखण्डता और एकता में निहित होती है और वह तभी संभव है जब वहाँ समानता का वातावरण

हो और इस बात का पूरा दायित्व उस राष्ट्र के प्रशासक पर होता है।

महान विचारों से ही बनता है वह देश जो सदियों तक गुलामी और फरेब का दंश भोगने के बाद भी उदारता की दृष्टि रखता है, जो यह मानता है कि व्यक्ति की बुराइयाँ परिस्थितिजन्य होती हैं वैयक्तिक नहीं, जो यह मानता है कि बुराइयाँ दूर करने पर अच्छाई बाहर आती है। जो एक ऐसी संस्कृति का देश है जो प्रत्येक जाति, प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्मानुसार चलने की स्वतन्त्रता देता है, शरणागतों को शरण देना जिसकी परंपरा है। विश्व संस्कृति का उद्गम भी भारत है। भारत विश्व के अन्य देशों से इस दृष्टि से भिन्न है कि यहाँ धर्म वह जीवनचर्या है जिससे व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र अपने प्रगतिपथ पर अनवरत चलता आया है अर्थात् यहाँ प्रगति का मूल, धर्म है जबकि अन्य राष्ट्रों में प्रगति का मूल धर्म उस रूप में नहीं है जिस रूप में भारत में दिखाई पड़ता है। मनुस्मृति में मनु धर्म के दस लक्षण बताते हुए स्पष्ट कर देते हैं कि धर्म सच्चे अर्थों में सर्वजनहितकारी सत्प्रवृत्तियों का आदर व उनका प्रसार करना सिखाता है। विश्व के इतिहास में धर्म के नाम पर किए जाने वाले रक्तरीजित अत्याचारों के वर्णनों से पृष्ठ भरे हुए हैं और यहाँ मनु कहते हैं-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यम् क्रोधः दशकं धर्म लक्षणम्।।¹

धर्म के उपरोक्त लक्षणों के साथ ही वे धर्म के अंगों- यज्ञ सदाचार, दम, अहिंसा, दान, चित्त संयम को भी आवश्यक बताते हुए कहते हैं कि आत्मदर्शन भी धर्मपालन है। वास्तव में भारतीय धर्मों में धर्म की जो अलग-अलग परिभाषाएँ दी गई हैं उसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश और धर्म को लेकर उनका दृष्टिकोण क्या है और वे राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को किस श्रेणी में रखते हैं यथा जैन धर्म में जब “अहिंसा परमोधर्म” कहा जाता है तो इसका अर्थ यह है कि भारत हिंसा में विश्वास नहीं करता है, इतिहास साक्षी है कि पृथ्वीराज चौहान ने अनेक बार मुहम्मद गौरी को पराजित करने के बाद भी क्षमा कर दिया था, पांडव पाँच गाँव लेकर ही अपना जीवन बिताने के लिए तैयार थे। अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म मानने वाले भारतवंशी मानववादी हैं, मानवतावाद का निहितार्थ लोककल्याण है इसलिए राष्ट्रीय संदर्भों में मानव धर्म की महत्ता सर्वसिद्ध है।

भारत जैसे प्राचीन राष्ट्र के लिए तो यह प्रश्न तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जबकि यहाँ समय-समय पर अनेक प्रजातियों एवं संस्कृतियों का आगमन एवं सम्मिलन यहाँ की संस्कृति में होता रहा हो, भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही समन्वयात्मक संस्कृति रही है उसने यहाँ आने वाली सभी संस्कृतियों की अच्छाइयों को आत्मसात कर उन्हें आपस में मिलाने का प्रयास किया है भारतीय लोग “सर्वे भवन्तु सुखिनः” की केवल कामना ही नहीं करते हैं बल्कि सभी को सुखी बनाने का प्रयास भी करते हैं। उनकी करुणा दीन-दुखियों के प्रति अधिक है वे दूसरों के दुख दूर करने के लिए अपने सुखों का त्याग करने से कभी पीछे नहीं हटते भारतीयों के हृदय में जीवमात्र के कष्ट मिटाने की प्रवृत्ति मानवतावाद की ही प्रवृत्ति है, मानवतावाद विश्व में मानवीय विषयों के महत्त्व पर विशेष बल देता है, यह सभी जातियों और व्यक्तियों की सुप्त सर्जनात्मक शक्तियों को उन्मुक्तकर उन्हें सूत्रबद्ध करने की बात कहता है धार्मिक कट्टरता का विरोध करता है। प्राचीन भारत में वैदिक युग मानवतावादी भावनाओं से प्रेरित था क्योंकि उसमें मानव से संबंधित विषयों की प्रधानता थी उस युग में राजा के योग्य न होने पर आज की तरह प्रजा को यह अधिकार था कि वह किसी कुलीन परिवार के व्यक्ति को राजा चुन ले। उस युग में ‘सभा’ और ‘समिति’ नाम की जनतान्त्रिक संस्थाएँ सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों पर विचार किया करती थीं इस युग में परिवारों में अनुशासन का बड़ा महत्त्व था और सामाजिक अवस्था का मूल आधार कुटुंब था। समाज में स्त्रियों के आदर-सम्मान का विशेष ध्यान रखा जाता था। उनकी उचित शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था पर्दा प्रथा का अभाव था, ज्ञान के क्षेत्र में स्त्रियाँ बहुत आगे थीं लोपामुद्रा, घोषा, सिकता, विश्वारा जैसी विदूषियाँ इसी युग की थीं, व्यापार-व्यवसाय अत्यन्त उन्नत थे। इस युग की सबसे प्रबल मानवतावादी विशेषता यह थी कि इस समय जाति प्रथा जन्म से नहीं थी और न उसका बन्धन इतना प्रबल था इस समय यह प्रथा परिवर्तनशील व कर्म पर आधारित थी अर्थात् जो जैसा कर्म करता था उसको वैसी ही जाति मिल जाती थी।

मानवीय विषयों पर महत्त्व देने के साथ-साथ मानवतावाद तर्क और विज्ञान को आधार बनाकर मानवीय समस्याओं का हल भी खोजता है गौतम बुद्ध इसी के निहितार्थ समस्त ऐश्वर्य त्यागकर ज्ञान की खोज में सन्नद्ध हुए थे, वर्ण व्यवस्था जैसी विकृत व्यवस्था को मानव की विरोधी व्यवस्था मानते हुए बुद्ध ने इसे पूर्णतः अस्वीकृत किया है उनके अनुसार समाज में व्यक्ति का स्थान जन्म और जाति के आधार पर निर्धारित नहीं करना चाहिए बल्कि कानूनी दृष्टि से सभी व्यक्तियों को समान मानना चाहिए चाहे उनका जन्म जिस भी जाति या वर्ण में हुआ हो। बौद्ध संघों में किसी भी जाति में जन्मा पुरुष और स्त्रियाँ प्रवेश पा सकती थीं। मानवतावाद जाति के आधार पर कार्यविभाजन का समर्थन नहीं करता है इसलिए बौद्ध धर्म में भी पढ़ने-पढ़ाने और पुरोहिताई का कार्य सिर्फ ब्राह्मण पुरुषों के लिए आरक्षित नहीं था।

भारतीय मानवतावाद आध्यात्मिक मानवतावाद है जिसमें न तो आधिदैविकता की सम्पूर्णतया अवहेलना की जाती है और न मानव-हितों को केवल ऐहिक सुखों में सीमित समझा जाता है। ये दोनों बातें अपने तरीके से भारतीय आध्यात्मिक मानवतावाद

में पायी जाती हैं। भारतीय परंपरा में मानवतावाद की शुरुआत पाँच हजार वर्ष पूर्व वेद, उपनिषद काल से हुई थी ठीक इसी समय राष्ट्र-राज्य की भी शुरुआत हुई थी, आदर्श राज्य एवं मानवतावाद के बारे में विचार एवं विश्लेषण तो इसी युग से प्रारम्भ हो गया था। छान्दोग्यउपनिषद में कहा गया है- “मेरे राज्य में न तो कोई चोर है, न ही कृपण, न तो कोई शराबी है, न ही नास्तिक। एक भी ऐसा नागरिक नहीं है जो विद्वान नहीं हो।” ऐसे राष्ट्र-राज्य अर्थात् भारत में व्याप्त मानवतावाद परवर्ती कालों में भी शासकों के लिए अनुकरणीय रहा। रामराज्य का प्रतिमान धर्मराज का आदर्श, बुद्ध, महावीर, भर्तृहरि का त्याग, महात्मा गाँधी का समानतावाद, राजा राममोहन राय का सुधारवाद आदि सब कुछ मानवतावाद की ही प्रतिच्छाएँ हैं।

भारतवर्ष में समय-समय पर ऐसे अनेक सन्त एवं शासक हुए जिनके कार्य मानव-धर्म के सच्चे उदाहरण हैं- मौर्य वंश के प्रधानमंत्री कौटिल्य एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के बाद भी जनहित को सर्वोपरि मानते थे। मैगस्थनीज ने एक स्थान पर लिखा था कि ‘जहाँ अन्य देशों में यह सर्वमान्य बात है कि युद्ध के चालु रहते समय संपूर्ण प्रदेश को नेस्तानाबूद कर दिया जाता है, जमीन को खेती के बिल्कुल अनुपयुक्त कर दिया जाता है वहीं भारत में इसका उल्टा दिखाई पड़ता है, जमीन जोतने वाले किसान यहाँ बहुत सम्मानीय माने जाते हैं।’

वस्तुतः राष्ट्रवादी विचारधारा वह विचारधारा है जिसमें व्यक्ति प्रत्येक कार्य के पूर्व यह चिन्तन करे कि वह राष्ट्रहित और राष्ट्रोन्नति के लिए किया जा रहा हो, उसके द्वारा किया जाने वाला कोई भी कार्य ऐसा न हो जिससे राष्ट्र का अहित हो एवं उसकी उन्नति में बाधा उपस्थित हो। भारतीय राष्ट्रवाद इस दृष्टि से अनोखा है जहाँ उन्नति का तात्पर्य केवल भौतिक उन्नति से न होकर धार्मिक एवं आत्मिक उन्नति से माना गया है। भारतीय राष्ट्रवाद राम को पिता के एक बार कह देने पर राजपाट त्यागकर वनवास चले जाने, असुरों से प्रजा को भयमुक्त कराने, प्रजा के पति पालकधर्म के निर्वाह हेतु सीता का परित्याग करने, भीष्म पितामह के राजधर्म पालन की प्रतिबद्धता, पांडवों के त्याग, कश्यप के न्याय में प्रतिबिंबित होता है। पशुपतिराज चौहान के औदार्य और क्षमाशीलता में है। प्रताप, लक्ष्मीबाई, नाना, शिवाजी, तात्या, आजाद, भगतसिंह और बिस्मिल की वीरता में है। तुलसी, मीरा, सूर और प्रहलाद की भक्ति में है। गाँधी, तिलक, गोखले, सुभाष और कलाम की राष्ट्रभक्ति में है और उन सभी मूल्यों और आदर्शों में है जो सदियों से भारत की धरोहर है। ब्रिटिश विद्वान टॉड ने राजस्थान में एक स्थान पर लिखा है कि आर्यावर्त के अतिरिक्त और किसी देश में सृष्टि के आरम्भ का हिसाब नहीं पाया जाता। आदि सृष्टि यहीं हुई-

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भण्डार है,
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।²

भारतीय भूमि अत्यन्त पवित्र भूमि है, पुण्य भूमि है जिस पर देवताओं ने अवतार लिया और विश्व को मर्यादा और कर्म का पाठ-पढ़ाया गंगा, यमुना, हिमालय और ऋषि मुनियों का देश जहाँ वर्षों तक कठोर तप करते हुए मुनियों ने जीवन के सार को समझा और जनपीड़ा को हरने का प्रयास किया। भारतीय राष्ट्रवाद किसी भी कट्टरता और जड़ता से उत्पन्न वाद नहीं है इसका स्वरूप उन विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों, जातियों और वर्णों की सम्मिलित विशेषताओं से निर्मित है जो भारतवर्ष में समय-समय पर आती रहीं और उसमें आत्मसात होती रहीं, उनके प्रति सौहार्द और ऐक्य का भाव भारतीयों के मन में सदा से विद्यमान है उनके आदि ग्रन्थ वेद स्वयं इसकी घोषणा करते हुए कहते हैं-

सौहार्द और मतैक्य हो, अविरोद्ध मन का भाव हो
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा,
निज यज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा ॥³

भारतीयों के मन में भाईचारे की भावना प्रधान है वे समस्त पशुपति को अपना परिवार और सभी मनुष्यों को अपना भाई मानते हैं, वे दूसरों के दुःख में दुःखी एवं दूसरों के सुख में सुखी होना जानते हैं उनके हृदय में सदैव राष्ट्र का राग गूँजता रहता है-

सुख और दुख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो।⁴

भारत और विश्व के अन्य राष्ट्रों में पाई जाने वाली भिन्नता उनकी प्रवृत्तिगत भिन्नता है। आज हम देखते हैं कि जितनी तेजी से व्यवसायीकरण बढ़ा है उतनी ही संवेदनहीनता और कश्त्रिमता भी बढ़ी है। यद्यपि इसके प्रभाव से भारत भी अछूता नहीं है तथापि व्यवसायीकरण के दुष्प्रभावों का प्रतिशत भारत में उन देशों से काफी कम है जहाँ इसकी गति बहुत तीव्र है और इसका एक बहुत बड़ा कारण है हमारी सहजता और संवेदनात्मकता। आज भी भारतीय जन-जीवन का 98 प्रतिशत भाग उन मनोवेगों से संवलित है जो मानवीयता के उत्स हैं। भारत एक स्वाभिमानी व पराक्रमशाली राष्ट्र है उसे अनेकों वार आक्रमण का सामना करना पड़ा फिर भी उसने कभी अपने सिद्धान्तों का परित्याग नहीं किया, समर भूमि में सदैव योगेश्वर श्रीकृष्ण के उपदेश का ध्यान कर कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ हुआ। आक्रमण के खतरे सदैव रहते हैं किन्तु उन खतरों के बीच अपने मूल्यों

और आदर्शों को सहेजते हुए एक ईमानदार और न्यायपूर्ण प्रत्युत्तर देना उसकी उस सोच का परिणाम है जो उसे अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है -

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे
उनसे वही गम्भीर थे, वर वीर थे, ध्रुव धीर थे।⁵

भारतीयों को अपने पूर्वजों से विरासत में न केवल वीरता अपितु वे सभी गुण प्राप्त हुए हैं जो भारत को 'भारत महान' बनाते हैं। इसलिए यह समझना आवश्यक हो जाता है कि किसी राष्ट्र की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक और नैतिक संरचना कैसी है और उसका वहाँ के जनजीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है किसी भी राष्ट्र का राष्ट्रीय जीवन इन्हीं संरचनाओं पर आश्रित व पल्लवित होता है। यद्यपि सभी राष्ट्रों में इनमें से किसी का कम या अधिक महत्त्व हो सकता है और उससे उस राष्ट्र का जीवन प्रभावित हो सकता है तथापि सभी राष्ट्रों में जो प्रधान तत्त्व है वह है वहाँ रहने वाले नागरिकों की अपने राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता की भावना, भारत की सामाजिक संरचना प्राचीन काल से ही संगठन का मूल आधार रही है जिसकी इकाई परिवार था, भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा ने लोगों को आपस में मिलजुलकर रहने और संकट में एक दूसरे का साथ देने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जो हमारे राष्ट्रवाद की मुख्य विशेषता है। समाज में सभी वर्ण और वर्ग के लोगों के कर्तव्य और अधिकार निर्धारित थे और प्रत्येक मनुष्य से यह आशा की जाती थी कि वह नियमों और कर्तव्यों का पालन करेगा, नियमों और कर्तव्यों का पालन राष्ट्र को मजबूत करता है। सामंजस्य और सामुदायिकता जैसे सामाजिक गुण ऐसे गुण हैं जो राष्ट्र की दीर्घायु के लिए आवश्यक हैं। आर्थिक सबलता किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए अनिवार्य है, प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत की अर्थव्यवस्था एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था है, राष्ट्र के सभी शहरों और गाँवों में विभिन्न प्रकार के व्यवसायों-व्यापारों में वृद्धि हो रही है, विश्व के सबसे सम्पन्न औद्योगिक घरानों में भारतीय घराने सम्मिलित हैं आर्थिक स्वावलम्बन एवं उत्कृष्ट उत्पादन क्षमता राष्ट्रीय गौरव का कारण है और विशुद्ध राष्ट्रवाद भी। प्राचीन काल में भी वाणिज्य और व्यापार समुन्नत था तथा विदेशों से व्यापार होता था और आज भी हो रहा है।

आज भारत विश्व का सबसे बड़ा बाजार है जिसमें अनेक विदेशी कंपनियाँ अपना उत्पादन बेचकर भारी लाभ की संभावनाएँ देख रही हैं। भारत के देशी और आयुर्वेदिक उत्पादों की तो विदेशों में काफी माँग है भारतीय राष्ट्रवाद की आध रशिला- यहाँ का राजनैतिक जीवन जिसका आदर्श "रामराज्य" को माना गया है विश्व का सबसे उच्च राज्यादर्श है जिसमें राजा या शासक एक ऐसा पुरुष था जो पुरुषों में सबसे उत्तम (पुरुषोत्तम) धीर, वीर, गंभीर, दीनों के रखवाले, मर्यादावान, पतित पावन, उद्धारक और प्रजापालक हैं जिनका पूरा जीवन प्रजा के हित के लिए था। उनके राज्य में किसी को भी दैहिक-दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापता था, उनके राज्य में सभी सुखी, सम्पन्न, स्वस्थ और सहयोगी थे। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, जाति-पाँति का कोई भेदभाव नहीं था। ज्ञान-विज्ञान व कला कौशल का काफी विकास था, सभी को आवश्यक उपयोगी पदार्थ सुलभ हो इस बात का राम पूरा ध्यान रखते थे, उनके राज्य में सर्वत्र सुख का साम्राज्य था किसी को कोई भी कष्ट नहीं था, सभी स्वधर्म का भलीभाँति पालन करते थे। राजा अपनी प्रजा से स्नेह करते थे और प्रजा राजा से। वर्तमान में संविधान की प्रस्तावना न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व एवं राष्ट्रीय एकता जैसे लोक प्रशासन के जिन उद्देश्यों का निर्धारण करती है वहीं उद्देश्य रामराज्य के आधार थे। राजा (शासक) में समदृष्टि का होना आवश्यक है, यदि उसमें समदृष्टि का अभाव होगा तो वह न्याय नहीं कर पाएगा, राजा राम समदर्शी शासक थे। वे जिस प्रकार केवट (नाविक) को हृदय से लगाते हैं उसी प्रकार वन के मार्ग में मिलने वाले अनजान तपस्वी को भी हृदय से लगाते हैं-

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंग जनु पारसु पावा।।
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ।।⁶

मैथिलीशरण गुप्त अपनी भारत-भारती में लिखते हैं-

हम भूप होकर भी कभी होते न भोगासक्त थे,
रहकर विरक्त विदेह जैसे आत्म योगासक्त थे,
कर्तव्य के अनुरोध से ही कार्य करते थे सभी,
राजत्व में भी फिर भला हम भूल सकते थे कभी ?⁷

भारत की नैतिक संरचना अत्यन्त पुष्ट व वैज्ञानिक संरचना है, इसने यहाँ के निवासियों के बहुमुखी विकास में अपना योगदान दिया। यहाँ के लोग महान सादगी न्यायनिष्ठा, सच्चाई, ईमानदारी और सत्यशीलता से जीवन व्यतीत करते थे, उनके जीवन का दृष्टिकोण आशावादी था वे भाग्य की उपेक्षा पुरुषार्थ पर अधिक बल देते थे। नैतिक मूल्यों के अस्तित्व का आधार वैयक्तिक-सामाजिक जीवन प्रक्रिया से निर्मित होता है, नैतिक मामलों में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है वह यह है कि मनुष्य के अभिप्राय शुभ हों भारतीय संस्कृति शुभ के लिए ही प्रयत्न करती है, भारत में सत्य को ईश्वर मानकर उसकी पूजा

की जाती है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र सत्य की उपासना में आरोपी बनकर जंगलों में भटकते रहे और राजपाट छिनने के बाद कुटिया में रहे किन्तु सत्य का मार्ग नहीं छोड़ा। “सादा जीवन उच्च विचार” हमारी प्राचीन रीति है हर स्थिति में न्याय पर अटल रहने की सोच और ईमानदारी भारतीय राष्ट्रवाद को विशिष्ट राष्ट्रवाद बनाती है-

जय-लोभ में भी छल-कपट आने न पाता पास था,
प्रतिपक्षियों को भी हमारे सत्य का विश्वास था।⁸

आज जबकि अन्य राष्ट्रों के जीवन मूल्यों और उनके विकास कार्यों को जानने और उनसे अपने जीवन मूल्यों की तुलना करने का अवसर हमें प्राप्त हो रहा है तब हम वर्तमान परिवेश के अनुरूप नैतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए और उद्यत दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति, अध्याय-6, श्लोक सं. - 92
2. पद-16, भारतवर्ष की श्रेष्ठता, भारत-भारती, पृष्ठ सं. 14
3. पद सं.- 140, खण्ड-भविष्यत खण्ड, भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ सं.-180
4. पद सं.-136, खण्ड-भविष्यत, भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ सं. 190
5. पद सं.-19, अतीत खण्ड, हमारे पूर्वज, भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ सं. 15
6. चौपाई, पृष्ठ सं. 476, अयोध्याकाण्ड, रामचरितमानस
7. पद सं.- 139, राजत्व और शासन अतीत खण्ड, भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त
8. पद सं.-133, हमारी वीरता, अतीत खण्ड, भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त

भारतेंदु के साहित्य में राष्ट्रवादी चिंतन

डॉ. दीपमाला

श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतेंदु कालीन साहित्य का समय '1850 ई. से 1900 ई. तक माना गया है इस समय में जितना भी साहित्य लेखन हुआ उनमें सभी साहित्यकारों ने सांस्कृतिक प्रभुता का गौरवमयी इतिहास का गुणगान करते हुए अपने नाटकों व कविताओं में प्राचीन भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषताओं के तमाम ऐतिहासिक साक्ष्य उद्घाटित करने के साथ देश की राजनीतिक सांस्कृतिक राष्ट्रीय एकता को बरकरार रखने का भरसक प्रयत्न किया है। भारतेंदुजी देशप्रेमी होने के साथ-साथ राजभक्त कवि भी थे, किंतु राजभक्ति का आवरण ओढ़े उन राजभक्त कवियों से नहीं, जिन्होंने देशभक्ति की भावना को राजभक्ति से ढक रखा था।" भारतेंदु हरिश्चंद्र(1850-1885) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ साथ पत्रकार भी थे।

भारतेंदु का व्यक्तित्व प्रभावशाली था, वे संपादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे, उनके आसपास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार थी, डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णोय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे; वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे। प्रश्न यह है कि भारतेंदु को हिन्दी-भाषी जातीयता के नवोत्थान का अग्रदूत कहा जाए या भारतीय नवोत्थान का अग्रदूत कहा जाए। भारतेंदु ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि तब तक हिन्दी-भाषी जनसमूह पिछड़ा हुआ था और उसकी तुलना में बंगला-भाषी जातीयता अथवा मराठी-भाषी जातीयता का काफी विकास हो चुका था। जातीय नवोत्थान की प्रेरणा भारतेंदु को बंगलाआदि का साहित्य पढ़कर मिली थी। भारत की अन्य भाषाओं में जातीय नवचेतना के अंकुर दिखाई देने लगे थे। सन 1870 ई. में लेवी प्राण लेवी नामक अपने निबंध में भारतेंदु ने लिखा था- 'हाय-पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और इनको परमेश्वर यह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंड के वासियों ने पाई है।'

भारतेंदु साहित्य का राष्ट्रवादी चिंतन उनकी रचनाओं व पत्र-पत्रिकाओं में मुखरित देश की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एकता के स्वर व राष्ट्र को एकसूत्रीय भाषा में पिरोने के आवाहन के रूप में देखने को मिलता है भारतेंदु एक सच्चे देशभक्त व कर्मठ पत्रकार थे उनकी रचनाओं में देश की एकता व अखंडता को भाषा के एकत्व द्वारा स्थापित करने की भावना मुख्य रूप से विराजमान रही है भारतेंदु काल को पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी गई है इसे पुनर्जागरण युग यू ही नहीं कहा गया है इसमें राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत एक सच्चे समाजसेवी का अंग्रेजों के खिलाफ जनता को प्रथम संभाषण है। भारतेंदुजी ने अपने नाटकों और कविताओं में पराधीन भारतीयों के मन में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत् करने का उत्तरदायित्व लिया। राष्ट्रीय चेतना का केंद्रबिंदु है - एकता की भावना। लक्ष्य की एकता से बढ़कर और क्या वस्तु हो सकती है, जो राष्ट्रवादियों को एक सूत्र में बाँध दे? अपनी संस्कृति के विकृत होते रूप को देखकर भारतेंदु व तदयुगीन साहित्यकार चिंतित है। उन्हें लगता है कि वह संस्कृति, जिसके कारण भारत की विश्व में अलग पहचान बनी। वह संस्कृति जो हमारे जीवन को समृद्ध, परिनिष्ठित और सुसंस्कृत बनाती है, जिसे हम सभ्यता की आत्मा कहते हैं, वह आज पश्चिमी प्रभाव से नग्नता की ओर बढ़ रही है। युवा पीढ़ी को अंगीकार नहीं, क्योंकि अर्थोपार्जन की अंधी दौड़ में अपनी जातीय, परिवेशीय महनीयता को तिलांजलि देकर अकेला भाग रहा था। वह अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी तैयार था। अपना परिवार, प्रेम, एकता, धर्म, रीति-रिवाज और सारे संबंध-सरोकार छोड़कर। भारतेंदु व तदयुगीन साहित्यकारों ने राष्ट्रीय कविताओं में सामाजिक बोध, नवनिर्माण और जाति धर्म से ऊपर उठकर राष्ट्रीय चेतना का आह्वान और शोषितों, दीन-दलितों के प्रति गहरी संवेदना और उद्धार की उत्कट भावना है। अपनी राष्ट्रीय भाषा के प्रति भी कवि की भावना महान् चिंतकों की सी है, क्योंकि हिन्दी हमारी भाषा ही नहीं संस्कृति है, पहचान भी है। यह एकता का सबसे मजबूत सूत्र है।

भारतेंदु साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं के विविध स्वर मिलते हैं। 'भारत दुर्दशा' नाट्य-कृति देशप्रेम की एक महत्वपूर्ण रचना है-

रोअहुँ अब मिलि के आवहु भाई। / हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

वर्तमान समय में देश अशिक्षा, ज्ञान, अंधविश्वास, वर्णभेद, छुआछूत, बाल विवाह, बहु विवाह, मद्यपान आदि अनेक सामाजिक विसंगतियों से ग्रस्त था भारतीयों को सरकारी नौकरियां नहीं मिल पाती थी चारों और कंगाली भुखमरी व्याप्त थी इस दारुण दृश्य का विवेचन करते हुए भारतेन्दु ने विदेशी शासन के प्रति रोष और दोष दोनों को एक साथ अभिव्यक्त किया है—
अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेश चली जाए यह अति ख्वारी।।

वर्तमान जीवन से संतुष्ट भारतीय जनमानस को अतीत के गौरव की स्मृति अत्यंत तृप्ति दायक प्रतीत होती थी युगीन कविता में अतीत के गौरव गान की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से भारतेन्दु ने दर्शाई है भारत दुर्दशा नाटक में भारतेन्दु ने अतीत के गौरव का स्वर्णिम रूप निम्न प्रकार से अंकित किया है -

भारत किरण जगत उजियारा। भारत जीवन जियत संसारा।

भारत वेद कथा इतिहासा। भारत वेद कथा प्रकासा।

एक अन्य स्थल पर भारतेन्दु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं -

भारत के भुज बल जग रच्छित, भारत विद्या लहि जग सिच्छित।

भारत तेज जगत विस्तारा, भारत भय कपिथ संसारा।

विदेशी शासन सभ्यता और शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करना भी भारतेन्दु अपना लक्ष्य समझते रहे थे अंग्रेजों की विभेदक नीति पर भी उन्होंने अपने साहित्य में अनेक स्थलों पर प्रहार किए हैं वे कहते हैं:-

विलायत जो हरखाए । भारत सो धन रोज कमाए।

भारतेन्दु युगीन साहित्य में भारत माता का करुण चित्र प्रस्तुत करते हुए भारतेन्दु जी भारत माता के संपूर्ण दुखों को दूर करना ही देशभक्त भारतीय का दायित्व समझते हैं भारत दुर्दशा नाटक तो संपूर्ण भारत की करुण गाथा की रचना कही जाती है जिसमें भारतेन्दु जी ने अपने देशवासियों से अंग्रेजों के खिलाफ आवाज उठाने उनकी नीतियों का दमन करने का आवाहन किया है देश में व्याप्त अशिक्षा, बेरोजगारी, भूख, बीमारी, अंधविश्वास मद्यपान, छुआछूत, धर्म, जाति आदि का फायदा उठा देश को तोड़ने की अंग्रेजों की नीतियों का पर्दाफाश करने की, भारतेन्दु जीने सफल योजना की है एक जगह उन्होंने लिखा है-

भीतर भीतर सब रस चूसै, हंसी हंसी में तन मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखी साजन नही अंग्रेज।

भारतेन्दु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा-

चूरन अमले जो सब खाते, दूनी रिश्वत तुरत पचाते।

चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।

किसी भी देश को एक सूत्र में बांधने का कार्य उसकी भाषा करती है। भाषा ही उस देश की संस्कृति रीति रिवाजों त्योहारों के माध्यम से देश का विकास करती है भारतेन्दु हरिश्चंद्र यह बात बहुत अच्छे से समझ गए थे कि किसी भी देश को एक सूत्र में बांधने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना अनिवार्य है और यह कार्य वही भाषा कर सकती है जो संपूर्ण राष्ट्र की भाषा बनने का गुण रखती हो। भारत की अन्य जातियों की तुलना में हिंदी-भाषी जाति (पश्चिमोत्तर देशवासी) के पिछड़ेपन के संबंध में भारतेन्दु जी का मानना रहा है कि जब तक भारतवासी अपनी भाषा को छोड़कर अंग्रेजी या अन्य भाषा में काम करते रहेंगे तब तक देश का एक राष्ट्र में बंधना असम्भव है। जातीय स्वत्व की पहचान और उसकी सम्मान-रक्षा के बोध से प्रेरित भारतेन्दु का नवजागरणवादी आह्वान यह बतलाता है कि वह जातीय नवचेतना के उदघोषक थे। खड़ी बोली भाषा के माध्यम से साहित्य को मध्यकालीन पौराणिक परिवेश से बाहर निकालकर उसे आधुनिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न ही उन्हें युगांतकारी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है। तत्कालीन हिंदी-भाषी समाज को भाव, विचार और भाषा-तीनों दृष्टियों से उन्होंने जिस दिशा में अग्रसर किया, उसी दिशा में हिंदी-भाषी जनता ने विकास की अनेक मंजिलें पार कीं। यही कारण है कि भारतेन्दु के व्यक्तित्व की छाप, उनके मनोभाव और विचार-जगत का प्रतिबिंब तत्कालीन अनेक कवियों और लेखकों की रचनाओं में बराबर मिलता रहा। एक जगह उनके समकालीन प्रेमघन लिखते हैं:-

अचछर-चार पढ़ेह अंग्रेजी, बन गए अफलातून।।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का हिंदी भाषा को नई चाल में ढालने का मकसद उनकी राष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक माना जाता चाहिए। उनसे पहले हिंदी भाषा में दो तरह के 'स्कूल' चलते थे, एक राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृतनिष्ठ हिंदी और दूसरा राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' की फारसीनिष्ठ शैली का। दोनों ही शैलियां अपनी अति को छू रही थीं। एक हिंदी भाषा में संस्कृत के शब्दों को चुन-चुनकर डाल रही थी तो दूसरा फारसी के शब्दों को हरिश्चंद्र बाबू ने इन दोनों प्रवृत्तियों का मिलन कराया।

उन्होंने अपनी पत्रिका 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में 1873 से हिंदी की नई भाषा को गढ़ना शुरू किया। इसके लिए उन्होंने खड़ी बोली का आवरण लेकर उसमें उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया। वहीं तत्सम और उससे निकले तद्भव शब्दों को भी पर्याप्त महत्व दिया। इसकेसाथ ही उन्होंने कठिन और अबूझ शब्दों का प्रयोग वर्जित कर दिया। भाषा के इस रूप को हिंदुस्तानी शैली कहा गया, जिसे बाद में प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने आगे और परिष्कृत किया। हालांकि कविता में वे खड़ी बोली के बजाय ब्रज का ही इस्तेमाल करते रहे।

भारतेंदु का राष्ट्रवादी चिंतन उनके द्वारा निकाली गई पत्र-पत्रिकाओं के स्वर में भी मुखरित होता है भारतेंदु ने पत्र-पत्रिकाओं को पूर्णतया जागरण और स्वाधीनता की चेतना से जोड़ते हुए 1867 में 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन किया जिसका मूल वाक्य था : अपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै। भारत द्वारा सत्व ग्रहण करने के उद्देश्य को लेकर भारतेंदु ने हिंदी पत्रकारिता का विकास किया और आने वाले पत्रकारों के लिए दिशा-निर्माण किया। भारतेंदु ने कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र पत्रिका, बाला बोधिनी नामक पत्र निकाले। 'कवि वचन सुधा' को 1875 में साप्ताहिक किया गया जबकि अनेकानेक समस्याओं के कारण 1885 ई. में इसे बंद कर दिया गया। 1873 में भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन किया जिसका नाम 1874 में बदलकर 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' कर दिया गया। देश के प्रति सजगता, समाज सुधार, राष्ट्रीय चेतना, मानवीयता, स्वाधीन होने की चाह इनके पत्रों की मूल विषयवस्तु थी। स्त्रियों को गृहस्थ धर्म और जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए भारतेंदु ने 'बाला बोधिनी' पत्रिका निकाली जिसका उद्देश्य महिलाओं के हित की बात करना था। भारतेंदु से प्रेरणा पाकर भारतेंदु मण्डल के अन्य पत्रकारों ने भी पत्रों का प्रकाशन किया। पं. बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' इस दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रयास था। इस पत्र की शैली व्यंग्य और विनोद का सम्मिश्रण थी और व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए जन जागृति का प्रयास करना इनका उद्देश्य था। इस पत्र का उद्घाटन करते हुए भारतेंदु ने लिखा -

सूझे विवेक विचार उन्नति, कुमति सब यामैं जरै।

हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मुखतादि भारत तम हरै।

1857 के संग्राम से प्रेरणा लेकर भारतवासियों की जागृति का यह प्रयास चल ही रहा था कि 14 मार्च 1878 को वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू कर दिया गया। लार्ड लिटन द्वारा लागू इस कानून का उद्देश्य पत्र-पत्रिकाओं की अभिव्यक्ति को दबाना और उनके स्वातंत्र्य का हनन करना था। 'हिंदी प्रदीप' ने इस एक्ट की न केवल भर्त्सना की बल्कि उद्बोधनपरक लेख भी लिखे। 1881 में पं. बद्रीनारायण उपाध्याय ने 'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्र निकाला और पं. प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से 'ब्राह्मण' का प्रकाशन किया। 'आनन्द-कादम्बिनी' ने जहाँ साहित्यिक पत्रकारिता में योगदान दिया वहीं 'ब्राह्मण' ने अत्यंत धनाभाव में भी सर्वसाधारण तक जानकारी पहुँचाने का कार्य पूर्ण किया। 'ब्राह्मण' का योगदान साधारण व सरल गद्य के संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है। 1890 में 'हिंदी बंगवासी' ने कांग्रेस परव्यंग्य की बौछार की वहीं 1891 में 'बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन' ने 'नागरी नीरद' का प्रकाशन किया। राष्ट्र को चैतन्य करना व अंग्रेजों की काली करतूतों का पर्दाफाश करना इस पत्र का उद्देश्य था। भारतेंदु युग से निकलने वाले पत्रों की मूल विषयवस्तु भारतीयों को जागृत करना तथा सत्य, न्याय और कर्तव्यनिष्ठा का प्रसार करना तथा जनता को एकता की भावना का पाठ पढ़ाना था। यह युग राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का युग था। पत्रकारों का उद्देश्य किसी भी प्रकार की व्यावसायिक पत्रकारिता को प्रश्रय देना नहीं था। वह पत्रकारिता का सही दिशा में सदुपयोग करते हुए आम जन के भीतर वह जोश एवं उमंग भरना चाहते थे जिसके द्वारा वह स्वयं खड़े होने का साहसकर सके। इसी राष्ट्रीयता का विस्तार था - सरकार की नीतियों का पर्दाफाश करना। ब्रिटिश सरकार की अनीतियों पर चढ़े नीतिगत मुलम्में को उतार कर उनके वास्तविक चेहरे का उद्घाटन करना इस काल के पत्रकारों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। बालमुकुन्द गुप्त ने 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में ब्राह्मण शिवशम्भु शर्मा के छद्म नाम से लॉर्ड कर्जन की नीतियों पर व्यंग्य किया।

भारतेंदु का समय अपने छोटे से रचना काल में देश की उन्नति और राष्ट्र की प्रगति का जो कार्य संपन्न करके गया वह उनके बाद के अन्य किसी साहित्यकार ने शायद ही किया हो। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने देश के सजग नागरिक होने के साथ-साथ एक सच्चे देशभक्त, नाटककार, कवि, साहित्यकार, पत्रकार व जग हितैषी रहे हैं उनका हर प्रयास अपने आप में एक महान कार्य साबित हुआ है जिससे शिक्षा ग्रहण कर उनके उत्तरोत्तर साहित्यकार कार्य करने को जागृत हुए, उनका चिंतन मनन देश ही नहीं संसार में भी उनकी रचनाओं के माध्यम से प्रसारित होता रहा है उनके नाटक आज भी अपनी प्रासंगिकता लिए हुए हैं उनकी पत्रिकाओं का स्वर आज भी पत्रकार उठाते हैं वे एक सच्चे मार्गदर्शक के रूप में समाज में विद्यमान रहेंगे।

संदर्भ

- 1 संस्कृति और संक्रमण : शाहिद रहीम, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवालान, नई दिल्ली-110055
- 2 भारत दुर्दशा, भारतेंदु हरिश्चंद्र
- 3 अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र
- 4 हंस, तद्भव, वागर्थ, व समकालीन भारतीय साहित्य में छपे लेख।

आइए बनाएं एकात्म मानवदर्शन पर आधारित मीडिया

प्रो. संजय द्विवेदी

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय
भोपाल

पं. दीनदयाल उपाध्याय स्वयं बहुत बड़े पत्रकार और संचारक थे। अपनी विचारधारा को पुष्ट करने के लिए पत्रों का संपादन, प्रकाशन, स्तंभलेखन, पुस्तक लेखन उनकी रुचि का विषय था। उन्होंने लिखने के साथ-साथ बोलकर भी एक प्रभावी संचारक की भूमिका का निर्वहन किया है। उनकी स्मृति को रेखांकित करते हुए क्या हम विचार कर सकते हैं कि समाज जीवन के हर पक्ष में एकात्म मानवदर्शन किस तरह प्रभावी हो सकता है। भरोसा करना कठिन है कि श्री दीनदयाल उपाध्याय जैसे साधारण कद-काठी और सामान्य से दिखने वाले मनुष्य ने भारतीय राजनीति और समाज को एक ऐसा वैकल्पिक विचार और दर्शन प्रदान किया कि जिससे प्रेरणा लेकर हजारों युवाओं की एक ऐसी मालिका तैयार हुयी, जिसने इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारतीय राजसत्ता में अपनी गहरी पैठ बना ली। क्या विचार सच में इतने ताकतवर होते हैं या यह सिर्फ समय का खेल है? किसी भी देश की राजनीतिक निष्ठाएं एकाएक नहीं बदलतीं। उसे बदलने में सालों लगते हैं। डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी से लेकर श्री नरेंद्र मोदी तक पहुंची यह राजनीतिक विचार यात्रा साधारण नहीं है। इसमें इस विचार को समर्पित लाखों-लाखों अनाम सहयोगियों को भुलाया तो जा सकता है किंतु उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

राजनीति के लिए नहीं, विचार के साधक

पं. दीनदयाल उपाध्याय राजनीति के लिए नहीं बने थे, उन्हें तो एक नए बने राजनीतिक दल जनसंघ में उसके प्रथम अध्यक्ष डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मांग पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री मा.स.गोलवलकर (गुरुजी) ने राजनीति में भेजा था। यह एक संयोग ही था कि डा. मुखर्जी और दीनदयाल जी दोनों की मृत्यु सहज नहीं रही और दोनों की मौत और हत्या के कारण आज भी रहस्य में हैं। दीनदयालजी तो संघ के प्रचारक थे। आरएसएस की परिपाटी में प्रचारक एक गृहत्यागी सन्यासी सरीखा व्यक्ति होता है, जो समाज के संगठन के लिए अलग-अलग संगठनों के माध्यम से विविध क्षेत्रों में काम करता है। देश के सबसे बड़े सांस्कृतिक संगठन बन चुके आरएसएस के लिए वे बेहद कठिन दिन थे। राजसत्ता उन्हें गांधी का हत्यारा कहकर लांछित करती थी, तो समाज में उनके लिए जगह धीरे-धीरे बन रही थी। श्रुद्ध सात्विक प्रेम और संपर्कों के आधार पर जैसा स्वाभाविक विस्तार संघ का होना था, वह हो रहा था, किंतु निरंतर राजनीतिक हमलों ने उसे मजबूर किया कि वह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में भी सामने आए। खासकर संघ पर प्रतिबंध के दौर में तो उसके पक्ष में दो बातें कहने वाले लोग भी संसद और विधानसभाओं में नहीं थे। यही पीड़ा भारतीय जनसंघ के गठन का आधार बनी। डा. मुखर्जी उसके वाहक बने और दीनदयाल जी के नाते उन्हें एक ऐसा महामंत्री मिला जिसने दल को न सिर्फ सांगठनिक आधार दिया बल्कि उसके वैचारिक अधिष्ठान को भी स्पष्ट करने का काम किया।

चुनावी सफलताओं के बिना बने राजनीति के दिशावाहक

पं. दीनदयाल जी को गुरुजी ने जिस भी अपेक्षा से वहां भेजा वे उससे ज्यादा सफल रहे। अपने जीवन की प्रामाणिकता, कार्यकुशलता, सतत प्रवास, लेखन, संगठन कौशल और विचार के प्रति निरंतरता ने उन्हें जल्दी ही संघ और जनसंघ के कार्यकर्ताओं का श्रद्धाभाजन बना दिया। बेहद साधारण परिवार और परिवेश से आए दीनदयालजी भारतीय राजनीति के मंच पर बिना बड़ी चमत्कारी सफलताओं के भी एक ऐसे नायक के रूप में स्थापित होते दिखे, जिसे आप आदर्श मान सकते हैं। उनके हिस्से चुनावी सफलताएं नहीं रहीं, एक चुनाव जो वे जौनपुर से लड़े वह भी हार गए, किंतु उनका सामाजिक कद बहुत बढ़ा हो चुका था। उनकी बातें गौर से सुनी जाने लगी थीं। वे दिग्गज राजनेताओं की भीड़ में एक राष्ट्ररूषि सरीखे नजर आते थे। उदारता और सौजन्यता से लोगों के मनो में, संगठन कौशल से कार्यकर्ताओं के दिलों में जगह बना रहे थे तो वैचारिक विमर्श में हस्तक्षेप करते हुए देश के बौद्धिक जगत को वे आंदोलित-प्रभावित कर रहे थे। वामपंथी आंदोलन के मुखर बौद्धिक नेताओं की एक लंबी श्रृंखला, कांग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन से तपकर निकले तमाम नेताओं और समाजवादी आंदोलन के डा. राममनोहर लोहिया जैसे प्रखर राजनीतिक चिंतकों के बीच अगर दीनदयाल उपाध्याय स्वीकृति पा रहे थे, तो यह साधारण घटना नहीं थी। यह बात बताती है गुरुजी का चयन कितना सही था। उनके साथ खड़ी हो रही सर्वश्री अटलबिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण

आडवाणी, नानाजी देशमुख. जेपी माथुर, सुंदरसिंह भंडारी, कुशाभाऊ ठाकरे जैसे सैकड़ों कार्यकर्ताओं की पीढ़ी को याद करना होगा, जिनके आधार पर जनसंघ से भाजपा तक की यात्रा परवान चढ़ी है। दीनदयाल जी इन सबके रोलमाडल थे। अपनी सादगी, सज्जनता, व्यक्तियों का निर्माण करने की उनकी शैली और उसके साथ वैचारिक स्पष्टता ने उन्हें बनाया और गढ़ा था।

भारतीय राजनीतिक विमर्श में सार्थक हस्तक्षेप

एकात्म मानववाद के माध्यम से सर्वथा एक भारतीय विचार को प्रवर्तित कर उन्होंने हमारे राजनीतिक विमर्श को एक नया आकाश दिया। यह बहुत से प्रचलित राजनीतिक विचारों के समकक्ष एक भारतीय राजनीतिक दर्शन था, जिसे वे बौद्धिक विमर्श का हिस्सा बना रहे थे। अपने इस विचार को वे व्यापक आधार दे पाते इसके पूर्व उनकी हत्या ने तमाम सपनों पर पानी फेर दिया। जब वे अपना श्रेष्ठतम देने की ओर बढ़ रहे थे, तब हुई उनकी हत्या ने पूरे देश को अवाक कर दिया। दीनदयाल जी ने अपने प्रलेखों और भाषणों में 'एकात्म मानववाद' शब्द पद का उपयोग किया है। भाजपा ने 1985 में इसे इसी नाम से स्वीकार किया, किंतु नानाजी देशमुख और संघ परिवार के बीच 'एकात्म मानवदर्शन' नामक शब्दपद स्वीकृति पा चुका है। यह एक सुखद संयोग ही है कि उनके द्वारा प्रवर्तित एकात्म मानवदर्शन की विचारयात्रा अपने पांच दशक पूर्ण कर चुकी है।

एकात्म मानवदर्शन के आधार पर कैसा मीडिया बनेगा

ऐसे प्रसंग यह विचार करना जरूरी हो जाता है कि आखिर एकात्म मानवदर्शन के आधार पर हमारी मीडिया का चेहरा बने तो वह कैसा होगा? एकात्म मानवदर्शन को लेकर समाज जीवन के विविध पक्षों में कैसे परिवर्तन होंगे, इस पर विद्वानों ने अलग-अलग विचार किया है। किंतु हमें यह जानना जरूरी है कि आज के सबसे प्रभावकारी माध्यम मीडिया में एकात्म भाव की उपस्थिति से क्या बदलाव आएंगे। एकात्म मानवदर्शन क्योंकि विभेद का दर्शन नहीं है, वह विषयों पर संपूर्णता में विचार करने वाला दर्शन है। एक ऐसी चिंतनधारा है जिसमें मनुष्यता के मूल्य और मनुष्य की मुक्ति संयुक्त है। दीनदयाल जी अपनी विचारधारा में मीडिया को अलग करके नहीं देखते। वे यही दृष्टि रखते किस तरह मीडिया समाज की एकता, उसकी बेहतरी और मनुष्यता की मुक्ति में सहायक हो।

संवाद मनुष्य की आवश्यकता भी है और उसकी प्रेरणा भी। वह संवाद किए बिना रह नहीं सकता। उसका समूची सशक्ति से रिश्ता है और संवाद है। जिसे हम प्रकृति से संवाद की भी संज्ञा देते हैं। मनुष्य के लिए संवाद कैसा हो इस पर बहुत विचार हुआ है। सूचना की भी इसमें एक बड़ी भूमिका है। इस भूमिका का वास्तविक निर्वाह ही हमें मनुष्य बनाता है। एक शायर शायद इसीलिए कहते हैं- "आदमी को मयस्सर नहीं इंसा होना।" यानि आदमी को इंसान या मनुष्य बनाने की यात्रा एक कठिन यात्रा है। कठिन संकल्प से ही व्यक्ति रूपांतरित होता है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि आखिर व्यक्ति की सूचना का संचार कितना व्यापक हो। सवाल यह भी है कि क्या हर सूचना व्यक्ति के लिए जरूरी है। साथ ही ऐसा क्या किया जाए कि व्यक्ति को सूचना इस प्रकार दी जाए, जिससे उसके विकास में मदद मिले न कि वह भ्रमित हो।

मीडिया में लाइव शुभदृष्टि

एकात्म मानवदर्शन के आधार बनने वाले मीडिया और सूचना की दुनिया में सबका हित निहित होना है। वह एकांगी मीडिया नहीं होगा, वह सूचना को जारी करने से पहले उसके प्रभाव का भी आकलन करेगा। मीडिया और शुभ दोनों विरोधी लगते हैं। पश्चिमी अवधारणा में खबर तभी बनेगी, जब कुछ अशोभन हो, चौकानेवाला हो, दर्द का विस्तार करने वाला हो, तो इसमें शुभदृष्टि कहाँ है? एकात्म भाव से भरा मीडिया इसके विपरीत चलेगा। वह हर सूचना में शुभदृष्टि का विचार करेगा। सूचनाओं को विद्रूप करने, उसे खींचने के बजाए- वह शुभदृष्टि के चलते उसकी न्यूनतम नकारात्मकता का विचार करेगा। जाहिर तौर पर यह मीडिया आज की मीडिया के लीक से अलग चलेगा। वह बाजार और व्यापार के लिए संवाद से सौदा नहीं करेगा। वह मनुष्यता और मनुष्य की मुक्ति को केंद्र में रखते हुए वही परोसेगा, जिससे समाज में जुड़ाव बढ़े और शुभदृष्टि का विचार हो। क्या ऐसा मीडिया संभव है? साथ ही यह सवाल भी है कि यदि समाज में शुभदृष्टि का विचार स्थापित हो जाता है तो क्या हमारा परंपरागत मीडिया अप्रासंगिक नहीं हो जाएगा? सवाल यह भी मौजू है कि मीडिया में सकारात्मकता का प्रसार क्या मुख्यधारा के मीडिया को शक्ति दे सकता है?

क्या विचारों और सुसंवाद पर आधारित ऐसे मीडिया की रचना संभव है जिसकी दृष्टि बाजारू न हो? आज दुनिया में 24 घंटे का कोलाहल करने वाला मीडिया उपलब्ध है, क्या इसका भी नियमन नहीं होना चाहिए कि आखिर चौबीस घंटों हमें मीडिया क्यों चाहिए? नकारात्मकता, बिजनेस माडल के आधार पर चलने वाला मीडिया आखिर किसकी जरूरत है? भारत में अभी मीडिया का बहुत व्यापन होने के बावजूद भी अब इसके कंटेंट और इसकी जरूरतों पर बात शुरू हो गयी है। हमें यह विचार करने का समय आ गया है कि हमें सोचें कि आखिर हमें कितना और कैसा मीडिया चाहिए? हम कैसे इस मीडिया में वह एकात्म भाव भर सकते हैं जो हर मनुष्य में मौजूद है और नैसर्गिक है। मीडिया की परंपरागत संवाद शैली से अलग हमें इसे शुभदृष्टि की ओर ले जाने की जरूरत है।

मीडिया और समाज अलग-अलग नहीं चल सकते

जीवन मूल्यों की जितनी जरूरत मनुष्य को है, उतनी ही मीडिया को भी है। यह संभव नहीं है कि समाज तो मूल्यों

के आधार पर चलने का आग्रही हो और उसका मीडिया, उसकी फिल्में, उसकी प्रदर्शन कलाएं, उसकी पत्रकारिता नकारात्मकता का प्रचार कर रही हों। समाज और मनुष्य को प्रभावित करने का सबसे प्रभावी माध्यम होने के नाते हम इन्हें ऐसे नहीं छोड़ सकते। इन्हें भी हमें अपने जीवन मूल्यों के साथ जोड़ना होगा, जो मनुष्यता और मानवता के विस्तार का ही रूप हैं। अगर हम ऐसा मीडिया खड़ा कर पाते हैं तो समाज के बहुत सारे संकट स्वयं दूर हो जाएंगे। फिर टीवी बहसों से निष्कर्ष निकलेगें, फिर फिल्में समाज में समरसता और ममता का भाव भरेंगीं, फिर खबरें डराने के बजाए जीने का हौसला देंगीं। फिर खबरों का संसार ज्यादा व्यापक होगा। वे जिंदगी के हर पक्ष का विचार करेंगीं। वे एकांगी नहीं होंगीं, पूर्ण होंगीं और शुभता के भाव से भरी-पूरी होंगीं। जाहिर है यहां किसी धार्मिक और आध्यात्मिक मीडिया की बात नहीं हो रही है। सिर्फ उस दृष्टि की बात हो रही है जो एकात्म मानवदर्शन हमें देता है। वह है सबको साथ लेकर चलने, सबका विकास करने और सबसे कमजोर का सबसे पहले विचार करने की बात है। जहां दुनिया को बनाने वाले सारे अवयव एक दूसरे से जुड़े हैं। जहां सब मिलकर संयुक्त होते हैं और वसुधा को परिवार समझने की दृष्टि देते हैं।

दीनदयाल जी की स्मृतियां और उनके द्वारा प्रतिपादित विचारदर्शन एक सपना भी है तो भी इस जमीं को सुंदर बनाने की आकांक्षा से लबरेज है। उसकी अखंडमंडलाकार रचना का विचार करें तो मनुष्यता खुद अपने उत्कर्ष पर स्थापित होती हुयी दिखती है। इसके बाद उसका समाज और फिल्में, उसका समाज और उसका मीडिया, उसका समाज और उसके मूल्य, उसका राह और उसका मन सब एक हो जाते हैं। एकात्म सृष्टि से, एकात्म व्यक्ति से, एकात्म परिवेश से जब हम हो जाते हैं तो प्रश्नों के बजाए सिर्फ उत्तर नजर आते हैं। समस्याओं के बजाए समाधान नजर आते हैं। संकटों के बजाए उत्थान नजर आने लगता है। दुनिया एकात्म मानवदर्शन की राह पर आ रही है, अपने भौतिक उत्थान के साथ आध्यात्मिकता को संयुक्त करने के लिए वह आगे बढ़ चुकी है। यह होगा और जल्दी होगा, हम चाहें तो भी होगा, नहीं चाहे तो भी होगा। क्या हम धरती पर स्वर्ग उतारने के सपने को अपनी ही जिंदगी में सच होते देखना चाहते हैं, तो आइए इस विचार दर्शन को पढ़कर, जीवन में उतारकर देखते हैं। यह हमें इसलिए करना है क्योंकि हमारा जन्म भारत की भूमि पर हुआ है और जिसके पास पीड़ित मानवता को राह दिखाने का स्वाभाविक दायित्व सदियों से आता रहा है। एक बार फिर यह दायित्व क्या हम नहीं निभाएंगे?

मौलाना आजाद की पत्रकारिता में राष्ट्रीय चेतना

देवेन्द्र नाथ तिवारी

शोधार्थी (जनसंचार)

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि., वर्धा

भारत में मुक्त संवाद संप्रेषण की सुदीर्घ परंपरा रही है। यहां संवाद के माध्यम से बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान होता आया है। भारत में अनेक ऋषि, महात्मा और चिंतक हुए हैं। उनकी चिंतन परंपराएँ भी भिन्न हैं। समाज-व्यवस्था के उनके तरीके भी भिन्न हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता भारतीयता की पहचान है। हम अनेकता में भी एकता और एकात्मता में विश्वास करने वाले लोग हैं। मौलाना आजाद का चिंतन भी भारत बोध के इन्हीं मूल्यों से आवेशित है। इसकी स्पष्ट झलक उनके विचारों, लेखों, पत्रों इत्यादि में मिलती है। आजाद, 'मुत्तहिदा कौमियत' (समग्र राष्ट्रवाद) के पैरोकार थे, 'मुझे एक भारतीय होने पर गर्व है। मैं एक अविभाज्य एकता का हिस्सा रहा हूँ जो कि भारतीय राष्ट्रीयता है। मैं इस भव्य संरचना का अपरिहार्य अंग हूँ और मेरे बिना यह शानदार संरचना अधूरा है। मैं एक आवश्यक तत्व हूँ जो भारत का निर्माण के लिए कटिबद्ध है। मैं अपने इस दावे को कभी खारिज नहीं कर सकता।' मौलाना आजाद राजनीति की उस धारा के प्रतिनिधि हैं, जिसके लिए राष्ट्र सर्वोच्च है। उनकी राजनीतिक शैली भी समता और समरसता की भावभूमि से जुड़ी है। सन 1940 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रामपुर अधिवेशन में उन्होंने कहा, यह तमाम मिली-जुली पूँजी हमारी संयुक्त-राष्ट्रीयता की एक दौलत है, और हम इसे छोड़कर उस जमाने की तरफ लौटना नहीं चाहते, जब हमारी मिली-जुली जिंदगी शुरू नहीं हुई थी। (शंभुनाथ, 2004) अपनी विद्वता के बोझ से वे दबे नहीं बल्कि और उदार हुए। उनकी समूची चेतना इस राष्ट्र की जनभावना के प्रकटीकरण का माध्यम बनी। लेकिन यह खेद का विषय है कि स्वाधीनता संग्राम में राष्ट्रीय चेतना के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान के बाद भी इतिहासकारों के साथ-साथ स्वयं पत्रकारों ने भी मौलाना आजाद की राष्ट्रवादी दृष्टिकोण की उपेक्षा ही की। इसलिए प्रसिद्ध क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त को लिखना पड़ा, 'सच बात तो यह है कि उस युग में पत्रकारिता और देशसेवा एक ही सिक्के के दो पहलू थे या यों कहिये कि इन्हीं दो आँखों से हम खून के आँसू रोते थे। इस दृष्टि से देखा जाए तो स्वतंत्रता संग्राम के किसी भी इतिहास में उसका पूरा दिग्दर्शन नहीं कराया गया।' (रविशंकर, 2013)

बेनडिक्ट एंडरसन ने अपनी किताब 'इमेजिन्ड कम्युनिटीज' (1983) में कहा है कि जाति/नेशन या राष्ट्र कल्पित समुदाय हैं, 'अनेक सांस्कृतिक उपकरणों के मिल जाने से 18वीं सदी के अंत की ओर इस धारणा का जन्म हुआ।' एंडरसन की आधी बात सच है कि सांस्कृतिक उपकरणों के मिलने से राष्ट्र का जन्म हुआ। आधी बात गलत है कि 18वीं सदी के आखिर में राष्ट्रभाव का उदय हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद हजारों वर्ष पुराना है। भारतीय वांगमय में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता रहा है। यजुर्वेद के 'राष्ट्र में देहि' और अथर्ववेद के 'त्वा राष्ट्र भृत्याय' में राष्ट्र शब्द समाज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेद में राष्ट्र को इस मंत्र के माध्यम से परिभाषित किया गया है-

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्,

आ राष्ट्रं राजन्यः शूर इषव्यः अति व्याधी महारथो जायताम् (यजुर्वेद 22.22)

वास्तव में भारतीय राष्ट्रवाद सनातन संस्कृति के प्रगतिशील स्वरूप का राष्ट्र है। वह काल की परिस्थितियों के अनुसार अपनी राष्ट्रीयता स्वयं सुनिश्चित करता है। (हरीश अरोड़ा, 2017) इसलिए तमाम धाराएं, विचार, वाद और पंथ इस देश की हवा-मिट्टी में आए और अपना पुनर्आविष्कार किया, नया रूप लिया और एकमेव हो गए। भारतीयता हमारे राष्ट्रवाद का अनिवार्य तत्व है। राष्ट्रवाद के उदय और उभार के पीछे बेंडिक्ट एंडरसन ने 'प्रिंट पूंजीवाद' की भूमिका को रेखांकित किया है। वे मानते हैं, राष्ट्र की अवधारणा हमारी कल्पना में ही साकार होती है और इसे साकार बनाने में मास मीडिया की एक बड़ी भूमिका होती है। वस्तुतः राष्ट्र का आधार संस्कृति होती है और पत्रकारिता का उद्देश्य ही राष्ट्र के विभिन्न घटकों के बीच संवाद स्थापित करना होता है।

भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका

पत्रकारिता को किसी भी राष्ट्र या समाज का आईना माना गया है, जो उसकी समसामयिक स्थिति का निष्पक्ष विश्लेषण करता है। स्वाधीनता संग्राम के दौरान ही भारतीय पत्रकारिता का सही स्वरूप विकसित हुआ और राष्ट्रवादी पत्रकारिता ही उस समय मुख्यधारा की पत्रकारिता थी। मराठी दैनिक 'तरुण भारत' के संपादक रहे माधव गोविंद वैध जी ठीक ही कहते हैं,

‘स्वाधीनता के पहले राष्ट्रवादी पत्रकारिता का जन्म ही पराए शासन के विरोध में खड़ा होने के लिए हुआ। कुछ अंग्रेजी अखबार अवश्य ऐसे थे जो अंग्रेजी शासन के पक्षधर थे लेकिन सारे भाषाई पत्र और अंग्रेजी पत्र भी राष्ट्र भाव को जागृत करने में जुटे थे।’ भारतीय पत्रकारिता अपने प्रवर्तक काल से ही राष्ट्र और समाज चेतना के नैतिक उद्देश्य को लेकर ही यहां तक पहुंची है। पत्रकारिता की उपादेयता और महत्ता के बारे में माखनलाल चतुर्वेदी जी ने कर्मवीर के संपादकीय में लिखा था- ‘किसी भी देश या समाज की दशा का वर्तमान इतिहास जानना हो तो वहां के किसी सामयिक पत्र को उठाकर पढ़ लीजिए, वह आपसे स्पष्ट कर देगा। राष्ट्र के संगठन में पत्र जो कार्य करते हैं वह अन्य किसी उपकरण से होना कठिन है।’

यह सत्य है कि मीडिया या संचार माध्यम ही राष्ट्र को एक वैचारिकता प्रदान करते हैं। भारतवर्ष में पत्रकारिता का प्रारंभिक स्वर, ‘राष्ट्र सबसे पहले’ के भाव से जागृत रहा है। हिंदी के पहले समाचार पत्र का ध्येय वाक्य था- ‘हिंदुस्थानियों के हित के हेतु।’ अर्थात् देशवासियों का हित-साधन। (सिंह, 2017) वस्तुतः यही पत्रकारिता का राष्ट्रीय स्वरूप है। राष्ट्रवादी पत्रकारिता कुछ और नहीं, यही ध्येय है। राष्ट्र सबसे पहले का असल अर्थ भी यही है कि देशवासियों के हित का ध्यान रखा जाए। भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के प्रमुख सेनापति लोकमान्य तिलक ‘केसरी’ के एक अग्रलेख में लिखते हैं, ‘पत्रकारिता जबतक राष्ट्र के लोगों के सुख-दुखों के साथ कदम मिलाकर चलती है, तबतक वह सार्थक रहती है। उसके लिए राष्ट्र प्रेम का अर्थ होता है राष्ट्र के लिए सदैव प्रगति के रास्तों को ढूँढते रहना।’ भारत के स्वाधीनता संघर्ष में पत्र-पत्रिकाओं की अहम भूमिका रही है। राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, बाल गंगाधर तिलक, पंडित मदनमोहन मालवीय, बाबा साहब अम्बेडकर, पंडित नेहरू जैसे आला दर्जे के नेता सीधे-सीधे तौर पर पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे। इसका असर देश के दूर-सुदूर गांवों में रहने वाले देशवासियों पर पड़ रहा था। सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रचार प्रसार और उन आन्दोलनों की कामयाबी में समाचार पत्रों की अहम भूमिका रही। कई पत्रों ने तो स्वाधीनता आन्दोलन में प्रवक्ता की भूमिका निभायी। इतिहासकार विपिन चन्द्र का मानना है कि ‘19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में शिक्षित भारतीयों पर पत्रकारिता का व्यापक प्रभाव था क्योंकि इसके माध्यम से जनता का राजनीतिकरण और राजनीतिक-आर्थिक चेतना का प्रसार किया गया था।’ वस्तुतः स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि पत्रों एवं पत्रकारों ने ही तैयार की थी। आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता देशभक्ति और समग्र राष्ट्रीय चेतना के साथ जुड़ी रही। इसमें देशभक्ति के अलावा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी शामिल है। स्वाधीनता से पहले देश के लिए संघर्ष का समय था। इस संघर्ष में जितना योगदान राजनेताओं का था उससे तनिक भी कम पत्रों एवं पत्रकारों का नहीं था। राष्ट्रवादी पत्रकारिता का प्राण तत्व यही है कि वह विपरीत परिस्थितियों में उभरी, पनपी और प्रभावी हुई। (शर्मा, 2017) स्वतंत्रता पूर्व के पत्रकारिता का इतिहास तो स्वतंत्रता आन्दोलन का मुख्य हिस्सा ही है। तब पत्रकारिता घोर संघर्ष के बीच अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील थी।

मौलाना आजाद की पत्रकारिता

मौलाना अबुल कलाम आजाद सच्चे राष्ट्रभक्त, विद्वान् वक्ता तथा एक कुशल पत्रकार थे। उनकी नजर में पत्रकारिता का उद्देश्य राष्ट्रीयता और जनजागरण था। वह जनमानस की समस्याओं को मुख्यधारा की पत्रकारिता में रखने के प्रबल पक्षधर थे। पत्रकारिता उनके लिए व्यवसाय नहीं, बल्कि जनमत को प्रभावित करने का एक लक्ष्योन्मुखी प्रभावी माध्यम था। तत्कालीन भारतीय परिदृश्य में पत्रकारिता एक मिशन को लेकर चल रही थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक-धार्मिक- सांस्कृतिक क्षेत्रों में फैली कुरीतियों के प्रति भारतीय जनमानस को जागरूक करना था। मौलाना आजाद ने अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत पत्रकारिता से ही की थी। उन्होंने पत्रकारिता में स्वतंत्र लेखन के माध्यम से प्रवेश किया और बाद में साप्ताहिक पत्रों का संपादन किया।

‘अल-हिलाल’ व ‘अल बलाग’

1912 में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने मुसलमानों में देशभक्ति की भावना को बढ़ाने के लिए ‘अल हिलाल’ नामक एक साप्ताहिक उर्दू पत्रिका प्रारम्भ की। (श्रीधर, 2008) इस पत्र ने युवाओं के सामने देश की सही तस्वीर पेश करते हुए उन्हें राष्ट्रवादी सोच की ओर प्रेरित किया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से युवाओं को जोड़ने के लिए अहिंसक रास्ते की पैरवी की। ‘अल-हिलाल’ की लोकप्रियता इतनी थी कि प्रकाशन के तीन महीनों के अंदर ही इसके सभी पिछले अंकों का पुनर्मुद्रण करना पड़ा। ‘अल-हिलाल’ ने मार्ले मिंटो सुधारों के परिणाम स्वरूप दो समुदायों के बीच हुए मनमुटाव के बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ‘अल-हिलाल’ गरम दल के विचारों को हवा देने का क्रांतिकारी मुखपत्र बन गया। बहुत कम समय में अल-हिलाल की प्रसार संख्या 26,000 तक पहुंच गई। यह किसी भी उर्दू अखबार के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी। ‘अल-हिलाल’ उर्दू का पहला पत्र है जो सचित्र और लिथोग्राफिक छपाई में प्रकाशित होता था। ‘अल-हिलाल’ के विशेषांकों की परंपरा स्वयं में बहुत समृद्ध और अनूठी रही है। अपने संक्षिप्त प्रकाशन अवधि में अल-हिलाल ने नये-नये क्षितिज स्पर्श किए और एक ‘वैचारिक योद्धा’ का उसका स्वरूप उभर कर सामने आया। स्वाधीनता संग्राम के दौरान ‘अल-हिलाल’ की रपटें समय-समय पर देश के बुद्धिजीवियों और अंग्रेजी शासन को आदोलित करती रही हैं। 1914 में ब्रितानिया सरकार ने अल हिलाल को अलगाववादी विचारों को फैलाने के कारण प्रतिबंधित कर दिया। मौलाना आजाद ने तब हिन्दू-मुस्लिम एकता

पर आधारित भारतीय राष्ट्रवाद और क्रांतिकारी विचारों के प्रचार के उसी लक्ष्य के साथ एक और साप्ताहिक पत्रिका 'अल-बलाग' शुरू की। (जस्ता, 2009) पत्र की निर्भीक, सच्ची और तीखी भाषा से घबराकर 1916 में सरकार ने उसके प्रकाशन पर भी रोक लगा दी। और मौलाना अबुल कलाम आजाद को कलकत्ता से निष्कासित कर रांची में नजरबन्द कर दिया। जहां से उन्हें 1920 के प्रथम विश्व युद्ध के बाद रिहा कर दिया गया। हालांकि 1927 में मौलाना आजाद ने 'अल-हिलाल' को दोबारा छापना शुरू किया लेकिन यह सिलसिला उसी वर्ष की आखिर तक चल सका।

पत्रकारिता के अग्रदूतों का लक्ष्य अपनी लेखनी और विचारों के जरिए भारतीय संस्कृति, मूल्य, प्रतिमान और सारगर्भित विचारों की विरासत को सहेजना और एक सामर्थ्यवान भारत का निर्माण करना था। पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रभाव पुष्ट करने की प्रबल इच्छा ने मौलाना आजाद के लेखकीय व्यक्तित्व की बुनियाद डाली। राष्ट्रवादी पत्रकारिता के माध्यम से जनमानस में राष्ट्रीय चेतना विकसित करने में मौलाना आजाद की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निष्पक्ष और निर्भीक होकर पत्रकारिता-धर्म का पालन किया। वस्तुतः मौलाना आजाद की तेजस्वी पत्रकारिता का इतिहास राष्ट्रवादी पत्रकारिता का इतिहास है। उन्होंने राष्ट्र से संवाद करने के लिए पत्रकारिता का सहारा लिया। 'अल-हिलाल' ने अपने प्रथम संस्करण से ही आभास करा दिया कि उसका उद्देश्य महज एक साप्ताहिक पत्र बनना नहीं बल्कि ब्रिटिश हुकूमत से भारतमाता की मुक्ति के लिए देश के जनमानस को जागृत करना और राजनीतिक चेतना पैदा करना है। 'अल-हिलाल' ने यह भी सुनिश्चित कर दिया कि स्वतंत्रता आंदोलन में मीडिया की भूमिका और उसका सरोकार क्या होना चाहिए। मौलाना आजाद ने आजादी के दौरान मूल्य आधारित राष्ट्रवादी पत्रकारिता की नींव इसलिए डाली कि आजादी के लक्ष्य को हासिल करने के साथ लोकतंत्र का चौथा स्तंभ देश के नागरिकों विशेषकर युवाओं में राष्ट्रीय भावना का संचार करेगा।

संदर्भ

1. विजयदत्त श्रीधर, *भारतीय पत्रकारिता कोश* (खं. 2). दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008
2. रविशंकर, *राष्ट्रवादी पत्रकारिता*, भोपाल: माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय संचार एवं पत्रकारिता विश्वविद्यालय, 2013
3. राजेन्द्र शर्मा, राष्ट्रवादी पत्रकारिता का मूल चरित्र, (श्रीकांत सिंह, सं.) *मीडिया विमर्श*, 11(42)., जनवरी-मार्च 2017
4. लोकेन्द्र सिंह, पत्रकारिता में भी 'राष्ट्र सबसे पहले जरूरी' (श्रीकांत सिंह, सं.) *मीडिया विमर्श*, 11(42), जनवरी-मार्च 2017
5. शंभुनाथ (सं.), *सामाजिक क्रांति के दस्तावेज*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2004
6. हरिराम जस्ता, *आधुनिक भारत में शैक्षिक चिंतन*. दिल्ली: किताबघर, 2009
7. हृदय नारायण दीक्षित. भूमि, जन और संस्कृति से बना एकात्म राष्ट्र (श्रीकांत सिंह, सं.) *मीडिया विमर्श*, 11(41), अक्टूबर-दिसंबर 2016
8. हरीश अरोड़ा, भारतीय राष्ट्रवाद और संस्कृति बोध, (मीडिया विमर्श, सं. श्रीकांत सिंह) 11(42), जनवरी-मार्च 2017

स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन-चेतना

डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र
मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी के चर्चित रचनाकार सुरेंद्र वर्मा ने लिखा है कि “समाचारपत्र ही वह चश्मा है, जिससे शहर की गति और भावभंगिमा देखी जा सकती है, वह दूरबीन है, जिससे कार्य-व्यापार का बारीक परीक्षण हो सकता है, वह जाल है, जिसे खींचकर नगर की आत्मा मुट्ठी में की जा सकती है।”¹ आजादी से पूर्व के पत्रकार इस वास्तविकता से परिचित थे। पत्र-पत्रिका प्रकाशन को लेकर वे लगातार सजग और सक्रिय रहे, क्योंकि तब यही वह प्रमुख माध्यम था जो लोगों की समस्याओं को वाणी देता और उन्हें स्वाधीनता की ओर उन्मुख करता। वे केवल नगर का ही नहीं, देश-विदेश का भी बारीक परीक्षण कर देश की जनता को जगाते थे और देशोन्नति का मार्ग प्रशस्त करते थे। ऐसे पत्रकारों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालमुकुंद गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, शिवूपजन सहाय, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख थे। इन पत्रकारों के लिए पत्रकारिता मिशन थी। सच तो यह है कि आज की हिंदी पत्रकारिता में अक्सर उठने वाले प्रश्न ‘पत्रकारिता मिशन है या प्रोफेशन’ का उत्तर जानना हो या अंतर समझना हो तो स्वतंत्रता-पूर्व की हिंदी पत्रकारिता पर ध्यान देना चाहिए। आज पत्रकारिता प्रोफेशन अधिक है, मिशन बहुत कम। यहाँ समाज-हित उतना बलवती नहीं है जितना आजादी से पूर्व था। राजभक्ति वहाँ भी होती थी लेकिन राष्ट्र को विस्मृत करके नहीं। यही कारण है कि स्वातंत्र्य-पूर्व की पत्रकारिता में अनेक संस्थाओं, समाचारपत्र-पत्रिकाओं और व्यक्तियों ने देश-प्रेम की अलख जगाने के लिए पूरा जोर लगाया और देश को एक सूत्र में बाँध ।। स्वातंत्र्य-पूर्व के पत्रकारों ने अंग्रेजों की दुर्नीतियों, उनके अनाचारों, उनकी अनुदारता आदि के बारे में निर्भीकतापूर्वक देश की जनता को जानकारी दी, जिसमें उनके चरित्र-बल, तप-त्याग, निस्वार्थ राष्ट्र सेवा, अदम्य साहस और निष्पक्षता का अतुलनीय योगदान है। वे न तो झुके और न बिके, भले ही टूट गए। यह बात और है कि ‘जी न्यूज’ के मुख्य संपादक सुधीर चौधरी ने कहा है कि “स्वतंत्रता मिलने से पहले से लेकर जब अखबार स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका निभाते थे, तब से लेकर अब तक वे (अखबार) कभी निष्पक्ष नहीं रहे हैं।”² स्वातंत्र्य-पूर्व की पत्रकारिता के संबंध में यह कथन पूरी तरह घटित नहीं होता। इसके विपरीत “आधुनिक पत्रकारिता निजी स्वार्थपूर्ति, राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थों एवं दबाव के कारण देश की विविध परिस्थितियों का निष्पक्ष, यथार्थ एवं प्रामाणिक चित्र उपस्थित करने में असमर्थ है क्योंकि उसमें स्वार्थपरता की गंध संपृक्त है।”³ आज मीडिया मंडी में है और मंडी में हर चीज बिकने के लिए होती है।

स्वतंत्रता-पूर्व के सजग और समर्थ पत्रकारों-रचनाकारों ने ‘कविवचन सुधा’, ‘आनंद कादंबिनी’, ‘हिंदी प्रदीप’, ‘ब्राह्मण’, ‘उचित वक्ता’, ‘बिहार बंधु’ आदि पत्र-पत्रिकाओं में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों, राष्ट्र की बदहाली और समस्याओं पर अपनी संपादकीय टिप्पणियों और सर्जनात्मक साहित्य द्वारा निष्पक्ष, निर्भीक और सजग लेखन किया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ‘निज भाषा और निज उन्नति’ को महत्व दिया और राष्ट्रीय स्वाभिमान को सर्वोपरि माना। अपने देश की भाषा और अपने देश के उत्पाद के प्रयोग की महत्ता को भारतेन्दु ने सर्वत्र स्थापित किया है। देश के धन को देश में ही रोकने के लिए भारतेन्दु कश्तसंकल्प हैं।⁴ ‘उचित वक्ता’ भी देशी उत्पाद के प्रयोग का आकांक्षी था। उसमें ऐसे लोगों पर कड़ी टिप्पणी की गई है जो विदेशी वस्तुओं के लिए लालायित रहते हैं और जिन्हें देखकर गरीब लोग भी उसका अनुसरण करते हैं।⁵ भारतेन्दु युग के लेखकों में सर्वाधिक राजभक्त पत्रकार⁶ बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ की ‘आनंद कादंबिनी’ मासिक पत्रिका में मदिरा न पीने और किसी विदेशी वस्तु के प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा पर जोर है।⁷ उन्होंने इस संबंध में एक चर्चित लेख भी लिखा, जिसका शीर्षक ही था ‘स्वदेशी वस्तु स्वीकार और विदेशी बहिष्कार।’ इसके लिए उन्होंने देश से, यहाँ की संस्कृति से, यहाँ के लोगों से लगाव तथा प्यार होना और औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त होना आवश्यक माना-“जब तक हममें स्वदेशानुराग न हो, अपने देशोद्धार की चिंता न हो, स्वदेशी का प्रचार कैसे संभव है?”⁸ प्रतापनारायण मिश्र ने प्रत्येक ढंग से स्वदेशी की प्रतिष्ठा पर बल दिया और जनता में अलख जगाने के लिए चीनी और कपड़ा इन दो वस्तुओं को चुना। उनका मानना था कि धन की निकासी और स्वदेशी का संबंध अटूट है। दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, क्योंकि स्वदेशी वस्तु का प्रयोग करने से ही धन की निकासी को रोका जा सकता है। आज भी सारे भारत में इसी बात को जोर-शोर से उठाया जाता है।

इन पत्रकारों ने एकता को स्वाधीनता के लिए आवश्यक माना। यह एकता पारिवारिक स्तर पर भी अपेक्षित थी और राष्ट्रीय स्तर पर भी। पारिवारिक एकता के मूल में स्त्री है जिसे यह कार्य संपन्न कर एक आदर्श रूप स्थापित करना है। झाड़ू के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करते हुए भारतेंदु ने लिखा है कि “झाड़ू को देखो कि जब तक यह बंधी है तब तक कोई भी सबल इसके तोड़ने को समर्थ नहीं होता और आपकी झाड़ू में सामर्थ्य है मानो कूड़े को बात की बात में बाहर निकाल दे। परंतु जब उसके बंधन खुल के बिखर जावें तो समै सारा बल उसका नाश ही कर डालें। इसी प्रकार जब तक तुम्हारा घर झाड़ू की भांति एकता भाव करके बंधा हुआ है तुम भी समर्थ हो।”⁹ यही बात पूरे राष्ट्र के संबंध में, विशेषतः हिंदू-मुस्लिम एकता के संबंध में मानी जा सकती है। भारतेंदु का मानना था कि भले ही देवताओं को अलग-अलग मानो, लेकिन राष्ट्र-कल्याण तभी संभव होगा जब हम व्यवहार में, काम पढ़ने पर और अपने हित के संबंध में एक होंगे।¹⁰ बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ भी हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्षपाती थे। ‘भारतमित्र’ (1878-1935) ने इसमें बहुत बड़ी भूमिका निभाई। यही बात ‘विशाल भारत’, बालकृष्ण भट्ट के ‘हिंदी प्रदीप’, ‘उचित वक्ता’ और ‘बिहार बंधु’ आदि में प्रखर रूप से व्यंजित हुई है। ‘पयामे आजादी’ के संपादकीय का एक अंश यहाँ द्रष्टव्य है “हिंद के बाशिंदो! अरसे से जिसका इंतज़ार था आजादी की वह पाक घड़ी आन पहुँची है।...हिंदुस्तान के बाशिंदे अब तक धोखे में आते रहे और अपनी ही तलवारों से अपने ही गले काटते रहे। अब हमें मुल्क-फ़रोशों के इस गुनाह का कुफ़ारी (प्रायश्चित) करना चाहिए। अंग्रेज़ अब भी अपनी पुरानी दगाबाजी से काम लेंगे। वे हिंदुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिंदुओं के खिलाफ उभारने की कोशिश करेंगे। लेकिन भाइयो! उनके जाल और फरेबों में न फँसना।”¹¹ इसीलिए बालकृष्ण भट्ट ने एकता को भारतीयों को जीवित रखने वाली संजीवनी औषधि माना है।¹² भारतीयों की चापलूसी और पिछलग्गू बनने की आदत की भी कड़ी भर्त्सना बालकृष्ण भट्ट के ‘हिंदी प्रदीप’ में हुई है।¹³ भारतेंदु की पत्रिका ‘हरिश्चंद्र चंद्रिका’ में सामंती संस्कृति के प्रति व्यंग्य और अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति की भर्त्सना मिलती है।

स्वाधीनता की अलख जगाने में स्वतंत्रता-पूर्व की हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता ने निरंतर प्रयास किया। बाबूराव विष्णु पराडकर, गणेश शंकर विद्यार्थी, बनारसीदास चतुर्वेदी, शिवपूजन सहाय, माखनलाल चतुर्वेदी आदि पत्रकारों ने स्वतंत्रता के लिए उद्बोधन में कोई कसर नहीं छोड़ी। हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाओं-‘प्रताप’, ‘वीणा’, ‘कर्मवीर’, ‘मतवाला’, ‘चांद’, ‘हंस’ आदि ने समय-समय पर स्वाधीनता की चेतना को देश में जगाए रखा। ‘आज’ (1920) के प्रथम अंक के संपादकीय में स्पष्ट कथन है कि “हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सब प्रकार से स्वातंत्र्य-उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं।”¹⁴ डॉ० कृष्णदेव ‘अरविंद’ लिखते हैं कि “देशभक्ति की मदिरा में उन्मत्त पत्रकारों को अपने पत्रों, मुद्रणालयों को जब्त करना, उनमें ताला लगाना, कारागार की शलाखों में घुट-घुटकर मरना, अपने रक्त की एक एक बूँद देना एवं हर प्रकार से टूटना मंजूर था किंतु स्वाधीनता संग्राम की चिनगारियों को उगलने की पाबंदी उनको मंजूर न थी।”¹⁵ ‘चंडिक’, ‘रण डंका’, ‘बहिष्कार’ आदि पत्र गांधीवादी अहिंसा के समर्थक थे और उनके विचारों को आगे बढ़ाकर ही स्वाधीनता के अभिलाषी थे।

हिंदी के प्रमुख समाचारपत्र ‘बिहार बंधु’ की राजनीति और समाज के प्रति तीखी दृष्टि अंग्रेज सरकार को कभी रास नहीं आई। इस समाचार-पत्र की पत्रकारीय स्पष्टवादिता का एक अंश प्रस्तुत है-“हम लोग राजभक्त हैं, खुशामदी नहीं। हम तो अपने मुल्क के दोस्त हैं। बस जो हमारे मुल्क का दोस्त है, वह हमारा भी दोस्त, और जो हमारे मुल्क का दुश्मन है, वह बेशक हमारा भी दुश्मन है।”¹⁶ देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में इसे अच्छी सफलता मिली। इसी प्रकार का दृष्टिकोण बालकृष्ण भट्ट के ‘हिंदी प्रदीप’ का भी था। राष्ट्रीय एकता को मजबूती के लिए हिंदी की अनिवार्यता और राजभाषा के रूप में उसे प्रतिष्ठित करने के संबंध में इस पत्र की मुखर आवाज थी। इस पत्र में उल्लिखित है कि “जब तक राज काज में हिंदी न पूछी जाएगी तब तक उसकी वृद्धि असंभव है, दूसरे सर्वसाधारण की शिक्षा का प्रचार बिना हिंदी के और तरह हो ही नहीं सकता। ख़जो गवर्नमेंट को ‘मास एजुकेशन’ साधारण शिक्षा का फैलाना सर्वथा मंजूर है तो राजकाज में हिंदी अवश्य करना ही पड़ेगा।”¹⁷ यह स्थिति आज भी बनी हुई है। ‘भारतमित्र’ के प्रवेशांक में संपादक का दुःख देखिए-“जिस देश में जिस भाषा में और जिस समाज में समाचार-पत्र का चलन नहीं है तब तक उसकी उन्नति की आशा में भी दुराशा मात्र है।”¹⁸ ‘उचित वक्ता’ पत्र के संपादकीय में लिखा गया है कि “यदि भाषा प्रचलित हो तो हिंदी हो और यदि किसी समय में हिंदुस्तान भर की एक भाषा होगी तो हिंदी ही होगी।”¹⁹ ‘सारसुधानिधि’ और ‘आनंद कादंबिनी’ पत्र-पत्रिका भी हिंदी भाषा के विकास और प्रयोग की पक्षधर थीं। सुजाता राय ने लिखा है कि “भाषा राष्ट्रीय जागरण का अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। राजदरबार (सामंतों की) की भाषा से पृथक किसी अपेक्षाकृत विकसित लोकभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में उदय नवजागरण की अनेक विशेषताओं में से एक महत्वपूर्ण विशेषता है।... जैसे-जैसे राष्ट्रीय जागरण का बोध प्रखर होता है, हिंदी भाषा के प्रति आग्रह भी प्रबल होता जाता है।”²⁰ स्वतंत्रता-पूर्व के पत्रकारों ने जनता को हिंदी-उर्दू विवाद से बचने की सलाह दी और यह माना कि इस तरह के विवाद उठाकर अंग्रेज सरकार भारतीयों में फूट डालकर अपना काम निकालना चाहती है।²¹

देश की आर्थिक स्थिति और आर्थिक शोषण के विविध दृश्य स्वतंत्रता-पूर्व पत्रकारिता में द्रष्टव्य हैं। देश की दुर्दशा का यथार्थ अंकन ‘भारतमित्र’ में इस प्रकार किया गया है “काश्मीर में बड़ा भारी अकाल पड़ा है। सुनने में आया है कि काश्मीर

के निवासियों में से प्रायः एक तिहाई आदमी तो देश छोड़ के भाग गए और एक तिहाई मर चुके और बाकी भूखे मरने के लिए वहीं पर पड़े हैं।²² बंगाल का अकाल भारतवर्ष की एक महत्वपूर्ण घटना है जो अंग्रेजी राज की अनीति और उनके शोषण की तस्वीर सामने रखता है।²³ बालकृष्ण भट्ट ने इसका महाकारण 'रफ्तनी-एक्सपोर्ट' को मानते हुए लिखा है कि "हिंदुस्तान से अन्न अब इंग्लैंड आदि देशों में न लद जाया करे तो अनावृष्टि सरीखे ऐसे सैंकड़ों उपद्रव हुआ करें अन्न का घाटा हमें न रहे। अन्न के व्यापारियों के यहाँ पहले वर्षों की उपज का अन्न इतना इकट्ठा रहता था कि एक साल अनावृष्टि या किसी दूसरे उपद्रव के कारण जो कम उपज होती थी तो वह कुछ मालूम न पड़ती थी। केवल इतना होता था कि जितना अन्न एक रुपये में मिलता था, वह सवा रुपये का मिलने लगता था। अब तो जो कुछ उपज होती है, वह प्रतिवर्ष बराबर विलाइत को लद जाती है। खेत में अन्न अधकच्चा खड़ा रहता है तभी रेली ब्रदर के आदमी घूम-घूम कर भाव तै कर लेते हैं।"²⁴ सभी कामगार भीख माँगने को विवश हैं और देश की स्थिति निरंतर बदतर होती जाती है। भारतेंदु ने माना है कि भारत को लूटकर दरिद्र अंग्रेज अमीर होते जा रहे हैं और भारत दुष्काल और रोगों से घिरा अपनी बदहाली पर आँसू बहा रहा है। आज की स्थिति भी इससे परे नहीं है, बस सरकार और शासन बदल गया है। भारतेंदु ने लिखा है कि "....कपड़े बनाने वाले, सूत निकालने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख माँगते हैं, खेती करने वालों की यह दशा है कि लंगोटी लगाकर, हाथ में तूबा ले भीख माँगते हैं और जो निरुद्यम हैं, उनको तो अन्न की भ्रांति है।"²⁵ बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी देश की दरिद्रता के लिए कारण धन के विदेश-गमन को मानते हैं, जिसका सामना संगठन बनाकर ही किया जा सकता है- "जब आवश्यक शारीरिक वस्त्र को हमें परदेशियों से लेना पड़ता है, तब धन का रहना कैसे संभव है, निदान व्यापार का नाश हो जाना ही देश की दरिद्रता का मुख्य कारण है। नाममात्र का एक व्यापार जो यहाँ के व्यापारी करते हैं जिन्हें हम व्यापारी न कहकर दलाल कहेंगे, क्योंकि वे विलायती वस्तुओं के बेचने के बिचवई हैं, यद्यपि किसी प्रकार इनकी जीविका चली जाती है तथा इस देश के धन की वृद्धि दलाली से नहीं हो सकती।"²⁶ प्रतापनारायण मिश्र अंग्रेजी शासन की शोषणवादी वृत्ति की खूब बखिया उधेड़ते हैं। सुजाता राय इस संबंध में लिखती हैं कि "भारतेंदु युग के पत्रकारों और लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र उन गिने-चुने लेखकों में हैं जिनकी रचनाओं में अंग्रेजी राज की कठोर आलोचना की गई है। अंग्रेजी राज के दुष्प्रभावों और कुपरिणामों का जिक्र उनकी कविता और गद्य-रचनाओं, दोनों में सबसे अधिक है। शोषण की चर्चा बार-बार है, शोषण का देश की अर्थव्यवस्था तथा बिगड़ती अर्थव्यवस्था का आम जीवन पर जो घातक प्रभाव है, उसका मार्मिक चित्रण प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविताओं में किया है।"²⁷ उनके लेख, टिप्पणियाँ आदि भी इससे परे नहीं हैं। भारतीय संसाधनों के शोषण, विदेशी व्यापार से प्राप्त गरीबी, महँगाई और टैक्सों की मार का जीवंत चित्र उन्होंने अपने 'ब्राह्मण' पत्र में कई बार खींचा है- "दमड़ी की सुई, अंग ढंकने का कपड़ा, कहाँ तक कहिए शरीर रक्षा के लिए औषधि तक विदेश से आवै, एक एक के ठौर पर पांच-पांच उठवावें और जो कुछ पास की पूंजी ले जावै, वह सीधे भारत समुद्र पार ही पहुँचावे और वहाँ से सौ जन्म तक फिर भारत का मुंह न देखने पावै।"²⁸ इसीलिए वे भारत में उद्योग धंधों की स्थापना को जरूरी मानते थे। इस युग के चर्चित पत्रकार बालकृष्ण भट्ट ने अपनी टिप्पणी 'टैक्स और फिजूलखर्ची' में करों की अमानवीय स्थिति और अंग्रेजों के अंधाधुंध अपव्यय करने का सजीव अंकन किया है "जो कर अब गवर्नमेंट लेती है, वही उनके लिए (भारतीय जनता के लिए) अति से अति है। अधिक लज्जा की और क्या दूसरी बात होगी कि प्रजा का प्राण और नस-नस में लोहू समान धन इस समय अनेक टिक्कसों (टैक्सों) द्वारा सरकार उगाहती और घोर-घोर फिजूल खर्ची की रीति पर फूंकती है। जितना अंधाधुंध खर्च इस देश के राज प्रबंध पर होता है, उतना पृथ्वी मंडल के किसी देश के राज प्रबंध में नहीं होता।"²⁹

देश की सामाजिक दुरावस्था के अनेक चित्र आजादी से पूर्व की पत्रकारिता में मिलते हैं। बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि समस्याओं पर इस युग के पत्रकारों और पत्रों ने पर्याप्त ध्यान दिया है। बाल-विवाह रोकने के संबंध में बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में लिखा है कि "इसके रोकने के तीन उपाय मेरे मन में आते हैं। पहले सामान्य शिक्षा का फैलाव। दूसरा स्त्री शिक्षा, तीसरे अपने ही उदाहरण से उस बुराई को दबाना अर्थात् जहाँ तक हो सके मन-वचन-कर्म से इस बुराई से बचना और इसके लिए जो भलाई का द्वार है स्वयं खोलना।... अपने ही कर्तव्य के द्वारा बाल्य-विवाह की बुराइयों का दूर होना कठिन है जब तक सरकार से उसके लिए सहायता न ली जाए।"³⁰ अन्यत्र उनका कथन है कि "गवर्नमेंट यह थोड़े चाहती है कि इनका कोई वास्तविक फायदा हो और जड़ से इनकी कमजोरी दूर हो, बाल्य-विवाह की कुरीति का उठ जाना जड़ से हमारी कमजोरी का दूर होना है।"³¹ प्रतापनारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' में भी बाल-विवाह, वेश्यागमन, शादी के अवसर पर किए जाने वाले अपव्यय आदि कुरीतियों के दमन को पुरजोर तरीके से उठाया गया है। विधवा विवाह पर 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका में 'विधवा विपत्ति वर्षा' नामक लंबे निबंध का प्रकाशन हुआ जिसमें लिखा गया है कि "मेरा तात्पर्य यह नहीं कि जिसका पति मर जावे सभी का-चाहे वह अस्सी वर्ष की बुढ़िया क्यों न हो-पुनर्विवाह कर दिया जाय। किंतु यह अवस्था और इच्छा की बात है, केवल इसी की रोक टोक अवश्य उठ जानी चाहिए क्योंकि देखिए, सुलोचना अपने पति इंद्रजीत के साथ सती हो गई, पर मंदोदरी ने विभीषण को पति करके भी आनंद से जीवन व्यतीत किया, इसी रीति सुग्रीव ने तारा से ब्याह किया।"³² बालकृष्ण भट्ट इसके मूल में बाल-विवाह को ही मानते थे। उन्होंने 'हिंदी प्रदीप' के एक लेख में लिखा है कि "यदि

बाल-विवाह बंद कर दिये जायं तो पुरुषों की मृत्यु संख्या इतनी घट जाय कि विधवा-विवाह की आवश्यकता ही न पड़े।”³³ भट्ट जी का मानना था कि इससे गुप्त व्यभिचार और कुल दूषण दोनों से बचा जा सकता है और समाज में एक स्वस्थ परंपरा विकसित हो सकती है।³⁴

तत्कालीन समाज को अंधविश्वासों से मुक्त कराना भी स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी पत्रकारिता का प्रमुख ध्येय था ताकि समाज सही दिशा और सही प्रवृत्ति की ओर गतिशील हो। इस समय के पत्रकारों ने ज्योतिषीय अंधविश्वास की खूब धज्जियाँ उड़ाई हैं और वैज्ञानिकता की ओर लोगों का ध्यान खींचा है। बालकृष्ण भट्ट इस संबंध में लिखते हैं कि “इन्हीं सब ज्योतिष संबंधी आश्चर्यों से हमारे पुराने आचार्यों ने ग्रह पुच्छ पातज्युति बेध आदि नाम से कितने मत संबंधी झगड़े लगाकर भाति-भाति की शांति लिख दी है। किंतु यूरोपवालों का यही मत है कि ये अपने नीचे रहने वाले मनुष्यों पर कुछ असर नहीं कर सकते। तब ग्रहों को विपदादायक मान सदा डरते रहना भीरु चित्त और मूर्खता की पहचान है।”³⁵ प्रतापनारायण मिश्र भी अपने ‘विस्फोटक’ शीर्षक निबंध में शीतला माता की पूजा या उपासना करने के स्थान पर रोग-निवृत्ति के लिए उपचार पर बल देते हैं ताकि भारतीय संतति वैज्ञानिकता और वास्तविकता को समझे और उसका अनुगमन करे—“शीतला जी का पूजन एक विश्वास की बात है गदहों को खिलाना और जीवमात्र की रक्षा करना पुण्य का काम है पर इन बातों से विषफोटक रोग का कोई संबंध नहीं। इसके लिए टीका दिलाना ही परमोत्तम औषधि है।—पूजापाठ, हवन, ब्राह्मण भोज सब करो, पर टीका दिलाने से मुंह न फेरो। यदि अपने संतानों को सच्चे जी से प्यार करते हो, उनकी रक्षा तुम्हारा अभीष्ट है तो अवश्य इसका सेवन करो और दूसरों को भी अनुमति दो कि सब डर छोड़ के सेवन करें।”³⁶ यही नहीं पर्वों, त्योहारों के राजनीतिक उपयोग में भी इन साहित्यकार-पत्रकारों को खूब सफलता मिली है। इनके उपयोग से सामाजिक बुराइयों को दूर करने और अंग्रेजी राज के शोषण का जीवंत चित्र इन्होंने खींचा है। अनेक कुरीतियों के साथ जाति-पाति के झगड़े भी समाज को बाँटने तथा विनाश की ओर ले जा रहे थे और देशोन्नति में बाधा पैदा कर रहे थे।³⁷ अनेक प्रकार की जाति पत्रिकाएँ निकलती थीं जो सामाजिक दायित्व का निर्वाह भी करती थीं।

स्त्री शिक्षा और स्त्री-पुरुष समानता की ओर भी इन पत्रकारों का ध्यान गया है क्योंकि तभी सामाजिक कुरीतियों, पाखंड और अज्ञान का दमन किया जा सकता था और देशोन्नति हो सकती थी। ‘बाला बोधिनी’ पत्रिका में भारतेंदु ने स्त्री-पुरुष की समानता को स्थापित कर राष्ट्रीय चेतना के विकास में उनकी भूमिका को निरूपित किया है। बालकृष्ण भट्ट ने ‘धर्म का महत्व’ नामक लेख में स्त्रियों की आधुनिक शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया है “इनको (स्त्रियों को) अब तालीम की जरूरत है तो उस तरह की तालीम होनी चाहिए जिसमें इनके नेत्र खुलें-भूगोल इतिहास भात भात के विज्ञान इन्हें सिखाये जाय जिसके पढ़ने से इनकी विवेक शक्ति बढ़े, हिंदू धर्म की सब पोल खुल जाय और यह ठीक-ठीक मन में इनके बैठ जाए कि जो हम कर रही हैं और अब तक करती आई वह धर्म का आभास मात्र निरा अधर्म है अपनी वर्तमान पतित गिरी दशा का पूरा-पूरा बोध हो जायख।”³⁸ पं. सदासुख लाल ने ‘बुद्धि प्रकाश’ में लिखा है कि “स्त्रियों में संतोष, नम्रता और प्रीत-यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किये हैं। केवल विद्या ही की न्यूनता है जो यह भी होती तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं, जो स्त्री विद्या से विहीन है वह बालक के चित्त रूप क्षेत्र में विद्या का बीज कैसे बो सकती है? और उनके आगे की बुद्धि का कारण किसी रीति से हो सकती है।”³⁹ इसी बात को बालकृष्ण भट्ट ने इस प्रकार व्यक्त किया है “समाज का उत्स स्त्री-शिक्षा को कहा गया है। स्त्रियों के शिक्षित और शोभित हुए बिना समाज की सुधाराहट, बाहरी चमक-दमक चूना पोती कबर के समान है।”⁴⁰ ‘समय विनोद’ पाक्षिक पत्र में स्पष्ट कथन है कि “लड़कियों को शिक्षा देने से अनेक उत्तम फलों का आविर्भाव होता है।”⁴¹

स्त्री की दुर्दशा के लिए ब्राह्मणों की कट्टरता उत्तरदायी है। पंडितों के इस कर्म पर टिप्पणी करते हुए बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि “पंडितों ने अपनी पोथियों में स्त्रियों को हर तरह से घटाया है-स्त्रियों को सिवा लौंडी और दासी बनाये रखने के उन्हें किसी काम का न रखा। अपने आधीन रख सब तरह का अत्याचार और जुल्म उन पर करना उचित समझा-हम उन पंडितों को कैसे समझायें-ये आपकी घर की शोभा है संसार की सार पदार्थ हैं।”⁴² भारतेंदु ग्रामीणों की शिक्षा के अत्यधिक उत्साही थे इसीलिए वे ग्रामगीतों, संगीत आदि को शिक्षा में जोड़ने के अभिलाषी थे।

देशोद्धार की कल्पना भी इन पत्रकारों ने की। प्रतापनारायण मिश्र ने प्रेम को उन्नति के लिए आवश्यक माना। प्रेम ही सभी में एकता के सूत्र का संचार कर सकता है। धर्म, समाज, संस्कृति के आधार पर होने वाला झगड़ा, लोगों की अकर्मण्यता, चरित्र का छिछलापन आदि देश की प्रगति में बाधक है, जिसके चलते देश की आजादी मुश्किल है। मिश्रजी की स्पष्ट धारणा थी कि अपना भला अपने आप से ही होगा किसी विदेशी सत्ता या शासन से नहीं, भले ही अंग्रेज भारत को सुशिक्षित और सुसभ्य बनाने, राज्य की व्यवस्था तथा शासन-प्रबंध सिखाने के लिए आने का दावा करें।⁴³ हिंद और अपनी हिंदी ही मिश्रजी को प्रिय है।⁴⁴

अंग्रेजों की भेदभावपूर्ण स्थिति का स्वतंत्रता-पूर्व के पत्रों में कई बार उल्लेख मिलता है। समानता और स्वतंत्रता का पक्षधर होने का दावा करने वाले अंग्रेज भारतीयों के संदर्भ में इस पर अलग दृष्टि रखते थे। रंगभेद और नस्लभेद के वे पूरी तरह समर्थक थे। सुजाता राय का कथन है कि “उस काल की पत्र-पत्रिकाओं और दस्तावेजों को देखने से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती

है कि अपने देश में समानता और भ्रातृत्व का नारा देने वाले शासक, उपनिवेशों में भेदभावपूर्ण नीति तो अपनाते ही हैं, वे भेदभाव को प्रोत्साहित भी करते हैं। वे उपनिवेशों की जनता को, भाषा और संस्कृति को अपने देश की जनता, भाषा और संस्कृति से हीन समझते हैं।⁴⁵ अंग्रेजों के भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण स्वाभिमान पर लगने वाली चोट से भारतीय हिल गए। प्रतापनारायण मिश्र इस संबंध में लिखते हैं कि “गोरे मजिस्ट्रेट ने हिंदू (यानी काले) को सजा दी तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। काले रंग वालों के भाग में तो यही लिखा है। साहब बहादुर ने उन कलूटों को मारा एवं धन दंडित किया सो बहुत अच्छा किया। हिंदू तो इसलिए बनाया गया है, काले रंग वालों को मारना कोई जुर्म है? कौआ सभी कोई उड़ा देता है, बाल सभी कोई काट डालता है, कोयला सभी कोई आग में झोंक देता है। इसमें साहब ने क्या बुरा किया?”⁴⁶

स्वतंत्रता-पूर्व की हिंदी पत्रकारिता धार्मिक कट्टरता की विरोधी थी तथा धर्म और संस्कृति के उदात्त और व्यापक स्वरूप की प्रतिष्ठा पर इसमें विशेष ध्यान दिया गया है। यहाँ जो कुछ है वह है मानवधर्म, वह है राष्ट्रधर्म, इसी की सर्वत्र प्रतिष्ठा की गई है। धर्म देशोन्नति करने वाला होना चाहिए। अपने धर्म को सम्मान से देखना चाहिए, क्योंकि “सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे सबसे पहले धर्म की ही उन्नति करना उचित है। देखो, अंग्रेजों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली हैं, इससे उनकी दिन दिन कैसी उन्नति है। उनकी जाने दो, अपने ही यहाँ देखो, तुम्हारे धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज-गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं... उन लोगों ने धर्म नीति और समाज को दूध-पानी की भाँति मिला दिया है।”⁴⁷ धर्म की उचित प्रतिष्ठा के लिए उसमें व्याप्त पाखंडों तथा मठाधीशों, धर्म-धुरंधरों, ढोंगियों आदि के आचरण पर भी इन पत्रकारों ने टिप्पणियाँ की हैं। धर्म के वास्तविक स्वरूप को बनाए रखने के लिए रूढ़िवादिता और प्रपंच से धर्म और धार्मिक क्रियाओं को मुक्त करना आवश्यक है। भारतेंदु का कथन यहाँ ध्यातव्य है “अनेक कोटि देवी-देवताओं का माहात्म्य, छोटी-छोटी बातों में ब्रह्महत्या का पाप और तुच्छ तुच्छ बातों में बड़े बड़े यज्ञों का पुण्य अहं ब्रह्मज्ञान और मूलधर्म को छोड़कर उपधर्मों के आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया.... धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श सेवा एक चुल्लू पानी से भर जाता है। कच्चे गले-सड़े सूत वा चिंटी की दशा हमारे धर्म की हो गयी है।”⁴⁸

समग्रतः स्वतंत्रता-पूर्व की पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन-चेतना की अभिव्यक्ति पूरे ओज-तेज के साथ प्रस्फुटित हुई है। इसके प्रस्फुटन में स्वतंत्रता-पूर्व के पत्रकारों की निर्भीकता, स्वाभिमान, परिश्रम, लगन और निष्ठा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता-पूर्व के पत्रकार और पत्रकारिता ने न केवल हिंदी भाषा के विकास में अपना योगदान दिया है बल्कि पाठकीय रुचि भी पैदा की है।

संदर्भ

1. सुरेंद्र वर्मा, दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृष्ठ 23
2. समाचार फोर मीडिया डॉट कॉम, 1 फरवरी, 2018
3. डॉ॰ कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम, पृष्ठ 112
4. डॉ॰ कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वतंत्रता संग्राम, पृष्ठ 25
“हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मीती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे।”- ‘कविवचन सुधा’
“भाइयों! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोंक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो, भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे, वह उपाय करो।”
5. सुजाता राय, राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, पृष्ठ 105
“किसी को भी भारतखंड की बनी कोई वस्तु नहीं प्रसन्न आती, किंतु विलायती वस्तु ऐसी प्रसन्न आती है कि मानो श्री जगदीश्वर ने अपने निज धाम से बना कर भेजी होखरगरीब बिचारे तो इस विषय पर कुछ ध्यान देते हैं और प्रतिदिन कुछ हाथ पैर हिलाते हैं, परंतु इन धनाढ्यों ने तो धोती खोल दी है, वे इसी में प्रसन्न होते हुए अपने देश सहित कुएँ में गिरते हैं, क्योंकि इन बड़ों को देखकर फिर गरीब भी उनके पीछे गिरते हैं।”-‘उचित वक्ता’
6. वही, पृष्ठ 206
7. वही, पृष्ठ 112
“नासिक की लगभग 75 वेश्याओं ने मिलकर एक सभा की है जिसमें उन्होंने स्वयं मदिरा न पीने और मदिरा पीने वालों के साथ संबंध न रखने की प्रतिज्ञा की, स्वदेशी वस्तु के सिवा विदेशी वस्तु को भी काम में न लाने की शपथ खाई है। क्या मद्य-निवारिणी सभा उन्हें धन्यवाद देगी।”-‘आनंद कादंबिनी’
8. वही, पृष्ठ 207
9. डॉ॰ कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम, पृष्ठ 28-29
10. वही, पृष्ठ 90
“तैंतीस करोड़ देवताओं को अलग अलग मानो पर जहाँ व्यवहार का काम पड़े सब एक हो जाओ और जब अपने हित की बात आवे तब एक सी आवाज दो।”-‘हरिश्चंद्र मैंगजीन’

11. वही, पृष्ठ 89
12. वही, पृष्ठ 90-91
“महाशयो! अब भी सब मिलकर एकता को अपने चित्त में स्थान दोग्खअब हमारे लिये वही एकता ही संजीवनी औषधि है, जो हमें जिला सकती है।”-‘हिंदी प्रदीप’
13. सुजाता राय, राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, पृष्ठ 96
“भारतीय तो कुत्ता है, जरा-सी रोटी फेंक दिया लाल मुंह वाले बंदरों के आगे दुम हिलाने लगे, यह नहीं समझते कि हमारी ही संपत्ति पर हमारे ही घर बैठकर ये बंदर घुड़की से डरा कर मेरे ऊपर शासन करते हैं।”-‘हिंदी प्रदीप’
14. डॉ० कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम, पृष्ठ 100
15. वही, पृष्ठ 90
16. सुजाता राय, राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, पृष्ठ 90
17. वही, पृष्ठ 97
18. वही, पृष्ठ 102
19. वही, पृष्ठ 106
20. वही, पृष्ठ 242
21. वही, पृष्ठ 250
“हम अपनी गवर्नमेंट के अनेक बातों में अनुगृहीत हैं, पर उर्दू अक्षरों से प्रजा को जो हानि है इसे देखकर बड़े शोक एवं आक्षेप से कहना ही पड़ता है कि इस विषय में निश्चय हमारी गवर्नमेंट (यदि सचमुच हमारी हितैषिणी है तो) चूकती है। हिंदी अक्षरों के बिना हिंदुस्तानी प्रजा का दुःख न टला है न टलेगा!!!”-‘ब्राह्मण’
22. वही, पृष्ठ 101
23. वही, पृष्ठ 191
24. वही, पृष्ठ 197
25. वही, पृष्ठ 192
26. वही, पृष्ठ 199
27. वही, पृष्ठ 195
28. वही, पृष्ठ 196
29. वही, पृष्ठ 197
30. वही, पृष्ठ 136
31. वही, पृष्ठ 137
32. वही, पृष्ठ 144
33. वही, पृष्ठ 144
34. वही, पृष्ठ 144
“क्या यह उस महान कर्म की अपेक्षा बुरा है जो विधवा लोग गुप्त व्यभिचार करा प्रतिवर्ष सैंकड़ों गर्भपात कराय दोनों कुल को दूषित करती हैं।”-‘हिंदी प्रदीप’
35. वही, पृष्ठ 272-273
36. वही, पृष्ठ 273
37. डॉ० कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम, पृष्ठ 63
“जाति भेद, वर्ण भेद, संप्रदाय भेद ने समाज को महारोगी, निर्बल और जीर्ण कर डाला, परंतु पराधीनता पिशाची के चंगुल में पड़े हुए इन अनाथों को हटाने का उद्यम कभी नहीं किया।”-‘हिंदी प्रदीप’
38. सुजाता राय, राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, पृष्ठ 154
39. डॉ० कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम, पृष्ठ 69
40. वही, पृष्ठ 69
41. वही, पृष्ठ 70
42. वही, पृष्ठ 68
43. सुजाता राय, राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, पृष्ठ 222
“....अपना भला अपने हाथों होता है। भारत की वास्तविक उन्नति जब हुई है और जब होगी, तब उन्हीं के करने से हुई है और होगी जिनकी हजारों लाखों पीढ़ी भारत ही के मिट्टी से हुई और उसी में समा गई तथा आगे भी इसी पवित्र रज में उत्पन्न हो के विलीन हो जाएगी।.... दूसरों के आसरे पर, दूसरों की भाषा, भेष, भोजन, भाव का अवलंबन करने से चाहे कोटि जन्म तक सिर पटका करें तो क्या होना है?”
44. वही, पृष्ठ 223
45. वही, पृष्ठ 224
46. वही, पृष्ठ 226
47. डॉ० कृष्णदेव ‘अरविंद’, हिंदी पत्रकारिता और स्वाधीनता संग्राम, पृष्ठ 56
48. वही, पृष्ठ 58

सोशल मीडिया और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

डॉ. संगीता वर्मा

कमला नेहरू कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

‘राष्ट्रवाद’ शब्द व्यापक अर्थ का वाचक है। किसी भी देश की सीमा के भीतर स्वयं, परिवार, समाज की संकुचित सीमा से ऊपर उठकर मानवता की वृहद् ऊँचाइयों तक प्रेम भावना राष्ट्रवाद में समाई हुई है। राष्ट्रवाद किसी भी वर्ग, जाति के जीवन का अभिन्न हिस्सा है, इसे नकारकर आगे बढ़ना किसी के लिए संभव नहीं है। एक निश्चित भूभाग के प्रति समर्पण भावना, साथ में रहने वाले मनुष्यों के प्रति उदारता, अपनत्व की भावना, सुरक्षा एवं संस्कृति के प्रति निष्ठाभाव राष्ट्रवाद के मूलतत्त्व हैं। राष्ट्रवाद की यह भावना किसी भी रूप में संकुचित मानसिकता की विरोधी है। “राष्ट्रवाद के आधार पर बने कार्यक्रम और राजनीतिक परियोजना के हिसाब से जब किसी राष्ट्र राज्य की स्थापना हो जाती है तो उसकी सीमाओं में रहने वालों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी विभिन्न अस्मिताओं के ऊपर राष्ट्र के प्रति निष्ठा को ही महत्त्व देंगे। वे राष्ट्र के कानून का पालन करेंगे और उसकी आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान भी दे देंगे।”

सोशल मीडिया में राष्ट्रवाद को समझने से पहले यह समझना आवश्यक है कि राष्ट्र से हमारा क्या तात्पर्य है और राष्ट्र के प्रति हमारी जिम्मेदारियाँ क्या हैं? राष्ट्र की परिभाषा किसी देश की भौगोलिक परिधि तक सीमित नहीं है। वह अपने देश की संस्कृति की तरह सीमाओं के अतिक्रमण करते हुए भी पूरी सांस्कृतिक चेतना का वाहक होता है। सांस्कृतिक मूल्यों की नींव पर ही राष्ट्रवाद का विशाल भवन खड़ा होता है। इसी से देश और पूरा समाज एक सांस्कृतिक अनुशासन में बंध पाता है। कहा जाता है कि एक बार जापान में एक चोर चोरी के उद्देश्य से एक घर में घुसा। घर के मालिक ने उसे चोरी करते हुए देख लिया। उसी समय कहीं से रेडियो पर राष्ट्रगान की आवाज आने लगी और चोर वहीं खड़ा रह गया। घर के मालिक ने अच्छा मौका पाकर चोर को रस्सी से बाँध दिया और पुलिस के हवाले कर दिया। जब चोर से अदालत में पूछा गया कि उसने भागने की कोशिश क्यों नहीं की तो उसने उत्तर दिया कि राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना के समक्ष चोरी से होने वाला लाभ अत्यंत तुच्छ लगा। चोर के इस कथ्य में राष्ट्रवाद की परिकल्पना साकार होती नजर आती है।

सांस्कृतिक चेतना राष्ट्रवाद को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कह सकते हैं कि धर्म, जाति, राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर अपने देश के प्रति निष्ठा भावना ही राष्ट्रवाद है। जब युद्ध में राम ने रावण को हरा दिया था तो उन्होंने अपने भाई लक्ष्मण को कहा कि लंका भले ही सोने की थी किन्तु उनकी अयोध्या नगरी मातृभूमि के सम्मुख वह तुच्छ है। ‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’ अर्थात् जननी (माँ) और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से भी बढ़कर होता है। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- “राष्ट्रीय शब्द अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक है। जिसमें जाति, संप्रदाय, धर्म, सीमित भू-भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर क्रमशः एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करने वाली समस्त जातियों, भिन्न-भिन्न भूखंडों, संप्रदायों और रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभरता गया है। कहना न होगा कि अंग्रेजों के आने के समय तक अपनी सांस्कृतिक एकता के बावजूद भारत व्यावहारिक रूप से भिन्न-भिन्न राज्यों में बंटा हुआ था। वास्तव में पूरे भारतवर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल में हुआ।”²

राष्ट्रवाद के कई प्रकार हैं। इनमें से एक है- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद। इसकी चर्चा आज के भारतीय, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य में खूब जोर शोर से हो रही है। “सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक अवधारणा है जिसका अर्थ है समाज या राष्ट्र के समस्त नागरिक एक सामान्य संस्कृति साझा करते हैं। यह सजातीय राष्ट्रवाद (एथनिक नेशनलिज़्म) और नागरिक राष्ट्रवाद (सिविल नेशनलिज़्म) के बीच की अवधारणा है। सजातीय राष्ट्रवाद में राष्ट्र के निवासी बहुतायत में एक नस्ल या जाति के होते हैं जबकि नागरिक राष्ट्रवाद में नस्ल या जातियों की विविधता होती है। इन दोनों के बीच राष्ट्रवाद में जहाँ एक तरफ नस्लों और जातियों की विविधता होती है वहीं ये सारे लोग एक सामान्य संस्कृति साझा करते हैं।”³ अतः किसी भी देश की सामाजिक सत्ता, राज्यों की प्रभुसत्ता को ठीक से संचालित करने में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ही मूलतः कार्यरत रहती है तथापि व्यावहारिक धरातल पर भी सामूहिक एकता का होना अनिवार्य है।

मीडिया को वर्तमान सन्दर्भ में सत्तापक्ष, प्रतिपक्ष और समाज के हर प्रकार के लोकहित कार्य करने हेतु लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में जाना जाता है। मीडिया के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक रूप ने हिंदी को एक नया अर्थ प्रदान किया है। आज सोशल मीडिया की धूम है। “दुनिया भर में लगभग 200 सोशल नेटवर्किंग साइट हैं। सबसे ज्यादा लोकप्रिय साइट्स में फेसबुक, ऑरकुट, माय स्पेस, फ्लिकर, इंस्टाग्राम (फोटो, विडियो शेयरिंग साइट्स) सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। एक सर्वेक्षण के मुताबिक दुनिया भर में 1 अरब 28 करोड़ फेसबुक प्रयोक्ता हैं। वही इंस्टाग्राम के 15 करोड़, लिंकडइन के 20 करोड़, माई स्पेस के 3 करोड़ और ट्विटर के 9 करोड़ प्रयोक्ता हैं।”¹⁴ फेसबुक और व्हाट्सएप्प आज सबसे ज्यादा लोकप्रिय साधनों में से एक हैं। सोशल मीडिया में राष्ट्रवाद को एक नए अवतार के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। नए अर्थों में देखा जाए तो संस्कृति और राष्ट्रवाद की भूमिका सोशल मीडिया में अपने अस्तित्व को तलाशती नजर आती है। संस्कृति मनुष्य की श्रेष्ठ भावनाओं की प्रतिनिधि है। समाज और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य किसी भी देश की संस्कृति का वाहक तत्व भी होता है। संस्कृति एक अव्यक्त सत्ता है। संस्कृति वास्तव में किसी देश अथवा जाति का समग्र व्यक्तित्व है। हमारे जीवन का ढंग ही हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती वरन उसका मूर्तिमान रूप होता है।

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। ‘वैदिक काल से भारत की संस्कृति विश्व प्रसिद्ध रही है। हड़प्पा और वैदिक काल से लेकर महाजनपदों तक भारत एक सांस्कृतिक इकाई रहा है। इसका पुख्ता प्रमाण, पूरे क्षेत्र में हड़प्पा के पशुपति पूजा, वैदिक अश्वमेध यज्ञ से लेकर महाजनपदों के राजघरानों में आपसी वैवाहिक संबंध आदि के रूप में मौजूद हैं। इसकी परिणति चाणक्य के अर्थशास्त्र में वर्णित समूचे क्षेत्र की एक सामान्य राजव्यवस्था और अशोक के पूरे साम्राज्य में एक धम्म, एक भाषा (पाली) और एक लिपि (ब्राह्मी) के रूप में होती है। कालांतर में कुछ विदेशी शासकों जैसे कि शक, पर्शियन, हूण, मुसलमान आदि ने आकर इसमें कुछ नए आयाम जोड़े। लेकिन भारतीय संस्कृति की आत्मा वही रही।”¹⁵

वर्तमान समय में संस्कृति को विशेष सन्दर्भों में देखा जाने लगा है। इसी सन्दर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है। कुछ दिन पहले व्हाट्सएप्प पर एक मैसेज आया कि हिंदू नववर्ष संवत्सर 2075 चैत्र शुक्ल प्रतिपदा दिनांक 18 मार्च 2018 के स्वागत में हम अपनी – अपनी गली, मोहल्लों में लोगों से बातचीत कर घर के बाहर रंगोली बनाने का आग्रह कर सकते हैं। रात्रि में सभी अपने अपने घर के बाहर दीपक जला सकते हैं और आतिशबाजी भी कर सकते हैं। एक छोटा सा प्रयास करके देखें। आपका छोटा प्रयास भारत में क्रांतिकारी परिवर्तन क्षमता रखता है। एक दूसरे को नववर्ष की बधाई और संदेश भेजें। हिंदुस्तान जगे तो विश्व जगेगा। राष्ट्रवाद की झलक यहां दिखाई देती है। आज सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सोशल मीडिया एक दूसरे का पर्याय बन कर उभरे हैं। सोशल मीडिया का प्रचार जोरों पर है। विश्व में विभिन्न प्रकार की संस्कृतियां बँटी और अपने-अपने समुदायों विशेष का प्रचार करने लगीं। अनेक संस्कृतियां भी उसी लय-ताल में आगे बढ़ने का प्रयास करने लगीं। आज सोशल मीडिया के समक्ष एक सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्रवादी मानसिकता की भी है। कोई भी पर्व हो या उत्सव, सभी एक जैसा व्यवहार करें। एक जैसे रीति-रिवाज का पालन करें, यही प्रमुख होता जा रहा है। इस एक तरफा भाव ने सोशल मीडिया पर स्वायत्तता का प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है। यदि सब कुछ संस्कृति के नाम पर राष्ट्रवादिता के नाम पर एकसमान संस्कृति पर जोर दिया जाएगा तो शायद भारतीय संस्कृति का मूल तत्व ही कहीं लुप्त न होने लगे। अपनी ‘विशेष’ संस्कृति की कल्पना या अपेक्षा सबसे खतरनाक भी है और इसे चुनौती के रूप में देखा जा सकता है। संस्कृति फूल में सुगंध के समान समाई रहती है साथ ही यह वायु की तरह भी है जो हमें दिखाई नहीं देती और सभी प्राणियों का जीवन उसी पर आश्रित है। उसी प्रकार संस्कृति भी भारतीय मानसिकता भी में समाई है। “सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार हमारी युगों पुरानी संस्कृति है जो सदियों से चली आ रही है। यह सांस्कृतिक एकता है जो किसी देश में लोगों को एकजुट करने में सक्षम है और जिसमें इस देश को एक राष्ट्र के सूत्र में बांध रखा है। भारत की संस्कृति भारत की धरती की उपज है। उसकी चेतना की देन है। उसकी एकता, लालित्य, समन्वय धरती से निकला है। भारत में आसेतु हिमालय एक संस्कृति है। उससे भारतीय राष्ट्रीय जीवन प्रेरित हुआ है। अनादिकाल से यहां का समाज अनेक संप्रदायों को उत्पन्न करके भी एक ही मूल से जीवन रसग्रहण करता आया है।”¹⁶ यही भारतीय संस्कृति का मूलतत्त्व भी है। इसे नकारना अपनी संकुचित मानसिकता का परिचय देना होगा।

सोशल मीडिया के बढ़ते प्रचार ने निम्न वर्ग में एक हेय दृष्टि उत्पन्न करने का काम भी किया है और सुनहरे सपनों के नाम पर एक अजीब सी नकारात्मकता का जन्म हुआ है। सोशल मीडिया पर आज सांस्कृतिक पुनर्जागरण को लेकर जो आवाज उठने लगी हैं। पश्चिम की नकल करना छोड़ अपने सांस्कृतिक पुनर्जागरण अपना स्वत्व पहचानने की मांग आज सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर बहस अनिवार्य मुद्दा बन गई है। इन दिनों सोशल मीडिया पर विशेष धर्म का प्रचार जोरों पर है जबकि भारत एक बहुभाषी सांस्कृतिक देश है। भारतीय संस्कृति स्वतंत्रता, बंधुत्व, समानता, अहिंसा और स्नेह पर आधारित संस्कृति रही है। आज सोशल मीडिया पर बनती संस्कृति उपभोक्ता और पदार्थ के आपसी सम्बन्धों पर निर्भर है। संस्कृति का मूल्य तय कर दिया गया है। सोशल मीडिया पर किसी भी विशेष धर्म का प्रचार होता है जिससे विशेष समाज को अभिप्रेरित और उत्प्रेरित किया जाता है कि उक्त देवी-देवता की फोटो देखते ही लाइक करें, इससे आपको विशेष लाभ होगा या फिर नकारात्मक मानसिकता

के बीज बोए जाते हैं। यह एक प्रकार का बाजारों का खेल है जो अपनी संस्कृति को पोषित करने की अपेक्षा नष्ट कर रहा और एक उग्र मानसिकता लोगों के मन में घर कर दी जा रही है। यह ठीक है कि हमने आजादी के बाद संस्कृति के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अनुगमन किया। स्वयं महात्मा गाँधी भी भारतीय संस्कृति के पक्षधर थे। उन्होंने हिंदी भाषा को अपनाते पर जोर दिया जो कि संस्कृति का ही अंग है। पाश्चात्य संस्कृति से हम अपनी स्वायत्तता को नष्ट कर देंगे। मगर विविधताओं से पूर्ण भारत देश के भीतर ही जब अपनी ही संस्कृतियों में टकराहट होने लगे तो अस्मिता पर प्रश्न उठने अवश्यम्भावी हैं।

सोशल मीडिया आज स्वायत्तता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहा है। यह सबसे दुखदाई भी है और सबसे बड़ी चुनौती भी। एक जैसे वस्त्र, एक जैसा खानपान, एक भाषा, एक जैसे रीति-रिवाजों का पालन करना राष्ट्रवादिता के दायरे में तो अवश्य है किंतु सांस्कृतिक एकता के नाम पर और भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में वर्चुअल दुनिया के इस युग में नकारात्मक दृष्टिकोण की भरमार है। आज संस्कृतियों के बीच मेल मिलाप, संवाद नहीं हो रहा है। सांस्कृतिक आक्रमण के द्वारा विभिन्न संस्कृतियों का दबाया जा रहा है। उनके अस्तित्व को नष्ट किया जा रहा है। सांस्कृतिक विविधता की विभिन्न प्रकार की विकृतियों को जन्म दे रही है। दादी, नानी की कहानियाँ, पड़ोसियों की बैठकें, बच्चों का बचपन, बचपन के गीत, खेलकूद, शारीरिक गतिविधियाँ, सभी कुछ नष्ट होने को हैं। गीत-संगीत, लोकगीत, लोकपर्व, भाषा, साहित्य, रंगमंच, दर्शनशास्त्र, मूल्य, विश्वास मानवशास्त्र सभी कुछ सांस्कृतिक राष्ट्रवादिता के प्रमुख तत्व हैं। इन विभिन्न परिदृश्यों में सांस्कृतिक राष्ट्रवादिता पर सोशल मीडिया की वक्रदृष्टि इन दिनों छाई हुई है।

वर्चुअल दुनिया में आभासी मित्रों के जरिए एक ऐसे संसार की कल्पना की जाती है जहाँ भावनाओं का कोई मूल्य नहीं। यह ऐसे समाज और संस्कृति को जन्म देती है जिसमें उसके साथ रहने वाले आभासी मित्रों को जानकारी भी नहीं होती। सांस्कृतिक राष्ट्रवादिता के नाम पर हम अपने-अपने सांस्कृतिक मूल्यों की बलि चढ़ाने को तैयार हैं। साहित्य के नाम पर ऐसा बहुत कुछ लिखा पढ़ा जा रहा है जो अब तक पब्लिक डोमेन का हिस्सा नहीं था या फिर उसे किसी परिचित साहित्य में वर्जित साहित्य में स्थान मिलता था किंतु सोशल मीडिया ने ये दूरियाँ भी कम कर दी हैं। सामूहिक, सामाजिक गतिविधियों का क्षेत्र घटा है और आभासी क्षेत्र में वृद्धि हुई है। सोशल मीडिया पर साइबर क्राइम बढ़ा है, धोखाधड़ी, छल-प्रपंच और असामाजिक गतिविधियों के मामले बढ़े हैं। सोशल मीडिया ने सांस्कृतिक राष्ट्रवादिता के नाम पर बहुत कुछ दिया भी है किंतु अपनत्व की भावना छीन ली है। सोशल मीडिया का आज यह आलम है कि आपसी संवाद, समझ आदि सभी को सोशल मीडिया अपने हिसाब से तय कर रहा है। कुछ सालों पहले तक बुजुर्ग हमारा मार्गदर्शन करते थे, सही राह दिखाते थे, असफलता-सफलता के कई गुण समझाते थे। यह सब हमारे लिए प्रत्यक्ष था। इससे हम परिवार से जुड़े थे। संस्कारों की डोर तो मीडिया के आने से टूटने ही लगी थी पर सोशल मीडिया के जमाने में आज इसे बढ़ावा ही मिला है। आज कोई भी व्यक्ति जीने की ललक को, असफलता के पायदान को सफलता में बदलने को, जीने की नई राह सीखने को, सोशल मीडिया से ही सीखते हैं। मार्गदर्शन व सही जीवन जीने तरीके यह नुस्खे सोशल मीडिया प्रदान करने लगा है। सांस्कृतिक चेतना यहाँ पर टूटती नजर आती है। यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद नहीं है। समाज का छोटे से छोटा तबका फिल्मी अंदाज में एक दूसरे से युवा शिक्षित होने के स्थान पर, ज्ञान विज्ञान ग्रहण करने के स्थान पर पथभ्रष्ट होता जा रहा है। सोशल मीडिया ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ दिमागी रूप से तो सब एक दूसरे से जुड़े हैं पर दिल के तार कभी नहीं जुड़ पाते। संस्कृति के प्रमुख तत्व भाषा के सन्दर्भ में देखें तो हिंदी की भूमिका सोशल मीडिया में अपने अस्तित्व को तलाशती नजर आती है। आजकल हिंदी को तोड़मरोड़कर प्रस्तुत करना बड़ा ही अच्छा और कई बार तो गरिमामयी माना जाता है। फैशन के रूप में हिंदी को पाठकों और दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। इंग्लिश की तर्ज पर हिंदी को लिखने का मानों रिवाज सा चल पड़ा है। सोशल मीडिया को संवाद का एक बेहतर माध्यम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। लगभग सभी तबके के लोग सोशल मीडिया से जुड़े हुए हैं। ऐसे में भाषा को लेकर सवाल उठने अवश्यम्भावी हैं। भाषा सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कर सकती है... यह हमें समझ लेना होगा।

सोशल मीडिया और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में यह तय कर लेना होगा कि भारत विविधताओं का देश है। एक धर्म, एक भाषा, एक वेशभूषा, एक जाति, एक संस्कृति की परिकल्पना निराधार ही नहीं अपितु अनावश्यक भी है। सोशल मीडिया में सांस्कृतिक संदर्भ में जिन व्यक्तियों या समुदायों से बातचीत की जाए उसमें हमेशा सम्मान का भाव होना चाहिए। राष्ट्रवादिता का अभिप्राय यह नहीं है कि एक संस्कृति को बढ़ावा दिया जाए और दूसरी संस्कृति को नकार दिया जाए। भारतीय संदर्भ में विविध संस्कृतियाँ एक सामूहिक संस्कृति का निर्माण करती हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति को विविधता में एकता के रूप में देखा गया है। सोशल मीडिया का भी है दायित्व है कि वह अतिशयोक्ति या किसी संस्कृति के संदर्भ में अपमानजनक टिप्पणी या ना करें जिससे भेदभाव को बढ़ावा मिलता हो। ऐसी टिप्पणी पोस्ट ना करें जिससे दूसरा समुदाय अपने को अपमानजनक महसूस करे। “हमारी बहुरंगी-बहुभाषी राष्ट्रीय संस्कृति की सबसे बड़ी खूबी यही रही है कि समन्वय और सामंजस्य को यहाँ बहुत अधिक महत्व दिया गया है। पृथ्वी पर रहने वाले सभी मानव समुदायों को यहाँ एक कुटुंब का दर्जा

दिया गया है और पृथ्वी को माँ सरीखा माना। विश्व-बंधुत्व और सर्व-धर्म-समभाव इसके अन्यतम आदर्श निश्चित किये गए हैं।”⁷ ईमानदारी,सामूहिकता, पारिवारिक और सामाजिक आदर्श, सद्भाव, भाईचारा, नैतिक आदर्श, रिश्तों की अहमियत को सोशल मीडिया को समझना होगा तभी वास्तविक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को जान सकते हैं।

सन्दर्भ

1. <https://hi.m.wikipedia.org/wiki>
2. हिंदी साहित्य का इतिहास :छायावादोत्तर काल, संपादक डॉ . नगेन्द्र पृष्ठ -698, मयूर पेपर बैक्स
3. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, कल आज और कल, त्रिवेंद्रम सिंह, अप्रैल 27, 2017, offprint पद
4. वही
5. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आधारशिला पर खड़ा होता भारत, मई 30,2015,डॉ. सौरभ मालवीय,पदकपउमकपं.पद
6. [https://www.linkedin.com/pulse/सोशल मीडिया और हम](https://www.linkedin.com/pulse/सोशल-मीडिया-और-हम)
7. संस्कृति, जनसंचार और बाजार, नंद भारद्वाज, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

हिंदी सिनेमा में राष्ट्रवाद

डॉ. दीपक शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय

सिनेमा एक क्रांतिकारी माध्यम है जिसे केवल व्यावसायिक मानकर खारिज करना एक बहुत बड़ी भूल माननी चाहिए। हमारे जीवन पर सिनेमा का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का व्यापक प्रभाव रहा है। जिस साहित्य को वैयक्तिक और समवेत संवेगों का समुच्चय कहा जाता रहा है उसे भी सिनेमा ने समय-समय पर विभिन्न नए आयाम प्रदान किये हैं। कहना चाहिए कि भरतमुनि ने जिस 'नाट्य-विधा' को पंचमवेद की उपाधि प्रदान कर, सर्वसुलभ होने की पक्षधरता की थी, आज इसी पंचमवेद का स्थान हमारे सिनेमा ने प्राप्त कर लिया है। वर्तमान में सिनेमा पंचमवेद के आसन पर विराजमान होकर देश और समाज के हर वर्ग, जाति, नस्ल और धर्म तक अपनी पहुँच बना चुका है। जो विषय अभी तक साहित्यिक या भद्रलोक में अछूते माने गए थे, उन्हें सिनेमा ने सबके सामने सहजता से प्रस्तुत किया है। सिनेमा अब केवल 'देखो और भूल जाओ' का माध्यम नहीं रहा है। आज भी जिसका दृष्टिकोण सिनेमा के प्रति ऐसा संकुचित है वह निश्चित ही सिनेमा माध्यम को समझने में पूर्णतः असमर्थ है। ऐसे वर्ग के लिए सिनेमा विशुद्ध मनोरंजक माध्यम है। यद्यपि यह भी एक सत्य है कि परदे पर एक फिल्म उतारने के लिए आज करोड़ों रुपयों की जरूरत होती है। तरह तरह के कर्ज लेने पड़ते हैं, बड़े-बड़े सेट्स और फिर प्रचार करने में भी मोटा खर्चा होता है। ऐसे में सिनेमा सामाजिक परिष्कार का माध्यम कम रह जाता है और व्यवसाय का अधिक। यह समझना भी बहुत आवश्यक है कि आज सिनेमा, विशुद्ध साहित्य नहीं है जिसमें संदेश और उपदेश की भरमार हो, समाज का पथ-प्रदर्शक हो। सिनेमा का मुख्य उद्देश्य लागत से अधिक कमाना है। सिनेमा में संदेश और उपदेश उतने ही चल सकते हैं जितना कि आटे में नमक चलता है। जिस प्रकार नमक ज्यादा होने पर रोटी खायी नहीं जा सकती उसी प्रकार सिनेमा में भी उपदेश की अधिकता उसे जनसामान्य से काट सकती है। इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि सिनेमा का सबसे पहला पड़ाव है कि वह अपने दर्शकों को रुचिकर लगे, उनका मनोरंजन करे। तत्पश्चात वह अपने दर्शकों को प्रभावित करते हुए अपने आकर्षण में बाँध ले और फिर उन्हें अंदर से छूते हुए, टटोलते हुए इस तरह से बदले कि स्वयं दर्शकों को न ज्ञात हो कि वे बदलाव की प्रक्रिया में अग्रसर हैं। इसका अर्थ यह है कि सिनेमा जब तक अपने दर्शकों को आकर्षित करके उसे अपने से नहीं बाँध पायेगा, तब तक सिनेमा की सार्थकता और सफलता दोनों ही निरर्थक जान पड़ती हैं।

जिस प्रकार हमारे देश के फौजी जवान राष्ट्रहित के लिए संघर्ष करते रहते हैं, तन, मन और धन से राष्ट्र-सेवा के लिए तत्पर रहते हैं ठीक उसी प्रकार हिंदी सिनेमा ने भी समय-समय पर अपने दर्शकों के भीतर राष्ट्रीयता का बीज बोया है। देश के भीतर राष्ट्रीयता की भावना को जन-जन तक पहुँचाने में अपना भरसक योगदान दिया है। उल्लेखनीय है कि सिनेमा की सबसे अहम बात है कि वह प्रत्येक विषय को मनोरंजक-शैली में परोसता है। यही मनोरंजकता ही गंभीर विषय को कल्पना के की चाशानी में भिगोकर एक बड़े दर्शक-वर्ग को अपने साथ बहा ले जाती है जिससे संदेश और मनोरंजन साथ-साथ चलते रहते हैं। राष्ट्रवाद और देशभक्ति की चर्चा जब भी हिंदी सिनेमा के संदर्भ में की जाएगी तो अभिनेता और निर्देशक मनोज कुमार का नाम सबसे पहले स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। मनोज कुमार ने अपनी फिल्मों के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को एक स्थायित्व प्रदान किया है जिसके कारण आपको हिंदी सिनेमा 'भारत कुमार' और 'मिस्टर भारत' के नाम से भी पहचानता है। 'शहीद', 'पूरब और पश्चिम', 'उपकार', 'क्रांति', 'जय हिंद' इत्यादि मनोज कुमार की फिल्मों में राष्ट्रवाद की भावना से लबरेज हैं। मनोज कुमार ने भगत सिंह के जीवन पर आधारित फिल्म 'शहीद' में ऐसा शानदार अभिनय किया कि आप भी भगत सिंह की तरह ही एक राष्ट्रवादी की छवि प्राप्त करने में सफल रहे। इसका अंदाजा इसी बात से लगा सकते हैं कि मनोज कुमार के शानदार अभिनय से प्रभावित होते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने मनोज कुमार को 'उपकार फिल्म बनाने की प्रेरणा दी। 1967 में बनी 'उपकार' फिल्म ने राष्ट्रीय भावना का एक नया अध्याय सबके सम्मुख खोल दिया। फिल्म का प्रसिद्ध गाना 'मेरे देश की धरती सोना उगले' ने रिकार्डतोड़ सफलता प्राप्त की और खुद मनोज कुमार को इस फिल्म के लिए फिल्मफेयर का सर्वश्रेष्ठ निर्देशक-पुरस्कार मिला। इसके बाद 'पूरब और पश्चिम' फिल्म ने एक बार फिर से धूम मचा दी। इस फिल्म का मशहूर गाना- 'है प्रीत जहाँ की रीत सदा' ने विश्वभर में भारतीय राष्ट्रवाद का डंका बजा दिया। मनोज कुमार ने अपनी फिल्मों के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना का ऐसा पाठ पढाया है कि इनकी फिल्मों में भारतीय-राष्ट्रवाद को समझने का एक बहुत प्रभावशाली माध्यम बन चुकी है।

हिंदी सिनेमा के राष्ट्रवादी परिचर्चा को विस्तार देने से पूर्व, 'राष्ट्रवाद' के बारे में सर्वप्रथम यह बताना जरूरी है कि राष्ट्रवाद

कोई विचारधारा नहीं है वरन् यह तो एक आंतरिक भाव है जो देश को एक रखने के लिए अनिवार्य है। राष्ट्रवाद एक ऐसी भावना है जिसके बिना मनुष्य पशु-तुल्य है और मृतक समान माना जाता है। यह राष्ट्रवाद ही है जिसके चलते सीमा पर आए दिन कोई न कोई जवान शहीद हो जाता है। यह राष्ट्रवाद ही है जिसके चलते विभिन्न जाति, धर्म, वर्ग और नस्ल के लोग आराम से एक देश सीमा में रहते हैं। यह राष्ट्रवाद ही है कि युद्ध की स्थिति में रातों-रात 'प्रधानमंत्री राहतकोष' में पैसों की बाढ़ आ जाती है। यह राष्ट्रवाद ही है जब देश के कई पढ़े-लिखे नौजवान लाखों-करोड़ों रुपयों का नौकरी पैकेज यह कहकर ठुकरा रहे हैं कि मुझे अपने देश में ही काम करना है। मतलब स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद का कोई एक निश्चित सांचा नहीं है लेकिन इतना निश्चित है कि राष्ट्रवाद के मूल में 'राष्ट्र' अनिवार्य रूप से विद्यमान है इसलिए राष्ट्रवाद को समझने के लिए हमें प्रथमतया 'राष्ट्र' को समझना पड़ेगा। सामान्य शब्दों में एक राष्ट्र विभिन्न राज्यों से मिलकर बनता है। राज्य विभिन्न समाजों एवं वर्गों के द्वारा निर्मित होते हैं जिसका एक निश्चित भू-भाग, शासन-प्रशासन, संप्रभुता और जनसंख्या होती है। 'राष्ट्र' के लिए एक निश्चित भाषा, एक सर्वमान्य पुस्तक, राष्ट्रीय प्रतीक और एकसमान राष्ट्रीय-भावना का होना अनिवार्य माना गया है। वस्तुतः राष्ट्रवाद में मुख्य राष्ट्रीयता है जो एक सामुदायिक भावना है। साहित्य-जगत के संसार में किसी भी 'वाद' के बारे में यह मान्यता है कि 'वाद' किसी भी विचार और भाव के साथ जुड़कर उसे सीमित करते हुए निश्चित सीमाओं में बाँध देता है। यही स्थिति राष्ट्रवाद के साथ भी है जिसमें 'राष्ट्र' शब्द के साथ जुड़कर, राष्ट्र को 'राष्ट्रवाद' बनाकर कुछ निश्चित परिभाषाओं में बाँधने की कोशिश करता है। वस्तुतः राष्ट्रवाद एक सामूहिक भावना का नाम है जिसके अंतर्गत एक निश्चित राष्ट्र के लोग परंपरा, भाषा, संस्कार, जातीयता एवं सांस्कृतिक आधार जैसे विभिन्न स्तरों पर एक धरातल पर एकत्रित होते हैं। लेकिन मजेदार बात तो यह है कि ऐसा कोई राष्ट्र ही नहीं है जो इन सभी आधारों की कसौटी पर खरा उतरता हो। क्रांतिकारी विचारधारा घोषित की जाने वाली मार्क्सवादी विचारधारा भी राष्ट्रवाद के सिद्धांत पर अपनी कोई स्पष्ट राय रखने में असमर्थ रही है। सभी श्रमिकों के लिए क्रांति को मुख्य औजार बताने वाली मार्क्सवादी विचारधारा का मानना है कि श्रमिकों का कोई अपना राष्ट्र ही नहीं होता। श्रमिकों को अपना अलग राष्ट्र बनाना पड़ेगा जहाँ पर उत्पादन के साधनों पर श्रमिक वर्गों का ही आधिपत्य होगा। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रवाद की सभी मार्क्सवादी व्याख्याओं में सर्वाधिक लोकप्रिय बेनेडिक्ट एंडरसन की 'इमेजिंड-कम्युनिटी' (कल्पित समाज) को माना जाता है जिसमें बेनेडिक्ट एंडरसन का मानना है कि परस्पर कभी न मिलने वाले तथा एक-दूसरे से अपरिचित लोग किसी राष्ट्र के विकास एवं एकता में किस तरह से बंधे रहते हैं यह देखने वाली चीज है। विचारधारा का एक हिस्सा इस राष्ट्रवाद की अवधारणा को आयातित मानते हुए इसे अंग्रेजों की देन मानता है। यहाँ तक कि वामपंथ के एक बड़ा तबके की मान्यता रही है कि राष्ट्रवाद एक ऐसी अवधारणा है जो सभी अस्मिताओं को लील लेती है जिसका यह अर्थ हुआ कि राष्ट्रवाद अन्य सभी अस्मिताओं के लिए खतरा है। हाँ, यह सच भी है कि राष्ट्रवाद में अन्य अस्मिताएं घुल-मिलकर एक हो जाती हैं लेकिन इस प्रक्रिया को सकारात्मक रूप से ही देखना चाहिए। 'राष्ट्रवाद' अन्य छोटी-छोटी अस्मिताओं का पुनर्निर्माण राष्ट्र के संदर्भ में करता है न कि उन अस्मिताओं का अंत करता है। जिस प्रकार से राष्ट्र-निर्माण के लिए विभिन्न जाति-धर्म-नस्ल समुदाय एकजुट होकर सक्रिय रहते हैं उसी प्रकार राष्ट्रवाद में भी जिन छोटी-बड़ी अस्मिताओं के अंत की घोषणा वामपंथ कर रहा है दरअसल यह उसकी संकुचित दृष्टिकोण का ही परिचायक है। 'राष्ट्र' स्वयं में ही एक व्यापक अस्मिता है। यद्यपि यह भी यथार्थ है कि वैश्वीकरण के आगमन के बाद राष्ट्रवाद की अवधारणा को चुनौती मिलनी शुरू हुई जब सम्पूर्ण विश्व ही एक ग्राम के रूप में सबके सम्मुख उपस्थित होते हुए विश्वग्राम की संकल्पना को मजबूत करने लगा। वैश्वीकरण ने अपनी वर्चुअल स्पेस के द्वारा एक राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं का ही अतिक्रमण नहीं किया बल्कि पूर्व स्थापित विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचों को भी चुनौती प्रस्तुत की।

हिंदी सिनेमा में राष्ट्रवाद की पड़ताल करते हुए हम यह भी पाते हैं कि अपने आरंभिक दौर में हिंदी-सिनेमा का राष्ट्रवाद व्यापक फलक पर स्थापित होने से पूर्व विदेशियों एवं भारत से जाकर बाहर बसे प्रवासियों/अनिवासियों को एक नकारात्मक रूप में देखता था। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि नकारात्मक राष्ट्रवाद का ही बोलबाला था। फिर वह 'पूरब और पश्चिम' फिल्म हो या फिर कोई अन्य फिल्म। हिंदी सिनेमा का आरंभिक दौर अपने दर्शकों के भीतर राष्ट्रवाद के भाव को मजबूत करने के लिए यह दिखाता था कि विदेशों में बसे हमारे प्रवासी भारतीय बंधु, अपने भारतीय होने पर शर्मिदा होते हैं। यहाँ तक कि इन प्रवासियों ने अपने नाम तक इसी शर्म से परिवर्तित कर डाले कि कोई उन्हें भारतीय न समझे। मनोज कुमार द्वारा अभिनीत फिल्म 'पूरब और पश्चिम' में नायिका प्रीति (सायरा बानो) पाश्चात्य संस्कृति के रंग में सराबोर एक ऐसी लड़की दिखाई गयी है जो शराब पीती है, सिगरेट पीती है और छोटे-छोटे कपड़े भी पहनती है और जिसका भारतीय संस्कृति से कोई नाता नहीं है। प्रीति, भारत (मनोज कुमार) को पसंद करती है, उससे शादी भी करना चाहती है लेकिन भारतवर्ष में रहना नहीं चाहती। यद्यपि अंततः प्रीति, भारत के राष्ट्रप्रेम के चलते भारतीय आदर्शों एवं मूल्यों को स्वीकार करते हुए भारत में आ जाती है। इसके अलावा एक और महत्वपूर्ण फिल्म है 'उपकार' जिसमें मुख्य भूमिका मनोज कुमार ने ही निभाई है। इस फिल्म में भी मनोज कुमार का नाम 'भारत' ही था। फिल्म में दिखाया गया है कि मनोज कुमार ने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने भाई पूरण (प्रेम चोपड़ा) को विदेश में पढ़ाई करवाने के लिए स्वाह कर दिया लेकिन बदले में जब पूरण विदेश से पढ़-लिख कर वापस आता

है तो वह एकदम निकम्मा और नकारा इंसान बनकर वापस लौटता है। पूरण जमीन जायदाद के हिस्से बाँट के लिए झगड़ा करता है और भारत अपना सबकुछ पूरण को देकर भारत-पाकिस्तान के युद्ध में चला जाता है। दोनों के नाम का अगर ठीक से अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि इनके नाम के भी बहुत गहरे निहितार्थ हैं। हमारा भारतवर्ष जो मूल्यों, संस्कारों और समर्पण का देश माना जाता है। जहाँ की संस्कृति वर्षों से देश-विदेश में चर्चा का विषय रही है उसका प्रतिनिधित्व 'भारत' (मनोज कुमार) करता है जबकि ऐसा इंसान जो पूर्णता की तलाश में जगह-जगह भटकता फिरता है वह कभी पूर्ण नहीं हो पाता, इसका प्रतिनिधित्व करता है पूरण (प्रेम चोपड़ा)। विदेश जाकर भी वह अपूर्ण ही रहता है जो यह संदेश देता है कि अपने देश के भीतर ही हमें सब कुछ मिल जाता है। अपने समाज और देश के लिए थोड़ा करने पर भी पूर्णता प्राप्त हो जाती है।

गौरतलब है कि राष्ट्रवादी मुद्दों से जुड़ी आरम्भिक हिंदी फिल्मों में भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण में विदेश-विदेशियों को किसी खलनायक से कमतर नहीं देखा जाता था। मतलब कि विदेश में रहने वाले और विदेश में जाने वाले भारतीय-दोनों को ही भारतीय राष्ट्रवाद के भीतर जगह नहीं दी जाती थी। दोनों को ही भारतीय राष्ट्रवाद के लिए खतरा दिखाने की प्रवृत्ति प्रबल रहती थी। उपर्युक्त मनोज कुमार की फिल्मों में भी हमने ऐसा ही कुछ देखा है जिन्हें भारतीय राष्ट्रवाद में फिट करने के लिए प्रवासी भारतीयों को भटका हुआ माना जाता था और अंततः ऐसे पात्र को भारतीय रंग-रूप में परिवर्तित करके ही हमारा सिनेमा राष्ट्रवाद की स्थापना करता था। लेकिन समय के साथ साथ हिंदी सिनेमा का दृश्यपटल विस्तृत होता गया और इस अवधारणा को धीरे-धीरे खारिज करता गया कि प्रवासी भारतीय, भारतीय राष्ट्रवाद के लिए खतरा है। अब प्रवासी भारतीय हिंदी सिनेमा में सम्मान की नजरों से देखे जाने लगे। प्रवासी भारतीयों की एक सकारात्मक छवि सिनेमा ने प्रस्तुत करनी शुरू कर दी जिसका परिणाम यह हुआ कि अब भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें विदेशों तक जमने लगी थी। अपने राष्ट्र के प्रति प्रवासी/अनिवासी भारतीयों का अटूट प्रेम हिंदी सिनेमा में प्रदर्शित होने लगा। 'दिलवाले दुल्हनियां ले जाएंगे' (1995), 'परदेस' (1997), स्वदेश (2004) और 'नमस्ते-लंडन' (2007) ऐसी ही फिल्में हैं। लेकिन विचारधारा का एक खास तबका इस परिवर्तन को प्रवासी भारतीयों से उनके डॉलर छीनने की दृष्टि से देखता है। इस वर्ग को लगा कि अगर राष्ट्रवाद अपने पैर पसारने लगा तो इनकी विचार-धारा धूमिल होने लगेगी जो 'राष्ट्रवाद' की विचारधारा को आयातित मानते हुए एक सिरे से इसका विरोध करती आ रही है। इनके वैचारिक संकुचन ने इस परिवर्तन को केवल 'डॉलर-भूख' का नाम देना शुरू कर दिया। इस विचारधारा के झंडेबदारों की बौखलाहट तो देखिए 'राष्ट्रवाद' जैसे विस्तृत भाव और मूल्य को यह केवल 'हिंदू-सर्वणवादी भारतीयता' कहकर उपेक्षा करते आ रहे हैं।

इस वर्ग के लिए न राष्ट्र की कोई एहमियत है और न राष्ट्रवाद की। इनका दोहरापन तो देखिए कि यह सार्वजनिक मंचों पर तो पूंजीपतियों को खूब गालियाँ निकालेंगे, अमेरिका पर आक्रामक हमले करेंगे लेकिन इनके बच्चे-परिवार इन्हीं पूंजीपतियों और अमेरिका की सेवा में रत रहेंगे। खैर, हम विषय पर आते हुए इस प्रश्न से भी टकराते हैं कि हिंदी सिनेमा 'राष्ट्रवाद' का कौन सा रूप हमारे सम्मुख परोस रहा है? क्या यह राष्ट्रवाद हिंसात्मक है या अहिंसात्मक? या फिर दोनों ही हैं? अगर हम ध्यान देंगे तो पायेंगे कि आज हमारा बड़ा पर्दा राष्ट्रवाद के हिंसात्मक रूप को ही अधिक पुष्ट करता हुआ नजर आता है। फिर भले ही वह पुरानी फिल्म हो या नयी। पुरानी फिल्मों में 'शहीद', 'हकीकत', 'क्रांति' में भी हिंसात्मक रूप से राष्ट्रवाद की प्रतिष्ठा की गयी थी और समकालीन सिनेमा में 'चक दे इंडिया', 'गदर' 'रंग दे बसंती', 'ऐ वेडनसडे', में भी राष्ट्रवाद का ऐसा ही प्रस्तुतीकरण किया गया है। लेकिन इन सभी फिल्मों के विपरीत 'लगान' एक ऐसी फिल्म है जो राष्ट्रवाद का एक अहिंसात्मक रूप प्रस्तुत करती है जिसके भीतर न तो कोई धर्म है, ना जाति है, न कोई नस्ल है और ना कोई विशेष तबका, बस है तो केवल अपना राष्ट्र। यह फिल्म क्रिकेट के माध्यम से एक ऐसा खेल खेलती है जिसमें गाँव के सारे लोग एकजुट होकर, अंग्रेजों को न केवल चुनौती देते हैं बल्कि उनपर अपनी विजय हासिल करते हैं। गाँव के बच्चे-बूढ़े, महिलाएँ, निम्न और उच्च जाति और वर्ग के लोग अपना सारा मनमुटाव एवं पूर्वग्रह भुलाकर, अपने गाँव के लिए संघर्ष करते हुए एक विस्तृत राष्ट्रवाद का निर्माण करते हैं। अब एक विशेष विचारधारा के चश्मे से देखने वाले आलोचक कहेंगे कि यह लड़ाई तो अपने गाँव के लिए की गयी थी, न कि राष्ट्र के लिए तो ऐसे में यह राष्ट्रवाद कैसे हो सकता है। लेकिन ऐसे आलोचकों को बताना जरूरी है कि यह गाँव इस फिल्म में सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। फिल्म दिखाने की कोशिश करती है कि सम्पूर्ण गाँव अंग्रेजी शोषण से परेशान था। सभी लोग इस शोषण से मुक्ति चाहते थे। अंग्रेजी शोषण का विरोध करना चाहते थे लेकिन इन्होंने हिंसा का मार्ग न अपनाकर, अहिंसात्मक मार्ग से अपना विरोध प्रकट करते हुए राष्ट्रवाद के व्यापक फलक को स्थापित किया। गौरतलब है कि एक आदर्श राष्ट्रवाद के मूल में 'स्वान्तः सुखाय' की अपेक्षा 'बहुजन-हिताय' की भावना प्रबलतम होती है जिसके दर्शन हमें 'लगान' फिल्म में होते हैं। यद्यपि राष्ट्रवाद कहता है कि राष्ट्र के लिए हिंसा भी जायज है लेकिन 'लगान' फिल्म अहिंसात्मक राष्ट्रवाद को स्थापित करने का प्रयास करती है। 'लगान' फिल्म ने राष्ट्रवाद की स्थापना के लिए स्वार्थ के स्थान पर परोपकार, कायरता के स्थान पर साहस, निराशा के स्थान पर आशा, दमन के स्थान पर प्रतिकार, वैयक्तिकता के स्थान पर सामूहिकता, धर्म के स्थान पर कर्म को कहानी का अभिन्न हिस्सा बनाती है। इसका कारण भी स्पष्ट है भुवन केवल अपने धर्म के लिए नहीं बल्कि ग्रामधर्म के लिए लड़ता है जिसे हमें अधिक विस्तार से राष्ट्रधर्म कहना चाहिए। वस्तुतः यही

राष्ट्रवाद भी है। जिस प्रकार से गांधीजी ने देश के बहुसंख्य समाज को एकजुट करके अहिंसात्मक रूप से अंग्रेजों के खिलाफ एक राष्ट्रीय आंदोलन छेड़ा था ठीक वैसा ही कुछ इस फिल्म ने भुवन ने किया।

वर्तमान हिंदी सिनेमा की बात की जाए तो कई पुरानी पीढ़ी के लोग यह आक्षेप लगाते हैं कि आज हिंदी फिल्मों में देशभक्ति या राष्ट्रवाद बचा ही नहीं है। राष्ट्रवाद से जुड़ी हुई फिल्में तो उनके जमाने में आती थीं। लेकिन यहाँ कहना होगा कि हिंदी सिनेमा में आज राष्ट्रवाद का स्वरूप बदल गया है। आज हिंदी सिनेमा में राष्ट्रवाद अब पहले जैसा नहीं रहा जिसे दिखाने के लिए दो देशों के मध्य होने वाले युद्धों या संघर्षों को आधार बनाया जाता था क्योंकि जरूरी नहीं है कि हर बार दो देशों के मध्य युद्ध होगा ही जैसे पहले भारत-चीन और भारत-पाकिस्तान के युद्धों को आधार बनाकर फिल्म निर्माण हुआ था। 'हकीकत', 'बोर्डर', 'एलओसी', 'लक्ष्य' यह सब ऐसी ही फिल्में हैं। आज हिंदी सिनेमा देश को तोड़ने वाले मुद्दे या फिर राष्ट्र के विकास में अवरोधक माने जाने वाली समस्याओं को अपने दर्शकों के सामने बहुत बेबाकी से रखता है। यह जरूरी नहीं है कि राष्ट्रवाद के निर्माण एवं प्रसार में दो देशों के मध्य होने वाले युद्धों को ही आधार बनाकर फिल्म निर्माण किया जाएगा तभी वास्तविक राष्ट्रवाद सबको नजर आयेगा। व्यावहारिकता की दृष्टि से देखें तो यह संभव भी नहीं है। आज आतंकवाद और राजनीति के नाम पर होने वाली हिंसा तथा भ्रष्टाचार जैसे मुद्दों को फिल्मों की आधारभूमि बनाकर अनेक फिल्मों का निर्माण किया गया है जो दरअसल राष्ट्रवाद के लिए ही उर्वर-भूमि उपलब्ध करवाने का कार्य करती हैं। 'ए वेडनसडे', 'मिशन कश्मीर', 'मैं हूँ न', 'भाग मिल्खा भाग', 'बेबी', 'रंग दे बसंती', 'गब्बर इज बैक', 'टॉयलेट-एक प्रेम कथा', 'पैडमेन' - यह सभी ऐसी ही फिल्में हैं जिन्होंने राष्ट्रवाद के एक नये स्वरूप को निर्मित करने में अपना विशेष योगदान दिया है। यह फिल्में किसी न किसी कहानी से सबको यह बताना चाहती हैं कि राष्ट्र को खतरा केवल बाहरी ताकतों से नहीं होता बल्कि राष्ट्र के भीतर दीमक की तरह भी कई सारी चीजे राष्ट्र को ही खोखला करती जा रही हैं। आज जरूरत है उनका सामना करते हुए उन्हें परास्त करने के सभी को एकजुट होकर उंदर लड़ने की।

आलेख के अंत में अब थोड़ी सी चर्चा हिंदी गानों की भी करना जरूरी होगा जिसके अभाव में हिंदी सिनेमा में राष्ट्रवाद का अध्ययन करना बेमानी साबित होगा। यह हिंदी सिनेमा के गानों का ही असर है कि आज देश-विदेश में रहने वाले भारतीय जनमानस में भी राष्ट्रवाद की एक मजबूत पैठ देखने को मिलती है। हिंदी सिनेमा के अनेक देशभक्तिपूर्ण गीतों ने राष्ट्रवाद के आधारभूत तत्वों, संस्कृति की महक और मिट्टी की खुशबू, से सभी को गौरवान्वित होने का अवसर प्रदान किया है। हिंदी सिनेमा ने ऐसे अनेक गीत हमें दिए हैं जिन्हें सुनकर हम राष्ट्रवाद को बहुत सरलता से समझ सकते हैं जो हमने अकेडमिक किताबों की घंटों की साधना से भी नहीं समझ आता। 'वंदे मातरम' (आनंदमठ, 1952) 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तान हमारा हमारा' (भाई बहन, 1959), 'ऐ मेरे प्यारे वतन तुझपे दिल कुर्बान' (काबुलीवाला, 1961), 'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आँख में भर लो पानी' (1963), 'अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं' (लीडर, 1964), 'कर चले हम फिदा जानो तन साथियों' (हकीकत, 1965), 'ऐ वतन ऐ वतन हमको तेरी कसम (शहीद, 1965), 'मेरे देश की धरती सोना उगले' (उपकार, 1967), 'है प्रीत जहाँ की रीत सदा' (पूरब और पश्चिम, 1970), 'दिल दिया है जान भी देंगे' (कर्मा, 1986), 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' (तहलका, 1992), 'जिंदगी मौत न बन जाए संभालो यारों' (सरफरोश, 1999) 'मेरा रंग दे बसंती चोला' (दि लेजेंड ऑफ भगत सिंह, 2002), 'देश मेरे देश मेरे मेरी जान है तू' (दि लेजेंड ऑफ भगत सिंह, 2002), 'धरती सुनहरी अम्बर नीला हर मौसम रंगीला ऐसा देश है मेरा' (वीर जारा, 2004), ऐसे अनेक गाने हैं जिन्हें सुनने मात्र से ही राष्ट्रवाद की झंकार सम्पूर्ण तन-मन में हिलोरे लेने लगती है।

मॉरिशस की हिन्दी पत्रकारिता में राष्ट्रवाद की अंतर्ध्वनि

डॉ. कृष्ण कुमार झा

हिन्दी विभाग

महात्मा गांधी संस्थान, मॉरिशस

मॉरिशस का राष्ट्रीय आंदोलन एक लघुकाल खंड की संघर्ष चेतना के रूप में उठ खड़ा हुआ। भारतीय राजनीति में जिस तरह गाँधी के प्रवेश से राष्ट्रीय भावना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए उसी तरह मॉरिशस की राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में सन् 1901 में मॉरिशस में गाँधी का आगमन, इस धरती पर उनके पग-स्पर्श और उनके मानवतावादी व्यक्तित्व के उदात्त प्रभाव ने यहाँ के भारतवंशियों में स्वतंत्रता-प्राप्ति की तीव्र भावना का उत्तरोत्तर विकास किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के अनन्तर अप्रवासी भारतीयों में संगठन की भावना ने एक नई करवट ली। इस दिशा में हिन्दी पत्रकारिता का उत्थान एवं उसके द्वारा पूर्व और पश्चिम के वैचारिक एवं सांस्कृतिक अन्तर्संघर्ष उत्पन्न हुए।

हिन्दी पत्रकारिता द्वारा राष्ट्रवाद की अनुगूँज

राष्ट्रव्यापी चेतना को संगठित करने, हिन्दी भाषा-साहित्य के बीज वपन में हिन्दी पत्रकारिता ने गरिमामय अवदान प्रदान किया है। सन् 1909 में मॉरिशस में हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव से लेकर 1935 तक के काल को प्रवृत्ति की दृष्टि से जागरण काल की संज्ञा दी जा सकती है। उस काल के 'हिन्दुस्तानी' (1909-14), आर्य पत्रिका (1911-13), ऑरिएण्टल गजट (1912), मॉरिशस इण्डियन टाइम्स (1920-24), मॉरिशस मित्र (1924-32), मॉरिशस आर्य पत्रिका (1924-40), आर्यवीर (1924-45), सनातन धर्मांक (1933-42) जैसे पत्रों ने भारतवंशियों में नव जीवन-शक्ति का संचार किया, जिससे वे प्रबुद्ध होकर कर्तव्य पथ पर अग्रसरित हुए।

इन पत्रों ने अंग्रेजों की नीति, कोठी मालिकों और जजों के अनैतिक कार्यों के प्रति भारतीय मजदूरों का ध्यान आकर्षित किया तथा साथ ही उनके अधिकारों के लिए उन्हें सचेत भी किया। इन पत्रों ने जहाँ एक ओर अप्रवासी भारतीयों में हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार द्वारा लोगों में संगठन और जागरण की भावना का संचार किया वहीं हिन्दी भाषा-साहित्य के विकास में भी सहायक सिद्ध हुए। "मॉरिशस की प्रथम प्रकाशित हिन्दी रचना 'होली' पद्य में तथा 'सत्य होली' गद्य में 2 मार्च 1913 ई. के हिन्दुस्तानी पत्र में प्रकाशित हुआ था।" सन् 1935 ई. से 1968 ई. के मध्य सर शिवसागर रामगुलाम, विष्णुदयाल बन्धुओं के नेतृत्व में स्वतंत्रता का संघर्ष तीव्र हुआ, जिसमें हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका अविस्मरणीय है। 'वसंत' (1935), 'दुर्गा' (1935-38), 'जागृति' (1939-45), 'आर्यवीर जागृति' (1945-50), 'मासिक चिट्ठी' (1942-50), 'सैनिक' (1946-47), 'मजदूर' (1947-48), 'जनता' (1948-82), 'जमाना' (1948-76), 'आर्योदय' (1950 से अब तक), 'वर्तमान' (1950-54), 'मजदूर' (1950-61), 'अनुराग' (1960-61), 'नवजीवन' (1960-64), 'समाजवाद' (1960-61), 'काँग्रेस' (1964-67), 'प्रकाश' (1964), 'बालसखा' (1965 से अब तक) आदि अनेक पत्रों ने गाँधीजी एवं मणिलाल डॉक्टर के उद्देश्य को सार्थकता प्रदान की। इसी काल में हिन्दी भाषा एक बड़े आंदोलन की भाषा बनती है। अप्रवासियों में अभारतीय संस्कृति के प्रति संघर्ष एवं टकराहट को जन्म देती है, जिसका दूरगामी प्रभाव मॉरिशस की स्वतंत्रता प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है।

जागरण काल की प्रायः सभी पत्रिकाएँ मुख्य रूप से भारतीय मूल के लोगों की दशा सुधारने, सामाजिक, धार्मिक बुराइयों के प्रति अप्रवासी भारतीयों को सचेत करने पर विशेष बल देती थी। इस काल के पत्रों में विविध विषयों पर गंभीर लेख एवं विचार प्रकाशित हुए। साहित्यिक विधाओं एवं भाषा-संस्कृति के प्रति प्रेम को एक नई ऊँचाई प्राप्त हुई और अप्रवासी भारतीय राजनीतिक स्वातन्त्र्य की ओर उन्मुख हुए।

जनभावना और पत्रकारिता

आजादी पूर्व की पत्रिका में प्रवेश करने का तात्पर्य ही था अंग्रेजी सत्ता के फौलादी पंजे से मुकाबला करना। आर्थिक संकट से जूझना तथा सदैव कंटकाकीर्ण पथ का अनुगामी बनना। डॉ. राजेन्द्र अरुण का मानना है, "लोगों को अंग्रेजी सत्ता और गोरे जमींदारों से जूझना पड़ रहा था, तो दूसरी ओर उन्हें अपने ही बन्धुओं के जीवन में व्याप्त अशिक्षा, अन्धविश्वास और धिनौनी सामाजिक प्रथाओं को दूर करने का अभियान चलाना पड़ रहा था। उनके इस संघर्षव्रत से ही मॉरिशस में हिन्दी पत्रकारिता

का जन्म हुआ।”¹²

15 मार्च 1909 ई. में भारत से आए मणिलाल डॉक्टर ने भारतीय मूल के लोगों की अस्मिता की रक्षा के लिए अंग्रेजी एवं गुजराती में हिन्दुस्तानी पत्र निकाला। लेकिन कुछ अंकों के पश्चात् जनभावना की दृष्टि से उन्होंने गुजराती की जगह जनभाषा हिन्दी में हिन्दुस्तानी पत्र निकालना उचित समझा। उस समाचार पत्र के मुख्य पृष्ठ पर ही पत्रिका का उद्देश्य लिखा हुआ होता था “Liberty of Individuals! Fraternity of men!! Equality of Races!!! अर्थात् व्यक्ति की स्वाधीनता, मानव मैत्री बन्धुत्व और सभी जातियों में समानता।” हिन्दुस्तानी के पहले अंक में ही उन्होंने लिखा “केवल अपने निजी लाभ के लिए कोई मनुष्य या कोई जाति किसी दूसरे मनुष्य या दूसरी जाति को नैतिक दृष्टि से न तो दास बना सकता है और न अधिकार में रख सकती है और न ही शोषण कर सकती है।”¹³ इस तरह से मॉरिशस के आरंभिक पत्रों ने ‘जन-मानस’ को चैतन्य किया और राष्ट्र के नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

आर्य समाज की स्थापना और राष्ट्रवाद

सन् 1901 में गाँधी जी का दक्षिण अफ्रीका से भारत जाते हुए कुछ दिनों के लिए मॉरिशस में रुकना मॉरिशस के इतिहास में अप्रवासी भारतीयों के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। यहाँ के टापू में कई जनसभाओं को संबोधित करते हुए अप्रवासी भारतीयों को संगठित, शिक्षित होने एवं राजनीति में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित किया। गाँधी जी के परामर्श पर भारत से बैरिस्टर मणिलाल डॉक्टर, मॉरिशस में अप्रवासी भारतीय लोगों की शोचनीय दशा एवं उनके हक की लड़ाई के लिए मॉरिशस पधारे। यहाँ संगठन की आवश्यकता एवं अनिवार्यता को देखते हुए उन्होंने 1903 में क्यूर्पिप में आर्य प्रतिनिधि सभा आरम्भ किए, जो 1907 और अप्रैल 1910 में आर्य समाज के रूप में लड़खड़ा रही थी। इस संगठन को अपनी उपस्थिति में 8 मई 1911 ई. को हिन्दू होटल प्रिन्स रिजेन्ट गली पोर्ट लुइस में आर्य समाज के रूप में पुनरुद्धार किया। तोतालाल उर्फ खेमलाल लाला भी आर्यसमाज के पहले प्रधान बने और 1 जुलाई 1911 को उनके संपादन में ‘आर्य पत्रिका’ का प्रकाशन शुरू हुआ।¹⁴

‘आर्य पत्रिका’ ने मॉरिशस में आर्य गतिविधियों का प्रचार किया तथा धार्मिक एवं सामाजिक बुराइयों के प्रति लोगों को सचेत किया। इस पत्रिका में प्रकाशित प्रथम हिन्दी लेख में पत्रिका के उद्देश्य का स्पष्टीकरण होता है। “इस टापू में अपने हिन्दू भाई अथवा उनके बाप दादा बहुत करके गुलामगिरी की दशा में दाखिल हुए थे। मुलुक से आप जो कुछ धर्म की वृत्ति आचार-विचार आदि थे, बेली कोरी में रहने पर अनेक कारणों से दिन पर दिन कम होते गए और न करने लायक विवाह आदि संबंध भी करने लग गए। मुलुक से थोड़े बहुत ब्राह्मण लोग जो आए उन लोगों के भी अपनी कमाई के लिए बहुत ध्यान रखा। सह में और शास्त्र का फैलाव न हुआ। इस तरह हर रोज इस टापू में अपने भाइयों की अधोगति होती ही जाती थी, इसमें से बचने के लिए पहले क्यूर्पिप में आर्य समाज की स्थापना हुई और पीछे शहर पोर्टलुइस में भी वैदिक धर्म और अच्छी विद्या को बराबर फैलाने के लिए प्रेमी भाइयों की मदद से यह आर्य पत्रिका का आरम्भ होता है। सज्जन इसको अपनी मदद और ताकत से आगे बढ़ायेगा।”¹⁵

आर्य समाज के उद्देश्यों के अन्तर्गत धार्मिक एवं सामाजिक जागृति उत्पन्न करने की दृष्टि से इस पत्रिका का विशेष योगदान रहा। आर्य पत्रिका के बन्द हो जाने पर काशीनाथ किशतो के सम्पादन में ‘मॉरिशस आर्य पत्रिका’ नाम से इसे पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। पत्रिका के उद्देश्य के संबंध में काशीनाथ किशतो लिखते हैं “आर्य पत्रिका का उद्देश्य स्वदेश के लिए प्रत्येक भारतवासी की ममता उत्पन्न करना होगा। यह पत्रिका अपनी जाति के कुसंस्कारों से उत्पन्न बुराइयों को दूर करेगी। जाति का सुधार करने के लिए किसी भी विषय को अछूता नहीं छोड़ेगी।”¹⁶

आर्य विचारधारा की पत्रिका ‘आर्यवीर’ ने भी जनता को जमाने एवं संगठित करने का प्रयास किया। पं. काशीनाथ किशतो इसके भी संपादन कार्य करते थे। इस पत्रिका के प्रथम हिन्दी लेख में वे लिखते हैं - “सज्जनो यह कहना नहीं होगा कि आर्य जाति संसार की अन्य जातियों के मुकाबले में बहुत कुछ पीछे पड़ी है। अतः इसे बढ़ाना, उन्नत अवस्था में पहुँचाना, प्रत्येक स्वदेश, जाति, धर्म हितैषियों का परम कर्तव्य है, हमारे अन्दर बहुत सी त्रुटियाँ हैं जिसके कारण हम अभिलाषित कार्य की पूर्ति में सफलीभूत नहीं होते। अतः हमारा प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिए कि उत्तम शिक्षा द्वारा उन जातिगत त्रुटियों को दूर करें जो कि हमारी मनोवांछित अभिलाषाओं से हमें वंचित किया करती है। संक्षेप में हमारा कहना यह है कि आर्य जाति को येन केन प्रकारेण संगठित शक्ति में लाना हमारा मुख्योद्देश्य होना चाहिए।”¹⁷ इस प्रकार आर्य विचारधारा के ये पत्र आर्य जाति को येन केनोपायेन एक संगठित शक्ति में लाने के लिए कृत संकल्प थे।

सनातन धर्म और राष्ट्रीय चेतना

आर्य समाज रूपी संगठन ने स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को आधार मानकर हिन्दुओं को कमजोर करने वाली सभी सामाजिक बुराइयों, धार्मिक पाखण्डों का जोरदार खंडन किया। ऐसे ही अवसर पर हिन्दू भाई-बहन जो पूजा-पाठ जैसे धार्मिक कृत्यों में विश्वास करते थे और ऐसी अनेक सामाजिक मान्यताओं को परम्परा की धरोहर मानते थे, वे लीक से हटकर चलना पसंद नहीं करते थे। ऐसी स्थिति में समाज में दो परस्पर विरोधी विचारधाराएँ प्रवाहित होने लगीं और इसके परिणामस्वरूप सनातन धर्मियों द्वारा कई पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिसमें मुख्य रूप से 1912 में हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित रामलाल

के संपादन में 'ओरिएण्टल गजट' था। सन् 1924 में सनातन धर्म के लोगों ने एक दैनिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया जिसे 'मॉरिशस मित्र' नाम दिया गया। यह पत्र अंग्रेजी, फ्रेंच और हिन्दी में प्रकाशित होता था और इसके संपादक पं. रामअवध शर्मा थे। सन् 1932 में मॉरिशस मित्र के बंद होते ही तुरंत 1933 में 'सनातन धर्मांक' नामक पत्रिका का प्रकाशन सनातनियों ने प्रारंभ किया। वह एक साप्ताहिक पत्र था जो नरसिंह दास के संपादन में हिन्दी, अंग्रेजी एवं फ्रेंच में निकलता था।

सनातन धर्मियों द्वारा प्रकाशित सभी पत्रों की मुख्य चिन्ता अपने हिन्दू धर्म के प्रति पूर्ण आस्था एवं विश्वास प्रकट करना था तथा साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी पूर्ण भागीदारी निभाना था। अतः स्वतंत्रता के साथ प्रवासी भारतीयों के जीवन में धर्म तथा मूल्यों की आवश्यकता तथा उपयोगिता पर लेख छपते रहते थे। इनका उद्देश्य सांस्कृतिक विचारों को जनता तक पहुँचाना तथा स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु लोगों में जागृति लाने के अतिरिक्त अपने धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं को सुदृढ़ करना था।

इन पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेख में सामाजिक, धार्मिक सुधार से संबंधित अनेक भावनाएँ, समस्याएँ एवं विचारों का समावेश रहता था। सनातन धर्मांक में छपी रसपुंज की राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कविता 'हिन्दू' में वे लिखते हैं-

“धर्म-सनातन, धर्म मूल है, अक्षुण्ण इसे बचाना होगा,
वैभव की क्या बात है कहूँ मैं, तब तक भेंट चढ़ाना होगा।
जग की सारी अपट जातियाँ, स्वार्थ-सिन्धु में तैर रही।
सोचो टुक भी हिन्दू-भाई, जाफिल में है खैर कहीं।”⁸

वस्तुतः सनातन धर्म से प्रभावित पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष रूप से आर्य समाजी एवं सनातन धर्मी जनों के मध्य होने वाले शास्त्रार्थ, वाद-विवाद एवं खंडन-मंडन से संबंधित लेखों को लेकर वैचारिक मतभेद में उलझ गए और दोनों वर्गों के पत्रों ने 'प्रेरित पत्र' नामक कॉलम में धार्मिक बहस को जन्म दिया। धार्मिक बहस एवं शास्त्रार्थ की इस प्रक्रिया से उनका धर्म-कर्म के मामले में आत्म-संशोधन हुआ और प्रकारान्तर में पत्रिका के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी।

हिन्दी भाषा और राष्ट्रीयता

मॉरिशस में सरकारी राजकाज की भाषा अंग्रेजी है, परन्तु फ्रेंच, क्रिओली, हिन्दी आदि भाषाओं का भी प्रयोग प्रमुख रूप से होता है। खड़ी बोली हिन्दी के सम्पर्क में आने से अब यहाँ की भोजपुरी में फ्रेंच, क्रिओली की अपेक्षा हिन्दी के शब्दों का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसलिए मॉरिशस की हिन्दी परिवेश के साथ जुड़ी प्रतीत होती है। हिन्दी यहाँ भारतीयता के प्रतीक के अतिरिक्त इनके पूर्वजों की अस्मिता की सशक्त पहचान भी है। “मॉरिशस की प्रथम प्रकाशित हिन्दी रचना 'होली' पद्य में तथा 'सत्य होली' गद्य में 2 मार्च 1913 ई. के हिन्दुस्तानी पत्र में प्रकाशित हुई थी।”⁹ हिन्दी कविताएँ और 'इन्दो' नामक मॉरिशस की प्रथम हिन्दी कहानी साहित्य का प्रकाशन भी इसी काल की पत्रकारिता की प्रमुख देन है। “हिन्दी लेखन के उषाकाल में प्रकाशित पत्रों ने हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित किया। इन्होंने पाठक उत्पन्न किए। इनमें शब्दावली स्थिर हुई तथा कुछ शब्दों की वर्तनी परिनिष्ठित हुई और भाषा का स्वरूप निखरा। ये पत्र नींव के पत्थर थे।”¹⁰

अपनी जातीयता की उन्नति एवं देवनागरी भाषा के महत्त्व के संबंध में 'आर्य पत्रिका' के एक लेख में हिन्दी भाषा के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है - “यह सर्वसम्मति है कि जातीय उन्नति के लिए हिन्दी भाषा की उन्नति की आवश्यकता होती है। यह बात मुक्त कंठ से स्वीकार करनी पड़ेगी कि देवनागरी भाषा का ज्ञान मनुष्य जीवन का प्रथम अंग बन गया है। अपनी भाषा में पत्र का निकलना दुष्कर जान पड़ता है। अतएव इस भाषा का सम्मान करना समस्त उदार तथा महान व्यक्तियों का कर्तव्य है। अतएव इसकी उत्कृष्ट सेवा करना शुभ तथा मंगलप्रद है।”¹¹

'हमारी भाषा और धर्म' में लेखक बालकरण माधो इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि “पूर्व के इतिहासों में और वर्तमान स्थिति को अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक जाति की जड़ भाषा और धर्म है। भाषा और धर्म के जीवित रहने से जाति भी जीवित रहती है। यदि हम अपनी जाति को जीवित जागृत रखना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमें अपनी भाषा और धर्म की रक्षा करनी चाहिए। इसी से हम अपनी जाति की वृद्धि कर सकते हैं।”¹²

हिन्दी की उन्नति करने के उद्देश्य से सन् 1935 में मॉरिशस हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। सभा द्वारा हिन्दी के विकास के लिए हिन्दी के पठन-पाठन और हिन्दी सम्मेलन की परीक्षाओं का आयोजन होने लगा। सभा के प्रमुख संस्थापक सूर्य प्रसाद मंगर भगत द्वारा 1935 में ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं अप्रवासी भारतीयों में जागरण लाने के उद्देश्य से हस्तलिखित पत्रिका दुर्गा का अभ्युदय हुआ। दुर्गा पत्रिका का मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषा-साहित्य की सेवा थी। इसी उद्देश्य से 'वसंत', 'अनुराग', 'नवजीवन' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इन पत्रिकाओं ने युवा पीढ़ी को निरंतर लिखने की प्रेरणा दी। इससे हिन्दी भाषा के उत्थान एवं समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ।

राष्ट्रीयता के विविध स्वर

स्वतंत्रता पूर्व मॉरिशस के हिन्दी पत्रकार राष्ट्रीयता के विविध स्वर द्वारा हिन्दी पत्रकारिता को दीप्त कर रहे थे। वे लिखते हैं - इस टापू में स्त्री शिक्षा का अत्यन्तभाव है, जिसके कारण हमारी जाति उस पंगु की तरह है जो कि एक दुर्गम पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढ़ना चाहती है। अतः स्त्री-शिक्षा का प्रचार करना, धार्मिक गोरख धंधा को अपने शुद्ध व्यवहारों से दूर

करना और सामाजिक सुधार के जितने कार्य हैं उन पर प्रकाश डालना हमारा कर्तव्य होना चाहिए।

‘हमारी समस्या’¹³ शीर्षक से कौंसिल में बैठे नेताओं को संबोधित करके कहा गया है कि उन्हें बड़ी-बड़ी समस्याएँ दिखती हैं लेकिन मजदूरों के दैनिक जीवन के छोटे उलझन और छोटी-छोटी समस्याएँ नहीं दिखतीं। हिन्दू-मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में लेबर पार्टी के एक सदस्य ‘प्रेरित पत्र’ कॉल में लिखते हैं – “मुसलमानों की खानदानी हिन्दुओं से शुरू होती है। मगर इनसे द्वेष क्यों करते हैं? इसका एक ही मतलब निकलता है कि काष्ठ काष्ठ से रगड़ने पर अग्नि प्रज्वलित होती है वैसे ही यहाँ पर इन दोनों को लड़ाया जा रहा है। उनके नेतागण चकाचौंध में आकर इस कुविचार को प्रोत्साहन देते और हम आपस में लड़ रहे हैं। देखना चाहिए काम किसका बनता है? इस पर सोचने की जरूरत है, नहीं तो भविष्य में भारी चिन्तन करना पड़ेगा जब हानि की दृष्टिपात होगी हिन्दू-मुसलमान की एकता से दोनों जाति भलाई है, उनके आपस में संघर्ष करने से केवल फ्रेंच लोगों के हक में ठीक है। हम आशा करते हैं कि मुसलमान भाई हमारे चन्द शब्दों पर अवश्य ध्यान देकर अच्छे वातावरण उत्पन्न करेंगे।”¹⁴

एक लेख में मजदूर आंदोलन के उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है – “मजदूर समझ गये कि जन्म से ही उन्हें जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उतना ही अधिकार है, जितना कि औरों का है।... मजदूर में मुद्दतों से ही भरा गया है कि उनका जन्म दूसरों की गुलामी के लिए ही हुआ है।... अधिकार एक ऐसी चीज है, जो हाथ पसारने से नहीं प्राप्त होती है। उसके लिए लड़ना पड़ता है और लड़ाई में अगुआ वही बन सकता है जिसके दिल में डर नहीं रहता है।”¹⁵

जातीय उन्नति के लिए समस्त व्यसनों का त्याग करना चाहिए। इससे मानसिक एवं आर्थिक बुनियाद मजबूत होती है। लोग घुड़दौड़, शराबखोरी जैसे व्यसनों में पड़कर अपनी स्थिति कमजोर कर रहे हैं। ‘जागृति’ में ‘प्रचण्ड शराबखोरी’ लेख में लिखा गया “सबसे भयंकर व्यसन में जो फँसे हैं वह है शराब। शराबरूपी शैतान के वश में पूर्णतया हो गए हैं।”¹⁶

मॉरिशस की पत्र-पत्रिकाओं ने भी गाँधी-नीति के सिद्धान्तों को अपना ध्येय, धर्म और कर्म मान लिया था। “इस देश की भलाई तब होगी जब द्वेष का बीज बोने वालों को मुँहतोड़ जवाब दिया जाएगा, सत्याग्रह किया जाएगा, निडर बनकर छोटों की पूरी लगन से उसी तरह सेवा की जाएगी जिस तरह अन्य देशों के बड़ों ने अपने देशवासी की सेवा की।”¹⁷

वस्तुतः स्वतंत्रता की आकांक्षा की तीव्रता और उस दिशा में किया गया प्रयास राष्ट्रवाद है। अप्रवासी भारतीयों की सामूहिक चेतना को परिमार्जित, परिष्कृत तथा परिशोधित कर उसे राष्ट्रीय भाव धारा में मोड़ने तथा स्वतंत्रता आंदोलन को वैचारिक तथा निर्णायक आयाम देने में हिन्दी समाचार पत्रों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। स्वतंत्रताकालीन मॉरिशस में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ जनता की मौलिक समस्याओं को स्वर प्रदान कर रही थी एवं अप्रवासी भारतीयों को संगठन की शक्ति प्रदान करते हुए उन्हें राष्ट्रवाद की ओर मोड़ रही थी। धार्मिक पाखंड, स्त्री शिक्षा, मजदूर समस्या, कृषक समस्या, साम्प्रदायिकता, अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण एवं दमनकारी प्रवृत्ति, घुड़दौड़, शराबखोरी जैसे मौलिक प्रश्नों को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान कर उसे विचार-विमर्श के लिए राष्ट्रीय मंच प्रदान किया। यदि इन समाचार पत्रों ने इन मौलिक प्रश्नों पर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित नहीं किया होता तो स्वतंत्रता आन्दोलन की गत्यात्मक ऊर्जा समाप्त नहीं तो क्षीण अवश्य हो जाती।

संदर्भ सूची

1. हिन्दुस्तानी, 2 मार्च 1913
2. शिवरात्रि पत्रिका, 1976
3. हिन्दुस्तानी, मार्च 1909
4. मॉरिशस आर्य समाज का इतिहास, रामधन पूरण, पृ. 32-33
5. मॉरिशस आर्य पत्रिका, 1 जून 1911
6. मॉरिशस आर्य पत्रिका, 17 अगस्त 1924
7. आर्यवीर प्रथम अंक, 3 मई 1929
8. सनातन धर्मांक, 10 अप्रैल 1938
9. हिन्दुस्तानी, 2 मार्च 1913
10. शिवरात्रि पत्रिका, 1976
11. आर्य पत्रिका, अगस्त 1929
12. जनता, 18 जून 1956
13. जनता, 22 जुलाई 1958
14. जनता, 7 अगस्त 1956
15. मजदूर, 15 जुलाई 1958
16. जागृति, मार्च 1940
17. जमाना, 21 सितम्बर 1956

IS MEDIA CHANGING THE PARADIGM OF NATIONALISM?

(Face of nationalism in new India and Indian journalism)

Gagandeep Kaur

University Institute of Media Studies

Chandigarh University, Punjab

Abstract

Nation is not defined in boundaries, but it is a bond shared by the people sharing same cultural, traditional, linguistic and social values. Belongingness to the nation, feeling of pride and patriotism is called 'nationalism.' Nationalism is like blood, if body is the nation. Mass media has played key role in uniting people and imbibing a feeling of unity among them. Since independence, media has been the key player in bringing people together in India- firstly as a political movement, to get freedom from British Rule which highlighted the feeling of nationalism in every sector of the society. Since then, the role of media has gone through many changes- from censored media to free media, from public media to private media. The change in the ownership of media in India has influenced the content delivered to people. This paper analysis the change in the role of media in building the value of nationalism in free India.

KEYWORDS: Nationalism, Indian Media, Secularism, Communalism and Socialism.

INTRODUCTION

Guibernau (1996, p. 47) has defined the nation as: 'a human group conscious of forming a community, sharing a common culture, attached to a clearly demarcated territory, having a common past and a common project for the future and claiming the right to rule itself'

Nation can be referred to a community or group of people who share cultural, traditional values and are very particular to have their own governing system.

Nationalism, as defined by Merriam Webster dictionary is a sense of loyalty and devotion towards one's nation and making the promotion of its culture and interests as primary as opposed to any other.

Nationalism is a feeling among the people of any country of belonging, brotherhood, unity and pride towards the nation. They feel a sentimental emotion towards the country and customs and people of the state, bringing them all on the same threshold. It is strong feeling of making one's national identity and interest as their main objective and moral obligation. In previous times, nationalism has faced many changes in its essence- from pride for one's nation to superiority complex towards nationality which resulted in bloodshed of the "others" that are a threat to the nationalism. But the true sense of nationalism lies in the unity in diversity, global nationalism.

Thinkers believe that nationalism is born when the country, its identity is in danger. The urge to reaffirm the national identity paves path to the feeling of nationalism among the people. Nationalism in India has also been the similar case. Plamenatz (1975) states "Nationalism is the desire to preserve or enhance a people's national or cultural identity when that identity is threatened, or the desire to transform or even create it when it is felt to be inadequate or lacking."

It was a result of the conflict between the Indians and the colonial rulers and their policies. Nationalism in India mainly was born British Raj when people of India realised that in order to have dignified life, they need to have political, economic, social and cultural freedom. Political freedom: to elect and represent their own country, economic freedom: right of ownership and growth in economic sector and to spend the money of the country for the betterment of the countrymen rather than export to some foreign land, social freedom mean to eradicate the social

inequality prevailing in the society and cultural freedom meant that they need to follow the customs and traditions of their own country.

During the struggle for freedom, media played an active role in igniting the flame of nationhood among the people. Journalists of the era put their blood in mobilizing people and organising them for the political movement to get freedom from foreign rule. There were many prominent leaders who explored print media to create awareness among the masses about the importance of sovereignty. Dailies like Sudharak, Kesari, Mahrata, Navjeevan, Akbar-i-Aam, The Hindu, Swadesh Mitran were run by nationalist leaders like GK Gokhle, BG Tilak, Mahatma Gandhi and many more. Apart from dailies, literature has also contributed in spreading nationalism. Literary works of Rabinder Nath Tagore have brought in the idea of nationalism and unity in diversity- oneness among the versatile social sections of Indian society.

Today, in democratic India when media is believed to be the fourth pillar of the system, it bears heavy responsibility towards the nation for brining in feeling of patriotism and nationhood among its citizens. According to wiki, "India has more than 70,000 newspapers and over 1600 satellite channels (more than 400 are news channels) and is the biggest newspaper market in the world - over 100 million copies sold each day." The given stats lay high expectations from today's media with its maximum reach to the people for its proactive role in the development and national harmony. However, media has been going through a strong competition for attaining maximum readers, viewers or listeners. Journalism has shifted from patriotism to profit based field which has affected the role it used to play in framing ideas and uniting people living in diverse conditions.

REVIEW OF LITERATURE

Roosvall Anna in 'Media and Nationalism' describes relation of media and nationalism as "Media development has subsequently repeatedly coincided with nationalistic tendencies, as when the peak of imperialism intersected with the emergence of the telegraph and of photography. Media and nationalism are perhaps most obviously entangled in times of war and conflict, when both regulation and language use may become more nationalistic. Moreover, the gendered nature of mediated nationalism tends to stand out most clearly in wartime too."

"After independence the Indian media, developed rapidly, including the radio and now the television. Any occurrence in any corner of the country immediately spreads all over India through the media. The spreading of news is not just the conveyance of information- it acts as a catalyst in creating identification with nation, its people, its culture and the mainstream of its thought." Shrivastava S. Kumar & Gupta V. suggested in 'Role of Media in National Integration in India'

Jain Rahul in his essay 'Media can steer the country in a direction where peace prevails' states, "Media can have great influence over the thinking of the common man. It can virtually sway the opinion of people in one direction or the other. Based on their information and hence their perception people form opinions. It is therefore, responsibility of the media or the people at the helm of affairs that they provide fair deal to the people, in order to promote the integrity and harmony."

OBJECTIVES OF THE STUDY

From reviewing the literature, we have been informed about the mind altering role of media in framing opinion and pursuing people. The objectives of the study are to:

1. What role do present media play in promoting nationalism?
2. Has the role of media played in pre-independence nationalist movement changed in present times?

METHODOLOGY

The methodology adopted for the research is survey with the sample size of 100 respondents. Sample area is Mohali- (Punjab). Respondents are selected between the age group of 18-35. Convince sampling is done for the respective study. To conduct the survey a well framed questionnaire is given to the respondents to give their opinion. Data is analysed with simple percentage formula.

DATA ANALYSIS & FINDINGS

1. Rate the content of Indian media?

OPTIONS	PERCENTAGE
Neutral	20%
Biased	48%
Partially biased	32%

In response to the content rating presented by media, majority i.e. 48% believed that it is biased followed by 32%, who consider the content to be partially biased. Only 20% people believed that it is balanced.

2. Do you feel that communalism is imbibed in media content?

OPTIONS	PERCENTAGE
Strongly Agree	31%
Agree	43%
Neutral	22%
Disagree	3%
Strongly Disagree	1%

In the answer of the above question, 43% believed that media is delivering communal content which is further supported by 31% of majority having strong opinion about it. Though 1% strongly believes that the content is not favouring communalism, followed by 3% having disagreement the given question. Remaining 22% have no clear opinion about the same.

3. Do you feel issues related to religion are hyped by media?

OPTIONS	PERCENTAGE
Strongly Agree	55%
Agree	33%
Neutral	12%
Disagree	Nil
Strongly Disagree	Nil

In the response none of the respondents has disagreed with the opinion of hyping the religious content by media. 55% of the respondents, with highest majority have strongly considered the exaggeration of religious issues followed by 33% of agreeing majority. However, 12% have not framed any opinion for the same.

4. Do you think that Indian media encourages secularism?

OPTIONS	PERCENTAGE
Strongly Agree	20%
Agree	23%
Neutral	32%
Disagree	2%
Strongly Disagree	23%

In the response, majority 32% have not framed any believe about the role of media in encouraging secularism. 23% people have agreed to the role of media in spreading secularism with equal percentage of people having strong disbelief in the role of the same whereas 20% have strong faith in the secularism spread by media followed by 2% of the respondents having disbelief in the same.

5. Do you feel the role of media has shifted from 'voice of people' to 'voice of government'?

OPTIONS	PERCENTAGE
Strongly Agree	34%
Agree	44%
Neutral	11%
Disagree	1%

Strongly Disagree 10%

In the given situation, majority of respondents have agreed that the media is now voicing out the government's opinion not the opinion of people. 34% demonstrated strong faith in the shift of preference of media in voicing out opinion, followed by 44% people who agreed to the same. 11% of the respondents had no opinion about the same whereas 1% disagreed to the scenario followed by 10% of the respondents having strong disbelief in the same.

6. Is there a shift in 'Nationalism' from unity in diversity to socialism?

OPTIONS	PERCENTAGE
Yes	77%
No	23%

In response to this, 77 percent respondents felt that there is shift in the concept of 'Nationalism' which was earlier believed to be secular, is now leaning towards the socialism. However, 23 percent of the respondents denied from any shift.

7. To what extent, media is responsible in framing your opinion about certain issues? Explain.

In response to the given question, majority of respondents feel that media is focusing on the voice of political parties and government but ignoring the issues of public. It definitely plays a significant role in shaping our opinion as media creates hype of issues and pushes us to think accordingly. It presents one side of the story.

CONCLUSION

After analysing the data, it is clear that media is playing key role in framing the opinion of people about various issues by making them aware and showing them about the happenings outside their comfort zones. However, majority of the respondents have believed that media is playing dubious role in modern times. Pre-independence, media was the backbone to unite people and burning the torch of nationalism among them. However, with the change of time, role of media has also seen a shift. In today's time, media is much involved in political houses thus adding the angle of their benefit to the content rather than secular angle. Media is framing the opinion of people about sensitive issues by sensationalizing the content. This research has concluded that media is playing an active role in the shift of 'Indian Nationalism' by favouring its own certain interests or the supporting groups.

REFERENCES

- Jain R. (n.d.). Media Can Steer The Country In A Direction Where Peace Prevails. In Role of Media. <http://www.nfch.nic.in>
- Roosvall, A. (2015). Media and Nationalism. In The Wiley Blackwell Encyclopedia of Race, Ethnicity, and Nationalism (eds A. D. Smith, X. Hou, J. Stone, R. Dennis and P. Rizova). doi:10.1002/9781118663202.wberen274
- Shrivastava S. Kumar & Gupta V. (n.d.). Role of Media in National Integration in India. <https://www.academia.edu>

WEBSITES

- http://www.eng.fju.edu.tw/Literary_Criticism/postcolonism/guibernau.html
- www.merriam-webster.com
- <https://en.wikipedia.org>

मीडिया और राष्ट्रवाद

डॉ. मीना शर्मा

हिन्दी-विभाग

पीजीडीएवी कॉलेज (सांध्य)

‘भारतीय पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों के विकास भूमियाँ एक-दूसरे की सहायक रही हैं। यदि पत्रकारिता को राष्ट्रीयता ने प्रवर्तन दिया तो पत्रकारिता ने भी राष्ट्रीयता के विकास की अनुकूल भूमि तैयार की...।’¹ भारतीय पत्रकारिता अपने जन्मकाल से ही राष्ट्रीय विचारों की वाहक रही है बल्कि यँ कहें कि पत्रकारिता (आज की मीडिया) का जन्म ही राष्ट्रवाद की कोख से हुआ है, यह अलग बात है कि उस समय का राष्ट्रवाद और आज के राष्ट्रवाद में स्वरूपगत और उद्देश्यगत काफी भिन्नता आ चुकी है साथ ही उस समय की पत्रकारिता (मीडिया) और आज की पत्रकारिता में भी गुणात्मक और चरित्रगत काफी भिन्नता आ गयी है। सरल शब्दों में कहा जाए कि अब न तो वह मीडिया रही और अब न तो वह राष्ट्रवाद रहा। मीडिया और राष्ट्रवाद दोनों बदल रहा है या बदल चुका है।

एक गुलाम भारत में मीडिया अथवा पत्रकारिता की चेतना स्वतंत्र और स्वर निर्भय था, जो ब्रिटिश कुशासन, दमन, लूट-खसोट, जनविरोधी नीति, कुकृत्य, दमनकारी व्यवहार के विरोध में और स्वाधीनता के विचारों एवं स्वदेशी चेतना के अखिल भारतीय आवागमन का एक राष्ट्रीय राजमार्ग बन गया था, जो देश के सभी प्रांतों को, संपूर्ण राष्ट्र को जोड़कर, उनमें परस्पर एका स्थापित करते हुए राष्ट्रीयता की चेतना को जन-जन तक पहुँचाने का महान लक्ष्य लेकर चलता था। अकबर इलाहाबादी की यह पंक्ति राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के संघर्ष और पत्रकारिता के इसी महान उद्देश्य का रचनात्मक साक्ष्य है जो ‘मतवाला’ अखबार के प्रत्येक संस्करण में छपता था -

‘खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो,

जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो’²

भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद के आविर्भाव एवं विकास की युद्धभूमि और पृष्ठभूमि अखबार रहा है। भारत में औपनिवेशिक शासन को नैतिक आधार प्रदान करते हुए अंग्रेजों ने इसे ‘सभ्यता मिशन’ से जोड़ते हुए भारत को सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाला शासक बताकर इसे जायज और तर्कसंगत ठहराया। अंग्रेज शासकों, विद्वानों, इतिहासकारों ने ‘सती प्रथा’ जैसे अमानुषिक कृत्य को ‘असत्य’, ‘हिन्दू पृष्ठता’, ‘हिन्दू बर्बरता’, ‘बंगाली बीमारी’ आदि की संज्ञा देकर भारत पर कड़े सामाजिक, सांस्कृतिक, साभ्यतिक, मानवीय और नैतिक रूप से कड़े प्रहार एवं आक्रमण किए। इन आक्रमणों एवं आक्षेपों के जवाब में केवल दो ही विकल्प और चुनाव था। या तो चुप रहना अथवा कहना (जवाब देना)! चुप रहने का सीधा मतलब था - आरोपों को स्वीकार करना। आरोप स्वीकार करने का मतलब था - अपने इतिहास, परम्परा, संस्कृति, समाज, धर्म, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, गौरव को खोकर एक अपराधी की तरह खड़े होकर संपूर्ण राष्ट्र को पहचानविहीन, अस्मिताविहीन, संस्कृतिविहीन, संवेदनाविहीन राष्ट्र के रूप में स्वीकार करना और अनास्तित्व में घुलना एवं सिसकना। कहने का सीधा मतलब था - अपने इतिहास की जड़ों की तलाश करते हुए एक राष्ट्र की वास्तविक पहचान को सत्यापित कर अपनी वर्तमानता एवं अस्तित्व को सिद्ध करना। पहली स्थिति अपमानजनक थी और दूसरी स्थिति प्रतिकारजनक एवं अस्तित्वपरक। भारतीयों ने संकल्प के साथ दूसरा विकल्प चुना। इस विकल्प को संपूर्ण राष्ट्र एवं जनमानस तक पहुँचाने का एक प्लेटफार्म, एक अस्त्र, एक माध्यम, एक सेतू बना - ‘भारतीयता पत्रकारिता’।

एक नया माध्यम बनते ही बस क्या था, 19वीं शताब्दी के भारत में एक ‘हलचल’ पैदा हो गयी। और इसी ‘हलचल’ ने, ‘सभ्यता विमर्श’ ने एक तरफ भारतीय नवजागरण एवं सुधार आंदोलन को पैदा किया तो दूसरी तरफ ‘समाज-विमर्श’, ‘स्त्री-विमर्श’, ‘संस्कृति-विमर्श’, ‘आधुनिकता-विमर्श’, ‘मीडिया-विमर्श’ और ‘राष्ट्र-विमर्श’ को जन्म दिया। और साथ जन्म दिया - महान समाज-सुधारकों, पत्रकारों और भारतीय नवजागरण के प्रणेताओं की एक बड़ी फौज को, जिन्होंने सती प्रथा (1829) कानून, विधवा पुनर्विवाह (1856), कानून, एज ऑफ कान्सेंट एक्ट (1891)³ आदि कानून बनवाने के लिए अभियान को आंदोलन में तब्दील कर ‘स्त्री-प्रश्न’ और ‘राष्ट्र-प्रश्न’ को एक-दूसरे से अविभाज्य रूप से जोड़ दिया। स्त्री और राष्ट्र की ‘नयी छवि’, ‘नयी भूमिका’, ‘नयी पहचान’ की समस्त लड़ाई, स्त्री-शिक्षा के तमाम आंदोलन अखबार यानी पत्रकारिता के

माध्यम से ही लड़ी गई। राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और पहचान की कसौटी बन चुकी स्त्री-प्रश्न के साथ ही उपनिवेशवाद और समाज-सुधार की टकराहट से ही भारत में राष्ट्रवाद का जन्म होता है। 19वीं शताब्दी 'हलचल की शताब्दी' बन चुकी थी, स्त्री की शताब्दी बन चुकी थी। इस हलचल का थर्मामीटर और पैरामीटर था - भारतीय पत्रकारिता। और भारतीय पत्रकारिता के केन्द्र में, नवजागरण के केन्द्र में, तमाम विमर्शों के केन्द्र में स्त्री स्थापित हो जाती है। तमाम समाज सुधार आंदोलन की सभी मुख्य कार्यसूचियों में 'स्त्री' टॉप पर रहती है - "समाज सुधारकों के लिए स्त्रियों की मुक्ति राष्ट्रीय पुनर्सृजन की पूर्व शर्त ही नहीं बल्कि सभ्यता, प्रगति, आधुनिकता और राष्ट्रवाद के विमर्श में राष्ट्रीय उपलब्धि की सूचक भी थी।"⁴

मीडिया और राष्ट्रवाद के विमर्श भी अनिवार्य रूप से स्त्री-विमर्श से अभिन्न रूप से जुड़े एवं गुंथे हुए थे। बंगाल में राजा राममोहन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से लेकर महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले, सावित्रीबाई फूले, दक्षिण में वीरेशलिंगम जैसे समाज-सुधारक भी राष्ट्र के निर्माण में स्त्री की बुनियादी और अनिवार्य भूमिका की पहचान कर राष्ट्र की मुक्ति से पहले समाज में स्त्री की मुक्ति को सुनिश्चित करने हेतु अपने-अपने तरीके से आंदोलनों की अगुवाई कर राष्ट्र को एक नवीन पथ पर अग्रसर किया और इस लड़ाई का जरिया बना-अखबार यानी मीडिया। राष्ट्र की राजनीतिक आजादी से पूर्व राष्ट्र की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आजादी के लिए राष्ट्रवादी ताकतें कार्य करने लगीं। राष्ट्रवाद दो रास्ते से बढ़ रहा था। एक सुधारवादी अथवा उदारवादी और कट्टरवादी। एक वर्ग को समाज-सुधारकों की मदद से औपनिवेशिक शासकों द्वारा धर्म-सुधार, समाज-सुधार, स्त्री-सुधार को परंपरा-विरोधी, हिन्दू-विरोधी, धर्म-विरोधी अतएव राष्ट्र-विरोधी लगा, धर्म और समाज के मामले में औपनिवेशिक हस्तक्षेप उन्हें अनुचित लगा। इस कारण उन्होंने औपनिवेशिक शासन का विरोध दर्ज कराने हेतु लोगों में असंतोष का वातावरण बनाना शुरू कर दिया। हिन्दू-धर्म और परम्परा की रक्षा में वे धर्म का नाम समझकर जुट गए। इसी बिन्दू पर विरोध की जो राजनीति शुरू की गई, उसमें स्वाभाविक रूप से धर्म का फैक्टर (तत्त्व) जो एक बार घुसा, वो आज तक निकल नहीं सका। धर्म को राजनीति से और राजनीति को धर्म से अलग करके देखना अब लगता है कि एक यक्ष-प्रश्न बन चुका है। इसका जवाब बड़े-बड़े बुद्धिजीवियों और चिंतकों के पास भी नहीं है। धर्म के प्रश्न राजनीति के प्रश्न और राजनीति के प्रश्न अब धर्म के प्रश्न में इतने घुले-मिले हुए हो गए हैं कि इन्हें अलग-अलग करने वाले लोग भी अब इसी के गिरफ्त में आ गए हैं। यही कारण है कि चुनाव प्रचार के दौरान चाहे वह सत्ता पक्ष हो अथवा विपक्ष दोनों ही जनता-दर्शन के साथ-साथ अथवा पहले मंदिर-दर्शन का शोड्यूल/प्रोग्राम के एजेण्डे में अवश्य शामिल रहता है। हिन्दुवादी लोग हों अथवा उदारवादी/धर्मनिरपेक्षवादी लोग हों, आज दोनों एक-दूसरे का विरोध इसी रास्ते करते हैं। वे कहीं से भी शुरू हों, आना इसी बिन्दू पर पड़ता है। यही कारण है कि आज चुनाव के दौरान बात विकास से शुरू होती है और मंदिर-मंदिर, द्वारे-द्वारे से होकर गुजरते हुए यहीं पर आकर यानी धर्म के बिन्दू पर आकर अटक जाते हैं। आज प्रत्येक राजनीतिक दल के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण यह नहीं रह गया है कि किसने कितनी रैली की, बल्कि कितने अधिक मंदिर गए या फिर किसी बड़े धर्मगुरु से आशीर्वाद लिया या नहीं! तमाम राजनीतिक नफा-नुकसान का आकलन आजकल सभी राजनैतिक पार्टियाँ इसी चश्में से करती हैं। बल्कि आपसी होड़ अथवा प्रतिस्पर्धा लगी हुई है। कांग्रेस अध्यक्ष श्री राहुल गाँधी को भी अब यह बतलाना पड़ता है कि वे एक जनेऊधारी शिवभक्त हिन्दू हैं। 'विकास' चुपचाप मुस्कराता रहता है! पता नहीं जनता और मुद्दे कहाँ हैं! आज की मीडिया या तो तमाशा देखती है अथवा जनता के इन्ट्रेस्ट के स्थान पर अपना कॉरपोरेट अथवा बिजनेस इन्ट्रेस्ट को देखती है, क्योंकि आज की मीडिया के लिए पत्रकारिता मिशन न होकर एक प्रोफेशन है, 'गंदा है पर धंधा है ये' की आर्थिक नीति पर चलती है। जोकि मीडिया की जन्मकुंडली के विपरीत है। जो अपने जन्मकाल से ही पत्रकारिता के मूल्यों, आदर्शों एवं उद्देश्यों को गढ़ते हुए पत्रकारिता के सरोकार, नैतिकता को जोखिम का वरण करते हुए शासन (औपनिवेशिक) और सत्ता के विरुद्ध जाकर भी जनता की आवाज और सत्य के लिए लड़ती थी और सत्य के पक्ष में खड़े होने की कीमत भी चुकाती थी।

आधुनिक भारतीय पत्रकारिता के जनक एवं 'हिक्की गजट' (1780) के संस्थापक जेम्स आगस्टक हिक्की को तो अपने ही गोरे औपनिवेशिक शासक के खिलाफ लिखने के लिए जेल की सजा, देश-निकाला तथा तरह-तरह की यंत्रणाओं का सामना करना पड़ा, जो इस बात का प्रमाण है कि प्रेस का जन्म ही विरोध अथवा प्रतिरोध की भावना से हुआ था एवं उस विरोध का प्रसाद भी हार्दिकता के साथ ग्रहण करने की कामना होती थी। इस तरह सत्य के प्रति आग्रह और निर्भीकता के साथ ही भारतीय पत्रकारिता का जन्म होता है। सत्य और निर्भीकता का रचनात्मक साक्ष्य स्वयं पत्रकारिता (मीडिया) के जनक आगस्टक हिक्की प्रस्तुत करते हैं। अंग्रेजी मूल के संपादक होने के बावजूद भी अंग्रेज गवर्नर जनरल, मुख्य न्यायाधीश, ईस्ट इंडिया कंपनी की लूट-खसोट नीति आदि का पर्दाफाश कर साहसी, पत्रकारिता का दुर्लभ उदाहरण और पत्रकारिता के मूल्य का एक मूल्य सेट करते हैं, एक नजीर पेश करते हैं, जो कि उस दौर में एक बहुत बड़ी बात थी। वे जेल, जुर्माना के साथ-साथ प्रेस पर हथियारबंद लोगों द्वारा हमले के बावजूद भी अपनी आवाज, सत्य की आवाज को दबने नहीं दिया। प्रेस और शासन के बीच टकराव का रास्ता छोड़कर यदि वे समझौते का रास्ता चुनते, तो शायद प्रेस के जन्मकाल में ही पत्रकारिता का स्पिरिट एवं आत्मा मर जाती! हिक्की द्वारा पत्रकारिता का यह जोखिम वाला मार्ग स्वयं में बहुत कुछ कहता है और किसी भी युग के शासक को आइना दिखलाने वाला और किसी भी युग के लिए मार्ग दिखलाने वाला एक अनुकरणीय और आदर्श मार्ग है। साथ ही

यह बुनियादी सवाल कि 'पत्रकार क्यों?', 'पत्रकारिता किसके लिए?', 'पत्रकारिता का पक्ष अथवा प्रतिपक्ष कौन है?' आदि-आदि सवालों के साथ भविष्य की पत्रकारिता की दिशा, नैतिकता, मूल्य, सिद्धांत, सरोकार आदि की आधारशिला रखने का ऐतिहासिक कार्य करता है। जबकि ब्रिटिश हुकूमत औपनिवेशिक शासन के हितों के लिए अंग्रेज पत्रकारों के प्रति भी उतना ही निर्मम दमनकारी एवं कठोर था।

राष्ट्रवाद किसी राष्ट्र के हित को साधने वाली विचारधारा का नाम है। राष्ट्रवाद का सीधा मतलब होता है राष्ट्र की जनता का हित, करोड़ों भारतीयों का हित न कि शासक वर्ग और सत्ता वर्ग का हित। 'पत्रकारिक राष्ट्रवाद' भी इसी भावना से पैदा होता है जहाँ एक पत्रकार और पत्रकारिता राष्ट्रवादी भावना का परिचय देते हुए करोड़ों की जनता के हित में कलम चलाता है इसके लिए व्यवस्था से टकराने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं प्रेस की आजादी के लिए प्रताड़ना के रूप में कीमत चुकाने का पुरस्कार एवं प्रसाद ग्रहण करना, सम्मान की बात समझता है। इस दृष्टि से 'बंगाल-गजट' नामक पत्र पत्रकार और पत्रकारिता के लिए एक मार्गदर्शिका है। यह एक सिर्फ एक समाचार-पत्र न होकर, एक आचरण-पत्र भी है। साहसी पत्रकारिता के गौरवपूर्ण इतिहास के गौरवपूर्ण प्रारम्भ का सूचक भी है। प्रसिद्ध पत्रकार पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने पत्रकारिता के आरम्भिक परिदृश्य के सत्य को इन शब्दों में बाँधा है - "भारत में प्रेस व छापेखाने और समाचार-पत्र गैर सरकारी अंग्रेजों के उद्योग से स्थापित हुए थे। उन्होंने समाचार-पत्रों का संचालन और संपादन ही नहीं किया था, स्वेच्छाचारी शासकों से अत्याचार-पत्र की स्वतंत्रता का संग्राम भी चलाया था। इस संग्राम में जैसा सभी संग्रामों में होता है, कभी हार और कभी जीत होती रही। शासकों के पक्ष में पृष्ठबल था और संपादकों का संबल नैतिक बल और अन्त में 'धिगबल' क्षत्रियबल, ब्रह्मते जो बलहंत' सिद्धांत की विजय हुई और भारतीय समाचार-पत्र उत्तरोत्तर स्वतंत्र होता गया।"

'मीडिया और राष्ट्रवाद' के संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि मीडिया का भी राष्ट्रवाद होता है, जहाँ देश की समस्त करोड़ों जनता के हितों की रक्षा करें न कि 'सरकारवादी पत्रकारिता' के माध्यम से केवल सरकार और केवल अपने आर्थिक हितों की रक्षा में निमग्न रहे। 'लकीर का फकीर' बनकर पत्रकारिता के 'स्परिट' की रक्षा नहीं हो सकती है। सिर्फ 'रोटी और मक्खन' के लिए दिन भर में गिरगिट की तरह रंग बदलना कितना जायज है? 'कण्डावरोध' के बिना लाभ-लोभ से भरी ऐसी समझदारी हमें रावण के घर में भी पानी भरने का काम करने के लिए प्रेरित कर सकती है। बाहर के रावण को हम हर साल जलाते हैं लेकिन अपने अंदर के रावण को जलाना छोड़ दीजिए, वह तो दिखता भी नहीं है। आज जरूरत है पत्रकारिता के इस अन्दर के रावण को पहचान करने की, जो बाजार और सत्ता की युगलबन्दी के हाथों लाभ-लोभ से भरी समझदारी दिखाते हुए खेल रहा है। अन्यथा जनता की आवाज, लोकतंत्र, नैतिकता, मानवीयता और देश का क्या होगा?

देश और राष्ट्र का मतलब देश के समस्त नागरिकों से है। राष्ट्र और राष्ट्रवाद का अर्थ हिन्दू और मुस्लिम नहीं होता, बल्कि 125 करोड़ समस्त भारतीयों से होता है, जिसमें सभी धर्म के लोग नागरिक की हैसियत से शामिल हैं। उन तमाम करोड़ों लोगों के हित में खड़ी होने वाली किसी मीडिया का राष्ट्रवाद करोड़ों की जनता के हित, सरोकार, प्रश्न, अधिकार को साधने वाली पत्रकारिता से है। आज पूँजीवादी कॉरपोरेट कल्चर, सत्ता और राजनीति के युगलबन्दी के दौर में पत्रकारिता (मीडिया) के अंदर एक ऐसी लक्ष्मण रेखा खींच दी गयी है कि कुछ भी बोलने का अर्थ पहले से ही तय कर दिया गया है। लाइन के इधर बोलना- 'कांग्रेस' का है, लाइन के उधर बोलना - 'भाजपा' का (आदमी) है, मान लिया जाता है। तो फिर 'जनता' का कौन है? 'मीडिया' का कौन है? जनता की तरफ से कौन बोलेगा? मीडिया की तरफ से कौन बोलेगा? जनता है भी या नहीं! जब पत्रकारिता में जनता की आवाज न सुनाई पड़े तो उसे एक बार पीछे पलटकर अपने पत्रकारिता के गौरवपूर्ण इतिहास की तरफ देख लेना चाहिए। आज के पत्रकारों को सम्बल और पत्रकारिता को दिशा मिलेगी। वास्तव में जनता की आवाज और सरोकारों को उठाने से सरकार को भी आइना दिखाया जा सकता, दुरुस्त किया जा सकता, करोड़ों भारतीयों के हित में काम करने की दिशा में। साथ ही विपक्ष की भी खबर ली जा सकती है, रचनात्मक विपक्ष की भूमिका का निर्वाह न करने के कारण। इसमें पत्रकारिता सत्ता पक्ष और विपक्ष सभी का कल्याण है और राष्ट्र एवं राष्ट्र के हित का भी कल्याण है क्योंकि एक जीवित लोकतांत्रिक देश में सत्ता पक्ष, विपक्ष और पत्रकारिता तीनों का मजबूत होना आवश्यक है। क्योंकि इन तीनों के बिना न राष्ट्र मजबूत हो सकता है और न राष्ट्रवाद।

संदर्भ

- 1 हिन्दी पत्रकारिता, डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 48
- 2 हिन्दी पत्रकारिता, डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ 48
- 3 बाल विवाह रोकने के लिए विवाह की आयु 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष किया गया।
- 4 आज का स्त्री आंदोलन, सं. रमेश, संज्ञा उपाध्याय, समिता सेन का लेख, पृष्ठ 51-52
- 5 समाचार पत्रों का इतिहास, पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, पृष्ठ 38

समाज मीडिया व साहित्य के समक्ष वर्तमान चुनौतियाँ

डॉ. विपिन गुप्त

वैश्य कॉलेज, भिवानी

हरियाणा

‘साहित्य’ शब्द ‘सहित’ में यत् प्रत्यय लगकर बना है, जिसका अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव अर्थात् साथ होना।¹ साहित्य वह है, जिसमें शब्द और अर्थ सहित रूप में रहते हैं-‘सहितयोः शब्दार्थयोः भावः साहित्यम्।’ पाश्चात्य विद्वानों ने भी ‘साहित्य’ को पारिभाषित किया है। श्री हेनरी हड्सन के अनुसार - "It is fundamentally an expression of life through the medium of language." अर्थात् साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा की गई जीवन की अभिव्यक्ति है।² एमर्सन महोदय के मतानुसार ‘साहित्य भव्य विचारों का लेखा है। हड्सन काव्य को जीवन से सम्बन्धित करते हुए कहते हैं- ‘कविता का जन्म जीवन से हुआ है। जीवन से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है और जीवन के लिए उसका अस्तित्व है।’³ मैथ्यू आर्नल्ड ने साहित्य को जीवन की व्याख्या कहा है- 'Literature is the criticism of life.'

मनुष्य ने सामाजिक जीवन अपनाकर अपनी भाषा माध्यम से अपने अनुभवों को ज्ञान रूप में संचित करने का प्रयास किया। इसे ही आगे चलकर ‘साहित्य’ कहा जाने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है-“ज्ञानराशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है।” आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत में “प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।” आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार “सारे मानव समाज को सुन्दर बनाने की साधना का ही नाम ‘साहित्य’ है। वस्तुतः ‘साहित्य’ शब्द बहुत विस्तृत अर्थ संजोये हुए है। साहित्य ‘सर्वोत्तम विचार की उत्तमोत्तम लिपिबद्ध अभिव्यक्ति’ कहा जा सकता है। साहित्य की भावना और विचारों की मधुर अभिव्यक्ति है। साहित्य जीवन में विषाद के क्षणों में संतोष और सुख के क्षणों में स्फूर्ति प्रदान करता है। जीवन में उसकी उपादेयता वांछनीय है।

साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षक होता है। संस्कृति वास्तव में अनुभूतियों तथा विचारों के संग्रह का स्थान है।⁴ भारतीय संस्कृति मानव जीवन के समानुपातिक सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। समस्त उदात्त मानवीय भावों के संरक्षण के कारण यह संस्कृति प्राचीनतम होने पर भी आज भी युगदृष्टि से उतनी ही मूल्य सम्पन्न है। भारत में एक बहुलतायुक्त समाज है। यहाँ अनेक धर्म, संस्कृति, भाषा और प्रजाति के लोग निवास करते हैं।⁵ इन सब विविधताओं का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। अनेकता में एकता भारत की विशेषता है। यहाँ का साहित्य प्रेरणादायी है। डॉ. मोहन अवस्थी साहित्य की उपयोगिता उद्घाटित करते हुए कहते हैं-“जिस देश का साहित्य जिन्दगी के प्रेरक तत्वों से प्राणवान् है, वह देश संकटों से जूझता हुआ भी अपनी उर्ध्वगामिनी जीवनी शक्ति का इज़हार बराबर करता रहेगा। इसलिए देश को ऊँचा उठाना है तो नवयुवकों को वहाँ के साहित्य से परिचित कराया जाना चाहिए।”⁶

सभ्यता के विकास के कारण प्रत्येक व्यक्ति समाज का अंग बन गया है। अतः साहित्य में वैयक्तिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक जवन का समावेश आवश्यक हो गया है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे का मानना है कि समकालीन भारतीय समाज परिवर्तन के एक संवेगात्मक उद्वेग से गुजर रहा है।⁷ वर्तमान भारत में विपरीत प्रकार के सामाजिक मूल्य और सामाजिक अभिवृत्तियाँ पायी जाती हैं। आज व्यक्ति समूह, समाज और देश के हित के दृष्टिकोण से विचार नहीं करके स्वयं के हित के दृष्टिकोण से सोचता है। तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों के साथ व्यक्ति समायोजन नहीं कर पा रहा है। उसके सम्मुख लक्ष्य और साधनों की अस्पष्टता है।⁸ ऐसी परिस्थितियों में साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रभावित होना स्वाभाविक है।

श्रेष्ठ साहित्यकार समाज को मार्गदर्शित कर उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय साहित्यकारों ने जन-चेतना फैलाने का सराहनीय कार्य किया था। साहित्यिक रचना मात्र मनोरंजन के निमित्त ही विरचित नहीं होती बल्कि वह सामाजिक परिष्करण के लिए भी लिखी जाती है। साहित्य और समाज का सम्बन्ध मंगलकारी है। साहित्य और समाज दोनों का शिलान्यास आत्म-रक्षा और आत्मोन्नति की कामना पर ही होता है।

यथार्थ में साहित्य समाज की धारा के साथ स्वयं भी प्रभावित होता है। अधुनातन साहित्य में एक ओर नारी-स्वातन्त्र्य का आग्रह दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर यौन-स्वातन्त्र्य के नाम पर उसे देह का पुलिन्दा मानकर चित्रित किया जा रहा है।⁹ साहित्यकारों का यह परम कर्तव्य है कि वह समाज की असंगतियों एवं उसके कुरूप का अन्वेषण करे तथा उनका समाधान

प्रस्तुत करे। साहित्य की सामाजिकता पर प्रकाश डालती हुई डॉ. रेणु वर्मा कहती हैं—“आज के युग गतिशीलता और परिवर्तनशीलता में संघर्ष के प्रतिमान अत्यन्त सूक्ष्म हो गये हैं और साहित्य के संस्कार विशृंखलित होकर खण्ड-खण्ड सामाजिकता को संगठित करने के लिए प्रयत्नरत हैं।¹² इस प्रकार ‘साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन’ पर विचार व्यक्त करती हुई प्रो. निर्मला जैन लिखती हैं—“समाजशास्त्र की तरह, साहित्य का मुख्य सरोकार होता है; मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा। उपन्यास औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा है। अतः उसमें परिवार, राजनीति तथा शासन के साथ मनुष्य के सम्बन्धों के सामाजिक जगत के पुनः सृजन का ईमानदार प्रयास दिखाई पड़ता है।¹³

नई सदी-इक्कीसवीं सदी का आगमन हो चुका है और इसका पहला दशक बीत चुका है। भूमण्डलीकरण (ग्लोबलाइजेशन) का युग आ चुका है। ‘ग्लोबलाइजेशन’ के कारण ग्लोब से गाँव की परम्परागत संस्कृति लुप्त हो रही है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति फैल रही है। वर्तमान समय चुनौतिपूर्ण है। इसकी ओर संकेत करते हुए वरिष्ठ कवि एवं समालोचक डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय का कहना है—“वस्तुतः जिस समय में हम जी रहे हैं, वह समय संवेदनशील रचनाकार और आम आदमी दोनों के लिये कठिन एवं चुनौतिपूर्ण है। नयी सदी में प्रवेश करते के साथ ही हम इस कठिनाई की ओर गम्भीरतापूर्वक देखने लगे हैं और चुनौतियों की व्याख्या करते हुए उनसे लड़ने के औजारों के विषय में भी सोचने लगे हैं।¹⁴ समकालीन कविता के परिदृश्य को देखकर परमानन्द श्रीवास्तव मानते हैं कि निर्व्यक्तिक ठण्डेपन और व्यक्तिगत मानवीय ताप में रची बसी दोनों ही रूपों में कविता अपने समय के प्रश्नों और चुनौतियों का सामना कर सकती है।¹⁵ ‘कृति ओर’ तथा ‘प्रतिश्रुति’ साहित्यिक पत्रिकाओं के विद्वान् सम्पादक डॉ. रमाकांत शर्मा वर्तमान चुनौतिपूर्ण समय में सांस्कृतिक हमलों से सतर्क करते हुए लिखते हैं—“आज भूमण्डल में चेतना की लहर के बावजूद साम्राज्यवादी ताकतें खामोश होकर नहीं बैठी हैं बल्कि चालाकीपूर्ण ढंग से अपनी चालें बदलने में कामयाब हुई हैं। इन ताकतों ने सैनिक हमलों के स्थान पर अपनी पूँजी और मीडिया के बल पर सांस्कृतिक हमले शुरू कर दिये हैं। ये हमले फौजी हमलों की बजाय ज्यादा घातक और दूर की मार करने वाले हैं।¹⁶

जिस तरह साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है, उसी तरह मीडिया को ‘विश्व का दर्पण’ माना जाता है। मीडिया आरम्भ में अखबार के रूप में अवतरित हुआ। फिर रेडियो और टेलीविजन ने सशक्त और प्रभावी माध्यम के रूप में मीडिया में प्रवेश किया। अब कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाइल जैसे नवीनतम साधन मीडिया को लोकप्रिय बना रहे हैं। आज मीडिया के प्रभाव को देखकर उसे ‘लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ’ कहा जाने लगा है। सार्थक सामाजिक बदलाव लाने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। मीडिया को आम जनता का विश्वविद्यालय कहें तो अतिशयोक्ति नहीं है।

प्रसिद्ध साहित्यकार एवं मीडिया विशेषज्ञ डॉ. कृष्ण कुमार रतू का कहना है—“फिल्मों, टेलीविजन और इंटरनेट द्वारा इन दिनों का मीडिया परिदृश्य आपकी दिनचर्या को सीधे प्रभावित तो कर ही रहा है, इसके साथ वो आपकी भाषा, साहित्य, संस्कृति, व्यवहार, लिबास से लेकर आपके दिलो-दिमाग पर एक नयी क्रान्ति का प्रभाव छोड़ रहा है। नतीजा आपके सामने है। आज समाज तथा विश्व हर क्षण एक नये बदलाव की प्रक्रिया से गुजरते हुए दिखायी देते हैं।¹⁷ आज की दुनिया में संचार माध्यमों या मीडिया की भूमिका की चर्चा करती हुई डॉ. संध्या गर्ग (दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली) कहती हैं—“भूमण्डलीकरण की अवधारणा एक ऐसी सभ्यता को जन्म देने के लिए प्रयासरत है, जिसके मूल में पश्चिम से उपजे प्रतिमान हैं। इस सभ्यता के विस्तार में सांस्कृतिक कारणों से अधिक भूमण्डली बाजार का महत्व है और इस बाजारा को बढ़ाने की मुख्य भूमिका का निर्वाह करने की जिम्मेदारी मीडिया के कन्धों पर डाली गई है।¹⁸ जनसंचार क्रान्ति का उल्लेख करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामप्रसाद दाधीच लिखते हैं—“युवा पीढ़ी को रचनात्मक एवं स्वस्थ दिशा देने वाला देश में कोई नेतृत्व नहीं है। पश्चिम की ओर अन्धी दौड़ ने सम्पूर्ण देश को दिशाभ्रमित किया है। संचार-क्रान्ति, प्रौद्योगिकी, औद्योगीकरण और किसी भी प्रकार अर्थ-संग्रह और सत्ता हथियाने के अभिक्रम देश में आज अनियंत्रित चल रहे हैं। नारी सशक्त हो रही है- यह बहुत ही प्रशंसनीय है, किन्तु ‘मुक्त नारी’ का नारीवाद आन्दोलन देश में जोर पकड़ रहा है। मीडिया को सर्वशक्तिमान कहें या सर्वग्रासी कहें - भूमिका पूर जोर पर है।¹⁹ आज जनतंत्र को बचाना व बढ़ाना स्वयं मीडिया के अपने अस्तित्व के लिए भी आवश्यक है। मीडिया की यात्रा मिशन से प्रोफेशन और प्रोफेशन से कमर्शियलाइजेशन के चरण में पहुँच गयी है। फिर भी आज के मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती और कसौटी यह है कि वह राज्य और समाज को जनतांत्रिक बनाने की अपनी भूमिका अदा करता है या नहीं।²⁰ सूर्यनगरी जोधपुर के वरिष्ठ कवि नवल जोशी भी संवेदनशील होकर पद्यमय उद्गार प्रकट करते हुए कहते हैं :

जुर्म सूँघता मीडिया, सड़कें पीती खून
चस्पा करती वर्दियाँ, चेहरों पर कानून।²¹

20वीं सदी विज्ञान और टेक्नोलॉजी के लिए समर्पित थी तो 21वीं सदी मीडिया के लिए समर्पित है। इस सदी में मीडिया सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरा है। ‘शेष’ पत्रिका में प्रकाशित यह अशेष कथन उल्लेखनीय है—“हालिया बरसों में मीडिया सबसे बड़ी आलमी ताकत बनकर उभरा है और इसकी शक्ति भी न सिर्फ तब्दील हुई है, बल्कि इसका दायरा भी फैला है।

अब इसे सिर्फ प्रिन्ट मीडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के दो खानों में तक्सीम नहीं किया जाता। फिल्म, रेडियो, टेलिविजन के बाद इंटरनेट, ब्लॉग, ट्विटर, फेसबुक, यहाँ तक कि टेलिफोन और मोबाइल जैसे खालिस निजी संचार यंत्र भी मीडिया के हाथ-पाँव बन गए हैं। इस पसमंजर में दुनिया की सभी जबानों के लिए ये मुआमला साफ और वाजेह हो गया है कि इन्हें जिन्दा रहना और फलना-फूलना है तो मीडिया के सभी बाजुओं के साथ जुड़कर आगे बढ़ना होगा।²²

कहा जाता है कि मीडिया, समाज का दर्पण है। दर्पण कभी झूठ नहीं बोलता, लेकिन कभी-कभी दर्पण का सच कड़वा होता है, तो हमें अच्छा नहीं लगता, इसलिए हम दर्पण को ही दोषी मानकर उसकी आलोचना करने लग जाते हैं। मीडिया के माध्यम से कम समय में बहुत लोगों व स्थानों तक सूचनाएँ पहुँचती हैं। यह जनसंचार माध्यमों की सबसे बड़ी उपादेयता है।²³ अतः आज फले की अपेक्षा मीडिया पर अधिक उत्तरदायित्व है। न्यायाधीश सरकारिया का मानना है कि प्रेस को स्वयं आगे आकर नैतिक बल के आधार पर जनता से सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए ताकि दोनों में आपसी विश्वसनीयता प्रगाढ़ हो सके।²⁴

हिन्दी भाषा में प्रचार-प्रसार, विकास एवं परिमार्जन में पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी गद्य के अभ्युत्थान की प्रेरणा समाचार-पत्र से ही प्राप्त हुई और आधुनिक हिन्दी गद्य के साहित्यकारों ने, जो समाचार पत्रों के सम्पादक थे, अपने कृतित्व को समाचार-पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा अन्य गद्यकारों को भी प्रभावित किया।²⁵ सूचना प्रौद्योगिकी में कम्प्यूटर का स्थान प्रमुख है। अब स्थिति यह हो गई है कि हिन्दी में पेजर आ गए हैं। हिन्दी में इंटरनेट भी उपलब्ध हो गया है। ई-मेल और सर्च संभव है। हिन्दी में अनेक पोर्टल प्रारम्भ हो गए हैं। हिन्दी में वेबसाईट व फेसबुक की शुरुआत हो चुकी है। हिन्दी में ई-बुक्स तथा ई-समाचार-पत्र व पत्रिकाएँ भी उपलब्ध हैं।²⁶

सूचना प्रौद्योगिकी के कारण हिन्दी भाषा तथा साहित्य का वृहत् प्रचार-प्रसार हुआ है। इंटरनेट से 'वैश्विक ग्राम' की परिकल्पना साकार होने लगी है। डॉ. सुधीर सोनी "इलैक्ट्रॉनिक संचार माध्यम" पुस्तक में लिखते हैं—"इंटरनेट ने आज ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में कम्प्यूटर स्क्रीन के रूप में अभिनव दृश्य माध्यम प्रस्तुत किया है। प्रत्यक्ष प्रदर्शन के इस प्रारूप ने जीवन अभिनव पक्षों को साकार किया है।²⁷ निस्संदेह इंटरनेट मीडिया ने विश्व में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। प्रो. रमेश जैन के शब्दों में - "इंटरनेट मीडिया की पहुँच प्रिन्ट मीडिया से कहीं अधिक है। इसका उत्पाद लागत प्रिन्ट मीडिया से अपेक्षितया कम है।"²⁸ लन्दन में किये गए एक सर्वे से यह साफ होता है कि टेलीविजन और रेडियो के बाद इंटरनेट मनोरंजन और समाचारों के लिए सबसे अधिक लोकप्रिय माध्यम है।²⁹ आधुनिक तकनीक ने सही रूप में हमें 'ग्लोबलविलेज' बना दिया है। इसने संसार के तौर-तरीके बदल दिये हैं। सेटेलाइट टेलीविजन पुरानी बात हो गई है। डिजिटल तकनीकी पत्रकार और दर्शक के बीच की दूर और कम कर देगी। मोबाइल टेलीविजन, इस्टेंट वीडियो को उपभोग की वस्तु बना देगी। नई ऑनलाइन तकनीक अब वीडियो ऑन डिमांड का प्रस्ताव दे रही है।³⁰

गाँवों में भ्रूण हत्या, नारी उत्पीड़न, अशिक्षा और अधिकारों के प्रति अज्ञानता आदि बहुत से मुद्दे हैं, जिन्हें लेकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बड़ी प्रभावी भूमिका निभा सकता है। लेकिन टी.आर.पी. के लोभ में सभी चैनल वही कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं जिनके चलते खुद को नंबर एक चैनल सिद्ध किया जा सके। वस्तुतः सभी सरोकारों पर बाजार हावी हो चला है। लोकतन्त्र में मीडिया तब तक प्रभावशाली भूमिका नहीं निभा सकता जब तक वह ग्रामीण भारत के लोगों की समस्याओं को अभिव्यक्ति नहीं देता। जाने-माने टीवी पत्रकार व एंकर श्री पुण्य प्रसूत वाजपेयी का मानना है कि "मीडिया को जनसमस्याओं को प्राथमिकता देना चाहिए, न कि मनोरंजन को। मनोरंजन के कई अन्य माध्यम मौजूद हैं। सिवाय मीडिया के जनसमस्याओं को उभारने, उन्हें पटल पर लाने का अन्य कोई दूसरा तरीका नहीं है।"

साहित्य और मीडिया एक गाड़ी के दो पहियों की भाँति साथ-साथ कदम बढ़कार जनजागृति फैला सकते हैं। मीडिया का फर्ज है कि वह समाज को सभ्य बनाने में मदद करे। जहाँ जरूरत हो वहाँ उसे टोके। व्यक्ति को समूह के बाहर भी गरिमा प्रदान करें।³¹ पत्रकार सजग साहित्यकार की भाँति अपनी उलझाई से समाज को उन्नति प्रदान करता है। विदेशी और देशी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने कुछ सालों में ही हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं को जितना नुकसान पहुँचाया, उतना किसी और ने नहीं पहुँचाया।..... हमारे यहाँ भी बाजारवाद के खतरों की घण्टियाँ सुनाई देने लगी हैं। बाजारू संस्कृति के चुगलों पर पलने वाले साहित्यकारों ने साहित्य को अपूरणीय क्षति पहुँचाई है।³² मीडिया और साहित्य की तुलना करते हुए श्री सुधीर पचौरी मानते हैं कि मीडिया साहित्यकारों के लिए नहीं होता, वह आम जनता के लिए होता है। साहित्यकारों के लिखे हुए को कम लोग पढ़ते हैं, जबकि मीडिया में छपता है या सुनाई देता है, उसे लाखों पढ़ते और समझते हैं।

विगत 150 वर्षों में लघु पत्रिकाओं और साहित्यिक पत्रिकाओं ने समाज को भी चेतना सम्पन्न बनाया है। वर्तमान में हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति पर हैं। एक सर्वे के मुताबिक भारत में 4,477 अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिनमें 209 दैनिक हैं। इनकी तुलना में हिन्दी में 9,695 पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिनमें 1,182 दैनिक हैं, जिनमें पत्र-पत्रिकाओं को विज्ञापनों का 57 प्रतिशत भाग मिलता है। जबकि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं को केवल 20 प्रतिशत और अन्य भारतीय भाषाओं को कुल मिलाकर 23 प्रतिशत ही प्राप्त होता है। इस प्रकार भारी आर्थिक प्रोत्साहन मिलने पर भी अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ अधिक

लोकप्रिय नहीं है।³³ श्री सुधीर पचौरी के अनुसार आज देश के दस सबसे ज्यादा बिकने वाले अखबारों में छह हिन्दी के हैं। भारत में मीडिया एक बड़ा उद्योग है। आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में भाषाई मीडिया में आया 'बूम' मीडिया के विकास का एक नया चरण है। लेकिन यह 'समस्याहीन' नहीं है। इस प्रक्रिया में बहुराष्ट्रीयकरण और कॉरपोरेटीकरण छोटे-मंझोले मीडिया का खतरा बन सकते हैं। मार्केट द्वारा कंटेंट का निर्धारण पत्रकारिता की प्रक्रिया को गहरे और नकारात्मक ढंग से प्रभावित करने लगा है।³⁴ वैश्वीकरण का दौड़ एवं भूमण्डलीकरण के प्रभाव से हिन्दीभाषा ही नहीं बल्कि अर्थ भावनाएँ भी अछूती नहीं रही हैं। विभिन्न वेब पोर्टलों पर, पत्र-पत्रिकाओं में प्रस्तुत भाषा एवं साहित्य पर भी वैश्वीकरण का परिणाम देखा जा सकता है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री तथा पुस्तकों के आशय एवं विषयों पर भी नई तकनीक के साथ-साथ वैश्विक परिदृश्य दिखाई देता है। वर्तमान साहित्य के विषय एवं आशय भी नए सिरे से प्रस्तुत हो रहे हैं। इंटरनेट पर प्रकाशित अत्यधिक रचनाओं के विषय भी भूमण्डलीकरण से प्रभावित हैं।³⁵ भूमण्डलीकरण के कारण कलम पर बाज़ारवाद के खतरे बढ़ रहे हैं। बाज़ारवाद पूँजीवाद सभ्यता का ही नया रूप है, जिसे 'नवपूँजीवाद' भी कह सकते हैं। बाज़ारवाद के खतरों से सावचेत करते हुए श्री जीवन सिंह लिखते हैं – " बाज़ारवाद का सबसे खतरनाक खेल है-इन्सानी अनुभूतियों का पूरी तरह हनन कर व्यक्ति को मशीन में परिवर्तित कर देना। आज चारों तरफ मशीनी मनुष्यों के चेहरे नज़र आते हैं जिनके उठपर मानवीय अनुभूतियों की चमक गायब है।³⁶ बाज़ारवाद का साहित्य, समाज व मीडिया पर भी प्रभाव पड़ा है। बाज़ारवाद के प्रभाव को रेखांकित करते हुए प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल कहते हैं- "हालत यह है कि भारत का दूरदर्शन हर समय उपभोक्ता समाज का प्रसार कर रहा है। रंगीन नारी छवियों और भटकते मुस्तंडों से भोग सामग्री के लिए ललचाया जा रहा है। इस प्रदर्शन, विज्ञापनबाजी से समाज में भोग लिप्सा, सेक्स लिप्सा, पनप रही है। टेलीविजन की सूर्पनखाएँ कभी स्वयंवर के सीरियल चलाती हैं तो कभी साड़ी उतार देहवाद का नंगा नृत्य करती मिलती हैं। इसी पूरी स्थिति ने जीवन और समाज से गंभीर साहित्य, कला, दर्शन और विचार का अंत कर दिया है।"³⁷

दूरदर्शन पर आरम्भ में 'हम लोग', 'बुनियाद', 'चन्द्रकांता', 'रामायण', 'महाभारत', 'तमस', 'चरित्रहीन', 'नीम का पेड़', 'कब तक पुकारूँ', 'राग दरबारी', 'गण देवता' जैसे साहित्यिक कृतियों पर आधारित धारावाहिक प्रसिद्ध हुए, किन्तु बाद में टी.वी. पर साहित्य हाशिए में चला गया। कथा धारावाहिक की जगह 'रियलिटी शो' ले चुके हैं। श्री सुरेन्द्र उनियाल के अनुसार, 'टी.वी. पर साहित्य के हाशिए पर चले जाने का जो प्रत्यक्ष कारण समझ में आता है, वह है -व्यावसायिक दबाव। दरअसल निजी चैनलों के आने के बाद इन चैनलों और धारावाहिक निर्माताओं को आपस में ही व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ा। टी.आर.पी. (टी.वी. रेटिंग प्वाइंट) के कारण साहित्य टेलीविजन पर उपेक्षित होने लगा।³⁸

सिनेमा के माध्यम से साहित्यिक कृतियों का प्रचार-प्रसार हुआ है। 'गोदान', 'गबन', 'निर्मला', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'तीसरी कसम' जैसी साहित्यिक कृतियों पर फिल्मों में भी बनी। 'जगद्गुरु शंकराचार्य' तथा 'मुद्राराक्षसम्' जैसी संस्कृत की कृतियों पर भी संस्कृत में फिल्में निर्मित हुईं, किन्तु लोकप्रिय नहीं हो सकी। 'अर्द्धसत्य', 'आक्रोश', 'माया मेमसाहब', 'मिर्च मसाला', 'गंगाजल' आदि श्रेष्ठ कलात्मक फिल्मों को व्यावसायिक फार्मूला प्रधान फिल्मों की प्रतिस्पर्धा ने अधिक समय तक टिकने नहीं दिया। सिनेमा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त जन संचार माध्यम है, किन्तु यह भी बाज़ारवाद के मायाजाल में फँसकर व्यावसायिकता की भेंट चढ़ गया। फिल्म निर्माण की दृष्टि से भारत का विश्व में चौथा स्थान है। भारतीय फिल्मों में अरबों की लगी पूँजी का वास्तविक लोहा भारतीय जनता को मिल सका।³⁹ असहाय आम व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कवि रमेश खत्री मीडिया से प्रश्न करते हैं- "दूर दराज के गाँव का मजदूर-किसान/आज भी उतना ही असहाय। मीडिया की कलाबाजी/आखिर कौन से गुल खिलाने को तत्पर?"⁴⁰

मीडिया की कलाबाजी पर क्या कहें? साहित्य की अभिव्यक्ति पर क्या कहें? क्या चुप रहें? वरिष्ठ कवि गोविन्द माथुर के शब्दों में यही कहा जा सकता है - 'सोचता हूँ चुप रहूँ/पर कुछ भी नहीं बोलने को भी/अपमान समझते हैं लोग।'⁴¹

जन संचार प्रौद्योगिक ने अनेकानेक सुविधाएँ प्रदान की हैं तो कई प्रकार की चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी हैं। आज मीडिया पूँजीपतियों के नियंत्रण में है। फलस्वरूप मूल्यहीन पत्रकारिता को बढ़ावा मिल रहा है। आर्थिक लाभ कमाने के लिए मीडिया का प्रयोग किया जा रहा है। राजकुमारी डायना, मोनिका लेविंस्की तथा भंवरी देवी से सम्बन्धित प्रेम-रोमांस व सेक्स-स्केण्डल छह-छह माह तक मीडिया में छाये रहते हैं। इंटरनेट अश्लीलता की चरम सीमा को छूने में मददगार बन रहा है। टी.वी.चैनल भी नारी देह प्रदर्शन करने में गर्व महसूस करता है। मीडिया की नकारात्मक भूमिका पर टिप्पणी करते हुए डॉ. अर्जुन तिवारी कहते हैं- "चैनलों के अश्लील कार्यक्रमों को देखकर प्रौढ़ के लोग भी स्खलित हैं, उसे देखकर लगाता है कि देह-प्रदर्शन और सौंदर्य की भूख ने नारी जाति से मातृत्व का वह त्याग ही छीन लिया है, जिस मातृत्व के बल पर समाज में एक आशा जगी रहती थी कि माता के स्नेहसिक्त हाथों से पत्नी पीढ़ी समाज, देश और मानवता की धरोहर सिद्ध होगी।"⁴²

'पेड न्यूज सम्बन्धी मीडिया की समस्या आजकल बढ़ती जा रही है। इस पर चिन्ता व्यक्त करते हुए प्रख्यात पत्रकार प्रभाष जोशी कहते हैं- "यह देश का कैसा दुर्भाग्य है कि आजकल पैसा लेकर खबर लिखी और दिखाई जा रही है। ऐसे में पत्रकारिता का बचना मुश्किल है। अगर नीर-क्षीर विवेक से पत्रकारिता नहीं करेंगे तो हम अपनी पत्रकारिता की परम्परा

पर गर्व नहीं कर सकेंगे।⁴³

साहित्य और मीडिया समाज को उन्नत बना सकते हैं। वर्तमान में अनेक चुनौतियाँ हैं, जिनका सामना किया जा सकता है। प्रसिद्ध साहित्यकार तथा मीडिया विशेषज्ञ डॉ. कृष्ण कुमार रतू के शब्दों में निष्कर्षतः कहा जा सकता है—“नयी सदी की इस पल-प्रतिपल बदल रही दुनिया में श्रव्य-दृश्य एवं आधुनिक संचार माध्यम एक शक्तिशाली भूमिका तथा मानवीय सरोकारों की संवेदना का सम्प्रेषण हाशिये के अन्दर तथा बाहर पड़े आदमी के लिए करेगा।”⁴⁴

संदर्भ

1. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त : साहित्यिक निबन्ध, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1990 पृष्ठ 106
2. डॉ. रामदेव साहू : पाश्चात्य काव्यशास्त्र का इतिहास, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2004 पृष्ठ 20
3. डॉ. भोलेनाथ तिवारी (सं.) । कपबजपवदंतल वननजंजपववदेए बुक्स एन बुक्स दिल्ली, 1986 पृष्ठ 166
4. गोविन्द त्रिगुणायत (डी.लिट्) : शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (प्रथम भाग, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1962, पृष्ठ 5
5. तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी : वैदिक संस्कृति का विकास साहित्य अकादमी , नई दिल्ली, 2007 पृष्ठ 302
6. डॉ. प्रीती प्रभा गायल : भारतीय संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 2008 पृष्ठ 16
7. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा : भारतीय समाज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2002, पृष्ठ 7
8. डॉ. मोहन अवस्थी : हिन्दी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास, वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 8
9. श्यामाचरण दवे : भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ126
10. प्रो. एम.एल.गुप्ता व डॉ. डी.डी. शर्मा: भारतीय समाज मुद्दे तथा समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2005, पृष्ठ 359
11. सुशील कुमार श्रीवास्तव : निबन्ध नवनीत, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ 117
12. डॉ. रेणु वर्मा : साहित्यिक निबन्ध , राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ आकदमी, जयपुर, 2006, पृष्ठ 248
13. प्रो. निर्मल जैन: साहित्य का समाजशास्त्रीय चिंतन, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992 पृष्ठ2
14. डॉ. कौशल नाथ उपाध्याय : कविता का पक्ष, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2008, पृष्ठ11
15. परमानन्द श्रीवास्तव : समकालीन हिन्दी कविता, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ14-15
16. डॉ. रमाकान्त शर्मा : कविता की लोकधर्मिता, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2009, पृष्ठ57
17. डॉ. कृष्ण कुमार रतू : मीडिया देशांतर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010 (भूमिका)
18. डॉ. संध्या गर्ग (आलेख) : 'भारतीय पक्ष' (मासिक) दिसम्बर 2006, 51, रानी झाँसी रोड, फाड़गंज, नई दिल्ली, 2006 पृष्ठ 19
19. डॉ. रामप्रसाद दाधीच (आलेख) : 'प्रतिश्रुति' (त्रैमासिक), जुलाई-सितम्बर 2007, भारतीय विद्या भवन, जोधपुर, 2007 पृष्ठ 9
20. डॉ. हेतु भारद्वाज (प्र.सं.): अक्सर (त्रैमासिक), अप्रैल-जून 2009), त्रिवेणी नगर, जयपुर, 2009, पृष्ठ 311
21. नवल जोशी (दोहे) : 'कृति और लोकधर्मिता कविता विशेषांक, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2011, पृष्ठ 206
22. हसन जमाल (सं.) 'शेष' (त्रैमासिक) अप्रैल-जून 2011), पन्ना निवास के सामने, लोहारपुरा, जोधपुर, पृष्ठ9-10
23. डॉ. सजीव भानावत क्षिप्रा माथुर : जनसम्पर्क: सिद्धान्त व तकनीकी, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2008, पृष्ठ 54
24. डॉ. सैलेश सेन गुप्ता : जनसम्पर्क एवं संचार प्रबन्धन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 2003, पृष्ठ136
25. डॉ. वेदप्रताप वैदिक (सं.) हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ61
26. डॉ. पूनम चन्द टण्डन (सं.) सूचना एवं प्रौद्योगिकी, हिन्दी और अनुवाद, भारतीय अनुवाद परिषद्, नई दिल्ली, 2005 पृ. 47-48
27. डॉ. सुधीर सोनी : इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2008, पृ. 126
28. प्रो. रमेश जैन: प्रयोजनमूलक हिन्दी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2009 पृ. 371-372
29. डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ एवं डॉ. रामप्रसाद कुलश्रेष्ठ : प्रयोजनमूलक हिन्दी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर , 2005, पृ. 66
30. राजदीप सरदेसाई (लेख) भारत : कल, आज और कल, दैनिक भास्कर समूह, भोपाल(म.प्र.), 2007 पृ. 66
31. ओम गुप्ता : मीडिया और समाज, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002 भूमिका
32. सुरेश गौतम व वीणा गौतम : हिन्दी पत्रकारिता : कल आज और कल, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 343
33. विमलेश कान्ति वर्मा व डॉ. मारलती (सं.) भाषा, साहित्य और संस्कृति, ओरियण्ट लांगमैन प्रा.लि. हैदराबाद, 2007 पृ. 403
34. सुधीश पचौरी (सं.) 'वाक्' (नए विमर्शों त्रैमासिक) अप्रैल-जून 2007, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2007, पृ. 171
35. सीमा ओझा (सं.) : 'आजकल' (मासिक) सितम्बर 2011, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, नई दिल्ली, 2011 पृ. 45
36. जीवन सिंह (आलेख) : 'वागर्थ' (मासिक पत्रिका) अप्रैल 2008, भारतीय भाषा परिषद् कोलकत्ता, 2008, पृ. 114
37. प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल (आलेख) : 'संकल्प' (त्रैमासिक), जनवरी-मार्च 2012, हिन्दी अकादमी हैदराबाद, 2010, पृ. 31
38. सुरेश उनियाल (लेख) : 'दि संडे पोस्ट' (साहित्य विशेषांक, 2009), बी.एफ.एल. इन्फोटेक लि. नोएडा (उ.प्र.), 2009, पृ. 126
39. डॉ. जितेन्द्र वत्स डॉ. किरण बाला: जनसंचार माध्यम और पत्रिका सर्वांग, अमर प्रकाशन, गाजियाबाद (उ.प्र.), 2009 पृ. 20
40. रमेश खत्री (कविता): 'कथादेश' (मीडिया विशेषांक), अगस्त 2009, पृ. 158
41. गोविन्द माथुर (कविता) 'शुक्रवार' साहित्य वार्षिकी 2012), पल्स न्यूज नेटवर्क प्रा.लि. नई दिल्ली, 2012 पृ. 103
42. हरिनारायण (सं.) 'कथादेश' (मीडिया विशेषांक) अगस्त 2009, सहयात्रा प्रकाशन प्रा.लि., 2009, पृ. 107
43. रवीन्द्र कालिया (सं.): इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की चुनौतियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2011, पृ. 194
44. डॉ. कृष्ण कुमार रतू : मीडिया देशांतर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010 पृ. 150

ADVERTISEMENTS IN TELE-MEDIA—AS THE FACADE OF INDIAN NATIONALISTIC THOUGHT

Mercy Jill Jill

Research Scholar, Department of English
University of Delhi

Far from understanding advertisements as commercial communication, it must first be understood as a message that creates a shared *meaning*. *Secondly, it must be understood as a phenomenon that can take various socio-political forms that has its reverberations and ramifications in the society, mind and socio-cultural landscape of the nation*. Nationwide, it has become a trend to earn profit through establishment of a relationship with society, culture and other aspects like local festivals, customs, social-institutions, religions, languages and geographical diversities. Today advertisements have come up as a mainstream media counterpart which has grown up to marginalize the real content media. Advertisement is a form of mass communication, a powerful marketing tool, a component of economic system and a means of financing mass media. "Advertisement means a public announcement. American Marketing Association, Chicago, defines advertising as: Any paid form of non-personal presentation and promotion of ideas, goods and services by an identified sponsor" (Gupta 313).

In the present day world Indian advertising industry has evolved from being a small-scaled business to a full-fledged industry. It is said that advertising industry is projected to be the fastest growing market in Asia after China. Advertisements act as one of the sources through which communication link is established between the company (sometimes, brand) and the consumers. Commercial messages create brand identity using a variety of appeals. The appeals cater to the rational, emotional and psychological feel of the consumers. However, this paper tries to explore how advertisements in television media continue to exist as the facade of Indian nationalistic thought.

Nationalism is a powerful force in any country. The fervour of emotional influence that is based on the prestige and deep rooted attachment to one geographical space in all its aspects is what makes nationalism alive. Television commercials bring in a semblance of this pure emotion through inspiration and enthusiasm through false objectives. Advertisements are of various varieties and purpose. My intention is to focus upon such advertisements that acts as veneer of nationalism and nationalistic thought in television media. Advertisements take up different manifestations of display in fabrication the illusion of nationalism sometimes through its philosophy, sometimes as a message of mass awakening or a collective sentiment, many a times as a responsibility, fitfully as an idea that will change the course of individual lives and thus nation as a whole, sometimes a relationship and so on. "Commercial nationalism which is the adoption of national signifiers in order to generate profit is a continuation and extension of the overall theme, style and symbols of the official nationalism" (White 24). White here do not look at commercial nationalism pejoratively, but national feelings when gets commercialised it shows the citizens a wrong example on what is real after all in "A talk on advertising", Herman Wouk rightly perceives in his essay 'A talk on advertising' that advertisements induce people to use more things than they actually desire—the more useless and undesirable the article, the greater the advertising effort needed to dispose it off.

The famous advertisement of Hero Honda that used to get telecasted during 2003 world cup offered its consumers a package of nationalistic spirit with the famous tag line "Hero Honda—

Desh ki Dhadkan" which literally means beat of the Nation. This particular advertisement had, Bharatnatyam dancers, traditional Bengali Saree clad women, Indian Army, village people, people of different religion harmoniously living together. Everything is possible because you have this motor bike from brand Hero Honda. This literally meant if you had Hero Honda then you don't have problems. How Hero Honda used Indian culture, patriotic feelings and toiled emotions just to promote a brand? "Through brand identity, a company seeks to convey its individuality and distinctiveness to all its relevant public" (Nandan, 2005).

Everybody will remember the ad by Bajaj that made our mornings in the days of *Doordarshan* in the 1990s which had the banner *Buland Bharat ki Buland Tasvir—Humara Bajaj* no doubt such advertisements embezzled the picture of nation and nationalism. The ad not only became a furore from its inception but also became as popular as the national anthem. It is very ironic that ING corporate bank which is a Dutch multinational Banking and financial service whose headquarter is in Amsterdam comes up with an advertisement in India for its Indian branch which says *Mere Desh mein paisa sirf paisa nahin hai* which can be translated as in my country money is not just money! "It is to be noted that at least 3 advertisements taken for study, barring the scooters and motorcycles, deal with products and services not essentially Indian. The predominant ideology conveyed in the advertisements is distilled by identifying the beliefs, values, and other cultural and political symbols that are embedded in the advertisements" (Ranganathan and Rodrigues 30).

Recent advertisements of *Patanjali* has dragged its name into the complaint list of Advertising Standard Council of India to have completely hurt the feelings of India by drawing names of father of nation, revolutionaries like Bhagat Singh and Ramprasad Bismil into its product promotion. What is so pure in refined oil? Patanjali refined oil says its 100% pure (shudh). Patanjali has recently launched Swadeshi advertisement propaganda with the banner, "*swast bharat, samvrudh bharat*".

Another advertisement by Khajariya Tiles "*Deshkimitti se bani tiles se desh ko banate hain*" then where else is the other tiles companies make tiles from? In the name of patriotism brands are selling their products. But in reality these advertisements are confiscating the real feelings for nation and are creating a facade of Indian nationalism for false materialistic use. It is interesting to note that the "...use of nationalism for building brand identity is not restricted to any specific product, service category or a corporate" (Gehani, 2001). It is used by one and all depending on the kind of identity they would like to create.

Dalmia cement comes up with a heart wrenching advertisement with the tag line "*diljode, desh jode!*" Other related media advertisements which evoke patriotic feelings include NDTV India's *zubaan pe sach dil meIndia!* Tata Salt claims its product as *desh ka namak* and it also appears in television media with models reciting "*Maine desh ka namak khayahain*". MDH Masala's sensational punch line "*yahi to haiasli India*" makes us feel it is only those consumers who consume MDH masala becomes part of real India. How real this particular claim is something that we need to think before it's late. Sahara Group's "*Bharat haihamara, hum hai Sahara*" has brought India for themselves by adding this imprudent tag line. To add on to this masked illusionary nationalistic spirit several TV channels have come up with names that are after India. For instance, India TV, India News, Republic, Bharat, News World India, NDTV India so on and so forth. When you have multiple TV channels each of which claims that they bring in the picture of real India what precisely becomes the banner of India becomes debatable.

Jaise India ka dil, waise India ka AC says the advertisement of Volta AC. These advertisements actively portrayed pleasures that were predicted to satisfy both the body and mind and encourage a higher sensation. This advertisement has a letter written by the son to use the AC which he claims has less power consumption. Now how this advertisement gets a tag line which talks about India's heart? How did it bring India's heart and India's AC in parallel? Everywhere it has now become important to insert taglines and banners of nation in order to sell a product.

"Advertisements have contributed to dismantling of public discourse where social equity was as critical as, if not more important than, growth, and have legitimised the pleasure and ethos of the free market" (Turow, 2009).

"With the commercialization of nationalism, states and oligarchs use print, social media and cinema as means to integrate their target populations and further this hyper-nationalist agenda" (Kulkarni). And therefore, while individual instances of commercialization of nationalism may seem harmless, in the long run, the trend may have serious implications on the States' foreign policies, and ultimately, the liberal world order. For instance, when Lifebuoy's ad ends up with the punch line "*Healthy Hoga Hindustan*", it establishes the role of the consumer in making the nation healthy. And of course, it reiterates that the product is committed to the health and hygiene of the country. These commercialisation tactics appear real unless we come across the veiled agendas and disputes the brand has in the consumer market. A case was filed against Lifebuoy for using the visual effects and posters that tormented Dettol its rival brand in the advertisement campaigns.

"*Ghar aagya Hindustan*" says another incautious advertisement by *Maruthi* car. Such statements plunge the minds of customers with patriotic feelings thereby bringing the swadesh effect. The absence of foreign models and western values instead there is a powerful presence Indian values, culture and social messages in most of the endorsements. Brands that communicate through nationalism generate, propose an identity that is close to the Indian heart and soul. When did anybody say that advertisements with this newly acquired Indian face was not out to sell?

The global tourism advertisement Incredible India shows India as a beautiful land. Did the issues of pollution, unemployment, deforestation disappear in India that it appears so incredible for the global display? Are these advertisements doing justice to the nation?

Such advertisements capture consumers because they carry emotions, feelings, passion of festivals, parenting, marriages, nature, soil sometimes of children, Friends, *Galli* Cricket so on and so forth. Everything associated with nation will always wake the patriot in you, who may be sometimes craving for togetherness, who may be away from home and wants to return home for *Diwali*, who wants to buy gifts for parents so on. In India such nationalistic fervours curate blood, sweat and tears as India is a country with much diversity. North Indian Wedding, traditional Rajasthan in transition, traditional Kerala all gets enacted upon in advertisements and brings the feelings for India upon certain products which use this tactic. For example, India has a tradition of having something sweet after the meals. It is worth noting that with much skill, Cadbury brings in this Indianness in advertisement of India's favourite chocolate dairy milk with the punch line "*Kuch meetha hojaye*".

Similar emotions are evoked in the context of Indian and tradition prevalent in the country when Dhoni says, "*Desh Badla, Bhesh Badlo*" for Big Bazaar. It is a national concern that must be addressed sooner that not only are the commercial engines using national symbols and sentiments but also national heroes, sometimes freedom fighters, sometimes high profile actors. They are figures in whom whole nation puts their trust and is proud. When such prominent personages come up with false claims, country finds it difficult to ruminate upon the ill effects.

Amul—"The Taste of India", echoes throughout the advertisement, a sense of belonging. The lyrics have it that the taste of India is made of human emotions. Now according to the advertisement Amul becomes a crucial part in the life of Indian. Now what about the poverty stricken India for who even water becomes a dream?

Apart from these product ads, even corporate houses use the concept of nationality for creating their brand identity. The TOI "Lead India" initiative, or Bharati's "Proud to be Indian" are heartening examples of that.

Smith says National consciousness or sentiment needs to be carefully distinguished from the other three. One can possess considerable national feeling in the absence of any symbolism, movement or even ideology on behalf of nation (Smith, 2010). Taking Smith into consideration, the contrast between an organized ideological movement of nationalism like the commercial

advertisement on false nationalism, on the one hand disperse the feeling of belonging and on the other, allow us to treat the concept of national consciousness or sentiment separately from the real nationalism though it intertwines with each other alternately.

BIBLIOGRAPHY

- * Aggarwal, Vir Bala and V S Gupta. *Handbook of Journalism and Mass Communication*. Concept Publishing Company, 2001. P. 313. Web.
- * Balhwan, Alok, 'Commercialization of Indian Nationalism: Current Status and Associated Risks'. *International Journal of Science and Research*. 2015. PDF.
- * Gehani, Ray R. 'Corporate Brand Value Shifting from Identity to Innovation Capability: from Coca-Cola to Apple'. *Journal of Technology Management & Innovation*. 2016. Vol. 11.3. PDF.
- * Kulkarni, Tapas Bhate. 'The Commercialisation of Nationalism', Huffpost. 2017. Web.
- * Ranganathan, Maya and Usha M Rodrigues, *Indian Media in a Globalised World*. Sage Publications, 2010. Web.
- * Smith, Anthony D. *Nationalism: Theory, Ideology, History*. Polity Press, 2001. Web.
- * Subramanian, Sharmila. 'Building Brand Identity Using Nationalism-A Study on the Commercial Messages in the Indian TV'. *Language in India*. 2013. Vol. 13:9. PDF.
- * White, Leanne. *Commercial Nationalism and Tourism: Selling the National Story*, Channel View Publications, 2017. Web.
- * Tsai, Wan-Hsiu Sunny, 'Patriotic advertising and the creation of the Citizen Consumer'. *Journal Media and Communication Studies*, 2010. Vol. 2.3. Web.
- * Turow, Joseph. *The Advertising and Consumer Culture Reader*. Routledge, 2009. p.182. Web.

राष्ट्रवाद की अवधारणा और हिंदी पत्रकारिता

डॉ. नीरव अडालजा

डॉ. भीम राव अम्बेडकर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

राष्ट्रवाद एक नितान्त आधुनिक अवधारणा है। यह राष्ट्र राज्य की निर्मिति से जुड़ा है। एक निश्चित भूखण्ड एवं एक आम राजनीतिक एवं आर्थिक रूप वाली जनता के समुदाय के बीच 'एकत्व' के मनोवैज्ञानिक एहसास के साथ की राष्ट्र की पहचान अस्तित्व में आई। एकत्व की यह प्रक्रिया जनता के आम रस्मों-रिवाज तथा परम्परा से और तीव्र हो गयी। पश्चिमी यूरोप में सामन्ती उत्पीड़ना से मुक्ति का वायदा राष्ट्रवाद के उदय का कारण था। राष्ट्रीयता मूलतः पूँजीवादी समाज व्यवस्था का ही लक्षण है। 19वीं सदी को राष्ट्रवाद का 'युग' माना जाता है। इस समय प्रत्येक राज्य 'राष्ट्र राज्य' की आधार भूमि पर खड़े होते हैं और यह धारणा बलवती होती है कि प्रत्येक राष्ट्रीयता का अपना अलग राज्य होना चाहिए। मध्ययुग में सभ्यता का निर्धारक तत्व धर्म था, राष्ट्रीयता नहीं।' राष्ट्रवाद को आधुनिकतावाद और उसके परिणामों के समरूप समझा जाता है। इस अर्थ में यह पुरानी व्यवस्था को भंग करने वाली शक्ति है।

राष्ट्र का सम्बन्ध राष्ट्र के स्वरूप से है। यह आधुनिक पूँजीवाद, औद्योगिकरण, जनसंचार माध्यम, साक्षरता का प्रसार, मुद्रा की अर्थव्यवस्था, नगरों के विकास तथा धर्म निरपेक्षता का परिणाम है। राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद की अवधारणाओं का विकास भी यूरोप की उदारवादी राजनीतिक, विचारधारा औद्योगिक क्रांति, पूँजीवादी व्यवस्था लोकतंत्र एवं बाजार की व्यवस्था के विकास के साथ जुड़ा है। व्यवहार में राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं निष्ठा, राष्ट्रीय परम्पराओं का गौरवगान एवं राष्ट्र के प्रति उत्सर्ग की भावना के साथ एक विशेष भू-भाग के भौगोलिक रूप के प्रति सम्पर्कित एवं भक्ति राष्ट्रवाद के मूल तत्व हैं।

पिछली दो शताब्दियों के दौरान राष्ट्रवाद एक ऐसे सम्मोहक राजनीतिक सिद्धांत के रूप में उभरा है जिसने इतिहास रचने में योगदान किया है। इसने उत्कट निष्ठाओं के साथ-साथ गहरे विद्वेषों को भी प्रेरित किया है। इसने जनता को जोड़ा है तो विभाजित भी किया है। इसने अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलाने में मदद की तो इसके साथ यह विरोध, कटुता और युद्धों का कारण भी रहा है। साम्राज्यों और राष्ट्रों के ध्वस्त होने का यह भी एक कारण है। राष्ट्रवादी संघर्षों ने राष्ट्रों और साम्राज्यों की सीमाओं के निर्धारण पुनर्निर्धारण में योगदान किया है। आज भी दुनिया का एक बड़ा भाग विभिन्न राष्ट्र राज्यों में बंटा हुआ है हालांकि राष्ट्रों की सीमाओं के पुनर्संयोजना की प्रक्रिया अभी खत्म नहीं हुई है और मौजूदा राष्ट्रों के अंदर भी अलगाववादी संघर्ष आम बात है। राष्ट्रवाद कई चरणों से गुजर चुका है। उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप में इसने कई छोटी-छोटी रियासतों के एकीकरण से वृहत्तर राष्ट्र-राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। आज के जर्मनी और इटली का गठन एकीकरण और सुदृढ़ीकरण की इसी प्रक्रिया के जरिए हुआ था।

राष्ट्रवाद बड़े-बड़े साम्राज्यों के पतन में हिस्सेदार रहा है। यूरोप में बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ऑस्ट्रियाई-हंगेरियाई और रूसी साम्राज्य तथा इनके साथ एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश, फ्रांसीसी, डच और पुर्तगाली साम्राज्य के विघटन के मूल में राष्ट्रवाद ही था। भारत तथा अन्य पूर्व उपनिवेशों के औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र होने के संघर्ष भी राष्ट्रवादी संघर्ष थे। ये संघर्ष नियंत्रण से स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य स्थापित करने की आकांक्षा से प्रेरित थे। राष्ट्रों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया अभी जारी है। 1960 के दशक से ही, सीधे तौर पर सुस्थिर राष्ट्र-राज्य भी कुछ समूह या अंचलों द्वारा उठाई गई राष्ट्रवादी माँगों का सामना करते रहे हैं। इन माँगों में पृथक राज्य की माँग भी शामिल है। आज दुनिया के अनेक भागों में हम ऐसे राष्ट्रवादी संघर्षों को देख सकते हैं जो मौजूदा राष्ट्रों के अस्तित्व के लिए खतरे पैदा कर रहे हैं।

राष्ट्र बहुत हद तक एक 'काल्पनिक' समुदाय होता है जो अपने सदस्यों के सामूहिक विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे एक सूत्र में बंधा होता है। यह कुछ खास मान्यताओं पर आधारित होता है जिन्हें लोग उस समग्र समुदाय के लिए गढ़ते हैं जिससे वे अपनी पहचान कायम करते हैं। लोकनायक जयप्रकाश नारायण का राष्ट्रीय एकता के प्रयासों से लम्बे समय तक सम्बन्ध रहा। उनका कहना था "राष्ट्रीय निष्ठा के निर्माण की प्रक्रिया धीमी होती है और हमें एक मजबूत एकीकृत राष्ट्र बनाने के लिए लंबे समय तक काम करना होगा।" उनका कहना था कि राष्ट्र अनेक तत्वों से मिलकर बनता है जैसे : धर्म, नस्ल, भाषा, इतिहास, संस्कृति, परंपरा और भौगोलिक क्षेत्र। वस्तुतः ये सारे तत्व राष्ट्र की तुलना में संकीर्ण निष्ठाएँ हैं। राष्ट्रीयता

ऐसी मनःस्थिति है जिसमें प्रत्येक नागरिक इन संकीर्ण निष्ठाओं और हितों की तुलना में व्यापक राष्ट्रीय निष्ठा और हित को तरजीह दे।

भारत एक निश्चित भू-क्षेत्र में रहने वाले लक्ष-लक्ष जन की अतीत की समान स्मृतियों, परम्पराओं, संस्थाओं, आख्यानों, प्रतीकों, वर्तमान के संघर्षों, संरचनाओं, विचारों, आकांक्षाओं, जय-पराजय, संकल्पों और भविष्य के सपनों, लक्ष्यों, आदर्शों से परिपूरित एक राष्ट्र है। भूक्षेत्रीय एकीकरण, राजनीतिक सत्ता, धार्मिक, आंदोलनों, सामाजिक संस्थाओं तथा सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से एकीकृत भारत भूभाग की कल्पना अत्यंत प्राचीन है। औपनिवेशिक शासन के पूर्व नंदों एवं मौर्यों से ले कर मुग़लों तक एक संपूर्ण भूभाग के राजनीतिक एकीकरण के अनेक प्रयास हुए थे। इस प्रसंग में अशोक एवं औरंगजेब की विशेष रूप से चर्चा की जा सकती है। औपनिवेशिक शासन से पूर्व का भारत, राजनीतिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से औपनिवेशिक काल के भारत से कम एकीकृत नहीं था। पूर्व औपनिवेशिक भारत साम्प्रदायिक दंगों से मुक्त था। सन् 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम एक ओर तो भारतीय राष्ट्रीयता के प्रस्फुरण का पहला चरण है वहीं यह हमारे राष्ट्रीय जीवन में दो काल खण्डों के बीच एक प्रकार से विभाजक का काम करता है।

स्वाधीनता संघर्ष का युग बीते अभी ज्यादा समय नहीं हुआ है व्यक्ति का जीवन गौण हो गया था। समाज और राष्ट्र के प्रश्न मूल्यांकन हो गए थे। स्वाधीनता संघर्ष एक अखिल भारतीय आंदोलन था जिसमें लाखों लोगों ने हिस्सा लिया था वह माहौल आज कहीं दिखाई नहीं पड़ता है। राष्ट्रीय निर्माण की मूल प्रतिज्ञा धूमिल पड़ चुकी है। पिछले एक दशक में चीजों को देखने का नज़रिया बड़ी तेजी से बदला है चारों तरफ स्वार्थपरता और अवसरवाद की भयानक संड़ाघ है।

विडम्बना यह है कि जिस गति से राष्ट्रीयता की भावना विरल होती जा रही है उसी तीव्रता से राष्ट्रीय एकता का सवाल विभिन्न मंचों से उठाया जाने लगा है लेकिन इसमें चकित होने वाली कोई बात नहीं है। यह एक सीधा सादा गणित है। बात यह है कि जब एक प्रेरक मूल्य के रूप में राष्ट्रीयता को समाज के बाहर कर दिया जाता है या दूसरे, गौण मूल्य उस पर हावी हो जाते हैं, तब राष्ट्र के अंदर दरारें पड़ने लगती हैं। राष्ट्र का सिर्फ एक सुनिश्चित भूगोल ही नहीं होता। उनकी एक सुस्पष्ट तथा गतिशील आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था भी होती है। ऐसी व्यवस्था हम पिछले 72 सालों में विकसित नहीं कर सके हैं। उपराष्ट्रीयताओं का प्रश्न भी नए सिरे से सिर उठा रहा है।

क्षेत्रीय विषमता का सवाल आज हमारे सामने एक प्रमुख सवाल है। जाहिर है कि जिस संविधान के तहत हमने स्वतंत्र भारत की यात्रा शुरू की थी, कई महत्वपूर्ण मामलों में अधूरा साबित हुआ है। यहाँ तक कि भाषा का निर्णायक प्रश्न भी अनसुलझा पड़ा है, जिसका नतीजा यह है कि एक विदेशी भाषा ही आज भी राष्ट्र को राजनीतिक रूप में जोड़े हुए है। सबसे बड़ी बात यह है कि राजनीतिक तंत्र में वह संवेदनशीलता नहीं रही जिसके कारण व्यवस्था अपने आप अपेक्षाओं के साँचे में ढलती जाती है। इस संवेदनशीलता के अभाव में लोकतंत्र कुछ गिरोहों द्वारा सत्ता पर कब्जा करने का एक कानूनी औज़ार हो गया है। हमारे शासकों की वैधता इसके आलावा क्या रह गई है कि उनका निर्वाचन वोट से हुआ है और यह ऐसा वोट है जिसकी पवित्रता हर आम चुनाव के बाद थोड़ी और संदिग्ध हो जाती है।

इन प्रक्रियाओं के कारण राष्ट्र के अंदर एक तरह की कसमसाहट पैदा हो जाना स्वाभाविक है लेकिन शासक वर्ग इस कसमसाहट को समझने की कोशिश नहीं कर रहा है। यह राष्ट्रीयता की क्षीण होती जा रही प्रेरणा का ही नतीजा है कि आज देश में राष्ट्रीय एकता का नारा तो बहुत जोर-जोर से लगाया जा रहा है, लेकिन इस बात की समझ कम दिखाई पड़ती है कि राष्ट्रीय एकता को अचानक खतरा हो गया है तो उसके वास्तविक कारण क्या है। सेना या पुलिस के बल पर किसी भी राष्ट्र को बहुत दिनों तक एक्यबद्ध नहीं रखा जा सकता। अंततः तो राष्ट्र जन इच्छा पर ही टिका हुआ होता है। जब उसकी बेकदरी होती है तभी एक राष्ट्र के अंदर कई राष्ट्र सिर उठाने लगते हैं।

राष्ट्र कोई अमूर्त चीज नहीं है तो राष्ट्रीयता भी कोई अमूर्त भावना नहीं होनी चाहिए। उसकी ठोस शक्त होती है, जिसमें हमारे जीवन के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू तीव्रता से जगमगाते हैं। जनमानस में राष्ट्रीयता की सुप्त भावना जगाने के लिए यह जरूरी है कि राष्ट्रीय व्यवस्था का ऐसा स्वप्न लोगों के सामने रखा जाए जो सभी में उत्साह और उमंग का संचार कर सके।

राष्ट्रीयता का केंद्रीय तत्व है अपने राष्ट्र पर गर्व, अपनी राष्ट्रीय परम्परा की गहरी पहचान तथा राष्ट्रीय अस्मिता के साथ आत्मीय तदात्म्य से उपजता है जिसने राष्ट्र को जाना ही नहीं उसके अंदर राष्ट्रीय स्वाभिमान कैसे पैदा हो सकता है? राष्ट्रीय राष्ट्र निर्माण की अधूरी एवं विकृत कोशिशों के कारण आज अधिकांश भारतीय एक विकट और दुःसाध्य आत्महीनता के शिकार हो रहे हैं। जब राष्ट्र पर सच्चा गर्व न हो, तब राष्ट्रीय दर्प पैदा करने के झूठे उपायों का सहारा लेना जरूरी होता है।

यही वह संदर्भ है जिसमें हमारी पत्रकारिता को काम करना पड़ रहा है। सवाल यह है कि क्या उसने एक आत्महीन होती हुई जाति की समस्याओं को समझने और उसका विश्लेषण करने की कोशिश की है? यदि हम अपने को व्यवसायिक पत्रकारिता तक ही सीमित रखे, जिसे आज पत्रकारिता की मुख्यधारा कहा जा सकता है, तो स्थिति बहुत आशापूर्ण नहीं प्रतीत होती। पत्रकारिता ने ऐसा कोई विवेक पैदा नहीं किया, जिससे वह पतनशील संस्कृति के समानांतर एक मषबूत दीवार की तरह

खड़ी रह सके। यह बात खास तौर से इसलिए हैरत में डालने वाली है कि आजादी के पहले हमारी पत्रकारिता की भूमिका बहुत ही गौरवपूर्ण थी उसने राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में किसी से कम भूमिका नहीं निभाई थी। लेकिन आजादी के बाद जैसे राजनीति ने स्वतंत्रता आंदोलन को स्थगित कर दिया उसी तरह पत्रकारिता ने भी मान लिया कि उसके लिए आलोचनात्मक विवेक अब बेकार की चीज हो चुका है। नव प्राप्त स्वाधीनता के कोहरे में सब कुछ इस तरह खो गया जैसे वह वहाँ था ही नहीं। यह सच है कि उसके बाद राष्ट्र कई बार मोहभंग की अवस्था से गुजरा और उसके साथ-साथ पत्रकारिता भी, लेकिन यह भी सच है कि मोटे तौर पर पत्रकारिता भी उसी राष्ट्रहंता अभियान का एक अंग है जो समाज में विभिन्न स्तरों पर छिड़ा हुआ है। इसके निश्चय ही कुछ चमकदार अपवाद हैं, लेकिन बस इस नियम की पुष्टि के लिए कि मनुष्य का विवेक कभी पूरी तरह समाप्त नहीं होता।

औद्योगिक व्यवस्था हर स्तर पर एक परजीवी मध्य वर्ग पैदा कर रही थी, इसलिए उसने पत्रकारिता को भी मध्य वर्ग केन्द्रित बना दिया जिसके सरोकार बहुत सीमित थे। इस बीच इस मध्य वर्ग का चरित्र भी काफी बदल चुका था। उसकी पहले वाली प्रगतिशील भूमिका चीखने लगी थी। पश्चिम में मध्य वर्ग ने कई मायने में प्रगतिशील आज मूलतः समाजद्रोही है वह अभी तक सामाजिक नवजागरण भी नहीं पैदा कर पाया है। यही कारण है कि उसकी पत्रकारिता के सरोकार भी बहुत सीमित है। उसमें आम जनता की आशाएँ पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित नहीं होती। शक तो इसमें भी है कि वह व्यापक भारतीय समाज को पहचानता भी है या नहीं।

राष्ट्र की परम्परा कितनी संकीर्ण हो गई है, इसका एक प्रमाण यह है कि अक्सर पार्टी या सरकार को ही राष्ट्र मान लिया जाता है। पार्टी, सरकार और देश तीनों गड्डमड्ड नजर आते हैं। पार्टी की समस्याएँ ही सरकार की समस्याएँ हैं। सरकार की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ। इस समझ के कारण पत्रकारिता ने राष्ट्रीय जीवन की प्रमुख चुनौतियों की तरह ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी है। जिसे विपक्ष की पत्रकारिता कहते हैं उसकी एक क्षीण धारा जरूर प्रवाहित हुई है, किन्तु अनेक बार ऐसा प्रतीत होता है कि जिस तरह विपक्ष के कुछ दलों और नेताओं का उद्देश्य सिर्फ सत्ता पर किसी तरह कब्जा करना है उसी तरह यह पत्रकारिता भी किसी बड़े और राष्ट्रीय लक्ष्य से नहीं बल्कि संकीर्ण राजनीतिक हितों से परिचालित हो रही है। वह सत्ता परिवर्तन को राष्ट्रीय परिवर्तन का प्रतिबिंब मान कर चलती है। यही वजह है कि समाज में जहाँ-जहाँ स्वतः स्फूर्त आंदोलन हो रहे हैं उनकी ओर दोनों की ही निगाह नहीं जाती न राजनीति की और न पत्रकारिता की। राष्ट्रीय लक्ष्यों की खोज, राष्ट्र निर्माण की समस्याओं की पहचान और एक राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ने का संकल्प दोनों में ही कम दिखाई पड़ता है, वह तो असहनीय और अश्लील है आज के दौर में समर्पित पत्रकार कम रह गए हैं और डिषाइनर पत्रकार अधिक हो गए हैं। यह इस बात का भी प्रमाण है कि राष्ट्रीय स्वाभिमान की तो बात ही छोड़िए, नागरिक स्वाभिमान भी हमें रक्षा करने योग्य नहीं लगता।

पत्रकारिता की दुनिया में राष्ट्रीयता के मूल्यों की क्या स्थिति है, इसका ज्ञान निम्न घटनाओं और तथ्यों के अवलोकन से होता है। उत्तर-पूर्व की जीवन स्थितियों में बिल्कुल दिलचस्पी नहीं ली जाती। दक्षिण भारत के पत्र तो फिर भी उत्तर भारत की राजनीति में अपनी रुचि दिखलाते हैं, लेकिन उत्तर भारत के लिए दक्षिण भारत तब तक महत्वपूर्ण नहीं होता जब तक वहाँ चुनाव या सरकार बनने-बिगड़ने जैसी घटना न हो। शहर में मामूली-सी घटना भी हो तो उसका विस्तार से जिक्र होता है, जबकि गाँवों की हालत क्या है - यह नहीं बताया जाता। देश में कई जगह किसान आंदोलन चल रहे हैं, लेकिन उनकी खबर नहीं दी जाती। इसी प्रकार आदिवासी समूहों के आंदोलन के प्रति उपेक्षा भाव बरता जाता है। यहाँ तक कि विदेशों में बसे भारतीयों की भी खोज-खबर नहीं ली जाती। हाँ, पाकिस्तान के प्रति एक तरह का द्वेष भाव जरूर लगातार दिखाया जाता है, मानो अपनी देशभक्ति प्रमाणित करने का यह एक अच्छा नुस्खा हो।

इसमें संदेह नहीं कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में राष्ट्रीयता उस तरह उत्कट नहीं हो सकती जिस तरह उसके पूर्वार्ध में रही। यह क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा अंतर्निभरता का युग है। किंतु एक समय जो यह कल्पना की जा रही थी कि शीघ्र ही राष्ट्रीयता की दीवारें कमजोर हो जाएँगी और एक विश्व मानव का आविर्भाव होगा, वह भी निर्मूल साबित हुई। जब तक दुनिया में आर्थिक या अन्य किसी भी प्रकार की गैरबराबरी रहेगी, राष्ट्रीय हितों का दबाव बना रहेगा। वैसे एक विषमतारहित विश्व में भी राष्ट्रीय पहचान, राष्ट्रीय स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम के लिए काफी जगह रहेगी। सच्ची राष्ट्रीयता वह नहीं है जो युद्ध के समय व्यक्त होती है - उस वक्त तो वह आत्मरक्षा का आदिम संवेग बन जाती है। सच्ची राष्ट्रीयता वह है जो शांति के समय व्यक्त होती है। खास तौर से तीसरी दुनिया के देशों में राष्ट्रीयता की गहरी और उद्दाम लहरों की जरूरत है, ताकि वहाँ राष्ट्र निर्माण का अधूरा काम पूरा हो सके।

हिन्दी सिनेमा और साहित्य में राष्ट्रवाद

डॉ. डिम्पल गुप्ता

पी.जी.डी.ए.वी महाविद्यालय (सांध्य)

दिल्ली विश्वविद्यालय

यह सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज और मनुष्य को एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। आदिम युग में ही मानव ने यह महसूस किया कि वह सामूहिक रूप से ही ज्यादा सुरक्षित रह कर अपना विकास कर सकता है और इसी भावना ने उसमें नैतिक गुणों का विकास किया और वे खानाबदोश जीवन प्रणाली को छोड़ एक ही स्थान पर समूहों में एकत्रित होकर रहने लगे। यही समूह आपस में मिलकर समाज का आधार बने, कालान्तर में इनका विकास हुआ और ये राज्य में परिवर्तित होकर अन्ततः राष्ट्र के रूप में उभरे।

राष्ट्र की परिकल्पना प्राचीन रही है। क्योंकि भारत के प्राचीनतम वाङ्मय वेदों में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद संहिता में और यजुर्वेद के संदर्भों से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय द्वारा शासित भू-भाग को राष्ट्र कहते थे। यजुर्वेद के एक मंत्र में राष्ट्र के व्यापक रूप का आभास भी मिलता जिसमें राष्ट्र में लोगों के साथ-साथ पशु और वनस्पति की भी पुष्टि की कामना की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी 'राष्ट्र' शब्द की तरह-तरह से अपनी शैली में व्याख्या की गई है, जैसे राष्ट्र जनसमूह है, राष्ट्र शक्ति है, राष्ट्र सविता है, राष्ट्र श्री है। इनसे भाव यही है कि एक राष्ट्र में सुरक्षित में आता है जिसमें कई अमूर्त तत्त्व जैसे-श्री, क्षत्र आदि का होना अनिवार्य माना गया है। अतएव समृद्धि युक्त ओजस्वी और शक्ति संपन्न जनसमूह ही राष्ट्र बनाता है।

राष्ट्रवाद लोगों के किसी समूह की उस आस्था का नाम है जिसके तहत वे खुद को साझा इतिहास, परम्परा, भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एकजुट मानते हैं। आज अनेक भ्रामक धारणाएँ फैलायी जा रही हैं कि राष्ट्रवाद का उदय अट्टारहवीं और उन्नीसवीं सदी के यूरोप में हुआ था लेकिन हमारी भारतीय संस्कृति में अनादिकाल से ही राष्ट्रवाद की संकल्पना को सहज ही देखा जा सकता है। अन्यायी रावण का राम के द्वारा संहार करने के मूल में भी राष्ट्रवाद है और दुराचारी कंस का कृष्ण के द्वारा संहार करने के मूल में भी राष्ट्रवाद ही है। भारत राष्ट्र और उसकी संस्कृति सनातन है, जिस प्रकार बादल सूरज के प्रकाश को कुछ समय के लिए अवरुद्ध कर देते हैं, किन्तु बादलों के हटते या रात्रिकाल समाप्त होते ही सूर्य पुनः अपने नवोन्मेष से प्रकट या उदित हो जाता है, उसी तरह भारत भी समय-समय पर प्रकट हुआ और कई बार विदेशी आक्रमणों के कारण आच्छादित तो हुआ लेकिन कुछ क्षणों के लिए ही, देश में समय-समय पर ऐसे राज्य, शासक या महापुरुष आते रहे हैं- जो उसके महान स्वरूप को संसार के समक्ष प्रभावी रूप से बार-बार प्रकट करते रहे हैं, यद्यपि पराधीनता जैसी विपरित परिस्थितियों में भी 'सत्यमेव जयते' और 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' को ही अपना 'जीवन दर्शन' माना। संस्कृत के वृहत् कोश वाचस्पत्यम् में 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ 'जनपद' किया गया है तो वृहत् कोश शब्दकल्पद्रुम में इसका अर्थ विषय बताया गया है। मनुस्मृति में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिससे एक शासकीय राज्य के भू-भाग का बोध होता है जिसकी सुरक्षा व्यवस्था राजा के अधीन हो।¹ वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है, भूमि, भूमि पर बसने वाले जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के कवियों ने भी राष्ट्र के लिए भारत नाम का प्रयोग किया है। वैदिक संहिताओं में राष्ट्र शब्द सामाजिक जीवन का वह भाग था, जहाँ राष्ट्र के सन्दर्भ में चिंतन सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग समझा जाता था और इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद तक समस्त मंत्र संहिताओं में विशिष्ट अर्थों में ही हुआ है। राष्ट्र के सन्दर्भ में श्री अरविन्द का मत है कि राष्ट्र एक भूमि का टुकड़ा, शब्द अथवा मस्तिष्क की कल्पना मात्र नहीं है। वह एक महान शक्ति है जो कि करोड़ों शक्तियों के योग से बनती है।

भारत का सर्वसमावेशी राष्ट्रवाद धर्म, भौगोलिक क्षेत्र आदि का गुलाम नहीं है। भारतीय राष्ट्रवाद सकारात्मक है, जिसमें पारदर्शिता, सब धर्मों के प्रति समान आदर तथा किसी एक धर्म को ऊँचा या नीचा न समझने की भावना समाहित है। भारत में राष्ट्रीयता किसी अन्य राष्ट्रीयता के टकराव में खड़ी नहीं होती क्योंकि भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पक्षधर है। स्वामी विवेकानंद ने हिंदू धर्म की तरह से बात करते हुए शिकागो में बताया था कि यह एक धर्म है जो किसी को हीन नहीं मानता। विवेकानंद हर अर्थ में राष्ट्रवादी है क्योंकि उन्होंने अपनी राष्ट्रीयता को किसी संकुचित सीमा में नहीं जकड़ा।²

महामना मदन मोहन मालवीय ने 1914 में अभ्युदय पत्रिका में लिखा था- राष्ट्रीयता किसे कहते हैं, यह समझना बहुत

जरूरी है। राष्ट्रीयता उस भाव का नाम है, जो कि देश के संपूर्ण निवासियों के हृदयों में देशहित की लालसा के साथ व्यापक रहा हो, जिसके आगे अन्य भावों की श्रेणी नीची रहती हो। भारतीय पत्रकारिता में सिनेमा में भी यह भाव समय-समय पर दर्शाया गया है।

राष्ट्रीयता का सर्वप्रमुख आधार देशभक्ति ही है। समाज की एकता और उसकी संस्कृति तथा देश के प्रति श्रद्धा और भावना का भाव किसी भी राष्ट्र के पार्श्व है लेकिन देशभक्ति उसका सर्वोपरि आधार है जिसके बिना राष्ट्रीयता की कल्पना सम्भव ही नहीं है। राष्ट्र के प्रति अनुराग और समर्पण भाव ही देशभक्ति है। राष्ट्र के कण-कण और उसके गौरवशाली प्रतीकों के प्रति अनुरागात्मक प्रवृत्ति ही देशभक्ति की भावना है।

हिंदी सिनेमा में स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भी राष्ट्रवाद की गूँज हिन्दी फिल्मों में दिखायी पड़ती है। लेकिन यह भी कटु सत्य है कि ब्रिटिश काल में ब्रिटिश सत्ता द्वारा राष्ट्र को कमजोर करने के लिए इन फिल्मों पर प्रतिबंध लगाया गया। इन फिल्मों में 1927 में 'वंदेमातरम् आश्रम' और 1936 में नितिन बोस के निर्देशन में 'धरती माँ' बनी। 1931 में फिल्म 'स्वराज' ने अंग्रेजी राज के शोषण, अत्याचारों और हिंद स्वराज्य राज के शोषण, अत्याचारों और हिंद स्वराज्य पर ध्यान आकर्षित किया। इसी प्रकार 'शहीद' फिल्म भगतसिंह को केन्द्र में रखकर बनायी गयी जिसमें यही संदेश मिलता है कि इन क्रान्तिकारियों के लिए राष्ट्र प्रेम, राष्ट्र अस्मिता ही सर्वोपरि है जिसके लिए ये हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे को स्वेच्छा से गले लगाते हैं। फिल्म में सुखदेव, राजगुरु और भगतसिंह का चरित्र जनता में भी राष्ट्र प्रेम को दर्शाता है। वजाहत मिर्जा ने शहीद फिल्म का लेखन किया और इसका निर्देशन रमेश सहगल ने किया। इस फिल्म का गीत 'वतन की राह में वतन के नौजवां शहीद हो' ने जन-जन में राष्ट्र भक्ति का संचार किया। इसी समय 'समाधि' 1950 में रमेश सहगल के निर्देशन में बनी सफल फिल्म थी जो नेताजी के सत्य जीवन पर आधारित थी। 1952 में बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास पर 'आनन्द मठ' बनी जिसका निर्देशन प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी हेमन गुप्ता ने किया। 1953 में शोहराब मोदी ने 'झाँसी की रानी' बनाई लेकिन इसे फिल्म बॉक्स ऑफिस पर पूरी सफलता नहीं मिली।

चालीस के दशक तक सिनेमा में सर्वत्र देशभक्ति देशप्रेम की अनुगूँज सुनाई पड़ती है 'किस्मत' 'बापू की अमर कहानी', 'शहीद', 'अपना देश' जैसी फिल्में सिनेमा के देश भक्ति के प्रति समर्पित गौरव गाथा की गवाह है। कई फिल्मों में अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावती तेवर प्रदर्शित किए। कवि प्रदीप द्वारा लिखित कहानी पर बनी फिल्म 'किस्मत' (1943) का गीत "आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है" आजादी के परवानों की हुंकार को और तेज कर देता है। "वतन की राह में वतन के नौजवान शहीद हो" (शहीद 1947), 'दे दी हमें आजादी बिना खड़ग बिना ढाल' (जागृति 1954), "आओ बच्चों तुम्हें दिखाये" (जागृति 1954), "सुनो-सुनो ए दुनिया वालों" (बापू की यह अमर कहानी 1948) जैसे गीतों ने अंग्रेज सरकार के खिलाफ आजादी और देशप्रेम का बिगुल बजाया।

1964 में उपकार फिल्म राष्ट्र प्रेम और राष्ट्र चेतना को दर्शाती है। अनेक संवेदनशील मुद्दों एवं राष्ट्र की समस्याओं को इस फिल्म में सफलता से दर्शाया गया है मातृभूमि की रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर एक किसान भी देश के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर करने में पीछे नहीं रहता वहीं दूसरी तरफ ऐसे स्वार्थी मनोवृत्ति वाले लोग भी हैं जो इस विषम परिस्थिति का लाभ उठाकर कालाबाजारी, जमाखोरी और मिलावट करते हैं। 'जय-जवान जय-किसान' के नारे से ही फिल्म की शुरुआत होती है। फिल्म जमींदारी और लालाओं का किसानों पर हो रहे शोषण को भी दर्शाती है। साथ ही परम्परागत धारणा के विरुद्ध विमाता का सौतेले पुत्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम को दर्शाती है। आपसी फूट से ही परिवार, समाज और राष्ट्र का विघटन होता है और इस फूट से सदैव दूसरों ने लाभ उठाया है। फिल्म में अन्ततः विजय राष्ट्र-प्रेम और मातृभूमि की ही होती है।

1970 में बनी 'पूर्व और पश्चिम' भी भारत की अस्मिता और शान को दर्शाती है जहाँ फिल्म की कहानी के साथ-साथ फिल्मी गीत भी देश-प्रेम को सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं जैसे-

'सूरज ने छेड़ी जब किरणों की शहनाई,

X X X

देश प्रेम ही आजादी की दुल्हनिया का वर है

इस अलबेली दुल्हन का सिंदूर-सुहाग अमर है

X X X

हो कोई हम प्रांत के वासी, हो कोई भी भाषा-भाषा

सबसे पहले हैं भारतवासी।

इसी प्रकार जब लंदन में रहने वाले भारतीय के द्वारा ही भारत का अपमान होता है तो फिर नायक का यह गीत सभी में उत्साह का संचार करता है-

"अपना भारत वह भारत है जिसके पीछे संसार चला"

X X X

भारत का रहने वाला हूँ भारत की बात सुनाता हूँ।”

फिल्म में भारतीय मिट्टी की जड़ों, संस्कारों को गहरे से दर्शाया गया है और साथ-साथ यह भी बताया गया है कि यह भारत की मिट्टी ही है जो सभी को अपने रंग में रंग लेती है तभी पश्चिमी सभ्यता में पली-बड़ी लड़की भी अन्त में भारतीयता के रंग में रंग जाती है और विजय राष्ट्र प्रेम की ही होती है। इस प्रकार ‘पूरब और पश्चिम’ में मनोज कुमार ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को ही सामने रखा। उदारीकरण के पश्चात भारतीयों का ब्रिटेन, अमरीका जैसे पश्चिमी देशों की ओर गमन ने सुदूर राष्ट्रवाद की भावना का मार्ग प्रशस्त किया और भारतीय विदेश में होने पर भी अपनी भारतीय पहचान पर गर्व करने लगे।

“आई लव माई इंडिया” (परदेस 1997) जैसे गीतों ने इस भावना को बरकरार रखा। 1960 के दशक में भारत के समक्ष अनेक आन्तरिक चुनौतियाँ तो थी ही साथ-साथ 1962 में चीनी आक्रमण, 1965 में पाकिस्तानी आक्रमण फिर 1971 में भारत पाक-युद्ध के कारण देशभक्ति बलिदान और राष्ट्र के प्रति समर्पित भाव को लेकर अनेक फिल्मों में बनी जिनमें हकीकत (1964), ललकार (1972), हिन्दुस्तान की कसम (1973), आक्रमण (1975) में प्रहार (1991), बॉर्डर 1997 में एलओसी करगिल (2003) आदि फिल्मों ने सामान्य जन के हृदय में सेना और राष्ट्र के प्रति सम्मान को बढ़ाया।

इसी प्रकार ‘कर्मा’ (1986) में बनी फिल्म भी सिनेमा जगत के इतिहास में ‘मील का पत्थर’ साबित होती है जहाँ सजायाफ्ता मृत्युदण्ड के कैदियों में भी राष्ट्र प्रेम का भाव जागृत हो जाता है और वे राष्ट्र-विरोधी आतंकवादियों के मनसूबों को निस्तेनाबूत कर डालते हैं और इसके लिए वे अपने प्राणों को भी बलिदान करने में पीछे नहीं रहते।

‘गदर’ में भारत-पाक विभाजन की त्रासदी को दर्शाया गया है जिसमें सिख और मुसलमानों में आपसी दंगों के दौरान उत्पन्न हिंसा को दर्शाया गया है। इसी बीच मानवीय भावनाओं से उत्पन्न प्रगाढ़ प्रेम संबंध को भी दिखाया गया है। कहानी का नायक तारा सिंह (सरदार), नायिका सकीना (मुसलमान) को दंगों से बचाकर अपने घर में शरण देता है और बार-बार उसकी अस्मिता की रक्षा करता है और यही भाव सकीना के हृदय में तारा सिंह के प्रति प्रेम भाव को उत्पन्न करता है, दोनों का विवाह हो जाता है लेकिन यह संबंध सकीना के पिता को स्वीकार्य नहीं और वह उसे धोखे से पाकिस्तान बुलाकर उसका दूसरा विवाह करना चाहता है लेकिन तारासिंह अपनी पत्नी को लेने पाकिस्तान पहुँच जाता है तो सकीना के पिता असरफ अली उसे इस्लाम धर्म अपनाने को कहते हैं तो वह सहज ही तैयार हो जाता है लेकिन जब उसके पिता उसे हिंदुस्तान मुर्दाबाद का नारा लगाने को कहते हैं तो तारासिंह में राष्ट्रवाद की भावना इन पंक्तियों में प्रकट होती है- ‘तारा सिंह- (चिल्लाते हुए) अशरफ अली, मेरा हिंदुस्तान जिंदाबाद था, जिंदाबाद है और जिंदाबाद रहेगा।’

इस प्रकार ‘लगान’ में किसी विशेष जाति या धर्म की बात न होकर पूरे जनसमूह के न्याय की बात होती है और हिंसा के स्थान पर अहिंसा के माध्यम से गाँव के सीधे-सीधे लोग लगान की बेडियों को तोड़ते हैं। फिल्म कहीं न कहीं भारतीय स्वाधीनता संग्राम में गाँधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करती है और सामूहिक रूप से राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाती है साथ-साथ गौरवमयी अतीत और सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाती है जहाँ विषम परिस्थिति किस प्रकार से सामूहिक एकता को जन्म देती है और इसी से जनराष्ट्रवाद का जन्म होता है और इसे वे स्वार्थ को त्याग और कर्म को अपनाकर जन्म देते हैं। अपने गौरवमयी अतीत को पुनः प्राप्त करने के लिए गाँव के सब लोग मिलकर संघर्ष करते हैं और इसके लिए वे भोले-भाले अंग्रेजों की कूटनीति का हिस्सा क्रिकेट के मैच की चुनौती को स्वीकार करते हैं और जीतकर भी दिखाते हैं। इस प्रकार कथानक, गीत-संगीत और क्रिकेट सभी में राष्ट्रवाद की झलक देखी जा सकती है। इस प्रकार राष्ट्र के लोगों की राष्ट्र के प्रति निष्ठा, प्रेम विश्वास, ही राष्ट्रवाद के रूप में उभर कर अभिव्यक्त होते हैं और इसका जन्म भी अपनी अतीत और अस्मिता की खोज के फलस्वरूप ही होता है। इसी प्रकार की भावना ‘रंग दे बसन्ती’, ‘चक दे इंडिया’ और ‘माई नेम इज खान’ में भी नजर आती है।

कवि प्रदीप हिन्दी साहित्य के कवि होने के साथ-साथ कोकिल कंठी भी थे। हिन्दी के महाकवि निराला ने ‘माधुरी’ पत्रिका में लिखा है, ‘आज जितने कवियों का प्रकाश हिन्दी में फैला हुआ है, उसमें ‘प्रदीप’ अत्यंत उज्ज्वल और स्निग्ध है। हिन्दी के हृदय से प्रदीप की दीपक रागिनी कोयल और पपीहे के स्वर को भी परास्त कर चुकी है....। प्रदीप का स्वर ईश्वर प्रदत्त है। उन्होंने स्वर की शिक्षा नहीं पाई पर इतना अच्छा स्वर मैंने हिन्दी में दूसरा नहीं सुना।’ इस प्रकार इन गीतों में अपने देश, देश की धरती, भारतीय संस्कृति धर्म, दर्शन और विश्वासों पर अगाध आस्था दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार इन गीतों से राष्ट्र प्रेम तो विकसित हुआ ही साथ-साथ विश्वबंधुत्व की भावना को भी बल-संबल मिला।

सिनेमा में कुछ प्रसिद्ध गीतकारों के गीतों में भी देशभक्ति के भाव देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से शकील-बदायूनी के देश भक्ति के गीत जन-जन के प्रेरणादायक है। फिल्म “गंगा जमुना” का “इंसाफ की डगर पे बच्चों दिखाओं चल के” गीत हो अथवा “सन ऑफ इंडिया” फिल्म का “नन्हा मुन्ना राही हूँ” देश का सिपाही हूँ, “बोलो मेरे संग जयहिंद जयहिंद जयहिंद”, फिल्म “लीडर” का अपने देश की आजादी पर आंच न आने देने का संकल्प गीत- “अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं, सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं”, देश की आबरू को बचाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा देते हैं। हिन्दी फिल्म गीतकार प्रेमधवन ने विविध भावभूमियों को अपने गीतों का विषय बनाया है, उन्होंने

देशभक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण गीत प्रचुर मात्रा में लिखे, “हम हिन्दुस्तानी” का प्रसिद्ध गीत- “छोड़ों कल की बातें, कल की बात पुरानी, हम हिन्दुस्तानी....”⁶ आदि गीतों से सहज ही राष्ट्र गौरव का भाव उदित होता है।

हिन्दी सिनेमा के साथ-साथ हिन्दी साहित्य में भी भारतीय संस्कृति, परम्परा और राष्ट्र भक्ति के भाव सर्वत्र देखे जा सकते हैं आदिकाल से ही चंदबरदाई जैसे कवियों ने यदि पृथ्वीराज चौहान जैसे वीर आश्रयदाताओं का प्रशस्तिगान किया तो उसके मूल में राष्ट्र-भावना ही प्रमुख रही। रीतिकाल जैसे शृंगारिक युग में भी भूषण जैसे कवि शिवाजी के माध्यम से राष्ट्र की गरिमा को अभिव्यक्त करते हैं। देश की कमजोर और असहाय अवस्था में भूषण जैसे कवि ने ही अपने छंदों के माध्यम से सोयी हुई दुर्बल जनता में राष्ट्र प्रेम, धर्म तथा जाति-प्रेम के भाव फूँके तथा उन्हें अपने राष्ट्र के प्रति उनके कर्तव्यों की और प्रेरित किया। राष्ट्र की दुखती नब्ज को पहचानते हुए वीर रस पूर्ण काव्य के माध्यम से महाबली शिवाजी और महायोद्धा छत्रसाल बुंदेला को अपना आश्रयदाता बनाया और बताया कि किस प्रकार से इन्होंने भारतीय संस्कृति, धर्म की मर्यादा की सर्वत्र रक्षा की-

राखी हिंदुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद-बिधि सुनी मैं।

X X X

साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल रुखी दुनी मैं।¹⁷

आधुनिक युग में देश के स्वतन्त्रता संग्राम में अनेक साहित्यकारों ने राष्ट्रभक्ति का पाठ जनता को पढ़ाया और आजादी में अपना योगदान दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ‘अंधेर नगरी’, ‘भारत दुर्दशा’ और विशेष रूप से ‘नीलदेवी’ जैसे नाटकों ने सुप्त जनता को चेताया और राष्ट्र के प्रति सोचने के लिए बाध्य किया, इसी युग में बालमुकुन्द गुप्त ने ‘शिवशंभु के चिट्ठे’ के माध्यम से और प्रताप नारायण मिश्र आदि ने ‘इनकम टैक्स’ जैसे निबंधों के माध्यम से देश प्रेम का बिगुल बजाया।

इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद के नाटक ‘चन्द्रगुप्त’, ‘स्कन्दगुप्त’ और ‘ध्रुवस्वामिनी’ और इन नाटकों के गीतों ने भारतीय संस्कृति के गौरव का पाठ पढ़ाया। ‘चन्द्रगुप्त’ नाटक में ‘अलका’ नागरिकों को इस गीत के माध्यम से प्रोत्साहित करते हुए देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करती है और परतंत्रता की बेड़ियों को ताड़ने के लिए वीरों को प्रोत्साहित करती है-

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती।

X X X

प्रवीर हो जयी बनो-बढ़े चलो बढ़े चलो
अन्य गीतों में भी देश भक्ति के भाव देखे जा सकते हैं-
अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।

भारतीय सांस्कृतिक गौरव और राष्ट्रीय अस्मिता के भाव निराला, सुभद्राकुमारी चौहान, प्रेमचन्द और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों में भी देखे जा सकते हैं। इन्होंने मातृभूमि के लिए मर-मिटने की भावना का संचार समाज में किया। ‘चतुर्वेदी’ जी की कई रचनाओं में देश के प्रति गम्भीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोसर्ग की उत्कट भावना दिखाई देती है। इनकी ‘सिपाही’ कविता में चतुर्वेदी जी का मानना है कि सिपाही भूमंडल पर रामराज्य लाने का सामर्थ्य रखता है और आकाश को भेदकर राष्ट्र विजेता बन सकता है-

खींचो राम राज्य लाने को
भू-मंडल पर त्रेता
बनने तो आकाश छेद कर
उसको राष्ट्र-विजेता

‘पुष्प की अभिलाषा’ कविता में एक पुष्प के माध्यम से राष्ट्र के प्रति समर्पित होने का भाव दर्शाया गया है-

“मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जाते वीर अनेक”

सुभद्रा कुमारी चौहान की ‘झाँसी की रानी’ कविता ने भी सुप्त, बेबस और लाचार जनता में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया-

‘खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी,
बुंदेले हर बोलो के मुँह हमने सुनी कहानी थी।

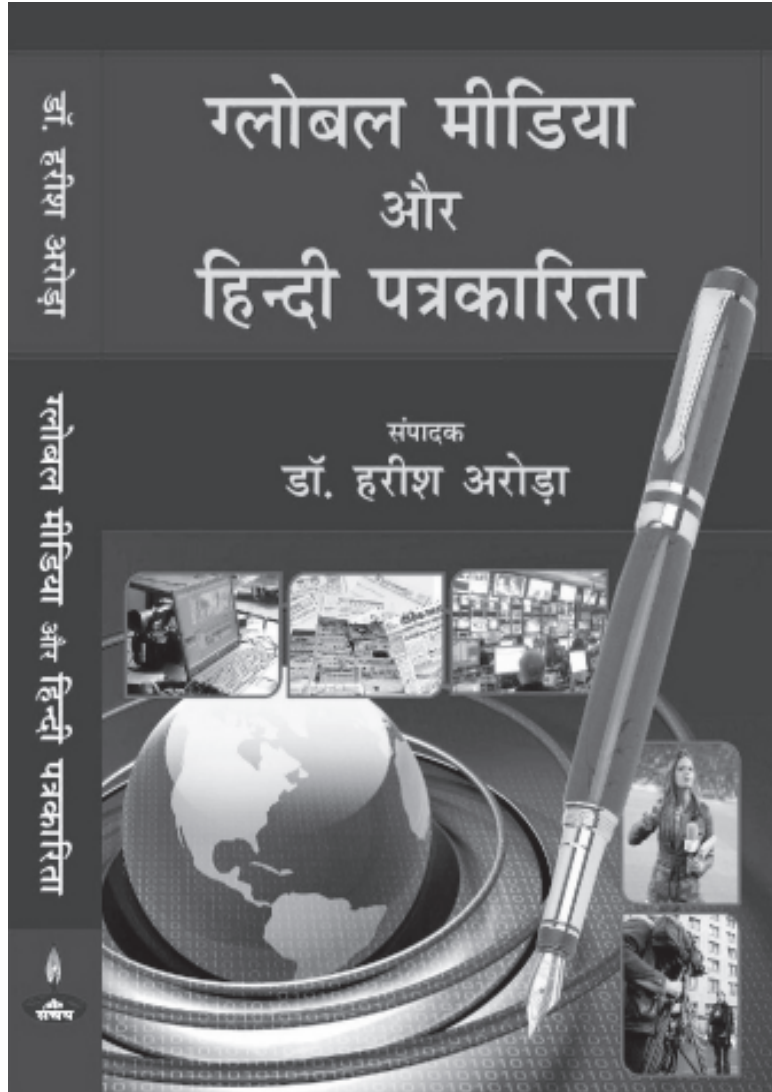
यह कविता पूरे हिन्दुस्तान के जन-जन की आवाज बनी। इसी प्रकार हिन्दी साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से महान नैतिक मूल्यों सत्य, अहिंसा, दया परोपकार, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, करुणा और धैर्य जैसे मूल्यों के माध्यम से समाज के सामने सत् का पक्ष रखा। इनमें हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त और रामधारी सिंह दिनकर आदि प्रमुख हैं। सियारामशरण की 'बापू' कविता में उन्होंने नैतिक मूल्यों पर आधारित अतीत के गौरव का गान किया। प्रेमचन्द के उपन्यासों कर्मभूमि, रंगभूमि और गोदान जैसे उपन्यासों में भी राष्ट्रीय भावना की सशक्त अभिव्यक्त को देखा जा सकता है।

सारतः कहा जा सकता है कि चाहें हिंदी सिनेमा हो या साहित्य, दोनों ही सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ साहित्य ने हमारी हजारों साल की परंपरा, संस्कृति और अस्मिता को सुरक्षित रखा है वहीं सिनेमा भी इस दिशा में पीछे नहीं रहा उसने हमारे सुप्त और अनछुए बोध, ज्ञान और अनुभवों को हमारे सामने उपस्थित किया है और उसे नया विस्तार दिया है और राष्ट्र को मजबूत बनाने में समय-समय पर फिल्मों के माध्यम से अपना सराहनीय योगदान दिया है।

संदर्भ

- 1 राष्ट्रवाद का भारतनामा: भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद-अभय प्रसाद सिंह, पृष्ठ 6
- 2 राष्ट्रवाद का भारतनामा: भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद-अभय प्रसाद सिंह, पृष्ठ 6
- 3 सकारात्मक भारतीय राष्ट्रवाद-प्रकाश दुबे-मीडिया विमर्श- श्रीकांत सिंह, पृष्ठ 17
- 4 सामाजिक परिदृश्य और व्यावहारिक अंतर्मन-धरवेश कठेरिया, मीडिया विमर्श-सिनेमा विशेषांक-3, डॉ. श्रीकांत सिंह, पृष्ठ 80-81
- 5 राष्ट्रीय चेतना के सर्वश्रेष्ठ गीतकार-डॉ. अलका पाण्डेय, मीडिया विमर्श-सिनेमा विशेषांक-3, पृष्ठ 76
- 6 राष्ट्रीय चेतना के सर्वश्रेष्ठ गीतकार-डॉ. अलका पाण्डेय, मीडिया विमर्श- सिनेमा विशेषांक-3, डॉ. श्रीकांत सिंह, पृष्ठ 75
- 7 भूषण ग्रन्थावली-सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- शिवा बावनी, छंद सं.-50, पृष्ठ 5

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तक



भारतीयता के पोषक पं० दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता

डॉ. सारिका कालरा

हिंदी विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय राजनीति और इतिहास में पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसा नाम है जो कई दशकों तक लगभग उपेक्षित रहा लेकिन आज लोगों को उनके बारे में जानने की उत्सुकता है पिछले चार सालों में यह उत्सुकता और बढ़ी ही है। वर्तमान सत्ताधारी दल क्यों इस व्यक्तित्व के अद्वितीय प्रभाव में है, दीनदयाल उपाध्याय जी की जन्मशती भी पिछले वर्ष मनाई गई। कौन हैं पंडित दीनदयाल उपाध्याय? क्या है उनका व्यक्तित्व? उनका कृतित्व? राष्ट्रवाद और उनके विचारों का क्या साम्य है? देश के अन्य महापुरुषों की तरह क्यों वे पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं रहे? क्यों वे वर्तमान संदर्भों में अधिक प्रासंगिक हो चुके हैं? इन सभी प्रश्नों के जवाब अगर पाने हों तो यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि हम उनके विचारों से अवगत हों उनके व्यक्तित्व के उन पहलुओं को जानने का प्रयास करें जिनके कारण इतने सालों तक उन्हें पिछली सरकारों द्वारा लगातार उपेक्षित किया जाता रहा और उनके द्वारा कुछ महापुरुषों के गुणगान द्वारा अपने कर्तव्य की इतिश्री समझी जाती रही। संभवतः उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन निश्चित ही हमारी सोच को एक दिशा प्रदान करेगा और पूर्वाग्रहों को एक तरफ रखकर हम एक ऐसे व्यक्तित्व का साक्षात्कार करेंगे जिसके विचारों की इस देश को आज अधिक आवश्यकता है।

दीनदयाल उपाध्याय (जन्म 1916, मथुरा) भारतीय जनता पार्टी के संस्थापकों में से एक थे। भारतीय जनता पार्टी पहले जनसंघ के नाम से जानी जाती थी। वे एक मेधावी छात्र थे और कानपुर में स्नातक की पढ़ाई के दौरान ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आए तथा आगरा में उन्होंने नानाजी देशमुख और भाऊ जुगाड़े के साथ मिलकर उन्होंने पूरी तरह से संघ के लिए काम भी किया। सरकारी नौकरी की वरीयता सूची में भी उनका नाम सबसे ऊपर रहा लेकिन उन्होंने 1955 के बाद पूरी तरह से अपने आप को संघ के लिए समर्पित कर दिया। दीनदयाल उपाध्याय की यह अवधारणा थी कि स्वतंत्र होने के बाद भारत के विकास का आधार अपनी भारतीय संस्कृति हो न कि अंग्रेजों के द्वारा प्रदान की गई पश्चिमी विचारधारा। वैसे तो आजादी के बाद ही भारत में लोकतंत्र बहाल हो गया था लेकिन उनके मन आशंका थी कि भारत लंबे वर्षों तक गुलाम रहा है तो यह उसके लिए मुश्किल होगा कि अंग्रेजों की संस्कृति से अपने आपको दूर रख पाए। उनके लिए लोकतंत्र भारत का जन्मसिद्ध अधिकार था न कि अंग्रेजों का दिया गया उपहार। वे भारत के उन विचारकों में से एक थे जो चाहते थे कि आजादी के बाद भारत में एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हो जिसमें सरकार प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान करे, लोकतंत्र अपनी सीमाओं में रहे उसे जनता के विश्वास और धर्म के आलोक में सुनिश्चित करे। उनके द्वारा स्थापित 'एकात्म मानववाद' (1965) की अवधारणा पर आधारित राजनीतिक दर्शन भारतीय जनसंघ (वर्तमान भारतीय जनता पार्टी) की देन है। वे मानते हैं 'एकात्म मानववाद' प्रत्येक मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एक एकीकृत कार्यक्रम है। एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत को पश्चिमी अवधारणाओं जैसे- व्यक्तिवाद, लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद पर निर्भर नहीं हो सकता। उनका मानना था कि पश्चिमी सिंधातों और विचारधाराओं के कारण ही मौलिक भारतीय विचारधारा के विकास और विस्तार में बहुत बाधा आ रही है।

उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं परंतु यहाँ पर विशेष रूप से उनके पत्रकारीय जीवन का मैं उल्लेख करना चाहूंगी। भारतीय पत्रकारिता अनेक पत्रकारों के अवदान से समृद्ध है पंडित दीनदयाल उन्हीं में से एक हैं भले ही उनका पत्रकारीय जीवन 20 वर्षों का रहा हो परंतु उन्होंने अपने लेखों और विचारों से लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट किया। 1947 से उन्होंने पत्रकार की भूमिका का निर्वाह करना शुरू किया। उनकी दृष्टि पत्रकार की थी और लेखनी साहित्यकार की थी। भारत विभाजन के तुरंत बाद उन्हें 'राष्ट्रधर्म' मासिक का कार्य सौंपा गया लेकिन यह काम उनके लिए बिल्कुल नया था लेकिन फिर भी उन्होंने इसे एक चुनौती की तरह स्वीकार किया और यहीं से उन्होंने इस सूत्र को अपनाया कि एक मनुष्य के लिए सबसे पहली निष्ठा अपने देश के प्रति होनी चाहिए। उन्होंने इन विचारों को अपने लेखों के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया। साहित्य लेखन और पत्रकारिता के संबंध में उनका विचार था - "समाचार और साहित्य में मूल अंतर यही है समाचार मुख्यतः दूसरों की घटी और कृति से संबंध रखता है, जबकि साहित्य प्रधानतः आत्माभिव्यक्ति है। वस्तुगतता समाचार का मुख्य गुण है, किन्तु

अनगिनत घटनाओं में से समाचार संकलनकर्ता कुछ ही को रिपोर्ट करता है। सबका संकलन न तो संभव है न आवश्यक। घटना का यथार्थ वर्णन मात्र समाचार नहीं बल्कि रुचिकर तथा जनता की जिज्ञासा को शान्त करने वाला भी होना चाहिए। संवाददाता के दायित्व का भी उन्होंने बखूबी वर्णन किया है वे लिखते हैं 'जनरुचि और जनजिज्ञासा का विचार करते हुए भी संवाददाता केवल दृष्टा और उदासीन भाव से काम नहीं करता। जनरुचि और जनजिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उनके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है। यदि उसे इस दिशा का भान नहीं रहा तो समाचार संकलन तथा वितरण में उसे सर्व कठिनाई बनी रहेगी तथा उसमें वह कोई विशेष योगदान नहीं दे सकेगा।' उपर्युक्त दोनों ही कथनों में हमें पं० दीनदयाल उपाध्याय जी की पत्रकारीय दृष्टि की सूक्ष्मता का भान होता है। पत्रकार किसे कहते हैं? समाचार क्या होता है? पत्रकार के क्या दायित्व हैं? आदि इन विषयों पर एक मानवीय दृष्टि और साथ ही गंभीर संवेदनशील दायित्व की अपेक्षा भी दिखाई देती है।

आज 'राष्ट्रवाद' शब्द बहुत चर्चा में है। भारतीय संदर्भ में राष्ट्रवाद का तात्पर्य होता है कि राष्ट्र के प्रति सरोकार रखना, राष्ट्र के प्रति सरोकार रखने में सिर्फ भौगोलिक सीमाएं ही नहीं आती बल्कि यहाँ के लोग, यहाँ का इतिहास, हमारी जीवन संस्कृति इत्यादि के प्रति जो भाव है वह सब राष्ट्रीयता के दायरे में आता है। राष्ट्रीयता की यह भावना किसी भी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है जो संगठन को सुदृढ़ करती है। सुभाष चंद्र बोस के अनुसार राष्ट्रवाद मानव जाति के उच्चतम आदर्शों सत्यम, शिवम्, सुंदरम् से प्रेरित है वे मानते थे कि भारत में उस समय राष्ट्रवाद ने एक ऐसी शक्ति का संचार किया है जो लोगों के अंदर सदियों से निष्क्रिय पड़ी थी। स्वामी विवेकानंद के अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद मनुष्य के विस्तार और विकास पर केंद्रित है। भारत एक जड़ भौगोलिक इकाई नहीं है बल्कि वह एक चेतन भौगोलिक इकाई है जो केवल सीमाओं और सैन्य बलों पर ही केंद्रित नहीं है। उनके अनुसार सारी दुनिया के लोग एक परिवार, एक कुटुम्ब के हैं इसे समझना ही दरअसल भारतीय राष्ट्रवाद को समझना है। जिसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहकर संबोधित किया गया और यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' राजनीतिक सत्ता का उच्चारण नहीं है बल्कि उपनिषद् का उच्चारण है कुछ लोगों का यह मानना है कि यह राष्ट्रवाद स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में ही उभर कर आया है जबकि सच्चाई यह है कि चाणक्य और चंद्रगुप्त के समय में भी यह राष्ट्रवाद विद्यमान था। भले ही उस समय आर्यावर्त अलग-अलग राज्यों में बंटा हुआ था लेकिन वह समाज बौद्धिक चेतना से संपन्न संतों और ऋषि-मुनियों द्वारा संचालित था। हमारी भारतीय अवधारणा में राज्य निर्मित भौगोलिक या प्रशासनिक इकाईयों गौण थी अपितु इनके स्थान पर हमारी चेतना, संस्कृति, मूल्य आधारित जीवन और परंपराएँ ही इसे राष्ट्र बनाती हैं। आज राष्ट्रीयता शब्द बहुत संकुचित हो गया है और वर्तमान संदर्भों में तो इसे तथाकथित विद्वानों द्वारा कुछ लोगों की भावनाओं तक ही सीमित कर दिया गया है जो कि अत्यंत हास्यास्पद है।

प० दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता इन्हीं राष्ट्रवादी विचारों की द्योतक है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता उनके विचारों में रची बसी थी। इसके कई उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। उस समय के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कहा था कि अंग्रेज तो चले गए लेकिन उन्होंने हमें बताया नहीं कि देश की सीमा क्या है? इसलिए कच्छ का यह हिस्सा हमारा था या नहीं, यह हमको नहीं पता। इस पर दीनदयाल जी ने एक बेबाक टिप्पणी करते हुए कहा था कि जिसको देश की सीमा ही मालूम नहीं, वह प्रधानमंत्री के दायित्वपूर्ण पद पर भला कैसे बना रह सकता है? विदेशी संस्कृति की अपेक्षा वे भारतीय संस्कृति के घोर पक्षधर थे। जो तथाकथित भारतीय अंग्रेजी संस्कृति के हिमायती थे उनके संदर्भ में उनका कहना था कि भारतीय संस्कृति ने समय समय पर अपने भीतर बहुत सारे परिवर्तनों को आत्मसात किया है लेकिन उसने कभी अपनी मूल आत्मा को क्षति नहीं पहुंचाई यही उसकी सार्वभौमिक दृष्टि है। अपनी इसी बात को उन्होंने अपने 'एकात्म मानववाद' के सिद्धांत में भी समझाने की कोशिश की। जो लोग भारतीय संस्कृति के सम्मुख पाश्चात्य संस्कृति को श्रेष्ठ समझते थे और मानते थे कि भारतीय संस्कृति पर जोर देने से पुरानी कुरीतियों, अंधविश्वासों को दूर करना मुश्किल हो जाएगा उनके लिए उनका कहना था कि हर राष्ट्र की एक आत्मा होती है, जिसमें उसकी संस्कृति समाई होती है और कोई भी राष्ट्र राज्य बिना आत्मा के जीवित नहीं रह सकता है। टीका टिप्पणी और आलोचनाओं को वह निष्पक्ष तौर पर स्वीकार करते थे। उनके भारत-पाक युद्ध पर लिखे एक लेख पर एक अंग्रेजी अखबार ने उनकी कटु आलोचना की थी जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार की थी। वास्तव में एक सच्चे पत्रकार थे। लोककल्याण को उन्होंने पत्रकारिता का प्रमुख धर्म माना। वे मूलतः एक सामाजिक संगठन के प्रचारक थे और इसी उद्देश्य से वे पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आए थे। 'राष्ट्रधर्म', 'पांचजन्य' एवं 'स्वदेश' जैसी पत्रिकाएं उनकी देख-रेख में ही आगे बढ़ीं। पत्र प्रकाशन से संबंधित छोटे से छोटे कार्य संपादन, प्रूफ, मुद्रण आदि को भी सहर्ष करते थे। कभी कभी तो समाचार पत्र के बंडल ढोने तक का काम वे स्वयं करते थे। बल्कि उसके मुद्रण और प्रकाशन पर होने वाले व्यय के लिए आवश्यक साधन भी जुटाते थे। समाचार पत्र वितरित करने वालों को वे समाचार जगत का सबसे महत्वपूर्ण अंग मानते थे। पत्रिकाओं के लिए वे समय-समय पर संपादकीय भी लिखते थे। उनके इन लेखों को पढ़ने पर जो एक मुख्य रूप से उभर कर आती है वह है कि उन्होंने कभी भी नेहरू युग नीतियों की आलोचना कभी भी असंयमित भाषा में नहीं की।

सामाजिक सरोकारों से भटकी हुई पत्रकारिता को वह समाज के लिए हानिकारक मानते थे। उनके लिए पत्रकार समाज

का मार्गदर्शक था जो समाज को एक नई दिशा दे। राजनीतिक लिप्सा से प्रेरित लोगों के लिए उनका मानना था कि शिखर पर बैठने की अभिलाषा तो सबकी होती है लेकिन मंदिर के शिखर पर तो कौवा भी बैठता है। हमें नींव बनना चाहिए जो कि मंदिर की भव्यता को और मजबूत करे। यही दर्शन उनके लेखों में भी झलकता है। भाषा की सौम्यता की तरफ उनका बराबर आग्रह रहता था। गीता के उपदेश से प्रेरित वे कटू सत्य को भी प्रिय रूप में कहने के हिमायती थे। उनके अनुसार कथन यदि सत्य और प्रिय दोनों ही हो तो परंतु देश और समाज के लिए अनिष्टकारी हो तो उसे न लिखना ही पत्रकार का आदर्श मानते थे।

दीनदयाल उपाध्याय की सबसे बड़ी चिंता समाचार के स्रोतों को लेकर थी। वह चिंता आज भी हमें देखने को मिलती है। वह है अनुवाद की समस्या। समाचार जगत का पूरा कार्य व्यापार अंग्रेजी के सहारे ही चलता था। स्वतंत्रता से पहले भी भारतीय पत्रों में विदेशी खबरों का ही बाहुल्य रहता था। 'रायटर' समाचार समिति विदेश के समाचारों विशेषकर ब्रिटेन, अमेरिका, और पश्चिमी यूरोप के समाचारों को ही विस्तार से देते थे। जितने समाचार संकलित किए जाते थे वे अंग्रेजी के पाठकों को ध्यान में रखकर किए जाते थे। स्वतंत्रता के बाद भी जैसा परिवर्तन होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ। विदेशी समाचार एजेंसियों से आने वाले अंग्रेजी समाचारों को अनुदित करना पड़ता था। भारतीय भाषाओं के पत्र भी अंग्रेजी भाषा के अनुवाद के आधार पर काम चलाते थे। पत्र संख्या कम होने के कारण समाचारों को छोटा करके काम चलाया जाता था। समाचार संपादक केवल अनुवादक बन कर ही रह जाता था यही नहीं बल्कि अनुवाद के चलते मूल समाचार के अर्थ का ही अनर्थ हो जाता था। अंग्रेजी मानसिकता के लोग भारतीयता की मूल आत्मा का ही हनन कर जाता था। पं० दीनदयाल उपाध्याय अंग्रेजी समाचार एजेंसियों के इस आधिपत्य को ही समाप्त करने के समर्थन में थे। उनका मत था कि जब तक विदेशी समाचार, अंग्रेजी भाषा, राजनीति, एक ही समाचार एजेंसी और सरकारी सूचना विभाग के एकाधिकार को समाप्त नहीं किया जाएगा तब तक हिंदी पत्रकारिता का विकास संभव ही नहीं है। यही नहीं उन्होंने 'हिंदुस्तान' समाचार को परिपुष्ट करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

1963 में दीनदयाल उपाध्याय ने लंदन में विपक्ष के नेता के रूप में उद्बोधन दिया था। उनके उस उद्बोधन पर स्थानीय अखबार 'द गार्जियन' ने लिखा था कि यह वह शख्स है जिस पर भारत को विशेष ध्यान देना होगा। लेकिन हमारा यह दुर्भाग्य है कि भारतीय पत्रकारिता जगत का यह सूर्य और भारतीय विचारों और संस्कृति का पोषक यह महान व्यक्तित्व असमय ही अस्त हो गया। पं० दीनदयाल उपाध्याय के विचार और उनकी पत्रकारिता संबंधी मान्यताओं पर अध्येता यदि सूक्ष्म निरीक्षण करें तो पाएंगे कि उनके पत्रकारिता संबंधी विचार किसी पार्टी विशेष का समर्थन नहीं करते अपितु पत्रकार के दायित्व, उसके उद्देश्य और समाज के लिए उसके योगदान पर वे गंभीरतापूर्ण चिंतन करते हैं।

आज के समय में इंटरनेट के आविष्कार के बाद जब लोगों ने अपनी भावनाओं को आवाज देनी शुरू कर दी है। अपनी कुंठा और निराशा को लोगों ने सोशल मीडिया के द्वारा अभिव्यक्ति कर उसे अपना प्रमुख हथियार बनाना शुरू कर दिया है, पश्चिम की नकल कर उसके सिद्धांतों पर अपनी भारतीयता को ताक पर रख दिया है ऐसे में अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि हम ऐसे व्यक्तित्व और उसके कृतित्व द्वारा उस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को जानने का पुनः प्रयास करें। आज राष्ट्रवाद जैसे विषय पर बहस की आवश्यकता है। मीडिया ही शक्ति है जो देश को एक वैचारिक मंच प्रदान करता है जनमानस के वैचारिक दृष्टिकोण को संचालित करने के लिए मीडिया या पत्रकारिता की आज एक अहम भूमिका हो जाती है। आज की पत्रकारिता भविष्य का इतिहास बनेगी। आज की दिग्भ्रमित पत्रकारिता तभी इस उद्देश्य को पा सकेगी जब वह अपने वास्तविक उद्देश्यों और मूल्यों को जान ले। आलोचना के लिए आलोचना और आँख मूंद कर पीत पत्रकारिता की लीक पर न चले। आवश्यकता है अपने को जानने की, अपने मूल को जानने की, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान को जानना भी आवश्यक है, यह समय की मांग भी है पर वहीं तक हम उसका अनुसरण करें जहाँ तक वह हमारी सांस्कृतिक आत्मा का अतिक्रमण न करे।

संदर्भ

1. इक्कीसवीं सदी और हिंदी पत्रकारिता, सं० अमरेन्द्र कुमार तथा निशांत सिंह, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2001
2. आधुनिक पत्रकारिता : चुनौतियां और संभावनाएं, डॉ अशोक कुमार शर्मा, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, सं० 2006
3. पत्रकारिता : दशा एवं दिशा, सं० प्रोफेसर पी० के० आर्य , आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, सं० 2007
4. राजस्थान साहित्य अकादमी, 2010

GLOBALIZATION, SOCIAL MEDIA AND NATIONALISM

Dr. Mansi Khanna

Freelance Writer & Media Educator

Mrs. Manju Khanna

Assistant Professor, MBICEM

Globalization

Globalisation is the trend of increasing interaction between people on a worldwide scale due to advances in transportation and communication technology, nominally beginning with the steamship and the telegraph in the early to mid-1800s. Economically, globalization involves goods and services, and the economic resources of capital, technology, and data.

Media refers to the different means of communication like radio, television, internet etc. It plays a very important role in shaping human mind. Mass media is a section of the media determined to reach a greater audience. Most globalization theorists believe that media has played an important role in acceleration of globalization. With the increase in the importance of economic, cultural and technological integration between countries, it has a great impact on our society's personal lives. It is because of globalization that today there is an increased access to a broad range of media.

Globalization has a great influence on the media and further its impact on us. The most visible effect of globalization is wide spread communication. The introduction of newspapers, magazine, internet and TV has immensely helped to spread information and has helped people to come together from all over the world. In my opinion the impact of globalization on media has its own advantages and disadvantages but however, the advantages are much more than the disadvantages. The process of globalization has led to opening up of people's minds towards not just the walls within which they stay but also be aware of what is happening around the world. Ever since mass media came into existence, companies have used this as a means to communicate to let a large number of people become aware about their products. On the other hand even the people watching it or reading about it are in a position to gain maximum benefit as with the help of media they will be able to differentiate between good or bad as per their requirements. Globalization in media is not just restricted to advertisement. In other fields, in fact, in every field has opened up broader communication lines bringing the various companies, economy and more importantly the countries together.

The contribution of internet in the role of media has changed over the past few years and has increased distinctively. In this global society the digital media is intensely transforming the consumer behaviour and traditional media business models. Today with the ease of internet access a large number of people are consuming more media in entirely different ways and a lot of the time not paying for it. Internet is one of the easiest ways to associate oneself with the media in today's fast paced world. Moreover with the ease of accessibility of the internet even the younger generation has started adopting this to keep themselves aware of what is happening around them. Media also uses internet in their favor to publicize and distribute what they want to highlight.

Be it at school or work or home everybody has an access to the internet these days. People especially students are hyper active on social networks like facebook and LinkedIn. In fact these social networks sometimes bring integrity and helps people stay connected. It acts as a platform to the society for better connectivity and hence being aware or updating themselves regarding

what is happening around them.

As we all know very well, a lot of people are unable to go through the newspapers every day because of either very busy schedule or ignorance or because of travelling. However most people in today's generation are connected with internet. Therefore, people read about the elections about the various political issues through the internet. Even the media updates all its news at every instant on the internet and gets a lot of responses from its viewers which helps them get feedbacks to make amendments.

The role of internet has a lot to contribute to the economical aspect or impact of the media. With the share market and the online trading and banking facilities people have started shifting from the conventional ways of doing things to this modern easier and hustle-free method. The term globalization in economics is about the different aspects of cross-border transactions, free international capital flows, portfolio investments, diverse and rapid blending of technology.

Globalization has an immense effect on the cultures of the different countries. It has always had a very deep impact on the cultural identity. 'The free flow of information, speedy progress in the field of technology, transportation and communication has converted this world into a "global village'. The reductions in costs and better facilities and variety of choices have changed the tastes of individual and societies leading to a stronger integration. The use of internet through the media provides an inter mix and exchange of ideas and thoughts between countries. The media provides the news about not just within the country but also around the globe. Along with the general news about one's nation, media also highlights the cultural and traditional aspects of the country. With the help of globalization and internet being a source of it, there is an exchange of these cultural and traditional aspects leading to an amalgamation of culture.

In today's world almost every house has access to television and over the years the accessibility has increased immensely. Till the press media had not come into picture, people used to communicate by writing letters and sending them through direct mails. The beginning of press media came as an information revolution. This press media has become a source for promoting, projecting and supporting the process of providing information. It assists the journalists in networking and the globalization has led to revolution of news circulation, printing, editing and reportage. It is because of globalization that the spread and exchange of news becomes possible which leads to people of one country knowing not just about the news within their own country but to be aware about international news as well. Therefore, globalization has led to the timely processing and distribution of information.

Press also plays a role in educating the people on political parties, international happenings, entertainment and glamor industry, celebrity gossip and sport events. After the press media there was the discovery of radio and television. This led to a different kind of revolution as press media restricted one to just read but radio and television appealed to other senses as it had both visual and audio message.

Radio is one of the easiest and cheapest media sources. It is easily available in most of parts of the country. The biggest advantage of the radio as a means of media globalization is that it can be understood by even an illiterate person and can cater to a larger number of people. Moreover it has a greater impact on the rural community as they are able to connect to the radio easily. Therefore, the importance of radio in the society is indispensable. Most people in today's generation are not regular listeners to the radio unless they listen to it for music on their way to work. The use of radio amongst them is now restricted only to music and that has also reduced remarkably because of technological advancements like i-pods and music phones.

Social media

It seems like within the past few years, almost everything has begun to revolve around social media. There are many different social networking sites out there, with many different purposes and means of expression, but they all have one thing in common. They all let you 'follow' people and friends. In the past, the communicating and free sharing of thoughts among people were restricted by long distance, nationality and/or religion as STD and ISD calls which used to cost a lot. But now, even these barriers cannot stop the flow of information and knowledge. The new

world of social networking allows free sharing of thoughts. Online social networks are created by websites such as Facebook, which has emerged as a giant in this social world.

New media is basically one of the most famous means of mass communication using digital technology for example internet. We can say that, in new media the content is available through the internet which is accessible on any digital device which contains interactive user feedback which helps in the creative participation of the users. Common examples of new media include websites such as online newspapers, blogs, wikis, video games and social media. New Media transmit content through connection and conversation. It allows users around the world to share, comment on, and discuss a wide variety of topics. Unlike any of past technologies, new media is grounded on an interactive community.

Most people today define social media as apps on their smartphone or tablet, but the truth is, this communication tool started with computers.

Smartphone addiction is closely related to Internet addiction, which is considered an impulse-control addiction. Teens who are addicted to the Internet tend to experience an increase in the consumption of alcohol and use of tobacco.

The past few years have brought a great change or we can say transformation in existing media for example – photography, animation, television, film, newspaper, radio etc.

Teenagers and young adults (ages 16 to 24) are the most intense users of social media. Benefits of social media use include enhancing friendships and decreasing loneliness. But there is also evidence that overuse has a negative impact on self-esteem and satisfaction with their lives.

Trend is the most important term used by teenagers now-a-days. Each and every one of us follow someone or the other. People follow trend which is followed by other people. Earlier we used to click pictures to make sweet memories. But now, with the changing trend we click pictures not for the sake of sweet memories rather to show off in front of the world. We click pictures, post them with caption, and seek for likes, followers, subscribers and comments. This whole change in the trend is the impact of social media on us.

Teenagers or we can say youth utilize many different forms of social media such as Facebook, Instagram, snapchat, twitter etc. These apps or different forms of social media help them to connect with their peers. While these applications provide the user with the ability to connect with others all around the world and access news and information, they also can lead to compulsive and problematic cell phone use, cyberbullying, sexting, and Facebook depression.

Social media is quickly evolving in front of our eyes and it is almost impossible to reject and hide from this new form of media. Not only is it an important part of socialization within peer groups but now it is used to market and motivate people to become a part of a larger community.

Life is getting complicated in every phase but the technology has made life very convenient. It is evolving in the world at very fast pace and affecting people from various ways. And Whatsapp is one of the medium of such technology. Now-a-days it is becoming a popular word among youth, which is currently available in the various electronic items such as i-Phone, Android, windows phone and computer also. Whatsapp is an amazing application, and with the help of it we can connect ourselves to the society and the whole world. It is an effective medium for the flow of information and ideas.

It is not at all difficult or impossible now a days to contact our nearest and dearest ones whom we are not able to meet. We can simply text them or even call them through WhatsApp. WhatsApp provides the feature of video calling, audio calling and texting. It's easy for us to contact them that too without generating heavy bills.

Everybody is becoming so busy with their lives that they don't even have time to communicate with their family members. Our time is getting thinner and thinner with busy work schedule and family commitments. Social networking sites give us a chance to communicate in a speedy and effective manner.

Nationalism

The term nationalism refers to loyalty of an individual or a group to a nation. This term is

primarily used when referring to a group that elevates the status of one nation above others and focuses on the degradation of others' cultures or the promotion of their own.

Mass Media in its varied forms; possesses the ability to disseminate information across multiple segments of society. It is true that the internet has taken this ability to new heights. However, even when such marvels did not exist, the media still played a crucial role.

Internet media connects at once the many to the many. Like print media, it acts as a tool of emotionally-driven connectivity through which political communities, nations, regions, sects, tribes— are reimagined or reimagined.

Nationalism with respect to media is termed as cyber nationalism. In other words, Cyber-nationalism is nationalism which based on its activity on the internet. It is also known as internet-nationalism or online- nationalism. Cyber-nationalism has different aspects which may be helped by the government as a part of the propaganda. As a social phenomenon cyber-nationalism is group of nationalists who are gathering on the internet and sometimes it includes offensive actions against other countries, such as hacking. This phenomenon was found in several different countries such as Japan, Russian Federation, and China. Internet makes it easy to communicate across physical borders. It was expected that people who are living in the different countries communicate better than before.

Cyber-nationalism is part of the governmental policy. Governments use the internet as a part of propaganda to mobilize people. Internet has advantage to encourage and improve nationalism. It catch more attention than traditional media such as Newspaper and TV. Moreover, Internet makes it easier to organize activities.

In conclusion, Globalization reflects our identity and connects us to the rest of the world. Globalization is a very debatable topic as with a lot of positive aspects there are quite a lot of limitations or negative impact of globalization on the countries. Where it has benefited a lot of countries on one hand, on the other it has also generated significant international oppositions over all the issues that has increased inequality and environmental degradation. As the process of globalization becomes more prominent the role of media and advertisement and consumerism also increases considerably. Therefore, globalization is not only integrating trade, investment and financial markets but also integrating the consumer markets. At the same time the consumer receives an overflow of information through commercial advertising. Just by sitting at home one can get the entire news of the world by any medium like radio, television or internet. This is possible only because of globalization. Globalization in media has also made us aware about the economic and political conditions of a particular country. It also provides us with entertainment of all sorts.

The world is getting smaller, and through the use of technology such as social media, the way we deliver instruction is changing. Social media is the future of communication. It includes an array of internet-based tools and platforms that increase and enhance the experience of sharing information. Whether it be print media, electronic media or even new media; media has undoubtedly played a major role in highlighting nationalism round the world.

References

- * <https://en.wikipedia.org/wiki/Cyber-nationalism>
- * <https://sites.temple.edu/tudsc/2017/12/13/twitter-bots/>
- * <http://www.thehansindia.com/posts/index/News-Analysis/2016-04-14/Contemporary-Indian-Nationalism-The-threat-to-India-comes-from-within/221518>
- * <http://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1111/aspp.12194/full>
- * <http://moodyview.com/look-mass-medias-effect-anthropology-nationalism-native-awareness/>
- * <https://www.toppr.com/bytes/nationalism-india-class-10th/>
- * <https://www.ukessays.com/essays/media/effects-of-globalization-on-media-media-essay.php>
- * <https://en.wikipedia.org/wiki/Globalization>

भीमराव अम्बेडकर की पत्रकारिता में राष्ट्रवाद

दीपा भण्डारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

पत्रकारिता का अभ्युदय ही सामाजिक संघर्ष से हुआ है। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में अम्बेडकर का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अम्बेडकर सामाजिक एवं राजनीतिक क्रान्ति के जनक हैं। उनके विचारों में राजनीतिक एवं सामाजिक संयोजना भी थी। अम्बेडकर दूरदर्शी थे, उनका मानना था कि राजनीतिक गतिविधियाँ सामाजिक धरातल को प्रभावित करने वाली होनी चाहिए। हिन्दू समाज की दुर्दशा देखकर उन्हें भयंकर पीड़ा होती थी। वे वर्तमान सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में थे। अम्बेडकर ने अछूत समाज के विकास को ध्यान में रखते हुए अछूत दंश की मुक्ति के लिए सेवाभाव से पत्रकारिता को औजार बनाकर अपने एवं समाज के विचारों को आगे बढ़ाया और समाज की भलाई के लिए इस माध्यम का पुरजोर इस्तेमाल किया। उन्होंने पत्रकारिता को मानवीय मूल्य और मानवीय स्वतंत्रता के अत्यंत उपयुक्त साधन सिद्ध किया। अनेक विद्वजन अम्बेडकर को सिर्फ अस्पृश्यों का नेता मानते हैं, वे अस्पृश्यों के नेता नहीं बल्कि संपूर्ण विश्वभर के सामाजिक संस्थाओं, शिक्षा, नारी वर्ग का पिछड़ापन, समाज सुधार, आर्थिक भ्रष्टाचार के साथ-साथ सामाजिक भ्रष्टाचार, छुआछूत आदि विषयों को अपनी संपादकीय टिप्पणियों और लेखों के द्वारा आलोचना का विषय बनाने वाले सच्चे पत्रकार संपादक थे। विश्वभर की सामाजिक क्रान्ति के प्रेरणा स्रोत रहे अम्बेडकर को विश्वपत्रकारिता के अग्रणी संपादक मानना होगा। उनकी पत्रकारिता समाज के कमजोर और निर्बल लोगों की समता एवं बन्धुत्व की भावना के लिए समर्पित थी। अम्बेडकर ने अपने क्रांतिकारी विचारों, अनुभवों और विभिन्न विषयों पर अपनी राय को अपने अखबारों के द्वारा जनता के सामने रखा। इन अखबारों में शामिल थे मूकनायक, बहिष्कार त भारत, समता, जनता व प्रबुद्ध भारत। इन पत्रिकाओं के माध्यम से अम्बेडकर ने दलितों, आदिवासियों, किसानों और अल्पसंख्यकों की समस्या को उठाया था।

अम्बेडकर ने 31 जनवरी, 1920 को कोल्हापुर के शाहू छत्रपति की आर्थिक मदद से 'मूकनायक' का प्रकाशन प्रारंभ किया। 'मूकनायक' पत्रकारिता ने दलित प्रबोधन, दलित शिक्षण, दलित जागृति और दलित संगठन के बीज बोने और दलित पत्रकारिता के मार्ग को प्रशस्त करने का कार्य किया। 'मूकनायक' के आलेख में कहा गया कि भारत के लिए केवल एक स्वतंत्र देश होना पर्याप्त नहीं है। उसे अपने सभी नागरिकों को धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में बराबरी की गारंटी देनी होगी। उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि हर वासी को आगे बढ़ने के लिए अवसर प्राप्त हों और उन्हें यह अवसर उपलब्ध करवाने के लिए सभी जरूरी कदम उठाने होंगे। उन्होंने लिखा कि 'शायद ही कोई व्यक्ति इतना नीच होगा जो इस तर्क को गलत बताए कि अगर ब्राह्मणों द्वारा ब्रिटिश सरकार की अन्यायपूर्ण सत्ता का विरोध जायज है तो दमित वर्गों का सत्ता के हस्तांतरण के समय, ब्राह्मणों के शासन का विरोध करना इससे भी सौ गुना जायज है।'¹

अम्बेडकर ने एक अन्य लेख में लिखा कि दमित वर्गों के लिए वह स्वराज जिसमें उनके मूल अधिकारों की गारंटी न हो, स्वराज नहीं बल्कि दासत्व का एक दूसरा स्वरूप होगा। 'मूकनायक' में स्वराज की समानता के विषय में अम्बेडकर ने लिखा, 'साधारणतः राज्य शासन के दो उद्देश्य हैं- एक शासन तथा दूसरी संस्कृति। शासन अर्थात् अनुशासन एवं शांति। शांतिभंग दो प्रकार से हो सकती है- विदेशी आक्रमण से या आन्तरिक असामंजस्य से। किसी भी राष्ट्र में वर्ग तथा गुट रहेंगे ही। यही नहीं, वर्गों तथा शक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक हित सम्बन्ध परस्पर विरोधी होते हैं, ऐसे विरोध के कारण एक व्यक्ति अथवा वर्ग द्वारा अपने भले के लिए दूसरे व्यक्ति अथवा वर्ग का शोषण करना, प्राण घातक हमला करना, संपत्ति को नुकसान पहुँचाना अथवा अन्य किसी तरीके से नुकसान पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया तो आन्तरिक शांतिभंग होने की संभावना होती है। शान्ति के अभाव में सामाजिक जीवन धोखे का होता है तथा मानव का नित्यप्रति का कार्य अवरुद्ध हो जाता है।'² 'मूकनायक' के जरिये अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय-उन्मुखी जनसंचार के एक नए युग की शुरुआत की। उन्होंने अपने जीवन में कई मोर्चे पर लड़ाईयाँ लड़ी और सांप्रदायिकता एवं संप्रदायवाद का तीव्र विरोध किया। संप्रदायवाद विरोधी लड़ाई में अम्बेडकर ने अपनी पत्रकारिता के हथियार का कितने रूपों में इस्तेमाल किया, यह जानकर ही हम उनके तथा उनके युग के पत्रकारिता की ऐतिहासिक भूमिका समझ सकेंगे और आज के संप्रदायवाद के संदर्भ में पत्रकारिता के दायित्व के बारे में समग्र धारणा बना

सकेंगे। वस्तुतः अम्बेडकर के समय की पत्रकारिता एक मिशन थी, उनके पीछे सामाजिक बदलाव की भूख थी, आज की तरह पैसे और सत्ता की भूख नहीं थी।

अम्बेडकर ने दबे-कुचले वर्गों के उत्थान के अपने अभियान को आगे बढ़ाने के लिए 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इस संस्था ने अछूतों सहित सभी जातियों की सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक व राजनैतिक समता के लिए कार्य करना शुरू किया। उन्हें अनेक कड़े विरोधों का सामना करना पड़ा। अतः अपनी बात लोगों तक पहुँचाने के लिए अम्बेडकर ने 3 अप्रैल 1927 को मुंबई से मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन शुरू किया। इसमें दलित समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। 'बहिष्कृत भारत' पत्र के प्रवेशांक में अम्बेडकर लिखते हैं कि, 'छह वर्ष के बाद पुनः हम पुराने स्वाध्याय को नए नाम से शुरू कर रहे हैं। अस्पृश्यों की स्थिति छह वर्ष के बाद और भी शौचनीय हो गयी है। इसलिए समाचार की आवश्यकता और अधिक तीव्र है।'³ इस प्रकार अम्बेडकर नए पत्र की शुरुआत पुराने पत्र से जोड़कर करते हैं और शायद यह वैकल्पिक पत्रकारिता के एक प्रतिमानों में है कि जब तक जिस समाज के हित एवं उत्थान की बात की जा रही हो, उसके उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक संघर्ष करते रहना चाहिए।

अम्बेडकर चाहते थे कि पत्रकार और पत्रकारिता जगत का एक और दायित्व देश में रहने वाले सभी धर्म और समुदाय को समान नजर से देखने का है। आज की तारीख में पत्रकारिता को लोकतन्त्र का चौथा स्तंभ मानने के पीछे की भी यही वजह है। लेकिन वर्तमान में तमाम मौके पर पत्रकारिता निष्पक्षता के अपने मूल तत्व को बचाकर नहीं रख पाती और एक पक्ष बनी नजर आती है। सत्य का अन्वेषण और समय की सहज अभिव्यक्ति ही पत्रकारिता का कार्य है। अम्बेडकर की पत्रकारिता इसी विचारधारा को अग्रेषित करती है। उन्होंने रूढ़िवादी दृष्टिकोण की जगह स्वतन्त्रता, निष्पक्षता व वस्तुपरकता को पत्रकारिता का आदर्श माना था। वे नैतिकता को पत्रकारिता का मुख्य हिस्सा मानते थे। अम्बेडकर ने अपने सभी पत्रों को समाज की संपत्ति माना। उन्होंने बहुजन समाज की मुक्ति के लिए सेवाभाव से पत्रकारिता को आगे बढ़ाया।

अम्बेडकर समाज सुधारक, चिंतक, पत्रकार, संविधान शिल्पी के रूप में प्रसिद्ध थे। उन्होंने किसान और नारी विषयक विभिन्न लेखों को बहुजन पत्रकारिता के केंद्र में रखने का प्रयास किया। उनकी पत्रकारिता मानसिक पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए कार्यरत रही है। अम्बेडकर ने दलित, पिछड़े, आदिवासी आदि जाति-समूहों को केंद्र में रखकर बहुजन पत्रकारिता की अभिकल्पना की थी, वे सभी किसी न किसी श्रम-प्रधान जीविका से जुड़े होते हैं। उनकी पहचान उनके श्रम-कौशल से होती आई है। अम्बेडकर ने श्रम-संस्कृति को सदैव पुरस्कृत किया था। उन्होंने अपनी जुझारू पत्रकारिता के माध्यम से भारत के वंचित जनता के प्रश्नों को सुलझाने का फल प्रयास किया हुआ परिलक्षित होता है। पत्रकारिता में विभिन्न भाषाओं का ज्ञान होना अम्बेडकर आवश्यक मानते थे। वे बहुभाषाविद संपादक थे। 'अम्बेडकर को यह सहजबोध था कि जाति और पितृसत्तात्मकता के बीच अपवित्र गठबन्धन है और वे एक-दूसरे को मजबूती देते हैं। उनका यह भी मानना था कि ब्राह्मणवादी, पितृसत्तात्मक जाति पदक्रम महिलाओं और निम्न जातियों को हमेशा अपने अधीन रखना चाहता है ताकि उसकी सत्ता बनी रहे।'⁴ इसलिए अम्बेडकर ने इन दोनों वर्गों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। अपने जीवन में लेखनी के माध्यम से उन्होंने धर्मनिरपेक्षता का मुद्दा उठाया। वे मानते थे कि सच्ची पत्रकारिता की एक शर्त मानवीय अस्मिताओं के बीच समानता और समरसता का वातावरण उत्पन्न करना है। इसलिए उनकी दृष्टि हमेशा उपेक्षित एवं निचले वर्गों की ओर होती थी। सत्ताकेंद्रित पत्रकारिता को अम्बेडकर ने नकारा था। इस बात को मानना होगा कि गरीबों और वंचितों के पक्ष में विश्वपत्रकारिता को खड़ा करने का महत्वपूर्ण कार्य अम्बेडकर ने किया था।

अम्बेडकर भारतीय राष्ट्रवाद में प्रबल आस्था रखते थे। इसको दृढ़ बनाने के लिये उन्होंने सदैव सामाजिक एकता पर बल दिया। अम्बेडकर ने कहा, 'लोग यह नहीं सोचें कि वे पहले भारतीय हैं, तब हिन्दू, मुसलमान, सिन्धी और कन्नड़ हैं। बल्कि यह सोचें कि वे शुरू से अंत तक भारतीय हैं।'⁵ राजनीतिक संगठनों के द्वारा वह एकता नहीं आ सकती जो एक राष्ट्र के स्थायित्व के लिये जरूरी है। इससे राष्ट्रवाद की भावना सुदृढ़ हो सकती है। उनके विचार से सामाजिक एकता के बिना राजनीतिक एकता प्राप्त करना कठिन है। भारतीय समाज की भविष्यकालीन उन्नति का सपना अम्बेडकर ने देखा था। पत्रकारिता में संस्कृति, समता, सभ्यता और स्वतन्त्रता का समावेश है। भावों की अभिव्यक्ति, सद्भावों की उद्भूति को ही पत्रकारिता कहा जाता है।

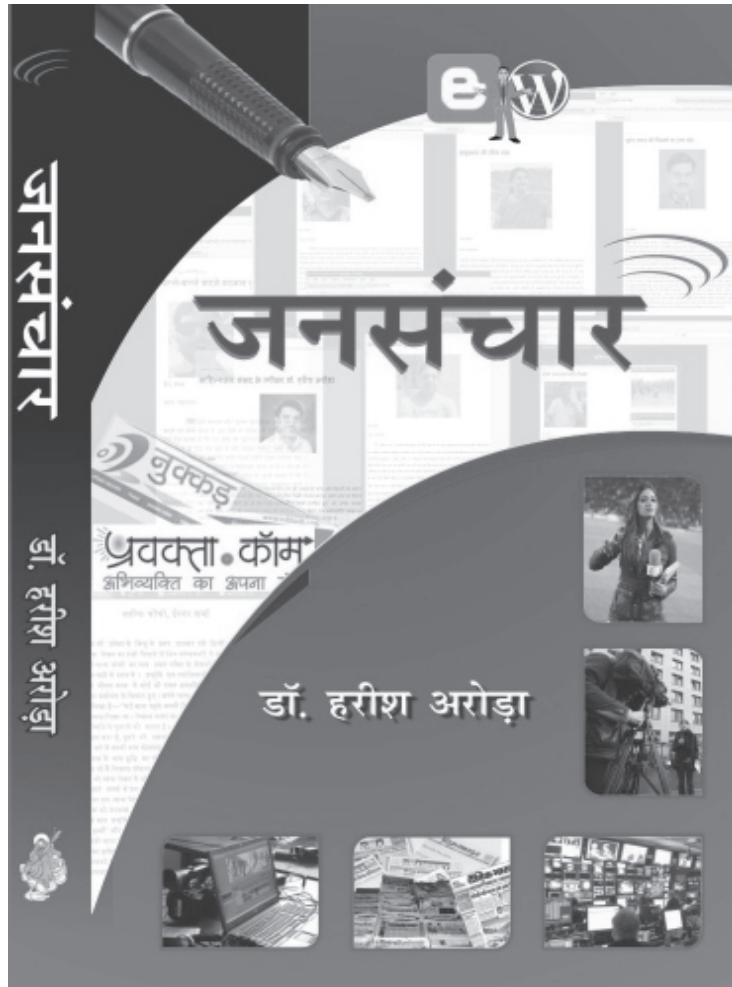
निष्कर्षतः स्पष्ट हो जाता है कि अम्बेडकर की पत्रकारिता ने आरंभ से ही ग्रामीण समाज, जाति और अछूत प्रथा के मुद्दों पर कड़ा प्रहार किया। उन्होंने अपनी पत्रकारिता में राष्ट्रीय भावनाओं का अच्छा परिचय दिया। उनमें राष्ट्रवाद की भावना का उदय उन लोगों में आस्था के साथ हुआ, जो निर्धन, अछूत और शोषित थे। वे उन सभी के लिये समानता एवं नागरिक अधिकार चाहते थे, जिनको उनसे वंचित रखा गया था। उनकी राष्ट्रीय भावनाएं दृढ़ एवं गंभीर थी। वे पूर्णरूप से एक सच्चे राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रीय सम्मान और सामाजिक एकता उनकी राष्ट्रीय भावना का मूल आधार है। अम्बेडकर व्यक्ति से बढ़कर राष्ट्र को मानते थे। उन्होंने पत्रकारिता को मानवीय मूल्य और मानवीय स्वतन्त्रता के अत्यंत उपयुक्त साधन सिद्ध किया। अम्बेडकर अत्याचारों के विरोध में लड़नेवाली वैचारिक चिंतनधारा निर्माण करने वाली जुझारू पत्रकारिता के निर्माता थे। उन्होंने अपने

क्रांतिकारी विचारों, अनुभवों और विभिन्न विषयों पर अपनी राय को पत्रकारिता द्वारा जनता के सामने रखा। अम्बेडकर पत्रकारिता को सामाजिक परिवर्तन के औजार के रूप में मानते थे। उन्होंने कहा था समकालीन पत्रकारिता ब्राह्मण व्यवस्था की पोषक है अतः एक अलग ब्राह्मणोत्तर पत्रकारिता के विकल्प को अछूतों को प्रदान करने का प्रयास किया। भारतीय जनमानस में अम्बेडकर की पहचान संविधान प्रणेता, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री आदि अनेक रूपों में रही है लेकिन उनके पत्रकारीय योगदान को अनदेखा किया गया। उनकी पत्रकारीय चेतना मानसपटल पर एक गहरी छाप छोड़ती है। अम्बेडकर का पत्रकारीय योगदान समाज को दिशा देने एवं उनकी चेतना को उभारने के लिए प्रयासरत रहा है। वे मानते थे कि सच्ची पत्रकारिता की एक शर्त मानवीय अस्मिताओं के बीच ओर समरसता का वातावरण उत्पन्न करना है। अम्बेडकर की पत्रकारिता हमें यह सिखाती है कि जाति, वर्ण, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र, लिंग, वर्ग आदि शोषणकारी प्रवृत्तियों के प्रति समाज को आगाह कर उसे इन सारे पूर्वाग्रहों और मनोग्रंथियों से मुक्त करने की कोशिश ईमानदारी से की जानी चाहिए।

सन्दर्भ :

1. उद्धृत- बेचैन, डॉ. श्यौराज सिंह, 'अंबेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता', 2010
2. मूकनायक, भटकर, पांडुरंग नंदराम द्व सं.ऋ, द्व अंक 2 ऋ 14ए नरवरी 2ए 1920
3. बेचैन, डॉ. श्यौराज सिंह, 'अंबेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता' पृ. सं. 172
4. उद्धृत- यथावत्
5. हंस, बुद्धशरण, डॉ. अम्बेडकर के विचार, पृष्ठ सं. 103
6. बेचैन, डॉ. श्यौराज सिंह एवं गौतम, एस. एस., सं. 'मीडिया और दलित' 2009
7. प्रसाद, मणिशंकर, धर्म, धर्मनिरपेक्षता और राजनीति
8. नैमिशराय, मोहनदास, बहुजन समाज, नीलकंठ प्रकाशन

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तक



Folk culture and traditional media as pillars of Development Communication

Tanvi Dahiya

Department of Journalism and Mass communication
A.I.J.H.M. College, Rohtak, Haryana

Abstract

Folk culture and folk values form the bedrock of a nation and it becomes important for us to study the different aspects and potential of that. This paper tries to understand the meaning of the folk culture and how folk/ traditional media can be incorporated in the field of Indian journalism in order to tap its full potential in the process of development communication.

Keywords: culture, folk media, development communication

Understanding the term 'Folk culture'

Culture represents a set of shared attitudes, values, goals and practices which manifests itself in almost all economic, social and other activities. Folk culture refers to the unifying expressive components of everyday life as enacted by localized, tradition bound groups. Earlier conceptualizations of folk culture focused primarily on traditions practiced by small, homogenous, rural groups living in relative isolation from other groups. Today, however, folk culture is more inclusively recognized as a dynamic representation of both modern and rural constituents. Historically, handed down through oral traditions and now increasingly through dynamic computer mediated communication, it relates to the cultivation of community and group identity. Folk culture often carries with it a sense of belonging with the native place that it originated in. If elements of a folk culture are copied by or moved to a foreign locality, they will still carry strong connotations of their original place of creation.

The field of folk culture involves creative hobby activities that are based on folk traditions, heritage culture, intangible cultural heritage, study, preservation and recording of national and local cultural traditions, public culture events, activities of societies, courses and supplemental training.

Intangible cultural heritage is the living heritage of our ancestors which is kept alive by communities and individuals through their skills, traditions, customs and habits which are passed onto succeeding generations.

Diffusion of folk culture through traditional media

Traditional folk media is a term used to denote people's performances. This term refers to the performing arts which can be described as the cultural symbols of the people. It is not just confined to dance and music but also includes art and crafts. Traditional folk media originated as a consequence of people's need to express themselves. Folk media represents the people in their natural habitat with all their contradictions and multifarious activities. It gives a glimpse of their style of speech, music, dance, dress and wisdom.

Being ancient forms of art, the folk media is very close to the hearts of the people. Traditional media holds universal appeal. Its understanding is direct and at the personal level. Traditional folk performances are uniformly popular irrespective of the educational, social and financial standing of any community.

Various researchers have established the importance of traditional folk media in development communication. Traditionally it was primarily used for entertainment, social communication and persuasive communication. Now, there are efforts to involve folk media for conveying development messages. Folk media have been increasingly recognized as viable tools to impart development messages, both as live performances and in integration with electronic mass media.

Characteristics of traditional folk media which makes it an indispensable tool for Indian journalism are as follows:

- They have sustained the onslaught of time.
- They have changed with the changing times.
- It is spontaneous.
- It is flexible.
- It is cost effective and therefore has enhanced repeatability.
- It gets immediate feedback which increases attentiveness.
- It is direct and personal.

Folk culture and media reflect social changes

Traditional media is dynamic. It changes with the times embracing new elements from time to time. This is why its contents change in different eras of time. Its dynamic nature is also reflected in the fact that most of the folk and traditional media are responsive to the major events and happenings in the society. Folk songs address popular and major issues of the different periods of time. Some of them depict stories about our freedom struggle against the colonial rulers and other socio economic issues that were taking place in that period of time.

The folk culture of Ojapali of Assam is basically aimed at creating awareness among the masses through a judiciously combined dance and scriptures sequences. This tradition is active even today and is carrying on its duties properly for creating awareness about various social issues among the masses in the areas where it is performed.

Thus we can see that most forms of traditional and folk culture in our society can be incorporated into mainstream journalism and media as carriers of development communication messages aimed at the masses at grassroots level in each and every nook and corner of the country. This will ensure a much higher scale of success to our efforts in this particular field of communication aimed at the rural underprivileged and illiterate masses.

Traditional folk media as a tool for development communication

Development communication is the kind of communication which is functional to the prompt conversion of a country and the masses from the insufficiency to the self moved state of economic and social progression. Traditional media is the time privileged, predictable means of the mass communication which includes the mediums of communication before the dawn of internet such as newspapers, television, magazines etc.

Communication is the key to human development. Participation of people is an essential element in any sort of development process. Effective meaningful communication is essential during the development task because it is important that the requirements, attitudes, traditional beliefs and system of the target community are taken into account before the initiation of any development process. This would help in developing a holistic approach towards the community development.

Folk media looks like the day to day life pattern of the rural masses. It is a purposeful and unprompted form of art. Basic media is very beneficial to address the sensitive issues in the society. Folk media have an extraordinary impression on the rustic society because of their adequate idioms, purposeful significance and entertainment component. In countries with the low rate of literacy, folk media can overcome the barriers of language and understanding.

The Indian society is multifaceted society with dissimilar beliefs, castes and language issues and millions of people still residing in villages. To those people, mass media is demonstrated to be glitzy, objective and implausible in the contrast with the conversant recital of traditional artist with whom the local people can connect at every level. The folk arts like dholki baris, loknatya, jatra, keertana, puppetry etc have been put to good use by political leaders and other harbingers of social change.

Conclusion

Folk culture and media have created a marvelous impact within the society in the past by persuading the attitudes of people in the right direction but now a days, things have changed and developmental authorities have started to ignore the great potential of folk media in transforming a society. The new age media have begun to steal the show but a very miniscule number of people have access

to that. So it becomes imperative for us as a nation to understand the importance of this traditional treasure which is an essential key to reach out to the masses and address the various social issues which are proving to be detrimental to the growth of our nation.

References

<http://www.kul.ee/en/activities/folk-culture>

<http://download.nos.org/srsec335new/ch25-core.pdf>

http://www.thusong.gov.za/documents/artic_pres/dev_comm.htm

INDIA'S ECONOMIC GROWTH TRIGGERED BY JOURNALISM ENROUTING NATIONALISM

Garima Bhardwaj
PGDAV College (E)
University of Delhi

Key Words : Nationalism, Patriotism, Journalism, Indian Economy, Preventive Measures, Pre-Independence Economic Exploitation, Illicit Economic Practices, Cashless Economy, Corruption Reduction, Welfare Schemes, Reactive Measures, Multi-Climate Nation, Biodiversity Hot-spots, Multi-Religious Nation, Yoga and Ayurveda, Indian Cinema, Ancient Indian Art Forms, Economic Upliftment, Sense of Satisfaction, Brain Drain Prevention, Derived Nationalism.

NATIONALISM AND PATRIOTISM

The two are often confused and frequently assumed to mean the same thing. However, there is a subtle but not subtle difference between the two terms. Nationalism and Patriotism, both show the relationship of an individual towards his or her nation.

Patriotism is the ideology of attachment to the homeland, to show tremendous support for the nation. This attachment to the homeland can also be there because one's ancestors belong to that land or one is actually born there despite, at times, being aware of the dark side of the nation.

Apart from the ancestral link and birth place perspective, the above described attachment is often associated with the nation's cultural and spiritual heritage, splendid historical events, traditions, value systems and what not.

Nationalism, on the other hand, is one step ahead. Here, all the elements of patriotism are involved along with the "individuality" of a person as the essential additional factor. The statement "I AM A PROUD INDIAN" defines the notion where an individual tends to associate and represents oneself through the identity of the nation first.

A patriot supports one's nation but a nationalist firmly believes that his or her own nation is undoubtedly above others or superior to others. Where the feeling of accepting the nation's heritage with pride, exists, no matter what !! It can be said that Nationalism is a type of extreme form of Patriotism. (source : www.differencebetween.info)

INDIAN CONCEPT OF NATIONALISM

Steve Connor defines the Newton's theory of Gravity as one of the most famous anecdotes in the history of science. The young Isaac Newton was sitting in his garden when an apple falls on his head and in a stroke of brilliant insight, he suddenly comes up with his theory of gravity. But the thing that must be noted here is that the law has been prevailing since forever and Newton just brought this fact of law in front of the world. So, as with the term Nationalism. This is just an English word, which estimated to be dated from the year 1844 (and became more important in the 19th century when the major countries of the world got divided in two powers due to world war) but the date of the generation of the feelings imbibed within this word can never be estimated. There are various examples in our Vedas, Puranas and in other ancient mythological spiritual books depicting the responsibility and loyalty towards one's nation indicating the feel of the word Nationalism itself.

In the Pre-Independence scenario, the biggest single contribution to the "development of nationalism" and not mere "nationalism" (as it was pre-existed) was the Economic Critique of the British colonial rule by the Indian Intelligentsia. Dadabhai Naoroji, in 1867, propounded the Drain theory that put forward the idea that the Britain had been draining India and this was the key

cause of poverty in the nation and termed as the fundamental evil of British rule in India. The economic critique of British colonialism was one of the dominating agendas of Indian national freedom struggle movements.

At the time of the partition, Pakistan's Nationalism was based upon democratic values; implied from the statement given by Mohd. Ali Jinnah " Aaj se Pakistan me har dharma, varg, samudaae rahega" but soon, there have been deviations from the democracy in the form of military coups and political uncertainty and it turned out to be Islamic Democracy due to depicting nationalism from mere religious angle.

The most prevailing religion within a nation, can be one of the factors that develops nationalism not because there are comparatively more people believing in that particular religion but, because that nation has great history, pride events, artistic scriptures and monuments associated with that religion. But , nationalism at the same time, combines other religions too that are also the indispensable part of the proud culture of the nation.

A true nationalist, loves his or her nation not looking it from the spectacles of the religion but beyond any specified word, indeed. Swami Vivekananda, was a true nationalist who never limited his nationality under any boundary. In other words, meticulously believing the notion of "Nation First" in each and every aspect is Nationalism.

JOURNALISM AND NATIONALISM

For nationalism, there have to have a combination of equally essential three factors - Object (Material to feel proud about) , Thought (for the careful concern about the object) and Emotions (consistent feel of pride). Media plays a substantial role by letting people know the objects a nation have, facts about these objects to develop the genuine Thoughts of care and protection of these objects and creating a vibe of nationalism on the Emotions part, with the amalgamation of the two , within an individual and collectively within the masses. Where objects not only includes geographical or physical objects, but also our culture, traditions, ethics, values, history and historical heroes , monuments, heritage, education system, economy, market, policies, schemes etc.

Media, the 4th pillar of the democracy is equipped with the powers at par with the rest of the three, Judiciary, Executive and Legislature. So, as the power is real impactful and can intensely affect the lives individually, socially, economically, financially , administratively, in a fast-phase or gradually, spiritually and also offensively , it must deal with a degree of discipline in the execution of its' freedom.

Media is a medium of communication and is of various kind such as Advertisement Media, Hyper Media, Print Media, Mass Media, Telecast Media, News Media, Recording Media, Social Media. Now, in the era of globalization, there is a change in the functioning of Media which can be bifurcated in between Traditional Media and New Media/Electronic Media/Social Media. Wherein, traditional media has always been, more or less "news" oriented. On the other hand, new media is more powerful than ever because it is "individual opinion" oriented, based upon the fundamental of Freedom of Speech.

As per a report by the Internet and Mobile Association of India (IMAI) and Kantar IMRB in Feb, 2018 with title " Internet in India 2017" ; the number of internet users in India is expected to reach 500 million by June 2018. Urban India, with an estimated population of 455 million, already has a share of 295 million people using internet, while rural internet penetration has grown from 18% in Dec. 2016 to 20.26% in Dec. 2017.

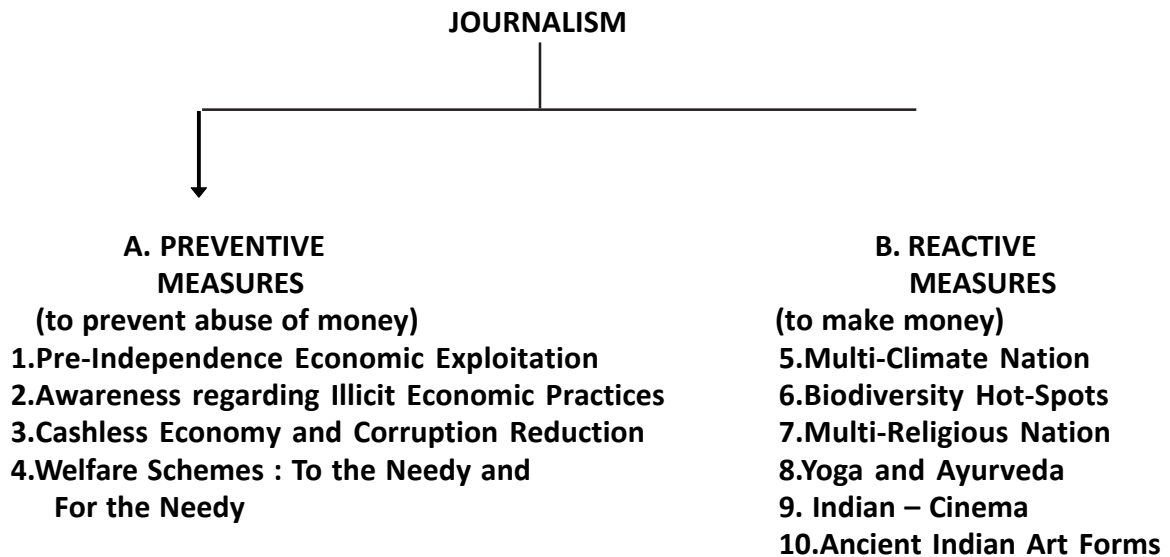
The pragmatic analysis of the report indicates the occurring of the revolutionary changes in the Indian Demographics of Internet users. Electronic Media, has been expanding its reach, that can undoubtedly be used as a tool of developing the feel of Nationalism. At the same time, it can also aggravate a critical situation if adversely utilized, in a nation with "Multi-Sensitive" factors.

JOURNALISM , INDIAN ECONOMY AND NATIONALISM - A VIADUCT

A number of researches, concludes the theory "Money Motivates". In context of Nationalism, this theory is all about how economic development of a country leads towards the better standard of living of its citizen which ultimately develops the sense of satisfaction that the nation provides to them and therefore motivates the feel of Nationalism in return.

The development of the sense of satisfaction, also prevents the emigration of highly trained or qualified people from the nation. This Brain Drain prevention, will make our human caliber remain within the nation and make our economy grow and ultimately leading towards nationalism, despite going abroad and making them earn in millions.

Here, media plays the critical role with “Preventive” measures (to prevent abuse of money) and “Reactive” measures (to make money) in deriving or motivating Nationalism within individual and then combining and converting the motivational degrees of individual into masses.



UPLIFTMENT OF INDIAN ECONOMY

BETTER STANDARED OF LIVING

**SENSE OF SATISFACTION
(INCLUDING PREVENTION OF BRAIN-DRAIN)**

MOTIVATIONAL OR DERIVED NATIONALISM

A. PREVENTIVE MEASURES – TO PREVENT ABUSE OF MONEY

1.Pre-Independence Economic Exploitation

Media or specifically Print Media played a very prominent role in the development of Nationalism during Pre-Independence era, to make the nation get rid of economic exploitation by Britishers. Harijan of Mahatma Gandhi, Navjeevan, Qaumi Awaz and National Herald of Jawaharlal Nehru, Pratap of Ganesh Shankar Vidyarthi, Balidaan of Savarkar and Kesari of Lokmanya Tilak are a few out of the numerous great examples that played effective role in awakening the spirit of Nationalism and eagerness, among the people of India, for the independence from economic exploitation of the nation.

2.Awareness regarding Illicit Economic Practices

Nationalism is a way broad concept which not only includes the mindset of feeling pride about National Heroes, but also demanding the strict regulatory system and great punishment for the wrongdoers of the nation, in order to prevent such occurring in future.

From a past few months, Prime Time shows on News Channels are occupied by the debates over Vijay Mallya and Nirav Modi, owner of Kingfisher Airlines and Founder of N.M. Global Diamond Jewelry House respectively, for their master mind scams via unlawful and legit tactics to swindle public money.

Here, it is fulfillment of the duty of development of Nationalism, on the part of media, by awakening the masses regarding economic abuse of the nation and creating the demand among people, for the harsh punishment to culprits and asking their hard earned money back to the nation.

3.Cashless Economy and Corruption Reduction

Current government, in order to reap the advantages of the Technology and Globalization, utilized it as a tool called " Digital or Cashless Economy" to bring the transparency in transactions, as one of the ways to reduce corruption.

On Nov.8th 2016, when everyone, even in India keenly waiting for the announcement of winner of Presidential Elections of USA, the Prime Minister of India announced on TV that Rs.1000 and Rs.500 Notes will no longer be the legal currency from midnight onwards that day.

Although, India is the most corrupt country in Asian Continent and the bold move of demonetization could only extract 12% of the black money while 88% of it is still under circulation of Indian Market but as per the research of SBI and many more other researches, India is reasonably successful in reducing corruption. As per Transparency International's Corruption Perception Index 2017, India has performed well in the ranking and now stood at 81st least corrupt nation out of 180 countries round the world.

Now, it is a matter of positive or negative Journalism, to either , only emphasize upon the temporary inconvenience caused to the people or to appreciate this bold move, at least as an initiative to curb the black money from the economy, even if there are lesser satisfactory impromptu results in the short-run.

For the first time ever, India jumps 30 points to reach Top-100 club in the Ease of Doing Business 2018 Ranking. As per the World Bank, India's growth rate was 6.7% in the year 2017, while India is expected to grow at the rate of 7.3% in 2018, which is far more than that of other developing countries, despite the initial drawbacks of GST and Demonetization.

4.Welfare Schemes : To the Needy and For the Needy

There are various welfare schemes launched by govt. at different times, such as Make in India, One Rank One Pension, Pradhan Mantri Krishi Yojana, AMRUT Yojana, Janani Suraksha Yojana, Rastriya Swasthya Bima Yojana, Pradhan Mantri Awas Yojana, Atal Innovation Mission, DDUGJY, Stand up India loan Scheme, Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana, Udaan Yojana, Pradhan Mantri E-Basta, Swachh Bharat Abhiyan and many more. (source: www.pradhanmantriyojana.co.in)

But, there is no use of multi-dimensional welfare schemes, unless it is being communicated through a medium called Media. Media works as a communicator to make the schemes reach the real Needy. "Mann Ki Baat" initiative by our PM, is an apt example indicating the use of Media to reach the target audience. Under Pradhan Mantri LPG Subsidy PAHAL Yojana, millions of people gave up their LPG subsidy (to help in providing LPG connection to BPL families and prevent them from using fuels like fire wood, crop waste, coal etc. that aggravates health issues) on the mere request of our PM Modi, out of which the government saved Rs.4166 crore. It concludes the role of media as a Superpower, that can affect the believe system of the masses by mere "effective"communication.

B. REACTIVE MEASURES – TO MAKE MONEY

YEAR	GDP SHARE (in %)	CHANGE (in %)
2017	9.4	-1.32
2016	9.5	1.41

2015	9.4	1.37
2014	9.2	0.41
2013	9.2	0.05
2012	9.2	0.30
2011	9.2	-0.67
2010	9.2	-3.61
2009	9.6	-3.96
2008	10.0	-0.79
2007	10.1	

(source : www.knoema.com)

India has been witnessing scattered changes in the GDP contribution of Travel and Tourism Industry. As of 2017, Maldives is the top country with 76.6% contribution of travel and tourism industry to GDP, while India's contribution of the same, was only 9.4%.

Here, the notion of "one cannot sell the unidentified object" works. Until and unless, the world exactly knows about the real India, how come we attract people from across the globe? Now, media, with its global nexus plays a predominant role to reach the prospects by fetching their attention with the incredible characteristics of this vibrant nation. A few of such characteristics are listed below;

5. MULTI-CLIMATE NATION

India is a multi-climate nation, unlike any European or African country with either too low or too high temperature, respectively. We have four basic seasons ; Dec. to Feb. is relatively dry and cool, March to May is dry and hot, from June to Sept. southwest maritime winds bring monsoon rains to the most of the country and in Oct. and Nov. there are retreating dry monsoons originating from the northwest. (source: library of congress*)

6. BIODIVERSITY HOT-SPOTS

Out of 34 globally identified Biodiversity hot-spots with numerous endemic species, India harbors four of them, namely "The Western Ghats, The Himalayas, The Indo-Burma Region, The Sundaland including Nicobar group of Islands.

7. MULTI-RELIGIOUS NATION

The cultural scenario of India has been a continuing civilization with the timely merger of various cultures from the other continents. Where the kings from different part of the world came to the country, once called "sone ki chidiya", with the intention of looting and conquering it, but due to its prosperity and beauty, they and their generations resided here and their culture became the integral part of our culture that we are witnessing today.

Church basilica in Goa, Santa Cruz in Kochi are a few examples of Portugueses' influence while, Taj Mahal in Agra, Jama Masjid (the largest mosque of India) in Delhi are the examples of Mughals' influence over India.

8. YOGA AND AYURVEDA

Yoga is a group of physical, mental and spiritual practices and Ayurveda unlike Allopathy is one of the world's oldest "holistic" healing medicine system; wherein the both have the historical roots in the Indian Subcontinent. The fundamentals of the both depict that a sound health depends upon a delicate balance between the Mind, Body and Spirit.

9. INDIAN - CINEMA

Indian Cinema is itself a charm not only for the people in India but also throughout the world. Indian film Industry produces approximately 1600 films in various languages every year, which is far more than that of any other country's such figure.

Indian cinema is a global enterprise and have a following throughout Asia, Europe, Greater Middle-East, North America, Eastern Africa, China and other over 90 countries.

Purab Aur Paschim of Manoj Kumar in 1970, speech of Akshaya Kumar in Namaste London in 2007 or more recently the biopic movie Dangal that became transnational blockbuster grossing around \$300 million worldwide, are a few examples reflecting that Indian Cinema, in one way or the other has always been contributing to make the world see the exceptionality of our nation.

10.ANCIENT INDIAN ART FORMS

It wouldn't be wrong to term India as the center of ancient art styles of various kinds.

Indian Folk Paintings - such as Madhu-Bani, Patachitra, Kalighat Paintings, Tanjore, Kalamkari, Warli and many more.

Indian Dance Forms - such as Bharatanatyam, Kathak, Kuchipudi, Odissi, Kathakali, Sattriya, Manipuri, Mohiniyattam and many more.

Ancient Indian Architecture - such as Cave Architecture, Temple Architecture, Rock Cut and many more.

Indian Martial Art - such as Yuddhakala (warfare art), Viravidya (science of being a warrior), Shastravidya (science of weaponry), Svarakshakala (art of self-defense), Malla-yuddha, Kalarippayattu and many more. Here, kalarippayattu of Kerala is considered to be one of the oldest fighting systems still in existence in the world.

People of artistic interest can come to India to learn these exceptional art forms. Also, these forms can be globally viable to certain extent with the analytic use of E-Platform/ E-Media.

"Atithidevo Bhava" a campaign by the govt. of India and endorsed by Aamir Khan is a social awareness campaign that aims at providing a sense of wholehearted welcome of tourists in India. There are campaigns at state level too such as Madhya Pradesh tourism with slogan "Hindustan ka Dil Dekho", Rajasthan tourism with slogan "Jane Kya Dikh Jaae" and Gujarat tourism with slogan "Khushboo Gujarat ki" endorsed by Amitabh Bacchan.

Conclusion

Israel is the true example of Nationalist Nation where each and every element within the country prioritizes the nation over anything, despite the constant threat of neighboring nations.

On the part of Media houses, instead of prime time debates over the authenticity or validity of surgical strike or Demonetization, it should appreciate any move taken for the nation rather than judging it from the prospective of profit making organization.

With the impact of globalization, there appears the trend of collaboration of cultures and international awareness through new media. But the irony is that western culture has the upper-hand as per the current scenario in Indian Context.

In India, the importance of yoga and its practices has grown in the past few years; not because now most of us know, it being an Ancient Indian Science but because now people globally recognize how important it is for a sound lifestyle.

When the world had no education, we had universities like "Nalanda" where the students from across the world used to come for the education. Even now, in various European countries, Sanskrit is compulsory to be taught and also, NASA, declared it to be the "only unambiguous spoken language on the planet" and "The Mother of all the languages".

We often neglect our Sanatan Sanskriti and the scientific facts given in the oldest books of knowledge in the world the "Vedas". But, we appreciate and recognize it when the western world reveals and recognizes these ancient facts, showing lack of the feel of nationalism on our part. We Indians cannot feel pride of being an Indian unless we know what this incredible nation had been and what all it has suffered for what it has now.

On April 18th 2018, our PM talked about Nationalism, in Bharat Ki Baat Sabke Saath, from Central Hall, Westminster, London where he talked about the mindset of the people since Independence that all the work has to be done by the Govt. alone. But in reality, it is only the "cooperation of every individual in the largest democracy" that can make this nation grow either economically or in any other way; and this cooperation is not imposed. It is an emotion that comes from within, called **NATIONALISM**.

References

- Dubey Prakash, skaratom hai bhartiye rashtravaad, rashtravaad aur media, media vimarsh, jan-march2017.
- Kulshreshtra Sandeep, rashtriya muddo par zaroori hai saiyam, rashtravaad aur media, media vimarsh, jan-march2017.
- Sharma Ramesh, patrakarita mein rashtrabodh ki zaroorat, rashtravaad aur media, media vimarsh, jan-march2017.

- Yoga from <https://en.m.wikipedia.org>
- Ayurveda from <https://en.m.wikipedia.org>
- Cinema of India from <https://en.m.wikipedia.org>
- Biodiversity hotspots in India from www.biodiversityofindia.org
- Give up LPG Subsidy from <https://timesofindia.indiatimes.com>
- Brain drain from google dictionary
- Bharat ki baat, sabke saath retrieved 19 April 2018, from www.business-standard.com,

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'के.के. पब्लिकेशन्स' से प्रकाशित पुस्तक

प्रिंट मीडिया लेखन



डॉ. हरीश अरोड़ा

Relevance of Nationalism in Journalism

Dr. Jyoti Sharma

Faculty of Media Studies and Humanities
Manav Rachna International University, Faridabad

Introduction

“Nationalism is a political, social, and economic system characterized by promoting the interests of a particular nation particularly with the aim of gaining and maintaining self-governance, or full sovereignty, over the group’s homeland. The political ideology therefore holds that a nation should govern itself, free from unwanted outside interference, and is linked to the concept of self-determination. Nationalism is further oriented towards developing and maintaining a national identity based on shared characteristics such as culture, language, race, religion, political goals or a belief in a common ancestry.” (Triandafyllidou 593)

The word “nation” was used before 1800 in Europe to refer to the inhabitants of a country as well as to collective identities that could include shared history, law, language, political rights, religion and traditions, in a sense more akin to the modern conception. (Gat, Azar 214)

Nationalism is a newer word; in English the term dates from 1844, although the concept is older. It became important in the 19th century. The term increasingly became negative in its connotations after 1914 due to the World War. Glenda Sluga notes that - the twentieth century, a time of profound disillusionment with nationalism, was also the great age of globalism.

Bal Gangadhar Tilak (or Lokmanya tilak) is called the father of Indian nationalism because he was the first Indian to start the idea of nationalism in around 1890s. Because of his leadership he also found and became the first leader of the Indian nationalist movement. Indian nationalism developed as a concept during the Indian independence movement fought against the colonial British Raj. ... Indian nationalism is an instance of territorial nationalism, inclusive of all its people, despite their diverse ethnic and religious backgrounds.

Today, after 2014, there is a resurgence of nationalistic movement. A nationalistic movement can be very beneficial for national development, as people who have nationalistic fervor also have the desire to work for the betterment of the nation. Pride in one’s cultural heritage, history and achievements of the nation, makes the nation grow and flourish in the right direction.

Nationalism is wrongly identified with religious fundamentalism by some sections of the press. India has a diverse ethnic and religious culture. Despite the various religions that are practiced in the nation, all Indians must identify with the nationalism of one nation that is India or Hindustan. Religion, region or caste is not in any way to colour the Indian Nationalism

Indian Diaspora and Nationalism

However, today India as a nation is experiencing a surge of nationalistic sentiments. How far these nationalistic sentiments are beneficial for the nation and society at large is a debatable issue. India is an emerging economy, a nation with great potential for a global role in politics as well as economic concerns. After decades of subjugation at the hands of the British Empire, the nation seems to have woken up and ready to retaliate against any kind of suppression or humiliation. The IT sector has contributed in changing the national Identity from the land of snake charmers and elephants to that of the brain of the globe! The expats who had left the nation for greener pastures towards the west, found out after a few decades that they still have a nationalistic emotion towards their homeland, and as a result started contributing back to the Indian society.

That is why, it was said that “you can take an Indian out of India but you cannot take India out of an Indian” There is no doubt that the Diaspora has contributed in improving the image of India for the better.

Journalism and Nationalism

Journalism has a great role to play in turning nationalism into the right direction. Today journalism has a wider reach due to the emergence of Internet, TV and popularity of mobile phones. There are numerous TV news channels, plethora of Internet new channels, Social media that is the quickest method of spreading any news and of course the Twitter handle that has a communicative role in the sense that news is not only conveyed directly by eminent personalities, but the public can immediately comments on the news item. Blogs and Facebook also supplement the conventional journalistic channels.

The role of journalism in the Freedom Struggle of the nation was great, and at that time print medium was the main tool in the hands of journalists. Today, with globalization and internet the field of journalism is wider and more easily prone to misuse. It is very easy to generate fake news and spread it within seconds throughout the country. Given the situation, it is very pertinent that journalist play a very responsible role is generating the true spirit of nationalism in the masses.

Journalistic Ethics and Nationalism

Journalists are not individuals but part of a profession called Journalism. Journalism runs according to a code of ethics and principles. Its importance has been recognized world wide as a watchdog and in several democracies, including ours, as the fourth pillar that derives its strength not from the money bags who fund them or from governments (in fact quite the opposite), but from the people. A journalist must keep the interest of the nation as the main ethical code before he publishes any material. At times, a news paper or news channel may refrain from publishing or airing a news in the interest of the Nation.

Former Bush OLC official Jack Goldsmith defends the decision of *The New York Times* and several other American media outlets to conceal from their readers that Raymond Davis worked for the CIA. He argues that this concealment reflects the fact that American national security reporters are “nationalistic” — by which he means they are driven by a desire to protect American “interests” — and this, he believes, is a good thing.

I fully agree with Mr. Jack Goldsmith, and believe that in the interest of the nation some truths may not be reported, keeping the way it can harm the nation and benefit the hostile nations. On 29 September 2016, a military confrontation between India and Pakistan began. India said that it had conducted “surgical strikes” against militant launch pads across the Line of Control in Pakistani-administered Azad Kashmir, and inflicted “significant casualties”. Indian Media was hankering after the proof of surgical strikes over Pakistan, when it was very clear that giving evidence would jeopardize the national security.

In 2008, the 26/11 attack in Mumbai by Pakistan based members of Lashkar-e Taiba was given live reportage by many TV channels. From the transcripts, especially those from Taj Hotel and Nariman House, it is evident that the terrorists who were entrenched at those places and more than them, their collaborators across the border were watching the full show on TV. The Supreme court later pulled the media for its role and have hinted that there should be some regulation for the media to protect the national interest. In the transcripts of the terrorists there are many references to the media reports and the visuals being shown on the TV screen. The coverage of the Mumbai terror attack by the mainstream electronic media has done much harm to the argument that any regulatory mechanism for the media must only come from within.

There are various instances of fake reports spread by the use of social media that can incite religious animosity. Jammu and Kashmir is a fragile region, where the government has resorted to blocking the internet to control and contain communal violence.

Sensationalism, Fake News and Nationalism

Moreover, the tendency to sensationalize some events, which may lead to communal tension,

should be avoided. Some journalists repeatedly show such sensational news items to increase their TRP, without considering the impact on the masses. How much emphasis needs to be given to a particular news item is the desecration of the newspaper or TV channel. Making a choice is the prerogative of the media house. A national daily must give news of National important as the headline of the paper. In most cases the headline is sensational rather than important. As the competition between the news channels and the news papers has increased in today's world, the temptation to sensationalize the news and attract the reader or the audience has adversely affected the journalism.

In today's electronic journalism, fake news is the greatest threat to Nationalism. This a problem faced worldwide from USA to Russia and Germany, all nations are facing the threat of fake news feeds generated by groups with vested interests, like political parties and NGOs.

Addressing the Bundestag on the subject of fake news, Angela Merkel, The German chancellor said: "Today we have fake sites, bots, trolls – things that regenerate themselves, reinforcing opinions with certain algorithms, and we have to learn to deal with them."

India, where mobile phone are there in virtually every hand, the spread of fake news can become very dangerous, as India is a country full of diversity. In the name of Nationalism, rumors can be spread and people can get agitated and find outlet to their agitation by means of social protests and violence.

According to Sam Jawed of *The Wire*:

"2017 will go down as another year that saw a steady decline of trust and confidence in mainstream media. This was a year when mainstream media gave tough competition to social media in originating and circulating fake news... mainstream media was caught reporting fake news. In the race to be the first to break news, fact-check is the first victim. But it is not always about haste. The year also saw the more sinister variety of agenda-driven fake stories circulated by mainstream media."

Conclusion

Nationalism and Journalism are intertwined in a complex web. True nationalism can be the product of good journalism, where the journalists focus on the positive stories, inspire love for the national culture and heritage, making people aware of the strengths of the nation. However, good journalist will not shy away from reporting the negative pictures and highlighting the social evils with the view to bring a constructive change in the society. A responsible journalist will never report any story that will be harmful for the security of the nation. The threat of fake news has engulfed the journalistic community, harming the social structure of the nation. Combating the threat of fake news to retain the true spirit of nationalism is the greatest challenge for journalists today.

References:

- Triandafyllidou, Anna (1998). "National identity and the other". *Ethnic and Racial Studies*. 21 (4)
- Smith, A.D. (1981). *The Ethnic Revival in the Modern World*. Cambridge University Press.
- Gat, Azar (2012). *Nations: The Long History and Deep Roots of Political Ethnicity and Nationalism*. Cambridge University Press. p. 214.
- Glenda Sluga, *Internationalism in the Age of Nationalism* (University of Pennsylvania Press, 2013) ch 1
- Jawed Sam, *The Wire*, 03 January 2018, <https://thewire.in/media/2017s-top-fake-news-stories-circulated-by-the-indian-media>

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता में राष्ट्रवादी स्वर

डॉ. कमलेश कुमारी

शहीद भगत सिंह कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्रवाद को कुछ विद्वान आजादी के बाद की विचारधारा मानते हैं उनके मतानुसार इसका जन्म स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हुआ जो नितान्त भ्रामक अवधारणा है। राष्ट्रवाद एक अत्यंत प्राचीन संकल्पना है, जो 'ऋग्वेद' में भी मिलती है वहाँ 'राजन' या 'राजा' शब्द किसी भौगोलिक क्षेत्र पर शासन करने वाला नहीं था। यह बात अलग है कि उस काल में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग उतने व्यापक रूप में नहीं मिलता, लेकिन 'राष्ट्र' की राजनैतिक संकल्पना वहाँ मौजूद थी। जिसका उल्लेख वेदों, संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में भी मिलता है। अर्थात् हमारी भारतीय प्राचीन परंपराओं में 'राष्ट्र' की अवधारणा निरन्तर मिलती है। यह तथ्य और है कि इसमें गति 18वीं-19वीं सदी में आई। दरअसल राष्ट्र कोई भौतिक वस्तु या जमीन का टुकड़ा नहीं और न ही किसी स्थान या परिवार का नाम है।

इस दृष्टि से यह उल्लेखनीय है कि 'राष्ट्र' एक सनातन अवधारणा है जिसका जन्म 1947 में नहीं हुआ। कुछ विद्वान पुरजोर यह भी कोशिश करते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद का जन्म यूरोपीय राष्ट्रवाद के कारण हुआ जबकि सच्चाई इसके उलट है। यूरोपीय राष्ट्रवाद के जन्म की अपनी अलग पृष्ठभूमि है और भारतीय राष्ट्रवाद की अलग। इसके लिए जब तक भारतीय राष्ट्र की आत्मा यानि आध्यात्म को नहीं समझेंगे, भारतीय राष्ट्रवाद के मूल तक नहीं पहुँच सकते।

राष्ट्रवाद महत्त्वपूर्ण विचारधारा के साथ ही एक अत्यंत जटिल और बहुआयामी अवधारणा भी है। इसके अंतर्गत राष्ट्र और उसकी साझी पहचान समाहित है। इसकी मिली-जुली पहचान को भाषा, संस्कृति, धर्म एवं विश्वास मिलकर बनाते हैं। साथ ही इसकी अभिव्यक्ति में राष्ट्रीय प्रतीक भी भूमिका निभाते हैं जैसे राष्ट्रगान तथा राष्ट्रीय ध्वज। दरअसल राष्ट्रवाद एक ही झंडे तले जन आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी है और राजनीतिक स्तर पर सीमाओं का निर्धारण भी है। इस आधार पर राष्ट्रवाद उस राष्ट्र में रहने वाले किसी समूह की आस्था को, उनके विश्वास को कहा जा सकता है जहाँ यह समूह स्वयं को साझी जातीयता, धर्म, परंपरा, इतिहास संस्कृति तथा भाषा के आधार पर एकजुट मानता है। इस दृष्टि से राष्ट्रवाद के आधारभूत तत्वों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि है, वह सामुदायिक भावना है जो किसी राष्ट्र के नागरिकों में राष्ट्र हित की भावना का संचार करती है। यह राष्ट्रवादी विचारधारा यद्यपि सत्रहवीं शताब्दी में अंकुरित हो चुकी थी, किन्तु इसे पूर्णता प्राप्त हुई 1857 ई. में। राष्ट्रवाद के वेग से भारत में राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हुए। ये केवल राजनीतिक ही नहीं थे वरन् धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा जातीय जागृति का सूत्रपात करने वाले भी थे। डॉ. जकारिया के अनुसार, 'भारत का पुनर्जागरण मुख्यतः आध्यात्मिक था। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।' इस अर्थ में भारतीय राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि पाश्चात्य राष्ट्रवाद से नितान्त भिन्न है। भारतीय राष्ट्रवाद धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन से शक्ति पाता है। इन आन्दोलनों ने समाज में व्याप्त धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय भाव-भूमि भी तैयार की। इनमें राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, एनी बेसेन्ट तथा सरोजनी नायडू आदि ने भारतीय जन मानस में भारतीय सांस्कृतिक गौरव की श्रेष्ठता का भाव संचारित कर उनमें आत्म विश्वास जगाया। इस दृष्टि से राष्ट्रवाद के मुख्य कर्णधारों में राजा राममोहन राय का नाम अग्रणी है अर्थात् 19वीं शताब्दी में इन सुधारकों ने भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय भावना जागृत करने का कार्य किया। इस संदर्भ में ए. आर. देसाई का मत है कि "ये आन्दोलन कम, अधिक मात्रा में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष थे और उनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।"²

स्वतंत्रता आन्दोलन ने राष्ट्रवाद के आवेग को चहुँमुखी गति प्रदान की, जिसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका थी पत्रकारिता की। तत्कालीन भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति तथा विकास को उसके चरम तक पहुँचाया। मुनरो ने इस संदर्भ में लिखा है- "एक स्वतंत्र प्रेस और विदेशी राज एक-दूसरे के विरुद्ध हैं और ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते।"³ पत्रकारिता ने राष्ट्रीय चेतना को जन-जन की आस्था से जोड़ते हुए स्वाधीनता संग्राम की मशाल को और प्रज्वलित किया। राष्ट्रवाद में राष्ट्र की चहुँमुखी हित की भावना सर्वोपरि रहती है। इसके साथ ही इसके अंतर्गत राष्ट्र एवं समाज की आन्तरिक जड़ता को दूर

कर राष्ट्रीय एकता-अखंडता का मूल स्वर इसमें निहित होता है।

स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी पत्रकारिता में राष्ट्रबोध की भावना अपने चरम रूप में देखी जा सकती है। हिंदी पत्रकारिता अनेक चरणों से होकर गुजरी। इनमें भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता को राष्ट्रबोध की दृष्टि से 'मील का पत्थर' कहा जा सकता है। इस युग की पत्रकारिता के सम्मुख देश को आजाद कराने का एक महान उच्चादर्श था। देश राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं से जूझ रहा था। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता को पूर्णतः राष्ट्रीय चेतना की पत्रकारिता कहा जा सकता है, क्योंकि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उन सभी समस्याओं का यथार्थ रूप में उल्लेख किया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो तत्कालीन देश की दशा का जितना यथार्थ चित्रण जितनी निर्भीकता से इस काल की पत्रकारिता में किया गया था, वह हर दृष्टि से असाधारण था।

नवचेतना के साथ राष्ट्रचेतना ही इस युग की पत्रकारिता का वास्तविक ध्येय था। भारतेन्दु युगीन सभी पत्रों के उद्देश्य राष्ट्रबोध से जुड़े थे। देश केवल अंग्रेजों के शोषण से मुक्त ही नहीं होना चाहता था, वरन् भारतीयों की आन्तरिक फूट और मतभेद से भी भारतीय समाज दिन-प्रतिदिन अवनति की ओर बढ़ता जा रहा था। भारतेन्दु युगीन पत्रों में देश की एकता-अखंडता के लिए देशवासियों से अनुरोध किया गया।

19वीं सदी में संभवतः कोई ऐसा साहित्यकार नहीं था, जो पत्रकार न हो। यह राष्ट्र-भावना ही थी कि सैनिक की भाँति प्रत्येक भारतवासी अपनी मातृभूमि हेतु कुछ न कुछ न्यौछावर करने को तत्पर था। कलम के सिपाही साहित्यकारों ने अपने इस धर्म को पत्रकारिता के माध्यम से बखूबी निभाया। भारतेन्दु युगीन पत्रकार जीवन एवं समाज को नयी दिशा देना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने पत्रकारिता को अपना सशक्त साधन एवं हथियार बनाया। इन्हीं पत्रों के द्वारा ये पत्रकार भारतीय जन-जीवन में नवजागरण के द्वार खोलना चाहते थे।

अंग्रेज सरकार को समय-समय पर उद्बोधन देकर उन्हें सावधान करना उन्हें चुनौती देना तथा देश एवं समाज की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास ये पत्रकार निरंतर करते रहे। दरअसल भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता राष्ट्रीयता की प्रारंभिक भाव भूमि तैयार कर नवजागरण के बीज बोने का पुनीत कार्य कर रही थी। तत्कालीन समाज रूढ़ियों और अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ था, जो राष्ट्र की प्रगति में बाधक थे, इसके साथ ही अशिक्षा के कारण भारतवासी अपनी भारतीय पुरानी संस्कृति को विस्मृत करते जा रहे थे। भारतीय सांस्कृतिक गौरव और स्वस्थ समाज की स्थापना भी इस युग की पत्रकारिता का प्रमुख लक्ष्य रहा। इसके साथ ही हमारे प्राचीन गौरव के प्रतीक, धर्म, दर्शन, साहित्य अर्थात् राष्ट्रीय शक्ति और प्रगतिशील चेतना को भी पत्रकारिता के माध्यम से इन पत्रकारों ने दर्ज किया। वस्तुतः आज जिस राष्ट्रवाद की चर्चा की जाती है उसकी मजबूत नींव तो भारतेन्दु युगीन हिंदी पत्रकारिता में बहुत पहले रखी जा चुकी थी।

19वीं सदी का उत्तरार्ध हिंदी पत्रकारिता की राष्ट्रवादी चेतना से ओत-प्रोत था। इन पत्रकारों ने अंग्रेजों की शक्ति तथा देश की कमजोरी दोनों को समझा तथा देशोद्धार के लिए समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता उच्चादर्शों से युक्त थी। इन पत्रों में अंग्रेज सरकार के कारनामों का कच्चा चिट्ठा खोलकर भारतीयों में जन चेतना जगायी। अकाल, टैक्स, महामारी, किसानों की दशा, निर्धनता, अशिक्षा, स्त्री दशा एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रति आग्रह इस पत्रकारिता के मुख्य विषय बने। स्वदेशी के विषय में भारतेन्दु ने 23 मार्च, 1874 को 'कवि वचन सुधा' में अपना प्रतिज्ञा पत्र प्रस्तुत करते हुए कहा था- "...हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे, हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहिनेंगेखर्र और सब देश हितैषी इस उपाय की वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे।"⁴

राष्ट्र-चेतना हेतु इन पत्रकारों ने जन-जागरण अभियान चलाया। राष्ट्रबोध के बाधक तत्वों में सामाजिक रूढ़ियाँ एवं साम्राज्यवादी शोषण की भयावहता को भी इन पत्रकारों ने अनावृत्त किया। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता राष्ट्रीय चेतना हेतु समाज सुधार को सर्वोपरि समझती थी, इसलिए इस काल की पत्रकारिता में पत्रकारिता और समाज सुधार की भावना एक-दूसरे का पर्याय बनी। देशप्रेम और जनजागरण को लोगों की चिंता का अनिवार्य हिस्सा बनाया। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता तक आते-आते जनसामान्य को देश-दुर्दशा के कारणों-नतीजों को जानने की इच्छा बढ़ने लगी थी। साम्राज्यवादी ताकतों का आतंक विभिन्न रूपों में उभरने लगा था। किसान, मजदूर, स्त्री, शिल्पकार सभी इनके शोषण का शिकार बनते जा रहे थे, और उस पर अंग्रेजी शासन की लूट और अमानवीयता, जो अकाल, महामारी और भुखमरी पर भी शांत नहीं हो पा रही थी, इन तमाम कारणों ने लोगों को बेचैन किया। नवशिक्षित एवं बुद्धिजीवी वर्ग देश की इस दशा में चिंतित था। इन बुद्धिजीवी पत्रकारों ने राजनीतिक शोषण, सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों का विरोध कर जन सामान्य को जागरूक किया और इसका महत्वपूर्ण साधन बने समाचार पत्र। इन पत्रों में साम्राज्यवादी शोषण की खबरें छपने लगी, उनके अत्याचार का यथार्थ चित्रण होने लगा। कृषि, जीवन तथा समाज व्यवस्था पर संवाद होने लगे।

इस युग की पत्रकारिता के समक्ष भारतीय सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्य सर्वोपरि थे। सामाजिक मूल्यों के प्रश्नों को इन पत्रकारों ने बड़ी निर्भीकता तथा प्रगतिशीलता से उठाया। राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति आस्था के कारण इनके पत्रों में गोवध, राष्ट्रीय एकता, किसान दशा, सामाजिक-राष्ट्रीय हित, जैसे प्रश्नों को स्थान दिया। वैदिक जीवन एवं भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता के

प्रति जन सामान्य का ध्यान आकृष्ट करना भी इन पत्रकारों का लक्ष्य था। वस्तुतः भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता सामाजिक समस्याओं को लेकर आगे बढ़ी। इन्होंने बालविवाह, विधवा विवाह, बेमेल विवाह, अशिक्षा, गरीबी, सामाजिक विकृतियाँ, शोषण आदि अनेक विद्रूपताओं पर लेखनी चलाई।

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता में विशेषतः भारतीय संस्कृति एवं मातृभाषा के प्रति निष्ठा झलकती है। स्वदेशी वस्तुओं एवं भारतीय मूल्यों के साथ-साथ निजभाषा की उन्नति का प्रश्न भी राष्ट्रीय प्रश्नों में पर्याप्त महत्व रखता है। इस पत्रकारिता का पूरा फोकस निज भाषा अर्थात् हिन्दी भाषा की उन्नति पर रहा है। इस युग की पत्रकारिता निरन्तर राष्ट्र प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध रही, और राष्ट्र की उन्नति केवल मातृभाषा के उत्थान से ही संभव हो सकती है, इस तथ्य की स्थापना की इसलिए इस युग के पत्रों में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार को लेकर दृढ़ संकल्प मिलता है। इन पत्रकारों की यह धारणा थी कि देशोन्नति हेतु देश में हिन्दी ही एक सामान्य भाषा होनी चाहिए क्योंकि यही भारतवर्ष की मुख्य भाषा है। तदुगीन सभी पत्रकारों ने इसका समर्थन किया।

भारतेन्दु युगीन पत्रों में राष्ट्रीय स्वाधीनता की कामना एवं अंग्रेजी शासन की दुरंगी नीति व भ्रष्टाचार के साथ-साथ भारतीयों पर किये गए अत्याचार का यथार्थ चित्रण भी इन्होंने अपने पत्रों में किया। अंग्रेजों की कथनी-करनी के अंतर की ओर संकेत करते हुए भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित किया कि अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान के विषय में व्याख्या देकर यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाभ-अर्थ राज्य करते हैं, हिन्दुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं, कि हम देश की वृद्धि करेंगे और यहाँ के निवासियों को विद्यामृत पिलायेंगे, परंतु अब अंग्रेजों की माया-छल और घात दृष्टि में आने लगा क्योंकि हम लोगों को केवल अंग्रेजी भाषा ही प्राप्त हुई, परंतु कला-कौशल के विषय में हम लोग भली-भाँति अज्ञात सागर में निमग्न हुए हैं।' इसी प्रकार महंगाई तथा अंग्रेजी शासन की अमानवीय लूट का भी इन पत्रकारों ने खुलकर विरोध लिखा। भारतीय संस्कृति का प्रमुख आधार हमारी अपनी भाषा है जिसके स्थान पर अंग्रेजों ने भारतीय जनता पर अंग्रेजी भाषा थोपने का निरन्तर प्रयास किया। प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्र में 'युवराज कुमार स्वागत में' शीर्षक से इस पत्र में गीत लिखते हुए व्यंग्य किया है-

स्वागत! स्वागत! श्री विजयिनी के प्रान पियारे,
स्वागत प्रिंसेज ऑफ वेल्स अंखियन के तारे।⁵

इन पत्रकारों की राष्ट्र भक्ति इनके पत्रों में मुखर रूप से झलकती है। प्रताप नारायण मिश्र तत्कालीन भारतीयों की दशा का यथार्थ चित्रण 'ब्राह्मण पत्र' में करते हैं-

रक्षहु भारत आरत शरण तिहारी / अब सब हवा की प्रजा अहै अतिदीन दुखारी।⁶

इस युग में न केवल राजनीतिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं वरन् साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक एवं जातीय पत्रिकाएँ भी राष्ट्र बोध के स्वर से अनुप्रेरित थीं। यदि हम भारतेन्दु युगीन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का राष्ट्रबोध के आधार पर विश्लेषण करें तो संभवतः कोई ऐसी पत्र-पत्रिका न मिले जिसमें राष्ट्रचेतना का भाव न मिलता हो। भारतेन्दु द्वारा संपादित 15 अगस्त 1967 को काशी से 'कविवचन सुधा' का आरंभ अंग्रेजी शासन के शोषणकारी रूप को दर्शाने हेतु हुआ था। यह पत्रिका सामाजिक सुधारवादी नीति को लेकर चली। इस पत्रिका का सिद्धान्त वाक्य ही राष्ट्रबोध का परिचय देता है-

अपधर्म छूटै स्वत्वनिज भारत गहै, कर दुख बहै।

वस्तुतः 'कविवचन' सुधा ने भारतीय जनता में एक नई ऊर्जा का संचार किया। इसी पत्रिका के माध्यम से भारतेन्दु ने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का आग्रह किया था तथा अंग्रेजी शिक्षा की अनुपयोगिता एवं ब्रिटिश हुकूमत की शोषणकारी नीतियों का पर्दाफाश किया था। हिन्दी के प्रचार-प्रसार का पुनीत कार्य भी इसी पत्रिका के माध्यम से संपन्न हुआ। इसी श्रृंखला में 'हरिश्चन्द्र' मैगजीन भी भारतेन्दु ने निकाली जिसे बाद में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नाम दे दिया गया। इस पत्रिका ने देशवासियों में राष्ट्रीय सम्मान एवं गौरव की भावना जगाई एवं हिन्दी भाषा को देश में सामाजिक-सांस्कृतिक सम्मान दिलाने हेतु कार्य किये। 'बिहार बंधु' भारतेन्दु युगीन पत्रों में एक निर्भीक और राष्ट्रवादी साप्ताहिक पत्र था। इसमें भारतीय जनता की दमित और शोषित भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली। समाज सुधार के लिए यह पत्र निरन्तर आन्दोलन रत रहा। इसी श्रृंखला में बालकृष्ण भट्ट द्वारा संपादित 'हिन्दी प्रदीप' मासिक पत्र अपनी राष्ट्रीय पहचान के लिए जाना जाता था। इसका मुख्य उद्देश्य ही मातृभाषा का प्रचार-प्रसार तथा हिन्दी भाषा की समृद्धि एवं देश-दशा की चिन्ता के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक सुधार हेतु सामग्री प्रकाशित करना था। भारतेन्दु की 'गौ महिमा' रचना भी 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुई। यदि कहा जाये तो यह पत्र पूर्णतः राष्ट्रबोध की भावना से ओतप्रोत था। इस पत्र के राष्ट्रवादी उद्देश्य को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

श्री हरिपद रज कृपा देश दुर्दशा सुधारन
हिन्दू मन-मन गुहा महातम तोम निवारन
× × × ×
दीन प्रजा दुख हरन नागरी वरन प्रचारन
पर पदगत आरत भारत की आपद तारन।⁷

‘हिन्दी प्रदीप’ भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता में मजबूत स्तंभ है। यह पत्र पूर्णतः देश, समाज तथा भाषा को समर्पित रहा। देशवासियों में स्वतंत्रता की भावना जागृत करने हेतु एवं उनमें स्वाभिमान जगाने का पुनीत प्रयास ‘हिन्दी प्रदीप’ ने ही किया। यद्यपि यह पत्र प्रारंभ में साहित्यिक पत्र के रूप में निकला किन्तु कालांतर में यह पूर्णतः राष्ट्रबोध और देश प्रेम के आवेग में डूबकर राष्ट्रवाद के स्वरो को बुलंद करने लगा। अंग्रेजी शासन के शोषण और अत्याचार का इस पत्र में खुलकर विरोध किया गया, जिससे भारतीयों में आक्रोश की लहर दौड़ गई। इसके लेखों ने जन सामान्य में राष्ट्र प्रेम की चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरण के लिए ‘भारतीय तो कुत्ता है, जरा सी रोटी फेंक दिया लाल मुँह वाले बंदरों के आगे दुम हिलाने लगे, यह नहीं समझते कि हमारी संपत्ति पर हमारे ही घर बैठकर ये बंदर घुड़की से डराकर मेरे ऊपर शासन करते हैं।’ (वही, पृष्ठ 88) वस्तुतः भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता के प्रमुख उद्देश्यों में राष्ट्रवाद का जो स्पष्ट और निर्भीक रूप ‘हिन्दी प्रदीप’ में मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता। अंग्रेजी शोषण के विरुद्ध आन्दोलन करने से लेकर सामाजिक कुरीतियों और पाखण्डों का भी घोर विरोध इस पत्र में किया गया। तत्कालीन समाज जिस प्रकार धार्मिक, सामाजिक विकृतियों का शिकार था, ‘हिन्दी प्रदीप’ ने इसका जबरदस्त विरोध किया और राष्ट्रबोध की भावना को सर्वोपरि रखा। इस पत्र की संपादकीय टिप्पणियाँ निरंतर मातृभाषा की समृद्धि हेतु सक्रिय रही। राजकाज एवं जनसाधारण के लिए हिन्दी भाषा के प्रसार-प्रचार हेतु यह पत्र दृढ़ संकल्पित रहा। राष्ट्रवाद की भावना भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता की अनिवार्य पहचान रही। ‘भारत मित्र’ इस दृष्टि से पूर्ण राष्ट्रीय पत्र कहा जा सकता है इस पत्र के मुख्य उद्देश्यों में राजनीतिक, व्यापारिक, भाषिक समृद्धि एवं जातीय चेतना का विकास था।

‘जब तक हम भारतीयों में अपनी जाति एवं भाषा के प्रति चेतना जागृत नहीं होगी हम अपने देश को गुलामी से मुक्त नहीं करा सकते।’ यदि इस पत्र की संपादकीय टिप्पणियों के शीर्षकों पर दृष्टि डालें तो उनसे स्पष्टतः राष्ट्रबोध के भाव ही मुखरित होंगे। जैसे- पांचवीर संग चलें, अपने को ठाँव नहीं आदि, इस पत्र के राष्ट्रीय मंतव्य को स्पष्ट करते हैं। इस पत्र में प्रकाशित टिप्पणियों से तत्कालीन देश की यथार्थ स्थिति का अनुभव किया जा सकता है। 1879 ई. में निकले साप्ताहिक पत्र ‘सारसुधानिधि’ का तदयुगीन पत्रकारिता में महत्वपूर्ण स्थान है। इस पत्र के प्रमुख प्रयोजनों में भाषा उन्नति का स्वर प्रमुख था। पत्र की विचारधारा थी कि यदि राष्ट्र का उत्थान करना है तो सर्वप्रथम अपनी भाषा हिन्दी की उन्नति करनी होगी। इस हेतु यह पत्र निरंतर प्रयत्नशील रहा। इसके साथ ही इसकी संपादकीय टिप्पणियाँ पूर्णतः राष्ट्रबोध से अनुप्राणित थी। समाज और राष्ट्र की तत्कालीन यथार्थ स्थिति का चित्रण भी इस पत्र में खूब किया गया। स्वदेशी के प्रति आग्रह, पत्र के प्रमुख उद्देश्यों में शामिल था।

यदि कहें तो तत्कालीन अंग्रेजी शासन का विरोध यह पत्र प्रत्येक स्तर पर करता था। इसके संपादकीय लेखों में अपनी संस्कृति एवं सभ्यता, निज गौरव को पुनः स्मरण करते हुए उसकी स्थापना पर बल दिया गया। दरअसल ‘सार सुधानिधि’ पूर्णतः समाज, राष्ट्र एवं राष्ट्र भाषा को समर्पित पत्र था। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता में राष्ट्रवाद के मुखर स्वर तत्कालीन प्रमुख पत्र ब्राह्मण में सुनाई देते हैं। मासिक ‘ब्राह्मण’ का संपादन कानपुर से शुरू हुआ। इसके लेखों में पर्याप्त विविधता थी। सामाजिक रूढ़ियों एवं राजनीतिक शोषण के साथ-साथ धार्मिक पाखंडों के विरोध में जन जागृति के क्षेत्र में भी इस पत्र की पहचान रही है। वस्तुतः यह पत्र राष्ट्र हित को सर्वोपरि रखता था। इस पत्र की मुख्य विषय वस्तु में राष्ट्रीय चेतना प्रमुख रही, जिसमें आर्य समाज के सिद्धान्त, धार्मिक भ्रष्टाचार एवं धर्माधता के साथ ही ईसाई धर्म प्रचार एवं गौरक्षा हेतु सभा की स्थापना आदि से जुड़ी प्रमुख सामग्री प्रकाशित होती थी। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि ‘ब्राह्मण’ राष्ट्र-हितैषी पत्र था। जिसने राष्ट्रोन्नति में बाधक विचारों एवं कार्यों का खुलकर विरोध किया। अपने इसी राष्ट्रहित के संकल्प हेतु यह पत्र तत्कालीन समाज में व्याप्त अंधविश्वासों एवं विद्रूपताओं का निरंतर विरोध करता रहा ताकि देश उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त भी भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता के विविध आयाम रहे हैं लेकिन उनकी संकल्पना, उनकी प्रतिबद्धता, उनकी विचारधारा पूर्णतः देश हितैषी रही हैं। राष्ट्रबोध इस पत्रकारिता का प्रमुख प्रयोजन रहा है, भले ही पत्र साहित्यिक-राजनीतिक या फिर सामाजिक अथवा धार्मिक। बाह्य कलेवर भले ही इन पत्र पत्रिकाओं का भिन्न-भिन्न दिखाई दे, किन्तु आत्मा सभी की राष्ट्रवाद के चटक रंग में रंगी हुई थी या यूँ कहें कि इस पत्रकारिता रूपी वीणा के विविध तारों से एक ही राग निकलता था और वह राग था राष्ट्रवाद का।

संदर्भ

- 1 विकीपीडिया, भारतीय राष्ट्रवाद <https://hi.m.wikipedia>
- 2 वही
- 3 वही
- 4 आधुनिक हिंदी गद्य, लेख- आधुनिक हिंदी साहित्य की राजनीतिक विरासत, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 111
- 5 हिंदी पत्रकारिता का विकास एन.सी. पंत, पृष्ठ 61
- 6 वही, पृष्ठ 63
- 7 वही, पृष्ठ 88

सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में राष्ट्रवाद

डॉ. एस.टी. मेरवाडे

हिन्दी विभागाध्यक्ष

एस.बी.कला एवं के.सी.पी.विज्ञान महाविद्यालय, विजयपुर

आधुनिक हिन्दी साहित्य स्वतन्त्रता संग्राम और राष्ट्रवाद की भावना से ओतपोत है, जो भारत के बदलते हुए ऐतिहासिक घटनाक्रमों से प्रभावित है। राष्ट्रवाद और देशप्रेम सुभद्राकुमारी चौहान जी के रग रग में भरा हुआ था। इसलिए उनकी कविताओं में राष्ट्रप्रेम और वीर रस भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। राष्ट्रीय कविताओं की दृष्टि से उनकी 'जलियाँवाला बाग में बसंत', 'राखी', 'विजय दशमी', 'लक्ष्मीबाई की समाधि पर', और 'वीरों का कैसा हो बसंत' आदि कविताओं में सुभद्रा जी का राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रवाद झलक उठता है। राष्ट्रीय कविता की कतार में उनकी 'झाँसी की रानी' अत्यंत लोकप्रिय है और उसी एक कविता से ही सुभद्रा जी संपूर्ण देश भर में छा गयी थी। सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म इलाहाबाद में हुआ था। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह खंडवा के वकील लक्ष्मण सिंह चौहान से हो गया था। पति पत्नी दोनों ही राष्ट्रीय विचारधारा के होने के कारण महात्मा गांधीजी से प्रभावित होकर, अपना घरबार त्यागकर स्वतंत्रता के आंदोलन में कुद पड़े। इसी लिये इन्हे कई बार जेल भी जाना पड़ा। दोनों पति-पत्नी मन-प्राण से कांग्रेस का काम करने लगे। सुभद्रा महिलाओं के बीच जाकर स्वाधीनता संग्राम का संदेश पहुँचाने लगीं। वे उन्हें स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने, पर्दा छोड़ने, छुआछूत और ऊँच-नीच की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठने की सलाह देती थी। स्त्रियाँ सुभद्रा की बातें बड़े ध्यान से सुनती थीं। १९२०-२१ में मध्यवर्ग की बहुओं में प्रगतिशील मूल्यों का संचार करने में सुभद्रा ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई।

सुभद्राजी की कविताओं में देश प्रेम की भावना और मातृत्व ही मूल आधार हैं। उनकी कविता "झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई" के "खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।" सुनकर आज भी हम देश भक्ति की भावना से हर्षित हो उठते हैं। सुभद्राकुमारी की कविता 'झाँसी की रानी' महाजीवन की महागाथा है। कुछ पंक्तियों की इस कविता में उन्होंने एक विराट जीवन का महाकाव्य ही लिख दिया है। इस कविता में लोकजीवन से प्रेरणा लेकर लोक आस्थाओं से उधार लेकर जो एक मिथकीय संसार उन्होंने खड़ा किया है उससे 'झाँसी की रानी' के साथ सुभद्रा जी भी एक किंवदंती बन गई हैं। भारतीय इतिहास में यह शौर्यगीत सदा के लिए स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया है-

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इनकी भाषा सरल तथा शुद्ध खड़ी बोली है। देश के लिए कर्तव्य और समाज की जिम्मेदारी सँभालते हुए उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि चढ़ा दी- 'न होने दूँगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊँ बलिदान।'

'जलियाँवाला बाग' (1917) के नृशंस हत्याकांड से उनके मन पर गहरा आघात लगा। उन्होंने तीन आग्नेय कविताएँ लिखीं। 'जलियाँवाले बाग में वसंत' में उन्होंने लिखा-

परिमलहीन पराग दाग-सा बना पड़ा है
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है।
आओ प्रिय ऋतुराज! किंतु धीरे से आना
यह है शौक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना।
कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर।

1922 का जबलपुर का झंडा सत्याग्रह देश का पहला सत्याग्रह था और सुभद्रा जी की पहली महिला सत्याग्रही थीं।

रोज-रोज सभाएँ होती थीं और जिनमें सुभद्रा भी बोलती थीं। टाइम्स ऑफ इंडिया के संवाददाता ने अपनी एक रिपोर्ट में उनका उल्लेख 'लोकल सरोजिनी' कहकर किया था।

प्रसिद्ध हिंदी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने सुभद्रा जी के राष्ट्रीय काव्य को हिंदी में बेजोड़ माना है- 'कुछ विशेष अर्थों में सुभद्रा जी का राष्ट्रीय काव्य हिंदी में बेजोड़ है।' राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी और अनवरत जेल यात्रा के बावजूद उनके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए- 'बिखरे मोती (1932), उन्मादिनी (1934), सीधे-सादे चित्र (1947)। वह 'स्वतंत्रता' नहीं, 'स्वराज्य' चाहती है। परतंत्रता नहीं, स्वानुशासन चाहती है। रूढ़ियों-बंधनों से मुक्त होकर वह स्वनियंत्रण में रहना चाहती है। सुभद्रा जी की सभी कहानियों को हम एक तरह से सत्याग्रही कहानियाँ कह सकते हैं। उनकी स्त्रियाँ सत्याग्रही स्त्रियाँ हैं। दलित चेतना और स्त्रीवादी विमर्श को उठाने वाली सुभद्राकुमारी चौहान हिंदी की पहली रचनाकार हैं-

'दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।'

पंद्रह अगस्त 1947 को जब देश आजाद हुआ तो सबने खुशियाँ मनाईं। सुभद्रा जी ने भेड़ाघाट जाकर वहाँ के खान मजदूरों को कपड़े और मिठाई बाँटी। उस दिन वे अपना सिरदर्द भूल गई थीं, थकावट भूल गई थीं, आराम करना भूल गई थीं।

गांधी जी की हत्या से सुभद्रा जी को ऐसा लगा कि जैसे वे सचमुच अनाथ हो गई हों। बगैर कुछ खाए-पिए चार मील पैदल ग्वारीघाट तक गईं। जैसे कोई उनके घर का चला गया हो। सुभद्रा जी ने कहा, "मैंने तो सोचा था कि मैं कुछ दिन गांधी जी के आश्रम में बिताऊँगी लेकिन परमात्मा को वह भी मंजूर नहीं था!"

सुभद्रा जी की 'खिलौनेवाला' कविता में उनकी देशभक्ति उमड़ पडी है-

मैं तो तलवार खरीदूँगा माँ
या मैं लूँगा तीर-कमान
जंगल में जा, किसी ताड़का
को मारूँगा राम समान।

सुभद्रा जी की काव्य साधना के पीछे उत्कट देश प्रेम, अपूर्व साहस तथा आत्मोत्सर्ग की प्रबल कामना है। इनकी कविता में सच्ची वीरांगना का ओज और शौर्य प्रकट हुआ है। हिंदी काव्य जगत में ये अकेली ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने अपने कंठ की पुकार से लाखों भारतीय युवक-युवतियों को युग-युग की अकर्मण्य उपासी को त्याग, स्वतंत्रता संग्राम में अपने को समर्पित कर देने के लिए प्रेरित किया। वर्षों तक सुभद्रा जी की 'झाँसी वाली रानी थी' और 'वीरों का कैसा हो वसंत' शीर्षक कविताएँ लाखों तरुण-तरुणियों के हृदय में आग फूँकती रहेंगी। 'झाँसी की रानी की समाधि पर' में सुभद्रा जी का वीर रस उमड़; पडता है-

इस समाधि में छिपी हुई है, एक राख की ढेरी।
जल कर जिसने स्वतंत्रता की, दिव्य आरती फेरी।
यह समाधि यह लघु समाधि है, झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है, लक्ष्मी मरदानी की।

कार दुर्घटना में सुभद्रा कुमारी चौहान जी का देहांत 15 फरवरी 1948 को 44 वर्ष की आयु में ही हो गया। एक संभावनापूर्ण जीवन का अंत हो गया। परंतु हिन्दी साहित्य ही अपितु सारा देश सुभद्रा जी कभी नहीं भूल सकता। उनका देशप्रेम और राष्ट्रवाद हम सब के लिए ऊर्जा बन गयी है। ऐसे महान व्यक्तित्व को हमारा शत शत प्रणाम।

संदर्भ

1. झाँसी की रानी -सुभद्राकुमारी चौहान
2. उन्मादिनी -सुभद्राकुमारी चौहान
3. त्रिधारा -सुभद्राकुमारी चौहान
4. हमारे प्रतिनिधि कवि और लेखक -डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
5. अंतर्जाल

राष्ट्रवादी पत्रकारिता और पंडित दीनदयाल उपाध्याय

डॉ. साहेबहुसैन जे. जहागीरदार

अंजुमन कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
विजयपुर (कर्नाटक)

लंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जब लक्ष्मण अपने बड़े भाई मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र जी से कुछ और दिन स्वर्णनगरी लंका जैसे रमणीय स्थान में रहने की बात करते हैं तो उत्तर में श्री रामचंद्र जी कहते हैं – “अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।” अर्थात् – “हे लक्ष्मण, सोने की लंका भी मुझे अच्छी नहीं लगती है। माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढकर हैं।”

मातृभूमि का यह स्थान हम भारतीयों के मानसपटल पर अंकित है। भारतीय संस्कृति में राष्ट्रवाद की जड़ें शायद युगों-युगों से ही विद्यमान हैं। भारत एक सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता वाला देश है। राष्ट्रवाद ही वह धागा है जो लोगों को उनके विभिन्न सांस्कृतिक-जातीय पृष्ठभूमि से संबंधित होने के बावजूद एकता के सूत्र में एक साथ बांधता है। यह कश्मीर से कन्याकुमारी तक सभी भारतीयों को एकजुट करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय परिवेश में राष्ट्रवाद का तात्पर्य राष्ट्र के प्रति सरोकार रखना, राष्ट्र के प्रति सरोकार रखने में यहां के जन, यहां का इतिहास, हमारी जीवन संस्कृति इत्यादि, इन सबके प्रति जब आप सरोकार रखते हैं तो वह राष्ट्रीयता के दायरे को परिभाषित करता है।

राष्ट्रवाद एक ऐसी अवधारणा है जिसमें राष्ट्र सर्वोपरि होता है अर्थात् राष्ट्र को सबसे अधिक प्राथमिकता दी जाती है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो किसी भी देश के नागरिकों के साझा पहचान को बढावा देती है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति एवं संपन्नता के लिए नागरिकों में सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता से ऊपर उठकर राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना को मजबूती प्रदान करना आवश्यक है और इसमें राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत समेत ऐसे कई ऐसे देश हैं जो सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता से सम्पन्न हैं और इन देशों में राष्ट्रवाद की भावना जनता के बीच आम सहमति बनाने में मदद करती है। देश के विकास के लिए प्रत्येक नागरिक को एकजुट होकर कार्य करना पड़ता है और उन्हें एक सूत्र में पिरोने का कार्य राष्ट्रवाद की भावना ही करती है। जाति, धर्म और क्षेत्रीयता की संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर देश के प्रति गर्व की एक गहरी भावना महसूस करना ही राष्ट्रवाद है।

भारत में पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक ही धारा में प्रवाहित होने वाले जल के समान हैं। पत्रकारिता और राष्ट्रवाद परस्पर एक दूसरे के पूरक ही माने जा सकते हैं। दोनों का उद्देश्य जनमत निर्माण ही है। भारतीय पत्रकारिता ने सदैव राष्ट्रवाद को ही मुखरित करने का कार्य किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने श्री भाऊराव देवरस से प्रेरणा पाकर लखनऊ में 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य ही राष्ट्रवादी पत्रकारिता को विस्तार देना था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय भी ऐसे सच्चे और निर्भीक पत्रकार थे जिन्होंने अपने विचारों को खुलकर लोगों के सामने प्रस्तुत किया। पं. दीनदयाल जी के पत्रकारिता का व्यवस्थित प्रारम्भ ‘राष्ट्रधर्म’ (मासिक) और ‘पाञ्चजन्य’ (साप्ताहिक) के प्रकाशन से हुआ। ‘राष्ट्रधर्म’ का पहला अंक 31 अगस्त, 1947 को और ‘पाञ्चजन्य’ का पहला अंक 14 जनवरी, 1948 को प्रकाशित हुआ। आगे चलकर ‘स्वदेश’ (दैनिक) पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए राष्ट्रधर्म और पाञ्चजन्य पत्रिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को अपने विचारों के प्रसार का माध्यम बनाया था। पत्रकारिता किस प्रकार से जनमत निर्माण करने में सहायक हो सकती है, यह दीनदयाल जी ने बखूबी समझा था।

पंडित दीनदयाल जी का जन्म 25 सितंबर, 1916 को चंद्रभान, फराह, जिला मथुरा, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय तथा माता का नाम रामप्यारी था। दीनदयाल जी को परिवार का स्नेह अधिक समय तक न मिल सका। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की मृत्यु होने के कारण पारिवारिक शून्यता में ही उन्हें जीवन व्यतीत करना पड़ा। जब माता-पिता उनसे बिछड़े तब उनकी आयु मात्र आठ वर्ष ही थी। इसके बाद उनका पालन-पोषण उनके नाना के यहां होने लगा, उनके नाना धनिकया, राजस्थान में रेलवे मास्टर थे, 10 वर्ष की आयु में उनके नानाजी का भी देहांत हो गया। नाना जी के गुजर जाने के बाद उनके मामा ने इनका पालन-पोषण जो राजस्थान के गंगापुर रेलवे स्टेशन पर मालगार्ड के रूप में कार्यरत

थे। अपनी प्रारंभिक शिक्षा दीनदयाल जी ने गंगापुर में ही पूर्ण की। उसके बाद उन्होंने सीकर, कानपुर एवं आगरा आदि स्थानों पर रहकर आगे की पढ़ाई पूरी की। कालेज की पढ़ाई के दौरान ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए और पूरी तन्मयता से संघ कार्य में जुट गए। कालेज की पढ़ाई के बाद वे किसी नौकरी अथवा व्यापार में संलग्न न होकर संघ कार्य में ही रम गए। 1937 में कानपुर में अपनी बी.ए की पढ़ाई के दौरान वे अपने सहपाठी श्री बालूजी महाशब्दे और श्री सुंदर सिंह भंडारी के साथ मिलकर समाज सेवा करने लगे। इन्हीं दिनों वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) के संस्थापक डॉ. हेडगेवार व संघ कार्यकर्ता भाऊराव देवरस से संपर्क में आये। आर.एस.एस. की विचारधारा से प्रभावित होकर वे संघ से जुड़ गए। संघ की शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए वे 1939 में आर.एस.एस के 40 दिवसीय नागपुर शिविर का हिस्सा बने। उनके मामा ने उनसे शादी का कई बार आग्रह किया लेकिन वे बड़ी ही चालाकी से शादी के प्रस्तावों को नकार देते थे। शायद राष्ट्र की सेवा का व्रत लेकर ही वे जन्मे थे, जिस कारण सभी सांसारिक बंधनों से दूर वे केवल भारत माता के बंधन में ही रहे। उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र के लिए अथक कार्य किया। 1942 में आर.एस.एस. के जीवनव्रती प्रचारक बने। सन 1951 से 1967 तक भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे वे सिर्फ 44 दिनों तक भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष बने। यही जनसंघ बाद में चलकर भारतीय जनता पार्टी बनी। 11 फरवरी, सन 1968 को मुगलसराय रेलवे स्टेशन के करीब वे मृत पाए गए। उनकी मृत्यु का कारण आज भी संदिग्ध है।

पंडित दीनदयाल जी राष्ट्रीय एकता के पक्षधर थे, उनका मानना था कि राष्ट्रीय एकता भारतीय संस्कृति के माध्यम से लाई जा सकती है। उनका कहना था कि हर राष्ट्र की एक आत्मा होती है, जिसमें उसकी संस्कृति समाई होती है और कोई भी राष्ट्र-राज्य बिना आत्मा के जीवित नहीं रह सकता – “यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति जो हिंदू संस्कृति है उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चलें। भागीरथी की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा में एकरूप हो जाएगी।”

पंडित दीनदयाल जी राष्ट्रीय एकता के लिए प्रजातंत्र को आवश्यक मानते थे, “भारत की परिस्थिति में प्रजातंत्र का राष्ट्रीय एकता से गहरा सम्बन्ध है। यदि यहाँ प्रजातंत्र समाप्त हो गया तो एकता को भी नष्ट होते देर न लगेगी (विघटनकारी तत्वों में से भी), जो प्रजातंत्रीय पद्धति का अनुसरण करेंगे वे शनैः-शनैः राष्ट्रवाद की ओर बढ़ते जाएँगे।”

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मत था कि राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मता भी आवश्यक है। उनके विचारों की अभिव्यक्ति इन शब्दों में हुई है – “भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लीग का द्वि-संस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक संस्कृतिवाद को संप्रदायवाद कहकर टुकड़ाया गया किंतु अब कांग्रेस के विद्वान भी अपनी गलती समझकर इस एक संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है तथा तभी हम अपनी संपूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं।”

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के तथाकथित समृद्धि बौद्धिक वर्ग पर हावी हो रहे पाश्चात्य संस्कृति को देश के लिए खतरा बताते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा – “राष्ट्रभक्ति की भावना को निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति का ही है तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मता का अनुभव कराती है। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं, टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।”

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु अपना सर्वस्व लगा दिया था। अपने इस संकल्प को पूर्ण करने के लिए वे संपूर्ण जीवन अनवरत चलते रहे। उन्होंने अपने अनेक दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी अपने पत्रकारीय जीवन के प्रवाह को कहीं रूकने नहीं दिया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारत की पत्रकारिता लक्ष्यविहीन अनुभव कर रही थी, तब पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता का पथप्रदर्शन किया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्रवादी पत्रकारिता के प्रवाह को जिस प्रकार आगे बढ़ाया था वह अनुकरणीय है।

संदर्भ

1. पाञ्चजन्य, 24 अगस्त, 1953
2. डॉ. महेशचंद्र शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार, पृ.182
3. राष्ट्रधर्म, शरद पूर्णिमा, वि. सं 2006
4. पाञ्चजन्य, भाद्रपद कृष्ण 9, वि. सं. 2006

राष्ट्रवाद और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

डॉ. सुनीता

सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र)

तिलक पी.जी. कॉलेज, जयपुर

राष्ट्र की व्यापक अस्तित्व है, जो कुछ हम हैं वह सब राष्ट्र में समाया है। हमारा अनेक वस्तुओं से सम्बन्ध है, इन सबका सम्मिलित रूप राष्ट्र है। राष्ट्र उस व्यापक रूप में जो भूमि क्षेत्र जनसंख्या व सीमा विशेष में बंधा रहता है, प्रत्येक राष्ट्र में कई संस्कृतियाँ हो सकती हैं लेकिन उस सब में एक ही धारा प्रवाहित होती है जो सबकी साझी होती है। राष्ट्र की संकल्पना अत्यन्त प्राचीन है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। दसवें मण्डल में राजपुरोहित के द्वारा राजा को उपदेश दिया है, "इह राष्ट्रम् धारया।"¹ राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति - राजते से हुई है जिसका अर्थ राज+ष्टन से बना है। इसका हम विशेष अर्थ - देश, मुल्क, प्रजा जाति विशेष आदि से ले सकते हैं। अंग्रेजी में इसको 'नेशन' कहते हैं।

डॉ. शिवकुमार मिश्र ने राष्ट्र के स्वरूप के विषय में लिखा है, 'भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन-जन-गण की राजनैतिक एकता और जन संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता इन तीनों के सचमुच का नाम राष्ट्र है।'² राष्ट्रीयता प्रत्येक नागरिकों में बहने वाली एक भावधारा है। राष्ट्रीयता का प्रगतिशीलताभाव मानव को समविष्ट की ओर गतिशील रहने के लिए स्पंदित करता रहता है। भारतीय साहित्य जिसमें हम हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में राष्ट्र प्रेम की चर्चा करेंगे। हम उनके काव्य में देश-प्रेम पर बात करेंगे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ऐसे प्रथम साहित्यकार थे जिन्होंने साहित्य के माध्यम से न केवल अंग्रेजी शासन की आलोचना की अपितु देश के अतीत को बताकर लोगों में देश-प्रेम की भावना का प्रथम संचरण भी किया। यद्यपि भारतेन्दु जी का कथन है कि "इस धन ने मेरे पूर्वजों को खायो है, मैं इसे खाऊँगी पूर्व चली परिपाटी से सर्वथा भिन्ना प्रथर बार रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्तियों का त्याग कर उन्होंने देश और देशवासियों की पीड़ा को साहित्य में स्थान दिया। उनकी राष्ट्रीय स्वयं में उस युग की सबसे बड़ी सिद्धि थी। निश्चय ही भारतेन्दु युग में राष्ट्रीयता का भाव जागृत हो रहा था। भारतेन्दु ने ही हिन्दी साहित्य में भारतीय राष्ट्रीय चेतना का दुष्कर कार्य करने का बीड़ा उठाया, "भारतेन्दु युग वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना के विकास का एक महत्वपूर्ण युग है।"³

भारतेन्दु जी ने देशवासियों में स्वदेश प्रेम व राष्ट्र प्रेम की भावना के साथ-साथ उनमें आत्म सम्मान की भावना भी जाग्रत की। देश प्रेम के गौरव को जगाया। साथ ही आर्थिक नीति जो अंग्रेज अपना रहे थे। स्वदेशी चीजों का प्रचार भी उनका राष्ट्रीय चेतना का महत्वपूर्ण भाग है। भारतेन्दु अपनी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति को याद करते हुए व्यथित हो उठते हैं। संसार के लिए अनुसरणीय कृष्ण का गीता उपदेश वेदव्यास ज्ञान का मूल्य स्रोत, वेदों का सम्पादन, यहाँ का मनमोहन, साहित्य भगवान राम के उच्च आदर्श आदि का स्मरण कर वे देश का गौरवगान इस प्रस्तुत करते हैं-

जो भारत जग मैं रह्यो, सब सो उत्तम देस।
तटी भारत मैं रह्यौ अब नहिं सुख को लेस।।
याहीं भुव मैं होत है हीरक, आम कपास।
इतही हिमगिरी गंगाजल, काव्यगीत-परकास।।
यही भारत देस मैं रहे कृष्ण मुनिव्यास।
जिनके भारत-गान सौं भारत-बदन प्रकास।।
जासु काव्य सों जगत-मधि ऊँचो भारत-सीस।
जासु राज-बल-धर्म की तृषा करहिं अवनीस।।⁴

भारतेन्दु जी देश का गुणगान करते हुए भारतीय वीरों के अदम्य साहस और उनके पौरुष की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इनके भय से सारा संसार काँपता है।

जिनके भय कम्पित संसारा
सब जग जिनकी तेज प्रसारा

युरुप अमेरिका इहाहि सिहासों
भारत भाग सरिस कोड नाहिं।⁵

भारतेन्दु जी ने देश का गौरवगान करके देशवासियों के रक्त में देशभक्ति का हिमोग्लोबिन संचारित किया। उन्होंने देशवासियों को याद दिलाया है कि हमने ही सारे संसार में ज्ञान से प्रकाशित किया है। वेद, गीता एवं अन्य महाग्रन्थ आज भी इस बात के साक्षी हैं। हमारा तेज ऐसा है कि हमारा नाम लेते ही सारा संसार कांप उठता है। उन्होंने भारतीय और भारत भूमि का यशोगान इस तरह किया है।

“भारत के भुजबल जग रक्षिता।
भारत विद्या लहि जग सिंच्छिता।
भारत तेज जगत बिस्तारा।
भारत भय कम्पत संस्तारा।।
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए।
थर-थर कम्पत नशप डरपाए।।
जाके जय की उज्ज्वल गाथा।
गवत सब महि मंगल साजा।
भारत जीव जिअत संसारा।।
भारत वेद कथा इतिहासा।
भारत वेद कला परकासा।।”⁶

भारतेन्दु जी जानते थे कि ऐसी विषय परिस्थिति में जबकि भारतवासी हताशा निराश शोषित कुठित हो तब उनमें देश की गौरवगान की मधुर वीणा ही पुनः उनकी अन्तर आत्मा में आशा, उमंग-उत्साह, उल्लास, विश्वास की तरंग स्पंदित कर सकती है। भारतेन्दु ने अपने साहित्य में अतीत का गुणगान किया है। भारतीय संस्कृति तो सर्वदा से ही विश्व-कल्याणार्थ रही है। भारत के उच्च आदर्श सब देशों को जागृति का सन्देश दे रहे हैं। अतः भारत का अपने पतन काल में उस उज्ज्वल अतीत गौरव पर गर्व करना स्वाभाविक ही है। भारतीयों में नवजागृति एवं चेतना के अंकुर जगने लगे थे। भारतीय जन-मानस ने एक बार फिर सुधबुध संभाली।

भारतेन्दु जी का काव्य देशभक्ति पूर्ण राष्ट्रीय काव्य है जिसमें भारत के अतीत वैभव के गौरवशाली प्रसंग को प्रस्तुत कर तत्कालीन भारतीय जनमानस को जगाया है। इनकी काव्य-रचनाओं में महापुरुषों के ऐसे विराट स्मारक तैयार हुए हैं जिनमें पढ़कर किसी भी राष्ट्रीय चरित्र का मस्तिष्क श्रद्धापूर्वक झुक सकता है। इन्होंने जहाँ अतीत का गौरवगान गाया, वहीं पराधीन भारत की दीन-हीन अवस्था पर क्षोभ के आँसू बहाते हैं। कृष्ण, अर्जुन, राम, बुद्ध के भारत में दीनता, करुणा और अज्ञान के साम्राज्य को व्याप्त देखकर उनका कवि हृदय-कंदन कर उठता है।

भारतेन्दु के साहित्य में हमें देश की प्राकृतिक समृद्धि का वैभव देखने को मिलता है। भारत एक विशाल राष्ट्र है। यहाँ पर अनेक भौगोलिक भिन्नताएँ भी हैं किन्तु इस देश को एकता के सूत्र में पिरोने वाली एक ही विचारधारा है यहाँ अलग-अलग जातियाँ धर्मों के लोग रहते हैं फिर भी अगर वे संसार के किसी कोने में जाएँ तो अपनी अलग से पहचान देते हैं कि वे भारतवासी हैं। प्रत्येक देश की भौगोलिक विशेषता स्वयं में विशिष्ट होती है जो वहाँ के लोगों को प्रभावित करती है। राष्ट्र केवल भू-भाग का नाम नहीं होता, उसमें व्यक्तियों के सम्बन्धों के साथ-साथ वहाँ प्राकृतिक सम्पदा भी निहित होती है।

किसी भी साहित्यकार के लिए जितना, महत्वपूर्ण तल्यमानव एवं मानवीय सम्बन्ध होता है। उतना ही महत्वपूर्ण अपने देश का प्राकृतिक परिवेश होता है देश के महापुरुषों से देश की चारित्रिक संसाधनों से देश का वैभव प्रकट होता है। जिस देश की प्राकृतिक शक्ति व साधन प्रचुर एवं उत्तम कोटि के होंगे वह विकास के उच्चतर शिखर पर होता है। कोई भी साहित्यकार अपने देश की प्राकृतिक शक्ति का अनुभव हो सके। हम गर्व कर सकें अर्थात् देशवासियों में आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न हो। यही प्राकृतिक सुषमा व समृद्धि का निरूपण अवश्य करता है।

भारतेन्दु जी बसन्त ऋतु का वर्णन में कितनी ममता दर्शाते हैं -

नव वन फूली द्रुम बेली
लह-लह लहकहिं, मह मह महकहि, मधुर सुगंध रली,
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई
आंचल उडत बात-बस फहरत प्रेम धूजा लहराई
गूँजहि भवर विहंग डोलहि बोलहि प्रकृति बधाई।⁷

यमुना नदी गंगा नदी के साथ-साथ देश की प्राकृतिक सुषमा का प्रमुख केन्द्र रहा है। यमुना का तीर तो रास-लीलाओं और क्रीडा करते तमाल-तरुओं की क्रीडा-स्थली रही है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य का तो गुलदस्ता है उनके काव्य में देश की प्राकृतिक वैभव के सुदर्शन भी सहृदयों के दृग् सफल करते हैं। कोकिल की गुँज, गंगा की पावनता, पक्षियों का कलरव झरनों के गीत पुष्पों की सुगंध आदि को भारतेन्दु जी ने काव्य में साकार कर दिया है। निस्संदेह उनका काव्य देश की प्राकृतिक समृद्धि का निरूपण करने में समर्थ है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक प्रमुख राष्ट्रीयता सम्पन्न साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने काव्य में राम, कृष्ण, वाल्मीकि, व्यास शिवाजी प्रताप, स्वामी दयानन्द आदि अनेक युग पुरुषों का उल्लेख कर देश की गरिमापूर्ण विषय को उठाया है। उनका उद्देश्य केवल अपने साहित्य को समृद्ध बनाना ही नहीं अपितु उनका लक्ष्य जन-जन में देश प्रेम व गर्व की भावना भरना था। इसी उद्देश्य में वे सफल भी रहे और ऐसे ही जागरूक व राष्ट्र प्रेमी साहित्यकारों के जागरण से वह देश-विदेशी सत्ता को कारा से मुक्त हो सका।

भारतेन्दु जी कई स्थलों पर एक ऐसे युग पुरुष की अभ्यर्थना करते हैं जिसकी वेद भी महिमा करते थे। नर-नारी जिनके मधुर संगीत से मोहित हो जाते और जिनमें कोप से अवनि-अम्बर भी काँपता है-

ये कृष्ण वरन जब मधुर तान, करते थे अमृतोपम वेद गान
तब मोहित सब नर नारी वृद्ध, सुनि मधुर वरन सज्जित छंद
इनहीं के कोप किए प्रकास, काँपत सब भूमण्डल आकास।

वीरों की प्रशंसा में कवि कहते हैं -

महानंद की फौज सुनत डरै सिकंदर राय,
राजा चन्द्रगुप्त ले आए बेटी सिल्युकस की जाय
सामर बलूचिन विक्रम रह शकारीपदवी पाय।

भारतेन्दु जी का काव्य पूरी तरह राष्ट्र प्रेम चेतना से ओतप्रोत है। उन्होंने ही रीतिकालीन परिपाटी को छोड़ साहित्य में नई धारा जिसका मूल विषय राष्ट्र उत्थान, राष्ट्र-गौरव रहा बनाया। कवि ने अपने काव्य में अतीत एवं वर्तमान काल के महापुरुषों व अन्य युग पुरुषों का यशोगान व स्तुति की। उनका उद्देश्य केवल अपने काव्य को समृद्ध बनाना ही नहीं था अपितु इन युगपुरुषों की अभ्यर्थना से तत्कालीन परिस्थिति से देश एवं देशवासियों को उभारना एवं उनमें उमंग-उत्साह गर्व की भावना भरना ही रहा है। भारतेन्दु की कविता में राष्ट्रवाद के विभिन्न तत्व-देश की प्राकृतिक सुषमा, अतीत का गुणगान, देश का गौरव-गाथा आदि प्रमुख रहे हैं।

सन्दर्भ

- 1 सम्पादक, डॉ. नरेश मिश्र, आधुनिक हिन्दी, राष्ट्रीय काव्यधारा
- 2 डॉ. शिवकुमार मिश्र, हिन्दी काव्य, पृष्ठ 43
- 3 डॉ. अरविन्द कुमार देसाई, भारतेन्दु और नर्मदा का तुलनात्मक अध्ययन
- 4 कृष्ण दत्त पालीवाल, भारतेन्दु प्रतिनिधि रचनाएँ
- 5 सम्पादक, सं. नरेश मिश्र, भारत दुर्दशा, पृष्ठ 39
- 6 सुशीला गुप्ता, आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रवर्तितमूलक दार्शनिकता, पृष्ठ 236-37
- 7 सम्पादक, डॉ. नरेश मिश्र, भारत दुर्दशा, पृष्ठ 8.

भारतीय पत्रकारिता में राष्ट्रबोध की आवश्यकता क्यों?

सीमा सिंह

पत्रकारिता का संबंधित सूचनाओं को संकलित एवं पारित कर साधारण पाठकों तक पहुंचाने से है। परंतु प्रत्येक सूचना समाचार नहीं है। पत्रकार कुछ विशेष घटनाओं समस्याओं एवं विचारों के समाचार के रूप में पेश करते हैं। किसी घटना के समाचार बनने के लिए उसमें नवीनतम सूची प्रभावों निकटता जैसे तत्वों का होना आवश्यक है। पत्रकारिता आधुनिक सभ्यता का एक प्रमुख व्यवसाय है। आज पत्रकारिता के अनेक माध्यम हो गये हैं; जैसे - अखबार, पत्रिकायें, रेडियो, दूरदर्शन, वेब-पत्रकारिता आदि। बदलते वक्त के साथ बाजारवाद और पत्रकारिता के अंतर्संबंधों ने पत्रकारिता की विषय-वस्तु तथा प्रस्तुति शैली में व्यापक परिवर्तन किए।

पत्रकारिता शब्द अंग्रेजी के जर्नलिज्म (Journalism) का हिंदी रूपांतर है। शब्दार्थ की दृष्टि से जर्नलिज्म शब्द जर्नल से निर्मित है और इसका आशय है 'दैनिक'। अर्थात् जिसमें दैनिक कार्यों व सरकारी बैठकों का विवरण हो। आज जर्नल शब्द मैगजीन का धोतक हो चला है। यानी, दैनिक, दैनिक समाचार-पत्र या दूसरे प्रकाशन।

पत्रकारिता लोकतंत्र का अविभाज्य अंग है। प्रतिपल परिवर्तित होनेवाले जीवन और जगत का दर्शन पत्रकारिता द्वारा ही संभव है। परिस्थितियों के अध्ययन, चिंतन-मनन और आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति और दूसरों का कल्याण अर्थात् लोकमंगल की भावना ने ही पत्रकारिता को जन्म दिया। सामाजिक तथा सार्वजनिक हित से जुड़कर ही पत्रकारिता सार्थक बनती है। सामाजिक सरोकारों को व्यवस्था की दहलीज तक पहुंचाने और प्रशासन की जनहितकारी नीतियों तथा योजनाओं को समाज के सबसे निचले तबके तक ले जाने के दायित्व का निर्वाह ही सार्थक पत्रकारिता है।

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा पाया (स्तम्भ) भी कहा जाता है। पत्रकारिता ने लोकतंत्र में यह महत्वपूर्ण स्थान अपने आप नहीं हासिल किया है बल्कि सामाजिक सरोकारों के प्रति पत्रकारिता के दायित्वों के महत्व को देखते हुए समाज ने ही दर्जा दिया है। कोई भी लोकतंत्र तभी सशक्त है जब पत्रकारिता सामाजिक सरोकारों के प्रति अपनी सार्थक भूमिका निभाती रहे। सार्थक पत्रकारिता का उद्देश्य ही यह होना चाहिए कि वह प्रशासन और समाज के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी की भूमिका अपनाये।

पत्रकारिता के इतिहास पर नजर डाले तो स्वतंत्रता के पूर्व पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य था। स्वतंत्रता के लिए चले आंदोलन और स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता ने अहम और सार्थक भूमिका निभाई। उस दौर में पत्रकारिता ने पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोने के साथ-साथ पूरे समाज को स्वाधीनता की प्राप्ति के लक्ष्य से जोड़े रखा।

इंटरनेट और सूचना के आधिकार ने आज की पत्रकारिता को बहुआयामी और अनंत बना दिया है। आज कोई भी जानकारी पलक झपकते उपलब्ध की और कराई जा सकती है। मीडिया आज काफी सशक्त, स्वतंत्र और प्रभावकारी हो गया है। पत्रकारिता की पहुँच और आभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का व्यापक इस्तेमाल आमतौर पर सामाजिक सरोकारों और भलाई से ही जुड़ा है, किंतु कभी कभार इसका दुरपयोग भी होने लगा है। विज्ञापनों से होनेवाली अथाह कमाई ने पत्रकारिता को काफी हद तक व्यावसायिक बना दिया है। मीडिया का लक्ष्य आज आधिक से आधिक कमाई का हो चला है। मीडिया के इसी व्यावसायिक दृष्टिकोण का नतीजा है कि उसका ध्यान सामाजिक सरोकारों से कहीं भटक गया है।

इंटरनेट की व्यापकता और उस तक सार्वजनिक पहुँच के कारण उसका दुष्प्रयोग भी होने लगा है। इंटरनेट के उपयोगकर्ता निजी भड़स निकालने और अतर्गततथा आपत्तिजनक प्रलाप करने के लिए इस उपयोगी साधन का गलत इस्तेमाल करने लगे हैं। यही कारण है कि मीडिया के इन बहुपयोगी साधनों पर अंकुश लगाने की बहस भी छिड़ जाती है। यह बहस सुझावों और शिकायतों तक ही सीमित रहती है। उस पर अमल की नौबत नहीं आने पाती। लोकतंत्र के हित में यही है कि जहाँ तक हो सके पत्रकारिता हो स्वतंत्र और निर्बाध रहने दिया जाए, और पत्रकारिता का अपना हित इसमें है कि वह आभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग समाज और सामाजिक सरोकारों के प्रति अपने दायित्वों के ईमानदार निर्वहन के लिए करती रहे।

पत्रकारिता एक सेवा है जो जनमत के अंदर राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना जागृत करती है, जनमुख को वाणी प्रदान करती है। पत्रकारिता स्वतंत्रता, मानवीय संवेदनाएं, समानता एवं बन्धुत्व का भाव पैदा करने वाली एक प्रभावशाली विधा है। स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना की भूमि तैयार करने वाली पत्रकारिता आजादी के 60 वर्षों के बाद आर्थिक उदारीकरण, भूमण्डलीकरण के नाम पर नई सूचना प्रौद्योगिकी के सोपानों पर चढ़कर नए विश्व गांव का निर्माण कर रही है। वर्तमान में पत्रकारिता का अर्थ महज समाचार पत्र ही नहीं है। अब रेडियो, दूरदर्शन, केबल उपग्रहीय सभी माध्यम शामिल हो

गाए हैं और जर्नलिज्म मास मीडिया में बदल चुका है।

सूचना समाज को संचालित करती है। जैसी सूचनाएं संप्रेषित की जाएंगी, वैसा ही समाज निर्मित होगा। पश्चिमी उपनिवेशवाद साम्राज्यवादी संस्कृति ग्लोबल विलेज के नाम पर जो हमारे शयनकक्ष में परोसी जा रही है, उससे भारतीय मूल्य एवं परंपराओं का हास हो रहा है। मनुष्य अमानवीय एवं संवेदनशून्य बन रहा है। यह संस्कृति संदेहवादी, अवसरवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही है। पश्चिम के देशों में अच्छी सुख सुविधाएं और सभ्यता है मगर संस्कृति के नाम पर यहां है, स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा का सूत्र, संदेहवादी दृष्टिकोण, असहजता, असरलता का वातावरण, मोल-तोल के मूल्य और स्वाभाविक निष्ठुरता। यह स्थिति भारत की ही नहीं, बल्कि अनेक पूर्वी देशों से आए अप्रवासियों के जीवन का अभिशाप बन गया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण माध्यमों द्वारा संप्रेषित धारावाहिकों, समाचारों और उसके विश्लेषणों में परिलक्षित हो रहा है। ब्राम्हणों, गुर्जराओं के आरक्षण की मांग, अभिषेक-एश्वर्या की शादी, दाऊद, लादेन जैसे खूंखार आतंकवादियों, सरगनाओं का चेहरा, बाहुबली सांसद शहाबुद्दीन, विधायक मुख्तार अंसारी के कारनामों की कहानी या फिर छात्र नेता से डान बने बबलू श्रीवास्तव की पुस्तक की विश्लेषणात्मक सूचना जैसे चोरी, हत्या, दंगे-फसाद, चरित्र-हनन के चित्रों एवं दृश्यों से आपकी समाचारिक मीडिया भरी पड़ी है। यदि हम धारावाहिकों की चर्चा करें तो अधिकतर धारावाहिक राजसी टाट-बाट परिवारों से जुड़े लोगों की कहानियों पर आधारित है। जहां शान-शौकत है, महंगी गाड़ियां, मोबाइल है, अच्छा खाना-पीना है लेकिन नहीं है तो आत्मीयता, बन्धुत्व, सहयोग एवं भारतीय मूल्य तथा परंपराएं। मीडिया वैज्ञानिक युग में भी अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र एवं रूढ़िवादी परंपराओं को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति में पीछे नहीं है।

प्रिंट मीडिया भी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का अधानुकरण कर रही है। मोबाइल पर भूत की कहानी को स्थानीय समाचारपत्रों ने इतना महिमा मंडित किया कि जैसे ऐसा संभव है। लेकिन भविष्यवाणी, सत्तालोलुप राजनीति के समाचारों से प्रिंट मीडिया भी भरा रहता है। इस संबंध में पत्रकार पं. ईश्वरदेव मिश्र ने लिखा है कि मीडिया की भूमिका आज उचित नहीं है। निहित स्वार्थ पूर्ति के लिए सूचनाओं को विकृत करके आधे-अधुरे रूप में प्रस्तुत कर, तिल को ताड़ और अप्रमाणित को प्रमाणित स्वरूप देकर जनसंचार माध्यम अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। जिस प्रकार अभिव्यक्ति की आजादी का हमारे देश में थड़ल्ले से दुरूपयोग हो रहा है, इसी प्रकार सूचना के क्षेत्र में दायित्वहीनता देश के लिए अनर्थकारी साबित हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो या प्रिंट मीडिया दोनों आदर्शच्युत होकर तथ्य के नाम पर नंगापन, वीभत्स और कुसंस्कार परोस रहे हैं। हम अपराधों और अपराधीकरण की बात तो बहुत करते हैं किन्तु इनकी करतूतों को किसी हीरो की करामातों के रूप में छापते हैं और हम उन्हें सम्मानित नागरिक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हाल ही में प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने अबू सलेम-मोनिका बेदी के प्रसंग, मटुकनाथ से अपनी शिष्या की प्रेम कहानी जैसे ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत किए, जिसने जनमानस के मन में सकारात्मक या नकारात्मक छवि निर्मित कर उन्हें हीरो बना डाला। पत्रकारिता का लक्ष्य इंसानियत की भावना पैदा करना, मानवता का संदेश देना, लोक संस्कृति और परंपराओं की पहचान बनाए रखना और भाषा के अस्तित्व को बचाए रखना। यद्यपि भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहां एकता में अनेकता है। अर्थात् विभिन्न धर्म, जाति, भाषा के नागरिक एक साथ, एक छत के नीचे रहते हैं। अभी हाल में असम में बिहारियों की हत्या, बिहार में पूर्वोत्तर नागरिकों पर प्रहार, मुंबई में बिहारियों एवं अन्य राज्यों के नागरिकों को जिस तरह मीडिया परोस रही है जैसे उनके लिए यह एक उत्पाद है। इन सभी सूचनाओं में महज जातिगत, क्षेत्रवाद, धर्मवाद के विद्वेष की भावना को जागृत किया जा रहा है। इस तरह के संदेश किसी भी विकासशील राष्ट्र की प्रगति में सदैव घातक रहते हैं। वैमनस्यता की बयार को गति देते हैं, एकता को ध्वस्त कर देते हैं, अवसरवाद एवं कटुता की जड़ को मजबूत करते हैं।

राष्ट्रीयता की ध्वजवाहिका, स्वदेश प्रेम, मानव कल्याण एवं बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय की दृष्टिकोण को लेकर जन्मी पत्रकारिता आज कैसे दिग्भ्रमित हो गई। इस संबंध में भारतीय पत्रकारिता के लगभग सवा दो सौ वर्ष के इतिहास के सभी पक्षों का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि देश के प्रथम समाचारपत्र हिक्की गजट को संपादक ने अपने पत्र में राजनीतिक समाचारों को छपा वह भी नकारात्मक। लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह था कि अन्याय के खिलाफ निर्भीकता और निष्पक्षता से लिखा, असत्य के आगे नहीं झुके, भले ही उन्हें यातनाएं सहनी पड़ी और उन्हें सब कुछ न्यौछावर करना पड़ा।

उसके बाद लगभग आजादी तक ब्रिटिश सरकार के चाटुकार पत्रों को छोड़कर भारतीयों द्वारा संपादित एवं प्रकाशित दैनिक भारत मित्र, राजस्थान समाचार, कलकत्ता समाचार, विश्वमित्र इत्यादि व्यावसायिक पत्रों का दृष्टिकोण पाठकोन्मुख था। सभी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थे, मालिकों की स्वार्थसाधना की वस्तु नहीं थी और संपादकों को लेखन की पूरी स्वतंत्रता थी। तभी तो यह संभव हो सका। सत्य के उद्गाता, स्वतंत्रता के अनुष्ठाता, कर्तव्यपथ के अनवरत पथिक संपादकों की लेखनी ने हमें गुलामी से उभारा। चुनौती, प्रताड़ना और जेल यातना से जूझते हुए पत्रकारों एवं संपादकों ने पत्रकारिता को नई दिशा दी। पत्र संचालक अपने पत्र के संपादक को महत्व देते थे। संपादकाचार्य पं. अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि भारतमित्र व्यावसायिक होते हुए भी किसी स्वार्थसाधन हेतु नहीं निकलता था। फिर भी यह पहला हिन्दी समाचार पत्र था जिसमें संचालक मण्डल होता था। सन 1913 में भारत मित्र लिमिटेड कंपनी द्वारा चलाया जाता था। इस कंपनी में नामी-गिरामी उद्योगपति, व्यवसायी शामिल थे। स्वतंत्रता के कुछ वर्ष पूर्व ही पत्रकारिता ने व्यावसायिकता का रूप धारण करना शुरू कर दिया था और सनसनीखेज, अश्लीलता, आरोप-प्रत्यारोप के समाचारों का प्रकाशन शुरू हो गया था। इसके पीछे मूल कारण थे द्वितीय विश्वयुद्ध बाद बढ़ती

महंगाई, अखबारी कागजों के दामों में उछाल प्रतिस्पर्धा और विज्ञापन पाने की होड़ थी। पं. कमलापति त्रिपाठी ने लिखा है कि 1944 के आस-पास के दौर में हिन्दी पत्रकारिता से आदर्शवाद कम होने लगा था। कारण यह था कि अखबार छापना एक महंगा काल हो गया। विज्ञापन मिलने से फायदा हो सकता था, विज्ञापन उसी अखबार को मिलते थे जिसकी पाठक संख्या अधिक होती थी। पाठक संख्या बढ़ाने का आसान तरीका यही दिखता था कि पाठकों के मनोरंजन, सनसनी तथा जीवन की क्षुद्र लालसाओं को उत्तेजना प्रदान करने वाली बातों से पत्र के स्तंभ भरे जाएं। यहीं पाठकों को लालच व तरह-तरह के आकर्षण देकर फुसलाया भी जाने लगा। जनता का पथ प्रदर्शन करना राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय प्रश्नों की गुथी सुलझाना तो पीछे ही छूट गया। इसके स्थान पर बिल्कुल उसके विपरीत कुचाल से वे ही पत्र जनता को पतन तथा भ्रष्टाचार की ओर ले जाने लगे। अदालत में मुकदमेबाजी, व्यभिचार के मामले, प्रेम लीलाएं किसी की बेटी-बहू का किसी के साथ भाग जाना, दुस्साहसपूर्ण डकैती, जासूसी वगैरह के मामलों तथा निराधार बातों को भी मिर्च-मसाला लगाकर छापना शुरू हो गया। पाठकों को भी ऐसे ही अखबार भाने लगे।

स्वाधीनता के बाद समाचार पत्रों को वृत्ति, उपजीविका एवं व्यापार का दर्जा दिया गया और प्रेस पर औद्योगिक संबंध, कर्मचारियों के वेतन, ग्रेज्युटी आदि की अदायगी से उन्मुक्ति नहीं दी गई एवं अन्य व्यापारिक संस्थानों की तरह कर भी लगाए गए। तकनीकी विकास, गुणात्मक, संख्यात्मक वृद्धि, गलाकाट स्पर्धों में प्रसार बनाए रखना एवं उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए धनार्जन करना पत्र स्वामियों का ध्येय बनता चला गया। जिससे पत्र की संपादकीय दृष्टि क्षीण होती गई और वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हुई। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में रेडियो का विस्तार हुआ। विविध भारती आया एफएम चैनल शुरू हुआ। दोनों ही विज्ञापन से होने वाले आय के मुख्य साधन हैं। प्रोफेशनल और कामर्शियल में क्या अंतर है यह समझना आवश्यक है। व्यावसायिकता एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा है जो व्यापार के निर्धारित नैतिक मूल्यों एवं मापदंड के सहारे व्यापारी धनार्जन करता है, लेकिन कामर्शियल अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा है जहां कम से कम लागत, समय एवं घटिया सेवाएं देकर एवं मीठी-मीठी बातें करके ग्राहकों के मत्थे माल को मढ़ दिया जाता है। ग्राहक को लूटने में कोई संकोच या शर्म नहीं महसूस करता है बल्कि अपनी व्यापारिक बुद्धि पर खुश होता है। डॉ. अर्जुन तिवारी ने लिखा है कि स्वतंत्रता हेतु समर्पित सेवा, राष्ट्र निर्माण की आकांक्षा के पश्चात हिन्दी पत्रकारिता व्यवसाय, कमीशन तथा सेसेक्स तक पहुंच चुकी है।

भारतीय राष्ट्र के शोषित वर्ग की पीड़ाओं के प्रतिबिम्ब को शासक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करना और शासक की नीतियों का सच्चा विश्लेषण कर जनमत को वाणी प्रदान करना है। जिससे राष्ट्र खुशहाल हो एवं विकास हो सके। सचमुच यह स्वतंत्रता पाठकों और संपादकों की है न कि मालिकों की। संपादक निडरता, निष्पक्षता से राष्ट्र की सच्ची तस्वीर पाठकों के समक्ष उपस्थित करे और जनमत कार्यपालिका एवं विधायिका के संबंध में अपना निर्णय ले सके। स्वामी ने पूंजी लगाई है तो धनार्जन उसका उद्देश्य है लेकिन पत्र के कर्तव्य एवं लक्ष्य पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। प्रबंधकीय क्षमता वाला कोई भी व्यक्ति बेहतर संपादक की भूमिका भी बखूबी निभा सकता है। निश्चित तौर पर यह भयावह स्थिति है, मीडिया द्वारा एक विचारहीन समाज का निर्माण किया जा रहा है। न्यायमूर्ति पीवी सांवत का कहना है कि शासन संपादकों का नहीं प्रबंधकों का है। वर्षों से घोषित पत्रकारिता के मूल्य आज औंधे मुंह गिर रही हैं। इसका शिकार समाज हो रहा है और दांव पर उसका भविष्य है।

किसी भी लोकतांत्रिक समाज की व्यवस्था संचालन में मीडिया की शक्तिशाली भूमिका होती है। सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में पत्र-पत्रिकाएं जनता की पथ प्रदर्शक, शुभचिंतक एवं निस्वार्थी की भूमिका निर्वहन करती हैं। उनकी वास्तविक प्रकृति एवं गतिविधियां सामाजिक एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण एवं असमानता के विरुद्ध होती हैं। प्रसिद्ध विद्वान वेण्डले फिलिप ने लिखा है कि आज का समाचार पत्र एक बारगी जनवर्ग का माता-पिता, स्कूल-कालेज, शिक्षक, थियेटर, आदर्श, परामर्शदाता और साथी हो गया है।

वर्तमान में मीडिया अधिक प्रसार एवं विज्ञापन प्राप्त करने की होड़ में इस कदर फंस चुका है कि भारत का असली चेहरा कहां है, वह भूल चुका है। उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देकर विज्ञापनदाताओं को प्रत्यक्ष सहयोग प्रदान करना उसका ध्येय हो गया है। इससे क्या देश आने वाले दशक में विकसित राष्ट्रों में शामिल हो जाएगा? इस पर प्रश्नचिह्न लग रहा है।

भारत की आत्मा गांवों, झोपड़ बस्तियों में बसती है। मीडिया का दायित्व है कि उनकी उपेक्षा न करके समाज की मुख्य धारा में इन्हें भी जोड़ें। पश्चिमी सभ्यता के उपनिवेशवादी अप-संस्कृति के भंवरजाल में उलझी मीडिया को इससे निकलना होगा और राष्ट्र की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करनी होगी। नहीं तो आने वाला कल इसी मीडिया से प्रश्न करेगा कि यह किसका राष्ट्र है? गांधी जी का या फिर उन अंग्रेजों का जिन्होंने हमें गुलाम बना रखा था। मीडिया को अपना लक्ष्य बदलना होगा तभी हम गांधी की परिकल्पना खुशहाल राष्ट्र को साकार कर राम राज्य स्थापित कर सकते हैं।

पत्रकारिता की शुरुआत सरकारी नीतियों के बारे में जनता को बताने, जनता की जरूरतों तथा सरकारी नीतियों पर उठने वाली प्रतिक्रियाओं से सरकार को अवगत कराने और सरकार तथा जनता दोनों को समसामयिक घटनाओं से अवगत कराने की प्रक्रिया के रूप में हुई। इस प्रकार इन गतिविधियों के लिये पत्रकारिता की जरूरत महसूस की गयी और इस जरूरत की पूर्ति के मद्देनजर ही इसका विकास हुआ। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने कहा था “जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो”। नेपोलियन भी मानता था कि चार विरोधी अखबारों की मारक क्षमता के आगे हजारों बंदूकों की ताकत बेकार है। इसी बात से

समझा जा सकता है कि पत्रकारिता और अखबार का क्या महत्व होता है।

पत्रकारिता को किसी भी राष्ट्र या समाज का आईना माना गया है, जो उसकी समसामयिक परिस्थिति का निष्पक्ष विश्लेषण करता है। पत्रकारिता की उपादेयता और महत्ता के बारे में माखनलाल चतुर्वेदी जी ने कर्मवीर के संपादकीय में लिखा था- “किसी भी देश या समाज की दशा का वर्तमान इतिहास जानना हो, तो वहाँ के किसी सामयिक पत्र को उठाकर पढ़ लीजिए, वह आपसे स्पष्ट कर देगा। राष्ट्र के संगठन में पत्र जो कार्य करते हैं। वह अन्य किसी उपकरण से होना कठिन है।” महात्मा गाँधी ने कहा- “प्रेस की आजादी ऐसा बहुमूल्य विशेषाधिकार है जिसे कोई भी राष्ट्र भूल नहीं सकता है।”

आज का युग सूचना और संचार का युग है जिसमें अखबार पत्रकारिता के आदर्शों से पतित हो रहे हैं। सामाजिक सरोकारों से लगातार विमुख होते जाने से पत्रकारिता का नैतिक पतन निश्चित रूप से हुआ है। आज के पत्रकारी युग का आदर्श खबरों को देना नहीं बल्कि ऐन-केन प्रकारेण खबरों को बेचना भर रह गया है। खबरों में न केवल मिलावट हो रही है बल्कि पेड न्यूज के तहत विज्ञापनों को खबरों के रूप में छाप कर पाठकों को धोखा भी दिया जा रहा है।

समाचारपत्रों में लोगों को शक्तिशाली तरीके से प्रभावित करने की क्षमता है। इसलिए संपादकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई गलत रिपोर्ट न चली जाए जो लोगों को उत्तेजित करती हो। संपादक और उसके सहायकों को इस बारे में हमेशा जागरूक रहना चाहिए कि वे किस समाचार को किस तरह से प्रस्तुत करते हैं। किसी स्वतंत्र राष्ट्र में सरकार के लिए प्रेस पर नियंत्रण रख पाना असंभव है। ऐसे में पाठकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे प्रेस की समीक्षा करें और उन्हें सही रास्ता दिखाएं। समाज का प्रबुद्ध वर्ग भड़काऊ समाचारपत्रों को नकार देगा।”

वर्तमान में पत्रकारिता का व्यावसायिकता के प्रति लगाव देखते ही बनता है। विज्ञापन और उससे प्राप्त धन आज पत्रकारिता को नए आयाम दे रहा है। आज मीडिया केवल राजनीतिक और सामाजिक जानकारियाँ प्रदान करने का माध्यम नहीं रहा अपितु वह भारतीय राजनीति का एक अंग बन चुका है। पहले निकलने वाले पत्रों के पीछे किसी व्यक्ति अथवा संस्था के कठिन प्रयास थे और वर्तमान में निकलने वाले पत्रों के पीछे है किसी बड़े व्यवसायी की पूंजी और उसके पीछे है कोई सपोर्टिव पार्टी।

पत्रकारिता के भविष्य को लेकर तरह-तरह के सवाल उठ रहे हैं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से लेकर प्रेस तक पत्रकारों को गंभीर असुरक्षा के साए तले जीना पड़ रहा है। रिपोर्टिंग के स्तर में तेजी से गिरावट आयी है। पत्रकारिता के बारे में सभी लोग एक ही सवाल कर रहे हैं कि आखिरकार इसका भविष्य क्या है? युद्ध के मोर्चे से लेकर घरेलू खबरों के मोर्चे तक खबरों में झूठ ने अपने पैर पसार दिए हैं। युद्ध संबंधी असत्य खबरों का साक्षात् प्रतीक है इराक। इराक में आज जो कुछ घट रहा है उसमें मीडिया की असत्य खबरों की सबसे बड़ी भूमिका रही है। दूसरी ओर यह भी देखा जा रहा है कि मीडिया के मुनाफों का विस्तार हुआ है। मीडिया की आमदनी में इजाफे को मीडिया के सुखद भविष्य के रूप में देखें अथवा मीडिया में जिस तरह असत्य ने विराट रूप में अपने पैर फैला दिए हैं उसे मीडिया के भविष्य के रूप में देखें?

पत्र-पत्रिकाओं में सदा से ही समाज को प्रभावित करने की क्षमता रही है। समाज में जो हुआ, जो हो रहा है, जो होगा, और जो होना चाहिए यानी जिस परिवर्तन की जरूरत है, इन सब पर पत्रकार को नजर रखनी होती है। आज समाज में पत्रकारिता का महत्व काफी बढ़ गया है। इसलिए उसके सामाजिक और व्यावसायिक उत्तरदायित्व भी बढ़ गए हैं। पत्रकारिता का उद्देश्य सच्ची घटनाओं पर प्रकाश डालना है, वास्तविकताओं को सामने लाना है। इसके बावजूद यह आशा की जाती है कि वह इस तरह काम करे कि ‘बहुजन हिताय’ की भावना सिद्ध हो।

महात्मा गाँधी के अनुसार, ‘पत्रकारिता के तीन उद्देश्य हैं- पहला जनता की इच्छाओं, विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है। दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाएं जागृत करना और तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को नष्ट करना है। गाँधी जी ने पत्रकारिता को जो उद्देश्य बताए हैं, उन पर गौर करें तो प्रतीत होता है कि पत्रकारिता का वही काम है जो किसी समाज सुधारक का हो सकता है।

पत्रकारिता नई जानकारी देता है, लेकिन इतने से संतुष्ट नहीं होता वह घटनाओं, नई बातों नई जानकारियों की व्याख्या करने का प्रयास भी करता है। घटनाओं का कारण, प्रतिक्रियाएं, उनकी अच्छाई बुराइयों की विवेचना भी करता है। समाज में मानव मूल्यों की स्थापना के साथ जन जीवन को विकासोन्मुख बनाना पत्रकारिता का दायित्व है। पत्रकारिता के सामाजिक और व्यावसायिक उत्तरदायित्व के अनेकानेक आयाम हैं। अपने इन उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए पत्रकार का एक हाथ हमेशा समाज की नब्ज पर होता है। पत्र में पुष्ट तथ्य ही समाविष्ट होने चाहिए, अपनी बनावटी कार्यकुशलता को सिद्ध करने के लिए अधपके समाचार देना समाजद्रोह है। सत्य वद ही पत्रकारिता का मर्म है। ऐसे समाचार या विचार जो समाज में नफरत, बैर भाव और निराशा फैला सकते हों, उनका सम्प्रेषण नहीं होना चाहिए। अतः समाज का हित और विकास ही पत्रकारिता का धर्म है।

संदर्भ

1. अभिव्यक्ति और माध्यम
2. पत्रकारिता की कालजर्ई परंपरा, कमलेश्वर
3. भारतीय पत्रकारिता कोश

राष्ट्रवाद की अवधारणा और हिंदी पत्रकारिता : जेलों में लेखन

डॉ. वर्तिका नन्दा
लेडी श्रीराम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

जेलें अकेलापन लाती हैं। वह उदासी का पर्याय हैं। एकांत का भी लेकिन यही जेल प्रवास कई बार आत्मचिंतन के बेशुमार मौके भी देता रहा है। यही वजह है कि पूरी दुनिया में जेल प्रवास के दौरान लिखने की परंपरा रही है। ऐसा अक्सर हुआ कि अकेलेपन से उपजा साहित्य व्यक्तिगत गाथा ही बन कर रह गया लेकिन तब भी ऐसा भी बहुत कुछ कलम से निकला जिसने समाज का सच्चा खाका भी खींच दिया और समाज की दिशा भी तय कर दी।

महात्मा गांधी ने अपने जेल प्रवास के दौरान खूब चिंतन-मनन किया। सत्य के साथ गांधीजी के प्रयोग 'मॉय एक्सपेरिमेंट विद् टुथ' जेल यात्राओं के उनके बहुत-से अनुभवों से निकलकर सामने आए थे। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को ब्रिटिशराज के दौरान 1942-46 में जेल भेज दिया गया था। इसी दौरान उन्होंने 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' को लिख दुनिया को एक अनूठी किताब भेंट की थी। यह किताब आज भी भारत की विकास यात्रा पर एक महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ के रूप में देखी जाती है।

देश की आजादी के लिए शहादत देने वाले भगतसिंह ने जेल में चार पुस्तकें लिखी थीं। यह चारों ही पाण्डुलिपियाँ आज नष्ट हो चुकी हैं। यह कहा जाता है कि इन सभी को उनके ही एक दोस्त ने अंग्रेजों के डर से जला डाला था। आज उनके बारे में न तो कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है और न ही किसी ने भारतीय इतिहास के इस अंधेरे पक्ष पर शोध करने की जरूरत समझी है। लेकिन उनके लिखे का जो भी हिस्सा मिला, वह आजादी के संघर्ष और जेल की गाथा कहता है। जेल में भगत सिंह करीब 2 साल रहे। इस दौरान वे लेख लिखकर अपने क्रान्तिकारी विचार व्यक्त करते रहे। जेल में रहते हुए उनका अध्ययन जारी रहा। इस दौरान लिखे गये उनके लेख, संपादकों के नाम लिखी गई चिट्ठियाँ और सगे सम्बन्धियों को लिखे गये पत्र उनके विचारों की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने जेल में अंग्रेजी में एक लेख भी लिखा जिसका शीर्षक था -मैं नास्तिक क्यों हूँ?

यशपाल ने जेल में रहकर लिखा। जेल में ही उन्होंने कई भाषाएं सीख लीं और कई विदेशी ग्रंथों के हिंदी में अनुवाद किए। महेश दर्पण की संपादित किताब अवध नारायण मुद्गल समग्र में यह बात खास तौर से दर्ज है कि यशपाल ने अपने जीवन के कई सबसे बड़े फैसले जेल के अंदर ही लिए। यहां तक कि प्रकाशवती पाल से उनका विवाह भी जेल के भीतर ही संपन्न हुआ था। प्रकाशवती खुद भी क्रान्तिकारी थीं। विवाह के बाद प्रकाशवती को रिहा कर दिया गया। जेल से मुक्त होने के बाद वे हरिवंशराय बच्चन के घर मेहमान बन कर रहीं। जेल में लिखी यशपाल की कहानियों का संकलन 'पिंजड़े की उड़ान' बहुत चर्चित रहा। अपनी किताब के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा है- जब 6 वर्ष तक मैं पिंजरे में बंद था, उस समय वास्तविक कार्यशीलता के लिए कोई अवसर न था। कहानी के रूप में कल्पना भूत और भविष्य की भूलभलैया में उड़ानें भरा करतीं। (विप्लव प्रकाशन, 1936)। यशपाल बिस्मिल, भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद के साथी थे।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'क्यों गाती हो, क्यों चुप हो जाती हो, कोकिल बोलो तो?' भी जेल में लिखी गई थी। मन्मथनाथ गुप्त ने अंडमान निकोबार जेल में रहकर अपनी और अपने साथियों की सजा को 'अंडमान की गूंज' नामक किताब में लिखा।

जयप्रकाश नारायण की 1977 में प्रकाशित हुई 'मेरी जेल डायरी' मूलतः चंडीगढ़ जेल से लिखी गई और इमरजेंसी की गाथा कहते हुए नजरबंदी और बाकी कुछ जेलों में रहे राजनीतिक कैदियों की मनोदशा को बयान करती है। यह किताब उस समय के बेहद विवादास्पद राजनीतिक माहौल की व्याख्या करती हुई आगे बढ़ती है। उस समय अकेले ट्रिब्यून समाचार पत्र के जरिए जेपी देश के घटनाक्रम को जान पा रहे थे। यह डायरी उस समय के भारतीय मानस की सटीक तस्वीर प्रस्तुत करती है। इस किताब की प्रस्तावना में श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है कि इस किताब के पन्ने लोकमानस के ऐसे दर्पण हैं जिनमें कोई भी अपने समय की छवि देख सकता है। किताब में जेपी की वह विनती खास तौर से उद्धृत करती है जिसमें वे सत्ता से निवेदन करते हैं कि नजरबंदी के दौरान उन्हें कम से कम किसी एक व्यक्ति से मिलने और बात करने की अनुमति दी जाए।

नजरबंदी के एकाकीपन का किसी बंदी की मनोदशा पर कितना गंभीर असर पड़ सकता है, यह भी इस किताब में झलकता है।

अंग्रेजों द्वारा कागज-कलम मुहैया न किए जाने पर जेल की दीवारों पर कोयले से लिखनेवाले क्रांतिकारी शासक और शायर बहादुर शाह जफर भी इस कड़ी में याद किए जा सकते हैं। दीवार पर लिखी गई वह प्रसिद्ध गजल आज भी भारतीय मानसपटल पर अंकित है – ‘दो गज जमीं भी न मिली कूए-यार में।’

अज्ञेय की ‘शेखर एक जीवनी’ भी जेल में ही सोची गई। उसके पहले खंड की ड्राफ्टिंग जेल में ही हुई थी। शेखर की भूमिका लिखते हुए अज्ञेय ने खुद कहा है-‘यह जेल के स्थगित जीवन में केवल एक रात में महसूस की गई घनीभूत पीड़ा का आख्यान है।’ जेल के अंदर की जिंदगी को करीब से देखते हुए उन्होंने मानसिक अकेलेपन और सामाजिक कटाव को बखूबी व्याख्यित किया है। अपनी एक कहानी ‘दारोगा अमीरचंद’ में वे कहते हैं, ‘यों तो यह जिस जेल की बात है, उसका नाम मैं बता देता पर एक कहानी के नाम पर मैं किसी को भी दुखी नहीं करना चाहता। फिर कहानी चाहे सच्ची ही क्यों न हो।’

इसी तरह रामवृक्ष बेनीपुरी एक लेखक भी थे और स्वतंत्रता सेनानी भी। दर्जन से अधिक बार जेल जाने वाले इस शख्स ने अपनी जिंदगी के आठ साल जेल में बिता दिए। उनका प्रसिद्ध नाटक ‘अंबपाली’ जेल में ही लिखा गया और न जाने कितनी सारी कहानियां भी। ‘कैदी की पत्नी’ और ‘जंजीरें और दीवारें’ में जेल और साहित्य का रिश्ता साफ और सीधे तौर पर झलकता है।

बिहार की हजारीबाग जेल में अपने अनुभवों पर आधारित किताब माई ईयर्स इन एन इंडियन प्रिजन के जरिए मेरी टेलर ने भारतीय जेलों का खाका ही खींच कर रख दिया है। इसे भारतीय जेलों पर अब तक की सबसे खास किताबों में से एक माना जाता है। इस ब्रितानी महिला को 70 के दशक में नक्सली होने के संदेह में भारत में गिरफ्तार किया गया था। 5 साल के जेल प्रवास पर लिखी उनकी यह किताब उस समय की भारतीय जेलों की जीवंत कहानी कहती है।

यह सच है कि जेल जाने वालों में कुछ तो पहले से ही लेखक थे लेकिन यह भी हुआ कि बहुत-से लोगों को जेल ने लेखक बना दिया। दोनों ही दृष्टियों से इन लेखकों ने जेल साहित्य को समृद्ध ही किया। कमाल की बात यह है कि जेलों के नाम पर होने वाले शोध में भी अक्सर जेल का वही साहित्य चर्चा में आता है जिसे मीडिया लपकती है। बाकी जेल की दुनिया की ही तरह कहीं गुमनामी में खो जाता है।

लगभग डेढ़ दशक पहले गोवा केंद्रीय कारागार में एक कैदी थे- सुधीर कुमार। देश की तमाम ख्यात पत्रिकाओं में उसकी चिट्ठियां बतौर पाठकीय प्रतिक्रियाएं छपती रहीं थीं। तमाम नए पुराने लेखकों के पास उनके आलोचकीय पत्र बाकायदा पहुंचते रहे। उन पर नशीली पदार्थों की तस्करी करने का आरोप था। पर सुधीर लगातार पढ़ते और गढ़ते रहे और उन्होंने बहुत से दूसरे कैदियों को भी प्रोत्साहित किया। उन्होंने जेल को अपनी लेखकीय कर्मभूमि बना डाला। उनकी चिट्ठियां और बाद में उनकी आत्मकथा भी ‘हंस’ जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में छपी थी। बहुत पहले सुधीर जेल से आजाद हो गए, पर हैरत की बात यह कि खुली दुनिया में दाखिल होते ही उनकी वह पहचान, उनका वह हस्तक्षेप साहित्यिक दुनिया से लगभग खत्म होता चला गया लेकिन यह जरूर पता लगा कि जेल से रिहाई के बाद उन्हें एक पुस्तकालय में लाइब्रेरियन की नौकरी मिल गई।

आजीवन कारवास की सजा भोग रहे एक कैदी राजकुमार ने जेल में बड़ी संख्या में रचनाएं लिखकर लोगों को हैरत में डाल दिया। उसने यह भी मांग की थी आगे की सजा माफ कर दे।

2016 में तिहाड़ जेल में बंदी रहे सुब्रत राय की लाइफ मंत्र, यरवदा जेल के अनुभवों पर आधारित संजय दत्त की सलाखें और जेएनयू छात्र संघ के पूर्व अध्यक्ष कन्हैया कुमार की जेल अनुभवों पर आधारित किताब लिखने की घोषणा भी जेलों को साहित्य को लेकर एक नए रोमांच को जन्म दे चुकी है। 2015 में यरवदा जेल से रिहाई के बाद संजय दत्त ने यह घोषणा की थी कि उसने जेल प्रवास के दौरान करीब 500 कविताये लिखीं। उसने यह भी कहा था कि उसे इन कविताओं की प्रेरणा अपने साथ जेल में बंद दो बंदियों से मिली थी। संजय ने यह भी घोषणा की थी कि वह इन कविताओं को एक पुस्तक के रूप में छापना चाहेगा।

दरअसल जेल-साहित्य का इतिहास सिर्फ हमारे यहां का ही नहीं है, विश्व साहित्य में भी इसकी बहुत अहम भूमिका रही है। रोमानिया में एक कानून है कि सजा भुगतने की अवधि में लिखी और छपी किताब के आधार पर सजा एक महीने के लिए कम हो जाती है। इसकी वजह से बहुत सारे कैदियों के भीतर कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी आते हैं। शर्त बस यह रहती है कि इससे समाज का उत्थान हो रहा हो।

जेल में लिखे साहित्य को सहेज कर रखने और अलग-अलग समय-चक्रों में उसके आकलन से राष्ट्रीयता के जाने-अनजाने पहलुओं को समझने में आसानी होती है। लाहौर से लेकर कालापानी तक-जेलों में बंद स्वतंत्रता सेनानी अगर उस समय की गाथा को कागज पर न उतारते तो राष्ट्रवाद के इतिहास के कई पन्ने वाकई अधूरे रह जाते।

संदर्भ

- 1 नन्दा, वर्तिका: तिनका तिनका डासना. तिनका तिनका फाउंडेशन, 2016
- 2 नन्दा, वर्तिका: तिनका तिनका तिहाड़: राजकमल प्रकाशन: 2013
- 3 कारागार और कलम, कविता, 6 नवंबर, 2016, जनसत्ता
- 4 चन्द्रशेखर: मेरी जेल डायरी: राजकमल प्रकाशन: 2002

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता में राष्ट्रवाद

डॉ. पंकजेन्द्र किशोर

जाकिर हुसैन दिल्ली महाविद्यालय (सांध्य)

दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत में राष्ट्रीय भावना का जागरण उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में देशवासियों को कुंठित होना पड़ा परन्तु बाद में सामाजिक और धार्मिक सुधार संबंधी आंदोलनों ने जन-जन में राष्ट्रीय जागरण का संचार किया। देश की दुर्दशा पर बुद्धिजीवियों ने केवल अश्रुपात ही नहीं किए वरन् आह्वान भी किया गया -

रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई।

हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उद्बोधनात्मक पंक्तियों से प्रभावित होकर अजीमुल्ला खाँ ने 'तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा' हेतु पाठकों का आह्वान किया। गलाघोंट प्रेस अधिनियम 1857 और गैंगिंग प्रेस एक्ट 1878 जैसे काले कानूनों की परवाह न करके पत्रकारों ने भारतीय जनता को उद्बोधित किया। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज ने जहाँ एक ओर स्वदेश भक्ति की भावना को प्रबल बनाया वहीं तद्युगीन साहित्यकारों ने मिशन के रूप में पत्रकारिता के द्वारा राष्ट्रवाद की भावना जागृत की।

भारतेन्दु एक क्रांतिदर्शी पत्रकार थे। उन्होंने 1857 की विफल क्रांति के दस वर्षों पश्चात् दुखी सज्जनों को ढाढस बंधाया कि सभी अपने सत्व को पहचानें, कर के बोझ से मुक्ति के लिए संघर्ष करें, स्त्री-पुरुष में समानता लाएँ तथा उनके द्वारा सुकवियों की अमृतवाणी का ही अध्ययन मनन हो। सर्वप्रथम उन्होंने ही अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली और कानून को दोषपूर्ण बतलाया, "जो कानून और शिक्षा प्रणाली हिन्दुस्तान में प्रचलित है वह हमारी समझ में यथार्थ न्याय के विरुद्ध है, क्योंकि जो मुकद्दमे कचहरी में जाते हैं, जो उनका दावा सच भी हो तो भी दो चार झूठ बात मिलाए बिना डिग्री नहीं मिलती। अब कहिए न्यायागार में भी झूठ हाय तो हो।"¹

भारतेन्दु युग राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषाई आंदोलन का युग था और इन सभी आंदोलनों का एक मात्र उद्देश्य था यहाँ की सुषुप्त जनता को पुनः जागृत कर उनमें राष्ट्रवाद की भावना का संचार करना। भारतेन्दु एवं उनके मंडल के अन्य साहित्यकार जैसे प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि मूल रूप से सुधारक थे जिन्होंने जनसंपर्क के लिए पत्रकारिता को अपनाया। उनके लिए पत्रकारिता आज की तरह पेशा नहीं थी, वरन् पवित्र सेवा थी। भारतेन्दु युग राष्ट्रीय जागरण का अत्यंत महत्त्वपूर्ण समय रहा है। इस युग के पत्रकारों ने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से सामान्य जनता की इच्छा-आकांक्षा एवं आशा-निराशा को अभिव्यक्त किया। ब्रिटिश शासन की शोषण-प्रवृत्ति को सम्मुख लाने में इन पत्रिकाओं ने स्पष्ट रूप से एक मंच का विकास और उसका संवर्द्धन किया। लोगों में जागरुकता उत्पन्न हुई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इस काल की पत्रिकाओं की संख्या सत्ताईस बताई है। परन्तु दूसरी ओर बाबू राधाकृष्ण दास की पुस्तक 'हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास' में यह संख्या एक सौ उनतालिस तक पहुँच गई है। वस्तुतः उस दौर में भारतीय भाषाओं की पत्रिकाएँ राष्ट्रीय स्तर के विमर्श के लिए एक मंच का काम करती थी। अब हम भारतेन्दुयुगीन पत्रिकाओं में राष्ट्रवाद के घटकों की पड़ताल इस प्रकार करेंगे -

सामाजिक चेतना

इसके अंतर्गत हम स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, परदा-प्रथा, बाल-विवाह, जाति-प्रथा से संबंधित तत्कालीन समस्याओं को देखेंगे।

स्त्री शिक्षा - जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी समाज के विकास हेतु शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता है। भारतेन्दु काल के प्रायः सभी सुधार आंदोलनों में स्त्रियों में शिक्षा के लिए सतत् प्रयास किए गए। भारतेन्दु की प्रसिद्ध पत्रिका 'कविचक्र सुधा' के मुखपृष्ठ पर लिखा जाने वाला सिद्धांत वाक्य 'नारीनर सम होहिं' तत्कालीन सामाजिक मर्यादा के लिए एक गंभीर चुनौती थी, जब महिलाओं को कथित रूप से विवेकशून्य बताया जाता था और उनकी शिक्षा-दीक्षा पर रोक थी। वे 'नील देवी' की भूमिका में स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखते हैं - "जिस भाँति अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी-लिखी होती हैं, घर का कामकाज सम्हालती हैं, अपने संतान गण को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी

जाति और अपने देश की सम्पत्ति, विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य जीवन को गृहदास्य और कलह ही में नहीं खोती, उसी भाँति हमारी गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था को उल्लंघन कर कुछ उन्नति प्राप्त करे, यही लालसा है।”²

भारतेन्दु मण्डल के दूसरे पत्रकार बालकृष्ण भट्ट का मानना है कि समाज की अधिकतर कुरीतियों को स्त्री-शिक्षा के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। इसलिए वे न केवल स्त्री-शिक्षा वरन् आधुनिक शिक्षा की भी बात करते हैं। ‘हिन्दी प्रदीप’ के अप्रैल-जून 1894 ई. के अंक में लिखते हैं - “इनको (स्त्रियों को) अब तालीम की जरूरत है तो उस तरह की तालीम होनी चाहिए जिसमें इनके नेत्र खुलें, भूगोल, इतिहास, भात-2 के विज्ञान इन्हें सिखाए जायें जिसके पढ़ने से इनकी विवेक शक्ति बढ़े।”³

परदा प्रथा - पुरुष सत्तात्मक समाज में यह एक बड़ी समस्या रही है। जुलाई 1879 ई. में “हिन्दी प्रदीप” में भट्ट साहब लिखते हैं - “देश की प्रचलित रीति के अनुसार हम अपनी स्त्रियों को एक तो यों ही सब तरह परहीन-दीन दासी बनाए हुए हैं.... गर्मी के मौसमों में तो उन बेचारी गृहस्थिनियों को रातों-दिन चूल्हे के आस-पास बैठे-बैठे जो हाल होता है, वे ही जानती हैं, ऊपर से लंबा घूंघटा।”⁴ ‘स्त्रियाँ’, ‘वधूस्तवराज’, ‘पत्नीस्त्व’, ‘सुगृहिणी’, ‘स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा’, ‘पति-पत्नी’ आदि उनके और सराहनीय निबंध हैं।

बाल-विवाह - इसी प्रकार भारतेन्दुयुगीन लेखकों ने बाल-विवाह जैसी कुप्रथा का पुरजोर विरोध किया। फरवरी 1886 ई. के हिन्दी प्रदीप में ‘बाल-विवाह’ शीर्षक लेख में बालकृष्ण भट्ट ने इस प्रथा का विरोध किया। उन्होंने सहवास बिल का भी विरोध किया। मार्च 1906 ई. के ‘हिन्दी प्रदीप’ में वे बाल-विवाह को राष्ट्रीय एकता के लिए घातक मानते हैं। इसी प्रकार अप्रैल 1883 ई. के ब्राह्मण में ‘बेगारी विलाप’ कविता में भारतेन्दु जी ने बाल-विवाह की समस्या पर भी ध्यान दिया -

मद्यपान गानिका गमन बाल व्याह की रीति।

बल करि रोकी जात नहीं औरहु दुख न कुरीति।⁵

विधवा समस्या - तत्कालीन समाज में विधवाओं की अत्यंत दारुण स्थिति थी। राधावर्णन दास ने विधवा-विवाह का समर्थन करते हुए ‘हरिश्चन्द्र चंद्रिका’ और ‘मोहन चंद्रिका’ में ‘दुखिनी बाला’ शीर्षक प्रभावशाली लेख लिखा। अन्य पत्रकारों ने भी विधवाओं की दयनीय स्थिति पर बहुत कुछ लिखा।

अन्य समस्याएँ - भारतेन्दु युग के लेखकों ने इन समस्याओं के अतिरिक्त द्यूत-क्रीड़ा, नशापान, विवाहोत्सव पर अपव्यय, वेश्यागमन जैसी समस्याओं पर भी अपनी लेखनी चलाकर राष्ट्रीय हित में काम किया। ‘ब्राह्मण’ के एक अंक में ‘जुआरी, खुआरी प्रहसन’ प्रकाशित कर प्रतापनारायण मिश्रजी ने उन लोगों को कड़ी फटकार लगाई जो द्यूत-क्रीड़ा को पर्व-त्योहार के अवसर पर शुभ मानते हैं। इसी प्रकार भारतेन्दु युग के लेखकों में अन्यतम बालकृष्ण भट्ट जाति-प्रथा के विरुद्ध सबल समाज-सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। जून, 1893 ई. के ‘हिन्दी प्रदीप’ में जात-पात शीर्षक निबंध में उन्होंने जाति-व्यवस्था की कटु आलोचना की है। उनका कहना है - “जैसा बेहूदा तरीका बिरादरी का इस समय प्रचलित है, उससे कभी आशा नहीं की जा सकती कि जाति-पाति के सत्यानाश के बिना उन्नति की हजार-हजार चेष्टा करने पर भी हमारी या हमारे देश की कभी तरक्की होगी। स्वाधीनता की नाक काटने वाली, इस जाति-पाति की कुरीत देख यही मन में आता है कि हे परमेश्वर हमने कौन-सा पाप किया था जिसका फल भोगने को ऐसे कुलच्छिनी समाज में तूने हमें पैदा कर दिया।”⁶

स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं - “हमारा नाम है सत्यानाश, आए हैं राजा के हम पास। धर के हम लाखों ही भेस, किया चौपट या सारा देश। बहुत हम ने फैलाए धर्म, बढ़ाया छूआछूत का कर्म।”⁷ भारतेन्दु ने जाति-भेद और धर्म-भेद को देश के सम्पूर्ण विकास में बाधक माना। उन्होंने सम्बोधित करते हुए कहा - “जाति में चाहे कोई ऊंचा हो चाहे नीचा हो, सब का आदर कीजिए जो जिस योग्य हो, उसको वैसा मापिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए।”⁸

राजनीतिक चेतना

भारतेन्दु युग के कुछ लोगों का यह मानना था कि नवजागरण में सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों ही सुधारों की अपनी-अपनी भूमिका है इसलिए इन्हें साथ-साथ चलना चाहिए परन्तु राजनीतिज्ञों के एक वर्ग का मानना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद स्वतः ही सामाजिक बुराइयों का निराकरण हो जाएगा। बाल गंगाधर तिलक की दृष्टि में राजनीतिक सुधार के कार्य समाज-सुधार के कार्य से पहले होने चाहिए। वे स्वतंत्रता प्राप्ति तक समाज-सुधार के कार्य को स्थगित रखने के पक्ष में थे। जबकि महादेव गोविंद रानाडे के मतानुसार साथ में समाज-सुधार होने की दशा में राजनीतिक जागरूकता को शक्ति मिलती है। 1887 ई. में चेन्नई (मद्रास) में जब कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हुआ, उसके पश्चात् उसी पंडाल में ‘इंडियन सोशल कानफरेंस’ का पहला अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता राजनैतिक चेतना के माध्यम से भी राष्ट्रवाद का कार्य कर रही थी। ‘ब्राह्मण’ के 15 जनवरी 1890 ई. के अंक में प्रतापनारायण मिश्रजी का लेख ‘सोशल कानफरेंस’ शीर्षक से प्रकाशित हुआ। मिश्रजी ने लिखा, “जैसे राजनीतिक विषयों के संशोधनार्थ नेशनल कांग्रेस की आवश्यकता है, वैसे ही सामाजिक सुधार के निमित्त सोशल कानफरेंस की भी

आवश्यकता है।” समाज सुधार के कार्य को वे धर्म से जोड़कर देखते थे तथा इस क्षेत्र में आर्य समाज जैसे धार्मिक संगठन के उपयोग के पक्ष में थे।

प्रतापनारायण मिश्र सोशल कान्फरेंस के पहले अधिवेशन में पारित उन प्रस्तावों के विरोध में थे जिनमें सरकार से कानून बनाकर सामाजिक बुराइयों को रोकने का अनुरोध किया गया था। उनका मानना था कि समाज-सुधार का कार्य यदि समाज के लोग ही करें, तो उत्तम होगा। उनका उपयोगी और तर्कसंगत सुझाव था, “हमारे राजनैतिक प्रतिनिधियों को चाहिए कि इस विषय में चुने-चुने पंडितों और मौलवियों को उत्तेजना दें कि वे प्रत्येक समुदाय के मुखिया लोगों को इस ओर झुकाते रहें, स्मरण रहे समाज को जितना संबंध ब्राह्मणों तथा मौलवियों से है, उतना गवर्नमेंट से कदापि नहीं है। इस विषय में जितनी शीघ्रता और सुन्दरता के साथ ब्राह्मणों के द्वारा कार्यसिद्धि होगी, उतनी गवर्नमेंट और तत्स्थापित कानून द्वारा कभी न हो सकेगी।”¹⁰

अक्टूबर, 1890 ई. के ‘हिन्दी प्रदीप’ में बालवरुष्ण भट्ट एक लेख लिखते हैं जिसका निष्कर्ष है कि यदि कोई देश राजनीति रूप से शक्तिशाली होना चाहता है तो यह आवश्यक है कि वह अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार कर उसे शक्तिशाली बनाए और समाज के शक्तिशाली अथवा दुर्बल होने का संबंध धर्म अथवा मजहब से है।

आर्थिक चेतना

यहाँ के एक वर्ग का विश्वास था कि अंग्रेज यहाँ के लोगों की खुशहाली और समृद्धि के लिए हैं। जब यहाँ की जनता पढ़-लिखकर प्रशासनिक कार्यों में दक्ष हो जाएगी तो वे सत्ता सौंपकर अपने देश प्रस्थान कर जाएंगे। परंतु 1857 ई. के पश्चात् यह मोहक भ्रमजाल टूटने लगता है। दादाभाई नौरोजी ने 1867 ई. में कहा था, “देश की वास्तविक अर्थनीति को सुलझाने में अक्षम भारतीयों ने अपने चारों ओर की थोपी चकाचौंध से चौंधिया कर अपने शासकों पर विश्वास करते हुए उनके दृष्टिकोण को बिना किसी टीका-टिप्पणी के स्वीकार कर लिया। भारतीय लोगों ने अंग्रेज अधिकारियों की व्यापार-नीति पर वेदों की तरह आँख मूंदकर विश्वास किया।”¹¹ पत्रकारिता के इस दौर में आर्थिक कारकों की भूमिका केन्द्र में थी। देश से कच्चे माल का निर्यात और उपभोक्ता वस्तुओं का आयात केवल राष्ट्रीय क्षति ही नहीं अपमान का भी विषय था। भारत के लोग आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च पदों पर न आएँ, इसके लिए कई प्रकारके तिकड़म किए गए।

अठारहवीं सदी के मध्य तक मूलतः कृषि प्रधान रहा इंग्लैण्ड भारत के संगठित लूट की वजह से औद्योगिक क्रांति कर पाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बंगाल के दुर्भिक्ष को अंग्रेजी सरकार की अनीति का परिणाम ठहराया। इसी प्रकार उन्होंने शोषण की कारुणिक स्थिति पर लिखा, “... कपड़े बनाने वाले, सूत निकालने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख मांगते हैं, खेती करने वालों की यह दशा है कि लंगोटी लगा कर, हाथ में तुंबा ले भीख मांगते हैं और जो निरुद्यम हैं, उनको तो अन्न की भ्रांति है।”¹² उन्होंने नए जमाने की मुकरी में लिखा -

“भीतर भीतर सब रस चूसै / हंसि हंसि कै तन मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज, / क्यों सखि सज्जन, नहिं अंगरेज।”¹³

अंग्रेजों की कुनीति पर प्रताप नारायण मिश्र जी ने लिखा, “सौ कुटुंब में से अस्सी ऐसे ही मिलेंगे। जिनमें छोटे-बड़े सभी यथासाध्य कुछ-न-कुछ उद्योग करते हैं पर ऐसा कोई वर्ष नहीं आता जिसमें खाने-पहिनने के व्यय से कुछ रख छोड़ने को भी बचता हो। ऊपर से टिक्कस चंदा, विदेशी व्यापार की वह भरमार कि बिना दिए निर्वाह कठिन, इज्जत बचना दुष्वार।”

स्वदेशी आंदोलन

स्वदेशी अर्थात् भारत में निर्मित वस्तुओं का प्रचार-प्रसार साम्राज्यवादी शोषण से लड़ने के लिए सर्वाधिक सक्षम हथियार था। यह अत्यंत सहज एवं स्वतःस्फूर्त ढंग से आरंभ हुआ था। बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के सूत्रपात के रूप में 1867 ई. में नवगोपाल मित्र ने एक हिन्दू मेला आयोजित किया जो बाद के 14 वर्षों तक लगातार आयोजित होता रहा। इस मेले का प्रमुख उद्देश्य भारतीय हस्तशिल्प की वस्तुओं की प्रदर्शनी लगाना और उसके माध्यम से स्वदेशी उत्पादों के प्रयोग को बढ़ावा देना था। महादेव गोविंद रानाडे ने पूना में 1872 ई. में अपने सार्वजनिक भाषण में बोलते हुए लोगों से आग्रह किया कि स्वदेश में निर्मित सामान भले ही विदेशी सामान से महंगा और गुणवत्ता में घटिया क्यों न हो, क्रय के समय हमें उसको वरीयता देनी चाहिए। स्वदेशी उत्पादों के प्रयोग हेतु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ‘कविवचन सुधा’ के मार्च 1874 अंक में शपथ दिलाते हुए लिखा, “हम लोग सर्वांतरायामी, सब स्थल में वर्तमान, सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा कि पहले से मोल ले चुके हैं और आज की तिथि तक हमारे पास है, उसको तो उसके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिन्दुस्तान ही का बना पहिरेंगे।”¹⁴ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए स्वदेशी आंदोलन अत्यंत व्यापक था। उनकी दृष्टि में स्वदेशी एक समग्र आंदोलन था, औद्योगिक और वाणिज्यिक आंदोलन। वे साम्राज्यवादी शोषण के घातक परिणाम से अपने पाठकों को परिचित कराना चाहते थे, “अंग्रेजी व्यापारी माल भेजने लगे, देखो बढ़ई आदि छोटे-छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया है, यहाँ तक कि घर की खिड़कियाँ, दरवाजे आदि सब विलायत से बनकर आते हैं।”¹⁵

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का मानना था कि स्वदेशी की पूर्ण सफलता इसी में निहित है कि सभी आवश्यक वस्तुओं का निर्माण

देश के ही भीतर हो। बलिया के ददरी मेले में 'देश की उन्नति कैसे हो सकती है?' में भारतेन्दु ने इस बात पर क्षोभ प्रकट किया था कि हमारे पास अपना कहने को कुछ भी नहीं है, "जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिलती है, वैसी ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैंड, फ्रांसीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है। जरा अपने ही को देखो, तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो, वह अमेरिका की बनी है जिस लकिलार का तुम्हारा अंगा है, वह इंग्लैंड का है, फ्रांसीस की बनी कंधी से तुम झारते हो और वह जर्मनी की बनी चर्बी की बत्ती तुम्हारे सामने जल रही है यह तो वही मसल हुई कि एक बेफिकरै मंगनी का कपड़ा पहिन किसी महफिल में गए। कपड़ों की पहिचान कर एक ने कहा, 'अजी यह अंगा फलाने का है।' दूसरा बोला, 'अजी टोपी फलाने की है तो उन्होंने हंस कर जवाब दिया कि घर की मूछें ही मूछें हैं।"¹⁶

बालकृष्ण भट्ट ने स्वदेशी आंदोलन को एक-दूसरे ही संदर्भ में देखा। उनका कहना है कि भारत में न तो प्राकृतिक संपदा की कोई कमी है और न बौद्धिक संपदा की। उनका कहना है कि अंग्रेजी राज के पूर्व हम प्रत्येक क्षेत्र में परमुखापेक्षी नहीं थे। इस देश के जुलाहे धनवंत थे, परंतु आज विदेशी वस्त्रों के उपयोग के कारण वे भूखे मरने को विवश हो गए हैं। विदेशी वस्त्रों का प्रयोग भारत के लिए घातक हो रहा है - "जो फायदा यहाँ के लोग उठाते थे, वही अब मैनचेस्टर वाले उठा रहे हैं। विलाइती कपड़े तथा यावत् विलायती चीजें, सब यहाँ आने लगी हैं। नए-नए कानून के द्वारा यहाँ के कपड़ों का विलाइत जाना बंद हो गया और इतना विलाइती कपड़ा यहाँ आता है कि 15 करोड़ रुपया केवल कपड़ों के मध्ये विलाइत जाता है। चावल, गेहूँ, तिसी, तूल, नील आदि कच्चे बाने 15 करोड़ के लगभग यहाँ से विलाइत जाते हैं जिसके बदले उतने ही का कपड़ा और लोहा लक्कड़ यहाँ आता है।"¹⁷

पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने स्वदेशी की उपयोगिता को सर्वसाधारण जनता को समझाने के लिए दो वस्तुओं कपड़ा और चीनी को चुना है। ये जनोपयोगी अनिवार्य वस्तुएं हैं। 'ब्राह्मण' के फरवरी, 1886 ई. के अंक में 'देशी कपड़ा' शीर्षक आलेख में उन्होंने लिखा, "खेद का विषय है कि हम अपने मुख्य निर्वाह की वस्तु के लिए भी परदेशियों का मुंह देखा करें। हमारे देश की कारीगरी लुप्त हुई जाती है हमारा धन समुद्र पार खिंचा जाता है....।"¹⁸ इतना ही नहीं प्रतापनारायण मिश्र जी अपनी पत्रिका 'ब्राह्मण' में वैसे समाचारों को ही प्रमुखता से प्रकाशित करते थे जो स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में होते थे।

भारतीय वस्तुओं पर प्रायः घटियापन का आरोप लगाया जाता था। इस मानसिकता का भारतेन्दुयुगीन लेखकों ने पुरजोर खंडन किया। इस संबंध में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के राष्ट्रवाद से ओतप्रोत यह कथन देखने योग्य है - "हम लोगों को इतना विचार नहीं कि विदेशी लोग तो स्वदेशानुराग के कारण सात समुद्र पार से भी आकर यहाँ अपने देश के पदार्थ को कार्य में लाते हैं और हम अपने देश की बनी वस्तुओं को छोड़ विदेशी पदार्थ ले लेकर भकुआ बनने के प्रत्यक्ष प्रमाण बनते हुए, अपने देश के उद्यम का सर्वनाश कर रहे हैं, जिस कारण कितने ही सुंदर पदार्थ जो यहाँ बहुतायत से बनते थे, अब देखने में भी नहीं आते। निदान, जब तक हममें स्वदेशानुराग न हो, अपने देशोद्धार की चिंता न हो, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार कैसे संभव है?"¹⁹ इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवाद का अलख जगाने में भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

संदर्भ

- 1 कविवचन सुधा, अंक-4.
- 2 भारतेन्दु समग्र, पृ. 479.
- 3 हिन्दी प्रदीप, सन् 1884 (अप्रैल से जून) पृ. 13-14.
- 4 हिन्दी प्रदीप, जुलाई 1879, पृ. 17.
- 5 ब्राह्मण, 15 मार्च, 1883 ई. (प्रवेशांक), पृ. 4.
- 6 हिन्दी प्रदीप, जून 1889.
- 7 भारतेन्दु समग्र, पृ. 462.
- 8 भारतेन्दु समग्र, पृ. 1013.
- 9 ब्राह्मण, 15 जनवरी, 1890 ई.
- 10 ब्राह्मण, 15 जनवरी, 1890 ई.
- 11 राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकोनॉमिक नेशनलिज्म इन इंडिया, पुनर्मुद्रण, 1991, विपिनचंद्र, पृ. 2
- 12 कविवचन सुधा, 16 फरवरी 1874
- 13 नवोदिता हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड-2, 1884 ई.
- 14 कविवचन सुधा, मार्च 1874 ई.
- 15 कविवचन सुधा, फरवरी 1874 ई.
- 16 भारतेन्दु समग्र, वाराणसी, 1991 ई., पृ. 1013.
- 17 हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1896 ई.
- 18 ब्राह्मण, 15 फरवरी 1886 ई.
- 19 आनंद कार्दबिनी, सितंबर 1906 ई.

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. सरिता देवी शुक्ला
एकता ज्ञानस्थली कॉलेज
उत्तर प्रदेश

हिन्दी नाटक-साहित्य में प्रसाद जी का एक विशिष्ट स्थान है। इतिहास, पुराण-कथा और अर्द्धमिथकीय वस्तु के भीतर से प्रसाद ने राष्ट्रीय सुरक्षा के सवाल को पहली बार अपने नाटकों के माध्यम से उठाया। दरअसल उनके नाटक अतीत कथाचित्रों के द्वारा तत्कालीन संकट को पहचानने और सुलझाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। 'चन्द्रगुप्त' 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' का सत्ता-संघर्ष राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न से जुड़ा हुआ है।

प्रसाद ने अपने नाटकों की रचना द्वारा भारतेन्दुकालीन रंगमंच से बेहतर और संश्लिष्ट रंगमंच की माँग उठायी। उन्होंने नाटकों की अन्तर्वस्तु के महत्त्व को रेखांकित करते हुए रंगमंच को लिखित नाटक का अनुवर्ती बताया। इस तरह नाटक के पाठ्य होने के महत्त्व को उन्होंने नजरअन्दाज नहीं किया। नाट्य रचना और रंगकर्म के परस्पर सम्बन्ध के बारे में उनका यह निजी दृष्टिकोण काफी महत्त्वपूर्ण और मौलिक है। प्रसाद जी के नाटक निश्चय ही एक नयी नाट्य भाषा के आलोक से चमचमाते हुए दिखते हैं। अभिनय, हरकत और एक गहरी काव्यमयता से परिपूर्ण रोमांसल भाषा प्रसाद की नाट्य-भाषा की विशेषताएँ हैं। इसी नाट्य-भाषा के माध्यम से प्रसाद अपने नाटकों में राष्ट्रीय चिन्ता के संग प्रेम के कोमल संस्पर्श का कारुणिक संस्कार देते हैं।

1907 ई. से लेकर 1933 ई की जिस अवधि में जयशंकर प्रसाद के नाटक लिखे गये हैं वह भारतीय इतिहास का सबसे अधिक उधेड़बुन का समय है। उस युग को विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, सिस्टर निवेदिता, अरविन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, तिलक, महात्मा फुले, मदनमोहन मालवीय आदि इस रूप में परिभाषित कर रहे थे कि हर क्रिया, निश्चय, आन्दोलन, सत्याग्रह, सिविल नाफरमनी, स्वदेशी आन्दोलन आदि एक तरफ और स्वाधीनता, स्वतन्त्रता, स्वराज्य, पराधीनता, आत्मगौरव, और स्वदेश प्रेम आदि अवधारणाएँ दूसरी तरफ साथ ही साथ आधायत्मिक, राजनैतिक नैतिक और काल्पनिक अर्थ देती थीं न केवल अर्थ की दृष्टि से बल्कि स्वरूप की दृष्टि से भी। साही ने लिखा है कि 'छायावाद की हर रचना एक ही साथ नैतिक भी है और कल्पनात्मक भी और राजनैतिक भी।' (छठवाँ दशक-275) साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और अध्यात्म में विवेकानन्द का एक स्वर से आर्य साम्राज्य की एकता और आर्य संस्कृति को नष्ट होने से बचाने का, उसके विभिन्न गणों समाजों और जातीयताओं को एक सूत्र में पिरोने का विवेकावादी और आनन्दवादी दोनों प्रयत्न चल रहा था। प्रसाद के नाटकों में 'प्रायश्चित' से यह चेतना जिस मुखर रूप में हो आती है उसकी युगभूमि के लिए दो सन्दर्भ पर्याप्त होंगे। 'अब महाघोर काल उपस्थित है। चारों ओर आग लगी हुई है। दरिद्रता के मारे देश जला जाता है। अंगरेजों से जो नौकरी बच जाती है उन पर मुसलमान आदि विधर्मी भरती होते जाते हैं। आमदनी वाणिज्य की थी ही नहीं, केवल नौकरी की थी सो भी धीरे-धीरे खिसकी। तो अब कैसे काम चलेगा। कदाचित् ब्राह्मण और गोसाईं लोग कहें कि हमको तो मुफ्त का मिलता है, हमको क्या? इस पर हम कहते हैं कि विशेष उन्हीं का रोना है। जो कराल काल चला आता है उसको आँख खोलकर देखो। कुछ दिन पीछे आप लोगों के मानने वाले बहुत थोड़े ही रहेंगे। अब-सब लोग एकत्र हो। हिन्दू नाम धारी वेद से लेकर तन्त्र वरंच भाषा ग्रन्थ मानने वाले तक सब एक होकर अब अपना परम धर्म यह रखो कि आर्य जाति में एका हो। इसी में धर्म की रक्षा है। भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और जैसी उपासना हो ऊपर से सब आर्य मात्र एक रहो। धर्म सम्बन्धी उपाधियों को छोड़कर प्रमुख धर्म की उन्नति करो।'।

जयशंकर प्रसाद के लिखना शुरू करने के पहले ही गाँधी की हिन्द स्वराज्य की अवधारणा अवतार ले चुकी थी और सिस्टर निवेदिता तथा अरविन्द आदि स्वाधीनता तथा स्वराज्य पर मार्डनरिव्यू नारायण आदि पत्रिकाओं में लेख लिख रहे थे। छायावाद की मनोभूमि की बनावट के तत्वों का रेखांकन करते हुए विजय देव नारायण साही ने, इसीलिए दार्शनिक मुद्रा, विराट नाटकीयता तथा नैतिक और कल्पनात्मक स्वप्न लोकों का विशिष्ट अनुपात में सम्मिश्रण और भाषा समस्या जो संस्कृत शब्दावली के माध्यम से मनोभूमि को क्लैसिकल और एबस्ट्रैक्ट बनाने का कार्य करती रही है का उल्लेख किया है।

इस मनोभूमि के निर्माण में श्रीधर पाठक, माधव शुक्ल, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, हितैषी, रामनरेश त्रिपाठी, माखन

लाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रूप नारायण पाण्डेय और मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों की भी मूमिका रही है। इस युग की रचनाओं में 'लोकसेवा', 'लोकधर्म', 'लोकमर्यादा', 'लोक हृदय की पहचान', 'लोकमंगल', 'लोकाग्नि', 'लोकनीति', 'लोककल्याण', 'लोकवाद' शब्द कैनिन की तरह प्रयुक्त मिलते हैं। देश की मिट्टी पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े वनस्पतियाँ, नदी नाले, पर्वल-समुद्र, फल-फूल, स्त्री-पुरुष सबको खड़ी बोली पद्य के प्रारम्भिक संघर्षकालीन दौर में सर्जनात्मकता का विषय बनाकर लेखकों और रचनाकारों ने 'देश वत्सलता' और स्वदेशानुराग का आकर्षक व्यवस्थित ढाँचा खड़ा कर दिया था। छायावाद ने इस ढाँचे में मनुष्यता का रंग भर सबको मानव बना दिया-मानवीकृत कर दिया। भक्ति काल में जैसे सब कुछ राधाकृष्णमय हो गया था वैसे ही, प्रसाद के समय में सब कुछ मानवमय, और चिन्मय हो गया। कार्नेलिया का 'कल्याणी' में पेड़-पौधों को याद करना भारतवासियों को धिक्कारना और प्रेरित करना दोनों है।

प्रसाद जी के समय में 'भारतेन्दु द्वारा विकसित हिन्दी रंगमंच की स्वतन्त्र चेतना' क्रमशः क्षीण हो चुकी थी माधवशुक्ल जैसे लोग नाट्य समितियों और राम लीला मंडलियों को जीवित किए हुए थे परन्तु वह भी प्रयाग और कलकत्ता में ही। उनके समय में जैसा कि प्रसादजी ने लिखा है कि तीस बरस पहले (संभवत) 1906 ई. में। जब काशी में पारसी रंगमंच की प्रबलता थी तब भी मैंने किसी दक्षिणी नाटक मंडली द्वारा संस्कृत मृच्छकटिक का अभिनय देखा था उसकी भारतीय विशेषता अभी मुझे भूली नहीं है" (दे. रंगमंच)। रामलीला, रासलीला, यात्रा, भाँड़ की परिहास लीला, नौटंकी, कथकली आदि भाव मुद्राओं वाले नश्यों आदि ने उत्तर भारत में अभिनयात्मक हास के युग में चलते-फिरते रंगमंचों और विमानों की रक्षा की यह भी उनका मानना है, जो पारसी थियेटर से भिन्न परम्परा की लोक स्वीकृति का भी प्रमाण है। प्रसाद जी ने यह भी लिखा है कि पारसी व्यवसायियों ने पहले-पहल नये रंगमंच की आयोजना की। भाषा मिश्रित थी.... इन्द्र सभा, चित्र बकावली, चन्द्रवली हरिशचन्द्र आदि के अभिनय होते थे, अनुकरण होता था रंगमंच में शेक्सपीरियन स्टेज' का' (दे. प्रसाद वाङ्मय भाग 4 रंगमंच)। पारसी थियेटर के द्वारा एक प्रकार की विकृत रुचि और भोंडेपन का प्रचार किया जा रहा था।

उसमें परिवर्तन करके भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए सभी कलाओं के योग से अभिनीत नाटक ही एक विद्या या माध्यम से रूप में उन्हें स्वीकार था। उपदेश और मनोरंजन से भी वे उसे बचाना चाहते थे। वे यथार्थवाद के इब्सनीय रूप से परिचित थे और उसके आधार पर भाषा तथा सामाजिक चेतना के छिन्न-भिन्न होकर बिखरने के कारण वेदना की वशति की प्रस्तुति को पश्चिम की नकल से विकसित यथार्थ के कारण आवश्यक नहीं मानते थे। उनको विश्वास था कि अतीत और वर्तमान के आधार पर ही भविष्य का निर्माण सम्भव है। उन्होंने लिखा कि कुछ लोग कहते हैं साहित्यकार को आदर्शवादी होना ही चाहिए और सिद्धांत से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचनकर्ता बन जाता है। वह समाज को कैसा होना चाहिए, यही आदेश करता है। और यथार्थवादी सिद्धांत से ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता क्योंकि यथार्थवाद इतिहास की संपत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है या था किंतु साहित्यकार न तो इतिहास कर्ता है और न धर्मशास्त्र प्रणेता। इन दोनों के कर्त्तव्य स्वतंत्र हैं। साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है- 'उनके अनुसार साहित्य समय की वास्तविक स्थिति क्या है, इसको दिखाते हुए भी उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। दुःख दग्ध जगत और आनंदपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है; इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्त्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्य पथ पर प्रतिष्ठित होती है उसमें विश्वमंगल की भावना ओतप्रोत रहती है।' (प्रसाद वाङ्मय भाग 4)।

इन उद्धरणों में व्याप्त विश्वदृष्टि या दार्शनिक मुद्रा तथा नैतिक और कल्पनात्मक विजन का समन्वय उनकी समस्त रचनाओं में अन्त प्रवाहित रक्त की तरह है। पौरुष, आनन्द उल्लास और श्रेयमयी प्रेय दृष्टि उनके नाटकों में स्वतंत्रता की कामना के साथ ही अनुस्यूत है। उनके निबन्ध एक प्रकार से उनकी सर्जनात्मकता के व्याख्यान हैं। लगता है जैसे वे उनके नाटकों, काव्य ग्रंथों और उपन्यास, कहानियों में व्याप्त आत्मा की संकल्पनात्मकता को आलोचना की भाषा में रूपान्तरित करते हैं। उनके अन्तिम अधूरे नाटक अग्निमित्र और अधूरे उपन्यास इरावती में उनके निबंध 'रहस्यवाद', 'यथार्थवाद' और 'छायावाद', काव्य और कला, और 'रंगमंच' की अनेक स्थापनाओं को अग्रगामिता प्रदान हुई है। जीवन का विकास इस दुःख पूर्ण बुद्धिवाद के बन्दोगृह में अवरुद्ध है। उसे आनंद पथ पर ले चलने की क्षमता तुममें अन्तर्निहित है। दुःखवाद की निद्रा छोड़कर आनन्द की जागृति के लिए मानवता चंचल हो रही है। यह सब उसी के क्षुद्र उपसर्ग हैं, तुम मंगलपूर्ण सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव और अनुग्रह के पंच कृत्य करने में कुशल चिदानंदमयी आत्मसत्ता में विश्वास करो।" (प्रसाद वाङ्मय भाग 4, पृ. 790)

अपने समय की दुःखदग्धता के नरक की पहचान करके उस जगत को श्रद्धा सर्ग की कल्पना में रूपान्तरित करने की संकल्पनात्मक अनुभूति की 'राज्यश्री' के 'लोकसेवा' व्रत या कामायनी के आनन्दसर्ग की समरस स्थिति में, एक स्मितरेखा आलोक मयी मूर्ति की तरह व्याप्त है। अभिनय, सूत्रधार, नियतिनटी, रंगमंच आदि शब्द प्रसाद के जीवन दर्शन के बीज शब्द हैं जो नाटक को 'लीला' का अर्थ देकर रचनाओं का आत्मसाक्षात्कार या आत्मोपलब्धि का पर्याय भी बना देते हैं। दूसरी ओर महाशक्ति के माध्यम से आनन्द की प्रतीति के लिए 'नाटक' लिखना और सृष्टि के विधान या क्रम को एक नाटक के रूप में देखना, एक से अपने समय की पराधीनता से मुक्ति का उपाय खोजना, स्वतंत्रता प्राप्त करना और दूसरे से स्व-तंत्रता प्राप्त करना, एक से स्वराज्य और दूसरे से स्व-राज्य में विचरने का संकल्प कितना महत्त्वपूर्ण और कितना परस्पर विरुद्ध दिखता

है। काल और कालातीत की एक साथ उपलब्धि ऋजुरेखीय काल के स्वीकार के साथ ही काल के अतिक्रमण की इच्छा और अन्ततः कामना, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूँट, विशाख आदि में उस अतिक्रमण का प्रसादान्त संकेत प्रसाद से नाटकों को इतिहास और समकालीन अतीत और वर्तमान दोनों बना देते हैं। एक ही साथ इतिहास और नाटक का रचनात्मक निर्वाह भी अन्ततः एक प्रकार के विरुद्धों का सामंजस्य है।

अतीत प्रसाद के लिए प्रदत्त या पुरातत्व की दृष्टि से खोदकर निकाला गया मात्र ही नहीं है वह साम्राज्यवाद के दौर में हत दर्प जाति के लिए सांस्कृतिक स्तर पर उत्तेजना और प्रेरणा का भी विषय है। प्रसाद के नाटकों में 'भारत-भारती' का आभ्यंतरित रूप ही नहीं मिलता है, वर्तमान राष्ट्रीय शक्ति का एक हद तक मानवीय समस्याओं के संघर्ष में परम्परा की खोज मिलती है। शक्ति के विद्युत्कणों की तलाश और समन्वय की समकालीन दृष्टि का अतीत में प्रेक्षण ही स्कंदगुप्त, सिंहरण, अलका, देवसेवा, कार्नेलिया, मन्दाकिनी, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, हर्ष, ध्रुवस्वामिनी आदि चरित्रों की सशक्ति करवाता है। सशक्ति इसलिए कि इतिहास के अन्तर्गत ये रहे होंगे।

लेकिन इस रूप में ये इन नाटकों की नैतिकता पर चढ़े हुए अग्निवाण ही हैं, जिसे प्रसाद ने निर्मित किया है-विशेष संकेत के रूप में। इतिहास सन्दर्भ और सामग्री दोनों हैं। वह उपादान है निमित्त नहीं, निमित्त तो मूलतः तत्कालीन स्वाधीनता की आकांक्षा और आत्म गौरव की प्राप्ति है। अजातशत्रु के कथा प्रसंग और 'कामायनी' के आमुख में प्रसाद ने अपनी इतिहास दृष्टि का संकेत किया है। वे इतिहास को इतिहास सशक्ति के लिए प्रयोग करना चाहते हैं और नाटकों में समन्वित इच्छा शक्ति का, आत्माओं की संकल्पनात्मक अनुभूति का, विश्वात्मा की इच्छा का अनेक स्तरों पर पाठक और श्रोता के सामने घटित को घटमान के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इतिहास की यह द्वन्द्वात्मक चेतना हेगेल के डायलेक्टिक और शैवागमदर्शन के द्वन्द्व से मिलकर बनी है। इसके मूल में काल की चक्रीय या सनातन दृष्टि भी है परन्तु वह सनातनता कर्म की साधना कानिषेध नहीं करती है बल्कि संकल्पात्मक बनाती है। द्वन्द्वात्मकता के कोष में संकल्पात्मकता का यह वैचारिक बीजारोपण प्रसाद के लिए ही संभव था। अजातशत्रु के कथाप्रसंग का यह उद्धरण 'कामायनी' के 'आमुख' के साथ मिलाकर देखने पर ऐतिहासिक नाटकों की अर्थगर्भ संकेतात्मकता और इतिहास दृष्टि या कालचेतना के लिए काफी संकेतात्मक है। "इतिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होते देखी जाती है इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसमें कोई नयी घटना होती ही नहीं किन्तु असाधारण नयी घटना भी भविष्यत में फिर होने की आशा रखती है। मानव समाज की कल्पना का भंडार अक्षय है क्योंकि वह इच्छा शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं और इच्छाओं का मूल सूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्पष्ट होता है। जब वह इच्छा शक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केंद्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती तब तक वह रूप परिवर्तन करती हुई, पुनरावृत्ति करती ही जाती है। समाज की अभिलाषा अनंत स्रोतवाली है। पूर्व कल्पना के पूर्ण होते होते एक नयी कल्पना उसका विरोध करने लगती है और पूर्व कल्पना कुछ काल तक ठहर कर फिर होने के लिये अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है उधर इतिहास का नवीन अध्याय खुलने लगता है। मानव समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।" अजातशत्रु कथा प्रसंग

"आज के मनुष्य के समीप तो उसकी वर्तमान संस्कृति का क्रमपूर्ण इतिहास ही होता है; परन्तु उसके इतिहास की सीमा जहाँ से प्रारम्भ होती है ठीक उसी के पहिले सामूहिक चेतना की दृष्टि और गहरे रंगों की रेखाओं से, बीती हुई और भी पहले की बातों का उल्लेख स्मृति पट पर अमिट रहता है; परन्तु कुछ अतिरंजित सा। वे घटनाएँ आज विचित्रता से पूर्ण जान पड़ती हैं संभवतः इसीलिए हमको अपनी प्राचीन श्रुतियों का निरुक्त के द्वारा अर्थ करना पड़ता है जिससे कि उन अर्थों का अपनी वर्तमान रुचि से सामंजस्य किया जाय" आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं। तब भी उसके तिथि क्रम मात्र के सन्तुष्ट न होकर मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उसके मूल में क्या रहस्य है ? आत्मा की अनुभूति ! हाँ उसी भाव के रूपग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बन कर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाएँ स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणति हो जाती हैं। किन्तु सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरंतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग युग के पुरुषों की और पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती रहती है।"

प्रसाद के इतिहास की यह समकालीनता एक प्रकार का सनातनत्व भी लिये है। पुराणों से ली गई कथाओं के भाव के रूप ग्रहण की चेष्टा, जो शुद्ध वर्तमान में होती है सत्य के रूप ग्रहण करने के क्रम में रूपक का अर्थ ले लेती है। 'जनमेजय के नागयज्ञ' में जिसे मैं नाटकीयता की दृष्टि से काफी अर्थगर्भ और महत्त्वपूर्ण नाटक मानता हूँ, में यह रूपकत्व देवासुर संग्राम के अन्तर्निहित रूपकत्व जैसा ही अर्थवान है। यह रूपकत्व उनके सभी नाटकों के इतिहास की घटना के अर्थ को वर्तमान में अन्तरित करने या संकेतिक करने के कारण विद्यमान है वैसे रूपक तो यह है ही।

प्रसाद इतिहास और वर्तमान का प्रयोग 'प्रितच्छाया' (दे. जायसी-साही) अलंकार की तरह करते हैं। जैसे अपने सामने रखे हुए दो दर्पण हों लगभग। जायसी के पद्यावत की तरह, जिसका प्रसाद बहुत सम्मान के साथ गाला के प्रसंग में उल्लेख करते हैं और यह प्रसाद की इतिहास दृष्टि को विशेषकर ऐतिहासिक नाटकों के लोक और अलोक, इतिहास और स्वप्नलोक के समान ही रचते हैं। अलाउद्दीन के द्वारा राख के हाथ में उठाने का उल्लेख वे 'संकेत' के रूप में करते हैं।

जयशंकर प्रसाद की इस गहरी चिन्तनशीला ने हिन्दी नाटकों को पहली बार बौद्धिक, अर्थवत्ता प्रदान की। उनके नाटकों की भूमिकाएँ जहाँ एक ओर उनकी अनुसंधान परक तथ्यान्वेषी दृष्टि का संकेत करती हैं वहीं इतिहास को एक अंगरखा भी संधान परक तथ्यान्वेषों दृष्टि का संकेत करती हैं वहीं इतिहास को एक अंगरखा भी पहनाती है। यद्यपि जयशंकर प्रसाद जी ने स्कंदगुप्त की भूमिका में लिखा है कि “पात्रों की ऐतिहासिकता के विरुद्ध चरित्र की सशक्ति, जहाँ तक सम्भव हो सका। नहीं होने दी गई है। फिर भी कल्पना का अवलम्ब लेना ही पड़ा है केवल घटना की परम्परा ठीक करने के लिए।” उन्होंने भूमिकाओं में अनेक स्रोतों के द्वारा अपने समकालीन सामाजिक राजनैतिक यथार्थ का समरूपी खोजने का संभव प्रयत्न किया। पराधीनता और पराधीनता से मुक्ति के ही समरूपी न केवल अतीत में खोजे गए बल्कि सांस्कृतिक पराधीनता के अनेक कारणों के भी समरूपी और समस्थानिकों की पहचान करके उन्हें वर्तमान के लिये, आँखें खोलने वाले, ‘शक्ति संचारक के रूप में प्रस्तुत किया गया। चन्द्रगुप्त की भूमिका, जो चन्द्रगुप्त नाटक की तरह, जैसा की प्रो.रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उल्लेख किया है कई बार लिखी गयी है, इस संदर्भ में अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रायश्चित, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, आदि नाटकों के परिचय और प्राक्कथनों का इस दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है। धार्मिक मतवाद, जाति उपजातियों के झगड़े, सांप्रदायिक समस्याएँ, धर्मोन्माद, देश के छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन की प्रवृत्तियों के बहुपक्षीय समाधान नाटकों में खोजने का प्रयत्न उनकी विशेषता है।

अपने समय को परिभाषित करने के क्रम में अपने अतीत के प्राणतत्त्व को आत्मसात करते चलना उनका स्वभाव था। विचार, भाषा, शिल्प, यथार्थवाद को आत्मसात करते चलना उनका मानवीय चेतना, दार्शनिकता, रंगमंचीयता आदि की दृष्टि से वे सतत जागरूक रचनाकार हैं। उर्वशी चम्पू से लेकर ध्रुव स्वामिनी तक की यात्रा नाटक की दृष्टि से अनवरत विकास और सतत जागरूकता की यात्रा है। 1909 ई. में प्रकाशित उर्वशी चम्पू को उन्होंने ‘बाल्य रचना’ मानते हुए पद्य के ब्रज भाषा में होने पर प्रकारान्तर से एक हिचक और कमी का अनुभव किया है। रचना में भी प्रेमतत्त्व का सम्प्रेषण है। कुछ कल्पित प्रसंगों के अलावा चम्पू में वैचारिकता और समकालीनता का अभाव है नाटकीयता के तत्त्व भी कम हैं। सज्जन पाँच दृश्यों का नाट्य प्रयत्न है जिसमें संस्कृत और पारसी थियेटर की नाट्य रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है।

प्रारम्भ नान्दा पाठ नट का प्रयोग, भरत वाक्य और पारसी थियेटर की तरह से गानेवालों का प्रथम दृश्य में उपयोग तथा गीतों का संगीतात्मक प्रयोग मिलता है। पंचम दृश्य में द्रोपदी युधिष्ठिर के काव्यात्मक संवाद केशव की याद दिलाते हैं, नाटक के प्रारम्भ और अन्त दोनों में सत्कविता और सज्जनता के सम्बन्धों को रेखांकित किया गया है। युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा और सज्जनता को एक मूल्य के रूप में प्रस्तुत करना लेखक का लक्ष्य रहा है। ‘कल्याणी परिणय’ 1912 ई. में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था बाद में 1931 में कुछ संशोधनों के साथ चन्द्रगुप्त में समायोजित कर लिया गया। इस नाटक में पहली बार पहले दृश्य में ही चाणक्य अन्धकार हट रहा जगत जागृत हुआ’ के द्वारा प्रकृति और जागरण दोनों का संकेत किया गया है। गीत साभिप्राय प्रयुक्त है। चाणक्य का स्मरण भी भारत के गौरवमय अतीत का स्मरण है जिसमें क्या से क्या हो गया कि ध्वनि है।

इतना था सौहार्द सभी हम एक थे।
 एक अकेले हमीं रहे, न अनेक थे।।
 करुणा का था राज्य, प्रेम ही धर्म था
 युद्धानन्द विनोद एक ही कर्म था
 न था किसी में मोह, कभी न विवाद था
 मिलता अविरत स्वच्छ सुधा का स्वाद था
 भीत शीत की भी न मार्ग की मन्त्रणा
 यह कुचक्र मय चाल न थी, न कुमन्त्रणा

प्रसाद ने इसी नाटक में कार्नेलिया (एक विदेशी महिला) के मुख से ‘भारत भूमि की प्रशंसा करवाई है। ‘चन्द्रगुप्त’ में यह अधिक सर्जनात्मक और आत्मीयता युक्त है। इसमें प्रयुक्त यह वाक्य कि भारत की पवित्र भूमि केवल हत्या, लूट, रक्त और युद्ध से वीभत्स बनायी जा रही है। वाह कैसा सुन्दर देश है। मुझे इस भूमि से जन्म भूमि सा प्रेम होता जा रहा है” स्वदेशानुराग की वृद्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है नाटक में चरित्रांकन व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है। प्रायश्चित जो 1914 में इन्दु में प्रकाशित हुआ था एक दृष्टि से जयशंकर प्रसाद के प्रारम्भिक रूझानों से भी प्रायश्चित है। यह नाटक प्रसाद जी का जिसमें राष्ट्र प्रेम को मूल्य मानकर देशद्रोह का प्रायश्चित आत्मवध माना गया है। इसमें भावना का एकांगीपन अधिक है, नाटक में उस प्रकार की बौद्धिकता नहीं है। जैसे स्कन्धगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि में मिलता है। चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व और आत्मसंघर्ष की शुरूआत अवश्य है। पात्र भी अधिक नहीं है यद्यपि कि क्रिया व्यापार और वस्तु विन्यास विखरा हुआ है। कुल छः दृश्यों का नाटक है।

प्रायश्चित में प्रारम्भ में दो विद्याधारियाँ आती हैं जो लगभग पारसी थियेटर की शैली में नाटक के कार्य व्यापार की सूचना देने के साथ ही साथ हिन्दू साम्राज्य के सूर्य के अस्त होने और आर्य साम्राज्य के नाश के कारणों का उल्लेख करती हुई यह

भी कहती हैं कि क्या यह किसी नीच भारतवासी का कार्य है।' नाटक के प्रारंभ के इस संवाद का निम्नलिखित अंश महत्वपूर्ण है जो एक प्रकार से नाटक का संदेश भरी है। प्रतिहिंसा का प्रसाद बाद के नाटकों में अच्छा नहीं मानते हैं परन्तु अहिंसा को वे गुलामी का कारण अवश्य मानते हैं। उनके उपन्यासों और प्रारम्भिक काव्यों से भी ऐसे तरुण संघों के समर्थन का भाव मिलता है जो देश को राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न करना चाहते हैं स्कन्दगुप्त, चाणक्य और चन्द्रगुप्त में ही नहीं कंकाल तितली और इरावती में भी इसके प्रयत्न हैं।

पहली सखी! 'हिंसा कैसी बुरी वस्तु है। देख इसने कैसा भयंकर कार्य किया।'

दूसरी सखी! 'इस रही सही 'प्रतिहिंसा' को भी भारतवासियों के लिये ईश्वर की दया समझ। जिस दिन इसका लोप होगा उस दिन से तो इनके भाग्य में दासत्य करना लिखा है।'

संदर्भ ग्रंथ

1. राजश्री, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 18
2. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 21
3. राजश्री, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 07
4. राजश्री, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 18
5. राजश्री, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 21
6. अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 27
7. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 34
8. प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ सं. 13

उत्तर मध्यकालीन वीरकाव्य में राष्ट्रबोध (भूषण के सन्दर्भ में)

बबली गुर्जर

शोधार्थी

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

किसी भी साहित्य में राष्ट्रबोध को परखने से पहले राष्ट्रबोध या राष्ट्रीयता या यूँ कहे कि राष्ट्रीयता का भाव जानना जरूरी है। राष्ट्रीयता का भाव बहुत ही व्यापक है। सामान्य रूप से राष्ट्र शब्द से हमें जो बोध होता है उसके मूल में किसी देश की राजनीतिक एकता का भाव है। श्री नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है, “राष्ट्र के लिए एक निश्चित भूखण्ड का होना अनिवार्य है, जिसके आधार पर वह अपने राजनीतिक अस्तित्व का बोध करता है, वह अपने आन्तरिक लगाव का अनुभव करता है इसी से केन्द्र मानकर भाषा, धर्म, संस्कृति, आर्थिक सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का राष्ट्रीय स्तर निर्माण होता है। इन सबके मूल में एकीकरण की भावना प्रधान होती है। इस प्रकार प्राकृतिक भौगोलिकता एक इतिहास, एक भाषा, समान साहित्य और संस्कृति एवं समान मैत्री अथवा शत्रुता इन पाँचों सिद्धान्तों पर एक मत्त रहने की इच्छा से संगठित जन समूह को राष्ट्र कहते हैं।”¹ राष्ट्रीय भावना एक सूक्ष्म दृढ़ रागात्मिका वृत्ति है। अहं से उठकर समष्टि के हित की ओर बढ़ने की भावना इस वृत्ति में है। सामूहिकता का भाव इसमें है।

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल यानी रीतिकाल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक ‘उथल-पुथल’ का काल था। राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष का काल था। शाहजहाँ के शासन काल में मुगल-वैभव अपनी चरम सीमा पर रहा। शाहजहाँ के मशहूर की अफवाह फैलने के कारण सन् 1658 ई० में उसके पुत्रों में सत्ता के लिए संघर्ष आरम्भ होते ही यह वैभवशाली साम्राज्य हासोन्मुख हो गया। उसका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता के लिए जितना लोकप्रिय था, उससे छोटा औरंगजेब अपनी धार्मिक असहिष्णुता एवं अहम्मन्यता के कारण उतना ही अप्रिय था। दारा की हत्या कर औरंगजेब ने ज्यों ही शासन की बागडोर संभाली त्यों ही जागीरदारों, राजाओं और हिन्दुओं के धार्मिक उपद्रव आरम्भ हो गये। सामाजिक दृष्टि से यह काल, सामान्तवादी काल रहा है। एक तरफ श्रमजीवी और कच्चाक वर्ग तथा दूसरी तरफ सेठ, साहूकार, दुकानदार और व्यापारी आते थे। एक तरह से सामाजिक दृष्टि से असमानता का काल था। इसी राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल के काल में साहित्य की परिणति किस रूप में हुई यह जानना बड़ा दिलचस्प होगा। उत्तर मध्यकाल यानी रीतिकाल में कवि वर्ग अपने आश्रयदाता के आश्रय में रहकर कविता करता था। आश्रयदाता ही उनकी कला को दिखाने का मौका देता था। बाहरी वातावरण ऐसा नहीं था कि कवि राजदरबार से बाहर रहकर कविता कर सके। कवि का जीविकोपार्जन राजदरबार से बाहर संभव नहीं था। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार “साहित्य और कला की दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। इस काल के कवि और कलाकार यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति हुआ करते थे, तथापि अपने आश्रयदाता मुगल सम्राटों अथवा देशी राजा-नवाबों से उन्हें इतना सम्मान मिलता था कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उनकी गणना होती थी। चूँकि उचित सम्मान कवि अथवा कलाकार के सर्जन व्यापार को प्रोत्साहित करने में सबसे अधिक सहायक हुआ करता है, अतएव यह स्वाभाविक ही था कि इन लोगों ने अपनी-अपनी कला का गुण और परिणाम दोनों की दृष्टि से अधिकाधिक विकास किया। किन्तु दुर्भाग्य की बात यह रही कि इन्हें वह स्वतन्त्रता प्राप्त न हो सकी, जो सर्जन के लिए अनिवार्य है। इन्हें सामान्य रूप से आश्रयदाताओं की अभिरुचि का विशेष ध्यान रखना पड़ता था जिसका परिणाम यह होता था कि प्रतिभावान् होते हुए भी ये लोग अपने सर्जन का उत्तमोत्तम रूप प्रस्तुत करने में असमर्थ रहते थे। यह सब होते हुए भी इस युग के साहित्य और कला का अपना महत्व है।”²

रीतिकाल पर प्रायः यह आक्षेप लगाए जाते हैं कि वह आम जन से कटा हुआ साहित्य है। डॉ० त्रिलोचन शास्त्री ने तो इसे क्षयी युग तक कह दिया है। रीतिकाल पर अश्लीलता के आरोप लगाए जाते हैं इन तमाम आरोपों के बावजूद रीतिकाल अपने पुर्नमूल्यांकन की माँग करता है। इस दिशा में अनेक शोध-कार्य और संगोष्ठियाँ हो रही हैं। जो रीतिकाल के 200 वर्षों के अमूल्य साहित्य को सुरक्षित एवं उसकी उपयोगिता पर जोर दे रहे हैं। रीतिकाल में रीति, नीति और श्रृंगार के अतिरिक्त एक ऐसी काव्य प्रवृत्ति रही है जो सामाजिक एवं राजनैतिक उथल-पुथल के काल में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करती है। रीतिकालीन वीर काव्य ऐसा है जो हमें राष्ट्रबोध कराता है। रीतिकाल में जब श्रृंगार, नायिका-भेद, रस आदि से सम्बन्धित रचनाएं धड़ल्ले

से रची जा रही थीं। तब ऐसे वातावरण में वीरकाव्य का आना एक नयी बात थी और साहित्यिक कार्य भी। डॉ० नगेन्द्र ने वीरकाव्य के सन्दर्भ में कहा है- “रीतिकालीन वीरकाव्य स्वयं स्वतन्त्र रूप में आगे आया और राजाओं की कीर्ति-गाथाओं का अतिरिक्त वर्णन होते हुए भी उसमें देश-भक्ति की चिनगारियाँ अपनी अद्भुत चमक दिखा रही हैं। ऐतिहासिकता पर आधारित होने के कारण रीतिकालीन वीर काव्य जनता को प्रेरणा प्रदान करने में भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ।”³

रीतिकालीन के वीरकाव्य में राष्ट्रीय भावना जगाने का काम प्रमुख रूप से भूषण ने किया इसके अतिरिक्त लाल, पदमाकर सूदन, खुमान, जोधराज, और बाँकीदास ने भी किया लेकिन ‘कविराज शिरोमणि’ की पदवी भूषण को ही प्राप्त है।

उत्तर मध्यकालीन साहित्य में ‘वीरकाव्य’ तथा राष्ट्रीयता के बोध का प्रेरक काव्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। रीतिकालीन काव्य का यदि गंभीरता से विश्लेषण किया जाए तो तमाम आक्षेप अपने आप दूर हो जायेंगे। भूषण के सन्दर्भ में डॉ० पूनचंद टंडन लिखते हैं कि “भूषण उत्तर मध्यकाल के ऐसे राष्ट्रकवि हैं जिनकी कविता में उत्साह उमंग, शौर्य एवं पराक्रम का विलक्षण बखान है। राष्ट्र की गौरवगाथा तथा राष्ट्रनायक ‘छत्रपति शिवाजी’ तथा ‘छत्रसाल, जैसे शूरवीरों की प्रशस्ति इनकी कविता का प्राण है। भूषण राजाश्रित कवि भी है और संस्कृत काव्यशास्त्र के गंभीर अध्ययता एवं आचार्य भी है। लक्षण ग्रंथ एवं लक्ष्य ग्रंथों के सर्जन से भूषण ने अपनी लोह-लेखनी का बखूबी परिचय कराया है। भूषण की कविता में श्रृंगार, रीति, अलंकार, प्रकृति तथा राजप्रशस्ति की विलक्षण अभिव्यक्ति हुई है।”⁴ भूषण का काव्य राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने वाला काव्य है। रीतिकाल के रीतिबद्ध और आमोद-प्रमोद के उन्मुक्त वातावरण में शास्त्रीय परिपाटी पर काव्य रचकर भी भूषण रीतिकालीन सभी कवियों से भिन्न तो हैं ही तथा साथ ही विशिष्ट गौरव के अधिकारी भी हैं। भूषण के काव्य में देश की संस्कृति और परम्परा के प्रति दृढ़ आस्था का भाव मिलता है। जब भारत वर्ष अपने गौरव और विशेषताओं को विस्मरण करने लगा तो कवि ने एक ऐसे नायक का गुणगान किया जिसमें उसने उन आदर्शों को मूर्त रूप में देखा। किसी जाति को एक करने के लिए देश की सभ्यता और संस्कृति का गुणगान कर उसके प्रति जन जीवन में मोह पैदा किया जाता है। और उसकी सुरक्षा में सामूहिक हित या कल्याण का भाव रखते हुए जो आगे बढ़ते हैं। संघर्ष करते हैं और विजयी बनते हैं। वे जनता के श्रद्धाभाजन बनते हैं और इस नाते कवि के काव्य का आलंबन भी बनते हैं। जन नायक को काव्य का नायक बनाकर कवि जन वाणी को ही एक प्रकार से अभिव्यक्ति देता है। भूषण ने यही काम किया। राष्ट्रीय काव्य के अन्तर्गत वीरों के गान, युद्धगीत, लोकगीत, आत्म-बलिदान की गाथाएँ, संस्कृति और सभ्यता का गुणगान, मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना से सम्बन्धित काव्य आदि आते हैं। भूषण का काव्य इन सभी विशेषताओं से भरा पड़ा है। भूषण के काव्य को पढ़कर देशभक्त की भावना जाग्रत होती है। और सच्चा देशभक्त वही है जो जनता के हितों को ध्यान में रखकर संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, वीरों का गौरवगान और शान्ति एवं संयम से देश को राष्ट्र को जोड़ने की बात करे। भूषण का काव्य उसी समय में लिखा गया जब देश छोटे-छोटे प्रांतों में बँट रहा था। धार्मिक-उन्माद और युद्ध स्तर पर अशान्ति थी। ऐसे समय में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने के काव्य की जरूरत थी। जिसमें कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ धरातल के योद्धाओं को उठाना जरूरी था। ऐसे में भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल जैसे योद्धाओं को अपने काव्य के लिए चुना जो यह दर्शाता है कि भूषण ने राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने में कल्पना नहीं बल्कि इतिहास का सहारा लिया गया।

भूषण के राष्ट्रीय कवि के सन्दर्भ में डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं कि, “भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक हैं। उन्होंने राष्ट्रीयता की परिभाषा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से की है। उनकी वाणी प्रपीडित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वासन है। चाहे भूषण की कविता में उत्कण्ठ मर्मज्ञ कवि भी सूक्ष्म कवित्व कला न हो, किन्तु उनके काव्य में ओज का प्रभावी घोष अवश्य है, जो रग-रग में रक्त का संचार करने में समर्थ है।”⁵

भूषण अपने काव्य में शिवाजी का आदर्श देकर सारे देश में उत्तेजना भर देने में सफलीभूत होते हैं-

जिन फन फुतकार उड़त पहार भार,
करम कठिन जनुकमल बिदलिंगो।
विष जाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकार मद दिग्गज उगलिंगो।
खग खगराज महाराज शिवराज जू करे,
अधिल भुजंग मुगदल निगलिंगो।⁶

इस छन्द में कवि ने मुगल सेना को सर्प के रूप में चित्रित किया है जिसके विष की तीव्रता से बड़े-बड़े पहाड़ उड़ जाते थे, कच्छप भगवान की पीठ कमल के समान फट जाती थी। इस विष की ज्वाला में बड़े-बड़े ज्वालामुखी पर्वत भी धराशायी हो जाते हैं तथा उसकी लपट से दिशाओं के हाथी अपना मद उगल देते थे, जिसने सारे संसार को दूध की तरह पान कर लिया था। ऐसे प्रबल मुगल दल रूपी सर्पराज को शिवाजी का खड़गरूपी गरुड़ पूर्णतया निगल गया अर्थात् मुगल सेना को उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस रचना में पौराणिक आधार लेकर कवि ने बड़ी ही मार्मिक और आकर्षक उत्तेजना भर देने का प्रयत्न किया है। इस भावना से कितना जोश सेना अथवा समाज में दिया जा सकता है, इसका अनुमान सरलता से नहीं लगाया जा सकता।

भूषण का काव्य राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है इसके दो प्रमाण हैं- एक तो शिवाजी और छत्रसाल जैसे ऐतिहासिक योद्धाओं का चयन और दूसरा उनके कथना और विवरण में कल्पना के स्थान पर ऐतिहासिक दृष्टि का प्रमाण है। जो घटित हुआ और जिसका प्रभाव उसने जनजीवन पर देखा उसी का वर्णन उसने काव्य में किया। एक उदाहरण देखिए -

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती है।
कंद मूल भोग करै कंद मूल भोग करै तीन बेर खाती तो वै तीन बेर खाती है।
भूषण सिथिल अंग भूषण सिथिल अंग बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषण भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती है।⁷

इस छन्द में भूषण ने युद्ध के समय में रानियों की क्या दशा हो गयी थी उसका यथार्थ चित्रण किया है। जो रानी बड़े महलों में रहने वाली थी अब वे भयंकर पर्वतों या जंगलों में रहने को मजबूर है। जो दिन में मिश्री और बढ़िया मीठे खाद्य पदार्थ खाती थी, अब वे कंदा और जड़ खाने को मजबूर है। वे पहले दिन में तीन दफे खाती है लेकिन अब जंगलों में सिर्फ तीन बेर (बदरीफल) ही खा पाती है। इनकी सेवा में सेविकाएँ पंखा डुलाती थी लेकिन अब ये स्वयं निर्जन जगह पर भटक रही है। पहले यह स्वर्ण रत्नों से जड़ित वस्त्र धारण करती थी लेकिन अब हालत ऐसी हो गयी है कि ये जंगलों में नगन अवस्था में ही जाड़ा काट रही है। भूषण के काव्य में ऐसे छंद युद्ध की त्रासदी का यथार्थ चित्रण करते हैं। और ऐसे छन्द प्रस्तुत कर भूषण कायों के मन में आक्रोश और कुव्यवस्था के प्रति लड़ने का साहस भरते हैं। ऐसा चित्रण पढ़ कोई भी स्त्रियों की दशा का अन्दाजा लगा सकता है। जब रानियों की दशा ऐसी हुई तो आम स्त्री की क्या हुई होगी। भूषण के काव्य में छत्रपति शिवाजी का शत्रु पक्ष पर (औरंगजेब के पक्ष पर) प्रभाव दिखलाया गया है। औरंगजेब अपने अंतिम वर्षों में औरंगाबाद में रहने लगा था। अंततः वह शिवाजी की सेना के युद्ध का आह्वान औरंगजेब जैसे कुशासक को भी डर से भर देता है। एक उदाहरण देखिए-

साजि चतुरंग-सैन अंग में उमंग धारि सरज सिवाजी जंग जीतन चलत है।
एलफैल खैलभैल खलक में गैलगैल गजन की ठेलपैल सैल उसलत है।
तारा सोतरनि धूरिधारा में लगत जिमिथारा पर पारा पारावार यो हलत है।⁸

प्रस्तुत छंद में भूषण ने वीर भावना से ओत-प्रोत अपनी सेना जिसमें हाथी, रथ, घोड़ा और पैदल चलने वाले हैं उसमें उमंग और उत्साह के साथ जंग की तैयारी के साथ जीत की तैयारी भी है। जब यह चतुरंग सेना एक साथ चलती है तो मार्ग, पहाड़ इनकी दहाड़ से विचलित हो जाते हैं। अंततः इसका आह्वान ऐसा है कि ऐसा लगता है धरती थाल हो गयी है और समुद्र पारा हो गया है जिससे सेना के चलने पर वह पारा हिल रहा हो। इस प्रकार के छन्द योद्धाओं में वीर भावना का संचार करते हैं। पढ़ते ही पाठक भी राष्ट्रीयभावना से भरकर खुद में एक उत्साह का संचार पाता है। राष्ट्रबोध के लिए भूषण के ऐसे छंद बहुत ही विचारणीय है। भूषण अपने काव्य में इतिहास से बिल्कुल नाता जोड़कर चलते हैं और काव्य के माध्यम से इतिहास की गाथा कहते हैं। एक उदाहरण देखिए-

बड़ों भाई दार वाको पकरि कै मरिडारयो मेहरहू नाहिमाको जायो सगो भाई है।
भूषण सुकवि कहे सुनौ नवरंगजेब ऐसे ही अनीति करि पातसाही पाई है।⁹

प्रस्तुत छंद में भूषण औरंगजेब की कूटनीति का खुला चित्रण करते हैं कैसे औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा को मारकर अनीति से बादशाही को कब्जाया था।

भूषण का काव्य सामूहिक एकता की बात करता है। जंग को अकेले नहीं सामूहिक एकता से ही जीता जा सकता है इसके लिए भूषण ने अपनी पूरी सेना को साथ और जोश के साथ चलने का आह्वान देते हैं। शत्रु पक्ष के आतंक और अत्यचार के विरुद्ध जनता शिवाजी को त्राता या रक्षक के रूप में देखती थी। वह सोचती रही कि कोई तो है, जो उनकी रक्षा के लिए उठ खड़ा हुआ। उनकी इस भावना को भूषण ने अभिव्यक्ति दी है। जनता इस बात से प्रसन्न है कि उनका रक्षक शासक के अत्याचार को कम करेगा। शासक के आतंक तथा रक्षक की भूमिका का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

तेरी धाक ही तैनिह हबसी फिरंगी औ बिलाइती
बिलंदे करै बारिधि - बिहारने।
आठो दिग्पाल त्रास आठ दिसि जीतिवे कों
आठ पातसाहन सों आगे जाम लरनो¹⁰

राष्ट्रीय बोध क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि वह सारे देश की भलाई की दृष्टि रखता है। भूषण ने यही काम किया उन्होंने शिवाजी की प्रशंसा इसलिए नहीं की कि वे महाराष्ट्र के हैं बल्कि इसलिए कि उनकी दृष्टि मथुरा और वशन्दावन पर भी है, बनारस आदि तीर्थ स्थानों पर भी है और इन तीर्थ स्थानों को नष्ट करने वाले को उन्होंने बताया है-

“कासी हूँ की कला गई मथुरा मसीत भई
शिवाजी न होतो तो सुनति हो ती सब की।¹¹

भूषण के दूसरे नायक महाराज छत्रसाल भी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। उन्होंने शिवाजी के आदर्शों का निर्वाह किया और जीवन भर मुगल शक्ति का विरोध करते रहे। छत्रसाल की शौर्य-वीरता के छंद के माध्यम से भूषण ने वीरता के भाव को जगाया है, एक छंद देखिए-

पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने वर छीने हैं खलन के।¹²

छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा में भूषण का भाषा-प्रवाह वाकई में बेजोड़ है। छत्रसाल ऐसे योद्धा हैं जिसने मुगली सेना को रोकने के लिए जनता की रीढ़ की हड्डी बनकर खड़े रहे एक उदाहरण देखिए-

बड़ी औड़ी उमड़ी नदी सी फौज छेकी जहा मेड बेड़ी छत्रसाल मेरू से खरे रहे।¹³

छत्रसाल और शिवाजी के माध्यम से युद्ध में डटे रहने के लिए मातृभूमि प्रेम की भावना जागई जो हमारे अन्दर राष्ट्र का बोध कराते हैं। जनता में कुशासन के प्रति आक्रोश भर उससे लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं।

भूषण अपने काव्य में मेल की भावना को भी महत्व देते हैं। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम मेल की भावना को भी महत्व दिया है। उदाहरण देखिए- “और करौ किन कोटिक राह, / सलाह बिना बचि हौ न सिवा सों।¹⁴

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे मेल की भावना को कितना महत्व देते थे। भूषण के काव्य में शत्रु पक्ष की बैचेनी और भय का जबरदस्त उदाहरण देखिए-

काहूँ के कहे सुने तें जाही और चाहे, / ताही ओर इकटक धरी चरिक चहत है।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि, / साहि सब रातौ दिन सोचत रहते हैं।¹⁵

यही भय जब शत्रु के मन में स्थान ग्रहण कर लेता है तो उसी को आतंक कहा जाता है। देशी और विदेशी दोनों शक्तियाँ शिवाजी और छत्रसाल से आतंकित रहती थी। शिवाजी और छत्रसाल का यह सारा उत्साह जिन कर्मों के लिए था वे कर्म राष्ट्र के कर्म थे।

सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भूषण का काव्य अपने समय की जरूरत थी। मुगलों से आतंकित जनता के भीतर राष्ट्रबोध कराना जरूरी हो गया था। ऐसे में शिवाजी और छत्रसाल के अलावा कोई नायक नहीं हो सकता था। भूषण के काव्य का मूल्य ऐतिहासिक है। इस प्रकार के साहित्य के सम्बन्ध में डॉ० देवराज लिखते हैं - “वह साहित्य जो ऐतिहासिक महत्व को प्राप्त करता है, स्वभावतः युग-जीवन के तत्वों से ग्रंथित होता है - वह अपने समय के सामाजिक यथार्थ को प्रकट करता है। साथ ही वह युग-जीवन का निर्देश भी करता है। वह युग-जीवन को बदल देने का अस्त्र भी बन जाता है।”¹⁶

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भूषण का काव्य यथार्थ से उपजा काव्य है। भूषण ने ऐसे उथल-पुथल काल में जनता के हृदय को पहचानकर, उनकी समस्याओं के हल करने वालों को प्रोत्साहन देकर और उनका यशोगान कर जन भावना को अभिव्यक्ति दी है। ये सभी विशेषताएँ एक साथ मिलकर राष्ट्रीय बोध कराती हैं।

सन्दर्भ

1. राष्ट्र की उत्पत्ति और भारतीय राष्ट्रीयता-श्री नर्मदेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, त्रिपथगा, पृष्ठ 25
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ 281
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ-398
4. भूषण की बिंब योजना की भूमिका से, डॉ० अर्चना शर्मा, पेज सं० 5
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, पृष्ठ सं० 400
6. भूषण ग्रंथावली - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पद सं०-419
7. भूषण ग्रंथावली- आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ सं० 429
8. वही पद सं० - 411
9. वही पद सं० - 541
10. वही पद सं० 454
11. वही पद सं० 446
12. वही पद सं० 510
13. वही पद सं० - 516
14. वही छंद सं०-213
15. वही छंद सं० - 390
16. आधुनिक समीक्षा, डॉ० देवराज, पृष्ठ सं०-18

प्रसाद के नाटकों में अभिव्यक्त राष्ट्रवादी चेतना

डॉ. ए.डी. चावड़ा

श्री.एम.बी.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
राजकोट

भारत में राष्ट्र शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आया है। 'यजुर्वेद' का दशम अध्याय इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। राज्याभिषेक के अवसर पर पढ़े जाने वाले मंत्रों में राजा द्वारा 'राष्ट्र' में देहि' कहलाकर राष्ट्र प्राप्ति की उत्कट लालसा को प्रदर्शित किया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' में समुद्धि युक्त जनसमूह को राष्ट्र की संज्ञा दी गई है। इसके बाद 'महाभारत' के दो पर्वों 'अनुशासन पर्व' और 'शांति पर्व' में राष्ट्र शब्द का उल्लेख हुआ है। इसके बाद 'मनुस्मृति', 'शुक्र नीति सार' और 'कौटिल्य' के 'अर्थशास्त्र' में भी राष्ट्र शब्द की चर्चा हुई है। इस प्रकार प्राचीन अनेक ग्रंथों में जहाँ जहाँ राष्ट्र शब्द का उल्लेख हुआ है। वह देश या क्षेत्र का ही पर्याय है। इस शब्द के माध्यम से लोगों ने अपनी पूज्य भावनाएँ निवेदित की हैं। फलतः भारत राष्ट्र प्रेम व्यक्ति का धर्म हो गया है। हिंदी में राष्ट्रीयता देश-प्रेम का ही पर्याय है। क्योंकि राष्ट्र किसी निश्चित भूमि पर बसने वाले उन लोगों से बनता है, जिनकी परम्परागत विचारधाराएँ, जीवन के नैतिक मूल्य, और उन मूल्यों के प्रति गौरव का भाव होता है। डॉ.वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है "भूमि, भूमि पर रहने वाला जन, और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि जन, जन-भूमि एवं जन संस्कृति राष्ट्र को जन्म देती हैं। और उसके उत्थान पतन को वैचारिक प्रक्रिया राष्ट्रीयता को उत्पन्न करती हैं, और बाद में वही राष्ट्रवाद स्वरूप निर्माण करता है।

राष्ट्रवाद के लिए अंग्रेजी में नेशनलिज्म शब्द है। नेशनलिज्म का हिंदी पर्याय राष्ट्रवाद किया जाता है। राष्ट्रवाद का जन्म 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में हुआ। 20 वीं शताब्दी की घटनाओं ने राष्ट्रवाद की भावना को गति प्रदान की। विश्व में राष्ट्रवाद सबसे शक्तिशाली है। क्योंकि राष्ट्रवाद ने ही संस्थानवाद और साम्राज्यवाद का सफाया किया है। राष्ट्रवाद के मूल भी इतिहास में निहित हैं। फ्रांस की राज्य क्रांति राष्ट्रवाद के विकास में अत्यंत प्रभावशाली बल मानी गई है। किन्तु वह राष्ट्रवाद की जन्मतिथि नहीं है। राष्ट्रवाद का जन्म 19 वीं शताब्दी में लोगों की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जागृति के कारण सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ही राष्ट्रवाद राज्य निर्मित करने की भावना का कारण बना है। जनसमूह की एक ही प्रभुसत्ता में एकताबद्ध रहने की प्रक्रिया ही राष्ट्रवाद का विकास है। राष्ट्रवाद केन्द्रीय प्रभुसत्ता की आवश्यकता पर बल देता है।

राष्ट्रवाद का सामान्य अर्थ है राष्ट्रीय स्वाभिमान, शक्ति, प्रतिष्ठा से लिया जाता है। राष्ट्रवाद अनेक तत्वों का सम्मिश्रण है। वह राष्ट्रीयता की भावना को संगठित रूप से अभिव्यक्ति करने का एक भावात्मक माध्यम है। वह एक मनोवैज्ञानिक भावना है, जो जाति या समुदाय के लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना सिखलाती है, एवं देश पर जब बाह्य विदेशी आक्रमण होता है, तो इसके खिलाफ अधिकारों एवं स्वाधीनता को सुरक्षित रखने का आह्वान करती है। राष्ट्रवाद वह शक्ति है जो राष्ट्रीयता को राष्ट्र के रूप में संगठित होने को प्रेरित करती है। राजनीतिक आकांक्षाओं से विकसित होने पर भी राष्ट्रवाद केवल कोरी राजनीतिक वस्तु नहीं है, वह एक राष्ट्रीय समुदाय की पूजा भावना है।

हिंदी साहित्य में राष्ट्रवाद का उदय छायावाद के युग में हुआ। क्योंकि हिंदी साहित्य में 20 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में अर्थात् 1920 से लेकर 1936 तक के कालावधि को हिंदी में छायावाद के नाम से अभिहित किया गया है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों अर्थात् 1920 से 1930 के काल देश की जीवंत राजनीतिक चेतना का काल कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। कारण कि देश की पराधीनता से मुक्त करने के पावन युद्ध में आबाल-वृद्ध भरसक प्रयत्नशील हुए। इस दशक में ही अनेक समाज सुधार के साथ राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान की चेतना जागृत करने का माहौल तैयार हुआ। इसी दशकों में उक्त दोनों ही रूपों का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। इसी दशक में प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को आधार स्वरूप ग्रहण कर अंग्रेजी शासकों के शासन तंत्र में देश की तत्कालीन दुर्दशा का सिंहावलोकन किया गया है। राष्ट्र धर्म के निर्वाह में इससे बहुविध सहायता मिली बुद्धिजीवी वर्ग ने साहित्य के माध्यम से भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरवगान कर राष्ट्रीय संचेतना का प्रचार किया है। वैसे भी देखा जाए तो साहित्यकारों ने इस युग में खादी का प्रचार राष्ट्रवाद की भूमिका में ही प्रस्तुत किया है। इसी बुद्धि-जीवी वर्ग के साहित्य के एक प्रमुख साहित्यकार जयशंकर प्रसाद हैं।

राष्ट्रीयता मनुष्य की भावात्मक चेतना है। जो राष्ट्र अथवा जाति के जीवन के मानवीय मूल्यों को विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भों

के अनुरूप परिचालित करती हैं। साहित्य राष्ट्रीय एवं जातीय जीवन की विशिष्ट प्रेरणाओं तथा तलवर्ती भूमिकाओं की सहजाभिव्यक्ति हैं। यह जातीय चेतना व्यक्तिगत या खंडित वस्तु न होकर राष्ट्रीय और ऐतिहासिक चेतना होती है, जिसकी प्रतिच्छाया साहित्य में सहज रूपेण उपस्थित होती है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में राष्ट्रवाद या राष्ट्रोत्थान का मंगलाचरण हुआ। जिसने छायावादी के प्रमुख साहित्यकार जयशंकर प्रसाद के नाट्य साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में कार्य किया है। प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रवाद की यह धारा दो रूपों में मिलती है। एक धारा - अतीत का स्तवन, स्मरण और उससे प्रेरणा लेने के लिए जनता को संबोधन। दूसरी धारा - वर्तमान के प्रति क्षोभ और ग्लानि। प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय मुक्ति के लिए जनता के आह्वान और विध्वंस का स्वर ही प्रखरतम रूप में उपलब्ध होता है। प्रसाद के नाटकों में उक्त दोनों ही धाराओं का प्रेरणा स्रोत मूलतः एक है। और वह है देश का राष्ट्रीय पुनरुत्थान या राष्ट्रवाद का निर्माण।

राष्ट्रवाद का उदय इतिहास में निहित है। राष्ट्रवाद की आधुनिक चेतना के उदय और विकास में इतिहास दृष्टि एक प्रमुख कारक है। राष्ट्रीय चेतना पर इतिहास का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार इतिहास दृष्टि पर भी राष्ट्रीय चेतना का असर पड़ता है। इतिहास की आधुनिक अवधारणा केवल भूतकालिक न होकर वर्तमान सापेक्ष भी है। क्योंकि इतिहास यह बताता है कि अतीत उतना ही वास्तविक है जितना की वर्तमान है। अतः कहा जा सकता है कि इतिहासकार द्रष्टा होता है, और साहित्यकार स्रष्टा है। साहित्यकार साहित्य में इतिहास का सर्जनात्मक प्रयोग करता है। साहित्यकार प्रसाद के नाटकों में इतिहास-दृष्टि या इतिहास दर्शन का निरूपण आधुनिकता और समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। प्रसाद का नाट्य साहित्य में निरूपित त्रासदी व्यक्ति की त्रासदी नहीं है, वरन राष्ट्र की है। इसलिए यह इतिहास की भी त्रासदी है। वैसे भी नाटक लोक के सुखदुख से संबंध होने के कारण यथार्थ के अधिक करीब होता है। अतः कहा जा सकता है नाटक जीवन और युग की अभिव्यक्ति है। प्रसाद के नाटकों में उनके युग का यथार्थ और समय का द्वन्द सर्वत्र मुखर हुआ है। नाटक केवल राजनीतिक प्रयोजनों को ही सिद्धि नहीं करते, वरन सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रश्नों की टकराहट को भी उजागर करता है। इसलिए प्रसाद के नाटकों में भारत के अतीत के संदर्भ में वर्तमान समय की समस्याएँ और निष्कर्ष दोनों हैं। प्रसाद के नाटकों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है, कि प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण अतीत का चित्र सामने प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही उन्होंने ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा समसामयिक समस्याओं का समाधान निकालने का स्तुत्य प्रयास भी प्रस्तुत किया है। इसलिए उनके नाटक के माध्यम से एक नया गरिमापूर्ण राष्ट्रीय-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का वातावरण पैदा करने का प्रयास किया है।

प्रसाद का रचना-काल भारत के इतिहास में राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का काल है। प्रसाद के रचनात्मक व्यक्तित्व का विकास एक खास राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण में हुआ है। वैसे भी प्रसाद को अपने युग की ऐतिहासिक शक्तियों का प्रखर बोध था। वह वर्तमान के प्रति जागरूक भी थे। यही जागरूकता उन्हें इतिहास चेतना की ओर ले गई। क्योंकि उनमें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के साथ ही अतीत का गौरव-गान एवं गौरव-बोध भी शामिल हुए हैं। प्रसाद के लिए इतिहास का अर्थ अतीत का पहाड़ा दुहराना नहीं है, बल्कि खोज और अनुसंधान के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति है। इस ज्ञान के द्वारा वे देश और जनता की मुक्ति मार्ग तलाशते हैं। उनके लिए इतिहास केवल तथ्यों और साक्ष्यों का संकलन नहीं है। वह एक ऐसा प्रत्यय है, जो दिक्काल की सापेक्षता में ही अपने को चरितार्थ करता है। सही रचनात्मक इतिहास-दृष्टि वही है, जो अतीत को वर्तमान की सापेक्षता में रूपांतरित करती है। क्योंकि इसका कारण यह है कि इतिहास का संबंध मानवीय चेतना से है। और मनुष्य की चेतना जड़ न होकर निरंतर गतिशील और उर्ध्वमुखी है। प्रसाद के नाट्य साहित्य में विशेषकर ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास का सर्जनात्मक प्रयोग हुआ है। प्रसाद ने अपने नाटकों में इतिहास का आश्रय लेकर वर्तमान की समस्याओं का समाधान निकालने की चेष्टा की है। अतः निःसंदेह आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में श्री जयशंकर प्रसाद का साहित्य बहु आयामी होने के साथ राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का गौरव पूर्ण साहित्य है। उन्हें दार्शनिक कवि और ऐतिहासिक नाटककार के रूप में समझ लेने से उनके साहित्य में व्याप्त आधुनिक युग-संदर्भ की प्रायः उपेक्षा कर दी जाती है। लेकिन हमें यह भूलना नहीं है कि शैव दर्शन के प्रभाव को हम नकारा नहीं सकता और नाटकों की पृष्ठभूमि में प्रवाहित इतिहास की भी उपेक्षा नहीं हो सकती। किन्तु इन दोनों के मध्य अंतःसलिला नदी की धारा के रूप में विद्यमान युग संदर्भ को ओझल करना भी उचित नहीं है।

'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'कामना', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि प्रसादजी के ऐतिहासिक नाटक हैं। इन नाटकों में प्रसाद ने महाभारत युद्ध के पश्चात् से लेकर हर्षवर्धन के शासन काल तक के भारतीय इतिहास का चित्रण किया है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास का ढाँचा ही नहीं अपनाया गया है, बल्कि उसके सूक्ष्म रूप रंग को भी भलीभांति अभिव्यक्त किया गया है। प्रसादजी भारतीय लोगों की मनोवृत्ति से भलीभांति परिचित थे। इसलिए ही ऐतिहासिक नाटकों की रचना के संदर्भ में वे भारत के प्राचीन आधार को समझते हुए भी, पात्रों का चरित्रांकन राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार किया है। उनके नाटकों के पात्रों हर कदम पर सामंतवाद और साम्राज्यवाद से टकराते हैं। इसलिए हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, कि उन्होंने ने ऐतिहासिक पात्रों का चरित्र निरूपण 'राष्ट्रीय चरित्र' के रूप में किया है। प्रसाद ने नाट्य साहित्य में पहली बार अपने 'अजातशत्रु' (1922) और 'चन्द्रगुप्त मौर्य' (1931) दोनों नाटक में बिहार की धुरी पर

लिखा है इस नाटकों में पहली बार पूंजीवादी और भू-स्वामित्व वाले शोषण को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें पहली बार राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन यह ज्वलंत सवाल भी सुलगा कि राष्ट्रीय मुक्ति का आधार कौन है? युवक? बुद्धिजीवी? सैनिक? किसान? जनता? प्रसाद ने अपने विभिन्न नाटकों में इस सवाल को अलग अलग धुरी पर संचालित किया है। प्रसाद अपने नाटकों में राष्ट्रवादी ताकतों की टक्कर एक ओर तो सांप्रदायिक घृणाकारी शक्तियों से तथा दूसरी ओर विदेशी प्रभुओं, भू-स्वामियों और धनकुबेरों के घालमेल से हुई, इसका संकेत किया है। प्रसाद ने अपने नाटक 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' (1928) में सौराष्ट्र में शकों से तथा उत्तर में हूणों से, 'चन्द्रगुप्त मौर्य' (1931) में चन्द्रगुप्त का ग्रीक यवनों से, 'ध्रुवस्वामिनी' (1933) में शकों से संघर्ष हुआ है। 'राज्यश्री' (1915) में धार्मिक एकता, 'जनमेजय का नागयज्ञ' (1926) में आर्य तथा अनार्य (नाग प्रजातियों) की मैत्री, 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' तथा 'चन्द्रगुप्त मौर्य' नाटक में विभिन्न गणों राष्ट्रीयताओं तथा गणराज्यों के सश्लेषण से एक भारतवर्ष की ऐतिहासिक-सामाजिक संस्थापना हुई है। इस तरह प्रसाद ने अपने नाटकों में राष्ट्रवादी विचारधारा और कल्प चिंतन की मैत्री कराई है। प्रसाद ने अतीत का जातीय सांस्कृतिक इतिहास का गौरवगान किया है।

प्रसाद के युग में उपनिवेशवाद देश में प्रतिक्रियावादी ताकतों हावी हुई। और उसमें तेजी आई। प्रसाद इस साम्राज्यवाद के अभिप्राय को काफी समझ गए। इसलिए वह 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अलका के मुँह से चेतावनी देते हैं। "पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है? राष्ट्र प्रेम द्वारा ही ऐसी प्रवृत्तियों पर विजय संभव है।" इस नाटक का एक अन्य पात्र कार्नेलिया के भी शब्द हैं। "अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं। परंतु भारत मानवता की जन्मभूमि है।" प्रसाद के यह कथन उनके उत्कट राष्ट्र प्रेम के द्योतक हैं। प्रसाद का राष्ट्रवाद यूरोप के अंध-राष्ट्रवाद से भिन्न, एशियाई देशों का राष्ट्रवाद है, जिसके पीछे छिपी है एशियाई जनता की नव-मानवतावादी अवधारणा है। प्रसाद को उस समय की विघटनवादी शक्तियों की पहचान थी। उस समय में नवजागरण के साथ ही पुनरुत्थानवादी और सांप्रदायिक शक्तियों भी अपना सिर उठाए हुए खड़ी थी। प्रसाद ने चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त दोनों नाटकों इस समस्याओं को रखा है। कर्तव्य और भावुकता के द्वन्द में प्रसाद भावुकता पर कर्तव्य की विजय दिखाते हैं। साम्राज्यवादी संस्कृति के सामने अपनी भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखने वालों को लक्षित करते हुए 'स्कन्दगुप्त' नाटक में एक स्थान पर नाटककार प्रसाद ने गहरा व्यंग्य किया है। सैनिक कहता है ख "यवनों से उधार ली हुई सभ्यता नाम की विलासिता के पीछे आर्य-जाति उसी तरह पड़ी है, जैसे कुलवधू को छोड़कर कोई नागरिक वेश्या के चरणों में। देश पर बर्बर हूणों की चढ़ाई और तिस पर भी यह निर्लज्ज आमोद।" धातुसेन और ब्राहमण के वार्तालापों में भी देश की परिस्थितियाँ उजागर हुईं।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक के पात्रों में नैतिकता, ईमानदारी, कर्तव्य परायणता, साहस, त्याग की भावना सहज ही देखी जा सकती है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका, कार्नेलिया, देवसेना, राज्यश्री आदि सभी पात्रों में त्याग और कर्तव्य परायणता की भावना है। हिंदी नाट्य साहित्य में वे नायक या नायिका की नई धारणा प्रस्तुत करते हैं। देवसेना में त्याग और लोक मंगल की भावना है, तो कार्नेलिया और अलका में राष्ट्र प्रेम, राज्यश्री में यदि लोकसेवा का भाव है, तो ध्रुवस्वामिनी में नारी स्वातंत्र्य चेतना उजागर है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में भट्टारक का देशद्रोह यदि प्रतिगामी शक्तियों की याद कराता है, तो 'स्कन्दगुप्त' नाटक के प्रमुख पात्र चन्द्रगुप्त में नए युग की उत्कट राष्ट्रप्रेम और स्वाधीनता की भावना लक्षित की जा सकती है। 'चंद्रगुप्त' नाटक का सबसे गतिमान चरित्र जब यह कहता है कि "मालव और मागध को भूल कर जब तुम आर्याव्रत का नाम लोगे, तभी मान-सम्मान मिलेगा।" या सिंहरण जब यह कहता है कि "मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है, बल्कि समग्र आर्यावर्त है।" तो प्रकारांतर से प्रसाद एक राष्ट्र की अनिवार्यता को ही व्यंजित कर रहे होते हैं। इस प्रकार प्रसाद ने अपने नाटकों में इतिहास का सर्जनात्मक प्रयोग करते हुए वह घटनाओं और पात्रों का निरूपण समसामयिक राष्ट्रवाद के संदर्भ में करते हैं।

राज्यश्री नाटक में प्रसाद ने बुद्ध की करुणा और दुखवाद को चित्रित किया है। 'विशाख' नाटक में मायावाद पर प्रहार किया है। इस नाटक का एक साधु कहता है ख "सत्कर्म कर्मयोग यही विश्वकोश है। किसने कहा कि झूठ है, संसार कूप है।" किन्तु यहाँ बुद्ध के दुखवाद और शंकर के मायावाद दोनों से प्रसाद असहमत हैं। गीता का कर्मयोग उन्हें अधिक प्रभावी दिखाता है विशाख कहता है- "उद्योगहीन मनुष्य शिथिल हो जाता है। उसका चित्त आलसी हो जाता है।" प्रसाद यहाँ कर्म के संकल्प का महत्त्व बताकर जातीय कर्तव्य भावना को ही मजबूत बनाना चाहते हैं। 'अजातशत्रु' नाटक की पृष्ठभूमि बुद्धकालीन है। इस नाटक में प्रसाद भारत के इतिहास का आरंभ बुद्ध से मानते हैं। इस नाटक के घटना के केंद्र में मगध का नवीन उन्नतिशील राष्ट्र है। यहाँ भी प्रसाद का देश-प्रेम द्रष्टव्य है।

जीवन के विभिन्न रूपों राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूपों को समझना आवश्यक होता है। प्रसादजी के प्रत्येक नाटक स्वाधीनता राष्ट्रवाद, और सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं के किसी न किसी महत्वपूर्ण पक्ष को लेकर चलता है। नाटकों में प्रसादजी एक प्रबुद्ध विचारक और चिंतक के रूप में भी उभरे हैं। आध्यात्मिक रुझानों के बावजूद वे आधुनिक युग की समस्याओं से टकराते हैं। उनसे लोहा लेते हैं, किन्तु कभी पलायन नहीं करते। प्रसादजी का भावबोध सामंतीय नहीं है। यदि उनके नाटकों में सामंती भोगलोलुप प्रवृत्तियों की आलोचना है, तो दूसरी तरफ नारी सामंती बंधनों से मुक्त करा कर उसे अत्यंत उच्च पद पर आसीन करने की उत्कट आकांक्षा भी है। बुद्धिवादी युग के अन्तर्विरोधों से प्रसादजी सिर्फ टकराते ही नहीं हैं, बल्कि समाधान का संकेत भी देते हैं। इसलिए ही प्रसादजी के काव्यों में जहाँ विश्वमंगल का भाव है, वही नाटकों

में स्वाधीन चेतना और राष्ट्रवाद का भाव भी समाहित हैं।

छायावाद युग में सामंती भोगलोलुपता और साम्राज्यवाद का विरोध है। इस दृष्टि से भी प्रसादजी का 'ध्रुवस्वामिनी' तथा 'स्कन्दगुप्त' दोनों नाटक का व्यापक महत्त्व है। क्योंकि जिस ऐतिहासिक काल और परिवेश का चित्रण प्रसादजी ने इस नाटकों में अधिक किया है। वह ईसवीं पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दी का गुप्तकाल है। यह वह काल है जब नंद के कुशासन से प्रजा ऊब गई थी। एक तरफ विलासिता का वातावरण है, तो दूसरी तरफ सता का आतंक है। आन्तरिक असंतोष के साथ ही बाहरी सीमा पर आक्रामक शक्तियाँ भारत की संप्रभुता को चुनौती दे रही थी। 'चन्द्रगुप्त' नाटक की संरचना का यही परिप्रेक्ष्य है। नाटक का प्रथम दृश्य ही अशुभ-सूचक है। सिंहरण कहता है.. "आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताड़ना की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है। उत्तरापथ के खंड राज्य द्वेष से जर्जर है। शीघ्र ही भयानक विस्फोट होगा।" यह अशुभ सूचक से नाटक में होनेवाले भयंकर घात-प्रतिघात का संकेत होता है। अतः नाटक का प्रारंभ त्रासदी से हुआ है। प्रसादजी के नाटकों की त्रासदी इतिहास की त्रासदी है। जिस पर समकालीन राष्ट्रीय परिस्थितियों और घटनाओं के संकट की गहरी छाया है। नाटक के प्रमुख और अत्यंत प्रमुख चरित्र चाणक्य के इस कथन से "दस्यु और मलेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं। और आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है।" प्रसाद अपने युग के इतिहास की त्रासदी का भी आस्वाद कराते हैं। चाणक्य पुनः कहता है। - "मालव और मागध को भूल कर जब आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।" और फिर यह कि यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रखेंगे।" चाणक्य के जरिए प्रसाद जाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय, और क्षेत्रीयता की अलगाववादी प्रवृत्तियों पर गहरी चोट करते हैं। केन्द्रीय शक्ति का हास होने पर ही देश की अखंडता और संप्रभुता को चुनौती मिली है। यह सत्य नाटक में बार बार उभर कर आता है। इस प्रकार नाट्य साहित्य के क्षेत्र में जयशंकर प्रसादजी ने युगांतरकारी परिवर्तन करते हुए प्रसाद ने देशप्रेम एवं सांस्कृतिक चेतना को जागृत कर नाट्य साहित्य में एक नया मोड़ उपस्थित किया है।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से देश की अवनत दशा तथा उसके कारणों का निःशंक भाव से प्रकाश डाला। उन्होंने ने युगीन परिस्थितियों का यथार्थ परक चित्रण करते हुए देश की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक अधोगति का विश्लेषण किया। वर्तमान दुर्दशा का सम्यक बोध कराने के लिए ही उन्होंने ने भारत वर्ष के भव्य, उज्ज्वल और गौरवपूर्ण अतीत का प्रकाशन किया। तथा यह धारणा व्यक्त की, कि अतीत की सुरक्षा ही नवजागृति का साधन है। प्रसाद युग में राष्ट्रीय चेतना प्रखर विस्तीर्ण और पुष्ट हुई। अपूर्व जागरण के फलस्वरूप राजनीतिक गुलामी से मुक्ति पाने की चेतना तथा राष्ट्र के नवनिर्माण का संकल्प ये दो मुख्य राजनीतिक मूल्य प्रत्यक्ष हुए। प्रसाद ने अपने नाटकों में राजनीतिक दासता की लज्जाजनक पीड़ा की अभिव्यक्ति की है। साथ ही उन्होंने ने अपने नाटकों के द्वारा स्वाधीनता के लिए प्राणपण से संघर्ष शील होने की प्रेरणा भी दी है। प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में कुटिल और अत्याचारी विदेशी शासन से मुक्ति पाने का संदेश दिया है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में वर्णित हूणों के अत्याचार तत्कालीन अंग्रेजी शासन के अत्याचारों की याद दिलाता है। 'विशाख' नाटक का अत्याचारी राजा नरदेव ब्रिटिश शासन का प्रतीक है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का यह वाक्य है - "पराधीनता से बढ़कर विडंबना और क्या है?" इस नाटक की अलका द्वारा गाया गया अभियान गीत... "हिमाद्रि तुंग श्रुंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती" स्वाधीनता आन्दोलन के दीवानों का प्रिय जागरण गीत हुआ। प्रतीत होता है कि प्रसाद जी ने 'विशाख' नाटक में नाग जाति के स्वातंत्र्य संघर्ष का चित्रण राष्ट्रीय आंदोलनों से प्रभावित होकर ही किया है। 'अजातशत्रु' नाटक में विश्वमैत्री तथा वसुधैव कुटुम्बकम की भावना व्यक्त हुई है। इस नाटक में गांधीजी के आदर्श और प्रेरणा स्रोत गौतम बुद्ध भी एक प्रमुख पात्र हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है कि प्रसाद के नाटकों में राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र राजनीतिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इस काल के राजनीतिक जागृति के फलस्वरूप यह धारणा बद्धमूल हुई, कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। प्रसाद ने इस नारा को अपने नाटकों में ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में सार्थक करने का सफल प्रयास करते हुए राष्ट्रीय एकता और जातीय एकता का ओजस्वी संदेश उजागर किया है। निष्कर्षतः प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से भारत के गौरवपूर्ण अतीत का भव्य प्रकाशन करते हुए तत्कालीन विषम और दयनीय परिस्थितियों का प्रामाणिक अंकन किया है। नारी स्वातंत्र्य, प्रेम विवाह और अंतर्जातीय विवाह का समर्थन करते हुए उन्होंने ने नवीन सामाजिक नैतिक मूल्यों की स्थापना के यत्न किए हैं। गांधीवाद से प्रभावित होकर उन्होंने ने अहिंसक मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त की है। तथा सम्पूर्ण मानवता के मंगल कल्याण की कामना की देश की सांस्कृतिक आत्मा के उदात्त एवं परिष्कृत स्वरूप की सफल अभिव्यक्ति द्वारा राष्ट्रीय गौरव की अभिवृद्धि करने के कारण प्रसाद का महत्त्व अक्षुण्ण है।

संदर्भ ग्रंथ

- 1 जयशंकर प्रसाद : सृजन के विविध आयाम - सं.जगदीश चतुर्वेदी
- 2 हिंदी का समस्या साहित्य - डॉ.विमला भास्कर
- 3 छायावादी युगीन काव्य - डॉ.अविनाश भारद्वाज
- 4 राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद - सं.शम्भुनाथ
- 5 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक मूल्य-संक्रमण - ज्योतीश्वर मिश्र

लोक कलाएं : देश की धड़कन

डॉ० अनुपमा श्रीवास्तव

जीसस एंड मेरी कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

‘लोक’ शब्द अपने आप में सामूहिकता की भावना का सूचक है जो मनुष्य की स्वाभाविक एवं नैसर्गिक अनुभूतियों की विविध अभिव्यक्तियों से निर्मित है। जब एक समूह एक जैसी जीवन-शैली, मूल्य, रीति-रिवाज, साहित्य, विविध कलाओं आदि से अपने स्वभाविक-प्राकृतिक रूप से अनुप्राणित होता है तब वह विशिष्ट अर्थों में ‘लोक’ कहलाता है। इस प्रकार लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से भी है, जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। सभ्यता के विकास के अलग-अलग चरण के जीवन्त प्रमाणों के रूप में इनका अमूल्य योगदान लगातार हो रहा है।

मुख्य धारा से दूर स्थापित और प्रकृति के सान्निध्य में अपना जीवनयापन करने वाली विविध जातियों एवं जन-जातियों का समस्त लोक समुदाय का मिलाजुला रूप ‘लोक’ कहलाता है। इन सबकी मिलीजुली संस्कृति, लोक संस्कृति कहलाती है। देखने में इन सबका अलग-अलग रहन-सहन है, वेशभूषा, खान-पान, व्यवहार, नृत्य, गीत, कलाएं, भाषा आदि सब अलग-अलग दिखाई देते हैं, परन्तु एक ऐसा सूत्र है जिसमें ये सब एक माला में पिरोई हुई मणियों की भाँति दिखाई देते हैं, यही लोक संस्कृति है।

लोक संस्कृति का एक रूप हमें कलात्मक भावाभिव्यक्तियों में भी मिलता है, जिसके द्वारा लोक-मानस की मांगलिक भावना से ओत प्रोत होना सिद्ध होता है इसलिए अधिकांश लोक-गीत और अन्य कलाएं कहीं न कहीं मनुष्य की स्वस्थ सोच और जिजीविषा को दर्शाते हैं। लोक जीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोक गीतों व लोक कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक साहित्य में लोक मानव का हृदय बोलता है। वहां प्रकृति स्वयं गाती गुनगुनाती है। लोक जीवन में प्रत्येक स्थान पर लोक संस्कृति प्रदर्शित होती है। लोक कलाएं उतनी ही पुरानी हैं जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी के सजीव चित्र मिलते हैं।

अभिव्यक्तियों के सृजनात्मक स्वरूप को ‘कला’ कहा जाता है। कला एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी सूक्ष्म संवेदनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रयास करता है। यह मनुष्य की सौन्दर्यानुभूति का मानदंड एवं प्रतिबिम्ब रही है। जब यह प्रक्रिया बिना किसी परिमार्जन के सीधे हृदय से होती है तब वह ‘लोक’ की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए तमाम लोक-कलाओं में विशेष अनगढ़ सौन्दर्य-बोध होने के कारण अनासक्त भाव का आकर्षण होता है।

लोक कला के परम्परागत अभ्युदय को यदि साहित्य के अभ्युदय के समकक्ष रखते हुए देखा जाए तो इसकी वस्तुस्थिति को और अधिक स्पष्टता से समझा सकता है। जिस प्रकार वाङ्मय की समृद्धि में दो समान कारण विद्यमान थे उसी प्रकार समस्त कलाएं भी इन्ही कारणों से उन्नत हुईं। हमारी वैदिक संस्कृति ने एक ओर तो लोकभाषाओं को जन्म दिया तथा उनका पोषण किया और दूसरी ओर संस्कृत को संरक्षित किया। भारतीय साहित्य के विकास के लिए जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत ने किया वही कार्य जन-जीवन में सुरक्षित मौखिक साहित्य के लिए परोक्ष में अपभ्रंश और उसकी अनेक उपभाषाओं ने किया। हमारे लोक मानस द्वारा मौखिक रूप में सुरक्षित यह लोक-साहित्य उतना ही उपयोगी और महत्वपूर्ण है जितना कि संस्कृत साहित्य। ठीक यही स्थिति लोक-कलाओं पर भी चरितार्थ होती है। भारतीय कला दो रूपों में पोषित हुई। उसका एक रूप शास्त्रीय रहा और दूसरा लोक-कला के रूप ,जो अपने इतिहास और ख्याति की अपेक्षा किये बिना हमारे घर के आंगनों के निराले एवं स्वच्छंद वातावरण में उन्नत हुआ। चाहे संगीत के माध्यम से या चित्र-कला के माध्यम से ,या फिर अभिनय की कला हो या हस्तकला, भारत की कोटि-कोटि जनता के जीवन में एकप्राण होकर ये लोक-कलाएं एक लम्बे समय से हमारे उल्लास के सम्बन्धों से गूँथकर सुदृढ़ परम्परा का संरक्षण करते हुए पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरो रही हैं।

वर्तमान समय मीडिया का दौर कहलाता है। तकनीकी दृष्टि से जो भी उपकरण, प्रक्रिया या व्यवस्था सन्देश को एक स्थान से दूसरे तक ले जाने में सक्षम होती है, माध्यम कहलाती है और जब वह बड़े पैमाने पर हो तो ‘जनसंचार’ कहलाती है। इस दृष्टि से विविध लोक-कलाएं जनसंचार का सशक्त माध्यम रही हैं। ये लोक-कलाएं एक लम्बे अरसे से भारतीय संस्कृति में सम्प्रेषण का अभिन्न अंग रही हैं। जब भाषा का कोई व्यवस्थित रूप नहीं था तब से भित्ति-चित्रों , मुखौटों, इशारों आदि

स्वरूपों में लोक-कलाएं सम्प्रेषण का कार्य करती आ रही हैं। संगीत-गीत, विविध रंग और उनसे बने चित्र बिना किसी भाषा के ही गहरे भावों को बड़ी सरलता से संप्रेषित कर जाते हैं। लोक-कलाओं की सार्वभौमिकता का गुण ही इनमें असीम सम्प्रेषणीयता की क्षमता को दर्शाते हैं। इस प्रकार लोक-कलाएं जनसंचार का सशक्त माध्यम हैं क्योंकि इनमें संदेह, प्रेषक, प्रेषिती, सामूहिक स्तर पर सन्देश प्रसारित करना और फीडबैक के रूप में दर्शकों की प्रतिक्रियाएँ जैसे सभी गुण विद्यमान हैं।

परम्परागत तौर पर धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक कई मुद्दों का वहाँ इन लोक-कलाओं के द्वारा प्रसार हो रहा है। यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश की संस्कृति के विकासमय पक्षों और पहलुओं को इन लोक-कलाओं के माध्यम से भली-भाँति समझा जा सकता है तब इस ओर हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित होता है कि जिस देश को हम विविध संस्कृतियों वाला जानते हैं वह किस प्रकार हमारे अंतर्मन को स्पर्श करता हुआ उसकी सजग अनुभूति करा जाता है और यह केवल इन अनगढ़ सृजनात्मकता के ही माध्यम से संभव हो पाता है। धर्म, जाति, वर्ग और समुदाय से ऊपर उठ कर केवल मनुष्यता के कर्णों से निर्मित ये लोकोभिव्यक्तियाँ सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोये हैं जो इस देश की सबसे विशेष बात है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन लोक-कलाओं के माध्यम से प्रत्येक भारतीय को अपने आप को इस देश का अभिन्न अंग होने की अनुभूति अवश्य होती है। देश की संस्कृति से रु-ब-रू कराने के अलावा लोक-कलाएं समाज में आवश्यक बदलाव की भी क्षमता रखती हैं क्योंकि विविध लोक-कलाओं में एक विशेष बात समान रूप से परिलक्षित होती है और वह है विभिन्न अनुभूतियों का सामूहिक रूप से सफल सम्प्रेषण।

लोक गीत एवं संगीत

वैदिक ऋचाओं की तरह लोक संगीत या लोकगीत अत्यंत प्राचीन एवं मानवीय संवेदनाओं के सहजतम उद्गार हैं। ये लेखनी द्वारा नहीं बल्कि लोक-जिह्वा का सहारा लेकर जन-मानस से निःसृत होकर आज तक जीवित रहे। लोकगीत तो प्रकृति के उद्गार हैं। साहित्य की छंदबद्धता एवं अलंकारों से मुक्त रहकर ये मानवीय संवेदनाओं के संवाहक के रूप में माधुर्य प्रवाहित कर हमें तन्मयता के लोक में पहुंचा देते हैं। लोकगीतों के विषय, सामान्य मानव की सहज संवेदना से जुड़े हुए हैं। इन गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य, सुख-दुःख और विभिन्न संस्कारों और जन्म-मृत्यु को बड़े ही हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

संगीतमयी प्रकृति जब गुणगुना उठती है तब लोकगीतों का स्फुरण अनायास ही हो उठता है क्योंकि प्रकृति अपनी स्वाभाविकता में ही अनोखे ताल-लय और स्वर लहरियों को संजोये हुए है। विभिन्न ऋतुओं के सहजतम प्रभाव से अनुप्राणित ये लोकगीत प्रकृति रस में लीन हो उठते हैं। बारह मासा, छैमासा तथा चौमासा गीत इसी तल्लीनता को रेखांकित करने वाले सिद्ध होते हैं। पावसी संवेदनाओं ने तो इन गीतों को मर्मस्पर्शी प्रभावों से भर दिया है। वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले कजरी, झूला, हिंडोला, आल्हा आदि इसके प्रमाण हैं।

सामाजिकता को जिंदा रखने के लिए लोकगीतों और लोकसंस्कृतियों का सहेजा जाना बहुत जरूरी है। समाज की सहज सरल संवेदनात्मक अभिव्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकता को लोकगीतों ने सदैव परिपूर्ण किया है। फिर चाहे सदियों या हाशिये पर रखे जन हों या जीवन के किसी भी पक्ष की संवेदनाएं विशेष रूप से महिलाओं ने अपने जीवन की कोमल और उल्लसित संवेदनाओं के साथ साथ सामाजिक दंश, मान-अपमान, घर-परिवार के तानों और जीवन संघर्षों से जुड़ी व्यथाओं और तकलीफों को अभिव्यक्ति देने के लिए लोकगीतों का सहारा लिया। यह देश किसानों का देश कहा जाए तो अनुचित न होगा। एक किसान की सारी मनोकामनाएं उसकी फसल के साथ जुड़ी होती है। विभिन्न ऋतुओं का, प्रकृति का और साथ ही प्राकृतिक आपदाओं का सीधा सम्बन्ध उसकी खेती से जुड़ा होता है, अतः लोकगीतों में किसान के जीवन का वर्णन अधिकांशतः दिखाई देता है। भारत देश की इस पहचान से सबका सहज परिचय लोकगीतों के माध्यम से हो जाता है। लोकगीत किसी काल विशेष या कवि विशेष की रचनाएं नहीं हैं। अधिकांश लोकगीतों के रचयिताओं के नाम अज्ञात होते हैं। दरअसल एक ही गीत तमाम कंटों से गुजर कर नित नवीनता को ग्रहण करते हुए भी परम्परा की तासीर को बनाए रखता है। आज वैश्वीकरण के कारण बढ़ते हुए सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण लोककलाओं के विकास में कमी आ रही है। लोककलाओं के प्रति आम धारणा यह बनने लगी है कि अपनी संस्कृतियां अनुपयोगी और व्यर्थ है। ऐसे में कई संस्थाओं ने लोकगीतों को सहेजने का काम शुरू किया है। उन्होंने तमाम लोकगीतों को एकत्र किया है और अपने प्रकाशनों में छापा भी है। इन संस्थाओं ने 'रसूल' जैसे महत्वपूर्ण लोक कलाकारों की खोज भी की है जो भिखारी ठाकुर के समकालीन कलाकार थे।

इस प्रकार लोकगीत लोक के गीत हैं। जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक समर्पित कर देता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है।

लोकगीत चाहे कहीं के भी हों वे प्राचीन परंपराओं, रीतिरिवाजों एवं धार्मिक तथा सामाजिक जीवन और संस्कृति के द्योतक हैं। इनमें भाषा अथवा बोली की विविधता भले हो पर भाव की एकता एवं उसे व्यक्त करने तथा पात्रों का चयन एक जैसा होता है। ऐसे गीतों में ऋतुसंबंधी गीत, संस्कार गीत और जातीय गीत मुख्य रूप से आते हैं। पद्य गाथाएँ एवं पँवारे भी विभिन्न

प्रकार से गाए जाते हैं।

ऋतुगीतों में फाग और पावस गीत ऐसे हैं जो अनेक क्षेत्रों में प्रचलित दिखाई पड़ते हैं। फाग गीत मुख्य रूप से पुरुषों का गीत है जो बसंतपंचमी से लेकर होलिकादहन के सबेरे तक गाया जाता है। अवधी, ब्रज, राजस्थानी, बुंदेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, बैसवाड़ी, बघेली, भोजपुरी आदि अनेक बोलियों में फाग संबंधी गीत पाए जाते हैं। फाग के होली, चौताल, डेढ़ताल, तिनताल, देलवइया, उलारा, चहका, लेज, झूमर और कबीर आदि अनेक प्रकार हैं। इन सब में केवल धुनों का अंतर है। पावस गीतों की भी बहुक्षेत्रीय परंपरा है। ये गीत उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में न्यूनाधिक मात्रा में पाए जाते हैं किंतु अवधी और भोजपुरी में अधिक प्रचलित हैं। इन दोनों क्षेत्रों में इन्हें कजली कहा जाता है। संस्कार के गीतों में सोहर (जन्मगीत), मुंडन, जनेऊ के गीत और विवाह के गीत प्रायः सभी स्थानों में गाए जाते हैं। मृत्यु के समय प्रायः प्रत्येक क्षेत्र की स्त्रियाँ एक विशेष राग में रोती हैं। जातीय गीत इनसे काफी अलग होते हैं किंतु जहाँ एक ही जाति के लोग अनेक क्षेत्रों में बसे हैं, उनके गीतों की मूल प्रवृत्ति एक जैसी ही है। जैसे, पँवरिया जाति के लोग पँवारा, नट जाति के लोग आल्हा, अहीर जाति के लोग विरहा कई क्षेत्रों में गाते हैं। पद्य गाथाएँ तो प्रायः सभी क्षेत्रों में मिल जाती हैं। ये स्थानीय जननायकों के चरित्रों पर आधारित होती हैं।

प्रायः सभी क्षेत्रों में माताएँ बच्चों को सुलाने के लिए लोरी तथा प्रातः उन्हें जगाने के लिए प्रभाती गाया करती हैं। बालक बालिकाएँ भी कुछ खेलों में गीतों का सहारा लेते हैं। बहुत से ऐसे खेल भी हैं जिनमें वयस्क स्त्री पुरुष गीत गाया करते हैं। लोकप्रचलित भजन और श्रमगीत तो सभी क्षेत्रों में गाए जाते हैं। लोकगाथाओं में ऐसी बहुत सी गाथाएँ भी हैं जो कई क्षेत्रों में बीच बीच गाई जाती हैं। इन पृथक्ताओं के बावजूद गीतों की प्रवृत्ति एक जैसी ही है जिससे हिंदीभाषी क्षेत्रों की अनेकता एकता में बद्ध दिखाई पड़ती है। नीचे सभी क्षेत्रों के लोकगीतों का संक्षिप्त एवं क्रमबद्ध परिचय दिया जा रहा है।

संस्कार गीत – बालक-बालिकाओं के जन्मोत्सव, मुण्डन, पूजन, जनेऊ, विवाह, आदि अवसरों पर गाये जाने वाले संस्कार गीत हैं – सोहर, खेलौना, कोहबर, समुझ बनी, आदि।

गाथा-गीत या लोकगाथा – विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित विविध लोकगाथाओं पर आधारित इन गाथा-गीतों को इन रूपों में सुना जा सकता है – आल्हा, ढोला, भरथरी, नरसी भगत, घनइया आदि।

लोरिकायन – वीर रस से परिपूर्ण इस लोकगाथा में गायक लोरिक के जीवन-प्रसंगों का जिस भाव से वर्णन करता है, वह बहुत ही भाव पूर्ण होता है।

नयका बंजारा – विभिन्न क्षेत्रों में गाये जाने वाले लोक गीतों में प्रायः विषय-वस्तु तो एक ही होती है, किन्तु स्थान, पात्र तथा चरित्रों में विविधता के दर्शन होते हैं।

विजमैल – राजा विजयमल की वीरता का बखान करने वाली इस लोकगाथा में बढ़ा-चढ़ाकर प्रचलित गाथा का वर्णन किया जाता है।

सलहेस – एक लोककथा के अनुसार, सलहेस, दौना नामक एक मालिन का प्रेमी था। उसके एक शत्रु ने ईर्ष्यावश सलहेस को चोरी के झूठे आरोप में बन्दी बनवा दिया। दौना मालिन ने अपने प्रेमी सलहेस को किस प्रकार मुक्त कराया। बस इसी प्रकरण को इस लोक-गीत में भाव-विभोर होकर गाया जाता है।

दीना भदरी – इस लोक-गीत में दीना तथा भदरी नामक दो भाइयों के वीरता का वर्णन मार्मिकता से गाया जाता है।

पर्वगीत

इसी प्रकार विविध और विशेष पर्वों एवं त्योहारों पर गाये जाने वाले मांगलिक-गीतों को 'पर्वगीत' कहा जाता है। होली, दीपावली, छठ, तीज, रामनवमी, जन्माष्टमी तथा अन्य शुभअवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में प्रमुखतः शब्द, लय एवं गीतों में भारी समानता होती है। बारहमासा का उदाहरण द्रष्टव्य है –

“प्रथम मास असाढि सखि हो, गरज गरज के सुनाया।
सामी के अईसन कठिन जियरा, मास असाढ नहि आया।
सावन रिमझिम बुनवा बरिसे, पियवा भिजेला परदेस।
पिया पिया कहि रटेले कामिनि, जंगल बोलेला मोर।
भादो रइनी भयावन सखि हो, चारु ओर बरसेला धार।
चकवी त चारु ओर मोर बोले दादुर सबद सुनाईमा।”

स्पष्ट है कि इस गीत में पावस ऋतु के स्वाभाविक चित्रण से अनायास ही उस अनुभूति से सराबोर हो जाते हैं।

पेशा गीत

विभिन्न व्यवसायों के लोग अपना कार्य करते समय जो गीत गाते जाते हैं उन्हें 'पेशा गीत' कहते हैं। उदाहरणार्थ – गेहूं पीसते समय 'जाँत-पिसाई', छत की ढलाई करते समय 'थपाई' तथा छप्पर छाते समय 'छवाई' और इनके साथ ही विभिन्न व्यावसायिक कार्य करते समय 'सोहनी, रोपनी' आदि गीत गाते-गाते कार्य करते रहने का प्रचलन है।

जातीय गीत

समाज के विभिन्न क्षेत्रों की विविध जातियाँ मनोनुकूल अपने ही गीत गाती हैं, जिन्हें जातीय गीत कहते हैं। उन्हें सुनकर

अनुमान लगाया जा सकता है कि गायक - गायिका किस जाति विशेष से सम्बन्धित हैं। बिहार में समय-समय पर और विशेषकर संध्याकाल समय भोजनोपरान्त सांझापराती , झूमर, बिरहा, प्रभाती, निर्गुण, देवी-देवताओं के गीत गाने का प्रचलन है।

लोककथाएँ

वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोककथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण हैं। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं। लोकगीतों की भाँति लोककथाएँ भी हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त हैं। दादी अथवा नानी के पास बैठकर बचपन में जो कहानियाँ सुनी जाती हैं, चौपालों में इनका निर्माण कब, कहाँ कैसे और किसके द्वारा हुआ, यह बताना असंभव है।

कथाओं की प्राचीनता को ढूँढते हुए अंत में अन्वेषक ऋग्वेद के उन सूक्तों तक पहुँचकर रुक गए हैं जिनमें कथोपकथन के माध्यम से संवाद-सूक्त कहे गए हैं। उसके ब्राह्मण ग्रंथों में भी उनकी परंपरा विद्यमान है। यही क्रम उपनिषदों में भी मिलता है किंतु इन सबसे पूर्व कोई कथा कहानी थी ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रश्न उठता है जो प्रथाएँ उन सब में आई हैं उनका उद्गम कहाँ है? जहाँ उनका उद्गम होगा लोककथाओं का भी वही आरंभिक स्थान माना जाना चाहिए। पंचतंत्र की बहुत सी कथाएँ लोक-कथाओं के रूप में जनजीवन में प्रचलित हैं। किंतु यह भी सही है कि जितनी कथाएँ लोकजीवन में मिल जाती हैं उतनी पंचतंत्र में भी नहीं मिलतीं। यदि यह कहा जाए कि विष्णु शर्मा ने लोकजीवन में प्रचलित कथाओं से लाभ उठाया होगा तो कोई अनुचित न होगा। हितोपदेश, बृहदश्लोक संग्रह, बृहत्कथा मंजरी, कथा बेताल पंचविंशति आदि का मूल लोकजीवन है। जातक कथाओं को अत्यधिक प्राचीन माना जाता है। प्राकृत भाषा में भी अनेक कथाग्रंथ हैं। मूल पैशाची में लिखित बहुकथा कथा सरित्सागर, बृहत्कथा आदि का उपजीव्य बनी। संस्कृत में उसकी कुछ कथाएँ रूपांतरित हुईं। अपभ्रंश के पउमचरिअ और भवियत्त कहा भी इस क्रम में आती हैं। इस तरह लिखित रूप में वैदिक संवाद सूक्तों से प्रवाहित कथा धारा निरंतर प्रवाहित है किंतु इन सबका योग भी लोकजीवन में प्रचलित कहानियों की बराबरी तक नहीं पहुँच सकता।

हिंदी लोककथाओं में भी इस देश की संस्कृति की सकारात्मक झलक दिखाई देती है। मनुष्य सदैव सुखों की खोज में लगा रहता है। सुख लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के हैं। भारतीय परंपरा में पारलौकिक को लौकिक से अधिक ऊँचा स्थान दिया जाता है 'अंत भला तो सब भला' के अनुसार हमारी लोककथाएँ भी अक्सर सुखांत हुआ करती हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय लोककथाओं की यही मुख्य प्रवृत्ति रही। इसलिए लोककथाओं के पात्र अनेक साहसिक एवं रोमांचकारी घटनाओं से होकर अंत में सुख की प्राप्ति करते हैं। ये कथाएँ मूल रूप से मंगलकामना की भावनाएँ लेकर आती हैं। इसीलिए लोककथा कहनेवाले प्रायः कथाओं के अंत में कुछ मंगल वचन भी कहा करते हैं। जैसे - 'जिस प्रकार उनके (कथा के प्रमुख पात्र के), दिन फिरे, वैसे ही सात दुश्मन के भी दिन फिरे।' विभिन्न प्रकार के दैविक एवं प्राकृतिक प्रकोपों का भय दिखाकर श्रोताओं को धर्म तथा कर्तव्यपालन के पथ पर ले आना भी बहुत सी लोककथाओं का लक्ष्य होता है। सारी सृष्टि उस समय एक धरातल पर उतर आती है जब सभी जीव-जंतुओं की भाषा एक हो जाती है। कहीं मनुष्य पशु से बात करता है तो कहीं पशु पक्षी से। सब एक दूसरे के दुःख-सुख में समीप दिखाई पड़ते हैं। लोकगीतों की भाँति लोककथाएँ भी किसी सीमा को स्वीकार नहीं करतीं। इन कथाओं की विशेषता यह भी है कि ये मानव जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित होती हैं। अपनी विशेषताओं के कारण ही श्रुति एवं स्मृति के आधार पर जीवन प्राप्त करनेवाली ये कथाएँ युगों से चली आ रही हैं। ये कथाएँ मुख्य रूप से तीन शैलियों में कही जाती हैं। प्रथम गद्य शैली; इस प्रकार में पूरी कथा सरल एवं आंचलिक बोली में गद्य में कही जाती है। द्वितीय गद्य पद्य मय कथाएँ - इन्हें चंपू शैली की कथा कहा जा सकता है। ऐसी कथाओं में प्रायः मार्मिक स्थलों पर पद्य रचना मिलती है। तीसरे प्रकार की कथाओं में पद्य गद्य के स्थान पर एक प्रवाह सा होता है। यह प्रवाह श्रोताओं पर अच्छा असर डालता है। जनसंचार के माध्यम के सन्दर्भ में भी देखा जाए तो ये लोक गीत और कथाएँ इसके अपूर्व और सर्वथा सक्षम साधन हैं क्योंकि इनका सम्प्रेषण लोक के द्वारा और लोक के लिए होता है। लोककथाएँ कई प्रकार की होती हैं जिनमें प्रमुख है उपदेशात्मक प्रकार। हिंदी की अनेक छोटी बड़ी कथाओं में मानव कल्याण के लिए विभिन्न प्रकार के उपदेश भरे पड़े हैं। ऐसी कथाएँ प्रायः अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा देती हैं। इसलिए ऐसा आभास नहीं होता कि उनका निर्माण उपदेश के लिए ही किया गया होगा। इनके माध्यम से गृहकलह एवं सामाजिक बुराइयों से बचने के लिए प्रेरणाएँ मिलती हैं। ऐसी बहुत सी कथाएँ हैं जिनमें कर्कशा नारियों के कारण परिवार को विभिन्न प्रकार के कष्टों का भाजन होना पड़ा है। इनमें विमाताओं तथा सौतों की कथाएँ प्रधान होती हैं। इनके अतिरिक्त ऐसी भी कथाएँ मिलती हैं जिनमें मायावी स्त्रियाँ पर पुरुषों पर डोरे डालती हैं या जादू टोना किया करती हैं जिससे कथा के नायक को तथा उससे संबंध रखनेवालों को विभिन्न संघर्षों का शिकार होना पड़ता है। पुत्र द्वारा पिता की आज्ञा न मानने पर कष्ट उठाने से संबद्ध भी अनेक कथाएँ हैं किंतु, जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये सभी कथाएँ अंत में सुख एवं संयोग में समाप्त होती हैं। जब तक कथा समाप्त नहीं होती तब तक पात्रों और मुख्य रूप से नायकों को इतनी भयानक घटनाओं में फँसा देखा जाता है कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कुछ श्रोता तो वहीं कथा

कहनेवाले तथ अन्य श्रोताओं की परवाह किए बिना नायक को कष्ट देनेवाले के नाते अपशब्द भी कहने लगते हैं। उन्हें ये सारी घटनाएँ सही मालूम पड़ती हैं। इसी प्रकार सामाजिक कथाएँ, धार्मिक कथाएँ और प्रेम प्रधान कथाएँ आदि भी लोक कथाओं के प्रकार होते हैं जिनमें जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया गया है।

लोक चित्रकला

यह वह कला का प्रकार है जो बिना किसी आश्रय या प्रलोभन के स्वतन्त्र एवं सौम्य गति से वह निरंतर आगे बढ़ती गई। मनुष्य की मंगलमयी भावना की प्रतिमूर्ति इन चित्रकलाओं के माध्यम से सौन्दर्य भावना आज तक हमें आकर्षित करती हैं।

भारतीय लोक-चित्रकला की परम्परा का आरम्भ वैदिक युग से होता है। मौर्य युग तक आते आते कला के रूप अवशेषों के रूप में यह जाना जा सकता है कि उस समय का लोक-जीवन कल्पित देवी-देवताओं की अपेक्षा तथा वैदिक युग के प्राकृतिक आचार्यों की अपेक्षा प्रत्यक्ष एवं व्यवहारिक जीवन पर निष्ठा रखने वाला था। इसी कारण उस काल की लोक शैली में देवताओं की भीड़ का समावेश न होकर सामान्य जन-जीवन के दैनिक क्रिया-कलापों का वर्णन है। इस प्रकार लोक-कला भारत की कोटि-कोटि जनता के जीवन में एकप्राण होकर अतीत की स्वर्णिम बेला से हमारे उल्लास के संबंधों से जुड़ कर हमसे बंधी हुई हमारे साथ चली आ रही है। लोक कला की प्राचीन परम्परा की उपलब्धि शुंगकालीन सांची के तोरणों में अंकित लोकचित्रों में होती है जो जातक कथाओं के आधार पर बनाए गए हैं। सांची की कला की लोकप्रियता का कारण यही था और यही बात अजन्ता के भित्ति चित्रों पर भी चरितार्थ होती है। जैन शैली और काश्मीर तथा दक्षिण में उपलब्ध अपभ्रंश शैली के चित्रों में लोककला की अनुभूति व्यापक रूप में पाई जाती है। इन चित्रों में लोक जीवन का समावेश दिखाई देता है। भारतीय चित्रकला लोककला के बिना अपूर्ण है। इसे जीवित रखने में स्त्रियों की खास भूमिका रही है। व्रतों, त्योहारों, और उत्सवों पर घर के आंगनों, दीवारों, द्वारों पर भाँति भाँति की आकृतियाँ अंकित करके मंगलमय आद्यात्मिक भावनाओं के रूप में इस लोक कला की उल्लासमयी परम्पराएँ हमारे साथ आज तक जुड़ी हुई हैं। पशु पक्षियों और प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के चित्रण प्रत्येक आकृति में जीवन की कोई कहानी कोई बात कहते हैं। मांडन, अल्पना, चौकपूरना, रंगोली, सांझी आदि की विभिन्न लोक शैलियाँ लोककला की परम्परा को आज भी अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। भारतीय संस्कृति तथा लोकविश्वासों के साथ अपनी अभिन्न एकता अल्पना एक घरेलू कला के रूप में वर्षों से हमारे जन मानस में अपनी लोकप्रियता बनाए हुए है। यह हमारी संस्कृति के सुरुचिपूर्ण पक्ष को प्रकट करती है।

इस प्रकार यह लोक कला आज अपने गौरवशाली अतीत के कारण ही नहीं अपनी वर्तमान लोकप्रियता एवं उपयोगिता के कारण भी उपादेय तथा महत्वपूर्ण है। हमारे लोकजीवन में उसका जितना अधिक प्रचार प्रसार होगा उतना ही राष्ट्रीय सुख-समृद्धि और सांस्कृतिक चेतना के जागरण में उसके द्वारा सहायता हो सकती है। अप्रत्यक्ष रूप से लोक चित्रकलाएँ जनसंचार की भूमिका निभा रही हैं और राष्ट्रवादी चेतना की सी मिसाल हैं जिसमें भारत की सोंधी मिट्टी की महक के साथ सुन्दर रंगों का कौशल समाहित है।

इस प्रकार देश में विभिन्न लोक कलाएँ हैं, पर रेडियो, टीवी और फिल्मों के आ जाने से भारत के इस पारंपरिक मीडिया की तरफ लोगों का रुझान कम हुआ है परन्तु इन्हीं माध्यमों के सहारे इन लोक-कलाओं का प्रचार प्रसार और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है और जिसके लिए भरसक प्रयास भी हो रहे हैं। हिन्दी सिनेमा में ऐसे हजारों गीत हैं, जिन्हें लोकभाषा में जड़कर धुनों में पिरोया गया। 'चलत मुसाफिर मोह लिया रे पिंजरे वाली मुनिया' या फिर 'चप्पा-चप्पा चरखा चले' राजस्थान का मोरनी बागां में हो या पंजाब का गिद्दा बारी बरसी खटण गया सी जैसे लोक संगीत से आम भारतीय को परिचय कराने का श्रेय फिल्मों को ही जाता है। आज कोक-स्टूडियो जैसे मंच इन लोक गीतों को एक नए अंदाज में प्रस्तुत कर के इनका परिचय नयी पीढ़ी के साथ करवा रहे हैं जो अपने आप में प्रशंसनीय है। परम्पराओं को आज के युवा पसंद भी करें और अपनाये इसके लिए आवश्यक है कि उनके समय के अनुसार लोक कलाओं को ट्रीट करके प्रस्तुत किया जाए। अपने ही आप वे इनकी तरफ आकर्षित भी होते हैं और उन्हें समझना भी चाहते हैं।

समय बदल रहा है, लोक कलाएँ तभी जिन्दा रह सकती हैं, जब उनमें प्रयोग होते रहें और उनकी पहुँच का दायरा बढ़ता रहे। इसका एक रास्ता जनमाध्यमों से होकर जाता है। फिर हर माध्यम की अपनी सीमाएँ और विशिष्टता होती है, फिर चाहे फिल्म हो या थिएटर, संगीत हो या कलाकृति सभी अपने अपने तरीके से इन लोक कलाओं के माध्यम से स्वस्थ सन्देश का संचार कर रहे हैं। आज के दौर में जनसंचार के माध्यम ज्यादा प्रयोगधर्मी हैं और इसलिए लोक कलाओं में संचार और सम्प्रेषण की असीम क्षमताओं को समझते हुए आज देश की मूल आवश्यकता, उसकी अस्मिता की पहचान और संरक्षण सरलता से किया जा सकता है। वैश्वीकरण के इस युग में जहाँ दर्शक और उपभोक्ता में अंतर मिट रहा है वही देश की सांस्कृतिक विरासत के रूप में ये लोक कलाएँ अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इसलिए परम्परागत लोक माध्यमों को जनसंचार के माध्यमों का जितना अधिक सहारा मिलेगा उतनी तेजी से राष्ट्रवादी अवधारणा का प्रत्यक्ष प्रतिफलन प्राप्त होगा।

प्रसाद के नाटकों में अभिव्यक्त राष्ट्रवादी चेतना

डॉ. भावना शुक्ल
कालिंदी महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

आधुनिक हिंदी-साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों में जयशंकर प्रसाद अग्रगण्य है, मूर्धन्य कवि होने के साथ प्रसादजी ने गद्य में भी लेखनी चलाकर नाटकों के क्षेत्र में युगांतर स्थापित कर दिया। अभी तक जो भी नाटक लिखे गये उनमें राष्ट्रीयता तो थी किन्तु प्रसाद जी के नाटकों में अधिक परिमाण में है। सबसे पहले हिंदी साहित्य में भारतेन्दु जी ने और बाद में प्रसाद जी ने नवीन प्रयोग किये। उन्होंने राष्ट्रीयता को नाटक का मुख्य तत्व मानते हुए भारतीय इतिहास के गौरवमय अतीत से कथानक लेकर नाटकों का प्रणयन किया जो हर दृष्टि से अदभुत है।

राष्ट्र एक ऐसी चेतना है जो मनुष्य में इच्छा शक्ति और संवेदना उत्पन्न होती है। चेतना अवलोकन ही नहीं उनकी परख तथा मूल्यांकन भी करती है। राष्ट्रीयता के निर्माण में मुख्य रूप से भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता विद्यमान रहती है और इसका स्थूल और सुदृढ़ आधार देश की भूमि ही है। हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का जो स्वरूप हमारे सामने है। वह आधुनिक युग की देन है। राष्ट्रीय चेतना मनुष्य के मन का परिष्कार करती है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में प्रेम-भावना के साथ-साथ अतीत के गौरवगान द्वारा देशवासियों के प्रति प्रेम उत्पन्न करके लगातार संघर्ष की भूमिका बाँध दी है। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध गीत 'अरुण यह मधुमय देश हमारा जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा' में देश के प्रति आत्मभाव को ही अभिव्यक्ति मिली है।

राष्ट्रीयता का एक पक्ष है अपने अतीत की स्मृति। अतीत की स्मृति आत्मस्मृति है। आत्मस्मरण जीवन है और आत्मविस्मृति मृत्यु। निर्मल वर्मा ठीक ही लिखते हैं कि कोई भी जाति संकट की घड़ी में अपने अतीत, अपनी जड़ों को टटोलती है। संकट की घड़ी आत्ममंथन की घड़ी है और सही आत्ममंथन हमेशा अतीत में लिये गये फैसलों के आसपास होता है।... जिस तरह एक व्यक्ति अपनी स्मृति में दुनिया को परखता है, उसी तरह एक जाति अपनी परम्परा की आंखों से यथार्थ को छानती है। जो लोग अतीत की स्मृति या अतीत के मूल्यांकन को अतीत के प्रति सम्मोहन का दर्जा देते हैं, निर्मल वर्मा उसका प्रत्याख्यान करते हैं- 'अतीत का बोध अतीत के प्रति सम्मोहन से बहुत भिन्न है। विगत के प्रति सम्मोहन उसी समय होता है जब हम परम्परा से विगलित हो जाते हैं... परम्परा का रिश्ता स्मृति से है सम्मोहन से नहीं।' जयशंकर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त और स्कंदगुप्त नाटक में स्वर्णिम अतीत को वर्तमान के लिए प्रेरणाप्रद बताया है। प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियां गौरवपूर्ण अतीत की याद दिलाती हैं और वर्तमान में प्रेरणा भी देती हैं-

वही है रक्त वही है देह वही साहस वैसा ही ज्ञान।
वही है शांति वही है शक्ति वही हम दिव्य आर्य संतान॥
जियें तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

अपनी संस्कृति के प्रति गौरव बोध वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता का हिस्सा है और राष्ट्रीय अस्मिता राष्ट्रबोध का अभिन्न हिस्सा है।

जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध गीत 'अरुण यह मधुमय देश हमारा जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा' में देश के प्रति आत्मभाव को ही अभिव्यक्ति मिली है। इसी प्रकार -

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़- प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो!
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के- रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य सिंधु में, सुवाड़वाग्नि से जलो,

प्रवीर हो जयी बनो - बढ़े चलो, बढ़े चलो!

कवि ने स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जगाने की प्रेरणा दी।

वैदिक काल से ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग होता रहा है। राष्ट्र की परिभाषायें समय-समय पर बदलती रही हैं। किन्तु राष्ट्र और राष्ट्रीयता का भाव गुलामी के दौरान अधिक पनपा। जो साहित्य के माध्यम से हमारे समक्ष आया जिसके द्वारा राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ।

साहित्य का मनुष्य से शाश्वत संबंध है। साहित्य सामुदायिक विकास में सहायक होता है और सामुदायिक भावना राष्ट्रीय चेतना का अंग है। समाज का राष्ट्र से बहुत गहरा और सीधा संबंध है। संस्कारित समाज की अपनी एक विशिष्ट जीवन शैली होती है। जिसका संबंध सीधा राष्ट्र से होता है जो इस रूप में सीधे समाज को प्रभावित करती है। प्रसाद जी ने देशवासियों में आत्मगौरव और राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए भारत के स्वर्णिम अतीत को नाटकों का विषय बनाया। प्रसाद जी ने एक दर्जन नाटक लिखकर हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नाग यज्ञ', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूँट', 'कामना', 'चन्द्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी', जैसे नाटक लिखकर हिंदी साहित्य का गौरव बढ़ाया। इनके नाटकों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक चेतना, इतिहास और कल्पना का सुंदर सामंजस्य दार्शनिक गंभीरता और साथ ही काव्यात्मक सरसता, वीरता और साहस व प्रेम का रोमानी संघर्षपूर्ण वातावरण, देशकाल का सजीव चित्रण आदि विशेषतायें इनके नाटकों में दृष्टव्य होती हैं।

प्रसाद जी के नाटकों की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि 'प्रसाद की ट्रेजडी की भावना, उनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना, उनके महान कोमल चरित्र, उनके विराट मधुर दृश्य, उनका काव्य स्पर्श हिंदी में तो अद्वितीय है ही, अन्य भाषाओं और नाटकों की तुलना में भी उसकी ज्योति मलिन नहीं पड़ सकती है।' बच्चन सिंह की धारणा है कि प्रसाद जी का इतिहास की अप्रतिहत परिवर्तनशीलता में अटूट विश्वास था। अपनी मर्मस्पर्शनी प्रतिभा द्वारा प्रसाद जी ने समझ लिया कि अंतर्विरोधी राजकीय सत्ता, सामन्तीय परिपाटी एवं सम्राज्यवाद की दीवारें टूट रही हैं। नवीन मानवतावादी भावना उग रही है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों की अन्य विशेषताओं के साथ उनके नाटकों में अपने युग की समस्या का प्रतिबिम्ब भी है। प्रसाद जी की राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में बच्चन सिंह जी कहते हैं कि इनकी राष्ट्रीयता राजाओं और सरदारों तक सीमित नहीं है, वह ऐसी राष्ट्रव्यापी चेतना है जो देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने में समाहित कर लेती है। दूसरी, इनकी राष्ट्रीयता में विश्वमैत्री समन्वित है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर मानव मैत्री का उद्घोष हुआ है।

अतः हम कह सकते हैं कि भारतेंदु युग में जो नाटक रूप था, प्रसाद ने उसे परिष्कृत और प्रौढ़ता प्रदान की, प्रसाद के नाटकों में जो भावुकता, जो राष्ट्रीयता का पक्ष था और जो ऐतिहासिक परिवेश का जो जीवंत और व्यवस्थित निरूपण रहा वह प्रसादोत्तर सृजन में भी रहा। अध्येताओं का मत है कि प्रसाद के बाद जो नाटककार हुए उन पर प्रसाद जी का प्रभाव भिन्न भिन्न रूप में परिलक्षित होता है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों के द्वारा भारत के गौरवशाली युगों के सजीव प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, जिससे कि भारतवासियों में आत्मगौरव की भावना का संचार हो सके।

“जगो हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।”

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में नारियों की सहभागिता सुनिश्चित करने और राजनीतिक सक्रियता लाने हेतु महात्मा गांधी की भांति नाटककार जयशंकर प्रसाद ने यह स्पष्ट किया है कि नारियों को घर की चार दीवारी से बाहर लाना आवश्यक है। उन्होंने अपने नाटकों में आग से खेलने वाली राजनीतिक सूझबूझ से सम्पन्न अनेक नारियों का चित्रण किया है। चन्द्रगुप्त नाटक की 'अलका' वीर क्षत्राणी बनकर अपने स्वतंत्र नारी व्यक्तित्व का परिचय देती हैं। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के साथ मिलकर देश की रक्षा के लिये वह नटी का रूप धारण करती हैं, पर्वतेश्वर के बंदीगृह में चाणक्य से संकेत पाकर वह पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनने की राजनीति खेलती हैं।

नाटककार प्रसाद के नाटकों का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना जागृत करना नारी अस्मिता को स्थापित करना और राष्ट्रीय भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाना रहा है। उन्होंने पारंपरिक मान्यताओं से पृथक राष्ट्रवादी सिद्धांतों की व्याख्या की हैं। नाटकों के नारी पात्रों के माध्यम से उन्होंने व्यापक रूप में राष्ट्रीय चेतना का संदेश दिया है। उनके सभी प्रमुख नाटकों में नारी के गौरवमय राष्ट्रीय स्वरूप के भव्य दर्शन होते हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक की नारी पात्र 'अलका' सिल्यूकस के समक्ष अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय देती हुई कहती है कि 'मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं मेरी नदियाँ और जंगल हैं, इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं से बने हैं। 'स्कंदगुप्त' की जयमाला 'अजातशत्रु' की मल्लिका, चन्द्रगुप्त की मालविका, स्कंदगुप्त की रामा, देवसेना आदि में राष्ट्रीयता की भावना नस-नस में व्याप्त है। जातीय गौरव, राष्ट्रीय प्रेम और विश्व कल्याण की कामना को स्थापित करने में प्रसाद के नाटकों की नारियाँ उल्लेखनीय हैं।

अतः कह सकते हैं कि प्रसाद के नाटकों में आदर्श और मर्यादा के साथ-साथ देश भक्ति की डोर पकड़कर गतिमान होने वाली गौण नारी पात्रों में भी आम जनमानस को प्रभावित करने की विशेष क्षमता है। भारतेंदु और प्रसाद युगीन मुख्य नाटकाकारों

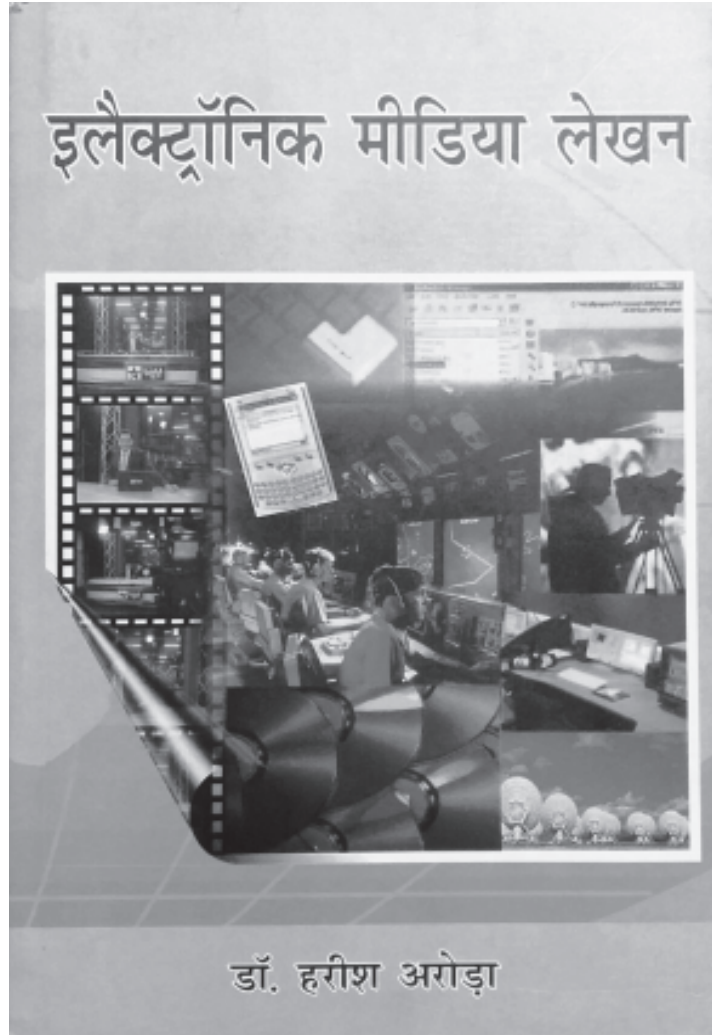
ने देशवासियों को प्रेरित करके नवजागरण के लिए जगाया। अपने “नाटकों” के पात्रों एवं संवादों से जनता में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। प्रायः इन नाटकों चरित्र देश की आन, बान और शान की खातिर अपने प्राणों का बलिदान देते हुए नजर आते हैं। व्यक्ति बड़ा नहीं है, महान नहीं है बल्कि राष्ट्र महान है, का संदेश देते हुए इनके नाटकों में अतीत गौरव एवं व्यंग्य के चित्रण में राष्ट्रीय चेतना एवं देश भक्ति का स्वर प्रधान हैं।

अन्ततोगत्वा हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रसादजी तथा उनके समकालीन नाटककारों ने जिस राष्ट्रीय चेतना को अपनी कृतियों में समाहित और प्रकाशित किया है वह आदि कवि बाल्मीकि के जननी जन्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरियसी.. का ही विस्तार है।

सन्दर्भ

1. साहित्यिक निबंध, डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त पृष्ठ 737-738
2. समीक्षात्मक निबंध, हरिचरण शर्मा, पृष्ठ 297-298
3. शोधगंगा, भारतेंदु और प्रसाद युगीन सहोटी में राष्ट्रीय चेतना
4. भारत के शक्ति के स्रोत
5. वृहत निबंध साहित्य
6. हिन्दी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'के.के. पब्लिकेशन्स' से प्रकाशित पुस्तक



विदेशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में राष्ट्रबोध

डॉ. रुचिरा ढींगरा

एसोसिएट प्रोफेसर

शिवाजी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

‘यदि विचारों को छुपाने के लिए शब्दों का अविष्कार हुआ है तो समाचार पत्र बुरे अविष्कार पर आधारित एक बड़ी उपलब्धि है।’ – थारो

वैश्वीकरण से निरंतर विस्तृत, त्वरित एवं घटना संकुल होते जगत को उसकी संपूर्णता और समग्रता में जानने, रेखांकित करने वाला एकमात्र माध्यम समाचार पत्र है। पाठकीय वृत्ति को तथा जिज्ञासा का शमन करने, आपाधापी में फंसे व्यक्ति को उसकी सुरक्षा की प्रतीति कराने के कारण समाचारों के विविध रूपों का पुलिंदा समाचार पत्र जीवन की अपरिहार्यता बन गया है तथापि उसे अपना आधुनिक रूप अकस्मात् नहीं मिला। एक मिशन, जीविकोपार्जन के साधन तथा अंततः एक व्यवस्थित पाठ्यक्रम से युक्त, स्वतंत्र कलात्मक विषय के रूप में निरंतर अपना स्वरूप आकार एवं तेवर बदलते हुए इसने विकास के विभिन्न सोपानों पर ऊर्ध्वमुखी यात्रा की है। पत्रकारों के अटूट मनोबल, राष्ट्रबोध तथा लगन ने पत्रकारिता को निरंतर विकासमान बनाया है। कभी शासकीय कोप, कागज की कमी तथा पत्रकारों की स्पष्टवादिता और निर्भीकता के परिणाम स्वरूप पत्रों को प्रतिबंधित किया जाना तथा पत्रकारों को कारागार में अमानुषिक मानसिक पीड़ा पहुंचाना आदि व्यवधान भी समाचारपत्रों के विकास में आड़े आते रहे। भारतीय पत्रकारिता का प्रेरणास्त्रोत विदेशों में पत्रकारिता रही है। जिस समय छापेखाने का अविष्कार मात्र एक सुखद घटना थी रोम के निस्वार्थी, परिश्रमी पत्रकारों द्वारा हस्तलिखित सूचनाओं से जनता को अवगत कराया जा रहा था। पत्थरों पर उल्लिखित घोषणाएं, मत मतांतरों से संबंधित गुटके, जनस्थानों पर टांगी गई सूचना पट्टियों में मेलों और दुकानों पर उपलब्ध समाचार पर्चियों द्वारा भी युद्ध की घोषणाएं, दुर्घटनाओं की सूचनाएं तथा राज दरबारों की गुप्त सूचनाओं को उजागर करने के कारण यह अत्यंत लोकप्रिय भी थी।

जूलियस सीजर ने शासनारूढ़ होने पर ‘एक्टा डार्यना’, ‘एक्टा सिनेटस’ तथा ‘एक्टा पब्लिका’ समाचार बुलेटिनो का प्रकाशन कराया जो क्रमशः सरकारी घोषणाओं, विधेयकों तथा रोमन सीनेट की घटनाओं तथा सरकार की वित्तीय सूचनाओं और सामान्य जन सूचनाओं से संबद्ध होते थे। इन के माध्यम से सरकार विरोधी नीतियों को प्रतिबंधित करने में अपूर्व सहायता मिली। 17 वीं शताब्दी के प्रथमांश में जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, नीदरलैंड तथा इटली में खुले टाइपों द्वारा पत्रको, समाचार पुस्तिकाओं तथा नियमित रूप से प्रकाशित होने वाले पत्रों का प्रकाशन और उन्हें अधिकाधिक अधिक व्यक्तियों तक प्रसारित करने के प्रयास प्रारंभ हुए। बर्लिन से सर्वाधिक पत्रों का प्रकाशन होता था। प्रथम दोनों महा युद्ध के समय विजयी देशों ने बर्लिन की प्रेस शक्ति का पूरा लाभ उठाया। 1446 में स्थापित तथा 1453 में जनवादी गणतंत्र द्वारा राष्ट्रीयकृत संसद समिति ‘अलजमीनर डयूश्चर नारुराइख्टेनडींस्ट’ (ए.डी.एन.) वहां अब भी लोकप्रिय है। इंग्लैंड में 1476 में छापेखानों का प्रारंभ हो चुका था किंतु सामयिक राजनीतिक और धार्मिक अशांति के कारण सरकार ने उन पर अपना नियंत्रण बनाए रखा था। ऐसे में हस्त लिखित पत्र ‘सिडनी न्यूज’ तथा अनियमित कालीन पत्र ‘न्यू न्यूज’ की मुख्य रूप से प्रचलित थे। एम्स्टर्डम और फ्रैंकफर्ट से प्रकाशित पत्रों को पुनः प्रकाशित किया जाता था किंतु उनकी भाषा शैली तुकांत, काव्यपरक एवं भदेस होती थी। 1620 के अंतिम चरण में बोर्ने, थामस आर्चर (डच न्यूज शीट्स 1621) तथा नाथानियल बटर पत्रकारों ने पत्रकारिता की मुहिम को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। आर्चर लंदन से ‘न्यूज शीट्स’ प्रकाशित करने के लिए दंडित किया गया तथा उत्तेजक समाचारों हत्या, आगजनी के प्रकाशन के कारण समाचार लंपट नाम से कुख्यात बटर भी गंभीर लेखन करने वालों की आलोचना का शिकार हुआ। कालांतर में ‘न्यूज फ्रॉम स्पेन’ (1611) तथा ‘वीकली न्यूज’ (1622) पत्रों के प्रकाशन का उनका प्रयास असफल रहा। यह समय ब्रिटेन के राज्य भक्तों और संसद सदस्यों के मध्य तीव्र मतभेद को रेखांकित करता है किंतु इससे पत्रकारिता के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बना। ‘मरक्वूसिस ओलिकस’ राज भक्तों का पक्षधर पत्र था जिसके साथ अन्य सभी पत्र भी राज अनुज्ञा के लागू होने पर कुछ समय के लिए बंद हो गए। हेनरी मुडेन तथा रोजर इस्ट्रेनज ने ‘ऑक्सफोर्ड गजट’ का प्रकाशन, पत्र निकालने की आज्ञा प्राप्त होने के बाद निकाला जो कालांतर में लंदन से प्रकाशित होने पर ‘लंदन गजट’ कहलाया और सरकार के मुखपत्र के रूप में विख्यात हुआ।

18वीं शताब्दी के प्रथम चरण में डंपो,स्विफ्ट, फील्डिंग, जानसन,एडीसन,स्टील आदि साहित्यकारों के जुड़ने के कारण पत्रकारिता को नई दिशा मिली। टैटलर (1709), स्पैक्टेटर (1711), लंदन डेली एडवाइजर (1726), मॉर्निंग क्रॉनिकल (1769) मॉर्निंग पोस्ट (1772) डेली न्यूज (1846) डेली टेलीग्राफ (1855) डेली स्टैन्डर्ड (1857) इस समय के उल्लेखनीय पत्र थे। यद्यपि प्रेस ने दीर्घ संघर्षोपरांत स्वाधीनता प्राप्त कर ली किंतु द्वितीय महायुद्धोपरांत, कागज के संकट से उसका अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा था। प्रादेशिक पत्रकारिता का प्रारंभ होने पर उसकी गति में अपेक्षित त्वरा आई। इस समय लिवरल दल के पक्षधर पत्रों 'मैनचेस्टर गार्जियन (साप्ताहिक) तथा न्यूज ऑफ द वर्ल्ड (रविवारीय) अधिक लोकप्रिय हुए। 1977 में रॉयल कमीशन की स्थापना पत्रकारों के आवांछनीय व्यवहार को रोकने, समाचार पत्रों के अधिकारों, स्वामित्व और व्यवस्था को निश्चित करने के उद्देश्य से की गई। इस कालावधि में पत्रकारों ने अपने तीव्र राष्ट्रबोध के कारण फ्रांसीसी सम्राट के भ्रष्ट आचरण तथा गौरांग महाप्रभुओ द्वारा बंदियों पर ढाए जाने वाले अमानुषिक अत्याचारों का निर्भीक खुलासा किया जिससे क्षुब्ध सरकार द्वारा अमेरिकी पत्रों के प्रकाशन को प्रतिबंधित कर दिया गया। बोस्टन से प्रकाशित गजट ब्रिटिश विरोधी नीति का प्रचारक और राष्ट्रभक्ति से आपूर्ण पत्र था। 1765 के स्टाम्प एक्ट ने अंग्रेजों के विरुद्ध आक्रोश को और भड़काया तथा पत्रों में युद्ध और स्वाधीनता संबंधी सामग्री का निर्द्वंद्व प्रकाशन होने लगा। व्यवसायिक सूचनाओं का प्रसारण भी इस समय होने लगा था।

1830 -1835 की कालावधि में अमेरिका में आधुनिक समाचार पत्र की अवधारणा विकसित हुई।राज्यों के मध्य होने वाले युद्धों ने अमेरिकी पत्रकारिता को परिपक्वता प्रदान की। 'वर्ल्ड पत्र' के स्वामी पुलिट्जर तथा 'न्यूयॉर्क जनरल' के स्वामी के मध्य लंबे चले विवाद ने पीत पत्रकारिता को जन्म दिया। पत्रकारों का ध्यान सुसज्जा के प्रति भी जागृत हुआ। विभिन्न शहरों से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई। पत्र प्रकाशन जीविकोपार्जन का माध्यम बना तथा उसकी प्रतिष्ठा एक स्वतंत्र कलात्मक विषय के रूप में होने लगी जिसके लिए विधिवत शिक्षा और प्रशिक्षण अनिवार्य माने गए। विभिन्न व्यवसायिक संस्थानों अमेरिकन न्यूज पेपर एसोसिएशन (1887) अमेरिकन सोसायटी ऑफ न्यूजपेपर एडिटर (1922) स्थापित की गई। संपादकीय विभाग से जुड़े कर्मचारियों ने अपनी यूनियन बनाई तथा विभिन्न पुरस्कारों तथा प्रतिष्ठानों की नियोजना द्वारा पत्रकारिता के स्तर को उन्नत बनाने के प्रयास होने लगे ईस्ट इंडिया कंपनी के गौरांग महाप्रभुओ को अपनी किसी भी प्रकार की आलोचना सह्य नहीं थी। 1780 में जेम्स आगस्टस हिक्की बंगाल गजट में कंपनी के प्रशासन और भारत में नियुक्त वायसरायों की भ्रष्टता का खुलासा करने के आरोप में घिरे जिससे उनके पत्र को प्रतिबंधित कर उन्हें जेल में डाल दिया गया। वस्तुतः हिक्की का राष्ट्रबोध स्तुत्य था। इसके समान ही जेम्स सिल्क बकिंघम 'केलकट्टा जनरल' में अपनी भंडाफोड़ नीति के कारण शासकों के कोपभाजन बने।

दक्षिण-पूर्व एशिया, दक्षिणी अफ्रीका, यूरोप, अमेरिका, कनाडा, अटलांटिक महासागर आदि के पत्रकारों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं जन जीवन को उसकी समग्रता में रूपायित करने के लिए अंग्रेजी के साथ अतिरिक्त हिंदी भाषा का भी प्रयोग किया। वहां इंडोलॉजी अथवा भारत विद्या का विधिवत प्रशिक्षण दिया जाता है। वहां हिंदी के पढ़ने वाले शताधिक विद्यार्थी भी हैं। प्रवासी भारतीयों द्वारा अवधि और भोजपुरी के अतिरिक्त हिंदी भी जन भाषा के रूप में अपनाई गई। मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद, ब्रिटिश, गुयाना आदि में हिंदी पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हो रहा है। विदेशों में हिंदी पत्रकारिता भी शताधिक वर्ष की हो चुकी है। हिंदुस्तान (1883 से 85) हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी भाषा के आधार पर लंदन से प्रकाशित हुआ था पर 1885 में यह कालाकांकर से साप्ताहिक और 1887 में दैनिक पत्र के रूप में प्रकाशित होने लगा। अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों ने स्वतंत्रता संग्राम के समय जन जागरण के लिए हिंदी पत्रों का प्रकाशन किया। श्री मदन जोत द्वारा डरबन से संपादित इंडियन ओपीनियन (1904) पत्र कालांतर में गांधी जी के निर्देशन में फिनिक्स से निकलने लगा। श्री भवानी दयाल सन्यासी का धर्मवीर (1912) सप्ताहिक तथा हिंदी (1902-05) भारतीयता के विकास में विशेष उत्प्रेरक सिद्ध हुआ। सूरीनाम के प्रवासी भारतीयों ने प्रकाश, विकास तथा शांति दूत साप्ताहिक पत्रों, त्रिनिदाद से ज्योति मासिक और कोहिनूर दैनिक पत्र निकाले। फीजी से चंद्रदेवी सिंह ने फीजी समाचार, कमला प्रसाद मिश्र ने जय फीजी, श्री विवेकानंद शर्मा ने शांति दूत तथा श्री राघव आनंद शर्मा ने जागृति पत्र प्रकाशित किए। मॉरीशस के पोर्ट लुई से प्रकाशित जनता आर्य समाज का मुख्य पत्र आर्योदय (सप्ताहिक), कांग्रेस, हिंदू धर्म (पाक्षिक), जमाना, दर्पण, अनुराग तथा महाशिवरात्रि भी आर्य समाज से जुड़े उल्लेखनीय हिंदी पत्र हैं।

इंग्लैंड में हिंदी पत्रों का प्रचलन सर्वाधिक हुआ। श्री धर्मद्वैत गौतम द्वारा संपादित हिंदी पत्रिका प्रवासियों (त्रैमासिक) श्री जगदीश कौशल द्वारा लंदन से प्रकाशित अमरदीप (संस्थाधारित पत्र) कॉमन वेल्थ ऑफ नेशंस पेरिस में प्रकाशित, यूनेस्को कूरियर, जापान के नोशयो तनाका द्वारा संपादित सर्वोदय अन्य संस्थाधारित पत्र है। नेपाल, बर्मा, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश से भी अनेक हिंदी पत्र प्रकाशित हुए। प्राचीन प्रकाश, जागृति, ब्रह्मभूमि बर्मा से, नेपाल दैनिक नेपाल से, हरि कृष्ण प्रेमी द्वारा लाहौर से संपादित भारती, विश्व बंधु आदि प्रकाशित हुए। इसके विपरीत अमेरिका, कनाडा में प्रवासी भारतीयों की पर्याप्त संख्या होते हुए भी वहां के निवासियों की विशिष्ट मानसिकता तथा सरकारी उदासीनता के कारण हिंदी पत्र पत्रिकाओं का अभाव मिलता है। गांधी जी से प्रेरित-प्रभावित डॉ. मणिलाल ने मारिशस से गुजराती में हिंदुस्तानी समाचार प्रकाशित किया जो कालांतर

में हिंदी में निकलने लगा। विवेच्य पत्र में बंधुआ भारतीय श्रमिकों पर होने वाले अत्याचारों का खुलासा हुआ है। मणिलाल के बाद श्री राम स्वामी फिर श्री राम अवध शर्मा एवं पंडित आत्माराम ने इसे आगे बढ़ाया। उस समय के पत्रों में राष्ट्रबोध का चरमोत्कर्ष मिलता है। भारत में आपातकाल की स्थिति तथा भारतीय राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री एवं भारतीय तिरंगे के चित्र इनमें मिलते हैं। ये साहित्यिक दृष्टि से भी उच्च कोटि के हैं। इनमें विदेशों में भारत की विशिष्ट छवि प्रस्तुत करने का प्रयास स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

विदेशी हिंदी पत्रकारिता अपने राष्ट्रबोध से निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर है। भारत में पत्रकारिता का विकास विदेशी प्रभाव स्वरूप हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक अंग्रेज शासकों तथा परतंत्र जनता के मध्य अनवरत संघर्ष होता रहा अतः पत्र-पत्रिकाओं में जन जागरण का महत्व दृष्टिगत होता है। वे स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के इतिहास की धरोहर हैं। उस समय भी पत्रकारिता एक मिशन थी। पत्रकार अभाव और ऋण में डूबे, बिना विचलित हुए, प्रकाशन कार्य में लगे रहे। उदंत मार्तंड (1816), मतवाला ऐसे ही पत्र थे। पंडित मदन मोहन मालवीय, बालमुकुंद गुप्त, तिलक, भारतेन्दु, राजा राममोहन राय, अंबिकादत्त व्यास, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मुंशी प्रेमचंद, माधवराव सप्रे, बनारसी दास चतुर्वेदी, निराला, रामनरेश त्रिपाठी, यशपाल प्रभृति साहित्यकारों ने अपनी कृतियों और पत्रों द्वारा जनमानस को झकझोरने का प्रयास किया। पत्रकारिता तक सीमित न रहकर उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाई। बंगदूत, बनारस अखबार, सुधाकर, हरिश्चंद्र मैगजीन, हिंदी प्रदीप, भारत मित्र, हिंदुस्थान, अभ्युदय, प्रताप, अर्जुन, हंस, जागरण, विशाल भारत, मर्यादा, कर्मयोगी, प्रभा व माधुरी आदि शताधिक पत्र पत्रिकाओं ने ऐसे इतिहास की रचना की जो दमन के साथ उग्र से उग्र होता गया। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने पत्र पत्रिकाओं पर अंकुश लगाने के लिए काले कानून बनाए, दमन के विभिन्न नए-नए हथकंडे अपनाए किंतु हिंदी पत्रकारिता ने मिशन के रूप में अपने दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया। संचार और आवागमन के साधनों से अछूते सुदूर क्षेत्रों तक स्वतंत्रता की चेतना जगाई। रोलेट एक्ट का विरोध, नमक आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन को जन आंदोलन का रूप देकर देश के सुदूर क्षेत्रों तक पहुंचाया। गांधी जी के यंग इंडिया तथा सत्याग्रह पत्र इस दृष्टि से उल्लेखनीय रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संघर्ष जनित तनाव समाप्त होने के साथ नवनिर्माण का दौर शुरू हुआ। पत्रकारों की नई पीढ़ी उभरी। नवभारत टाइम्स, जागरण, स्वतंत्र भारत, नईदुनिया, पंजाब केसरी, नवज्योति आदि समाचारपत्रों ने देश के सर्वांगीण विकास का धरातल निर्मित करने का दायित्व निभाया। आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति और आर्थिक वैषम्य को दूर करने के लिए पत्रकार संघर्षरत हुए। पत्रकारिता मिशन के स्थान पर जीविकोपार्जन का साधन हो गई। हिंदी दैनिकों की प्रसार संख्या सर्वाधिक है और उनकी संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है जिसका कारण पाठकों की संख्या में वृद्धि है। हिंदी भाषी राज्यों के प्रत्येक जिलों, तहसीलों से पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। इनकी लोकप्रियता के अलग-अलग आधार हैं। कोई पत्रिका साहित्यिक दृष्टि से लोकप्रिय है तो अन्य व्यापार या डाइजेस्ट के रूप में। दैनिक समाचार पत्रों में बहुविध सामग्री तथा बहुविध क्षेत्रों की कवरेज होती है। कुछ पत्र विषय वस्तु की दृष्टि से, कुछ पठनीयता, गेटअप के कारण, तो कुछ विज्ञापनों के आधिक्य के कारण लोकप्रिय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की पत्रकारिता में पहले जैसा उत्साह अटूट कर्मठता नहीं मिलती। अब छद्म पत्रकार वास्तविक पत्रकारों पर पूरी तरह हावी हो गया है। पत्रकारिता की समझ ना होने पर भी वे उस पर स्वामित्व स्थापित किए हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास ने भी पत्रकारिता की धार को कुंद किया है। वस्तुतः प्रिंट मीडिया आम आदमी से जुड़ा है, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया उस से एकदम अलग है। लोकतंत्र के प्रमुख चार स्तंभ-विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस की उपेक्षा संभव नहीं है। निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी, शिक्षा, आवास, पेयजल की समस्या एक चुनौती बन कर खड़ी है जिनसे निपटने के लिए गैर सरकारी स्वयंसेवी संगठनों की सक्रिय भागीदारी अपेक्षित है। समाज में अधिकारों-कर्तव्यों के प्रति जागरूकता फैलाने का कार्य पत्रकारिता ही कर सकती है। हिंदी में श्रेष्ठ पत्रिकाओं का अभाव है। हिंदुस्तान, ज्ञानोदय, सारिका, नई कहानी, रविवार का प्रकाशन बंद हो चुका है। कुछ साहित्यिक पत्रिकाएं अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। सरकारी राजनीतिक दलों की भोंपू बनी पत्र पत्रिकाओं को संरक्षण प्राप्त है किन्तु निष्पक्ष, विरोधी तेवर अपनाने वाले पत्र-पत्रिकाओं को उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। आवश्यकता है पत्रकारिता को पुनः मिशन का रूप प्रदान करने, समयानुकूल व्यवस्था देने की, तभी वह सार्थक हो सकेगी।

सबसे पहले देश लिखेंगे

डॉ आलोक दीपक

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

लंका विजय के बाद मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने लक्ष्मण से कहा 'अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। अर्थात् यद्यपि लंका सोने की है लेकिन मुझे मेरी माँ और जन्मभूमि स्वर्ग से भी प्यारी है! भारतीय संस्कृति में राष्ट्रवाद किसी काल खंड की सीमा से नहीं निकला है बल्कि जब से राष्ट्र की संकल्पना का आभास होता है तब से उस संकल्पना की आत्मा बनकर राष्ट्रधर्म उसकी धमनी और शिरा में प्रवाहित हो रहा है। व्यक्ति, परिवार, समाज और फिर देश की नब्ज में रचा बसा यह एक एहसास है जो उसके आत्मबोध को जगाता है और उसकी पहचान कराता है। कोई भी वाद किसी दूसरे वाद की प्रतिक्रिया में ही चलता है पर जो अपने अंदर ही है वह अपने धर्म की मौलिकता का अस्तित्व है जिसके मूल में अपने परिवार समाज और देश के प्रति प्रेम होता है जिसकी पहचान राष्ट्रधर्म के रूप में होनी चाहिये। हम राष्ट्रवादी हैं किसी देशवासी को यह कहने की आवश्यकता ही क्या है? तब जबकि उसका जीवन ही राष्ट्रधर्मी हो।

किसी देश के संदर्भ में पत्रकारिता अर्थात् समाचार या सूचना देने का जो एक माध्यम है! क्या राष्ट्रवादी हो? या ऐसे किसी प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं! वह तो हमारी मौलिकता होनी चाहिये जो हमारी जन्मभूमि के संस्कार से सिंचित हुयी है। हमारे यहाँ संयुक्त परिवार की अवधारणा रही है जिसमें हम मिल कर एक साथ रहते हैं। चलिये हम यह मान लेते हैं कि पारिवारिक सदस्यों में कुछ विवाद है या कुछ घटित घटनाएँ हैं जिसकी सूचना परिवार के मुखिया के पास पहुँचती है। अब यह कहना कि यह सूचना परिवारवादी हो शायद अपने आप में हास्यास्पद बात होगी क्योंकि हमारे अवचेतन में ही पारिवारिक भावना सन्निहित है जिसे बताने की जरूरत नहीं है। वहाँ कोई भी निर्णय होगा वह परिवार से अलग सोच रख कर या जाकर हो ही नहीं सकता क्योंकि हमारी पारिवारिक सोच उसकी आत्मा से जुड़ी है जिसके प्रति हमारा सबसे पहला दायित्व और धर्म बनता है.... बस! यही बात तो राष्ट्र के बारे में भी सही उतरती है जो हमारा राष्ट्रवाद नहीं बल्कि हमारा राष्ट्र के प्रति दायित्व और धर्म है। अब जब अपने राष्ट्रीय सोच को अलग रख कर हम कोई काम कर ही नहीं सकते तब पत्रकारिता को राष्ट्र हित से अलग रख कर पत्रकारिता करने का कोई प्रश्न ही कहाँ बनता है? पत्रकार होने की मूल शर्त उसकी निष्पक्षता होती है जिसके मूल में सबसे पहले उसका राष्ट्र है।

मैं मानता हूँ कि उसी निष्पक्षता में उसका राष्ट्रधर्मी स्वरूप उसका पहला पत्रकार धर्म होता है इसलिये राष्ट्रवादी पत्रकारिता का प्रश्न तर्कसंगत नहीं लगता तब जब कि यह स्पष्ट है कि वह पत्रकार का पहला धर्म है, पर आज राष्ट्रवाद की चर्चा बड़े जोर शोर से चल रही है। जो बात देश की धड़कन हो उस पर विवाद, चर्चा और प्रश्न? ऐसी कौन सी देश में भ्रामक स्थिति आ गयी है कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर चर्चा की आवश्यकता आन पड़ी है? अब ऐसे में चर्चा तो करनी ही होगी! भ्रम तो दूर करना ही होगा! अब प्रश्न यह उठता है कि देश में वह कौन सी देश विरोधी बयार बह रही है कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता प्रासंगिक हो उठी है! सवाल यह भी है कि आज राष्ट्रवादी पत्रकारिता की पुकार क्यों मच पड़ी है? शायद इसीलिये की आज की पत्रकारिता अवसर परस्त, राजनीति परस्त और व्यावसायिक हो चली है? क्या बस! सूचना दे देना पत्रकारों का दायित्व भर रह गया है? क्या देश विरोधी मुद्दों पर बहस करवा देना ही उनका काम रह गया है? आज देश हित में ऐसे सवालों का जवाब जरूरी हो जाता है। राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि ही ऐसी संकल्पना को लेकर बनी जिसमें किसी भी देश, समुदाय के नागरिक अपनी मातृभूमि के भावात्मक मुद्दे को लेकर आपस में संगठित हो जाये। हमारी आजादी की लड़ाई इसी भावात्मक मुद्दे का रूप था। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय महाद्वीप में भी राष्ट्रवाद की एक लहर चल पड़ी थी जिसमें वे क्षेत्रीय राज्यों को मिलाकर एक नवनिर्मित राष्ट्र के रूप में सामने आये। ऐसे में एक स्वाभाविक प्रश्न उनके लिये उठता है, जो यह सोचते हैं कि हमारा देश विभिन्न संस्कृतियों, जाति धर्म, भौगोलिक भिन्नता और बहुभाषियों वाला देश है तो एक राष्ट्रीय सोच और सहमति कैसे? पर इस सोच का उत्तर एकदम सीधा और सरल है कि एकता में एकता जैसे वाक्य तर्कसंगत नहीं लगते पर अनेकता में एकता जैसे वाक्य तर्क संगत लगते हैं और सबसे बड़ी बात यह कि हम कितने भी अलग अलग संस्कृतियों और राज्यों वाले हो जायें पर साँस तो एक ही देश की हवा में लेते हैं—एक ही देश की मिट्टी ने हमें अपना नागरिक होने का गौरव

प्रदान किया है। अपनी पहली पहचान अपने देश का नागरिक होने से बनती हैं पर कुछ देश विरोधी ऐसा नहीं मानते लेकिन जब वो तथाकथित कुठित बुद्धजीवी अपनी प्रगतिशीलता का चोला पहन कर भारत के बाहर दूसरे देशों में जाते हैं तो अपनी पहचान के रूप में अपना पासपोर्ट दिखाते हुये अपने को भारत का ही नागरिक बताते हैं। वे भले ही भारत में देश विरोधी बयानबाजी या ऐसे नारों के समर्थन करते हो पर पहचान का संकट उनके लिये भी खड़ा होता है तब भी उनको अपने घर से प्रेम नहीं!

इतिहास हमें बताता है कि जब जब देश पर संकट आया है तब तब पत्रकारों ने देश हित में अपनी आवाज बुलंद की है। अगर हम हिंदी पत्रकारिता का इतिहास देखें तो उसका राष्ट्रवादी स्वरूप ही हमारे सामने आयेगा। पत्रकारिता को यदि हम राष्ट्रवाद का पर्याय कहें तो कोई गलत न होगा। हिंदी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रवाद की ही गाथा है। वह समय अट्टारहवीं शताब्दी का था जब कलकत्ता, बम्बई और मद्रास शहरों में कलकत्ता गजट और उदंत मार्तण्ड का प्रकाशन हुआ। इसी क्रम में आजादी के बाद से ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय, पंडित मदन मोहन मालवीय और अटल बिहारी बाजपेयी आदि की पत्रकारिता में जो राष्ट्रवादी आलोक पुंज दिखा उसका उजियारा किस तरह भारत निर्माण कर गया, यह आज प्रमाणित हो चुका है। मानव एकात्मवाद की राह पर चलने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपने राष्ट्रवादी पत्रकारिता को विस्तार देने के लिये 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की जिसके अधीन स्वदेश, राष्ट्रधर्म और पांच्यजन्य प्रकाशित हुये। इसी क्रम में हिन्दोस्तानी, समाचार दर्पण, बंगला में समाचार चंद्रिका, संवाद कौमुदी आदि समाचार पत्र भी प्रकाशित हुये। सही मायने में पत्रकारिता का उदय ही राष्ट्रवाद को जगाने के लिये हुआ था। इस प्रकार की विचारधारा में जन हित के भाव राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत थे। राजा राम मोहन राय, महात्मा गाँधी जैसे नेता भी राष्ट्र पथ पर राष्ट्रवादी पत्रकारिता के चिंतक बने। हिंदी के पुनर्जागरण काल का पत्र साहित्य राष्ट्रवादी भावना से ओत प्रोत था जिसके अगुआ बने थे भारतेन्दु हरिश्चंद्र। भारतेन्दु ने अपने लेखक मंडल के साथ राष्ट्रीयता की ऐसी अलख जगायी कि जन जन में अंग्रेजी राज की सच्चाई खुलती गयी। भारतेन्दु युग साहित्य के साथ साथ अपने पत्रकारिता के माध्यम से अंग्रेजी राज्य की पोल खोल देने वाला काल साबित हुआ।

मैं यही बताना चाह रहा हूँ कि पत्रकारिता के पहले राष्ट्रवादी शब्द जोड़ देना ही शायद पत्रकारिता की मूल आत्मा को न पहचानने जैसा ही है... तब जब कि पत्रकारिता राष्ट्रवाद का ही बिम्ब हो पर आज मीडिया में इसकी चर्चा चल पड़ी है कि पत्रकारिता कैसी हो ? गणेश शंकर विद्यार्थी, मदन मोहन मालवीय जैसे व्यक्तित्व पत्रकारिता के लीजेंड थे और उन्होंने जनमत निर्माण, देश की एकता अखंडता और रक्षा के लिये पत्रकारिता का प्रारम्भ किया पर आज बदलते समय में अपने बिजनेस के साथ साथ पत्रकारिता अपने मूल उद्देश्य से भटक स्वयं को ही चर्चा का विषय बना रही है। आज कल पत्रकारिता अतीत की तरह राष्ट्रहित के लिये समर्पित न होकर अपने व्यापार के लिये बाजार में टीआरपी दौड़ में शामिल है जिसने उसे अपनी मूल आत्मा को ही भुलाने के लिये विवश कर दिया है।

आज कुछ समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और न्यूज चैनल देश की बात करते भी हैं तो उनकी निष्पक्षता पर सवाल उठाते हुये कहा जाता है कि 'ये तो राष्ट्रवादी पत्रकारिता करते हैं जो सुनने में हास्यास्पद सा लगता है। यह कैसा भ्रम कि जो राष्ट्र की बात करे उसकी तरफ निष्पक्षता का प्रश्न? निष्पक्षता में ही तो पत्रकारिता का राष्ट्रवादी स्वरूप दिखता है। यह उनको खुद से पूछना चाहिये कि पत्रकारिता की निष्पक्षता से कौन भटका है? देश हित की बात करने वाले या खबरों को बेचने वाले?'

एक चैनल के पत्रकार ने राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर सवाल करते हुये यह कहा कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता करना निष्पक्ष पत्रकारिता में अवरोध करने जैसा होता है क्या उनकी ऐसी निष्पक्षता में राष्ट्र के प्रति एक नैतिकता भरी सोच शामिल है ? जवाब है बिल्कुल नहीं। एक पत्रकार की निष्पक्षता उसकी राष्ट्रीय सोच से अलग जाकर हो ही नहीं सकती। अगर होती भी है तो उसी की निष्पक्षता पर प्रश्न चिह्न खड़ा हो जाता है कि उसकी पत्रकारिता देश के साथ नहीं है। आज कश्मीर में जो हो रहा है, सच क्या है उसे पूरी दुनिया जानती है, वहाँ अलगाववादी ताकतें सक्रिय हैं, सेना वहाँ लगी है और उस सेना पर पत्थर मारे जा रहे हैं सारी सच्चाई जानते हुये भी कोई चैनल अपनी सहानुभूति पत्थरबाजों के साथ दिखाये तो यह उसकी निष्पक्ष पत्रकारिता हो गयी? भारत के टुकड़े करने वाले नारों को अभिव्यक्ति की आजादी का नाम देने पर उनका मौन समर्थन कर जायें तो यह उनकी निष्पक्ष पत्रकारिता हो गयी? याकूब मेनन की फाँसी का विरोध करने वालों का मौन समर्थन कर जायें तो यह उनकी निष्पक्ष पत्रकारिता हो गयी? सर्जिकल स्ट्राइक के सबूत माँगने वालों को कटघरे में खड़ा न करें तो यह उसकी निष्पक्ष पत्रकारिता हो गयी? देश के कुछ राज्यों में तुष्टिकरण के लिये कुछ नेताओं द्वारा खूनी खेल खिलवाया जाये और मीडिया बस इसकी खबर भर दे दे और उस सच का पर्दाफाश न करे तो यह उनकी निष्पक्ष पत्रकारिता हो गयी? इन सारे निष्पक्ष प्रश्नों का उत्तर देश की जनता अच्छी तरह जानती है पर वह इन समस्याओं का समाधान देश को एक सही दिशा दिखाने वाली मीडिया से चाहती है। इसलिये निष्पक्षता के नाम पर देश हित को दरकिनार कर देना पत्रकार धर्म नहीं होता। राष्ट्रवादी पत्रकारिता का यह मतलब नहीं होता कि वह पारदर्शी रिपोर्टिंग न करे। पारदर्शी रिपोर्टिंग भी तो राष्ट्र हित में ही है क्यों कि जो राष्ट्रहित से खिलवाड़ करेगा वह बेनकाब होगा चाहे वह नेता हो या नागरिक हो या चाहे जो भी। पत्रकारिता का राष्ट्रहित ही उसे पूरी तरह निष्पक्ष बनाता है। अगर देश हित के साथ, संविधान के साथ कोई नागरिक खिलवाड़ करता है चाहे वह महत्वपूर्ण पदों का जनप्रतिनिधि ही क्यों न हो तो उसे देश के सामने उजागर करना राष्ट्रवादी पत्रकारिता ही मानी जायेगी। अगर पत्रकार भारत

माता की जय और वन्दे मातरम को न बोलने वालों का विरोध नहीं करता तो उसकी निष्पक्ष पत्रकारिता पर सवाल खड़े होंगे क्यों कि देश सबसे पहले बाकी सब बाद में।

कुछ चैनल हैं जो अपने पत्रकार धर्म की इसी निष्पक्षता पर चल रहे हैं उनके डीएनए में ही राष्ट्रहित पहले है। अगर मीडिया ने आतंकी अफजल गुरु को देशद्रोही बताकर दोषी बनाया तो वहीं दूसरी ओर उसके बेटे के बेहतर परीक्षा प्रदर्शन को भी पूरी साफगोई से प्रस्तुत किया यही खबरों की निष्पक्षता है और उसकी राष्ट्रवादिता। आज बदलते सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य में राष्ट्रवादी पत्रकारिता की नई परिभाषा की चर्चा हो रही है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि परिवेश कितना भी बदल जाये पर देश के प्रति अपना दायित्व और नजरिया नहीं बदलता। आज बदलते परिवेश में राष्ट्र आये दिन की देश विरोधी गतिविधियों से गुजर रहा है देश पर जब बाहरी संकट आया था तब आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता की बहुत बड़ी भूमिका थी जिसका दायित्व देश भावना भर कर ही निभाया गया। आजादी के पूर्व पत्रकारों का एक मात्र लक्ष्य था देश की स्वाधीनता के लिये जन चेतना जागृत करना। पत्रकार अपनी पत्रकारिता मिशन के लिये पूरे सेवा भाव से समर्पित थे। समाज हित, राष्ट्र हित निष्पक्ष भाव से पत्रकारिता का उद्देश्य था। आज उसी उद्देश्य के सामने चुनौतियाँ मुँह बाये खड़ी हैं। राष्ट्र हित प्रयासों की आज और भी आवश्यकता अपेक्षित हो चली है क्यों कि बाहर के दुश्मन के विरुद्ध बिगुल फूँकना आसान है पर घर के दुश्मनों को बेनकाब करना जरा कठिन है। आज वोटों के ललचाये राजनेता भी उनके साथ जा जा कर खड़े हो जाते हैं और देश के विरुद्ध बोलने वाले बयानों पर भी राष्ट्र हित में निष्पक्ष बयान देने से कतराने लगते हैं और इतना ही नहीं जिस पंचायत के वे पंच बनकर जाते हैं वहाँ भी अपनी राजनीति चमकाने के लिये संसद नहीं चलने देते। जनता के करोड़ों रुपये बर्बाद होते रहते हैं... संसद उनके निजी अहंकार का राजनीतिक अखाड़ा बनकर रह जाता है। परिणाम यह होता है कि देश की आम जनता में एक भ्रम की स्थिति बनी रहती है। अब प्रश्न यह उठता है कि उस जनता को यह सच्चाई कौन बतायेगा? इस सच्चाई को बताने का अधिकार बस पत्रकारों के पास है वह भी न्यूज चैनलों को विशेष रूप से क्योंकि उनकी पहुँच आज घर घर में है। अब पत्रकारों के लिये सूचना भर दे देने से ही काम नहीं खत्म हो जाता बल्कि उस खबर में सही गलत का निर्णय कर के गलत को कटघरे में खड़े कर देने से ही उनका पत्रकार धर्म पूरा होता है। आज देश बहुत संवेदनशील मुद्दों से भ्रमित है... राष्ट्रवाद, अभिव्यक्ति की आजादी, असहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, सांप्रदायिकता, दलितों के प्रति वोट दृष्टि और राजनीतिक तुष्टिकरण जैसे संवेदनशील मुद्दों को नेता, प्रवक्ता और विचारक अपने अपने नजरिये से व्याख्यायित करते हैं और भ्रम फैलाते हैं पर निष्पक्ष नजरिया कौन सा है देश हित में ये कौन बतायेगा? इन्हीं सब मुद्दों को लेकर टीवी पर रोज दंगल होता है और उस दंगल में से निकलता है ज्वलंत प्रश्नों का दंगल.. ताल ठोक के, हम तो पूछेंगे, आर-पार, बात मुद्दे की, थर्ड डिग्री, जनता की अदालत और भइया जी कहिन जैसे मुद्दों पर तमतमायी बहस होती है पर इन एक घण्टों में एंकर द्वारा पूछे सारे प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते हैं और जनता के सामने वे अनुत्तरित प्रश्न भ्रम की स्थिति बनाते रहते हैं। कौन दूर करेगा उन प्रश्नों के भ्रम को? सवाल गंभीर और महत्वपूर्ण भी है ये भ्रम और भी गहरा जाता है जब एंकर किसी देश विरोधी विचारक को अपने स्टूडियो का मेहमान बना लेते हैं और वह चीख चीख कर देश के टुकड़े करने जैसे बयानों को अभिव्यक्ति की आजादी का नाम देने लगता है, कश्मीर के पत्थरबाजों के प्रति सख्ती से पेश आने पर मानवाधिकार के उल्लंघन की बात करने लगता है कश्मीर की आतंकवादी घटनाओं को आजादी की जंग कहने लगता है कुछ कट्टरपंथी मुस्लिम नेताओं को मजहब की आड़ में लेकर उनके देश विरोधी बयानों को छुपाने का प्रयास करता है। उनके ऐसी बहसों से मुद्दे की सही तस्वीर तो सामने आती नहीं बल्कि बेवजह चर्चा और तनाव तूल पकड़ लेते हैं। मीडिया मंच उन्हें वैचारिक टकराहट का मौका तो दे देता है पर अपने द्वारा डिबेट में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर नहीं देता। ज्वलंत मुद्दे पर कुछ तो सही तस्वीर पेश करता! अपवाद स्वरूप कुछ प्रवक्ता और विचारक ऐसी बहसों में तार्किक, संयमित और सार्थक बात तो करते हैं पर कुतर्की और शोर शराबे करने वालों के कारण उनकी सार्थक बात पूरी नहीं हो पाती। सार्थक चर्चा हो और बहस में व्यवधान डालने वाले अपनी आदत छोड़, इसके लिये मीडिया मंच को कुछ नियम बनाने होंगे। आज इन नई परिस्थितियों में मीडिया को अपनी भूमिका में कुछ परिवर्तन लाना होगा। चर्चा सकारात्मक चर्चा की तरह हो इसके लिये उन्हें कुछ इस तरह के नियमों पर विचार करना होगा। हर प्रतिभागी के लिये अंत में मार्किंग करनी होगी जो उसके संयमित, मर्यादित और सकारात्मक बहस के लिये हो और हर डिबेट की मार्किंग में कौन सबसे आगे होता है साल के अंत में उसे अच्छे डिबेट प्रवक्ता के रूप में अपने मंच से पुरस्कृत करने जैसे कुछ नियम बनाने होंगे। ऐसे प्रयास का उद्देश्य सिर्फ सार्थक बहस के लिये हो क्योंकि बदले समय में पत्रकारिता के समक्ष रोज आने वाली चुनौतियों का एक समाधान तो ढूँढना होगा ही। इसमें हर प्रवक्ता भी सहयोग करेगा क्योंकि उस मंच पर आरोप प्रत्यारोप के रूप में होने वाली बहस में प्रवक्ता और नेता निश्चित रूप से अपनी पार्टी और स्वयं की इमेज का खयाल करेंगे, जिसके कारण हर बहस सार्थक चर्चा के रूप में होगी।

दूसरी बात, होने वाली बहसों में कुछ सकारात्मक निर्णय तो मिलता नहीं, इसलिये एंकर को संबंधित विषय पर अपना विचार अंत में जरूर देना चाहिये और निष्पक्ष पत्रकार जो बोलेगा वह न्यायसंगत ही बोलेगा। उसकी बात पूरा देश सुनेगा। लोकसभा और राज्यसभा की बहस तो पूरा देश नहीं देख पाता पर न्यूज चैनल की बहस हर घर के ड्राइंग रूम में रोज होती

है। अपनी यह पारदर्शी सच्चाई बताकर एंकर अपनी राष्ट्रवादी पत्रकारिता के साथ तो न्याय करेगा ही और साथ ही साथ देश के सामने एक सही मैसेज भी जायेगा।

यह सच है कि आज लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में पत्रकारिता अपना दायित्व निभा रही है पर देश का जहाँ सवाल आता है वहाँ उसे अपनी भूमिका देश के साथ खड़े होकर निभानी होगी। चाहे कोई किसी भी विचारधारा का हो, पार्टी का हो, हिंदू हो या मुसलमान हो या कोई अन्य धर्म का ही, देश प्रेम सबके लिये कॉमन होना चाहिये। देश है तो मीडिया मंच है राजनीतिक पार्टियाँ हैं, देश के विरोधी भी हैं, इसलिये पत्रकारिता के सामने आज चुनौती बड़ी है एक देश के प्रहरी की तरह उसे इस चुनौती का सामना करना होगा, खबरों का प्रहरी बनकर।

आज जी न्यूज की भूमिका इस रूप में बहुत सार्थक है, खबरों का प्रहरी, सुधीर चौधरी, जो रात नौ बजे खबरों के डीएनए का शो लेकर आते हैं। सुधीर चौधरी की पत्रकारिता को लेकर अक्सर यह कहा जाता है कि वह राष्ट्रवादी पत्रकारिता करते हैं। सही बात है क्योंकि उनकी पत्रकारिता निष्पक्ष और पारदर्शी, देश हित में होती है तभी तो ऐसा कहा जाता है। किसी भी घटना की तह तक जाना और हर प्रकार से उस घटना का डिटेक्शन करना उनकी पत्रकारिता का प्रयास रहता है। फिर चाहे वह जो घटना हो या कोई भी पार्टी हो, नेता हो या किसी धरना प्रदर्शन की सच्चाई ही क्यों न हो। सुधीर चौधरी के लिये वह डीएनए का विषय होता है देश हित में। आज जवान सीमा पर अपनी बंदूक लिये देश की रक्षा में तैनात है तो सुधीर चौधरी अपनी कलम लिये देश के लिये खबरों के प्रहरी बने हैं इसलिये पत्रकार का बस एक धर्म होना चाहिये।

अपनी कलम से कुछ भी लिखेंगे,
पर सबसे पहले देश लिखेंगे।

हिंदी की आरंभिक पत्रकारिता का मूल चरित्र एवं राष्ट्रबोध

डॉ. संध्या वात्स्यायन

अदिति महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। यह दौर हिंदी नवजागरण का दौर था। और भारतीय हिंदी पत्रकारिता का मूल चरित्र नवजागरण से तपाईं भूमि से निर्मित होता है। देशोद्धार, समाज-सुधार के साथ-साथ हिंदी भाषा एवं साहित्य का विकास हिंदी पत्रकारिता के मूल चरित्र का हिस्सा था। यह वह दौर था जिसमें सुधार, क्रांति एवं परिवर्तन के स्वर गूँज रहे थे। हालांकि भारतेन्दु हरिश्चंद्र के उदय के पूर्व ही पत्र-पत्रिकाओं के विकास का एक दौर पूरा हो चुका था। जिनका सीधा संबंध नवजागरण की प्रक्रिया से था। तब पत्र-पत्रिकाओं का केंद्र कलकत्ता था। 1826 से 1867 की जिन प्रमुख पत्रिकाओं ने सराहनीय कार्य किया, उनमें प्रमुख रहीं :- उदंत मार्तण्ड (1826), बंगदूत (1829), प्रजामित्र (1834), बनारस अखबार (1845), मार्तंड (1846), समाचार-सुधावर्षण (1854), प्रजाहितैशी (1855), ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका (1866) आदि। इन पत्रिकाओं का उद्देश्य स्पष्ट था-जनता में शिक्षा एवं सुधार की भावना जगाना।

पत्रकारिता का मूल चरित्र कैसा होना चाहिए, इस पर पर्याप्त बहस होती रही है। काव्य हो या कथन, उसका सच्चा उद्देश्य लोकहित ही है। साहित्य जिसका संबंध पत्रकारिता से भी है, के उद्देश्य के संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास की ये पंक्तियाँ कितनी सार्थक जान पड़ती हैं - 'कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।'²

कविता या साहित्य या पत्रकारिता का उद्देश्य होना चाहिए-गंगा के समान सबको समान भाव से देखना। पत्रकारिता एवं समाचार पत्र के मूल चरित्र एवं उसके उद्देश्य पर महात्मा गांधी के विचार हैं-समाचार पत्र का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह जनता की भावनाओं को समझे और उसे अभिव्यक्त करे। दूसरा वह लोगों में उचित विचार का प्रसारण करे और तीसरा वह निर्भय होकर दोष दिखाए।³ भारतीय राष्ट्रीयता के संदर्भ में गांधी जी के विचार पत्रकारिता के शुद्ध पक्ष को दिखाते हैं। पत्रकारिता एवं उसके मूल चरित्र या उद्देश्य को लेकर अलग-अलग परिभाषाएँ दी जाती रही हैं। पत्रकार आचार्य रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर ने आधुनिक पत्रकारिता को परिभाषित करते हुए लिखा-“ज्ञान-विचार, शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुँचाना पत्रकला है।⁴ आचार्य रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर ने पत्रकारिता के लिए ‘पत्रकला’ और ‘पत्रकार-कला’ शब्दों का प्रयोग किया है। हरबर्ट ब्रूकर ने पत्रकारिता की परिभाषा कुछ यूँ दी-“यह वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने मस्तिष्क में उस विश्व के बारे में समस्त सूचनाएँ संकलित करते हैं, जिन्हें हम स्वतः कभी नहीं जान सकते।”⁵ भारत के संदर्भ में पत्रकारिता का मूल चरित्र राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों से प्रेरित रहा है। इस संदर्भ में पत्रकार अर्जुन तिवारी का कथन सटीक बैठता है-“राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों से संदर्भित सत्कार्य ही पत्रकारिता है जिससे देशवासियों की नस-नस में स्वतंत्रता, समानता और विश्व बंधुत्व की भावना का संचार होता है”⁶। क्या पत्रकारिता का चरित्र राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों की वकालत करना ही है? राष्ट्रीय एवं मानव-मूल्य तब तक सुरक्षित नहीं रह सकते, जब तक अपने समय का ‘सत्य’ सामने नहीं आता। इस संदर्भ में पत्रकार महेश्वर का कथन उस ‘सत्य’ को पत्रकारिता के लिए आवश्यक अंग के रूप में सामने लाता है। देखिए -“सत्य को जानो, वह तुम्हें मुक्त करेगा”- इस पुरानी अमरीकी कहावत को दुहराते हुए हमारा प्रेस कहता है कि वह सच्चाई और सिर्फ सच्चाई से प्रतिबद्ध है। वह सत्य क्या है? इस सत्य का कोई मकसद-उसकी कोई दिशा होती है या नहीं? उसका समाज के विकास में और इस विकास के रथ को आगे बढ़ाने वाली सामाजिक शक्तियों के उत्थान में कोई योगदान है या नहीं? और अगर इसके लिए जगह है तो आदमी को विचारवान बनाने में उसकी कोई भूमिका होगी या नहीं?”⁷ बिना समसामयिक सत्य के देश, समाज एवं व्यक्ति को विचारवान बनाना संभव नहीं है। ‘सत्य’ की परख ही पत्रकारिता का मूल चरित्र रहा है। और भारत के संदर्भ में यह सत्य अत्यंत आवश्यक था। क्योंकि जिन परिस्थितियों में भारतीय, विशेषतः हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत हुई उसमें उस ‘सत्य’ को बनाये रखना बेहद आवश्यक था। इस ‘सत्य’ को बचाने में कई पत्र-पत्रिकाएँ ऋण के बोझ तले दब गयीं। कई अंग्रेजों की नीतियों की शिकार हुई। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में पत्रकारिता का जन्म देशभक्ति एवं राष्ट्रवाद के कारण संभव हुआ। हालांकि कुछ लोग पौराणिक युग से पत्रकारिता की शुरुआत मान बैठते हैं और नारद को ‘आदि

पत्रकार' के रूप में देखते हैं। श्री वेंकट लाल ओझा कुछ ऐसा ही मानते हैं।⁸ मध्यकाल में गुप्तचरों की व्यवस्था राज्य की सामाजिक, धार्मिक, एवं राजनीतिक सूचनाएँ इकट्ठा करने में किया जाता था। अंग्रेजों के आने से पूर्व मुगल दरबार की अंतिम दरबारी डायरी-“उर्दू अखबार” 1857 तक चलती रही थी।⁹ जिसका अनुसरण अंग्रेजों ने किया। हालांकि इसे मूलतः अखबार नहीं कह सकते। अखबार की शुरुआत कागज़ और मुद्रण के आविष्कार के साथ होता। भारत में सबसे पहला प्रेस पुर्तगाली मिशनरी द्वारा सन् 1550ई0 में शुरु किया गया। आधुनिक अर्थों में समाचार पत्रों का प्रारंभ अंग्रेजों द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में केवल अंग्रेजों के लिए ही हुआ था। इस लिहाज़ से भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में प्रथम पत्रकार होने का श्रेय विलियम बोल्ट्स को जाता है। ये मूलतः डच थे।¹⁰ भारत में पत्रकारिता के विकास का उद्देश्य अंग्रेजों का निजी स्वार्थ था जो आगे चलकर गले की हड्डी बन गया। अंग्रेज नहीं चाहते थे कि भारत में पत्रकारिता का विकास हो क्योंकि इससे उनकी गतिविधियों का पर्दाफाश होता था। ईस्ट इंडिया कंपनी की करतूतों का चिट्ठा इंग्लैंड तक न पहुँचे इसके लिए भारत में पत्रकारिता को बाधा पहुँचाई जाती रही। इस प्रयास के तहत विलियम बोल्ट्स को ज़बरदस्ती भारत छोड़ने को मजबूर किया गया।¹¹

भारत में पत्रकारिता के विकास के साथ दो तत्व महत्वपूर्ण ढंग से जुड़े हुए थे - एक सरकार और भ्रष्टाचार की आलोचना और दूसरा सरकार की ओर से उसका दमन। भारत में हिंदी की शुरुआती पत्रकारिता में अंग्रेजों का यही दमनकारी रवैया था। इसका परिणाम रहा कि भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। यही राष्ट्रबोध भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आधार शिला साबित हुई। हिंदी के साथ भारत की अन्य भाषाओं में अंग्रेजों की सरकारी नीतियों के खिलाफ तीक्ष्ण एवं तीव्र विरोध बढ़ा। अंग्रेज इन पत्र-पत्रिकाओं पर अपना नियंत्रण कायम रखते। इस नियंत्रण का असर यह हुआ कि कई महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ बंद हो गईं। कई कर्ज़ में डूब गईं। परंतु जो भी पत्रिकाएँ चलीं उनमें राष्ट्रीय बोध का स्वरूप बिलकुल स्पष्ट था और वे भारतीय राष्ट्रीयता को नया आयाम देती थीं।

हिंदी का प्रथम समाचार पत्र ‘उदंत मार्तण्ड’ था। हिंदी समाज को आधुनिकता से जोड़ने का यह प्रथम प्रयास था। राजा राम मोहनराय की आधुनिकता से प्रेरित पं० युगल किशोर शुक्ल का मन नवजागरण की भावना से भरा हुआ था। उनकी इच्छा थी -“नाना देश के सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ें और समझ लें और पराई अपेक्षा और अपनी भाषा की उपज न छोड़ें। इसीलिए सबके कल्याण के विषय में गवर्नर जनरल की आज्ञा से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से नया ठाठ ठाठा।”¹² निज भाषा और गवर्नर जनरल की आज्ञा दोनों का असर ‘उदंत मार्तण्ड’ में दिखता है। परिणाम यह रहा कि कुछेक वर्षों में धनाभाव के कारण इस समाचार पत्र को बंद होना पड़ा। राजा शिव प्रसाद सितारे ‘हिंद’ ने अपने पत्र ‘बनारस अखबार’ में सरकारी चमचागिरी की पोल खोली। इस पत्र ने अंग्रेजों के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध और प्रतिक्रिया की लहर पैदा कर दी थी। हालांकि यह पत्र उर्दू में ज़्यादा होता जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ‘सुधाकर’, ‘बुद्धिप्रकाश’, ‘प्रजाहितैशी’, ‘तत्वबोधिनी पत्रिका’ आदि पत्रिकाएँ रहीं जो भाषाई राष्ट्रवाद के साथ-साथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बल देती थीं।

हिंदी में राष्ट्रबोध से जुड़ी पत्रकारिता की शुरुआत यदि कहीं से मानी जा सकती है तो वह है-भारतेंदु युग से। इस दौर की हिंदी-पत्रकारिता में राष्ट्रीयता का सच्चा स्वरूप दिखता है। 1868 में भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा संपादित ‘कविवचन सुधा’ राष्ट्रीय बोध की पत्रिका थी। डॉ. विलास शर्मा के अनुसार-“भारतेंदु ने ‘कविवचन सुधा’ के द्वारा हिंदी में निर्भीक पत्रकार-कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे। उनमें से कोई इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं लड़ा था।”¹³ हिंदी में राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने में इस पत्रिका का योगदान विशिष्ट रहा। इस पत्रिका की स्वतंत्र राजद्रोही लेखों तथा देशहितपूर्ण टिप्पणियों के कारण अंग्रेजी सरकार ने इनकी प्रतियाँ लेनी बंद कर दी थी। यह पत्रिका राजनीति-समाज सुधार के लिए जानी जाती थी। इसकी संपादकीय राष्ट्र नव-निर्माण को नया तेजस्विता से भरा स्वर देती है। जन साधारण के सुख-दुख को पहली बार कोई पत्रिका अपने साथ जोड़ती है। गांधी के आगमन से 45 वर्ष पूर्व भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसी पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी वस्त्रों के प्रचार एवं विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आह्वान किया। वे लिखते हैं-“हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे... हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहिनेंगे।”¹⁴ यह वह दौर था जब बड़े से बड़ा हिंदुस्तानी मुलाज़िम अंग्रेज अधिकारियों के सामने हाथ जोड़ कर खड़े होता था। उस दौर में भारतेंदु सरकारी मुलाज़िम होते हुए भी साहसी राष्ट्र-निर्माता के रूप में दिखते हैं। राष्ट्रीय उद्बोधन एवं सरकार की भर्त्सना के लिए वे ‘हरिश्चंद्र मैगज़ीन’ का सहारा लेते हैं। यही पत्रिका आगे चलकर ‘हरिश्चंद्र चंद्रिका’ के नाम से जानी जाने लगी। इस पत्रिका ने अंधविश्वास, औपनिवेशिक, साम्राज्यवाद एवं सामंती प्रवृत्ति पर खुल कर प्रहार किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में सटीक टिप्पणी की है-“हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल इसी ‘चंद्रिका’ में प्रकट हुआ।¹⁵ बाला बोधिनी के माध्यम से भारतेंदु हरिश्चंद्र ने नारी-नर समभाव की बात की-

जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।

जो नारी सोई पुरुष या मैं कछु न विभक्ति।¹⁶

इस दौर की अन्य पत्रिकाओं में उल्लेखनीय पत्रिकाएँ हैं- बुद्धि विलास, मित्र विलास, हिंदी प्रदीप, भारत मित्र आदि। बाल कृष्ण भट्ट का नाम हिंदी की आरंभिक पत्रकारिता में अग्रगण्य है। उनका ‘हिंदी प्रदीप’ राष्ट्रीय बोध के निर्माण में प्रेरक

का कार्य करता रहा। इस प्रकार हिंदी की आरंभिक पत्रकारिता का मूल चरित्र केवल और केवल एक ही था—जनकल्याण एवं औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रखर राष्ट्रीय चेतना का निर्माण।

संदर्भ

- 1 हिंदी साहित्य का इतिहास - सं०-डॉ० नगेंद्र, मयूर पेपरबैक्स, इक्यावनवां पुनमुद्रण सं०-2016, पृष्ठ-470
- 2 श्री रामचरित मानस, बाल कांड - 13/05, पृष्ठ-18
- 3 राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता-डॉ० मीरा रानीबल, वाणी प्रकाशन, प्रथम सं०-1994, पृष्ठ-69
- 4 वही- पृष्ठ-62
- 5 वही- पृष्ठ-62
- 6 राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता-डॉ०मीरा रानीबल, वाणी प्रकाशन, प्रथम सं०-1994, पृष्ठ-63
- 7 पत्रकारिता के सिद्धांत, कमलापति त्रिपाठी, अनीता प्रकाशन, नवीनतम संस्करण, पृष्ठ-151
- 8 पत्रकारिता के सिद्धांत, कमलापति त्रिपाठी, अनीता प्रकाशन, नवीनतम संस्करण, पृष्ठ-151
- 9 वही-पृष्ठ-153
- 10 वही-पृष्ठ-153-154
- 11 वही-पृष्ठ-154
- 12 पत्रकारिता के सिद्धांत, कमलापति त्रिपाठी, अनीता प्रकाशन, नवीनतम संस्करण, पृष्ठ-157
- 13 राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता-डॉ० मीरा रानीबल, वाणी प्रकाशन, प्रथम सं०-1994, पृष्ठ-99-100
- 14 वही- पृष्ठ-100
- 15 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-250
- 16 राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता-डॉ० मीरा रानीबल, वाणी प्रकाशन, प्रथम सं०-1994, पृष्ठ-101

सांस्कृतिक पत्रकारिता का चरित्र

डॉ. गुंजन कुमार झा

संगीत, साहित्य और रंगमंच विशेषज्ञ

एक प्रतिष्ठित हिन्दी अखबार जिसकी पाठक संख्या दस हजार भी नहीं है किंतु वह अपनी गुणवत्ता के लिए जानी जाती है। और हां, जाहिर है वैचारिक श्रेष्ठता, जो हिन्दी में सिर्फ 'वामपंथी' ज़मीन से ही उपजती है (!) की वह मिसाल है। उस अखबार में मैं शास्त्रीय संगीत के एक कार्यक्रम की रिपोर्टिंग पढ़ रहा था। रिपोर्टिंग करने वाली संप्रांत संगीत समालोचक मानी जाती हैं। उसमें लिखा था कि फलां जगह कार्यक्रम हुआ जिसमें अमुक कलाकार ने अपनी मनभावन प्रस्तुति दी। उन्होंने फलां राग प्रस्तुत किया। उस राग में उन्होंने बड़ा ख्याल गाया, उसके बाद छोटा ख्याल गाया। उन्होंने बड़ा ख्याल में आलाप भी लिया और तानें भी लीं। यह पढ़ कर आम अखबार पाठक को शायद कुछ पता न चले किंतु शास्त्रीय संगीत का साधारण श्रोता भी यह पढ़कर हँसेगा। क्योंकि यह कुछ उसी तरह की रिपोर्टिंग है कि मानो कोई क्रिकेट का समालोचक यह लिखे कि बैटिंग करते हुए विराट कोहली ने बल्ले को हाथ से उठाया और उसे गेंद पर भी मारा। दरअसल शास्त्रीय संगीत जैसी विधा पर ऐसी सतही रिपोर्टिंग हमारे यहाँ ही हो सकती है क्योंकि संगीत और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों की पत्रकारिता को हमारे यहाँ कभी तवज्जो दी ही नहीं गई। सच तो यह है कि अखबार और खबरिया चैनल्स पुलिस थानों से जुटाई गई सनसनीखेज आपराधिक घटनाओं की चटखदार प्रस्तुति या सतही राजनीतिक आख्यान भर बन कर रह जाते हैं यदि उसमें सांस्कृतिक पत्रकारिता का अभाव हो। दुर्भाग्य यह है कि सांस्कृतिक पत्रकारिता को अभी अपनी गंभीरता भी पानी है और लोकप्रियता भी। आइए पहले औपचारिक तौर पर समझें कि हम जिस सांस्कृतिक पत्रकारिता की बात कर रहे हैं, उससे हमारा आशय क्या है!

भारत की संस्कृति विभिन्न झंझावातों और संक्रमणों के बाद भी कहीं न कहीं अपने मूल चरित्र को अक्षुण्ण बनाए हुए आज भी विद्यमान और विकासमान है। यह संस्कृति ही उसे राजनीतिक चौहद्दी से इतर एक अलग पहचान देती है। इस संस्कृति का यशोगान समय और संदर्भानुसार पत्रकारिता ने अपनी तरह से किया है। इसे ही सांस्कृतिक पत्रकारिता कहते हैं। संस्कृति की व्याख्या और उसके अनेक आयामों को स्पष्ट करने का काम सांस्कृतिक पत्रकारिता ही करती है।

सांस्कृतिक पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी में 'कल्चरल जर्नलिज्म' पद प्रचलित है। भारतीय मूल की ब्रिटिश लेखिका डॉ. माया जग्गी लिखती हैं कि सांस्कृतिक पत्रकारिता की मुख्य चिंता कला और रचनात्मक जगत है। यहाँ कला शब्द सामान्यतः साहित्य, दृश्य कला, संगीत, फिल्म, रंगमंच, नृत्य, फोटोग्राफी और चित्रकारी आदि को समाहित किए हुए है। सांस्कृतिक पत्रकारिता पारंपरिक और आधुनिक, शास्त्रीय और लोक, खासप्रिय और लोकप्रिय सभी तरह की कलाओं को अपना विषय बनाती है। संस्कृति की सामाजिक विकास में भूमिका और बढ़ती सांस्कृतिक समझ के कारण सांस्कृतिक पत्रकारिता का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। इस संदर्भ में वर्तमान में पश्चिम में एडवर्ड सैड, जॉर्ज स्टेनर, उम्ब्रेटो एको और स्टुअर्ट हॉल आदि विद्वानों ने नई सोच विकसित की है। कहना न होगा कि संस्कृति के संदर्भ में पश्चिम काफी हद तक आगे बढ़कर देख रहा है। वे 'सांस्कृतिक युद्ध' की बात करते हैं या 'सांस्कृतिक परिवर्तन' की बात करते हैं जिसके जरिए सामाजिक परिवर्तन घटित होते हैं। हमारे यहाँ संस्कृति को बड़े श्रद्धापूर्ण ढंग से देखा जाता है जिसके कारण हम भक्ति भाव से तो संस्कृति की बात बहुत करते हैं किंतु तर्क पूर्ण ढंग से उसकी उपयोगिता सिद्ध नहीं कर पाते। यही कारण है कि सांस्कृतिक पत्रकारिता हमारे यहाँ खाली स्थान भरे जाने का जरिया माना जाता है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में आयोजित एक व्याख्यान में श्री भानुप्रताप नारायण सांस्कृतिक रिपोर्टिंग के उज्ज्वल भविष्य की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि आज प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया सभी जगहों पर समाचारों की कमी को इसी रिपोर्टिंग के माध्यम से पूरा किया जाता है और वह दिन अब दूर नहीं कि जब प्रत्येक समाचार-पत्र में एक सांस्कृतिक रिपोर्टिंग के लिए अलग से उपसंपादक रखा जाने लगेगा।

किसी भी समाज की मूल्य चेतना का नाम संस्कृति है। (सांस्कृतिक पत्रकारिता मूल रूप से संस्कृति के अवयवों की पत्रकारिता है।) कोई भी 'राष्ट्र' सिर्फ राजनीतिक सीमाओं का नाम नहीं है बल्कि वह एक सांस्कृतिक धरातल है जिस पर उस देश की जनता अपनी भावनात्मक और वैचारिक दुनियां विकसित करती है। सांस्कृतिक धरातल राजनीतिक सीमाओं से परे और गहरे स्तर तक अपनी पैठ रखता है। प्रो. चमन लाल गुप्त लिखते हैं कि 'राष्ट्र', 'देश' और 'राज्य' की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं भावात्मक इकाई है जिसका आधार बोधात्मक, भावात्मक और वैचारिक एकता है जिसे संक्षेप में हम सांस्कृतिक एकता

कह सकते हैं। कुछ चुनिंदा चक्रवर्ती राजाओं के काल को छोड़ दे तो भारत सदा ही राजनीतिक रूप से सामान्यतः बँटा ही रहा किंतु सांस्कृतिक दृष्टि से इसमें हमेशा एकता रही। राजनीतिक उथल-पुथल के समानांतर यहां का शासक वर्ग आपस में ही लड़ता-भिड़ता भी रहा किंतु देश का साधारण जन मन सदा ही राजनीतिक सीमाओं से ऊपर रहा क्योंकि उसके लिए संस्कृति ही राष्ट्र का आधार थी। किसी पुण्य कार्य के लिए सात प्रमुख नदियों के जल को मिलाकर उसका उपयोग करने की लालसा में वह गाता था -

गंगे च, यमुने चैव, गोदावरी सरस्वती।

नर्मदे सिंधु कावेरी जलेस्मिन सन्निधि कुरू॥

तमाम तीर्थ स्थल जिनमें सात मोक्षदायी पुरी, बारह ज्योतिर्लिंग, बावन शक्ति पीठ, चार धाम, चार महाकुंभ आदि कभी भी राजनीतिक सीमाओं के भीतर न समा सके। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत जैसे ग्रंथ हमेशा देश की मानसिक एकता का मूलाधार बने रहे। स्पष्ट है कि भारतीय जनमानस की एकता का मूल आधार सांस्कृतिक ही है अतः यह कहना ग़लत न होगा कि भारत का राष्ट्रवाद भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ही है और इस दृष्टि से संस्कृति और सांस्कृतिक पत्रकारिता का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

भारत में यह कहावत आम है कि यहाँ हर तीन मील पर बोली, पाँच मील पर भाषा और दस मील पर पानी का स्वाद बदल जाता है। लगभग सभी धर्मों के लोग, कई सारी जातियाँ, जनजातियाँ अलग अलग हिस्सों में निवास करती हैं। इन सब को एक सूत्र में पिरोने का काम संस्कृति ही करती है। संस्कृति और सभ्यता को प्रायः एक ही समझने का भ्रम कर लिया जाता है किंतु वास्तव में दोनों में गुणात्मक अंतर है। संस्कृति आंतरिक या बौद्धिक या मानसिक विकास है जो लोगों को अंतःसूत्र में बांधता हो वहीं सभ्यता एक सामाजिक शिष्टाचार की तरह है। सभ्यता बाह्य अनफशासन और संस्कृति भीतर की यात्र है।

राष्ट्रवाद और पत्रकारिता दोनों की अवधारणा नवीन है। भारत में पत्रकारिता की शुरुआत सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की जानकारी लोगों तक पहुंचाने के लिए हुई थी। यह कार्य तो किसी न किसी रूप में प्राचीन समय से किया जाता रहा होगा किंतु पत्रकारिता का जो रूप हमारा विषय है उसका आरंभ छापेखाने के आरंभ से जुड़ा हुआ है और अंग्रेजी शासन के दौरान ही पत्रकारिता का विकास हुआ। यह स्पष्ट है कि भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आई नवजागरण की जो चेतना विकसित हुई और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में सुधार की जो बयार बही उसमें सांस्कृतिक पत्रकारिता ने अपनी महती भूमिका निभाई। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी के धार्मिक और सांस्कृतिक पुर्जागरण में सांस्कृतिक पत्रकारिता की भूमिका बहुमूल्य थी। कहना न होगा इन सोसायटीज ने प्रकाशन को बढ़े औजार के रूप में इस्तेमाल किया और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपनी बात को जनमानस तक पहुंचाने की कोशिश की। यही सांस्कृतिक पुनर्जागरण राष्ट्रीय चेतना का हेतु बना। सांस्कृतिक पत्रकारिता ने देशवासियों की धमनियों में स्वतंत्रता और समता का भाव प्रेषित कर, राष्ट्र प्रेम के भावों को जगाकर, राष्ट्रीय निष्ठा को पुष्ट किया।

स्वतंत्रता से पूर्व सांस्कृतिक पत्रकारिता के पास एक स्पष्ट 'विजन' था- राष्ट्रीय भावना का। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्रकारिता सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मजबूत वाहक बना। तद्युगीन पत्रकारिता की परिधि में यह कह सकते हैं कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता, सांस्कृतिक राष्ट्रवादी पत्रकारिता और सांस्कृतिक पत्रकारिता में कोई स्पष्ट विभेद नहीं नजर आता। यद्यपि सांस्कृतिक पत्रकारिता के पास हमेशा से ही यह 'स्पेस' रहा कि वह खुद को कला और धर्म की ओर मोड़कर समाज और राष्ट्र से बिल्कुल इतर होकर अपनी एक अलग खोह बना लें। किंतु स्वतंत्रता से पूर्व सांस्कृतिक पत्रकारिता अपने राष्ट्रीय भाव से ओत-प्रोत थी और राष्ट्रीयता की भावना उसकी जड़ों में जमी हुई थी।

स्वतंत्रता के बाद पत्रकारिता मूलतः राजनीति और वैचारिकी की ओर मुड़ी। सांस्कृतिक पत्रकारिता ने धार्मिक आयोजनों की रिपोर्टिंग, खेल, मनोरंजन, संगीत और कला जगत की रिपोर्टिंग व समीक्षा में खुद को लगाया। यह न तो गैर जरूरी था और न गलत। यह अपने समय की आवश्यकता थी। किंतु राजनैतिक और वैचारिक पत्रकारिता के समक्ष यह दोगुना दर्जे की पत्रकारिता मानी जाने लगी। धीरे धीरे वैचारिकी का स्थान सूचनाओं ने ले लिया और लगा मानो मीडिया त्वरित सूचनाओं का खोजी शिकारी बन गया। इसमें कोई शक नहीं कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और फिर वेब पत्रकारिता ने पत्रकारिता के दायरे को अभूतपूर्व ढंग से विस्तार दिया। यदि हम सांस्कृतिक पत्रकारिता की तरह और भी नामों में पत्रकारिता का वर्गीकरण करें तो शायद सैकड़ों तरह की पत्रकारिता का नियोजन करना पड़े। किंतु सांस्कृतिक पत्रकारिता का स्तर बहुत गिर गया है।

अखबारों व टी वी चैनलों की पत्रकारिता में जिस प्रकार राजनीतिक व सामाजिक समालोचकों का स्थान त्वरित 'ब्रेकिंग' न्यूज ने लिया उसी प्रकार और उसी रफतार में अखबारों से 'संपादकीय' पृष्ठ छोटे होते गए। साहित्यिक व सांगीतिक समीक्षाओं के कॉलम्स गायब होने लगे। टी वी पत्रकारिता कुछ सतही डिबेट्स को कराकर श्रोताओं को उथले रूप में उत्तेजित तो कर देती है किंतु कोई मानसिक उत्तेजना या वैचारिक विमर्श नहीं खड़ा कर पाती। सांस्कृतिक पत्रकारिता के नाम पर टी वी पत्रकारिता में अब कुछ भी रचनात्मक शेष नहीं रह गया है। इस मुआमले में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों तरह के समाचार चैनलों में समानता की सी स्थिति है। अंग्रेजी चैनल्स प्रायः ग्रहों की दशा दिशा और भूत प्रेतों की कहानियों के चक्कर में नहीं पड़ते

किंतु सांस्कृतिक पत्रकारिता के नाम पर वहां भी केवल एकांगी मनोरंजन जगत की चकाचौंध ही शेष है। हिन्दी चैनल्स में सांस्कृतिक पत्रकारिता के नाम पर दोपहर को टीवी धारावाहिकों की दिलचस्प किस्से सुनाते हैं, शाम को फिल्मी अभिनेताओं के चटखदार किस्से कहानियां और यदा कदा अंधविश्वास फैलाने वाले तंत्र मंत्र के कार्यक्रम भी दिखाए जाते हैं। किंतु ये चैनल्स साहित्य, संगीत, कला, रंगमंच, नृत्य आदि किसी भी रचनात्मक कला पर किसी भी तरह की प्रस्तुति नहीं देते। यों अपवाद स्वरूप यह आपको सरकारी चैनलों पर दिख जाएगा।

उसी तरह अखबारों से साहित्य समीक्षाओं, कला विश्लेषणों, संगीत समीक्षाओं, रंगमंच समीक्षा आदि गायब हो चले हैं। ऐसा नहीं कि यह सब पहले बहुत था और अब बिल्कुल नहीं है। पहले भी यह कम ही था किंतु लगभग सभी बड़े अखबारों में रचनात्मक जगत की विचारोत्तेजक और सौन्दर्य बोध विकसित करने वाली कलात्मक अभिरुचि से संबद्ध समाचार आते रहते थे किंतु अब ये लगभग नदारद हो चले हैं। जहां छप रहीं हैं वहां सांस्कृतिक समालोचना के नाम पर ऐसी ऐसी रिपोर्टिंग्स व लेख छप रहे हैं कि जानकार व्यक्ति के लिए वह दुखद रूप से हास्यास्पद है। यों कुछ अंग्रेजी अखबार कला और संस्कृति की सामग्री को निरंतर उत्कृष्टता के साथ छाप रहे हैं। कहना पड़ेगा कि सांस्कृतिक पत्रकारिता के स्तर पर हिन्दी पत्रकारिता अंग्रेजी ही नहीं वरन कई प्रादेशिक भाषाओं से भी बहुत पीछे है। जरूरत इस बात की है कि पत्रकारिता न सिर्फ पाठकों और प्रेक्षकों को ज्ञान दे, मनोरंजन दे अपितु उसकी रुचियों का परिष्करण भी करे। सांस्कृतिक पत्रकारिता को उचित स्थान देकर और विशेषज्ञों की सहभागिता से यह कार्य बहुत गंभीरतापूर्वक किया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास (पुस्तक) जे नटराजन
2. जनसंचार, (पुस्तक) डॉ हरीश अरोड़ा
3. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और मीडिया (लेख) डॉ सौरभ मालवीय
4. साहित्य और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद (लेख) प्रो. चमनलाल गुप्त
5. [https://journalism.nyu.edu/graduate/programs/cultural-reporting-and-criticism/\(osclkbV\)](https://journalism.nyu.edu/graduate/programs/cultural-reporting-and-criticism/(osclkbV))

भारतीय राष्ट्रवाद बनाम वैश्विक नेशनलिज्म

डॉ. दिलीप कुमार झा
पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

आज वर्तमान समय में, 'राष्ट्रवाद बनाम वैश्विक नेशनलिज्म' विद्वानों के बीच में एक गहन चिंतन का विषय बना हुआ है। सभी देश काल तथा अपने अपने विचारधारा के अनुसार इसे व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं। अधिकतर लोग यह मानते हैं कि भारत में राष्ट्र या राष्ट्रीयता की अवधारणा आधुनिक हैं विशेषकर पाश्चात्य विद्वानों की, जब कि वास्तविकता इससे परे है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं वैदिक संहिताओं के विशद ज्ञान से इसके स्वरूप, महत्व और उन विषयों से सम्बंधित अनेकानेक सन्दर्भों से इस सम्बन्ध में भारतीय मनीशियों के ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है।

राष्ट्र या राष्ट्रीयता का स्वरूप विश्व के सभी राष्ट्रों में मूलतः एक समान नहीं होता है। इसीतरह राष्ट्रीय भावना या राष्ट्रीयता का स्वरूप भी किसी देश में सदा एक समान नहीं रहता। अनुभूति की यह धारा देश और काल के अनुसार विविध प्रकार से बहती है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और जीवन दर्शन का समन्वित रूप भारत की राष्ट्रीयता का आधार रही है। भारत अति प्राचीन राष्ट्र है। इसकी राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप सांस्कृतिक है। भारतीय राष्ट्र पिछले पांच हजार वर्षों में विकसित साझे सांस्कृतिक व राजनितिक तत्त्वों का एक ऐसा समन्वित एवं संश्लेषित रूप है जिसमें संसार के सभी धर्मों का अनुभव समावेशित है। हूण, शक, कुशाण, अफगान, तुर्क, मुगल, ब्रिटिश, फ्रांस, पुर्तगाल और डच आदि द्वारा साम्राज्यवादीकरण के विभिन्न चरणों ने भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणा को तदनु रूप परिमार्जित करने सम्बन्धी परिस्थितियों को जन्म दिया। भारतीय राष्ट्र की अवधारणा का मूलतत्त्व वैदिक व उत्तर वैदिक साहित्यों के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन में निहित है जिसमें राष्ट्र एक स्वयं देदीप्यमान भू-सांस्कृतिक आध्यात्मिक सत्ता है।

ब्रिटिश शासन के पूर्व से ही भारत में साम्राज्यों का काल रहा है। भारत में मगध, गुप्त, एवं मुगल साम्राज्यों के मूल में भारतीय दंड संहिता का केंद्रीय महत्व तथा प्रजा की भलाई से राजसत्ता की वैधता का भाव हमेशा देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास के जिस किसी भी कालखंड में इस निमित्त हस्तक्षेप व व्यवधान आया, वहां चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अशोक, महाराणा प्रताप, शिवाजी, सरदार पटेल जैसे महानायक राष्ट्र की संकल्पना को एक नवीन अभिव्यक्ति प्रदान करने को प्रस्तुत थे। अतः हम राष्ट्र और राष्ट्रीयता सम्बन्धी पाश्चात्य चिंतन के उस सार्वभौमिकरण की विचारधारा से ग्रस्त नहीं होना चाहिए, जिसमें 'फूट डालो शासन करो' एवं सभ्यताकरण की विचारधारा के सहारे उपनिवेशीकरण तथा दमन का चक्र चला रखा है। प्रस्तुत पत्र के आलेख के पीछे मूल उद्देश्य यह है कि वैदिक साहित्यों तथा अन्य संस्कृत साहित्यों एवं ऐतिहासिक साक्ष्यों में वर्णित राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की संकल्पना को अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक साक्ष्यों तथा राजनैतिक दर्शनों के आलोक में विकसित करें।

आज का युग सूचना क्रान्ति युग माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति सूचनाओं का अधिक से अधिक उपयोग कर नई-नई जानकारीयों द्वारा अपना ज्ञानवर्धन करना चाहता है, विशेषकर आज की युवा पीढ़ी। आज का युवा अपनी पहचान एवं अस्मिता के प्रति भी उतना ही सजग है, जितना कि वह बौद्धिक उत्कर्ष के लिए तर्क एवं जिज्ञासा की उपादेयता से परिचित है। हमें यह जानने की आवश्यकता है कि क्यों कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में यह दर्शन दिया कि 'प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है।' यह भी जानना आवश्यक है राजव्यवस्थाओं में वे कौन सी विशिष्टताएँ थीं जो राष्ट्र के सांस्कृतिक दर्शन के एकत्व की अभिव्यक्ति थी।

पश्चिमी इतिहासकार प्रायः यह कहते और लिखते रहे हैं कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं रहा बल्कि अनेक जातियों का निवास स्थान रहा, जिनका सम्बन्ध अनेक नस्लों, कबीलों, भाषा भाषियों और धर्म के मानने वालों से रहा है। अनेक राजनीतिक विचारक यही मानते रहे हैं कि भारत अलग अलग राजाओं, बादशाहों, नवाबों की छोटी छोटी रियासतों में बंटा हुआ था और वह राजनीतिक तथा प्रशासनिक दृष्टि से कभी एक नहीं रहा तो वह एक राष्ट्र कैसे हो सकता था? उनके विचार में राष्ट्र की अवधारणा ही पश्चिमी देन है। वे भारत को राष्ट्र के रूप में संगठित करने और राष्ट्रीयता के उदय और विकास में अंग्रेजी शासकों का योगदान मानते रहे हैं। उनके अनुसार भारत को राष्ट्र के रूप में गौरव दिलाने वाला ब्रिटिश साम्राज्यवादी थे। यह एक भ्रान्त धारणा है, जिसका आधार राष्ट्र सम्बन्धी विदेशी मानदंड है। किसी देश के निवासियों को राष्ट्र के रूप में संगठित करने में राजनीतिक और प्रशासनिक एकता की विशेष भूमिका होती है, पर एक मात्र यही आधार नहीं है। जिस पर देश के

निवासी राष्ट्र के रूप में संगठित होते हैं। सांस्कृतिक आधार इन सब आधारों से अधिक प्रबल होता है। इसका प्रमाण भारत तथा भारतीय हैं। देश की परतंत्रता के युग में अंग्रेजी शासन के विरोध में भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय भावना अत्यंत प्रबलता से तरंगायित हुई और आधुनिक भारतीय साहित्य में भी उसकी तीव्र गूँज सुनाई दी। उस समय के संस्कृत और हिंदी के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीयता के उन्नयन का उल्लेख किया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत को स्वतन्त्रता दिलाने में संस्कृत भाषा एवं संस्कृत के विद्वानों के विचारों की अहम् भूमिका रही है। संस्कृत भाषा की रक्षा के लिए लार्ड मैकाले की 'अंग्रेजी भाषा नीति' के विरोध में चलाये गए आन्दोलन से जो भूमिका बनी, उसी वातावरण में 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई। पूरा यूरोप ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में उठ खड़ा हुआ, जब वहाँ के विद्वानों ने संस्कृत भाषा की प्रशंसा की। जर्मन कवि गेटे कालिदास की रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् पढ़कर कह उठे कि पृथ्वी और स्वर्ग को एक साथ देखना है, तो वह अभिज्ञानशाकुन्तलम् में देख सकता है। इसतरह भारत के प्राचीन साहित्य, संस्कृति परंपरा और जीवन दर्शन का समन्वित रूप भारत की राष्ट्रीय चेतना का आधारशिला रही है। भारतीय चेतना, विश्वबंधुत्व और देशप्रेम की भावना को जगानेवाला पिछले कई सौ वर्षों में संस्कृत भाषा में लिखा गया विपुल साहित्य आज हमारी राष्ट्रीय धरोहर है। यह संस्कृत भाषा ही है जिसने विश्व को यह सन्देश दिया। 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् पूरा विश्व एक परिवार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्र या राष्ट्रीयता की अवधारणा को पाश्चात्य विद्वानों की या आधुनिक युग की देन कहना सर्वथा निर्मूल है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग

'राष्ट्र' शब्द की व्युत्पत्ति 'चमकना' अर्थ वाली राज् धातु से हुई है, जिसमें औणादिक् राष्ट्रन् प्रत्यय जोड़ा गया है। जिसका अर्थ है राजते दीप्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम् अर्थात् जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है वह राष्ट्र कहलाता है। अथवा विविध वैभवों से सुशोभित देश राष्ट्र होता है। शब्दकल्पद्रुम में इस अर्थ की पुष्टि के लिए मनुस्मृति का एक श्लोक उद्धृत किया गया है¹ जिसके अनुसार, जो राजा तस्करों को नियंत्रित नहीं करता है और प्रजा से राजकर वसूलता रहता है, वह राष्ट्र बुरी तरह क्षुभित होता है और वह राजा स्वर्ग से भी वंचित हो जाता है। तात्पर्य है कि एक सुशासित राज्य को ही राष्ट्र की संज्ञा दी जा सकती है।

भारत के प्राचीनतम वाङ्मय वेद से ही 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है। ऋग्वेद संहिता में² और यजुर्वेद³ के संदर्भों से ज्ञात होता कि क्षत्रिय द्वारा शासित भू भाग को राष्ट्र कहते थे। अथर्ववेद के राष्ट्रभिवर्धन सूक्त में राष्ट्र की वृद्धि के लिए राजा द्वारा अभिवर्त मणि बाँधने (संकल्प) की प्रार्थना है⁴ इससे तात्पर्य है कि राजा को राष्ट्र की उन्नति और सुरक्षा के लिए क्या क्या करना चाहिए, इसको यहाँ प्रतीक रूप में बताया गया है। इन सभी विवरणों एवं संदर्भों के आधार पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों जैसे कीथ एवं मैकडानल ने अपने वैदिक इंडक्शन में लिखा है कि ऋग्वेद में वर्णित राष्ट्र बाद में राज्य अथवा गणराज्य का द्योतक हुआ।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में मानवसाहित्य में प्रथम बार पृथ्वी को माता बताकर अपने आपको उसका पुत्र बताया गया है⁵ वाल्मीकि कृत रामायण के अरण्यकाण्ड में श्रीराम को सब प्रकार की जातियों और जनजातियों के लोगों से प्रेमभाव के साथ मिलते दिखाया गया है। वे विन्ध्याचल को पारकर लंका तक गए। महाभारत में महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने दक्षिण के राजा भी आये थे। कुरुक्षेत्र के मैदान में जो महाभारत युद्ध हुआ उसमें दक्षिण प्रदेशों के राजा भी थे। चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य ने समस्त भारत को एक शासन में रखा था। कालिदास के मेघदूत का भौगोलिक चित्र और रघुवंश का दिग्विजय प्रसंग भारत की भौगोलिक एकता के दृश्य को उपस्थित करते हैं। जिसप्रकार निम्बार्क, माध्वाचार्य, रामानुज, वल्लभ, शंकराचार्य आदि दार्शनिक आचार्य दक्षिण में जन्मे और उत्तर भारत में पूजित हुए। अतः हम कह सकते हैं कि बाह्य विविधताओं के होने पर भी आंतरिक सांस्कृतिक एकता से भारत राष्ट्र का स्वरूप बना है।

सन् 1914 में डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी ने The Fundamental Unity Of India पुस्तक जो लंदन से प्रकाशित हुई, में विस्तार से प्राचीन साहित्य के प्रमाणों के आधार पर भारत की एकता, विशेषकर भौगोलिक एकता, का प्रतिपादन किया है। राष्ट्र का प्रथम उपादान भौगोलिक क्षेत्र का ज्ञान है और भारतवासी इसे बहुत पहले जान चुके थे। इसी का आधार लेकर डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने 1954 में विस्तृत अध्ययन द्वारा भारत की भौगोलिक एकता नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा, जो इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमें उनके द्वारा भूमि सूक्त का जो गंभीर विवेचन किया गया है उससे राष्ट्र चेतना से अनफप्राणित भारत भूमि का सम्पूर्ण स्वरूप सामने आया। अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम और भक्ति की भावना भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही देखी जा सकती है, 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

विष्णुपुराण में भारतवर्ष के नाम, सीमाओं, जनों भू भागों, नदियों, पर्वतों आदि का गौरवमय चित्रण किया गया है। इसका विस्तार उत्तर में हिमालय तक तथा दक्षिण में समुद्र (हिन्द महासागर) तक है। नौ सहस्र योजन इसका विस्तार है। महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, तथा पारियात्र नामक कुल पर्वत इसी के अंतर्गत है। कन्याकुमारी से गंगा तक फैला यह प्रदेश। इन भौगोलिक विवरणों से देश के स्वरूप का जो बिम्ब उभरता है उससे पुराणकार की सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्रीय इकाई

के रूप में देखने की भावना अत्यंत स्पष्ट होती है और साथ ही भारतीयता के प्रति भी आत्म गौरव का भाव व्यक्त होता है।

वैश्विक नेशनलिज्म

राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद शब्द अंग्रेजी के नेशन और नेशनलिज्म का रूपांतरण है जो लैटिन शब्द Natio से बने हैं, जिसका अर्थ होता है जन्म या वंश। इसप्रकार व्युत्पत्ति के दृष्टिकोण से राष्ट्र और राष्ट्रवाद एक तत्त्व 'जाति' की ओर संकेत करते हैं। राष्ट्र या राष्ट्रवाद की अवधारणा की व्याख्या सरल शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है। राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद एक मनोभाव है जिसका आधार व्यक्ति का अपना राष्ट्र है। अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, विचारधारा, साहित्य, कला, जीवन दर्शन आदि के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम और स्वाभिमान की भावना जो उसमें रहने वाले लोगों में स्वतः उत्पन्न होती है राष्ट्रीयता है। जब हमारी राष्ट्रीय भावना व्यापक रूप लेती है तो वह अंतर्राष्ट्रीयता होती है। उदात्त राष्ट्रीयता और वैश्विक राष्ट्रीयता में कोई भेद नहीं है। इसमें विश्व बंधुत्व और सहअस्तित्व के भाव विद्यमान होते हैं। आज कई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं हैं जो देशों के बीच सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षिक आदान प्रदान का कार्य करती हैं। वैश्वीकरण या ग्लोबलाइजेशन की अवधारणा इसका नया रूप है, जो संस्कृत भाषा के प्राचीन सुभाषित वाक्य वसुधैव कुटुम्बकम् को चरितार्थ करता है। यजुर्वेद में कहा गया है 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम' अर्थात् जहाँ सारा संसार एक घोंसले के समान हो जाता है।

आज समस्त संसार में वैश्विकवाद या उदारवाद बनाम राष्ट्रवाद के बीच एक विमर्शात्मक द्वंद्व चल पड़ा है जिसने ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, रूस, टर्की भारत आदि देशों को अतिव्यापित किया है। ब्रेज्जीतवाद और ट्रम्पवाद वैश्वीकरण के प्रतिक्षेप का द्योतक तो है ही, साथ ही राष्ट्रवाद के पुनरुद्भव का परिचायक भी। इस राष्ट्रवाद बनाम वैश्विकवाद ने जिसप्रकार ब्रिटेन अमेरिका और अन्य राष्ट्रों में एक गहरा राजनीतिक विभाजन पैदा किया है उससे लगता है कि अंततः राष्ट्रवाद और वैश्विकवाद में से एक पक्ष जीतेगा और दूसरा परास्त होगा।

अतः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि भारत विश्व का विशालतम लोकतान्त्रिक राष्ट्र है। इसकी विकास यात्रा नदी घाटी से प्रारंभ होकर राष्ट्रभाव और विज्ञान के उत्कर्ष की ओर अग्रसर है। विविध समुदाय के एकत्व सांस्कृतिक मूल में भारतीय सांस्कृतिक दर्शन एवं संस्थाओं की ऊर्जा है जो वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, मठों, धाम आश्रम और महाकुम्भ आदि द्वारा अभिव्यक्त है। शंकर की ज्ञानमीमांसा, रामानुज, मीराबाई चैतन्य की भक्ति मीमांसा, टैगोर गाँधी एवं अम्बेडकर की जीवन दर्शन भारतीय राष्ट्रवाद के वैश्विक दृष्टि की परिचयक है। भारतीय राष्ट्र पाश्चात्य राष्ट्र से भिन्न है, क्योंकि इसके मूल में दर्शन एवं संस्कृति का आधार है।

सन्दर्भ

1. प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्। नात्मप्रियहितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्। (अर्थ .1/18)
2. अशासंस्तस्करान् बलिं गृहणाति पार्थिवः तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते। मनफस्मृति, 9/254.
3. ऋग्वेद, 4/42/1, 'राष्ट्रं क्षत्रियस्य'
4. ऋग्वेद, 10/109/3, 'राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य'
5. यजुर्वेद 10/2/3 'वशशसेनो असि राश्टर्दा राष्ट्रममुश्मै देहि 'राश्टर्दा राष्ट्रं मे देहि '.
6. अथर्ववेद, 12/1/8, पृष्ठ73.
7. अथर्ववेद भूमिसूक्त (12/1/12), माता भूमिः पुत्रे अहं पशथिव्याः ,

Globlization And Cultural Identity With The Specific Study of *The Namesake*

Ishrat Fatma

Research scholar
MRIIRS, Faridabad

Dr. Shivani Vashist

Associate Professor, Dept of English
MRIIRS, Faridabad

Abstract : With the growth of globalization, more and more Indians are leaving their country towards the nations like United States and different other countries to fulfill their dreams of greater accomplishments related to their personal and professional life and for the better prospects. But, this displacement from their motherland made them feel alienated and lonely. They are confronted with the problem of alienation and marginalization in the process of assimilation with the new culture of the foreign land, completely unknown from their own. They lead a divided life between their sweet past full of memories of their relatives and friends and in a foreign land completely unfamiliar and hostile. Leading a life of dilemma whether to stick to the older values or get dissolved in new culture of an unknown land without any emotional bonding. The novel *The Namesake* of Jhumpa Lahiri, delves deep into the inner psyche of characters and displays the clash of two different cultures. In the text Ashoke and Ashima reside in New York the Queensboro Bridge over the East River in New York and the Howrah Bridge over the Hooghly in Calcutta symbolically joins the two cities and draws our attention towards the comparison of two different cultures. In her novel, *The Namesake* the merging of the two cultures- United States and Indian, is very beautifully done. The present paper examines this novel keeping in view of the globalization and cultural hybridization, making the characters feel more attached to their motherland and feel lots of love and respect to their own culture. It displays, not only their struggle for the quest of identity but their continuous effort to restore the lost dignity of their cultural heritage, which is their own, reflecting their original self.

Keywords : globalization, cultural hybridization, alienation, identity crisis, cultural dilemma, trauma, emotional bonding, immigrants' experience, multiculturalism.

Jhumpa Lahiri (real name Nilanjana Sudeshna) was born in 1967, in London, and raised in Rhode Island. She graduated from Barnard College, passed her M.A. at Boston University, and achieved a Ph.D. degree in Renaissance Studies. Her first collection *Interpreter of Maladies* (1999) won the 2000 Pulitzer Prize for fiction. *The Namesake* (2003), is her first major novel, was named the New York Magazine Book of the Year. Jhumpa Lahiri paints the picture of Indian immigrants living in U.S.A. in a very minute and sensitive way. In the novel she probes into her character to find the complexities of human relationships focusing on a class of people, living in the west, under the parenthood of Indian father and mother. The novel *Namesake*, as a piece of literature, is a text presenting the combination of culture and society as the source focusing on multiculturalism and global issues. The present paper displays the dilemma of identity and shows the elements of belongingness in the world of globalization. This is a work dealing with diasporic experiences and strings together the problems of identity crisis, cultural conflicts and, ethnicity. The pervading sense of belongingness makes the expatriates' picture clear. The immigrants struggling hard with the problems of alienation and loneliness to survive and feel at home in a foreign land, and

the trauma they face in their everyday life due to their distance from their homeland.

Jhumpa Lahiri in her novel has presented the expatriates problems of identity crisis, ethnicity, cultural and racial conflicts, and a sheer sense of belongingness, loneliness and alienation making their life full of trauma. Leading a divided life between the home land and host land the migrants are continuously indulged in a battle within himself resulting into a psychic turmoil. Struggling constantly with the problems of marginalization, the immigrants are surrounded with social inequality, cultural indifference, alienation and homelessness.

Their yearning for the home land filled with tradition and sustenance is confronted with a world in the blind chase of unlimited freedom materialism. The immigrants are oscillating between old values with less interaction with their relatives and friends living far-off or to lose their ownself and get assimilated with the new and overwhelming culture of the host land.

Cultural Identity and Globalization

Identity is, an individual's set of behavioural or personal characteristics by which he or she is recognizable as a member in large number of people or group. With the growing strength of cultural identities the abundant power of Globalization exploded and swept away as a flood tide penetrating the world's diverse cultures, uprooting the global traditions, identity concepts customs and resulted in the dislocation of people and producing cultural hybridity mitigating the differences between, locally defined cultures which had framed our identities since past. In the process of hybridization the strong materialistic cultures of capitalist countries like the West and particularly, the United States, spread all over the world the standardized version of their cultures and dominated over the comparatively weaker cultures of the developing world that have under continuous threat. *The Namesake*, Lahiri's debut novel is a social document of a perplexing bicultural universe that analyses the values and norms of both the New World and the Old with kind of double consciousness. In America's multicultural matrix her Indian –American characters are the victims of the contamination of inter –civilizational alliance and multiculturalism. They make their occasional visits to India to enhance their cultural identity; and in America's bicultural universe they endeavour to maintain a fine balance, a process of syncretization. These characters, mostly the Indians of Bengali origin, continuously make efforts for emancipation from their dislocation, displacement and disorientation.

Various aspects and challenges of immigration and assimilation are explored by Jhumpa Lahiri in her first novel, *The Namesake*. Lahiri offers insight into the everyday life of one family the Gangulis, who come to the United States but live separate from the American culture.

The crucial, painstricken experience of alienation, of being stranger in a foreign land, is prominent throughout the novel. Throughout her pregnancy, Ashima Ganguli is afraid about raising a child in a 'country where she is related to no one, where she knows so little, where life seems so tentative and spare.' (6) Her son, Gogol, will feel at home in the United States in a way that she never does. When Gogol is born, Ashima mourns the fact that her close family does not surround him. It means that his birth "like most everything else in America, feel somehow haphazard, only half true." (20-23) when she arrives home from the hospital, Ashima says to Ashoke in a moment of angst, 'I don't want to raise Gogol alone in this country. It is not right. I want to go back.' (Lahiri, *The Namesake*)

Ashima feels alienated in the suburbs; this alienation of being a foreigner is compared to 'a sort of life long pregnancy.' because it is a perpetual wait, a constant burden, a continuous feeling out of sorts.... something that elicits the same curiosity from strangers, the same combination of pity and respect." Gogol also feels alienated, especially when he realizes that "no one he knows in the world .in Russia or India or America or anywhere .shares his name. Not even the source of his namesake..

The feeling of alienation is closely related to loneliness with regard to Ashima. She is living alone in the house on Pemberton Road and she does not like it all. She "feels too old to

learn such a skill. She hates returning in the evenings to a dark, empty house, going to sleep on one side of the bed and waking up on another.' (161)' At the death of Ashoke when Maxine comes to live with the Gangulis at the time of mourning for Ashoke. Gogol can tell "she feels useless, a bit excluded in this house full of Bengalis." It's the way he is used to, feeling around her extended family and friends in the New Hampshire. (Lahiri, *The Namesake*)

The heart rending feeling of alienation surrounds the life of Moushmi who describes to Gogol as to how she rejected all the Indian suitors with whom her parents tried to match her up. She tells him, "She was convinced in her bones that there would be no one at all. Sometimes she wondered if it was her horror of being married to someone she didn't love that had caused her, subconsciously, to shut herself off." (Lahiri, *The Namesake*) She went to Paris so she could reinvent herself without the confusion of where she fit in.

Gogol feels alienated sometimes in his marriage to Moushmi when he finds remnants of her life with Graham around the apartment they now share together, he wonders if "he represents some sort of capitulation or defeat." When they go to Paris together, he wishes it were her first time there, too, so he didn't feel out of place while she feels so obviously comfortable.

Ashima feels alienated and alone after showering before the party. She "feels lonely suddenly, horribly, permanently alone and briefly, turned away from the mirror, she sobs for her husband." She feels "both impatience and indifference for all the days she must live." She does not feel motivated to be in Calcutta with the family she left thirty years before nor does she feel excited about being in the United States with her children and her potential grandchildren. She just feels exhausted and overwhelmed without her husband.

Lahiri's brings into light the dislocation and location, cultural variance and assimilation, nothingness and identity of an expatriate Bengali family. Ashima joins her husband Ashoke Ganguli in Cambridge, Massachusetts, after marriage. Ashoke harbours the dream of being a part of the American Success-Myth; he is pursuing his doctoral degree and later joins there as a faculty member. While Ashoke rather easily accepts the American way of life while sticking to his Bengali roots, Ashima is discomforted on the foreign soil, the land which somehow becomes her second or adopted 'home'. Because of her own ingrained sense of propriety, she feels stifled and develops antagonism towards the openness prevailing in America. The sense of loneliness grips her, the mood of nostalgia sets in as she starts revisiting her past in Calcutta. She keeps her ears trained, between the hours of twelve and two, for the sound of the postman's steps on the porch, followed by the soft click of the slot at the door."

The novelist very beautifully describes how the issue of 'exile and identity' becomes the main cause of restlessness and disturbance in ties among the family members of the expatriates on the one hand and with the social and cultural milieu of the alien land on the other; even the word 'alien' appeals differently to the first and the second generation. Ashima and Ashoke Ganguli have to confront the question of belongingness in the United States.

While Ashoke appears to have adopted himself to his new surroundings, Ashima, a traditional Indian woman, finds it difficult coming to terms with the American culture. While going through labour pains, the memories of her 'home' haunt her; she remembers about her family in Calcutta. In hospital also she is very disturbed due to the loss of physical and emotional touch with her own place and people. She recalls the 'clock time' in India and the activities her family members might have been engrossed at that point of time when she finds herself 'unmonitored and unobserved by those she loved....' She can not reconcile herself to the culture, social mores of the migrated country and gets anxious over the naming process of her child. As the parents have to get the name of the child registered before leaving the hospital and the letter from her grandmother, residing in Calcutta naming the child has not arrived yet (it never arrives) the child is named Gogol after Ashoke's favourite Russian author, Nikolai Gogol. Her preference for Bengali food, rituals, her efforts in making Gogol understand the Bengali stories and her preference for the American style that her son subsequently adopts—all this shows Ashima's disapproval of American

culture. The trauma and the nostalgia that grips her multiplies her loneliness and makes her feel all the more sad about her displacement from her roots:

For being a foreigner, Ashima is beginning to realize, is a sort of lifelong pregnancy – a perpetual wait, a constant burden, a continuous feeling out of sorts. It is an ongoing responsibility, a parenthesis in what once had been ordinary life, only to discover the previous life has vanished, replaced by something more complicated and demanding. Like pregnancy, being a foreigner, Ashima believes, is something that elicits the same curiosity from strangers, the same combinations of pity and respect. (Lahiri, The Namesake)

The ingrained value system has its stamp on everything the Ganguli's do or think about – be it their beliefs or decisions related to the marriage of their children, the naming of their kids or their reservation about the liberal ways, their desire to cling to their roots or their resistance to the openness of American society, their kids' love for space and privacy. But at the same time, they try to shun their rigidity in adopting the ways of the new culture and gradually become accustomed to them; they also imbibe some traits of the new culture and try to identify with the birthplace of their kids, without breaking from their roots. This characteristic of imbibing cultural strings into oneself, is the attraction of diasporic writers. The delineation of the predicament of the immigrants becomes the obsession of diaspora writers. Salman Rushdie argues ... 'our identity is at one place plural and partial... sometime we feel that we straddle between two cultures ...' Lahiri explores this arena in her work extensively.

The ingrained value system has its stamp on everything the Ganguli's do or think about – be it their beliefs or decisions related to the marriage of their children, the naming of their kids or their reservation about the liberal ways, their desire to cling to their roots or their resistance to the openness of American society, their kids' love for space and privacy. But at the same time, they try to shun their rigidity in adopting the ways of the new culture and gradually become accustomed to them; they also imbibe some traits of the new culture and try to identify with the birthplace of their kids, without breaking from their roots. This characteristic of imbibing cultural strings into oneself, is the attraction of diasporic writers. The delineation of the predicament of the immigrants becomes the obsession of diaspora writers. Salman Rushdie argues ... 'our identity is at one place plural and partial... sometime we feel that we straddle between two cultures ...' Lahiri explores this arena in her work extensively.

Lahiri's *The Namesake*, thus viewed projects Ashima and Gogol as cultural survivors in America's multicultural milieu. They demonstrate the lives of hybridity, inbetweenness and liminality. It is difficult for them to maintain cultural insularity. Lahiri's Gogol is every Indian immigrant in foreign land who suffers from isolation and alienation and in continuous search for spiritual solace in cross borders societies.

The main attraction of the text is the clash of two different cultures pertaining to two worlds that Ganguli family continuously faced. The assimilation and hybridization of new culture among the immigrants is not based on the principle of harmony or variety in unity, on the contrary it is based on the false concept of various and confusing identity. The ingrained Indian philosophical thought of 'Vasudhaiv Kutumbakam' is undoubtedly obvious. Multi-culturalism or hybridization of different cultures should be welcomed and incorporated, spreading the message of universal peace and global fraternity.

I do not want my house to be walled in on all sides and my windows to be stuffed. I want the cultures of all lands to be blown about my house as freely possible. But I refuse to be blown off my feet by any. (Gandhi, 1921)

For the displaced people what so ever being the reason of dispersion, home has a very flexible meaning, which changes along with the current minds but at any cost they should not lose their original identity and cultural uniqueness of which they are recognized. The particular culture of one's country should not be revered but efforts should be done to recover and maintain its dignity and honour through the world. The individuality of a person and the cultural identity is intertwined and can not be separated. It should not be subdued into newer influences but its own uniqueness should be maintained. People of

different nooks and corners should and assimilate the new and good elements of the new culture without the fear of losing their own and should maintain the value of their remarkable culture. In the novel *The Namesake*, Ashoke, Ashima and their children also try to recover the dignity of Indian culture and Hindu tradition in order to retain its value and honour and restore its lost dignity in the process of cultural-assimilation..

References

- Agarwal, Malti.(ed) *New Perspectives on Indian English Writings*. Atlantic Publishers and Distributors (p)Ltd-2007.Print
- Das, Nagmananda. *Jhumpa Lahiri: Critical Perspectives*. Pencraft International, New Delhi.2008. Print
- Dhawan, R.K. and Pabby D. K. *Multiculturalism-Canada and India*. Prestige Books. New Delhi.2006.Print
- Dwivedi, O.P. *Literature Of The Indian Diaspora*. Pencraft international. New Delhi.2011.Print
- Lahiri, Jhumpa. *The Namesake*. Houghton Mifflin Company:NewYork.2003

THE SPIRITUAL BASIS OF INDIAN CULTURE

By Prof (Dr) Anjani Kumar Jha

HOD, Media & Mass Communication
NIMS University, Rajasthan, Jaipur

Abstract: Cultural is like the foundation of building; civilization is its superstructure. Culture is like the subconscious and unconscious mind; civilization is like the conscious mind. Just as the subconscious mind governs and guides the conscious mind, civilization is governed and guided by culture which is, as it were, the collective unconscious. The principles, which form the foundation of India's cultural heritage, were established as the result of observation, study and experiments of facts of human existence.

Keywords: Culture, Cosmic, Existence, Humanity, Generation, Spiritual, Universalism.

Introduction: The Mundaka Upanishad declares that the science is greatest which makes man know that which never changes and by knowing which everything is known. Even in the two known non Brahmanical movements – Jainism and Buddhism.

Historical survey: In the first phase, the Aryans and Dravidians interacted with each other and Sanskrit language and the Vedas came into existence.

The second phase of Indian cultural history is dominated by the two great revolts against the Vedic culture by the two streams of Shramana culture: Jainism and Buddhism. In the third phase, we find ancient Indian culture- a product of Vedic, Jain and Buddhist spiritual traditions-grappling with violent and aggressive Islam. In the fourth phase of the Indian cultural history, India had to face British rule and Western materialism.

Spiritual life is the true genius of India. India's pride is that in almost every generation and in every part of the country' from the time of her recorded history, she has produced these holy men who embody for her all that the country holds most dear and sacred.

Spirituality and Indian culture: Spirituality is the outcome of living a life centred in dharma. Dharama is not a set of dogmas and beliefs but the working of universal cosmic order which keeps life together, leading man to ultimate freedom from all limitations. and swami vivekanand believed that freedom is what every religion tries to aim at. He traces how the whole journey of man's dream of freedom finally finds its fulfilment in experiencing the self:

The search for a freedom is the search of all religions; whether they know it or not, whether they can formulate it well or ill, the idea is there even the lowest man, the most ignorant, seeks for something which has power over a nature's laws.

Indian context: Spirituality and culture are synonyms in the Indian context. To be cultured, in the highest sense, is to be spiritual. The more advanced spirituality is the hallmark of a highly evolved mind. spirituality is the manifestation of the fruits which mankind gains when it seeks the infinite, tries to breakdown all limitations and barriers. As vivekanand ji put it, The world is waiting for the grand idea of universal toleration. it will be a great acquisition to civilisation.

The Immortal India: The one character of Indian thought is its silence, its calmness. It is always the silent mesmerism of Indian thought. Silent, unperceived, yet omnipotent in its effect, it has revolutionised the thought of the world.

It is religion that forms the very care of the national heart, it is the backbone, the bed-rock, the foundation upon which the national edifice has been built. Politics, power, and even intellect form a secondary consideration here. It is the one consideration in India.

One American writer, Mathew S. Pugh, writes, what does Vedanta offer America? Americans need a scientific religion which values individuals, equality, generosity, compassion, self-effort, optimism, scholarship, beauty, universalism and especially practicality. Vedanta supplies all these. Indian culture was, is and will be spiritual for all eternity. Spirituality, is the other side of Indian culture. And India is destined to maintain and preserve spirituality. The foundation of Indian culture lies in this spiritual discovery of the Rishis. This spiritual ideal has inspired countless saints and sages from time immemorial and continues to do so for all times.

An Eternal Fountainhead: India's rich and profound spiritual tradition that forms the backbone of India's external culture is an authentic record of the realizations of rishis constantly engaged in consciousness research. The truths that they actually "saw" not through the eyes or the senses but through supersensitive perception, form a dynamic and vibrant body of knowledge created through their exploration and insight into the mystery of consciousness.

Romain Rolland spoke of Sri Rama Krishna as being the consummation of the spiritual life lived millennia upon millennia by millions of people in India who devoted their lives for then cultivation of spiritual knowledge. This profound spiritual culture is as eternal and as imperishable as the God or soul that this spiritual culture teaches and embodies.

Embodiment of Culture: According to the economic historian Angus Maddison, India had the world's largest economy during the years 1 AD and 1000AD. And India continued to be a major economic power till the British systematically reduced it to one of the poorest nations on earth. All that is old or ancient is not necessarily outdated and all that is new may not be good, even if it is fashionable. In this simple advice lies the key to understanding young Indian's predicament.

In India religion was never shackled. No man was ever challenged in the selection of his Ishta Devata, or his sect or his preceptor, and religion grew, as it grew nowhere else. On the other hand, a fixed point was necessary to allow this infinite variation to religion, and society was chosen as that point in India.

Magnanimous and Modest: Swami Vivekanand is of the view that modern civilization touches only the surface of human life. He said (collected works, 3.291)

We all know in modern times of nations which have masses of knowledge, but what of them? They are like tigers, they are like savages, because culture is not there. Knowledge is only skin-deep, as civilisation is, and a little scratch brings out the old savage. Since Indian culture is divine in content and outlook, it considers everything and everybody as God.

Internal Nature: Indian culture advocates and practises conquest of internal nature. The rishis and yogis of the country gave priority to the conquest of the internal nature or mind. This conquest of the internal nature is able to make man in India contented, accommodative and living in outlook. The basic propensity of the Indian mind is to live in tune with nature and not interfere with it. Indian culture is unique in the sense that it turns the mind inward and makes life lovable, live-able and peaceful under all circumstances, fluctuations of fortune and vagaries of nature.

Human society cannot function without Dharma. Our culture honours relations. It rests on relations and it promotes and sustains relations in turn, as Sri Krishna says in Bhagvad Gita (3.11), on the basis of parasparam bhavayanath, namely mutually co-operative relation. Our tradition and culture mutually and co-operatively related individual to families, families to communities and communities to larger society and the larger society to the country and finally the country to the world on the Principle of Vasudhaiva Kutumbakiam (the whole earth in one family). No other ancient civilisation even thought of the world as family; the modern civilisation look at this world as market.

Jean Pie Lehmann, Ex advisor to the world organisation wrote in 2006 that what is need is global ethical and spiritual role model for which the best candidate to fill the spot is India with non-conflicting Hinduism, adding that globalisation cannot work without Hindu way of life.

Striking Feature: A.L Basham, author of The Wonder that was India, writes At most periods of her history India, though a cultural unit, has been torn by internecine war.... Yet our overall

impression is that in no other part of the ancient world were the relations of man and man, of man and the state, so fair and humane.... In all her history of warfare Hindu India has few tales to tell of cities put to the sword or the massacre of non combatants— There was sporadic cruelty and oppression no doubt, but in comparison with conditions in other early cultures, it was mild. To us the most striking of ancient Indian civilization is its humanity.

Conclusion: Renunciation and spirituality are the two great ideas of India, and it is because India clings to these ideas that all her mistakes count for so little.

References:

- Life of swami Vivekananda by His Eastern and Western Disciples, Advaita Asharam, Kolkata.
- Becoming Indian: The Unfinished Revolution of Culture and Identity by Pavan k.verma, penguin.
- Swami Vivekananda in the west, New discoveries, Marie Louis Burke, Advaita Asharam, Kolkata.
- Reinhard Bendix, Max weber: an intellectual portrait, University of California press.
- Krishnavatara I the magic Flute by K.M. Munshi, Bhartiya Vidya Bhavan.
- Maddison, Angus, The World History, Academic Foundation, New Delhi.
- A.L Basham, The Wonder that was India.
- Peter Cappelli and others, Leadership Lessons from India, Harvard Business Review, March,2010

मध्यकालीन हिंदी भक्ति साहित्य में राष्ट्रीय बोध

डॉ. अनिल कुमार

स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास का साहित्येतिहासकारों ने मोटे रूप में आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल-कालखंडों में विभाजित कर साहित्य और उसकी संवेदना के उद्भव और विकास को समझने-समझाने का प्रयास किया है। भारतीय इतिहास में सामान्यतः मुस्लिम शासन की स्थापना और उसके अवसान तक के कालखंड को मध्यकाल माना जाता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार अवध बिहारी पांडेय की टिप्पणी है कि- 'भारतीय इतिहास में मुस्लिम शासन की स्थापना के पूर्वकाल को इतिहासकारों ने प्राचीनकाल ठहराया है तथा ब्रिटिश शासन की स्थापना के उत्तरकाल को आधुनिक काल की संज्ञा दी है। इन दोनों के बीच का मुस्लिम प्रभुत्व का युग मध्यकाल कहलाता है।' आचार्य परशुराम चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन प्रेम साधना' में कहते हैं कि "भारतीय इतिहास के मध्यकाल का आरंभ ईसा की सातवीं शताब्दी से समझा जाता है और वह उसकी 18वीं शताब्दी तक जाता है।... सन् 600 से सन् 1200 ई. तक का समय साम्राज्य स्थापना के लिए विविध सामंतों के संघर्ष का युग समझा जाता है। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध अर्थात् सन् 1200 से लेकर सन् 1800 ई. तक के युग में मुस्लिम साम्राज्य का क्रमिक उत्थान एवं पतन हुआ।"²

मध्यकाल के विषय में आचार्य द्विवेदी जी की टिप्पणी है कि "यह शब्द अंग्रेजी के 'मिडिल एजिज' के अनुकरण पर बना लिया गया है... उन्नीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य विचारकों ने साधारणतः सन् 476 ई. से लेकर 1553 ई. तक के काल को मध्ययुग माना गया है।"³ आचार्य द्विवेदी जी इस क्रम में अपनी बात को बढ़ाते हुये आगे कहते हैं- "मध्ययुग शब्द का प्रयोग काल के अर्थ में उतना नहीं होता जितना एक खास प्रकार की पतनोन्मुख और जकड़ी हुई मनोवृत्ति के अर्थ में होता है। मध्ययुग का मनुष्य धीरे-धीरे विशाल और असीम ज्ञान के प्रति जिज्ञासा का भाव छोड़ता जाता है तथा धार्मिक आचारों और स्वतः प्रमाण माने जाने वाले आप्त वाक्यों का अनुयायी होता जाता है।"⁴

हिंदी साहित्येतिहास में कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम मिश्र बंधु विनोद में मिश्र बंधुओं ने संवत् 1445 वि. से मध्यकाल का आरंभ माना है। आचार्य शुक्ल⁶ इसकी सीमायें संवत् 1375 वि. से 1900 वि. तक स्वीकार करते हैं। आचार्य द्विवेदी जी⁷ आदिकाल की समाप्ति के अनंतर 1400 ई. से 1800 ई. (आधुनिक काल के प्रारंभ) तक मध्यकाल मानते हैं। यद्यपि उन्होंने उसे मध्यकाल की संज्ञा से अभिहित नहीं किया है, परंतु भक्ति साहित्य के साथ मध्यकालीन विशेषण लगाकर इस नाम से अपनी सहमति प्रकट की है।⁸ श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने संवत् 1400 से 1700 वि. को पूर्वमध्यकाल एवं संवत् 1700 से 1900 वि. को उत्तर मध्यकाल माना है।⁹ डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने हिंदी साहित्येतिहासकारों के 'काल विभाजन' सम्बन्धी विभिन्न मतों की सतर्क समालोचना कर हिंदी साहित्य के समस्त मध्यकाल की सीमायें 1350 से 1857 ई. मानी है।¹⁰

वास्तव में हिंदी साहित्येतिहास में मध्यकाल एक लंबा कालखंड है। इस काल में विशेषकर पूर्वमध्यकाल या भक्तिकाल में धर्म की केन्द्रीय स्थिति हो गई, जिससे इस काल का प्रत्येक जनतांत्रिक अभियान धर्म के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाता है तो दूसरी ओर उत्तर मध्यकाल में 'रति' यानी शृंगार की प्रधानता देखने को मिलती है। लेकिन व्यापक दृष्टि से पूर्वमध्यकाल में केवल भक्ति और उत्तरमध्यकाल में केवल शृंगार-प्रवृत्ति की प्रधानता मानना सही नहीं है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के निष्कर्ष से कहें तो, "संपूर्ण मध्यकाल एक इकाई है क्योंकि पूर्वमध्यकाल की सभी परम्परायें उत्तर मध्यकाल के अंत तक प्रवाहित होती हैं।... पूर्व मध्यकाल में भक्ति के अतिरिक्त स्वच्छंद प्रेम, लौकिक शृंगार एवं वीरता की प्रवृत्तियाँ भी स्वतंत्र काव्यधाराओं के रूप में प्रवाहित रहती हैं। अतः इसे 'भक्तिकाल' कहना एकपक्षीय एवं एकांगी बोध का सूचक है।... उत्तर मध्यकाल में जहाँ कुछ नई परम्परायें स्थापित होती हैं। वहाँ पूर्ववर्ती परंपराओं का भी प्रचलन बराबर रहता है तथा भक्ति, प्रेम, वीरता, रीति आदि की सभी प्रवृत्तियाँ समांतर रूप में विकसित होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं; अतः इसे केवल 'रीतिकाल' या 'शृंगारकाल' तक सीमित कर देना भी अनुचित होगा।"¹¹ अतः पूर्व मध्यकाल उत्तर मध्यकाल से विच्छिन्न या भिन्न नहीं है। ये दोनों एक ही कालखंड के दो पक्ष हैं। समग्र रूप में इन दोनों कालखंडों को 'मध्यकाल' कहना ज्यादा तर्कसंगत है।

राष्ट्रीय बोध का मूलाधार राष्ट्र (अपने समाज) के प्रति प्रेम एवं ममत्व की भावना है। इस भावना का उद्देश्य है समाज की दुर्दशा से पीड़ित देशवासी अपनी मातृभूमि यानी अपने समाज की अवनति के कारणों को दूर कर उन्नति के शिखर पर पहुँचाने

के लिए अनवरत प्रयत्न करें। साहित्य में राष्ट्रीय बोध के दो रूप मोटे में माने जा सकते हैं - (1) स्वर्णिम अतीत की महानता का वर्णन, और (2) अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा का चित्रण। मध्यकाल को सगुण साहित्य धारा में राम-कृष्ण के मार्फत अतीत की महानता का वर्णन है तो निर्गुण धारा में वर्तमान की दुर्दशा पर तल्लख टिप्पणी है। अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा पर भक्तिकालीन साहित्य में टिप्पणी अधिक की गई है। सामाजिक दुर्दशा - जातिपाति, छुआछूत, स्त्री-पुरुष में असमानता, धार्मिक-दुर्दशा, धर्म-सम्प्रदायों की अवहेलना।

राष्ट्रीयता एक निश्चित भू-भाग पर रहने वाले लोगों का एक ऐसा भाव है जो एक जातीयता के बंधन में बंधे-एकता की भावना से युक्त हो, समान संस्कृति, धर्म, भाषा, कला, परम्परा, आचार-विचार, रीति-रिवाज, अतीत के प्रति गौरव या सुख-दुख की अनुभूति से युक्त एक विशाल जनसमूह में विद्यमान एक ऐसी अनुभूति है जो विषयीगत होने के साथ-साथ स्वतः प्रेरित भी है। राष्ट्रीय चेतना धर्म, जाति व राज्य के भेदभाव को समाप्त कर सारे समाज को एकता के सूत्र में पिरो देती है। यह चेतना देश-प्रेम की विशाल सहृदयता, स्वार्थ, त्याग, सहानुभूति एवं उदारता का पाठ पढ़ाती है।

राष्ट्रीय बोध का मूल आधार एक देश का नागरिक होने के नाते वहाँ के व्यक्तियों का अपने आधारभूत अधिकारों की प्राप्ति से है। अंग्रेजों की गुलामी के दौर में जब प्रबुद्ध भारतीयों ने देखा कि अंग्रेजों ने हमसे हमारे मानव होने के सारे अधिकार धीरे-धीरे कर छीन लिये हैं। अनेक तरह की लूट खसोट के साथ अंग्रेजों ने पार्कों, क्लबों और भोजनालयों में भारतवासियों का प्रवेश निषेध कर दिया है। बस फिर क्या था, भारतीयों ने अंग्रेजों के भेदभाव और अत्याचार को समझा और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सारा भारत देखते ही देखते एकजुट हो गया। वैसे यह एक सामाजिक सत्य है कि जब समाज में किसी मानव-वर्ग से मानव होने के अधिकार छिन जाते हैं तब वह मानव-वर्ग अपनी दुर्दशा के कारणों के बारे में सोचता है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करता है। वह मानव-वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो, उस पर थोपे गए निरर्थक नियमों या अयोग्यताओं के प्रति विद्रोह करता है। इस विद्रोह भाव में आत्मगौरव एवं अपनी जाति व समाज की रक्षा का भाव रहता है जो राष्ट्रीयता का मूल है। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में भी समाज के उच्च वर्ग या शासक वर्ग ने धर्म के नाम पर बहुसंख्यक समाज का जीना दुभर कर दिया था। फलतः धर्म सत्ता के विरुद्ध भक्ति-आंदोलन उठ खड़ा हुआ। राष्ट्रीय भावना को यद्यपि भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओं पर अवलंबित आधुनिक विचारधारा बताया जाता है। लेकिन भारत की भौगोलिक स्थिति एवं समय-समय पर यहाँ आकर बसने वाले अनेक मानव-समूहों में समय के साथ घुलमिल जाने के कारण भारतीय संस्कृति में संकीर्ण राष्ट्रीयता के स्थान पर समाज के सामूहिक हित-जाति, धर्म, वर्ण आदि से परे 'हम सभी भारतीय हैं' की भावना के साथ 'मानवतावाद एवं विश्वबंधुत्व' की चेतना शासक की।

मध्यकालीन हिंदी भक्ति साहित्य जिस चेतना, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जीवन-स्थितियों एवं जीवन-विश्वासों से अनुप्राणित है-वह राष्ट्रीय बोध की ही प्रतिध्वनि है। आज राष्ट्र और राष्ट्रीयता, भारत और भारतीयता, संस्कृति और सांस्कृतिकता, आधुनिक और आधुनिकता, परम्परा और पारंपरिकता, प्राचीन और प्राचीनता आदि सभी संदर्भों में मध्यकालीन साहित्यकारों का चिंतन अपेक्षित ही नहीं बल्कि अनिवार्य प्रतीत हो रहा है। इस साहित्य ने मानव-समाज को सांप्रदायिक सौहार्द, सद्भावना एवं मैत्रीभाव का शाश्वत संदेश दिया। भारतीय संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था का व्यावहारिक पक्ष हो या चिंतन का सैद्धांतिक पक्ष या कला अथवा काव्य का सृजनात्मक पक्ष आदि सभी दृष्टियों से मध्यकालीन साहित्य मानुषभाव यानी मानवीय संदर्भ की उच्चतम संभावना का उच्चतम पक्ष प्रस्तुत करता है।

महमूद गजनवी और मोहम्मद गौरी जैसे आक्रमणकारियों ने भारत की शस्य श्यामला भूमि की अपार धन-संपदा को खूब लूटा और भारत की हिंदू जनता पर अनेक अमानवीय अत्याचार किये। इस सबके लिए इन इस्लामी आक्रामकों ने 'कुरान और तलवार' के बल पर इस्लाम का प्रचार-प्रसार किया। हिंदुओं के देवालयों एवं देवमूर्तियों को ध्वस्त कर, हिंदुओं पर जजिया जैसे कई करों का बोझ लाद दिया। तत्कालीन इस्लामी शासकों के ऐसे कार्यों से हिंदू धर्मानुयायियों के मन में इस्लाम और इस्लामानुयायियों के प्रति वैर-भाव बढ़ता गया। ऐसे विकट समय में जनसामान्य वर्ग में पले बढ़े लोगों ने समाज को एक दिशा देने के लिए दीनबंदु दीनानाथ यानी भगवान और उसकी भक्ति का सहारा लिया। इस भक्ति और भगवान के मार्फत एक ओर ये संत, भक्त और सूफी आदि सभी व्यक्ति-व्यक्ति में यानी समाज में आत्मविश्वास शासक कर रहे थे तो दूसरी ओर अन्यायी और अत्याचारी शासक वर्ग को चेतावनी दे रहे थे कि उनकी सत्ता शाश्वत नहीं है। उन सबके ऊपर भगवान की सत्ता है और वह सबको उनकी करनी का फल देगा। समाज में अन्यायी और अत्याचारी शासक वर्ग की सत्ता का अंत भी मानव-जीवन के समान जरूर होगा। धन-दौलत, महल, हाथी, घोड़े, नौकर-चाकर आदि सब यहीं रह जाएगा। मानव के साथ केवल उसके सुकर्म ही साथ जायेंगे। इस सृष्टि का नियंता सब कुछ देख रहा है और उसके घर देर है अंधेर नहीं, वह न्याय जरूर करेगा। इस दृष्टि से समाज को जगाने एवं उसमें आशा का संचार करने की दृष्टि से पूर्वमध्यकाल का साहित्य पूर्णतः ज्ञान और भक्ति एवं प्रेममय होते हुए भी राष्ट्रीय चेतना की ही अभिव्यक्ति है। आज की राष्ट्रीय भावना की कसौटी पर यह साहित्य खरा उतरे या नहीं लेकिन तत्कालीन परिवेश में इसकी भूमिका एवं इसके राष्ट्रीय महत्त्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना व इस्लाम के प्रचार-प्रसार के कारण समय के साथ मुसलमानों की संख्या में भी वृद्धि

हुई। मोहम्मद गौरी के बाद गुलाम, सैयद, खिलजी और लोदी वंश के सफलतानों ने भारत में मुसलमानी साम्राज्य की जड़ें पाताल में उतार दीं। इससे मुसलमान अब निरे आक्रमणकारी न रहकर भारत के ही शासक और निवासी बन गए। ऐसी स्थिति में समृष्टि के अभ्युदय एवं राष्ट्रीय कल्याण की दृष्टि से यह वक्त की जरूरत बन गई थी कि हिंदू-मुस्लिम, सवर्ण और अछूत आदि सभी परस्पर मिलजुल कर रहें। जिस एकता की अनुभूति राष्ट्रीय चेतना को शासक करने के लिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में स्वतंत्रता सेनानियों ने की थी उसी की अनुभूति पूर्व मध्यकाल के संतों, भक्तों एवं सूफियों ने कर ली थी। मानव-मानव में एकता व समता स्थापित करने के लिए एक ओर 'भक्ति' के मार्फत उन्होंने दोनों धर्मों के बाह्याडम्बरो पर कराघात किया तो दूसरी ओर दोनों धर्मों की आधारभूत एकता- 'ब्रह्म तत्त्व' और सभी का एक ही ईश्वर की संतान होने की भावना का प्रचार-प्रसार किया।

मध्यकाल में भक्तिकालीन राजनैतिक अस्थिरता, युद्ध की विभीषिका और हिंदू-मुस्लिम के धार्मिक-सांस्कृतिक मत वैभिन्न्य, हिंदू धर्म के वैदिक-अवैदिक आचार-विचार सहित, ब्राह्मण-बौद्ध-जैन धर्म सम्प्रदाय, शैव-शाक्त-वैष्णव, और सिद्ध-नाथ धर्म सम्प्रदायों में विरोध सहित विभिन्न धर्म-साधनाओं के भ्रमजाल ने समाज में जनसामान्य वर्ग के जीवन को बड़ा दुरूह बना दिया था। ऐसे में भक्ति ने एक आंदोलन का रूप अख्तियार कर लिया और इस भक्ति आंदोलन ने संपूर्ण भारतवर्ष को राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया। भक्ति के आचार्यों-रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, वल्लभाचार्य, निंबार्काचार्य, माध्वाचार्य एवं विष्णु स्वामी जैसे समाज-चिंतकों ने जीव, जगत् तथा ईश्वर के विषय में जो दर्शन प्रस्तुत किया उससे जनता को भक्ति-भावना का आधार मिला। कबीर, नानक, रैदास, दादू दयाल, सुंदरदास, रज्जबदास आदि संतों और सूर-तुलसी जैसे भक्तों तथा जायसी, मझन जैसे सूफी कवियों ने धर्म के आडंबरो व मतभेदों की दीवार को ध्वस्त कर मानवीय सम्बन्धों और आदर्शों में समन्वय स्थापित किया जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिला। यहाँ यह बात गौर करने योग्य है कि आज की परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध उठने वाली समस्यायें मध्यकालीन परिस्थितियों से भिन्न हैं। लेकिन फिर भी धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिकता, जाति-पांति, ऊँच-नीच का भेदभाव, अस्पृश्यता, नृशंसता, अमानवीयता, संस्कृति और सभ्यता की गलत या संकीर्ण समझ, परम्परा एवं इतिहास का असंगत विवेचन-विश्लेषण, असमानता वाली आर्थिक सोच, नारी को केवल उपभोग की वस्तु समझना, क्षेत्रीयता की संकीर्ण भावना आदि के विषय में मध्यकालीन साहित्य विशेषकर भक्तिकालीन, बड़ा ही स्वस्थ एवं मानव कल्याणकारी दृष्टिकोण रखता है। मध्यकालीन साहित्यकार - ऊपर से देखने पर भक्ति और श्रृंगार में आकंठ डूबे हुए थे; बावजूद इसके वे समाज से पूर्णतः कटे हुए नहीं थे। वे समाज की विषम स्थिति पर लगातार साहित्य के माध्यम से टिप्पणी करते रहते थे।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय चेतना को शासक करने के लिए हमारे नेताओं ने हिंदू-मुस्लिम की जिस समानता की बात कही उसे हमारे मध्यकालीन कबीर आदि संतों ने दोनों धर्मों में व्याप्त बाह्याडम्बरो एवं व्यभिचार को देखकर कहा- "अरे इन दोहनु राह न पाई/हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।/वेस्या के पाइन तर सौवै यह देखो हिंदुआई/...../ हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई/कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह हवै जाई।"¹² कबीर, नानक और रैदास जैसे संतों ने हिंदू-मुस्लिम के धार्मिक मतभेदों को ध्वस्त कर 'न हिंदू न मुसलमान' अर्थात् दोनों धर्मों की कट्टरता को समाप्त कर मानवता की प्रतिष्ठा की। इन संतों ने हिंदू मुस्लिम के झूठे श्रेष्ठत्व भाव के स्थान पर विभिन्न मानवीय सम्बन्धों में समन्वय स्थापित किया जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिला।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में राजनैतिक दृष्टि से देश छोटे-छोटे भागों में बंटा होकर भी सांस्कृतिक दृष्टि से एकसूत्र में बंध हुआ था। राष्ट्रभक्ति, सभ्यता और संस्कृति का गौरवगान, स्वातंत्र्य वीरों का आत्मोसर्ग, विदेशी हमलावरों के प्रति घृणा व क्रोध आदि आदिकालीन साहित्य की विशेषतायें रहीं। वीरता और भक्तिपरक साहित्य रचनाओं ने हिंदी भाषा की बोलियों को एकरूपता प्रदान की। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यादर्श के संकेत हमें 'पृथ्वीराज रासो' में ही मिलने लगते हैं। कवि पत्नी पूछती है कि मुक्ति का सार्वजनिक उपाय क्या है। इस पर चन्द्रबरदाई ने उत्तर दिया -

“मन वच क्रम, तिमि जानु तिय, / है न मुक्ति हरि भगति बिन।”

अर्थात् मन, वचन और कर्म से भगवान् की भक्ति करने से ही मुक्ति मिलती है। इस पर कवि पत्नी ने श्रांका व्यक्त करते हुए कहा कि फिर तुम भगवद्गुण का वर्णन छोड़कर, पृथ्वीराज का चरित्र क्यों लिख रहे हो? इस पर कवि चंद ने कहा कि महापुरुष में भगवान् के गुणों का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ता है। महापुरुष की गाथा लिखकर कवि भगवद्गुणों का ही वर्णन करता है- “वही की उपम्मा करैं किति भासों। / वही सब्ब संसार मझै प्रकासों।।”

भगवान् अव्यक्त है और यह जड़-चेतन संसार उसका व्यक्त रूप है। संसार में सद्गुणों का अस्तित्व ही तो भगवद्गुणों के अनुमान का आधार है। हिंदी के भक्तिकालीन कवि भगवान् को संसार में ले आये और पाठक को यह विश्वास दिलाया कि भगवान् के गुणों का अनुकरण करके ही तुम भगवद्-भक्त बन सकते हो। यही कार्य कालांतर में सूर एवं तुलसी ने किया और प्रकारान्तर से कबीर ने भी।

हिंदू-मुस्लिम ही नहीं इन संतों ने हिंदू धर्म में ब्राह्मण और शूद्र का भाव-जो राष्ट्रीय ता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है,

को दूर करने के लिए यानी ब्राह्मणों के श्रेष्ठता के दंभ को नष्ट करने के लिए चुनौती भरे स्वर में कहा - 'तू बाम्हन हौं कासी को जुलाहा, बूझै मोर गियाना।' यही नहीं ब्राह्मण द्वारा स्वयं को जन्म-जात के कारण पवित्र और शूद्र-पंचम वर्ण के व्यक्ति को अपवित्र या अधर्मी ठहराने पर आक्रोश व्यक्त करते हुए ये संत कहते हैं - "जो बाम्हन तू बाहनी जाया, तो और राह हवै कहे न आया।"¹³ मानव-मानव में भेद करने वाले और शूद्रों से घृणा करने वाले ब्राह्मणबुद्धियों से ये संत कहते हैं- "एक ज्योति से सब उत्पन्न, को बाम्हन को शूद्र।" संत रैदास ने समाज में वर्ण, धर्म, जाति आदि के आधार पर व्यवहृत भेदभाव को निरर्थक बताते हुए कहा कि-

‘ ब्राह्मण खतरी बैस सूद, 'रैदास' जनम ते नाहि। / जो चाहइ सुबरन कउ, पावई करमन माहि।’

रैदास परिश्रमपूर्वक कमाकर भोजन करने,¹⁴ सुकर्म करने¹⁵, मंदिर- मस्जिद की एकता¹⁶, हिंदू-मुस्लिम की अभेदता¹⁷, बताते हुए समाज का आह्वान करते हैं-

“जनम जात मत पूछिये, का जात अरु पाता। / 'रैदास' पूत सब प्रभ के, कोउ नहिं जात कुजात।”¹⁸

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से इन संतों का यह साहित्यिक संदेश बड़ा ही महत्वपूर्ण है। ये संत पराधीनता को सबसे बड़ा पाप बताते हैं-

“पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत। / रैदास दास पराधीन सौं, कौन करै है प्रीत।।

पराधीन को दीन क्या, पराधीन बेदीन। / 'रैदास' दास पराधीन कौ, सबहिं समझै हीन।।”¹⁹

राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से संत रैदास की उपर्युक्त यह टिप्पणी किसी भी तरह से मध्यकालीन स्तब्ध मानसिकता की द्योतक नहीं कही जा सकती। ये संत किसी को भी पराधीन स्थिति में नहीं देखना चाहते। वे ऐसा राज चाहते हैं, जहाँ सभी को भरपेट भोजन मिले और अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सभी एक साथ प्रसन्नतापूर्वक जीवनयापन करें।²⁰ मध्यकालीन साहित्य में युगीन यथार्थ या कटु सत्य के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना भी मुखर रूप में व्यक्त हुई है। मुख्यतः संतों ने दीन-हीन तथा दलित-शोषित-पीड़ित जनता के प्रति करुणा व्यक्त की। इन्होंने शासन का भय त्यागकर शासक वर्ग को चेतावनी रूप में एक ओर भगवान का ध्यान दिलाकर एक दिन उनके भी नाश की बात कही तो दूसरी ओर पीड़ित जनता को आश्वासन दिया- 'एक दिन ऐसा होइगा, सब सूं पड़ै बिछोय। राजा, राणा, छत्रपति.....।’²¹ के साथ-साथ कहा 'दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाइ.....'।

राष्ट्रीय जन जागृति की दृष्टि से मध्यकाल में 'धर्म' के नाम पर व्याप्त कर्मकांडों एवं हिंदू-मुस्लिम धर्म में संघर्ष-भाव को देखकर रामभक्त तुलसीदास धर्म के विषय में एक सूत्र वाक्य में कह देते हैं- "परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधिमाई।" राष्ट्रीय बोध की दृष्टि से समस्त मध्यकालीन साहित्य का सारा प्रयास धार्मिक एकता एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना है। तुलसीदास जब जड़ चेतन, देव-दैत्य, सुर-असुर, प्रेत-पितर, गंधर्व, किन्नर आदि सभी के कल्याण की कामना करते हैं तो प्रकारांतर से वे सभी भारतवासियों के कल्याण की कामना करते हैं। वे देश की सारी जनता के समक्ष नतमस्तक हैं-

“जड़ चेतन जग जीव जुत सकल राममय जानि। / बंदउ सबके कमलपद, सदा जोर जुग पानि।।

देव दनुज नर नाग, खग प्रेत पितर गन्धर्वा। / बंदउँ किन्नर रजनिचर, कृपा करहुँ अब सर्वा।”

तत्कालीन समाज में किसानों, भिखारियों, दीन-दुखियों, व्यापारियों और विद्वानों आदि सभी की व्यथा तुलसीदास बखूबी समझते हैं। तत्कालीन समाज में व्याप्त भुखमरी को तुलसी नजरअंदाज नहीं कर सके और अपने आराध्य से ही प्रश्न पूछते हैं और उसके समाधान की विनय करते हैं-

“किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी भाँट, / चाकर, चपल, नर, चोर-चार, चेटकी।।

पेट को पढत, गुनगहत, चढ़त गिरि, / अटत, गहन बन अहन अखेट की।

ऊँचे नीचे करम धरम, अधरम करि, / पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।

तुलसी बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें / आगि बडवागि ते बड़ी हौं आग पेटि की।।”

तुलसी के राम का सारा संघर्ष पृथ्वी से अन्यायी और अत्याचारी व्यक्तियों, (राक्षसों) का सफाया और वैयक्तिक आचरण के माध्यम से राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना था। इस सम्बन्ध में प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी जी की टिप्पणी उद्धरणीय है - "तुलसी की यह विशेषता है कि उन्होंने राम को सामाजिक, जागतिक और समकालीन नैतिक मूल्यों के आदर्शों का जीवंत प्रतीक बना दिया।... तुलसी के यहाँ राम, भक्ति और कविता तीनों का गहरा सम्बन्ध लोकमंगल और विवेक से है।... भारतीय साहित्य में शायद ही कोई ऐसा अन्य पात्र हो जिसका जीवन राम जितना संघर्ष-आकुल हो... राम के शोक और संघर्ष का कारण व्यक्तिगत नहीं लोकहित है। ऐसे पौराणिक और ऐतिहासिक नरेश कम मिलेंगे जिन्होंने राज्य को ऐसे ठुकराया हो, जिन्होंने केवल एक विवाह किया हो, प्रजा की आलोचना के कारण पत्नी का परित्याग कर दिया हो और पुनः विवाह न किया हो। सम्राटों की बात छोड़ दीजिए, सामंत आदि भी अनेक विवाह करते थे, स्वयं दशरथ ने तीन विवाह किये थे। यदि राम का यह सारा आदर्श चरित्र कल्पित है तो भी वह कवियों की आदर्श राजा और आदर्श पुरुष की कल्पना को प्रकट करता है, जो कम

महत्त्वपूर्ण नहीं है।'²² आज दलित और स्त्री चिंतन की दृष्टि से तुलसी की आलोचना की जाती है लेकिन जाति की विसंगतियों के दंश से स्वयं तुलसी ब्राह्मण होते हुए भी परेशान थे। इसीलिए वे कट्टर जातिवादियों को खरे-खरे शब्दों में सुनाते हैं-

“मेरे जाति पाति न चहों, काहू की जाति पाति, / मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को।”

यह कहकर तुलसी जातिवाद, क्षेत्रवाद एवं सम्प्रदायवाद आदि सभी का विरोध करते हैं। ‘राम’ के चरित्र और ‘रामराज्य’ का जो स्वप्न तुलसी ने समाज को दिया उसमें राज-व्यवस्था के चलते भी एक आदर्श तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था के चिह्न मिलते हैं। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार, “भारतीय सभ्यता के बीच राजा धर्म शक्ति रूप है पारस और काबुल के बादशाहों के समान केवल धनबल और बाहुबल की पराकाष्ठा मात्रा नहीं। यहाँ राजा सेवक और सेना के होते हुए भी शरीर से अपने धर्म का पालन करता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि प्रजा की पुकार संयोग से उसके कान में पड़ती है, तो वह आप रक्षा के लिए दौड़ता है, ज्ञानी महात्माओं को सामने देख सिंहासन छोड़कर खड़ा हो जाता है, प्रतिज्ञा के पालन के लिए शरीर अनेक कष्ट झेलता है, स्वर्देश की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में सबसे आगे दिखाई पड़ता है, प्रजा के सुख-दुख में साथी होता है, ईश्वरानुमाने जाने पर भी मनुष्यांश नहीं छोड़ता।... प्रजा अपने सब प्रकार के उच्च भावों का त्याग का, शील का, पराक्रम का, सहिष्णुता का, क्षमा का प्रतिबिम्ब उसमें देखती हैं।”²³

मध्यकालीन भक्ति साहित्य की राष्ट्रीय चेतना वस्तुतः शासक और शासित वर्गों के आपसी हितों की टकराहट का परिणाम था। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन यहाँ सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों और उनकी शोषण प्रणाली से पैदा हुआ। यह आंदोलन उन परिस्थितियों का परिणाम था जो बहुसंख्यक समाज के शोषण के कारण भारतीय समाज में उत्पन्न हो गयी थीं। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के विषय में डॉ. कैलाश नारायण तिवारी ने प्रो. विपिनचन्द्रा के हवाले से लिखा है- “भारत में ब्रितानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक सशक्त राष्ट्रीय संघर्ष का विकास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ। यह संघर्ष भारतीय जनता और ब्रितानी शासकों के हितों की टकराहट का परिणाम था। हितों के इस टकराहट को समझने के लिए भारत में ब्रितानी शासन के आधारभूत चरित्र और भारतीय समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है। विदेशी शासन के चरित्र के ही परिणामस्वरूप भारतीय जनता में राष्ट्रीयता के भाव उठे। उसी चरित्रके कारण एक सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन के उद्भव और विकास के लिए भौतिक, नैतिक, बौद्धिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ पैदा हुईं।”²⁴ प्रो. चन्द्रा की यह टिप्पणी भक्ति आंदोलन पर भी ठीक बैठती है। यह भक्ति आंदोलन जनसाधारण की साधारण मनोवृत्ति में असाधारण एवं अलौकिक की संभावना को देखता है। यह आंदोलन साहित्यकार को बाध्य-सा कर देता है कि न केवल जनसाधारण की भाषा-भंगिमा और उसके परिवेश में पूर्णतः रंग जाओ बल्कि जनसाधारण के मन-मस्तिष्क को भी अपना मन-मस्तिष्क बना लो।

सातवीं शताब्दी में भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ लेकिन सूफी सम्प्रदाय बाद में तकरीबन नौवीं शताब्दी में विकसित हुआ। सूफीमत ने एकेश्वरवाद एवं प्रेम पर बल दिया। सूफियों ने हिंदू जनजीवन से प्रेमाख्यान चुने और उन्हें सूफी विचारधारा में पिरोकर प्रस्तुत किया जिससे दोनों धर्मों के लोग कट्टरता को त्यागकर परस्पर निकट आ सके।

गजनवी और गौरी के आक्रमणों के पश्चात् राजनीतिक दृष्टि से गुलामवंश (1206-1290 ई.), खिलजी वंश (1290-1320 ई.), तुगलकवंश (1324-1412 ई.), सैयद वंश (1414-1451 ई.), लोदी वंश (1451-1526 ई.) और फिर मुगल वंश (1526 से 17वीं शती) का उद्भव और विकास विशेष प्रभावकारी रहा।

इस्लाम के साथ सूफी मत का भी भारत में प्रभाव बढ़ा। परस्पर साथ रहने के कारण दोनों धर्मों के संतों, भक्तों और सूफियों के चिंतन के परिणामस्वरूप धार्मिक कटुता परस्पर क्षीण होने लगी थी। फलस्वरूप हिंदू और इस्लामी दोनों धर्म एक-दूसरे के निकट संपर्क में आये और दोनों धर्मों के अनुयायियों ने धार्मिक कट्टरता को त्याग कर चिंतनधारा की मानवतावादी धारा की निर्मिति की। इस संबंध में जायसी ग्रंथावली की भूमिका में शुक्ल जी की टिप्पणी उद्धरणीय है- “सौ वर्ष पहले कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता ‘राम और रहीम’ की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे।... बहुत दिनों तक एक साथ रहते-रहते हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लगे थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह के मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिंदुओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गये थे और हिंदू मुसलमानों की दास्तान।”²⁵ इन सूफी संतों के आचार-विचार के कारण मुसलमान भारतीय आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन और भाषा को अपनाने लगे। जायसी पद्मावत के अंत में कहते हैं-

“तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहिं। / जेहि महं मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहिं।”²⁶

जीवन की नश्वरता बताते हुए जायसी अपनी कथा के अंत में लिखते हैं-

“कहाँ सो रतनसेन अब राजा? कहाँ सुआ अब बुधि उपराजा?।।

कहाँ अलाउदीन सफलतानू? कहाँ राघव जेइ कीन्ह बखानू?।।

कहँ सरूप पद्मावती रानी? कोइ न रहा जग रही कहानी॥

धनि सोइ जस कीरति जासू, तूल मरै, पै मरै न बासू॥”

जायसी ने ‘पद्मावत’ में अपनी प्रेम-कथा के माध्यम से जाति-मजहब छोड़कर मन-वचन और कर्म से उदार, सहिष्णु और ईश्वर के प्रति समर्पित भाव से जीवनयापन करने पर बल दिया। जायसी पद्मावत में तो प्रेम पर बल देते ही हैं, इसके साथ ही ‘अखरावट’ में वे हिंदू और तुर्क दोनों को एक ही वृक्ष की दो डालें बताते हैं। इन सबका अंत एक दिन निश्चित है और सभी अलग-अलग रास्तों से एक ही जगह जायेंगे। फिर व्यर्थ में विवाद कैसा -

“विरिछ एक लागीं दुइ डारा। एकहिं तें नाना परकारा।

मातु के रक्त पिता के बिन्दू। अपने दुवौ तुरुक और हिंदू॥

जस वै सरग कै मारग माहाँ। तस ए धरति देखि चित चाहा॥”²⁷

जायसी अपने युग के मत-मतांतरों को देखकर समाज को चेताते हुए कहते हैं कि-

“गरब करै, जो हौं-हौं करई। बैरी सोइ गोसाईं क अहई।

जो जानै निश्चय है मरना। तेहि कहं ‘मोर तोर’ का करना?॥

नैन, वैन सरबन बिधि दीन्हा। हाथ पांव सब सेवक कीन्हा॥

जेहि के राज भोग-सुख करई। लेई सवाद जगत जस चहई॥

सो सब पूछिहि, मैं जो दीन्हा। तैं ओहि कर कस अवगुन कीन्हा॥

कौन उतर, का करब बहाना। बोवै बबुर, लवै कित धाना?॥”²⁸

अर्थात् जिसने इस संसार में पैदा किया है, वह (भगवान) एक दिन सभी से हिसाब मांगेगा। मतभेद, संकीर्णता, अहंकार आदि के कारण एक-दूसरे को न समझ पाने की अमानवीयता आदि का जब निर्णय होगा तब जिसने जो किया है, उसी के अनुरूप फल मिलेगा। यदि कोई चाहे कि बबुल बोककर धन काट ले अर्थात् बुरा कर्म करके अच्छा फल प्राप्त कर ले तो यह असंभव है। सभी को अपने कर्मानुसार ही फल मिलेगा।

सूफी कवि जायसी ने ही नहीं बल्कि परवर्ती सभी सूफी संतों ने दोनों धर्मों की कट्टरता को दूर कर मानव-समाज में परस्पर प्रेम और भाईचारे का संदेश फैलाया। प्रसिद्ध सूफी कवि नूर मुहम्मद ‘अनुराग बांसुरी’ में कहते हैं- “का अभिमान-बात मैं कहा- गरब किहें जग कोउ न लहा।”²⁹ इतना ही नहीं धर्म के अभिमानियों-कट्टरतावादियों को संबोधित कर वे कहते हैं कि-

“जानत है वह सिरजनहारा, जो किछु है मन-मरम हमारा।

हिंदू मग पर पांव न राखेऊँ, का जौं बहुतै हिंदी भाखेउं॥”³⁰

यहाँ कवि के मन का मर्म है, दोनों धर्मावलंबियों को प्रेमकथा के मार्ग परस्पर निकट लाना। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि दोनों धर्मों के संतों, भक्तों और सूफियों के कारण धार्मिक वैमनस्य कम तो हुआ लेकिन इसी बीच, भारत पर, लोदी वंश के अंतिम सफलतान इब्राहिम लोदी के शासनकाल में बाबर का आक्रमण हुआ। उस समय बाबर एक आक्रामक था और यहाँ के हिंदू-मुस्लिम निवासियों का अहित करने वाला था। फलतः उसके आक्रमण से दुखी होकर नानकदेव जी भगवान को उपालम्भ देते हुए कहते हैं कि -

“खुरासान खसमाना कीआ जमु करि मुगल चढाइआ।

एती मार दई कर लागै तैं की दरदु न आइया?”

बाबर की सेना ने यहाँ की हिंदू-मुस्लिम जनता का कत्लेआम किया, स्त्रियों का शीलभंग किया-

“इक हिन्दुआणी अवर तुरकाणी महिआणी ठकुराणी।

इकन्हा पेरण सिर खुरपाटे इकन्हा आसु मसाणी।

जिन्ह के बंके घरी न आइया तिन किउं रैण विहाणी?”

यानी हिंदू स्त्रियों की चोटियाँ खोली गईं, मुस्लिम स्त्रियों के बुरके फाड़े गए और जिनके पति घर पर नहीं थे, उनकी क्या दर्शा हुई होगी, ईश्वर ही जाने। यह काल झूठ रूपी अमावस्या की ऐसी काली रात है जिसमें सत्य का चन्द्रमा कहीं नहीं दिखाई देता- ‘कुडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चडिया’। के माध्यम से तत्कालीन अन्यायी-आक्रमणकारी शासन के प्रति प्रतिक्रिया कर नानक आदि संतों ने राष्ट्रीयता की जो चेतना शासक की वह कुछ ही समय बाद सिख गुरुओं के नेतृत्व में सैनिक शक्ति के रूप में संगठित हो गई और ‘पंच ककारों’ के साथ अत्याचारी इस्लामी शासकों के विरुद्ध युद्ध का जयघोष कर दिया। समय के साथ धीरे-धीरे बाबर का वंशज अकबर-साम-दाम-दंड-भेद की नीति का अनुसरण कर भारत में एक केंद्रीय शासन की स्थापना करने में सफल हो गया। फलतः उसे महान् के विरुद्ध से विभूषित किया गया लेकिन उसकी सारी महानता अपने साम्राज्य के विस्तार से सम्बद्ध नीतियों और व्यक्तियों तक ही केंद्रित थी। अन्यथा तुलसी को यह न कहना पड़ता-“भूमि चोर भूप भये।” अथवा “गोड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल, साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड

कराल।”

इस क्रम में यह कहना एकदम सही है कि-मध्यकाल ने राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से विशाल पैमाने पर मानवीय बोधा जागृत किया। यह काल मानव समाज में मानवीय भाव शासक करने के लिए “हिंदू को मुसलमान जागृत के प्रतिरोध के भाव से नहीं भरता, वह इतना ही करता है कि हिंदू और मुसलमान सब को किसी और शासन की प्रजा बनाता है, ऐसे शासन की प्रजा बनाता है, जिसमें न हिंदू-हिंदू रह जाता है न मुसलमान मुसलमान।” इस तथ्य को तुलसीदास इस रूप में व्यक्त करते हैं- “काल कराल, नृपाल कृपाल, न राजु समाज बड़ौई छली है।”

इस काल में शासक वर्ग ऐशो-आराम की जिंदगी में मस्त था। अनेक प्रकार के कर भारतीय जनता पर लाद दिये गये थे। एक ओर इन करों से प्राप्त आमदनी के द्वारा शासक अपने हरमों का रख-रखाव, सुंदरियों की विलास-क्रीड़ा तथा मंदिरा का निर्बाधा प्रयोग कर पाता था तो दूसरी ओर जनता भूख से मरने के लिए बाध्य थी। अकबर का मीना बाजार और जहाँगीर का मंदिरा-पान इतिहास प्रसिद्ध है तो अकाल आदि के कारण जनता भूख से मरने के लिए अभिशप्त थी। यह भी एक ऐतिहासिक सत्य रहा है कि उस समय के समाज में राजे-रजवाड़े और उनके सामंतों का ही जीवन सभी प्रकार के आमोद-प्रमोद के साथानों से भरा था अन्यथा समाज की हालत बड़ी ही दयनीय थी। तुलसी के शब्दों में कहें तो हालात बड़े बदतर थे - ‘खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,.... कहै एक-एकनि सौ कहां जायं का करी?’ तुलसीदास ने तत्कालीन शासक वर्ग की स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता, अनीति एवं तज्जनित जनता की संतप्त दर्शन के चित्र समाज के समक्ष उकेर कर भारतीय मानस को झकझोरा जिससे राष्ट्रीय चेतना के विकास को गति मिली।

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से मध्यकालीन हिंदी भक्ति साहित्य अपना अप्रतीम स्थान रखता है। मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य के भौतिक सिद्धांत मूलतः हिंदू सिद्धांत थे परंतु उन पर मुसलमानों के रीति-रिवाजों का प्रभाव भी था। इस साहित्य ने एक ओर हिंदू धर्म में सुधार-परिष्कार किया तो दूसरी ओर हिंदुओं और मुसलमानों को एक साथ मिलकर रहने का संदेश दिया। मध्यकालीन साहित्य में राष्ट्रीय बोधा के चलते ही तो सिखों और मराठों का उत्थान हुआ। पंजाब में गुरु नानक और उनके परवर्ती नौ शिष्यों यानी सिख गुरुओं ने और महाराष्ट्र में तुकाराम आदि ने शूद्र-ब्राह्मण, हिंदू-मुस्लिम आदि सभी लोगों की समानता पर बल दिया। उन्होंने लोगों को जाति-पाति और धर्म की संकीर्ण मानसिकता को छोड़कर ऊपर उठने का उपदेश दिया। उनके उपदेशों का ही परिणाम था कि पंजाब में गुरु गोविंद सिंह और महाराष्ट्र में शिवाजी जैसे वीर पैदा हुए और अपने-अपने राज्य स्थापित किये। गुरु गोविंद सिंह सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रार्थना करते हैं -

वर देहि सिवां नित मोहि यहै सुभ कर्मन तें कबहुँ न टरौं।

न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं, निसचै करि आपनी जीत करौं।।

सिख हौं सीख आपने ही मन कों इहि लालच हौं गुन तो उचरौं।

जब आयु की औधि निदान बने अंत ही रन में तब जुझि मरौं।।²

भक्तिकाल में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य, राजनैतिक अस्थिरता, शैव-शाक्त एवं विभिन्न धर्म साधानाओं के भ्रमजाल ने जनसामान्य वर्ग का जीवन दुरूह कर रखा था। ऐसे में भक्ति के आचार्यों-रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, खरख के जीव जगत् और ईश्वर सम्बन्धी विचार कबीर, नानक, सूर, तुलसी और जायसी का चिंतन छनकर ‘मानुष सत्य’ के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इन संतों, भक्तों और सूफियों ने धार्मिक मतभेदों की दीवार गिराकर विभिन्न मानवीय सम्बन्धों और आदर्शों में समन्वय स्थापित कर राष्ट्रीय बोधा को दृढ़ता प्रदान की।

संदर्भ-सूची

- 1 पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास, डॉ. अवधाबिहारी पांडेय, सेंट्रल बुक डिपो, पृ.3
- 2 मध्यकालीन प्रेम-साधना, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन लि., इलाहाबाद, सं.-1952, पृ.171-172
- 3 मध्यकालीन धर्म साधना, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा.लि., इलाहाबाद, सं. 1970, पृ.10
- 4 मध्यकालीन धर्म-साधना, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, सं.1970, पृ.10
- 5 मिश्रबंधु, विनोद, भूमिका, पृ.16
- 6 हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, सं.2012, काल-विभाग, पृ.1
- 7 हिंदी साहित्य, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.43 एवं पृ.359
- 8 हिंदी साहित्य, पृ.91
- 9 हिंदी साहित्य का इतिहास (प्रथम भाग), आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ.42-43
- 10 हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.2007, पृ.129
- 11 हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2007, पृ.501
- 12 कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, सं. 2006, पद 247, पृ.271
- 13 रैदास ग्रंथावली, सं. डॉ. एन.सिंह. साखी-106
- 14 वही, साखी-149-151, पृ.152
- 15 वही, साखी-164, पृ.153

- 16 वही, साखी-178, पृ.154
- 17 वही, साखी-187, पृ.155
- 18 रैदास ग्रंथावली, पृ.154
- 19 वही, साखी-225-226, पृ.159
- 20 वही, साखी-227, पृ.159
- 21 रामचरितमानस, तुलसीदास 7-41-1
- 22 लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.2011, पृ.16-17
- 23 गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं.2004, पृ.41-42
- 24 राष्ट्रीय एकता: वर्तमान समस्यायाँ और भक्ति साहित्य, डॉ. कैलाश नारायण तिवारी, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, सं. 1995, पृ. 17
- 25 जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं. मलिक राजकुमार, कांति पब्लिकेशंस, दिल्ली, सं. 2007, भूमिका, पृ.15
- 26 वही, पृ.445
- 27 जायसी ग्रंथावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सं. मलिक राजकुमार, कांति पब्लिकेशंस, दिल्ली, सं. 2007, (अखरावट), भूमिका, पृ. 445
- 28 वही, पृ.448
- 29 अनुराग-बांसुरी, नूर मुहम्मद, सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चंद्रबली पांडेय, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं.-2007, पृ.87
- 30 वही, पृ.89
- 31 नानकवाणी, सं. जयराम मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, सं. 1998, पृ.191
- 32 चंडी चरित्रा, गुरु गोविंद सिंह, पद-231.

राष्ट्रवाद की अवधारणा और हिंदी पत्रकारिता

सुषमा देवी

सहायक प्राध्यापिका राजकीय महिला महाविद्यालय
सिरसा

सुमन रानी

स्वामी विवेकानन्द कालेज ऑफ एजुकेशन
मोनक, संगरूर

आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी शिक्षा विधवाओं की दुर्दशा, छुआछूत आदि जनता की समस्याओं का व्यापक रूप से चित्रण किया गया। भारतेंदु युगीन नवजागरण में एक ओर राजभक्ति दूसरी ओर देशभक्ति है। राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत कर देती है ये पंक्तियां अकबर इलाहाबादी ने कहा है- 'खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो। जब तोप मुकाबिल हो तो, अखबार निकालो।' चितंक, साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर का मानना है- 'सृजक और पत्रकार क्या सचमुच दो अलग अलग व्यक्तित्व हैं। मेरी मान्यता रही है कि वे दो होकर भी कहीं न कहीं एक हैं।'

पत्रकारिता सत्य का शोध एवं मूल्य प्रतिष्ठापना का सतत संघर्ष है। कला, साहित्य, काल, इतिहास के अंधेरे-उजालों के बीच पत्रकारिता सूर्य विधि बनाती राष्ट्रीय लोक चेतना को उद्दीप्त करने का समर्थ समर्थ माध्यम है। गीता में जगह-जगह शुभ दृष्टि का प्रयोग है, जय शुभ दृष्टि ही पत्रकारिता है जिसमें गुणों को परखना तथा मंगलकारी तत्वों को प्रकाश में लाना सम्मिलित है। महात्मा गांधी तो इसमें 'समदृष्टि' को महत्व देते थे। सम्यक हित में सम्यक प्रकाशन को पत्रकारिता कहा जा सकता है। असत्य, अशिव और असुंदर पर 'सता शिव सुंदरम' की शंखध्वनि ही पत्रकारिता है। बालकृष्ण के मत में प्रत्येक पत्रकार अशांतः साहित्यकार भी हैं और प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यतः पत्रकार भी। आज का युग विज्ञान की मधु भरी तुंकार से मस्त हो रहा है। समाचार की विवशता कहूं या पत्रकारिता का आंतक कि हमारा गीतकार कहता है- 'खुलते ही आंखे सवरे की, अखबार दिखाता हत्याएं।'

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में भारतीय पत्रकारिता ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उस समय समाचार पत्र जनता तक पहुंच चुके थे। किसी प्रकार के अन्याय या पक्षपात का प्रतिकार करने के लिए जनता जब उठ खड़ी होती है तो उसे अपनी आवाज बुलंद करने के लिए पत्र पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ता है। उन दिनों जनजागरण का केंद्र कोलकाता नगर था। हिंदी पत्रकारिता का आरंभ वहीं से हुआ। पत्रकारिता को चौथा आधार स्तंभ माना जाता है और जैसेकि साहित्यकार और पत्रकार में फर्क नहीं है, साहित्य समाज का दर्पण हैं, मैथिलीशरण गुप्त की यह पंक्तियां बहुत ही सटीक हैं- "केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

पत्र-पत्रिकाओं से जनता को अनेक तरह का ज्ञान मिला, राष्ट्रीय भावना जागी। प्रथम उत्थान में अधिकतर साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। इनमें प्रयुक्त हिंदी भाषा टूटी-फूटी और अपर्याप्त होती थी। 'भारतेंदु का स्थान हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्यतम है। उन्होंने हिंदी के बढ़ते प्रभाव को दूर करने की भरपूर चेष्टा की। कविवचन सुधा के प्रकाशन से लेकर भारतेंदु के अस्त होने तक, हिंदी पत्रकारिता के विकास का दूसरा उत्थान (1835-1885) पूरा हो जाता है। इस अवधि में हिंदी भाषा का रूप स्थिर और परिमार्जित हुआ, जागरण और सुधार की भावना का प्रसार हुआ तथा अनेक वर्ण और धर्मों में विभाजित भारतवासियों ने अपनी जाति वर्ग के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया। क्रमशः पत्र-पत्रिकाओं में गंभीर लेख निकलने लगे और कुछ शुद्ध साहित्यिक कविताओं का प्रकाशन भी हुआ। उन के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आई।"²

हिंदी पत्रकारिता के तृतीय उत्थान (1886-1900) में 200 से ऊपर छोटी बड़ी हिंदी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। इनमें हिंदी भाषा की शक्ति एवं लोकप्रियता का बोध तो होता ही है-देशव्यापी जन जागरण की सूचना भी मिलती है। कुछ पत्र-पत्रिकाएं मुख्य हैं- 1. बनारस, 2. नागरी नीरद, 3. हिंदी बंगवासी, 4. नागरी प्रचारिणी-पत्रिका, 5. सरस्वती आदि।

हिंदी प्रदेश में भारतेंदु के समय में जो राष्ट्रीय जागरण की लहर आई थी उसे 'हिंदी प्रदीप' ने पूरी शक्ति से जीवित रखा। इस पूरी अवधि में राष्ट्र का नेतृत्व कांग्रेस के नरम या उदार नेताओं के हाथ में था। 'संवत् 1919 और 1924 के बीच

कई संवाद-पत्र हिंदी में निकले। 'प्रजाहितैषी' का उल्लेख हो चुका है। संवत् 1920 में 'लोकमित्र' नामक एक पत्र ईसाई धर्म प्रचार के लिए आगरा से निकला था, जिसकी भाषा शुद्ध हिंदी होती थी। लखनऊ से जो 'अवध अखबार' (उर्दू) निकलने लगा था उसके कुछ भाग में हिंदी के लेख भी रहते थे।³

मुंशी प्रेमचंद ने 'हंस' नामक पत्र का संपादन किया। जयशंकर प्रसाद ने 'दूंदु' पत्र का, पंत ने 'रुपाभ' पत्र का, निराला ने मतवाला को, अज्ञेय ने प्रतीक का, धर्मवीर भारती ने निकष का संपादन किया। हिंदी के लगभग सभी साहित्यकारों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाई है। 'ब्राह्मण' संपादक पं० प्रतापनारायण मिश्र को ग्राहकों से चंदा मांगते-मांगते थक कर कभी-कभी पत्र में इस प्रकार याचना करनी पड़ती थी- "आठ मास बीते जजमान। अब तो करो दक्षिणा दान।"⁴

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र इसे खूब समझते थे इसलिए श्रीमंत होते हुए भी उन्हें बंधी हवा पसंद नहीं थी और 11 वर्ष की अवस्था में ही वे देश-देशों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने निकल पड़े थे। देश की दुर्दशा देखकर हरिश्चंद्र व्यथित हो गए थे- "अब जहं देखहु तंह दुःखहि दुःख दिखाई। हा हा। भारत दुर्दशा ना देखी जाए।।"⁵

23 मार्च 1876 की 'कविवचन सुधा' में भारतेंदु ने एक प्रतिज्ञा पत्र प्रकाशित किया था: 'हम लोग स्वान्तदासी सत्र स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे और जो कपड़ा पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मिति तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लाएंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का विलायती कपड़ा न पहिरेंगे हिंदुस्तान का बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इसी श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र की अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देशहितैषी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे।'⁶

धीरे-धीरे विभिन्न समाचार पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन बढ़ता चला गया। विद्वानों ने हिंदी पत्रिका के विकास क्रम को प्रारंभिक युग, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, स्वतंत्रता पूर्व युग तथा स्वातन्त्र्योत्तर युग पांच भागों में विभक्त किया है। आज भारत में असंगठित पत्र-पत्रिकाएं हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं। प्रमुख दैनिक पत्रों में दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, पंजाब केसरी, दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, अमर उजाला आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। इसी प्रकार कुछ पत्रिकाएं हिंदी साहित्य जगत में अपना योगदान दे रही हैं।

हिंदी पत्रकारिता की प्रथम उपलब्धि यह है कि इसमें भारतवासियों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक चेतना को जागृत किया है। लोकतंत्र की सफलता के लिए पत्रकारिता का विशेष महत्व है। इस दिशा में हमारे समाचारपत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वे जब-तब भ्रष्ट राजनीतिज्ञ और उनके काल-कारनामों का पर्दाफाश करते हैं, समाचार पत्रों के फलस्वरूप ही घर घर में राजनीति का प्रवेश हो चुका है, अधिकांश मतदाता अपने मतदान के महत्व को भली प्रकार से पहचानने लगे हैं। इसी प्रकार सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा जड़ परंपराओं का अनुमोदन करने में भी पत्रकारिता का विशेष योगदान रहा है। यद्यपि भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के साहित्यकार सामाजिक जागरण का बीड़ा उठा चुके थे लेकिन इस कार्य को संपन्न करने में समाचार पत्रों की विशेष भूमिका रही है। इसी प्रकार विज्ञान, कृषि, शिक्षा जगत, समाजशास्त्र, चिकित्सा आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी समाचार पत्रों का योगदान रहा है। समाचार पत्र समाज के निर्माण में भी अपना योगदान दे रहे हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति प्रातः काल होते ही सर्वप्रथम समाचार पत्र की ही मांग करता है क्योंकि वह विश्व भर की घटनाओं से परिचित होना चाहता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पत्रकारिता का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है। आज मानव भोजन के बिना रह सकता है लेकिन समाचार पत्र के बिना नहीं। हिंदी साहित्यकार की रचनाएं प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है। मैथिलीशरण गुप्त जो निम्न पंक्तियाँ अक्सर देखी जाती हैं जिसमें नारी के जीवन पर प्रकाश डाला है-

"अबला जीवन हाय! तेरी यही कहानी। आंचल में दूध, आंखों में पानी।।"⁷

निराला जी, गुप्त जी, प्रसाद, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि साहित्यकारों ने हिंदी भाषा को बहुत महत्व दिया है। हिंदी लेखकों, कवियों ने पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक बुराइयों को समाज में सुधारने पर जोर दिया है। 'शैली में प्रगल्भता और विचित्रता चाहे न आई हो पर काव्य भूमि का प्रसार अवश्य हुआ। प्रसार और सुधार से ही रह-रहकर की जो चर्चा नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना के समय से ही रह-रहकर थोड़ी बहुत होती आ रही थी वह 'सरस्वती' निकलने के साथ ही कुछ अधिक ब्योरे के साथ हुई। उस पत्रिका के प्रथम दो-तीन वर्षों के भीतर ही ऐसे लेख निकले जिनमें साफ-साफ कहा गया कि अब नायिका भेद और शृंगार में ही बंधे रहने का जमाना नहीं है, संसार में न जाने कितनी बातें हैं जिन्हें लेकर कवि चल सकते हैं। इस बात पर द्विवेदी जी बराबर जोर देते रहे और कहते रहे कि कविता के बिगड़ने और उसकी सीमा परिमित हो जाने से साहित्य पर भारी आघात होता है। द्विवेदी जी 'सरस्वती' के संपादन काल में कविता में नयापन लाने के बराबर इच्छुक रहे।⁸ भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी ने ऐतिहासिक महत्व का योगदान किया। महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने हिंदी भाषा के महत्व को स्वीकार किया तथा राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता दी परंतु आज भारत में हिंदी की जो स्थिति है उससे वह अंग्रेजी की दासी बन गई है।

भारत में हिंदी की दुर्दशा को देखकर विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार, अध्ययन अध्यापन तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की किसी बेहतर स्थिति की कल्पना करना सर्वथा अनुचित होगा, फिर भी पत्रकारिता के माध्यम से इसका विकास हुआ है। 'मतवाला' पत्र में यह पंक्तियां प्रथम पृष्ठ पर छपती थी, साप्ताहिक पत्र था।

“अमिय गरल शशि-शीकर, रवि-कर राग-विराग भरा प्याला।

पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला'॥”

'विशाल भारत' संपादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी थे। हिंदी के अधिकांश श्रेष्ठ लेखकों का सहयोग उसे प्राप्त था। राजनीतिक और सामाजिक लेख भी उस में प्रकाशित होते थे। इन सब के मूल में संपादक का व्यक्तित्व ही प्रधान था। चतुर्वेदी का संबंध अधिकांश महापुरुषों से था, पत्रकारिता ही चतुर्वेदी जी का धर्म रहा।⁸

हिंदी में अनेक पत्र सामने आए जैसे- 'बनारस अखबार' राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' ने 'इंदु' अम्बिका प्रसाद गुप्त ने तथा इसी पत्र में जयशंकर प्रसाद की आरंभिक रचनाएं प्रकाशित हुईं। कर्मवीर, 'प्रभा' पत्रों का संपादन माखनलाल चतुर्वेदी ने 'चांद' महादेवी वर्मा, 'हंस' प्रेमचंद्र 'भारत' नन्ददुलारे बाजपेई 'रुपांशु' पंत, प्रतीक अज्ञेय, आलोचन धर्मवीर भारती, 'दस्तावेज' सं० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 'साहित्य अमृत' सं० विद्यानिवास मिश्र 'नया ज्ञानोदय' सं० रवींद्र कालिया लगभग सभी साहित्यकार पत्रकार ही हैं।

'बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की बंगीय हिंदी, पत्रकारिता का भी भाषा-निर्माण की दृष्टि से बड़ा महत्व है हिंदी के श्रेष्ठ शैलीकार बाबू बालमुकुंद गुप्त इस समय 'भारतमित्र' के संपादक थे। भाषा और व्याकरण के असाधारण पंडित गोविंदनारायण मिश्र कलकत्ते में ही थे और हिंदी-बंगवासी में लिखते थे। पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं० माधव प्रसाद मिश्र और पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेई भी कलकत्ते ही थे।⁹

निष्कर्ष

हिंदी पत्रकारिता ने समाज के हर पहलू को उजागर किया है। अनेक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों को उजागर किया है। हम देखते हैं कि कलकत्ता आधुनिक हिंदी गद्य शैली की जन्मभूमि ही नहीं बल्कि इसके क्रमिक विकास और उन्नयन में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस महत्व अधिकांश श्रेय कलकत्ते की हिंदी पत्रकारिता को जाता है। वस्तुतः पत्रकारिता हमें समाज के विभिन्न वर्गों, समस्याओं तथा विचारों को समझने में सहायता देती है। पत्रकारिता दैनिक जीवन का ही एक हिस्सा बन गई है।

संदर्भ

- 1 'हिंदी पत्रकारिता- कल, आज और कल', संपादक सुरेश गौतम, वीणा गौतम, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
- 2 'हिंदी साहित्य का इतिहास' डॉ नगेंद्र संख्या 470
- 3 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ सं. 319, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002
- 4 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी, पृष्ठ सं. 328
- 5 'हिंदी पत्रकारिता', डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ सं.114, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
- 6 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ सं. 451
- 7 'हिंदी पत्रकारिता', डॉ कृष्णबिहारी मिश्र
- 8 'हिंदी पत्रकारिता', डॉ कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठसं. 438
- 9 'हिंदी पत्रकारिता', डॉ कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठसं. 462

मीडिया का राष्ट्रवाद और हाशिये का समाज

डॉ. मधु लोमेश

अदिति महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

मीडिया और राष्ट्रवाद शब्द आधुनिक अर्थों में अतिव्यापक है। आज मीडिया अपने भीतर बहुत सी संस्थाओं विचारधाराओं और व्यक्तियों का संजाल स्वरूप है जिसकी अपनी सैद्धांतिकी है। प्रत्येक समाज में इसकी अवधारणा अलग अलग कोणों से निर्धारित होती है, परिवर्तित होती रहती है। मीडिया की साख अपेक्षित है क्योंकि इससे जनविश्वास जुड़ा है। वर्तमान समय में रिपोर्टिंग के कई खतरे हैं राष्ट्रहित राष्ट्रविरोधी होने की अनुशंसा उसे आज महत्वपूर्ण या महत्वहीन बना सकती है। आजकल पत्रकारों को भी राष्ट्र विरोधी पत्रकार, राष्ट्र प्रेमी पत्रकार कह कर रेखांकित किया जाने लगा है। एक जिम्मेदार संस्था का पर्याय होने के नाते मुख्य धारा की मीडिया आज निशाने पर है, ऊहापोह की स्थिति से युक्त है।

राज्य शब्द से विस्तार प्राप्त शब्द 'राष्ट्र' अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर समान संस्कृति, समान भाषा, समान जातीयता और समान ऐतिहासिक महत्व वाली जनता की अस्मिता का पर्याय है जो निरंतर विविधताओं चुनौतियों से संघर्ष करते हुए राष्ट्रीय संप्रभुता के लिए प्रतिबद्ध रहता है। संचार क्रांति और भूमंडलीय व्यवस्था ने राष्ट्र की अवधारणा को बदल दिया। सीमाओं का अतिक्रमण हुआ, भाषा-संस्कृति, विचारधाराओं पर किसी एक राष्ट्र का प्रभुत्व न रहा। अपने प्रतीकात्मक परंपरागत अर्थ से भिन्न राष्ट्र नए संदर्भों से युक्त हुआ। संकीर्ण अर्थ से अलग 'राष्ट्र' आज व्यापक सोच से युक्त है जो साकार राष्ट्र की प्रतीति नहीं कराता। 'भूमंडलीय प्रवाह में बहते हुए दुनिया का भविष्य राष्ट्र आधारित लोकतंत्रों में निहित न होकर किसी 'ग्लोबल गवर्नेंस' और 'ग्लोबल डेमोक्रेसी' की शीर्ष संरचना में निहित हो गया है जो अधिकांशतः अमेरिकी वर्चस्व से प्रभावित है। "पिछले दशकों में जिस साकार राष्ट्र की रचना भारतीयों के समूहिक उद्दयम का पर्याय थी आज भूमंडलीय संस्कृति के बुलडोजर तले गुजरने को विवश है। आधुनिकता की आड़ में सभ्यता, संस्कृति, विचारधारा और राजनीति जटिल ग्लोबल समीकरणों के दबाव से युक्त है।"

पश्चिमी देशों की मजबूत आर्थिक व्यवस्था के समक्ष नतमस्तक पिछड़े देशों की मानसिकता उनका अंधानुकरण करने की है। अल्पविकसित, अविकसित देशों में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रण जैसे कार्यों के लिए मीडिया साम्राज्य सुभीता साधन है। किसी भी युद्ध के अभाव में अपने साम्राज्य का विस्तार कर लेना, भूमंडलीय विस्तार, अपने लिए नए बाजारों की खोज और कमजोर पिछड़े देशों को वैचारिक गुलाम बना कर अपना शक्ति प्रदर्शन करते हुए मनमाने हित साधना उनका सुनियोजित प्रयास है। कूटनीति द्वारा सरकारों और सरकारी एजेंसियों पर दबाव, मीडिया पर नियंत्रण, बाजार और पूंजी का गठजोड़ भूमंडलीकृत व्यवस्था का ही रूप है। इसमें विश्व के प्रभुत्वशाली देश और पूंजीपति आइकॉन खासी रुचि रखते हैं। बड़ी मीडिया कंपनियाँ जिनका साम्राज्य लगभग सभी देशों में व्याप्त है सुनियोजित तरीके से अपने विचारों का प्रचार प्रसार करती हैं, संस्कृति का दोहन करती हैं और जनसमाज को एक निष्क्रिय उपभोक्ता बनाने का जम कर प्रयास किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय नीतियाँ, कारपोरेट मीडिया घरानों के हित उनका दर्शन राजनीति और संस्कृति पर प्रभुत्व स्थापित करते हुए परोक्ष रूप में क्रियाशील रहता है। उनका कारपोरेट पब्लिक रिलेशन्स तंत्र ताकतवर ढंग से राजनीति और अर्थव्यवस्था का संचालन करता है राडिया टेप प्रकरण इसका स्पष्ट प्रमाण है।

मीडिया का राष्ट्रवाद क्या हो सकता है? एक जागरूक प्रहरी के रूप में कार्य करने को संकल्पबद्ध, लोकतन्त्र का चतुर्थ स्तम्भ जिसने स्वतन्त्रता आंदोलन में मुख्य भूमिका निभाई हो भला आज राष्ट्रवादी चेतना प्रदर्शित करने में संकीर्ण विचारधारा का पोषक कैसे हो सकता है? विश्वास करना मुश्किल हो सकता है पर वास्तव में भारतीय मीडिया का सच कुछ ऐसा ही है। भारत की एकता अखंडता संप्रभुता का पक्षधर होते हुए भारतीय मीडिया को देश, समाज संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में व्यवहार कुशल बनने की अपेक्षा की जाने लगी है। भारत का सामाजिक ढांचा जटिल है विभिन्न वर्गों जातियों समूहों समुदायों के साथ सांझी सोच और समझदारी का निर्वहन करते हुए मीडिया आधुनिक भारतीय समाज की संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान कर सकता है। भारतीय सामाजिक ढांचे के अनुरूप आर्थिक वैषम्य, वर्गभेद, हाशिये के समाज के प्रति चिंताएँ व्यक्त करके जनमत की लहर पैदा करना उसके लिए अपेक्षित है। सामाजिक विकास और जनसरोकार के मुद्दों की अवहेलना कर मुख्यधारा का मीडिया खबरें बनाने और प्रसारित करने में विशेष वर्ग, जाति एवं किसी विशेष दृष्टिकोण के प्रति झुकाव रखता है जिसके बारे में पाठक

दर्शक स्पष्ट रूप से बता सकते हैं कि अमूक पत्र या चौनल किस विचारधारा का पोषक है अथवा किस ओर संकेत किया जा रहा है या किसका पक्ष लिया जा रहा है।

समाज में बहुधर्मी धर्मों, संप्रदायों, विचारधाराओं से निष्पक्ष संबंध रखते हुए तटस्थ रिपोर्टिंग अपेक्षित है पर पूंजी सत्ता के बल पर धार्मिक उन्माद, वैमनस्य का प्रचार प्रसार पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ा है। शाम होते ही सभी प्राइम टाइम चैनल्स कुछ इसी प्रकार के मुद्दों की तलाश शुरू हो जाती है - किसी भड़काऊ विषय, क्षेत्रवाद, किसी विशेष वर्ग, जाति को फोकस करते हुए मनोरंजक बहस के रूप में प्रस्तुति की जाती है। भारतीय सामाजिक संरचना और उसकी मूलभूत बनावट को नजरंदाज करते हुए कट्टर धार्मिकता का बढ़ चढ़ कर प्रचार प्रसार किया जाता है। अति संवेदनशील मुद्दों पर गैर जिम्मेदाराना ढंग से टिप्पणियाँ की जाती हैं। हद तो तब हो जाती है जब न्यायालय में विचारधीन मुद्दों को भी सार्वजनिक बहस बना दिया जाता है। एस एम एस द्वारा जनमत की राय मांगी जाती है। अचानक भारत केवल 'हिन्दू राष्ट्र' के रूप में चित्रित कर दिया जाता है और कभी एंकर अपनी सुविधा अनुसार भारत को 'बहु धर्मी राष्ट्र' रूप में संबोधित करने लगता है.. कैसी हास्यास्पद स्थिति है।

प्रिंट मीडिया की तुलना में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की विश्वसनीयता इन्ही कारणों से कम हुई है। अधिकतर सभी मीडिया संस्थान बड़े कारपोरेट घराने, चिट फंड कंपनी मालिक, पूंजी-निवेशक और सत्ताधारी वर्ग से घनिष्ठता रखते हुए कार्य करते हैं। प्रतिदिन प्रसारण का एजेंडा सुबह सुनियोजित तरीके से तैयार कर लिया जाता है। टी आर पी के खेल के लिए मनोरंजन का तड़का लगाओ-मनवाँछित परिणाम हासिल। 'पद्मावत' फिल्म के मुद्दे को विचारोत्तेजक बनाने के लिए हिन्दू सेना, करनी सेना, मराठा दल आदि को स्क्रीन पर आक्रामक रूप में अवतरित कर दिया जाता है। सिनेमाघरों की तोडफोड, विरोध-प्रदर्शनो को दिखाने में मीडिया की रुचि बढ़ जाती है। धर्म के तथाकथित ठेकेदारों की बाइट्स के लिए मीडिया की बेचैनी देखते ही बनती है। इस प्रकार के मुद्दों की जमकर कवरेज की जाती है और मामले को तूल देने की हर संभव कोशिश। बाकायदा पैनल विशेषज्ञों से बहस का दौर चलाया जाता है। विडम्बना देखिये कि विषय किसी भी प्रकार का हो, हो हल्ला मचता है, चुनिन्दा पैनल विशेषज्ञ वही रहते हैं और मीडिया का अपना तटस्थ निष्पक्ष पक्ष मजबूती से कहीं नहीं दिख पाता।

विभिन्न वर्गों जातियों, समूहों, समुदायों के साथ सांझी सोच और समझदारी का निर्वहन करते हुए मीडिया आधुनिक भारतीय समाज की संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान कर सकता है। कट्टर धार्मिक गुरुओं की चर्चा के माध्यम से देश की अखंडता, अनेकता में एकता के स्वर को तार तार करते हुए एंकर अचानक अपनी एक दिशा तय लेते हैं और हैडलाइन्स में अचानक फ्लैश होने लगता है - इस्लाम खतरे में है या हिन्दुत्व खतरे में है आदि। मंदिर-मस्जिद विवाद में किसका पलड़ा भारी आदि। सामाजिक सद्भाव के स्थान पर धार्मिक कट्टरता, धार्मिक उन्माद पैदा करने राजनीति करने के स्थान पर दूरियों को पाटने का प्रयास किया जा सकता है जो नहीं किया जा रहा। अयोध्या मंदिर मस्जिद निर्माण मसले को हर बरसी पर जोर शोर से उछालने का क्या प्रयोजन हो सकता है? विचारणीय मुद्दों की लंबी फेहरिस्त तैयार की जा सकती है जिन पर मीडिया में चर्चा तक नहीं की जाती। आलम यह है कि संदेह पनप रहा है, द्वंद्व और विवाद भी। सामाजिक सद्भाव और समरसता का सुंदर तालमेल और गंगा जमुनी संस्कृति अपने आप में अद्भुत भारतीय संकल्पना है जिसे गुप चुप तरीके से पद दलित करने की प्रक्रिया जारी है। मीडिया कट्टर नहीं हो सकती और न ही सांप्रदायिक वैमनस्य फैलाने का साधन।

नए दौर की पत्रकारिता का नया चलन है। समाचारों की रिपोर्टिंग का अंदाज नया है, प्री-पेड, पोस्ट-पेड, टॉपअप न्यूज जैसी न्यूज का दबाव झेलते मीडिया संस्थान बड़ी चतुराई से रिपोर्टिंग-तकनीक का मनमाना उपयोग करने की कला में पारंगत हैं। असहमति के स्वरों को दबाना यहाँ सुभाता है, कैमरे के कोण बदलने से ही रिपोर्टिंग का कोण भी बदल दिया जा सकता है। धरने-प्रदर्शन के एंगल घटना का मजमून बदलने में समर्थ हैं। तुष्टीकरण की रिपोर्टिंग से प्रेरित हो मीडिया अपने हित साधने की ओर अग्रसर है। कश्मीर में पत्थरबाजी की घटनाओं को दिखाने के कई एंगल हो सकते हैं। सेना का पक्ष, सरकार का पक्ष, पत्थरबाजों का पक्ष। भाषा के स्तर पर उन्माद भड़काऊ सामग्री परोसी जा सकती है। बिना कारणों की जांच पड़ताल किए किसी को दंगाई, आतंकी, आततायी, आरोपी अपराधी कह कर अधिकतर निर्दोष पीड़ित का पक्ष अनकहा अनसुना छोड़ दिया जाता है। चीनी घुसपैठ की खबरों पाकिस्तानी हमलों से जुड़ी खबरों के माध्यम से दर्शकों में जोश उत्साह भरने की कला से कौन परिचित नहीं है। तथ्यपरक रिपोर्टिंग अपेक्षित है। मीडिया पर जनविश्वास बना रहे इसलिए उसे तटस्थ-निष्पक्ष रिपोर्टिंग के लिए अपनी प्रतिबद्धता दिखानी ही होगी।

भारत जैसे देश में जहाँ आजादी के 70 वर्षों के पश्चात भी जातीय ख्रसमीकरण, सामाजिक ख्र विद्रूपताएँ जहाँ मुंह बाय खड़ी हों वहाँ मीडिया का ऐसा आचरण कई सवाल खड़े करता है। आर्थिक-वैषम्य की खाई निरंतर बढ़ रही है, वर्ग-भेद भारतीय समाज के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। अल्पसंख्यकों और दलित मुद्दों पर स्वस्थ चिंतन-चर्चा नाम मात्र के लिए हो रही है। सरकारों के विकासवादी कार्यों की तटस्थ समीक्षा न के बराबर है और जनमुद्दों पर निष्पक्ष टिप्पणी के स्थान पर अपराध मनोरंजन की सामग्री से मोह हो तो मीडिया की प्रासंगिकता कैसे बनी रह सकती है। सूचना क्रांति के दौर में बड़े पैमाने पर जनसंचार माध्यमों के सक्रिय होने की स्थिति में मीडिया का निष्क्रिय बने रहना और उसकी मनोरंजन संलिप्तता चिंतनीय है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय किसानों की बदहाल स्थिति, कर्ज का बोझ और मौसम की मार से जूझते किसानों की आत्महत्याएँ समाचार पत्रों, न्यूज चैनल्स के लिए महज एक खबर ही हैं। हमारे यहाँ किसानों मजदूरों से जुड़ी खबरों की कवरेज देने के अपने पैमाने हैं। किसान जीवन से जुड़ी खबरें, उनकी समस्याओं और आत्महत्या से जुड़े कारणों की समय रहते खोज खबर लेने की सुध मीडिया को नहीं है पर मरणोपरांत खबर प्रकाशित प्रसारित कर अपने कर्तव्य की पूर्ति करने में उसे कोई गुरेज नहीं। यदि हम राष्ट्रवादी विचारों के समर्थक हैं तो हमे असमान श्रम मानकों, न्यूनतम वेतन संबंधी विसंगतियों पर बातचीत करनी होगी, बाल मजदूरी पर जनचेतना जागृत करने के प्रयास करने होंगे। असंगठित क्षेत्रों की अनगिनत समस्याएँ हैं जो सामने नहीं आ पातीं। वैकल्पिक मीडिया में बचपन बचाओ आंदोलन जोर पकड़ता है, मजदूर संगठनों की समस्याओं, आंदोलनों, विस्थापितों की पीड़ा की गूँज होती है और हमारा आधिकारिक मीडिया मौन साधे रहता है मानो कुछ हुआ ही न हो। सोशल मीडिया पर कथित मुद्दों पर टिप्पणी करते हुए मुख्य मीडिया की भरपूर आलोचना मिलती है।

भारत जैसे देश में जहाँ सदियों से बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक एकता और व्यापक सामाजिक बोध रहा है, साहित्य ने भी इसमें अपना उल्लेखनीय योगदान देते हुए इसे और समृद्ध किया था, अफसोसजनक है कि मीडिया ने इस सांस्कृतिक-सामाजिक बोध को समाप्त कर दिया। भारत के स्थान पर इंडिया का परचम लहराया जा रहा है। भारतीयत्व, भारतीय संस्कृति के पोषक तत्व लुप्त हो रहे हैं। इनका अलग से चित्रण नहीं किया जा सकता वरन यह अनस्यूत धारा अनवरत बहती रहनी चाहिए। साहित्य से दूरी बना लिए जाने मीडिया में सामाजिक सम्बन्धों की शुष्कता, असंवेदनशीलता बढ़ी है। साहित्य और पाठकों की समरसता, सामाजिक बोध का उत्कर्ष हम इतिहास के पन्नों में और आज भी तलाश सकते हैं जब पाठकीय-अभिरुचि का परिष्कार करते हुए साहित्य ने जनसमाज के प्रति सार्थक भूमिका का निर्वहन किया। इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों के बढ़ते वर्चस्व से साहित्य के प्रति उदासीनता बढ़ी है। जन-संस्कारों का परिष्कार नहीं हो पा रहा परिणामतः समाज में यांत्रिकता का समावेश, कृत्रिमता का संचार हो रहा है जो किसी भी समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। एक गौरवशाली राष्ट्र के नागरिक होने के नाते जिसकी उच्च आदर्शयुक्त परंपरा है, जिन संस्कारों के अनुशीलन को पश्चिमी देश भी लालायित हैं वहाँ एन्द्रिय बोध को विचार-बोध, सामाजिक-बोध से ऊपर स्थापित करने की मंशा फलीभूत हो रही है। भोग और योग का अद्भुत समन्वय, संघर्ष का भाव, कर्म प्रधान जीवन, सामाजिक सौहार्द जिस भारत राष्ट्र की अमूल्य धरोहर रही है वर्तमान मीडिया क्षणिक सुखों का अभ्यस्त बना भावी पीढ़ी को जातीय गौरव, स्वाभिमान एवं सांस्कृतिक गौरव से वंचित रख रही है। परिणाम स्वरूप सामूहिकता के स्थान पर वैयक्तिक सुखों की लालसा बढ़ी है। नैतिकता का ह्रास हुआ है। व्यावसायिक दृष्टि केवल मीडिया व्यवहार का सच नहीं रही, आज भारतीय जनसमाज का भी यही कटु सत्य है।

अभिव्यक्ति की नयी दुनिया ने संचार की अवधारणा को बदल कर रख दिया है। माध्यमों का बढ़ता वर्चस्व उसकी ताकत का परिचायक हैउसकी बढ़ती लोकप्रियता से 'लोक तत्व' लुप्तप्राय है जो भारतीय जीवन की संजीवनी है समाज के सभी तबके के प्रति उसकी जवाबदेही हो, समाज में स्त्री का सम्मान किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है मीडिया में बढ़ चढ़ कर ऐसे प्रयास किए जाएँ। नारी देह प्रदर्शन, अश्लील और कामुक सामग्री परोसने से समाज में स्त्रियों के प्रति अपराधों में वृद्धि हुई है। यौन हिंसा, यौन उत्पीड़न, यौन शोषण की रिपोर्टिंग करने मात्र से दायित्व निर्वहन नहीं हो सकता। इनके प्रति सामाजिक चिंताएँ व्यक्त करते हुए जनचेतना की भावना कैसे विकसित की जाये उसे क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। मीडिया द्वारा झूठा प्रचार किया जा रहा है कि आधुनिक स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सचेत है, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है, सशक्त है, सुपर वुमन है - सच नहीं है। 90% स्त्रियाँ आज भी असहाय पीड़ित और समान अधिकारों से वंचित हैं। महानगरीय जीवन के आधार पर सम्पूर्ण भारत की स्त्रियों का आकलन कर लेना उचित नहीं है। मीडिया में जेंडर की दृष्टि से व्याख्यायित करने संबंधी बहसों कहाँ हैं? लैंगिक भेदभाव, घटता लैंगिक अनुपात सामाजिक प्रगति के लिए घातक है। विकासात्मक खबरें गायब हैं। दलित खबरें ब्रेकिंग न्यूज बना दी जाती हैं। टी आर पी के लिए बलात्कार की शिकार दलित महिलाओं के चेहरे तक दिखा दिये जाते हैं। दलितों पर अन्याय और शोषण करने वालों कि खबरों को कब दिखाया गया या प्रकाशित किया गया? मुख्य पृष्ठ पर दलित समाचार कब सुखियों के रूप में छपे जरूर अध्ययन किया जाना चाहिए। समतामूलक समाज में जातिगत गठजोड़ कितना समृद्ध है पत्रकारों की भाषा स्पष्ट कर देती है। दलित, दबंगई, सवर्ण, प्रभुत्वशाली लोग जैसे शब्द खुले आम प्रयुक्त किए जाते हैं। मानव अधिकारों की वकालत करने वाला मीडिया अल्पसंख्यकों दलितों को न्याय दिलाने संबंधी अनेकानेक मुद्दों विसंगतियों पर चुप्पी साध लेता है। अन्याय शोषण उत्पीड़न सामाजिक न्याय असमानता राष्ट्रीय मुद्दे नहीं हैं?

सभी मीडिया ऐसी ही है, ऐसा नहीं है कुछ अपवाद भी हैं। स्व नियमन अपेक्षित है। अधिकांशतः स्थिति खराब ही है। विभिन्न संवेदनशील विषयों पर रिपोर्टिंग में भारतीय मीडिया का गैर जिम्मेदाराना रूप सामने आता है। वहाँ हैडलाइन्स भड़काऊ हो उठती हैं, एक पक्षीय कैमरा कोण भ्रामक गलत रिपोर्टिंग करता है। सामाजिक सद्भाव को विखंडित करने वाली बाइट्स जिन्हें प्रसारित प्रचारित करने से बचा जाना चाहिए उस मानसिकता का अभाव है। प्रोपोगेंडा पत्रकारिता से परहेज किया जाना चाहिए। दबाव अनंत हो सकते हैं पर मीडिया धर्म का पालन अपेक्षित है। स्वतंत्र पत्रकारिता के नाम पर ऐसी पत्रकारिता न हो जो सार्वजनिक हित से दूरी बनाए, घृणा वैमनस्य को बढ़ावा दे। हमारे समाज के ताने बाने के अनुकूल ऐसा सार्वजनिक स्पेस

तैयार किया जाये जो पूंजीपतियों, कारपोरेट जगत या राजनीतिक दलों की संतुष्टि के लिए प्रतिबद्ध न हो। धार्मिक गोलबंदी का शिकार हो कर मीडिया का कट्टरवादी होना उचित नहीं। इस तरह का राष्ट्र गढ़ने का प्रयास न किया जाये मानो यहाँ कोई समस्या ही नहीं है ... अभिजन ... सेलिब्रिटी, मनोरंजन ... फैशन, क्रिकेट, फूहड़ हास्य कॉमेडी और आधारहीन समाचारों के अतिरिक्त बहुत कुछ है देखने दिखाने, परोसने को।

संदर्भ सूची

1. भारत का भूमंडलीकरण, सं. अभय कुमार दुबे
2. आज का मीडिया-बी.जी.वर्गाज (प्रभाष जोशी स्मारक व्याख्यान) 20 जुलाई 2014
3. तहलका, पत्रकारिता विशेषांक अगस्त (2015)
4. नांदी पाठक, अंक 1, अप्रैल-जून (2013)
5. जन मीडिया, अंक 54, 55, 69 (2016-2017)

भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रबोध

डॉ श्रवण कुमार

भूमंडलीकरण को वैश्वीकरण भी कहते हैं और इसे आर्थिक संदर्भ में देखा जाना चाहिए। यह एक तरह की रूपांतरण की प्रक्रिया है जिनमें स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं को विश्व स्तर पर रूपांतरण किया जाता है। इसमें समाज एवं संस्कृति भी शामिल होती है। यह पूरे विश्व का एक साथ कार्य करने की प्रक्रिया मानी जा सकती है। इस प्रक्रिया को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दलों का संयोजन मानिए। यह एक तरह से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एकीकरण है।¹

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण को विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से परिभाषित किया है। काटो संस्थान के टॉम जी. पामर वैश्वीकरण को 'श्रम विभाजन' के तौर पर देखते हैं। उनका कहना है- 'सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों का ह्रास या विलोपन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्वस्तरीय तंत्र है- वैश्वीकरण'² थॉमस एल. फाइडमैन के अनुसार दुनिया वैश्वीकृत व्यापार, आउटसोर्सिंग तथा पूर्ति के शृंखलन के आधार पर बदल रही है। प्रसिद्ध विद्वान नोअम चोमस्की ने भूमंडलीकरण का प्रयोग 'आर्थिक वैश्वीकरण' के नवउदार रूप के संदर्भ में किया।³ जबकि हर्मन ई. डेली 'अंतरराष्ट्रीयकरण' एवं 'वैश्वीकरण' के बीच के अंतर को समझाते हुए तर्क देते हैं। वे लिखते हैं- 'वैश्वीकरण (भूमंडलीकरण) का अर्थ है आर्थिक प्रयोजनों के लिए राष्ट्रीय सीमाओं का विलोपन, अंतरराष्ट्रीय व्यापार (तुलनात्मक लाभ द्वारा शासित), अंतरक्षेत्रीय व्यापार (पूर्ण लाभ द्वारा शासित) बन जाता है।'⁴

भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण नितांत पश्चिमी अवधारणा है। 1960 से 1990 के दौरान अर्थशास्त्रियों के बीच इसे लेकर पर्याप्त बहस चली। परंतु वैश्वीकरण की सबसे पुरानी सैद्धांतिक अवधारणा 1897 में एक अमेरिकी-चार्ल्स तेज रसेल ने दी। उन्होंने 'कॉर्पोरेट दिग्गजों' जैसे शब्द की रचना की। वैश्वीकरण जो प्रायः मानव जनसंख्या और सभ्यता पर निगाह रखती है- का इतिहास रोमन साम्राज्य, चीन के रेशम मार्ग, इस्लामी स्वर्ण युग, पुरानी दुनिया की विश्व अर्थव्यवस्था, मंगोल साम्राज्य से लेकर 16वीं शताब्दी में स्पेन-पुर्तगाल के विश्व व्यापार से जुड़ा है। इस दौरान वैश्वीकरण उपनिवेशवाद एवं सांस्कृतिक ग्राह्यता को लेकर चली। भारत में 17वीं शताब्दी में वैश्वीकरण की शुरुआत 'डच ईस्ट इंडिया कंपनी' के साथ हुई। इसे पहला 'बहुराष्ट्रीय निगम'⁵ भी कहा जाता है।

सच्चे अर्थों में 19वीं सदी को वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण का 'प्रथम युग' माना जाता है। जिसकी शुरुआत पुर्तगाली विस्तारवाद के साथ होती है। बीसवीं शताब्दी का दौर उसका विस्तारवादी दौर था। लेकिन 1920 से 1930 के बीच 'स्वर्ण मानक संकट' ने वैश्वीकरण प्रक्रिया को लगभग ध्वस्त कर दिया। प्रथम विश्व युद्ध इसका प्रमुख कारक रहा।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अर्थशास्त्रियों, व्यापारियों एवं राजनीतिज्ञों ने निवेश में संरक्षणवादी तरीका अपनाकर वैश्वीकरण की प्रक्रिया को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। इस प्रयास को कई अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने सहयोग दिया। इनमें प्रमुख संस्थाएं थीं- विश्व बैंक एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोश। इससे व्यापार के नियम ढीले हुए एवं मुक्त व्यापार का रास्ता प्रशस्त हुआ। 'उरुग्वे वार्ता' ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को गति दे दी। इस वार्ता में हुई संधि के अंतर्गत व्यापारिक मध्यस्थता के तौर पर 'विश्व व्यापार संगठन' को आवश्यक अंग के रूप में मान लिया गया।

नोअम चोमस्की ने वैश्वीकरण के कुछ पक्षों की पहचान की। उनका मानना था कि वैश्वीकरण किसी भी देश की औद्योगिकीकरण, आर्थिक पहलू, राजनीतिक पहलू को प्रभावित करेगा और इससे संबंधित देश सूचनात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिकी के स्तर पर प्रभावित होंगे। बहुसंस्कृतिवाद, सांस्कृतिक विविधता को जनसंचार के माध्यम से प्रभावित किया जाएगा। इसके परिणामस्वरूप संस्कृतियों का आत्मीकरण भी होगा और टकराव भी। राष्ट्रबोध का बिल्कुल नया रूप उभरेगा। कुल मिलाकर भूमंडलीकरण पश्चिमीकरण का ही रूप है जो सांस्कृतिक स्तर पर प्रभावित भी करता है और उससे टकराता भी है।

भूमंडलीकरण के चार प्रमुख आयाम हैं- आर्थिक, संचार, वित्तीय एवं सांस्कृतिक। भारत के संदर्भ में चारों आयाम भूमंडलीकरण के परिपेक्ष में महत्वपूर्ण साबित हुए। भारत में प्रेस क्रांति एवं उपग्रह क्रांति को बिल्कुल अलग अलग संदर्भ में देखा और समझा गया। डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी के अनुसार- 'हम प्रेस क्रांति के साथ पैदा हुए मानकों और मूल्यों के आधार

पर अब तक सोचते रहे हैं। किंतु उपग्रह क्रांति के कारण पैदा हुए परिवर्तनों की तरफ से हमने आंखें बंद की हुई हैं।⁶ भारत के संदर्भ में क्या पूरे विश्व के संदर्भ में यह बात सच साबित हुई। संचार क्रांति की नई तकनीकी माध्यमों से होने वाले परिवर्तनों की ओर हमने अनदेखी करनी शुरू कर दी। प्रेस ने वैचारिक क्रांति को जन्म दिया। भारत की शुरुआती हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप इसी का परिणाम था। उसने राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद को वैचारिक संघर्ष के रूप में परिभाषित किया। इसका यह परिवर्तन गुणात्मकता था।

भारत में आधुनिक संचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका को लेकर काफी विचार विमर्श हुआ। अखबार और रेडियो स्वतंत्रता संग्राम के दौरान पूर्णतः अंग्रेजों के अधीन थे। 12 नवंबर, 1947 को महात्मा गांधी जब रेडियो केंद्र गए तो उन्होंने झिझकते हुए कहा- 'यह एक चमत्कारी शक्ति है। मैं इसमें ईश्वर की चमत्कारी शक्ति के दर्शन करता हूँ।' निश्चित तौर पर भविष्यद्रष्टा गांधी ने भविष्य में होने वाले जनसंचार माध्यमों के गलत इस्तेमाल को भाँप लिया होगा। जनसंचार माध्यमों विशेषता इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यमों का प्रयोग भारत के संदर्भ में क्यों और किसके लिए हो, यह प्रश्न आवश्यक था। नामीडिया रिपोर्ट की राय थी- 'भारत में दूरदर्शन को सिर्फ विशेषाधिकार प्राप्त शहरी मध्य वर्ग के लिए नहीं बनाया जाना चाहिए जिसकी आबादी कुल बीस करोड़ है और जिसे लगभग संपन्न पश्चिमी जीवन स्तर की तमाम सुविधाएं मिली हुई हैं। इसके विपरीत दूरदर्शन को उन लोगों के प्रति समर्पित होना चाहिए जो अत्यंत निम्न स्तर पर जीने को अभिशप्त हैं और इस विशाल देश के अलग-अलग भागों में रहते हैं और जो तमाम तरह की गरीबी, दमन और लगभग असाध्य वंचना का जीवन जीते हैं।'⁸

भारत की सामाजिक संरचना आधुनिक जनसंचार माध्यमों के लिए पश्चिम के मुकाबले बिल्कुल जुदा थी। अब सवाल यह था कि भारत में मीडिया का उद्देश्य क्या हो! इस संदर्भ में नामीडिया की रिपोर्ट कहती है- 'शिक्षा के वाहक और विस्तारक के रूप में, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन को संपन्न बनाने वाले माध्यम के रूप में, लोगों को उसकी राष्ट्रीय विरासत और संस्कृति के प्रति संवेदनशील बनाने वाले औजार के रूप में, उनकी एकता और दुनिया में उनकी भूमिका बनाने वाले औजार के रूप में टेलीविजन (इलेक्ट्रॉनिक मीडिया) एक महत्वपूर्ण माध्यम है।⁹ भारत में मीडिया का प्राथमिक उद्देश्य शिक्षा, सूचना एवं ज्ञान के माध्यम से समाज का विकास है। भारत में शुरुआती दौर इन्हीं उद्देश्यों के साथ चलता रहा। समस्या शुरू हुई उपग्रह चैनलों एवं 21वीं सदी के सोशल मीडिया से। भारत का राष्ट्रबोध 'अनेकता में एकता' का सूचक रहा है। धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रीय एकता के राष्ट्रीय चरित्र को 21वीं सदी में नई चुनौतियां मिलने वाली थीं। धार्मिक तत्ववाद एवं सांप्रदायिकता जैसे दो बड़े खतरे थे जो भूमंडलीकरण प्रस्तावित सोशल मीडिया में कभी भी अनुपस्थित नहीं रहे। 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री की हत्या के बाद मीडिया में फैले 'खून के बदले खून' का प्रसार सिख दंगों के रूप में सामने आया। और ऐसा ही कुछ 1993 के बाबरी कांड के दौरान मीडिया की भूमिका में नजर आई। इसका एक बड़ा कारण 1989 में रेडियो-इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को स्वायत्तता देना भी रहा। इससे मीडिया में निजीकरण का मार्ग खुला और तमाम प्रयासों के बावजूद 21वीं सदी का मीडिया विकास मूलक प्रतिज्ञाओं के विरोध में जा खड़ा हुआ। ग्लोबलाइजेशन (भूमंडलीकरण) का विकास बिना टेलीविजन के संभव नहीं है। हालांकि हम सोशल मीडिया को विकास के विरोध में ही खड़ा नहीं पाते, वह अपनी सकारात्मक भूमिका के प्रति सतर्क भी दिखता है।

राष्ट्रबोध की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली वह सामुदायिक भावना है जो उन्हें संगठित करती है। यही संगठन एक राष्ट्र के रूप में पहचान देती है। राष्ट्रबोध आधुनिक तत्व है। इस राष्ट्रबोध की जड़ में सामुदायिक विभिन्नता अंतर्निहित है। पंडित जवालाल नेहरू ने 'हिंदुस्तान की कहानी' में लिखा- 'राष्ट्रीयता की भावना लोगों में अभी एक जोरदार भावना है और इसके साथ परंपरा, मिलजुल कर रहने और सामान्य मकसद की भावनाएं जुड़ी हुई हैं।'¹⁰ हालांकि भारत में राष्ट्रबोध निजी अभिव्यक्ति का दायरा रहा है। राष्ट्रवाद को लेकर हमेशा उलझन रही है। अलग-अलग धार्मिक मान्यताओं, भाषाओं तथा सांस्कृतिक जमावड़े के कारण राष्ट्र को इसी ढंग से परिभाषित किया गया। राष्ट्र एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति के आधार पर हो या सभी धर्मों की समानता के आधार पर, सोशल मीडिया में यह बहस इसी रूप में दिखाई पड़ती रही है। गुलमेहर कौर का सोशल मीडिया प्रकरण इस बहस का सबसे अच्छा उदाहरण है। अपने पिता की शहादत को आधार बनाकर शांति की बात करने वाली गुलमेहर कौर राष्ट्र संबंधी बनी-बिगड़ी मान्यताओं का शिकार हो जाती है। गुरमेहर का यह संदेश युद्ध के खिलाफ था। क्या खिलाड़ी, क्या फिल्म कलाकार सब एक दूसरे को इस बहस में टोल करते दिखते हैं। गुरमेहर कौर का यह वीडियो जो YouTube पर उपलब्ध है- राष्ट्र के प्रति हमारे बोध को उजागर करता है। अमेरिका के प्रसिद्ध मुक्केबाज मोहम्मद अली ने वियतनाम युद्ध का खुलकर विरोध किया था और उन्हें युद्ध के खिलाफ बोलने पर जेल जाने तक की नौबत आ गई थी। युद्ध के खिलाफ बोलना सच्चा राष्ट्रबोध है।

अनुमान किया जा रहा है कि विश्व की करीब सात अरब की आबादी में से दो अरब से अधिक लोग सोशल साइट से जुड़े हुए हैं। जिनमें अधिकांश बच्चे, किशोर एवं युवा हैं। स्कूल ऑफ साइकोलॉजी विश्वविद्यालय के डॉ. क्लियर वाइट ने अध्ययन के आधार पर पाया कि 'जोखिम भरी सोशल मीडिया पोस्ट सिर्फ असभ्यता के कारण नहीं हो सकती हैं बल्कि व्यापक सोशल मीडिया संस्कृति के साथ फिट होने के कारण, यह एक जान बूझकर अपनाई गई रणनीति है।'¹¹ अध्ययन पता चला

कि ऑनलाइन जोखिम उठाने में युवा सबसे आगे हैं क्योंकि वह सोचते हैं कि सोशल मीडिया ऐसा व्यवहार करने का सबसे अच्छा तरीका है। डॉ. व्हाइट के अनुसार सोशल मीडिया में आप क्या पोस्ट करते हैं या शेयर करते हैं इसका संबंध हमारे रहन-सहन से है। इस संदर्भ में संस्कृति क्या भूमिका अदा करती है यह मुख्य है। ऐसे मामलों में 'राष्ट्रबोध' गायब या उलझा हुआ रहता है। सोशल मीडिया खुलकर अभिव्यक्ति का माध्यम है। ऐसे में स्वीकार्य-अस्वीकार्य की स्थिति में व्यक्ति मानसिक रूप से अस्थिर दिखने लगता है। देशभक्ति और राष्ट्रबोध के उलझे तंत्र में सोशल मीडिया कई बार लोगों को कातिल तक बना देता है। झारखंड के जमशेदपुर में उत्तम कुमार के तीन भाइयों की पीट-पीटकर हत्या हो या फिर राजस्थान के अलवर में पहलू खान की हत्या, ये दोनों घटनाएँ सोशल मीडिया के राष्ट्रविरोधी चरित्र को दिखाता है। भूमंडलीकरण में सोशल मीडिया का इस्तेमाल जनतंत्र के विरुद्ध ही जाता है। कमाल की बात यह है कि सोशल मीडिया की भड़काऊ अफवाहों में पढ़े-लिखों के साथ-साथ पढ़ा-लिखा तबका भी शामिल दिखता है। ट्विटर और फेसबुक इस मामले में सबसे आगे हैं।

इसके विपरीत सोशल मीडिया सच्चे राष्ट्रबोध को बनाने में भी अहम भूमिका निभाता है। अफवाहों की पड़ताल करने वाले 'पृष्ठ' भी आपको सोशल मीडिया में दिख जाएंगे। एक सार्थक बहस भी आपको सोशल मीडिया में मिलेगी। राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तौर पर समाज को मजबूती देने में सोशल मीडिया की भूमिका अहम रही है। नोबल शांति पुरस्कार विजेता मलाला यूसुफजई ने मेक्सिको सिटी के मोंटेरेरी इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में कहा- 'हमें तकनीकी का शुक्रिया अदा करना चाहिए जिसकी बदौलत दुनिया के तमाम देशों की राजनीति में युवा बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगे हैं।'¹² सोशल मीडिया 21वीं सदी का हथियार है, निजी हथियार। घरेलू हिंसा से लेकर यौन हिंसा के खिलाफ यह हथियार स्त्री को मजबूती दे रहा है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार हो या राजनीतिक भ्रष्टाचार सब कुछ सोशल मीडिया के दायरे में आ चुका है और इससे 21वीं सदी का भारत मजबूत 'राष्ट्रबोध' के साथ उभर रहा है।

संदर्भ सूची

1. वैश्वीकरण-विकिपीडिया-<http://hi.m.wikipedia.org>
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. युद्ध, ग्लोबल संस्कृति और मीडिया- जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2005, पृष्ठ-202.
7. दूरदर्शन : दशा और दिशा- सुधीश पचौरी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नवंबर 1994, पृष्ठ-04.
8. वही, पृष्ठ-17-18.
9. वही, पृष्ठ-18.
10. हिंदुस्तान की खोज (डिस्कवरी ऑफ इंडिया का अनुवाद), सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, सं-2013, पृष्ठ-59.
11. सोशल मीडिया में क्यों की जाती हैं भड़काऊ बातें- प्रज्ञा श्रीवास्तव, hindi.yourstory.com.
12. hindi.thequint.com

लोकसंस्कृति, लोकमूल्य और भारतीय पत्रकारिता

डॉ. वन्दना

जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

आधुनिक समाजों का अध्ययन हमें बताता है कि मानवजाति का विकास प्राणी जगत के विकास के अंग के रूप में हुआ है। लेकिन दूसरे प्राणियों से मानव व्यवहार का मूलभूत अंतर यही है कि उसका विकास केवल जैविक रूप में ही नहीं हुआ है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में भी हुआ है। समाज में रहकर ही मनुष्य संस्कृति को सीखता और संप्रेषित करता है। संस्कृति मानव व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र से संबंध रखती है। संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे जीवन और जीवन से जुड़ी गतिविधियों से काटकर देखा या समझा जा सकता है। वह तो मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में समाहित है। मनुष्य का पहनना-ओढ़ना, खाना-पीना, रचना-सोचना, बोलना, लिखना, कौन-सा ऐसा कार्य है जिसमें संस्कृति अभिव्यक्त नहीं होती या जिससे संस्कृति का निर्माण नहीं होता। प्रत्येक जातीय समुदाय की अपनी लंबी सांस्कृतिक परंपरा होती है। उसी परंपरा से उसकी संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप बनता है।

लोक समाज की संस्कृति को ही लोक संस्कृति के नाम से जाना गया है। रेडफील्ड ने लोक समाज को एक ऐसा समाज माना है जिसमें नगरीय समाज के विपरीत प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती हैं। यह एक ऐसा समाज है जिसका आकार छोटा होता है तथा जिसमें अशिक्षा, समानता जीवन का रूढ़िगत ढंग एवं समूह दृढ़ता की भावना पाई जाती हैं। ऐसे समाज में अन्य विशेषताओं के रूप में कानून का अभाव परंपरागत प्रकार का व्यवहार जो प्रमुखतः वैयक्तिक एवं आलोचना रहित होता है। परिवार तथा नातेदारी समूह में लोगों के क्रियाकलापों में एकता, धर्म का प्रभाव, अर्थव्यवस्था का बाजार के स्थान पर परिस्थिति आधारित होना तथा बुद्धिजीवी वर्ग के चिंतन का अभाव आदि प्रमुख हैं। दुर्खीम, टॉनिज तथा रेडफील्ड आदि समाजशास्त्रियों के अनुसार लोक समाज की उत्पत्ति प्राकृतिक कारकों का परिणाम है। ऐसे समाज का आधार नातेदारी, मित्र समूह और पड़ोस है। इस प्रकार के समाज में विभिन्न कार्य लोक रीतियों, रूढ़ियों तथा धर्म पर आधारित होते हैं। इन समाजों की संस्कृति को ही लोक संस्कृति कहते हैं।

जार्ज एम.फॉस्टर ने लोक संस्कृति को परिभाषित निम्न प्रकार से किया है- “लोक संस्कृति को जीवन के एक सामान्य तरीके के रूप में देखा जा सकता है जो एक क्षेत्र विशेष के बहुत से गांवों, कस्बों तथा नगरों के कुछ या सभी लोगों की विशेषता के रूप में है जिसकी एक लोक संस्कृति है।” लोक संस्कृति को एक ऐसी सामान्य जीवनशैली के रूप में देखा जा सकता है जो किसी क्षेत्र के अनेक गांव कस्बों तथा नगरों के कुछ अथवा सभी व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है।

रॉबर्ट रेडफील्ड के अनुसार लोक समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं का समन्वय ही लोक संस्कृति है। यह एक ऐसा समाज है जो आकार में लघु होता है तथा जिसमें व्यवस्थित शिक्षा का अभाव, सदस्यों के व्यवहार में समरूपता, समूह दृढ़ता तथा रूढ़िवादिता पाई जाती है। इस समाज में व्यक्तियों के व्यवहार कानून की तुलना में परंपराओं तथा धार्मिक नियमों से अधिक प्रभावित होते हैं। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वस्तुतः लोक समाज की संस्कृति ही लोक संस्कृति है।

लोक संस्कृति मौखिक सांस्कृतिक परंपरा है अर्थात् यह मौखिक रूप से एक दूसरे को हस्तांतरिक की जाती है और यह प्रत्यक्ष रूप से पुस्तकों पर आधारित नहीं है। इसमें धर्म, साहित्य, संगीत, लोक गाथा, विश्वास और व्यवहार आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। लोक संस्कृति का रूप व्यावसायिक नहीं होता। लोक संस्कृति से संबंध रखने वाले संगीतज्ञ, वस्तुकार, शिल्पकार आदि अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन किसी व्यावसायिक लाभ की प्राप्ति के लिए नहीं करते बल्कि इसका उपयोग ग्रामीण जीवन को सुखद, मनोरंजक एवं ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते हैं। लोक संस्कृति किसी स्थान अथवा ग्राम विशेष से संबंधित नहीं है बल्कि इसका प्रभाव ग्रामों एवं कस्बों में रहने वाले सभी निम्न व उच्च वर्गों के लोगों पर समान रूप से पड़ता है। लोक संस्कृति स्वयं में पूर्णतः संस्कृति नहीं है क्योंकि लोक संस्कृति और अभिजात संस्कृति एक दूसरे पर निर्भर रहती है। पारस्परिक आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया कला, संगीत, नृत्य, भाषा आदि सभी सामाजिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में देखने को मिलती है।

औद्योगिकरण, आधुनिकीकरण, नगरीकरण, यातायात एवं संचार के साधनों का प्रसार, वैज्ञानिक प्रगति एवं शिक्षा के

परिणामस्वरूप ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचना में परिवर्तन होने से लोक संस्कृति भी प्रभावित हुई है। नगरीय संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप लोक संस्कृति के अन्तर्गत कला, साहित्य, संगीत तथा मनोरंजन के साधनों के रूप में अब इसमें व्यावसायिकता आने लगी है। वर्तमान में हो रहे समसामयिक परिवर्तनों के पश्चात् भी लोक संस्कृति जीवित है।

लोकमूल्य लोक के उद्देश्य और हित में साध्य ऐसे लोकस्वीकृत आदर्श है, जो लोकजीवन के हर व्यवहार का दिशा-निर्देशन और नियंत्रण करते हैं तथा उसके मूल्यांकन के लिए लोकमान्य कसौटी का काम करते हैं। लोक के साध्य लोकमूल्य हैं, इसलिए लोक के व्यवहार और अभिकरण उनकी तरु अभिमुख रहते हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानदण्ड लोकरीतियाँ, लोकरूढ़ियाँ, लोक प्रथाएँ, लोक संस्थाएँ आदि लोक मूल्यों को प्राप्त करने के लिए ही कार्य करते हैं। यहाँ तक कि लोकजीवन की अतः क्रियाओं के प्रभावी स्वरूप का निश्चय भी लोकमूल्यों से होता है। इस तरह लोकमूल्य लोक की ऐसी रचनाधर्मी शक्ति है, जो उसके निर्माण पोषण और परिवर्तन में ब्रह्मा-विष्णु-महेश जैसा दायित्व संभालती है। लोकमूल्य लोक के लिए लोक द्वारा स्वीकृत होते हैं। कोई भी मूल्य लोकमूल्य तभी बन पाता है जब वह लोक से मान्यता प्राप्त कर लेता है। लोकमूल्यों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। मूल्य तो वही रहते हैं, उनके रूप देश-काल की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार बदल जाते हैं। उदाहरणार्थ-सत्य, शिव, सौंदर्य समता, स्वतंत्रता, प्रेम, त्याग आदि लोक मूल्य हर युग की निधि रहे हैं, लेकिन उनके रूपों में युगानुरूप कुछ न कुछ अंतर होता रहा है।

प्रायः लोग लोकविश्वास और लोकमूल्य को एक समझते हैं किन्तु ऐसा नहीं है यह सही है कि हर लोकमूल्य लोकविश्वास पर निर्भर हैं, लेकिन हर लोकविश्वास लोकमूल्य नहीं हो सकता। जैसे टोने-टोटके संबंधी लोकविश्वास को लोकमूल्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। लोकविश्वास लोकानुभवों की नींव पर बनते हैं जबकि लोकमूल्यों में लोकचिंतन प्रमुख होता है। लोकमूल्यों की गति पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में है और आवश्यकता एवं उपयोगिता उनकी मुख्य कसौटी है। लोक की तत्कालीन वैचारिकता के मंथन से वे रत्नों की तरह प्रकट होते हैं और लोकसंस्कृति के आंतरिक स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हैं।

लोकसंस्कृति के निर्माण में लोकमूल्यों का विशिष्ट महत्व है। वे उसके आत्मिक जगत् की संरचना करते हैं, जिससे उसके किसी भी बाहरी रूप का विकास और निखार संभव होता है लोकमूल्य किसी भी लोकसंस्कृति की पहचान हैं, कसौटी हैं और उसकी गतिशील यात्र के आखिरी पड़ाव है। हर जनपद की लोकसंस्कृति का अपना एक विशिष्ट महत्व है और उस वैशिष्ट्य को रेखांकित करने वाले हैं लोकमूल्य। जिस काल में लोक को जैसी आवश्यकता होती है, उसी के अनुरूप किसी व्यक्तित्व में निहित लोकशक्ति से लोकमूल्य जन्मता है और धीरे-धीरे लोकमान्य होकर लोकप्रचलित हो जाता है जैसे बुंदेली जनपद में नये लोकचिंतन ने पुराने लोकमूल्यों को परखा है और उनकी उपयोगिता के अनुसार या तो उन्हें बदलने का प्रयत्न किया है या फिर गौण बना दिया है।

पत्रकारिता को किसी भी राष्ट्र या समाज का आईना माना गया है, जो उसकी समसामयिक परिस्थिति का निष्पक्ष विश्लेषण करता है। भारत में पत्रकारिता पर जब हम नजर डालते हैं तो हमें उसके विकास की कई महत्वपूर्ण रेखाएँ दिखाई देती हैं, उसकी विविधता व विशिष्टता भी अपने ढंग से आकर्षित करती है। सन् 1476 में इंग्लैंड में जब छापेखाने की शुरुआत हुई, वास्तव में तभी पत्रकारिता के क्षेत्र में नया रक्त संचार हुआ। भारत में प्रथम समाचार पत्र निकालने का श्रेय 'जिम्स ऑगस्टस हिक्की' को मिला जिन्होंने 1780 ई. में 'बंगाल गजट' का प्रकाशन किया। तत्पश्चात् 1818 ई. में ब्रिटिश व्यापारी 'जिम्स बर्किघम' ने 'कलकत्ता जनरल' का संपादन किया। बर्किघम ही ऐसे पहले प्रकाशक थे जिन्होंने प्रेस को जनता के प्रतिबिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया। समय-समय पर पत्रकारिता के उद्देश्य और स्वरूप में परिवर्तन होता रहा। कभी पत्रकारिता का प्रयोग देश को आजादी दिलाने के लिए एक हथियार के रूप में किया गया तो कभी समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने के लिए, तो कभी जनता को जागरूक करने के लिए और कभी लोक संस्कृति के प्रचार-प्रसार एवं लोकमूल्यों की स्थापना के लिए।

वास्तविक भारतीय पत्रकारिता का उदय 19वीं शताब्दी के द्वितीय और तृतीय दशक में हुआ। 1816 में गंगाधर भट्टाचार्य ने 'बंगाल गजट' बंगाली भाषा में निकाला। 1818 में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए भी समाचार पत्र प्रकाशित हुए। 1821 में 'राजा राम मोहन राय' ने समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। 1822 में ही एक बंगाली साप्ताहिक पत्र 'सम्वाद कौमुदी' प्रारंभ हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जनमत तैयार करना था। 1857 में हुई क्रांति के दिशा-निर्देशन में भी भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने सराहनीय योगदान दिया, साथ ही भारतीय पत्रकारिता द्वारा देशभक्ति, सामाजिक चेतना, तत्कालीन समस्याओं को उठाते हुए विभिन्न गम्भीर साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा शैक्षिक विषयों पर भी विचार विनिमय की राह प्रशस्त की जाती रही।

हिन्दी क्षेत्र की पत्रकारिता का भारतीय पत्रकारिता के विकास में विशेष महत्व है, क्योंकि वह पूरे उत्तर भारत के प्रतिनिधित्व के साथ राष्ट्रीय पत्रकारिता का स्वरूप भी स्पष्ट करती है। हिन्दी पत्रकारिता का विकास वस्तुतः किसी एक क्षेत्र विशेष से नहीं हुआ। इसकी शुरुआत भले ही बंगाल के 'उदत्त मार्तण्ड' से हो पर मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि विभिन्न

क्षेत्रों से समान रूप से होती रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी पत्रकारिता के विकास में उल्लेखनीय योगदान है। उनकी पत्रिकाएँ 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका', 'बाल बोधिनी' अपने ढंग की अनूठी पत्रिकाएँ थीं। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने अपने अनेक पत्रों के माध्यम से अधिसंख्य लोगों को देश के लिए मर मिटने, उनमें राष्ट्रीय भावना पैदा करने तथा स्वाधीनता की लड़ाई में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। द्विवेदी युग में हिन्दी पत्रकारिता में एक नई लहर आई। इस युग की पत्रकारिता में अंग्रेजी शासन के प्रति विरोध का स्वर पहले से काफी प्रमुख व तीखा था। बालकृष्ण भट्ट का 'प्रदीप' मदन मोहन मालवीय का 'अभ्युदय' पं. सुन्दर लाल का 'कर्मयोगी' बाबूराव विष्णु वराडकर के 'बंगवासी', 'हितवार्ता' – आदि सभी अखबार इसके उदाहरण थे। इन अखबारों ने ब्रिटिश शासन को चुनौती दी पराधीनता को धिक्कारा तथा अंग्रेजी छोड़कर हिन्दी का शंख फूँकने का अभियान चलाया। इस युग में हिन्दी और भारतीय पत्रकारिता को तथ्यों तथा दमन से रू-ब-रू होने का मौका मिला और जनता को सचेतन करने के उत्तरदायित्व का गहरा बोध पैदा हुआ। द्विवेदी युग तक आते-आते और उससे निकलते-निकलते पत्रकारिता के नए आयाम का विकास हुआ जिसने आगे की हिन्दी तथा भारतीय पत्रकारिता को नया स्वरूप दिया।

स्वाधीनता के बाद भारतीय पत्रकारिता की स्थिति में काफी बदलाव आया। रचनाकारों, पत्रकारों, सम्पादकों में एक नई चेतना व ऊर्जा का विकास हुआ। भारतीय पत्रकारिता की भूमिका अत्यंत व्यापक हो गई। वह जनता की समझ, सामाजिक, राजनीतिक वस्तु-स्थिति को प्रस्तुत करने के साथ-साथ लोक संस्कृति एवं लोक मूल्यों के विकास, प्रसार और स्थापना का कारक बनने लगी।

आज हमारे देश में लगभग 80,000 के करीब अखबार पंजीकृत हैं। आजादी के समय हमारे देश में महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रताप नारायण मिश्र, मदन मोहन मालवीय, प्रेमचंद जैसे- बड़े-बड़े संपादक थे जिनकी पत्र-पत्रिकाएँ ग्रामों में बसे भारत की वास्तविक छवि को उजागर करती थीं। लेकिन आज कोई ऐसा पत्र एवं पत्रकार नहीं दिखता है। आजकल लोग बिकने के लिए ही पत्रकारिता के पेशे को चुन रहे हैं। भारतीय पत्रकारिता की छवि आज दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही है जो कि चिंता का विषय है। वर्तमान भारतीय पत्रकारिता को तय करना होगा कि लोक संस्कृति एवं लोकमूल्यों के प्रति उसकी भूमिका क्या हो? भारतीय पत्रकारिता की प्राथमिकताओं में अब शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, विस्थापन जैसे मुद्दे रह ही नहीं गए हैं। उत्पादक, उत्पाद और उपभोक्ता के इस दौर में खबरों को भी उत्पाद बना दिया गया है।

आज भारतीय पत्रकारिता अपने आदर्शों से विमुख होती जा रही है। आज के स्वतंत्र और अपेक्षाकृत विकसित भारत में पत्रकारिता का स्वरूप बदल चुका है, पत्रकारिता केवल व्यवसाय बन गया है। सामाजिक सरोकारों लोक-संस्कृति एवं लोक मूल्यों से लगातार विमुख होते जाने से पत्रकारिता का नैतिक पतन निश्चित रूप से हुआ है। लोकमूल्यों की स्थापना, आस्था, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी विकास और सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के लिए भारतीय पत्रकारिता को अपने दायित्व को निभाना होगा तथा इन्हें प्रवाहमान बनाए रखने की भूमिका का भी उसे निर्वहन करना होगा।

ग्रामीण समाज जो कि लोक संस्कृति एवं लोक मूल्यों का केन्द्र है का विकास तभी होगा जब भारतीय पत्रकारिता शिक्षा, सूचना और समाजीकरण की भूमिका अधिक निभाए। भारतीय पत्रकारिता का स्थानीय संस्कृति और क्षेत्रीय भाषा से जुड़ा होना आवश्यक है। जब स्रोत, संदेश, गन्तव्य तीनों के स्तर विकास के साथ जुड़े होंगे तभी ग्रामीण समाज का विकास लोक-संस्कृति का विस्तार एवं लोक मूल्यों की स्थापना जैसे महती कार्य भारतीय पत्रकारिता द्वारा संभव होंगे।

संदर्भ ग्रंथ

1. जनसंचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श - जवरीमल्ल पारख
2. जनसंचार एवं समाज - डॉ. मोनिका नागोरी
3. हिन्दी पत्रकारिता इतिहास, स्वरूप एवं सम्भावनाएँ - अनिल सिन्हा
4. मीडिया समग्र - प्रो. रमेश जैन
5. पत्रकारिता और पत्रकारिता - डॉ. अरूण जैन

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्रवादी पत्रकारिता

डॉ. सविलता यादव

श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में हिंदी पत्रकारिता ने ध्वजवाहिका की भूमिका निभाई है, जिस तरह से आँखों के लिए प्रकाश जरूरी होता है उसी तरह से स्वतंत्रता के लिए पत्रकारिता भी जरूरी थी और पत्रकारिता ने उस दौर में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ब्रिटिश सरकार से भारत को आजाद करवाने के लिए जहां अहिंसावादी आन्दोलनकारियों, क्रांतिकारियों, कवियों ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए अपना सब कुछ गवां दिया वहीं हिंदी पत्रकारिता ने आजादी की लौ का जलाए रखने में सक्रिय भूमिका निभाई। उस समय पत्रकारिता एक मिशन थी, जिसका लक्ष्य राष्ट्रीय अस्मिता, एकता, अखंडता, स्वतंत्रता एवं देशभक्ति के प्रति भारतीय जनमानस को प्रेरित करना था। इस दौर के ज्यादातर पत्रकार, स्वतंत्रता-संग्राम से जुड़े हुए थे और उन्होंने अपने लेखों और समाचार पत्रों के जरिये आम जन में देशभक्ति की भावना पैदा की और उन्हें आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर की पत्रकारिता में देश भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। पत्रकारों ने अपनी कलम से ही ज्यादा से ज्यादा लोगों तक अपनी बात पहुंचाने की कोशिश की।

महादेवी वर्मा के द्वारा कहे गए वाक्य “पत्रकारों के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जाता है” का एक-एक शब्द स्वतंत्रता आन्दोलन में पत्रकारों की भूमिका को स्पष्ट करता है। स्वतंत्रता आन्दोलन का अर्थ सिर्फ अंग्रेजी सरकार से देश को आजाद कराना ही नहीं था बल्कि जनसाधारण को प्रेरित भी करना था ताकि वे बढ़ चढ़ कर इसमें भाग लें। इस कार्य को पत्रकारिता ने अंजाम दिया, पत्रकारों ने अपनी कलम के बल पर ऐसा माहौल तैयार किया कि सारा देश एक होकर अंग्रेजी सरकार के शोषण अन्याय और दमकारी नीतियों का विरोध करने के लिए एक साथ खड़ा हो गया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हालांकि कुछ वीर स्वतंत्रता सेनानी ऐसे भी हुए जो तलवार अथवा बंदूक के बल पर अंग्रेजों से आजादी छीन लेने के पक्ष में थे, इसके बावजूद ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो कलम के जरिए लोगों को आजादी के आंदोलन के प्रति जागरूक करके अहिंसक ढंग से स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे। इसी सोच का परिणाम था कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारत में अनेक अखबार और पत्रिकाएं निकलीं जिन्होंने लोगों को आजादी की लड़ाई के लिए तैयार किया और अंततः भारत को आजादी हासिल हुई भी। इस तरह भारत की आजादी में पत्रकारिता का बड़ा योगदान रहा है। यह प्रेस ही थी जिसने भारतवासियों में देशभक्ति की अलख जगाकर उन्हें लामबंद किया और अंततः अंग्रेजों को भारत से जाना ही पड़ा। प्रेस के प्रति अंग्रेज सरकार का रुख शुरू से ही नकारात्मक रहा और यदा-कदा उसने इस पर पाबंदी लगाने की कोशिश भी की। इसमें अकबर इलाहाबादी की पक्तियां

‘खीचौं न कमानों को, न तलवार निकालो,

जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो।’

ने सारे देश में एक ऐसी लहर पैदा की कि हर कोने से समाचार पत्र व पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हो गया। किसी संकट की परवाह किए बिना देश प्रेमियों ने हिन्दी समाचार पत्रों का प्रकाशन एक मिशन के रूप में शुरू किया। अंग्रेजों की कठोर नीतियों व धन के अभाव के कारण पत्र बन्द भी होते रहे लेकिन नए पत्रों का प्रकाशन नहीं रुका।

भारत में मुद्रित पत्रकारिता शुरू करने का पहला प्रयास कलकत्ता में 1776 में विलियम बोल्ट्स द्वारा किया गया। उन्होंने एक समाचार पत्र शुरू करने की कोशिश की थी लेकिन उन्हें सफलता हासिल नहीं हुई। हालाँकि बोल्ट्स स्वयं अंग्रेजों की कम्पनी में नौकरी करते थे। उन पर कुछ समय पहले ही कम्पनी के प्राधिकार के तहत निजी व्यापार करने पर कोर्ट आफ डायरेक्टर्स द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया था। इस पर उन्होंने कम्पनी की सेवाओं से त्यागपत्र दे दिया था। उसके बाद उन्होंने प्रकाशन और मुद्रण के कार्य में रुचि और जानकारी रखने वाले वालों को समाचार-पत्र प्रकाशित करने के लिए आमन्त्रित किया, लेकिन समाचार पत्र निकल नहीं सका। 29 जनवरी 1780 को जेम्स आगस्टस हिक्की द्वारा ‘बंगाल गजट या कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर’ नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन किया गया। इस दिन को भारत में पत्रकारिता की विधिपूर्वक शुरुआत के रूप में माना जाता है। इस पत्र को हिक्की गजट भी कहा जाता है। यह दो पन्नों वाला साप्ताहिक अखबार था, जिसमें तीखी टिप्पणियां और लेख छपते थे। हिक्की के अखबार में उसका स्वयं का एक कॉलम था जिससे वह पाठकों से रूबरू होता था। अखबार

में एक कविता का कोना भी रखा गया था। परन्तु हिक्की दूरदर्शी नहीं था इसलिए उसने अंग्रेजी शासको पर सीधे कटाक्ष किए और तत्कालीन गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स को तानाशाह की संज्ञा दी। यह उसके पत्र को बंद करवाने के लिए काफी था। ब्रिटिश सरकार में इस पत्र की कड़ी आलोचना हुई उस पर मानहानि का मुकदमा चलाया गया और एक साल की सजा के बाद हिक्की को हमेशा के लिए जबरदस्ती इंग्लैंड वापिस भेज दिया गया। इस तरह अल्प जीवन काल में ही इस समाचार-पत्र का अंत हो गया, लेकिन सरकारी दमन के विरुद्ध जो साहस इसने दिखलाया वह वर्तमान समय में भारतीय पत्रकारिता का आदर्श बन गया। बंगाल गजट पत्रकारिता के बीज बोने का काम कर चुका था। उसने अगले कई पत्रों के आधार तैयार कर दिए थे। 'इण्डिया गजट' उसके लुप्त होने से पहले ही उभर चुका था और 'मद्रास कोरियर' 1785 में सामने आया। 1793 में हरकारु की स्थापना की गई, 1789 में 'बाम्बे हेराल्ड' छपा। 1818 में एक और अंग्रेज जेम्स सिल्क बकिंघम न 'कोलकत्ता क्रोनिकल' का सम्पादक पद संभाला। उसने पहले के पत्रकारों की गलतियों से सिखा और सीधे सरकार के खिलाफ न लिख कर महत्वपूर्ण मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उसने आम जनता की स्थानीय स्थितियों और उनके जीवन को प्राथमिकता दी। उसने सती प्रथा जैसी भारतीय कुरीतियों का खुला विरोध किया। इस युग के श्रेष्ठ पत्रकार और समाजसुधारक और आधुनिक भारत के निर्माता राजा राममोहन राय ने 1821 में संवाद कौमुदी और 1822 में फारसी में 'मिरात-उल-अखबार' निकाला। यहीं नहीं 1823 में प्रेस के लिए लाइसेंस का कानून भी बना दिया गया जिसके बिना अखबार निकलने पर प्रतिबंध था। यह प्रतिबंध प्रेस की स्वतंत्रता पर कुठाराघात की तरह था। इसके बाद हिंदी में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों ने सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में बांधने का कार्य किया। इसकी शुरुआत 'उदन्त मार्तंड' से मानी जाती है जोकि 30 मई 1826 को कलकत्ता के कालू टोला मोहल्ले से पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में प्रारम्भ हुआ। यह पहला साप्ताहिक समाचार पत्र था जो नागरी लिपि में शुरू हुआ था। यह पत्र एक साल तक चलने के बाद भी लोकप्रिय नहीं हो सका। वित्तीय कठिनाई और किसी प्रकार की सरकारी सहायता न मिलने के कारण इस पत्र को भी जल्दी ही बंद होना पड़ा, इसका अन्तिम अंक 4 दिसम्बर 1827 को प्रकाशित हुआ।

वहीं राजा राममोहन राय ने जनता की दुर्दशा और संकटों को जनता की भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए 10 मई 1829 को कलकत्ता से 'हिन्दू हेराल्ड' का प्रकाशन शुरू किया। जिसके 'बंगदूत' नाम से बंगला, हिन्दी और गारसी में तीन संस्करण अलग से प्रकाशित होते थे लेकिन यह अखबार भी शीघ्र ही बंद हो गया। 28 जनवरी 1830 को 'संवाद प्रभाकर' पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ इस पत्र ने बकिंघम चंद चटर्जी जैसे लेखक को स्थापित करने में अहम् भूमिका निभाई। इस पत्र ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जमकर विरोध किया। इसी क्रम में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की मदद से गोविन्द रघुनाथ धत्ते ने 1845 में 'बनारस अखबार', प्रेम नारायण ने इंदौर से 6 मार्च 1848 को 'मालवा अखबार', 1850 में तारामोहन मैत्रेय ने काशी से 'सुधाकर पत्र', 1852 में 'बुद्धिप्रकाश', सुधावर्षण, धर्मप्रकाश, प्रजाहित, ज्ञान प्रकाश आदि पत्र प्रकाशित हुए। इसी बीच 'हिन्दी उर्दू अखबार' का प्रकाशन शुरू हुआ इसने अंग्रेजी हुकूमत के विरोध के लिए सीधे-सीधे माहौल तैयार किया दण्ड रूप में इसके संपादक मौलाना अब्दुल को तोप से बांध कर उड़ा दिया गया। अंग्रेजों के इस अमानवीय व्यवहार ने संपादकों में नए जोश का संचार किया 1857 में 'पयामे आजादी' का प्रकाशन शुरू हुआ इस अखबार ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अहम् भूमिका अदा की इसीलिए इसे जंगे आजादी का अखबार भी कहा जाता है। पयामे आजादी के अंक में स्वतंत्रता संग्राम की अगवानी करने वाले मुगल सम्राट बहादुर शाहजफर के फरमान व आजादी का झण्डा गीत प्रकाशित करने को जुर्म करार देते हुए संपादक को फांसी पर लटका दिया गया। इस गीत की पंक्तियाँ इस तरह थी-

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,

पाक वतन है कौम का, जन्त से भी प्यारा।

हिन्दू मुसलमों, सिख हमारा भाई-भाई प्यारा,

ये है आजादी का झंडा, इसे सलाम हमारा।

15 अगस्त 1867 को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नए युग की पत्रकारिता की शुरुआत काशी से 'कवि वचन सुधा' पत्रिका के प्रकाशन से की। इसके बाद 15 अक्टूबर 1873 को 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' 9 जनवरी 1874 को 'बालाबोधनी पत्रिका' का प्रकाशन हुआ। उन्होंने हरिश्चन्द्र मैगजीन के माध्यम से हिन्दी को न्यायालय की भाषा बनाए जाने पर जोर दिया, लाला श्री निवास द्वारा 1874 में दिल्ली से 'सदादर्श' का प्रकाशन किया गया। 1 सितम्बर 1877 को प्रयाग से 'प्रदीप' मासिक पत्रिका के प्रकाशन को डॉ. सुशीला जोशी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक क्रान्तिकारी घटना बतलाया है।

ब्रिटिश सरकार कलम की तेजधार व क्रान्तिकारी संपादकों के तेवरों को अच्छी तरह समझ गई थी। वह 1857 में अखबारों की भूमिका से परिचित सरकार जानती थी कि आने वाले समय में अखबार खतरा साबित हो सकते हैं विशेषकर हिन्दी व क्षेत्रीय अखबार, इसलिए इन पर दबाव बनाने के लिए 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट बनाया गया। इस एक्ट के तहत संपादकों पर भारी जुर्माने व जेल भेजने की कार्यवाही ने जोर पकड़ा लेकिन उसी रफ्तार से पत्रकारों व अखबारों की संख्या भी बढ़ती चली गई। 1881 में विष्णुशास्त्री व बाल गंगाधर तिलक ने 'केसरी' व 'मराठा' का प्रकाशन शुरू किया। 1884 में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, स्वराज्य तथा मदन मोहन मालवीय के संपादन में 1885 में 'हिन्दोस्थान' प्रकाशित हुआ। तब पत्रिकाओं का प्रकाशन व

संपादन करना काटों की सेंज से कम नहीं था। 'स्वराज्य' के संपादक पद के लिए छपा यह विज्ञापन इस बात को सच साबित करने के लिए पर्याप्त है- 'चाहिए स्वराज्य के लिए एक संपादक। वेतन-दो सूखी रोटियां, एक गिलास ठंडा पानी और प्रत्येक संपादकीय के लिए दस साल जेल।'

बंगदूत का प्रकाशन 1829 में राजा राममोहन राय ने किया। यह एक साप्ताहिक पत्र था जो एकसाथ चार भाषाओं- बांग्ला, हिन्दी, उर्दू व बनारसी में छपता था। यह समाचार पत्र मात्र 82 दिनों में बंद भी हो गया था। सिराज-उल अखबार का प्रकाशन 1841 में फारसी में हुआ। यह आठ पृष्ठों का साप्ताहिक पत्र था। इसका प्रकाशन अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह के समय हुआ, ये एक सरकारी गजट की तरह था जिसमें सम्राट के दैनिक कार्यक्रमों के साथ साथ देश विदेश की खबरें भी इसमें होती थी। बनारस अखबार का प्रकाशन 1845 में हुआ। यह अखबार गोविन्द नारायण थत्ते के सम्पादन में उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुआ। अखबार के संचालक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द थे। अधिकांश लोग इस अखबार को ही हिन्दी का पहला अखबार मानते हैं। किंतु इसे हिन्दी भाषी क्षेत्र का प्रथम समाचार पत्र माना जा सकता है।

समाचार-सुधावर्षण का प्रकाशन 1854 में कलकत्ता से हुआ। इसके संपादक श्यामसुंदर सेन थे, यह हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र था। यह पत्र बंगला मिश्रित हिन्दी तथा बंगला भाषा में प्रकाशित होता था। अमृत बाजार पत्रिका का 1868 में जैसोर जिले के अमृत बाजार से बंगला भाषा में साप्ताहिक पत्र में रूप में शुरू हुआ। यह भारत का ऐसा पहला राष्ट्रीय समाचार पत्र था, जिसने अनेक मोर्चों पर अंग्रेजों और उनकी विचारधारा से लड़ाई लड़कर भारतीय पत्रकारिता के लिए राष्ट्रीयता के मौलिक मानदंड स्थापित किए।

बंगदर्शन बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने 1871 में एक मासिक पत्र निकालने का मन बनाया लेकिन 1873 से इसका प्रकाशन शुरू हुआ। इस अखबार में कुल 7 लेख छपते थे जिसमें से करीब 4 लेख तो खुद बंकिम लिखते थे। हरिश्चंद्र मैगजीन (हरिश्चंद्र पत्रिका) का प्रकाशन 1873 में बनारस से हुआ, इसके संपादक भारतेंदु हरिश्चंद्र थे। इसके मुखपृष्ठ पर नाम और विवरण अंग्रेजी में छपा करता था। कहा जाता है उस दौर के बाकी अखबारों और पत्रिकाओं में इसका कागज और छपाई सबसे उत्तम थी।

बालाबोधिनी 1874 में भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका थी, जिसका प्रकाशन बनारस से हुआ। यह हिन्दी भाषा में स्त्रियों पर केन्द्रित पहली पत्रिका थी। इसके प्रथम अंक में सम्पादक ने आग्रह किया था- 'मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर और आँचल खोलकर यही मांगती हूँ कि जो कभी कोई भली बुरी कड़ी नर्म कहनी अनकहनी कहूँ उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी।

सदादर्श 1874 में लाला श्रीनिवासदास ने दिल्ली से निकाला था। यह एक साप्ताहिकपत्र था जिसमें बारे में लिखा मिलता है कि - सदादर्श साप्ताहिक पत्र लाला श्रीनिवासदास ने दिल्ली से निकाला, जो सन 1876 में कविवचन सुधा में सम्मिलित हो गया था। हिन्दी प्रदीप की स्थापना हिन्दी प्रचार के उद्देश्य हुई थी। इसके सम्पादक संपादक बालकृष्ण भट्ट थे। इसमें विचारोत्तेजक और आलोचनात्मक टिप्पणियां प्रकाशित होती थी, जो अंग्रेजों को पसंद नहीं थी। 1878 में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट पारित होने के बाद इसके सम्पादक को अदालत के चक्कर काटने पड़े। द ट्रिब्यून का प्रकाशन 1881 में लाहौर से किया गया। साप्ताहिक समाचार पत्र के सम्पादक सरदार दयाल सिंह मजीठिया थे।

सन्दर्भ

1. स्वाधीनता सेनानी लेखक और पत्रकार, आशारानी व्होरा
2. हिन्दी पत्रकारिता की विकास यात्रा- तब से अब तक, आशा गुप्ता
3. पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास, डॉ अर्जुन तिवारी
4. भारतीय पत्रकारिता का इतिहास, जे. नटराजन
5. उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी पत्रकारिता में सामाजिक चेतना, राहुल रंजन
6. समग्र भारतीय पत्रकारिता, प्रथम खंड, विजयदत्त श्रीधर
7. इन्टरनेट से स्वतंत्रता आन्दोलन पर विभिन्न लेख, ब्लॉग और साइट्स का अध्ययन

राष्ट्रवाद, भूमण्डलीकरण एवं सोशल मीडिया

डॉ० मीरा शर्मा

लक्ष्मीबाई महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति 'चमकना' अर्थ वाली 'राज' धातु से हुई है, जिसमें औणादिक 'ष्टन' प्रत्यय जोड़ा गया है।¹ तदनुसार इसका अर्थ है - 'राजते दीप्यते प्रकाशते शोभते इति राष्ट्रम्' अर्थात् जो स्वयं देदीप्यमान होने वाला है अथवा विविध वैभवों से सुशोभित देश राष्ट्र कहलाता है। अथर्ववेद के 'राष्ट्राभिवर्धन सूक्त' में राजा को राष्ट्र की उन्नति और सुरक्षा के लिए क्या क्या करना चाहिए, इसको यहाँ प्रतीकरूप में बताया गया है।² इसी वेद के प्रसिद्ध 'भूमिसूक्त' में भी भूमि से यह प्रार्थना की गई है कि वह हमारे उत्तम राष्ट्र में तेज और बल स्थापित करे।³ ब्राह्मण ग्रन्थों में भी कहा गया है कि राष्ट्र जनसमूह है, राष्ट्र शक्ति है, राष्ट्र श्री है, राष्ट्र अश्वमेध है, कहने का अभिप्राय है कि एक राष्ट्र में सुरक्षित और समृद्ध जनसमुदाय की प्रतीति होती है।⁴

वस्तुतः राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता उस जनसमूह का नाम है जो भाषा, साहित्य, विचार, रीति-रिवाज, परम्परा इत्यादि बन्धनों में इस प्रकार बंधा हो कि वह अपने को इसी प्रकार के दूसरे जनसमूह से भिन्न अनुभव करे और राष्ट्र वह राष्ट्रीयता है जो राजनीतिक रूप से संगठित हो जाता है तब उसे राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्र राष्ट्रीयता की अगली सीढ़ी है। राष्ट्रीयता राष्ट्र की प्रारम्भिक स्थिति है।⁵ 'इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका' के अनुसार 'राष्ट्रीयता वह मनःस्थिति है जिसमें व्यक्ति की सर्वोच्च निष्ठा राष्ट्र अथवा राज्य के प्रति उन्मुख होती है। सम्पूर्ण इतिहास में मातृभूमि, पैतृक परम्परा तथा स्थिर क्षेत्रीय सत्ता के प्रति भक्ति, विभिन्न मात्रा में शक्ति प्रदान करने वाली प्रमुख भावनाओं के रूप में विद्यमान रही है।'⁶ किसी भी राष्ट्रवाद के प्रमुख तत्त्व होते हैं- भौगोलिक एकता, जाति की एकता, भाषा की एकता, धर्म की एकता, संस्कृति की एकता, ऐतिहासिक घटनाओं की एकता, आर्थिक और राजनीतिक हितों की एकता और एकता और सहयोग की सार्वजनिक इच्छा।

राष्ट्रीयता के योगदान में भूमण्डलीकरण और सोशल मीडिया दोनों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए ये तीनों तत्त्व आपस में मिले-जुले हुये हैं। वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण का अर्थ है- 'स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं का वैश्विक स्तर पर रूपांतरण होने की प्रक्रिया'। इस प्रक्रिया के द्वारा पूरे विश्व के लोग एक साथ मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। भूमण्डलीकरण के द्वारा सांस्कृतिक एकता (राष्ट्रीयता का तत्त्व) के दृष्टान्त के रूप में देखा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च को मनाया जाता है। वस्तुतः किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान नारी की स्थिति से ही होता है। 1997 में रूस की महिलाओं ने महिला दिवस पर रोटी और कपड़े के लिये हड़ताल पर जाने का फैसला किया। यह हड़ताल भी ऐतिहासिक थी। जार ने सत्ता छोड़ी, अन्तरिम सरकार ने महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया। इसके बाद यह दिवस सबसे पहले अमेरिका में सोशलिस्ट पार्टी के आह्वान पर, यह दिवस सबसे पहले 28 फरवरी 1909 को मनाया गया। इसके बाद यह फरवरी के आखिरी इतवार के दिन मनाया जाने लगा। 1990 में सोशलिस्ट इंटरनेशनल के कोपेनहेगन सम्मेलन में इसे अन्तर्राष्ट्रीय दर्जा दिया गया। उस समय रूस में जुलियन कैलेंडर चलता था और बाकी दुनिया में ग्रेगोरियन कैलेंडर। इन दोनों की तारीखों में कुछ अन्तर है। जुलियन कैलेंडर के मुताबिक 1997 की फरवरी का आखिरी इतवार 23 फरवरी को था जब कि ग्रेगोरियन कैलेंडर के अनुसार उस दिन 8 मार्च थी। इस समय पूरी दुनिया में यहाँ तक कि रूस में भी ग्रेगोरियन कैलेंडर चलता है, इसीलिये 8 मार्च महिला दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। इससे ज्ञात होता है कि महिलाओं का आंदोलन केवल एक देश में हुआ किन्तु उसका प्रभाव वैश्विक स्तर पर पड़ा, जिस कारण कारण वह दिवस 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। इस प्रकार विश्व पर्यावरण दिवस (5 जून), अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस, (21 जून) अन्तर्राष्ट्रीय युवा दिवस (12 अगस्त) अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस (8 सितम्बर) आदि भी इसी भूमण्डलीकरण के उदाहरण हैं।

भूमण्डलीकरण कृत कुछ तत्त्वों के द्वारा आर्थिक एकता (राष्ट्रीयता का तत्त्व) को भी बल दिया जाता है जिसका वर्तमान उदाहरण है- जी०एस०टी० (GST-Good & Services Tax) अर्थात् वस्तु एवं सेवा कर। यह महत्वपूर्ण कर व्यवस्था भारत में 1 जुलाई 2017 से लागू की गई, जिसे सरकार व कई अर्थशास्त्रियों द्वारा, स्वतंत्रता के पश्चात् सबसे बड़ा आर्थिक सुधार बताया है। इसका उद्देश्य है- केन्द्र एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भिन्न-भिन्न दरों पर लगाये जा रहे विभिन्न करों को हटाकर

पूरे देश के लिए एक ही अप्रत्यक्ष कर प्रणाली लागू की जाएगी जिससे भारत को एकीकृत साझा बाजार बनाने में मदद मिलेगी। भारतीय संविधान में इस कर व्यवस्था को लागू करने के लिए संशोधन किया गया। अब यदि देखा जाए तो इस प्रकार का कर पहली बार भारत में लागू नहीं किया गया, अपितु यहाँ से पहले बहुत सारे देश इस कर को लगा जा चुके हैं, जैसे फ्रांस वह पहला देश है जहाँ पहली बार 1954 में इस प्रकार का कर (GST) लागू किया गया। इसी प्रकार अन्य देशों जैसे न्यूजीलैंड में 1986, आस्ट्रेलिया में 2000 में लागू किया गया। इसी प्रकार विमुद्रीकरण जिसे नोटबंदी भी कहा जाता है, जिसमें किसी भी देश में प्रयुक्त होने वाली मुद्रा के बड़े बड़े (500, 1000, 5000, 10000) नोटों पर प्रयोग के लिए बंदी लगा दी जाती है ताकि काले धन पर नियंत्रण पाया जा सके व जाली नोटों से छुटकारा पाया जा सके। हाल ही में भारत में इस नोटबंदी की घोषणा 8 नवम्बर 2016 को रात 8 बजे भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा राष्ट्र को किये गये संबोधन के द्वारा की गई। भारत में यह विमुद्रीकरण पहली बार लागू नहीं किया गया अपितु भारत की स्वतंत्रता के बाद जनवरी 1946 और 16 जनवरी 1978 में भी हजार, पाँच हजार, दस हजार रूपये के नोटों का विमुद्रीकरण किया था। भारत के अतिरिक्त यूनाइटेड किंगडम ने 1971 में, घन ने 1982 में नाइजीरिया ने 1984 में, म्यानमार ने 1987 में, आस्ट्रेलिया ने 1996 में, उत्तर कोरिया ने 2010 में अपने अपने देशों में लागू किया। इससे ज्ञात होता है कि किसी भी देश के द्वारा अपने राष्ट्र के हित में उठाये गये कदमों को चाहे वह जी०एस०टी०हो या विमुद्रीकरण हो, भूमण्डलीकरण होकर उनको सभी देश अपने यहाँ लागू करने लगते हैं। इस प्रकार के किसी भी देश के राष्ट्रीय आर्थिक तत्वों का भूमंडलीकरण हो जाता है। यह बात अलग है कि कुछ देशों में यह आर्थिक प्रयास सफल रहा जबकि कुछ देशों में यह प्रयास असफल रहा।

भूमण्डलीकरण के कारण वैश्विक स्तर पर सभी देशों में एक तालमेल बना रहता है जैसे जब हमारा संविधान बनाया गया था, तब उस समय सभी देशों के संविधान से कुछ न कुछ लिया गया था जिस कारण हमारा संविधान एक सशक्त संविधान बन सके; जैसे भारत के संविधान में सम्मिलित 'मौलिक कर्तव्य' और 'पंचवर्षीय योजनाओं' को रशिया या रूस से लिया है, 'प्रस्तावना' को यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका, 'संसदीय चुनाव' और 'चुनाव आयोग' को यूनाइटेड किंगडम से लिया गया है। इसी प्रकार भारतीय संविधान में सम्मिलित अन्य तत्वों को दूसरे देशों से भी लिया गया है। यहाँ तक कि अगर किसी भी देश के द्वारा अपने राष्ट्र के हित के लिए कोई आविष्कार किया जाता है तो उसका भूमंडलीकरण होकर उससे विश्व के अन्य देश भी लाभान्वित होते हैं यथा लाइलाज कैसर जैसी बीमारियों का इलाज सम्भव होने पर केवल उसी दश के नहीं, अपितु सभी देश के लोग इससे लाभान्वित होते हैं। इसी प्रकार बिजली, टेलीफोन, टेलीविजन, आदि उपकरणों की खोज भी विश्व भर के सभी देशों के लिए वरदान के रूप में सिद्ध हुई है। भूमंडलीकरण के कारण ही आज भारत की संस्कृत भाषा का वह महत्त्व जो भारत देश के लोग समझ नहीं पा रहे थे, शायद समझने लगे। नासा के वैज्ञानिकों (NASA & National Aeronautics and Space Administration) द्वारा यह कहते हुए कि संस्कृत कम्प्यूटर की प्रोग्रामिंग के लिए सबसे अच्छी लेनवेज है, संस्कृत का महत्त्व स्वीकार किया गया, तभी वैश्विक स्तर पर संस्कृत का महत्त्व स्वीकार किया जाने लगा। जिससे भारत की संस्कृति को वैश्विक स्तर पर और यहाँ तक कि भारत में भी संस्कृत का महत्त्व स्वीकार किया जाने लगा। जिस कारण आज सभी देश संस्कृत साहित्य में निहित गुप्त तथ्यों या वैज्ञानिकता को जानने का प्रयास कर रहे हैं। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य पर अर्थात् वेद-उपनिषद् पर विदेशों में ज्यादा अध्ययन हो रहा है हमारे देश की तुलना में। इसलिए मृत भाषा मानी जाने वाली संस्कृत भूमण्डलीकरण के कारण एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में वैश्विक मानचित्र पर उभर कर सामने आयी है।

भूमंडलीकरण के कारण आतंकवाद, ग्लोबल वार्मिंग, पानी संरक्षण, ओजोन परत का क्षय आदि विश्वव्यापी विषयों पर भी वैश्विक स्तर पर विचार-विमर्श तथा निदान ढूँढा जाता है। यूनेस्को संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational Scientific and Cultural Organization) जैसी संस्थाएं इनमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। इनका कार्य शिक्षा, प्रकृति तथा समाज विज्ञान, संस्कृति तथा संचार के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की स्थापना को बढ़ावा देना है। किन्तु इसी भूमंडलीकरण के कुछ नुकसान भी हैं, जैसे दीवाली पर बहुतायत में घरों पर लगाई जाने वाली लड्डियाँ चीनी देश का सामान है, जिसका उपयोग कर हम चीन को व्यापार द्वारा सशक्त व धनवान् बना रहे हैं और फिर इस प्रकार भारत में ही व्यापार करके धनी होने वाला चीन हमें युद्ध के लिए धमकियाँ भी देता है। अपने शत्रु को सशक्त या धनी बनाना क्या विद्वता का कार्य है? इसके विपरीत अपने ही देश के वे गरीब लोग, जो दीवाली के पर्व पर मिट्टी के दीये बनाते हैं, जिनके पास खाने तक के लिए पैसे नहीं हैं, उनके दीये न खरीदकर हम लोग अपने ही देश को नुकसान पहुँचाते हैं, इसलिए पिछले वर्षों जो यह सरकार द्वारा मुहिम चलाई जा रही है कि स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करो और विदेशी वस्तुओं का त्याग करो, यह सच में राष्ट्र के हित में उठाया जाने वाला एक सराहनीय कदम है। ऐसा करने से राष्ट्रीयता के तत्त्व आर्थिक एकता को बल मिलता है। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण है सोशल मीडिया में प्रयुक्त होने वाला 'वहट्स ऐप', जो कि जनसंचार के माध्यम के रूप में प्रचलित है। यह भी अमेरिका देश के ब्रियेन एक्टन और जेन कौम द्वारा 2009 में आविष्कृत किया गया। इसका अधिकाधिक प्रयोग हमारे देशवासियों द्वारा सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए किया जाता है जिसका लाभ अमेरिका देश को प्राप्त होता है। इसी प्रकार चीन के द्वारा भी अपने देश द्वारा बनाया गया 'वी चैट' ऐप ही प्रचलित है जिससे

उनके देश को ही लाभ होता है। इससे उनकी राष्ट्रियता का ज्ञान होता है। यही कारण है कि अंग्रेजी भाषा के अन्तर्राष्ट्रिय माध्यम के रूप में विद्यमान होने पर भी चीन जैसा देश अपने देश के प्रत्येक कार्य में चीनी भाषा का प्रयोग करते हैं, यह भी राष्ट्रियता का संकेत है। भारतीय कम्पनियों द्वारा 'हाईक' को बनाने के बावजूद भारतीयों की रुचि इस एप में अधिक दिखाई नहीं देती। हाल ही में भारत देश के प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने भी यू०एन०ओ० आदि कई दूसरे देशों में (विदेशों) हिन्दी भाषा में ही अपना भाषण दिया है, जो राष्ट्रियता के तत्त्व भाषिक एकता के चिह्न है। यद्यपि भूमंडलीकरण आवश्यक है किन्तु अपने देश के प्रति राष्ट्रियता की भावना भी आवश्यक है। इस प्रकार भूमण्डलीकरण और राष्ट्रवाद इन दोनों के समन्वय में ही विश्व (सबका) का कल्याण निहित है।

सोशल मीडिया जनसंचार के लिए अंतर्जाल या अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित आभासी समूहों को संदर्भित करता है। किसी भी प्रकार की सूचना की प्राप्ति में यह व्यक्तियों और समुदायों को सहभागी बनाने का माध्यम है। इसका उपयोग सामाजिक सम्बन्ध के अलावा उपयोगकर्ता सामग्री के संशोधन के लिए, उच्च पारस्परिक मंच बनाने के लिए मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के रूप में भी देखा जा सकता है। वस्तुतः यह सूचना का युग है, यह बात बिल्कुल सच है कि मीडिया समाज के कल्याण व उत्थान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। किन्तु सूचना होने और सूचना देने, दोनों में बहुत अन्तर है; इसलिए कई बार मीडिया द्वारा झूठी सूचनाओं या अफवाहों द्वारा लोगों को गुमराह कर दिया जाता है। जिससे लोगों में अकारण भय, क्रोध और दुःख की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है सोशल मीडिया का जहाँ एक तरफ लाभ हैं वहीं दूसरी तरफ इसकी कमियाँ भी हैं। यह बहुत जल्दी बहुत बड़े पैमाने पर सूचनाओं का स्थानांतरण या सम्प्रेषण करता है, जिसमें अर्थव्यवस्था, संस्कृति, शिक्षा, व्यापार सम्बन्धी सभी सूचनाएं सम्मिलित होती हैं। यही कारण है कि यह बहुत बड़े स्तर पर अवसर भी प्रदान करता है। किन्तु आजकल हम देखते हैं कि सोशल मीडिया के द्वारा कुछ गलत सूचनाएं भी संप्रेषित होती हैं जिनको कई बार ईलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर 'वायरल सच' शीर्षक के अन्तर्गत दिखाया जाता है। उदाहरण के तौर पर हाल ही में 'आसिफा' वाले काण्ड पर सोशल मीडिया पर एक संदेश आया है जिसमें कहा गया है कि मोदी सरकार द्वारा भारतीय पैनल कोड 233 द्वारा 16 अप्रैल को एक कानून पास किया गया है जिसके अनुसार यदि किसी लड़की को बलात्कार होने का डर है या उसके साथ बलात्कार हो रहा है तो उस लड़की के पास यह सर्वोच्च अधिकार है कि वह उस व्यक्ति को जान से मार सकती है और उसे बुरी तरीके से नुकसान पहुँचा सकती है, ऐसा करने पर भी उस लड़की को आरोपी नहीं माना जाएगा। इस तरह के संदेशों से लोगों को गलत सूचना प्राप्त होती है, जिस कारण समाज में इन अफवाहों के कारण अशान्ति का वातावरण उत्पन्न हो जाता है, जो राष्ट्रियता की दृष्टि से उचित नहीं होता।

अन्ततः कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र के विकास में भूमण्डलीकरण एवं सोशल मीडिया दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि ये दोनों राष्ट्रियता के विकास में अपना सहयोग दे तो विश्व का कल्याण निहित है।

संदर्भ ग्रंथ

1. द इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटैनिका, 1911: शब्दकोष, 19वां खण्ड, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी, न्यूयार्क।
2. जैन, डा पुखराज, 1966 : राजनीतिविज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा।
3. सिंह, वी०पी०, 1973 : राजनीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, अष्टम संस्करण।
4. मालवीय, सुधाकर, 1980 : ऐतरेयब्राह्मणम्, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी।
5. भट्टाचार्य, श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति, 1987 : शब्दकल्पद्रुमः (1-5 भाग), राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली।
6. गौड, रामस्वरूप शर्मा, 1990 : अथर्ववेदसंहिता(हिन्दी व्याख्यासहित), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
7. सायण, 1990 : शतपथ ब्राह्मण, नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली।
8. तिवारी, डा शशि, 2012 : राष्ट्रियता एवं भारतीय साहित्य, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मीडिया की भूमिका और राष्ट्रवाद

डॉ. प्रीतम सिंह शर्मा

सहायक प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, रामजस महाविद्यालय

“जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।”

उपरोक्त पंक्तियों के रचयिता ‘ददा जी’ अगर आज के मीडिया में प्रचलित राष्ट्रवाद को देखते तो स्वाभाविक रूप से रसधार नहीं अश्रुधार बहाने पर विवश हो जाते। सामान्यतः कहा जाता है कि युग अथवा परिस्थितियों के अनफसार विषयों या संज्ञाओं के संदर्भ भी परिवर्तित होते रहते हैं। मनफष्य अपने अनफकूल भी परिस्थितियों को परिवर्तित करने से न बाज आया है न आ रहा, किन्तु कुछ सार्वजनिक व सार्वभौमिक सत्य भी होते हैं। ऐसा ही एक सत्य है राष्ट्रवाद की अवधारणा। सूर्य को हम अपनी मनमर्जी से पूर्व के अतिरिक्त किसी अन्य दिशा से उदय होने और पश्चिम के अतिरिक्त किसी और दिशा में अस्त होने के लिए विवश नहीं कर सकते। ठीक वैसे ही राष्ट्र की अवधारणा एक भावात्मक शाश्वत सत्य है जिसे हम अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित नहीं कर सके। उसके प्रचार-प्रसार, विकास-विस्तार आदि में भिन्न-भिन्न विषयों की भूमिकाएँ युगानुसार पृथक-पृथक हो सकती हैं किन्तु राष्ट्रवाद की अवधारणा संभवतः जो सदियों पूर्व रही होगी वह आज भी है और सदियों पश्चात् भी रहेगी। सीमा विस्तार में परिवर्तन-परिष्करण सम्भव भी है और स्वीकार्य भी। यह सम्भव नहीं है कि हम एक समय विशेष पर किसी राष्ट्र का अभिनन्दन करें, गुणगान करें, उसका गीत गाएँ और उसी के अन्न-जल से पोषित हो उसी की धराधाम पर जन्म लेकर दूसरे समय पर उसकी भर्त्सना या निंदा करें, उसे गालियाँ दें। यदि हम सच्चे देशभक्त या राष्ट्रवादी हैं तो हमें और कुछ नहीं तो इतना तो याद रखना ही चाहिए-

‘जन्म जहाँ पर हमने पाया
अन्न जहाँ का हमने खाया
वस्त्र जहाँ के हमने पहने,
ये है प्यारा देश हमारा,
इसकी रक्षा कौन करेगा?
हम करेंगे, हम करेंगे, हम करेंगे।’

आजादी के 70 वर्षों में हमने बहुत विकास किया है। धरती पर रेंगने वाला भारतवासी आज चाँद और मंगल पर सैर करने की क्षमता रखता है, लेकिन समाज के जितने टुकड़े हमने इन 70 वर्षों के लिए हैं उतने टुकड़े लगभग हजार वर्षों में मुगलों ने और लगभग 250 वर्षों में अंग्रेजों ने नहीं किए। गुलाम भारत में हम सिर्फ़ दो थे- हिन्दू और मुसलमान, किन्तु आजाद भारत में हम अनेक हैं। जातियों, धर्मों, रंगों, वर्गों, क्षेत्रों, भाषाओं इत्यादि में हम अनेक हो गए हैं। यह कहना उचित होगा कि गुलाम भारत में हम एक थे और आजाद भारत में हम अनेक हो गए हैं। हमारे इस विकास बनाम विस्तार या फिर कहें कि टुटन या बिखराव, इसके लिए वर्तमान मीडिया ने अपना सर्वस्व समर्पित किया है। मीडिया तब भी था जब आजादी के दिवाने संघर्षरत थे और मीडिया अब भी है जब हम अपनी उसी आजादी के टुकड़े करने के लिए संघर्षरत हैं। आज घर-घर में अकजल होना एक गौरव का विषय माना जाने लगा है और हम शहीदों की उस लंबी कतार को, जिन्होंने आजादी के अलावा कुछ नहीं चाहा, न केवल भूल चुके हैं अपितु उन्हें वाद-विवाद का विषय बनाकर कोसने भी लगे हैं। इसमें हमारे वर्तमान मीडिया की भूमिका को किन शब्दों में अभिव्यक्त करूँ ऐसे शब्द मेरे शब्द-ज्ञान की सीमा में उपलब्ध नहीं हैं। मैं तो केवल कविवर प्रदीप के इन शब्दों की याद दिलाना चाहूँगा-

‘ए मेरे वतन के लोगों, / जरा आँख में भर लो पानी
जो शहीद हुए हैं उनकी / जरा याद करो कुर्बानी
तुम भूल न जाओ उनको / इसलिए सुनो ये कहानी।’

वर्तमान संदर्भों में मीडिया या प्रकारान्तर से पत्रकारिता की स्पष्ट या प्रच्छन्न भूमिका का अवलोकन करने से पूर्व इस बात

का आकलन करना निहायत जरूरी है कि स्वाधीनता आंदोलन में जब मीडिया आज के समान समशुद्ध एवं परिपक्व नहीं था तब भी कितनी निष्ठा एवं ईमानदारी से इसने अपनी भूमिका का निर्वाह किया। तुलनात्मक दृष्टि से यह देखना चाहिए कि मीडिया आजादी के पूर्व आजाद था या आजादी के बाद गुलाम हो गया है। एक वो समय था जब लोगों के पास रोजी-रोटी तक के साधन नहीं थे। ऐसी परिस्थितियों में भी वे अपना व अपने परिवार का पेट काटकर पत्र-पत्रिकाओं का संपादन एवं प्रकाशन कर रहे थे और जिस विशेष भाव (**राष्ट्रवाद**) की आवश्यकता थी उसके प्रचार-प्रसार में अपना सर्वस्व समर्पित कर रहे थे और एक आज का समय है जब हम एक बटन दबाकर पूरी दुनिया में घृणा, नफरत, अपराध, वितर्क, वैमनस्य, विरोध और ऐसे ही अनचाहे भावों से भरे विचारों को खुशबु की तरह वातावरण में शौकिया तौर पर उड़ा रहे हैं। वे लोग देश और काम के लिए मरते थे और आज लोग नाम एवं दाम के लिए जी रहे हैं। वह समय आ चुका है जब वर्तमान मीडिया को आत्मनिरीक्षण करना होगा और सनसनीखेज अथवा तहलका मचाने वाले घृणित प्रचार-प्रसार से बचकर सौहार्द एवं भाईचारे का प्रचार-प्रसार करना होगा।

इतिहास गवाह है कि मीडिया सत्ताओं के परिवर्तन और स्थापन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। बहुत पुरानी बात नहीं है जब आपातकाल में भारतीय मीडिया ने कांग्रेस के पैरों तले की जमीन उखाड़ दी थी और सत्ताओं द्वारा मीडिया के दुरुपयोग का उदाहरण वाजपेयी सरकार के छद्म 'भारत निर्माण' के प्रचार से बेहतर क्या मिलेगा। मीडिया के विकास पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि पिछली दो शताब्दियों में इसका विकास बहुत तीव्रता से हुआ है। एक समय था जब राजा-महाराजा या ग्राम विशेष का मुखिया मुनादी करवाकर, नौबत बजवाकर अथवा ढोल-नगाड़े बजवाकर सूचनाओं या संदेशों का प्रचार-प्रसार किया करते थे। शिलालेखों पर लेख लिखवाना, रास्तों में मील के पत्थर लगवाना, तथा भव्य-भवनों एवं देवस्थानों में तत्कालीन शासकों, उनके निर्माताओं अथवा तिथि आदि का पत्थरों पर अंकन करवाना मीडिया के प्रारम्भिक रूप को दर्शाता है। हस्तलिखित सूचनापत्रों से लेकर छापेखाने की दुनिया को पार कर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का ही अत्यंत परिष्कृत जिसे कोई दूसरा बहिष्कृत भी कह सकता है, आज सोशल मीडिया बन गया है। कहने के लिए तो यह सामाजिक है लेकिन अंतरजाल (पूज्यमतदमजद्ध पर आधारित इस मीडिया रूप ने समाज को एक ऐसे जाल में ंसा लिया है जहां वो तड़प सकता है, छपपटा सकता है किंतु लाख कोशिश करने पर भी उससे बाहर नहीं आ सकता। ज्ञानात्मक प्रचार या ज्ञानात्मक सूचना के स्थान पर दुर्भाग्यवश आज का मीडिया घृणात्मक प्रचार एवं घृणात्मक सूचनाएँ देने में स्वयं को कृतिकृत्य समझने लगा है। सनसनी एवं तहलका आज के इस तथाकथित सोशल मीडिया के पवित्रतम उद्देश्य बन चुके हैं जिनका दुष्परिणाम अबोध बालक-बालिकाओं को जेलयात्रा और यातनाएँ सहकर भोगना पड़ रहा है। आशा है हमारे मीडिया पुरोधाओं का शीघ्र इस ओर ध्यानाकृष्ट होगा और वैश्वीकरण के इस दौर में मीडिया के इस तूफानी विनाश से बचने-बचाने की युक्तियाँ सामने आएंगी। वर्तमान युग में मीडिया व्यक्तित्वों को ही नहीं संपूर्ण वातावरण को अपने आगोश में ले चुका है।

सत्ताओं के समापन एवं आरम्भ की घोषणा भाषायी मीडिया के माध्यम से होती रही है। जब 1556 में पुर्तगालियों ने गोवा में प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की और ताड़ के पत्तों पर तमिल भाषा में 'न्यू टेस्टामेंट' का प्रकाशन किया तभी से भारत में भाषायी मीडिया का औपचारिक उदय हुआ। 1831 से 1885 तक लगभग सभी भारतीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हो गया था। बंगाल हैराल्ड, मीरता-उल-अखबार, संवाद प्रभाकर, तत्वबोधिनी, विविधार्थ बोधिनी (बंगाल से प्रकाशित), मुंबई का समाचार, बंबई समाचार, मुंबई वर्तमान, जाम-ए-जमशेर (गुजराती), बंबई-दर्पण, दिग्दर्शन, ध्यानोदय (मराठी), उदंडमार्तंड, बंगदूत, प्रजामित्र (हिन्दी), राजवृत्त बोधिनी, क्षेत्र वर्तमान (तमिल) जैसे पत्रों ने जनजागरण भारतीय भाषाओं में चलाया। भाषायी पत्र-पत्रिकाओं ने ब्रिटिश साम्राज्य को इतना परेशान कर दिया था कि ब्रिटिश साम्राज्य ने 1877 में 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' पारित किया, जिसे पहले एक वर्ष और फिर भाषिक गतिविधियों के चलते इसे दो वर्षों तक के लिए लागू कर दिया। इस प्रेस एक्ट के कारण 1885 से लोकप्रिय तथा प्रचलित छत्तीस प्रकाशनों में से केवल छः ही बच सके।

ऐसा नहीं है कि मीडिया को स्वतंत्र रूप से काम करने की हमेशा आजादी रही हो। शासकों एवं सत्ताओं ने उसे अपना मुख बनने और उसकी नीजि आवाज को बंद करने के लिए अनेक बार प्रयत्न किए हैं। प्रेस एक्ट के लागू होने के बाद भारतीय प्रेस की आजादी पर अंकुश लगाने के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्य ने भारतीयों के स्वामित्व वाले अंग्रेजी पत्रों पर भी शिकंजा कसा। प्रेस की आजादी का दम घुट गया। अनेक पत्र बंद हो गए। कुछ ने अपने नाम बदल लिए तो कुछ ने सरोकार। पंडित विद्यावाचस्पति 'अर्जुन' पत्र के संपादक थे। नाम बदलकर पत्र नाम 'विजय' रख दिया और 'गांडीव के तीर' कृ 'वीणा की झंकार' शीर्षक से स्तम्भ लिखते रहे। सत्यकाम विद्यालंकार के साथ इसी कारण कई बार जेल भी गए। हिंदी में बालमुकुन्द गुप्त ने 'शिवशम्भु के चिट्ठे' (लार्ड कर्जन के नाम) छद्म नाम से लिखे। ब्रिटिश साम्राज्य ने मीडिया का जितना दमन किया वह उतना ही प्रबल और मुखर होता गया। 'खेड़ा वर्तमान', 'सूरतमित्र', 'देशमित्र', 'केसर-ए-हिंद' (गुजराती) और 'इंदुप्रकाश', 'केसरी' (मराठी) पत्रों ने राष्ट्रवाद का पुरजोर प्रचार शुरू कर दिया। 'श्रमजीवी', 'अमृतबाजार पत्रिका' (बंगला), 'भारतखंड-मित्र', 'सर्वोपकारक', 'आब-ए-ध्यान-ए-हिंद' (उर्दू) पत्रों ने भारत की तत्कालीन दुर्दशा का वर्णन कर आजादी का बिगुल बजाया।

वर्तमान संदर्भों में मीडिया की भूमिका या पत्रकारिता के प्रदाय का आकलन करते समय हमारा यह मकसद कदापि नहीं है कि स्वाधीनता आंदोलन में मीडिया की भूमिका का आकलन किया जाए किंतु शाश्वत सत्य यह भी है कि अतीत कभी व्यतीत नहीं होता और इसी आलोक में हम विवश हैं आज के मीडिया की भूमिका का आकलन करने के लिए। हम सबको याद है कि 1905 में अरविंदो घोष ने 'वन्दे मातरम्' पत्र के प्रकाशन के साथ 'वन्दे मातरम्' को जनव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन बनाया था और आज हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी 'वन्दे मातरम्' बोलने में भी अपनी हेठी समझते हैं। सरकारों द्वारा दिए गए उपहारों को लौटाने और अभिव्यक्ति की आजादी के इन स्वयंभू समर्थकों से हमारा प्रश्न है कि क्या जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करना या जिस धराधाम पर पले बढ़े हैं, उसकी छिछालेदर करना लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की इस भूमिका को सराहनीय कहा जा सकता है? खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि आज हम स्वार्थ की समस्त सीमाओं को लांघकर एक ऐसे दलदल में नैस गए हैं जहाँ से निकलना चाहते हैं किंतु चाहते हुए भी निकल नहीं पा रहे। सत्ता या शासन का समर्थन करना कोई अपराध नहीं है किन्तु गुणवत्ता के आधार पर सत्ताओं के विरोध की हिम्मत भी होनी अनिवार्य है। देशप्रेम या राष्ट्रभावना का ठेका केवल भूखों या गरीबों ने ही नहीं लिया। इन गगनचुंबी वातानुकूलित भव्य इमारतों में चाय की चुस्कियों के साथ गपशप लड़ाने वाले इन तथाकथित बुद्धिजीवियों एवं पत्रकारों का भी यह दायित्व बनता है कि वे गरीब की आवाज़ को भी वाणी प्रदान करें।

हमारा विश्वास है कि मीडिया की भूमिका वर्तमान संदर्भों में किसी भी अन्य युग की अपेक्षा महत्वपूर्ण हो चुकी है। आज मीडिया को एक समन्वयकारी सशक्त माध्यम के रूप में एक ओर जनमानस की भावनाओं को अभिव्यक्ति देनी है तो दूसरी ओर सत्ता और समाज के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में काम करना है। आजादी या स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता से बचते हुए मीडिया को अपनी शक्ति और सीमा दोनों का सही आकलन करना आज के युग की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। हम सब जानते हैं कि सत्ताओं से सीधे टकराने की हिम्मत कोई विरला सही ही कर रहा हो, किंतु इतना अवश्य है कि सत्ता की आवाज बनने के तरे में मीडिया को सत्ता की नगरवधू नहीं बन जाना चाहिए उसे 'ताल ठोकते' समय इतना 'क्रांतिकारी' नहीं बन जाना चाहिए कि वह 'तहलका' मचाते हुए अपना ही 'डी.एन.ए.' टेस्ट करने लगे। आज मीडिया को आपकी या हमारी नहीं 'स्वयं की अदालत' में खड़े होकर अपना मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। मीडिया के रहमोकरम का आकलन भाई सलीम खान की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

“आज कागज का कलम से / मैं दंगा करने वाला हूँ,
 मीडिया की सच्चाई को / मैं नंगा करने वाला हूँ।
 मीडिया जिसको लोकतंत्र का / चौथा खंभा होना था
 खबरों की पावनता में / जिसको गंगा होना था
 आज वही दिखता है हमको / वैश्या के किरदारों में
 बिकने को तैयार खड़ा है / गली चौक बाजारों में
 दाल में काला होता है / तुम काली दाल दिखाते हो
 सुरा सुंदरी उपहारों की / खूब मलाई खाते हो
 गले मिले सलमान से आमिर / ये खबरों का स्तर है,
 और दिखाते इंद्राणी का / कितने फिट का बिस्तर है
 म्याँमार में सेना के / साहस का खंडन करते हो
 और हमेशा दाउद का तुम / महिमा मंडन करते हो,
 हिन्दू कोई मर जाए तो / घर का मसला कहते हो
 मुसलमान की मौत को, / मानवता पर हमला कहते हो,
 लोकतंत्र की संप्रभुता पर / तुमने कैसा मारा चाटा है
 सबसे ज्यादा तुमने / हिन्दु-मुसलमान को बांटा है
 साठ साल की लूट पे भारी, / एक सूट दिखलाते हो
 ओवैसी को भारत का / तुम रॉबिन हुड बतलाते हो
 दिल्ली में जब पापी वहशी / चीर हरण में लगे रहे
 तुम ऐश्वर्य की बेटे के / नामकरण में लगे रहे,
 दिल से दुनिया समझ रही है / खेल ये बेहद गंदा है,
 मीडिया हाउस और नहीं कुछ / ब्लैकमेलिंग का धंधा है।
 गूगे की आवाज बनो, / अंधे की लाठी हो जाओ
 सत्य लिखो निष्पक्ष लिखो / और फिर से जिंदा हो जाओ।

भारतीय मीडिया और राष्ट्रबोध

ध्रुव कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वर्तमान समय में सूचना मनुष्य की सामाजिकता की पहली शर्त हो चुकी है। सूचना के अभाव में न ही कोई मनुष्य सामाजिक हो सकता है और सामाजिक हुए बिना उसका राष्ट्रप्रेमी होना असंभव है। जो नागरिक अपने आस-पास की, अपने नगर-समाज की गतिविधियों, संवेदनाओं से नहीं जुड़ सकता वह राष्ट्र की संवेदनाओं से भला क्या जुड़ेगा ? वैश्विक होना तो बहुत दूर की बात है। अतः वैश्विकता हो अथवा राष्ट्रीयता, स्थानीयता हो अथवा सामाजिकता इन सबके लिए सूचना सबसे अनिवार्य तत्व है।

वर्तमान में मानव ने औद्योगिक क्रांति के बाद सूचना क्रांति में प्रवेश करने के साथ ही स्वयं को अब तक के सबसे आधुनिक पड़ाव पर ला खड़ा कर दिया है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी की उन्नत अवस्था के कारण मनुष्य नए सृजन और आविष्कार की ओर उन्मुख हो सका है। सूचनाएं जब एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक या अधिक लोगों तक पहुंचाई जाती हैं, सामान्य तौर पर उसे ही हम मीडिया नाम से अभिहित करते हैं। यह कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे-प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, नवमीडिया (इंटरनेट, सोशल मीडिया) इत्यादि। प्रश्न उठता है कि मीडिया के साथ राष्ट्रवाद जैसी एकदम भिन्न अवधारणा को जोड़ने का क्या अर्थ है जबकि मीडिया तो सूचना के प्रसारण मात्र के लिए उत्तरदायी है। इसके उत्तर में बस इतना कहा जा सकता है कि मीडिया अथवा सूचना यदि कोई स्वायत्त और निरपेक्ष वस्तु होती तो यह प्रश्न उचित होता। परंतु मीडिया की प्रकृति स्वायत्त होने के बाद भी निरपेक्ष नहीं है।

सूचना स्वयं में स्वतंत्र होने के बावजूद अपने आवागमन और प्रसारण के लिए इंसानों पर निर्भर रहती है। इसलिए सूचना के एक स्थान से दूसरे स्थान तक के स्थानांतरण में मानवीय हस्तक्षेप के कारण मानव के वैचारिक आग्रह, पूर्वग्रह का सूचना में मिश्रित हो जाना अवश्यंभावी है। यही नहीं, सूचना अपनी परिणति में भी मानव के ऊपर ही निर्भर रहती है। किसी सूचना की सार्थकता तभी मानी जाती है जब वह प्रेषक से होकर माध्यम से होते हुए किसी एक या अधिक श्रोता तक पहुंचती है। इस तरह कोई भी सूचना प्रथमतः और अंततः मानव के लिए ही होती है (यहां मानवेंतर सूचनाओं की चर्चा करना उद्देश्य नहीं है)। ऐसे में रचनाकारों, संवाददाताओं और अन्य मीडियाकर्मियों का यह परम कर्तव्य होना चाहिए कि वह सूचना की निरपेक्षता बरकरार रखने का प्रयास करें, साथ ही उस सूचना के उन पहलुओं को भी अलग से प्रकाश में लाएं जो एक बेहतर मानव समाज और राष्ट्र के निर्माण में योगदान कर सकें। मीडियाकर्मियों को सूचना के नैतिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीयता के पक्ष को भी ध्यान में रखते हुए सूचना का निर्माण और प्रसारण करना चाहिए।

भारतीय पत्रकारिता का इतिहास ऐसे पत्रकारों से भरा हुआ है जिन्होंने अपनी पत्रकारिता में भारतीय राष्ट्रीयता के स्वर को मुखर रखा है। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, बदरी चौधरी नारायण 'प्रेमघन', से लेकर निराला, महादेवी वर्मा, गणेश शंकर विद्यार्थी और बाबूराव विष्णु पराडकर ऐसे पत्रकार थे जो साथ में साहित्यकार भी थे। समाज, मानवता और राष्ट्रीयता के प्रति उनकी चेतना और श्रद्धा अक्षुण्ण थी। इन लोगों के लिए पत्रकारिता एक पवित्र कर्म हुआ करता था जिसमें लाभ और लोभ के लिए कोई जगह नहीं थी। उस समय के संचार माध्यमों का 'मीडिया' नामक शब्द से तो परिचय भी नहीं हुआ था। उनका एक वृहत लक्ष्य हुआ करता था 'स्वराज्य' और 'दोषमुक्त समाज'। परंतु वर्तमान समय में मीडिया ने अपना जो रूप अख्तियार कर लिया है वह इन पत्रकारिता के महापुरुषों ने कल्पना भी नहीं की होगी। स्वराज्य और आदर्श राज्य की संकल्पना को कहीं दूर छोड़ते हुए वर्तमान मीडिया ने अपना एक 'कमर्शियल मॉडल' तैयार कर लिया है। जिसका प्रथम और अंतिम लक्ष्य है मात्र मुनाफा। संविधान और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर मीडिया में ऐसी-ऐसी खबरें आती हैं जिन्हें खबर या समाचार की संज्ञा देते हुए भी सोचना पड़ता है। राष्ट्रहित की बजाय अब मनोरंजक खबरों की संस्कृति पनप गई है। मनोरंजन भी स्वस्थ मनोरंजन नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय चरित्र और अस्मिता को क्षीण करने वाली सामग्री से भरे मनोरंजन। पत्रकारिता का वर्तमान मूल्य सामाजिक न होकर बाजार से तय होने लगा है। पत्रकारिता अब बाजारमुखापेक्षी हो गई है और बाजार का एकमात्र घोषित लक्ष्य होता है आर्थिक मुनाफा। इसलिए ऐसी खबरें बेची जा रही हैं जो अधिक से अधिक धन उपार्जन कर सकें। उसका मानव,

परिवार, समाज अथवा राष्ट्र के हित पर कितना दुष्प्रभाव हो रहा है इससे उन्हें कोई लेना-देना नहीं है। इस बाजार पत्रकारिता में खबर एक मात्र उत्पाद बनकर रह गई है। जो उत्पाद जितना मुनाफा दे रहा है उसे बाजार में उतना ही प्रसारित किया जा रहा है। यहाँ फैशन, सेक्स और हिंसा एक औजार की तरह काम करते हैं।

जिन वस्तुओं से हम एक नैतिक समाज में प्रायः परहेज करते हैं वह कब हमारी सुध लिए बगैर हमारे कमरे में घुस आते हैं हमें मालूम भी नहीं पड़ता। 'मॉडर्न' और 'वेस्टर्न' फैशन के नाम पर अंग्रेजी अखबारों के अलग से परिशिष्ट निकाले जाते हैं। इन रंगीन पन्नों में बॉलीवुड से लेकर हॉलीवुड तक की अदाकाराओं के कैसे-कैसे चित्र फैशन के नाम पर परोसे जाते हैं वह किसी से नहीं छुपा। हर एक सुबह घर के बालक-बालाएं इन्हें देखकर यदि अपनी नई दुनिया बनाने लगते हैं तो इसमें उनका क्या दोष? अखबार का तर्क यह होता है कि समाज जिस चीज की मांग कर रहा है हम वह प्रसारित करते हैं जबकि वास्तविकता यह होती है कि वह प्रसारित वही करते हैं जो उनको करना होता है और वह धीरे-धीरे आगे चलकर समाज की मांग बन जाती है और उसकी कुरुचि अखबारी व्यवसाय के मुनाफे में परिवर्तित हो जाती है।

मुनाफे की प्रवृत्ति ने मीडिया के आदर्श चरित्रों को भी बदल दिया है। अब मीडिया के आदर्श चरित्र गांधी, भगत सिंह और गुरुदेव ठाकुर नहीं रह गए हैं। अब नीरव मोदी, कैटरिना कैफ और दारुद इब्राहिम मीडिया के नायक हैं। इसी वर्ष के छः अप्रैल को जनसत्ता जैसे प्रतिष्ठित हिंदी अखबार का उदाहरण देखिए। 21वें राष्ट्रमंडल खेलों में पहला स्वर्ण पदक दिलाने वाली विश्व चौपियन साइखोम मीराबाई चानू की खबर जहां पूरे पृष्ठ के लगभग एक छठवें भाग में थी वहीं काले हिरण के शिकार के मामले में दोषी पाए गए सलमान खान की खबर लगभग एक तिहाई पृष्ठ पर छाई थी। इसी प्रकार ही अन्य अखबारों का भी हाल था। किसी किसी अखबार ने तो इस खबर को लगभग आधा पेज तक दे दिया। आए दिन इन अखबारों के रंगीन और मनोरंजन के पृष्ठों में कहीं कैटरिना कैफ की सैंडल तो कभी दीपिका पादुकोण की नई ड्रेस या रणवीर-अनुष्का के प्रेम संबंधों की खबरें भी अब आम हो गई हैं। अब इन पृष्ठों से हम किस नैतिकता, सामाजिकता अथवा राष्ट्रीयता की उम्मीद कर सकते हैं?

अब बात विज्ञापनों की। विज्ञापन से तात्पर्य ऐसी आकर्षक सूचना से है जो उत्पादों की बिक्री के लिए उपभोक्ता वर्ग का निर्माण करती है। विभिन्न कंपनियां अपने उत्पादों के विज्ञापन के लिए मीडिया का भरपूर इस्तेमाल करती हैं। बाजार में जैसे-जैसे नई नई कंपनियों के आगमन से प्रतिस्पर्धा बढ़ती गई वैसे वैसे विज्ञापन का दायरा भी बढ़ता गया। विज्ञापनों से होती अतिरिक्त आमदनी के कारण ही अखबार एकमात्र ऐसी चीज बनी जिसकी बिक्री उसके लागत से भी कई गुना कम कीमत पर होती है। इसलिए मीडिया अपने मुनाफे के चक्कर में कभी भी यह देखने की जहमत नहीं उठाता की आवक विज्ञापनों की प्रकृति और चरित्र कैसा है? वे सभी प्रकार के विज्ञापनों को स्थान देने के लिए लालायित रहते हैं। विज्ञापन से जहां एक ओर व्यावसायिकता बढ़ी है, नए रोजगारों का सृजन हुआ है तथा रचनात्मकता बढ़ी है वहीं दूसरी ओर इसके दुष्परिणाम भी कम नहीं हुए हैं। विज्ञापनों का प्रभाव हमारे मन-मस्तिष्क के साथ-साथ हमारे व्यवहार, हमारी शिक्षा तथा समाज पर भी पड़ता है। इतने विज्ञापनों में मात्र कुछेक विज्ञापन ही ऐसे होते होंगे जो आम जनता को जागरूक करते होंगे। बाकी प्रायः सभी विज्ञापन अपने आधार कंपनी के मुनाफे के लिए ऐसे जाल रचते दिखाई देते हैं जिसमें आम इंसान सब कुछ भूल कर उसी उत्पाद के पीछे लग जाता है।

मधु अग्रवाल अपनी पुस्तक 'भारतीय विज्ञापन में नैतिकता' में लिखती हैं, 'उपभोक्ता के समक्ष विज्ञापन अपनी वस्तु के विकल्पों का ढेर लगा कर उस पर सामाजिक और व्यावसायिक दबाव डालता जा रहा है। अगर उसे वह न खरीदे तो पिछड़े और दकियानूसी वर्ग में शामिल होता है और खरीदता है तो उसके जाल में फंसता चला जाता है। साधनहीन लोग विज्ञापित माल नहीं खरीद पाते, परंतु विज्ञापन के कारण वे अपनी इच्छाओं को दबाकर रखने व अशांत रहने पर मजबूर हैं।' इस तरह विज्ञापन आम उपभोक्ता के समक्ष नित नई नई आभासी जरूरतों को पैदा कर करके अपने जाल में फंसाए रखता है। मीडिया इसका सर्वप्रिय स्थान है। विज्ञापनों की जद में आने वाला एक दूसरा ऐसा वर्ग है जो प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही प्रकार से सबसे ज्यादा दुष्प्रभावित हुआ है। वह वर्ग है स्त्री वर्ग। सूचना क्रांति के आने से स्त्री किस तरह अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता के नाम पर बाजार के चंगुल में फंसी गई इसका भान उसे स्वयं भी न हुआ। 'आधी दुनिया का सच' में 'कुमुद शर्मा' लिखती हैं, "वैश्वीकरण की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के प्रभाव से पत्रकारिता अब बिकाऊ माल का भण्डार बनने लगी है, जिससे 'औरत' की छवि को गहरा नुकसान पहुंचा है, क्योंकि व्यावसायिक तंत्र के चलते स्त्री को एक उपकरण के रूप में प्रयोग करने वाली विचारधारा प्रभावी हुई है।

मीडिया में कुछ अपवादों को छोड़कर, वही सामग्री परोसी जा रही है जो बिकाऊ हो।¹² इसके अतिरिक्त विज्ञापन पाने के कारण मीडिया उन खबरों को नजरअंदाज करता रहा है जो आम जनता के हित में होते हैं। 'चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड' में 'दिलीप मंडल' लिखते हैं, "इस देश में किसी भी बड़े विज्ञापनदाता के खिलाफ मीडिया में आमतौर पर कुछ नहीं छपता। मिसाल के तौर पर हिंदुस्तान लीवर, मारुति सुजुकी, प्रोक्टर एंड गैबल, टाटा, रिलायंस इंडस्ट्रीज, हीरो होंडा, एयरटेल, बिग बाजार, पैंटालून आदि के खिलाफ शायद ही आपने कभी कोई खबर देखी होगी। कोला कंपनियां इस देश के बच्चों और नौजवानों

की सेहत बिगाड़ रही हैं और उन्हें मोटा बना रही हैं, लेकिन सेहत के किसी टीवी कार्यक्रम या किसी अखबारी पन्ने पर खोला डिंक्स के खिलाफ पढ़ने को शायद ही मिलेगा।³ मीडिया की यह प्रवृत्ति विचारणीय है।

आज हमें फिर से जरूरत है कि एक बार पंडित दीनदयाल उपाध्याय, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकारों का अनुकरण करने की। जिनके लिए पत्रकारिता कोई साधन नहीं वरन उनका ध्येय था, उद्देश्य था। संवाद को वे सत्यम, शिवम और सुंदरम का प्रतिरूप मानते थे। पत्रकारिता के पेशे में वह उपदेशक की भूमिका मात्र में न होते हुए अपने आदर्शों को जीने वाले महापुरुष थे। वर्तमान की पत्रकारिता उनका अनुकरण कर एक बार फिर से अपने आदर्श चरित्र को प्राप्त कर सकती है।

संदर्भ

- 1 भारतीय विज्ञापन में नैतिकता, मधु अग्रवाल, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 144
- 2 आधी दुनिया का सच, कुमुद शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 33
- 3 चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड, दिलीप मंडल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 123

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तक



भूमंडलीकरण, पत्रकारिता और राष्ट्रवाद

सविता रानी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

राष्ट्र और साहित्य का संबंध बड़ा ही जटिल है। पत्रकारिता राष्ट्र से अपना कोई ना कोई संबंध अवश्य बनाती है। अब वह संबंध तनाव, विरोध या मधुर किसी भी प्रकार का हो सकता है। यहाँ राष्ट्र का अर्थ व्यापक अर्थों में है। राष्ट्र मात्र शासन तंत्र नहीं अपितु वह व्यवस्था है जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं और अब इसे बाजार, व्यावसायिकता, भूमंडलीकरण तथा पत्रकारिता आदि स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। व्यावसायिकता समाज पहले भी विद्यमान थी किन्तु इतनी सद्दृढ़ अवस्था में नहीं थी कि मानसिकता पर ही हावी हो जाए। व्यावसायिकता नयी व्यवस्था का मूल स्वभाव जान पड़ता है। जिसने पत्रकारिता को भी अछूता नहीं छोड़ा है। पहले पत्रकारिता के पीछे लाभ की कामना नहीं थी बल्कि समाज सेवा का, साहित्य सेवा का भाव था। किन्तु जैसे-जैसे व्यवस्था बदली पत्रकारिता के मूल्य भी तिरोहित होते गए। पत्रकारिता जिसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता था आज बाजार नियंत्रित हो गयी। अब पाठक और पत्रकार के बीच कोई रचनात्मक रिश्ता नहीं रह गया। जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ माल में परिवर्तित हुईं, जीवन का संवर्धन करने वाले विचार रूढ़ि बन गए। व्यावसायिकता ने उपयोग के बजाय उपभोग को प्रोत्साहित किया। वस्तुतः व्यावसायिकता, भूमंडलीकरण ने राष्ट्र और सत्ता को अन्दर से घायल किया है। राष्ट्रवाद और पत्रकारिता दोनों ही समाज में अपनी बड़ी साख रखते हैं। लेकिन आज इन्हें लेकर कुछ प्रश्न भी। क्या दोनों एक साथ चल सकते हैं? एक राष्ट्रवादी पत्रकार कैसा होना चाहिए? जो लोकतंत्र की बातें करें।

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी राष्ट्रवाद की कहानी है। वास्तव में पत्रकारिता का स्वरूप ही राष्ट्रवादी है। इसका उदय ही राष्ट्रवाद को प्रखर बनाने के उद्देश्य से हुआ। पत्रकारिता राष्ट्रवाद की बिम्ब व छाया है। इसे राष्ट्रवाद से अलग कर नहीं देखा जा सकता। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक ही माने जा सकते हैं क्योंकि अतीत से लेकर आज तक पत्रकारिता ने राष्ट्रवाद को सबल बनाने के कार्य किए हैं। स्वतंत्रता के पश्चात पं. दीनदयाल उपाध्याय, मदन मोहन मालवीय, अटल बिहारी वाजपेयी आदि के राष्ट्रवादी पत्रकारिता के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। वहीं आज की बात करें तो भूमंडलीकरण युग के वर्तमान परिपेक्ष्य में पत्रकारिता की नितांत आवश्यकता है। जरूरी हो जाता है कि हम पत्रकारिता को व्यापक दृष्टि से देखें। कुछ चैनलों, पत्र या अखबारों से भ्रमित हो राष्ट्रवादी पत्रकारिता को किसी एक दृष्टि से देखना उचित नहीं। भूमंडलीकरण के इस दौर में पत्रकारिता की प्रस्तुति ही नहीं बल्कि सामग्री में भी बदलाव आ रहे हैं। समाचार एक उत्पाद बना है जिसे बेचने की होड़ है। आवश्यकता है इस बात की कि पत्रकारिता को फिर एक बार राष्ट्रवाद से जोड़ा जाए। सीधे-सीधे कहे तो राष्ट्रवाद और पत्रकारिता का संबंध तो आरंभ से ही था अब भूमंडलीकरण भी उससे आ जुड़ा है। भूमंडलीकरण राष्ट्रवाद और पत्रकारिता दोनों को प्रभावित करने लगे हैं।

साहित्य और पत्रकारिता में संवेदना के स्तर पर पर्याप्त समानता मिलती है, दोनों के सरोकार एक समान हैं। हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य में विषयों की आवाजाही बढ़ने लगी है। वर्तमान में साहित्य हिन्दी पत्रकारिता का हिस्सा है। इसमें कोई दो मत नहीं कि हिन्दी साहित्य का निर्माण और विकास पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। इस संदर्भ में पं. बालकृष्ण भट्ट का कथन उल्लेखनीय है, “पाठक इस बत्तीस साल की जिल्दों में कितने उत्तमोत्तम उपन्यास, नाटक तथा अन्योन्य प्रबंध भरे पड़े हैं। वे सब यदि पुस्तकाकार छपा दिए जाये तो निःसन्देह हिन्दी साहित्य के अंग का कुछ न कुछ कौना अवश्य भर जाएं।” भारत में प्रेस स्थापित करने का श्रेय पुर्तगालियों को जाता है जिन्होंने 1550 में यूरोप से मिशनरियों को मंगवा गौजा में स्थापित किया। अठारवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मूलतः धार्मिक पुस्तकें ही छपी जाती थीं। प्रथम बार वर्ष 1780 में कलकत्ता में जेम्स आगस्ट हिकी ने ‘कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर’ अथवा ‘हिकीज बंगाल बजट’ प्रकाशित किया। भारतीय पत्रकारिता का नया अध्याय उस समय आरंभ हुआ जब स्वयं भारतीय के संयोजन तथा संपादकत्व से पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। दिग्दर्शन के पश्चात् प्रथम बार भारतीय प्रकाशक हरचंद्र राम तथा गंगाधर भट्टाचार्य ने बंगला भाषा में ‘बंगाल गजट’ प्रकाशित किया। राजा राममोहन राय के क्रांतिकारी विचार कई पीढ़ियों को शिक्षित व प्रभावित करते थे और इन्हें दूर-दूर तक पहुंचाने के लिए उन्होंने 1821 ई. में ‘संवाद कौमुदी’ नामक बंगला पत्र प्रकाशित किया। वर्ष 1826 से पूर्व निकलने वाले सभी पत्र बंगला, कारसी तथा अंग्रेजी

भाषा में थे। किसी ने भी हिन्दी में पत्र निकालने का प्रयास नहीं किया। अतः कलकत्ता के युगल किशोर ने भारतीयों के हितेषु, उन्हें परावलम्बन के मुक्ति दिला, स्वतंत्र दृष्टि प्रदान करने के उद्देश्य से वर्ष 1826 में 'उदंत मार्तण्ड' निकाला। सामान्यतः साहित्यकार और पत्रकार दो भिन्न व्यक्ति होते हैं। साहित्यकार साहित्य की विभिन्न विधाओं में सज्जन करता है वहीं पत्रकार सामाजिक गतिविधियों को अखबार में प्रस्तुत करता है। पत्रकार पत्रिका, मीडिया या अखबार के अन्य-अनेक माध्यमों में कार्यरत रहता है। कभी-कभी साहित्यकार और पत्रकार एक ही व्यक्ति होते हैं। इस संदर्भ में रघुवीर सहाय के विचार प्रकाश डालते हैं, "पत्रकार तथा साहित्यकार में कोई अंतर है क्या? मैं मानता हूँ कि नहीं है। इसलिए नहीं कि साहित्यकार रोजी के लिए अखबार में नौकरी करते हैं, बल्कि इसलिए कि पत्रकार तथा साहित्यकार दोनों नए मानव संबंधों की तलाश करते हैं। दोनों ही दिखाना चाहते हैं कि दो मनफश्यों के बीच नया संबंध क्या बना। दोनों के उद्देश्यों में पूर्ण समानता है, कृतित्व में समानता कमोवेश है। पत्रकार जिन तथ्यों को एकत्र करता है उनको क्रमबद्ध करते हुए उन्हें उस परस्पर सम्बन्ध से विच्छिन्न नहीं करता जिससे वे जुड़े हुए तथा क्रमबद्ध हैं। उसके ऊपर तो यह लाजिमी होता है कि वह आपको तर्क से विश्वस्त करे कि यह हुआ तो यह इसका कारण है, ये तथ्य हैं और ये समय, देश-काल परिस्थिति आदि हैं जिनके कारण ये तथ्य पूरे होते हैं। साहित्यकार इससे भिन्न कुछ करता है। साहित्यकार के लिए तथ्यों का गतानुगत क्रम अवध्य नहीं है। बल्कि तथ्यों के परस्पर सम्बद्ध को जानबूझकर तोड़कर साहित्यकार उसे नए सिरे से क्रमबद्ध करता है और इस प्रकार से नए संपूर्ण सत्य की सृष्टि करता है, जो एक नया यथार्थ है। पत्रकार के लिए यथार्थ वही है जो संभव हो चुका है। साहित्यकार के लिए जो संभव हो सकता है।"² इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुतीकरण से आगे बढ़ नए तथ्यों का निर्माण साहित्य है और घट चुके का प्रस्तुतीकरण पत्रकारिता। पत्रकारिता तात्कालिक है और साहित्य दीर्घायु।

भूमंडलीकरण समाकालीन साहित्य का सबसे चर्चित मुद्दा है। ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाओं में इसका प्रयोग होने लगा है। समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिकशास्त्री, पर्यावरणवादी, संस्कृतिकर्मी और मीडियाविशेषज्ञों में इसकी अवधारणा को लेकर विद्वानों में मतभेद दिखाई देता है। सभी ने इसे अपने दृष्टिकोण से जांचा परखा है। पिछली सदी के आखिरी दशकों में भूमंडलीकरण की आहट सुनाई पड़ने लगी। यहीं वह समय था जब पूर्वी समाजवादी व्यवस्थाओं की पराजय और सोवियत संघ में विघटन दिखाई देने लगा था। 'इतिहास के अंत' और 'उत्तर आधुनिकता' जैसे विमर्शों का आरंभ भी यही से हुआ। भूमंडलीकरण लम्बे समय से चली आ रही अवधारणा है और इसके साथ ही समकालीन परिपेक्ष्य में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इन सबसे प्रश्न उठना लाजिमी है कि भूमंडलीकरण क्या है?

समाजशास्त्री एंथोनी गिडेंस (1964-90) ने भूमंडलीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया, "वैश्विक स्तर पर सामाजिक संबंधों के सुदृढीकरण को भूमंडलीकरण दूरस्थ इलाकों को एक दूसरे से इस प्रकार जोड़ता है कि मीलों दूर घटने वाली घटनाएं स्थानीय घटनाओं से तथा स्थानीय घटनाएं मीलों दूर घटने वाली घटनाओं से साझेदारी का अनफभव करती हैं।"³ एंथोनी गिडेंस भूमंडलीकरण के संदर्भ में स्थान और समय के कम से कमतर होने को कभी महत्व प्रदान करते हैं। जिसके लिए 'distanciation' की अवधारणा का जिक्र करते हैं। सामाजिक चिंतक एलब्रो ने भूमंडलीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है: "भूमंडलीकरण उन सभी प्रक्रियाओं से संबंधित है जिसके द्वारा विश्व के लोग एक वैश्विक व्यवस्था, भूमंडलीकरण व्यवस्था से जुड़ते हैं।"⁴ वैश्विक प्रक्रिया में लोगों से जुड़ने की प्रक्रिया संचार और बाजार के माध्यमों से सुगम हो जाती है। समाजशास्त्री एंथोनी जीम मेगा मार्क्सवादी व्यवस्था के विघटन के पश्चात सामाजिक घटनाओं में घटने वाले सिद्धांतों में भूमंडलीकरण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए लिखते हैं, "संक्षेप में, भूमंडलीकरण वैश्विक स्तर पर जुड़ाव की प्रक्रियाओं के विस्तार, गहराई तथा तीव्रता को व्यक्त करता है।"⁵ मेगा विभिन्न समुदायों, अर्थव्यवस्थाओं, समाजों के बीच भौतिक भूमंडलीय स्तर पर होने वाले व्यापार, विचारों, छवियों के प्रवाह को प्रमुखता से रेखांकित करते हैं। भूमंडलीकरण के आरंभिक व्याख्याकारों में से समाजशास्त्री राबर्टसन लिखते हैं, "भूमंडलीकरण की निर्मित उन प्रक्रियाओं के एक समूह के द्वारा हुई है जो आधुनिकता को गतिमय बनाए रखने में अंतर्निहित है। अवधारणा के रूप में भूमंडलीकरण के संकुचन तथा एक विश्व के रूप में चेतना की सघनता को इंगित करता है।"⁶ गिडेंस, एलब्रो, मेगा, राबर्टसन आदि चिंतकों ने भूमंडलीकरण की परिभाषाओं में लोगों के बीच बढ़ती हुई नजदीकियों को प्रमुखता से रेखांकित किया। दूसरी ओर हेनरी वेल्टमेयर और जेम्स पेट्रास ने अपनी पुस्तक 'ग्लोबलाइजेशन अनमास्कड' में भूमंडलीकरण को '21वीं सदी में साम्राज्यवाद' की संज्ञा देते हुए लिखा, "भूमंडलीकरण वर्तमान में एक ही साथ राजनीतिक तथा बौद्धिक विमर्शों के केंद्र में है। विमर्शों में इसे एक भूमंडलीय बाजार के तहत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, पूंजी, तकनीक तथा सूचना के व्यापार प्रचार-प्रसार के रूप में चित्रित किया जाता है। पर एक नुस्खे के रूप में भूमंडलीकरण के तहत राष्ट्रीय और भूमंडलीय बाजार का उदारीकरण शामिल है, इस विश्वास के साथ कि व्यापार, पूंजी तथा सूचना का मुक्त प्रवाह मानवीय कल्याण तथा वृद्धि के सबसे अच्छे फल देगा।"⁷

भूमंडलीकरण की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि भूमंडलीकरण कोई नई परिघटना नहीं अपितु लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, विचारों का आदान-प्रदान आदि सीमित विज्ञान- तकनीक के साथ आदिकाल से ही चला आ रहा है। भूमंडलीकरण के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य को विश्लेषित करने के लिए इतिहासकारों ने 'ग्लोबलाइजेशन इन वर्ल्ड हिस्ट्री' पर

प्रकाश डाला। ऐतिहासिक रूप से उसे चार भागों में बांटा- पुराकालीन, आदिकालीन, आधुनिक, उत्तर औपनिवेशिक। भारत में भूमंडलीकरण का आरंभ वर्ष 1991 में आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के साथ हुआ। संक्षेप में कहें तो उदारीकरण एक विस्तृत अवधारणा है जिसमें बाजारीकरण तथा निजीकरण आदि अवधारणाएं सम्मिलित हैं। भारत में भूमंडलीकरण ने निवेश-निर्यात नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन से निजीकरण को बल प्रदान कर भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ने का कार्य किया। भूमंडलीकरण की अवधारणा से संबंधित अवधारणों से संबंधित विद्वानों की अवधारणाओं में भले ही मतभेद हो, लेकिन सूचना क्रांति के आवर्तन में सभी की सहमति है। विश्व को परिवर्तित करने की प्रक्रिया में 'सूचना' भूमंडलीकरण को प्रमुख औजार रही है। वर्तमान समय में बाजार और संचार भूमंडलीकरण के प्रभावी साधन हैं और दोनों ही भूमंडलीकृत भी हैं। यूं तो 19वीं शती के मध्य संचार साधनों में भूमंडलीकरण देखने को मिलता है लेकिन 20वीं सदी में अप्रत्याशित ढंग से संचार साधनों का भूमंडलीकरण दिखाई दिया। वहीं 21वीं सदी में सूचना की केंद्रीयता को प्रमुखता से रेखांकित किया गया। समय और स्थान की सीमाओं को कम करने में 'सूचना क्रांति' की मुख्य भूमिका रही। संचार विशेषज्ञ मार्शल मैक्लूहन ने अपनी पुस्तक 'अंडरस्टैंडिंग मीडिया' में जिस 'ग्लोबल विलेज' अवधारणा का वर्णन किया वह वर्तमान संचार साधनों के भूमंडलीकरण होने पर एक बार फिर प्रासंगिक हो उठे। संचार साधनों के विकास के साथ आधुनिक समाज का विकास संलिप्त रूप से जुड़ा हुआ है। संचार विशेषज्ञ जॉन बी. थाम्पसन ने लिखा, "संचार के साधनों का विकास समाज की अन्य वैकासिक प्रक्रियाओं से संश्लिष्ट रूप से अंतर्ग्रथित रहा है। आज हम जिसे आधुनिकता कहते हैं, वह इन सभी से मिलकर बना है।"⁸

सामान्य अर्थ में तो मीडिया किसी भी लोकतांत्रिक समाज में सूचना, शिक्षा और मनोरंजन देने का कार्य करती है किन्तु वास्तविक अर्थों में वह सामाजिक परिवर्तन और विकास का माध्यम है। समाज के आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक की कार्यसूची निर्मित करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। युरगेन हैबरमास ने 'पब्लिक स्फ़ियर' अवधारणा के प्रसंग में नागरिकों के साथ परस्पर तथा शासक के साथ तर्क और उस पर आधारित खुलापन, विचारों के आदान-प्रदान के जिस क्षेत्र की बात की है उसमें मीडिया का विशेष महत्व है। युरगेन हैबरमास के अनफसार आधुनिक यूरोप के आरंभिक दौर में पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार में निरंकुश सत्ता से उदार लोकतांत्रिक समाज की यात्रा में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मीडिया के माध्यम से आलोचनात्मक लोक विचारों की अभिव्यक्ति आधुनिक जीवन का अनिवार्य पहलू था। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है किन्तु वर्तमान दौर भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति को प्रभावित करने में उसकी भूमिका को खोजने की मांग करती है। अर्थशास्त्री प्रभात पटनायक के अनफसार, "1990 के दशक में भारत में एक संस्था के रूप में मीडिया की शक्ति बहुत कम हुई है।"⁹ 1990 में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव अन्य क्षेत्रों के साथ मीडिया पर भी पड़ना लाजमी था। मीडियाकर्मी आलोक श्रीवास्तव भूमंडलीकरण के इस दौर में भारतीय पत्रकारिता का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं, "भूमंडलीकरण और उदारीकरण ने जब गुजरे दशक में भारत को अपनी चपेट में लिया तो उसका प्रभाव समाज की जिन संस्थाओं पर सबसे पहले और गहरा पड़ा, वह प्रेस था। भूमंडलीकरण और उदारीकरण की आवश्यकता के तहत प्रेस के स्वरूप, ढांचे और लक्ष्य में निम्नलिखित परिवर्तन हुए-

1. अखबार पूरी तरह साम्राज्यवादी संस्कृति और बाजार के मूल्यों को समर्पित हुए।

2. अखबार-उद्योग के ढांचे में बुनियादी फेरबदल हो गया। नियुक्ति, कार्यप्रणाली, बजट नियोजन सब कुछ नए सिरे से पुनर्गठित किया गया। आलोक श्रीवास्तव प्रश्न उठाते हैं कि इन दोनों परिवर्तनों को कैसे लागू किया गया? इनकी प्रक्रिया क्या रही? अखबार-उद्योग का मझोले से बड़े उद्योग में बदल जाना, और सबसे बढ़कर एक बौद्धिक गतिविधि से रिड्यूस हो कर प्रबंधन और मार्केटिंग-कर्म में बदल जाना, और सबसे बढ़ कर ऐसे माध्यम की भूमिका में खुले तौर शक्तिशाली होकर उभरना, जो भारत की उत्पीड़ित जनता के विरुद्ध शोषक-साम्राज्यवाद वर्ग का एक उपकरण है, कैसे संभव हुआ?"¹⁰ इसी प्रकार रॉबिन जैफ्री ने अपनी चर्चित पुस्तक 'भारत की समाचार पत्र क्रांति' में स्वीकार किया, "यह किताब मुख्य रूप से भारतीय भाषाई अखबारों की सामग्री के बारे में नहीं है, बल्कि यह समझने की कोशिश करती है कि अखबारों में वृद्धि किस तरह हुई, वृद्धि के लिए पैसा कौन लगाता है, किसे इस से फायदा हो रहा है, कौन इसका उत्पादन करता है और कौन अखबारों को अपने नियंत्रण में करने की कोशिश करता है।"¹¹

वरिष्ठ पत्रकार राजकिशोर हिन्दी पत्रकारिता के मौजूदा दौर पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, "वे दिन हवा हो चुके हैं, जब लोग उप-संपादक सीधे आसमान से टपकता है।"¹² क्या बाजार के दबाव से ऐसा किया जा सकता है? इसकी पड़ताल होनी आवश्यक है। हिन्दुस्तान के युवा प्रबंधक लिखते हैं, "वर्ष 1991 से 1999 के बीच हिंदी अखबारों का प्रसार 100 फीसदी बढ़ा है जबकी अंग्रेजी का मात्र 78 फीसदी....उदारीकरण के आठ सालों में अंग्रेजी में विज्ञापनों से आय मात्र 66 फीसदी बढ़ी है।"¹³ इस प्रकार हम देखते हैं कि अखबार और बाजार के संबंधों को पूर्व के आधार पर मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। रॉबिन जैफ्री ने अपनी पुस्तक में आपातकाल के पश्चात् भाषायी पत्रों के उत्थान और समाज में उनकी केंद्रीय भूमिका को रेखांकित किया। भाषायी पत्रों में हिन्दी की भूमिका सर्वाधिक रही है। जिसके द्वारा देश के लगभग एक अरब लोगों की आशा,

आकांक्षाओं तथा अपेक्षाओं के दस्तावेज हिन्दी अखबार है। “गत दो दशकों में हिन्दी पत्रकारिता में बुनियादी किस्म के बदलाव आए हैं वह अधिक ‘स्वतंत्र’, स्पर्धात्मक और मार्केट चतुर हुई है, उसे हम आपातकाल पूर्व के मानकों से नहीं समझ सकते।”¹⁴ अखबारों की समाज में बढ़ती भूमिका को उसकी बढ़ती पृष्ठ संख्या, लोगों में इसके बढ़ते प्रभाव से लगाया जा सकता है। 80 के दशक में नवभारत टाइम्स की पृष्ठ संख्या 8 से 10 के बीच थी, जबकि इसकी वर्तमान संख्या 14 से 20 है। वर्ष 2000 के पश्चात् नवभारत टाइम्स मंगलवार, शुक्रवार, रविवार को चार पृष्ठों का परिशिष्ट ‘हेलो दिल्ली’ नाम से प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ जो वर्ष 2005 के बाद प्रत्येक दिन होने लगा। अखबार रंगीन हुए, कंप्यूटर की सहायता से उसे आकर्षक बनाया गया। स्पष्ट परिलक्षित होता है कि पहले अखबारों के पन्ने राजनैतिक खबरों से अटे रहते थे, अब उनमें कारोबार, खेल, फैशन, साहित्य और कला को भी पहले की अपेक्षा अधिक स्थान दिया जाने लगा। खबरों की चयन-दृष्टि का जायजा लिया जाने लगा। अखबार का मुख्य पृष्ठ अन्य पृष्ठों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होने के साथ पूरे समाचार पत्र का आइना होता है। भूमंडलीकरण के पश्चात् अखबार के स्वरूप परिवर्तन की दिशा को मुख्य पृष्ठ के आधार पर भी जाना जा सकता है। वर्तमान दौर में अखबार उद्योग की भांति कार्य करने लगे हैं। प्रथम प्रेस आयोग के आधार पर देखें, “अब संपादकीय धीरे-धीरे प्रबंध विभाग के अन्तर्गत आता जा रहा है। पहले एक आदर्शवादी और स्वयंसेवी की भावना अखबारों के क्षेत्र में बहुप्रचलित थी। अब उसकी जगह मुनाफाखोरी की भावना ने ले ली है।”¹⁵ सुधीश पचौरी अपने लेख ‘इक्कीसवीं सदी में मीडिया’ में लिखते हैं, “अंग्रेजी अखबार बढ़े हैं लेकिन बढ़ने से ज्यादा वे ग्लोबल हुए हैं और उनकी देखादेखी हिंदी के अखबार एक साथ स्थानीय और ग्लोबल हुए हैं। उनमें ग्लोबल सूचनाओं का आधिक्य बढ़ा है, विज्ञापनों का आधिक्य हुआ है और मनोरंजन एवं सूचना यानी इन्फोटेनमेंट का तत्व बढ़ा है।”¹⁶ इन सभी सूचनाओं से प्रश्न उठते हैं कि होने वाले बदलाव किस दिशा की ओर जाते हैं?

राजनीतिकशास्त्री रजनी कोठारी भूमंडलीकरण को विश्लेषित करते हुए लिखते हैं, “इस प्रकार के भूमंडलीकरण के साथ-साथ एक इस तरह की परिघटना का जन्म भी हुआ है जो सिद्धांततः उसकी एंटीथीसिस लगती है। यह है क्षेत्रीय उग्रवाद और धार्मिक रूढ़िवाद पर आधारित उग्र-राष्ट्रवाद का उदय।”¹⁷ भारत में भूमंडलीकरण के आगमन से बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रसार भी बढ़ा। आर्थिक खबरों की विषय-वस्तु बदली उनकी प्रमुखता बढ़ने लगी। भूमंडलीकरण के साथ भारत में सूचना क्रांति के फलस्वरूप मीडिया का फैलाव हुआ। आज तक, जी न्यूज, इंडिया टीवी, एनडीटीवी तथा स्टार न्यूज आदि न्यूज चैनलों का संख्या बढ़ने लगी। चैनलों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से पत्रकारिता को प्रभावित करना प्रारंभ किया। प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने भाषा के स्वरूप को भी बदल दिया। ‘पितृसत्ता के नये रूप’ शीर्षक निबंध में संपादक अभय कुमार दुबे लिखते हैं, “भूमंडलीकरण ने औरत की देह, उसके श्रम, उसकी छवि, उसके सौंदर्य और कमनीयता का दोहन किया है।”¹⁸ वर्तमान हिन्दी अखबारों ने स्त्री के नए रूप को चित्रित करना आरंभ किया। स्त्री संबंधित आलेखों, खबरों से स्त्री का एक नया स्वरूप उभरकर सामने आया।

संदर्भ

1. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर, 1895, पृष्ठ-17
2. लिखने का कारण, रघुवीर सहाय, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1978, पृष्ठ-177
3. एंथोनी गिर्डस, द कांसीक्वेंसेज ओफ मोडर्निटी, कैंब्रिज: पोलिटि प्रेस
4. मार्टिन एलब्रो (1990), एम एलब्रो और एलिजाबेथ किंग संपादित ‘ग्लोबलाइजेशन, नॉलेज एंड सोसाइटी’, लंदन : सेज
5. ए. जी. मेया (1998), द ‘ग्लोबलाइजेशन डिबेट’, ग्लोबल सोसाइटी, 12(3):229-321
6. रोनाल्ड राबर्टसन (1992), ‘व्हाट इज ग्लोबलाइजेशन’, जॉन बेयनान और डेविड डयूनकरले (सं.द्व., ग्लोबलाइजेशन: द रीडर में उद्धृत, लंदन : एथलोन प्रेस
7. जेम्स पेट्रास और हेनरी वेल्टमेयर (2001), ‘ग्लोबलाइजेशन अनमास्कड: इंपियरिलिज्म इन द टेंवटी न्स्ट सेंचुरी’, दिल्ली: माध्यम बुक्स
8. जॉन बी. थाम्पसन (1995), ‘द मीडिया एंड मॉडरनिटी : ए सोशल थ्योरी ऑफ मीडिया’, केंब्रिज पॉलिटि प्रेस
9. प्रभात पटनायक (2002), ‘मार्केट, मोरल्स एंड द मीडिया’, फ्रंटलाइन (सं.द्व. एन राम, 19(15): 128-134
10. आलोक श्रीवास्तव (2004), अखबारनामा : पत्रकारिता का साम्राज्यवादी चेहरा, मेरठ : संवाद प्रकाशन
11. रॉबिन जैफ्री (2000), ‘इंडियाज न्यूजपेपर रिवोल्यूशन’, दिल्ली : ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
12. राजकिशोर (2000), ‘हिन्दी पत्रकारिता : आधी सदी का सफर’, समकालीन सृजन (सं.द्व. शंभुनाथ, कोलकाता, अंक 20:135-143
13. राकेश शर्मा (2004), ‘सरोकार पाठक नहीं, राज्यसभा सीट’, रामशरण जोशी (सं.द्व. मीडिया और बाजारवाद में संग्रहित, दिल्ली : राधाकृष्ण
14. सुधीश पचौरी (2000), ‘साइबर-स्पेस और मीडिया’, नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन
15. वहीं, पृष्ठ-42
16. वहीं, पृष्ठ-42
17. रजनी कोठारी (2003), ‘जनता से डरते अभिजन और कमजोर होता राष्ट्र-राज्य’, अभय कुमार दुबे (सं.द्व. भारत का भूमंडलीकरण में संग्रहीत, दिल्ली : वाणी प्रकाशन
18. अभय कुमार दुबे (2003), ‘पितृसत्ता के नये रूप’, अभय कुमार दुबे (सं.द्व. भारत का भूमंडलीकरण में संग्रहित, दिल्ली : वाणी

विभिन्न मनोवृत्तियों वाले भारत में राष्ट्रवाद और मीडिया

डॉ० बलराम गुप्ता 'संकर्षण प्रजापति'

शिवहरष किसान पी०जी० कालेज
बस्ती

साहित्यकार और पत्रकार दोनों की भूमिका समाज मध्य किस प्रकार की होती है? यह प्रश्न सहज स्तर पर उठता है। जनता जनार्दन कहें चाहे मानव समाज, इसकी मनःस्थिति को समझ पाना कठिन है। साहित्यकार मनाव समाज के चरित्रों का विश्लेषण भावनाओं के स्तर पर करते हुए साहित्य का निर्माण करता है। पत्रकार घटित घटनाओं को यथार्थ के साथ कल्पनात्मक तान-बाने से निर्मित कर जनता के सामने समाचार पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रारम्भिक स्वरूप समाचार पत्र था। समाचार पत्रों के माध्यम से जनता को पढ़ने व सुनकर समाज व देश की जानकारी हो जाती थी। समाचार पत्रों की भूमिका आज के दौर में विश्व के प्रत्येक देश में महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है। कैमरे की खोज के साथ मीडिया दृश्यात्मक रूप के साथ प्रकट होता है। समाचार पत्रों के लिए प्रिंटमीडिया के साथ कैमरे का साथ आज भी बना हुआ है। गतिमान दृश्यात्मक और श्रव्यात्मक मीडिया ने अपनी भूमिका को बढ़ाया है। सैकड़ों न्यूज चैनल मीडिया के किसी भी स्वरूप पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता है। इनकी जिम्मेदारी को देखकर। इसीलिए राष्ट्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। चौथे स्तम्भ में यदि घुन लग जाये तो वर्तमान के साथ भविष्य भी देश व समाज का चौपट हो जाता है। मीडिया के किसी भी स्वरूप को यदि सच्चाई प्रस्तुत करने से रोका जाता है या जायेगा तो यह समझ लेना चाहिए कि देश की जड़ों को भ्रष्टाचार, कदाचार, निरंकुषता का घुन लग चुका है। जड़ के कमजोर होते ही देश अराजकता के भंवर में घूमने लगेगा। यही कारण है कि कोई भी सरकार हो वह मीडिया को खरीदने व दबाने का कार्य करती है। कोई-कोई सरकार सफल भी हो जाती है। मीडिया और राष्ट्र आज के समय में एक सिक्के के दो पहलू हो चुके हैं। आज राष्ट्र वही देखता है जो मीडिया दिखाता है। मीडिया केवल दिखाने का कार्य करता है या विश्लेषण भी ठीक-ठाक करता है। इस स्थिति को पढ़ा-लिखा देश ही जान पायेगा। देश की जनता पढ़ लिख रही है तो ऐसी स्थिति में मीडिया के द्वारा दिखाये गये तथ्यों का अपरिपक्व बुद्धि से विश्लेषण करता है। इसका लाभ, लाभ उठाने वाले उठा लेते हैं।

किसी भी राष्ट्र के लिए मीडिया महत्वपूर्ण होता है। मीडिया के महत्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता है। जैसा कि मैंने कहा है कि मीडिया जो दिखाता है देश देखता है। देश जो देखना चाहता है वह न देखे जाने पर देश एक प्रकार से अंधकार में डूबा होता है। सरलीकृत भाषा में कहें कि मीडिया के गैर जिम्मेदारी के कारण देश अंधकार का अनुभव करता है। मीडिया देश को जगाने का कार्य करती है। मीडिया यदि सत्य को दबाकर असत्य को दिखायेगी तो राख में विस्फोट की चिंगारी को दबाती है। भारत के सन्दर्भ में मीडिया का मनोविज्ञान किस स्तर का है? सोचने का विषय है। मीडिया के बदलते चरित्र व चेतना ने राष्ट्र के चरित्र व चेतना को बदला है। चरित्र और चेतना की नयी परिभाषाओं को गढ़ने में मीडिया ने महती भूमिका निभायी है। सत्य है मीडिया की दृष्टि से कोई क्षेत्र अछूता रह जाये ऐसा नहीं हो सकता है। भारत में मीडिया ने अपने पैर उदारीकरण के साथ पसारे हैं। मीडिया का अस्तित्व व्यापकत्व लिए हुए है। उदारीकरण के साथ राष्ट्र में राष्ट्रवाद की नयी परिभाषा गढ़ी जाने लगी है। इक्कीसवीं सदी में भारत के पर्यावरण में राष्ट्रवाद के बोल गूँजे लगे हैं। राष्ट्रवाद वस्तुतः है क्या? इसे समझना आवश्यक है। राष्ट्रवाद कहने पर जोश व ऊर्जा के स्थान पर देश में गुस्सा छा जाता है। सोचने का विषय है। राष्ट्रवाद राष्ट्रीय चेतना से युक्त है या भिन्न। राष्ट्रीय चेतना में राष्ट्र का हर चिन्तन और चिन्ता समाहित है। राष्ट्रवाद चिन्तन की अपेक्षा आज के दौर में चिन्ता का विषय बन चुका है। राष्ट्रीयता की अवधारणा का सूत्रपात भारत में नये रूप के साथ 18वीं शती में हुआ था। समय के साथ-साथ चरित्र, स्वरूप और आधार में परिवर्तन होते रहे हैं। राष्ट्रवाद की अवधारणा का सूत्रपात उदारीकरण के साथ ही हुआ। राष्ट्रवाद जनभावनाओं को जगाने का कार्य करता है। आधुनिक स्तर पर राष्ट्रवाद का जन्म भारत में कब से माना जाता है? इसे समझना आवश्यक है। 'भारतीय राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम उन सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलनों में हुई, जो 19वीं शताब्दी में भारतीय पुनर्जागरण के प्रथम चरण में प्रारम्भ हुए। पाश्चात्य जीवन दर्शन से प्रभावित थे सुधारक तत्कालीन सामाजिक स्थिति से असन्तुष्ट थे और विशेष रूप से सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते थे। इनकी मान्यता थी कि धार्मिक और सामाजिक सुधार राजनीतिक प्रगति

के लिए आवश्यक थे। इन आन्दोलनों की यह विशेषता थी कि यह धर्म निरपेक्ष थे, बुद्धिवाद पर आधारित थे और राजनीतिक शक्ति के प्रयोग से सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयासरत थे। सुधार आन्दोलनों के जनक राजाराममोहन राय का स्पष्ट मत था कि तत्कालीन हिन्दू धार्मिक सामाजिक व्यवस्था उनके राजनैतिक हितों के प्रोन्नयन के लिए उपयुक्त नहीं थी और राजनीतिक प्रगति के लिए इसमें परिवर्तन आवश्यक था। राजाराममोहन राय ने यह चिन्ता व्यक्त की कि जातिगत विभाजन के कारण हिन्दुओं में देशभक्ति का नितान्त अभाव था। यद्यपि राममोहन राय ने कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं प्रारम्भ किया और संभवतः तत्कालीन परिस्थितियाँ राजनीतिक क्रिया-कलाप के लिए उपयुक्त भी नहीं थी, परन्तु उन्होंने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य, समाचार पत्र की स्वतन्त्रता, न्यायिक सुधार आदि पर अपने उदारवादी विचार प्रकाशित करके भावी राजनीतिक आन्दोलनों के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

इसी क्रम में केशवचन्द्र सेन तथा अन्य ब्रह्म समाजियों ने तर्क बुद्धिवाद, सार्वभौमिकता और प्राचीन-पाश्चात्य के संश्लेषण के आधार पर आधुनिक राष्ट्रवाद के लिए भूमि तैयार की है। केशवचन्द्रसेन ने राष्ट्रीय उन्नयन के उपकरण के रूप में सामाजिक सुधार पर बल दिया। इन सुधार आन्दोलनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वस्तुतः हिन्दू समाज को अन्धविश्वासों, कुरीतियों और जाति के जड़बन्धनों से मुक्त किये बिना राष्ट्रीय इकाई के रूप में हिन्दुओं का उभरना सम्भव नहीं था।

वास्तव में ये सुधार आन्दोलन पूरे एशिया में वैज्ञानिक तथा बुद्धिवादी दृष्टिकोण अंगीकृत किये जाने से उत्पन्न पुनर्जागरण की बृहत्तर प्रक्रिया के अंग थे। भारतीय पुनर्जागरण की प्रेरणाशक्ति निस्सन्देह पाश्चात्य दर्शन था, परन्तु साथ में ही यह सुधारक सतत प्रयासरत थे कि भारत अपनी अस्मिता अक्षुण्ण रखे।¹¹ पाश्चात्य शिक्षा से अनुभव ग्रहण कर भारत वापस आकर समाज सुधार करने वाले सुधारक और भारत में रहकर अंग्रेजी विचारों से ओतप्रोत समाज सुधारकों ने भारत में सुधार के कार्यक्रमों को लागू करने व सुधारने का बीड़ा स्वतन्त्र और जहाँ आवश्यकता पड़ी वहाँ अंग्रेजों को भी साथ में लिया। भारत की सड़ी गली सामाजिक व धार्मिक गन्दगी को दूर करने का कार्य किया। एक तरफ समाज सुधारक भारत को सुधार कर यहाँ की जनता के बीच नये तरह का राष्ट्रवाद भाव पनपा रहे थे। वहीं दूसरी तरफ अंग्रेजों की देन प्रेस का उपयोग भारत के लोगों ने अपने विचारों को प्रचारित व प्रसारित करने के साथ अंग्रेजों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए समाचार पत्रों का उपयोग किया। इसीलिए अंग्रेज सरकार ने प्रेस का खुलकर भारतीयों द्वारा उपयोग किये जाने के कारण प्रेस पर प्रतिबन्ध भी अंग्रेजों ने लगाया था। ' काँग्रेस का नेतृत्व अंग्रेजी सभ्यता पर मोहित लोगों के हाथ में था। इसीलिए सन 1885 से लेकर 1905 तक काँग्रेस की कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं रही। राष्ट्रभाव स्वाभाविक रूप में जनचेतना बन जाने का मार्ग खोज रहा था। ढेर सारे संगठन काम कर रहे थे। उनके प्रान्तीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहे थे। समाचार पत्रों ने भारत भक्ति और राष्ट्रवाद की जमीन तैयार करने में अपनी वीर व्रती भूमिका निभाई। ध्यान कीजिए कि अधिकांश प्रतिष्ठित समाचार पत्रों का जन्म काँग्रेस से भी पहले हो चुका था। मराठा केसरी, अमृत बाजार पत्रिका, स्वदेश मित्र, ट्रिब्यून, हिन्दुस्तानी, बंगाली, इण्डियन मिरर और हिन्दू जैसे अखबार उस वक्त सुप्रतिष्ठित थे। राष्ट्रवादी शक्तियाँ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की जागृति में संलग्न थी। स्वसंस्कृति और स्वदेशी का भाव परवान चढ़ाने के प्रयास हुए।

अंग्रेजी राज राष्ट्रवादी जागरण से कुपित था। काँग्रेस के जन्म के बहुत पहले भारतीय भाषा प्रेस विधेयक (1878) बनाकर सरकार ने अखबारों की आजादी पर रोक लगाई। इसका प्रचण्ड विरोध हुआ। सन 1880 में यह वापिस हो गयी।¹² तत्कालीन भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा ने अंग्रेजों को व्यथित कर दिया था। भारतवासियों द्वारा प्रेस के अच्छे ढंग से उपयोग होने से अंग्रेजों को अपनी सत्ता हिलती नजर आने पर प्रतिबन्ध लगाया लेकिन दो वर्ष के अन्दर ही प्रतिबन्ध हटा लेना पड़ा। मीडिया के आरम्भिक प्रिंटमीडिया को भी अहसास करा दिया था।

भारत के स्वतन्त्र होने के साथ ही राष्ट्रीयता के प्रश्नों के प्रति गंभीरतापूर्वक विवेकसम्मत समाधान नहीं किया गया। भारत में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक, विभिन्न प्रजातियों का निवास, जातीयता, जातीयता सहित भाषाई विविधता, क्षेत्रीय और धार्मिक समूहों में तनाव एवं संघर्ष उत्पन्न होने लगे। भारत में और भी समस्याएँ हैं जिन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है। राष्ट्रीयता से जुड़े अनेक प्रश्नों में जैसे पृथकता और स्वायत्तता की माँग, केन्द्र से आर्थिक वितरण, रोजगार सेवा, बाजार, भूमिपुत्र के संरक्षण, क्षेत्रीय उद्योगों का विकास सहित क्या देश में सामाजिक क्रान्ति की सफलता हेतु सर्वहारा की एकता उत्पन्न करते हैं। इसी के साथ भारत में आज भी लघुराष्ट्रवाद बनाम धर्मोन्माद, राष्ट्रीयता बनाम उपराष्ट्रवाद और क्षेत्रीय समस्याएँ अपना सिर उठाती रहती हैं। समस्याओं से भरे भारत में किस स्तर का राष्ट्रवाद पल रहा है? इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की समाप्ति के आस-पास राष्ट्रवाद का स्वरूप क्या है? राष्ट्रवाद का स्वरूप क्या होना चाहिए? मीडिया भारत के राष्ट्रवादी विचार को किस रूप में प्रस्तुत करती है? यह सभी प्रश्न सोचने को बाध्य करते हैं। भारत में राष्ट्रवादी विचार राजनीतिक कथ्यों से संयुक्त होकर जन सम्मुख आ रही है। आजादी के समय में भी राजनीतिक विचारों में राष्ट्रवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति संग प्रस्तुत हुई थी। आज के दौर में मीडिया एक सशक्त संसाधन के रूप में है। अपार ताकत से समृद्ध है। ताकत होने पर पक्षपात की भावना भी पनपती है। जीवन के विविध क्षेत्रों में राजनीतिक क्षेत्र सबसे पहले मीडिया

के निकट गया था। अन्य क्षेत्रों के निकट मीडिया जाता था। आज भी ऐसी ही स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है। मीडिया के विभिन्न रूप हैं। 'ऐतिहासिक रूप से मीडिया के विभिन्न रूपों का उद्गम अलग रहा है। समाचार पत्र-उद्योग अधिकांशतः प्राईवेट सेक्टर में विकसित हुआ है। रेडियो और टीवी के शुरुआती कदम राजकीय प्रयासों के कारण जगे हैं। कई देशों में मिला-जुला नजारा है। ऐसे देशों में सरकार और निजी क्षेत्रों के टीवी और रेडियो आपस में होड़ करते रहते हैं। कुल मिलाकर मीडिया सरकारी हो या निजी क्षेत्र का, उसे राज्य द्वारा बनाये गये-कानूनों के तहत ही काम करना पड़ता है। आम तौर पर आधुनिक राज्य की मीडिया-नीति चाहती है कि मीडिया के विभिन्न रूप लोकतन्त्र के मुख्य उसूलों को बुलन्द करते रहें, उनकी वजह से सार्वजनिक जीवन में अवसरों की स्वतन्त्रता बाधित न हो, शान्ति-व्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा को कोई खतरा न पहुँचे। निजी क्षेत्र में मीडिया के प्रबन्धक और स्वामी इन नियमों का पालन करने के बदले में सरकार से अपने व्यावसायिक हितों की सुरक्षा की गारन्टी माँगते हैं। वे चाहते हैं कि कानून-पालन करने का पुरस्कार उन्हें अपनी इजारेदारी बढ़ाने की अलिखित इजाजत के रूप में मिले। नब्बे के दशक में नये मीडिया के उदय के बाद से राज्य को उसका प्रसारण नियन्त्रित करने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। इन्टरनेट और इन्टरएक्टिव मीडिया को कानून के तहत लाना राज्य की संस्था के लिए एक बहुत गम्भीर समस्या है। इन्टरनेट के आगमन के बाद मीडिया सम्बन्धी नीतियाँ ग्लोबल पैमाने पर बहस मुवाहिसे का केन्द्र बनी हुई है।³ उक्त पंक्तियों से मीडिया के बदलते चरित्र को समझा जा सकता है। इन्टरनेट ने एक आम आदमी को बुद्धि से सोचने और आँख से देखने की सहूलियत दी है। आज हम लोग वैश्वीकरण पर्यावरण में साँस ले रहे हैं। ये और बात है कि हमारे मन में वैश्वीकरण का बोध है या नहीं। यदि वैश्वीकरण का बोधा है तो मानवीय बोध से जुड़े है कि नहीं। मीडिया ने पहले मानवीय बोध को महत्व दे रखा था। मीडिया मालिकों के निजी व्यावसायिक हितों ने मीडिया को पक्षपात की विचारधारा से लैस कर दिया है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि मीडिया राजनीति का शिकार हो चुकी है। मीडिया की अपनी कोई सोच नहीं रह गयी है। ऐसी स्थिति में हम मीडिया से राष्ट्रवाद के सकारात्मक बोध की माँग नहीं कर सकते हैं। मीडिया आज के भारत में जिस तरह का राष्ट्रवाद परोस रहा है या यों कहें कि राष्ट्रवाद की जो तस्तीर भारत के सामने प्रस्तुत कर रहा है। वह पक्षपात विचारधारा से लबरेज है। चूँकि मास-मीडिया बहुत बड़े पैमाने पर प्रचार-सामग्री का उत्पादन मनोरंजन समाचार, विश्लेषण, विज्ञापन और संवादपरक चर्चाओं के माध्यम से कर सकता है। इसलिए बीसवीं सदी में उसकी प्रोपेगन्डा सम्बन्धी क्षमताओं का दोहन करने के लिए कारपोरेट जगत, राष्ट्र-राज्य और राजनीतिक विचारधाराओं के पैरोकारों ने खुली और छिपी तरकीबें विकसित की हैं। मीडिया की तरु से व्यावहारिकता की दलील दी जाती है कि सभी तथ्यों और घटनाओं की रपट प्रसारित नहीं की जा सकती, इसलिए उनमें से कुछ को चुनना और कुछ को छोड़ना ही पड़ता है। चयन और छँटाई की इस प्रक्रिया से ही पक्षपात का जन्म होता है और पूर्व-निर्धारित सहमति गढ़ने में मदद मिलती है। विज्ञापकों को खुश करने के लिए बहुसंख्यकों या अल्पसंख्यकों की कथित भावनाओं को ठेस न लगने देने के नाम पर और राष्ट्र-राज्य की प्रधान विचारधारा को पुष्ट करने के लिए चुनिन्दा तथ्यों पर जोर दिया जाता है। मीडिया-पक्षपात के धार्मिक, नस्ली, लैंगिक, आयुपरक, सेक्सुअल, जातिगत और जातिवादी आयामों को भी रेखांकित किया गया है।

सभी लोग जानते हैं कि मीडिया पक्षपात करता है, पर उसके इस रवैये को चिह्नित करना और उसकी विस्तृत आलोचना करना एक मुश्किल काम है। पक्षपात के आरोप के जवाब में मीडिया के पैरोकार अक्सर पूछते हैं कि क्या किसी घटना की रिपोर्टिंग करने गये संवाददाता द्वारा दोनों पक्षों द्वारा अपने-अपने हक में की गयी बातों को सिलसिलेवार पेश कर देना ही निष्पक्ष पत्रकारिता है? ये लोग कहते हैं कि बैलेंस्ड रिपोर्टिंग का मतलब होता है रीढ़हीन और धारहीन पत्रकारिता। जाहिर है कि यह तर्क तटस्थता को बेतुका मनते हुए 'पक्षधरता' और 'प्रतिबद्धता' को 'पक्षपात' नहीं मानता। अगर मीडिया अपनी पक्षधरता को छिपाने की कोशिश नहीं कर रहा है, तो उसके एकतरफापन को उसकी क्वालिटी के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। लेकिन अगर तटस्थता की आड़ में एक खास तरह की सहमति गढ़ने की कोशिश की जा रही है तो उसका पता लगाने और फिर उसे जाहिर करने के लिए विस्तृत अध्ययन की जरूरत पड़ती है।⁴ व्यावसायिक हितों के कारण मुद्दे की प्रमुखता गौण हो जाती है। पक्षपात रवैया कभी विशुद्ध स्तर पर कभी तटस्थता की आड़ में प्रकट हो जाता है। आज का मीडिया खुलकर पक्षपात का रवैया अपना रहा है। तटस्थता की आड़ को भी अनदेखा कर दिया है। मीडिया के ऐसे रवैये के कारण राष्ट्रवाद का जैसा दृष्टिकोण कहीं प्रत्यक्ष व कभी परोक्ष रूप से दिखाने का निर्देश सा प्रतीत होता है। जैसा की पहले भी कहा गया है कि मीडिया के कुछ चैनल राजनीति से ऐसे गुंथ से गये हैं कि सामाजिक मद्दे, मानवीय मुद्दे गौणतम हो चुके हैं। मीडिया इस तरह के राष्ट्रवाद का पोषण कुछ राजनीतिक लोगों की सोच के कारण कर रहा है। यही कारण है भारत की राजनीति ने भारत को फुटबाल बना दिया है। राजनीति की निरंकुशता से मीडिया को पक्षपातपूर्ण मानसिकता प्रदर्शित करने की ताकत मिल रही है। एक राष्ट्र का राष्ट्रवाद कैसा होना चाहिए, मीडिया इस पर मौन साधे हुए है? मीडिया बचने का प्रयत्न कर रही है। मीडिया राष्ट्रवाद पर जब भी बहस को प्रसारित करती है तो बहस करने वाले एक अच्छे अभिनेता की तरह नाटक करते हुए तटस्थतापूर्ण विचार अथवा राजनीतिकों के प्रभाव वाले राष्ट्रवाद

को मुखर होते हुए दिखाता है। भारत की जनता आज अच्छी तरह से जान चुकी है कि एक ही भारत में अनेक राष्ट्रवादी विचारधाराएं कुलबुला रही हैं।

मीडिया आज के दौर का पहला और आखिरी सच बनता जा रहा है। मीडिया आज सभी पक्षों पर हावी हो गया है। मीडिया ने बहुत से जीवन के पक्षों को समेट दिया है। सारांशतः कहा जा सकता है कि मीडिया सभी बातों पर छा गया है। मीडिया की चुम्बकीय शक्ति के आगे अन्य की शक्ति व प्रभाव नष्ट हो जाता है। आज जो भी मूल्यांकन किया जा रहा है वह सभी मीडिया की नजर से किया जा रहा है। जब तक मीडिया का प्रभाव नहीं बढ़ा था तब तक प्रिंट मीडिया जो बताता था लोग सोचते थे। अब मीडिया सीधा टेलीकास्ट कर दिखा देता है लोग सोचते कम प्रतिक्रिया तीव्रता से करते हैं। अंधी प्रतिक्रिया करने का अंधाकार भरा दौर चल रहा है। साहित्य राष्ट्रवाद को प्रस्तुत करता है तो चिन्तन करते हुए अपनी प्रतिक्रिया सन्तुलित स्तर पर देते हैं। मीडिया की सशक्तता के समक्ष साहित्य का नया तुला पैमाना अब कोई मायने नहीं रख रहा है। चारों तरफ मीडिया ही मीडिया है। साहित्य ने राष्ट्रवाद के प्रति जो संवेदना प्रस्तुत की थी। उसे मीडिया ने भोथरा बना दिया है। यहाँ तक की राष्ट्रवाद के लिए भाषा के तेवर को भी मीडिया ने बदल दिया है। मीडिया अब अति से काम लेने लगा है। बारबार किसी तथ्य को दिखाकर मूल मकसद को काट डालता है। जनता का समय नष्ट करता है। मीडिया क्या दिखाता है? क्यों दिखाता है, कब और कैसे दिखाता है, सारे सवाल उठाने होंगे। मीडिया युग के साहित्य को चाहिए कि वह लगातार मीडिया को निजाना बनाये। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि मीडिया एक असीम शक्ति है। उसको नजर अन्दाज करना आत्मघात होगा। मीडिया राष्ट्रवाद विचारों के साथ, उसके जनविरोधी उद्देश्यों, और उपक्रमों, खेलों और प्रतियोगिताओं, समाचारों और सीरियलों की पोल खोलनी होगी। एक उदाहरण से समझ सकते हैं कि मीडिया की दृष्टि में राष्ट्रवाद कैसा होना चाहिए, धारावाहिकों में सर्वाधिक धारावाहिक धार्मिक स्तर के हैं। इन धार्मिक धारावाहिकों में भारत के बड़े जनसमुदाय जो मूलनिवासी हैं उनके विचारों व अधिकारों को रौंदते हुए मनुष्य होने के अहसास से दूर रखता है। इन धारावाहिकों में मानवतावाद का कोई स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति में एक बड़े समुदाय को मानवीय बोध से दूर कर इस समुदाय से किस स्तर के राष्ट्रवाद के पोषण की कल्पना कर सकते हैं। इसीलिए बाध्य होकर अन्ततः कह रहा हूँ कि भारत में अनेक भारत, और अनेक राष्ट्रवाद पल रहे हैं।

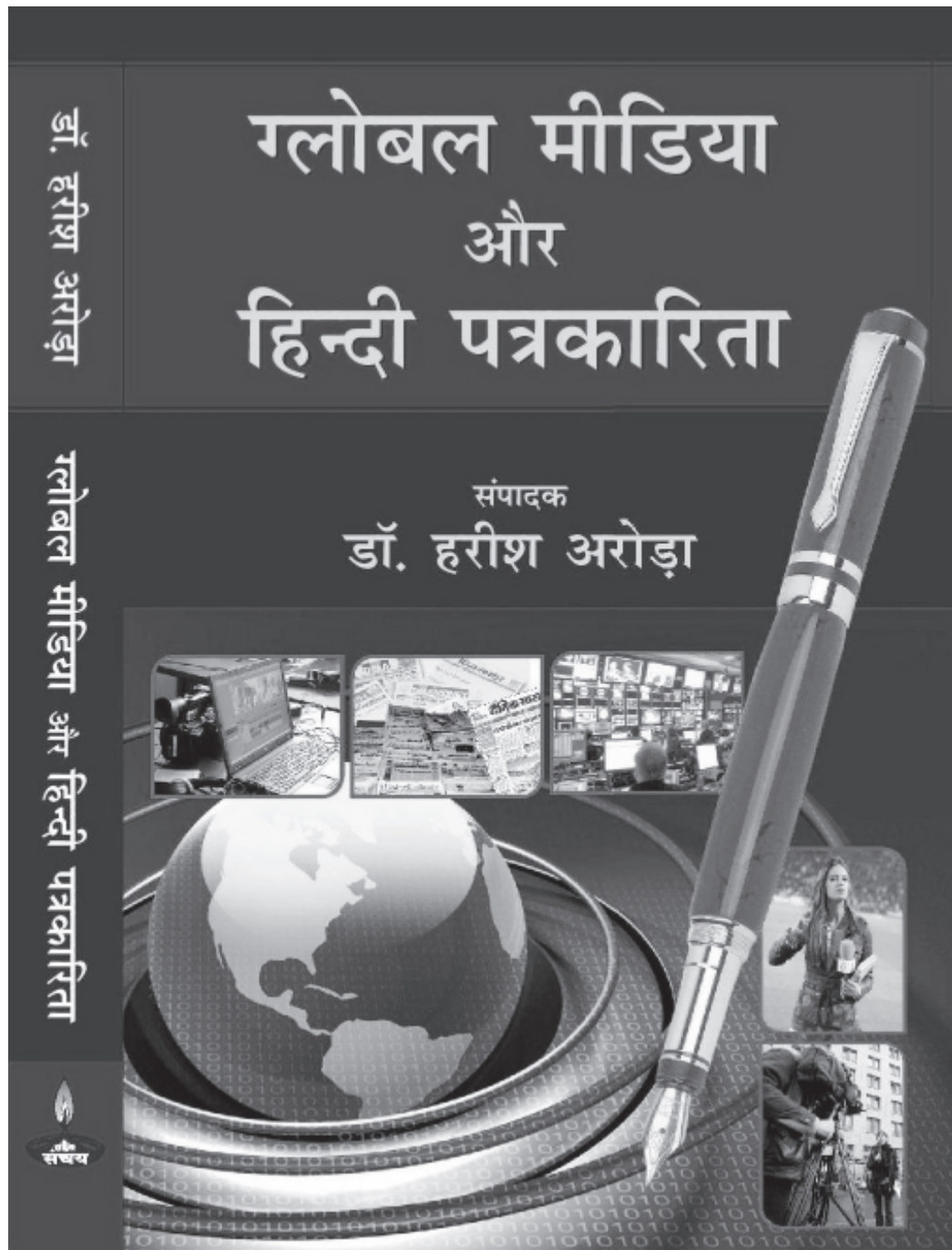
निष्कर्षतः मीडिया के संचालक आज के समय के दर्शकों के मनोवैज्ञानिक हैं। इन्हें अच्छी तरह से जानकारी है कि राष्ट्रवाद को फैलाने के लिए किस तरह की विचारपरक व्यवस्था का इस्तेमाल करना चाहिए। मेरी दृष्टि में छद्म राष्ट्रवाद को नारे के रूप में मीडियाकार निरन्तर प्रस्तुत करते हुए उसे वास्तविक स्वरूप में दर्शक के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। छद्म राष्ट्रवाद एक मूल राष्ट्रवाद के आगे दबा देता है। जैसा की मैंने कहा है कि मीडिया के मनोवैज्ञानिक व्यवस्थापक दर्शकों के मनोविज्ञान को जानकर ही आज का मीडिया हमारे घरों और समाज तथा देश के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। जाँच पड़ताल करने पर आप कह सकते हैं कि मीडिया और कुछ नहीं साम्राज्यवाद, वैश्वीकरण, उदारवाद, निजीकरण, मुक्त बाजारवाद और नव उपनिवेशवाद का खेल है। फिल्मों, टीवी0, इन्टरनेट और इस तरह के जो भी नये-नये औजार आ रहे हैं उनमें उत्तेजना बढ़ाने वाले दृश्य, और संगीत, सेक्स और अपराध, सनसनीखेज खबरें और घटनाएँ, मांसलता और छद्म अश्लीलता, पोर्नोग्राफी, खलनायकों का उदात्तीकरण, क्रूर पात्रों की प्रशंसा, स्त्री को उपभोग की वस्तु बनाना, उसका अवमूल्यन, विज्ञापनों में उसकी छवि का उपयोग भौतिक सुख सुविधाओं की और उपभोग की नयी सामग्री का प्रदर्शन, अन्धविश्वास, नाटकीय धार्मिक आस्था और संस्कार, फैशन परेड, और ध्यान योग तरह तरह के रियलिटी शो इत्यादि। सामग्री आपके सामने नजर आयेगी। आज के समय में मीडिया ने मनुष्य की संवेदनाओं को भोथरा बना दिया है। प्रिंट मीडिया ने अपना अस्तित्व बनाये रखा है। 'मीडिया में मीडिया ही मेसेज होता है पैकेजिंग का ही महत्व होता है साहित्य में माध्यम थोपा नहीं जाता मीडिया में माध्यम अपने आपको थोपता है। साहित्य की तरह मीडिया भी एक नई दुनिया पैदा करता है, दृश्य श्रव्य आभासी दुनिया लेकिन वह चंचलकाल में बदल जाती है। वह इतनी गत्वर होती है कि सोचने के लिए समय नहीं देती। रूपवादी साहित्य का मीडिया के साथ गठबन्धन हो सकता है। मीडिया को अलाईड रूपवाद भी कहा जा सकता है। इस सन्दर्भ में भाषा का प्रश्न भी गम्भीर बन जाता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में कई भाषाएँ नष्ट हो रही हैं। महानगरीकरण की प्रक्रिया में कई बोलियों ने दम तोड़ा है। मीडिया भाषाओं को बिगाड़ रहा है। विज्ञापनों में अंग्रेजी मिश्रित खिचड़ी भाषाएँ पका रहा है। बच्चे और युवा अजीबो गरीब भाषाएँ बोलने लगे हैं। अंग्रेजी के गन्दे शब्दों का बेहिचक प्रयोग करने लगे हैं। भाषा साहित्य संस्कृति का सम्बन्ध बहुत आन्तरिक और मूल्यगामी होता है। पुनर्वास की प्रक्रिया में इन जड़ मूल्यों की पहचान का बड़ा महत्व होता है। भाषिक विविधता का नष्ट होना, सांस्कृतिक विविधता का नष्ट होना है। भाषिक विकृति सांस्कृतिक विकृति में बदल जाती है। साहित्य के सामने मीडिया ने अनेक चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, उनमें भाषा को बचाने की चुनौती गम्भीर है।¹⁵ इस तरह से हम देखते हैं कि मीडिया का हमला छोटे क्षेत्र में न होकर घर बाहर व्यापक स्तर पर हुआ है। समग्र राष्ट्रवादपरक भारत को भारत बनने के लिए एक मनुष्य को अपने जीवन में सामाजिक सम्मान के साथ जो भी मूलभूत संवेदनाओं के साथ तथ्यों की आवश्यकता से सम्पन्न होने की स्थिति के पैदा होने पर ही समग्र राष्ट्रवादपरक

भारत की तस्वीर को देख पायेंगे। तब मीडिया भी ऐसी तस्वीर दिखायेगा। लेकिन कटु सत्य है कि मीडिया भारत की जनभावनाओं और विचारों के साथ खेल-खेल रहा है। हमें मीडिया से सावधान रहते हुए सबक सिखाना होगा।

संदर्भ

1. भारतीय राष्ट्रवाद-सम्पादक डॉ. सत्येन्द्र त्रिपाठी, डॉ० कृष्णदत्त द्विवेदी-समाज विज्ञान विभाग, वाराणसी-पृ. 07
2. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद- हृदयनारायण दीक्षित-शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, पृ. 99
3. समाज-विज्ञान विश्वकोश (खण्ड-4)-सम्पादक अभय कुमार दुबे-राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 1461, 1462
4. समाज विज्ञान विश्वकोश (खण्ड-4)सम्पादक अभय कुमार दुबे- राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.1468
5. साहित्य का पुर्नवास-निशिकान्त ठाकुर-साहित्य भंडार इला० पृ. 91

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तक



प्रसाद के नाटकों में अभिव्यक्त राष्ट्रवादी चेतना

डॉ. दयाल प्यारी सिन्हा

दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट

दयालबाग, आगरा

जब जयशंकर प्रसाद ने नाट्य-सृजन आरम्भ किया था तब भारत परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए संघर्ष कर रहा था इसलिए उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से उदात्त राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त किया। उनके नाटकों का मूल आधार राष्ट्रीयता है। प्रसाद के नाट्य-सृजन एवं तत्सुगीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुए कहा जा सकता है कि उस युग में अंग्रेजों का साम्राज्य था। क्रान्तिकारी साम्राज्यवादी शक्तियों से लड़ रहे थे। प्रथम महायुद्ध के दुष्परिणामों को भोगती हुई भारतीय जनता निराशावादी हो चुकी थी। इन कठिन परिस्थितियों में कांग्रेस के नेतृत्व व गाँधीजी के मार्गदर्शन में विदेशी शक्तियों के विरुद्ध स्वतन्त्रता आन्दोलन गति पकड़ रहा था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के इस महान यज्ञ में प्रसाद ने भी अपना अमूल्य योगदान किया। उन्होंने भारत के गौरवशाली अतीत के माध्यम से नवनिर्माण का सन्देश दिया। उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास की इतिवृत्तात्मकता के पिष्टपेषण की बजाय युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। इस सन्दर्भ में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है- 'प्रसाद जी के नाटकों की एक अन्य विशेषता है उनका देश-प्रेम सम्बन्धी भाव, जिसे उन्होंने अतीत का आधार लेकर अंकित किया है।... उन्होंने सुदूर अतीत के पात्रों को भी स्थान दिया है और वहाँ भी पौराणिक की अपेक्षा ऐतिहासिक युगों की घटनाओं का चयन किया है। उनके नाटकों में अतीत-युग की भारतीय वीरता और संस्कृति की इतिहाससम्मत व्याख्याएँ और चित्र मिलते हैं।'¹

प्रसाद के मन में देश के गौरवशाली अतीत एवं संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम था। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से राष्ट्र-प्रेम का पाठ पढ़ाया। सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आकांक्षा एवं राष्ट्रीयता का आग्रह उनके नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनकी प्रारम्भिक एकांकियों ('सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित' एवं 'एक घूँट') के अलावा उनके प्रायः सभी नाटकों में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक मूल्यबोध विद्यमान है।

'राज्यश्री' प्रसाद का प्रारम्भिक नाटक है। इस नाटक का घटनातंत्र षड्यन्त्र, रक्तपात, हत्या, अनैतिक आचरण आदि से निर्मित है किन्तु प्रसाद ने ऐसे विषम परिवेश के भीतर मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। इस नाटक में वीर युवती राज्यश्री आर्य संस्कृति की प्रतीक है। उसके चरित्र को आधार बनाकर उदात्त मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। उसका चरित्र गाँधीवादी अहिंसा, क्षमा, लोककल्याण आदि के लिए सर्वस्व समर्पित कर देने की भावना को अभिव्यक्त करता है। नाटक में राज्यश्री अपने सात्विक गुणों द्वारा हर्षवर्धन की प्रतिहिंसा को शान्त करती है, जिसके फलस्वरूप राज्यवर्धन के हत्यारों को क्षमा मिलती है एवं हर्षवर्धन लोकसेवा के पथ पर अग्रसर होते हुए कहता है- 'मैं अकारण दूसरों की भूमि हड़पने वाला दस्यु नहीं हूँ। यह एक संयोग है कि कामरूप से लेकर सुराष्ट्र तक, काश्मीर से लेकर रेवा तक एक सुव्यवस्थित राष्ट्र हो गया। मुझे और न चाहिए। यदि इतने ही मनुष्यों को सुखी कर सकूँ-राजधर्म का पालन कर सकूँ तो कृतकृत्य हो जाऊँगा।'² अहिंसा एवं क्षमा का यह सन्देश प्रसाद पर गाँधीवादी चिन्तन के प्रभाव को दर्शाता है। उपरोक्त कथोपकथन द्वारा एक राजा के दायित्वों पर प्रकाश डालते हुए प्रसाद ने युद्ध की नीति का विरोध किया है एवं गाँधीवादी चिन्तन पर आधारित राजधर्म का आदर्श प्रस्तुत करते हुए युग-धर्म का निर्वाह किया है।

प्रसाद के 'विशाख' नाटक का आधार संस्कृत का प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' है। इस नाटक में एक सामान्य सी प्रेमकथा द्वारा प्रसाद ने देश की तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है तथा वर्तमान स्थितियों में शासक व जनता के संघर्ष को दिखाकर जनशक्ति की विजय की घोषणा की है। इस नाटक में प्रसाद ने नरदेव के अत्याचारों के रूप में ब्रिटिश शासकों के अत्याचारों का चित्रण किया है और प्रेमानन्द के रूप में महात्मा गाँधी को दर्शाया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन में गाँधीजी का मुख्य अस्त्र अहिंसा था। 'विशाख' में प्रसाद ने प्रेमानन्द के द्वारा अहिंसा की संस्तुति की है- "देश की शान्ति भंग करना और निरपराधों को दुख देना, इससे तुम्हें क्या मिलेगा ? देखो सावधान हो, इस उतेजना राक्षसी के पीछे न पड़ो, एक अपराध के लिए लाखों को दण्ड न दो। हरी-भरी भूमि के लिए पत्थर वाले बादल न बरसे अन्यथा पीछे पछताओगे।"³ इस नाटक में प्रेमानन्द गाँधीजी के सत्य, अहिंसा, क्षमा

एवं विश्वशान्ति के सन्देश की संस्तुति करता है। जिस प्रकार गाँधीजी अत्याचारी ब्रिटिश शासको के विरुद्ध भारतवासियों को सत्य एवं अहिंसा के द्वारा संघर्ष करने का सन्देश दे रहे थे उसी प्रकार इस नाटक में प्रसाद ने प्रेमानन्द के माध्यम से गाँधीजी के विचार-दर्शन को अभिव्यक्ति दी है।

प्रसाद के 'अजातशत्रु' नाटक में बौद्ध कालीन भारत का चित्रण किया गया है। नाटक में मगधा, कौशाम्बी आदि जनपदों में व्याप्त सत्ता-संघर्ष, हिंसा, यौद्ध आदि का चित्रण प्रसाद का अभीष्ट नहीं है वरन् गाँधी युग की चेतना को ऐतिहासिक सन्दर्भों में चित्रित करना इस नाटक का केन्द्र बिन्दु है। इस नाटक में गौतम बौद्ध द्वारा दिए गए अहिंसा, करुणा, क्षमा आदि के सन्देश को स्पष्टतः सुना जा सकता है। 'विशाख' में जहाँ प्रेमानन्द गाँधीवादी चिन्तन को अभिव्यक्त करता है वहीं 'अजातशत्रु' में गौतम बौद्ध गाँधीवादी मूल्यों की संस्तुति करते हुए कहते हैं- "विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है- जो प्राणिमात्र में समदृष्टि रखती है।"⁴

'अजातशत्रु' में चित्रित ब्रिटिश साम्राज्यविरोधी चेतना इस नाटक को प्रासंगिक बना देती है। इस नाटक के माध्यम से प्रसाद ने देशवासियों को अत्याचारी ब्रिटिशशासक के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा प्रदान की है- 'मानव की अपनी इच्छाशक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है, जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व भर में छोटे से बड़ा होना यही प्रत्यक्ष नियम है। तुम इसकी क्यों अवहेलना करते हो ? महत्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्नि कुंड में कूदने के लिए प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वे ही भाग जाएँगी।'⁵

'कामना' प्रसाद द्वारा लिखा गया एक प्रतीक नाटक है। इस नाटक में भोगवादी संस्कृति के दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। प्रसाद ने भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्मवाद की प्रतिष्ठा के लिए इस नाटक में पात्रों का प्रतीकात्मक रूप में चित्रण किया है। नाटक में कामना मानव मन की कामना है। वह सन्तोष के कठिन मार्ग को त्यागकर विलास के आकर्षक मार्ग पर चल देती है। जब वह विलास एवं लालसा के कारण विवेक को भी त्याग देती है तब लोभ, अहंकार, हिंसा आदि का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। तब विवेक उसे धिक्कारता है तथा सन्तोष उसे कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करता है, जिसके परिणामस्वरूप कामना सही राह पर चल देती है। यह नाटक बताता है कि कामना के मार्ग से भटकते ही मानव का नैतिक पतन होने लगता है। यही भोगवाद है, जिसके कारण भारतीय संस्कृति विनाश की ओर अग्रसर हो रही है। इस प्रकार प्रसाद ने 'कामना' में मानव मन की प्रवृत्तियों के सकारात्मक विकास को महत्त्व दिया है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में प्रसाद ने उत्तरमहाभारत काल के संघर्ष युग को चित्रित किया है। इस नाटक में आर्य एवं नाग जाति के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है, जिसका अन्त नाग कन्या मणिमाला तथा आर्य सम्राट जनमेजय के विवाह से होता है। इस नाटक के माध्यम से प्रसाद ने भारतवासियों को जातीय एकता तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना का सन्देश दिया है। इस नाटक में मनसा नामक नाग युवती जातीय संकीर्णता के कारण आर्य जाति के प्रति विद्वेष की भावना रखती है। वह आर्य जाति के प्रति नागों के मन में विष भरते हुए कहती है-

“क्या सुना नहीं कुछ अभी पड़े सोते हो,
क्यों निज स्वतन्त्रता की लज्जा खोते हो,
प्रतिहिंसा का विष तुम्हें नहीं चढ़ता क्या !
जब दर्प भरा अरि चढ़ा चला आता है,
तब भी तुममें आवेश नहीं आता है,
जातीय मान के शव पर क्यों रोते हो,
क्यों निज स्वतन्त्रता की लज्जा खोते हो।”⁶

इस नाटक में सरमा एक ऐसी पात्र है, जो नाग एवं आर्य जातियों में एकता स्थापित करती है। प्रसाद ने उसके माध्यम से जातीय एकता की स्थापना एवं साम्प्रदायिक हिंसा को समाप्त करने का सन्देश दिया है। इस अर्थ में वह गाँधी जी का प्रतीक कही जा सकती है।

राष्ट्रीय सन्दर्भों की दृष्टि से प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त' भी एक महत्त्वपूर्ण नाटक है। इस नाटक में प्रसाद की राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति व्यापक स्तर पर हुई है। नाटक का नायक स्कन्दगुप्त विषम परिस्थितियों से घिरा हुआ है। वह तत्पुगीन भारतीय जनमानस का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें अपने अधिकारों के प्रति गहन उदासीनता विद्यमान है। पर्णदत्त उसे प्रजा की रक्षा एवं अपने अधिकारों का उपयोग करने की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रसाद स्कन्दगुप्त की उदासीनता में भी राष्ट्र के कल्याण के लिए उसे कर्मपथ की ओर अग्रसर करते हैं। वह प्रजा पालन के प्रति अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए कहता है- "आर्य ! इस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूँ और आर्य-राष्ट्र की रक्षा में सर्वस्व अर्पण कर सकूँ, आप लोग इसके लिए भगवान से प्रार्थना कीजिए और आशीर्वाद दीजिए कि स्कन्दगुप्त अपने कर्तव्य से, स्वदेश-सेवा से कभी विचलित न हो।"⁷

'स्कन्दगुप्त' नाटक के गीत हिन्दी के राष्ट्रीय गीतों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन गीतों में देशवासियों की रग-रग को जाग्रत करने की शक्ति एवं उनमें उत्साह उत्पन्न करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है-

“बजा दो वेणु मनमोहन! बजा दो।
हमारे सुप्त जीवन को जगा दो।
विमल-स्वातन्त्र्य का बस मन्त्र फूँको,
हमें सब भीति-बन्धनों से छुड़ा दो।”⁸

प्रसाद ने अपने अगले नाटक 'चन्द्रगुप्त' की कथा का आधार भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग मौर्य युग को बनाया है। चन्द्रगुप्त का शासन-काल भारत का स्वर्ण युग था। इस नाटक का वैशिष्ट्य चन्द्रगुप्त व चाणक्य के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से है। चाणक्य प्रसाद की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का केन्द्रीय बिन्दु है। वह सम्पूर्ण राष्ट्र को एक अखण्ड इकाई के रूप में देखने का इच्छुक है। स्वतन्त्रता के विषय में उसका मत है- 'स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है। परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े, यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है।'⁹

'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद ने राष्ट्रीयता के साथ ही विश्व-प्रेम का सन्देश भी दिया है। नाटक की मुख्य नारी पाठ अलका का चरित्र नाटक में स्वतन्त्रता आन्दोलन को नई दिशा प्रदान करता है। उसका चरित्र राष्ट्रप्रेम के प्रति समर्पित है। तक्षशिला में उसके द्वारा गाया गया जागरण गीत राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों के नेतृत्व करने की शक्ति का सन्देश देता है-

“हिमाद्रि तुगशृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती।

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञा सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।”¹⁰

राष्ट्रीय प्रेम के सन्दर्भ में 'चन्द्रगुप्त' नाटक के गीत भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय अस्मिता की श्रेष्ठता को प्रदर्शित करने के लिए प्रसाद ने ग्रीस देश की राजकुमारी कार्नेलिया द्वारा भारत भूमि की प्रशंसा करवाई है। कार्नेलिया भारत के वैभव एवं ज्ञान से आश्चर्यचकित होकर उसकी प्रशंसा करते हुए गाती है-

“अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।”¹¹

कार्नेलिया भारतीय संस्कृति के मूल्यों एवं प्राकृतिक सौन्दर्य से अत्यधिक प्रभावित होती है। वह भारत से अपनी जन्मभूमि के समान स्नेह करती है- “मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैल-श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप और भोले कृषक तथा सरल कृषक बालिकाएँ, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएँ हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है ? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।”¹²

प्रसाद के अन्तिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ प्रगतिशील मूल्यों को भी चित्रित किया गया है। ध्रुवस्वामिनी के चरित्र में नारी चेतना के जागरण का स्वर सुनाई देता है। नाटक की तीनों नारी पात्रों-ध्रुवस्वामिनी, कोमा एवं मन्दाकिनी के माध्यम से नारी-मुक्ति की समस्या को अभिव्यक्त किया गया है। नाटक के अन्त में प्रसाद ने धर्मशास्त्र के अनुरूप रामगुप्त जैसे क्लीव, कायर एवं मद्यपति से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष (तलाक) की व्यवस्था करवाई है। राजपुरोहित भी नारी मुक्ति का समर्थन करते हुए कहता है- 'जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिए भेजने में कुछ संकोच नहीं, वह क्लीव नहीं तो और क्या है ? मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।’¹³ इस नाटक में ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से नारी के अधिकारों का प्रश्न उठाया गया है तथा उसके समाधान के लिए भारतीय सामाजिक परिस्थितियों में धर्मशास्त्र, नीति आदि के तर्क प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे ध्रुवस्वामिनी की समस्या व्यक्तिगत समस्या न रहकर सामाजिक, नैतिक एवं मानवीय समस्या बन जाती है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि प्रसाद ने अपने नाटकों के द्वारा राष्ट्रीय एकता का उद्घोष किया है। उनके नाटक राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होने के कारण राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक गौरव को प्रतिपादित करते हैं। उनके प्रत्येक नाटक के मूल में राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा का भाव निहित है। 'उन्होंने इतिहास को नाट्याभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बनाया, ऐसा इतिहास जिसमें भारतीयों के वैभव, वीरत्व और पराक्रम के अपूर्व उदाहरण थे और विदेशियों के पराभव की गाथा थी। इन ऐतिहासिक कथानकों द्वारा धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, सुन्दर-असुन्दर, हर्ष-विषाद, विजय-पराजय से युक्त मानव जीवन का चिरन्तन स्वरूप प्रस्तुत किया, भारतीयों के आगे मँडरते हुए विदेशी धुएँ को हटाने के लिए इतिहास के पृष्ठ खोलकर

अप्रत्यक्ष रूप में ही उस युग की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया, राष्ट्रीय जागरण का ही नहीं, मानवतावाद का शाश्वत आदर्श प्रसारित किया।¹⁴ उनके नाटकों में चित्रित घटनाएँ एवं चरित्र वर्तमान समय में भी नवीन दिशा प्रदान करने में समर्थ हैं इसी कारण प्रसाद द्वारा रचित नाटक आज भी प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ

1. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी- जयशंकर प्रसाद, पृ. 152-53
2. जयशंकर प्रसाद-राज्यश्री, पृ. 56
3. जयशंकर प्रसाद-विशाख, पृ. 64
4. जयशंकर प्रसाद-अजातशत्रु, पृ. 29
5. वही, पृ. 54
6. जयशंकर प्रसाद-जनमेजय का नागयज्ञ-तीसरा अंक, तीसरा दृश्य
7. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त, पृ. 65-66
8. वही, पृ.123
9. जयशंकर प्रसाद-चन्द्रगुप्त, पृ.173
10. वही, पृ.160
11. वही, पृ.86
12. वही, पृ.121
13. जयशंकर प्रसाद-ध्रुवस्वामिनी, पृ. 64
14. गिरीश रस्तोगी-हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष, पृ. 30

स्वतन्त्रतापूर्व की पत्रकारिता में राष्ट्रबोध

डॉ. दर्शना धवल
लेडी श्रीराम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

किसी भी आदर्श राष्ट्र की कल्पना बिना पत्रकारिता के असम्भव है। पत्रकारिता लोकतन्त्र का अविभाज्य अंग है। यदि हम लोकतांत्रिक पद्धति के अन्दर रहते हैं तो उसमें पत्रकारिता एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में स्थापित रहती है। आज का युग संचार क्रान्ति का युग है। प्रतिक्षण घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान हमें संचार के माध्यम से प्राप्त होता है। पत्रकारिता का उद्देश्य ही सामाजिक और सार्वजनिक हितों से जुड़कर पूर्ण होता है। प्रभाश जोशी के अनुसार- 'स्वाधीनता के पहले पत्रकारों के सम्मुख एक लक्ष्य था कि देश को स्वाधीन करना है।' अतः स्पष्ट है कि पत्रकारिता जब देश के हित में सोचती है तो उससे राष्ट्रीयता की भावना का विकास होना अनिवार्य है। इतिहास साक्षी है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलनों में पत्रकारिता का योगदान कितना महत्वपूर्ण और सार्थक है। भारतीय पत्रकारिता ने समाज में चेतना जागृत करने और जनमानस के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

राष्ट्रबोध की संकल्पना में राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का पुनीत संकल्प है। राष्ट्र के प्रति हमारे कर्तव्य और दायित्वों का समुच्चय ही राष्ट्रबोध है। कहने में तो राष्ट्र शब्द व्यापक है पर यदि हम चिंतन के स्तर पर देखें तो वह राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से जुड़ा है। शेखर बंद्योपाध्याय के अनुसार- 'उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सामना जिस भारतीय राष्ट्रवाद ने किया और जिसने 1947 में भारतीय राष्ट्र राज्य के जन्म के रूप में अपनी जीत का जश्न मनाया, वह उपनिवेशी आधुनिकता की उपज था। चूँकि उपनिवेशकों का स्वघोषित उद्देश्य उपनिवेशितों के उनके पतन की तत्कालीन अवस्था से ऊपर लगे पिछड़ेपन के टप्पे को चुनौती देना और यह दावा करना आवश्यक हो गया कि एक आधुनिक राज्य के ढाँचे में भी एक जुट होने और अपना शासन स्वयं चलाने में समर्थ है।'²

पत्रकारिता और राष्ट्रबोध का सम्बंध बड़ा गहरा है। जब पत्रकारिता में राष्ट्र के प्रति सजगता और राष्ट्रहित का भाव रहता है तो वह राष्ट्र अपने आदर्श रूप की ओर अग्रसर होता है। भारतीय पत्रकारिता में भी राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करने का लम्बा इतिहास रहा है। स्वतन्त्रता पूर्व जब सरकार के अत्याचारों में समाचार पत्रों को बंद करना भी शामिल होता था पर कुछ समय पश्चात वे फिर काम करना शुरू कर देते थे। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में समाचार-पत्रों के संघर्ष का इतिहास बहुत लंबा है। यदि अंग्रेज सरकार के सामने ये समाचारपत्र घुटने टेक देते तो भारत की आजादी का सपना कभी पूरा नहीं होता। उस संघर्ष में देश के प्रति प्राण न्यौछावर करने का भाव जागृत करने में पत्रकारिता का अहम् स्थान है। इसलिए समय-समय पर ब्रिटिश सरकार ने पत्रकारिता को कुचलने का कार्य किया। परन्तु फिर भी भारतीय पत्रकारिता जनभावना की अभिव्यक्ति को प्रसारित करने में सफल हुई और उसने स्वतन्त्रता के उद्देश्य को वाणी प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्देश्य को एक क्रान्ति के रूप में फैलाने में सफल हुई। स्वतन्त्रतापूर्व राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज और राष्ट्र के पुनिर्माण में भारतीय पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्रीय नवजागरण में भी राष्ट्रबोध की ही संकल्पना है। हमारे देश की संस्कृति कभी संकीर्ण नहीं रही। हमारी सभ्यता ने अनेक संस्कृतियों को अपने यहाँ बसने की आजादी दी है। इस विविधता में राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों को भी निभाया है। 'खीचों न कमानों को, न तलवार निकालो। 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।' स्पष्ट है कि तोप तो केवल एक लक्ष्य भेद सकती है पर एक पत्र अनेक लोगों में चेतना और जागृति का संचार कर सकता है।

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में हमें अनेक पत्रिकाएं ऐसी मिल जाएंगीं जिनमें राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों को निभाने की प्रेरणा मिलती है जैसे-ग्रामीण पत्रकारिता, सर्वोदय पत्रकारिता, धार्मिक-आध्यात्मिक पत्रकारिता, आर्यसमाज पर आधारित पत्रकारिता आदि। भवानी प्रसाद मिश्र के अनुसार- "सच्चा सेवाशील व्यक्ति किसी के भी दुःख दर्द की तरफ आँखें बंद करके नहीं चल सकता। यदि पत्रकारिता सेवा है तो फिर पत्रकार एक सेवक हुआ। सेवक अर्थात् वह व्यक्ति जिसके सामने सेवा किसी उपलब्धि का साधन नहीं, बल्कि अपने आप में साध्य है। सेवा के द्वारा न उसे कीर्ति चाहिए, न पद न पैसा। वह तो जहाँ सेवा की आवश्यकता दिखायी देगी, वहीं दौड़ पड़ेगा और अपनी शक्ति के अनुसार अच्छी से अच्छी सेवा कर सकने की दृष्टि से उत्तम माध्यमों का उपयोग करेगा।"³ 1857 की क्रान्ति में भी हमें राष्ट्रबोध के दर्शन होते हैं। अपने देश को संघर्षों से मुक्त का यह प्रयास सदा उल्लेखनीय रहेगा। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम को आलोकित करने वाले तत्व थे - स्वधर्म और

स्वराज्य। राष्ट्रबोध में अस्मिता का भाव घुला रहता है जो किसी जाति या राष्ट्र के आत्मविश्वास का परिचायक होता है।

30 मई 1826 को पं. युगल किशोर शुक्ल द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'उदन्त मार्तण्ड' से आरम्भ हुआ सफर आज तक निरन्तर राष्ट्रहित के उद्देश्यों को लेकर चल रहा है। 15 अगस्त 1868 ई. को भारतेन्दु ने काशी से 'कवि वचन सुधा' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्र ने देश के प्रत्येक प्रांत की पीड़ा को शामिल किया। 1872 के अंक में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने लिखा था- "पंजाब प्रांत में शवों को दग्ध करने को लकड़ी नहीं मिली, इससे शवों को वैसे ही फैंक देते हैं।" 16 फरवरी 1872 के अंक में छपा कि गुजरात में बाढ़ आई। पीड़ितों के लिए झांसी के अध्यापकों ने 20 रूपये भेजे। इसी प्रकार पुणा में खानदेश सहायता के लिए रु.1711/- इकट्ठे किए गए और यह समाचार छपा 'कविवचन सुधा' में। 12 जुलाई 1874 ई. के अंक के एक लेख में उन्होंने लिखा भारतवर्ष दिन-पर-दिन समृद्ध नहीं होता जाता। चीजें महंगी होती जाती हैं, गांवों में कपड़ा बुनने वालों के उद्योग चौपट होते जाते हैं, अखबार देश की दुर्दशा का वर्णन करते हैं, फिर भी टैक्स बढ़ते जाते हैं।" यदि पत्रकारिता इस प्रकार देश के सामान्य से सामान्य वर्ण का चित्रण करेगी तो राष्ट्रबोध का जागृत होना तय है। पत्रकारिता का उद्देश्य की समाज और देश की स्थिति का यथार्थपरक चित्रण करना होता है। 'हिन्दी प्रदीप' (1877-1910) पं. बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी पत्रकारिता में बहुत महत्वपूर्ण मासिक पत्र है। इस पत्रिका में उच्च कोटि के साहित्यिक निबंध, कहानी, कविताएं आदि तो निकलती ही थी साथ ही यह पत्र राजनीतिक चेतना जागृत करने का कार्य भी बड़ी गम्भीरता से करता था। 'हिन्दी प्रदीप' में छपी श्रीधर पाठक की कविता इसका उदाहरण है-

“श्री हरिपद रज कृपा देश दुर्दशा सुधारन,
हिन्दू-मन-मन गुहा महातम तोम निवारन।
दीप देश नव देह नेह नेह भरि भरि तंह वारु
प्रवलित उर्दू मुख कलवित हिन्दी उद्धारन।
दीन प्रजा दुख हरन नागरी बरन प्रचारन,
पर पदगत भारत भारत की आपद तरन।
काव्यकला कौशल्य शिल्प विधादि उबारन
उत्तम उत्तम विषय देश भाषा संचारन।”⁵

इसी प्रकार अपनी वैविध्यमयी प्रस्तुति के लिए पं. प्रतापनारायण मिश्र की 'ब्राह्मण' (1883) भी उल्लेखनीय है। इस पत्रिका में सामाजिक राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि विषयों पर सामग्री प्रकाशित होती थी। इसके पहले अंक में प्रस्तावना शीर्षक अग्रलेख में मिश्र जी ने पत्र का उद्देश्य बताते हुए लिखा था- "हम वह ब्राह्मण नहीं हैं कि केवल दक्षिणा के लिए निरी ठाकुर सुहाती बातें करें। अपने काम से काम कोई बने व बिगड़े प्रसन्न रहे या अप्रसन्न। नहीं, अंतःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा... कभी राज्य संबन्ध विषय भी सुनावेंगे, कभी-कभी गद्य-पद्यमय काव्य नाटक से भी रिझावेंगे। इधर-उधर के समाचार तो सदा देंगे ही।" इसके साथ 1888 में उन्होंने एक छोटी-सी टिप्पणी लिखी उसका शीर्षक दिया, 'हम राज भक्त' हैं और इसमें उन्होंने राजभक्ति का अर्थ समझाया कि जो राजा सच्चे मन से अपनी प्रजा 'भगवान' मानती है, उसकी पूजा करती है जैसे अयोध्यापति राम की। जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने में इस पत्र की भूमिका उल्लेखनीय है। इसी प्रकार पं. छोटूलाल मिश्र और पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'भारतमित्र' (1878), पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी का 'सारसुधानिधि', पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'उचित वक्ता' (1880) आदि पत्र तत्कालीन परिवेश में राष्ट्रीय चेतना का स्फूर्ण करने में सफल सिद्ध हुए।

23 मार्च 1984 की 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु ने एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित किया था - "हम लोग सर्वान्तदासी सत्र स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे और जो कपड़ा पहले से मोल ले चुके हैं और कीमती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे।" इस स्वदेशी आन्दोलन की भावना के पीछे भी राष्ट्रबोध की ही संकल्पना थी। जिसने स्वतंत्रता प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जब भारतेन्दु हरिश्चंद्र देश की दुर्दशा देखकर यह लिखते हैं कि.. "अब जहाँ देखहु तहाँ दुःखहि दुख दिखाई। हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।" तो इसमें राष्ट्र के प्रति समर्पण का भाव है। भारतेन्दु की पत्रकारिता अर्थात् हिंदी के दूसरे दौर की पत्रकारिता की विवेचना करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "पत्र साहित्य की परम्परा न होते हुए भी उसने थोड़े ही वर्षों में जो उन्नति की, उसका एक मात्र कारण लेखकों की धुन थी। परिस्थितियाँ कठोर थी परन्तु उन्होंने अपने-आप को दृढ़तर सिद्ध किया। यदि उस युग के साहित्यिकों ने यह लगन और फक्कड़पन न प्रकट किया होता तो निश्चय ही वह परिस्थितियों के नीचे कुचल दिये गये होते।"⁸

1907 का वर्ष भी पत्रकारिता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है इस वर्ष महामना मालवीय ने 'अभ्युदय' का प्रकाशन किया। बाल गंगाधर तिलक के 'केसरी' की तर्ज पर माधावराव सप्रे ने 'हिन्दी केसरी' का प्रकाशन किया। 1910 में गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' का प्रकाशन किया। यह पत्र उग्र एवं क्रान्तिकारी विचारधारा का पोषक था। इन पत्रों का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करना था। छायावाद काल में पत्रिकाओं का प्रकाशन अधिक हुआ। इस काल की प्रमुख पत्रिकाओं में 'इन्दु',

(1909 जयशंकर प्रसाद) 'प्रभा' (1913 कालूराम गंगराडे), 'चाँद' (1920 रामरख सहगल, चंडीप्रसाद, महादेवी वर्मा) 'माधुरी' (1921 विष्णुनारायण भार्गव) 'शारदा' एवम 'मतवाला' थी। इन पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यकारों के लेखों ने जनजागृति के प्रसार का कार्य किया। 1922 में माधवानंद के सम्पादन में 'समन्वय' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। आचार्य शिवपूजन सहाय और निराला के उत्कृष्ट लेखों द्वारा इस पत्र ने राष्ट्रीय चेतना को एक नई दिशा दी। 1927 में श्री दुलारे लाल भार्गव व पं. रूपनारायण पाण्डेय ने 'सुधा' का संपादन किया। इसमें समाज सुधार और साहित्यिक लेखों द्वारा पाठकों के बौद्धिक स्तर को और परिपक्व किया। प्रेमचंद ने 1932 में 'जागरण' और 1936 में 'हंस' का प्रकाशन किया। सन् 1930 में वे 'माधुरी' का संपादन करते थे। गांधीजी की नीतियों का समर्थन, स्वराज्य स्थापना के लिए जागरण का प्रयास और साहित्यिक विधाओं के विकास के उद्देश्य से 'हंस' (1930) का प्रकाशन किया गया।

इसी प्रकार 1857 की क्रान्ति से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक पत्रकारिता में राष्ट्रीय भावना का संचार सर्वत्र दिखाई देता है। पत्रकारिता और राष्ट्रबोध इस युग की पहचान है। वास्तव में देखा जाए तो पत्रकारिता और राष्ट्रीयता के मूल तत्व में समानता दिखाई देती है। देश-प्रेम, सद्भावना, देश के प्रति कर्तव्यों का वहन, पर-हित की भावना इत्यादि। समाज में देश हित से सम्बन्धित मुद्दों और सरोकारों का प्रचार करना पत्रकारिता का उद्देश्य होना चाहिए। राष्ट्रीयता और पत्रकारिता की संकल्पना में सदा समाज और राष्ट्रहित सर्वोपरि होता है। एक पत्रकार जब पत्रकारिता में प्रवेश करता है तो उसका उद्देश्य जन-हित ही होता है। अपनी कलम के माध्यम से वह न केवल स्वयं को उद्घाटित करता है वरन् समाज और राष्ट्र को सही दिशा की ओर प्रेरित करता है।

संदर्भ

1. हिन्दी पत्रकारिता दशा और दिशा, सं. जयप्रकाश भारती पृ.-13, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली।
2. पलासी से विभाजन तक और उसके बाद-आधुनिक भारत का इतिहास, अनुवादक-नरेश नदीम, पृ.-183, ओरियंट ब्लेकस्वॉन
3. हिन्दी पत्रकारिता विविधा आयाम, स. वेदप्रताप वैदिक, पृ. 372, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
4. राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, सुजाता राय, पृ.77, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, अशोक विहार-3, दिल्ली।
5. वही, पृ.-95
6. वही, पृ.-117
7. पत्रकारिता का अवलोकन, एन.सी.पंत, पृ.-37, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली।
8. वही, पृ.-61

Hindi Cinema as a Source of Cultural Nationalism

Dr. Deepti Sharma

Assistant Prof., Shyam Lal College
Delhi University.

It is commonplace to remark that India has the largest film industry anywhere, producing “unquestionably the most-seen movies in the world” of the many languages in which Indian movies are made, films in Hindi are the most prominent globally, and they comprise the most obviously “national” cinema. Indian films in general, and Hindi films in particular, have had international success for decades. They constitute perhaps the only national cinema that can come close to rivaling the U.S. film industry. This parallel with Hollywood has led to the popular name for the Hindi film industry, “Bollywood.” The name refers particularly to the entertainment-oriented films from the 1960s on, and of these especially the films produced since the early 1990s in the period of economic neo-liberalism and globalization. The size and international presence of Hindi cinema make it an obvious topic for research by film scholars. This article presents the how Hindi Cinema inspired cultural nationalism in the masses.

The Hindi Cinema has undergone a massive change over the years. It started in 1913 from silent movies to the first talkie in 1931 to the colored movies to the ones today. Hindi cinema, along with all its peculiarities, has been a reflection of the socio-economic, political and cultural changes that took place in the country. As the world has become a global village, the Indian film industry has reached out further to the international audiences too.

Bal Gangadhar Tilak admired movies and supported Dadasaheb Phalke in his attempts in creating a swadeshi cinema. He was the first in Marathi press to carry film reviews in his daily newspaper Kesari. Dadasaheb Phalke, released his epochal feature film Raja Harishchandra on 3rd May 1913 and thus he was called as the father of Indian Cinema. This was the first motion picture premiered on 21st April 1913. Phalke made other films too- Shrikrishna Janma in 1917, Kaliya Mardan in 1919, etc which had strains of nationalism. His films introduced mythological genre to the Indian Cinema merging his notion of Swadeshi into his films. Inspired from these the youth at that time started making patriotic films. For instance Baburao Painter and his Maharashtra Film Company made Kalyan Khajina(1924), Shahala Shah(1925) and others. These films stirred the masses into revolt.

The silent era came to an end when Ardeshir Irani produced his first talkie, ‘Alam Ara’ in 1931. If Phalke was the father of Indian cinema, Irani was the father of the talkie. The talkies changed the face of Indian cinema. Apart from looks, the actors not only needed a commanding voice but also singing skills, as music became a defining element in Hindi cinema.

The thirties is recognized as the decade of social protest in the history of Indian Cinema. Three big banners - Prabhat, Bombay Talkies and New Theatres gave the lead in making serious but gripping and entertaining films for all classes of the wide audience.

A number of films making a strong plea against social injustice were also made in this period like V. Santharam’s Duniya na Mane, Aadmi and Padosi; Franz Osten’s Achut Kanya. Others are Damle & Fatehlal’s Sant Tukaram; Mehboob’s Watan, Ek hi Raasta and Aurat. For the first time Ardeshir Irani attempted a colour picture in 1937 with Kisan Kanya.

The decade also witnessed the release of the first talkie films in Marathi (Ayodhiyecha Raja-

1932); Gujarati (Narasinh Mehta - 1932); Kannada (Dhurvkumar - 1934); Oriya (Sita Bibaha - 1934); Assamese(Joymati -1935); Punjabi (Sheela- 1935) and Malayalam (Balan - 1938).

The forties was a tumultuous decade; the first half was ravaged by war and the second saw drastic political changes all over the world. In the middle of the Second World War in 1945 came 'Kismet' in 1943 starring Ashok Kumar which became one of the biggest hits in the history of Indian cinema. It had some bold themes - the first anti-hero and an unmarried pregnancy. It clearly showed that the filmmakers of the era were bolder than the times in which they were living in. A close relationship between epic consciousness and the art of cinema was being established. It was against this backdrop that filmmakers like V.Shantaram(Dr. Kotnis Ki Amar Kahani), Raj Kapoor(Barsaat and Aag) and Mehboob Khan(Roti) made their films.

Contrary to popular myth, the Hindi film industry has depicted the Partition since the 1940s. This is not surprising, given that many members of the film industry were themselves from the other side of the border who migrated from Lahore to Bombay, including leading figures such as the Anand brothers, B.R. Chopra and Yash Chopra among many others. The migration in the opposite direction included Noor Jehan and Saadat Hasan Manto. The Hindi film industry has always concentrated on the depiction of the Partition in Punjab, saying little about the other areas affected by the Partition. Although one might expect censorship due to the sensitivity of the issue, Hindi films referred to Partition almost immediately after the events, such as *Lahore* directed by M.L. Anand (1949), starring Nargis and Karan Dewan.

In Raj Kapoor's *Aag/Fire*, 1948, when a mysterious woman (Nargis) auditions for a role, she says she has no name, no home and comes from 'narak (hell)' or Punjab, which is burning over the Partition violence. *Apna desh*, directed by V. Shantaram (1949), tells the story of a woman abducted during the riots. *Nastik*, directed by I.S. Johar (1954), has a hero who becomes an atheist after seeing the Partition riots and whose travels to seek vengeance become a pilgrimage or sorts. The film was banned on release, finally being shown in the 1960s, and is remembered today mostly for C. Ramchandra and Kavi Pradeep's 'Kitna badal gaya insaan', which depicts trains packed with refugees with trenchant verse about the religious fanatics who indulged in violence. *Amar rahe yeh pyar*, a lesser-known film directed by Prabhu Dayal (1961), is about a child adopted during the 1947 riots.

By the late 1940s, films were being made in various Indian languages with religion being the dominant theme. 1940s to late 1950s was also the golden era of music. The duo Shankar Jaikishan(S-J), O.P. Nayyar, Madan Mohan, C. Ramchandra, Salil Chaudhury, Naushad, S.D. Burman - all had their distinctive style. Each vied with the other to produce some of the most unforgettable melodies India has ever known. 50s and 60s were considered as the Golden Age of Indian cinema.

The first International Film Festival of India held in early 1952 at Bombay had a great impact on the Indian Cinema. The big turning point came in 1955 with the arrival of Satyajit Ray and his classic *Pather Panchali* which opened up a new path leading the Indian film to the World Film scene. International recognition came to it with the Cannes award for best human document followed by an unprecedented crop of foreign and national awards.

The impact of neo-realism was evident in some distinguished films like Bimal Roy's *Do Bigha ayal BaajZamin*, *Devadas* and *Madhumati*; Raj Kapoor's *Boot Polish*, *Shri-420* and *Jagte Raho*; V. Shantharam's *Do Aankhen Barah Haath* and *Jhanak Jhanak Pe*; Mehboob's *Mother India*; Gurudutt's *Pyaasa* and *Kagaz Ke Phool* and B.R.Chopra's *Kaanoon*. The first Indo-Soviet co-production *Pardesi* by K.A.Abbas was also made during the fifties.

The transition to colour and the consequent preference for escapist entertainment and greater reliance on stars brought about a complete change in the film industry. The sixties was a decade of mediocre films made mostly to please the distributors and to some extent, meet the demands of the box office.

The sixties began with a bang with the release of K.Asif's *Mughal-E-Azam* which set a record at the box-office. It was followed by notable productions, which include romantic, musicals, and

melodramas of a better quality. Raj Kapoor's *Jis Desh Mein Ganga Behti Hai* and *Sangam*; Dilip Kumar's *Gungajamuna*; Gurudutt's *Sahib Bibi aur Gulam*; Dev Anand's *Guide*; Bimal Roy's *Bandini*; S. Mukherji's *Junglee*; Sunil Dutt's *Mujhe Jeene Do* and the experimental *Yaadein*; Basu Bhattacharya's *Teesri Kasam*; Pramod Chakravorthy's *Love in Tokyo*; Ramanand Sagar's *Arzoo*; Sakhti Samantha's *Aradhana*; Hrishikesh Mukherji's *Aashirwad* and *Anand*; B.R. Chopra's *Waqt*; Manoj Kumar's *Upkar* and Prasad Production's *Milan* were the significant Hindi films of the decade.

Towards the end of the decade, Mrinal Sen's *Bhuvan Shome*, signalled the beginning of the new wave in Hindi Cinema. A cinema of social significance and artistic sincerity, presenting a modern, humanistic perspective more durable than the fantasy world of the popular cinema had developed by then.

The 70s completely changed the way films were made, especially in Hindi film industry. Changing social norms and changing economies influenced movies and the companies that made them. The narrative style changed. The story structure changed. Characters changed. Content changed. Masala films were the demand of the time. The genre promised instant attraction and had great entertainment value.

The seventies further-widened the gap between multi-star big budgeted off beat films. The popular Hindi hits of the decade include Kamal Amrohi's *Pakeeza*; Raj Kapoor's *Bobby*; Devar's *Haathi Mere Saathi*, Ramesh Sippy's *Sholay*, Zanjeer, *Deewar*, *Khooon Pasina*, *Yaadon Ki Baarat*, Yash Chopra's *Kabhi Kabhi*; *Dharamveer*, *Amar Akbar Anthony*, *Hum Kisise Kum Nahin*, and *Muquaddar Ka Sikandar*. Of these majority of the films were action oriented with revenge as the dominating theme. It was the age of the angry young man and Amitabh Bachchan rose to prominence with the success of *Sholay*, *Zanjeer* and *Deewar*.

While Dev Anand, Rajesh Khanna, Jitendra and Dharmendra continued to bask in the glory of back to back hits, the actresses were not far behind. Right from the time of *Savitri*, *Vijayanthi Mala*, *Nargis*, *Waheeda Rahman* and *Sharmila Tagore* to *Sridevi*, *Rekha*, *Smita Patil*, *Hema Malini*, several actresses became the heartthrobs of India.

The Hindi new wave reached its bloom period towards the end of the seventies with the coming of film makers like Saeed Mirza (*Albert Pinto Ko Gussa Kyon Aata Hai*, *Aravind Desai Ki Ajeeb Daastan*), Rabindra Dharmaraj's (*Chakr*), Sai Paranjpe (*Sparsh*), Musafar Ali (*Gaman*) and Biplab Roy Chowdhari (*Shodh*).

The new cinema movement continued with full spirit in the next decade (eighties) also. Shyam Benegal presented some good movies like *Manthan*, *Bhumika*, *Nishant*, *Junoon*, and *Trikaal*. *Nihlani's Aaghat* and *Tamas* were remarkable works. Other important films with new style of treatment include *Damul* (Prakash Jha), *36 Chowringhee Lane* (Aparna Sen), *Umrao Jaan* (Musafir Ali), *Andhi Gali* (Buddhadeb Dasgupta), *Aajka Robin Hood* (Tapan Sinha), etc. Meera Nair, the young woman director, won the Golden Camera award at Cannes for her first film *Salaam Bombay* in 1989.

The late eighties and early nineties saw the revival of the musical love stories in Hindi cinema. *Mr. India*, *Tezaab*, *Qayamat Se Qayamat Tak*, *Maine Pyar Kiya*, *Chandni*, *Tridev*, *Hum*, *Ghayal*, *Saudagar*, *Rakhwala*, *Jo Jeeta Wohi Sikander*, *Heena*, *Hum Hain Rahi Pyarke*, *Baazigar*, *Aaina*, *Yeh Dillagi*, *Hum Aapke Hai Kaun*, *Krantiveer*, *Raja*, *Rangeela* were some of the popular Hindi films of the last decade. 90s was a mixed genre of romantic, thrillers, action and comedy films.

A stark upgrade was seen on the canvas as technology gifted the industry Dolby digital sound effects, advanced special effects, choreography and international appeal. The development brought about investments from the corporate sector along with finer scripts and performances. It was time to shift focus to aesthetic appeal. Stars like Shah Rukh Khan, Rajnikanth, Madhuri Dixit, Salman Khan, Aamir Khan, Chiranjeevi, Juhi Chawla, etc., enriched Indian cinema with their performances.

From Bengal, Orissa, Assam and Manipur came films like *Tahader Katha*, *Bagh Bahadur*, *Charachar* (Buddhadeb Dasgupta), *Uttoran* (Sandip Ray), *Wheel Chair* (Tapan Sinha), *Unish April* (Rituparno Ghosh), *Adimimansa*, *Lalvanya Preethi* (A.K. Bir), etc.

Now, the Indian cinema has reached the new millennium and a revolution of sorts has happened in terms of defining glamour, entertainment, commercial values, budgeting, marketing and box office reports.

Today Indian Cinema ,especially, Hindi cinema is not only popular in India but in parts of the Middle East, Pakistan, UK and virtually every other place where Indians live. Films like Lagaan, Salaam Bombay and Monsoon Wedding making the international market sit up and take notice definitely indicate that India is poised for bigger things as far as Cinema goes. Monsoon Wedding was the all-time top 10 foreign box-office hits in America.

Apart from regular screenings at major international film festivals, the overseas market contributed a sizeable chunk to Bollywood's box office collections. Regular foreign Investments made by major global studios such as 20th Century Fox, Sony Pictures, and Warner Bros put a stamp of confirmation that Bollywood had etched itself on the global podium.

Emergence of new age filmmakers like Anurag Kashyap, Rajkumar Hirani, Dibakar Banerjee ,Vishal Bhardwaj,etc., has changed the scene. There are movies on a number of themes. There are comedies, thrillers, horror, fiction, movies with message like Taare Zameen Pe, Vicky Donor, Munnabhai MBBS, Chak De India, Lajja, and many more.

ROLE OF PRESS IN NATIONALISM

Rakhi Devi
M.A., Education, B.Ed.
Jammu and Kashmir

Generally Nationalism is oriented towards developing and maintaining a national identity based on shared some characteristics such as culture, language, race, religion, political goals or a belief in a common ancestry: Nationalism therefore seeks to preserve the motions culture. It often also involves a sense of pride in the nation's achievements and is closely linked to the concept of patriotism. In some cases, nationalism referred to the belief that a nation should be able to control the government and all means of production. In general we can say that Nationalism is a political, social and economic system characterized by promoting the interest of a particular nation particularly with the aim of gaining and maintaining self governance, or full sovereignty, over the group's homeland.

Nationalism generally one person or you can say a group of people can take on a major role of the unification process that brings upon nationalism for their country . To get a better understanding of what nationalism is one most learn the meaning of "nationalism,". Nationalism is the devotion of the interest or culture of particular nation . Nationalism is striving force that can help a country thrive .

In these days religion is the most powerful and dangerous weapon inside nationalism . Our press and media actually harting india . Because they spread the false news totally on b half of wrong statements and on pressure and suggestions of politics and politician . It's of all put aside the question of whether a country media organization should sider themselves extension of the state . All of us know that India's major mainstream of brief nationalism is is come when to pakistan or match between india and pakistan . Beside this indian nationalism describes only against opposite community not to the whole nation unity . Today nationalism has totally effected with political issues and religion .

Media and press having great power however seems to come with vary little responsibility about nation . In india too many media and press members stand on religion nationalism. When same news come related to his success and mony . They immediately construct news beyond nation and people . In this system whole indian people could not recognize the actual situation they only immagine about they have seen on screen . Before this media and press let know about indian prospect about indian nationalism .

India is country of 29 states , over 1500 languages ,6400 castes approx . 6 religion and 29 major festivals . This aspect shows that a lot of variety in country . Further it devided into north , south, east , and ,west india. Still it does not stops here it further devided people as jaat , gujre, kashmiri,punjabi,gujrati etc . These each thinks that his religion and also region is most powerful than others . In india here we can see that we give respect people as hindu, muslim ,sikh, beyond as Kashmiri assami ,gujrati , etc not any personal menars .We totally discriminate each other then the question is where nationalism is? These days kashmiri says 'hame kya chiya aazadi garv sa kho hm kashmiri hain' , Panjabi says 'assie punjabi hundey :'etc. Not 'garv sa kho hum bharatvasi hain' or hum sab bhartiya hain. Think does these all not gave a fuel to separate the india from bharat which is very the same .Inside this hell system our media and press also play political role.

Now in current time there are various definitions, books, papers, magazines journals etc. on nationalism, for what constitution a nation, however, which leads to several different stands of nationalism. In practically this all about nationalism is false because we see that there are so many problems inside Nationalism generally Indian Nationalism, because in India Nationalism this is totally based on religions. In these days press mostly affected Indian Nationalism. The ancient rulers curious about gathering news as it was a means of obtaining information mostly these days we can see that Press plays important and vital role about awakening people's. Communication of ideas is the basis and important function of News Papers and in this mining they existed from the ancient times." But in the modern sense of the term, their existence can be traced back only in 1541 A.D. When the first newspaper was started in Mexico. "Other European Countries such as Germany (1609), Switzerland (1610), Dutch (1616), England (1622), France (1631), Italy (1645) and Russia (1703) followed it. The first Newspaper in U.S.A was started in 1690 the world news paper came into existence in Europe by 1670."

In 1818, the first Indian News paper the Bengal Gazettee was started by Bhatticharya but it lived for only one year. The cerampore missionaries started the first vernacular journalism in India, 'The Digidarshan' and 'The Samachar Darpan' the Bengali press started growing in 1818 due to awakening people as they felt the exploitation of foreign rule, ideological conflict brought by Raja Ram Mohan Roy etc. Ram Mohan acclaimed as father of modern Indian. It was not only a father of vernacular journalism in India. He was a staunch advocate of the freedom of press and waged a fierce war against the Adam's regulations, journalism was a means of action to him. He started Brahmomical magazine in English to oppose the attack on Hinduism by the journals run by the cerampor missionaries. The motto of this journal was specified as "the vindication of Hindu religion against Christian missionaries." simultaneously the first journal from Bombay was the 'Bombay Herald' started in 1789. It was followed by 'courier'.

In our ancient time we can see that the news papers in 18th century did not touch upon any issues relating to India. However during the 19th century the news papers were developing in all aspects whatever either this is socially, economically or religious. After sometime talgule press grow very well with all country developing aspects. Now in 21 century thousands of News papers, magazines and journals are constructed with different types of imaginations. Some follows religion some economy, culture, literature etc.

In current days when every single person wish to moderate himself and this is the time that has totally modern. In this time Indian Nationalism effected from press whether it is Positively or Negatively. Beside this, today and problem is that, the journalist who write true, that it seems his bad luck e.g. one Kashmiri journalist found dead before few days because of his true News. That is the actual problem between Nationalism and Indian Press. Here we can see that in our country many magazines and News papers also constructed only be-half of money not moral or our Nation. Simultaneously our Indian Political situation also effected Nationalism and also press. In preaching patriotism and nationalism was not new to India. It was there even in early times and that was not implanted in the soil of India by the British through their education system or administration. The Idea of nationalism has been existing since immemorial times in the mind and the people residing between Himalayas and Kanyakumari.

Generally Indian Press bears lot of problems i.e. some social problems, economic problems, political problems, religious problems and also has so many problems which effects the growing path of Nationalism in press. In the state Jammu and Kashmir you could not believe that whole the peoples in this state are totally decided in two streams and also two regions whether it is Administrationally, Geographically, Economically, Naturally as well as religious dividend. In this state every person known as Hindu or muslim, in Malla dhari or Muslim traditionally not for as an Innocent man or an Indian. In this situation now one can say that this state is only one state this state has divided into two parts and also two nations. You all of them just imagine that this is the problem of only one state of India not beyond state. Then Question is that who's our Nation? India,

whether it is whole country, a single state or it one of the single place i.e. Kashmir? Other religious problems also faces our press whether it is state press or whole country.

Lastly, I can say that, press plays a vital role in Nationalism. Today every one can knows that press is the single powerful weapon that has capacity to change the Government. Today India totally follows on Western Cultures, traditions as well as thoughts. This is positive signs in front of development of India. But beside this many of them such western thoughts and trends are those weapons they spread cruption in our society and it also damage number of Indian cultures and traditions. In this robert time every person wishes that the becomes modern and well economic. Our Indian press whether it is large or small scale effected from this Globlisation and they suffer inside it. On be-half of Indian press it is necessary that they spread positive signs of Nationalism inside whole country not negative, so that every single person of this country knows about well aspects of Nationalism. This is too necessary for press that they save the gentle ideas of Nationalism because in this time whole of indian people construct negative thinking about Nationalism. Nationalism basically Indian Nationalism plays the role of Unity in different religions, different languages, different cultures and different regions not dividend.

In these fast and modern days we can see that even a single person of one family can't adjust with all family members . Beyond this no one seems to be happy with india as bharatvasi but wants to live with their region and religion hood . This is because we observe and study nationalism only theoretical ground not practical. If this discrimination continues there are mainy states are lined up for further division . Hope this younger generation press and media of this country having different mind set about this issue and can made a change and contribution in indian unity and indian nationalism.

References:

1. Rapolu Ananda Bhasker: Journalism – Charitra Vyavastha: hyderabad, 1988, P.No. 8.
2. Harischandra Prasad: Journalism in Telgues – its origin and development (University of Hyderabad, 1984
3. Nadig Krishna Monty; op. cit, P.40.

मीडिया और राष्ट्रवाद : कुछ सपनें, कुछ हकीकत

डॉ. सौम्यरंजन दाश

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

शिलांग (मेघालय)

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में मीडिया की विशिष्ट भूमिका के कारण इसे 'चौथी सत्ता' या 'चौथा स्तंभ' कहा गया है। एक समय था जब हम अपने सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश की झाँकी पत्रकारिता के दर्पण में देखते थे। चाहे सामाजिक परिवर्तन लाने का मसला हो या जनमत तैयार करने की, इसमें प्रेस की अग्रणी भूमिका हर जगह हुआ करती थी। देश की सामाजिक, सांस्कृतिक साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवनधारा को गहराई तक प्रभावित कर एक विशेष दिशा में प्रवाहमान करने में हमारे देश की मीडिया ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय पत्रकारिता ने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक उन्नति में कितना बड़ा युगांतकारी कार्य किया था, यह सब हम जानते हैं। इस प्रकार भारतीय मीडिया न केवल युग की इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज रही है, अपितु सम-सामयिक सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की संवाहिका भी रही है।

भारतवर्ष में प्रारंभ से ही जबसे पत्रकारिता ने जन्म लिया है, तब से इसमें व्यवस्था के प्रति विरोध का स्वर प्रधान रहा है। यहाँ तक कि 'हिक्की गजट' (बंगाल गजट) जो कि अंग्रेजी का पत्र था, और इसका स्वर भी ईस्ट इंडिया कंपनी के विरोध का था। यह पत्र व्यक्तिगत प्रतिरोध का पत्र था, जिसका संबंध किसी संस्थान से नहीं था। इस प्रकार इस पत्र ने बिना मजबूत आर्थिक आधार के आम आदमी के पक्ष में आवाज बुलन्द किया। भारतीय समाज में पत्रकारिता एक मिशन रहा है और पत्रकार को एक लोकनायक के रूप में माना जाता है। एक प्रबुद्ध साहित्यकार की तरह दिशाहीन समाज को अपेक्षित दिशा-निर्देश देना पत्रकार का मुख्य दायित्व होता है। वह अपने समय और समाज की संपूर्ण परिस्थितियों का सम्यक अध्ययन कर समाज में व्याप्त घातक मान्यताओं का सशक्त विरोध कर समय के अनुकूल नवीन, उचित और लोक-कल्याणकारी मान्यताओं का समर्थन करता है। उसके शुभ प्रयत्न में अपने युग के कल्याण के साथ भविष्य को भी प्रभावित करने की सामर्थ्य होती है। भारतीय पत्रकार अपनी देशभक्ति, निष्ठा, लगन, परिश्रम एवं अपूर्व त्याग के लिए विख्यात रहे हैं। प्रारंभ में स्वाधीनता के संघर्ष एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रचार करना ही उनका कर्तव्य था। पत्रकारिता अपने ऊँचे आदर्शों का पालन प्रारंभ से ही करती आ रही है। प्रारंभिक पत्रकारिता के पत्रकारों के आदर्श महान थे और साधन सीमित। मगर आज पत्रकारिता के साधन असीमित हैं और उनके आदर्श छोटे हो गए हैं।

पत्रकारिता के लिए अनेक पत्रकारों ने कष्ट एवं यातनाओं को सहते रहने के बावजूद अपने हौसले बुलन्द रखे एवं अपने कर्तव्य से डिगे नहीं। सदैव ऊँचे मानदंडों को अपनाकर पत्रकारिता निरंतर बढ़ती रही। जब मुद्रण कला का विकास भी नहीं हुआ था एवं बिजली जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं थी, तब भी उन्होंने अपने आदर्शों के लिए पत्रकारिता अपनाई। धन कमाना एवं नाम कमाना उनका मकसद नहीं था। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जब दीपक की मंद रोशनी में रात-रात भर वे लिखते रहे और सुबह घर-घर जाकर उन लिखे पत्रों को बांटते थे। यहाँ तक कि निरंतर काम करते करते उनकी आँखों की रोशनी जाती रही, लेकिन वे अपनी कलम को थामे रहे। मिसाल के तौर पर हिन्दी के पत्रकार आचार्य देवीदत्त शुक्ल, बाबूराव विष्णु पराड़कर, पंडित दुर्गा प्रसाद, पं. युगोल किशोर शुक्ल, गणेश शंकर विद्यार्थी, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, शिवपूजन सहाय, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवती चरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', छोटलाल मिश्र, दुर्गा प्रसाद मिश्र, सदानन्द मिश्र आदि ऐसे कई नाम हैं जिन्होंने आदर्श पत्रकारिता को अपनाया एवं समाज को नई दिशा दी। इन सब के बारे में ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे उनके अथक परिश्रम एवं निष्ठा का पता चलता है। पत्रकार केवल समाचार ही नहीं लिखता बल्कि समाज को एक नई दिशा भी देता है। सूर्य की प्रकाश की तरह लोगों को राह भी दिखाता है। पत्रकारिता का मतलब है- यथार्थ में जीना और सही रास्ता दिखाने के लिए आदर्शों को ठीक रखना और उसका वर्णन करना। समय और समाज के संदर्भ में सजग रहकर नागरिकों में दायित्वबोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं। असहायों को संबल, पीड़ितों को राहत, अज्ञानियों को ज्ञान देने वाली पत्रकारिता है जो 'समाज सेवा' का पर्याय है। समाज हित में सम्यक प्रकाशन को 'पत्रकारिता' कहा जा सकता है।

भारत में पत्रकारिता के विकास की स्थिति को देखा जाए तो हमें उस समय की स्थितियों पर भी लौटकर देखना होगा

जब ब्रिटिश सरकार की अखबारों के विरुद्ध दमन नीति लागू हुई थी। उस समय के कानून के अनुसार पत्र का मुद्रक, पत्र के अंत में अपना नाम प्रकाशित करेगा, संपादक और संपादक के घर का पता सरकार के सचिव को लिखकर भेजना होगा, रविवार को पत्र का प्रकाशन करना तथा सरकारी अधिकारी के निरीक्षण से पूर्व कोई पत्र प्रकाशित न किया जाना, एक आवश्यक नियम बना दिया गया था। सभी जानते हैं कि उन दिनों अंग्रेज सरकार की एक ही नीति थी। भारत के लोगों को जहाँ तक हो सके बर्बरता और अंधकार में रखा जाए और देशी जनता में ज्ञान फैलाने के किसी भी प्रयत्न का उन दिनों बड़ा कड़ा विरोध किया जाता था। इस प्रकार देखें तो भारतीय पत्रकारिता और पत्रकारों के सम्मुख बड़ी चुनौतियाँ रही हैं। किंतु कुछ समस्याएँ व चुनौतियाँ ऐसी हैं जिनसे, भारतीय भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं तथा पत्रकारों का विशेष रूप से सामना होता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सन् 1946 में 'हरिजन गाथा' में लिखा था कि 'पश्चिम की तरह पूर्व में भी अखबार लोगों की बाईबिल, कुरान, वेद, अवेस्ता और भगवद् गीता बनते जा रहे हैं। अखबार में जो कुछ छपता है, उसे लोग ईश्वरीय सत्य मानते हैं। इस कारण संपादकों और अन्य पत्रकारों का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है।'

अतीत में आरंभिक दौर में पत्रकार का काम कमोबेश शिक्षक जैसा ही रहा है। आदर्श-प्रेरणा उसकी मूलशक्ति रही। तब अध्ययन कार्य की तरह ही पत्रकारिता भी निष्ठावान व्यक्तियों को आकृष्ट करती थी। कारण तब ये हर ओर से घाटे का धंधा था। देश राष्ट्रीय जागरण के दौर से गुजर रहा था। वह विदेशी सत्ता का युग था, अंधविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के साथ साथ आदर्श भारत के नवनिर्माण के स्वप्न संजो रहा था। सच्चे और अच्छे पत्रकार का काम उस जागरण और संघर्ष को चुनौती के रूप में स्वीकारते हुए अपने पाठकों तक नए सपनों के साथ पहुँचना था। एक ऐसा काम जिसमें सभी ओर से जोखिम थे। जोखिम सरकार से टकराने की, रूढ़िवादी समाज से संघर्ष की और जोखिम आर्थिक तंगी तथा अभावों के अटूट साहचर्य की। इन तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अगर अधिकांश पत्रकार उन दिनों अपनी भूमिका ठीक से निभा पाते तो उसके मूल में भी वह आत्मिक शक्ति थी, जो उन्हें आदर्शों के लिए उत्सर्ग करने की भावना से मिलती थी। धीरे धीरे समाज भी पत्रकार की इस महत्वपूर्ण भूमिका को मान्यता देने लगा था। यह वह युग था जब पत्रकारिता के दुनिया में संपादक का व्यक्तित्व सर्वोपरि होता था। वह अपनी कलम की शक्ति से शासन तंत्र को दूर दृष्टि देता था। पत्रकार अज्ञेय जी के शब्दों में 'हिन्दी पत्रकारिता के आरंभिक दौर में हमारे पत्रकारों की जो प्रतिष्ठा थी, वह आज नहीं है। साधारण रूप से तो यह बात कही जा सकती है, अपवाद खोजने चले तो भी यही पायेंगे कि आज एक भी पत्रकार या संपादक वह सम्मान नहीं पाता, जो कि पचहत्तर वर्ष पहले की अधिकतर पत्रकारों को प्राप्त था। आज के संपादक-पत्रकार अगर इस अंतर पर विचार करें तो स्वीकार करने को बाध्य होंगे कि वे न के बराबर सम्मान पाते हैं बल्कि कम सम्मान के पात्र हैं- या कदाचित सम्मान के पात्र बिल्कुल नहीं हैं, जो पाते हैं वह पात्रता से नहीं, इतर कारणों से...। अप्रतिष्ठा का प्रमुख कारण यह है कि उनके पास मानदण्ड नहीं है। यहाँ हरिश्चन्द्र कालीन संपादक-पत्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी का समकालीन भी हमसे अच्छा था। उनके पास मानदण्ड थे, नैतिक आधार थे और स्पष्ट उद्देश्य भी। उनमें से कई ऐसे भी थे जिनके विचारों को हम दकियानूसी कहते तो भी उनका सम्मान करने को हम बाध्य होते थे, क्योंकि स्पष्ट नैतिक आधार पाकर वे उन पर अमल भी करते थे- वे चरित्रवान थे। आज विचार क्षेत्र में हम अग्रगामी भी कहला लें तो कर्म के नैतिक आधारों की अनुपस्थिति में निज रूप से हम चरित्रवान नहीं हैं, सम्मान के पात्र नहीं।'

तत्कालीन समय में समाचार निकालने वाले प्रेसवालों, मालिकों तथा प्रकाशकों को तरह तरह की सजा भुगतनी पड़ी थी। सन् 1776 में विलियम बोल्टसस ने एक प्रेस स्थापना करके समाचार पत्र निकालने की घोषणा की, परंतु उन्हें पहले कलकत्ता और फिर मद्रास से यूरोप वापस भेज दिया गया। इसके बाद 'हिक्की' ने पत्र निकाला। इसके कारण उन पर जुर्माना हुआ और जेल भी हुई परंतु वह पत्र निकालता रहा। सन् 1795 में 'मद्रास गजट' और 'इंडिया हेराल्ड' नामक पत्र निकाले गये, जिसके प्रकाशक हेमफ्रेज को गिरफ्तार कर इंग्लैंड भेजने का प्रयास किया गया, परंतु वह जहाज से भाग निकले। ऐसा माना जाता है कि लार्ड हेस्टिंग्स के कार्यकाल में भारतीय पत्रों को राहत थी, क्योंकि इसके पश्चात् सन् 1823 में सरकार ने एक नया कानून बनाकर यह अर्डिनैंस जारी कर दिया कि सरकारी लाइसेंस के बिना किसी तरह का प्रकाशन न किया जाए। 14 मार्च, 1823 को समाचार पत्र तथा प्रेस के बारे में जो कानून बने, वे पुरानी व्यवस्था से भी कठोर थे। बिना सरकारी स्वीकृति के उस क्षेत्र में इस प्रकार का कोई भी समाचार पत्र, पत्रिका या पुस्तक प्रकाशित करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया जिसमें सरकारी नीति या कार्य पद्धति के बारे में कोई सूचना या टिप्पणी की गई हो। यह भी आवश्यक कर दिया गया था कि जिस स्थान पर समाचार पत्र प्रकाशित होता हो, उसका विस्तृत विवरण और स्वरूप अंकित किया जाए। बिना लाइसेंस के कोई समाचार पत्र प्रकाशित करने पर प्रकाशक को चार सौ रुपये का जुर्माना अथवा चार महीने की कैद की सजा देने का प्रावधान था। इस कानून के विरुद्ध राजा राममोहन राय ने पिटीशन भी प्रस्तुत किया, लेकिन अनुकूल परिणाम न निकलने पर अप्रैल, 1823 को राजा साहब को 'मिरात-उल-अखबार' बन्द करना पड़ा। इस प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में पत्रकारों के लिए जेल के दरवाजे प्रायः खुले रहते थे, अतः वे ही लोग पत्रकारिता में आते थे जिनके हृदय में देश के लिए कुछ विशेष करने की तड़प होती। आजादी से पूर्व की पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बगावत को हवा देना था। सभी समाचार पत्रों का यही उद्देश्य

था। दूसरा उद्देश्य था लोगों में स्वतंत्रता के प्रति जागरूकता पैदा करना और समाज में विद्यमान कुरीतियों का विरोध। उस समय के अधिकांश नेता किसी न किसी रूप में अखबारों से जुड़े थे और अपनी बात जनता तक इसी माध्यम से पहुँचाते थे।

अंग्रेजों ने भारत में जब पत्रों को काफी स्वाधीनता दी, तब उज्जैन में श्री सूर्यनारायण व्यास ने मासिक 'विक्रम' का प्रकाशन शुरू किया। ग्वालियर में महाराजा ने किसी कारण से उनसे नाराज होकर 27 जुलाई, 1996 से उन्हें अपने घर में नजरबंद कर दिया। कहा गया कि उनके घर पर कुछ आपत्तिजनक दस्तावेज पाए गए, जिनसे राज्य के मंत्री की मानहानि होती थी। उन पर कोई मुकदमा भी नहीं चलाया गया कि वे अपने सफाई दे सकें। बाद में न्यायधीश श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी जी के निर्णय से उन पर से पाबंदी हटी। इंदौर राज्य ग्वालियर से अधिक उदारवादी समझा जाता था। परंतु जहाँ तक पत्रकारों का संबंध है, उनकी नीति में भी कोई कमी नहीं थी। श्री बैजनाथ महोदय की 'प्रजा मंडल' पत्रिका के प्रकाशन पर आपत्ति की चर्चा हो चुकी थी। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और श्री कालिका प्रसाद दीक्षित को भी अपने दैनिक समाचार पत्र अपनी उग्र टिप्पणियों के कारण बंद करना पड़ा। सन् 1941 में श्री सूर्यनारायण शर्मा, जो इंदौर के तथा इंदौर से अन्य स्थानों के पत्रों के संवाददाता थे, को मजदूर आन्दोलन को दबाने के लिए मई माह में प्रेस सेंसरशिप कानून तोड़ने के अपराध में गिरफ्तार किया गया। उनके घर पर श्री जवाहरलाल नेहरू का वह वक्तव्य मिला, जो उन्होंने गोरखपुर में उनपर लगाए आरोप के जवाब में कचहरी में दिया था। उस वक्तव्य का होना ही इंदौर सरकार की दृष्टि में इतना बड़ा अपराध था कि श्री सूर्यनारायण शर्मा को सोलह महीने की सजा सुनाई गई। सन् 1945 में फिर सरकार की ओर से सेंसरशिप का आदेश जारी हो गया, तो इस अपराध में उनपर मुकदमा चलाकर दो सौ रुपये का जुर्माना किया गया। सन् 1949 में, जब भारत स्वाधीन हो गया था और मध्य भारत राज्य-संघ बन चुका था, भोपाल किसी संघ में शामिल नहीं हुआ था, वहाँ विलीनीकरण का आन्दोलन हुआ और जब श्री शर्मा उस आन्दोलन की रिपोर्ट करने के लिए भोपाल गए तो भोपाल के नवाब द्वारा उन्हें राज्य से निर्वासित कर नरसिंहगढ़ राज्य की सीमा के अन्दर छोड़ दिया गया।

उज्जैन के निकट आगरा में जन्में श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर ने 'कर्मवीर' तथा 'मध्यभारत' तथा 'हिन्दी स्वराज्य' पत्र के द्वारा देशी राज्यों की जनता की जो सेवा की उसके कारण ब्रिटिश सरकार के दमन के शिकार वे हमेशा रहे। वे सन् 1930 में जेल चले गये। फिर सन् 1940 में गांधी जी के व्यक्तिगत सत्याग्रह का समाचार छापने के लिए उनपर मुकदमा चलाया गया तथा जुर्माना हुआ। फिर सन् 1942 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के सिलसिले में उन्हें गिरफ्तार कर नागपुर जेल में बंद कर दिया गया। जब वे जेल से छोड़े गए तो इतने अस्वस्थ थे कि 23 अक्टूबर, 1945 को उनका खंडवा में देहांत हो गया। देशी समाचार पत्रों पर पाबंदी लगाना राज्यों में आम बात थी। सन् 1947 में जब इंदौर में 'प्रजा मंडल' ने उत्तरदायी शासन की माँग के लिए आन्दोलन किया तो इंदौर में प्रकाशित होने वाले पत्रों पर तो प्रतिबंध था ही इंदौर से बाहर प्रकाशित कुछ पत्रों का इंदौर राज्य में प्रवेश वर्जित कर दिया गया। इनमें प्रमुख थे कानपुर का 'प्रताप', खंडवा का 'कर्मवीर' और कलकत्ता का 'मतवाला'। सन् 1947, 12 अप्रैल को श्री हरेन्द्र नाथ शर्मा ने इंदौर में दैनिक 'नया जमाना' का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पत्र बारह दिन ही निकल पाया था। आपत्तिजनक टिप्पणी के आरोप में शासन ने उसका प्रकाशन बंद कर दिया।

पूर्व पीढ़ी के पत्रकारों, संपादकों को देश का दुर्भाग्य दूर करने के लिए कई मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ा था। एक ओर विदेशी सरकार की अनुदारता और दमन नीति थी, दूसरी ओर हिन्दी भाषी समाज की विद्या-विच्छिन्न दीन दशा एवं उदासीनता थी। अपना अनेकमुखी अभाव था। शुद्ध राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर हिन्दी की प्रतिबंधित पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों ने सामाजिक आन्दोलनों को उचित महत्व प्रदान किया तथा उनके सामाजिक विषयों पर लेख और टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं। 'उचित वक्ताव' के संपादक पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने 12 मई, 1983 को देशी पत्रकारों, संपादकों को संबोधित करते हुए कहा था- 'देशी संपादकों सावधान! कहीं जेल का नाम सुनकर कर्तव्य विमुख मत हो जाना, यदि धर्म की रक्षा करते हुए, सरकार को सत्परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है, इससे मानहानि नहीं होती है। हाकिमों के जिन अन्याय आचरणों से सरकार पर सर्वसाधारण की अश्रद्धा हो सकती है उनका यथार्थ प्रतिवाद करने में जेल तो क्या दीपांतरित भी होना पड़े तो बड़ी बात है।'

वर्तमान हिन्दी पत्रकारिता में ऐसे नाम बहुत कम हैं जो पत्रकार होने के साथ साथ श्रेष्ठ लेखक भी हों, किंतु पुराने पत्रकार अधिकांशतः श्रेष्ठ गद्यकार और लेखक थे। बल्कि कई लेखक और पत्रकार नेता भी थे। राष्ट्रपिता गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बनारसी दास चतुर्वेदी, चिंतामणि घोष, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर माखनलालन चतुर्वेदी, अज्ञेय, रघुवीर सहाय तक कई नाम इसी श्रेणी में आते हैं। उस समय के सभी पत्रकार अध्ययनशील थे। जब तक उन्हें किसी विषय का पूरा ज्ञान न होता, वे उसे छूते तक नहीं थे। देश के अलग अलग हिस्सों में प्रकाशित होने वाले सभी अखबारों का अध्ययन था राष्ट्रभक्ति की ज्योति को प्रज्वलित करने में योगदान देना। तब यह नहीं सोचा जाता था कि इस खबर को छापने में हमारा क्या फायदा होगा। असल में उस समय की पत्रकारिता जनहित और समाजहित की पत्रकारिता थी। लेकिन देश आजाद होते ही पत्रकारिता के मुद्दे बदलने लगे। विधवा विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा आदि मुद्दों पर पहले ही काफी लिखा जा चुका था। देश के नवनिर्माण, भविष्य की रूपरेखा पर फिलहाल कुछ था नहीं, सो अखबार सुस्त पड़ते गए। उनके पास एक ही विषय था- उस समय की सरकार और सरकार की नीतियाँ। अखबार कब तक एक ही विषय पर लिखते। उनकी विशेष

भूमिका ही नहीं रह गई थी। फिर सरकार ही खबरों का मुख्य स्रोत थी। धीरे धीरे सामाजिक सरोकार की पत्रकारिता लुप्त होती गई। केवल राजनैतिक मुद्दे ही रह गए। जब कभी राजनीति विषयों का अभाव होता तो अखबार दूसरी खबरों पर गौर करते। इस प्रकार पत्रकारिता का उद्देश्य, अधिक से अधिक अखबार बेचना बन गया है, इसके लिए चाहे उन्हें कुछ भी करना पड़े। अखबारों के बीच शुरू हुई तीखी प्रतिद्वंद्विता के कारण पत्रकारों, संपादकों और मालिकों को पाठकों को आकर्षित करने के लिए नये नुस्खे अपनाने पड़े। मतलब यह हुआ कि एक-दूसरे की टोपी उछालने में सब जुड़ गए। इससे लोग आनन्द लेते रहे और अखबारों की बिक्री अधिक होती गई। आज भी पत्रों पर निगाह डालिए तो हमें कई ऐसे पत्र दिखेंगे जिनमें प्रकाशित सामग्री समाज को उत्थान की ओर नहीं बल्कि पतन की ओर ले जाती है। आज न तो किसी को अपनी छवि की परवाह है, न ही समाचार-पत्रों की छवि की, आज का उद्देश्य केवल अपना माल बेचना है।

संपादक या पत्रकार समाज के नेता से कम नहीं होता, बशर्ते वह अपने कर्तव्यों को भलीभाँति निभाए। वह प्रशंसा के पीछे नहीं भागे बल्कि निर्भिकता से अपने विचार प्रकट करे। इसके साथ साथ पत्रकारिता को व्यवसाय के रूप में वही लोग अपनाएँ जो ईमानदारी तथा निष्ठा से कार्य कर सकते हों और पत्रकारिता की पूर्ण समझ रखते हों। पत्रकार या संपादक को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि फलां लेखक, नेता, व्यक्ति किसी गुट या दल का है। जब किसी में यह अवगुण आ जाये तो उसे पत्रकारिता से संन्यास ले लेना चाहिए, अन्यथा आने वाला युग उन्हें कभी माफ नहीं करेगा। एक पत्रकार केवल सरकार, राजनीति या किसी दल विशेष का नहीं होता। वह समूचे समाज का प्रतिनिधि होता है। उसकी दो नहीं अनेक आँखें होती हैं, बल्कि उसके तो रोम रोम में आँखें होनी चाहिए। वह एक सफल नेता, एक निष्ठावान समाज सेवक, एक निर्भीक सिपाही होना चाहिए। उसमें दूर दृष्टि भी भरपूर होना चाहिए। कोई भी पत्रकार यदि ईमानदारी, लगन और निष्ठा से सतत प्रयत्नशील रहे, तो वह सफल पत्रकार हो सकता है।

पत्र-पत्रिकाएँ निकलती और बंद होती रहती हैं। किसी पत्र-पत्रिका का संपादक हो जाना ही महत्वपूर्ण नहीं होता, जितना महत्व इस बात का है कि आप इस पद को पाने या इस क्षेत्र में आने के पश्चात् उस उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे करते हैं। 'विशाल भारत' के संपादक बनारसी दास चतुर्वेदी के शब्दों में कहें तो 'उन्मुक्त कण्ठ ही हमारी सबसे मूल्यवान संपत्ति है।' यदि हम चाहते हैं कि हमारा कण्ठावरोध नहीं हो, हमें अपने अर्न्तमन की सुननी होगी। अन्यायों, अत्याचारों और अनाचारों के विरुद्ध डटकर संग्राम करना ही होगा। अब यह कहने की जरूरत नहीं है कि अखबारों के भविष्य पर लोकतंत्र का भविष्य टिका हुआ है और लोकतंत्र की शक्ति का आधार जनता की नैतिक शक्ति होती है। इसे आवाज देने का दायित्व अखबारों पर है। आर्थिक गुलामी के कगार पर खड़े इस देश को बचाने के लिए यह जरूरी है कि अखबार या मीडिया के कोई भी माध्यम जनता में अपनी विश्वसनीयता को बनाये रखें एवं अपने व्यावसायिक हितों और जनहित के बीच एक ईमानदार संतुलन कायम करें। इसी से ही राष्ट्रवाद की परिभाषा चरितार्थ होगी। मीडिया अपनी सही लक्ष्य को प्राप्त करेगी। और जनता प्रतिबद्धता के साथ राष्ट्रीयता के प्रति उद्बुद्ध होगी।

संदर्भ

1. 'इतिहास निर्माता पत्रकार', डॉ. अर्जुन तिवारी
2. 'पत्रकारिता के नए परिप्रेक्ष्य', राजकिशोर
3. 'पत्रकारिता : नया दौर, नये प्रतिमान', संतोष भारतीय
4. 'पत्र, पत्रकार और सरकार', काशीनाथ गोविन्द जोगलेकर
5. 'पत्रकारिता : परिवेश और प्रवृत्तियाँ', डॉ. पृथ्वीराज पाण्डेय
6. 'पत्रकारिता : मिशन से मीडिया तक', अखिलेश मिश्र
7. 'सत्ता, साहित्य और पत्रकारिता', डॉ. आलोक पाण्डेय
8. 'हिन्दी पत्रकारिता', डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र
9. 'हिन्दी पत्रकारिता का विकास', एन. सी. पंत
10. 'हिन्दी पत्रकारिता के नए प्रतिमान', बच्चन सिंह
11. 'हिन्दी पत्रकारिता : दशा और दिशा', संपा- जयप्रकाश भारती

रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना

डॉ.(श्रीमती) जयश्री शुक्ल

शासकीय जे.पी.वर्मा स्नातकोत्तर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
बिलासपुर (छ.ग.)

राष्ट्रीय काव्य परंपरा को समृद्ध करने वाले दिनकरजी हिन्दी के जागरूक कवि हैं। दिनकरजी के हृदय में एक ओर स्वदेश के प्रति अपार प्रेम है तो दूसरी ओर स्वदेश की सामाजिक विषमताओं के प्रति घोर विद्रोह की भावना भी वर्तमान है। दिनकरजी गांधी विचारधारा से प्रभावित हैं। आपने राजनीति जैसे जटिल और शुष्क विषय को अपने काव्य में बड़ी सरलता और सुंदरता से सुलझाया है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन दिनकरजी के संबंध में सत्य ही है :- “अतीत और वर्तमान पर एक सुंदर सेतु निर्माण करने वाले षिल्पी के रूप में दिनकरजी ने विशेष सफलता पाई है।”

दिनकर हिन्दी के निराले कवि हैं। दिनकर को यौवन और जीवन दोनों ही आकृष्ट करते हैं। दिनकर ने व्यक्तिवादी दृष्टि की सोच लेकर साहित्य रूपी मंच पर पदार्पण किया। ये छायावादी कम और प्रगतिवादी अधिक हैं। “कुरुक्षेत्र” में उनकी राष्ट्रीय चेतना की बहुमुखी अभिव्यक्ति हुई है। आरंभ से लेकर अंत तक उनका विकास एकरस और गतिशील है।

कल्पना की ऊँची उड़ान विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के कारण ‘दिनकर’ एकदम भिन्न श्रेणी के कवि हैं। छायावादी कवियों में सामाजिक चेतना बहुत छिपी हुई अस्पष्ट और अवगुंठित थी। ‘दिनकर’ की मस्ती और उमंग में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्रधान्य है। ‘हुंकार’ में कवि सामाजिक विषमताओं से बुरी तरह आहत है। वह अपनी कल्पना को बार-बार, पुकार कर कहता है कि यह दुनिया रहने लायक नहीं है, किसी और मोहक लोक में ले चलो, पर उसकी कल्पना चील की तरह मंडरा कर बारम्बार इस विसदृश व्याकुल जगत की ओर झपट्टा मारती है, ‘रसवंती’ में कवि इस विषय में कुछ कम मुखर है, वह सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होता है, परन्तु उसके चित्त में शान्ति नहीं है। उसका मन व्यक्त रूप में मस्ती और मौज का उपासक है किन्तु उसके भीतर अव्यक्त और अलक्षित रूप से सामाजिक चेतना का वेग है। वह समाज की चिन्ता छोड़ नहीं पाता। इन विविध वृत्तियों के संघर्ष से दिनकर के काव्य में वह प्रवाह उत्पन्न हुआ है, जो अन्य कवियों में नहीं मिलता है।”

द्वंद्व की स्पष्ट और दार्शनिक अभिव्यक्ति दिनकर की आदि से लेकर अंत तक की रचनाओं में विद्यमान है। यह द्वंद्व दिनकर के अतिरिक्त विशेषतः राष्ट्रीय कवियों में द्रष्टव्य होता है। इसके मूल में जाने पर हमें भारत के दो आधुनिक आंदोलनों की पृष्ठभूमि रखना होगा। गांधीजी के प्रवेश के पश्चात् भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए सक्रिय आंदोलन और दूसरी ओर भारतीय साहित्य में छायावाद का जन्म और उसकी प्रवृत्ति। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के बाद कवियों की राष्ट्रीय चेतना में दो युगों का व्यवधान है। एक युग नैतिकता के बोझ से दबे हुए जीवन में व्यापक अनुभूति और भावना के लोक के प्रति सशंक और भीरु, जीवन और प्रकृति के मधुर सौंदर्य की उपासना से उदासीन, इतिवृत्तात्मक साहित्य का निर्माणकर्ता और दूसरा युग निर्बाध जीवन के लिए तृपित और उसमें कूद जाने वाला, सौंदर्योपासक, गीति प्रधान, कल्पनाप्रिय, प्रकृति के स्निग्ध कोमल नारीत्व प्रधान रूप पर अनुरक्त। दिनकर की कृतियों में दो युगों के भिन्न-भिन्न स्वर ‘भारत-भारती’, ‘हिम किरीटनी’, ‘कुंकुम’ में स्पष्ट है। ‘भारत-भारती’ द्विवेदी युग की उत्कृष्ट प्रतिनिधि रचना है, शैली और भाव दोनों में और इन कवियों की रचनाओं में छायावाद और राष्ट्रीयता की सारणियां हिल-मिलकर कहीं तो एकाकार हो गई है, जैसे माखन लाल चतुर्वेदी में, कही समानांतर दौड़ती है, जैसे बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ में और कहीं एक-दूसरे पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए व्यग्र और संघर्षशील हैं, जैसे दिनकर में।

कवि की चेतना भावुकता के स्तर पर भी इतनी तीक्ष्ण है कि वह पलायन का पोषक नहीं बन सकता है। वह धरती पर ही रहना चाहता है और अपने अंतर्मन की चोखी कल्पना की मनोवृत्ति को पुकार कर कहता है -

“व्योम कुंजों की परी आये कल्पने।

भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं।

रूक न सकती मृत्तिका आकाश में,

शक्ति है तो आ बसा अलका यहीं॥

कुरुक्षेत्र में कवि की चेतना स्पष्ट और सबल बनकर आई है। ‘कुरुक्षेत्र’ की भूमिका में सामाजिक समस्याओं और

वर्तमान राजनीति का समाधान, उपस्थित किया गया है। गांधीवादी दर्शन के प्रतिनिधि यदि युधिष्ठिर है तो भीष्म वामपंथी राजनीतिज्ञों के प्रतिनिधि हैं, जो अहिंसा को कायरता का सुंदर रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। कवि का दृष्टिकोण ही भीष्म का दृष्टिकोण है। आत्मिक शक्तियों का प्रयोग आत्मिक युद्ध में ही किया जा सकता है, किन्तु दानवी शक्तियों के आगे आत्मिक शक्तियाँ निरुपाय और असमर्थ ही रहेंगी। ऐसी शक्तियों का दमन केवल भौतिक शक्तियों के द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार अहिंसा और हिंसा की प्रबंधन में पड़े हुए अपने देशवासियों के लिए कवि का यह दृष्टिकोण है।

नवीन न्यायाश्रित समाज के निर्माण करने के लिए संसार में चलते हुए शोषण और पूंजीवाद को खत्म करना आवश्यक है-

“वट की विषालता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो,
राह रोकता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिराएं तोड़ो, डालियां कतर दो।”

“कुरुक्षेत्र” की रचना में दिनकर जी का उद्देश्य रहा है, अनेक तत्कालीन जटिल समस्याएँ, जो उनके मस्तिष्क से थी उनको सुलझाना। इसके लिए इन्हें जो माध्यम चाहिए था वह उन्हें महाभारत की युद्धोपरान्त घटना कुरुक्षेत्र के रूप में मिल गया था। उन्हें अनुभव होने लगा कि युद्ध ही सभी समस्याओं की जड़ है। उन्होंने निवेदन में इसे स्वीकारते हुए लिखा है :-
“बात तो हुई कि पहले मुझे अशोक के निवेद ने आकर्षित किया, और ‘कलिंग विजय’ कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानों युद्ध की समस्या सारी समस्याओं की जड़ है।”

युद्ध विध्वंस भी करता है और निर्माण भी। मनुष्य अपने स्वभाव से युद्ध नहीं चाहता, किन्तु जटिल परिस्थितियों उसको युद्ध में भाग लेने के लिए विवश कर देती हैं। सामाजिक विषमता, अन्याय, अनीति और कुछ लोगों की स्वार्थ भावना के कारण युद्ध अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि अन्याय और अत्याचारी त्याग, क्षमा, तप और आत्मबल के सामने नहीं झुकते। वास्तविकता यह है कि आत्म का संग्राम आत्म से और देह का संग्राम देह से जीता जाता है। अतः अन्यायी के प्रति अहिंसा, सहिष्णुता, क्षमा और त्याग व्यर्थ है, उसके प्रति विद्रोह छेड़ना भी आवश्यक है। “हुंकार में कवि की राष्ट्रीय चेतना एक अन्य प्रकार की व्यापक सामाजिक चेतना का आकार धारण कर लेती है और वह अतीत के लिए रूदन मात्र नहीं रह जाता। कवि स्वयं ‘हुंकार’ के आमुख में इस बात को स्वीकार करता है कि उसका अतीत के प्रति रूदन एक प्रकार का पलायन ही था।

“समय टूँह की ओर सिसकते, मेरे गीत विकल धाए,
आज खोजते उन्हें बुलाते, वर्तमान के पाल आए।”

उनकी राजनीतिक विचारधारा धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती है। उसकी दृष्टि की व्यापकता का संकेत भी हमें मिल जाता है, जब वह भारत के जागरण को एशिया और समस्त शोषित संसार के जागरण में देखता है। ‘हुंकार’ में ‘भविष्य की आहट’ कविता में वह लिखते हैं :-

“पूर्व की छाती फटी किस रोर से ?
कालिमा भागी अचानक रात की।
खेलने हित शृंग पर चढ़कर लगी,
रश्मियाँ क्या एशिया के प्रातः की ?

वर्तमान समस्याओं का एक दूसरा पहलू भी है ‘हुंकार’ में कवि देखता है, आर्थिक वैषम्य और शोषण। एक ओर जहां दूध से श्वान नहलाए जाते हैं, वहां दूसरी ओर आदमी के बच्चे दूध-दूध चिल्लाते हैं। इस समस्या का सुलझाव भीख नहीं है और न ईश्वर से प्रार्थना। वह तो क्रांति है और इसीलिये वह बड़े ललकार भरे शब्दों में कहता है :-

“हटो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं।
दूध दूध ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।”

‘रसवंती’ कवि के हृदय में चलते द्वन्द के मधुर पक्ष की अस्थायी विजय है, अस्थायी इसलिए कि कवि की हृदय की जो ज्वाला है, वह उसे पूर्णतया आकाश का कल्पक नहीं बनने देती। वह स्वप्न देखता है किन्तु स्वप्नों पर भी धरती की धूमिल ाया जान पड़ती है। ‘सामधेनी’ में आकर कवि का दृष्टिकोण व्यापक हो गया है। उसे जान पड़ता है कि ‘मंजिल दूर नहीं है’ और क्रांति के लिए प्रतिफलन का शुभ मुहूर्त आया सा जान पड़ता है। वह क्रांति के पथिक को आश्वासन देता है। ‘सामधेनी’ में कवि के शब्दों में एक अद्भुत प्रवाह है और उस प्रवाह में उसके प्रगतिशील विचार निखर कर निकले हैं। अब वह कुछ और स्वप्न देखने लगता है -

“देश की मिट्टी का असि वृक्ष,
गान तरु जब होगा तैयार,
खिलेंगे अंगारों के वृक्ष,

फलेगी डालों में तलवार।”

“जिन कवि के पैर देश की जनता के आंदोलन के बीच में इस प्रकार जले हुए हों, उसमें सर्वदा प्रगति की शक्तियों का सहयोग मिलता रहेगा, इसमें संदेह नहीं होना चाहिए। कम से कम उसे अपने शब्दों को तो पूरा करना है ही, साहित्य इतिहास की बांदी नहीं, बल्कि उसकी सहायक है।

आज कवि के हृदय में धधकती आग का सबसे बड़ा कारण दूर हो गया है। आज उसकी माता का ‘तोरणद्वार’ सज गया है। उनका सपना सच बनकर खड़ा है। उन्होंने अपनी कविता के मर्म को बतलाते हुए अपनी आलोचना की पुस्तक ‘मिट्टी की ओर में लिखा है – ‘वास्तविकता के संघर्ष में असंतोष की जो चिंगारी उड़ती है, वही मेरा स्वप्न है। युगों के दर्पण में कविता कामिनी का अपार्थिव रूप देखकर शून्य में पंख खोलकर उड़ने की इच्छा जरूर हुई, परन्तु इसे देश की अपमानित मिट्टी का प्रभाव कहिए या मेरा अपना भाग्य दोष कि कल्पना के नंदनकानन में भी मिट्टी की गंध मेरा पीछा नहीं छोड़ सकी, जब तक सत्य का आधार नहीं मिला, स्वप्न के पैर डगमगाते रहे। यह कह दूँ तो मंतव्य अधिक स्पष्ट हो जाए कि देशमाता का शस्य श्यामल अंचल सिर्फ इसलिए सुंदर नहीं कि उसमें प्राकृतिक सुषमा बिखर रही है। वरन् इसीलिए कि उसके साथ भारतीय किसानों का श्रम उनकी आशा और अभिलाशाएं लिपटी हुई है।

भाव, भाषा और कवित्व की दृष्टि से दिनकर आधुनिक युग के गिने चुने कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त के पश्चात् आपका नाम गर्वपूर्वक लिया जा सकता है। आप एक क्रांतिकारी युग प्रवर्तक कवि हैं। पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने की प्रेरणा आपके काव्य ने प्रदान की।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य, उद्भव और विकास, आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ क्रमांक - 251
2. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य : चंद्रवती सिंह, पृष्ठ क्रमांक -62
3. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य : चंद्रवती सिंह, पृष्ठ क्रमांक -64
4. मिट्टी की ओर, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ क्रमांक -74
5. मिट्टी की ओर, श्री रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ क्रमांक -56

राष्ट्रवाद और भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता

डॉ० मणिकान्त ठाकुर

manikantthakur785@gmail.com

‘राष्ट्र’ शब्द के परंपरागत अर्थ पर बात आरंभ करने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्राचीन भारत ‘एक सरकार, एक जाति’ के अर्थ में राष्ट्र कभी नहीं था। भारत के प्राचीनतम साहित्य वैदिक साहित्य यजुर्वेद और अथर्ववेद में राष्ट्र शब्द का उल्लेख मिलता है। संस्कृत के ‘राजू’ या ‘रासू’ धातु में ‘ष्ट्रान्’ प्रत्यय के संयोग होने से ‘राष्ट्र’ शब्द की उत्पत्ति हुई है। वह भूखंड जिसका अपना अलग अस्तित्व हो साथ ही जो विदेशियों से पदाक्रांत न हो और जिसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता हो, वह राष्ट्र है। वैदिक साहित्य में साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य और महाराज्य शब्द प्रयुक्त हुए हैं किंतु राष्ट्र का आशय उस विशेष भूखंड से है जहाँ के निवासी एक संस्कृत के सूत्र से आबद्ध हैं। जहाँ के निवासियों में अपने राष्ट्र के प्राचीन पुरुषों, साहित्यिकारों के प्रति श्रद्धा, स्नेह और सहानुभूति के भाव विद्यमान हैं। ‘संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ’ में ‘राष्ट्र’ शब्द का अर्थ राज्य, देश, साम्राज्य, मुल्क, प्रजा, जाति आदि माना गया है। रामचन्द्र वर्मा ने ‘मानक हिन्दी कोश’ में राष्ट्र शब्द का अर्थ इस प्रकार बतलाया है- ‘किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक भाषा, एक से रीति-रिवाज तथा एक ही विचारधारा होती है। राष्ट्र (Nation) किसी एक शासन में रहने वाले सब लोगों का समूह है।’ राष्ट्र शब्द का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। इस शब्द में आर्यों की सम्पूर्ण भावना के साथ देश, राज्य, जाति और संस्कृति की स्मृति सभी कुछ सम्मिलित हैं ऋग्वेद में मातृभूमि की सेवा का स्पष्ट वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में भूमि को माता और उसके निवासियों को पुत्र के रूप में बताया गया है- “माता भूमिः पुत्रे अहं पश्थिव्याः पर्जन्यः पिता स उन पिपर्तु।”¹ अर्थात् (हे भूमि। तुम हम सबकी माता हो और हम तुम्हारे पुत्र हैं। जीवनदाता पर्जन्य हम सबकी रक्षा करें) अथर्ववेद में अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए तत्पर रहकर विभिन्न कष्टों को सहन करने के लिए कहा गया है-

“यद्वदामि मधुमत्त द्वदामि यदीक्षे यद् वनन्ति मा।

त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान हन्मि दोधतः।”²

(अपनी मातृभूमि के लिए जो कहता हूँ वह उसकी भलाई की बात है, जो देखता हूँ वह उसकी सहायता के लिए है। मैं ज्योतिपूर्ण, तेजस्वी और बुद्धि संपन्न होकर मातृभूमि का दोहन करने वाले शत्रुओं का विनाश करता हूँ।)

वेदों में मातृभूमि के संबंध में इसी तरह की भावनाएं अनेक स्थानों पर मिलती हैं। ऋग्वेद में एक राष्ट्र के लोगों में एक प्रकार की गति, मति और वाणी के लिए प्रार्थना की गई है- ‘संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनासि जायताम्। / देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते।।’³ (हम सबकी गति एक ही प्रकार की हो, हम सभी एक साथ चलें, एक प्रकार की वाणी बोलें, हम सबके मन में एक ही प्रकार के भाव उत्पन्न हों।) इस प्रार्थना के साथ वसुधैवकुटुंबकम् और सभी एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें इसकी कामना प्रकट की गई है- “मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे”⁴ किन्तु शत्रु का विनाश करने, अपनी धरती को स्वतंत्र रखने और जन-जन की उन्नति और रक्षा का भार प्रत्येक आर्य जन पर है-

“अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।

अभीषास्मि विश्वाषा शामांशां विषासहिः।।”⁵

‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’ की भावना भारत में आरंभ से ही मिलती है। विष्णु पुराण में कहा गया है- ‘गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तुते भारतभूमि भागे, स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।’⁶ (भारत भूमि में जन्म लेनेवाले धन्य हैं। देवता भी उनका गुणगान करते हैं। भारत ऐसी भूमि है जहाँ जन्म लेने से स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त हो जाते हैं। भारतवासी स्वर्ग के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली हैं, भारतीयों के लिए यह भूमि जन्मभूमि, पुण्यभूमि, मातृभूमि तथा स्वर्गभूमि सभी कुछ है।)

पश्चिमी विचारक स्टुअर्ट मिल ने राष्ट्रीयता के लिए चार तत्वों की प्रधानता आवश्यक माना है-पूर्वजों की एकता, भौगोलिक एकता, भाषा और जाति की एकता तथा राजनीतिक लक्ष्य की एकता। इस आधार पर यदि प्राचीन आर्यावर्त की राष्ट्रीय एकता का परीक्षण किया जाए तो निष्कर्ष नकारात्मक आएगा, क्योंकि जिस विस्तृत भू-खण्ड को आर्यावर्त कहा गया उसमें

पूर्वजों के रक्त की शुद्धता असंभव थी। आर्यावर्त की वंश परंपरा कई तरह के रक्त सम्मिश्रणों से समृद्ध हुई। साथ ही आर्यावर्त अनेक जनपदों में विभाजित था। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार “वैदिक काल से जनपद उन जनों के निवास थे जो रक्त संबंध के आधार पर संबद्ध थे। प्रत्येक जन व कबीले (Tribes) के सदस्य वही लोग होते थे जो परस्पर एक-दूसरे के संबंधी थे।”⁷ वैदिक काल के अंतिम समय में सोलह प्रबल महाजनपदों की व्यवस्था थी। छोटे-छोटे राज्य बड़े होने लगे थे। शतपथ व ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथों में ऐसे अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था।

सामंत युग में जनपद वर्ण-व्यवस्था पर आधारित थे। इस वर्ण-व्यवस्था में कबीलों का आधार रक्त संबंध नहीं था। इस तरह सामंती युग में एक तरह से जातियों का गठन होने लगा था। स्वाभाविक रूप से ये जातियाँ भिन्न थीं। प्राचीन भारतवर्ष की एक भौगोलिक सीमा रेखा थी अवश्य किन्तु वह राष्ट्रीयता के आधुनिक अर्थानुसार ठोस नहीं थी। वह सीमा रेखा सांस्कृतिक एकता को अधिक दर्शाती है। मोक्ष प्राप्ति के लिए देश के चार कोनों में चार तीर्थ स्थानों की स्थापना इसी एकता की सूचक है संभवतः इसी सांस्कृतिक एकता के कारण साम्राज्यावाद का आरंभिक विरोध सांस्कृतिक स्तर पर हुआ।

जहाँ तक भाषा की एकता का प्रश्न है तो जितनी भाषागत भिन्नता आधुनिक भारत में है उतनी प्राचीन काल में नहीं थी। विभिन्न ग्राम, विश्व, जन और राष्ट्र के रूप में आर्यों के व्यवस्थित होने के पूर्व निश्चय ही यहाँ के मूल निवासियों की एक भाषा रही होगी। आर्यों की वैदिक और लौकिक संस्कृत के पश्चात् भारत की भाषागत भिन्नता बढ़ी। अतः राष्ट्रीयता की संभावना, भाषा की एकता के स्तर पर प्राचीन भारत में अधिक बनती है।

हैंस कोन ने ‘आइडिया ऑफ नेशनलिज़्म’ में राष्ट्रवाद की भावना को अठारहवीं सदी से अधिक पुराना नहीं माना है उनके अनुसार, “जहाँ तक हम समझते हैं राष्ट्रवाद अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से अधिक पुराना नहीं है।”⁸ अठारहवीं सदी के पहले यूरोप छोटे-छोटे भूखंडों में विभाजित था। ये छोटे-छोटे राज्य प्राचीन भारतवर्ष के जनपदों की भाँति स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होते थे, किन्तु भारतवर्ष के ‘राजसूय यज्ञों’ एवं गुप्त साम्राज्य के शासनान्तर्गत भारतवर्ष के विस्तृत भूखंडों का एक ही शक्ति द्वारा संचालन जैसी प्रवृत्ति यूरोपीय इतिहास में नहीं मिलती है। इसीलिए पश्चिमी विद्वानों द्वारा राष्ट्रवाद का सूत्रपात अठारहवीं सदी में फ्रांस की क्रांति (1789) से माना गया, ‘राष्ट्रवाद फ्रांसीसी क्रांति की उत्पत्ति है।’ पश्चिम में जातियों का नए रूप में गठन पूँजीवाद से आरंभ हुआ। इस तरह हम सामंती युग की जातियों को छोटी-छोटी इकाइयाँ मान सकते हैं तथा यह भी सत्य है कि पूँजीवादी युग में उनका ‘महाजाति’ का रूप बना। यूरोप के अपने इन्हीं लक्षणों के आधार पर पश्चात्य समाजशास्त्रियों ने ‘राष्ट्र’ की उत्पत्ति की परिभाषा दी, किन्तु भारत जैसे देशों में सभी लघु जातियाँ अपने को ‘महाजाति’ में गठित न कर सकीं। स्तालिन ने ऑस्ट्रिया, हंगरी और रूस के राज्यों के निर्माण के संदर्भ में लिखा है, “इन देशों में राज्य निर्माण की विशेष प्रक्रिया का कारण यह था कि सामंतवाद का पूरी तरह खात्मा न हुआ था, पूँजीवादी विकास कमजोर था और जो लघुजातियाँ पीछे ठेल दी गई थीं, वे आर्थिक रूप से सुसंबद्ध महाजातियों के रूप में अपने को सुगठित न कर सकी थीं।”⁹

भारत के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। भारत के संदर्भ में एक और विशिष्ट बात यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था के आरंभ से महाजातियों के गठन के पहले एक विशिष्ट भौगोलिक खंड में अद्भुत सांस्कृतिक एकता थी। धर्म और संस्कृति के तन्तु संपूर्ण भारतवर्ष में फैले हुए थे। सनातन धर्म में आस्था रखनेवालों की छुआछूत की भावना संपूर्ण देश में एक-सी थी। इसी सांस्कृतिक एकता के तहत देश के चार कोनों में चार महातीर्थ स्थान स्थापित किए गए। रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार और पूजा-अर्चना पद्धति में बहुत हद तक समानता थी। स्टुअर्ट मिल ने राष्ट्रवाद के विकास से भाषा की एकता को जोड़ा है। यह तत्त्व संभवतः प्राचीन भारतवर्ष में अधिक था। दीर्घ काल तक संस्कृत साहित्य की भाषा बनी रही। प्राकृतों-अपभ्रंशों से होता हुआ आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास साहित्यिक क्षेत्र में ब्रजभाषा के वर्चस्व का साक्षी रहा। औपनिवेशिक काल में 1835 ई. के बाद भारतीय भाषाओं के विकास का प्रश्न अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से निरन्तर उलझता गया।

आधुनिक काल में राष्ट्रवाद के चतुर्थ गुण राजनीतिक लक्ष्य की एकता निस्सन्देह प्राचीन भारतवर्ष में विभिन्न प्रकार की थी। एक राजनीतिक शक्ति के अन्तर्गत संपूर्ण आर्यावर्त के गठन का प्रयास यत्र-तत्र मिलता है। ‘रामायण’ ‘महाभारत’ के काल में विजयी राजा पराजित राजा को हार स्वीकार करवाकर छोड़ देते थे। विजयी राजा के किसी युद्ध में प्रवृत्त होने और पराजित राजा को कहे जाने पर वह ससैन्य विजयी राजा की सहायताार्थ आकर उपस्थित होते थे। इसके पश्चात् आचार्य चाणक्य की अवधारणा को प्रस्तुत किया जा सकता है। गुप्त काल में भारतवर्ष का बृहद अंश गुप्त सम्राटों के अधीन था किन्तु मुख्य तौर पर भारतवासियों का एक राजनीतिक लक्ष्य नहीं रहा। पर जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि भारत की राष्ट्रवादी भावना के मूल में सांस्कृतिक कारण अधिक है। राम और कृष्ण के प्रतीक संपूर्ण देश में स्वीकृत थे।

संस्कृति और धर्म के आधार पर भारत को निस्सन्देह एक राष्ट्र कहा जा सकता है। अगर अठारहवीं सदी के बहुत पहले भारत को सांस्कृतिक राष्ट्र कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। और यही कारण है कि सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के पश्चात् औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध राष्ट्रवाद का उदय सांस्कृतिक प्रतिरोध के रूप में सामने आया।

19 वीं सदी के पाँचवें दशक अर्थात् 1850 के आस-पास भारत पूरी तरह अंग्रेजों के अधीन हो चुका था। अंग्रेजी शिक्षा के जरिए भारतीय जन को आर्थिक शैक्षिक और सांस्कृतिक स्तरों पर पराधीन करने की कोशिश की जा रही थी। अंग्रेजी पढ़ा-लिखा भारतीय समाज शेष समाज से अपनी अलग पहचान बनाने के लिए सचेष्ट था। भारतीय बाजारों में विदेशी वस्तुओं

की भरमार थी। कल-कारखाने लग नहीं रहे थे। भारतीय कुटीर उद्योग दम तोड़ रहा था। बेरोजगारी चरम पर थी। भारतीय समाज में गहरी खाई पैदा हो गई थी। बाल-विवाह चरम पर था।

हिंदु-मुसलमानों में विभेद पैदा किया जा रहा था। शिक्षा के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार हो रहा था। ईसाई मिशनरियां धर्म परिवर्तन में सक्रिय थीं। स्त्री शिक्षा का अभाव था। कामकाज की भाषा उर्दू और फारसी थी। एक वर्ग हिंदी को बढ़ावा देने के लिए प्रयासशील था। दूसरी तरफ सरकार विचार-अभिव्यक्ति को कुचलने के लिए तरह-तरह के उपाय कर रही थी। 1878 ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू किया गया। लार्ड ने जनता के विचारों की स्वतंत्रता को सीमित करने के लिए अखबारों और मुद्रण-यंत्रों पर रोक लगाई। इसे गलाघोटू कानून का नाम दिया गया। देश में ब्रह्म समाज, आर्य समाज और प्रार्थना समाज जैसी सामाजिक संस्थाओं द्वारा सामाजिक सुधार के कार्य होते रहे। भारतीयता को एक सूत्र में बांधने के लिए हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान के नारे लगाए जाते रहे। ऐसी विषम परिस्थितियों में हिंदी सामचारपत्रों ने विभिन्न स्तरों पर जनता में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाचारपत्र लोगों के भीतर वैचारिक चेतना जगाने में सक्रिय थे। यही नवजागरण का काल था। यही मिशन था। इस युग की पत्रकारिता का नेतृत्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट, केशवराम भट्ट, रामदीन सिंह, लाला श्रीनिवास दास जैसे उद्भट संपादकों ने किया।

इस युग की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ साहित्यिक थीं लेकिन युग-सत्य को अभिव्यक्त कर रही थीं। मुख्य उद्देश्य, राष्ट्रीय भावना जगाना, समाज-सुधार, हिंदी भाषा और साहित्य का उन्नयन, आजादी प्राप्त करना और लोगों के भीतर स्वदेशी चेतना जगाना था। भारतेन्दु ने राष्ट्रीय आंदोलन, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, अपनी भाषा का सम्मान, पराधीनता से मुक्ति के लिए संघर्ष का संदेश दिया जिसे महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन ने अमली जामा पहनाया।

इसी समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कविवचन सुधा' (1868) नामक पत्रिका निकाली 'कविवचन सुधा' ने सामाजिक बुराईयों पर प्रहार किया। जनता में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। भारत की स्वतंत्रता का स्वर मुखरित किया। नारी-शिक्षा को बढ़ावा देकर समाज में स्त्री को उचित स्थान दिलाने का प्रयास किया। इस पत्रिका ने भाषा के स्तर पर भी क्रांतिकारी कार्य किया। खड़ी बोली हिंदी को व्यवस्थित रूप देने की कोशिश की इसके माध्यम से हिंदी में हास्य व्यंग्य के निबंधों का प्रणयन हुआ। हिंदी भाषा को जन-जन तक पहुँचाने और उसके पक्ष में जनमत तैयार करने का कार्य भी हुआ। हिंदी को राजकाज की भाषा बनाने में इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, भ्रूण-हत्या तथा लड़के-लड़कियों में भेद जैसी सामाजिक बुराईयों पर जमकर प्रहार किया। इस पत्रिका ने साहित्यिक के साथ-साथ राजनीतिक चेतना जगाने का भी कार्य किया। अंग्रेजी सत्ता का पूर्ण विरोध कर परतंत्रता दूर करने का आह्वान किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने, देश में कल-कारखाने लगाने, कुटीर उद्योग विकसित करने, बच्चों को आधुनिक शिक्षा देने और नारी-जगत के विकास पर जोर दिया।

भारतेन्दु ने 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' शुरू की जिसने बाद में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' का रूप ग्रहण किया। इस पत्रिका का प्रधान लक्ष्य साहित्य, समाज और देश का हित-चिंतन था। भारतेन्दु भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी आस्था रखते थे। वे पुरातन रूढ़ियों का त्याग करने को कहते थे लेकिन भारतीय संस्कृति की वकालत करते थे। उन्होंने धर्म को अंधविश्वास मानने वाले पाश्चात्य शिक्षा संपन्न लोगों पर व्यंग्य करते हुए लिखा था- "हमें यह देख कर खेद होता है कि हिंदू समाज में हिंदू धर्म का पतन हो रहा है। ब्राह्मणों ने औरंगजेब का स्थान ग्रहण कर लिया है। हिंदू धर्म अन्य धर्मों से श्रेष्ठ है ... परन्तु हमारे प्रबुद्ध मित्र इसे अंधविश्वास की संज्ञा देते हैं।"¹⁰ भारतेन्दु ने इस पत्रिका के माध्यम से समाज को प्रगतिशील दृष्टि देने का प्रयास किया था। वे रूढ़िवाद के विरोधी थे। एक जगह लिखते हैं, 'उत्तर पश्चिम प्रदेश की जनता पुरातनपंथी है। वह किसी भी नयी विचारधारा को स्वीकार नहीं करना चाहती चाहे वे सामाजिक, नैतिक, बौद्धिक प्रगति क्यों न हो। इसलिए उनकी प्रगति बड़ी धीमी है।'

भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य को अभिनव रूप दिया। वे आधुनिक हिन्दी शैली के प्रवर्तक थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1874 में 'बालाबोधिनी' नाम से एक नई पत्रिका प्रकाशित की। इसका उद्देश्य नारी शक्ति का विकास और उसे समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाना था। स्त्रियों को आधुनिक शिक्षा, युग के साथ चलने की प्रेरणा देने और पुरुषों के बराबर स्थान दिलाने के संकल्प के साथ इस पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। नारी समाज की यह पहली पत्रिका थी। पहले अंक के सम्पादकीय में भारतेन्दु ने लिखा- "मेरी प्यारी बहनों। मैं एक तुम्हारी नयी बहन बाला बोधिनी आज तुम लोगों से मिलने आयी हूँ और मेरी इच्छा है कि तुम लोगों से हर महीने में एक बार मिलूँ देखो मैं तुम लोगों से अवस्था में कितनी छोटी हूँ और इस नाते से मैं तुम सबकी छोटी बहन हूँ पर मैं तुम लोगों से हिलमिल कर सहेलियाँ और संगियों की भाँति रहना चाहती हूँ, इसलिए मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर और आंचल खोल कर यह मांगती हूँ कि मैं जो कभी कोई भली-बुरी कड़ी, नरम कहनी, अनकहनी कहूँ उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी...।"¹¹ इस पत्रिका का उद्देश्य नारी चरित्र का निर्माण करना और उसे आधुनिक दृष्टि प्रदान करना था। लेकिन यह सब भारतीय सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखते हुए ही संभव था।

पहली सितंबर 1877 को प्रयाग से प्रकाशित 'हिंदी प्रदीप' (सं. बालकृष्ण भट्ट) का मूलमंत्र था, 'निज भाषा उन्नति

अहै सब उन्नति के मूल'। इस मासिक ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट का इतना तीखा विरोध किया कि 19 जनवरी 1882 को उसे समाप्त कर दिया गया। यह हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का समर्थक था। 'हिन्दी प्रदीप' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग से 18 अप्रैल 1909 में सरकारी कामकाज के लिए देवनागरी लिपि को मान्यता मिल गई।

यह पत्र नारी-शिक्षा, बाल-विवाह जैसी बुराईयों पर प्रहार के साथ ही राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के प्रति भी सजग रहा। एक निबंध में लिखा गया 'ए देशी भाईयों बहुत सो चुके, अब जागो और सावधान हो अपने को संभालने का यत्न करो। दूसरों के ही भरोसे मत फूले रहो अपने आप कुछ करने का मन करो।' 'बिहार बन्धु' ने बिहार के शिक्षण संस्था और कचहरियों में हिन्दी लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तो 'भारत-मित्र' (लाहौर) ने सनातन धर्म और हिन्दी के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान दिया। 17 मई 1878 'भारत मित्र' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। यह पहले पाक्षिक, फिर साप्ताहिक और तदंतर दैनिक हुआ। इस राजनैतिक पत्र ने स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन और उसके उपयोग पर बल देने के साथ ही विदेशी वस्तुओं का घोर विरोध किया। इसकी चेतना बहुत ही प्रखर थी। यह देश का सर्वांगीण विकास चाहता था। यह समाचार पत्रों की स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता का समर्थक एवं समाज में प्रचलित सामाजिक बुराईयों का प्रबल विरोधी था। जनता के दुख-दर्द को दूर करने में सक्रिय भूमिका निभा रहा था। राष्ट्रीय चेतना का प्रमुख पत्र था।

साप्ताहिक 'सार सुधानिधि' (13 जनवरी 1879) कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला प्रमुख पत्र था। इसने जनता में राजनीतिक चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। इस पत्र का विचार था कि भारतीयों में प्रगतिशीलता के अभाव के कारण मुसलमानों का अत्याचार और शासकों में अहंकार की प्रवृत्ति मुख्य रूप से है। इसके अलावा अंग्रेजी शासन काल में काले-गोरे के बीच भेद भी एक कारण है। चौथा कारण है उच्च शिक्षा का अभाव, पांचवां मातृभाषा की अवनति और छठा है समाचार पत्रों की कमी। इस समाचार पत्र में सभी मोर्चों पर अपनी कारगर भूमिका निभाई। इस समाचार पत्र की 'जातीय चेतना बड़ी प्रबल थी। उसका विचार था कि राजनीतिक चेतना के विकास से देश की प्रगति होगी। देश में अधिक-से-अधिक राजनीतिक चर्चा होनी चाहिए। सरकार को जनता का विचार सुनना चाहिए। जो सरकार जनता की नहीं सुनती वह सरकार बहुत दिनों तक नहीं रहती।' इस प्रकार 'सार सुधानिधि' के समस्त राजनीतिक प्रयासों में जातीय प्रगतिशीलता का स्वर काफी स्पष्ट है।

'उचित वक्ता' राष्ट्रीय चेतना की बातें बड़ी निर्भीकता से कहता था और सरकार का विरोध करने में जरा भी नहीं हिचकता था। देश की निर्धनता और जनता के बेइंतहां शोषण के लिए इस पत्र ने अंग्रेजी सरकार को दोषी ठहराया। इस समाचार पत्र ने लोगों के अंदर स्वदेशी भावना जगाने और आजादी की लड़ाई के लिए तैयार करने में बड़ा योगदान दिया था।

इस काल के समाचार पत्रों के सम्पादकों में एक साथ ऊँचा आदर्श, दृढ़ संकल्प और प्रबल इच्छा शक्ति थी। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में, "राजनीतिक वातावरण में रूढ़िप्रियता, अंध परम्पराप्रियता, शासकों की खुशामद और अपनी सभ्यता के प्रति हीनभावना नैली हुई थी, इसे देखते हुए हिन्दी पत्रकारों की लेखन शैली और भी चमक उठती है। उनमें पर्याप्त साहस था और उस साहस का उपयोग वे देश और विदेश संबंधी समस्याओं के विवेचन में करते थे। ... अकाल, महामारी, टैक्स, किसानों की निर्धनता, स्वदेशी आंदोलन पर उन्होंने सीधे सरल ढंग से निबंध एवं कविताएं लिखी।"¹²

इस प्रकार संपूर्ण भारतीय समाज की तत्कालीन समस्याओं को भारतेन्दुकालीन समाचार पत्रों ने बड़ी प्रमुखता से उठाया था। चाहे देवोत्तर संपत्ति का प्रश्न हो चाहे गो-वध का, चाहे किसानों की दीनता की बात हो अथवा साम्प्रदायिकता की- इन सारे सवाल को बेबाकी से उठाया गया और भारतीय समाज के उत्थान के लिए सतत् प्रयत्न होता रहा। एक तरफ उन्हें भारतीय समाज की कूप-मंडूक बातें पसंद नहीं थी तो अंग्रेजियत भी नापसंद थी। भारतेन्दु चाहते थे कि 'अति का परित्याग कर समन्वयात्मक बुद्धि ग्रहण करके और साथ ही भारतीयता को बनाये रखते हुए देश राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, औद्योगिक आदि समस्त क्षेत्र में उन्नति प्राप्त करे।

संदर्भ

1. अथर्ववेद (12/1/12)
2. अथर्ववेद, (12/1/58)
3. ऋग्वेद, (36/16)
4. ऋग्वेद, (36/18)
5. अथर्ववेद, (12/1/54)
6. विष्णुपुराण, (2/3/25)
7. भाषा और समाज: डॉ० रामविलास शर्मा, पृ, 238
8. दी आईडिया ऑफ नेशनलिज्म: हैस कोन, भूमिका से उद्धृत पृ. 7
9. भाषा और समाज: डॉ० रामविलास शर्मा, पृ०,240
10. हिन्दी जगत और विशिष्ट पत्रकारिता: संपादक डॉ० अर्जुन तिवारी, पृ०,69
11. वही, पृ० 69
12. वही, पृ० 71

भारतीय राष्ट्रवाद बनाम वैश्विक राष्ट्रवाद : उदय एवं परिणति

डॉ. बीरेन्द्र सिंह

जीसस एण्ड मेरी कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

शुरू से ही विद्वानों के बीच राष्ट्रवाद की अवधारणा और परिभाषा को लेकर विवाद रहा है। कारण स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद का उदय हर देश में अपनी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ है। निश्चित तौर पर ऐसी स्थिति के पाश्चात्य राष्ट्रवाद की संकल्पना को आधार बनाकर भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या नहीं की जा सकती है। राज्य, राष्ट्र और राष्ट्रीयता में अंतर है। अर्थ की दृष्टि से राज्य राष्ट्र के समीप है। वस्तुतः जब राष्ट्रीयता राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर अपना एक पृथक् राज्य स्थापित कर लेती है, तो वह राष्ट्र कहलाती है। राष्ट्र की अवधारणा में जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, भाषा आदि घटकों को सम्मिलित किया जा सकता है। बावजूद इसके राष्ट्र के स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। बाबू गुलाब राय के अनुसार- 'राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। उसमें निवासियों के राजनीतिक हितों की एकध्वेता और शासन की एकसूत्रता उनमें संगठन स्थिर रखने के लिए आवश्यक है।' राष्ट्र की व्याख्या करने वाले पाश्चात्य विद्वान अर्नेस्ट रेनन के अनुसार- 'राष्ट्र एक आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है।' दूसरी ओर जोसेफ स्टालिन का मानना है कि- 'राष्ट्र ऐतिहासिक तौर पर गठित लोगों का स्थिर समुदाय है जो एक आम भाषा, क्षेत्र, आर्थिक जीवन और मनोवैज्ञानिक बनावट के आधार पर बनता है, जो एक आम संस्कृति के रूप में उभर कर सामने आता है।' पाश्चात्य एवं भारतीय राष्ट्रवाद को समझने में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।

कई इतिहासकारों की इस बात से सहमति होगी कि एक विचारधारा और विमर्श के रूप में राष्ट्रवाद अठारहवीं सदी के बाद अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और उसके कुछ समय उपरान्त लैटिन अमेरिका में प्रचलित हुआ। हैस कोहन का भी मानना है कि- 'जैसा कि हम समझते हैं राष्ट्रवाद अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध से अधिक पुराना नहीं है।' पाश्चात्य जगत में जिन घटनाओं को राष्ट्रवाद के आगमन का सूचक माना जाता है, उनमें पोलैण्ड का विभाजन (1775), अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा (1776), फ्रेंच क्रांति की शुरुआत एवं उसका द्वितीय चरण (1789 और 1792) तथा जोहन फिचते का जर्मन राष्ट्र को भाषण (1887) शामिल है। यूरोपीय देशों में आपसी प्रतिस्पर्धा, संधि एवं शक्ति के जाल से राष्ट्रवाद का उदय होता है। पश्चिम में अमेरिका और यूरोप में क्रांतिकारी आंदोलन के अलग-अलग कई कारण थे जिसके नलस्वरूप तानाशाही का एक जन-राष्ट्रीय राज्य में नाटकीय रूपांतरण देखने को मिलता है। हैस कोहन यूरोप में राष्ट्रवाद के उदय में फ्रेंच क्रांति की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं- '1792 के बाद फ्रेंच क्रांति ने उसके तिरंगे, मारसियाएसे, सभाएँ, शपथ, शोभायात्राएँ और त्योहारों आदि के साथ देशभक्तिपूर्ण आदर्शों को पूरे यूरोप में फैलाना शुरू किया और इस संदर्भ में नेपोलियन के जीतों और उसके कारण जो जोरदार प्रतिक्रिया इंग्लैंड, स्पेन, जर्मनी, पोलैण्ड और रूस में उत्पन्न हुई, उससे राष्ट्रीय स्वायत्तता, एकता और पहचान के नगर संबंधी विचार और प्रबल हुए तथा यूरोप और पूरे लैटिन अमेरिका में फैल गए।' यहाँ कोहन ने जिस तिरंगे का उल्लेख किया है, वह फ्रांस का राष्ट्रीय झंडा (नीला, सफेद एवं लाल रंग) है तथा 'मारसियाएसे' राष्ट्रगान है जिसे क्लेउड जोसेफ ने 1792 में युद्ध की घोषणा के समय लिखा था। यह बात भी उल्लेखनीय है कि पश्चिम में राष्ट्रवाद का उपयोग वहाँ के तानाशाहों, राजनीतिज्ञों ने अपने हित में भी किया है उदाहरण के तौर पर यह सर्वविदित है कि बीसवीं सदी में जर्मन राष्ट्रवाद के पीछे जातीय एवं नस्लीय तत्त्व की प्रमुखता थी, किन्तु इससे सौ साल पहले जर्मनी में राष्ट्रवाद के उदय के पीछे भाषाई आधार था। प्रसियन चांसलर विस्मार्क ने इस जर्मन भाषाई राष्ट्रवाद (German Linguistic Nationalism) को काबू में कर उसका उपयोग प्रसिया राजा की सेवा में किया था।

इटली के विचारक मैकियावेली ने अपने विचारों में आधुनिक राष्ट्रवाद की व्याख्या की तथा इसे एक पवित्र भावना माना, किंतु हम देखते हैं कि आगे चलकर इसका विकास या पतन फासीवाद के रूप में हुआ। कमोबेश पूरे पश्चिम में राज्य आधारित राष्ट्रवाद धीरे-धीरे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की ओर बढ़ने लगता है। यह भारतीय एवं पश्चिम के राष्ट्रवाद की परिणति का सबसे बड़ा अंतर है। उन्नीसवीं सदी में फ्रेंच, ब्रिटिश, डच और पुर्तगालियों द्वारा उपनिवेश बनाने की होड़ में राष्ट्रवाद का एक दूसरा पक्ष सामने आता है। अपने लाभ के लिए दूसरों को अपने अधीन बनाए रखना तथा हर प्रकार से उसका शोषण करना

पश्चिम के राष्ट्रवाद का एक विकृत पक्ष है जिसकी परिणति हम दो महायुद्धों के रूप में भी देख सकते हैं।

यदि चाहें तो हम इसी विचार बिंदु से भारतीय राष्ट्रवाद को समझ सकते हैं। भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के पीछे औपनिवेशिक विरोधी आंदोलन की प्रमुख भूमिका थी। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत ने किस प्रकार सामना किया तथा वे कौन-कौन से तत्त्व हैं जो भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं। हम देखते हैं कि उन्नीसवीं सदी में सामंतवादी एवं औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त भारतीय समाज में एक नई हलचल होती है। सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन का दौर चलता है। ब्रह्म समाज, तत्त्वबोधिनी सभा, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि की स्थापना होती है। इसी संदर्भ में राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र सेन, गोविन्द रानाडे एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम लिया जा सकता है। स्वामी दयानन्द हिंदू धर्म में फैली अराजकता पर चोट करते हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में उनके विषय में लिखा है कि- 'शंकराचार्य के बाद से भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो।'⁶ इन सब के अतिरिक्त गोविन्द रानाडे, ज्योतिबा फूले, भारतेन्दु हरिश्चंद्र तथा स्वामी विवेकानंद आदि का नाम भी लिया जा सकता है जो हिंदू नवोत्थान के साथ सामाजिक चेतना की अलख जगाते हैं एवं राष्ट्रवाद के उदय का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

भारत में उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रीय आंदोलन का राष्ट्रवाद की भावना से सीधा संबंध है। इस आंदोलन की क्रियाशीलता को गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक एवं गाँधी जी हिंदू संस्कृति से जोड़ते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर कहा है कि- 'समाज और राजनीति से धर्म अलग रखा जाय यह सम्भव नहीं है। मनुष्य में जो क्रियाशीलता है, वही उसका धर्म भी है। जो धर्म मनुष्य के दैनिक कार्यों से अलग होता है, उससे मेरा परिचय नहीं।'⁷

अधिकांश विद्वानों का मत है कि राष्ट्र का विकास पूँजीवादी युग की देन है। ए.आर. देसाई ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' में लिखा है कि- 'सामंतवाद के उन्मूलन और पूँजीवाद के विकास की प्रक्रिया जनता के राष्ट्र रूप में परिवर्तन की भी प्रक्रिया है।'⁸ किंतु भारत के संदर्भ में देखा जाय तो इससे सहमत होना मुश्किल है। हेंस कोहन ने इससे भिन्न एक अलग बात कही है- 'और भारत में भी एक आदर्श जातीय एवं धार्मिक अतीत, जो पश्चिमीकरण और पूँजीवाद के कारण धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा था, के लौटने की स्वच्छन्द लालसा का स्वर उन्नीसवीं सदी के अंत में तिलक और अरविंदो जैसे विद्वानों और आर्य समाज जैसे आंदोलनों में पाया जा सकता है।'⁹

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में भारतीय पुनर्जागरण एवं उपनिवेश विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन का महत्वपूर्ण योगदान था। लगभग हजार साल तक साथ रहकर हिंदू-मुस्लिम एकता के साथ भारत में जो साझी संस्कृति विकसित हुई थी उसे अंग्रेजों एवं कुछ सांप्रदायिक लोगों द्वारा नष्ट करने का प्रयास किया गया, परिणामस्वरूप भारत आजादी से पहले विभाजन की त्रासदी से गुजरता है।

किसी भी राष्ट्र का आधार एक निश्चित भू-भाग होता है। अतः निश्चित भू-भाग, उसमें रहने वाली जनता एवं उसकी संस्कृति को समुच्चय का नाम ही राष्ट्र है। यह भू-भाग से तात्पर्य भौगोलिक एकता, जनता का अर्थ उसकी राजनीतिक एकता तथा उसकी संस्कृति से तात्पर्य वहाँ रहने वाले लोगों की सांस्कृतिक एकता से है। डॉ. जीतेन्द्र श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवाद और प्रेमचंद' में लिखा है- 'राष्ट्र की अवधारणा में जातीय एकता, भाषा की एकता, धर्म, भौगोलिक एकता, समान संस्कृति और समान ऐतिहासिकता, राजनीतिक और आर्थिक हितों की समानता जैसे तत्त्व किसी न किसी रूप में कार्य करते हैं।'¹⁰ उपर्युक्त कथन में जितने प्रकार की समानता की बात कही गई है, वह भारत में नहीं है, फिर भी वह एक राष्ट्र है। भारत एक बहुजातीय, बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश है। यहाँ हिंदू, बौद्ध, जैन, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई आदि कई धर्मों के लोग रहते हैं। किन्तु ये राष्ट्र की एकता में बाधक नहीं हैं। बाधक तो वे तत्त्व हैं जो आज नए विमर्श एवं प्राचीन रूढ़ियों के नाम पर देश को पीछे ले जा रहे हैं तथा विविधता को मतभेद में बदल रहे हैं। डॉ. शंभूनाथ के अनुसार भारत में राष्ट्रवाद के भीतर आज मोटे तौर पर सात वर्चस्व मौजूद हैं जिसे वे 'राष्ट्रवाद की जोंके'¹¹ कहते हैं- 1. पितृसत्ता का वर्चस्व 2. जातिवादी वर्चस्व 3. सांप्रदायिक वर्चस्व 4. अन्ध प्रान्तीयतावादी वर्चस्व 5. महानगरीय केन्द्रीकरण 6. अंग्रेजी वर्चस्व 7. कारपोरेट वर्चस्व। आज देश में 'भारतीय भावना' का ठीक से विकास न होने का कारण लोगों का अनजाने ही सही किसी न किसी वर्चस्व से जुड़ होना है। निश्चित तौर पर आजादी के बाद राष्ट्रवाद की भावना को सही दिशा दी जाती तो आज छोटे-छोटे सामुदायिक विमर्शों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आज यह प्रवृत्ति भी देखी जा रही है कि कुछ बुद्धिजीवियों के पीछे एक वर्ग भूमंडलीकरण की संस्कृति को स्वीकार करते हुए राष्ट्रवाद की अवधारणा को ही नकार रहा है तथा नवउपनिवेशवादी मानसिकता से ग्रस्त होकर विचार एवं संस्कृति के स्तर पर पश्चिम के अंधानुकरण पर लगा हुआ है। पश्चिम में पूँजीवादी देशों के लिए राष्ट्र एक कल्पित समुदाय है। प्रायः वहाँ राष्ट्रीयता की भावना के पीछे केवल आर्थिक हित होता है उदाहरणस्वरूप अमेरिका अपने हित में जिस भूमंडलीकरण (Globalization) एवं ग्लोबल गाँव की बात करता था, आज वहाँ का राष्ट्रपति राष्ट्रवाद एवं देशहित (Nation first) के नाम पर दूसरे देशों से आयातित लोह अयस्क पर भारी शुल्क लगा रहा है ताकि अपना माल बेचा जा सके।

किसी भी राष्ट्र के लिए एक सांस्कृतिक मूल्य की आवश्यकता होती है। जब भारत में हम हिंदू संस्कृति की बात करते हैं, तो उसके पीछे भी यही तर्क है। मैक्स वेबर ने अपने 'राष्ट्र' नामक आलेख में लिखा है कि- 'राष्ट्र की सार्थकता सामान्यतः उसकी श्रेष्ठता या कम से कम उन सांस्कृतिक मूल्यों पर टिकी होती है, जिन्हें एक समुदाय की विशिष्टता को आगे बढ़ाने के द्वारा ही बनाए रखा तथा विकसित किया जा सकता है।'¹² यहाँ कहना आवश्यक है कि आज भारत में राष्ट्रवाद के संदर्भ में हिंदू संस्कृति को आगे करना होगा तथा उसे साझा संस्कृति के निकट रखना होगा। हिंदू राष्ट्रवाद को भारतीय राष्ट्रवाद का पर्याय बनाना होगा, जिसमें विभिन्न धर्मों एवं मतों के लोगों की भावनाएँ एवं आकांक्षाएँ समाहित हो सकें। सही अर्थों में तभी एक भारतीय राष्ट्रवाद की भावना को पाया जा सकता है।

संदर्भ

- 1 पथिक, डॉ. देवराज, नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, कादम्बरी प्रकाशन, नई दिल्ली-110015, प्रथम संस्करण 1985.
- 2 'A national is a soul, a spritual principal' - Hutchinson, John and D. Smith, Anthony (Editor), Nationalism, Oxford University Press, New York, 1994, p. 17.
- 3 'A nation is a hi''Borically constituted, stable community of people, formed on the basis of a common language, territory, economic life and psychological make up manifested in a common culture', - Hutchinson, John and D. Smith, Anthony (Editor), Nationalism, Oxford University Press, New York, 1994, p. 20.
- 4 'Nationalism as we understand it is not older than the second half of the eighteenth century' - Kohn, Han, The Idia of Nationalism, Mittal Publication, New Delhi-110059, 1956 Edition, p. 3.
- 5 'After 1792 the French Revolution, with its tricolour, 'Marseillaise', assemblies. oaths, processions, fetes, and the like, began exporting its patriotic ideals all over Europe, and in this respect Napoleon's conquests, and the strong reactions they provoked in England, Spain, Germany, Poland and Russia, intensified and diffused the civic idias of national autonomy, unity and identity across Europe and throughout Latin America' - Hutchinson, John and D, Smith, Anthony (Editor), Nationalism, p. 7.
- 6 दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1991, पृष्ठ 308.
- 7 वही, पृष्ठ 316.
- 8 श्रीवास्तव, जितेन्द्र, भारतीय राष्ट्रवाद और प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ 17.
- 9 'And in India too, the same note of romantic yearning for a return to an idialized ethnic and religious past which was being eroded by westernization and capitalism was to be found in late nineteenth century intellectuals like Tilak and Aurbindo and in movements like the Arya Samaj' - Hutchinson, John and D. Smith, Anthony (Editor), Nationalism, p. 7-8.
- 10 श्रीवास्तव, जितेन्द्र, भारतीय राष्ट्रवाद और प्रेमचंद, पृष्ठ 13.
- 11 शंभूनाथ हिंदी उपन्यास : राष्ट्र और हाशिया, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 246.
- 12 'The significance of the 'nation' is usually anchored in the superiority, or al least the irreplaceability, of the culture values that are to be preserved and developed only through the cultivation of the peculiarity of the group' - Hutchinson, John and D. Smith, Anthony (Editor), Nationalism, p. 24.

दिनकर के काव्य मे राष्ट्रवादी चेतना

डॉ. मो. माज़िद मिया
असिस्टेंट प्रोफेसर
श्री अग्रसेन महाविद्यालय

आज जब भारतीय शोधकारी वर्तमान समाज को नई दिशा देने में समर्थ हैं और हर दिन हमारी सामर्थ्य के अनेकों आयाम विकसित हो रहे हैं। यहाँ संसाधनों की कोई कमी नहीं है। भारत-भूमि में स्वर्ग उतर सकता है किन्तु राजनीति के कुशल दिग्भ्रष्ट लोग राष्ट्र की जनता को वर्गों-धर्मों में बाँटकर क्षेत्रवाद रुपी असमाजिक तत्व हमारे समाज मे फैला रहे हैं। इसीलिए आवश्यक हो गया है कि लोक-चेतना में नया-संचार हो। प्रत्येक राष्ट्रीवादी नागरिक एवम साहित्यकार अपनी एवम देश की अस्मिता की रक्षा के लिए आगे बढ़कर आत्म-समीक्षा करे। एक समय था जब हमारा सम्पूर्ण समाज बाह्य शत्रुओ से त्रस्त था पर आज राष्ट्र वाह्य और आंतरिक शत्रुओं के चक्रव्यूह में फंस कर अपना संगठित स्वरूप खोने लगा है। आंतरिक विघटनकारी तत्व अपना सिर उठा रहे हैं जिससे साम्प्रदायिकता एवम वर्गवाद का विषैला प्रभाव राष्ट्रीय अस्मिता को विषाक्त कर रहा है। ऐसी विनाशक और विस्फोटक स्थिति में देश को दिशा देना एक साहित्यकार का दायित्व है। राष्ट्रीय काव्य-धारा ऐसी काव्य-प्रवृत्ति है जिसमें राष्ट्र-जन को तेजस्वी और पराक्रमी बनाने की सामर्थ्य निहित है। इसी विषय को ध्यान मे रखते हुए यह निर्विवाद है कि कवि जिस परिवेश में रहता है, उससे उसमें विचारों एवं भावों का सम्प्रेषण होता ही है, इसी को युग-बोध, सामाजिकता या सामयिकता कुछ भी कहा जा सकता है। युग-प्रतिनिधि कवि, परिवेश द्वारा संप्रेषित संवेदनों को ग्रहण करता है और यथावसर उन्हें अपने कार्य-कौशल से व्यक्त भी करता रहता है। वस्तुतः सम्प्रेषण व्यापार के दो छोर हैं- एक परिवेश और दूसरा व्यक्ति। परिवेश प्रभाव भेजता है और व्यक्ति कुशाग्रता से उसे ग्रहण करता है। परिवेश एवं संस्कृति से प्राप्त प्रभाव को काव्य में प्रस्तुत करते ही कवि युग-प्रतिनिधि के महत्वपूर्ण पद पर आसिन हो जाता है। भारतीय संस्कृति की दृष्टि प्रारम्भ से ही आत्मवादी रही है, जिसने अपनी उपलब्धि की सीमा मे समग्र दृष्टि को समेट लिया है और यह मानवतावादी दृष्टिकोण ही है जो लोक-मंगल की भावना से अनुप्राणित है। हिन्दी की काव्य-दृष्टि भी हमेशा से लोक-कालयानपरक रही है, जिसके अनुसार सभी रचनाकारों ने सामाजिक प्राणिमात्र के कल्याण की कामना की है। वस्तुतः हिन्दी कवियों की राष्ट्रीयता संकुचित न रहकर अपनी वृहतर परिधि में विश्व-प्रेम तथा विश्व-मंगल की कामना में व्यक्त हुई है। भारतीय दार्शनिक, साहित्यकार एव जनमानस ने 'सर्वेभवांतु सूखीं' ने विश्व-बंधुत्व की उदात्त भावना का पोषण किया है। जिनमे तुलसी, सुर, कबीर से लेकर निराला तक सभी कवियों ने कहीं भी अपने रचना में संकुचित राष्ट्रीयता का पोषण नहीं किया, बल्कि सभी ने आदर्शों तथा सार्वभौम मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। ये सब उच्च मूल्यों के प्रलोभन में देश की राजनीतिक एवं सामाजिक चुनौती को खुलकर स्वीकार नहीं कर पाए। अगर ध्यान दिया जाए तो उनके लेखनी का आधार अन्तराष्ट्रीय ही रहा, जिससे देश की राष्ट्रीयता की विशेष क्षति हुई। इन कवियों ने खुलकर कभी भी विदेशियों के शोषण तथा अत्याचारों के विरुद्ध अपना स्वर तीव्र नहीं किया। तुलसी राम-भक्ति में लिन रहे तो सुर, कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं में। इधर प्रशाद शैव-दर्शन में तन्मय होकर युग की पुकार से कतराते रहे और रवीन्द्र नाथ ठाकुर भी रहस्य की अनुभूति में विलय हो गए। हाँ, भारतेन्दु ने देश-दशा की ओर थोड़ा-बहुत ध्यान दिया, किन्तु बड़ा ही संतुलित - "अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी। / पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्यारी"।

अंग्रेजों के राज्य तथा सुख-लाभों की प्रशंसा करते हुए बड़ी सावधानी से उन्होने परिस्थिति का संतुलन कर कहा की कष्ट है तो केवल यह कि भारत का धन विदेशों को चला जा रहा है। यथार्थ-बोध तो उन्हे हुआ, किन्तु जो कुछ कहा, वह दबी जबान से डरते-डरते पर उस समय इतना कह देना भी अत्यंत साहस का काम था। भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीयता का सूत्रपात तो किया आशा थी कि राष्ट्रीयता का उतरोत्तर विकास होगा, किन्तु छायावादी कवियों ने इस आशा पर तुषाराघात कर दिया। वे वेदान्त के रहस्यवाद तथा शैव-दर्शन के निभृत निकुंजों में जा बैठे। युग की ललकार सुनने से पहले ही जैसे उन्होने कानों में उंगली डाल ली। देखें तो मैथलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' और माखनलाल चतुर्वेदी की 'वाणी' में राष्ट्रीयता का स्वर तीव्र तो हुआ, किन्तु प्राचीन परंपरा का प्रभाव उन पर बना रहा। 'दिनकर' पहले कवि हैं, जिनहोने देश-दुर्दशा को देखा और खुलकर क्रांति के गीत गाए। उनका कवि दासता की कठोर बेड़ियाँ काटने को अधीर हो उठा। विद्रोही एवं विरोध के स्वर उनके काव्य में अत्यंत तीव्र हो उठे। उद्बुद्ध राष्ट्रीय-चेतना ने जन-जीवन में शक्ति का संचार किया, वे अपनी राष्ट्रीय विचारधारा के कारण

आधुनिक युग के भूषण बन गए हैं। इनके 'हुंकार' में जो हुंकार सुनाई दी, उसने राष्ट्र को जगा दिया। यद्यपि 'हुंकार' चिंतन तथा समाधान-प्रधान नहीं था, फिर भी उसने भारतीय रक्त को खोलाया ही। 'दिनकर' की राष्ट्रीयता वस्तुतः उस दासता को समाप्त करने के लिए छटपटा रही थी। जब गांधीजी के नेतृत्व में कठिन क्रांति का पथ प्रशस्त किया जा रहा था उस समय दिनकर अपने काव्य के माध्यम से खुलकर मैदान में आए और उन्होंने शक्ति, शौर्य तथा तलवार से स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्बोधन के गीत गाए। राष्ट्र को उसके अतीत के शौर्य एवं गौरव का स्मरण कराया। हृदय से प्रेम और सौन्दर्य का उपासक कवि शक्ति और शौर्य का आराधक बन गया। दिनकर हिमालय को संबोधित करते हुए कहते हैं ख

“सिंह की हुंकार है हुंकार निर्भय वीर नर की। / सिंह जब वन में गरजता है,

जन्तुओं के शीश फट जाते, / प्राण लेकर भीत कुंजर भागता है।

योगियों में, पर, अभय आनन्द भर जाता, / सिंह जब उनके हृदय में नाद करता है।”।

अपने काव्य के विषय में 'दिनकर' ने जितना आत्म-मंथन किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। वे अपनी राष्ट्रीयता को एक सामाजिक पक्ष स्वीकार करते हुए कहते हैं - “संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य हो गया था, किन्तु मेरा मन यही चाहता था कि गर्जन-तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएं लिखूँ, जिनसे कोमलता और कल्पना का उभार हो। और सुयश तो मुझे 'हुंकार' से ही मिला, किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवंती' में बसती है..... राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकार कुंजे आक्रांत किया है”। दिनकर के कवि व्यक्तित्व के तीन प्रमुख गुण हैं ख भारत के अतीत की गौरवपूर्ण परंपरा, सामयिक परिवेश का प्रभाव और छायावादी संस्कार। दिनकर जी दासता के पाश आबद्ध भारत को देखकर शताब्दियों पूर्व के उसके विश्वव्यापी अतीत गौरव को प्रेरणा-स्रोत के रूप में विस्मृत नहीं कर पाए। अपने अतीत में प्रगति, शक्ति एवं शौर्य के शिखर पर आसीन विजेता भारत को आज क्या हो गया है? इसका तुलनात्मक चित्रण किस देश की स्वतन्त्रता के लिए प्राणारपण करने को प्रस्तुत नहीं करेगा? मन में स्थित देशभक्ति की भावना से उन्होंने अतीत का गौरव-गान किया है। वर्तमान में दासता का अपयशपूर्ण जीवन जो सर्वथा अभिशाप के रूप में है, उससे मुक्ति की उत्कट भावना से उनकी जीवित राष्ट्रीयता का उदय हुआ है। दिनकर के कवि-व्यक्तित्व के इन आयामों की त्रिवेणी में राष्ट्रीय-चेतना की गंगा सबसे वेगवती रही है। भले ही सामयिकता के प्रभाव से उत्पन्न काव्य-रचना उनकी रुचि के विरुद्ध रही हो या वह बाहर से आरोपित हो, किन्तु कवि को सर्वाधिक यश उनकी राष्ट्रीय-चेतना से उदबद्ध कविताओं से ही मिला है। आज भी 'कुरुक्षेत्र' जो सामाजिक मांग का काव्य है, 'उर्वशी' से अधिक महत्वपूर्ण है। संभवतः परिवेश का यह प्रभाव, जिससे राष्ट्रीयता का उदय हुआ है, कवि-व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया है, नहीं तो बाहर से आरोपित इस राष्ट्रीयता से श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थों की रचना कहाँ संभव थी? इसी कारण 'दिनकर' के काव्य में बाहर से आक्रांत करने वाली राष्ट्रीयता को महत्व-मूल्यांकन की दृष्टि से प्रथम स्थान मिला है और उनकी ही प्रेम विषयक रचनाओं को दूसरा। पराधीन-भारत की दुर्दशा से क्षुब्ध दिनकर रुद्र और भवानी का आह्वान करते हुए विद्रोह, विप्लव और क्रान्ति का संदेशवाहक और प्रणेता बन गया है-

“क्रान्ति-धात्री ! ओ क्रान्ति जाग उठ आडंबर में आग लगा दे,

पतन पाप पाखंड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे”।

दिनकर जी की राष्ट्रीयता के तत्व हैं ख शक्ति, क्रांति विद्रोह और विनाश। उनकी राष्ट्रीयता गांधीजी की विचारधारा से भी प्रभावित है, साथ ही अतीत की गौरवमय परंपरा भी 'दिनकर' की राष्ट्रीयता के अंतर्गत है। दिनकर की राष्ट्रीयता अधिकांशतः भाव-प्रवण है। उसमें चिंतन कम तथा भावावेश और आवेग अधिक है। पराधीन वातावरण में अंग्रेजों के शोषण तथा अत्याचारों के विरुद्ध उनमें प्रतिक्रिया विद्यमान है, जिससे उमंग, उत्साह तथा प्रेरणा को शक्ति मिलती है। श्री तारकनाथ बाली ने दिनकर की राष्ट्रीयता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है ख “दिनकर को समकालीन भाव-बोध ने जिस उग्र भाववादी राष्ट्रीयता की ओर प्रेरित किया, उसने अपने अनुकूल नए बिंबों की योजना भी की। तलवार, रक्त, क्रांति, अग्नि, जलन, विश, तूफान आदि के रूपों के प्रयोग द्वारा उग्र, कठोर भावों की अभिव्यक्ति की है। हिमालय, गंगा और प्राचीन महापुरुषों के आख्यान भी इसी राष्ट्रीयता के अंश हैं। समग्र काव्य साधना में दिनकर की राष्ट्रीयता का स्थान निर्धारण अत्यंत जटिल एवं विवादास्पद है। एक ओर उन्होंने हिंसा तथा क्रांति आदि पर बल दिया है तो दूसरी ओर प्रणय तथा करुणा के गीत भी गाए हैं। हिंसा के साथ-साथ उन्होंने अहिंसा तथा विश्व-प्रेम की कामना भी की है। अंत में दिनकर की राष्ट्रीयता अपने आदर्श रूप में मानवतावाद में परिणत हो गई पर कहीं-कहीं उनकी दृष्टि सर्वत्र द्विधायुक्त रही है। कहीं वे गांधीजी की विचारधारा के समर्थक हैं तो कहीं विरोधी। फिर भी यह द्विधाग्रस्त व्यक्तित्व सत्य, प्रेम और अहिंसा की ओर से अधिक उन्मुख रहा है और यह सब जीव-जगत के शाश्वत मूल्य हैं। उनके काव्य में भीष्म, युधिष्ठिर, कर्ण, बुद्ध सभी के चरित्र शक्ति से मंडित होते हुए भी आदर्श के प्रतीक हैं। अस्तु 'दिनकर' जी की राष्ट्रीयता की चरम परिणति भारतीय आदर्शवाद में ही होती है और आदर्शवाद भारत की अतीत परंपरा का ही अभिनव रूप है। यहाँ दिनकर राष्ट्र-भक्ति की बुझती हुई शिखा को नया जीवन देने के लिए याचना करते हैं-

“धुंधली हुई दिशाएँ, छाने लगा कुहासा, / कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआ-सा।

कोई मुझे बता दे, क्या आज हो रहा है, / मुह को छिपा तिमिर में क्यों तेज रो रहा है?

डांट ! पुकार मेरी, संदीप्त को जिला दे, / बुझती हुई शिखा को संजीवनी पीला दे !

प्यारे स्वदेश के हित अंगार मांगता हूँ, / चढ़ती जवानियों का शृंगार मांगता हूँ।”

दिनकर जी के कवि व्यक्तित्व के दो पहलू हैं ख्र एक सामाजिक या राष्ट्रीय और दूसरा व्यक्तिगत या प्रणयी। दोनों की परिणति मानवातावादी है। दोनों में आदर्शवाद एवं अध्यात्मवाद का समन्वित रूप व्यंजित है। उनकी राष्ट्रीयता सामयिक मांग है। जब देश संकटग्रस्त होता है या रहा है, उस समय वे क्रांति, विरोध तथा विद्रोह के गीत गाते हैं और शांति-काल में उनका मन प्रेम, सौन्दर्य एवं आनंद की ओर अग्रसर होता है। शांति-काल की नवीन दिशाएँ निर्माण तथा विकास के क्षेत्र की ओर बढ़ती हैं। दिनकर की राष्ट्रीयता युद्ध-काल की राष्ट्रीयता है-

“बल के सम्मुख विनत भेड़-सा, / अंबर सिस झुकाता है,
इससे बढ़ सौन्दर्य दूसरा / तुमको कौन सुहाता है?
है सौन्दर्य शक्ति का अनुचर, / जो है बाली वही सुंदर,
सुंदरता निस्सार वस्तु है / हो न साथ में शक्ति अग्र?”

वह एक आपद धर्म है। उनके प्रणय-गीत शांति-काल में उभरते हैं जो राष्ट्रीयता के शाश्वत मूल्यों का चित्रण करते हैं। संक्षेप में कहें तो दिनकर की राष्ट्रीयता एक ओर जहां सामयिक मांगों की पूर्ति करती है, वहीं अतीत से निरंतर जीवित भारतीय शांतिवादी धारा से भी दौड़ी हुई है। दिनकर की राष्ट्रीयता की यह अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। दिनकर की समग्र काव्य-साधना पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए श्री तारकनाथ वाली ने लिखा है ख्र “जब इस समग्र रूप में दिनकर को देखने का प्रयास करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर उस पुनरुत्थानवादी धारा के कवि हैं जो भारतेन्दु हरिश्चंद्र से प्रारम्भ होकर द्विवेदी युग से होती हुई छायावादी काव्य में परिणत हुई। छायावादी काव्य मूल रूप में तथा व्यापक रूप में पुनरुत्थानवादी काव्य है, जिसका मूल स्वर वेदान्त का है। जिस प्रकार प्रसाद ने चन्द्रगुप्त मौर्य आदि के माध्यम से प्राचीन पात्रों में कर्म और शक्ति का सौन्दर्य दिखाया है, उसी प्रकार दिनकर ने भीष्म आदि प्राचीन पात्रों के माध्यम से कर्म और क्रांति का प्रेरक वर्णन किया है। प्रसाद में जो कर्म का वेग है, वही दिनकर में आकार क्रान्ति का नाद बन गया है। लेकिन इस विकास को समझने के लिए दिनकर को उन परिस्थितियों के बीच रखकर देखना होगा जो स्वाधीनता के आंदोलन ने पैदा की थी। शांति और क्रांति का जो वेग खुलकर दिनकर में व्यक्त हुआ है, वह अन्य कवियों में कम दिखाई देता है। उसी में दिनकर की विशेषता है, भारतीय आदर्शवादी परंपरा दिनकर के काव्य में पूर्ण शक्ति के साथ व्यक्त हुई है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता।”

डॉ रवीन्द्र भ्रमर ने ख्र “कवि दिनकर कृतित्व में राष्ट्रीयता की भावना को प्रमुख माना गया है। इनकी अनेक रचनाओं में भारतीय संस्कृति और उसके प्राचीन गौरव का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। इनके कुछ रचनाओं में भारत की वर्तमान दशा के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया है और स्वदेश के उद्धार तथा उत्थान के लिए सोई हुई राष्ट्रीय चेतना को जागरण का संदेश दिया गया है। दिनकर जी की राष्ट्रीय भावना ने महात्मा गांधी की अहिंसा से बहुत कम मात्रा में सम्झौता किया। इनकी राष्ट्रीयता नेताजी सुभाषचंद्र बोस द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चली है। इनहोंने तलवार और पौरुष के बल पर राष्ट्रोद्धार की कल्पना की है, इसलिए इन्हें ‘वीर-रस’ का कवि कहा जाता है। इनकी वाणी में ओज और शक्ति है, आप शांति नहीं, क्रांति के गायक हैं। इस दृष्टि से इनकी तुलना बंगाल के काजी नजरुल इस्लाम और उर्दू के महाकवि जोश से की जा सकती है”। राष्ट्र-प्रेम की भावना से ओट-प्रोत कवि का यह उदाहरण देखा जा सकता है ख्र

“नहीं जीतेजी सकता देख / विश्व में झुका तुम्हारा भाल।

वेदना मधु का भी कर पान / आज उगालुंगा गरल कराल।”

दिनकर जी के काव्य के संबंध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वे वाद विशेष से बंधकर नहीं चले हैं। यद्यपि उन्होंने भी छायावादी युग में प्रेम और सौन्दर्य की रचना की है। छायावादी कवियों की भांति उन्होंने भी प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाए हैं, फिर भी हम दिनकर जी को छायावादी कवि नहीं कह सकते। किसान, मजदूर और शोषित वर्ग का पक्ष समर्थन करते हुए भी दिनकर प्रगतिवादी कलाकार नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने रूस के मार्क्सवाद का आंख बंद कर समर्थन नहीं किया है। प्रयोगवादी कवियों की भांति दिनकर ने भी अपनी काव्य-रचना में नए प्रयोग किए हैं, फिर भी प्रयोगवादी कवियों की गणना में दिनकर जी का नाम नहीं आता। सच तो यह है कि दिनकर जी आधुनिक हिन्दी काव्यधारा की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के साथ रहकर भी सबसे अलग और सबसे ऊपर हैं। वे अपने आप में पूर्ण हैं, उनकी काव्य-प्रतिभा स्वयं ही बड़ी उदात्त और तेजस्विनी है। आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में इसीलिए उनका विशिष्ट स्थान है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ ख्र रमविलास शर्मा ख्र राजकमल प्रकाशन
2. हुंकार - रामधारी सिंह 'दिनकर' - राजपाल प्रकाशन
3. रसवन्ती ख्र रामधारी सिंह 'दिनकर' - उदयाचल प्रकाशन
4. भारतीय काव्य सिद्धान्त - तारकनाथ वाली - हिन्दी माध्यम कार्यालय निर्देशलय, नई दिल्ली
5. रामधारी सिंह 'दिनकर' - डॉ रवीन्द्र भ्रमर - उदयाचल प्रकाशन, पटना

राष्ट्र के उत्थान में भारतेंदुगीन पत्रकारिता का महत्त्व

गीता

प्राथमिक शिक्षिका

पत्रकारिता शब्द अंग्रेजी के “जर्नलिज्म” (Journalism) का हिन्दी रूपांतर है। शब्दार्थ की दृष्टि से “जर्नलिज्म” शब्द ‘जर्नल’ से निर्मित है और इसका आशय है ‘दैनिक’ अर्थात् जिसमें दैनिक कार्यों व सरकारी बैठकों का विवरण हो। आज जर्नल शब्द ‘मैगजीन’ काोतक हो चला है। यानी दैनिक समाचार-पत्र या दूसरे प्रकाशन, कोई सर्वाधिक प्रकाशन जिसमें विशिष्ट क्षेत्र के समाचार हो। - (डॉ. हरिमोहन जोशी - खोजी पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन)

पत्रकारिता लोकतंत्र का अविभाज्य अंग है। प्रतिपल परिवर्तित होने वाले जीवन और जगत का दर्शन पत्रकारिता द्वारा ही संभव है। परिस्थितियों के अध्ययन, चिंतन-मनन और आत्माभिव्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति और दूसरों का कल्याण अर्थात् लोकमंगल की भावना ने ही पत्रकारिता को जन्म दिया। सी.जी.मूलर ने बिल्कुल सही कहा है कि - सामयिक ज्ञान का व्यवसाय ही पत्रकारिता है। इसमें तथ्यों की प्राप्ति उनका मूल्यांकन एवं ठीक-ठाक प्रस्तुतीकरण होता है। (Journalism is business of timely knowledge the business of obtaining the necessary facts] of evaluating them carefullyAnd of presenting them fullyAnd of Acting on them wisely)

डॉ. अर्जुन तिवारी के कथनानुसार - “ज्ञान और विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों के शब्द, ध्वनि तथा चित्रों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाना ही पत्रकारिता है। यह वह विद्या है जिसमें सभी प्रकार के पत्रकारों के कार्यों, कर्तव्यों और लक्ष्यों का विभाजन होता है। पत्रकारिता समय के साथ समाज की दिग्दर्शिका और नियामिका है।”

वास्तव में पत्रकारिता एक ऐसा सशक्त साधन है, जिसमें हमारे जीवन की विभिन्नताओं, नित्य-न्यूनताओं और दैनिक घटनाओं आदि को शीघ्रतिशीघ्र प्रस्तुत करने की अतुल क्षमता है। वस्तुतः यही वह माध्यम है, जिसके अंतर्गत हम विश्व-जीवन से संयुक्त होते हैं। आज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों की बहु-धंधी एवं व्यस्तता प्रधान जीवन में समाचार-पत्र हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। जिस तरह शारीरिक भूख शांत करने के लिए भोजन जरूरी है, उसी प्रकार मानसिक तृप्ति के लिए तथ दैनिक जीवन के लिए ये अनिवार्य बनते जा रहे हैं।

हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभ कलकत्ता से हुआ। जेम्स आगस्ट हिकी ने एक प्रेस की स्थापना की और 29 जनवरी, 1780 को भारत के प्रथम समाचार पत्र ‘बंगाल गजट’ : ‘कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजर’ की स्थापना की। इस समाचार पत्र ने पश्चिम के पत्रों की परंपरा स्वीकार करते हुए भारतीय पत्रों के आदर्श और उनका भविष्य निर्धारित किया।

हिंदी पत्रकारिता का श्री गणेश 30 मई, 1826 से हुआ और इन 160 वर्षों में हिंदी पत्रकारिता में बड़े व्यापक परिवर्तन हुए। उस समय हिंदी का प्रथम साप्ताहिक ‘उदंतमार्तण्ड’ कलकत्ता में निकला था और उसे धनाभाव के कारण 19 महीने बाद बंद करना पड़ा। उसके दो वर्ष बाद कलकत्ता से ‘बंगदूत’ निकला पर वह भी ज्यादा देर न टिक सका। हिंदी क्षेत्र में सन् 1845 ‘बनारस अखबार’ निकला और 1848 में इंदौर से श्री प्रेमनारायण ने ‘मालवा अखबार’ निकला तथा 1850 में काशी से ‘सुधाकर’ पत्र निकला। हिंदी पत्रों की इसी श्रृंखला में श्री भारतेंदु हरिश्चंद्र की ‘कविवचन सुधा’ और ‘हरिश्चंद्र चन्द्रिका’ तथा ‘बाला बोधिनी’, कलकत्ता के ‘भारत मित्र’, प्रयाग के ‘हिंदी प्रदीप’, कानपुर के ‘ब्राह्मण’ जैसे पत्रों ने हिंदी पत्रकारिता की जो परम्परा स्थापित की, उसी का उत्थान प्रयाग की ‘सरस्वती’ पत्रिका, कालाकांकर के ‘हिन्दोस्थान, बम्बई के श्री वेंकटेश्वर समाचार जैसे पत्रों में प्रतिबिंबित हुआ।

हिंदी पत्रकारिता का उदय राष्ट्रीय उन्नति तथ सांस्कृतिक नवचेतना के जागरण की भावना से हुआ। इनके मूल में व्यावसायिकता नहीं अपितु त्याग, तपस्या और बलिदान की निष्ठा थी। हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि भले ही बंगाल रही हो पर उसकी कर्म-भूमि हिंदी-भाषी प्रदेश ही हैं। इनमें भी वाराणसी, प्रयाग, मथुरा और खंडवा आदि को इसका विशेष गौरव प्राप्त है।

भारतवर्ष में हिंदी पत्रकारिता के विकास की कहानी अनेक युगीन संदर्भों, पत्रकारों और साहित्यकारों से होती हुई आगे बढ़ी। प्रमुख रूप से हिंदी पत्रकारिता में जिन चरणों का उल्लेख मिलता है, उनमें (1) भारतेंदुगीन पत्रकारिता (2) द्विवेदीयुगीन पत्रकारिता और तिलकयुगीन (3) छायावाद युगीन पत्रकारिता (4) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता एवं (5) समसामयिक

साहित्यिक पत्रकारिता मुख्य हैं।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेंदु का आगमन एक ऐतिहासिक घटना थी। 'कवि-वचन' सुधा हिंदी-नवजागरण का प्रतीक थी। इसके सम्बन्ध में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है - 'कविवचन सुधा' जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भय सैनिक की तरह थी। वास्तव में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में भारतेंदुयुग की पत्रकारिता से जुड़े पत्रकारों के समक्ष आर्थिक पक्ष की अपेक्षा एक महान आदर्श था। वे नवीन सभ्यता के संपर्क से आगे परिवर्तन के दौर में प्रवेश कर चुके थे। देश तथा समाज में नवयुग के विचार-प्रवाह का संचार करने को वे उत्सुक थे। उनके पास संदेशों एवं सूचनाओं के प्रचार-प्रसार के लिए सीमित साधन थे। तत्कालीन सरकार द्वारा उनको कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था। समाज के जनसामान्य का कोई उनको कोई विशेष सहयोग प्राप्त नहीं हो रहा था। फिर भी वे लोग अपने कार्य को एक विशेष लक्ष्यबिंदु तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध थे। उस समय हिंदी समाचार पत्रों की अपेक्षा अंग्रेजी पत्रों का महत्त्व अधिक था। तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में संपादक ही सब कुछ होता था। उस समय के पत्रों के निष्ठा बड़ी बलवती और आशावान थी। इसके लिए वे सब कुछ सहन करने को तत्पर रहते थे।

श्री बालकृष्ण भट्ट का हिंदी पत्रकारिता और गद्य साहित्य के निर्माण में ऐतिहासिक अवदान है। हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा राष्ट्रीय चेतना को बलवती बनाने के निमित्त अपने साहित्यिक अनुष्ठानों में भट्ट जी ने आर्थिक कठिनाइयों और विघ्न-बाधाओं का जिस त्याग, बलिदान एवं निष्ठा से सामना किया, वह आसाधारण और अभूतपूर्व है। भट्ट जी के निबंध साहित्यिक दृष्टि से तो उच्चकोटि के हैं ही, राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति के विचार से भी वे पठनीय और मननीय हैं। 1877 ई. तथा 1909 ई. की कालावधि में प्रकाशित भट्ट जी के ये निबंध राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना को जागृत करने के साथ ही उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में देश की स्थितियाँ क्या थीं, इसके भी परिचायक हैं। भारतीयों को धिक्कारते हुए 'हिंदी प्रदीप' में भट्ट जी ने 'हमारा दास्य भाव' शीर्षक लेख अत्यंत व्यंग्यपूर्ण शैली में लिखा है। इसका कुछ अंश इस प्रकार है - "वे गौर वर्ण है, तुम कृष्ण वर्ण, वे वीर हैं, तुम कायर, उनमें एकता है, तुममें फूट, वे सशस्त्र हैं, तुम निःशस्त्र, वे एक जाती के, तुम अनेक खण्डों में विभक्त हो, उनके सर्वांग में बल है, तुम्हारा आधा अंश लकवा का मारा है, वे सब एक साथ के खाने वाले हैं, तुम चूल्हा-चौका के पीछे हैरान हो, तुम्हें धरम पीछे डालता है, वे धरम के पुर्जे-पुर्जे उड़ा डालने वाले हैं, वे कपडे और फैशन के नए-नए तराश-खराश में लगे हैं, तुम भदे से भदे सोने-चांदी कके जेवरों से लद जाने को खूबसूरती मान बैठे हो, उनके लिए समस्त भूगोल हस्तमाल के सामान हो अपने मुल्क और जाति के लिए जान दे देने वाले, तुम देश और जाति तथ देशानुराग को काली के खप्पर में झोंक अपना पेट भरने वाले हो, अपने देश के मित्र, तुम देश के शत्रु, वे प्रभूणा प्रभु तुम गुलाम दर गुलाम।"

'हिंदी प्रदीप' के माध्यम से भट्ट जी द्वारा राष्ट्रोत्थान में किये गए अमूल्य योगदान के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है ख "हिंदी प्रदीप गद्य साहित्य का दर्जा निकालने के लिए निकाला गया। इसमें संदेह नहीं कि 'कविवचन सुधा' के बाद 'हिंदी प्रदीप' ही वह पत्र रह गया था जो अपने पाठकों में राष्ट्रीय चेतना जागृत कर सका। राष्ट्रीय तथा सामाजिक समस्याओं पर स्वतन्त्र विचार प्रकाशन के कारण यह पत्र महत्त्वपूर्ण हो गया और 'कविवचन सुधा' के बाद इसे ही सबसे अधिक ख्याति मिली।"

19वीं शताब्दी के अंतिम तीन-चार दशकों में बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और पंजाब आदि प्रान्तों में के श्रेष्ठ साहित्यिक एवं राजनैतिक पत्र प्रकाशित हुए। इस दौर का श्रीगणेश हम भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'कविवचन सुधा' (बनारस ई.) से मान सकते हैं। इसके अतिरिक्त 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (हरिश्चंद्र चन्द्रिका) और 'बाला बोधिनी' का संपादन भारतेंदु बाबू ने किया, जो हिंदी पत्रकारिता में अविस्मरणीय रहेंगे। इसी कालक्रम में 'हिंदी प्रदीप' (बालकृष्ण भट्ट), 'ब्राह्मण' (प्रतापनारायण मिश्र), 'सारसुधानिधि' (पं. सदानंद जी), 'सज्जन कीर्ति सुधाकर' (पं. वंशीधर वाजपेयी), 'उचित वक्ता' (पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र), 'भारत जीवन' (बाबू रामकृष्ण वर्मा), 'हिन्दोस्थान' (पं. मदन मोहन मालवीय), 'शुभचिंतक' (पं. रामगुलाम अवस्थी), 'हिंदी बंगवासी' (अमृत लाल चक्रवर्ती), 'साहित्य सुधा निधि' (देवकी नंदन खत्री) और 'सरस्वती' (सं. मण्डल राधाकृष्णदास और किशोरी) आदि पत्रों की भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता तथा राष्ट्रोत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

भारतेन्दुयुगीन महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ

कविवचन सुधा - सन् 1868 में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास में एक युगांतकारी परिवर्तन आया। इस परिवर्तन का श्रेय 'कविवचन सुधा' को दिया जाता है। सन् 1868 में भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा सम्पादित 'कविवचन सुधा' ने हिंदी पत्रकारिता को भारतीय जीएवन के साथ जोड़ दिया। यहीं से पत्रकारिता के क्षेत्र में नए सन्दर्भ उभरे। ये सन्दर्भ जनता, समाज तथा राष्ट्र से संबद्ध थे। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'कविवचन सुधा का प्रकाशन प्रारम्भ करके भारतेंदु ने वास्तव में नए युग का सूत्रपात किया। पत्र-पत्रिकाओं ने हमारे जातीय जीवन को पहले कभी भी इतना प्रभावित न किया था। ख़ूबसूरत पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली, जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नहीं, वरन् उसे मशाल

दिखाने वाली सच्चाई थी। भारतेंदु ने 'कविवचन सुधा' का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले लोगों ने जो पत्र निकले थे उनमें से कोई भी इस लगेन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए जमकर न खड़ा था। भारतेंदु ने सत्य और न्याय का पक्ष लिया। चाटुकारों, राजभक्तों और रूढ़िवादियों की उन्होंने कतई भी परवाह नहीं की। 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चंद्र मैगजीन' जनता का सशक्त स्वर बन गयी। सरकार का उन्हें कोपभाजन बनना पड़ा लेकिन देश-सेवा का बीड़ा उठाकर उन्होंने इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।'

हरिश्चंद्र मैगजीन – सन् 1873 में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' नामक मासिक पत्र निकाला। भारत में राजनीतिक और सामाजिक जागृति उत्पन्न करने में इस पत्रिका का विशेष योगदान रहा। ब्रिटिश सरकार के प्रति जितने तीखे व्यंग्य इस पत्रिका में प्रकाशित हुए, वे अपने एक अलग मिसाल रखते हैं। यही कारण है कि यह पत्रिका सरकार का कोपभाजन हुई। 1884 में इसका प्रकाशन बंद हो गया। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में 'हरिश्चंद्र-चन्द्रिका' ने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय सम्मान की भावना जगाने, साहित्यिक रुचि फैलाने, हिंदी साहित्य के विभिन्न अंगों को समृद्ध करने और हिंदी भाषा को देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उचित स्थान दिलाने के लिए संघर्ष करने में प्रशंसनीय काम किया।'

बाला बोधिनी – भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक 'बालाबोधिनी' पत्रिका 1874 में प्रकाशित की। बाला-बोधिनी पत्रिका का प्रकाशन स्त्री-शिक्षा-प्रहार के उद्देश्य से ही हुआ था। इस पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर जो उद्देश्य वाक्य छपा था वह इस प्रकार था -

जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष यामै कछु न विभक्ति।
सीता, अनसुइया, सती, अरुंधती अनुहारी।
वीर प्रसविनी बुध बधू होई हीनता खोय।
नारी नर अर्धांग की सान्चेहि साविमन होयाद्य

उक्त उद्देश्य से प्रकट होता है कि इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य नारी प्रगति, नर-नारी समानता एवं नारी-मुक्ति था।

सार सुधानिधि – भारतेंदु युग का एक तेजस्वी पत्र था। 'सार सुधानिधि' के प्रथम अंक के प्रथम पृष्ठ की सामग्री दृष्टव्य है -

कुमुद रसिक मनमोदक हरि दुःख तक सरवत्र।
जनपद दरसावे अचल सारसुधानिधि पत्राद्य
काव्य रसायन यत्र तत्र सुदर्शन नशप चरित कर।
सार सुधानिधि-पत्र दोष व्यसनज्वर विषय हराद्य

इसमें तत्कालीन लोक जीवन और देश-दशा का बड़ा ही यथार्थ चित्र प्रकाशित होता था। साथ ही इसके अंकों में राजनीति, समाज नीति, धर्म, स्वास्थ्य और साहित्य के साथ ही देश-विदेश की प्रमुख खबरें भी रहती थीं।

भारत-मित्र – 'भारत-मित्र' पत्र कलकत्ता से सन् 1878 में प्रकाशित हुआ। इस पत्र के मुख्य पृष्ठ पर इसका आदर्श वाक्य छपा रहता था -

"सगुण खनिज विचित्र आती खोते सब के चित्र।
शोधे नर चरित्र यह 'भारत-मित्र' पवित्राद्य"

इस पत्र ने राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक आंदोलनों में खुलकर भाग लिया। राष्ट्रीय स्वर की रचना ही इस पत्र का मुख्य उद्देश्य था। 1 नवम्बर सन् 1878 के 'भारत-मित्र' नामक एक समाचार-पत्र में प्रकाशित एक लेख में 'भारत-मित्र' के उद्देश्यों का भी स्पष्ट संकेत मिलता है। उक्त अंक से एक उद्धरण - 'जिस देश और जिस समाज में उसी देश और उसी समाज की भाषा में जब तक समाचार पत्रों का प्रचार नहीं होता, तब तक उस देश और समाज की उन्नति नहीं हो सकती। समाचार-पत्र राजा और प्रजा के बीच वकील है। दोनों की खबर दोनों को पहुंचा सकता है। जहाँ सभ्यता है वहाँ स्वाधीन समाचार पत्र हैं। जिन देशों में वाणिज्य की उन्नति है, उन्हीं में स्वाधीन समाचार-पत्रों का आदर है।'

हिंदी प्रदीप – पं. बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित 'हिंदी प्रदीप' सन् में प्रकाशित हुआ। यह पत्रिका काफी कठिनाइयों के बावजूद 35 वर्षों तक प्रकाशित होती रही। यह एक मासिक पत्रिका थी। इसमें विविध विषयों से सम्बंधित सामग्री तथा विद्या, नाटक, समाचारावाली, इतिहास, परिहास, साहित्य, दर्शन, राजनीति आदि से सम्बंधित उच्च-कोटि की सामग्री छपती थी। 'हिंदी प्रदीप' अपनी कुछ विशिष्टता लिए हुए हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में उतरा, जो उसके इस 'मोटो' से स्पष्ट है :-

"शुभ सरस देश स्नेह पूरित, प्रकट हवै आनंद भरे।
वचि दुसह दुरजन वायु सों मनिन्दीपसम थिर नहीं टरे।
सूझे विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरे।

हिंदी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत ताम हरै।।”

‘उक्त ‘मोटो’ की रचना भारतेंदु हरिश्चंद्र ने की थी। वास्तव में ‘हिंदी प्रदीप’ भी भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की प्रेरणा का प्रतिफल था।

भारतेंदुयुग की इन पत्र-पत्रिकाओं ने जहाँ हिंदी पत्रकारिता के नए युग का शुभारम्भ किया, वहीं राष्ट्रीय एकता और अखंडता की भावना भी सुदृढ़ की। युवक उद्यमी बनें और आर्थिक बनें और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हों, यही भारतेन्दुयुगीन पत्रिकाओं का सन्देश था। ‘कविवचन सुधा’ नीतिपरक पद्य में ही भारतेंदु ने अपने युग की पत्रकारिता की लक्ष्योंमुखता इन शब्दों में व्यक्त की थी ख

‘खलजनन सो सज्जन दुखी मत होहिं, हरिपद मति रहै।

अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुःख बहै।

बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सैम होहिं, जग आनंद लहै।

तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमशतवानी सब कहै।द्य’

सन् 1857 ई. के स्वाधीनता संघर्ष के दस वर्षों बाद भारतेंदु का उपर्युक्त आह्वान देश के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। यही नहीं भारतेंदु मंडल और उनके युग के अन्य प्रमुख साहित्यकारों तथा पत्रकारों का योगदान भी अविस्मरणीय रहेगा। इनमें पं. प्रतापनारायण मिश्र, चौधरी बदरी नारायण ‘प्रेमघन’, बालकृष्ण भट्ट, वंशीधर वाजपेयी, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र और पं. मदन मोहन मालवीय आदि ने अपनी पत्रकारिता की ओजस्विता के माध्यम से राष्ट्रोत्थान में अति विशिष्ट योगदान दिया।

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने अनुभव कर लिया था कि जनता की उन्नति तथा भारतीयों में स्वाधीनता के भावों को उद्दीप्त करने हेतु पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक प्रक्रिया है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक राष्ट्रीय चेतना के प्रसारण के लिए पत्र-पत्रिकाओं ही सबसे अच्छा साधन हैं। यही कारण है कि भारतेंदु काल में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने जन्म लिया उनका एकमात्र उद्देश्य था सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति।

भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद

प्रमोद कुमार यादव
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय

“हर तरफ जिधर देखो जिधर, बाजार ही बाजार है,
ख्वाहिशों का दूर तक फैला हुआ संसार है।
खुशबुओं के सर कलम, बेरंग हैं सब तितलियाँ,
बाग में आया हुआ ये कौन सा त्यौहार है।।”

कितनी खूबसूरती से उपर्युक्त पंक्तियाँ भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद के वर्तमान स्वरूप एवं प्रभाव का वर्णन कर रही हैं। भूमंडलीकरण को व्यापार, वाणिज्य, तकनीकी, संचार एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान की बाधाओं के निवारण के रूप में समझा जा सकता है। दरअसल, भूमंडलीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक सीमाओं का महत्त्व कम हो जाता है तथा लोग भी इस बात को पूरी तरह से समझ रहे होते हैं। यदि भूमंडलीकरण को परिभाषित किया जाय तो कहा जा सकता है कि ‘प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तु, सेवा, पूँजी एवं बौद्धिक संपदा का अप्रतिबंधित आदान-प्रदान ही भूमंडलीकरण है।’ भूमंडलीकरण व्यापार के साथ-साथ तार्किकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आधुनिकता को विशेष महत्त्व देता है जिसके अंतर्गत मध्यकाल की ईश्वर केंद्रित परलोकमुखी तथा आस्था आधरित जीवन दृष्टि को खारिज करके मनुष्य, मनुष्य के जगत् और मानवीय बुद्धि को केंद्रीय स्थान प्रदान किया जाता है।

कहा जाता है कि तकनीकी एवं संचार के आधुनिक साधनों के विकास से दुनिया के लोग दिन-प्रतिदिन एक-दूसरे के इतने करीब आ चुके हैं कि वैश्विक पटल ‘ग्लोबल विलेज’ से ‘ग्लोबल रूम’ में परिवर्तित हो चुका है। “एक ओर राष्ट्र वैश्विक गाँव की भाँति लगने लगे हैं तो दूसरी ओर राष्ट्र अपनी पहचान, अपना अस्तित्व बचाने के लिए संघर्ष कर रहा है। एक ओर राष्ट्र अपनी सीमा को खोल रहा है तो कहीं कोई देश अपनी सीमा विस्तार कर रहा है। संचार क्रांति ने गत दशक विश्व को और भी करीब ला दिया है। परिवहन क्षेत्र का तेजी से विकास ने देशों की दूरी मिटा दी है। दूर देशों की भाषा, संस्कृति, साहित्य, इतिहास हमारे राष्ट्र पर प्रभाव डाल रहे हैं।” दुनिया का हर देश इससे प्रभावित हो रहा है। इसमें संचार तकनीकी का सबसे बड़ा योगदान है।

दूसरी ओर राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद और राष्ट्रप्रेम वह पवित्र भावना है जो एक देश के लोगों में, राष्ट्र के प्रति, एक-दूसरे के प्रति भावनात्मक लगाव पैदा करती है। यह राष्ट्र के स्वयं के प्रति गर्व एवं जिम्मेदारी की भावना से उद्भूत होती है। “राष्ट्रीयता किसी देश के विशेष प्रकार की संस्कृति और रहन-सहन को बढ़ावा देती है।” हाल के वर्षों में समस्त विश्व में राष्ट्रवादी समूहों ने सूचना एवं तकनीकी का भरपूर उपयोग करते हुए सोशल मीडिया के माध्यम से राष्ट्रीयता, राष्ट्र गौरव, राष्ट्रीय गर्व, देश-प्रेम एवं राष्ट्रवादियों की बहादुरी के किस्से फैलाना प्रारंभ कर दिया है। इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव दिखाई दे रहे हैं।

दरअसल “आधुनिक समय में राष्ट्रवाद ही राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति का प्रमुख वाहक है। राष्ट्रवाद अन्य देशों की तुलना में अपने देश की संस्कृति के श्रेष्ठ होने की भावना को भी बलवती करता है जिसके कारण अन्य देशों के साथ शत्रुता की भावना भी बढ़ सकती है। इक्कीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवाद की भावना अनेक युद्धों का कारण भी बनी है, जिसके उदाहरण जातीय समूहों के विभाजन के कारण होने वाले सीमा संघर्ष हैं। आर्थिक राष्ट्रवाद के कारण व्यापारिक संरक्षणवाद का जन्म होता है जो अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए बड़ा महंगा सौदा है।” इसे अमेरिका की वर्तमान व्यापारिक संरक्षणवादी नीति में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

भूमंडलीकरण और राष्ट्रवाद का संबंध काफी जटिल है। एक विचार के अनुसार भूमंडलीकरण राष्ट्रवाद की कम करता है, क्योंकि वैश्विक परस्पर निर्भरता देशों के बीच की बाधाओं को हटाती है। ख़रख़इसके विपरीत दूसरा विचार यह है कि राष्ट्रों के रूप में स्थापित राज्य न केवल फल-फूल रहे हैं बल्कि भूमंडलीकरण को बढ़ावा भी दे रहे हैं।” इसके अलावा एक तीसरा विचार यह भी है कि “भूमंडलीकरण ने राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ाया है। विश्व के लोगों का एक-दूसरे से अधिक मेल-जोल अक्सर घृणा को जन्म देता है जिससे संघर्ष बढ़ता है। भूमंडलीकरण से अप्रवासियों की संख्या में वृद्धि हुई है जिससे स्थानीय

लोगों के रोजगार के अवसरों आदि पर असर पड़ा है और सुरक्षा की चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। इस विचार से भूमंडलीकरण के कारण राष्ट्रीय अतिवाद के रास्ते खुले हैं।” हिंसा के कारण मध्य एशिया एवं म्यांमार से हो रहे पलायन को इस संदर्भ में देखा-समझा जा सकता है। यहाँ पर ‘आज की आवाज’ नामक पत्रिका में प्रकाशित अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, “आज भूमंडलीकरण के कारण पलायन का तत्व सामाजिक जीवन की धुरी बन चुका है। अब हम जातीय पलायन के रूप में जनता के एक जगह से दूसरी जगह निर्वासन, स्थानांतरण, शरणार्थी समस्या और घुमंतुओं को जगह-जगह देख सकते हैं।” इसकी वजह से संरक्षणवाद एवं एक-दूसरे के मुल्क के प्रति नफरत की भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, “आज दुनिया के विभिन्न हिस्सों में एक विशिष्ट प्रकार का राष्ट्रवाद संरक्षणवाद की वकालत करता हुआ दूसरे मुल्क के प्रति नफरत की बुनियाद पर खड़ा हो रहा है। यही अप्रवासियों के प्रति नफरत, किसी देश में काम करने वाली कंपनियों में स्थानीय लोगों के लिए रोजगार-कोटा, घरेलू उद्योगों एवं उत्पादों को संरक्षण प्रदान करने के लिए संरक्षणवादी नीतियों की वकालत आदि के रूप में प्रकट हो रहा है। फ्रांस, लंदन, पोलैंड, रूस, अमेरिका, ऑस्ट्रिया आदि देशों में ऐसे राजनीतिक दल और ऐसे नेतृत्व की लोकप्रियता लगातार बढ़ रही है जो इस तरह के एजेंडे को आगे रखते हुए वहाँ के लोगों को अतीत के गौरव एवं महानता की पुनर्बहाली और सुनहरे भविष्य का सपना दिखा रहे हैं।” इसमें सोशल मीडिया ने तो आग में घी डालने का काम किया है।

जब दुनिया भर के देश ‘ग्लोबल विलेज’ की परिकल्पना से निकल कर ‘ग्लोबल रूम’ की तरफ शनैः-शनैः बढ़ रहे हैं तो वैश्विक पटल के घटनाक्रम पर उनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना लाजिमी है। भारत भी इस घटनाक्रम से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। संचार की आधुनिक तकनीकी एवं सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सअप इत्यादि ने लोगों की सोच को व्यापक पैमाने पर प्रभावित किया है। पिछले साल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में राष्ट्रवाद को लेकर चला विवाद, वंदेमातरम् को लेकर उठा विवाद, ‘भारत माता की जय’ बोलने एवं राष्ट्रगान की अनिवार्यता को लेकर उठा विवाद अभी शांत भी नहीं हुआ था कि सोशल मीडिया पर ‘राष्ट्रवाद’ को लेकर विवाद शुरू हो गया। जैसे-राष्ट्रवाद क्या है, इसकी सीमा क्या है, आमजन का इससे वास्ता है या नहीं, यदि है तो किस स्तर तक? क्या राष्ट्रवाद सिर्फ देश की सीमा तक ही सीमित है या भौगोलिक सीमाओं को पार कर वैश्विक विचारधारा बन चुकी है, इत्यादि बातें दो अलग-अलग धाराएँ इस मसले पर अपने तर्कों के साथ अलग-अलग दिशाओं में खड़ी हैं।

भारत में इस समय राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रद्रोह पर जमकर बहस हो रही है। गाँव की गली-नुक्कड़ से लेकर देश की राजधानी में बैठे तरंगी चौनलों पर यह मुद्दा खूब छाया हुआ है। हर व्यक्ति और चौनल में होड़ लगी हुई है कि वह सबसे बड़ा राष्ट्रभक्त है और फला व्यक्ति राष्ट्रद्रोही। ऐसे में सोशल मीडिया भी इससे अछूता नहीं है। ट्विटर, फेसबुक, व्हाट्सअप और इंस्टाग्राम पर जहाँ कुछ गंभीर तर्क दिये जा रहे हैं; वहीं मजाक और व्यंग्य भी खूब किया जा रहा है। राष्ट्रवाद पर व्यंग्य कर रहे लोग राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम के नुस्खे के साथ ट्विट कर रहे हैं, जैसे-“टीवी एंकर रवीश कुमार के नाम से संचालित एक पैरोडी एकाउंट (/तअपौदकजअ) से ट्वीट किया गया कि, “बस्सी जब कहते हैं कि उनकी कमिटमेंट खाकी के प्रति है, तो समझ नहीं आता वो वर्दी की बात कर रहे हैं या निक्कर की रुदेशभक्ति;के;नुस्खे”। इसी तरह से बहुत सारे व्यंग्यपरक पंक्तियाँ सोशल मीडिया पर वायरल हो रही हैं।

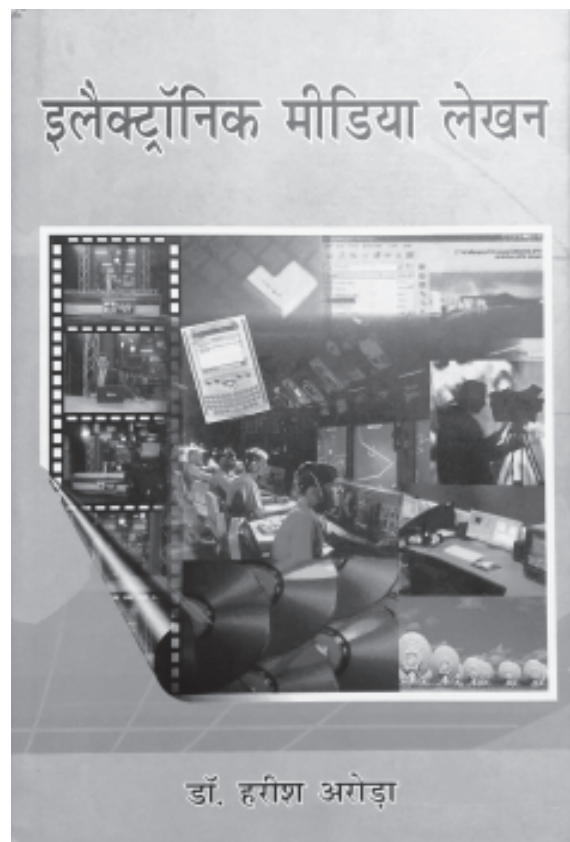
भूमंडलीकरण के इस दौर में किसी भी देश का आपस में जुड़ने का सबसे बड़ा कारण है संसाधनों की कमी और व्यापार-वाणिज्य का विकास। विश्व में कोई भी ऐसा राष्ट्र नहीं जो कि अपने संसाधनों से संपूर्ण हो, आर्थिक प्रगति के लिए नवीन तकनीकी का आना जरूरी है ताकि संसाधनों का न्यूनतम उपयोग कर अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। कोई देश मानव संसाधन में आगे है तो कोई प्राकृतिक संसाधन में तो कोई तकनीकी में। इसीलिए ऐसे देश दिन-प्रतिदिन एक-दूसरे के पूरक बनते जा रहे हैं। आज न बिना तकनीकी के संसाधन का उपयोग संभव है और न ही बिना संसाधन के तकनीकी का कोई उपयोग हो पायेगा; इस कारण समस्त वैश्विक पटल एक हो रहा है। मलेशिया का रबर अमेरिका जा रहे हैं तो भारत का स्टील जापान, इजराइल की तकनीकी से नई दिल्ली मिसाइल बना रहा है तो कहीं सिंगापुर इसरो के रॉकेट से अपने सेटेलाइट को अंतरिक्ष में भेज रहा है। ये प्रगति फिर आपसी देशों में प्रतियोगिता कराती है और यही स्वस्थ प्रतियोगिता विकास की गति को और तेज करती है। इस कारण यह जरूरी है कि देश अपनी भौगोलिक सीमा के आगे बढ़े और अपने सर्वांगीण विकास हेतु आपस में जुड़े। शायद यही भूमंडलीकरण का लक्ष्य भी हो।

भूमंडलीकरण के इस दौर में समस्त वैश्विक पटल उन समस्याओं से जूझ रहा है जो कि किसी सीमा का आदर नहीं करते। वॉ समस्याएँ आजाद हैं, वॉ किसी मर्यादा में बाधित नहीं हैं, जैसे- ग्लोबल वार्मिंग, तमाम तरह की बीमारियाँ, आतंकवाद, गरीबी, भूखमरी, घातक अस्त्रों की बढ़ती होड़ इत्यादि। कट्टर राष्ट्रवादी देश उत्तरी कोरिया या कांगो; क्या उनके पास इतने संसाधन हैं कि वॉ स्वयं की बीमारियों, गरीबी, भूखमरी का समाधान निकाल सकते हैं? क्या इराक या सीरिया या अन्य मध्य एशियाई देश इस्लामिक स्टेट जैसे खतरनाक आतंकवादी समूह को समाप्त कर पाएँगे? जवाब होगा नहीं। यदि हम राष्ट्रीयता का बोध लिए वैश्विक समुदाय से अलग-थलग हो जाएँगे तो अकेले उपर्युक्त समस्याओं से लड़ना मुश्किल हो जाएगा। “वैश्वीकरण

एक पहल है विश्व अब मानव विकास की बात करता है, प्रकृति और संसाधनों को बचाने की बात करता है। विश्व तो ये भी कहता है कि बिहार की गरीबी न रहे, हिमालय का अस्तित्व न विलीन हो जाए। हमारे पास शायद इतना धन और इतना संसाधन नहीं है कि हम अकेले लड़ सकें इन वैश्विक उत्पीड़नों से। इस कारण अब कहीं न कहीं वैश्वीकरण हमारी जरूरत हो चुकी है।”

वस्तुतः भारत द्वारा ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’, ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’, ‘अतिथि देवो भव’ एवं ‘सर्वधर्म समभाव’ इत्यादि की अपनार्ये जाने वाली पवित्र भावना ने वैश्विक पटल को एक सही राह दिखाई है। यही पवित्र भावना तकनीकी के हाहाकारी दौर में बढ़ते आवारा पूँजीवाद, राष्ट्रों के बीच अस्त्रों की बढ़ती होड़, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा, बढ़ती स्वास्थ्य समस्याओं से कारगर ढंग से निपटने में मदद कर सकती है। भारत के पास उपर्युक्त सिद्धांत सिखाने की विशिष्ट योग्यता है। हमने प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक बहुत से धर्मों, संस्कृतियों, सभ्यताओं, मूल्यों, विचारों को आत्मसात कर आगे बढ़ने का प्रयास किया; जिसने भारत को एक राष्ट्र के रूप में विकसित होने में सहायता की। हमारी राष्ट्रीयता के मूल में सभी समुदायों के प्रति आदर का भाव है। भारतीयता का विचार एक प्रकार से लघु रूप में भूमंडलीकरण की संकल्पना ही है। हम इसलिए भारतीय नहीं हैं क्योंकि हम विशेष प्रकार की जीवन-शैली अपनाते हैं; हम भारतीय इसलिए हैं कि हमने भारतीयों के साथ-साथ समस्त विश्व से प्रेम करते हैं और उनके कल्याण की कामना करते हैं। यही हमारा राष्ट्रवाद है जो भूमंडलीकरण से जुड़ कर भी अपनी अलग पहचान बनाये हुए है।

डॉ. हरीश अरोड़ा की ‘के.के. पब्लिकेशन्स’ से प्रकाशित पुस्तकें



आधुनिक कविता और राष्ट्रीयता

डॉ. नीतू परिहार

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर, राजस्थान

संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका निर्माण दस-बीस या सौ-दो सौ वर्षों में किया जाए। अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस तरह खाते-पीते, पढ़ते-लिखते, सोचते-समझते, राज-काज चलाते अथवा धर्म-कर्म करते हैं, उन सभी कार्यों से उनकी संस्कृति उत्पन्न होती है। वस्तुतः 'संस्कृति राष्ट्र की आत्मा होती है। राष्ट्र की सभी उपलब्धियों की झलक संस्कृति में दिखाई देती है। संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से हम जान सकते हैं किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते हैं।'¹

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। वैदिक युग से लेकर आजतक हमारी सांस्कृतिक अस्मिता सर्वमान्य है। विभिन्न भारतीय मनीषियों, चिन्तकों, विचारकों, महापुरुषों और साहित्यकारों ने हमारी इस सांस्कृतिक पहचान को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया है। दयानंद सरस्वती, राधाकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, जयशंकर प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, मैथिली शरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि जैसी महान विभूतियों ने अपने सद प्रयासों से जन-जन तक भारतीय संस्कृति को पहुँचाया है। 'माता: भूमि: पुत्रोहं पृथ्विया' अर्थात् मेरी माता भूमि है और मैं इस मातृभूमि का पुत्र हूँ, यह धारणा इन विद्वानों ने समाज में प्रतिष्ठित की है। अपनी भूमि के प्रति यह मातृभाव ही सबसे बड़ी राष्ट्रीयता है।

'राष्ट्रीय चेतना देश के निवर्तमान, वर्तमान और अवर्तमान तीनों कालों से संबंध होती है।'² यह भी सत्य है कि 'राष्ट्रीय चेतना व्यक्ति की मानसिकता व्यक्त करती है। राष्ट्र शब्द का प्रयोग भले ही प्राचीन हो किन्तु राष्ट्रीयता की भावना के उदय का इतिहास सही अर्थ में 19वीं शताब्दी से पहले का नहीं है।'³ राष्ट्रीयता विशिष्ट व्यक्तियों में पाई जाती है। ये व्यक्ति समूह बनाकर अपनी चेतना को समाज में परस्पर एकता के महत्व को बताकर उन्हें जोड़ते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो राष्ट्रीय चेतना से युक्त लोग ही समाज को एकता के सूत्र में पिरोते हैं। राष्ट्रीय चेतना का सांस्कृतिक परंपरा से घनिष्ठ संबंध होता है। यह संबंध पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। राष्ट्रीय संस्कृति उन सभी शक्तियों के विरुद्ध क्रोधाग्नि प्रज्वलित कर देती है, जो राष्ट्रीय विकास में बाधक है। राष्ट्र के प्रति निष्ठा, श्रद्धा और गौरव की अनुभूति राष्ट्रीय चेतना के मुख्य लक्षण हैं। आधुनिक हिन्दी कविता की विविध विशेषताओं के बीच राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति उसकी प्रबल प्रवृत्ति है। यही चेतना देशभक्ति के रूप में उदित हुई।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता जिस कलम से लिखी गई वह राग और उत्साह के स्वरो की साधना में अधिक प्रवृत्त रही है। इस धारा के कवियों के हृदय में विदेशी शासन के प्रति जितना गहरा आक्रोश था, उससे कहीं अधिक प्रेम अपने देश के लिए था। यही कारण रहा कि आजादी के दीवाने और स्वतन्त्र अस्तित्व के हामी इन कवियों ने देशप्रेम, नवनिर्माण, विद्रोह, अतीत का संस्तुति परक गान और असहयोग व आत्म बलिदान के गीत अधिक गाये हैं। देशभक्ति राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता का मुख्य स्वर था। देशभक्ति का सच्चा स्वरूप वह है जिसमें राग और उत्साह का समन्वित भाव हो। उत्साह राष्ट्रीयता का सूचक है और राग मानवीय सांस्कृतिक रूप का।

भारतेन्दु युगीन कवि श्रीधर पाठक की कविताएं समाज सुधार, प्रकृति प्रेम, देशप्रेम आदि पर केन्द्रित हैं। देशानुराग की भावना आप में प्रबल है। 'भारत गीत' के माध्यम से श्रीधर पाठक जी ने अपने भारत को सबसे अलग और श्रेष्ठ माना है। उनके अनुसार भारत विश्वरूपी मानव का मुकुट है और कृष्ण का प्रिय देश है-

'स्वर्गिक शीश-फूल पृथ्वी का / प्रेम-मूल, प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति रूप नटी का / ज्यों निशि का राकेश।'⁴

देशभक्ति और राष्ट्रीय प्रेम से ओतप्रोत श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' का झण्डा गीत राष्ट्रभक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है। जब वे अध्यापन कार्य कर रहे थे, देश में स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था। गांधी जी के विचारों पर असहयोग आंदोलन और सत्याग्रह आंदोलन चल रहे थे। संपूर्ण देश में क्रांतिकारी अपने जीवन को देश प्रेम की रक्षा में न्योछावर कर रहे थे। गांधीवादी विचारों

से प्रभावित पार्श्व जी ने अपने आपको देश के लिए अर्पण कर दिया। सन् 1921 में इन्होंने नंगे पैर और नंगे सिर रहकर आजादी की लड़ाई का संकल्प लिया। गांधी जी के मार्गदर्शन पर व गणेश शंकर विद्यार्थी के कहने पर 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' और 'राष्ट्रगान की दिव्य ज्योति' जैसे गीतों का सृजन किया। उन्होंने झण्डा गीत के माध्यम से भारत की महाशक्तिशाली, गौरवशाली होने आह्वान किया। विजयी, विश्व, तिरंगा प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा, भारत का बच्चा-बच्चा यह गीत जानता और गाता है। गीत गाते हुए अपने देश और राष्ट्रध्वज के प्रति गौरव अनुभव करता है-

‘आओ, प्यारे वीरों आओ
राष्ट्रध्वज पर बलि-बलि जाओ
एकसाथ सब मिलकर गावो
X X X X X X
शान न इसकी जाने पाये
चाहे जान भले ही जाए
विश्व विजय करके दिखलायें
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।⁵

राष्ट्रभक्त कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम भी बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। उनकी रचनाओं में प्रणय और राष्ट्रप्रेम की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के स्वर इनकी कविताओं में मुखरित होते हैं। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' इनकी प्रसिद्ध कविता है। जो व्यक्ति के मनमानस को ऊर्जा और तेज से भर देती है। स्वतंत्रता आंदोलन में इस कविता के माध्यम से कवियों से अपेक्षा की गई कि वे ऐसी ओजपूर्ण रचना करें जो जनता में ऊर्जा भर दे।

‘विश्वभर की पोषक वीणा, के सब तार मूक हो जाए
शांति दण्ड टूटे उस, महारुद्र का सिंहासन थरा जाए
उसकी श्वासोच्छ्वास दाहिका, विश्व के प्रांगण में....
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।⁶

बालकृष्ण शर्मा की कविता राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ भारत के अतीत की महिमा का गौरवगान एवं भविष्य निर्माण योजना का कथन भी करती हैं-

‘बिन्ध्य, सतपूर्णा, नागा, खसिया, ये दो औघट, घाट महा,
भारत के पूरब-पश्चिम के, ये दो भीम कपाट महा।
तुंग शिखर, चिर अटल हिमालय, हैं पर्वत सम्राट यहाँ
हमने बहुत बार सिखी है, कई क्रांतियां बड़ी-बड़ी
इतिहासों ने किया सदा ही, अतिशय मान हमारा है
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्तान हमारा है।’

‘राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का जैसा संश्लिष्ट वर्णन नवीन की कविताओं में मिलता है वैसा अन्यत्र कम ही देखने में आता है।’ देश के प्रति सम्मान, आदर का भाव प्रसाद की कविता में देखने को मिलता है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'मधुमय देश हमारा' भारत के सौन्दर्य को प्रकट करती है-

‘अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अन्जान क्षितिज को मिलता एक सहारा
लहरें टकराती अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा
हेम कुंभ ले उषा सवेरे, भरती ढुलकाती सुख मेरे।’

आधुनिक काल के साहित्यकारों में सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी' कविता लिखने वाली सुभद्रा कुमारी चौहान देश प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना के लिए जानी जाती हैं। भारत छोड़ो आंदोलन में अपने पति के साथ सक्रिय रहीं। 1857 के स्वतंत्रता आंदोलन की वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मी बाई पर इनके द्वारा रचित कविता ने जन मानस के हृदय में सदा के लिए रानी की छवि को स्थापित कर दिया। बच्चे-बच्चे की जुबान पर इस कविता के बोल आज भी सुने जा सकते हैं-

‘अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट फिरंगी की माया
व्यापारी बन दया चाहता था, जब वह भारत आया
रानी दासी बनी, बनी वह दासी अब महारानी थी
बुन्देले हर बोलो के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।⁸

रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कविता कहने वाले उत्कृष्ट प्रतिनिधि कवि हैं। दिनकर की कविताओं में विद्रोह, राष्ट्रप्रेम, अन्याय तथा शोषण के प्रति आवाज बुलन्दी से उठी है। दिनकर मैथिलीशरण गुप्त के बाद सबसे प्रतिभाशाली राष्ट्रीय चेतना के गायक माने जाते हैं। 'किसको नमन करूँ मैं' कविता में वे भारत की महिमा का वर्णन बतलाते हैं। भारत की एकता, अखण्डता को विश्व में श्रेष्ठ बतलाते हैं। उनके अनुसार भारत मानवता का ललाट है-

'मानवता के इस ललाट, चन्दन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं, भारत! किसको नमन करूँ मैं?'

दिनकर भारत के तिरंगे को जनता की राज पताका मानते हैं। 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' कह कर वे भारत की आन, बान और शान को बनाये रखना चाहते हैं। उनके अनुसार-

'इस पर न्यौछावर तन-मन है
न्यौछावर जीवन यौवन है
यह सारे भारत का प्रण है
न्यौछावर सर्वस्व हमारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'

राष्ट्रीय चेतना से युक्त बालस्वरूप राही की कविता 'वतन के वास्ते जियो' भी बहुत प्रभावी है। वे अपने वतन के लिए सभी का आह्वान करते हुए कहते हैं कि अपने की स्वतंत्रता के लिए युद्ध करना पड़े तो करना चाहिए। शत्रुओं को भारत भूमि पर पैर भी नहीं रखने देना चाहिए-

'वही सपूत भेंट में जो हर खुशी चढ़ा सके
वो जिन्दगी है जिन्दगी, वतन के काम आ सके,
सुनो बुला रही है माँ न शत्रु पग धरे यहाँ
धरा के वास्ते मरो, गगन के वास्ते मरो।''

अतः यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता एक विराट भावधारा है जो व्यक्ति के अंतर में निरंतर प्रवाहित होती रहती है। इस भावधारा में डूबा व्यक्ति राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की परिकल्पना ही नहीं करता अपितु उसे क्रियान्वित करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहता है। आधुनिक कवि भी इसी भावधारा में बढ़ते रहे और अपने देश की एकता, अखण्डता, संस्कृति और सम्मान को कविताओं के माध्यम से बनाए रखा।

संदर्भ

- 1 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति भाषा और राष्ट्र, पृष्ठ सं. 11
- 2 मधुमती, जुलाई 2008, पृष्ठ सं. 26
- 3 हरिचरण शर्मा, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, पृष्ठ सं. 36
- 4 अंजीव अंजुम, हिन्दी के आधुनिक कवि, पृष्ठ सं. 42
- 5 वहीं, पृष्ठ सं. 54
- 6 अंजीव अंजुम, हिन्दी के आधुनिक कवि, पृष्ठ सं. 56
- 7 विजेंद्र स्नातक, हिंदी साहित्य का इतिहास, छायावाद युग, पृष्ठ सं. 268
- 8 सुभद्रा कुमारी चौहान, पुष्करिणी, पृष्ठ सं. 469
- 9 नीरज, भगवत शरण चतुर्वेदी (संपा.), विजय घोष, पृष्ठ सं. 47

सोशल मीडिया, युवा वर्ग तथा राष्ट्रवाद

दिनेश कुमार गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र)

राजकीय महाविद्यालय बनबसा (चम्पावत)

सोशल मीडिया एक गैर परम्परागत मीडिया का रूप है जिसके अन्तर्गत इंटरनेट के माध्यम से कहीं पर भी पहुंच बनाया जा सकता है। यह एक ऐसा विशाल नेटवर्क है जो कि विश्व में कहीं भी रहने वाले व्यक्तियों को आपस में एक दूसरे के साथ जोड़े रखता है। यह संचार का एक ऐसा माध्यम है जो तीव्र गति से सूचनाओं का आदान प्रदान करने में सहायता करता है। वर्तमान परिवेश युवाशक्ति का है और भारत में पैसठ प्रतिशत के करीब युवा वर्ग है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स युवाओं की जिन्दगी का एक अहम हिस्सा बनता जा रहा है। भारत में सोशल मीडिया पर प्रति दिन औसत 30 मिनट का समय लोगों के द्वारा खर्च किया जा रहा है।

सोशल मीडिया एक ऐसा मीडिया है जो शेष सभी मीडिया (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक व समानान्तर मीडिया) से अलग है। सोशल मीडिया इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे उपयोग करने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के किसी प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि का उपयोग कर पहुंच बना सकता है। यह द्रुत गति से सूचनाओं का आदान प्रदान करता है। यह एक ऐसी भूमिका में है जो किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह, देश आदि को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और समृद्ध बनाता है।

सोशल मीडिया के निम्न रूप देखे जा सकते हैं-

1. सहयोगी परियोजना जैसे विकिपीडिया
2. ब्लॉग और माइक्रोब्लॉग जैसे ट्विटर
3. सोशल खबर नेटवर्किंग साइट्स जैसे डिग और लेकरनेट
4. सामग्री समुदाय जैसे युट्यूब और डेली मोशन
5. सामाजिक नेटवर्किंग साइट्स जैसे फेसबुक
6. आभासी खेल दुनिया जैसे वर्ल्ड ऑफ वॉरक्राफ्ट
7. आभासी सामाजिक दुनिया जैसे सेकंड लाइफ

अपनी शुरुआती समय में सोशल नेटवर्किंग साइट्स एक सामान्य सी दिखने वाली साइट होती थी और इसके जरिए लोग एक दूसरे के साथ चैटिंग करते थे और अपनी निजी जानकारी व विचार एक दूसरे के साथ शेयर करते थे। दूरसंचार तथा कम्प्यूटर के युग में आज विश्व स्तरीय सूचनाओं का संकलन आसानी से किया जा सकता है। वैश्वीकरण की दुनिया में आज समूचा विश्व एक गाँव के रूप में परिवर्तित सा हो गया है। प्रसारण में कम्प्यूटर के नये नये वर्जन तकनीकी प्रगति के साथ जुड़ते चले जा रहे हैं जिसके कारण हम सभी मुद्दे जैसे शिक्षा, बाजारीकरण, सामाजिक, आर्थिक सभी आवश्यक जानकारी एक ही स्थान पर बैठे प्राप्त कर लेते हैं। वर्तमान में इंटरनेट की भूमिका सर्वोच्च महत्वपूर्ण हो गयी है। परिणामस्वरूप आनलाइन के क्षेत्र में सोशल मीडिया से जुड़ने वालों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। वर्तमान में फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, आदि पर जुड़ने वालों की संख्या में भारी वृद्धि हो रही है और नेटवर्किंग साइट का भी बाजार बढ़ता जा रहा है।

राष्ट्रवाद

ऐतिहासिक रूप से भारतीय राष्ट्रवाद का उदय 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद हुआ। औपनिवेशिक रूप से 1857 की क्रान्ति एक सिपाही विद्रोह था, उच्च वर्ग के लिए यह असंतोश था, सैन्य दृष्टि से यह युद्ध था। यही से देश में अनेक आन्दोलन हुए जैसे लगान न देने का आन्दोलन, होमरूल, असहयोग आन्दोलन तथा अन्य स्थानीय आन्दोलन। इन सभी में हिन्दू, मुस्लिम व अन्य धर्मों के लोग शामिल थे और सभी का उद्देश्य था राष्ट्रवाद। सोशल मीडिया के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश आदि को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। एक राष्ट्र, एक सोच, एक भाषा, एक संस्कृति जैसी सोच राष्ट्रवाद कहलाती है। राष्ट्रवाद निश्चित रूप से सभी के सहयोग की भावना, एक दूसरे पर विश्वास कराना, अपने ज्ञान से दूसरों को शिक्षित करना, सामाजिक परोपकार की भावना, स्वास्थ्य

सेवाओं को जरूरतमन्दों तक पहुंचाना, सैन्य व पुलिस प्रशासन का सहयोग करना इत्यादि सभी राष्ट्रवाद के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। राष्ट्रवाद सभी के लिए आशा की एक किरण होती है जो हमारे देश को समावेशी विकास के नये शिखर तक निश्चित रूप से पहुंचायेगा।

सोशल मीडिया, युवा वर्ग तथा राष्ट्रवाद विषय के अध्ययन का उद्देश्य निम्नवत है-

1. सोशल मीडिया क्या है ?
2. सोशल मीडिया, युवा वर्ग व राष्ट्रवाद में सम्बन्ध की दिशा।
3. सोशल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण।

वर्तमान में नई नई तकनीकों के बाजार में आ जाने से साधारण उपभोक्ता भी नई नई सुविधाओं को प्रयोग करने को तैयार रहता है यह उदारकरण और स्वतंत्र बाजार का वास्तविक रूप होता है। जौ निश्चित रूप से भिन्न-भिन्न लोगों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव डालता है। सोशल मीडिया और इन्टरनेट ने भारतीय मीडिया और मनोरंजन क्षेत्र को गतिशील करते हुए भारतीय मीडिया के बाजार को एक लाख करोड़ से अधिक का कर दिया है। सी0 आई0 आई0 - पी0 डब्ल्यू0 सी0 2015 में जारी रिपोर्ट के अनफसार 2018 तक यह लगभग 02लाख 27 हजार करोड़ तक पहुंच जायेगा। स्टैटिस्टा 2018 की रिपोर्ट के अनुसार यूजर्स की संख्या 2022 तक 370.77 मिलियन हो जायेगी।

सोशल मीडिया का प्रभाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भर बनाने की दिशा में एक व्यापक नीति बनायी गयी जिसमें कृषि, औद्योगीकरण, रोजगार तथा गरीबी दूर करने पर बल दिया गया। बढ़ते हुए सोशल मीडिया का आधुनिक युग में उपयोग मात्र सूचना आदान प्रदान का माध्यम ही नहीं है वरन् यह लोगों के व्यापार में परिवर्तन करने का एक प्लेठार्म भी है। एक समय ऐसा था जब संचार के सीमित साधन देश को उपलब्ध थे। आज इन प्रचुर संसाधनों के द्वारा विश्व की सीमाओं को पार करते हुए अन्तरिक्ष की सीमा पार कर लिया है। शिक्षा के साथ साथ विज्ञान के विकास से हम समावेशी विकास की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। सामाजिक परिवर्तन जिसकी प्रत्येक गति हमेशा समान नहीं होती है। सामाजिक मीडिया ने सामाजिक संबन्धों में अनेक परिवर्तन किये हैं। सोशल मीडिया ने अनेक देशों की भौगोलिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सीमाओं को समेट दिया है जिसके कारण लोगों के रहन सहन तथा जीवन शैली पर प्रभाव पड़ा है। लोकतन्त्रातिक मताधिकार, स्त्री शिक्षा का प्रसार, न्यूनतम मजदूरी का कानूनी रूप दिया जाना, कुरीतियों, अन्धाविश्वासों की समाप्ति में सोशल मीडिया को अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका है।

वर्तमान परिवेश में यह देखने को मिलता है कि सोशल मीडिया के कारण हर व्यक्ति पत्रकार बन गया है और प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता जा रहा है। सोशल मीडिया पर संदेह उठते रहते हैं पर इसके कारण अब झूठ का वातावरण अब कम हो गया है क्यो कि इन्ही झूठी खबरों का सोशल मीडिया खंडन भी कर देता है। समान विचारधारा के लोग एक दूसरे के साथ जुड़ रहे हैं और राष्ट्रवाद की लहर तैल रही है।

गुड गवर्नेंस और सोशल मीडिया

सोशल मीडिया के जरिए गुड गवर्नेंस यानि की बेहतर प्रशासन के रिस्ते को स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। ऑक्सफोर्ड इंटरनेट इंस्टीट्यूट के प्रो0 विलियम एच.डटन सोशल मीडिया को लोकतन्त्र के पांचवे खम्भे के रूप में देखते हैं। सरकारें सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर तेजी से सक्रिय हो रही हैं। कहा जा रहा है कि इससे सरकारी विभाग जनता तक तेजी से पहुंच स्थापित कर सकेंगे और लोग अपनी समस्याओं को अधिकारियों तक पहुंचा कर तेजी से सुलझा सकेंगे। इससे भ्रष्टाचार पर भी रोक लगेगा। इससे भ्रष्टाचार की शिकायत करना भी आसान हो गया है।

वर्ष 2016 के शेर खबरों में राष्ट्रवादी विषयों में भारतीय ध्वज, राष्ट्रीय गान, भारतीय सेना का सर्जिकल स्ट्राइक, चीनी उत्पादों का बहिष्कार आदि शामिल रहे हैं। सोशल मीडिया पर आजकल जो चल रहा है उससे सच और झूठ के बीच अन्तर कम होता जा रहा है। इसने सृजनशीलता और मनोरंजन के बीच हडकंप मचा दिया है। यदि सोशल मीडिया ज्ञान, सूचना, कौशल, और विविधातामूलक जागृति उत्पन्न कर व्यक्तित्व विकास के नये अर्थ देता है तो निश्चित रूप से भारत का युवा समावेशी विकास की ओर बढ़ रहा है, ऐसा कहा जा सकता है।

सोशल मीडिया के महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभावों का विवरण निम्नवत कर सकते हैं-

1. विश्व के अनेक देशों में रह रहे लोगों से सूचनाओं का आदान प्रदान करना।
2. इस माध्यम से सभी को अपनी बात कह सकने का एक मंच प्राप्त होता है।
3. यह लोगों को एक ही समय पर अलग अलग होने के बावजूद एक साथ जोड़ता है और लोगों के हित लगाव और व्यवहार के नये पहलुओं को जन्म दिया है।
4. विशेषज्ञों ने इसे सूचना हाइवे का नाम दिया है जिस पर कोई भी चल सकता है।
5. यह अपनी सकारात्मक भूमिका के माध्यम से किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और अलग अलग देश आदि को

आर्थिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक रूप से विकसित बना सकता है। निश्चित रूप से सोशल मीडिया के माध्यम से कई ऐसे कार्य किये जा सकते हैं और किये गये भी हैं जिनसे लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद की मजबूती को बढ़ावा मिलता है जिससे देश की एकता, अखंडता, और पंथनिरपेक्षता में वृद्धि होती है।

सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव के साथ साथ कुछ नकारात्मक प्रभाव भी हैं। जो इस प्रकार हैं-

1. इस मीडिया के माध्यम से कुछ ऐसी भी अफवाहे व सूचनाएं आती हैं जिनमें वास्तविक सच्चाई नहीं होती है।
2. लोगो के बीच सूचनाओं के आदान प्रदान की होड़ सी लगी रहती है।
3. युवा पीढ़ी में यह नैतिकता व सामाजिक व्यवहार के परिभाषा को बदल रहा है।
4. गलत चीजों जैसे ब्लू व्हेल के प्रसारित होने के कारण युवा वर्ग पर गलत प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त विषय का समीक्षात्मक अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सोशल मीडिया का ग्लोबलाइजेशन के युग में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युवा वर्ग के बीच सोशल मीडिया की अलग साख फैल चुकी है। नई पीढ़ी इसका प्रयोग आगे बढ़ कर कर रही है। इसके साथ ही साथ इस क्षेत्र में कुछ अलग किये जाने की आवश्यकता है जिससे इसके दुरुपयोग को रोका जा सके। इसके बढ़ते हुए दुरुपयोग को देखते हुए देश में कंटेंट पर निगरानी रखने के लिए एक प्रभावी तन्त्र बनाये जाने की आवश्यकता है।

आजकल देश प्रेम सोशल मीडिया पर सबसे ज्यादा दिखायी दे रहा है। व्हाट्सऐप इसमें पहले स्थान पर है। आजकल यह भी देखा जा रहा है कि युवा वर्ग देश हित की बातें ज्यादा लाइक कर राष्ट्रवाद की भावना दिखाते हैं लेकिन देशहित में ट्रैफिक नियमों का पालन नहीं करते। ज्यादातर लोग कानून का पालन करने से बचते दिखायी देते हैं। इस प्रकार लोगो में अपनी सुविधाओं के लिए देश प्रेम दिखाता ही नहीं। राष्ट्रपत्रों पर भ्रष्टाचार, अशिक्षा, दुराचार, महंगाई, आतंकवाद, बेरोजगारी आदि से भारतमाता को स्वतंत्र कराने की चर्चा होती है पर आजादी का त्योहार समाप्त होते ही लोग पुनः पुराने मार्ग पर चल पड़ते हैं। हमें देशप्रेम की भावना निरन्तर बनाये रखनी होगी। वर्तमान दौर में सोशल मीडिया, युवा वर्ग तथा राष्ट्रवाद के अर्थ में परिवर्तन हो गया है। जिसका प्रमुख कारक है उपभोक्तावादी संस्कृति तथा विज्ञापन प्रधान बाजार। सोशल मीडिया, युवा वर्ग, राष्ट्रवाद तथा सामाजिक जीवन के बीच गहरा सम्बन्ध बनता चला जा रहा है। इन्टरनेट तथा सोशल साइट्स उपभोक्ता के जीवन शैली और व्यक्तित्व को बदल रहे हैं।

सन्दर्भ

1. सुभाष, धूलिया. (2001) सूचना क्रान्ति के विविधा आयाम, ग्रन्थ शिल्पी नई दिल्ली
2. पी0सी0 जोशी, संचार और राष्ट्र निर्माण: नजरिया और नीति भाग 1, जन मीडिया अंक 30 सितम्बर, 2014
3. चौधरी, मनीषा. (15 अप्रैल, 2017) राष्ट्रवाद: औजार व हथियार
4. हरबर्ट आई. शीलर, संचार माध्यम और सांस्कृतिक वर्चस्व, ग्रंथ शिल्पी, पृष्ठ 86-87
5. विष्णु राजगढ़िया, जनसंचार: सिद्धान्त व अनुप्रयोग, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
6. खांडेकर, वनिता-कोहली (2017) भारतीय मीडिया व्यवसाय, सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली।
7. जोशी, शालिनी; जोशी, शिवप्रसाद, (2015) नया मीडिया अध्ययन और अभ्यास, पेंगुइन, यू0के0।
8. झा, चन्द्र, प्रभात, मीडिया और बाजारीकरण, न्यूजराइटर डाट इन/2015/09/25/मार्केट-एंड- मीडिया।
9. बाजार से लड़ने के लिए बाजार का होना जरूरी, वागर्थ (पत्रिका, मई 2006)।
10. शर्मा, कुमुद (2003) भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली।
11. <http://www.newswriters.in/2015/05/26/social-sphere-of-social-media/>
12. <https://www.bbc.com/hindi/social-38954751>
13. <https://www.stati/Ba.com/stati/Bics/278407/number-of-social-network-users-in-india/>

भारतीय राष्ट्रवाद और डॉ. अम्बेडकर

गणेश ताराचंद खैरे

शोधार्थी, पीएच.डी.

चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, पुणे

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक बहु आयामी व्यक्तित्व के व्यक्ति थे। अम्बेडकर एक संयमी एवं अनुशासित व्यक्ति थे। अस्पृश्य परिवार में जन्म होने के बाद अम्बेडकर जी को अपने जीवन में धार्मिक रूढ़ियों एवं परंपराओं का सामना करना पड़ा। उनके प्रारंभिक जीवन में जाति सूचक और अपमान जनक शब्दों को सुनकर वह व्याकुल हुए इस कारण उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया। डॉ. अम्बेडकर अपमानों एवं तिरस्कारों से विचलित हुए बिना उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र की सेवा में समर्पित कर दिया। वे अपने समाज और राष्ट्र के प्रति सचेत रहे, जिस कारण आज वह 'भारत रत्न' के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। जाति, हिंदू सामाजिक ढाँचा, सामाजिक न्याय, भारतीय अल्प संख्याकों को समझने में उनके योगदान के अलावा देश तथा राष्ट्र निर्माण के संबंध में उनके विचारों के गहनता से अध्ययन की आवश्यकता है।

भारत एक राष्ट्र

डॉ. अम्बेडकर भारत को एक राष्ट्र नहीं बल्कि निर्माणधीन राष्ट्र के रूप में देखते थे। 1930 में दलितों के लिए अलग सीटों के प्रावधान के बारे में म. गांधी के साथ बहस में उन्होंने अपना मत स्पष्ट कर दिया था। डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि, 'वास्तव में भारतीयों का कोई देश नहीं है।' फिर 26 नवम्बर 1949 को जब सदन स्वतंत्र भारत के संविधान को पारित करने जा रहा था तो उन्होंने अपनी राय जाहिर की थी कि, हम एक देश हैं, यह सोच बड़ा भुलावा है।

उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि, "हजारों जातियों में बैठे लोग एक राष्ट्र का हिस्सा कैसे हो सकते हैं? जातियाँ राष्ट्रीयता विरोधी होती हैं, एक तो वे सामाजिक जीवन में भेदभाव को बढ़ावा देती हैं। दूसरे विभिन्न समूहों में ईर्ष्या एवं अलगाव पैदा करती हैं। अगर हम राष्ट्र बनाना चाहते हैं, तो हमें इन कठिनाइयों को दूर करना होगा। भाईचारे की बात तभी हो सकती है जब राष्ट्र विद्यमान हो।"²

डॉ. अम्बेडकर लोकतांत्रिक भारत के साथ लोकतांत्रिक समाज चाहते थे। जिसमें कि स्वतंत्रता, समता, बंधुता, जीवन के विभिन्न अंग हो वे ऐसे राष्ट्र का निर्माण नहीं चाहते थे। जिसमें स्वतंत्रता तो हो लेकिन आपसी भाईचारा, समता एवं बंधुता न हों। म. गांधी और देश के अन्य नेता, देश में स्वतंत्रता चाहते थे इसके अलावा कुछ नहीं। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि समाजवाद में समता का उच्च स्थान होता है। 'पूँजीवाद' में स्वतंत्रता ऊपर और समता नीचे रहती है। 'लोकतांत्रिक' समाज में राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विषमता का अन्त होता है। इसका अन्त भी दलित, पिछड़े समाज की अपने को छोटा समझने की भावना का अन्त होता है। यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर प्रजातंत्र के साथ-साथ आर्थिक प्रजातंत्र भी चाहते थे। जहाँ हर हाथ को अर्थ की प्राप्ति हो और राष्ट्रीय एकता के लिए बंधुत्वमय एकता का भाव हो।

मुसलमानों के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि, "वे पाकिस्तान बनाने के बजाए 'संयुक्त राज्य अमेरिका' की भाँति 'संयुक्त भारत' नाम से सुलह समझौते का फार्मूला निकाल लें। दूसरी तरफ हिंदुओं से अपील की, यदि वे वर्णगत आधार का अंत कर सामाजिक समता के आधार पर संगठित हो जाए तो मुसलमान भी अखण्ड राष्ट्र के निर्माण में शरीक हो जायेंगे इससे भारत एक समृद्ध राष्ट्र बनेगा।"³

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि, "कांग्रेस केवल राजनैतिक स्वतंत्रता की बात करती है जब कि, मैं दो हजार वर्षों से मानवीय अधिकारों से वंचित दासता का जीवन जीनेवाले दलितों की स्वतंत्रता और उनके मानवाधिकारों की बात करता हूँ। मैं संपूर्ण भारत में अहिंसात्मक, लोकतांत्रिक आंदोलन प्रारंभ कर सही रूप में नया इन्कलाब लाऊँगा।"⁴ भारत की स्वतंत्रता के साथ यहाँ लोकतंत्र की स्थापना एवं समाजवाद लाने के लिए उन्होंने पूँजीवादी और जमींदारी प्रथा का विरोध किया। भूमि और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर जोर इसलिए दिया कि, पूँजीपती, जमींदार मजदूरों का शोषण न कर सके।

डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि में राष्ट्रवाद का आधार

जाति प्रथा का विरोध- डॉ. अम्बेडकर ने अपनी किताब 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' में लिखा है कि, "मैं निस्संशय

यह कह सकता हूँ कि समाज व्यवस्था को बदलने के बगैर प्रगति संभव नहीं है। जाति प्रथा की नींव पर कुछ भी निर्माण नहीं हो सकता। न तो राष्ट्र का निर्माण हो सकता है और न ही नैतिकता का। जाति प्रथा के नींव पर जो कुछ भी बनाया जायेगा उसमें दरारें पड़ जाएगी वह कभी भी पूरा नहीं हो पाएगा।⁷⁵

धार्मिक मूल्यों का त्याग– डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि धार्मिक मूल्यों का त्याग करना चाहिए और नए मूल्यों को अपनाया जाए। उन्होंने एकता, स्वतंत्रता, सभी के लिए सम्मान और नागरिक अधिकारों पर विशेष जोर दिया। डॉ. अम्बेडकर जीवन के हर क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक में लोकतंत्र के पक्षधर थे। उन्होंने लोकतंत्र की अपनी अवधारणा में हर व्यक्ति की गरिमा को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

प्रबल केन्द्रीय सरकार– डॉ. अम्बेडकर केंद्र को और अधिक शक्तियाँ प्रदान करके देश की 'एकता एवं अखण्डता' के हित में उसे मजबूत देखना चाहते थे। उन्होंने कहा कि, भारतीय समाज न केवल जाति तथा वर्गों में बंटा हुआ है बल्कि इसमें क्षेत्रीय, भाषायी, परंपरागत, संस्कृति और विचारों की भी विभिन्नताएँ देखी जाती हैं। इसीलिए 'प्रादेशिक एकता' और 'प्रशासनिक अनृशासन' के लिए एक प्रबल केंद्र आवश्यक है।

स्वतंत्रता और समानता पर आधारित समाज– डॉ. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद दलितों और निर्धनों तथा देशप्रेम के उद्धार के साथ प्रारंभ हुआ। राष्ट्रीयता संबंधी उनके विचार केवल गुलाम देशों कि मुक्ति तक ही सीमित नहीं थी, वह प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता चाहते थे। उनके अनफसार समता के बिना स्वतंत्रता अधूरा लोकतंत्र है।

नारी अधिकारों का समर्थन– डॉ. अम्बेडकर हमेशा देश के दलित वर्ग एवं नारियों कि परेशानियों के बारे में सोचते थे। डॉ. अम्बेडकर का विचार था कि भारत जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण देश में जहाँ अनेक धर्म, भाषाएँ एवं परंपराएँ हैं, जहाँ सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक स्तर पर अनेक भेद एवं रूढ़िवादिताएँ भी हैं, समाज में जिन वर्गों का सदियों से शोषण हुआ है, जिनके अस्तित्व को ही नकारात्मक दृष्टि से देखा गया, जिनको सदा दूसरे दर्जे का नागरिक माना गया है। डॉ. अम्बेडकरने महिलाओं को समाज रचना कि एक बड़ी ताकद के रूप में पहचाना।

नारी को माता का रूप बताते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहाँ पुरुष के पढ़ने पर पुरुष शिक्षित होगा, परंतु एक नारी के शिक्षित होने पर वह स्वयं एवं अपने आनेवाले बच्चों एवं परिवार को भी शिक्षित करती है। इस प्रकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने समाज की सुरक्षा एवं सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र हित में सामाजिक महिलाओं के लिए विचार व्यक्त किये। जाति प्रथा पर हो रहे अत्याचार को तो वह स्वयं महसूस कर रहे थे। लेकिन महिलाओं पर हो रहे अत्याचार से वह व्याकुल हो जाते थे।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम और राष्ट्रवाद

विश्वनाथ दास उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे, उस समय उन्होंने कहा था "मैंने एक ही व्यक्तित्व डॉ. अम्बेडकर को देखा जिन्होंने देश हो या विदेश कहीं भी अपने राष्ट्र के विरुद्ध एक भी शब्द सहन नहीं किया, यदि कहीं किसी ने कोई ऐसा शब्द कहा तो उन्होंने तुरंत उसका मुंहतोड़ जबाब दिया।"⁷⁶ डॉ. अम्बेडकर ने कभी भी अपने राष्ट्र कि बुराई नहीं सुनी और हर समय वो स्वतंत्रता के बारे में विचारमग्न रहते थे। स्वतंत्रता संघर्ष की दौड़ में दलित कभी पीछे न रहें इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को समानता पर लाने के लिए संघर्ष छोड़ा। डॉ. अम्बेडकर ने भारत की स्वतंत्रता के साथ-साथ लोगों की वकालत करते हुए 1930 में गोलमेज सम्मेलन के दौरान लन्दन के गोलमेज परिषद में अंग्रेजों को बताया था कि आपके शासन में विसंगतियाँ हैं। उनसे जल्द से जल्द छुटकारा एवं स्वतंत्रता चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा, "भारत की विदेशी शासन कि मुक्ति के साथ-साथ गुलामों के गुलामी की स्वतंत्रता चाहिए। हर नागरिक को समान 'वोट' के अधिकार के अलावा हर 18 वर्ष के बालिग को मताधिकार चाहिए। मुसलमानों, सीक्खों, क्रिश्चिनों के आरक्षण की भाँति ही दलितों को भी आरक्षण चाहिए। दलितों को अपना प्रतिनिधित्व चुनने के लिए प्रथम निर्वाचण चाहिए।

निष्कर्ष रूप में कहाँ जा सकता है कि, डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रवाद एवं देश भक्ति की मिसाल थे। जवाहरलाल नेहरू ने कहाँ था कि, डॉ. अम्बेडकर का नाम भारत कि स्वतंत्रता और संविधान के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि, एक दुसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

- 1 अम्बेडकर का राष्ट्र चिंतन, दै. जागरण (कानपुर, 6 दिसम्बर 2007, पृष्ठ 10)
- 2 विवेक कुमार – अम्बेडकर का राष्ट्रचिंतन, दै. जागरण (कानपुर, 6 दिसम्बर 2007, पृष्ठ 10)
- 3 जाटव डी. आर – अम्बेडकर का राष्ट्र चिंतन, दै. जागरण (कानपुर, 6 दिसम्बर 2007, पृष्ठ 99)
- 4 जाटव डी. आर – अम्बेडकर का राष्ट्र चिंतन, दै. जागरण (कानपुर, 6 दिसम्बर 2007, पृष्ठ 99)
- 5 जाटव डी. आर – अम्बेडकर लाइफ अँड मिशन- 1962, पृष्ठ 116
- 6 जाटव डी. आर. – अम्बेडकर लाइफ अँड मिशन- 1962, पृष्ठ 117

सामाजिक-राष्ट्रीय सरोकार के सर्वप्रथम प्रवर्तक : पत्रकार 'भारतेन्दु'

कामिनी देवी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी के जनक कहे जाते हैं। इनका जन्म सन् 1850 ई. में काशी के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता गोपालचन्द्र जी 'गिरिधर दास' उपनाम से काव्य रचना करते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक पूर्ण प्रतिभा-सम्पन्न लेखक थे वह न केवल कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार बल्कि एक प्रतिभा-सम्पन्न पत्रकार भी थे। हिन्दी, उर्दू, बंगला एवं अंग्रेजी के ज्ञाता भारतेन्दु ने महज पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही साहित्य सेवा प्रारम्भ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएँ छपती थी। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 'कविवचन सुधा' (1868) के अतिरिक्त 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (1873), 'बाला बोधिनी' (1874) एवं 'भगवद्भक्ततोषिणी (भगवत्तोषणी)' नामक पत्रिका धार्मिक जागृति के लिए संपादित किया जिनमें निहित देशभक्ति के कारण उन्हें हुकुमत का कोपभाजन भी बनना पड़ा। इसके अतिरिक्त इन्होंने समानान्तर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए इन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की। अपनी लोकप्रियता के कारण इन्हें काशी के विद्वानों द्वारा 1880 में 'भारतेन्दु' की उपाधि से नवाजा गया। हिन्दी साहित्य भारतेन्दु के देन को सदैव सराहता रहेगा क्योंकि इन्होंने ही रीतिकाल के विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोकर साहित्यिक भाषा के क्षेत्र में खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ।

साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेन्दु समाज सेवा भी करते रहे। इन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योग दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। इन्होंने सरस्वती माँ की साधना में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन करने हेतु धन का बहुत बड़ा भाग साहित्य व समाज सेवा में लगा दिया जिससे जीवन का अन्तिम दौर आर्थिक अभाव में ही गुजरा इस कारण वह क्षय रोग से भी ग्रसित हो गए और महज 35 वर्ष की अल्पायु में 6 जनवरी सन् 1885 ई. को हिन्दी और हिन्दी संसार को अनाथ करके वह सदा के लिए चले गए। भारतेन्दु की छत्रछाया के अभाव में सभी लेखकों ने अपनी लेखनी द्वारा दुख जाहिर किया है जिनमें प्रतापनारायण मिश्र के निम्न प्रसिद्ध कवित्त में हिन्दी जगत में व्याप्त हताशा की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति है-

'कौन के भरोसे पै चलेंगे समाचार-पत्र

कविता बिचारी हा सुहाग कहाँ पावेगी॥

तेरे मुखचन्द की चकोरी हरिचन्द प्यारे।

कौने के सहारे दुखी जीवन बितावेगी॥

साजि के सिंगार दरबार में प्रविशि हाय।

कौन के सुफल हिन्दी नागरी कहावेगी॥'

भारतेन्दु एक प्रतिभा-सम्पन्न लेखक थे हिन्दी पत्रकारिता में इनका वही स्थान है जो बंगला पत्रकारिता में राजा राममोहन राय का है। इस युग की हिन्दी पत्रकारिता पर भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व की अमिट छाप दिखाई देती है पत्रों में न केवल भाषा तथा साहित्य का निखार हुआ। बल्कि जनचेतना भी प्रस्फुटित हुई।² इन्होंने राष्ट्र-हित हेतु देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवी शोषण का चित्रण को ही लक्ष्य बनाकर हिन्दी साहित्य व समाज की सेवा की और हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का प्रतिदान कर दिया। इन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को नई दिशा की ओर मोड़ा जिससे राजनैतिक चेतना का जन-सामान्य में अपेक्षाकृत अधिक विकास होने लगा इसके साथ ही पत्रों में प्रकाशित समाज व राष्ट्र से सम्बन्धित समाचारों पर प्रतिक्रिया भी होने लगी थी क्योंकि जातीय उन्नयन के प्रति इस युग की पत्रिकाएँ विशेष सचेत थी। लगभग 350 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। मासिक पत्रों में सामयिक विषयों पर निबन्ध, वार्ताएँ तथा उपन्यास को

स्थान मिला। इस युग की पत्र-पत्रिकाएँ मुख्यतः विचार-पत्र थे। साप्ताहिक पत्रों में समाचारों के साथ उन पर टिप्पणियाँ भी छपती थीं इन पत्र-पत्रिकाओं ने निःसन्देह जन-जागृति का स्तर मुखर किया।³ इस युग को आधुनिक हिन्दी भाषा एवं साहित्य का यदि उषाकाल कहा जाता है तो निःसन्देह यह हिन्दी पत्रकारिता का स्वर्णकाल था उस समय का प्रायः समस्त हिन्दी-साहित्य हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही पाठक के सम्मुखीन हुआ था, फलतः लेखक और पाठक का जितना प्रत्यक्ष और गहरा रिश्ता भारतेन्दुकाल में कायम हुआ था, वैसा पुनः कभी देखने को नहीं मिला।

सन् 1857 की जनक्रान्ति के वैफल्य से उत्पन्न हतप्रभता एवं किंकर्तव्यमूढ़ता के दूर होने के साथ ही स्वातन्त्र्य-चेतना ने फिर नई उड़ान भरने के लिए अपने पंख फड़फड़ाये।⁴ इस नई मुक्ति-कामना को सर्वाधिक मुखर स्वर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रदान किया। जिसका अनुकरण उनसे प्रेरित उनके सहधर्मी-सहकर्मी मित्रों ने किया चूँकि बाबू हरिश्चन्द्र सभी कुछ लिख सकते थे, परन्तु समाचार-पत्र सम्पादक वैसा कोई फिर आज तक नहीं हो सका।⁵ प्रेमघन का यह आज तक शब्द अभी तक लागू होता है। भारतेन्दु ने न केवल स्वयं लिखा अपितु 'और से भी लिखवाया और लोगों में लिखने पढ़ने की रुचि फैलाई'⁶ उन औरों में प्रेमघन भी शामिल थे। वैमनस्य और कृतघ्नता के विष-बीज का वपन हिन्दी क्षेत्र में अभी तक नहीं हुआ था। 19वीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों में बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब आदि क्षेत्रों में श्रेष्ठ साहित्यिक एवं राजनैतिक पत्र प्रकाशित हुए। पत्रों को प्रकाशित करने वाले लेखकों, सम्पादकों और साहित्यिक व सामाजिक पत्रकारों के समूह को 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से जाना जाता है। जो भारतेन्दु के सफल साहित्यिक सेवा का परिणाम है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने समाज-सेवा के संदर्भ में सभी विधाओं पर लेखनकार्य किया साथ ही सभी लोगों में लिखने-पढ़ने की रुचि जगाई। इन्होंने लगभग पच्चीस पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से योग दिया। कुछ प्रमुख पत्रिकाएँ अग्रलिखित हैं जिन्होंने इस युग की स्पष्ट झांकियाँ प्रस्तुत की- 'कविवचन सुधा' (काशी, 1868), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (काशी, 1874), 'श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (1874), 'बालबोधिनी' (1875), 'हिन्दी प्रदीप' (प्रयाग, 1878), 'उचित वक्ता' (कलकत्ता 1878), 'भारत मित्र' (कलकत्ता 1878), 'सारसुधा निधि' (कलकत्ता, 1879), 'आनन्द कादम्बनी' (मिर्जापुर, 1881), 'देवनागरी प्रचारक' (1882), 'हिन्दुस्तान (कालाकर, 1885)', ब्राह्मण (कानपुर, 1883), हिन्दी बंगवासी (कलकत्ता, 1890), साहित्य सुधानिधि (1894), 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1898) आदि।⁷

उक्त पत्र-पत्रिकाओं में जहाँ ब्रिटिश सरकार की आलोचना होती थी वहीं राजनैतिक सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं विसंगतियों पर भी करार व्यंग्य होते थे। भारत की तत्कालीन स्थिति पर दुःख प्रकट करते हुए भारतेन्दु ने कहा-

'अब जहं देखहु वहं दुःखहि दुःख दिखाई।

हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।'⁸

हिन्दी पत्रकारिता का सच्चा राष्ट्रीय स्वरूप और सहज लालित्य हिन्दू-उर्दू द्विभाषी पत्रों, हिन्दी संस्करणों या विशु) हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लक्षित नहीं होता बल्कि उसके दर्शन पहली बार सन् 1868 ई. में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित 'कविवचन सुधा' में होते हैं जिसमें चन्द्रवरदाई का पृथ्वीराज रासो, कबीर की साखी, मलिक मोहम्मद जायसी की पद्मावत, दीनदयाल गिरी का 'अनुपम बाग' और गिरधरदास का 'नहुष' नाटक प्रकाशित हुआ। कुछ दिनों बाद इसमें गद्य भी छपने लगा।⁹ इस पत्रिका के प्रकाशन से हिन्दी पत्रकारिता में एक नया युग प्रारम्भ हुआ। उसे ठोस आधार और दिशा मिली। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में 'भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' के द्वारा हिन्दी में निर्भीक पत्रकार कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे उनमें से कोई इस लगेन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं लड़ा था।'¹⁰ इस पत्रिका का महत्व हिन्दी में राष्ट्रीय भावों को जागृत करने, हिन्दी पत्रकारों को प्रेरणा देने तथा हिन्दी भाषा और पत्रकारिता को सहज जातीय स्वरूप प्रदान कर पाठकों की अभिरुचि जागृति करने में है।¹¹ जिसके माध्यम से भारतेन्दु ने देश की जनता से विदेशी वस्त्रों का विरोध व उनमें राष्ट्रीय चेतना को जागृति करने लिए स्वदेशी वस्त्र पहनने का आह्वान किया- 'हम लोग सर्वान्तवासी सत्र स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी दे कर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे और जो कपड़ा पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिति तक हमारे पास है उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे हिन्दुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र की अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे।'¹² इस सम्बन्ध में रामविलास शर्मा ने कहा कि- 'कांग्रेस ने अपनी स्वदेशी आन्दोलन विधि पूर्वक न आरम्भ किया था, न बंग भंग आन्दोलन ने जन्म लिया था। केवल हिन्दी में भारतेन्दु ने स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात बहुत पहले कर दिया था।'¹³ इस पत्रिका की स्वाधीन चेतना का प्रमाण इसी बात से लग जाता है कि अंग्रेजी सरकार ने इस पत्रिका के स्वतन्त्र राजद्रोही लेखों तथा देशहित पूर्ण टिप्पणियों से क्रुद्ध होकर इसकी 100 प्रतियाँ लेनी बंद कर दी थीं। जबकि इससे पूर्व किसी पत्रिका के साथ ऐसा नहीं हुआ था। यह पत्रिका कविता मासिक से जनता की माँग पर निर्भीक राजनीति-समाज-सुधार सम्बन्धी पाक्षिक, इसके

पश्चात् साप्ताहिक रूप से 1875 ई. में प्रकाशित की गई जिसके आदर्श के अनुरूप नीति वाक्य इस प्रकार हैं-

‘खल गगनसों सज्जन दुखी मति होहि, हरिपद मति रहे।

अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै।।

बुध तजहि मत्सर, नारिनर सम होहि, जग आनन्द लहै।

तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृत बानी सब कहै।।¹⁴

जिस समय उक्त पत्रिका प्रकाशित हुई थी ‘वह समय अंग्रेज अधिकारियों के सामने हाथ जोड़े खड़े रहने का था।¹⁵ उस समय ‘नारिनर सम होहि’ और ‘स्वत्व निज भारत गहै’ कहने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे साहसी राष्ट्र-निर्माता ही हो सकते थे। यह पत्रिका विविध राष्ट्रीय समस्याओं तथा विषयों से समन्वित थी। इसकी सम्पादकीय टिप्पणियों तथा सर्जनात्मक साहित्य में राष्ट्र-नव-निर्माण के स्वर पूर्ण-तेजस्विता के साथ मुखरित हुए हैं।¹⁶

ध्यातव्य है कि स्वातन्त्र्य संग्राम के अभ्युदय हेतु सर्वप्रथम भारतेन्दु द्वारा किये गये प्रयास को अनदेखा करके जो लोग इसका प्रारम्भ कांग्रेस के जन्म (1885) के साथ जोड़ते हैं, वे इतिहास के इस तथ्य पर जान-बूझकर, या अज्ञानवश, पर्दा डालते हैं कि कांग्रेस के अस्तित्व में आने के पहले से ही ये ‘कलम के सिपाही’ आजादी की लड़ाई अपने ढंग से छेड़ चुके थे।¹⁷ इन लेखकों के लिए गुलामी के सिक्के के दो पहलू थे- एक राजनैतिक गुलामी और दूसरा भाषा की गुलामी। इन्होंने दोनों तरह की दासताओं के विरुद्ध दृढ़ भाव और प्राणपण से संघर्ष किया- स्वदेश और स्वभाषा दोनों की मुक्ति के लिए। भारतेन्दु ने गाँधी के आगमन से लगभग 45 वर्ष पूर्व की 23 मार्च 1874 को ‘कविवचन सुधा’ में स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार कर उन्हें अपनाते की प्रतिज्ञा करते हुए लिखा था कि ‘हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे... हिन्दुस्तान का बना ही कपड़ा पहिनेंगे।’¹⁸

‘कविवचन सुधा’ के अतिरिक्त जन-साधारण के दुख-सुख को पत्रकारिता से जोड़ने वाली, हिन्दी को ‘नई चाल में ढलने वाली’ राष्ट्रीय उद्बोधन और सरकार की भर्त्सना के लिए छिपकर व्यंग्य करने वाली ‘हरिश्चन्द्र मैगजीन’ का मासिक प्रकाशन भारतेन्दु ने 15 अक्टूबर, 1873 को प्रारम्भ किया था। ‘जिसमें पुरातत्व, इतिहास, राजनीतिक दर्शन, साहित्य आदि पर लेख होते थे। उपन्यास, कविता, कहानियाँ, व्यंग्य तथा आलोचना को भी इसमें स्थान प्राप्त हुआ।¹⁹ आठ अंकों के पश्चात् सन् 1874 ई. के जून माह में इसका नाम बदलकर भारतेन्दु ने ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’ कर दिया। ‘ये दोनों पत्रिकाएँ एक ही हैं, केवल पहले नाम का अंगरेजीपन दूर कर उसे हिन्दी रूप दिया गया है।’²⁰ यह कागज और छपाई में आकर्षक, विविध विषयों से समन्वित तथा ज्ञानवर्क सामग्री से युक्त थी। इस पत्रिका ने अंधरूढ़िवादिता, औपनिवेशिक साम्राज्यवाद तथा सामन्ती संस्कृति के विरुद्ध कभी खुल्लम-खुल्ला, कभी राजभक्ति की चाशनी में भिगोकर रोषपूर्ण व्यंग्यात्मक तेवर दिखलाये थे, फलतः इस सजग राष्ट्रीय पत्रिका की भी प्रतियाँ सरकार ने लेनी बन्द कर दी थी।

अंग्रेजी-हिन्दी भाषा में प्रकाशित इस पत्रिका के युगानुकूल गम्भीर चिंतन, उच्च स्तर तथा वैविध्य युक्त प्रौढ़ सामग्री का आभास उसके अग्रलेखों से हो जाता है। इसी पत्रिका में राष्ट्र-नवचिंतन को सर्व प्रचलित जातीय भाषा और धारा प्रवाह शैली में प्रस्तुत करते हुए ‘भारतेन्दु’ ने कहा था ‘पब्लिक ओपिनियन अर्थात् सब साधारण लोगों की राय क्या वस्तु है? और इसमें कितना जोर है और इसके लिए क्या हो सकता है? यह प्रश्न ठहरा तो इसका साधारण उत्तर यही है कि यह वह वस्तु है जो संसार को एक कर सकती है, गंगा की धारा हिमालय पर चढ़ाकर ले जा सकती है, सूर्य को पश्चिम में उगा सकती है, और चाहे तो ईश्वर को भी पकड़कर कठपुतली की भाँति नचा सकती है। यह मेरा कहा कभी असत्य नहीं है क्योंकि दस आदमी मिलकर कठिन काम भी सरल कर सकते हैं। फूही-फूही तलाब भरता है।’²¹

पत्रिका की आधुनिक विचारों की छटा, जनतंत्रिय चेतना ऐक्यभाव तथा आधुनिक गद्य का संगम दृष्टिगोचर होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन कितना सटीक है- ‘हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल इसी चन्द्रिका में प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका से हुआ।’²² उन्होंने देवनागरी-फारसी लिपि और भाषा विवाद के समाधान में सजीव परिष्कृत जनभाषा के लिए व्यापक उदार दृष्टिकोण और दूरदर्शिता का परिचय दिया था।²³ हरिश्चन्द्र चन्द्रिका की प्रशंसा करते हुए प्रेमघन ने कहा- ‘अपनी अनाखी चमक-दमक से दूसरी भाषा के प्रेमियों की आँखों में चकाचौंध मचाती थी।’²⁴ किन्तु स्वास्थ्य, आर्थिक उलझने, मनमौजी स्वभाव, ग्राहकों की न्यून संख्या, उसमें भी दाम देने वाले स्वल्प, नतीजा यह हुआ कि पत्र-पत्रिकाएँ न तो निरन्तर निकलतीं और न प्रायः समय से, जिस कारण उन्हें बारम्बार दुःख होता, अन्त में इसी दोष को दूर करने हेतु उन्हें इन पत्रों को दूसरों को सौंप देना पड़ा। खेद के साथ प्रेमघन कहते हैं कि ‘यह कैसे आश्चर्य का विषय है कि बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी के सिद्धहस्त गद्य-लेखक और एक अच्छे आशुकवि थे, किन्तु इन दोनों से कहीं अधिक उनमें पत्र-सम्पादक होने की एक विशेष योग्यता थी जो कि बहुत विलक्षण थी, तथापि उनके पत्रों की यह दुर्दशा, कि छपाई देने भर को भी मूल्य न मिले, और ऐसे लोग कि जो दस पंक्ति भी सीधी और शुद्ध हिन्दी न लिख सकते, रद्दी पत्रों को भी निरन्तर निकाल कर मालामाल हो गये।’²⁵

उक्त परिस्थिति में उदयपुर के पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने आग्रह करके ‘हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका’ का प्रकाशन

कार्य अपने हाथ में ले लिया जिसके अनन्तर यह 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका और मोहन-चन्द्रिका' के नाम से चैत्र शुक्ल 1 सम्बत्, 1937 (1880 ई.) से काशी ही में एक वर्ष प्रकाशित होती रही। दूसरे ही वर्ष यह मेवाड़ के श्रीनाथ द्वारे चली गयी, जहाँ की मरुभूमि में वह सदा के लिए लुप्त हो गई।²⁶

भारतेन्दु ने अपने पत्रकारत्व के कीर्ति-स्तम्भ-भूत इन दो प्रख्यात पत्रों के अतिरिक्त स्त्रीशिक्षार्थ 'बाला-बोधिनी' नाम की मासिक पत्रिका 1 जनवरी, सन् 1874 ई. में प्रकाशित की। जिसे 'बालबोधिनी' भी कहा जाता है। इसके संपादक, मुद्रक तथा प्रकाशक 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के ही थे। और इसमें आठ से बारह पृष्ठ होते थे। 'हिन्दी की यह पहली महिलाओं की पत्रिका तो थी ही, स्वभावतः देश की अन्य भाषाओं में भी पहली महिला पत्रिका थी।'²⁷ इसके अन्तर्गत देव-थौरानी, छोटे सम्बन्धियों से गृहस्थ के व्यवहार, खर्च करने की व्यवस्था, बालकों के लालन-पालन आदि विषयों के साथ 'नीति विषयक-इतिहास' तथा 'मुद्राराक्षस' के नाटक के अनुवाद का धारावाहिक अंश भी प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका से सम्पादक के युगों से प्रताड़ित नारीवर्ग के प्रति संवेदनशील और जागरूक प्रजातांत्रिक रुख का निदर्शन हो जाता है जिसके माध्यम से भारतेन्दु ने स्त्री-पुरुष में समानता स्थापित करने हेतु उत्कृष्ट समभाव से युक्त छन्द का प्रयोग किया है जो कि दृष्टव्य है-

'जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।

जो नारी सोई पुरुष या मैं कछु न विभक्ति।'²⁸

स्त्री-पुरुष में समभाव की भाँति भारतेन्दु ने सरल-सुबोध आम भाषा में, महिलाओं को व्यावहारिक दृष्टान्त देकर राष्ट्रीय एकता की लघुतम इकाई परिवार के साथ देश को एक सूत्र में बाँधने की भी शिक्षा दी- 'झाड़ू को देखो कि जब तक यह बंधी है तब तक कोई भी सबल इसके तोड़ने की सामर्थ्य नहीं होता और आपकी झाड़ू में सामर्थ्य है कि मानों कूड़े को बात की बात में बाहर निकाल दे। परन्तु जब उसके बंधन खुल के बिखर जावें तो उस समै सारा बल उसका नाश ही कर डालें। इसी प्रकार जब तक तुम्हारा घर झाड़ू की भाँति एकता भाव करके बंधा हुआ है तुम भी सामर्थ्य हो।'²⁹

स्त्री शिक्षा व पारस्परिक एकता का पाठ पढ़ाने वाली उक्त पत्रिका के साथ वही हुआ जो शेष पत्रिकाओं के साथ हुआ। यह सरकार के कोप कटाक्ष से भी यह निरीह पत्रिका बच नहीं पायी फलतः चार वर्ष तक प्रकाशित होने के उपरान्त बन्द हो गई बाबू ब्रजरत्नदास के अनुसार, 'गवर्नमेण्ट द्वारा इसकी प्रतियाँ लेना मना कर दिया जाना ही इस पत्रिका के बन्द होने का मुख्य कारण है।'³⁰ जैसा कि भारतेन्दु के एक पत्र से ज्ञात होता है। इस सम्बन्ध में बालमुकुन्द गुप्त ने कहा है कि 'इसके अनन्तर उन्होंने राज्य कर्मचारियों से सम्बन्ध त्याग दिया। उन्होंने ऑनररी पद से भी इस्तीफा दे दिया और काशीराज के आग्रह करने के बावजूद पुनः उसे वापस नहीं लिया।'³¹

उक्त विषम परिस्थितियों से जद्दोजहद करते हुए भारतेन्दु ने धार्मिक जागृति के लिए एक अन्य चौथी पत्रिका 'भगवद्भक्ततोषणी (भगवद तोषणी)' को प्रकाशित किया किन्तु वह भी केवल दो चार संख्या छप सकी।³² ध्यातव्य है कि सम्भवतः इसी दौरान भारतेन्दु की हरिश्चन्द्र मैगजीन को जो तीन बार क्रमशः भिन्न-भिन्न नामों से प्रकाशित हुई थी उसे ही 'नवोदिता हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' नाम से सन् 1883 में पुनः प्रकाशित करना आरम्भ किया। पर दो अंक निकालने के बाद वे स्वयं संसार से उठ गये।³³ भारतेन्दु की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई गोकुलचन्द्र ने उसका तृतीय अंक निकाला 'परन्तु तब तक पण्ड्याजी (पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या) ने उन्हें नोटिस दे दिया कि वे उसे न छापे।'³⁴ और बाध्य होकर भारतेन्दु के भाई को यह पत्रिका बंद कर देनी पड़ी। इस प्रकार पंड्याजी ने भारतेन्दु को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि युगप्रवर्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एक स्वतन्त्रता प्रेमी, प्रगतिशील विचारक व लेखक हैं। ये आधुनिक हिन्दी साहित्य के वह युग प्रवर्तक हैं जिनकी पत्रकारिता से हिन्दी भाषा को साहित्यिक गरिमा मिली तथा जनभाषा हिन्दी में सहज वेग एवं कलात्मक सौंदर्य के विकास द्वारा सभी लोगों में लेखनकार्य की रुचि जागृति हुई। यही नहीं इन्होंने सम्पूर्ण शक्ति से अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से सामाजिक बुराईयों को दरकिनार कर समाज में समाजिक समानता को स्थापित करने हेतु स्त्री-पुरुष में समानता, स्त्री-शिक्षा व स्त्री के सम्मान की वकालत करते हुए धार्मिक बाह्याडम्बरताओं का पुरजोर विरोध किया। इन्होंने बिना गाँधी से प्रेरणा लिए ही एकता का पाठ पढ़ाकर लोगों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया क्योंकि भारतेन्दु ने गाँधी से 45 वर्ष पूर्व ही स्वदेशी कपड़े पहनने का प्रचार करके विलायती कपड़ों का पुरजोर विरोध कर भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता की लड़ाई में स्वयं की तरह अपना सर्वस्व झोंक देने की प्रेरणा दी। उल्लेखनीय है कि ऐसा नहीं कि भारतेन्दु से पूर्व पत्रकारिता में देश सेवा की भावना नहीं थी किन्तु उस समय पत्रकारों का अधिक ध्यान कम्पनी के शासन की अच्छाई-बुराई के अवलोकन पर ही था लेकिन भारतेन्दु जी ने अपने पत्रों द्वारा सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार करते हुए लोगों को पारस्परिक एकता के सूत्र में पिरोकर स्पष्ट रूप से स्वतंत्रता का बिगुल बजा दिया जिससे वे निःसंदेह रूप से सामाजिक राष्ट्रीय सरोकार के सर्वप्रथम पत्रकार बन गये।

सन्दर्भ

- 1 प्रताप लहरी-प्रतापनारायण मिश्र, पृष्ठ- 122
- 2 हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रमेशकुमार जैन, पृष्ठ- 45
- 3 हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास- डॉ. रमेशकुमार जैन, पृष्ठ-45

- 4 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी पत्रकारिता- स्वामीनाथ पाण्डेय पृष्ठ-1
- 5 प्रेमघन सर्वस्व-प्रतापनारायण मिश्र, पृष्ठ-410
- 6 वही, पृष्ठ-411
- 7 पत्रकारिता के विविध परिदृश्य- डॉ. संजीव भानावत, पृष्ठ- 52
- 8 वही, पृष्ठ-52
- 9 हिन्दी की सर्वोदय पत्रकारिता- मृदुला वर्मा, पृष्ठ-41
- 10 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- रामविलास शर्मा, पृ.- 117
- 11 बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली- झाबरमल्ल शर्मा, पृ.- 315-16
- 12 कविवचन सुधा- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पृष्ठ- 33
- 13 पत्रकारिता के विविध परिदृश्य-डॉ. संजीव भानावत, पृष्ठ-53
- 14 राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, डॉ. मीना रानी बल, पृष्ठ- 100
- 15 समाचार पत्रों का इतिहास- अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, पृष्ठ- 129
- 16 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.- 32
- 17 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी पत्रकारिता- स्वामीनाथन पाण्डेय, पृष्ठ-1
- 18 कविवचन सुधा- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पृष्ठ- 33
- 19 हिन्दी की सर्वोदय पत्रकारिता- मशदुला वर्मा, पृष्ठ- 42
- 20 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र- ब्रजरत्नदास, पृष्ठ- 193
- 21 हरिश्चन्द्र मैगजीन-भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पृष्ठ- 197
- 22 हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.- 421
- 23 हरिश्चन्द्र मैगजीन)अंग्रेजी भाषा में लिखित लेखत्र, पृष्ठ- 11-12
- 24 प्रेमघन सर्वस्व- पं. बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन', पृष्ठ-513
- 25 प्रेमघन सर्वस्व- पं. बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन', पृष्ठ-513-14
- 26 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-ब्रजरत्न दास, पृष्ठ- 193
- 27 हिन्दी की सर्वोदय पत्रकारिता- मशदुला वर्मा, पृष्ठ- 42-43
- 28 बाला बोधिनी- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पृष्ठ- 1
- 29 वही, पृष्ठ-34
- 30 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-ब्रजरत्नदास, पृष्ठ-109
- 31 वही, पृष्ठ-105
- 32 प्रेमघन सर्वस्व- पं. बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन', पृष्ठ- 410
- 33 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-ब्रजरत्नदास, पृष्ठ- 195
- 34 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी पत्रकारिता, स्वामीनाथन पाण्डेय, पृष्ठ- 6

भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद

जसराम

आगरा कॉलेज

डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

भूमंडलीकरण के इस दौर में सोशल मीडिया सूचनाक्रांति की आंधी की तरह पूरी दुनिया में विकसित हो चुकी है। इसका प्रभाव विकासशील राष्ट्र पर पड़ रहा है। जिन देशों में सोशल मीडिया छाया हुआ है उनमें सूचनाक्रांति तेजी से बढ़ रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर ने सोशल मीडिया के माध्यम से पूरे विश्व को एक घर बना दिया है। वह राष्ट्र जो आज सोशल मीडिया के माध्यम से पूरे विश्व की जानकारी एवं शिक्षा, विज्ञान, टेक्नोलॉजी, आदि का ज्ञान घर बैठे प्राप्त कर लेते हैं। आज वह राष्ट्र सोशल मीडिया में सामाचार पत्र टी. वी, पत्रिका, फेसबुक, इंटरनेट, आदि सभी सोशल मीडिया का माध्यम है। जिस देश में सोशल मीडिया अधिक विकसित होती है। वह राष्ट्र अधिक निर्माणधीन विकास करता है। भूमंडलीकरण के एजेंडे में वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है।

भूमंडलीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जो सोशल मीडिया को चलाती हैं। वह सारे विश्व के पैर को मजबूती प्रदान करती है। भूमंडलीकरण के इस दौर में सोशल मीडिया किसी भी राष्ट्र का न्याय का चौथा स्तम्भ माना जाता है। आज पूरी दुनिया में सोशल मीडिया वर्चस्व है। सोशल मीडिया एक ऐसा मीडिया है, जो बाकी सारे मीडिया प्रिंट, मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक और समानांतर मीडिया से अलग है। सोशल मीडिया इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता जा रहा है। “सोशल मीडिया एक अपरंपरागत मीडिया है। यह एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे इंटरनेट के माध्यम से पहुँच बना सकते हैं। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो कि संसार को जोड़े रखता है। यह संचार का एक बहुत अच्छा माध्यम है। यह द्रुत गति से सूचनाओं के आदान-प्रदान करने, जिसमें हर क्षेत्र की खबरों को समाहित किए होता है।”¹¹

आज का दौर युवाशक्ति का दौर है। भूमंडलीकरण के दौर में सूचनाक्रांति युवाशक्ति सक्रियता से जोड़ने का काम सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद की जड़ बनता जा रहा है। युवा वर्ग सोशल मीडिया पर फेसबुक को सबसे ज्यादा पसंद करते हैं। भारत सहित दुनिया के विभिन्न देशों में सोशल मीडिया ने सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं बल्कि दुनिया भर में इंटरनेट पर होने वाली नंबर वन गतिविधि बन गया है। जिसमें, राजनीति, अर्थव्यवस्था, खेल जगत, शिक्षा, विज्ञान, वेब आधारित एक ऐसा अत्यधिक गतिशील मंच कहा जा सकता है जिसके माध्यम से लोग संवाद करते हैं, आपसी जानकारियों का आदान-प्रदान करते हैं। और उपयोगकर्ता के रूप में संशोधित करते हैं।¹² प्राचीन काल से सूचनाओं का आदान-प्रदान करने के लिए बहुत तरीके अपनाए गये हैं। राजाओं से लेकर मुगलों के दौर में उनका संदेश दूसरे राज्य या नगर में एक दूत लेकर जाता था। रामायण की पौराणिक कथा के अनफसार रामभक्त हनफमान भी पुरुषोत्तम के आदेशानुसार रावण की लंका में दूत बन के गये थे। समय के साथ-साथ सूचनाओं का समय-समय पर रूप बदलता रहता है। भूमंडलीकरण में सोशल मीडिया “दुनियाभर में लगभग 200 सोशल नेटवर्किंग साइटें हैं जिनमें फेसबुक, ट्विटर, माईस्पेस, लिंकडइन, फ्लिकर, इंस्टाग्राम (फोटो, वीडियो रोयरिंग साइट) सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। एक सर्वेक्षण के मुताबिक दुनियाभर में करीब एक अरब 28 करोड़ फेसबुक प्रयोक्ता हैं। वहीं, इंस्टाग्राम के 15 करोड़, लिंकडइन के 20 करोड़, माई स्पेस के तीन करोड़ और ट्विटर के 9 करोड़ प्रयोक्ता हैं। कहा जाए तो सोशल मीडिया के क्षेत्र में फेसबुक सबसे अग्रणी है।”¹³

भूमंडलीकरण और सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यमों की सहायता से हम अपने विचारों को जनता तक पहुँचा सकते हैं। आज सोशल मीडिया पर विज्ञापन की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन गया है। सोशल मीडिया के विभिन्न माध्यम है। प्रिंट मीडिया या प्रेस, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, यह सभी भूमंडलीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है—“संचार के माध्यम से सूचना का व्यापक प्रचार-प्रसार होता है। विचार विनिमय का भी अवसर मिलता है, तथा ज्ञान का विकास होता है। समाज में भाईचारा बढ़ता है। संचार भावात्मक एकता में भी सहायक होता है, एवं इससे सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने में सहायता मिलती है।”¹⁴

भूमंडलीकरण के इस दौर में आधुनिकता के विकास में सोशल मीडिया का अहम योगदान है। जब से इंटरनेट का विकास हुआ है, जब से पूरी दुनिया एक घर बन गया है। वसुधैव कुटुम्बकम बन गया, हमें सोशल मीडिया के माध्यम विश्व की जानकारी एक पल में ही मिल जाती है। आज भूमंडलीकरण के विकास की नींव सोशल मीडिया के माध्यम से एक राष्ट्र

से दूसरे राष्ट्र में पहुँचने तक खबरों को एक पल लगता है। यदि विश्व में कोई अविष्कार या बड़ी आपदा हो जाती है, तो सम्पूर्ण विश्व में सोशल मीडिया के माध्यम से एक छण में पहुँच जाती है। भूमंडलीकरण का दौर सोशल मीडिया को तेज रफ्तार प्रदान करने वाली कंपनी काम कर रही है। आज राजनेता या अन्य कोई अपने विचारों को सोशल मीडिया लाइव प्रसारण होता है। “आधुनिकता और प्रतिस्पर्धा के इस दौर में जहाँ पहले से खबरों की स्रोतों के इतने सारे माध्यम मौजूद थे। वहाँ एक ‘सोशल मीडिया’ नाम की बला ने भी जन्म ले लिया था और 2014 आते-आते इस बला ने पूरी तरह से सबको पछाड़ते हुए अपनी ‘अद्वितीय पहचान’ भी बना ली है। ‘सोशल मीडिया’ जो लोगों की पहली पसंद बन गया है। इसके शब्दिक अर्थ का सीधा मतलब निकल कर आता है ‘जनता की अपनी आवाज’ वो आवाज जो उसके अपने लोगों से ही निकल कर उसे सुनाई जाती है। न कोई चैनल ... न कोई अखबार... सिर्फ आप की खुद की आवाज़ आपकी खबरों के ज्ञान का भंडार।”¹⁵

भूमंडलीकरण में वैचारिक रेजिमेंटेशन की प्रक्रिया कुछ आरंभ हो गई और विश्व बाज़ार या भूमंडलीकरण या पूंजी का वर्चस्व इसे बढ़ावा दे रहा है। आज भूमंडलीकरण में सोशल मीडिया प्रतिद्वंद्वित आ रही है। आज कॉम्प्यूटेशन के क्षेत्र सभी अपना प्रचार-प्रसार सोशल मीडिया के माध्यम से करते हैं। सोशल मीडिया में प्रत्येक देश का आई. पी एड्रेस होता है। ‘आज हाईटेक मीडिया की प्रथम प्राथमिकता है उपभोक्ता बाजार की जरूरतों की आपूर्ति, सर्कुलेशन और टी आर पी में अहर्निश वृद्धि परिणामस्वरूप मुनाफा वृद्धि। अतः टेक्नोलॉजी का प्रयोग अब लोकोन्मुख न रहकर बाजारोन्मुख हो गया है।’¹⁶

राष्ट्र निर्माण में मीडिया की निर्णायक भूमिका है, सोशल मीडिया लोगों के विचार एवं निर्णय क्षमता को प्रभावित कर रहे हैं। यदि सोशल मीडिया की यह भूमिका यदि सकारात्मक हो तो वह राष्ट्र निर्माण में निर्णायक भूमिका निभा सकता है। ‘आधुनिक युग में सोशल मीडिया जनमानस की वैचारिक अभिव्यक्ति के सशक्त उपकरण के रूप में उभरकर सामने आया है। सोशल मीडिया ने सभी को खुलकर बोलने का और हर मुद्दे पर अपनी राय रखने का मौका दिया है।’¹⁷ सोशल मीडिया पर किस देश का अधिकार सबसे अधिक है पिछले दिनों ‘विश्व मीडिया पर नियंत्रण किसका’ शीर्षक नामक एक सर्वेक्षण सामने आया था। जो दुनिया भर में मीडिया पर प्रत्यक्ष नियंत्रण करने वाली कंपनियों और उनके मालिकों के संबंध में जानकारी दी गई है— ‘विश्व मीडिया के 90 प्रतिशत भाग पर इस समय यहूदियों का नियंत्रण है जो समाचार एजेंसी, समाचार पत्र, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं के मालिकाना अधिकार यहूदियों के पास है और यह संस्था दुनिया भर को सामग्री प्रदान करती हैं।’¹⁸

भूमंडलीकरण का दौर सोशल मीडिया बाजारवाद और राष्ट्रवाद की भूमिका निभा रहा है। आधुनिक युग में मनुष्य हाईटेक जो हो चुका है। उसे वह सोशल मीडिया के माध्यम संपूर्ण विश्व की जानकारी प्राप्त करता है। उस सम्मत ज्ञान, शिक्षा, टेक्नोलॉजी के बारे में सोशल मीडिया से प्राप्त होती है। आज अमेरिका से भारत सुदूर गाँव तक सोशल मीडिया पर्वत की चोटी से तहलटी तक पहुँच गया है। 21 वीं शताब्दी महत्वपूर्ण लक्ष्य सोशल मीडिया को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने तक है। आज भारत सरकार इंटरनेट को देश के प्रत्येक गाँव तक पहुँचा रही है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। पर अब सोशल मीडिया के सभी अंगों को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। इसलिए अब इसका महत्व और भी उच्चा हो गया है कि वह उसके तीनों स्तंभ विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के कामकाज पर नजर रखता है। आज सोशल मीडिया फेसबुक के माध्यम से जो खबरें चलती हैं। या लोगों का समूह बनाकर खबरों को आदान-प्रदान किया जाता है, उन खबरों को टी. वी पर हमें दिखाई देने लगती है। खबरों की सत्यता को सिद्ध करते टी.वी चैनल के संवादाता सुबह-श्याम दिखाई देते हैं। पर सोशल मीडिया के क्रांतिकारी संवादाता हर जगह गल्ली, मुहल्ले से लेकर शहरों से प्रसारण करने वाले टी.वी चैनल का सब सोशल मीडिया का मकर जाल है। जिसमें संपूर्ण विश्व उलझा हुआ है। कुछ समय पहले तक तो ब्लॉग नई मीडिया क्रांति के झंडाबरदार थे, लेकिन ट्विटर, फेसबुक जैसे छोटे आसान और अधिक सोशल मीडिया ने इन को भी बोना बना दिया है। नए मीडिया की नई पहचान अब सिर्फ ब्लॉग नहीं बल्कि माइक्रो ब्लॉगिंग के ट्विटर, फेसबुक और इसकी तरह के अन्य साधन हैं। लेकिन अभी यह माना भी जल्दीबाजी है। भूमंडलीकरण के दौर में सोशल मीडिया का लगातार रूप परिवर्तित हो रहा है। हमें इंतजार करना होगा सोशल मीडिया के नये अवतार का बहुत से राष्ट्र से इस दिशा में लगातार काम कर रहे हैं। आज विश्व के किसी भी हिस्से में हम हो हमें वहीं संपूर्ण विश्व जानकारी मिल जाती है। आज सोशल मीडिया ने सारी दुनिया एक परिवार बना दिया है। सोशल मीडिया से ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ विश्व एक परिवार बन गया है।

संदर्भ

1. Googleweblight.com सोशल मिडिया पर निबंध : सोशल मीडिया फायदे और नुकसान - विनय कुशवाहा
2. <https://w.w.w.linkedin.com> सोशल नेटवर्किंग साइट्स और युवा-वर्ग, केशव मोहन पाण्डेय, दिनांक, 14-03-2018,
3. <https://w.w.w.linkedin.com> सोशल मिडिया और हम, श्याम बाबू शर्मा, दिनांक, 15-03-2018
4. हिंदी का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य, संपादक, प्रो. प्रदीप श्रीधर, डॉ. शिखा श्रीधर, लेख निम्मी गर्ग, संस्करण 2017, पृष्ठ 140
5. Medikhabar.com इंटरनेट और सोशल मिडिया का बढ़ता साम्राज्य, रोहित श्रीवास्तव, दिनांक, 15-03-2018, समय : 3 : 30
6. मीडिया मिथ और समाज, रामशरण जोशी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ- 161
7. <https://w.w.w.vishwahindijan.blogspot.in> लोकतंत्र और सोशल मिडिया, डॉ. अशोक कुमार मिश्र, दिनांक, 19-03-2018
8. <https://w.w.w.bhadhas4media.com> अशरफ अली बस्तवी, दिनांक, 19-03-2018, समय : 10 : 30

भूमंडलीकरण, राष्ट्रवाद बनाम वैश्विक चेतना (संदर्भ हिंदी पत्रकारिता)

डॉ. विपिन कुमार शर्मा

फूल सिंह विष्ट राजकीय महाविद्यालय
लम्बगांव, उत्तराखण्ड

वर्तमान समय भूमंडलीकरण का समय है, जहाँ कहा जा रहा है। दुनिया एक वैश्विक कटुम्ब में रूपांतरित हो गई है, दुनियाँ की अर्थव्यवस्थाएं एकीकृत हो गई हैं, प्रख्यात अर्थशास्त्री कँवल जीत सिंह की अपनी पुस्तक *Questioning Globalization* हिन्दी में वैश्वीकरण (वैश्वीकरण समर्थक बौद्धिक छल का खुलासा) में कहते हैं, 'वैश्वीकरण शब्द की किसी एक परिभाषा पर शायद ही दो व्यक्ति एकमत हों, ऐसे में स्वाभाविक ही है वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझने में ढेरों समस्याएं हमारे सामने हों, लेकिन मोटे रूप से कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण का तात्पर्य ऐसे विश्व से है जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं और दूरियों से परे एकीकृत 'आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाएं होंगी। यही कारण है कि कुछ विद्वान 'वैश्वीकरण' शब्द से असहमत हैं और इसकी बजाय भूमंडलीकरण, अंतःराष्ट्रीयकरण, ब्रह्मांडीयकरण, पश्चिमीकरण, अमरीकीकरण बहुराष्ट्रीयकरण या विकेद्रीकरण जैसे शब्दों को प्रयुक्त करने का प्रस्ताव करते हैं।¹

भूमंडलीकरण सीमाओं को ही कटघरे में खड़ा करता है, वह पश्चिम की राष्ट्र सम्बन्धी अवधारणा पर ही प्रश्न खड़ा करता है अथवा उसे ध्वस्त करता है। 'राष्ट्र' नाम की संस्था ने विगत शती में अतिरेकी स्थितियों के साथ, जन सापेक्ष चीजों को भी संभव बनाया है। कँवल जीत सिंह प्रख्यात अर्थशास्त्री राष्ट्र-राज्य एवं वैश्वीकरण के द्वंद्व के छद्म को विश्लेषित करते हुए कहते हैं- 'आर्थिक व्यवहार से लेकर सांस्कृतिक गतिविधियों के सीमा विहीन एवं सीमाओं के आर पार मुक्त संचालन की गतिविधि को वास्तविक मान लेने के परिणाम स्वरूप ही बौद्धिकों को यह साहस हो पाया कि वे कह सकें कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया राष्ट्र-राज्य का अंत है। राष्ट्र-राज्य के अंत की घोषणा जितनी दुस्साहस पूर्ण है, उतनी ही छद्म से भरपूर कि जिसका इस्तेमाल करके साम्राज्यवादी शोषक अपने हितों को पूरा कर रहे हैं।²

कँवल जीत सिंह की पुस्तक के अध्याय का एक शीर्षक ही 'क्या वैश्वीकरण का मतलब राष्ट्र-राज्य का अंत है इस अध्याय में वह कीनिची आहमेमाई को संदर्भित करते हैं। राष्ट्र-राज्य तेजी से अप्राकृतिक होता जा रहा है, यहाँ तक दुश्क्रिया में तब्दील होता जा रहा है, उन ईकाईयों के पदों में तो और भी, जो इसे लेकर पारंपरिक या नियोजित आर्थिक गतिविधि के विषय में सोचते हैं - राष्ट्र-राज्य वह डायनासोर है जो अपने मृत्यु का इंतजार कर रहा है।³

भूमंडलीकरण के अध्येताओं ने 'राष्ट्र' को डायनासोर कहा, द्वितीय विश्व युद्ध पश्चिम की राष्ट्रवादी आकांक्षाओं का प्रतिफल था, भारत के संदर्भ में राष्ट्रवाद का आकलन पश्चिम की राष्ट्रवाद के अवधारणा के फ्रेम में नहीं किया जा सकता। राष्ट्रवाद राजनीति विज्ञान में उन्नीसवीं शती में आता है आशीष नंदी अपनी पुस्तक 'राष्ट्रवाद बनाम देश भक्ति रवीन्द्रनाथ ठाकुर इयत्ता की राजनीति में कहते हैं। 'राष्ट्र राज्य के विचार से भारतीय समाज का साक्षात्कार उन्नीसवीं सदी के दूसरे हिस्से में हुआ। यह ख्याल राष्ट्रवाद की पश्चिमी विचार धारा की हवाओं पर सवार होकर हमारे पास आया। उस जमाने में भारत जैसे अन्य समाजों की भाँति हमारे राष्ट्रवादी नेताओं को पक्का यकीन था कि बाकायदा राष्ट्र-राज्य ना होना और उपयुक्त राष्ट्रवादी भावनाओं से लैस न होना भारतीय समाज की प्रमुख खामी तो ही, उसके पिछड़ेपन का सूचक भी।⁴

आशीष नंदी 'राष्ट्रवाद' नाम की अवधारणा को पश्चिम से आयातित मानते हैं, कुछ मामलों में वह इस अवधारणा के विरोधी रहे हैं। भारतीय 'राष्ट्र' की अवधारणा पश्चिमी राष्ट्रवाद से अलहदा है। भारत में यह सांस्कृतिक अवधारणा है जिसमें सैन्य बल सत्ता से ज्यादा, मानवीयता का पक्ष महत्वपूर्ण है। एक सतत प्रवाहमान विचार राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के भाव को संभव बनाता है। हिंदी पत्रकारिता राष्ट्रवाद को व्यापक संदर्भों में विश्लेषित करती रही है। हिंदी पत्रकारिता ने आजादी के आंदोलन में मशाल का काम किया। आजादी के लिये देश के रहनवासियों को प्रेरित किया। हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप भारतीय होते हुए भी वैश्विक रहा। एक बार सविनय अवज्ञा आंदोलन को लेकर रवीन्द्रनाथ टैगोर और गाँधी के बीच वैचारिक मतभेद था, इस पर गाँधी-टैगोर के बीच लम्बा विचार-विमर्श चला, मासिक पत्र मार्डन रिव्यू ने इसे इस प्रकार प्रकाशित किया 'भारत जैसे देश का महत्तम मामला एक अकेले मास्टर की इच्छा पर निर्भर नहीं होना चाहिए। अर्थशास्त्रियों को इसका व्यावहारिक समाधान खोजना चाहिए 'शिक्षा शास्त्रियों को पढ़ना चाहिए, वरिष्ठ राजनीतिज्ञों को विचार-विमर्श करना चाहिए और कार्यकर्ताओं को

कार्य करना चाहिए। बौद्धिकता पर खुला था गुप्त किसी प्रकार का दबाव नहीं बनना चाहिए।¹⁵

भारतीय राष्ट्रवाद अपने प्रखर रूप में आजादी के संघर्ष के दौरान प्रकाश में आता है, यहाँ इसके स्वरूप में बहुलता, बहुधर्मिकता और जातीयता है। बहुलतावाद भारतीय राष्ट्र का मुख्य बिंदु है, यह पश्चिम की विचार सरणियों में नहीं पाया जाता।

वहाँ एक जातीयता, एक नस्ल, एक विचार ही राष्ट्रवाद के केंद्र में है। ऐसे ही राष्ट्र की अवधारणा है, पश्चिम में यह उन्नीसवीं शती में चर्चा में आती है, भारत एक अति पुरातन सांस्कृतिक इकाई है, उसे उस निश्चित पैटर्न में नहीं बाँधा जा सकता। यह बात टैगोर एवं गाँधी के आपसे विमर्श एवं वैचारिक खुलेपन में भी देखा जा सकती है। यह राष्ट्रवाद और वैश्विकता के दर्शन का प्रामाणिक रूप हमें आजादी के कालखंड के पत्रकार शिव प्रसाद गुप्त की पत्रकारिता और जीवन में मिलता है। शिव प्रसाद गुप्त लंदन की यात्रा पर गये, लंदन में जैसे वह रहे, उन्हे वहाँ के जीवन ने अत्यंत प्रभावित किया सबसे बड़ी बात पत्रकारिता के बौद्धिक तेवर। भारत में आने पर गुप्त जी की पहली चिंता एवं चुनौती बौद्धिक समाचार पत्र निकालने की। 'हिंदी में लंदन टाइम्स जैसी स्तरीय दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित करने का संकल्प शिव प्रसाद गुप्त ने अपने विश्व भ्रमण में किया। ज्ञान मण्डल प्रकाशन गृह की स्थापना की। पाँच सितम्बर 1920 को काशी से हिंदी दैनिक 'आज' का प्रकाशन आरम्भ किया। प्रकाशक ज्ञान मण्डल और संपादक श्री प्रकाश हुए। 'आज के मुखपृष्ठ पर रामचरित मानस की यह अर्द्धाली छपती थी। पराधीन सपनेहु सुख नाहि।¹⁶

पराधीनता से मुक्ति हिंदी पत्रकारिता का ध्येय रहा, उसके लिये उसने ज्ञान-विज्ञान के अबाध प्रसार की अनिवार्यता को महत्व पूर्ण माना। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका सरस्वती को ज्ञान राशि का संचित कोश' इसीलिये कहा गया। यही बात शिव प्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित 'आज' के संदर्भ में कही जा सकती है, 'आज' के प्रकाशन से पूर्व शिव प्रसाद गुप्त ने अपना एजेंडा स्पष्ट किया 'तीसरी बात यह है कि हमारे विशेष उद्देश्य क्या है? हमारे संचालकों की और से कर्तव्य सूचना पत्र में लिखा है कि भारत के गौरव की वृद्धि और उसकी राजनीतिक उन्नति 'आज' का विशेष लक्ष्य होगा। भारत का राजनीतिक आकाश इस समय घनघोर घटाओं से आच्छादित है। हम किधर जा रहे हैं इसका पता नहीं लग रहा। हमारा उद्देश्य अपने देश के लिये हर प्रकार से स्वतंत्रता पाने का है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है अपने देश का गौरव बढ़ायें। हम अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें। उनको ऐसा बनाने कि उन्हे भारतीय होने का अभिमान हो, संकोच नहीं। यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है। जब हम में आत्म गौरव बढ़ेगा तो अन्य लोग भी हमारा आदर सम्मान करेंगे।¹⁷

हिंदी पत्रकारिता ने आत्म सम्मान की भावना को अपनी चिंता के केंद्र में सर्वोपरि रखा। यह भी ध्यातव्य है 'आत्मसम्मान यहाँ व्यक्ति केंद्रित ना होकर राष्ट्र केंद्रित है, तभी अकबर इलाहाबादी औपनिवेशिक साम्राज्य के बरक्स कलम नवीसो की बिरादरी को खड़ा करते हैं। हिंदी पत्रकारिता में गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, बाबूराव विष्णुपराडकर आदि हिंदी पत्रकारिता एवं आजादी के आंदोलन को समांतर चलाते है।

आजादी के आंदोलन और आजादी के पश्चात संपादक नाम की संस्था मजबूत थी। उनके पास गहन वैश्विक अंतःदृष्टि थी, उसके साथ ही भारत की गहरी समझ भी। यह बात ही उन्हे विशिष्ट बनाती है। लेकिन समय के साथ यह प्रवृत्ति क्षीण होती चली गयी। 1980 के आस पास पत्रकारिता सिर्फ समाचार-पत्रों तक ही सिमट नहीं रह गयी, बल्कि टेलीविजन की पत्रकारिता भी महत्वपूर्ण हो गयी। 1989 में भूमंडलीकरण की लहर ने कई मूल्यों को विस्थापित कर दिया। 'बाजार' ने इसमें बड़ी भूमिका निभाई। और यह परिवर्तन ना केवल देश में थे, बल्कि संपूर्ण दुनिया का मीडिया इसकी चपेट में था। आम जन के हित हाशिए पर चले गये, सत्ता वैश्विक पूँजी के साथ गठजोड़ करके मीडिया के माध्यम से बाजार के लिये माहौल तैयार कर रही थी।

आउटलुक मीडिया विशेषांक 2010 में एजाज अशरफ और अनुराधा रमन ने प्रख्यात बौद्धिक एवं भाषा विज्ञानी नाम चोम्सकी मीडिया एवं जनहित सम्बन्धी विषय को लेकर साक्षात्कार लिया। अनुराधा रमन ने जब उनसे पूछा 'लिबरल' मीडिया क्या सिर्फ 'मिथक' के रूप में जिंदा रह गया है, चॉम्सकी का जबाब था 'हाँ मेरे मित्र लोग ऐसा कहते हैं। मेरे अपने विचार यह हैं, न्यूयार्क टाइम्स एवं अन्य मीडिया समूह लिबरल कहाँ हैं, 'लिबरल है', वह राज्य प्रायोजित सत्ता हिंसा, एवं राज्य जनित अपराध के प्रति। यद्यपि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता वह मूल अधिकार सामाजिक कार्यक्रम, सामाजिक लोकतंत्र में भी अपना हिस्सा निभाते रहे हैं।¹⁸

मीडिया एक जटिल समय में है, राष्ट्रवाद और मीडिया के अंतर्संबंधो का विश्लेषण करते हुए हम पायेंगे, यह संबंध बेहद जटिल हैं। राष्ट्र के निर्माण में जन समूह की बड़ी भूमिका है, जो जनसंचार माध्यम जनता की आवाज उठायेंगे, उन्हे भी गैर राष्ट्रवादी भी कहा जा सकता है। 'राष्ट्र' एक जटिल प्रत्यय है, इंदिरा जी ने जेपी को एक दौर में अमेरिका का एजेंट कह दिया था। मीडिया की भूमिका इसमें व्यापक और महत्वपूर्ण हो जाती है, समाचार पत्र, टेलीविजन के साथ हमें रेडियो की भूमिका को विस्मृत नहीं कर देना चाहिए, इसके लिये पुनः आजादी के आसपास के कालखंड में जाना होगा, मुझे याद आता है महर्षि अरविंद का 15 अगस्त 1947 को को त्रिचिनोपोली, आल इंडिया रेडियो में श्री अरविंद द्वारा की गयी। 'हिंदू और

मुसलमानों की सांप्रदायिक खाई ने देश के टुकड़े कर दिए हैं। उम्मीद है इसे पूरी तरह मान नहीं लिया जायेगा। उसे अस्थायी दौर ही माना जाएगा अगर ऐसा होता है तो भारत सचमुच कमजोर हो जाएगा। उससे एक लड़ाई हमेशा चलती रहेगी। उससे एक नए तरह का हमला या विदेशी गुलामी भी आ सकती है। दूसरे देशों में उसकी स्थिति कमजोर होगी। उसकी नियति पर असर पड़ेगा। ऐसा नहीं होना चाहिए। यह बैटवारा खत्म होना चाहिए।⁹

कादम्बिनी के विशेषांक में अक्टूबर 2010 में यह वक्तव्य लिखित रूप में प्रकाशित हुआ। हिंदी पत्रकारिता ने साम्प्रदायिकता और अलगाव को कभी स्वीकार नहीं किया, उसने राष्ट्रवाद की अर्थ विस्तार प्रदान किया। राष्ट्र और सत्ता के अंतर को गहनता से विश्लेषित किया। हस्तक्षेप राष्ट्रीय सहारा का 'प्रभाष जोशी के बहाने' एक परिशिष्ट निकला था जिसमें कहा गया। पत्रकार या लेखक के तौर पर एक व्यक्ति सबल प्रतिपक्ष तभी बन सकता है, जब उसके पास अपने समय को परखने के निज के सैद्धांतिक मापदंड हों और उसके अंदर इतना साहस हो कि ऐसी परख करतें हुए और उसको अभिव्यक्ति देते हुए अपनी कलम को सधा हुआ रख सके। प्रभाष जी के पास दोनों ही ये मापदंड भी और साहस भी। साहस यानी बहुत कुछ खो देने की आशांकाओं के बीच अपने वैचारिक आग्रहों के साथ खड़े रहने की क्षमता और अपनी प्रखरता के बल पर सत्ता से बहुत कुछ पा लेने की असीम संभावनाओं के बीच स्वयं को लोभ ग्रस्त न होने की दृढ़ता।¹⁰

वर्तमान पत्रकारिता भूमंडलीकरण और बाजार की चपेट में है। प्रभाष जोशी, राजेंद्र माथुर, सुरेन्द्र प्रताप सिंह जैसे लोगों की संख्या अब नगण्य है। ग्लोबल मीडिया और प्रबन्धन का प्रभाव यह हुआ पत्रकारिता में 'मीडिया मैनेजर' हावी हो गये, मूल्यों पर सनसनी हावी हो गयी। मीडिया राष्ट्रवाद के अपने भाष्य गढ़ रहा है, और कई बार परिभाषाएं बेहद एकांगी और संकीर्ण हो जा रही हैं, आप भूमंडलीकृत जनमाध्यमों के मिजाज को देखिये उनकी एक खबर से उनके संपूर्ण खबरों के स्रोत और वैचारिकी को समझ सकते हैं। इतने दायरों में बैटी पत्रकारिता कभी नहीं रही।

सन्दर्भ

1. गुप्ता सिंह, कँवल, वैश्वीकरण की वैचारिकी को लेकर की गई व्याख्या, पुस्तक Questioning Globalization, वैश्वीकरण (वैश्वीकरण समर्थक बौद्धिक छल का खुलासा), अनुवाद जीतेन्द्र, गुप्ता संवाद प्रकाशन, शास्त्रीनगर, मेरठ
2. पृ09, बाकी सभी पूर्ववत।
3. क्वेश्चनिंग ग्लोबलाइजेशन के एक अध्याय का शीर्षक 'क्या वैश्वीकरण का मतलब राष्ट्र-राज्य का अंत है, में कीनिची आहेमई की राष्ट्र-राज्य को लेकर कथन, पृ0148 बाकी सभी संदर्भ पूर्ववत।
4. नंदी, आशीष इल्लिजिटिमेसी ऑव नेषन लिज्म' का राष्ट्रवाद बनाम देश भक्ति नाम से दुबे, अभव कुमार द्वारा किया गया अनुवाद।
5. भागर्व, जे0 एस0, भारत में प्रेस एक सिंहावलोकन, एन0बी0टी0 प्रथम संस्करण: 2009, पृ0 36।
6. श्रीधर, विजय दत्त, हिंदी पत्रकारिता का आदर्ष, पत्रकारिता कोष वाणी प्रकाशन दरियांगज नई दिल्ली, पृ0 639
7. सभी संदर्भ पूर्ववत।
8. आउटलुक, नवम्बर, 1, 2010 मीडिया विशेषांक में एजाज अषरु और अनफराधा रमन द्वारा लिया नाम चामसकी का लिया साक्षात्कार।
9. महर्षि अरविंद का 15 अगस्त 1947 को चिन्चिना पोली, आल इंडिया रेडियो से की गई अपील, कादम्बिनी, अगस्त 2010, पृ0 30
10. विमांशु दिव्याल का लेख 'अब नहीं उभरेगा वैसा प्रतिपक्ष, प्रभाष जोशी के बहाने (मौजूदा हिंदी पत्रकारिता की पड़ताल, राष्ट्रीय सहारा हस्तक्षेप, 14 जुलाई 2012

भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद

डॉ. अभिषेक यादव

जीवाजी विश्वविद्यालय,

ग्वालियर (म.प्र.)

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य भूमंडलीकृत है। भूमंडलीकरण से आशय निर्बाध व्यापार प्रवाह, निर्बाध पूंजी प्रवाह और निर्बाध टेक्नोलॉजी प्रवाह से है। इसका मुख्य मकसद विभिन्न राष्ट्र-राज्यों को विश्व व्यापार संगठन के ढांचे के अधीन एकीकृत कर देना है। बढ़ते भूमंडलीकरण का प्रभाव सोशल मीडिया पर भी पड़ा है। यह सच है कि भूमंडलीकरण ने सोशल मीडिया को आधुनिकता की पहचान दी है तथा इसकी गति और लय को बढ़ाया है, किन्तु यह भी सच है कि इस आधुनिक सोशल मीडिया में अगंभीरता और छिछलेपन की गुंजाइश भी बढ़ी है। ज्यादा से ज्यादा प्रसार के लिए खबरों को गढ़ने का अनैतिक चलन सोशल मीडिया में बढ़ा है। इसके पीछे धन कमाने की दिन-प्रतिदिन बढ़ती लालसा है। जब प्रसार ज्यादा होता है, तो विज्ञापन भी ज्यादा मिलते हैं, जो कमाई का मुख्य माध्यम होते हैं। इसके अलावा सत्ता और शासन पर पकड़ भी मजबूत बनती है। इसीलिए प्रसार बढ़ाने के लिए ऐसे-ऐसे हथकंडे अपनाए जाते रहे हैं, जिनमें प्रासंगिकता, निष्पक्षता, पारदर्शिता, सटीकबयानी, सच और मूल्यों का कहीं कोई स्थान नहीं रहता है। मकसद सिर्फ सनसनी फैलाना होता है, ताकि प्रसार में तेजी से इजाफा हो। 'घिरा हुआ हूँ मैं हर तरफ से, है आइने में हवा की दहशत।' किसी शायर के ये भाव आज सोशल मीडिया से उत्पन्न डर, समस्याओं, दहशत आदि को बखबू बयाँ करते हैं। परंतु यह विडंबना है कि जिस सोशल मीडिया का उद्देश्य सकारात्मक रूप से विचारों का सहज हस्तांतरण था, वह आज डर, समस्या, आंतरिक असुरक्षा, अभद्र टिप्पणियों का मंच बनकर रह गया है। सोशल मीडिया का जन्म विभिन्न व्यक्तियों, समाजों या विचारों की अभिव्यक्ति के लिये हुआ था, जहाँ लोग भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर विचारों का सहज आदान-प्रदान कर सकें। दिन-प्रतिदिन अखबार की सुखियों में हमें कोई-न-कोई ऐसी घटना जरूर दिख जाती है जिसमें सोशल मीडिया के संजाल का प्रयोग कर आंतरिक सुरक्षा, बंधुत्व-भातृत्व को भेदा गया हो।

ज्यों-ज्यों सूचना प्रौद्योगिकी हमारे निजी एवं कामकाजी जीवन तथा संचार का हिस्सा बनती जा रही है और कंप्यूटरीकरण तथा इंटरनेट-कनेक्टिविटी सरकारी कामकाजी तंत्र की अनिवार्यता बन रहे हैं, त्यों-त्यों इंटरनेट के जरिये आंतरिक सुरक्षा के लिये चुनौतियाँ भी बढ़ती चली गई हैं। इंटरनेट पर उपस्थित हर सामान्य एवं महत्वपूर्ण कंप्यूटर एक समान संचार तंत्र से जुड़ा हुआ है और यही उसकी स्थिति को संवेदनशील बना देता है। साइबर माध्यमों से विध्वंसक गतिविधियों को अंजाम देने की प्रक्रिया ने अब सुसंगठित और संस्थागत रूप ले लिया है। कई आतंकवादी संगठन और दुष्ट राष्ट्र साइबर हमले करने की क्षमता बढ़ाने में लगे हैं। साइबर क्राइम वार के खतरे भी लगातार बढ़ते जा रहे हैं। इंटरनेट के जरिये हो रही आईएसआईएस की भर्तियों, मुंबई के हमलों और चीनी हैकरों की हरकतों ने स्पष्ट कर दिया है कि हमारी आंतरिक सुरक्षा के प्रति साइबर चुनौती कितनी गंभीर है। परन्तु उपरोक्त ने अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रवाद की भूमिका में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

हालाँकि राष्ट्रवाद की कोई एक सार्वभौमिक परिभाषा नहीं दी जा सकती, लेकिन अगर सार रूप में कहा जाए तो राष्ट्रवाद उस सामूहिक अवस्था का नाम है जहाँ लोग स्वयं को एक साझा इतिहास, परम्परा, जातीयता, संस्कृति एवं भाषा इत्यादि के आधार पर एक मानते हैं। इस प्रकार यह 'एक होने की भावना' अन्य सभी कारकों से अधिक प्रभावशाली होती है और यहाँ तक कि राष्ट्र की निष्ठा अन्य सभी अस्मिताओं पर हावी हो जाती है - 'भारत / मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द / जहाँ कहीं प्रयोग किया जाए / बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं।'

वस्तुतः एक भौगोलिक क्षेत्र के अंदर निवास करने वाले समुदायों में कई स्तरों पर भिन्नता होती है, जैसे - धार्मिक, वर्गीय, भाषायी इत्यादि। लेकिन विभिन्न आधारों पर निर्मित हुई 'एक होने की भावना' राष्ट्रीयता की पहचान को अन्य सभी पहचानों पर आरोपित कर देती है। अधिकांश विचारकों ने राष्ट्रवाद का विश्लेषण राजनीतिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में किया है। 'अर्नेस्ट गैलनर' का मानना है कि राष्ट्रवाद मूलतः एक राजनीतिक सिद्धांत है जो राजनीतिक एवं राष्ट्रीय एकता को सुसंगत बनाए रखता है, जबकि राष्ट्रवाद से उत्पन्न हुई एक आधुनिक निर्मित है। यहाँ गैलनर एक तरह से राष्ट्र के 'गढ़े जाने' की ओर संकेत कर रहे हैं। अर्थात् राष्ट्र एक स्वाभाविक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है बल्कि तत्कालीन आर्थिक-राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इस तरह के समूहीकरण की अवधारणा रची गई। उनके अनुसार, औद्योगिक क्रांति के बाद भिन्न-भिन्न जगहों से आए कामगार शहरों में आकर बसने लगे, जिनके बीच अनेक स्तरों पर असमानता थी। पूंजीवाद के विकास के लिये आवश्यक था

कि उत्पादन प्रक्रिया अधिक सुचारू रूप से संचालित हो। यह तभी हो सकता था जब कामगारों में परस्पर भिन्नता कम-से-कम हो तथा वे एक विशेष प्रेरणा से उत्पादन प्रक्रिया में भाग लें। भिन्नता को समाप्त करने के लिये एक साझा इतिहास, साझी संस्कृति तथा समान भाषा की रचना की गई। इस साझेपन ने कामगारों को 'राष्ट्रहित' में अधिक उत्पादन करने की प्रेरणा दी। वर्तमान भूमण्डलीकरण विश्व में यह कार्य सोशल मीडिया द्वारा किया जा रहा है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भूमण्डलीकरण के प्रभाव के कारण आज हमें सोशल मीडिया का कॉरपोरेट कल्चर से पूर्णतः आच्छादित वह औद्योगिक स्वरूप सामने दिख रहा है, जिसमें हर चीज को 'प्रोडक्ट' के नजरिये से देखा जाता है। जहाँ मूलभूत मूल्य और पेशागत पवित्रता गौण है। नव-उदारवादी भूमण्डलीकरण का प्रभाव 'गॉसिप मार्केट' के रूप में सामने दिख रहा है। उदारवादी व्यवस्था का प्रभाव सोशल मीडिया जगत में भी दिख रहा है। आज स्थिति यह है कि कोई भी इलेक्ट्रॉनिक सोशल मीडिया के क्षेत्र में न सिर्फ आसानी से प्रवेश कर सकता है, बल्कि बाकायदा अपनी कंपनी बनाकर इस क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। इसे नवउदारवादी आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की ही देन माना जाएगा कि अब सोशल मीडिया पर राज्य का पूर्ण स्वामित्व नहीं रहा। सोशल मीडिया पर सरकारी नियंत्रण की पकड़ ढीली हुई है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विज्ञापनों की स्पर्धा बढ़ी है। विज्ञापनों को छापने में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। विज्ञापनों को छापते समय खबरों और विज्ञापनों का प्रतिशत भी नहीं देखा जाता है। यदि विज्ञापन उपलब्ध हो जाए तो अखबार के सभी पृष्ठ इससे भरे जा सकते हैं। खबरे रहें या न रहें या विज्ञापन की इस भरमार को पाठक कितना ही कोसें, इसकी परवाह सोशल मीडिया घराने अब नहीं करते हैं। आने वाले दिनों में यदि अखबार सम्पादकीय पृष्ठों पर भी विज्ञापन छपने लगे, तो भूमण्डलीकरण के इस नये रुझान के चकित होने की बात नहीं है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया पर ग्लैमर का प्रभाव साफ दिख रहा है। जिंदगी के हाशिए पर चला गया देश का वंचित तबका सोशल मीडिया के भी हाशिए पर चला गया। हमारे गांवों और लोक संस्कृति के दर्शन भी इसमें दुर्लभ हो गये हैं। यह बढ़ते ग्लैमर का ही प्रभाव है कि जिंदगी से जुड़े अहम मुद्दों को नजरदांज कर फिल्मी सितारों के शादी-ब्याह के समाचार, उनके निजी जीवन के चर्चे आदि चटखारों के साथ संप्रेषित किए जाते हैं। अब भूख से मरने वाले गरीब की खबर हाशिए पर चली गयी है, जबकि सिनेतारिका के घर आदि की खबर बेहद प्रमुखता से स्थान पाती हैं। रचनात्मक और चिंतन का अभाव दिख रहा है। यही कारण है कि सोशल मीडिया में जिस ढंग से बढ़ती महंगाई, मुद्रास्फीति, गरीबी, बेरोजगारी एवं जन समस्याओं की चर्चा होनी चाहिए, वह होती नहीं दिखती है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया का केन्द्रीयकरण भी बढ़ा है। पिछले कुछ वर्षों में चंद बहुराष्ट्रीय निगमों ने मनोरंजन, समाचार, फिल्म आदि के भूमण्डलीकरण बाजार पर जबरदस्त पकड़ बनाई है। भूमण्डलीय पूंजीवाद ने पैसा कमाने की होड़ को इस कदर बढ़ा दिया है कि अब लोगों को गंभीर समस्याओं से दूर रखकर उन्हें बाजार की भूल-भुलैया में भटकाने का चलन बढ़ गया है। पैसे बटोरने की होड़ में परंपरागत मूल्य और नीतियां हाशिए पर चली गई हैं। भाषा के साथ भी खिलवाड़ शुरू हो गया है। अब भाषा भी बाजार को ध्यान में रखकर गढ़ी जा रही है। भाषा के साथ नये-नये प्रयोग किए जा रहे हैं। 'बाई लैंग्वल' के नाम पर भ्रष्ट भाषा परोसी जा रही है। चूंकि भूमण्डलीकरण ने अंग्रेजी के वर्चस्व को बढ़ाया है, अतएव क्षेत्रीय या राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में उसकी बहुलता रहती है। जहाँ वह क्षेत्रीय भाषाओं को 'रिप्लेस' कर सकती है, वहां उसने उसे कर दिया है, जहां वह मजबूर है, वहां उसने हर भाषा में घुसकर उसे भ्रष्ट करना शुरू कर दिया है। हिन्दी पत्रकारिता तो इस नये चलन से विशेष रूप से प्रभावित हुई है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया में 'नारी देह' की भी नुमाइश बढ़ी है। नारी मां, बहन, बेटी न होकर सिर्फ देह बनकर रह गई है, जिसे तरह-तरह से भुनाने की कोशिश हो रही है। बाजारवादी मानसिकता के कारण सोशल मीडिया में स्त्री चिंतन और स्त्री विमर्श का अब कोई स्थान नहीं रह गया है। इसके बजाय आधी दुनिया की समस्याओं को सामने आने के नारी की भोग्या छवि को स्थापित करने के प्रयास पूरे तौर पर जारी हैं। ऐसा करते हुए हमने अपने राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं को ताक पर रख दिया है।

हर वस्तु के दो पहलू होते हैं। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया का भी एक दूसरा पहलू है, जो आलोच्य नहीं वरन् आश्वस्तदायक है। सोशल मीडिया का बदला हुआ चेहरा और संचार में आई क्रांति भूमण्डलीकरण की ही देन है। आज का सोशल मीडिया आधुनिक संसाधनों से लैस है और बेहद सुगम है। ऑनलाइन जर्नलिज्म की शुरुआत भूमण्डलीकरण की ही देन है। अब सीमाएं टूटी हैं। खबरें पंख लगाकर उड़ रही हैं। समाचारों का साम्राज्य बढ़ा है। सच तो यह है कि भूमण्डलीकरण के कारण परंपरागत सोशल मीडिया की काया पलट ही गई है।

चूंकि वैश्विक परिदृश्य में अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था है, अतएव समाज एवं राष्ट्र के प्रति सोशल मीडिया की जवाबदेही भी ज्यादा है। यही कारण है कि सोशल मीडिया समाज का प्रहरी है और यह बात वह समय-समय पर साबित करता रहा है। चाहे वह आपातकाल का दौर रहा हो अथवा जनहित से जुड़ा कोई भी आन्दोलन, सोशल मीडिया ने समाज के बीच अपनी सार्थकता को स्थापित किया। यही कारण है कि मौजूदा दौर में समाज की अपेक्षाएं सोशल मीडिया से बढ़ी हैं और उसे नागरिकों के अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाले माध्यम के रूप में देखा जाता रहा है।

ध्यातव्य है कि सोशल मीडिया ने समय-समय पर स्वच्छ और निष्पक्ष सूचनाओं के कारण की मिसाल भी पेश की हैं।

यदि सोशल मीडिया सजग और चेतन न होता तथा सामाजिक सरोकारों से प्रतिबद्ध न होती, तो शायद भारत जैसे देशों में अनेक सच सामने न आ पाते। सच को उजागर कर सोशल मीडिया ने सरकार को कार्यवाही के लिए विवश किया। निर्भया प्रकरण, अन्ना हजारे आन्दोलन अनेक रिश्वत प्रकरण इत्यादि। इन सभी को सामने लाने में सोशल मीडिया की केंद्रीय भूमिका रही है। भ्रष्टाचार से जुड़ी वह फेहरिस्त बहुत लंबी है, जो सोशल मीडिया के प्रयासों से ही सामने आ सकी। सच को उजागर करने में व्हाट्स एप आदि की भूमिका की अनदेखी नहीं कर सकते हैं।

भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में सोशल मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका के कारण भ्रष्टाचार के विरुद्ध अन्ना हजारे जी का आंदोलन अत्यधिक सफल हुआ। इसी प्रकार दिल्ली में सामूहिक बलात्कार के विरुद्ध 'निर्भया' के दोषियों को दण्ड प्रदान करवाने हेतु व्यापक जन-आंदोलन में सोशल मीडिया ने सकारात्मक भूमिका का निर्वहन किया है, जिससे न केवल भारतीय अपितु वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया की भूमिका का सकारात्मक अंकन हुआ है।

हाल ही में सोशल मीडिया पर 'पनामा पेपर्स' में नाम आने के कारण अनेक भारतीय काला धन रखने वालों की लिस्ट उजागर हुई है। इसी प्रकार चीन एवं भारत के मध्य डोकलाम विवाद, सोशल मीडिया की भूमिका के कारण दोनों देशों के मध्य युद्ध जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी, परन्तु दोनों देशों के मध्य परिपक्व दृष्टिकोण एवं कूटनीतिक प्रयासों के कारण पुनः शांतिपूर्ण स्थित स्थापित हुई।

इसी प्रकार, हाल ही में 'पैराडाइज पेपर्स' ने विश्व के 180 देशों के नागरिकों द्वारा अपना काला धन टैक्स हैवन देशों में जमा रखने को लेकर रैंकिंग दी गई है। भारत की रैंक 19वीं है। देश के 714 लोगों के नाम पैराडाइज पेपर्स में हैं। इनमें देश के सभी बड़े राजनीतिक दलों, बॉलीवुड एवं कारपोरेट जगत के दिग्गज लोगों के नाम शामिल हैं। सोशल मीडिया द्वारा भ्रष्टाचार के विरुद्ध वैश्विक परिदृश्य में सकारात्मक एवं प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया है, जिसे जर्मनी के 'जीटॉयचे साइटुंग' नामक अखबार ने 'इंटरनेशनल कंसोर्टियम ऑफ़ इनवेस्टिगेटिव जर्नलिस्ट' (आई.सी.आर. जे.) की खोजी रिपोर्ट द्वारा प्रकाशित की गई है। आई.सी.आर.जे. ने विश्व की 96 समाचार संस्थाओं के साथ मिलकर यह भंडाफोड़ किया है। इसके माध्यम से वैश्विक सोशल मीडिया के एकीकृत प्रभाव से काला धन एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्यवाही को बल प्रदान किया है।

भारत में भारत सरकार ने पैराडाइज पेपर में प्रकाशित नामों की जांच एस.आई.टी. को सौंप दी है। ध्यातव्य है कि एस.आई.टी. पहले से ही पनामा पेपर्स में प्रकाशित भारतीय नामों की जांच कर रही है। अतः वर्तमान में सोशल मीडिया की भूमिका वैश्विक परिदृश्य में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि क्षेत्र में केवल सूचनाओं के संप्रेषण तक सीमित नहीं रह गई है, अपितु जनमत निर्माण राष्ट्रवाद, शांति स्थापना एवं विभिन्न प्रकार से ज्ञान के संचार के साथ जागरूकता उत्पन्न करने में प्रभावी रही है। सोशल मीडिया की इसी प्रभावी भूमिका के कारण वंचित समाज के उन्नयन यथा- दलित, स्त्री, किन्नर इत्यादि के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ावा प्राप्त हुआ है। अतः जहां राष्ट्रीय सरकारों एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की पहुंच सीधे रूप में संभव नहीं होती है, वहां सोशल मीडिया द्वारा ध्यान आकृष्ट कर सकारात्मक एवं प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया जाता है।

सोशल मीडिया का बेरोकटोक इस्तेमाल आंतरिक सुरक्षा के लिये गंभीर चुनौतियाँ लेकर आ रहा है। फिलहाल, दुनिया की कोई भी सरकार इस समस्या को कोई ठोस समाधान नहीं तलाश पाई है। लेकिन सोशल मीडिया के दुरुपयोग के जिन्न को खुला नहीं छोड़ा जा सकता। वह बार-बार बोटल से बाहर आ जाता है। कहीं ऐसा न हो कि एक दिन उसे फिर से बोटल में बंद करना नामुमकिन हो जाए। अतः सरकार को सोशल मीडिया के प्रयोग को रचनात्मक निर्माणकारी गतिविधियों की ओर मोड़ना होगा, इसके लिये आवश्यक है कि सोशल मीडिया पर 'सूचना के विस्फोट' का सही तरीके से नियमन हो तथा सोशल मीडिया के सकारात्मक पक्षों को सबल बनाकर सोशल मीडिया से उत्पन्न होने वाले डर पर विजय प्राप्त की जाए। वर्तमान में फेसबुक पर डाटा लीक प्रकरण, सीबीएसई का पेपर लीक इत्यादि घटनाओं को जहाँ एक ओर सोशल मीडिया द्वारा व्यापकता से प्रसारित किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर सीरिया आदि में वैश्विक आतंकवाद के विरुद्ध एकजुटता ने अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया यथा- व्हाट्स एप, फेसबुक, ट्विटर आदि ने सोशल मीडिया की भूमिका को जन-जन तक पहुंचा दिया है। इसके कारण एक तरफ तो जहां कुछ कट्टरवादी एवं अलगाववादी शक्तियों को बढ़ावा तो मिला है, परंतु वहीं दूसरी ओर राष्ट्रवाद लोकतांत्रिक, मानवतावादी एवं ज्ञान का प्रसार भी संभव हुआ है। इस प्रकार भूमंडलीकरण ने सोशल मीडिया के माध्यम से राष्ट्रवाद के प्रोत्साहन के साथ लोकतंत्र के पांचवें स्तंभ अर्थात् जनमत का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

संदर्भ

1. भूमण्डलीकरण और बाज़ार और मीडिया - जय नारायण बुधवार, प्रमिला बुधवार, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2008, दिल्ली
2. इनसाइड लाइव (एक मीडियाकर्मी की डायरी), लेखक-लीलाधर मंडलोई, आधार प्रकाशन
3. मीडिया और बाज़ारवाद- संपादन रामशरण जोशी, प्रकाशन-राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.
4. दैनिक जागरण, जनसत्ता, समाचार पत्रों के संपादकीय एवं समसामयिक लेख इत्यादि।
5. 2017, 2018, योजना, कुरुक्षेत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न आलेख।

राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में पं. माखनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर'

अनीता पटेल

वरिष्ठ अनुसंधान अध्ययता, हिंदी विभाग
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

'साहित्य और पत्रकारिता का गहरा सम्बंध है। साहित्य में संवेदना मनफष्य को जिस परस्परता से जोड़ती है, उसका सूचना-संजाल मीडिया में आकर समाज और राजनीति को मानवता के गहरे सरोकारों से जोड़ सकता है। पत्रकारिता से जुड़कर अनेक साहित्यकारों ने स्वाधीनता संघर्ष में अपनी गहरी भूमिका का निर्वाह किया।'¹ इस कथन के संदर्भ में अगर देखा जाए तो आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेन्दु और उनके मंडल के साहित्यकारों ने हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से जन-जागरण और राष्ट्रीय चेतना की जो लहर उठाई, उसका पूरा प्रभाव छायावाद युग के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि पं. माखनलाल चतुर्वेदी की पत्रकारिता में दिखाई देता है।

यद्यपि चतुर्वेदी जी महात्मा गाँधी से बहुत प्रभावित थे, फिर भी उनकी राष्ट्रीय चेतना उग्र भावों से युक्त थी और वे अंग्रेजों के अवसरवादी नीतियों के सख्त विरोधी थे। भारतीय राजनीति और आंदोलनों में गाँधी जी के सक्रिय भूमिका का प्रभाव, उस समय के हिंदी साहित्य के साथ-साथ हिंदी पत्रकारिता पर भी पर्याप्त पड़ा। उस युग के अधिकांश साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में देशप्रेम, राष्ट्रीयता, जन चेतना तथा गाँधीवादी आदर्शों के प्रचार-प्रसार की प्रेरणा ही प्रबल रही। इस संदर्भ में धर्मवीर भारती का यह कथन अवलोकनीय है- 'स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता की परंपरा और परवान चढ़ती गई। वह चाहे क्रांतिकारी शस्त्र आंदोलन हो या गाँधी जी का सत्याग्रह-ये अखबार उनके माध्यम से जन-जागरण के अग्रदूत थे। रोज जमानत माँगी जाती थी, रोज-रोज पुलिस छापे मारती थी, संपादक का एक पाँव जेल में रहता था। संपादक और पत्रकार जनता के आदमी थे और भाषा के साथ-हिंदी के साथ-एक गहरी प्रतिबद्धता थी, अपनी मातृभाषा के गौरव से उद्दीप्त थी वह पत्रकारिता। तेजस्वी पत्रकारों की एक लम्बी परंपरा महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराडकर इत्यादि के रूप में कार्यरत थे और अखबार तब रोजगार से ज्यादा विचार का वाहक था।'²

पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने 'प्रभा' का संपादन सन् 1913-1915 तक, 'प्रताप' का अक्टूबर 1923 से मार्च 1924 तक विद्यार्थी जी के जेल जाने पर किया। चतुर्वेदी जी की पत्रकारिता का मुख्य केन्द्र साप्ताहिक 'कर्मवीर' ही था, जिसका संपादन उन्होंने 17 जनवरी 1920 से 11 जुलाई 1959 तक किया। इसमें से उनकी जेल यात्रा का समय निकाल देने पर लगभग 35 वर्षों का लम्बा संपादकीय कार्यकाल रहा। माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली के 10 खण्डों में से 9 एवं 10 उनके 'कर्मवीर' के सम्पादकीय लेखों पर ही केन्द्रित है। 'कर्मवीर' के डिक्लेरेशन लेने के समय अंग्रेज मजिस्ट्रेट के यह पूछने पर कि इस पत्र की क्या आवश्यकता है ? इसपर बड़ी निडरता के साथ चतुर्वेदी जी ने कहा कि 'आपका अंग्रेजी पत्र दब्बू है, मैं ऐसा पत्र निकालना चाहता हूँ जिससे ब्रिटिश शासन चलते-चलते रुक जाए।' चतुर्वेदी जी की इस स्पष्टवादिता और प्रखर चेतना से ही 'कर्मवीर' के उद्देश्य का पता चल जाता है कि भारत और वहाँ के आम जन के सुख-दुख से पूर्णतया प्रतिबद्ध पत्र है। इस संदर्भ में यह कथन महत्वपूर्ण है- 'कर्मवीर के संपादकीय अत्यंत प्रखर और निर्भीक हाते थे। स्वतंत्रता-संघर्ष का धधकता हुआ इतिहास अत्यंत प्रमाणिक रूप में कर्मवीर के पृष्ठों पर अंकित है। पत्रकारिता की महान शक्ति कर्मवीर के माध्यम से उजागर हुई थी। अनेक आंदोलनों में कर्मवीर ने नेतृत्व किया और अभूतपूर्व सफलताएँ अर्जित की।'³

'कर्मवीर' का संबंध एक तरफ साहित्य, कला, समीक्षा तथा नवीन प्रतिभाओं को अवसर देने से था, तो दूसरी ओर वह भारत के गरीब, कमजोर, शोषितों की आवाज और उनका पक्षधर था। 'कर्मवीर' की दृष्टि राष्ट्रीय राजनीति के साथ अंतरराष्ट्रीय पटल पर भी बराबर बनी रही और साथ ही सामाजिक सरोकारों से भी जुड़ी रही, जो उसकी संपादकीय शीर्षको जैसे- टर्की का भाग्य निर्णय, रूस की क्रान्ति, अफ्रीका रंगभेद, मजदूर और मजदूरी, महात्मा गाँधी और सत्याग्रह, स्त्रियों पर अत्याचार, रायबरेली हत्याकाण्ड, बजट या दिवाला, हण्टर कमेटी की नियत, प्रेस एक्ट का कुचक्र आदि से स्पष्ट हो जाता है। 'कर्मवीर' का पहला अग्रलेख जो 'हम' शीर्षक से 17 जनवरी 1920 को प्रकाशित हुआ, इसके तुरन्त बाद ही पं. माखनलाल चतुर्वेदी को गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस संपादकीय की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- 'राजनीति में या समाज में, साहित्य में या धर्म में जहाँ भी स्वतंत्रता का पथ रोका जायेगा, ठोकर मारने वालों का पहिला प्रहार और घातक के शस्त्र का पहिला वार आदर

से लेकर मुक्त होने के लिए प्रस्तुत रहेंगे। दासता से हमारा मतभेद रहेगा। चाहे वह शरीर की हो या मन की, व्यक्तियों की हो या परिस्थितियों की-दोषियों की या निर्दोषियों की, शासकों की हो या शासितों की।⁴

गाँधी जी और उनके सिद्धांतों को रोकने के लिए ब्रिटिश शासन ने अनेक प्रयास किए और उनके विरुद्ध दुष्प्रचार भी किए किन्तु सफल न हो सके। इस भ्रमात्मक स्थिति को दूर कर, लोगों में सत्याग्रह के प्रति प्रबल विश्वास को बनाए रखने को लिए चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' में 24 जनवरी 1920 को 'महात्मा गाँधी और सत्याग्रह' शीर्षक संपादकीय में लिखा- "कहा जाता है सत्याग्रह से विद्रोह पैदा होता है, किन्तु आज तक ऐसा कोई प्रमाण कहने वालों के पास नहीं। सत्याग्रह ने भारत में विरोधी भावों को हटाया है। तब यह दोष मिथ्या है। सच बात तो यह है कि वर्तमान गड़बड़ के जिम्मेवार अत्याचारी शासकों को दोष-मुक्त दिखाने की सारी तैयारियाँ हैं। नहीं तो, नेताओं के पकड़े जाने पर, देश से निकाले जाने और दंड दिये जाने पर, उन देशों में अत्याचार का बदला चुकाने के लिए प्रयत्न हुए हैं, जहाँ 'गाँधी' नाम की हवा भी न पहुँची हो।"⁵ गाँधी जी और उनके सिद्धांतों में चतुर्वेदी जी की अटूट निष्ठा थी, और वे मानते थे कि उसी मार्ग का अनुसरण करके ही स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है। गाँधी जी की विचारों को जन-जन तक पहुँचाकर और लोगों को जागरूक करके ही स्वाधीनता आंदोलन को सफल बनाया जा सकता था, इस हेतु माखनलाल चतुर्वेदी अहिंसा और असहयोग पर बल देते हुए 'देश की स्वाधीनता की तैयारी' शीर्षक में लिखते हैं - "अगर हमारे बलिदान से दुनिया में भूकम्प हो उठे तब भी बलि होना न रोका जाय, अहिंसापूर्वक वह जारी रखा जाये हम कष्टों से खाली दुनिया का डॉवाडोल हो, उतना ही नहीं अपनी कौम की अमरता चाहते हैं और चाहते हैं प्यारे मुल्क का स्वराज्य। मुल्क की माँग है मेरी बेड़ियाँ असहयोग तोड़ेगा, असहयोग करो।"⁶

पं. माखन लाल चतुर्वेदी का प्रखर बलिदानी स्वर भारत की पीड़ित-शोषित जनता की मूक वेदना के साथ, उनके हक में तथा शोषण प्रधान व्यवस्था के विरोध में उठता है। एक तरफ़ भारत के गरीब मजदूर-किसान अपनी मेहनत और हक को पाने के लिए प्रयासरत है तो दूसरी तरफ़ उनके हक को मारकर अपनी सुख सुविधाओं को बढ़ाने वाला शासक वर्ग है। ऐसे शासक वर्ग को चेतावनी देते हुए चतुर्वेदी जी 22 मई 1920 के 'कर्मवीर' में लिखते हैं- "हमारे देश में इस समय उत्तर-पश्चिम रेलवे के कर्मचारियों, अहमदाबाद के मिलवालों, मद्रास के तेल कारखानों में काम करने वालों और ब्यावर (राजपूताना) के मिल-कर्मचारियों ने अपने-अपने काम छोड़ रखे हैं। सम्पत्ति के यथोचित विभाग का प्रश्न है। मजदूर चाहते हैं भर-पेट भोजन मिलें, पूँजीवाले अपने ऐशो-आराम में कमी करना पसंद नहीं करते। कटुता दिन-दिन बढ़ती जा रही है, ऐसे समय में देश के पूँजीवालों और कारखाने वालों बड़े विचार से काम करना चाहिए। लोकसत्ता के सामने जारसाही तक कुछ न चली। जहाँ तक राजनीति में भेदभाव का हम तिरस्कार करते हैं मनुष्य समाज की श्रेणी का विभिन्नता का भी हम तिरस्कार करते हैं। पूँजीवाले यदि जल्द रास्ते पे न आये, तो देश में उलझनें बढ़ जायेंगी।"⁷

जनरल डायर द्वारा कराए गए नृशंस जलियाँवाला हत्याकांड के बाद, देशभर में विद्रोह की स्थिति को देखते हुए अंग्रेज सरकार ने भारतीयों का सिर्फ़ बरगलाने के लिए जाँच हेतु हण्टर कमेटी का गठन किया। प्रबुद्ध भारतीयों के सोच के अनुसार ही हण्टर कमेटी ने अपनी झूठी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें घटित घटना पर सिर्फ़ अफसोस जाहिर करते हुए, अपराधी अंग्रेज अधिकारियों को बचाया गया। जाँच कमेटी के इस झूठे स्वांग पर रोषपूर्ण तीखी प्रतिक्रिया देते हुए चतुर्वेदी जी 2 अक्टूबर 1920 को 'कर्मवीर' में 'आप न्याय चाहते थे न ? यह लीजिए' शीर्षक से लिखते हैं- "एक तरफ़ पंजाब भर के नेताओं को काला पानी, जेल और फाँसी की सजा दी जाती है और हजारों तड़पाये और भून डाले जाते हैं और दूसरी तरफ़ ? हजारों का नाश कर डालने पर भी नौकरशाही के केवल 20 आदमी अपराधी माने जाते हैं। पर क्या इन अपराधियों को भी जेल, फाँसी या काला पानी की सजा होगी? क्या इन पर भी कोड़े पड़ेंगे और क्या ये भी पेट के बल रेंगने के लिए लाचार होंगे?... इन्साफ़ हो गया और उस इन्साफ़ ने दिखाया कि चाहे हजारों भारतवासी भून डाले जाएँ परन्तु कर्नल ओब्रायन, मि. मार्सडन, मि. जेकब, जनरल केम्पबेल, कर्नल डबटन, कर्नल मकरे इन्हें केवल सूचित किया गया है कि आपने जो कार्य पंजाब में किया, उसे सरकार नापसंद करती है। ओह! कितना बड़ा दंड है।"⁸

जलियाँवाला बाग हत्याकांड के बाद भारतीयों की प्रतिक्रिया से आक्रांत अंग्रेज सरकार अपनी शासन-व्यवस्था को हिलने से बचाने के लिए, सैकड़ों वर्षों से एक साथ एक समन्वित संस्कृति के रूप में रहने वाले हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों में द्वेष फैलाने की अपनी घृणित नीति को अंजाम देने में लगी थी। धर्म की आड़ में 'फूट डालो राज करो' की नीति को चिंगारी के रूप में गोरक्षा से जोड़कर कुछ उन्मत्त युवाओं को आगे कर अंग्रेजी शासन अपना हाथ सँकना चाहती है, इस घृणित सत्य को समझकर ही चतुर्वेदी जी ने दोनों कौमों को विवेक से काम लेने और अंग्रेजों की दूषित मनोवृत्ति को समझने का आग्रह करते हुए, 12 फरवरी 1921 के 'कर्मवीर' में लिखा-"जिस गोरक्षा के सवाल को हाथों में लेकर तूफान उठाने की कोशिश की जाती है, वह सवाल अकेले हिन्दुओं का नहीं, मुसलमानों का भी है। मुसलमान भाई भी देश में खेती करते हैं, उनके बाल-बच्चों के लिए दूध 'विलायत' से डिब्बों में भरकर नहीं आता। फौज के अंग्रेजों के पेट के लिए हजारों गायों के मारे जाने पर कौन हिन्दू ऐसा होगा जो मुसलमान से गौ-हत्या के लिए लड़ने के लिए तैयार होगा ? इन दोनों बड़ी कौमों को इस वक्त बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिए। मुसलमान और हिन्दू सबसे पहले हिन्दुस्तानी हैं, इस बात को भूल नहीं जाना चाहिए।"⁹

‘कर्मवीर’ की सम्पादकीय टिप्पणियों को पढ़कर मन में वही अनुभूतियाँ जाग्रत होती हैं, जो पं. माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय-बलिदानि चेतना से ओतप्रोत कविताओं को पढ़कर। पत्रकार के रूप में उनका लेखन अत्यंत प्रखर, अंग्रेजी सरकार के अवसरवादी और समझौतेवादी नीति से बिल्कुल विरुद्ध था। उन्होंने बड़ी ही निडरता और स्पष्टवादिता से ब्रिटिश साम्राज्य की दुलमुल और दमनात्मक नीतियों को भारतीय जनता के सामने खोलकर रख दिया, जिसकी वजह से उनको जेल यात्राएँ भी करनी पड़ी, किन्तु ‘कर्मवीर’ के माध्यम से राष्ट्रप्रेम और जन-मानस में राष्ट्रीय चेतना का बिगुल फूँकना कभी बंद नहीं हुआ। ‘कर्मवीर’ में लिखे उनके सम्पादकीय और लेखों ने देश के हजारों युवाओं में स्वाधीनता के प्रति ऐसा जोश पैदा किया, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। अंत में डॉ. विनय मोहन शर्मा का यह कथन अत्यंत ही प्रासंगिक प्रतीत होता है-“कर्मवीर ही वह पत्र था, जिसने रतौना-कसाईघर के विरोध में आवाज उठाई और जनमत एकत्रित किया। ऐसे अनेक आंदोलन कर्मवीर ने छोड़े और वह उनमें सफल भी हुआ। ‘कर्मवीर’ ने ऐसे परिस्थितियों में काम किया जब ‘स्वराज्य’ उच्चरित करना अपराध था।.... पत्रकारिता में चतुर्वेदी जी ने म.प्र. में परंपरा कायम की है और वे श्री अंबिका प्रसाद वाजपेयी, स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी और स्व. पड़ारकर जी की शृंखला की गौरवमयी कड़ी हैं।”¹⁰

संदर्भ

1. मिश्र. डॉ. राजेन्द्र. राकेश शर्मा. पत्रकारिता प्रशिक्षण. (भूमिका) नई दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन, सं-2004.
2. वर्मा. डॉ. मृदुला. हिन्दी की सर्वोदय पत्रकारिता. कानपुर : विद्या प्रकाशन, सं-1993. पृष्ठ-57
3. जोषी, श्रीकांत. संपा. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली (प्राक्कथन) खण्ड-9. वाणी प्रकाशन, सन्-1983
4. वही, पृष्ठ- 14.
5. वही, पृष्ठ- 19-20.
6. वही, पृष्ठ- 254.
7. वही, पृष्ठ- 138.
8. वही, पृष्ठ- 239.
9. वही, पृष्ठ- 284-285.
10. वही, पृष्ठ- 12.

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रबोध

राधारानी वर्मा

शोधार्थी, सेठ पी.सी. बागला (पी.जी.) कॉलेज
हाथरस (उ.प्र.)

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में दिनकर का काव्य बेहद प्रभावशाली है, क्योंकि राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत उनकी विचारधारा पाठकों को प्रभावित करती है। कुरुक्षेत्र, रश्मिस्थी, परशुराम की प्रतीक्षा, हुंकार जैसे काव्य संग्रहों में दिनकर की काव्य प्रतिभा का पल्लवन हुआ है। 'कुरुक्षेत्र' में राष्ट्रबोध की चिन्तना अपने नये तेवर के साथ मुखरित हुयी है। 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म पितामह और युधिष्ठिर का संवाद भारतीय ऋषि परम्परा का द्योतक है। युधिष्ठिर का निम्नलिखित कथन उनके दार्शनिक महत्व और भारतीय परम्परा का बोध कराता है -

‘एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है
एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है
जानता हूँ लड़ना पड़ा था हो विवश किन्तु
लोहू-सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है
ध्वंसजन्य सुख याकि साश्रु, दुख शान्तिजन्य
ज्ञात नहीं कौन बात नीति के विरुद्ध है
जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य
या महान पाप महा फूटा बन युद्ध है।’¹

इसी प्रकार 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध की समस्या को विश्वव्यापी मानते हुये उसके कारण और निवारण पर प्रकाश डाला गया है। युद्ध को निन्द्य माना गया है, परन्तु अनिवार्य परिस्थितियों में युद्ध की अनिवार्यता भी मानी गयी है। भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हुये कारण और निवारण पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं-

‘रण रोकना है तो उखाड़ विशदंत फेंको,
वृक-व्याघ्र-भीति से मही को मुक्त कर दो।
अथवा अजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र,
दाँतों में कराल कालकूट-विष भर दो।
वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं, उन्हें फ़ैलाने का वर दो।
रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिराएँ तोड़ो, डालियाँ कतर दो।’²

'कुरुक्षेत्र' के संदर्भ में इतना कहना आवश्यक है 'कुरुक्षेत्र' में विश्व की अन्तरराष्ट्रीय समस्या युद्ध से पूर्ण रूपेण मुक्ति और आवश्यकतानुसार आत्मरक्षा के लिए युद्ध की ललकार दोनों समन्वयवादी दृष्टियों का विवेचन किया गया है। विविध प्रकार की विचारोत्तेजक शैली में एक पवित्र और स्वस्थ-वैचारिक दर्शन का प्रतिपादन 'कुरुक्षेत्र' में मिलता है। इस संदर्भ में दिनकर की रचना-दृष्टि निम्नलिखित शब्दों में समझी जा सकती है- 'युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है, किन्तु, उसका दायित्व किस पर होना चाहिए, उस पर, जो अनीतियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है ? या उस पर, जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है पाण्डवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शांति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी; तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शांति, का भंग नहीं करना चाहिए था?'³

वर्तमान में युग में विज्ञान के आविष्कारों से विभिन्न देश की दूरियाँ भले ही घटी हों, लेकिन आदमी का जीवन खतरे में अवश्य हुआ है। आए दिन विश्व युद्ध का खतरा मँडराता रहता है। अभी कुछ समय पहले अमेरिका उत्तर कोरिया के बीच आक्रामक शैली में वाद-प्रतिवाद हुआ। आज हाइड्रोजन बम की शक्ति इतनी अधिक है कि कुछ ही मिनटों में किसी भी देश को तबाह किया जा सकता है। 'कुरुक्षेत्र' का प्रतिपाद्य इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है कि युद्ध से बचा जाय और मनुष्यता को पूरी तरह से रक्षा की जाये। यह तभी सम्भव है जब हम अपने निहित स्वार्थों से ऊपर उठकर विश्व मानवता को भाव अपने

हृदय और चिन्तन में स्वीकार करेंगे।

दिनकर की कविता में अपने पूर्वज कवियों के प्रति श्रद्धा का विस्तार है। राष्ट्र-वाद की परम्परा में बड़े कवियों की वैचारिक परम्परा से लाभ उठाने का आह्वान है। यही आह्वान कविता को नई ऊँचाई पर स्थिति करता है। दिनकर का काव्य पक्ष भावुकता और बुद्धिमत्ता दोनों से रस ग्रहण करता है। एक ओर 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर की वाणी में दार्शनिकों जैसी विवेचना है तो दूसरी ओर 'उर्वशी' में दिनकर शंकाकुल कवि बार-बार दुविधा के बीच जाता है। प्रेमदर्शन को लेकर खड़ा किया गया उनका दर्शन अनेक प्रश्नों से जूझता है और अन्त तक यह रहस्य बना ही रहता है कि उनके प्रेमदर्शन का औचित्य बोध क्या है। इस बात को स्वयं दिनकर ने स्वीकार किया है कि 'उर्वशी' में जाकर उनका काव्य वैशिष्ट्य समन्वयवादी चेतना से ओतप्रोत होकर रचबस जाता है। दिनकर के शब्द विचारणीय हैं- 'मनुष्य इतनी बार धोखा खा चुका है कि उसे अब किसी भी ज्ञान पर विश्वास नहीं रहा और सत्य को उसने इतनी बार बदलते देखा है कि वह कहीं भी दुराग्रह-पूर्वक अड़ने को तैयार नहीं है। इसका प्रभाव कविता पर पड़ना स्वाभाविक था। कविता अब सत्य का उद्घोष नहीं, उसके अनुसंधान का प्रयास है। मैं भी 'उर्वशी' में सिखाने के बदले अनुसंधान के काम में ज्यादा लगा रहा हूँ। यह ठीक है कि 'उर्वशी' बहुत से संचित ज्ञान का कथन बड़े ही उत्साह के साथ करती है, किन्तु वह सब का सब सच है या नहीं, यह बात मुझे भी मालूम नहीं है। कविता में एक स्थिति वह भी आती है, जब कवि को अपने अहं का लोप करना पड़ता है अथवा समाधि की स्थिति में देर तक टिके रहने से कवि के अहं का आप से आप लोप हो जाता है। तब तो भूमि रिक्त रह जाती है, वहाँ कहीं रत होकर खुद-ब-खुद उतर आती है। 'उर्वशी' में ऐसे कई स्थल हैं। किन्तु उनके बारे में अधिकारपूर्वक बोलना मेरे लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि जहाँ-जहाँ ऐसे स्थल आये हैं, मेरा अस्तित्व विलुप्त हो गया है। वहाँ जो है, वह कविता है, मैं नहीं हूँ।'

इस प्रसंग में 'उर्वशी' को 'कुरुक्षेत्र' से मिलाकर देखने की उत्सुकता स्वाभाविक है। 'कुरुक्षेत्र' में प्रकाश है, 'उर्वशी' में द्रामा और गोधूलि है। 'कुरुक्षेत्र' की वाणी विश्वास की वाणी है, 'उर्वशी' की वाणी संशय और द्विधा से आक्रान्त है। 'कुरुक्षेत्र' में मैं घृष्टतापूर्वक गुरु के पद से स्वयं बोल गया हूँ। 'उर्वशी' की ऊँचाई पर पहुँचकर मुझे ऐसा लगा कि काश कोई गुरु मिल जाता तो उससे पूछ लेता कि असली रहस्य क्या है।¹⁴

इस प्रकार स्पष्ट है कि दिनकर के काव्य में पात्रों की संयोजन भी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक महत्व की रही है। 'उर्वशी' स्वर्ग की अप्सरा है और वह स्वर्ग के प्रतिबन्धक नियमों से खीझ उठी है तभी वह पृथ्वी के राजा पुरुरवा को देखकर तथा उसके उपकार से सर्वर्द्धित होकर कृतकृत्य हो जाती है। और वह पुरुरवा के प्रेमपाश में बँध जाती है। पुरुरवा 'उर्वशी' का कथानक राष्ट्रबोध की गौरवशाली परम्परा का द्योतक है। दिनकर के 'उर्वशी' काव्य को पढ़कर यह जाना जा सकता है।

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में अपनी राष्ट्रीय चिन्तन-मनन को पूरी तरह एक दार्शनिक की शैली में विवेचित और विश्लेशित किया है। युधिष्ठिर और भीष्म के संवाद में राष्ट्रबोध की चरम दशा का प्रतिफलन हुआ है। यह राष्ट्रबोध केवल भारत का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व मानवता के लिए अनुकरणीय और आदरणीय भी है। युद्ध को क्रूर कर्म की संज्ञा देते हुये युधिष्ठिर ने कहा है-

'धन ही परिणाम है युद्ध का अन्तिम
तात, इसे यदि जानता मैं,
वनवास में जो अपने में छिपी
इस वासना को पहचानता मैं,
द्रौपदी की तो बात क्या? कृष्ण का भी
उपदेश नहीं टुक मानता मैं,
फिर से कहता हूँ पितामह तो,
यह युद्ध कभी नहीं ढानता मैं।'⁵

इसी प्रकार भारत की धार्मिक चेतना को विश्व-मानववाद से जोड़ते हुये अपने कथन की राष्ट्रीय भंगिमा को विकसित किया है। भारतीय सांस्कृतिक चेतना में मनुष्य के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, स्थायी मूल्य माने गये हैं, इन्हीं के आधार पर दिनकर ने राष्ट्रीय बोध की महत्ता को निम्नलिखित शब्दों में अंगीकार किया है-

'अपहरण शोषण वही, कुत्सित वही अभियान,
खोजना चढ़ दूसरो के भस्म पर उत्थान;
शील से सुलझा न सकना आपसी व्यवहार,
दौड़ना रह-रह उठा उन्माद की तलवार,
द्रोह से अब भी वही अनुराग
प्राण में अब भी वही फुंकार भरता नाग।'⁶

'कुरुक्षेत्र' में राष्ट्र-बोध के सांस्कृतिक आयामों की विस्तार से चर्चा की गई है। हमारे राष्ट्रीय संस्कारों में जीवन-मूल्यों

के पुनरुत्थान को श्रेयस्कर माना गया है। इसी की व्यंजना 'करुक्षेत्र' में हुई है। धर्मराज को कर्म-बोध की प्रेरणा प्रदान करते हुये पितामह भीष्म का निम्नलिखित कथन महत्व-बोध से परिपूर्ण है-

'पोंछो अश्रु, उठो द्रुत जाओ
वन में नहीं, भुवन में।
होओ खड़े असंख्य नरों की
आशा बन जीवन में।
बुला रहा निष्काम कर्म वह,
बुला रही गीता,
बुला रही है तुम्हें आर्त हो,
मही समर-संभीता।'

'करुक्षेत्र' के निम्नलिखित उद्धरण के साथ प्रस्तुत प्रसंग का समापन किया जाता है-

'सावधान मनुष्य। यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तंज कर मोह स्मृति के पार
हो चुका है सिद्ध है तू शिशु अभी नादान;
फूल-कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान,
खेल सकना तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धारा।'⁸

संदर्भ

1. 'करुक्षेत्र' रामधारी सिंह 'दिनकर' राजपाल एण्ड सन्ज, 15/90 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली पृष्ठ 12
2. वही पृष्ठ 76
3. वही पृष्ठ 3
4. संचयिता : रामधारी सिंह दिनकर, प्रकाशन- भारतीय ज्ञान पीठ 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003, पृष्ठ 17-18
5. वही पृष्ठ 61
6. वही पृष्ठ 66
7. वही पृष्ठ 104
8. 'करुक्षेत्र' रामधारी सिंह 'दिनकर' राजपाल एण्ड सन्ज, 15/90 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली पृष्ठ 71

भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद

डॉ. अंजली कायस्था

दयाल सिंह (सांध्य) महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमंडलीकरण का सामान्य अर्थ है कि पूरे विश्व को एक बाज़ार के रूप में तब्दील कर देना। बहुत से विद्वान मानते हैं कि भूमंडलीकरण पूरे विश्व का सामान्यीकरण है। भूमंडलीकरण को वैश्वीकरण, ग्लोबलाइजेशन आदि नामों से भी जाना जाता है। भूमंडलीकरण ने पूरी दुनिया को एक इकाई के रूप में तब्दील कर दिया है। सूचनाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान तक निर्बाध आदान-प्रदान ग्लोबलाइजेशन की एक खास पहचान है। वस्तुओं की वैश्विक उपलब्धता यह सब भूमंडलीकरण के कारण ही संभव हो पाया है। भूमंडलीकरण के दौर में एक देश दूसरे देश के बहुत करीब आ जाता है। इसके कारण एक देश की संस्कृति दूसरे देश की संस्कृति के बहुत करीब आ गई है। दूसरे देश से किसी पड़ोसी देश या अन्य देश की भाषा और साहित्य में भी रूचि बढ़ी है। आज हम देखते हैं कि हमारे सहन-सहन, आचार-व्यवहार इत्यादि में परिवर्तन आ गया है।

भूमंडलीकरण ने व्यक्ति और उसके समाज को हर स्तर पर प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण का विश्व-जीवन के हर क्षेत्र पर प्रभाव दिखाई देता है। सामाजिक प्रभाव के अन्तर्गत हम देखते हैं कि यूरोप के नारी मुक्ति आन्दोलन ने भारतीय नारी मुक्ति आन्दोलन को तीव्र किया। विश्व के अन्तर्गत संचार सुविधा और आवागमन ने व्यक्ति को शहर की ओर जाने के लिए प्रेरित किया। यह व्यवसाय की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलता ही गया। बाहर व्यवसाय करने से परिवार टूटकर बिखर रहे हैं। परिवार एकल परिवार होते जा रहे हैं।

भूमंडलीकरण में आर्थिक विषमता बढ़ी है। निम्न वर्ग और ज्यादा उच्च होता जा रहा है। टेलीविजन, मोबाइल फोन, इंटरनेट इत्यादि ने व्यक्ति के जीवन को ही बदल दिया है। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं - “इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट-मीडिया ने भूमंडलीकरण के दौर में जीने का तरीका ही बदल दिया है। व्यक्ति अब इसमें केवल बदला ही नहीं बल्कि उस बदलाव में वह जी भी रहा है।”

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सांस्कृतिक क्रांति द्वारा लोगों की जीवन प्रणाली बदल गई है। यहाँ मशीनीकरण प्रमुख हो गया है। इसने अधिकतर व्यक्तियों को मशीन के आगोश में ढकेल दिया है। इसके हानिकारक प्रभाव स्थान का अंतर कम कर दिया है। भूमंडलीकरण ने मनफष्य के भीतर एक-दूसरे से प्रेम करने की क्षमता को भी बाहर कर दिया है। संवेदनाएँ धीरे-धीरे खत्म होती जा रही हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में अब व्यावहारिक ज्ञान नहीं बल्कि तकनीकी ज्ञान पर ज्यादा बदल दिया जाने लगा है। अब लोगों को तकनीकी अध्यापक चाहिए। बच्चों और युवाओं ने अपनी संस्कृति को एकदम से भुला दिया है। वह अब अधिकतर समय इंटरनेट, मेल, वाट्स-अप इत्यादि पर लगाते हैं। इस प्रकार वह ज्यादा से ज्यादा पैसा इन पर खर्च करते हैं।

यहाँ सबसे बड़ा खतरा जो दिखाई देता है वह है अश्लील फिल्मों को देखना शुरू कर दिया है। इसके कारण वह ज्यादा से ज्यादा अपनी संस्कृति को भूल कर नग्नता के संसार में प्रवेश कर रहे हैं। सांस्कृतिक संगठन इसके लिए सबसे ज्यादा चिंतित दिखाई देता है। यह सब बड़ा खतरा है। यह बड़ा खतरा हमारे राष्ट्रवाद के लिए है। इस तरह राष्ट्र की परिकल्पना ठीक तरह से नहीं हो पाएगी। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने सोशल मीडिया को विस्तृत किया। सोशल मीडिया में सबसे ज्यादा फेसबुक ने लोगों के भीतर अपनी पैठ बना ली है। फेसबुक सोशल मीडिया का सबसे महत्वपूर्ण रूप बनकर सामने आ रहा है। फेसबुक एक ऐसा हब बन चुका है जिससे व्यक्ति विश्व के किसी भी कोने में अपना संपर्क साध सकता है। यहाँ साहित्य समाज या संस्कृति किसी भी प्रकार की जानकारी मिल सकती है। यहाँ अनजान मित्रों की भी जानकारी मिल सकती है। यहाँ व्यक्ति गलत दिशा में भी फँस सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दुनियाभर की जानकारी यहाँ मिल सकती है। फेसबुक पर किसी समस्या पर टिप्पणी करते हुए व्यक्ति चले जाते हैं तो वह समस्या लोगों के जहन में आ जाती है। किसी अनजान व्यक्ति को फेसबुक पर नहीं जोड़ना चाहिए। फेसबुक हालाँकि जानकारियों और जनसंपर्क का अच्छा साधन माना जाता है। किन्तु इससे बहुत सारी समस्याओं का भी जन्म होता है। ठीक इसी प्रकार व्हाट्स-अप भी है। सोशल मीडिया का यह भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है। व्यक्ति अपने विचारों को यहाँ व्हाट्स-अप के जरिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचा सकता है। किसी विषय

पर अपने विचारों को दूसरे के समक्ष रख सकता है। वहीं दूसरी तरफ उनके विचारों से वह अवगत भी हो सकता है। इतना नहीं व्यापार क्षेत्र में भी इसका प्रयोग व्यापक स्तर पर होता है। यह एक ऐसा माध्यम है जिस पर चित्र और वीडियो भी भेजा जा सकता है।

ट्विटर भी सोशल मीडिया का एक हब बन गया है। इस पर कोई भी अपने विचार रख सकता है। यह क्षेत्र चाहे कोई भी क्षेत्र हो। बुद्धिजीवी, साहित्यजीवी, राजनेता इत्यादि विशिष्ट व्यक्तियों के विचार यहाँ देखे जा सकते हैं। यहाँ किसी दूसरे के विचारों से असहमति भी रखा जा सकता है। देश में घटित घटनाओं पर प्रायः पत्रकार, साहित्यकार, राजनेता इत्यादि अपने-अपने विचार व्यक्त कर सकता है। कुल मिलाकर कहें तो कहा जा सकता है कि यह सब विचारों की अभिव्यक्ति के स्वतंत्र माध्यम हैं। लेकिन इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि विचारों में अनियंत्रित स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए। बहुत से लोग समाज विरोधी गतिविधियों पर लिखना शुरू कर देते हैं जो उचित नहीं है। विचारक चाहे कोई भी हो अपनी नैतिकता का ध्यान रखते हुए उसे अपने विचार प्रकट करने चाहिए। अब इंटरनेट के टॉस्कवार में जाकर भी किसी भी प्रकार की जानकारी हासिल की जा सकती है। आज विश्व में विभिन्न प्रकार के वेबसाइट उपलब्ध हैं। पुस्तकें, प्रवचन इत्यादि यहाँ देखा और सुना जा सकता है। इंटरनेट के आर्थिक उपयोग में ई-कॉमर्स सबसे ज्यादा उपयोगी है अर्थात् व्यवसायिक क्रियाओं के संचालन में ई-बैंकिंग, ई-शॉपिंग, ई-सर्विस इत्यादि उपलब्ध हैं। यहाँ उपन्यास, नाटक, एकांकी, कविता, निबंध इत्यादि सभी की जानकारी मिल सकती है। इंटरनेट पर अब किसी भी विषय की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आज मीडिया देशभक्ति और समाज सुधार की भावना भूल चुका है किन्तु एक ऐसा समय भी था जब मीडिया राष्ट्र और समाज का सजग प्रहरी होता था। आज देशभक्ति और राष्ट्रभक्ति की भावना धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। अब स्वार्थभक्ति की भावना सामने आकर खड़ी हो गई है। मीडिया जगत में जो बड़े-बड़े घराने हैं वह भूमालिया बने हुए हैं। ऐसे लोगों की पहचान कर उन्हें दण्ड देना ज्यादा उचित होता है। स्वतंत्रता के बाद पत्रकारिता का विकास हुआ। इंटरनेट ने सोशल मीडिया में अभिव्यक्ति के नए चैनल दिए। वस्तुतः 1947 के बाद स्वतंत्रता के नाम पर केवल संवैधानिक स्वतंत्रता ही थी। संवैधानिक अधिकार ही प्राप्त थे। इसके बाद एक स्थल का निर्माण किया हुआ है।

सोशल मीडिया के अन्तर्गत हमें सावधानी भी बरतनी चाहिए। वहाँ फेसबुक के ही संदर्भ में देखें तो बहुत से असामाजिक तत्व वहाँ सक्रिय रहते हैं। ऐसे लोग भोले-भाले लोगों को अपना शिकार बना लेते हैं। कुछ ही क्षणों के अन्दर अनैतिक कार्य फेसबुक के माध्यम से शुरू हो जाते हैं। यह प्रक्रिया अनवरत चलती रही रहती है। जहाँ तक इंटरनेट की बात करें तो उनके सामाजिक उपयोगों में शिक्षा और चिकित्सा का क्षेत्र ही प्रमुख है। यह एक ऐसे क्षेत्र है जहाँ रोज कोई न कोई सूचना मिलनी ही चाहिए। इसके अतिरिक्त इंटरनेट पर सोशल नेटवर्किंग साइट पर समूह बनाकर विभिन्न प्रकार के उत्पादों को बेचा जाता है। विभिन्न प्रकार की सेवा का प्रचार किया जाता है। मीडिया जगत ने समाज में कुछ विकृतियाँ भी फैलायी हैं। उसने पॉपुलर कल्चर को जन्म दिया। भारत में जिस संस्कृति का जन्म हो रहा है वह पॉपुलर कल्चर का ही रूप है। इससे भाषा के रूप में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन आए हैं। हमारा समाज चाहे वह कोई भी वर्ग हो अर्थात् बच्चे, युवा, प्रौढ़, बुजुर्ग सभी मीडिया खास तौर से सोशल मीडिया से प्रभावित हैं। यहाँ विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक प्रलोभन दिए जाते हैं। इस प्रलोभन ने एक नई संस्कृति का विकास किया है। यह भारतीय समाज को उसके समाज से अलग करके फास्टफूड वाली संस्कृति में धकेल रही है। इस संस्कृति ने वस्तु या विचार को समाज में लोकप्रिय बना दिया है। इस संस्कृति में लोग अधिक सुविधासम्पन्न जीवन जीना चाहते हैं। बड़े-बड़े कम्प्यूनिटी सेन्टर खोलकर उनके भीतर यह पूरी शिद्दत के साथ आनन्द करते हैं। इन केन्द्रों पर सामान्य व्यक्ति या आम आदमी नहीं पहुँच सकता है। इसका निर्धारण जीवन्त सामाजिक सम्बन्धों द्वारा होता है। इस प्रकार की संस्कृति में फिल्म, फिल्म अदाकारों तथा संगीत का योगदान बढ़ता जा रहा है। यहाँ आध्यात्मिकता भूमंडलीकरण और सोशल मीडिया ने राष्ट्रवाद की अवधारणा को बदल दिया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में अर्थात् सन् 1947 ई. के बाद बहुत परिवर्तन आया है। अकेलापन, डिप्रेसन, फ्रस्टेशन, टूटते-बिगड़ते सामाजिक सम्बन्ध इन सभी स्थितियों ने राष्ट्र की परिकल्पना को कमजोर किया है। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं - “स्वातंत्र्योत्तर भारत में विविध प्रकार के परिवर्तनों को देखा जा सकता है। यह परिवर्तन भूमंडलीकरण और सोशल मीडिया के कारण आए हैं। हालाँकि इसमें अन्य तत्व भी जिम्मेदार हैं। हमें इन सभी को देखकर चलना होगा।”¹²

यहाँ यह दर्शाया गया है कि हमें सबका ध्यान रखना होगा अर्थात् इनसे बचकर हम निकल नहीं सकते। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श जैसे महत्त्वपूर्ण विमर्श भी इसी समाज की देन है। इन सबने राष्ट्र का स्वरूप अपने-अपने ढंग से अब तैयार करना शुरू कर दिया है। राष्ट्र राज्यों के समूह से बनता है। इस समूह में लोगों के अपने विचार और रहन-सहन होते हैं। राष्ट्रवाद में सामाजिक एकजुटता को प्राथमिकता दी जाती है। व्यक्ति की राष्ट्रीय पहचान में उसका पोषण महत्त्वपूर्ण होता है। यदि प्राथमिक आवश्यकतों की पूर्ति ही नहीं होती और देश की जनता निम्न से निम्नतर स्थिति तक पहुँच जाती है तो वहाँ राष्ट्र के खण्डित होने से पूर्ण आशा होती है। जो राष्ट्रहीन देश हैं वहाँ ग्रहयुद्ध, तानशाही इत्यादि भयंकर रूप से फैला हुआ है। कुछ इसी तरह की स्थितियाँ भूमंडलीकरण और सोशल मीडिया ने उत्पन्न कर दी है। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ

देखी जा सकती हैं - “राष्ट्रवाद के तात्विक मूल्य का तर्क एवं राष्ट्रवाद का विविधतामूलक तत्त्व बहुलता की महत्ता को राष्ट्रीय संदर्भ में प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर समृद्धि, पोषण उन्मुखी पहचान एवं नैतिक मूल्यपरक तर्क, जो गहन समुदायवादी दृष्टिकोण की उपज है, सामुदायिक जीवन को व्यक्ति के संदर्भ में महत्त्व देता है।”³

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्र राज्यों की विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण किया है। इसके कारण अल्पसंख्यकों और अप्रवासियों की पहचान और हित का मुद्दा उठ खड़ा हुआ है। इसने राष्ट्रवाद के जटिल पक्षों को उजागर करके रख दिया है। गाँधी जी राष्ट्र को मानते थे किन्तु वह सशस्त्र राष्ट्रवाद के विरोध में थे। उनका मानना था कि राष्ट्रवाद स्वतंत्रता, समानता और न्याय पर आधारित होगा। गाँधी अहिंसात्मक राष्ट्रवाद में विश्वास करते थे। किन्तु अब खादी और चरखा राष्ट्रीयता की दिशा में नहीं है। आज अहिंसा और अधर्म ही राष्ट्रवाद की पहचान बनती जा रही है। आज स्वदेशी समाज नहीं रह गया है। आज विदेशी समाज बन गया है। आज राष्ट्र एकता का आधार तलाश रहा है। आज का राष्ट्र यात्रिक नौकरशाही और राजनीति पर आधारित है। आज राष्ट्र के सांस्कृतिक और अन्य मूल्य मजबूती प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। वर्तमान समय में भारत एक राष्ट्र के रूप में उन्नति तो कर रहा है किन्तु उसका राष्ट्रवाद क्षीण होता जा रहा है। सोशल मीडिया, भूमंडलीकरण के दौर में इसे बचाने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भगवत मिश्र, भूमंडलीकरण का वैश्विक परिदृश्य, पृष्ठ 28, मुकुंद प्रकाशन, हैदराबाद, संस्करण : 2011.
2. वही, पृष्ठ 115.
3. अभय प्रसाद सिंह (सं.) लेखक, राष्ट्रवाद का भारतनामा, पृष्ठ xxvii (विषय प्रवेश), ओरियंट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, संस्करण : 2017

राष्ट्रवाद की अवधारणा और हिन्दी पत्रकारिता

डॉ संगीता कुमारी

अदिति महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्रवाद एक विचारधारा है जो राष्ट्र और राष्ट्र से जुड़ी समस्त संभावनाओं को चिह्नित करता है। विकिपीडिया में राष्ट्रवाद की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी गई है- 'राष्ट्रवाद एक जटिल, बहुआयामी अवधारणा है, जिसमें अपने राष्ट्र से एक साझी सांप्रदायिक पहचान समावेष्टित है। यह एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में अभिव्यक्त होता है, जो किसी समूह के लिए ऐतिहासिक महत्व वाले किसी क्षेत्र पर सांप्रदायिक स्वायत्तता और कभी-कभी संप्रभुता हासिल करने और बनाए रखने की ओर उन्मुख है। इसके अतिरिक्त साझी विशेषताओं, जिनमें आमतौर पर संस्कृति, भाषा, धर्म, राजनीतिक लक्ष्य और आम पित्रावली में एक आस्था सम्मिलित है, पर आधारित एक आम सांप्रदायिक पहचान के विकास और रखरखाव की ओर यह और उन्मुख है।' राष्ट्रवाद शब्द 14वीं सदी में तब पहली बार अस्तित्व में आया जब फ्रांस में पहली बार जॉन ऑफ आर्क (सेंट जॉन) ने नारा दिया- 'फ्रांसीसियों के लिए'² और उसने अंग्रेजों की सत्ता के खिलाफ फ्रांस के लोगों को जागृत किया। यह अवधारणा यूरोप से होती हुई दुनिया भर में पहुंची। ब्रिटिश शासन से पहले भारत में भी राष्ट्रवाद की कोई अवधारणा नहीं मिलती है। सदियों से भारत पर विदेशियों के आक्रमण होते रहे और जो भी यहां आया वह यहीं का आकर हो गया। मुस्लिम शासक आए तो वह भारतीय मुसलमान हो गए, फिर चाहे वे शक हों या कुशाण हों! यहां के राजाओं में साम्राज्य के विस्तार को लेकर आपसी हमले तो होते ही रहे परंतु यहां की जनता में राष्ट्रवाद जैसी कोई भावना नहीं थी। उस समय केवल और केवल क्षेत्रवाद ही सर्वोपरि रहा। औरंगजेब जैसे कट्टर शासक ने जब दूसरे लोगों के धर्म पर अत्याचार करना शुरू किया तब प्रजा में असंतोष की भावना बढ़ने लगी और यही उन जैसे शासकों के साम्राज्य के पतन का कारण बनी। परंतु जब ब्रिटिश भारत आए तो उन्होंने भारतीय लोगों को हेय अथवा घृणा की दृष्टि से देखा। यहीं से राष्ट्रवाद का जन्म हुआ और विभिन्न प्रांत, धर्म और भाषा बोलने वाले लोग एक साथ अपनी आजादी के लिए सामने आने लगे।

प्रायः राष्ट्रवाद को राजनीतिक अवधारणा के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। परंतु राष्ट्रवाद का संबंध राष्ट्रीयता से जोड़कर देखा जा सकता है। राष्ट्रीयता एक निश्चित भूभाग में निवास करने वाले जनसमुदाय की संस्कृति का परिचायक है और राष्ट्रवाद उस संस्कृति से जुड़ी सामूहिक अस्मिता एवं मतैक्यपूर्ण लगाव है। भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा पुरानी है हालांकि ब्रिटिश शासन के बाद इस में तेजी आई। भारत में चाहे वह वैदिक संस्कृत हो अथवा महाकाव्य का प्रकरण हो या फिर चंद्रगुप्त मौर्य से लेकर गुप्तों के शासन काल तक, तुर्कों व मुगलों के साम्राज्य तक भारत के राष्ट्रीय चरित्र को देखा जा सकता है और जहां राष्ट्रीयता की भावना होगी वहां राष्ट्रवाद खुद-ब-खुद सक्रिय हो जाता है। राष्ट्रीयता के इस प्रयास में अकबर को देखा जा सकता है जिसने अपनी शासन शैली से विभिन्न धर्म और उसकी संस्कृति को एक साथ पिरोने का कार्य किया। राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद किसी एक भाषा भाषी समूह या संप्रदाय या प्रजाति द्वारा आबद्ध नहीं होता अपितु इस में भाषा, धर्म प्रजाति एवं नस्ल के जनसमूह की सामूहिक चेतना समाविष्ट रहती है। आर्नोल्ड टायनबी राष्ट्रवाद को इस तरह परिभाषित करते हैं- 'राष्ट्रवाद एक शक्ति है जो समाज या जाति को राज्य के अंतर्गत एक निश्चित तौर में निरंकुश शक्तियों के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा के लिए तथा बाह्य आक्रमण के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक साथ रहने को बाध्य करती है।'³ राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रबोध के प्रति भारतीय जनमानस को जागरूक करने में हिन्दी पत्रकारिता की अहम भूमिका रही। भारत के संदर्भ में राष्ट्रवाद का स्वरूप कुछ भिन्न रहा। विकसित देशों में राष्ट्रवाद का स्वरूप पोप की लौकिक सत्ता के समाप्त होने के बाद आया इसलिए वह औपनिवेशिक रहा। परंतु अविकसित देशों जो कि स्वतंत्र भी नहीं थे वहां यह उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद के रूप में उभरा क्योंकि वहां इसका मकसद अपनी अस्मिता को प्राप्त करना और राष्ट्रीय स्वतंत्रता को प्राप्त करके अपने अनुसार उसका विकास करना था। भारतीय राष्ट्रवाद उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद की श्रेणी में ही आता है, जिसका मकसद था भारत को आजाद कराना और अपने देश का विकास करना। जिसमें हिंदी पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण रही। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जो पत्रिकाएं निकलीं उनका उद्देश्य था जनजागरण और राष्ट्रहित में राष्ट्रीय चेतना का विस्तार करना। हिंदुस्तान की जनता में यह भाव पैदा करना कि वे एक ही भाग में रहने वाले हैं, उनके हित-अहित सब एक हैं। ऐसे में राष्ट्रीय

चेतना को विस्तार देने वाले पत्रकारिता ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में बांधने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्रीय नवजागरण का समय था, जब देश की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को पश्चिमी प्रभाव, वैज्ञानिक संचार-साधन बहुत गहरे रूप से प्रभावित कर रहे थे। ऐसे में अपने देश की संस्कृति और राष्ट्रीयता को जागृत करने का एकमात्र जरिया राष्ट्रीय पत्रकारिता थी। हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही मानी गई। यही वह समय था जब पत्रकारिता राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रही थी। हालांकि इस समय की पत्रकारिता में ना तो विज्ञापनों का बोलबाला था और ना ही रंगीन पृष्ठों की साज-सज्जा परंतु फिर भी यह पत्रकारिता अपनी राजनीतिक चेतना, संघर्षशीलता और क्रांतिकारी चिंतन से अपनी श्रेष्ठता को साबित किए हुए थी। इनमें सशक्त संपादकीय और जातीय भाषा एवं राष्ट्रीय हित के लिए पूर्णता व समर्पण के भाव मिलते हैं। इतना ही नहीं अपितु हिंदी गद्य को साहित्यिक गरिमा दिलाने एवं हिंदी को जनभाषा के समीप लाने में भी हिंदी पत्रकारिता ने अपनी भूमिका निभाई। एक तरह से जीवन के सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीय नवचेतना, बौद्धिक चिंतन और सबल जनमत की शुरुआत हुई। अंग्रेजी शासन के प्रति जनता में मोहभंग की स्थिति में राष्ट्रीय आंदोलन की नींव डाली।

हिंदी पत्रकारिता का राष्ट्रीय स्वरूप हिंदी-उर्दू द्विभाषी पत्रों और विशुद्ध हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में दिखलाई पड़ता है। मौलाना अबुल कलाम आजाद के शब्दों में- 'सभी भारतीय चाहे मुसलमान हो या हिंदू, हर बात को एक ही दृष्टिकोण से देखते थे और घटनाओं को एक ढंग से ही आँकते थे।... सदियों तक इकट्ठे रहने के परिणामस्वरूप हिंदू-मुसलमानों के स्थायी मैत्री संबंध हो गए थे।'⁴ और यह स्वाभाविक भी था क्योंकि यह दोनों ही भाषाएं जनमानस में रच-बस गई थीं। इनमें से एक की भी उपेक्षा करके पत्र-पत्रिकाओं को जीवित नहीं रखा जा सकता था। परंतु 1857 के बाद अंग्रेजों ने 'फूट डालो शासन करो' की नीति अपनाकर यहां की शासन व्यवस्था में सांप्रदायिक मतभेद उत्पन्न किए ताकि दोनों एक होकर ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के लिए संघर्षरत न हो सके और इस तरह अंग्रेजों ने जातीय भाषा खड़ीबोली हिन्दी को धर्म से जोड़कर 'हिंदी' को हिंदुओं और 'उर्दू' को मुसलमानों की भाषा बना दिया। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने हिंदी में 'बनारस अखबार' और उर्दू में 'बनारस गजट' (सन 1845) से हिंदी-उर्दू के अलग अलग संस्करण निकाले। परंतु वहीं 1868 ईसवीं में भारतेंदु संपादित 'कविवचन सुधा' ने पत्रकारिता को एक नया आधार दिया। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में- 'भारतेंदु ने 'कविवचन सुधा' के द्वारा हिंदी में निर्भीक पत्रकार कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उससे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे, उनमें से कोई इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं लड़ा था।'⁵ इसकी निर्भीकता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अंग्रेजी सरकार ने इस पत्रिका को राजद्रोही मानते हुए इसकी 100 प्रतियां लेनी बंद कर दी थी। यह वह समय था जब अंग्रेजों का दबदबा था। ऐसे में 'यह नारी नर सम होहिं' और 'स्वत्व निज भारत गहे'⁶ कहने वाले केवल भारतेंदु हरिश्चंद्र ही थे, जिन्होंने राष्ट्रीय समस्याओं एवं विषयों को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। इसके अलावा हिंदी को नयी चाल में ढालने वाली 'हरिश्चंद्र मैगजीन' भी निकली जिसमें राष्ट्रीय उद्बोधन के साथ साथ सरकार की भर्त्सना को व्यंग्य के रूप में लिखा गया चूंकि इस पत्रिका में भी सामंती संस्कृति के विरुद्ध, साम्राज्यवाद के विरुद्ध, व्यंग्य के माध्यम से असलियत दिखाने का प्रयास किया गया था तो सरकार ने इसकी भी सौ प्रतियां देनी बंद कर दी। 1874 स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' निकाली जिसमें झाड़ू के माध्यम से महिलाओं को राष्ट्रीय एकता की लघुतम इकाई परिवार को एकसूत्र में बांधने की शिक्षा दी- 'झाड़ू को देखो कि जब तक यह बंधी है तब तक कोई भी सबल इसके तोड़ने को सामर्थ्य नहीं होता और आपकी झाड़ू में सामर्थ्य है कि मानव कूड़े को बात की बात में बाहर निकाल दें। परंतु जब उसके बंधन खुलकर बिखर जावें तो उस समै सारा बल उसका नाश ही कर डालें। इसी प्रकार जब तक तुम्हारा घर झाड़ू की भांति एकता भाव करके बंधा हुआ है तुम भी सामर्थ हो।'⁷

पत्रकारिता का लंबा इतिहास रहा है। इसके उत्थान काल 1868 से 1885 में लगभग 2 दैनिक, 30 साप्ताहिक, 5 पाक्षिक, 35 मासिक तथा प्रसार काल 1886- 1900 में लगभग 31 साप्ताहिक, 7 पाक्षिक तथा 60 मासिक, पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं।⁸ पत्रकारिता का यह दौर राष्ट्र-आंदोलन और विषय-विशेषज्ञता का दौर था। इस समय की पत्रकारिता का मूल उद्देश्य धन अर्जित करना नहीं था। 'हिंदी प्रदीप' ने प्रथम अंक में ही स्पष्ट किया- 'मेरा मुख्य उद्देश्य देश की भलाई है- पत्र को प्रकाशित करने में कदापि यह प्रयोजन नहीं है कि मुझे चलाकर रुपए एकत्र करें बल्कि देश की बुराइयों का शोधन, भलाई का संचार और उन्नति महापुरुषों का मुख्य तात्पर्य है।'⁹ 'ब्राह्मण' ने बुलंद आवाज में कहा- 'हम भिखमंगे नहीं कि केवल ग्राहकों की खुशामद का ख्याल रखें। हम भाट नहीं कि बड़े आदमियों और राजपुरुषों की निरी झूठी स्तुति गाथा गाया करें। जो हो सो हो हम ब्राह्मण हैं।'¹⁰ सबसे बड़ी बात उस समय की पत्रकारिता की यह थी कि वह राष्ट्र-धर्म और जीवन-कर्तव्य को लेकर चली। उसने कभी भी अपने कर्म को पेशा नहीं बनने दिया। 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन', 'हिंदी प्रदीप', 'हिंदुस्तान', 'भारत मित्र', 'सारसुधानिधि' आदि ऐसी ही पत्रिकाएं थी। द्विवेदी युग में राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से जो पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं उनमें, 'भारत मित्र', 'हिंदी केसरी', 'नृसिंह', 'मारवाड़ी बंधु', 'प्रताप', 'कर्मयोगी', 'कर्मवीर', 'विनय' एवं 'सिपाही' प्रमुख हैं। 'भारत मित्र' में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल थी तो 'नृसिंह' उग्र राष्ट्रीयता का समर्थन करता हुआ हिंदी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारता था।

आजादी के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में लगातार परिवर्तन होते चले गए। जहां पहले पत्रकारिता का एक ही लक्ष्य था वहीं

आज कुछ इस प्रकार हो गए-क) स्वतंत्र भारत को नवीन दृष्टिकोण देना, ख) हिंदी के माध्यम से ज्ञान विज्ञान के नवीन क्षितिजों का उद्घाटन, ग) नवीन निर्माण की विविध विधाओं को प्रोत्साहन देना, घ) भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को मुक्त वातावरण में फैलाना, ङ) भारतीय एकता की दृष्टि से समग्र भारतीय भाषाओं के बीच सामंजस्य, च) साहित्यकारों की सृजनशीलता जागृत करना, छ) विविध क्षेत्रों में विचार मंथन, मौलिक शोध और सशक्त अभिव्यक्ति को उत्प्रेरणा देकर वाणी प्रदान करना, ज) सामाजिक स्तर पर वरीयता प्रतिष्ठित¹¹ करना इतना ही नहीं हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप आज बहुत कुछ बदल चुका है। उसके दायित्वों में भी बदलाव आया है। धन अर्जित करना, विज्ञापनों का प्रसारण करना, रंगीन पृष्ठों में मनोरंजन देना प्रमुख हो गया है। बड़े बड़े घरानों से बंधी आज की पत्रकारिता में बहुत कुछ बदल चुका है। वह अपने फायदे को देखते हुए वही खबरें देते हैं जिनसे उनका प्रॉफिट हो सके। समाचार पत्रों के औद्योगिककरण के साथ-साथ पूंजीवाद और व्यापारिक स्वार्थ निष्ठा में राष्ट्रीय और आदर्शनिष्ठ पत्रों का अस्तित्व ही समाप्त होता चला गया। पराङ्कर जी का यह कहना सही साबित हुआ- 'एक समय आएगा, जब हिंदी पत्र रोटरी पर छपेंगे, संपादकों को ऊंची तनख्वाहें मिलेगी, सब कुछ होगा किंतु उनकी आत्मा मर जाएगी संपादक संपादक न होकर मालिक का नौकर होगा।'¹² आज के हिंदी दैनिक पत्रों में हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, स्वतंत्र भारत, नई दुनिया, विश्वमित्र, जनसत्ता, पंजाब केसरी आदि उल्लेखनीय हैं। एक तरह से कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी पत्रकारिता में विकास तो हुआ किंतु गुणात्मक रूप से नहीं, वहीं राष्ट्रवाद की अवधारणा में भी परिवर्तन आया। जहां पहले राष्ट्रवाद भाषा, साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म के संदर्भ में सापेक्ष था, वहीं आज महज धर्म ही इसका मुख्य भाव रह गया। और यह किसी भी धर्मनिरपेक्ष समाज के लिए ठीक नहीं है।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रवादी <http://hi.m.wikipedia.org/wiki>
2. राष्ट्रवाद की अवधारणा-<http://sabharwalhardeep.wordpress.com>.
3. shodhganga.inflibnet.ac.in>bitstream, पृष्ठ 84
4. राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता- डॉ मीरा रानी बल, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 1994, पृष्ठ-91.
5. वही, पृष्ठ-100
6. वही, पृष्ठ-100
7. वही, पृष्ठ-102
8. वही, पृष्ठ-111
9. वही, पृष्ठ-113
10. वही, पृष्ठ-114
11. पत्रकारिता के सिद्धांत- कमलापति त्रिपाठी, कला मंदिर, पृष्ठ-187
12. हिन्दी साहित्य का इतिहास- (सं) डॉ नगेंद्र, मयूर पेपरबैक, संस्करण-2016, पृष्ठ-863

राष्ट्रवाद की अवधारणा और हिन्दी पत्रकारिता

चारू रानी

सहायक व्याख्याता, हिन्दी विभाग
आर.डी.एस. पब्लिक गर्ल्स कॉलेज, रेवाड़ी

राष्ट्रवाद की अवधारणा से हमारा अभिप्राय एक ऐसी जटिल एवम् बहुआयामी अवधारणा से है, जिसने अपने राष्ट्र से एक साझी साम्प्रदायिक पहचान समावेशित है। राष्ट्रवाद एक राजनीति विचारधारा है जो किसी समूह के ऐतिहासिक महत्व वाले किसी क्षेत्र पर साम्प्रदायिक स्वायत्तता बनाए रखने के लिए उन्मुख है। एक व्यक्ति की राष्ट्र के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति है, किन्तु राष्ट्र की अवधारणा में हिन्दी पत्रकारिता का विशेष महत्व है।

इस प्रकार राष्ट्रवाद और पत्रकारिता को परस्पर एक दूसरे का पूरक कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं, जिनका मूल उद्देश्य जनमत निर्माण ही नहीं है, अपितु पत्रकारिता का मूल आधार नैतिक धर्म ही है। पत्र-पत्रिकाएँ मानव समाज की दिशा निर्देशिका मानी जाती हैं। समाज के भीतर घटती घटनाओं से लेकर परिवेश की समझ उत्पन्न करना ही पत्रकारिता का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है। इस प्रकार पत्रकारिता सामयिकता के कैनवास पर विगत और आगत घटनाओं और विचारों एवं तद्जनित संभावनाओं की सृष्टि का एक सशक्त माध्यम है जो जनमत के निर्माण और उसके सिद्धांत का महत्वपूर्ण उपकरण है। पत्रकारिता एक बहुआयामी दायित्व बोध और जनजीवन के कर्तव्याभिमुख परिवेश के निर्माण का रचनात्मक प्रयास है। पत्रकारिता अपने युग और जीवन की ऐसी दृष्टि व परिज्ञान प्राप्त करने की प्रणाली है जो आधुनिक विश्व के जीवन का अवश्यक अंग बन गई है।¹

यह निर्विवादित सत्य है कि पत्रकारिता लोकतंत्र का अविभाज्य अंग है। प्रतिपल परिवर्तित होने वाले जीवन और उत्पात का दर्शन पत्रकारिता द्वारा ही संभव है। परिस्थितियों के अध्ययन, चिंतन मनन और आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति एवं दूसरों का कल्याण अर्थात् लोकमंगल की भावना ने ही पत्रकारिता को जन्म दिया। किन्तु पत्रकारिता का जन्म ऐसे वातावरण में हुआ था, जब देश को सही उद्बोधन की जरूरत थीं वह काल हिन्दी पत्रकारिता का स्वर्ण युग भी था कि उसे अपने इस आरम्भिक काल में एक से एक दिग्गज नेता, समाज सुधारक और राष्ट्र को समर्पित त्यागी बलिदानी व्यक्तित्व मिले, जिनके निर्देशन में आने वाली पीढ़ी के लेखकों, पत्रकारों ने राष्ट्रीय अस्मिता की प्राणपण से रक्षा की। प० मदनगोपाल मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, माखनलाल चतुर्वेदी, महात्मा गांधी ऐसे ही महापुरुष थे, जिन्होंने अपने लक्ष्य के लिए पत्रकार की भूमिका भी अपनाई क्योंकि वे पत्रकारिता की ताकत पहचानते थे और समय पर उसका भरपूर उपयोग भी करते हैं -

खीचों न कमानों को, न तलवार निकालो,

जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो!²

इस प्रकार पत्रकारिता ने युगों से अपने दायित्व का निर्वाह ईमानदारी के साथ किया है। आजादी से पूर्व का युग राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चेतना की अनुभूति का युग था और इस युग का मूल उद्देश्य केवल स्वाधीनता प्राप्त करना था। किन्तु भारतीय पत्रकारिता का इतिहास राष्ट्रीयता के भाव का संपोषक और स्वतंत्र संघर्ष में संलग्नता के लिए उद्बोधक रहा है। स्वातंत्र्य चेतना का जागरण अधिकतर पत्रकारों का ही अभियान था। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जब भी जहाँ-जहाँ आंदोलन हुए, उस संघर्ष में पत्रकारिता ही मर मिटने का केसरिया बाना पहनकर संग्राम में उतरी और राष्ट्रीयता व स्वाधीनता के दो समानांतर जयघोष हवा में गुंजायमान हो उठे।³

पत्रकारिता ने लोकतंत्र में यह महत्वपूर्ण स्थान अपने आप हासिल नहीं किया। बल्कि सामाजिक सरोकारों के प्रति पत्रकारिता के दायित्व के महत्व को देखते हुए समाज ने ही दर्जा दिया है। कोई भी लोकतंत्र तभी सशक्त है जब पत्रकारिता सामाजिक सरोकार के प्रति अपनी सार्थक भूमिका निभाती रहे। सार्थक पत्रकारिता का उद्देश्य ही यह होना चाहिए कि वह प्रशासन और समाज के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी की भूमिका अपनाए। स्वतंत्रता से पूर्व भी रचनाकारों और पत्रकारों की इस भूमिका का उद्देश्य एक ओर राष्ट्रीय जन-जागरण का शंखनाद करना था, दूसरी ओर अपनी भारत-भूमि को भारत-माता कहकर उसके सपूतों यानी सारे देशवासियों को उत्सर्ग के लिए ललकारना था। बकिमचंद्र के *आनन्द मठ* के संन्यासी विद्रोह से उठा वंदे मातरम् का जयघोष पूरे देश में स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा मंत्र बन गया। लोकमान्य तिलक ने नारा दिया - 'स्वतंत्रता

हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और स्वतंत्रता के लिए मर मिटने वाले असंख्य भारतीयों की कतारें लग गईं। ये उत्साही सेनानी जान हथेली पर लिए त्याग व बलिदान के अस्त्र-शस्त्र उठाए मैदान में आ डटे और उन्हें उत्सर्ग की प्रेरणा देने के लिए स्वयं उसी राह के राही बनकर अनेक जुझारू पत्रकार सामने आए।⁴

इस प्रकार पत्रकारिता स्वतंत्रता पूर्व एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में उजागर हुई किन्तु पत्रकारिता को पहले मिशन समझा जाता था। देश की आजादी, साहित्य सेवा, समाज सेवा अन्य कोई न कोई ध्येय पत्रकार का होता था। मात्र जीवन-यापन करने के लिए पत्रकारिता नहीं अपनाई जाती थी। पत्रकारों में केवल नौकरी की भावना न थी। बहुत से वेतन भोगी पत्रकार भी थे, परन्तु वे भी स्वतंत्रतापूर्वक निर्भीकता से ही काम करना पसंद करते थे। अधिकांश पत्रकारों ने तो स्वयं ही कष्ट पाकर भी अपने पत्र निकाले। परन्तु धीरे-धीरे पत्रकारिता में मिशन की भावना कहीं दबती चली गई और पत्रकारिता ने एक उद्योग का रूप ले लिया। इस विषय में पं० जवाहर लाल नेहरू का कथन है- 'व्यापक अर्थ में समाचार पत्रों की स्वतंत्रता केवल एक नारा नहीं है, बल्कि जनतात्रिक प्रक्रिया की एक आवश्यक विशेषता है। मैं दबे हुए या अनियंत्रित समाचारपत्रों की अपेक्षा स्वतंत्रता के दुरुपयोग के सभी खतरों से युक्त पूर्णतः स्वतन्त्र समाचार पत्र अधिक पसंद करूँगा।'⁵

इसके अतिरिक्त सन् 1926 में रामलाल वर्मा द्वारा संचालित हिन्दू पंच नामक पत्र अपने युग का सबसे तेजस्वी पत्र था। जो पाँच उद्देश्यों को लेकर सामने आया- हिन्दू संगठन, शुद्ध संस्कार, अछूतोंद्वारा, समाज सुधार तथा हिन्दी प्रचार। इसका मूल लक्ष्य हिन्दुओं में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करना था -

लज्जा रखने को हिन्दू की, हिन्दू नाम बचाने को।

आया 'हिन्दू पंच' हिन्दू में, हिन्दू जाति जगाने को।⁶

किन्तु पत्रकारिता के प्रारम्भिक उद्भव काल में साक्षरता दर कम थी तो समाचार पत्रों का प्रभाव भी पढ़े-लिखे छोटे वर्ग तक ही सीमित था। पर धीरे-धीरे चेतना जागरण के साथ गाँवों तक भी उनकी पहुँच होने लगी थी। भले ही गाँव में एक या दो ही पढ़े-लिखे व्यक्ति रहे, वे चौपाल में बैठकर अपने अनपढ़ भाइयों को अखबार पढ़कर सुनाया करते थे। इससे साक्षरता दर और चेतना जागरण का क्रम साथ-साथ आगे बढ़ने लगा था। सन् 1885 ई० की एक रिपोर्ट के अनुसार, उस समय भारत में सभी भाषाओं के और द्विभाषी, त्रिभाषी मिलाकर कुल 421 अखबार थे, जिनकी लगभग दो लाख प्रतियाँ छपती थीं। जब कलकत्ता, बंबई, मद्रास के बाद देश की अन्य राजधानियों से प्रमुख नगरों, जिलों, केन्द्रों तक से पत्र छपने लगे, तब उनमें सामाजिक, जातीय मुद्दे भी उठाए जाने लगे थे। यहाँ तक कि सन् 1886 में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन ने राष्ट्रवादी पत्रों की भूमिका के बारे में लिखा - 'अंग्रेज शासकों के खिलाफ आए दिन इन तेज-तरार बाबुओं का हमला बढ़ता ही जा रहा है।'⁷

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की स्वतंत्रता की आधारशिला भी पत्रकारिता ने ही रखी। पत्रकारिता के माध्यम से ही राष्ट्रवाद का पूर्ण रूप विकसित हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-कालीन पत्रों ने साहित्य वृद्धि के साथ-साथ अहिंसावादी तरीके से जनजागरण और स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया। इसके विपरीत *प्रताप* पत्र तो स्वाधीनता संग्राम, क्रांतिकारियों और अन्य कार्यकर्ताओं का केन्द्र ही था। साथ ही नारद जयंती के अवसर पर वरिष्ठ पत्रकार प्रतीक द्विवेदी जी ने भी पत्रकारिता को मिशन ही कहा है और बताया कि राष्ट्रवाद और पत्रकारिता आपस में जुड़े हुए हैं किन्तु राष्ट्रवाद सबसे अधिक जरूरी है। राष्ट्रवाद की अगर बात करें तो हर समस्या का हल निकलेगा।

पत्रकारिता किसी भी राष्ट्र या देश की प्रेरणादायिनी शक्ति हो सकती है। पत्रकारिता सामाजिक जागरूकता की जगमगाती किरण है। समाचार पत्रों में केवल समाचार ही प्रकाशित नहीं होते वरन् मत या निर्णय भी प्रकाशित होते हैं। समाचार पत्रों में सम्पादकीय टिप्पणियाँ बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं, जिनमें संपादक आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर मुक्त मस्तिष्क से अपना विचार व्यक्त कर सकता है। अतः समाचार पत्र राष्ट्र को प्रेरणा भी देते हैं और दिशा-निर्देश भी करते हैं। भारत में स्वतंत्रता आंदोलन को पत्रकारिता के द्वारा ही शक्ति मिली। पत्रकारिता ने ही देशवासियों के सुप्त स्वाभिमान को जाग्रत किया तथा उन्हें यह प्रेरणा दी कि स्वतंत्रता राष्ट्रीयता तथा एकता जैसे जीवन मूल्य ही मनुष्य के अस्तित्व को सुरक्षित रख सकते हैं। राष्ट्रीय भावना व जनमत को बनाने का महान कार्य समाचार-पत्रों द्वारा ही संभव हो सका।⁸

इस प्रकार कालानुसार पत्रकारिता अपने दायित्व और कर्तव्य को स्वयं निश्चित करती है और इसमें उसकी सार्थकता भी होती है। परतन्त्र भारत में पत्रकारिता का दायित्व देशवासियों में स्वतंत्रता के प्रति अनुराग और गुलामी से मुक्त होकर अपने देश के गौरव की पुनः प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित करना था। इसका उद्देश्य देशवासियों के भीतर एक ऐसा विश्वास जगाना था कि स्वतन्त्र देश ही राष्ट्रीय गौरव की अस्मिता से विभूषित हो सकता है इसलिए उनका उद्देश्य गुलामी के समय में देशवासियों की समस्त शक्ति को स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में एकोन्मुख कर उनके आत्मविश्वास को बनाए रखता था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पत्रकारिता की भूमिका बदल गयी, जो कुछ हमने प्राप्त किया उसे स्थिर, गतिमान और विकासशील देखना अब पत्रकारिता का लक्ष्य हो गया।⁹

इसके अतिरिक्त क्रांतिकाल के हिन्दी पत्रों ने विविध आंदोलनों की गतिविधियों, सरकारी दमन, स्वयंसेवकों एवं नेताओं

की गिरफ्तारी, राष्ट्रीय नेताओं के संदेश, आंदोलनों को उत्प्रेरित करने वाले समाचार तथा राष्ट्रनिष्ठा संबंधी अग्रलेखों को महत्व के साथ प्रकाशित किया। इस काल में चरखा कताई-बुनाई, शराबबंदी, अस्पृश्यता निवारण, स्वदेशी प्रचार, समाज-सुधार के रचनात्मक कार्यक्रमों को प्रमुख रूप से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। इस समय पत्रकारों के लिए राष्ट्रीयता फैशन और व्यवसाय नहीं अपितु एक पवित्र व्रत और साधना थी। पत्रकार सामाजिक चित्तवृत्तियों को नई दिशा में मोड़कर इतिहास के पृष्ठों को आलोकित करता था।¹⁰

इस तरह प्रेरणा गीत, प्रयाण गीत लिखकर स्वतंत्रतासेनानियों में वीरता, साहस व त्याग बलिदान की भावनाएँ जगाने वाले कवियों, कवयित्रियों का अप्रतिम योगदान भी क्या भूलने योग्य है? भारतेन्दु युग से शुरू हुई यह प्रेरणा आगे स्वतंत्रता प्राप्ति तक निरंतर प्रवाहमय देखी जा सकती है। पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मुकरियों का ही एक जायजा ले-

सब गुरुजन को बुरा बतावें, अपनी खिचड़ी अलग पकावें।
भीतर तत्व न झूठी तेजी, क्या सखि साजन नहिं अंगरेजी॥
भीतर-भीतर सब रस चूसै, हंसि हंसि के तन मन धन भूसै।
जाहिर बातन में अति तेज, क्या सखि साजन नहिं अंगरेज॥¹¹

इस प्रकार पत्रकारिता ने राष्ट्रवाद की भावना को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य भली-भाँति किया। भले ही धीरे-धीरे पत्रकारिता ने व्यवसाय का रूप ले लिया किन्तु पत्रकारिता ने अपने दायित्व का निर्वाह श्रेष्ठता के साथ किया। इस विषय में सी.जी.मूलर. ने भी उचित ही कहा है-‘सामायिक ज्ञान का व्यवसाय ही पत्रकारिता है। इसमें तथ्यों की प्राप्ति उनका मूल्यांकन एवं ठीक-ठाक प्रस्तुतीकरण होता है।’

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रत्येक देश के निर्माण और विकास में पत्रकारिता की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। पत्रकारिता को तीसरी आँख के रूप में देखा गया है जिसका अभिप्राय यह है कि देश के हर अंधकार भरे प्रकोष्ठ तक पहुँचकर वहाँ प्रकाश विकीर्ण करना। पत्रकारिता अज्ञात को प्रकाश में लाती है और ज्ञात को जनहित की दृष्टि से सत्पथ की ओर प्रेरित करती हैं वह एक ऐसे वातावरण और मनोबल का निर्माण करती है जिसमें हम अपने विकास की राह खोजकर अपनी पूरी शक्ति और क्षमता से उस पर बढ़ सकें। पत्रकारिता हमारे हताश हृदयों में नवीन आशा, स्फूर्ति तथा उत्साह का संचार करती है और खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कराकर विश्व के मंच पर हमें एक सम्मानित स्थान दिलाती है। पत्रकारिता हमारे आत्मोत्थान के साथ आत्मलोचन की प्रेरणा भी जगाती है और पूरे देश में स्वस्थ मानसिकता का निर्माण कर राष्ट्र के गौरव को ऊँचा उठाती है।¹²

संदर्भ

1. पत्रकारिता एक अध्ययन - हरीश पृष्ठ 1
2. स्वाधीनता सेनानी लेख-पत्रकार - आशारानी व्होरा पृष्ठ 15
3. वही - पृष्ठ 1
4. वही - पृष्ठ 11
5. हिन्दी पत्रकारिता का सुबोध इतिहास - डा0 विष्णु पंकज पृष्ठ 147
6. पत्रकारिता एक अध्ययन - हरीश पृष्ठ 42
7. स्वाधीनता सेनानी लेखक पत्रकार - आशारानी व्होरा पृष्ठ 16
8. पत्रकारिता एक अध्ययन - हरीश पृष्ठ5
9. वही - पृष्ठ 46
10. वही - पृष्ठ 45
11. स्वाधीनता सेनानी लेखक पत्रकार - आशारानी व्होरा पृष्ठ 17
12. पत्रकारिता एक अध्ययन - हरीश पृष्ठ 46

मध्यकालीन कवि कबीर के काव्य में राष्ट्रवादी भावना

डॉ. ओमवीर सिंह

हिन्दी विभाग

विवेकानन्द कॉलेज, दिल्ली।

कबीर के काव्य में राष्ट्रवादी भावना एवं समाज सुधारक का स्वरूप ही स्पष्ट रूप से चित्रित हुआ है। इसलिए कबीर का समाज सुधारक रूप ही अधिक मुखर रहा है। समाज में व्याप्त वैमनस्य, पारस्परिक द्वेष, हिंसा, भेद-भाव, छुआ-छूत और वर्ण भेद देख कर उन का हृदय आक्रोश से भर उठा है। उन्होंने सामाजिक कुवृत्तियों, विषमताओं, आडम्बरों और अन्धविश्वासों पर करारा व्यंग्य किया है तथा समाज को श्रेष्ठ बनाने का भरसक प्रयास किया है जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र में एकता और अखण्डता बनी रहे। कबीर का मूल उद्देश्य लोक कल्याण था। लोक कल्याण के भाव से प्रेरित हो कर ही उन्होंने समाज के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं जिससे राष्ट्रवादी चेतना स्त्री-पुरुष के मन में जगाकर उनमें एकता का भाव लाए और फिर वह मनोयोग से राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरित हुए। इस सम्बन्ध में डॉ. सर नाम सिंह शर्मा ने स्पष्ट कहा है-“उन की वाणी समाज के रंगीन चित्र प्रस्तुत करती है, एक नहीं अनेक, केवल रेखा चित्र ही नहीं, सरस रंगीन चित्र भी। इन चित्रों में कबीर का सम्पूर्ण युगीन समाज अपने सच्चे, जीते-जागते रूप में साकार हो उठा है। यह और बात है कि उस के कुरूप पक्ष पर ही कबीर का ध्यान अधिक केन्द्रित रहा है, जिसका मुख्य कारण सम्भवतः समययुगीन समाज की परिस्थितियाँ और गिरा हुआ रूप थे।” वास्तव में समाज-सुधारक रूप ही कबीर का राष्ट्रवादी चिन्तन ही सर्वाधिक विख्यात रहा है। वह दयानन्द सरस्वती की तरह समाज-सुधारक नहीं है बल्कि उन्होंने दयानन्द की तरह किसी आर्य समाज जैसे नये समाज की स्थापना नहीं की और न ही ‘सत्यार्थ प्रकाश’ लिख कर वैदिक संस्कृति का पुरुत्थान किया। इसलिए कबीर ने मानव जीवन को भोगा है और अपने उन्हीं अनुभवों को सबके लाभ के लिए काव्यबद्ध कर दिया है। इस ओर डॉ. पंजाबी लाल शर्मा का कथन दर्शनीय है-“वे (कबीर) अन्ध विश्वासों, आडम्बर-पाखण्डों और गतानुगतिकता के विरोधी तथा सच्चे सत्याग्रही थे, जीवन-पर्यन्त सार-सत्य का सूप-वृत्त से संग्रह करने वाले और बुराईयों से जूझने वाले कबीर थे।”² वस्तुतः समाज में जब बुराईयाँ उत्पन्न होने लगती हैं तो कभी भी उस राष्ट्र की एकता और अखण्डता बनी नहीं रह पाएगी जिससे राष्ट्र पतन की ओर चला जाएगा। कबीर सच्चे राष्ट्रवादी और देश भक्त थे इसलिए उन्होंने हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई अथवा किसी भी धर्म के मानने वाला था। उन्हें सभी को एकता और अखण्डता के लिए प्रेम और त्याग की महिमा को बताया है। अपने प्रेम और त्याग के बल पर ही किसी उत्तम राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। ऐसी राष्ट्रवादी सोच एक सच्चे देश भक्त की हो सकती है। इसलिए कबीर के सम्पूर्ण काव्य साहित्य में देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने मानवीय जीवन मूल्यों की रक्षा हेतु अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। इनके राष्ट्रवादी स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल पर देते हुए राष्ट्रवादी चेतना के स्वर इनके काव्य में बराबर सुनाई पड़ रहे हैं। कबीर के समय में हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ रहा था। मुसलमान शासक हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे तथा अधिकांश जनता को मुसलमान बना लेना चाहते थे। ऐसी विषम स्थिति में कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को निर्गुण ब्रह्म की आराधना का उपदेश दिया और पारस्परिक द्वेष को दूर कर प्रेम-भाव जगाने का भगीरथ प्रयास किया। उन्होंने कहा था कि-

हिन्दू-तुर्क की राह एक है सतगुरु इहै बतायी।

इसलिए हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है जिससे की वह सम्पूर्ण राष्ट्र में एकता, प्रेम, त्याग की भावना से एक दूसरे के हितैशी बन जाएं तभी सम्पूर्ण समाज राष्ट्र में भाईचारे की भावना उत्पन्न होकर तरक्की करने लगेंगे।

बाह्याडम्बरों का विरोध कबीर ने किया है। इसलिए समाज एवं राष्ट्र में व्याप्त कुरीतियों एवं बाह्याडम्बरों का प्रबल विरोध किया है। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों की उपासना पद्धतियों की आलोचना की है क्योंकि इनका मानना था जब तक यह दोनों अलग-अलग रीति से उपासना पद्धति में फँसे रहेंगे तभी तक यह एक दूसरे की भावना नहीं समझ पाएंगे और न ही उनमें एक राष्ट्रीय भावना का जन्म होगा इसलिए इन्होंने दोनों को ही बड़ी कड़ी फटकार लगाई है। जैसे-

पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।

ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार।।

इस प्रकार,

काकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।

इस प्रकार कबीर के सम्बन्ध में इन्होंने ठीक ही लिखा है कि “हिन्दू और मुसलमान की पूजा पद्धति अलग-अलग होने से वह एक नहीं होंगे।”³ हिन्दुओं के सन्ध्या तर्पण, जटा रखने, सिर मुंडवाने, शरीर पर भस्म लगाने आदि सभी आडम्बरों का खण्डन किया है। इतना ही नहीं कहा बल्कि उन्होंने ऐसी पूजा-पाठ तर्पण संध्या को बेकार बताया है जो कि दूसरों को कोई सीख न दे सके। जैसे-

क्या सन्ध्या तरपन के कीन्हें, जो नहीं तत् बिचारा।

मूझ मुडाये सिर जटा रखाये, क्या तन लाये छारा।⁴

इतना ही नहीं, उन्होंने व्रत रखने, नमाज पढ़ने, तीर्थ औ हज करने का भी विरोध किया। उन के अनुसार तो सच्चे मन से निर्गुण ब्रह्म की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए कबीर ने व्रत, पूजा, नमाज को बेकार माना है क्योंकि जब तक उन दोनों के बीच मानवीयता, प्रेम, त्याग जैसी मानवीय मूल्यों का जन्म नहीं होगा तब तक उनमें राष्ट्रवादी चेतना जागृत नहीं हो सकती।

राखूँ व्रत ने मरमह जानां, तिसही सुमिरूँ जो रहे निदानां।

पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरद नमसकारूँ।

न हज जाऊँ, एक पिछाण्यां तो क्या दूजा।⁵

जाति-पाँति का खण्डन भी कबीर ने किया है। ऐसे समय में वर्ण-व्यवस्था का बोल-बाला था। ब्राह्मण और शूद्रों में बहुत बड़ा अन्तर था जो राष्ट्रवादी विचारधारा में बाधक है। कबीर ने ब्राह्मणों पर व्यंग्य करते हुए कहा कि यदि तू ब्राह्मण का पुत्र है तो माता के उदर (पेट) से ही क्यों पैदा हुआ, किसी ओर मार्ग से संसार में क्यों नहीं आया है। कबीर का यह व्यंग्य सम्पूर्ण हिन्दू जाति पर है क्योंकि परस्पर हम एक दूसरे के वैचारिक मतभेद से परिचित हैं। अतः कबीर चाहते हैं कि सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र में एक जैसी मानवीयता होगी तभी कहीं जाकर एक उत्तम राष्ट्र के निर्माण की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

‘जो तू बाम्हन-बाम्हनी जाया। आन बाट हूँ क्यों नहीं आया।’

उन्होंने सभी को समझाते हुए कहा कि जाति से कुछ नहीं होता, हरि-भजन ही सर्वोपरि है। इसलिए राष्ट्र में एक ही व्यक्तित्व निर्माण के लिए मानवीय जीवन मूल्यों का सहारा लेना होगा जिसमें न हिन्दू होगा न मुसलमान होगा। तभी उन्होंने कहा कि जो परमात्मा को भजता है वह उसी का हो जाता है। इसलिए उसकी कोई जाति नहीं होती। इसलिए कबीर ने कहा है कि- जाति-पाँति पूछै नहीं कोय, हरि को भजै सो हरि का होय।

जाति के आधार पर भेद भाव का विरोध करते हुए उन्होंने बारम्बार समझाया कि सब में उस परमात्मा का ही अंश है-

साधो एक रूप सब माँही।

अपने मनहिं विचारि के देखो और दूसरो नाहीं।

एकै त्वचा रुधिर पुनि एकै विप्र सूद्र के माहीं।।

कथनी-करनी में एकरूपता के लिए कबीर आजीवन लोक में व्याप्त भ्रान्तियों, अन्ध विश्वासों और कुरीतियों के निराकरण का प्रयास करते रहे हैं। उन की सब से बड़ी विशेषता थी, कथनी और करनी में एकरूपता। अर्थात् वे जो कहते थे, वही करते थे और जो करते थे, वही कहते थे। उन्होंने राष्ट्र में जनता को भी कथनी-करनी के अभेद की स्थापना का उपदेश दिया। उन का विचार है- ‘कथनी तजि करनी करे, विष से अमृत होय।’⁵

व्यंग्यपरकता के आधार पर कबीर ने सम्पूर्ण राष्ट्र में हिन्दू और मुसलमान को जगाया है और उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जब तक हिन्दू और मुसलमान के बीच परस्पर समन्वय, प्रेम, करुणा का जन्म नहीं होगा तब तक वह राष्ट्रीय एकता का जन्म नहीं होगा। समाज और धर्म के ठेकेदारों पर कड़ा व्यंग्य किया है। उन्होंने जाति-पाँति, पूजा-पाठ, तीर्थाटन, जप-तप, मन्दिर-मस्जिद, पण्डित-शेख, मुल्ला-मौलवी और शाक्त सभी पर कड़े व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। डा10 हजारो प्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में सत्य लिखा है-“सच पूछा जाये तो अब तक हिन्दी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उन की साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यन्त सादी किन्तु अत्यन्त तेज प्रकाशन-भंगी अनन्य साधारण है।”⁶ इस तरह के व्यंग्य का एक उदाहरण देखिए-

मूंड मुंडाये हरि मिलै तो सब कोई मूंड मुंडाय।

बार-बार के मूंडते, भेड न बैकुण्ठ जाये।।

सदाचरण की शिक्षा भी कबीर ने समाज को सुधारने के लिये दी है। अतः वैयक्तिक सुधार की आवश्यकता पहले कबीर ने समझी है तभी वह राष्ट्र निर्माण के लिए आगे बढ़े हैं। इसलिये उन्होंने राष्ट्र उन्नति हेतु जनता को सदाचरण की शिक्षा दी है। अतः सदाचरण की शिक्षा में उन्होंने प्रेम, सत्य, अहिंसा, सन्तोष, सहृदयता, उदारता, अतिथि-सेवा, सन्तजन समागम, ब्रह्मचर्य और सत्य की प्रतिष्ठा के मानवीय जीवन मूल्यों की स्थापना हेतु भरसक प्रयास किया है। उन्होंने राष्ट्र निर्माण में राष्ट्रवादी भावना

हेतु सत्य को सबसे बड़ी तपस्या मानी है-

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप।¹⁷

समन्वयवादी दृष्टिकोण से राष्ट्र उन्नति की अग्रसर होगा। कबीर का दृष्टिकोण समन्वयवादी था। उन्होंने समाज, धर्म, दर्शन, आदि विविध क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करते हुए ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण के समन्वय पर बल दिया है। अतः ज्ञान की आँधी का वर्णन करते हुए 'प्रेम हरि जन भीनाँ' के माध्यम से उन्होंने प्रेम की (भक्ति) की ओर संकेत किया है-

संतों भाई आई ग्यान की आंधी रे।

भ्रम की टाटी सबै उड़ावणी, माया रहै न बांधी।

आंधी पीछे जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भीनाँ।

कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तम षीनां।

कबीर ने भक्ति के माध्यम से राष्ट्रवादी भावना को जगाकर सभी के हृदय में प्रेम भक्ति भरने का प्रयास किया है। उन्होंने दाम्पत्य मूलक रति के साथ-साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य और शान्त मूलक भाव का भी समन्वय कर दिया है। निर्गुण-सगुण में समन्वय स्थापित करते हुए वे कहते हैं कि-

सन्तो धोखा कासूँ कहिये।

गुण में निरगुण-निरगुण में गुण है, बाट छाँड़ि क्यूँ बहिये।।

अतः कबीर ने सभी लोगों के बीच समन्वय स्थापित किया है जिससे राष्ट्र में एक नई क्रान्ति और सोच का जन्म हो जाए तभी राष्ट्र और समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा।

सन्दर्भ

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास पृष्ठ सं0 112
2. राम चन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 सं0 60
3. राम स्वरूप चतुर्वेदी-हिन्दी साहित्य और सम्वेदना का विकास पृष्ठ सं0 70
4. कबीर ग्रन्थावली।
5. कबीर ग्रन्थावली।
6. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास पृष्ठ सं0 160
7. कबीर ग्रन्थावली।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य 'भारत भारती' में राष्ट्रवाद

डॉ. शक्ति मलिक

जी.एस.एस.एस. कुमासपुर
सोनीपत

भारतीय काव्य परम्परा रस भाव प्रधान रही है। इसी कारण एक समीक्षक प्रत्येक काव्य-रचना को रस और भावों की व्यंजना के आधार पर परखता है। यदि इस परम्परा के आधार पर 'भारत भारती' काव्य-रचना के वर्तमान खण्ड को परखा जाए तो स्थिति समझ आ जाएगी। कारण यह है कि इस काव्य-कृति के किसी भी खण्ड की रचना रसाभिव्यक्ति और पाठक को आनन्द लोक में पहुँचाने के उद्देश्य से नहीं हुई है। इसके वर्तमान खण्ड में तो कवि ने अपने युग की समस्याओं के प्रति सजग रह कर उन समस्याओं को उठाया है, कवि ने इस कुशलता से अपने युग की भावनाओं को वाणी देने में समर्थ हुआ है कि काव्य में चित्रित भावनाएँ युग की वाणी बन गई है। कवि ने वर्तमान खण्ड में हिन्दू जाति के नैतिक पतन, बुद्धि और शौर्य का, अपकर्ष का विस्तार से वर्णन किया है। इसलिए उसकी भूमिका के रूप में अतीत खण्ड के अंत में दयनीय दशा को भी चित्रित कर दिया है। वह इस खण्ड का आरम्भ ही स्थिति का आकलन किया गया है -

जिस लेखनी ने है लिखा उत्कर्ष भारत वर्ष का,
लिखने चली अब हाल वह उसके अमित अपकर्ष का!
जो कोकिला नन्दन-विपिन में प्रेम से गाती रही,
दावाग्नि-दग्धारण्य में रोने चली है अब वही।¹

जब कवि ने लगभग 1912 में लिखना शुरू किया था तब इसमें कवि ने हिन्दुओं के स्वर्णिम और वैभव की अपेक्षा में वर्तमान की हीन दशा का वर्णन किया है। यही कारण है कि वर्तमान खण्ड में वर्णित भारत आज के भारत की तुलना में सर्वथा भिन्न था। उस समय देश पर अंग्रेजों का आधिपत्य था और उसके द्वारा भारतीय उद्योगो-धंधों को अपने लाभ के लिए समाप्त करना, भारत का धन विदेशों को भेजना और अपने उद्योगों के लिए कच्चा माल कोड़ियों के भाव खरीदकर, वहाँ तैयार माल को यहाँ खपा कर अत्यधिक लाभ कमाना उद्देश्य था। इसलिए हिन्दुओं का मनोबल टूट चुका था, उनकी जीवन-शक्ति लुप्त प्रायः हो गई थी। धार्मिक दृष्टि से भी यह समय सर्वथा अनुकूल न रह गया था। लोग मनमाने ढंग से धर्म की व्याख्या कर रहे थे। यहाँ अनेक पंथ अस्तित्व में आ गए थे जिसके कारण अकर्मण्यता फैली हुई थी। जनता दुखी, संतप्त एवं निर्धन थी। भारत भारती के वर्तमान खण्ड में इस सारी स्थिति का विस्तार से दिखलाया गया है। कवि ने कहा है-

दारिद्र्य दुर्धर अब वहाँ रहा करता निरन्तर नृत्य है
आजीविका-अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है।²

इस दारिद्र्य कारणों का भी वर्णन काव्य में किया है। इसका पहला कारण तो कवि ने निरन्तर पड़ने वाले दुर्भिक्ष को बताया है। इन अकालों के कारण एक तो अन्न कम उत्पन्न होता है जिसके कारण लोगों को पेट भरने के लिए अन्न नहीं मिलता और बड़ी संख्या में लोग भूख से मर रहे हैं। जनता की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। वे एक मुट्ठी अन्न के लिए घर घर जा कर भीख माँगते हैं। लोग भूख से व्याकुल हो कर अपना धर्म परिवर्तन कर विदेशों में जा कर बस रहे हैं। कवि इसका वर्णन करता हुआ लोगों के भावों को अभिव्यक्ति देता हुआ कहता है-

हे धर्म और स्वदेश! तुमको बार-बार प्रणाम है,
हा! हम अभागों का हुआ क्या आज यह परिणाम है।
हमको क्षमा करियो, क्षुधावश हम तुम्हें हैं खो रहे
हो कर विधर्मी हाय! अब हम हैं विदेशी हो रहे।³

अतः किसानों की दुर्दशा पर भी कवि ने अपने भाव-विचार व्यक्त किए हैं। कृषि और दुर्दशा का कारण भूमि को उर्वरा शक्ति का कम होना, सिंचाई के साधनों की कमी, कठोर परिश्रम करने के बाद भी पेट भर भोजन किसानों को नहीं मिलता है क्योंकि कभी सूखा पड़ता है तो कभी अति वृष्ट होती है। इस तरह से राष्ट्र में सब कुछ नष्ट हो जाता है और यदि उपज अच्छी हो भी गई तो सारा अनाज ऋण के बदले महाजन ले जाता है। इसके साथ ही गो वध, व्याधियाँ, व्यापार पर भी अपने

भावों-विचारों को अभिव्यक्ति दी है। देश का उद्योग नष्ट हो गया है और सारी वस्तुएँ विदेशों से बन कर आती हैं जिस से सारा धन विदेशों को चला जाता है। इस प्रकार व्यापार की दशा के सम्बन्ध में कवि कहता है और राष्ट्र की स्थिति को भी स्पष्ट कर देता है-

लेकर विदेशी टीन हम सानन्द चाँदी दे रहे,
दे कर तथा सोना निरन्तर हैं गिलट ले रहे।
हम काँच लेकर दूसरों को दे रहे हीरे खरे,
निज रक्त के बदले मदोदक ले रहे हैं, हा हरे।⁴

इस सम्बन्ध में यह कथन देखिए-‘राष्ट्रीय भावना का विकास, सांस्कृतिक चेतना की जागृति से राष्ट्रवाद की भावना बढ़ती है।’⁵ कवि ने भारत के व्यापारिक तथा व्यावसायिक दुर्दशा के लिए यहाँ के धनिकों को दोषी ठहराया है जो अपने धन का प्रयोग देश में उद्योग-धंधे स्थापित करने में व्यय करने की अपेक्षा भोग विलास में व्यय करते हैं। यहाँ के धनिक प्रदर्शन में विश्वास रखते हैं और पढ़ने-लिखने से दूर रहते हैं। राष्ट्र में उन्हें कोई नौकरी तो नहीं करनी है। अतः विभिन्न उत्सवों में वेश्याओं को बुला कर अपना धन लुटाते हैं। इस पर दुख व्यक्त करते हुए कवि कहता है-

हाँ, नाच, भोग-विलास-हित उनका भरा भंडार है,
धिक् धिक् पुकार मशदंग भी देता उन्हें धिक्कार है?
वे जागते हैं रात भर, दिन भर पड़े सोवें न क्यों?
है काम से ही काम उन को, दूसरे रोवें न क्यों।⁶

कवि को हिन्दुओं में विद्या, कला-कौशल, सभ्यता, संस्कृति का अभाव खटका। भारतीय धनिक की सोच पर भी उन्होंने कटाक्ष किया। जो आर्य जाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी, वही आज पद-पद पर दूसरों का मुँह ताक रही है। धनिकों के पुत्र भी भोग-विलास, मदिरा में अपना सारा धन गँवा देते हैं, आज भारतीय केवल नौकरी करने के लिए शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जो कवि के लिए चिंता का विषय है क्योंकि हम अपनी सुशिक्षा की अपेक्षा कर रहे हैं। कवि वर्तमान काल की शिक्षा के सम्बन्ध में अपने भाव व्यक्त करते हुए कहता है - ‘है व्यर्थ वह शिक्षा कि जिस से देश की उन्नति न हो।’

कवि ने वर्तमान खण्ड में कहा है कि देश के साहित्य में अश्लीलता के समावेश और उस के दुष्प्रभावों के साथ-साथ संगीत पर भी प्रहार किया है क्योंकि उस में भी भक्ति रस के स्थान पर अश्लीलता आ गई है। देश में अनेक सभाएँ स्थापित हो गईं जो केवल चंदा उगाई का काम करती हैं और जनता में भेद भाव बढ़ाने का काम कर रही हैं। कवि ने उपदेशकों, मन्दिरों के महन्त, तीर्थ-स्थलों के पण्डों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के भ्रष्ट होने पर चिंता जताई है। राष्ट्र में ऐसी स्थिति के प्रति कवि सोचने को मजबूर हो गया है। यहाँ स्त्रियों की दुर्दशा और पतित होने का चित्रण भी किया गया है-

रखती यही गुण वे कि गन्दे गीत गाना जानती,
कुल, शील, लज्जा उस समय कुछ भी नहीं वे मानती।
हँसते हुए, हम भी अहो! वे गीत सुनते सब कहीं,
रोदन करो हे भाइयो! यह बात हँसने की नहीं।⁷

समाज में व्याप्त कुरीतियाँ जैसे बेजोड़ विवाह, अंध परम्परा, वर-कन्या विक्रय, दहेज प्रथा माँगना खाना आदि पर भी अपने भाव-विचार व्यक्त किए हैं। इस ओर “पुनर्जागरण काल में सदियों पुरानी जड़ताएँ टूटी हैं।”⁸

वास्तव में वर्तमान खण्ड में हिन्दू जाति के नैतिक पतन, बुद्धि, शौर्य, अपकर्ष का विस्तार से वर्णन किया है। देश में व्याप्त दारिद्र्य, प्रति दिन पड़ने वाले अकाल, शासन द्वारा होने वाले अत्याचार, जनता के मनोबल की क्षति व कमी, भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी, हिन्दू-मुस्लिम दंगे और मार काट, नित्य नैलने वाले प्लेग आदि रोगों से होने वाला जन-विनाश, व्यापार में विदेशी माल का प्रभुत्व, यहाँ के कला-कौशल का लुप्त होना, अमीरों की स्वार्थपरता और विलासिता, उनकी सन्ता की उन्मत्तता, स्त्री शिक्षा का अभाव और उनकी दुर्दशा, देशव्यापी घोर अशिक्षा, वर्तमान शिक्षा पद्धति से दासता की भावना में वृद्धि, साहित्य के स्तर में गिरावट, समाज के सभी वर्गों के चरित्र के ह्रास को प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त दुख, शोक आदि भाव प्रकट किए हैं। राष्ट्र में व्याप्त कुरीतियों, लोगों के पारस्परिक झगड़ों, उन में व्याप्त नशाखोरी की आदत, अपने पुरखों को भूलना, अच्छी परम्पराओं से मुँह मोड़ना, अनुदारता, गृह-कलह, व्यभिचार, आडम्बर आदि दुर्गणों का घर करना आदि का वर्णन भी बड़ी तलखी के साथ किया है। इस प्रकार हिन्दू समाज में अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गईं जिस के कारण हिन्दू की प्रताड़ना करते हुए कहना है-

हा! आर्य सन्तति आज कैसी अन्ध और असक्त है,
पानी हुआ क्या अब हमारी नाड़ियों का रक्त है?
संसार में हमने किया बस एक ही यह काम है-
निज पूर्वजों का सब तरह डुबाया नाम है।

कवि आर्य जाति में व्याप्त दुर्गणों के सम्बन्धों में अपने भाव प्रकट किए हैं

दुःशीलता दासी हमारी, मूर्खता महिषी सदा।

है स्वार्थ सिंहासन हमारा, मोह मंत्रे सर्वदा।

यों पाप-पुर में राज-पद हा! कौन पाना चाहता है?

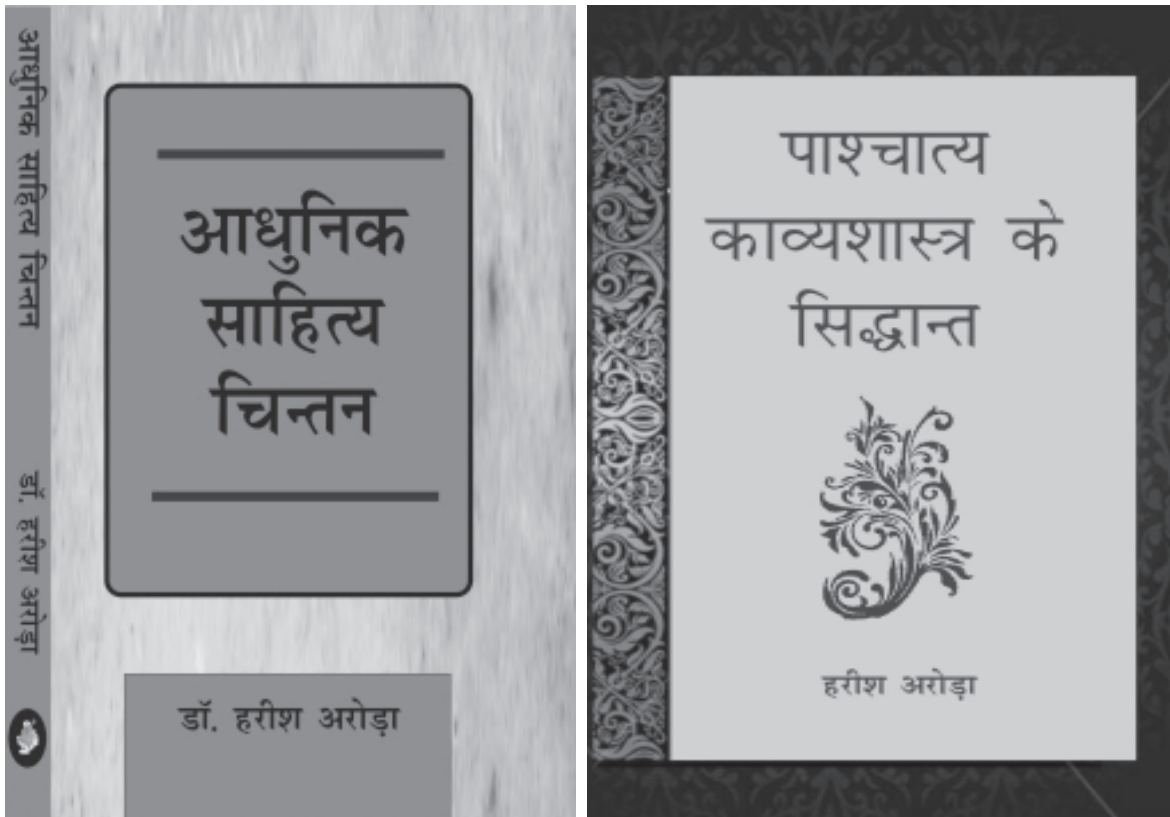
चढ़ कर गधे पर कौन जन बैकुण्ठ जाना चाहता?

अतः इनके काव्य को देखने से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण राष्ट्र की स्थिति का चित्रण कवि ने किया है जिसमें प्रत्येक वर्ग के स्त्री-पुरुष का चिन्तन जुड़ा हुआ है और कवि चाहता है कि राष्ट्र की तरक्की के लिए सभी को एक होना होगा तभी कहीं जाकर राष्ट्र में एकता और अखण्डता की अलख जगाकर हम आगे बढ़ सकते हैं। ऐसी राष्ट्रवादी भावना प्रत्येक स्त्री-पुरुष के बीच जब होगी तब उनमें समर्पण, त्याग, प्रेम, करुणा जैसी मनोवृत्तियों का जन्म होकर उन्नतिशील पथ पर बढ़ पाएंगी अन्यथा हम पथ भ्रष्ट हो जाएंगे जिससे राष्ट्र का नव निर्माण नहीं हो पाएगा।

सन्दर्भ

1. मैथिलीशरण गुप्त-भारत भारती।
2. मैथिलीशरण गुप्त-भारत भारती।
3. मैथिलीशरण गुप्त-भारत भारती।
4. मैथिलीशरण गुप्त-भारत भारती।
5. डॉ० विभा कुमारी-आधुनिक साहित्य-सं० पृष्ठ सं० 153
6. मैथिलीशरण गुप्त-भारत भारती।
7. डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव-समकालीन हिन्दी आलोचना।

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तकें



पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता और भारतीय जीवन मूल्य

डॉ. युवराज कुमार

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर सन् 1916 को वर्तमान उत्तर प्रदेश की पवित्र ब्रजभूमि में मथुरा में नगला चंद्रभान नामक गाँव में हुआ था। वे एक मध्यम वर्गीय परिवार से थे। उनके पिता का नाम श्री भगवती प्रसाद और माता का नाम रामप्यारी था। जब दीनदयाल उपाध्याय की आयु महज ढाई साल की थी, तब उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के बाद इनकी माँ अक्सर बीमार रहने लगी और 8 अगस्त 1924 का दिन पंडित जी के लिए उनके जीवन का सबसे दुखदायी दिन रहा, इसी दिन इनकी माँ का निधन हुआ और 7 साल की उम्र में दीनदयाल उपाध्याय माता-पिता दोनों के प्यार से वंचित हो गए।¹ लेकिन बहुआयामी प्रतिभा के धनी पंडित दीनदयाल उपाध्याय में कुशल अर्थचिन्तक, संगठनशास्त्री, शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ, प्रखर वक्ता, साहित्यकार, लेखक व पत्रकार के समस्त गुण विद्यमान थे। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी अपने इन्हीं उच्च विचारों द्वारा भारत के लोगों के दिलों में अपनी खास जगह बनाने में सफल रहें। दीनदयाल 'एकात्म मानववाद' जैसी प्रगतिशील विचारधारा देने वाले, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निर्माणकर्ता, राष्ट्रीय जनसंघ के अध्यक्ष तथा भारत के सबसे तेजस्वी एवं यशस्वी चिंतकों में से एक रहे।

1946 में जब संघ से जुड़े किशोरों तक अपनी विचारधारा सरल शब्दों में पहुंचाने की बात आयी तो पंडित जी ने बिना किसी से कुछ कहे रात भर जाग कर चाणक्य और सम्राट चन्द्रगुप्त को केंद्र में रखकर 'सम्राट चन्द्रगुप्त' नाम से एक उपन्यास लिख डाला। अगली सुबह जब उन्होंने यह पुस्तक भाऊराव जी को दी तो सभी आश्चर्यचकित थे। इस उपन्यास की सफलता के बाद युवाओं के लिए भी कुछ ऐसे ही लेखन की मांग उठी और तब उन्होंने 'जगद्-गुरु शंकराचार्य' नाम से अपना दूसरा उपन्यास लिखा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की द्वितीय औपन्यासिक कृति जिसमें पात्र एवं घटनाएं पुरानी हैं पर भाव, विचार और परिवेश नया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जिस शाखा पद्धति से संघकार्य करते थे उसमें समय देने के लिए जवानों को प्रेरित करना, उनमें देश के सांस्कृतिक गौरव का अभिमान उत्पन्न करना तथा अपना जीवन समर्पित करने की आकांक्षा पैदा करना इस कृति का उद्देश्य था।²

भारत में पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक ही धारा में प्रवाहित होने वाले जल के समान हैं। पत्रकारिता ने सदैव राष्ट्रवाद को ही मुखरित करने का कार्य किया है पत्रकारिता के इसी राष्ट्रवादी प्रवाह को गति देने वाले पत्रकारों में दीनदयाल जी में अदभूत संगठन कौशल विद्यमान था जिसे हम सब जानते हैं। लेकिन दीनदयाल जी की गणना अपने युग के प्रतिष्ठित पत्रकारों में भी होती थी। उस समय पत्रकारिता मिशन होने के कारण आदर्श और पूज्य थी, व्यवसाय नहीं।

स्वाधीनता संघर्ष की पत्रकारिता सही मायने में त्याग और बलिदान की पत्रकारिता रही। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान साहित्यकार, पत्रकार, समाजसेवी और नेताओं ने पत्रकारिता के माध्यम से देश को आजादी दिलाने का ताना-बाना बुना और उसके प्रभाओं का उपयोग कर केवल स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई बल्कि राष्ट्र के निर्माण में भी महत्वपूर्ण नाम दीनदयाल जी का भी है। दीनदयाल जी ने राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए श्री भाऊराव देवरस से प्रेरणा पाकर सन 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी।

राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड ने वचनेश त्रिपाठी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चन्द्र मिश्र, अटल बिहार वाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री जैसे श्रेष्ठ पत्रकारों को तैयार किया था। पं. दीनदयाल ने 'पांचजन्य', 'राष्ट्रधर्म' एवं 'स्वदेश' के माध्यम से राष्ट्रवादी जनमत निर्माण करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनके लेख पांचजन्य के घोष वाक्य के अनुरूप ही राष्ट्र जागरण का शंखनाद करते थे। राष्ट्रीय एकता के मर्म को समझाते हुए उन्होंने लिखा था³ - "यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति जो हिंदू संस्कृति है उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चलें। भागीरथी की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा में एकरूप हो जाएगी।"⁴

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन' के अंतर्गत मासिक पत्रिका 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशित एवं प्रसारित की जाने लगी। बाद में पांचजन्य साप्ताहिक और दैनिक समाचार पत्र 'स्वदेश' का भी प्रकाशन यहाँ से हुआ। प्रकाशन का मुख्य

उद्देश्य हिन्दू विचारधारा को बढ़ावा देना था। राष्ट्रधर्म का पहला अंक 31 अगस्त, 1947 को और पांचजन्य का पहला अंक 14 जनवरी, 1948 को प्रकाशित हुआ।⁵ आपको जानकर आश्चर्य होगा कि ये सभी प्रकाशन आज तक चल रहे हैं। पांचजन्य दिल्ली से तो स्वदेश और राष्ट्रधर्म लखनऊ से प्रकाशित होते हैं। स्वदेश का नाम अब बदलकर तरुण भारत कर दिया गया है। यह उल्लेखनीय है कि पंडित जी कभी भी इन प्रकाशनों के प्रत्यक्ष संपादक नहीं रहे, लेकिन वास्तविक संचालक, संपादक, व आवश्यकता होने पर उसके कम्पोजीटर, मशीनमैन व छोटे-बड़े सभी काम उन्होंने खुद किये।⁶

अपने इस ध्येय पथ पर वे सम्पूर्ण जीवन अनवरत चलते रहे। जीवन में अनेक दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी दीनदयाल जी ने अपने पत्रकारीय जीवन के प्रवाह को रुकने नहीं दिया था। स्वतन्त्रता के पश्चात जब भारत का पत्रकारिता जगत लक्ष्यविहीन अनुभव कर रहा था, तब दीनदयाल जी ने पत्रकारिता को उसका ध्येय मार्ग दिखलाने का कार्य क्या था। पंडित जी ने आर.एस.एस के संस्थापक, के. बी. हेडगेवर के ऊपर मराठी में लिखे गये जीवन-चरित्र का अनुवाद भी हिंदी में किया। इसके बाद उन्होंने कोई उपन्यास नहीं लिखा लेकिन अपने विचारों को विभिन्न लेखों के माध्यम से रखते रहे, जिनमें प्रमुख हैं—

- * अखंड भारत क्यों?
- * राष्ट्र-जीवन की समस्यायें
- * राष्ट्र चिंतन
- * राष्ट्र जीवन की दिशा
- * भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन

पंडित जी भी अपने जीवन पर्यंत राष्ट्रवादी विचारधारा से कभी समझौता नहीं किया और अपने इसी ध्येय पर अनवरत चलते रहे। एक समय ऐसा भी आया जब देश को सशक्त राजनीतिक विकल्प एवं विपक्ष की आवश्यकता थी, तब पंडित दीनदयाल जी ने श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ मिलकर राजनीति को समाज कल्याण के मार्ग के रूप में चुना।

आजादी के तुरंत बाद भारत के तथाकथित समृद्धि बौद्धिक वर्ग पर हावी हो रहे औपनिवेशिक संस्कृति को देश के लिए खतरा बताते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने पांचजन्य में लिखा 'राष्ट्रभक्ति की भावना को निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति का ही है तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मकता का अनुभव कराती हैं। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं, टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।' पंडित जी का स्पष्ट मत था कि राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए सांस्कृतिक एकात्मकता आवश्यक है। 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका में उन्होंने लिखा कि 'भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लीग का द्विसंस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक संस्कृतिवाद को सम्प्रदायवाद कहकर टुकराया गया किंतु अब कांग्रेस के विद्वान भी अपनी गलती समझकर इस एक संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है तथा तभी हम अपनी सम्पूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं।' दीनदयाल जी ने सचमुच राष्ट्रीय एकता के विषय को अपने मिशनरी पत्रकारिता के द्वारा बेबाकी से लोगों के सामने प्रस्तुत किया और गहराई से प्रभावित किया। पंडित जी अपने राजनीतिक विरोधियों के प्रति भी उदार रहे।⁸

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के जीवन के प्रेरक तथा अनमोल वचन⁹

* एक देश लोगों का समूह है जो 'एक लक्ष्य', 'एक आदर्श', 'एक मिशन' के साथ जीते हैं, और धरती के एक टुकड़े को मात्रभूमि के रूप में देखते हैं। यदि आदर्श या मात्रभूमि ख इन दोनों में से एक भी नहीं है तो देश का कोई अस्तित्व नहीं है।

- * भारत में नैतिकता के सिद्धांतों को धर्म कहा जाता है जीवन जीने की विधि।
- * जब स्वभाव को धर्म के सिद्धांतों के अनुसार बदला जाता है, तब हमें संस्कृति और सभ्यता प्राप्त होते हैं।
- * एक बीज, जड़ों, तानों, शाखाओं, पत्तियों, फूलों और फलों के रूप में अभिव्यक्त होता है। इन सभी के अलग-अलग रूप, रंग और गुण होते हैं। फिर भी हम बीज के माध्यम से उनकी एकता के सम्बन्ध को पहचानते हैं।
- * ये जरूरी है कि हम 'हमारी राष्ट्रीय पहचान' के बारे में सोचें जिसके बिना 'स्वतंत्रता' का कोई अर्थ नहीं है।
- * भारत जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उसका मूल कारण इसकी 'राष्ट्रीय पहचान' की उपेक्षा है।
- * अवसरवाद ने राजनीति में लोगों के विश्वास को हिला कर रख दिया है
- * किसी सिद्धांत को ना मानने वाले अवसरवादी हमारे देश की राजनीति नियंत्रित करते हैं।
- * हम लोगों ने अंग्रेजी वस्तुओं का विरोध करने में तब गर्व महसूस किया था जब वे (अंग्रेज) हम पर शासन करते थे, पर हैरत की बात है, अब जब अंग्रेज जा चुके हैं, पश्चिमीकरण प्रगति का पर्याय बन चुका है।

* पश्चिमी विज्ञान और पश्चिमी जीवन दो अलग-अलग चीजें हैं। जहाँ पश्चिमी विज्ञान सार्वभौमिक है और यदि हमें आगे बढ़ना है तो इसे हमारे द्वारा अवश्य अपनाया जाना चाहिए, वहीं पश्चिमी जीवन और मूल्यों के बारे में ये बात सत्य नहीं है।

- * पिछले एक हजार वर्षों में हमने जो भी आत्मसात किया चाहे वो हम पर थोपा गया या हमने स्वेच्छा से अपनाया - उसे अब छोड़ा नहीं जा सकता।
- * मानवीय ज्ञान आम संपत्ति है।
- * स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है यदि वो हमारी संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन बन जाए।
- * भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है कि यह जीवन को एक एकीकृत समग्र रूप में देखती है।
- * वहां जीवन में विविधता और बहुलता है लेकिन हमने हमेशा इसके पीछे की एकता को खोजने का प्रयास किया है।
- * मुसलमान हमारे शरीर का शरीर और खून का खून हैं।
- * शक्ति हमारे असंयत व्यवहार में नहीं बल्कि संयत कारवाई में निहित है।
- * अनेकता में एकता और विभिन्न रूपों में एकता की अभिव्यक्ति भारतीय संस्कृति की सोच रही है।
- * मानव प्रकृति में दोनों प्रवृत्तियां रही हैं - एक तरफ क्रोध और लोभ तो दूसरी तरफ प्रेम और त्याग।
- * नैतिकता के सिद्धांत किसी के द्वारा बनाये नहीं जाते, बल्कि खोजे जाते हैं।
- * अंग्रेजी शब्द रिलिजन, धर्म के लिए सही शब्द नहीं है।
- * धर्म एक बहुत व्यापक विचार है जो समाज को बनाये रखने के सभी पहलुओं से सम्बंधित है।
- * धर्म के मूल सिद्धांत शाश्वत और सार्वभौमिक हैं। हालांकि, उनका क्रियान्वन समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग हो सकता है।

इस प्रकार, पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने हिंदुत्व, भारतीयता, राजनीति, अर्थनीति, समाज-संस्कृति, राष्ट्रवाद, नैतिकता, जीवन मूल्य, पत्रकारिता आदि अनेकों विषयों पर गहरा अध्ययन किया था जो पत्रकारिता के माध्यम से लोगों के सामने आये। आजादी के बाद जब पत्रकारिता अपने मिशन रूपी लक्ष्य से भटक रहा था ऐसे समय पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से सन्मार्ग दिखाने का कार्य किये और मिशनरी भाव के पुनीत लक्ष्य को जीवन भर संवर्धित किया।¹⁰

पंडित दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद के आधार पर भी एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की जिसमें विभिन्न राज्यों की संस्कृतियाँ विकसित हों और एक ऐसा मानव धर्म उत्पन्न हो जिसमें सभी धर्मों का समावेश हो, जिसमें व्यक्ति को सामान अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो जो एक सुदृढ़, सम्पन्न एवं जागरूक राष्ट्र कहलाये।

पंडित जी के शब्दों में एकात्म मानववाद का सार कुछ इस तरह है¹¹ - 'हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केंद्र 'मानव' होना चाहिए। जो 'यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक चीजें मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं। पंडित जी का मानना था कि व्यक्ति का अर्थ सिर्फ उसका शरीर नहीं है, बल्कि उसका मन, बुद्धि, और आत्मा भी है। यदि इन चारों में से किसी एक को भी उपेक्षा की जाए तो व्यक्ति का सुख विकलांग हो जाएगा।'

अंततः दीनदयाल जी ने अपने इक्यावन वर्ष (जन्म-25 सितंबर, 1916 और महाप्रयाण 11 फरवरी, 1968) के अल्प जीवन में अपने सर्वश्रेष्ठ विचारों और कार्यों से समाज और राष्ट्र को एक नई दिशा देने का कार्य किया। अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकाल के दौरान राष्ट्रधर्म, पांचजन्य और स्वदेश पत्र प्रकाशन के अलावा 'चंद्रगुप्त मौर्य' नामक नाटक लिखा। हिंदी में शंकराचार्य की जीवनी भी पंडित जी ने लिखा। आरएसएस के संस्थापक डॉ. के. बी. हेडगेवार की जीवनी का मराठी से हिंदी में अनुवाद किया। उनकी अन्य प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों में 'सम्राट चंद्रगुप्त', 'जगतगुरु शंकराचार्य', 'अखंड भारत क्यों हैं', 'राष्ट्र जीवन की समस्याएं', 'राष्ट्र चिन्तन' और 'राष्ट्र जीवन की दिशा' आदि प्रमुख हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की राष्ट्रवाद की वैचारिकी भारतीय जनमानस विशेषकर युवाओं के लिए एक ऐसे चिंतनधारा के रूप में है जो एकता के सूत्र में पिरोता है।

संदर्भ

- 1 <https://www.achhikhabar.com/2017/09/19/pandit-deendayal-upadhyaya-biography-jayanti-hindi/>
- 2 शर्मा, महेशचन्द्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, प्रकाशन विभाग, सुचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ. 16.प
- 3 <https://avadhbhumi.wordpress.com/tag/>
- 4 पांचजन्य, 24 अगस्त, 1953
- 5 <http://npp.website/?p=331>
- 6 शर्मा, महेशचन्द्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, प्रकाशन विभाग, सुचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ. 24
- 7 <https://www.achhikhabar.com/2017/09/19/pandit-deendayal-upadhyaya-biography-jayanti-hindi/>
- 8 <http://npp.website/?p=331>
- 9 <https://www.achhikhabar.com/2013/10/09/pundit-deendayal-upadhyaya-quotes-in-hindi/>
- 10 <http://npp.website/?p=331>
- 11 <https://www.achhikhabar.com/2017/09/19/pandit-deendayal-upadhyaya-biography-jayanti-hindi/>

स्वतंत्रता आन्दोलन में गाँधी की पत्रकारिता का सक्रिय योगदान

डॉ. मीनाक्षी कुमार
जीसस एवं मेरी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

स्वतंत्रता आंदोलन को सफल करने में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान पत्रकारिता को मिशन के तौर पर लिया जाता था और पत्रकारिता के माध्यम से निःस्वार्थ भाव से सेवा की जाती थी। भारत में पत्रकारिता की नींव रखने वाले अंग्रेज ही थे। जैसे भारत में सबसे पहला समाचार पत्र जेम्स अगस्टस हिक्की ने वर्ष 1780 में 'बंगाल गजट' के नाम से निकाला। हालाँकि समाचार पत्र की स्थापना के लिए प्रयास 1674 से ही प्रारंभ हो गए थे - "It is not surprising] in the circumstances] that no English newspaper had come into being in India although the company had installed a printing press in Bombay in 1674 and provided a generous supply of types and paper another press was installed madras in 1772 and an official printing press was established in Calcutta in 1779."

अंग्रेज होते हुए भी उन्होंने अपने पत्र के माध्यम से अंग्रेजी शासन की आलोचना की, जिससे परेशान गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने उनकी डाक सेवाएं बंद करने के साथ ही उनके पत्र प्रकाशन के अधिकार भी समाप्त कर दिए। उन्हें जेल में डाल दिया गया और जुर्माना लगाया गया। परन्तु जेल में रहकर भी उन्होंने अपने लेखन कार्य को जारी रखा और वहीं से लिखते हुए अपने विद्रोह की शक्ति को हमारे सामने रखते रहे। हिक्की ने अपने लेखन का उद्देश्य इन शब्दों में घोषित किया- 'अपने मन और आत्मा की स्वतंत्रता के लिए अपने शरीर को बंधन में डालने में मुझे मजा आता है।'

हिक्की गजट द्वारा किए गए प्रयासों के बाद भारत में कई समाचार पत्र आए जिनमें ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाजें उठने लगी थी। समाचार पत्रों की आवाज दबाने के लिए अंग्रेज सरकार ने समय समय पर प्रेस पर प्रतिबन्ध भी लगाये लेकिन भारतीयों के बुलंद इरादों को वह तोड़ नहीं पाए। इसीलिये पत्रकारिता के उद्देश्य में कोई परिवर्तन नहीं देखा गया।

उस समय के अनेक समाज सुधारकों ने इसी लेखन शक्ति का प्रयोग करते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन को तीव्रता प्रदान की। भारतेंदु हरिश्चंद्र, लोकमान्य तिलक, बाबू विष्णु राव पराडकर, अरविन्द घोष, महात्मा गाँधी, राजा राम मोहन राय इत्यादि ने इसका प्रयोग करके अपने विचारों को समाज तक पहुंचाने में सफलता हासिल की। लोकमान्य तिलक ने पत्रकारिता के माध्यम से उग्र राष्ट्रवाद की स्थापना की। उनके समाचार पत्र मराठा और केंसरी उनके उग्र पत्रकारिता की प्रवृत्ति का जीता जागता उदाहरण है। गणेश शंकर विद्यार्थी ने कानपुर से प्रताप नामक पत्र निकाला जो अंग्रेजी सरकार का घोर विरोधी बन गया। अरविंद घोष ने भी वंदे मातरम, युगांतर, कर्मयोगी और धर्म आदि का संपादन किया। इसके द्वारा उन्होंने अपने स्वतंत्रता से जुड़े विचारों को सब तक पहुँचाया है। बाबू राव विष्णु पराडकर ने वर्ष 1920 में 'आज' का संपादन किया जिसका उद्देश्य आजादी प्राप्त करना था।

अहिंसा के पथ-प्रदर्शक, सत्यनिष्ठ समाज सुधारक, महात्मा और राष्ट्रपिता के रूप में विश्व विख्यात गाँधी भी राजनीति में आने से पहले कुशल पत्रकार थे। महात्मा गाँधी में भी सहज पत्रकार के सभी गुण मौजूद थे। पत्रकारिता उनके रग-रग में समाई हुई थी, जिसे उन्होंने मिशन के रूप में अपनाया था। स्वयं गाँधी के शब्दों में 'मैंने पत्रकारिता को केवल पत्रकारिता के प्रयोग के लिए नहीं बल्कि उसे जीवन में अपना जो मिशन बनाया है उसके साधन के रूप में अपनाया है। महात्मा गाँधी ने पत्रकारिता की जो बुनियादी बातें लक्ष्य रूप में हमारे सामने रखी उनमें पहली है पत्रकारिता की निष्पक्षता। दूसरी बात है पत्रकारिता के तथ्यों को तटस्थ होकर पाठकों के समक्ष रखना न कि न्यायाधीश बनकर फैसला देना। तीसरी बात पत्रकारिता को व्यवसाय न बनाना। इंडियन ओपिनियन पात्र में उन्होंने पत्रकारिता के उद्देश्य को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

1. पत्रकारिता का पहला काम जन भावनाओं को समझना और उन्हें अभिव्यक्ति देना ।
 2. पत्रकारिता का दूसरा उद्देश्य लोगों में जरूरी भावनाओं को जागृत करना ।
 3. पत्रकारिता का तीसरा उद्देश्य निर्भीक तरीके से गड़बड़ी को उजागर करना ।
- गांधी जी के इन्ही मापदंडों ने पत्रकारिता को एक नयी दशा और दिशा प्रदान की ।

सर्वप्रथम सन 1888 में कानून की पढ़ाई के लिए जब गाँधी लंदन पहुँचे उस वक्त उनकी आयु मात्र 19 वर्ष थी। उन्होंने 'टेलिग्राफ' और 'डेली न्यूज' जैसे अखबारों में लिखना शुरू किया। दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के दौरान उन्होंने भारतीयों के साथ होनेवाले भेदभावों और अत्याचारों के बारे में भारत से प्रकाशित 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदू', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'स्टेट्समैन' आदि पत्रों के लिए अनेक लेख लिखे व इंटरव्यू भेजे। ये वही दौर था जब अफ्रीका में अश्वेत लोगों के खिलाफ जुल्म की कहानियाँ पूरी दुनिया सुन रही थी। जुल्म के प्रति विद्रोह जाहिर करने में गाँधी ने प्रारंभ से ही लेखनी का सहारा लिया। भारत में आने पर भी उन्हें इसी परेशानी का पुनः सामना करना पड़ा।

बीसवीं सदी के आरम्भ से लेकर स्वराजपूर्व के गाँधी युग तक पत्रकारिता का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस युग की पत्रकारिता पर गाँधी जी की विशेष छाप रही। गाँधी ने रचनात्मक कार्यक्रम और असहयोग आन्दोलन के प्रचार के लिए देश भर में कई पत्रों का प्रकाशन शुरू किया। अपने विचारों और स्वतंत्रता के लिए चलाये जा रहे कार्यक्रमों को समाज तक पहुँचाने के लिए उन्होंने पत्रकारिता का सहारा लिया। साथ ही उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से पूरे समाज को एकजुट करने का कार्य किया और स्वाधीनता संग्राम की दिशा सुनिश्चित की। नवभारत, नवजीवन, हरिजन, हरिजन सेवक, हरिजन बंधु, यंग इंडिया आदि समाचार पत्र गाँधी जी के विचारों के संवाहक थे। गाँधी जी राजनीति के अलावा अन्य विषयों पर भी लिखते थे। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को भी उजागर कर इसे समाप्त करने पर बल दिया साथ ही पूरे समाज को एकजुट करने का कार्य भी किया और स्वाधीनता संग्राम की दिशा भी सुनिश्चित की।

भारत में भी राजनीतिक भागीदारी से पहले गाँधी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में स्वतंत्र लेखन के माध्यम से प्रवेश किया था। भारत आने के बाद सन 1914 में पत्र-प्रकाशन की योजना बनाई। गाँधी जी के समक्ष अनेक पत्रों के सम्पादन भार ग्रहण करने के प्रस्ताव आए, किंतु उन्होंने सभी प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। 7 अप्रैल 1919 को बम्बई से 'सत्याग्रही' नाम से एक पृष्ठ का बुलेटिन निकालना शुरू किया जो मुख्यतः अंग्रेजी और हिंदी में निकलता था। इसके पहले ही अंक में उन्होंने रोलेट ऐक्ट का तीव्र विरोध किया और इसे तब तक प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया जब तक कि रोलेट ऐक्ट वापस नहीं ले लिया जाता। गाँधी की नजर में पत्रकारिता का उद्देश्य राष्ट्रीयता और जनजागरण था। वह जनमानस की समस्याओं को मुख्यधारा की पत्रकारिता में रखने के प्रबल पक्षधर थे। पत्रकारिता उनके लिए व्यवसाय नहीं, बल्कि जनमत को प्रभावित करने का एक लक्ष्योन्मुखी प्रभावी माध्यम था। गाँधी जैसा महान पत्रकार एवं सम्पादक कदाचित इस देश में पैदा नहीं हुआ।

गाँधी ने पत्रकारिता को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया और अपने सत्याग्रह के आंदोलन को धार देने के लिए उपयोग किया। गाँधी ने लगभग हर विषय पर लिखा और अपना दृष्टिकोण लोगों तक पहुँचाया। गाँधी ने लिखा था, 'मैंने पत्रकारिता को एक मिशन के रूप में लिया है उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिनको मैं जरूरी समझता हूँ और जो सत्याग्रह, अहिंसा व सत्य के अन्वेषण पर टिकी हैं।' 'हरिजन' द्वारा भी गाँधी ने सामाजिक एकता व बराबरी का संदेश दिया। चूँकि इन समाचार पत्रों व पत्रिकाओं का उद्देश्य स्वतंत्रता संघर्ष भी था, अंग्रेजों ने गाँधीजी को बड़ा कष्ट दिया मगर गाँधी ने भी यह सिद्ध कर दिया कि वे इस मैदान में किसी से कम नहीं थे। सरकार के प्रेस नियंत्रण का सामना गाँधी जी को भी करना पड़ा। प्रेस की स्वतंत्रता के हिमायती गाँधी ने सरकारी आदेशों की अवहेलना की। स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार नहीं किया उन्होंने स्पष्ट लिखा कि यदि प्रेस सलाहकार कमेटी तक यदि प्रति भेजी जाएगी तो प्रेस की स्वतंत्रता का हनन होगा। प्रेस की स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

महात्मा गाँधी की लड़ाई का एक बड़ा साधन पत्रकारिता रहा है। चाहे दक्षिण अफ्रीका में नस्ल भेद के खिलाफ संघर्ष करते वक्त 'इंडियन ओपिनियन' का प्रकाशन हो या फिर भारत में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ स्वाधीनता-आंदोलन में सक्रियता के दौरान 'यंग इंडिया' का तथा छुआछूत के खिलाफ 'हरिजन' का प्रकाशन हो। गाँधी ने पत्रकारिता के जरिए समाज के चेतना कार्य का निर्माण किया। दक्षिण अफ्रीका से भारत वापिस आकर भी गाँधी ने हिन्दुस्तानियों के अधिकारों, स्वाभिमान की रक्षा के लिए 'यंग इंडिया' में लेखन प्रारंभ किया। यंग इंडिया के 1924 के अंक में वे लिखते हैं, 'मैं भारत की आजादी के लिए प्रयत्न क्यों कर रहा हूँ ? इसलिए कि मेरा स्वदेशी धर्म मुझे सिखाता है कि इस देश में मेरा जन्म हुआ है। इस देश की संस्कृति मुझे विरासत में मिली है, इसलिए मैं अपनी माता की सेवा करना अपना पहला हक समझता हूँ।'

भारत में गाँधी ने जब वर्ष 1919 में 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' तथा 1933 में 'हरिजन' निकाला तो उनके सम्मुख युवा भारत, भारत का नवजीवन तथा भारतीय जनता ही थी। समाचार पत्रों के इन नामों से ही यह सिद्ध होता है कि गाँधी की पत्रकारिता की बुनियाद भारत प्रेम और राष्ट्रीयता ही थी। 'इंडियन ओपिनियन' में भी कई बार अपने उद्देश्यों की घोषणा उन्होंने की। उनके लिए इसके पीछे एक ही लक्ष्य कार्य कर रहा था। वह था मुख्यतः हिन्दुस्तानियों का कल्याण। गाँधी ने लिखा कि उनका उद्देश्य सेवा, शिक्षा वृद्धि एवं हिन्दुस्तानियों के स्वाभिमान की रक्षा करना है। 'इंडियन ओपिनियन' के द्वारा वे भारतीयों के कष्टों को दूर करने तथा उन्हें सुनीति की शिक्षा देना चाहते थे। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता का लक्ष्य आजीविका कमाना नहीं है, बल्कि लोक कल्याण करना है।

महात्मा गाँधी ने जिन समाचार पत्रों का प्रकाशन अथवा संपादन किया वे पत्र अपने समय में सर्वाधिक लोकप्रिय पत्रों

में माने गए। गांधी जी के पत्रकारिता की प्रशंसा करते हुए चेलापतिराव ने कहा कि- “गांधी जी शायद सबसे महान पत्रकार हुए हैं और उन्होंने जिन साप्ताहिकों को चलाया और संपादित किया वे संभवतः संसार के सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक हैं। गांधी की देशभक्ति में देश के साथ मातृत्व भक्ति भी देखी गई और इसका सबसे बड़ा आधुनिक साधन समाचार पत्र है। उन्हें ये अच्छी तरह स्पष्ट था कि भारतीयों तक अपनी बात पहुंचाने के लिए अपनी भाषा का प्रयोग होना चाहिए। ‘यंग इंडिया’ पत्र की भाषा बदलने के पीछे भी यही राष्ट्रीयता ही काम कर रही थी। इसीलिए नवजीवन भी पहले गुजराती भाषा में और बाद में हिन्दी इत्यादि भाषाओं में निकलता था, जो गांधी की राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण था।’ नवजीवन भारतीय भाषा गुजराती में और बाद में हिन्दी आदि भाषाओं में निकलता था, जो गांधी की राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण था। भारतीय भाषाओं वाला समाज ही वास्तविक भारत था और उस तक देशीय भाषाओं की पत्रकारिता से ही पहुँचा जा सकता था।

गांधी जी द्वारा लिखित हिंद स्वराज, सर्वोदय आत्मकथा, सत्याग्रह समाचार और हरिजन नामक पत्र में गांधी जी ने जो दिशा निर्देश दिए थे बिलकुल नए ढंग के थे। जनता ने उन्हें अवतार के रूप में देखती थी। वे राजनैतिक और सामाजिक वातावरण पर छा गए थे जैसे देशवासियों पर जादू कर दिया हो। उस समय स्थान-स्थान और गली-गली में अधनंगे बच्चे भी गांधी जी की जय के नारे लगाते दौड़ते दिखाई देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि हर शहर और ग्राम में जहां समाचार पत्र नहीं पहुँच सकते थे नए बुलेटिन और पाम्पलेट बांटे जाने लगे। गांधी जी के अहिंसा त्याग और सत्याग्रह के सिद्धांत की सफलता ने भारत का मन मोह लिया था - सारा जनमत गांधी जी के साथ था और अनेक नए शक्तिशाली समाचार पत्रों का प्रकाशन भी आरंभ हुआ। जबलपुर, खंडवा से ‘कर्मवीर’ का, कलकत्ता से ‘स्वतंत्र’ का, काशी से ‘आज’ का और कानपुर से ‘वर्तमान’ का।

कलकत्ता समाचार ने लिखा-सारे देश की निगाह महात्मा गांधी पर केंद्रित है तो नागपुर के श्री शारदा के लिखा-जेल जाना भारत को स्वाधीन कराने का मार्ग है और कलकत्ता से साप्ताहिक मतवाला ने लिखा गांधी विहीन स्वराज यदि स्वर्ग से भी सुंदर हो तो वह नरक के समान त्याज्य है। उस एक महात्मा पर शत शत स्वराज न्यौछार कर देने योग्य है। यदि अपने देश में स्वराज की प्रतिष्ठा चाहते हैं तो तन मन धन से अपने नेता महात्मा गांधी के आदेशों का पालन करना आरंभ कीजिए। समाचार पत्रों में संपादकीय लेख लिखे जाने लगे- रोलेट एक्ट पर, पंजाब की दमन नीति पर, जलियां वाला बाग पर, खिलाफत आंदोलन पर, अली बंधुओं एवं अन्य की गिरफ्तारी पर, अहिंसात्मक सत्याग्रह पर, गांधी जी की जेल यात्रा पर, उनकी प्रार्थना सभाओं पर, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने पर, चौरा चौरी कांड पर, नमक सत्याग्रह पर, युवराज प्रिंस आफ वेल्स के आगमन के बहिष्कार पर, इस तरह समाचार पत्र राष्ट्रीयता के प्रतीक बन गए।

गांधी स्वयं को शौकिया पत्रकार कहते थे। परन्तु वे राष्ट्रीय पत्रकार थे। उन्होंने अपनी पत्रकारिता में राष्ट्रीयता को मूलाधार बनाकर पत्रकारिता की एक सर्वोत्तम परम्परा विकसित की साथ ही उसे अपने युग का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय दर्शन बनाया। आज पत्रकारिता को लेकर जिस तरह के सवाल आये दिन उठते रहते हैं। ऐसे में क्या यहां भी गांधी प्रासंगिक नहीं हो जाते हैं। कहीं यह सच तो नहीं कि हमने अपनी सहूलियत और निजी हितों को ऊपर रखकर गांधी की पत्रकारिता के उन मूल्यों को सामने ही नहीं आने दिया। जिनका सामने आना वर्तमान पत्रकारिता के बिगड़ते स्वरूप के लिए सबसे जरूरी जान पड़ता है। गांधी द्वारा पत्रकारिता के क्षेत्र में जो आदर्श स्थापित किये गए। वह अपने आप में पत्रकारिता के प्रामाणिक सिद्धांत कहे जा सकते हैं। भारत ही नहीं विश्व के पत्रकारिता जगत को चाहिए कि वह गांधी को महज महात्मा तक सीमिति न कर पत्रकार गांधी के मूल्यों, आदर्शों व सिद्धांतों को भी पढ़ें, समझें और आत्मसात करें। यह लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में एक कल्याणकारी पक्ष है।

संदर्भ ग्रंथ

1. गाँधी विचार और साहित्य, डा .सुमन जैन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, .
2. गाँधी : पत्रकारिता के प्रतिमान, कमल किशोर गोयनका नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008.
3. गाँधी वांडमय खंड 3.
4. हिंदी नवजीवन, समाचार पत्र
5. मेरे सपनों का भारतए महात्मा गाँधी, राजपाल, दिल्ली, 2008.
6. संपूर्ण गांधी वांडमय, खंड 13.
7. आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग, मो.के.गाँधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957.
8. राष्ट्रीय आन्दोलन, हिंदी और गांधी, गांधी स्मृति एवम दर्शन समिति, दिल्ली, 2005.
9. यंग इण्डिया, 12 मई, 1920.

स्वतंत्रता पूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना

सिममी चौहान

मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख गुण सामयिकता को समेटना है। इसलिए इन्हें अद्यतन व सामयिकता का साहित्य भी कहा जाता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने उस दौर के सामयिक प्रश्न 'राष्ट्रवाद' को प्रखर स्वर प्रदान किया। 18वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भारत में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या नगण्य थी परंतु 1857 ई0 के विद्रोह के बाद पत्र-पत्रिकाएं तेजी से अस्तित्व में आईं। अंग्रेजी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में कई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। इसी समय भारत का शासन कम्पनी के हाथ से ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गया। अशान्त और अवसादग्रस्त जनता को अन्नाभाव और अकाल की मार ने जकड़ लिया। अंग्रेजों के अत्याचारों ने किसानों की स्थिति ओर दयनीय बना दी। समाचार-पत्रों की स्वाधीनता पर प्रेस संबंधी कानून (गैंगिंग ऐक्ट) बनाकर पत्रों की स्वतंत्रता भंग की गई। इतनी कष्टमयी परिस्थितियों में भी भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना के अंश अभी भी कायम थे। जिनके द्वारा उन्होंने ब्रिटिश सरकार की राष्ट्र विरोधी नीतियों की कड़ी आलोचना की तथा पीड़ित भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता व एकता की भावना जगाने का लक्ष्य साधा। इसके साथ ही विदेशी प्रेरणास्पद व्यक्तित्वों व महान वीरतापूर्ण साहित्य को देशवासियों के सामने प्रस्तुत कर राष्ट्रवादी भावना को जागृत किया गया। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय पत्रकारिता में मुख्यतः तीन आयाम देखे जा सकते हैं - एक, आजादी की लड़ाई के लिए संघर्षशील पत्रकारिता, दूसरा-साहित्यिक उत्थान के लिए समर्पित पत्रकारिता, तीसरा- राष्ट्रहित और अंधविश्वास विरोधी पत्रकारिता। इन तीनों आयामों का उद्देश्य गुलाम देश व मानसिकता से मुक्ति की छतपटाहट और उन्नत ज्ञानवान स्वाभिमान युक्त राष्ट्र का निर्माण करना था।

1826 से 1867 तक का समय हिन्दी पत्रकारिता का आदि युग माना जाता है। इस समयावधि में निकाले गए दैनिक-साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं का लक्ष्य हिन्दी भाषी जनता में राष्ट्रीय जागरण का संदेश देना था और भारतीय जनमानस की पराधीन मानसिकता को बदलना था। इन पत्र-पत्रिकाओं में 'उदन्त मार्तण्ड', 'बंगदूत', 'बनारस अखबार', 'समाचार सुधावर्षण', 'सार सुधानिधि', 'प्रजाहितैषी', 'तत्वबोधिनी पत्रिका', 'ज्ञानप्रदायिनी', 'वृत्तांत विलास' आदि का प्रमुख योगदान रहा। 1868 में शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ जिससे हिन्दी पत्रकारिता अनेक स्तरों पर समृद्ध हुई। इस आबोहवा के प्रसार-विकास तथा समृद्धि के उद्देश्य से नए-नए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।

'कविवचन सुधा' (1868) पत्रिका के 23 मार्च, 1874 के अंक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक प्रतिज्ञा पत्र प्रकाशित किया था, जो हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी चेतना का पहला शंखनाद था। 'हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे। हिन्दुस्तान का ही कपड़ा पहिनेंगे।' भारतेन्दु की इस जातीय अभीप्सा पर डा10 रामस्वरूप चतुर्वेदी टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि-'बंगाल में आरंभ हुई पुनर्जागरण चेतना मध्य देश में पहुँचकर अधिक प्रखर रूप में राष्ट्रीय हो जाती है, और उसके वाहक बनते हैं - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।' इस साहित्यिक पत्रिका का सिद्धांत वाक्य था -

"खल-गगन सो सज्जन दुखी मति होंहि, हरिप्रद मति रहै।

अपधर्म छूटै, स्वत्व, निज भारत गहै, कर दुख बहै॥

बुध तजहिं मत्सर, नारिनर सम होंहि, जग आनंद लहै।

तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै॥"

इसी तरह भारतेन्दु ने देशवासियों को सचेत करते हुए 'कविवचन सुधा' में कहा कि - 'भाइयों अब नींद से जागो। अपने देश की सब प्रकार की उन्नति करो जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो... परदेशी भाषा का भरोसा मत करो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।' पाठकों के मन में इस पत्रिका ने ऐसी जगह बनाई कि प्रत्येक अंक के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था। 5 अक्टूबर, 1873 को 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मासिक पत्रिका आई। इसमें पुरातत्व, उपन्यास, कविता, कहानियाँ, आलोचना, ऐतिहासिक, राजनीतिक, साहित्यिक, व्यंग्य आदि प्रकाशित होते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस पत्रिका के बारे में लिखा है - "हिन्दी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी चन्द्रिका में प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिन्दी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ।"²

स्त्रियों के हित एवं जागरण के लिए भारतेन्दु ने 'बालाबोधिनी' मासिक पत्रिका निकाली। "इस पत्रिका ने नारी जागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रथम अंक में ही पत्रिका ने अपने आपको महिलाओं की छोटी बहन व सहेली कहा।" साथ ही नारी जगत को यह संदेश दिया कि - 'हमारी गृहदेवियां भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें।' इस कालावधि में लाला श्रीनिवास दास का 'सदादर्श', बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप' (1877), प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' (1883) तथा 'सार सुधानिधि' (1879) आदि में आमजन की पीड़ा एवं वेदना को उन्हीं की भाषा-शैली में व्यक्त किया गया। 'ब्राह्मण' के संपादक प्रताप नारायण मिश्र ने खिन्न मन से लिखा था - 'हम और हमारे सहयोगीगण लिखते-लिखते हार गए कि देशोन्नति करो, पर यहाँ वालों का सिद्धांत है कि अपना भला हो, देश चाहे चूल्हे में जाए, यद्यपि जब देश चूल्हे में जाएगा तो हम बचे न रहेंगे।' 'हिन्दी प्रदीप' का स्वर राष्ट्रीयता, निर्भीकता और तेजस्विता भरा था। जिस पर अंग्रेज सरकार की कड़ी नजर रहती थी। भारतेन्दु युग की पत्रकारिता को मदन मोहन मालवीय ने 1887 में 'हिन्दोस्थान' के द्वारा आगे बढ़ाया। इसके साथ ही इस दौर में 'अभ्युदय', 'मर्यादा', 'सनातन धर्म', 'भारत', 'रहस्य चन्द्रिका', 'नागरी नीरद', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समस्यापूर्ति', 'रसिक पत्रिका' आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। "इस अवधि में पत्र-पत्रिकाओं की राष्ट्रीय चेतना प्रखर है, पर इनमें उदारपंथी प्रवृत्तियों का बाहुल्य है। इसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि इस युग का नेतृत्व कांग्रेस के हाथ में था और उसे जिन लोगों की दिशा मिल रही थी, वे नरमपंथी नेता थे। राष्ट्रीय नेतृत्व जब तिलक के हाथों में आया तो पत्र-पत्रिकाओं में भी विद्रोह का स्वर मुखर हुआ, उनकी भाषा बदली तथा क्रान्तिकारिता परवान चढ़ी।"⁴

किसी भी देश की राष्ट्रीय चेतना में भाषा का विशेष महत्व होता है। भारतेन्दु ने निज भाषा की उन्नति को देश की सम्यक उन्नति का मूल माना है। हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति के लिए 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की गई। पत्रकारों का उद्देश्य देश और भाषा की उन्नति करना था, उनकी ये पत्रिकाएं आजीविका के साधन न होकर लोकहित का साधन थीं। उन्होंने देश की बहुसंख्यक जनता की आशाओं, आकांक्षाओं को समेटते हुए राष्ट्रीय चेतना, जनवाद तथा यथार्थवाद की स्पष्ट विचारधारा को परिलक्षित करते हुए मुक्ति की ओर उन्मुख किया है।

20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्ष लार्ड कर्जन के कुकृत्यों के चलते उद्वेलन और अशांति के वर्ष थे। भारत की राष्ट्रीय शक्ति को दमित करने के लिए कर्जन ने नाना प्रकार की अनुदारता का आघात भारतीयों पर किया। कर्जन के शासन की दमन शैली का ही धिनौना रूप था - बंग विच्छेद। बंग भंग की प्रतिक्रिया गहरी और व्यापक हुई। जातीय राजनीति का नेतृत्व बालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लालालाजपत राय कर रहे थे। 1899 में बालमुकुंद गुप्त ने 'भारत मित्र' का संपादन संभाला। लार्ड कर्जन के कुकृत्यों पर जैसी तीखी टिप्पणी बालमुकुंद ने की, वैसी निर्भीकता आज के पत्रकारों में दुर्लभ हैं।

1900 ई0 में इलाहाबाद के इंडियन प्रेस से बाबू चिन्तामणि घोष ने 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन किया। इसे नागरी प्रचारिणी सभा का अनुमोदन भी प्राप्त था। इसके संपादक-मंडल में बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, जगन्नाथदास रत्नाकर, पं0 किशोरीलाल गोस्वामी और श्यामसुंदर दास थे। 'सरस्वती' का सिद्धांत वाक्य था- 'सरस्वती श्रुति महती न हीयताम्'। इसके प्रवेशांक में कहा गया है - "परम कारुणिक सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की अशेष अनुकम्पा से ही ऐसा अनुपम अवसर आकर प्राप्त हुआ है कि आज हम लोग हिन्दी भाषा के रसिक जनों की सेवा में नए उत्साह से उत्साहित हो एक नवीन उपहार लेकर उपस्थित हुए हैं, जिसका नाम 'सरस्वती' है।"⁵ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् 1901 में प्रकाशित 'सरस्वती' साहित्यिक पत्रिका का 1903 तक संपादकत्व संभाला। राष्ट्रवाद के पोषक आचार्य द्विवेदी ने खड़ी बोली को परिमार्जित कर व्याकरण की उपयुक्त पटरी पर चलाने का अपना उद्देश्य 'सरस्वती' के माध्यम से पूरा किया। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका के माध्यम से पत्रकारिता को सांस्कृतिक अनुष्ठान में बदल दिया। उन्होंने 'समाज और संस्कृति' के क्षेत्र में जिस नयी चेतना का प्रसार किया, उसके कारण हिन्दी नवजागरण का तीसरा दौर संभव हुआ। द्विवेदी जी का उद्देश्य सामंती और औपनेवेशिक व्यवस्था को समाप्त कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जनवादी व्यवस्था कायम करना था। लेकिन 'सरस्वती' पत्रिका को कहीं सरकारी संरक्षण भी प्राप्त था, जिसके कारण वह अंग्रेजी सरकार की आलोचना खुलकर करने से कतराती थी। ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता और प्रजापालकता के हिमायती होते हुए भी द्विवेदी जी के लेखन में देशभक्ति की कमी नहीं थी। 1906 के बाद उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज सरकार की आलोचना भी की। हिन्दी में शुद्ध साहित्यिक पत्रकारिता की शुरुआत 'सरस्वती' के प्रकाशन से ही मानना चाहिए, यद्यपि भारतेन्दु एवं उनके युगीन पत्रिकाओं में साहित्यिक सामग्री की प्रचुरता थी। सरस्वती के आलावा इस काल की अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में 'सुदर्शन', 'समालोचक', 'देवनागर', 'इन्दु', 'प्रभा' आदि प्रमुख हैं। उस काल के पत्रकारों की बौद्धिक जागरुकता का स्तर यह था कि एक शब्द की त्रुटि को लेकर वे गंभीर सवाल उठा देते थे। तिलक की राजनीति-चेतना को कलकत्ते से 1907 में प्रकाशित 'नृसिंह' पत्रिका यद्यपि राजनीति-प्रधान थी, किन्तु भाषा, राष्ट्रभाषा और संस्कृति से जुड़े सवालों को लेकर भी ज्वलंत सामग्री प्रकाशित करती थी। तिलक-चेतना के उन्नायक हिन्दी पत्रकारों में बाबूराव विष्णु पराङकर, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मणनारायण गर्दे, माधवराव सप्रे और झाबर मल्ल शर्मा प्रमुख हैं।

लोकमान्य तिलक ने सबसे पहले स्वराज्य को भारतवासियों का जन्म सिद्ध अधिकार घोषित किया था, किन्तु गांवों में बसे

देश के बहुसंख्यक लोगों तक राष्ट्रीय-जातीय स्वाभिमान की प्रेरणा गाँधी जी ने पहुँचायी। 18 मार्च, 1919 के 'काले कानून' तथा अंग्रेजी सरकार के दूसरे कानूनों की अवज्ञा के लिए गाँधी जी ने एक समिति निर्मित की थी, भारतीय जन से सत्याग्रह की प्रतिज्ञा करायी जिससे समस्त भारत में व्यापक राष्ट्रीय जागरण का वातावरण बन गया था। स्वतंत्रता पूर्व राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों को व्यक्त करने में विविध साहित्यिक पत्रिकाओं का योगदान रहा। 1922 ई० में कलकते से 'आदर्श' और लखनऊ से 'माधुरी' दो साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। 1923 ई० में इलाहाबाद से मासिक पत्रिका 'चाँद' का प्रकाशन हुआ। इसके संपादक नन्दगोपाल सिंह सहगल, महादेवी वर्मा और नन्दकिशोर तिवारी थे। चाँद के संपादकीय आलेखों में महादेवी वर्मा ने समाज की संरचना में स्त्री की भूमिका तथा उसके मनोविज्ञान का पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा निर्धारित होने का सत्य भी उद्घाटित किया। अपने संपादकियों के संकलन 'अपनी बात' में वे भारतीय नारी की विषमता को रेखांकित करते हुए कहती हैं कि- 'भारतीय नारी भी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राण-वेग से जाग सके उस दिन उसकी गति को रोकना किसी के लिए संभव नहीं। उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं, न मिलेंगे...'।⁶

1934 में महादेवी ने 'जीवन का व्यवसाय' शीर्षक से वेश्या जीवन की विडम्बना को साकार करने वाले बिन्दुओं को उठाते हुए कहा है कि - "पतित कही जाने वाली स्त्रियाँ भी मनुष्य जाति से बाहर नहीं हैं... हमारे समाज ने कृष्ट रोगियों के लिए भी आश्रम बनाए, विक्षिप्तों के लिए चिकित्सालयों का प्रबंध किया, परन्तु इनके कल्याण का कोई मार्ग नहीं ढूँढ़ा।"⁷ पितृसत्ता के दलदल में धंसी स्त्रियों की दशा में सुधार के लिए एक व्यापक आंदोलन की आवश्यकता है, अन्यथा नारी के लिए नारीत्व अभिशाप तो है ही।⁸

26 अगस्त, 1923 ई० को कलकत्ता से साप्ताहिक पत्रिका 'मतवाला' निकाली गई। यह पत्रिका हास्य एवं व्यंग्यमयी मुँहफट भाषा से भरी थी। इसके संपादक मंडल में निराला, महादेव प्रसाद सेठ, शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव जुड़े थे। इसमें न केवल अंग्रेजी राज की, बल्कि बड़े-बड़े लेखकों की भी खबर ली जाती थी। 31 मई 1924 के संपादकीय टिप्पणी में संपादक ने आग्रह किया था कि - 'यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं, अपने देश में स्वराज्य की प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो तन-मन और धन से अपने नेता महात्मा गाँधी जी के आदेशों का पालन करना आरंभ कीजिए।' तत्कालीन देश-दशा की परिस्थितियों का ब्यौरा 'मतवाला' की शैली में द्रष्टव्य है - 'राजनीतिक परिस्थिति में उथल-पुथल मचा हुआ है। वह निराशा और दुविधा की बीहड़ घाटियों में भटक रही है। दलबंदियों सिर उठा रही है। असहयोग शक्ति की कमर टूट गई है।... अहिंसा की कातर दृष्टि शून्य आकाश से जीवन की भिक्षा माँग रही हैं दासता की आँखों में चरबी छा गई है।... दाढ़ी वालों के पेट में दुगुनी लम्बी दाढ़ी है और चोटी से भी लम्बी दुमा।' इसी प्रकार अंक 6 की संपादकीय 'गोरों की काली जोकें' में भारतीय व्यवसाइयों के हीन चरित्र पर बेबाक टिप्पणी की है कि - 'इन हीन चरित्र व्यवसाइयों को देशद्रोह के घोर पाप से बचाने का एकमात्र उपाय चर्खा और खदर है। भारत के प्रत्येक ग्राम में खदर और चर्खे की दुन्दुभी बज जानी चाहिए।... भारत उठेगा, कोटि कोटि दरिद्रों का रक्त पीकर अकड़ने वाले देशद्रोहियों को उनके कर्मों का फल भोगना पड़ेगा।' ऐसे ही उग्र विचारों 'मतवाला' अपनी बेबाक भाषा में व्यक्त कर रहा था।

गाँधी जी के इन्हीं विचारकोणों को 'विशाल भारत' (1928) साहित्यिक-सांस्कृतिक रूप में उजागर कर रहा था। इसके संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय और संपादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी थे। 1938 ई० में अज्ञेय ने इसका संपादन कार्य संभाला। चतुर्वेदी ने लिखा कि बड़े बाबू ने इस उद्देश्य से 'विशाल भारत' निकाला था कि हिन्दी जनता तक एक शुद्ध सात्विक मानसिक भोजन पहुँचे। इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समय-संवेदना की गति क्षिप्रतर हुई निःसंदेह, किन्तु इसी युग में पत्रकारिता के कुलक्षण भी हिन्दी पत्रकारिता में उजागर हुए, जो मूल्यांकन की अधोगति का अशुभ संकेत देने वाले थे। गणेश शंकर विद्यार्थी ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा कि - 'यहाँ भी अब बहुत से समाचार-पत्र सर्वसाधारण के कल्याण के लिए नहीं रहे, सर्व-साधारण उनके प्रयोग की वस्तु बनते जा रहे हैं।... अभी पूरा अंधकार नहीं हुआ है, किन्तु लक्षण वैसे ही हैं।' छठे दशक के अंत में यह पत्रिका बंद हो गई थी।

यह दौर देश में घोर राजनीतिक उथल-पुथल का रहा। जलियाँवाला कांड, साइमन कमीशन की वापसी, भगत सिंह को गाँसी, स्वराज का नारा आदि सब घटनाएँ हो चुकी थी। इसी परिवेश में प्रेमचंद ने 1930 ई० में 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन किया। इसका नामकरण प्रसाद जी ने किया था और उनकी योजनानुसार केवल दो ही स्तम्भ रह सके - 'मुक्ता-मंजूषा' और 'नीर क्षीर विवेक'। हंस के शुरुआती अंकों में प्रसाद की कविताएँ प्रकाशित होती थी। हंस के मुख्य पृष्ठ पर केंदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की और सामान्य पृष्ठ पर निराला की रचना छपी। उस युग में शीर्ष महत्व की रचना को ही मुख्य स्थान दिया जाता था। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि प्रभात जी उग्र राष्ट्रवाद के उन्नायक महाकवि के रूप में ख्याति पा चुके थे। 1933 ई० में प्रेमचंद ने इसका 'काशी विशेषांक' निकाला। वे 1930 से 1936 तक इसके संपादक रहे। उनके बाद जैनेन्द्र और शिवरानी देवी ने संपादक कार्य संभाला। इसके विशेषांकों में प्रेमचंद-स्मृति अंक, एकांकी नाटक अंक, रेखाचित्र अंक, कहानी अंक, आत्मकथांक आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास और प्रगति में नए मूल्यों की स्थापना की दृष्टि से 'हंस' का ऐतिहासिक महत्व है। इसके संपादकियों में प्रेमचंद ने अंग्रेजी राज की खूब धज्जियाँ उड़ायी हैं। साथ ही अंग्रेजों

के औपनिवेशिक गुलामी से भारतीय जन की मुक्ति की आकांक्षा भी की। जून 1931 के संपादकीय 'हंस-वाणी' में प्रेमचंद ने लिखा - 'देश में इस समय आर्थिक संकट के कारण, जो दशा उपस्थित हो गयी है, उसे जल्द न संभाला गया तो बड़े भारी उपद्रव की आशंका है। महात्मा गाँधी क्रान्ति नहीं चाहते और न क्रान्ति से आज तक किसी जाति का उद्धार हुआ है।... एक ओर सरकार और उसके पिट्टू जमींदार और दूसरी ओर हमारे कुछ तेज जोशीले कार्यकर्ता नादिरशाह बने हुए क्रान्ति के सामान पैदा कर रहे हैं।... देश में यदि इस समय जगह-जगह उपद्रव होने लगें, तो स्वभावतः जनता का ध्यान लक्ष्य से हटकर घरेलू झगड़ों की ओर चला जाएगा और स्वराज्य की नौका मँझधार में चक्कर खाने लगेगी।'⁹ 'हंस' संपादक का यह विश्वास था कि 'स्वराज्य-आंदोलन गरीबों का आंदोलन है।'¹⁰ यह पत्रिका जन-संस्कृति की उन्नायक थी जो एक ओर गांधी जी के स्वराज्य-आंदोलन की बात उठाती है तो दूसरी ओर यह प्रेमचंद की कृतियों द्वारा प्रवर्द्धित और पुष्ट होती जाती है। 'हंस' के प्रकाशन और 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना द्वारा हिन्दी में जिस साहित्यिक आंदोलन का सूत्रपात हुआ वह आगे चलकर राजनीतिक विचार-दर्शन से इतना आक्रांत हो गया कि उसका साहित्यिक वैशिष्ट्य धीरे-धीरे क्षीण होने लगा। इस प्रकार जब राजनीति और अर्थशास्त्र के प्रेरणा संकेत पर साहित्यिक चिन्तक संदेह प्रकट करने लगे तब आंदोलन की महत्ता संदिग्ध दिखने लगती है। सितम्बर 1936 के 'हंस' में प्रेमचंद का 'महाजनी सभ्यता' शीर्षक से लेख छपा, यह लेख प्रेमचंद की प्रखर होती हुई क्रान्तिकारी चेतना का सबूत है।

जुलाई 1938 में 'रूपाभ' का प्रकाशन हुआ, जिसके संपादक सुमित्रानन्दन पंत और नरेन्द्र शर्मा थे। इसके मुख्य पृष्ठ पर लिखा था - युग का प्रतिनिधि मासिक पत्र। इस पर बनारसीदास ने ऐतराज किया, जिसका स्पष्टीकरण देते हुए 'रूपाभ' के नवें अंक में संपादक ने लिखा - 'युग का प्रतिनिधि मासिक पत्र होने का 'रूपाभ' का दावा तानाशाही के रूप में नहीं है। प्रजातंत्र के इस युग में समाज और साहित्य के विभिन्न वर्गों और अंगों को वाणी देने के लिए बहुत से प्रतिनिधि होते हैं और हो सकते हैं 'रूपाभ' उन्हीं में से एक है।' 1939 में यह पत्रिका बंद हो गई। 1945 में दिल्ली से मासिक पत्रिका 'आजकल' का प्रकाशन शुरू हुआ। आजादी से एक वर्ष पूर्व पुस्तक भंडार से शिवपूजन सहाय के संपादन में 'हिमालय' पत्रिका निकाली गई।

अंततः यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता पूर्व हिन्दी की पत्रकारिता ने जहाँ दैनिक, साप्ताहिक और पाक्षिक पत्रों तथा पत्रिकाओं के प्रकाशन से स्वाधीनता संघर्ष को प्रेरित किया, वहीं समाज की अनीतियों, कुरीतियों पर प्रहार करके उसमें नए परिवर्तनों का समर्थन किया। इस तरह हिन्दी को एक समृद्ध भाषा बनाने में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसके बाद वह एक व्यापक जन समुदाय की संप्रेषणीयता का माध्यम बनकर उभरी। स्वतंत्रता पूर्व प्रकाशन में आई इन सभी पत्रिकाओं ने राजनीति और साहित्य दोनों को एक साथ जोड़कर न सिर्फ हिन्दी भाषा को विकसित किया बल्कि, पराधीन जनता के भीतर भी नई जीवन चेतना का संचार किया। पत्रकारिता और साहित्य के इस आपसी तालमेल से ही साहित्यिक पत्रकारिता समृद्ध हुई, वर्तमान समय में यही सांस्कृतिक विमर्शों का आधार बनी हुई हैं।

संदर्भ

- 1 डॉ० मीरा रानी बल - राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, पृष्ठ सं० - 92
- 2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ सं० - 232
- 3 डॉ० मीरा रानी बल - राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, पृष्ठ सं० - 92
- 4 ज्योतिश जोशी - साहित्यिक पत्रकारिता, पृष्ठ सं० -185 'सरस्वती' पत्रिका, भाग-1, संख्या-1, जनवरी 1900
- 6 महादेवी वर्मा - शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ सं० - 09
- 7 महादेवी वर्मा - शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ सं० - 93
- 8 महादेवी वर्मा - शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ सं० - 42
- 9 सं० डॉ० उमेश कुमार राय - मीडिया अतीत, वर्तमान एवं भविष्य, पृष्ठ सं० - 148
- 10 हंस पत्रिका, वर्ष 1, अंक-2

सांस्कृतिक पत्रकारिता का मूल चरित्र

डॉ. पंकी पारीक

रिसर्च एसोसिएट

वनस्थली विद्यापीठ

भारत में हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना युगबोध और अपने महत्त दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता ने अंग्रेजी पत्रकारिता के दबदबे को खत्म कर दिया है। पहले देश-विदेश में अंग्रेज पत्रकारिता का दबदबा था लेकिन आज हिन्दी भाषा का झण्डा चहुँदिसलहरा रहा है।

पत्रकारिता ने सामाजिक मनुष्य को सन्मार्ग दिखाया है, यह एक बड़ी सच्चाई है। प्रखर विचारों की पोषक पत्रकारिता ने एक दिव्य चेतना एवं लोकमत के निर्माण में महती भूमिका निभाई है। मनुष्य की ज्येष्ठता एवं श्रेष्ठता को उजागर किया है, पर आज मनुष्यता को एक बड़ा खतरा पैदा हो गया है। मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना शून्य हो गई है। आज का मनुष्य जो कि जिसकी सोच चिन्तन, मनन की उदात्त सोच बोनी हो चुकी है, उसको सांस्कृतिक चेतना एवं मूल्यों से ओतप्रोत पत्रकारिता ही मार्गस्य कर रही है। इस पत्रकारिता के द्वारा रचनाशील पत्रकार को भी एक सार्थक दृष्टि मिलती है। सांस्कृतिक पत्रकारिता ही वह आयाम है जिसके द्वारा मनुष्य की संवेदनशीलता का संरक्षण संभव हो सकता है। सांस्कृतिक पत्रकारिता समस्त पत्रकारिता को नई दृष्टि प्रदान करने का एक उद्यम है। इसी से पत्रकारिता पुनरूद्धार एवं मिशन के उदात्त भाव से ओतप्रोत हो सकती है। पत्रकारिता को तरोताजा बनाना हर युग की अपरिहार्य आवश्यकता है। सांस्कृतिक पत्रकारिता यह महत्त कार्यपूर्ण क्षमता के साथ पूरा कर सकती है।

पत्रकारिता की मूल प्राणवायु, मूलधर्म, मूल स्वभाव ही सांस्कृतिक पत्रकारिता में निहित है। प्रारम्भ में एक स्वभाव की तरह पत्रकारिता संस्कृति से युक्त रही है, जिसके बारे में कहा है कि शिव से यदि 'इ' की मात्र को अलग कर दिया जाए तो शिव, शिव नहीं रहता शव हो जाता है ठीक उसी तरह सांस्कृतिक स्वभाव के बिना पत्रकारिता भी निष्प्राण है। समाज मनुष्य से बनता है। समाज में ही गड़बड़ी भी होती है। समाज में रहते हुए मनुष्य रोज बनता एवं बिगड़ता रहता है। गलतियाँ भी करता है और उन गलतियों को सुधारने में भी लगा रहता है। सांस्कृतिक पत्रकारिता का दायित्व मनुष्य की गलतियों को सुधारने की अद्भुत सीख है। सांस्कृतिक पत्रकारिता का वास्तविक दायित्व यह है कि उसे यह सीख देनी होगी कि वास्तव में जीवन जीने की कला कैसे सीखे।

विकास एक सतत प्रक्रिया है किन्तु मानवीय विकास की अवधारणा एक उदात्त दृष्टि है। इस अवधारणा के तहत मनुष्य या डाकू से ऋषि वाल्मीकि सा उदात्त जीवन प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को निरन्तर नर से नारायण बनने के सत् पथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए। सांस्कृतिक पत्रकारिता की सद्प्रेरणा इसी सत्य में नीहित है।² आधुनिक भारत में गाँव के लोग भी वैज्ञानिकता की ओर खींचे एवं वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर अधिक उपजाने व धन कमाने में अग्रसर हुए। नगरवासियों के लिए राजनीति के अतिरिक्त सिनेमा उपयोगी वस्तुएँ व विज्ञापन उपलब्ध होने के कारण उन दिशाओं में रुझान अधिक बढ़ा। लोग राजनीतिक दावपेंच की चर्चाएँ, सरकार के कामकाज नेताओं के वक्तव्यों व कार्यकलापों की जानकारी रखने में पत्र-पत्रिकाओं व समाचारों का अधिक उपयोग करने लगे। वहीं आज सिनेमा पौराणिक व सामाजिक दशाओं के चित्रण का माध्यम ना रहकर बढ़ते समय के साथ व पश्चिमी प्रभाव के कारण आक्रमक एवं लैंगिकता का प्रदर्शन का माध्यम रह गया।³ इस प्रवृत्ति ने पत्रकारिता के क्षेत्र में सांस्कृतिक संकट पैदा कर दिया है।

सांस्कृतिक पत्रकारिता समस्त पत्रकारिता की भावभूमि की जड़ है। पत्रकारिता को साहित्य, सांस्कृतिक एवं समस्त मूल्यों का रस सांस्कृतिक पत्रकारिता से ही मिलता है। पत्रकारिता में यदि सांस्कृतिक तत्व को यदि हम छोड़ देगे तो पत्रकारिता प्राण शून्य हो जाएगी। सांस्कृतिक नैतिकता भाषा के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति पाती है, परन्तु हमारी राष्ट्रीय पत्रकारिता में राष्ट्रभाषा के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। राजभाषा का प्रश्न जितना महत्त्वपूर्ण देश के लिए है उतना ही महत्त्वपूर्ण यह पत्रकारिता के लिए भी है। सांस्कृतिक पत्रकारिता की मूल पहचान तो राष्ट्रभाषा ही है। सांस्कृतिक पत्रकारिता के आधार सूत्र इस गुरु गंभीरता के साथ हमें बोध कराते है कि भले ही हम पर कितना ही वज्रपात हो जाए पर हमारी गति अवरुद्ध नहीं होनी चाहिए। कवि गिरिजा कुमार माथुर ने ठीक ही कहा है कि -

मन में अनुभव गहरे / उतना ही मौन सधा मुख पर
हैं घेरे जितनी ज्वालाएं / उतना ही शीतल है अंतर
पृथ्वी जैसा संतोष परम / मिट्टी सा मन उर्वर उदार
वाणी हो जाए मंत्र छंद / फसलों जैसे उगें विचार
इ बात कहे जो एक बार / वह कोटि कंठ स्वर दोहराएं
इ बोए जो भी भावबीज / वे सदियों तक उगते जाएं।¹⁴

सांस्कृतिक पत्रिका हमें संस्कृति के उन समस्त मूल्यों का स्मरण कराती है, जिन मूल्यों को कभी हमने संस्कृति के दर्पण में देखा तो कभी अध्यात्म का नाम देकर उन्हें जीने का विनम्र प्रयास किया। 'मीडिया का उत्तरदायित्व अध्यात्म से कम नहीं है, वह सत्य का ही एक अंग है। अध्यात्म अर्थ है और मीडिया उस अर्थ को सम्प्रेषित करने वाला शब्द है। शब्द अर्थ का यह परस्पर सम्बन्ध है। बिना शब्द के अर्थ मूक है बिना अर्थ के शब्द शोर है। मीडिया को हंस की तरह विवेकपूर्ण होना चाहिए, जब दूध उपलब्ध है तो पानी क्यों चुनना।¹⁵ नीर-क्षीर का यह विवेक हंस को तो उपलब्ध है ही यही विवेक सांस्कृतिक पत्रकारिता समस्त पत्रकारिता को प्रदान कर सकती है। लेकिन आज पत्रकारिता का उद्देश्य नग्नता को बढ़ावा देना रह गया है। वह ऐसे समाचारों को पहले छापने में विश्वास करता है, जिनमें नग्न वर्णन हो। आज अखबार मात्र नग्नता को महिमा मण्डित कर रहा है। नग्न चित्र छापकर नग्नता को बढ़ावा दे रहा है। यह पीत पत्रकारिता है, जबकि सांस्कृतिक पत्रकारिता हमारी आँख को खोलती है और हमें सभ्य होने का सही पाठ पढ़ाती हैं।

आदिम समाज में जीता आदमी पत्तों से अपना शरीर ढक लेता था और जानता था कि नग्नता शर्म है। सांस्कृतिक पत्रकारिता की इसी नग्नता के विरुद्ध एक धर्म युद्ध खड़ा करना है, ताकि अखबार पुनः ऐसी त्रुटि दोहरा न सके। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तो नग्नता के नंगे नाच को, बेशर्मी की सभी सीमाओं को पार करने को उत्साहित कर नारी को लगभग तार-तार करके रख दिया है। पर्दे पर तो नारी अखबार के उस पृष्ठ में छिपी नारी की तरह अर्द्धनग्न नहीं, अपितु लगभग नग्न है। यह नग्नता सांस्कृतिक सोच से उन्मुख आज की पत्रकारिता ने हमें दी है। हर पत्र-पत्रिका अर्द्धनग्न चित्रों को, बेरोक छापने की चूहा दौड़ में लगे है।¹⁶ समाज में भ्रमित करने के इस पाखंड पर सांस्कृतिक पत्रकारिता ही एक अंकुश का काम कर सकती है।

सांस्कृतिक पत्रकारिता का यह अहम् दायित्व है कि वह मूल्यों को हवा-पानी का पोषण देकर, संस्कृति रूपी वृक्ष को हरा-भरा रहने दे। इसके लिए एकांत, एकाग्रता, इच्छा-शक्ति, वस्तुनिष्ठता और तार्किक चिन्तन की जरूरत है। सांस्कृतिक पत्रकारिता हमें एक चेतना देती है कि हमारी सद्भावना की विरासत के क्या अर्थ हैं हमारे संस्कारों की क्या महिमा है और इससे ओत-प्रोत जीवन कैसा सुखमय बन सकता है। इन सारे सवालों के जवाब हमें ईसा-मसीह, महात्मा गाँधी आदि के जीवन चरित्रों को अपनाकर प्राप्त हो सकते हैं।

सांस्कृतिक पत्रकारिता का ध्येय चारित्रिक विकास के महत्वपूर्ण तत्व की भी व्याख्या करना होना चाहिए, हमारे संविधान के सस्थापकों ने निश्चय ही धर्म निरपेक्ष को सकारात्मक अर्थ में स्वीकार किया था। इसके अनुसार राष्ट्रीय जीवन को अस्वीकार न करके सभी धर्मों को समान रूप से स्वीकार किया था।¹⁷ सांस्कृतिक पत्रकारिता द्वारा ही यह समझ विकसित की जा सकती है कि धर्म निरपेक्षता का अर्थ धार्मिक विचारों को नकारना नहीं है। न ही पूजा पद्धति के साधक तत्वों से दूर रहना है। सांस्कृतिक पत्रकारिता की इस दृष्टि से राष्ट्रीयता और एकता को बल मिलेगा। सांस्कृतिक पत्रकारिता द्वारा शिक्षा देने के उदात्त लक्ष्य की सहज प्रतिपूर्ति सम्भव है।

सांस्कृतिक पत्रकारिता द्वारा ही यह सम्भव है कि यह समझाया जा सके कि समय-समय पर आत्म निरीक्षण और परीक्षण होते रहना चाहिए। सांस्कृतिक पत्रकारिता मात्र सूचना के अंبار का एकत्रीकरण नहीं है न ही ऐसी सूचना का प्रकाशन एवं प्रसार करना है। सांस्कृतिक पत्रकारिता के क्षेत्रों में कार्य करता पत्रकार सूचना की सही व्याख्या भी करता है। सूचना ऐसी जिज्ञासा है, जिससे धृतराष्ट्र जैसा अंधा व्यक्ति भी वंचित नहीं रह सकता। वह भी घटित घटनाक्रम के प्रति जिज्ञासा का परम भाव रखता है, इसलिए धृतराष्ट्र भी सूचना प्राप्ति के लिए संजय पर आश्रित रहता है।

अतः सरल एवं निश्छल सांस्कृतिक दृष्टि मिलना एक बात है, किन्तु उस सांस्कृतिक दृष्टि को बनाए रखने का प्रयत्न दूसरी बात है। ऐसे प्रयत्न अंततः सांस्कृतिक पत्रकारिता द्वारा ही फलीभूत हो सकेंगे।

संदर्भ

- 1 सांस्कृतिक पत्रकारिता पृष्ठ सं.-17- डॉ. टी.डी.एस. आलोक
- 2 शिक्षा से क्रान्ति - अन्धविश्वासों से मुक्ति पृष्ठ 8
- 3 स्वतन्त्रता भारत के पचास वर्ष भाग दो-आचार्य भालचन्द्र गोस्वामी प्रखर
- 4 गिरिजा कुमार माथुर - तार सप्तक में संकलित कविता
- 5 ओशो टाईम्स पृष्ठ-5, 1 मार्च 2018
- 6 सांस्कृतिक पत्रकारिता -पृष्ठ-3-डॉ.टी.टी. एस. आलोक
- 7 भारतीय चिन्तन पृष्ठ-16, डॉ शंकर दयाल शर्मा

स्वतंत्रतापूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना

डॉ. महेश चन्द

शालीमार बाग, नई दिल्ली

स्वतंत्रतापूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना का योगदान सबसे अधिक रहा। साहित्यिक पत्रकारिता का अर्थ है ऐसी पत्रकारिता जो सबका हित राष्ट्र का हित करे। भारतेन्दु युग की, द्विवेदी युग की, छायावाद युग की साहित्यिक पत्रकारिता ने भारतीय स्वतंत्रतापूर्व के आन्दोलनों में अपने विचारों से जनता में राष्ट्रीय जीवन चेतना को जगाया और उसे भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की ओर उन्मुख कर दिया। जिसके कारण देश में राजाराममोहन राय, तिलक, गोखले, महात्मा गांधी, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, चन्द्रशेखर, सुभाषचन्द्र बोस जैसे राष्ट्रीय चेतना जगाने वालों के नारे विचार गीत कविताएं, साहित्य साधारण जनता को सुनने पढ़ने को मिला जिससे उनमें देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति की चेतना जाग्रत हो गयी और उन्होंने राष्ट्रभक्तों गांधी आदि के भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलनो जैसे सत्याग्रह आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलनों में बढ चढ़कर हिस्सा लिया और अंग्रेजों को भारत से बाहर निकाल कर अपने देश, राष्ट्र को उनकी गुलामी से मुक्त कराया।

पंजाब केसरी' लाला लाजपत राय की जीवनी में रीडर्स डिलाइट लाला लाजपत राय के बारे में लिखता है- उन्होंने 1904 में 'द पंजाबी' नामक अंग्रेजी समाचार पत्र निकाला था। 1925 में पत्रिका 'पीपुल'का सम्पादन तथा वन्दे मातरम' उर्दू पत्र का प्रकाशन किया था। 'द पंजाबी' के प्रकाशन का जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और लोगों ने अनुभव किया कि यह पत्र निर्भीकता के साथ जनता पक्ष लेगा। उस पत्र का उद्देश्य पंजाब व देश को आने वाले संघर्ष के लिए तैयार करना था। उसमें ऐसे लेखों को प्रकाशित किया जाता जो लोगों को देश पर उनके अच्छे और बुरे प्रभाव के बारे में भी जागरूकता करने का कार्य करते थे।'

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की जीवनी में रीडर्स डिलाइट लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के बारे में लिखता है। 'बाल गंगाधर तिलक एक समाज सुधारक और भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थे। बाल गंगाधर तिलक ने भारतीयों के चेतन में एक चिंगारी जगाई थी। उनका प्रसिद्ध नारा स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा बहुत लोकप्रिय है। लोकमान्य का अर्थ है-लोगों को प्रिय। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के जनक बाल गंगाधर तिलक का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था। बाल गंगाधर तिलक ने अपने देशवासियों के लिए कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना की तथा विभिन्न समाचार पत्रों का प्रकाशन किया।' 'तिलक ने दो दैनिक, मराठी में केसरी और अंग्रेजी में मराठा आरंभ किये। केवल दो वर्ष के भीतर ही केसरी के पाठक किसी भी अन्य भारतीय भाषा के दैनिक से अधिक थे। उनके संपादकीय जनता की व्यथा और वास्तविक घटनाओं की ज्वलंत तस्वीर प्रस्तुत करते थे। वह प्रत्येक भारतीय से अपने हक के लिए लड़ने का आह्वान करते थे। इन समाचार पत्रों में वे इतनी तीक्ष्ण भाषा का प्रयोग करते थे कि अत्यधिक डरपोक पाठक में भी स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्यास जाग उठे। तिलक अपने साथियों से कहते थे कल्पना करो कि आप एक ग्रामीण से बात कर रहे हो। अपने तथ्यों में मजबूत रहो। आपके शब्द दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट होने चाहिए। केसरी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा किए गए क्रूरतापूर्ण व्यवहार की भर्त्सना करते हुए लेख प्रकाशित किए।'

स्वतंत्रतापूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना जगाने में गांधी के यंगइण्डिया, हरिजन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अम्बेडकर के जनता '1930', मूकनायक, प्रथम मराठी पाक्षिक है, बहिष्कृत भारत मराठी 1927 के प्रवेशांक में लिखा था- 'हाथ में तीर लेकर, /रथ पर आरूढ़ होकर/,वीरता का आलिंगन कर/, वीरवृत्ति का समाधान हुआ।/ ,पारथ निःशंक हो इस संगाम को चित्त करो/,यही विचारो कुछ मत बोलो।' दोनों ने समाज के दलितों को उनकी स्वतंत्रता के लिए प्रेरित किया था। गांधी जी के पत्रों के बारे में शयोरज सिंह 'बेचैन' लिखते हैं- '1904 में उन्होंने अंग्रेजी में यंग इण्डिया पत्र निकाला। इनके अलावा गुजराती में 'नवजीवन '1932.1933', हिंदी में हरिजन सेवक '1933' हरिजन बंधु आदि के माध्यम से अपने विचारों को देश भर में फैलाया।' डॉ. नगेन्द्र अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं 'हिंदी का पहला पत्र उदंत मार्तण्ड 1826 में प्रकाशित हुआ था। बाद में कलकत्ता से ही प्रजामित्र 1834 का प्रकाशन होने लगा। हिंदी का दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण 1854 ई. श्याम सुंदर सेन के संपादकत्व में कलकत्ता से ही निकला।

भारतेन्दु युग के साथ ही साहित्यिक पत्रकारिता ने अपने प्रचार प्रसार का विस्तार अधिक बढ़ा दिया। इससे पूर्व वह

क्रान्तिकारियों, राष्ट्रभक्त नेताओं के द्वारा देश को जाग्रत करने लगी थी। उस समय जो पत्र पत्रिकाएं निकलीं उसमें जनता की समस्याओं का तो वर्णन था ही साथ ही भारतेन्दु युग के पत्रकारों ने, साहित्यकारों ने अपनी कविता, निबंध, उपन्यास, नाटक तथा अन्य गद्य की साहित्यिक विधाओं द्वारा इस पत्रकारिता द्वारा राष्ट्रीय जीवन चेतना का मंत्र फूँका। जिससे जन जीवन में देशभक्ति का जाग गया। भारतेन्दु युग के बारे में डॉ. नगेन्द्र अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं – 'आलोच्य युग में जनचेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी। फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में न केवल अतिरिक्त सक्रियता थी, अपितु इन सबमें गहन अंतः संबंध विद्यमान था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने जनता को उद्बोधन प्रदान करने के उद्देश्य से जातीय संगीत अर्थात् लोकगीत की शैली पर सामाजिक कविताओं की रचना पर बल दिया। मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, गोरक्षा, बाल विवाह निषेध, शिक्षा प्रसार का महत्व, मद्य निषेध, भ्रूण हत्या की निंदा आदि विषयों को कविगण अधिक अपनाने लगे। राष्ट्रीय भावना का उदय भी इस काल की अनन्य विशेषता है। ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद के विचारों तथा थियोसोफिकल सोसाइटी के सिद्धांतों का प्रभाव भी जन जीवन पर पड़ रहा था। आर्थिक, औद्योगिक और धार्मिक क्षेत्रों में पुनर्जागरण की प्रक्रिया आरंभ होने लगी थी। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने शैक्षिक क्षेत्र में भी वैयक्तिक स्वतंत्रता की प्रेरणा प्रदान की। अंग्रेजी का प्रचार प्रसार यद्यपि जनता से संपर्क साधन और प्रशासकीय आवश्यकताओं के लिए किया जा रहा था, पर अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन ने अन्य देशों के साथ तुलना का अवसर भी प्रदान किया था और इस तरह राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए उचित वातावरण बन सका। मुद्रणयंत्रों के विस्तार और समाचार पत्रों के प्रकाशन ने भी जनजागरण में योग दिया।'

स्वतंत्रतापूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना जगाने में भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं के यहाँ नाम दिए जा रहे हैं जिन्होंने स्वतंत्रतापूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं पत्रों को तीन भागों में बाँटा गया है –

प्रथम उत्थान –1826-1867 में प्रकाशित पत्रिकाएं-पत्र : उदंत मार्टंड 1826, बंगदेत 1829, प्रजामित्र 1834, बनारस अखबार 1845, मार्टंड 1846, मालवा अखबार 1849, सुधाकर 1850, बुद्धिप्रकाश 1852, समाचार सुधावर्षण 1854, प्रजाहितैषी 1855, तत्वबोधिनी पत्रिका 1865, ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका 1866, वृतांत विलास 1867।

द्वितीय उत्थान –1868-1885 में प्रकाशित पत्रिकाएं-पत्र इस प्रकार हैं : कविवचनसुधा 1868, जगत समाचार 1869, सुलभ समाचार 1871, बिहार बंधु 1871, चरणद्विचंद्रिका 1873, हरिश्चन्द्र मैगजीन 1873, बालाबोधिनी 1874, भारतबंधु 1874, काशी पत्रिका 1875, हिंदी प्रदीप 1877, कायस्थ समाचार 1878, आर्यमित्र 1878, उचित वक्ता 1878, भारत सुदशा प्रवर्तक 1879, सारसुधानिधि 1879, क्षत्रिय पत्रिका 1880, आनंदकार्दबिनी 1881, भारतेन्दु 1883, देवनागरी प्रचारक 1882, ब्राह्मण 1883, काशी समाचार 1883, इंदु 1883, कान्यकुब्ज प्रकाश 1884, हिंदोस्थान 1885, भारतेन्दु 1885।

तृतीय उत्थान –1886-1900 में प्रकाशित कुछ मुख्य पत्रिकाएं-पत्र इस प्रकार हैं: आर्यावर्त 1887, रहस्य चंद्रिका 1888, हिंदी बंगवासी 1890, नागरी नीरद 1893, साहित्य सुधानिधि 1894, श्री वेंकटेश्वर समाचार 1895, विद्याविनोद 1895, नागरीप्रचारिणी पत्रिका 1896, समस्यापूर्ति 1897, रसिक पत्रिका 1897, उपन्यास 1898, पंडित पत्रिका 1898, सरस्वती 1900। इनके माध्यम से राष्ट्रीय जीवन चेतना प्रखर रूप में सामने आयी।

द्विवेदी युग जागरण सुधारकाल के नाम से जाना जाता है। इस युग की पत्रिकाएं पत्र हैं- हितवाणी 1904, नृसिंह 1907, अभ्युदय 1907, कर्मयोगी 1909, मर्यादा 1909, प्रताप 1913, प्रभा 1913, कलकत्ता समाचार 1914, विश्वामित्र 1918, सरस्वती 1900, सुदर्शन 1900, समालोचक 1902, देवनागर 1907, इंदु 1909, मनोरंजन 1912, प्रभा 1913, पाटलिपुत्र 1914। आलोच्य युग की कुछ साहित्यिक पत्रिकाओं में राजनीतिक प्रश्नों पर मत व्यक्त किए जाते थे। सरस्वती और देवनागर ऐसी पत्रिकाएं थीं जो सभी विषयों पर लेख प्रकाशित करती थीं। द्वितीय महायुद्ध के बाद भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का प्रभाव बढ़ा। इसका प्रभाव हिंदी पत्रकारिता पर भी पड़ा। पत्रिकाएं भी अहिंसक आंदोलन का समर्थन करने लगीं।

आलोच्य युग की साहित्य समृद्धि एवं भाषा परिष्कार में पत्र पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान है। भारतेन्दु युग में तो पत्रकारिता और साहित्य दोनों पायः एक ही स्तर पर विकसित हो रहे थे। आलोच्य युग में इस स्थिति में कुछ अंतर आया। कुछ गंभीर साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। गद्य की विविध शैलियों एवं विधाओं के विकास में आलोच्य युग की पत्रिकाओं का स्थायी योगदान है। इस श्रेणी की पत्रिकाओं में सरस्वती अन्यतम थी। सरस्वती ने भाषा और साहित्य दोनों क्षेत्रों में नये युग का निर्माण किया। वह सचमुच आलोच्य युग की साहित्यिक उच्चता का निकष बन गयी थी।

छायावाद युग –1918-1938 तक का समय था। छायावाद का युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। छायावाद युग के अधिकांश कवि स्वतंत्रता के लिए जनजीवन के मन में राष्ट्रीय जीवन चेतना जगाने वाले लोक पुरुषों के जैसे गांधीवादी सिद्धान्तों से प्रभावित हुए। इस युग की पत्रिकाएं पत्र हैं- 'सरस्वती 1900, मर्यादा 1923, चांद 1920, प्रभा, माधुरी 1922, सुधा, कल्याण 1925, विशाल भारत 1928, हंस 1930, समन्वय 1922, सरोज 1928, साहित्य संदेश 1937, मतवाला 1923, जागरण 1932, हिंदी नवजीवन 1921, श्रीकृष्ण संदेश 1925, देश 1920, कर्मवीर, सेनापति 1926, हिंदू पंच 1926, भारतमित्र 1919,

दैनिक विश्वामित्र 1916, आज 1920, कलकत्ता समाचार, स्वतंत्र 1920।

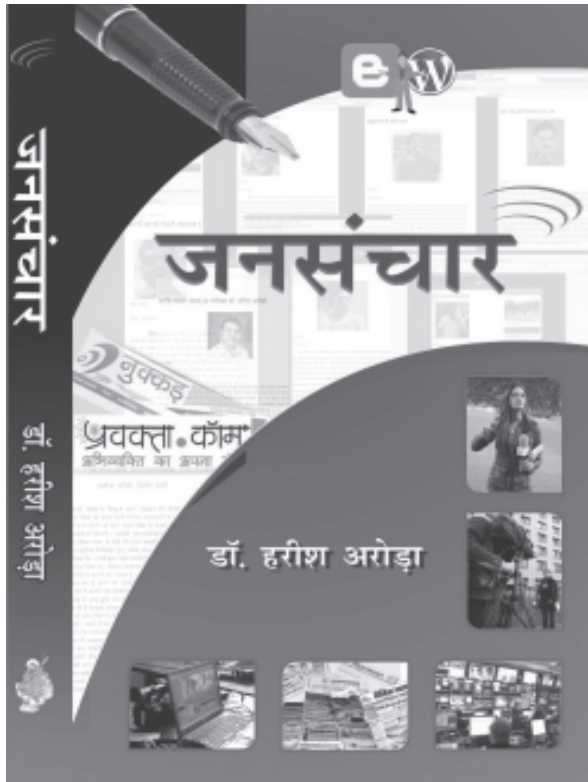
आज ने स्वाधीनता संग्राम के लिए जनमत तैयार करने के साथ साथ साहित्यिक गतिविधियों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस युग के अन्य पत्रों में 'स्वतंत्र गांधी' जी के असहयोग आंदोलन का समर्थन करने वाले पत्रों में यह अग्रणी था।

सार रूप में कह सकते हैं कि स्वतंत्रतापूर्व की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना उस समय प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं में भरपूर दिखाई देती है। जिसे कारण भारत को आजादी मिली और समस्याओं का काफी हद तक समाधान भी हुआ।

संदर्भ

1. जीवनी 'पंजाब केसरी' लाला लाजपत राय - रीडर्स डिलाइट, दरियागंज नई दिल्ली।
2. जीवनी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक - रीडर्स डिलाइट, दरियागंज नई दिल्ली।
3. अम्बेडकर गांधी अरैर दलित पत्रकारिता-शयोरज सिंह 'बेचैन' अनामिका पब्लिशर्स दिल्ली।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स नौएडा।

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तकें



माखनलाल चतुर्वेदी की पत्रकारिता में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. प्रीति सिंह

दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत में पत्रकारिता का आरम्भ एवं विकास स्वाधीनता आंदोलन के समान्तर विविध आयामी रूप से होता है। 1857 की घटना के बाद हिन्दुस्तानियों का झुकाव पत्रकारिता की ओर बढ़ने लगा तथा समाचार पत्रों की मांग बढ़ने लगी। अतः भारत में पत्रकारिता के मूल में राष्ट्रीय चेतना है। पत्र पत्रिकायें ही जन संचार का माध्यम होती हैं। स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत ओजस्वी भाषा से बालगंगाधर तिलक, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र ने जन मानस के बीच राष्ट्रभावना का संचार किया। इसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। “ भारतेन्दु द्वारा गुंजित स्वदेशी आन्दोलन को अन्य पत्रकार भी उठाने लगे तत्कालीन पत्र ‘ब्राह्मण’ के सम्पादक प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा है कि ‘हम और हमारे सहयोगी लिखते लिखते हार गये कि देशोन्नति करो, पर यहाँ वालों का सिद्धांत है कि अपना भला हो देश चाहे चूल्हे में जाय यद्यपि चूल्हे में जायेगा तो हम बचे न रहेंगे।’

तत्कालीन समय में पत्रकारिता द्वारा जागरूकता के साथ-साथ हिन्दी भाषा-निर्माण भी परिष्कृत हो रहा था। इस दृष्टि से गाँधी युग का महत्वपूर्ण योगदान है। गाँधी जी हिन्दी भाषा के हिमायती थे उनका मानना था कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो राष्ट्र को एक सूत्र में बाँध सकती है। जो कि तत्कालीन समय की सबसे बड़ी चुनौती थी। जिसे पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से सकारात्मकता प्रदान की गयी। यद्यपि पत्रकारिता का जन्म स्वभाविक रूप से विकास विरोधी शक्तियों के गर्भ से हुआ है। निःसन्देह गाँधी काल ने हिन्दी पत्रकारिता को एक यथार्थ मिश्रित आदर्श की जमीन प्रदान की।² इस युग के अनेक राष्ट्रभक्त पत्रकारों का उदय हुआ जिन्होंने राष्ट्र का मार्गदर्शन किया। माखन लाल चतुर्वेदी भी ऐसे ही राष्ट्र समर्पित पत्रकार के रूप में उभरे।

माखनलाल चतुर्वेदी गाँधी युग के सफल पत्रकार थे। वे राष्ट्र के प्रति समर्पित एवं तेजस्वी पत्रकार थे। उनकी राष्ट्रीय भावना से युक्त कविताएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी अपने रचना काल में थी। उनकी कविताएँ, उनका लेखन आज भी भारतीय जनमानस को ओजस्वी कर रहा है। माखन लाल चतुर्वेदी खण्डवा से प्रकाशित ‘प्रभा’ पत्रिका के सह सम्पादक बनाये गये थे। इन्होंने ‘प्रताप’ पत्रिका का भी सम्पादन किया था। परन्तु 1920 में चतुर्वेदी जी ने ‘कर्मवीर’ साप्ताहिक पत्रिका का आरम्भ किया। चतुर्वेदी जी ‘कर्मवीर’ के सम्पादक एवं मालिक दोनों थे। चतुर्वेदी जी एक प्रखर एवं तेजस्वी पत्रकार थे उनका यह रूप ‘कर्मवीर’ में लक्षित होता है। ‘कर्मवीर’ के माध्यम से चतुर्वेदी जी ने अंग्रेजों के अत्याचार का निर्भीकता से विरोध किया। ‘हण्टर कमेटी की नीयत’ शीर्षक से लिखी गयी उनकी टिप्पणी उनके साहस और निर्भीकता का उदाहरण द्रष्टव्य है। ‘जो इन चिहनों को देखेंगे, यही कहेंगे कि ये बम या गोलियाँ उत्तेजित भारतीयों ने चलायी पर बात ऐसी नहीं है। निहत्थे भारतीयों के पास न बम थे, न गोलियाँ ये अंग्रेज अमलदारों की करतूतें थीं। अच्छा, यदि अंग्रेज अमलदारों के गोलियाँ बरसाने और बम चलाने के स्थान लिखे गये तो उन शीर्षकों को सामने अंग्रेजों द्वारा लिख देना चाहिए और साथ ही अंग्रेजों द्वारा किये गये, भद्र पुरुषों को पेट के बल रेंगना, सिर जमीन पर टिकवाना, औरतों को कोड़े से मारना, लोगों को नंगे करके मारना, कोमल विद्यार्थियों को जेठ की दुपहरी में 17 मील दौड़ाना, नाक रगड़वाना और सिर्फ धाक जमाने के लिए विद्यार्थियों को कोड़े लगाना आदि पाप-काण्डों के स्थान भी दिखाये जाने चाहिए थे, पर वैसा नहीं किया।’³

माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के ऐसे पत्रकार थे जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। राष्ट्र के प्रति उनकी समर्पण की भावना अप्रतिम थी। वे निर्भीकता से अपने पथ पर डटे रहे। उनका सम्पूर्ण युवाओं के लिए प्रेरणादायक था वे आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। युवाओं और विशेषकर उनकी क्रान्तिकारी धारा के प्रति उनका दिली लगाव था। वे चाहते थे कि उनका मार्गदर्शन कर सही रास्ते पर लाया जाय बजाय उनमें दोष निकालने के वे चेतावनी देते हैं कि “हम गम्भीरता के नाम पर तरुणों के आत्माभिमान की उपेक्षा करते हैं और जिस समय उन्हें मार्गदर्शन की जरूरत होती है, उन्हीं दिनों हम उनका मजाक उड़ाते हैं।”⁴ वे भविष्यदृष्टा थे, उन्हें भान था कि इन्हीं युवाओं के कंधे पर देश को आगे बढ़ाया जा सकता है। इसी कारण एक राह का निर्माण कर रहे थे, जो देश को स्वतन्त्रता के बाद सही दिशा में ले चले। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद

राजनीतिक दलों के होड़ा-होड़ा से चतुर्वेदी जी दुःखी थे परन्तु सामाजिक सुधार के साथ जन-आन्दोलनों के समर्थन का उनका स्वर पूर्ववत् मुखर बना रहा। उन्होंने अपनी लेखनी से सत्ताधीशों को ललकारा और प्रजा के हित के लिए समर्पित होने के लिए प्रेरित किया।

माखन लाल चतुर्वेदी की पत्रकारिता में राष्ट्रीयता का सदैव प्रमुख स्थान रहा है। हमारे देश में जब पत्रकारिता का उदय हुआ उस समय स्वाधीनता का स्वर ही प्रबल रहा और आम जनता उन पर विश्वास करती थी भरतेन्दु हरिचन्द्र ने जिस स्वदेशी आन्दोलन की हवा चलाई उससे प्रभावित हो अन्य लेखकों ने आवाज उठाना शुरू कर दिया। और आवाज से आवाम में एक स्फूर्ति जाग्रत होती थी। परन्तु वर्तमान समय में जिस पत्रकारिता बनाम 'मीडिया' से हमारा सम्पर्क हुआ है वह बाजारवाद की और बढ़ रही है। आज के युग में मीडिया का जनमानस पर इतना प्रभाव बढ़ गया है कि सरकार बनाने और गिराने में उसकी यह भूमिका बन गयी है। यही कारण है कि सब कुछ 'पेड़' हो गया है। 'पत्रकारिता आदर्श और यथार्थ का मध्य बिन्दु है। अतः दोनों में संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता है।' कभी कभी जो सच दिखाया जाता है वह असली सच नहीं होता है और हमें उस सत्य के तह तक जाना है यह कार्य पत्रकारिता का है तथा निष्ठा और इमानदारी सबसे अहम है। चतुर्वेदी जी के लेखों में जो साहस और निर्भयता दृष्टिगोचर होती है उसकी आज बहुत आवश्यकता है।

स्वतंत्रता के पश्चात बँटवारे के कारण चतुर्वेदी जी का समाज के प्रति मोहभंग हुआ था पर फिर भी उन्होंने लिखा -
जीत हुई पर यह न दिखती जीत राज लेनेवालों की
इनकी साँस पर लिखी है प्रभुता देने वालों की।⁵

चतुर्वेदी जी की दृष्टि वैश्विक परिदृश्य पर भी समान रूप से रहती थी। वे एशियाई देशों की एकजुटता और उनकी स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। इससे सम्बन्धित तथा उनका समस्त लेख 'कर्मवीर' में छपते थे। 'कर्मवीर' के विषय में उन्होंने कहा कि 'कर्मवीर' का क्षेत्र आवश्यक रूप से व्यापक था। अन्तरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय प्रश्नों पर उसके सम्पादक का साधिकार लेखन पाठकों में जानकारी एवं उत्तेजना उत्पन्न करता था। टर्की प्रश्न का निपटारा, अफगान युद्ध, आयरलैण्ड का स्वराज्य कानून, रूस की क्रान्ति, अफ्रीका का रंगभंग और गुलामों की खरीद, न्यूजीलैण्ड समस्याओं पर कर्मवीर का लेख आज भी कम प्रामाणिक नहीं है ...उनके कुछ प्रश्न चाहे पुराने हो गये हों। पर अभी भी जीवित है और जीवित रहना चाहते है।⁶

पण्डित जी एक राष्ट्रभक्त थे वे चाहे एक पत्रकार हो, कवि हो लेखक हो, उनकी लेखनी में राष्ट्र के प्रति चिन्ता, समर्पण सदैव रहा। वे भारत को विश्व-पटल पर रखकर देखते थे। वे अन्य देशों के साथ भारत के मैत्री सम्बन्धों पर जोर देते रहे। यद्यपि वे स्वतंत्रता से पूर्व ही स्वयं को राजनीति से दूर कर चुके थे परन्तु उनके हृदय में राष्ट्र के प्रति जो प्रेम था वह राजनीतिक ढीलेपन को देखकर व्यग्र हो उठता था जो उनकी पत्रिकाओं में लेखों के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता रहा। उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से सत्ताधीशों को चेताया कि वे अपनी राह सही कर लें चाहे स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश हुकुमत हो या फिर भारत सरकार। चतुर्वेदी जी निर्भीक पत्रकार थे। उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत की फूट डालो और राज करो की नीति का खुलासा कुछ इस तरह किया है। 'जब जब देश में राष्ट्रीयता की तीव्र लहर दौड़ने लगती है, तब तब सरकार उसे कुचलने के लिए कोई न कोई भेदनीतिक षडयन्त्र रचने लगती है। भारत में हिन्दू मुसलमान दो ऐसी कौमे हैं जिनके सिर फुटव्वल से ब्रिटिश राजनीतिज्ञ समझते, भारत में ब्रिटिश शासन का फौलादी शिकंजा निर्विघ्नता से जमा रह सकता है।' इस तरह का साहस एक साहसी राष्ट्र भक्त ही कर सकता है। यद्यपि अंग्रेज चले गये परन्तु उनकी फूट डालो राज करो की नीति को भारतीय नेताओं ने जीवित रखा है। वे सत्ता के लालच में जातिवाद का विष फैला रहे हैं। अपनी राजनीतिक लाभ के लिए कुछ भी अनैतिक करने के लिए तत्पर हैं और पत्रकारिता आग में घी डालने का कार्य कर रही है। जिस पत्रकारिता के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम का स्वर मुखरित हुआ था, लोगों में राष्ट्र प्रेम की भावना को जगाया था आज के युग की पत्रकारिता में उसका अभाव है, वर्तमान समय में स्वतंत्रता संग्राम के देशभक्त पत्रकारों, लेखकों, कवियों के नाम से बहुत विश्वविद्यालय, संस्थाएँ खुल गये हैं परन्तु उनके पदचिह्नों पर चलने वाले विरले ही हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी एक ऐसे पत्रकार थे जिन्होंने स्वतंत्रता के बाद 'भारतीय राजनीति में मूल्यों के क्षरण, आचरण में शुचिता और सादगी का विलोप सत्ता का सामंती सोच तथा लकड़क और इन सबसे बढ़कर जन तन्त्र में आम आदमी की उपेक्षा ने उनके विद्रोही मन को गहरे से प्रभावित किया और अपनी तेजस्वी लेखनी से वे इन बुराईयों पर चोट करते रहे।⁸ उन्होंने स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों के विरोध में जो बातें कही वे आज भी प्रासंगिक हैं। किसानों के विषय में कर्मवीर के 25 सितम्बर 1925 के अंक में वे लिखते हैं उसे नहीं मालूम कि धनिक तब तक जिंदा है राज्य तब तक कायम है ये सारी कौंसिले तब तक कायम है, तब तक वह अनाज उपजाता है और मालगुजारी देता है। जिस दिन वह इंकार कर दे उस दिन समस्त सरकार में महाप्रलय मच जायेगा। उसे नहीं मालूम कि संसार का ज्ञान संसार के अधिकार और संसार की ताकत उससे किसने छीन कर रखी है। वह नहीं जानता कि जिस दिन वह अज्ञान इंकार कर उठेगा उस दिन ज्ञान के ठेकेदार स्कूल फिसल पड़ेंगे कॉलेज नष्ट हो जायेंगे और जिस दिन उसका खून चूसने के लिए न होगा, उस दिन देश में यह उजाला, यह चहल पहल, यह कोलाहल नहीं होगा।⁹ उनका यह कथन शत प्रतिशत सत्य है। आज भी स्वतंत्रता के 70 वर्षों बाद भी किसानों का यही हाल

है उन्हें सुनने वाला कोई नहीं परन्तु उनके नाम पर सभी राजनीतिक दल अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और उन्हें दिग्भ्रमित कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में पत्रकार एवं पत्रकारिता की अहम भूमिका होती है कि वे अपने वक्तव्यों लेखों के माध्यम में जन मानस को सत्यता से परिचित कराये।

गणेश शंकर विद्यार्थी, बालगंगाधर तिलक सरीखे देशभक्तों से चतुर्वेदी जी बहुत प्रभावित थे। उन्होंने उनके पदचिह्नों पर ही अपने कदम बढ़ाये और राष्ट्रप्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचे। 'कर्मवीर के अपने पूरे सम्पादन काल में चतुर्वेदी जी ने पत्रकारिता का जो मानदण्ड स्थापित किया वह आज भी स्पृहणीय है।'¹⁰ चतुर्वेदी जी के बहुआयामी व्यक्तित्व को उनकी राष्ट्रप्रेम से युक्त पत्रकारिता को 'प्रभा' 'कर्मवीर' और प्रताप के सम्पादन के माध्यम से भलीभाँति समझा जा सकता है 'उन्होंने 11 अप्रैल 1925 को जब खंडवा से 'कर्मवीर' का पुनः प्रकाशन किया तब उनका आवाहन था, आइए गरीब और अमीर किसान और मजदूर उच्च और नीच, जित और पराजित के भेदों को टुकराइए, प्रदेश में राष्ट्रीय ज्वाला जगाइए और देश तथा संसार के सामने अपनी शक्तियों को ऐसा प्रमाणित कीजिए, जिसका आने वाली संताने स्वतंत्र भारत के रूप में गर्व करें।'¹¹ उनका राष्ट्रप्रेम उनके समस्त लेखन में दृष्टिगत है। उनका राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना जनमानस को ओजस्वाता से सराबोर करने वाली उनकी पुष्प की अभिलाषा कविता से कोई बिरला ही भारतीय होगा जो परिचित नहीं होगा।

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊँ
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पर जावें वीट अनेक।¹¹

सन्दर्भ

1. हिन्दी पत्रकारिता : आधुनिक सन्दर्भ, डा. देवप्रकाश मित्र पृ. सं.23 स्वराज प्रकाशन
2. हिन्दी पत्रकारिता : आधुनिक सन्दर्भ, डा. देवप्रकाश मित्र पृ. सं.30 स्वराज प्रकाशन
3. माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, श्री कान्त जोशी खण्ड 9 पृ. 164, वाणी प्रकाशन
4. माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, श्री कान्त जोशी खण्ड 10 पृ. 132, वाणी प्रकाशन
5. 'कर्मवीर' 8 मार्च 1941
6. माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, श्री कान्त जोशी खण्ड 9 प्राक्कथन
7. कर्मवीर 3 अक्टूबर 1929
8. पत्रकारिता के युग निर्माता माखन लाल चतुर्वेदी डा. शिव कुमार अवस्थी पृ. सं. 79 प्रभात प्रकाशन
9. हिन्दी का गद्य साहित्य, डा. रामचन्द्र तिवारी पृ. सं 616 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
10. माखनलाल चतुर्वेदी भारतीय आत्मा, विजय दत्त श्रीधर बेब दुनिया
11. पत्रकारिता के युग निर्माता माखन लाल चतुर्वेदी, डा. शिवकुमार अवस्थी, पृ.सं. 79 प्रभात प्रकाशन

स्वतंत्रतापूर्व पत्रकारिता में राष्ट्रवाद के विविध स्वर

डॉ. नवाब सिंह

रामानुजन कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

इक्कीसवीं सदी में, तेजी से बढ़ते वैश्वीकरण अर्थात् भूमंडलीकरण के दौर में 'राष्ट्रवाद' और उसकी प्रासंगिकता एक बहुत बड़ा सवाल बन गया है। वे कौन से कारण और लक्ष्य हैं जिसकी वजह से आज 'राष्ट्रवाद' की चतुर्दिक चर्चा, उसकी जरूरत और अनिवार्यता को इतना महत्वपूर्ण बनाया जा रहा है ? भारत में आधुनिकता के चलते अनेक अवधारणाओं का उदय और विकास हुआ है, जैसे - पूंजीवाद, उपनिवेशवाद, जनतान्त्रिककरण, वैज्ञानिक तर्कबुद्धि, बहुसंस्कृतिककरण, बहुसंख्यक समाज, जातीयता और राष्ट्रवाद आदि।

'राष्ट्रवाद' एक आधुनिक अवधारणा और संकल्पना है, जिसकी उत्पत्ति मध्ययुगीनता की समाप्ति के बाद हुई है और यह एक राजनीतिक पद भी है, जिसके मूल में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना है। इसने उत्कट निष्ठाओं के साथ-साथ गहरे विद्वेषों को भी जन्म दिया है। इसने व्यापक जनता को अगर जोड़ा है तो उन्हें परस्पर विभाजित भी किया है। इसने एक तरफ जहां अत्याचारी शासन से मुक्ति दिलाने में मदद की है तो वहीं दूसरी ओर यह परस्पर विरोध, कटुता और युद्धों का कारण भी बना है। अतः एक ओर जहां यह साम्राज्यों और राष्ट्रों से मुक्ति का जयघोष बनता रहा है वहीं दूसरी ओर इनके विनाश का प्रमुख कारण भी रहा है।

वर्तमान समय में दुनिया राष्ट्रवादी चेतना से परिपूर्ण हो परस्पर संघर्षशील हो गयी है। इस चेतना के कारण अनेक राष्ट्रों के बीच सीमा को लेकर भीषण युद्ध हो रहे हैं। जिसके अंत की कोई संभावना भविष्य में खत्म होती नहीं दिखायी दे रही है। इसके परिणामस्वरूप आज विश्व का एक बड़ा भाग विभिन्न राष्ट्र-राज्य में बंटा हुआ है। एक तरफ जहां राष्ट्र की सीमा को लेकर अनेक राष्ट्रों के बीच गहरे विवाद और हिंसा की भयंकर घटनाएं हो रही हैं वहीं दूसरी तरफ एक राष्ट्र के भीतर भी राष्ट्रवादी चेतना ने अलगाववादी संघर्षों को भी आरंभ कर दिया है।

राष्ट्र से क्या अभिप्राय है ? लोग राष्ट्र का निर्माण क्यों करते हैं ? राष्ट्र अपने लोगों के भीतर क्या करने की तीव्र इच्छा या भावना जगाती है ? आखिर लोग अपने राष्ट्र के खातिर त्याग करने और प्राण तक न्यौछावर करने के लिए क्यों तैयार रहते हैं ? ऐसा माना जाता है कि राष्ट्र का निर्माण ऐसे मानव समूहों द्वारा किया जाता है जो कुल, भाषा, धर्म या जातीयता जैसी कुछ निश्चित पहचान के सहभागी होते हैं। राष्ट्र को एक 'काल्पनिक' समुदाय माना जा सकता है, जो अपने सदस्यों के सामूहिक विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे भावनाओं के स्तर पर एक सूत्र में बंधा रहता है। अतः राष्ट्र साझे विश्वास (विश्वास की सामूहिकता) के द्वारा निर्मित होता है।

एक राष्ट्र की पहचान में अनेक तत्वों की सामूहिक भूमिका रहती है। समान इतिहासबोध का नैरंतर्य और विरासत पहली पहचान है। एक राष्ट्र के सदस्यों के भीतर ऐतिहासिक पहचान की भावना अथवा समान इतिहासबोध और बीते अतीत के साथ साथ आगत भविष्य की सामूहिक चेतना को भी समेटे हुए होता है। अतः राष्ट्र के सदस्य अपने देश की स्थायी पहचान को निर्मित करने के लिए साझी स्मृतियों, किंवदंतियों, मिथकों और ऐतिहासिक अभिलेखों की रचना के जरिए अपने लिए एक सामूहिक इतिहासबोध को निर्मित करते हैं। यह सामूहिक इतिहासबोध ही उनका सभ्यता और संस्कृति की निरंतरता और एकता की बुनियाद बनाता है। जिसे वे अपने देश की प्राचीन सभ्यता और सांस्कृतिक विरासत और उपलब्धियों को गौरव का सूचक मानते हैं।

भौगोलिक क्षेत्र राष्ट्र की पहचान का दूसरा तत्व है। किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में लम्बे समय से साथ साथ रहने और उससे जुड़ी साझे अतीत की स्मृतियां ही लोगों के भीतर एक सामूहिक पहचान का बोध देती है जो उनमें एक राष्ट्रीय चेतना और एकता की भावना को पैदा करती है। यही चेतना और भावना उनके अंदर एक राष्ट्र के रूप में आकार लेने लगती है। इसी भावना से लोग उस भौगोलिक क्षेत्र या भूमि पर अपना अधिकार या दावा जमाते हैं। और उस भूमि को इतना महत्व देते हैं कि उस राष्ट्रभूमि को जन्मभूमि, मातृभूमि या पितृभूमि आदि जैसी पवित्र भावना का दर्जा देते हैं।

साझे राजनीतिक आदर्श की भावना राष्ट्र की पहचान का एक अन्य तत्व है। जब एक राष्ट्र के लोग एक भौगोलिक क्षेत्र और सामूहिक या साझे ऐतिहासिक बोध और पहचान से एकात्म की भावना से जुड़े होते हैं तब वे लोग अपने एकात्म के नैरंतर्य

उज्ज्वल भविष्य के बारे में साझे दृष्टिकोण और अपने स्वतंत्र राजनीतिक अस्तित्व बनाने की सामूहिक आकांक्षा और स्वप्न को निर्मित कर अपनी एक विशिष्ट पहचान दुनिया में स्थापित करते हैं। इस विशिष्ट पहचान में उनके साझा राजनीतिक मूल्य और सिद्धांत ही मूल रूप में होते हैं जिसे वे स्वीकार करते हैं यथा – लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और उदारवाद। इन साझे मूल्यों और आदर्शों के द्वारा वे लोग साथ-साथ रहते हैं और एकात्म की भावना को जीवंत और मजबूत बनाये रखते हैं।

एक भाषा या जातीय वंश परंपरा की साझी सांस्कृतिक पहचान भी राष्ट्र निर्मिति का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व है। एक भाषा या जातीय वंश परंपरा की भावना लोगों में सांस्कृतिक एकात्म की चेतना लाती है जिससे उनकी अपनी एक विशिष्ट पहचान बनी रहती है और उनको आपस में जोड़े रखती है। एक भाषा होने के कारण वे आपसी संवाद के माध्यम से सहजता से जुड़े रहते हैं जिससे वे समान धर्म के होने के कारण उनके बहुत सारे विश्वास और सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाज साझे हो जाते हैं। अपने पर्व, त्यौहार और उत्सव में वे साझे रूप से शामिल रहते हैं।

इस प्रकार 'राष्ट्रवाद' एक ऐसी साझी भावना होती है जो प्रायः उन लोगों में पाई जाती है जो एक ही भौगोलिक क्षेत्र के निवासी हों। यह भावना ही उन्हें एकता और भाईचारे के सूत्र में बांधती है। यही साझी भावना एक जाति या वंश से संबन्धित होने के कारण लोगों में एक भाषा, इतिहास, धर्म तथा राजनीतिक सिद्धांतों में विश्वास के लिए प्रेरित करती है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिका के अनुसार, "यह (राष्ट्रवाद) मस्तिष्क की एक प्रकार की दशा है जो ऐसे लोगों की विशेषताओं की द्योतक है जिनकी एक जैसी संस्कृति हो, जो किसी प्रदेश में मिल-जुलकर रहते हों और अपने अलग अस्तित्व तथा भाग्य में विश्वास रखते हों।" अतः राष्ट्रवाद मस्तिष्क की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति की सर्वश्रेष्ठ निष्ठा उसके राष्ट्र-राज्य के प्रति होती है।

प्रसिद्ध पश्चिमी इतिहासकार ई. एच. कार ने 'राष्ट्र' को परिभाषित करते हुए कहा है, "राष्ट्र शब्द से जैसे मानव समूह का बोध होता है उसके लक्षण हैं :- 1. अतीत और वर्तमान में वास्तविकता, अथवा भविष्य के लिए आकांक्षा के रूप में सर्वनिष्ठ सरकार की धारणा, 2. अपना अलग विशिष्ट आकार और सदस्यों का पारस्परिक संपर्कसामीप्य, 3. न्यूनाधिक निर्धारित भूभाग, 4. ऐसी चरित्रगत विशेषताएं (भाषा इनमें सर्वाधिक बहुल है) जो किसी राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों और अराष्ट्रिक समुदायों से अलग करती है, 5. सदस्यों के सम्मिलित स्वार्थ, 6. सदस्यों के मन में राष्ट्र की जो छवि है उससे संबंधित समवेत भाव या इच्छाशक्ति।" अतः 'राष्ट्र' जन समुदायों के दीर्घकालीन ऐतिहासिक एकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। किसी भी देश में 'राष्ट्र' की भावना का उदय उस देश की सामाजिक स्थितियाँ, सांस्कृतिक इतिहास, राजनीतिक और आर्थिक संरचना के ऐतिहासिक अवशेष और उस देश में राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करने वाले बौद्धिक वर्गों की विशेष विचारधारा और सिद्धांतों प्रभुत्व द्वारा निश्चित होता है। इसीलिए हर देश की राष्ट्रीयता का अपना एक अलग और विशेष स्वरूप है। भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा पश्चिमी राष्ट्रवाद अवधारणा से एकदम भिन्न है। पश्चिमी राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद का प्रतीक है और भारतीय राष्ट्रवाद विविधता में एकता की साझी भावनाओं वाला लोकतांत्रिक प्रगतिशील मूल्यों और आदर्शों वाला राष्ट्रवाद है। इन्हीं उच्च आदर्शों, मूल्यों और विचारों की अंतिम परिणति के रूप में भारत में 'संविधान' निर्माण हुआ है।

'राष्ट्रवाद' की जरूरत भारत को क्यों थी ? इसका जवाब यह है कि उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के लिए एक ऐसे विचारधारात्मक आधार की जरूरत थी जिसके द्वारा भारत की विविधता में व्यापक एकता स्थापित की जा सके। उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष से पहले ऐसी व्यापक एकता की जरूरत को भारतवासियों ने कभी इतनी गंभीरता से महसूस नहीं किया था। आज के भारत में 'राष्ट्रवाद' की वैचारिकी इसलिए भी जरूरी है क्योंकि बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद के दौर में उपनिवेशवाद का विरोध 'राष्ट्रवाद' जैसे सार्वभौमिक विचार के आधार पर ही संभव है।

'राष्ट्रवाद' और पत्रकारिता आधुनिक काल की देन हैं। आधुनिकता का गद्यभाषा से और गद्यभाषा का पत्रकारिता से और पत्रकारिता का राष्ट्रवाद से बड़ा गहरा संबंध है। 'आधुनिकता', 'पत्रकारिता' और 'राष्ट्रवाद' – तीनों का एकसाथ उदय उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश शासन की क्रिया-प्रतिक्रिया में होता है। राष्ट्रवादी चेतना के विकास और समृद्धि में भारतीय पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में 'राष्ट्रवाद' के सामने अनेक जटिलताएं और चुनौतियाँ रही हैं। भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना पूरी तरह से कठोर सामंतीय थी। इसके अलावा भारत बहुभाषी, बहुजाति, बहुधर्मी, बहुसंस्कृति के साथ-साथ परस्पर विभाजित बहुआबादी वाला एक बहुत बड़ा देश है। भारत की आबादी का दो तिहाई हिस्सा हिन्दू है। जो कि विभिन्न जातियों-उपजातियों में कट्टरता से विभाजित है। धर्म के आधार पर यह हिन्दू अनेकानेक उपासना पद्धतियों में बंटा हुआ है। इस वजह से हिन्दू विभिन्न सम्प्रदायों में भी बंट गया है। अतः परस्पर खंडित और विभाजित हिन्दू समाज की इस सामंती विरासत ने भारत में राष्ट्रवाद के उदय के लिए बड़ी चुनौतियाँ खड़ी कर रखी थी। भारतीय पत्रकारिता ने राष्ट्रवाद के समक्ष खड़ी इन सभी गंभीर चुनौतियों और समस्याओं का सामना करते हुए राष्ट्र के प्रति अपने अनुराग और समर्पण को प्रकट करते हुए लोकहित और राष्ट्रहित के आदर्श लक्ष्य को सर्वोपरि रखा।

भारतीय पत्रकारिता में 'राष्ट्रवाद' का कोई एक रंग, एक रूप, एक विचार अथवा एक स्वर देखने को नहीं मिलता बल्कि उसके विविध स्वर, विविध वैचारिकी और विविध धाराएँ एक साथ देखने को मिलती हैं। कुछ संगठन जहाँ 'राष्ट्रवाद' को संकीर्णता और संकुचित दृष्टि से देख रहे थे वहीं कुछ संगठन उसको बहुआयामी, समावेशी और विविधता में एकता के विभिन्न रूपों में देख रहे थे। कुछ संगठन राष्ट्रवाद को पुनरुत्थान और पुनर्जागरण के स्वर को तेज करते हुए अपने से भिन्न धर्मों के

प्रति द्वेषभाव और हिंसात्मक रवैया अपना रहे थे। कुछ संगठन सांप्रदायिक सद्भाव को बढ़ाते हुए साम्राज्यवादी - औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सामूहिक संघर्ष की अहिंसात्मक चेतना का विस्तार कर रहे थे। कुछ संगठन लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवतावादी दृष्टिकोण के आधार पर अंग्रेजी शासकों के प्रति हिंसात्मक क्रांतिकारी आंदोलन चला रहे थे। कुछ संगठन राष्ट्रवाद के नाम पर पुरातन सामंती शोषणकारी प्रथाओं और रूढ़ियों के खिलाफ समाज-सुधार के कार्यों की आवाज बुलंद कर रहे थे। कुछ संगठन पश्चिमी ज्ञान के आलोक में भारतीय जीवन एवं संस्कृति में नवीन चेतना से बदलाव लाने के प्रयास कर रहे थे। कुछ संगठन समाज के बहिष्कृत-उपेक्षित और शोषितों को मुख्यधारा में लाने के लिए सामाजिक परिवर्तन और अधिकारों की आवाज को तेज कर रहे थे। इस प्रकार यह स्वाधीनता आंदोलन केवल राजनीतिक मुक्ति भर का आंदोलन नहीं था बल्कि यह पारंपरिक सामंतवादी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मुक्ति का बहुआयामी मुक्ति आंदोलन भी था। राष्ट्रवादी आंदोलन को अगर गंभीरतापूर्वक देखें तो यह तीन प्रकार के अंतर्विरोधों अथवा परस्पर-प्रतिरोधों से टकरा रहा था : एक, पूर्व बनाम पश्चिम, दो, परंपरा बनाम आधुनिकता और तीसरा विगत बनाम वर्तमान। स्वाधीनता आंदोलन के इस राष्ट्रीय संघर्ष में लगे हुए सभी क्रांतिकारी जननायक आधुनिकदृष्टि से संपन्न पत्रकार भी रहे हैं। इन आंदोलनकारी जननायकों के क्रांतिकारी प्रगतिशील विचार पत्रकारिता के माध्यम से जनमानस को आंदोलित कर रहे थे। अतः हर पत्रकार स्वतंत्रता सेनानी था। उनके जीवनकर्म और विचारलेखनी में विलक्षण एकता थी।

राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय आंदोलन के सामने अनेक सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियाँ रूकावटें पैदा कर रही थीं। जिन्हें दूर कर भारतवासियों को आधुनिक व उदार बनाने के लिए समाज-सुधार के आंदोलन शुरू किये गए। इन सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों को ए.आर.देसाई ने राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक माना है : “अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज और धर्म सुधार संबंधी जो आंदोलन शुरू हुए वे भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और उनके बीच पश्चिम के उदारवादी विचारों के प्रसार के परिणाम थे। इन आंदोलनों ने धीरे-धीरे सामाजिक और धार्मिक नवनिर्माण का कार्यक्रम अपनाया और सारा देश इन आंदोलनों की चपेट में आया। सामाजिक क्षेत्र में जाति सुधार या जाति प्रथा की समाप्ति, औरतों के लिए समानाधिकार, बालविवाह के उन्मूलन और विधवा विवाह के समर्थन, सामाजिक और कानूनी असमानता के विरोध आदि प्रश्नों पर आंदोलन हुए। धार्मिक क्षेत्र में जो आंदोलन हुए उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास और मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, वंशानुगत पुरोहिती आदि का विरोध किया। इन आंदोलनों ने कमोबेश मात्र में व्यक्ति स्वातंत्र्य, सामाजिक एकता और राष्ट्रवाद के सिद्धांतों पर जोर दिया और उनके लिए संघर्ष किए।”¹²

भारत में राष्ट्रीय प्रेस के संस्थापक राजा राममोहन राय ने ‘ब्रह्मसमाज’ की स्थापना कर धर्मसुधार और समाजसुधार का बिगुल बजा दिया। उन्होंने 1821 में बांगला में ‘संवाद कौमुदी’ और 1822 में ‘मिरातुल अखबार’ निकालकर प्रगतिशील, जनतांत्रिक और राष्ट्रवादी विचारों का नवजागरण किया। 1828 में उन्होंने लिखा : “मुझे यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि हिंदू धर्म की जिस वर्तमान प्रणाली पर हम लोग चल रहे हैं, वह हमारे राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने वाली नहीं है। जातपात के भेदभाव ने, जिन्होंने जनता को कितने ही छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट रखा है, हमें राजनीतिक भावनाओं से शून्य कर दिया है। अनगिनत धार्मिक कर्मकांडों और पवित्रता संबंधी नियमों ने हमें किसी भी कठिन कार्य को उठाने में पूर्णतः अयोग्य बना दिया है। मेरा विचार है कि इस हिंदू धर्म में कुछ-न-कुछ परिवर्तन होना ही चाहिए, कम से कम इसलिए कि हमको राजनीतिक तौर से लाभ हो और जनता को सामाजिक सुख मिल सके।”¹³

1826 में प्रकाशित ‘उदंत मार्तण्ड’ (पं. जुगुल किशोर) ने हिंदीप्रेमियों और देशप्रेमी समाज में एक नयी क्रांतिकारी राष्ट्रवादी चेतना पैदा कर दी थी। हिंदी के इस अखबार ने स्वाधीनता संघर्ष में अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हुए जनता में मानवसेवा और देशसेवा जैसे आदर्श भावों को जाग्रत किया। इस अखबार ने भारतवासियों को देश की वास्तविक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों से परिचित कराया। भारत की दुर्दशा और जनता की यातनाओं, जुल्मों, अत्याचारों और शोषणों का मुकाबला करने तथा साम्राज्यवादी ताकतों को समूल नाश करने के लिए ‘उदंत मार्तण्ड’ ने देश की जनता में जूनूनी जुझारूपन और राष्ट्रप्रेम की भावनाओं को भी खूब जगाया और बढ़ाया। अतः जातीय अस्मिता के विकास और राष्ट्रवादी भावनाओं और चेतनाओं के विकास के लिए हिंदी पत्रकारिता ने अपने आरंभिक दौर से ही गंभीर और महती भूमिकाओं को निभाया है।

भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक ज्वलंत मुद्दों को लेकर राष्ट्रीय जनजागरण करने के लिए भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने 15 अगस्त 1868 को ‘कविवचनसुधा’ नामक पत्रिका शुरू की। भारतेंदु के लिए राष्ट्र की उन्नति सर्वोपरि है। किंतु इसका सच्चा मार्ग स्त्री सशक्तीकरण से ही होकर जाता है। 3 नवंबर 1873 ई के एक अंक में ‘स्त्री शिक्षा’ पर जोर देते हुए भारतेंदु लिखते हैं : “यह बात तो सिद्ध है कि पश्चिमेतरदेश की कदापि उन्नति न होगी जब तक यहां की स्त्रियों को भी शिक्षा न होगी, क्योंकि यदि पुरुष विद्वान और पंडित होंगे और उनकी स्त्रियां मूर्खा होंगी तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा।”¹⁴ इस कथन से पता चलता है कि भारतेंदु देश की उन्नति के लिए पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों का शिक्षित होना अनिवार्य मानते थे। ‘कविवचनसुधा’ में भारत की दुर्दशा, अंग्रेजों की लूटनीति, टैक्सनीति और प्रशासनिक संवेदनहीनता के साथ साथ अंग्रेजीराज के दुष्परिणामों के प्रति जनता को खूब सजग और सचेत किया है। अंग्रेजीराज में भारत सदैव भयंकर अकालग्रस्त रहा। संपूर्ण भारत में विसूचिका जैसा रोग फैल गया था। भारतेंदु ने रोग और दुष्काल का कारण

अंग्रेजीराज को बताते हुए 18 मई 1874 ई को 'कविवचनसुधा' में लिखा है : "अब तो प्रतिवर्ष में कहीं न कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है मुख्य करके अंग्रेजी राज में इसका घर है और बहुधा ऐसा सुनने में आया है कि विसूचिका का रोग जो अब संपूर्ण भारत खंड में छा रहा है अंग्रेजों के राज के आरंभ से इसका प्रारंभ हुआ है।..... अंग्रेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बन कर जाते हैं।..... इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।" 5 भारतेंदु हरिश्चंद्र एक जागरूक आधुनिक चेतनासंपन्न और साहसी पत्रकार थे। 30 नवंबर 1872 ई. की 'कविवचनसुधा' में एक अंग्रेज स्तोत्र लिखकर अंग्रेजी राज के लालची और लुटेरे रूप को उजागर करते हैं। इस स्तोत्र पर यही टिप्पणी छपी है : 'जो लोग हाकिमों की खुशामद करते हैं उन्हें यह स्तोत्र कंठ कर लेना चाहिए।' : "चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं, अमले तुम्हारे नख हैं, अंधेर तुम्हारा पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा हृदय है, अतएव हे अंग्रेज ! तुमको प्रणाम करते हैं। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खेताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव, हे विराट रूप अंग्रेज ? हम तुमको प्रणाम करते हैं।" 6

राष्ट्रप्रेमी, साहसी पत्रकार भारतेंदु अंग्रेजों की नीयत और नीति को अच्छे से जानते थे। वे देख रहे थे कि अंग्रेज हमारा धन अपने देश ले जा रहे हैं। जिससे भारत की द्वा दिनप्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। इसके समाधान के लिए उन्होंने भारत में बनी वस्तुओं को खरीदने के लिए जनता को प्रेरित करते हुए 'स्वदेशी आंदोलन' की शुरुआत की। 23 मार्च 1874 की 'कविवचनसुधा' में भारत में बने कपड़े पहनने की षपथ दिलाते हुए लिखा है : "हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा कि पहले से मोल ले चुके हैं और आज के दिन तक हमारे पास है उसको तो उसके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे। हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के वृद्धि में आवश्यक उद्योग करेंगे।" 7 भारतेंदु हरिश्चंद्र के इस प्रतिज्ञा-पत्र की प्रेरणादृष्टि से ही आगे आने वाले समय में गांधीजी ने अखिल भारतीय स्तर पर स्वदेशी आंदोलन चलाया था। 'कविवचनसुधा' की राष्ट्रीय जनजागरण, राष्ट्रप्रेम और औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति में एक सषक्त भूमिका का निर्वाह किया है। इसके महत्त्व को उजागर करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं : "कविवचनसुधा' में साहित्यिक, ऐतिहासिक, भाषा संबंधी, यात्रा संबंधी, हास्य और व्यंग्य से सरस-सभी तरह के लेख छपे। 'कविवचनसुधा' की गइलें भारतेंदु युग का दर्पण हैं, वे एक सजीव युग का इतिहास हैं। इसी पत्रिका में भारतेंदु ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार के लिए अपना प्रतिज्ञा-पत्र छपा था(इसी में उन्होंने खान देश के बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए अपील छपी थी(इसी पत्रिका में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी नीति का भंडागड़ किया था(इसी में उन्होंने हिंदी के प्रचार और विकास का आंदोलन किया था। 'कविवचनसुधा' का एक-एक पृष्ठ पवित्र है और एक दिन हिंदी भाषी जनता उसके ऐतिहासिक महत्त्व को अवश्य समझेगी।" 8

ब्रिटिश शासन और उपनिवेशवाद के विरुद्ध स्वाधीनता संघर्ष के दौरान भारतीय आन्दोलनकारियों के बीच राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचारों की भिन्नता के कारण मतभेद पैदा हो गये थे। परिणामस्वरूप वे दो दलों में विभाजित हो गये-उदारवादी और उग्रवादी। इनके विचारों की टकरावट के मूल में था- आधुनिकता, संस्कृति और धर्म। उदारवादी रानाडे और गोखले आधुनिकता और सामाजिक सुधारों के दृढ़ पक्षधर थे। वे आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनफरूप हिन्दू धर्म में सुधार करना चाहते थे। वे रूढ़िवाद और अंधविश्वास की जड़ताओं के विरोधी होने के साथ साथ आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों के मुक्त प्रशंसक थे। वे आधुनिकता से सम्पन्न एक साझी सुसम्बद्ध संस्कृति और धर्मनिरपेक्षता के आधार पर लोकतान्त्रिक राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। गोखले के शब्दों में, "समान परम्पराओं और कड़ियों, समान आषाओं और आकांक्षाओं, और यहां तक कि समान अक्षमताओं, के आधार पर एक समान राष्ट्रीयता की भावना" को प्रोत्साहित करते थे। गोखले भारतीय जनता को इस बात को समझाने पर विशेष जोर देते थे कि "हम पहले भारतीय हैं और हिन्दू, मुसलमान, पारसी या ईसाई बाद में।" वे एक "संयुक्त और नवजागृत भारत" का स्वप्न देखते थे, "जो संसार के राष्ट्रों के बीच, अपने महान अतीत के उपयुक्त स्थान की ओर अग्रसर हो रहा हो।" 9 वहीं दूसरी ओर उग्रवादी, उदार और प्रगतिशील विचारों के विरोधी थे। वे पूर्वगामी थे। वे मानते थे कि पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति का अनफसरण करने वाले ये उदारवादी राष्ट्रविरोधी अथवा अराष्ट्रीय हो गये हैं। उग्रवादी पूर्वगामी-प्रियता और अंधता होने के कारण हर पश्चिमी तौर-तरीके के विरोधी हो गये थे। इनका विश्वास था कि "हिन्दू" संस्कृति, पश्चिमी से कहीं अधिक श्रेष्ठ है और परम्परागत हिन्दू धर्म में इतनी क्षमता है कि वह सभी युगों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

औपनिवेशिक दासता के खिलाफ स्वाधीनता संघर्ष के दौरान 'राष्ट्रवाद' को लेकर जिस तरह भारतीय आंदोलनकारियों में वैचारिक मतभेद और अंतर्विरोध होने से वे विभाजित हो गये थे उसी के प्रभावस्वरूप उस समय की पत्रकारिता में भी अंतर्विरोध पैदा हो गया था। उस दौर की पत्रकारिता ने अपने सामाजिक-राष्ट्रीय सरोकारों के प्रति सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के कार्य करने शुरू कर दिये थे। एक तरफ जहां वह जातीय चेतना को जगाना, भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा करना, स्वाधीनता आन्दोलन के लिए राष्ट्रीय जनजागरण में अपनी ईमानदार भूमिका को निभाना, उपनिवेशवादी षोषण के विरुद्ध प्रखर विरोधी स्वर बुलंद करना, रूढ़िवादी दृष्टि का जोरदार खंडन करना और सामाजिक परिवर्तनों एवं सुधारों में क्रांतिकारी भूमिका

निभा रही थी वहीं दूसरी ओर हिन्दी-उर्दू समस्या को बढ़ाना, हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष भाव को बढ़ाना, साम्प्रदायिक तनावों को प्रचार-प्रसार करना, और समाज को तोड़ने का कार्य भी वह कर रही थी।

षहीदे-आजम भगत सिंह 'राष्ट्रवाद' के विकास में धर्मान्धता आधारित साम्प्रदायिकता को सबसे खतरनाक बाधा मानते हैं। वे सांप्रदायिकता को 'दिमाग का कीड़ा' कहते हैं। जून 1928 में 'किरती' पत्रिका में छपे 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख में भगतसिंह लिखते हैं कि सांप्रदायिक दंगे करवाने में नेताओं और अखबारों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है : "जहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अखबारों का ही हाथ होता है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज-स्वराज' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं।"¹⁰ तथा "दूसरे सज्जन जो साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, वे अखबार वाले हैं। पत्रकारिता का व्यवसाय, जो किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था, आज बहुत की गंदा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे षीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर-नुटौव्वल करवाते हैं। एक दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक, जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी पाँत रहा हो, बहुत कम है।"¹¹ आगे वे फिर लिखते हैं कि, "अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था। लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान नैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान द्वा पर विचार कर आँखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि "भारत का बनेगा क्या ?"¹² नब्बे साल पहले अखबारों के बारे में की गई षहीद भगत सिंह की ये टिप्पणियाँ आज के अखबारों के चरित्रों और नीतियों पर भी एकदम सही साबित होती हैं।

भगत सिंह मानते हैं कि राष्ट्रवाद का सबसे बड़ा दुष्मन पूँजीपति है। पूँजीपति ही राष्ट्रवाद की चेतना को कुचलने के लिए सांप्रदायिक दंगे करवाकर मनफथ्य समाज को विभाजित कर अपने स्वार्थों को पूरा करता है। वे भारतवासियों को सजग-सचेत करते हैं : "लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझ देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुष्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हथके चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव भुलाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा कुछ नहीं होगा, इनसे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।"¹³

सन् 1928 में कलकत्ते से "विषाल भारत" का प्रकाशन हुआ। इसके संचालक रामानंद चट्टोपाध्याय और संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी थे। 'विषाल भारत' संकीर्ण भाषादृष्टि और धार्मिक रूढ़ियों से न केवल मुक्त था अपितु भारतीय समाज को आधुनिक चेतना, बौद्धिक साहस और गहरी स्वदेश भावना से जोड़ने वाला भी था। यह पत्र प्रगतिशील विचारधाराओं के साथ ही विचारों की स्वतंत्रता और लोकहित भावना को अपना सर्वोपरि धर्म और लक्ष्य मानता है। 'विषाल भारत' औपनिवेशिक अंधकार युग में सूर्य की तरह था। इसने सभी सामाजिक, राजनैतिक, कलात्मक और साहित्यिक विषयों को महत्व देकर भारत जैसे निर्धन, अशिक्षित और औपनिवेशिक गुलामी से आक्रांत देश को जगाकर राष्ट्रवाद की नयी दिशा दिखाई। 1928 ई. के पहले अंक के ही संपादकीय लेख में बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं : "सांप्रदायिकता अथवा जातीय विद्वेष को बढ़ाना 'विषाल भारत' के प्रति ऐसा भयंकर पाप है, जिसका कोई, प्रायश्चित्त नहीं।"¹⁴ इस पत्र का मुख्य दृष्टिकोण यह रहा कि राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रश्न भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास और उसके आमूल परिवर्तन से है। इस सर्वांगीण विकास का सबसे बड़ा आधार शिक्षा है। शिक्षा राष्ट्रीय आवश्यकता है, क्योंकि जबतक भारतीय समाज शिक्षित नहीं हो जाता, वह अपनी पुरानी वर्णव्यवस्था, सांप्रदायिक भेदभाव, छुआछूत आदि कुरीतियों से मुक्त नहीं हो सकता। इस मुक्ति के बिना भारत प्रगतिशील राष्ट्र नहीं बन सकता। भारतीय नवजागरण का एक सकारात्मक पक्ष स्त्री शिक्षा का प्रसार भी था। महात्मा गांधी की प्रेरणा से भारतीय स्त्रियों राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने लगी थी। स्त्रियों की इस राष्ट्रवादी चेतना से प्रभावित होकर 'विषाल भारत' ने 1936 ई. में 'महिला विशेषांक' निकालकर भारतीय स्त्रियों की देशप्रेमी-राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रेरित और जाग्रत किया। अतः 'विषाल भारत' के प्रकाशन से हिंदी पत्रकारिता में न केवल नई आधुनिक टेक्नोलॉजी की शुरुआत हुई, बल्कि इसने हिंदी और बंगला के बीच एक सांस्कृतिक सेतु भी बनाया। एक बंगलाभाषी ने यह पत्र निकाला था। इसका एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य भी था। राष्ट्रवादी जागरण में जब एक नया ऐतिहासिक मोड़ आ रहा था और पूर्ण स्वाधीनता की आकांक्षा हर भारतीय दिल में सुलग उठी थी - नवजागरण राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के समुद्र में अपनी सबसे ऊंची हिलोरें ले रहा था, उस समय 'विषाल भारत' का प्रकाशन शुरू हुआ और यह देशभर के लेखकों के वैचारिक संघर्ष का एक प्रभावशाली मंच बना। 'विषाल भारत' से भारतीय नवजागरण, स्वाधीनता संग्राम और राष्ट्रवादी पत्रकारिता के एक नये दौर की शुरुआत होती है।

भारतीय नवजागरण, स्वाधीनता आंदोलन और राष्ट्रप्रेम के विकास में 'विषाल भारत' ने सदैव गंभीर, साहसी और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके मई 1929 के अंक में 'समाचार पत्र और सांप्रदायिकता' शीर्षक से संपादकीय छपा जो कर्नाटक जर्नलिस्ट कॉफ़ेस के द्वितीय अधिवेशन के सभापति सैय्यद अबदुल्ला ब्रेल्वी साहब (संपादक, 'बांबे क्रानिकल' का दिया हुआ भाषण-अंश है। जो इस प्रकार है - "अब मैं एक खेदोत्पादक विषय की ओर आता हूँ। सांप्रदायिकता के भाव ने हमारे सार्वजनिक जीवन के क्षेत्रों में ज़हर मिला दिया है, और यह ज़हर पत्र-संपादन के क्षेत्र में भी फैल गया है। कुछ लोगों का यह ख्याल है कि हमें हिंदुस्तान में जो सांप्रदायिकता, अविश्वास और झगड़ें दीख पड़ते हैं, उनका मूल कारण सांप्रदायिक समाचार पत्र हैं, और दूसरे लोग इससे उल्टी बात कहते हैं। उनका कथन है कि ये समाचार पत्र तो उस सांप्रदायिकता का प्रतिबिंब-मात्र हैं, जो देश में चारों ओर फैली हुई है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, सांप्रदायिक पत्रों का प्रकाशन संपादन-कला पर घोर अत्याचार है। इन सांप्रदायिक पत्रों की नीति का आधार यह होता है कि हमारा संप्रदाय जो कुछ करता है, वह सदा ठीक ही है और हमारे विरोधी संप्रदाय के सारे कार्य गलत ही हैं। ख़रख़रजो कोई पत्रकार इस सिद्धांत के अनफ़सार कार्य करता है, वह अपने पेषे के लिए कलंक-स्वरूप है।"¹⁵ राष्ट्रवाद के नाम पर समाज में ज़हर घोलना और सांप्रदायिक दंगे और नरसंहार को अंजाम देकर देश को विभाजित करने में समाचार पत्रों ने भी बड़ी भूमिका निभाई है। जब पत्रकारिता ही सांप्रदायिक षडयंत्रों को बढ़ाने और दंगे करवाने लग जाए तब समाज और देश के टुकड़े होने से कौन रोक सकता। पत्रकारिता की इस जहरीली सांप्रदायिक सोच और नीचता के खिलाफ 1924 में षहीद भगत सिंह भी भारतवासियों को चेता रहे थे।

प्रेमचन्द स्वाधीनता-संग्राम के अनूठे महागाथाकार हैं। पत्रकारिता में उन्होंने 'कलम के सच्चे सिपाही' की भूमिका निभाई है। 'माधुरी' और 'हंस' का कुषलतापूर्वक संपादन किया। पत्रकारिता में उनकी सबसे बड़ी चिंता भारतदेश को साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और सामंतवाद, सांप्रदायिकता और धार्मिक रूढ़िवाद की गुलामी से मुक्ति दिलाना रहा है। सितंबर 1936 के 'हंस' में 'महाजनी सभ्यता' लेख में भारत में साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के प्रभाव से पैदा हुई नयी महाजनी सभ्यता को देखकर अपने अंतर्मन की पीड़ा और चिंता को प्रकट करते हैं, "मनफष्य समाज दो भागों में बंट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और बहुत छोटा हिस्सा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को वष में किए हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू-रियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाए, खून गिराए और चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाए।" प्रेमचंद में 'राष्ट्रवाद' की बहुत सफ़ और स्पष्ट समझ थी। आज के औपनिवेशिक चिंतकों में भी यह विष्लेषण क्षमता और समझ नहीं थी जो प्रेमचंद में थी। वे लिखते हैं, "राष्ट्र एक मानसिक प्रवृत्ति है। जब यह प्रवृत्ति प्रबल हो जाती है तो किसी प्रान्त या देश के निवासियों में भ्रातृभाव पैदा हो जाता है। प्राचीनकाल का भारत केवल इसी अर्थ में एक था कि उसकी संस्कृति एक थी। ख़रख़र परंतु राजे सैकड़ों हजारों थे, उनमें बराबर लड़ाईयाँ होती रहती थीं। उनके स्वार्थ अलग थे। वर्तमान राष्ट्र का विकास न हुआ था। ख़रख़र वर्तमान राष्ट्र योरोप की ईजाद है और राष्ट्रवाद वर्तमान युग का षपाख़रख़र इसी राष्ट्रवाद ने साम्राज्यवाद, व्यवसायवाद आदि को जन्म देकर संसार में तहलका मचा रखा है। व्यापारिक प्रभुत्व के लिए महान युद्ध होते हैं। यह सारे अनर्थ इसलिए हो रहे हैं कि धन और भूमि की तृष्णा ने राष्ट्रों को चक्षुहीन सा कर दिया है। प्राणिमात्र को भाई समझने वाला ऊँचा और पवित्र आदर्श इस राष्ट्रवाद के हाथों ऐसा कुचला गया कि अब उसका कहीं चिन्ह भी नहीं रहा।"¹⁶

प्रेमचंद की 'राष्ट्रीयता' व्यापक मानवीय संवेदनाओं और नयी सामाजिक संस्कृति से निर्मित थी। वे लिखते हैं, "राष्ट्रीयता की पहली षर्त वर्ण-व्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है।"¹⁷ प्रेमचंद ऐसे राष्ट्र की कल्पना कर रहे थे जिसके केंद्र में किसान और मजदूर थे : "हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहे हैं उसमें जन्मगत वर्णों की तो गंध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे या सभी हरिजन।"¹⁸ अपने 'स्वराज' को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "हमारा स्वराज केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि सामाजिक जुए से भी, इस पाखंडी जुए से भी, जो विदेशी शासन से कहीं अधिक घातक है।"¹⁹

बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में जब स्वाधीनता संघर्ष का राष्ट्रवादी स्वर अपने चरम रूप की ओर अग्रसर था वहीं भारतीय नारी भी अपनी पारंपरिक छवि में परिवर्तन लाकर स्वाधीनता संघर्ष के राष्ट्रवादी स्वर में अपने स्वर को भी मिला रही थी। अब महिलाएं गृहणी रूप के अलावा सामाजिक दायित्वों में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। महिलाओं की परिवर्तनशील स्थिति और नवीन दृष्टिकोणों तथा गरिमा को केन्द्र बनाकर अनेक पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित होने लगे। अनेक पत्रों का संपादन महिलाएं भी करने लगी थी। नारी से जुड़े सामयिक प्रश्नों और मुद्दों को केंद्र बनाकर अक्टूबर 1938 में सीतादेवी ने "महिला" नामक पत्र आरंभ किया। इस पत्र और संपादिका का जिक्र इतिहासग्रंथ में न साहित्यालोचकों ने किया और न पत्रकारिता के विद्वानों ने ही किया। इसके पहले अंक के संपादकीय में पुरुष प्रभुत्ववाद के खिलाफ विद्रोह भरे स्त्री-समाज को यह संदेश दिया : "झूठे आत्मगौरव का आवरण हटाकर देखें तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि संसार के एक कण पर भी हमारा अधिकार नहीं है। जिस गौरव, ज्ञान और स्वाधीनता की हम भी जन्म-सिद्ध अधिकारिणी हैं, इस पर पुरुषों ने एकाकी अधिकार जमा रक्खा है। क्या घर, क्या समाज, क्या राजनीति, क्या अर्थ, कहीं भी हमारी सत्ता नहीं है। पुरुष प्रभु हमें अपनी

इच्छा के अनफसार चलाते हैं और हम उनके इंगित पर चलने में ही अपना अहोभाग्य समझती हैं। कुचली हुई आत्माओं के खंडित स्वयं के अतिरिक्त हमारे पास है ही क्या ?” आगे आत्मविश्वास और साहस के साथ यह संकल्प ही लेती है, “नारी-समाज इतना शक्तिमान हो कि प्राचीनता और नवीनता के नाम पर किसी बात का ग्रहण एवं त्याग करने के लिए बाध्य न हो वरन् सत्य, असत्य की स्वयं परीक्षा कर देश, काल और अवस्था के अनफरूप अपने समाज की रचना कर सके और कर सके संसार में प्रेम, पवित्रता और शांति का पूर्ण साम्राज्य स्थापन।”²⁰

स्वातन्त्र्य चेतना और राष्ट्रवादी विचारधारा के साथ-साथ साम्राज्यवादी और सामंतवादी शासन से मुक्ति संग्राम में ‘हिंदी बंगदूत’, ‘बिहारबन्धु’, ‘भारतमित्र’, ‘सारसुधानिधि’, ‘पयामे-आजादी’, ‘बनारस अखबार’, ‘ब्राह्मण’, ‘हिंदी बंगवासी’, ‘स्वराज्य’, ‘कर्मवीर’, ‘प्रताप’, ‘जागरण’, ‘केसरी’ आदि पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके पत्रकारों ने भारतवासियों में बौद्धिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय नवजागरण कर नये मूल्यों और आदर्शों ने निर्मित नये मानव समाज और नये देश की नयी संकल्पना की चेतना पैदा की।

राष्ट्रवादी चेतना से जहाँ भारत को औपनिवेशिक शासन और सामंती दासता से मुक्ति मिली, वहीं इस मुक्ति के साथ ही ‘राष्ट्रवाद’ को लेकर कुछ राजनीतिक दलों ने वैचारिक संकीर्णता और पुरातनपंथी धारणाओं से राष्ट्रीयता को कलुषित भी किया। आजादी के बाद ‘राष्ट्रवाद’ के नाम पर नसीवादी राजनीतिक शक्तियों द्वारा पूरे भारत में सांप्रदायिक तनाव और द्वेषभाव नैलाकर राष्ट्रीयता को खण्डित करने का प्रयास किया गया। और इनके षडयंत्र में पत्रकारिता ने अपने व्यावसायिक स्वार्थों के लिए पहले गोपनीय रूप से और वर्तमान समय में खुले रूप से साथ दे रही है। ‘राष्ट्रवाद’ के नाम पर आज की पत्रकारिता न केवल दिनरात जनता के दिमागों में सांप्रदायिक जहर घोल रहे है अपितु समाज और देश के टुकड़े कर पुनः साम्राज्यवादी-पूँजीवादी औपनिवेशिक दासता के लिए रास्ते बना रही है। आज की पत्रकारिता सत्ताओं की दलाल होती जा ही है। लेकिन कुछ पत्रकार अभी भी लोकहित और देशहित में अपनी कलम चला रहे हैं। लोकतंत्र की आवाज को उन्होंने अभी भी जीवित रखा है।

स्वतंत्रतापूर्व ‘राष्ट्रवाद’ जिन आधुनिक-प्रगतिशील विचारों, मूल्यों, स्वप्नों और आदर्शों से संचालित होकर संपूर्ण भारतीय जनमानस में आंदोलित था, और जिसमें एक नए भारत के निर्माण का संकल्प भी था। उसकी सुंदर परिणति आजादी के बाद ‘संविधान’ के रूप में नलीभूत होती है। संविधान की आत्मा ही राष्ट्रवाद की मूल भावना है। वर्तमान समय में भारतवासियों की राष्ट्रीयता का यह आदर्श प्रतिरूप है।

संदर्भ

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई, पृष्ठ 1-2, प्रकाशक - मैकमिलन इंडिया लिमिटेड दिल्ली, दूसरा हिंदी संस्करण 1977
2. उपरोक्त, पृष्ठ 191
3. राष्ट्रीय जागरण और हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल : सुजाता राय, पृष्ठ 56, प्रकाशक : अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, अशोक विहार दिल्ली, प्र.सं. 1996
4. उपरोक्त, पृष्ठ 77
5. उपरोक्त, पृष्ठ 78
6. उपरोक्त, पृष्ठ 79
7. उपरोक्त, पृष्ठ 79
8. भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1984, पृष्ठ 100
9. भारतीय चिंतन परंपरा : के. दामोदरन, प्रगति पुब्लिस प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 406
10. साम्प्रदायिकता का जहर : संपादक डॉ. रणजीत, लोकभारती विक्रता इलाहाबाद, सं. 2011, पृष्ठ 95
11. उपरोक्त, पृष्ठ 95
12. उपरोक्त, पृष्ठ 95
13. उपरोक्त, पृष्ठ 96
14. हिंदी नवजागरण : बंगीय विरासत खंड-2, संपादक : डॉ. शंभुनाथ, रामनिवास द्विवेदी, प्रकाशक : कोल इण्डिया लिमिटेड, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता, प्र. सं. 1993, पृष्ठ 466
15. उपरोक्त, पृष्ठ 477
16. विविध प्रसंग-2 : प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 11
17. उपरोक्त, पृष्ठ 476
18. उपरोक्त, पृष्ठ 473
19. उपरोक्त पृष्ठ 473
20. हिंदी नवजागरण : बंगीय विरासत खंड-2, संपादक : डॉ. शंभुनाथ, रामनिवास द्विवेदी, प्रकाशक : कोल इण्डिया लिमिटेड, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता, प्र. सं. 1993, पृष्ठ 759-760

राष्ट्रीयता और हिन्दी पत्रकारिता

डॉ. महादेवी गौरव

जी.आई. बागेवडी डिग्री कॉलेज
निपानी कर्नाटक

डॉ. विद्यावती राजपूत

जी.आई. बागेवडी डिग्री कॉलेज
निपानी कर्नाटक

पत्रकारिता का अर्थ अंग्रेजी में जर्नलिज्म है इसका शब्दार्थ 'जर्नल' से निर्मित है जो दैनिक सामाजिक कार्य और सरकारी बैठकों का विवरण हो दैनिक समाचार पत्र समग्रता की विकास की रूपरेखा स्पष्ट करने का एक प्रभावी तथा शक्तिशाली माध्यम को ही पत्रकारिता कहा जाता है जो लोकतंत्र का अविभाज्य अंग है समाज में, देश में, मानव जीवन में विश्व में प्रतिपल परिवर्तित होनेवाले जीवन और जगत का अंश का दृष्टांत पत्रकारिता द्वारा ही संभव है इसमें लोकमंगल ही भावना ही सर्वोपरि होती है।

आधुनिक सभ्यता का प्रभावी माध्यम है जो पत्रकार समाचारों को विभिन्न क्षेत्र से जानकारी हासिल करके संपादित करना और लोगों तक पहुँचना यही पत्रकारिता कहलाता है। आज पत्रकारिता में तेजी से परिवर्तन दिखाई दे रहा जैसे- अखबार, पत्रिकाये, रेडियो, दूरदर्शन, वेब पत्रकारिता मोबाइल अंतरजाल के माध्यम से आज पत्रकारिता शक्तिशाली माध्यम का रूप धारण करके देश की राष्ट्र की तरक्की में चार चांद लगा रहे हैं। डॉ. अर्जुन तिवारी के कथनानुसार ज्ञान और विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ शब्द, ध्वनि तथा चित्रों के माध्यम से जन-जन तक देश-विदेश तथा पहुँचना ही पत्रकारिता है। यह वह एक कुशल विद्या है जिसमें सभी प्रकार के पत्रकारों के कार्यों, कर्तव्यों और लक्ष्यों का विवेचन होता है पत्रकारिता समय के साथ समाज की दिग्दर्शिका और नियामिका है।

हिन्दी की समाचार पत्रकारिता का शुभारंभ 19वीं सदी से माना जाता है आज के कलकत्ता, बंबई, मद्रास, नगर के हिन्दी के पहले पत्र उदंत मार्टण्ड नामक साप्ताहिक पत्र निकाला गया था। भारतेंदु युग हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास की गौरवपूर्ण अध्याय है। हिन्दी के साहित्यिक पत्रकारिता हरिश्चंद्र और 'कविवचन सुधा' हमारी हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास की गौरवपूर्ण अध्याय है। इसकी पीठिका में ही हिन्दी पत्रकारिता के प्राणतत्व को पहचाना जा सकता है इसके बाद बंगदूत (1829) प्रजामित्र (1834) बनारस अखबार (1846) ज्ञानदीप (1846) मालवा अखबार (1849) सुधाकर (1850) आगरा अखबार (1870) बोधा समाचार आदि समाचार पत्रों का उदघाटन हुआ इन पत्रों में कुछ मासिक थे, कुछ, साप्ताहिक, दैनिक पत्र केवल एक था समाचार सुधावर्षण जो द्विभाषिक (बंगला हिंदी) कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह पत्र 1871 तक चलता रहा अधिकांश पत्र आगरा से प्रकाशित होते थे उन दिनों वहाँ बड़ा शिक्षा केंद्र था। बनारस अखबार (1845) काफी प्रभावशाली था तभी 1850 में तारामोहन मैत्र ने काशी से साप्ताहिक सुधाकर और राजा लक्षणसिंह ने सन 1855 में आगरा से प्रजाहितैषी का प्रकाशन आरंभ किया था। राजा शिवप्रसाद का बनारस अखबार उर्दू भाषा शैली को अपनाता था। अंत में हरिश्चंद्र मैगजीन के प्रकाशन 1873 तक निश्चित भाषा शैली का उतना काफी विकास नहीं हुआ था।

इसके उपरांत हिन्दी पत्रकारिता का दूसरा युग आरंभ हुआ जिसमें नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदन प्राप्त सरस्वती इन 27 वर्षों तक प्रकाशित पत्रों की संख्या 300-350 से ऊपर जा पहुँची थी परंतु वास्तव में दैनिक समाचार के प्रति उस समय विशेष आग्रह नहीं था इसलिए मासिक और साप्ताहिक पत्र अधिक थे महत्वपूर्ण भी माने जाते थे। उन्होंने जन जागरण में अत्यंत महत्वपूर्ण का दानित्व निभाया था। भारतेंदु ने इस दिशा में पथ प्रदर्शन किया था उनकी टीका टिप्पणियों से अधिकारी वर्ग तक घबराते थे कविवचनसुधा के पंच पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेंदु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना बंद करा दिया था पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेंदु थे। उन्होंने नए पत्रों के लिए प्रेरित करके हिन्दी प्रदीप भारत जीवन अनेक पत्रों का नामकरण के युग के अग्रणी पत्रकार का श्रेय ही प्राप्त किए थे। इसतरह भारतेंदु ने सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएं भी विकसित की उन्होंने (1874) में बालबोधिनी नामसे पहला मासिक पत्र चलाया। मिर्जापुर जैसे - इसाई केंद्रों में भी उन्होंने धार्मिक परिवर्तनों के युग बोध के साथ पत्रिकाओं में अभिव्यक्त करके मानव समुदाय, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, नीति राजनीति आदि में विकास के और संरक्षण में इनकी पत्रिकायें महत्वपूर्ण की भूमिकायें निभाये थी। ऐतिहासिक घटना चक्र, राजनीति संबंधी

प्राथमिक परिस्थितियों का वृत्त आज भी हम उस काल की पत्रिकाओं के जरिए प्राप्त कर सकते हैं। अतः किसी भी देश में समाज में समुचित विकास के लिए पत्रकारिता का स्थान सर्वोत्तम है।

युग बोध की संस्कृति

अपने विस्तृत रूप में हमारे सम्मुख वीर पुरुषों, जन नायकों साहित्यकारों, ऐतिहासिक देश प्रेमियों की शहीदों की जानकारी पत्रकारिता के माध्यम से हासिल करने में समर्थ हो पाते हैं हिन्दी पत्रकारिता के विकास में पत्रिकाओं का योगदान अनन्य कोटि का है। यह सौभाग्य की बात है समय और समाज के प्रति जागरूक पत्रकारों ने निश्चित लक्ष्य-राष्ट्रीयता संस्कृति, लोकजागरण को सामने रखकर भारतीय राष्ट्रीयता इन अनेक पत्रिकाओं के योगदान से आज विकास के स्तर पर पहुँची है स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता का योगदान अमूल्य है जो भारतीय समाज को ग्रामवासीयों जनजाग्रति करने में संस्कृति की हिफाजत करने में कामयाब हो गई है। अनेक कवियों के देश भक्ति से ओजपूर्ण पंक्तियों के माध्यम से देश प्रेम के बीज पत्रिकाओं के माध्यम से ही बोये गये थे। मेरी जन्मभूमि स्वर्ग से भी प्यारी है ऐसे उद्गार से तथा निज भाषा के जरिए भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीयता की जड़ें शायद उससे पहले से ही विद्यमान हैं। 'हिन्दी प्रदीप' से संपादक बालकृष्ण भट्ट केवल पत्रकार ही नहीं श्रेष्ठ, प्रभावी साहित्यकार भी थे। इसी प्रकार प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण) हिन्दी के सचेतन पत्रकार माने जाते हैं इन्होंने हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य विधाओं में योगदान देकर राष्ट्रीयता बढ़ाने अपनी कुशलता का परिचय दिया है इसी प्रकार मदन मोहन मालवीय हिन्दी के कट्टर समर्थक थे।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य परिषद की स्थापना करके राष्ट्रीय एकता बढ़ाने के लिए हिन्दी भाषा एक प्रभाव माध्यम है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी पत्रकारिता के शलाका पुरुष कहा जाता है। इनके छत्तीसगढ़ मित्र, कर्मवीर राष्ट्रीयता की प्रतिमूर्ति थे इसी प्रकार आधुनिक काल में माखनलाल चतुर्वेदी, कर्मवीर, प्रभा, प्रताप ये सभी साहित्य समाज और राजनीति तीनों को अपनी पत्रकारिता में समेटकर चलते थे उनकी साहित्य साधना भी उनके भाषण और लेखन में इतनी शक्ति थी कि उनकी पत्रों के लिए वरदान साबित हुआ उनका कहना था ऐसा लिखो जिसमें अनहोनापन हो ऐसा बोलो जिस पर दुहराहट के दाग न पड़े हो। इसी प्रकार शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी अभ्युदय, प्रताप ने हिन्दी पत्रकारिता में बलिदान और आवरण का अमर संदेश देकर राष्ट्रीयता से जन मानस पर प्रभुत्व जमाया था।

स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता में अज्ञेय, प्रतीक, नया प्रतीक, दिनमान, नवभारत टाइम्स ने पत्रकारिता को नवीन दिशाओं की ओर मोड़ा। 'शब्द' के प्रति वे सचेत थे 'प्रतीक' तथा 'दिनमान' पत्रिका के माध्यम से राजनैतिक समीक्षा तथा समाचार विवेचन की शैली से विकसित रूप में ऊँचाई हासिल की। इसी प्रकार धर्मवीर भारती (धर्मवीर) पत्रिका के जरिए लोकप्रियता हासिल की पत्रिका की संकल्पना की जिसमें राजनैतिक, साहित्यिक सांस्कृतिक, सामग्री के साथ फिल्म, खेल कूद की दुनिया, महिला जगत बाल जगत स्तम्भ सम्मिलित करके धर्मवीर भारती जी ने रंगमंच, यात्रावृत्तान्त, रिपोर्टाज, डायरी आदि नई विधाओं का साहित्य में अविष्कार करके बहुआयामी विकास के तौर पर देश, संस्कृति जन समुदाय, का विकास पत्रकारिता में बदलाव पत्रकारिता की भाषा शैली में विकासात्मक कार्य किया है।

आज वर्तमान का समाचार लेख, साहित्य भविष्य के लिए इतिहास होता है भारतीय जन मानस के वैचारिक दृष्टिकोण को संचालित करने की क्षमता मीडिया में ही हो सकती है। जैसे अकबर इलाहाबादी का शेर -

खीचो न कमानों को न तलवार निकालो।

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो। (पृष्ठ - 130)

इस तरह समाचार पत्रिकाओं का सामाजिक निर्माण में राष्ट्रीयता निर्माण में विशिष्ट योगदान होता है क्योंकि समाचार पत्र प्रजातन्त्र का प्रहरी है।

भारत में राष्ट्रीयता की भावना का उद्गम अंग्रेजों की दासता से हुआ। भारत में अंग्रेजी राज्य के पूर्व जो राष्ट्रीयता हमें मिलती है उसका स्वरूप प्रादेशिक या विशिष्ट प्रांत भू-प्रदेश या अंचल से जुड़ा हुआ था। भारतेंदु काल में तथा द्विवेदी युग में जो राष्ट्रीय भावना दिखाई देता है वह वस्तुतः किसी व्यक्ति, राज्य, देश के बीच कानूनी संबंध को बोलते हैं राष्ट्रीयता उस राज्य में उस व्यक्ति को राज्य सुरक्षा और अन्य सुविधाएं लेने का अधिकार देती है। यह राष्ट्रीयता व्यक्तियों को अपने राष्ट्र से प्रेम करने के साथ अन्य देशों के साथ घृणा करने की आशा नहीं देता यह सर्वत्रिक विकास में विश्वास करती है इस प्रकार राष्ट्रीयता धर्मों, जातियों और भाषाओं के लोगों में पारस्परिक सहिष्णुता की भावना को जन्म देती है किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व वहां के निवासी के भावनाओं पर निर्भर रहती है राष्ट्रीयता नागरिकों को सूत्र में बांधती है राष्ट्रीयता के गुणों में यह महत्वपूर्ण गुण या अंश मानते हैं।

- 1 स्थान, जाति भाषा संस्कृति आदि के आधार पर विभिन्न होकर भी
- 2 राष्ट्रीयता नागरिकों को राष्ट्र हित के उद्देश्य की ओर संकेत करती है
- 3 राष्ट्रीयता ही पत्रकारिता के जरिए उन्नत राष्ट्र की क्षमता रखती है
- 4 राष्ट्रीयता ही अंतरराष्ट्रीय विकास में और स्वदेश की विकास में मूल मंत्र होती है

5 उदार राष्ट्रीयता पर वसुधैव कुटुम्बकम् की आस्था हावी होती है

6 किसी भी राष्ट्र को संपन्न और सुदृढ़ बनाने में राजनैतिक व्यवस्था सांस्कृतिक दृढ़ता लोकशाही तानाशाही समाजवादी आदी व्यवस्थाएँ प्रबल होना आवश्यक है। कारण राष्ट्रीयता ही प्रबल भावना के बल पर उचित शासन व्यवस्था को दृढ़ बनाये रखने में सफल होती है। राष्ट्रीयता जन मानस में जितनी प्रबल होगी उतना देश प्रेम जागृक हो कर नागरिकों के दिल में निष्ठा आस्था सृजन कर सकती है। पं. नेहरूजी ने लिखा है - राष्ट्रीयता एक ऐसा विचित्र तत्व है जो देश के इतिहास में जहाँ जीवन मानव शक्ति में एकता का संचार करता है। वहाँ संकोचित बनाता है क्योंकि एक व्यक्ति अपने देश के बारे में संसार के अन्य देशों से पृथक-पृथक रूप में सोचता है।³ इस तरह राष्ट्र की सीमाओंको सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित करती है। राष्ट्रीयता अपने देश की अस्मिता एवं अस्तित्व को बचाने के लिए प्रेरित करती है। राष्ट्रीयता में द्वेष या संघर्ष की भावना नहीं होना चाहिए जो अंतरराष्ट्रीय विकास में बाधक हो। शिक्षा व पत्रकारिता के बल पर हम राष्ट्रीयता में भावनात्मक विकास कर सकते हैं जैसे- छात्रों के पाठ्यक्रम में प्राथमिक माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर स्थानिक देश के प्रति रचे गये लोक गीत जानकारी दे कर, महान साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से, जो शहीद और हुतात्मा हुए उनकी जीवनी के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना को अधिक स्पर्शदायक बना सकते हैं। इसके साथ राष्ट्रीय प्रतीकों की जानकारी चिह्न, सांस्कृतिक ऐतिहासिक वीर विभूतियों का, वीरांगनाओं का, राजा महाराजाओं का राष्ट्र प्रेम की झलक पाठ्यक्रम के जरिए ठोस उपाय के आधार पर राष्ट्रीयता और राष्ट्रगौरव जगाने में सिद्ध हो सकते हैं। इसके साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवकों के जरिए अनेक योजनाएँ तैयार कर के जन मानस में राष्ट्रीयता की भावना सृजन करने में सफल होंगे।

हिन्दी के कवि जयशंकर प्रसाद की कविताओं में -

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँचें अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।⁴

इस तरह हिन्दी साहित्यिक तथा पत्रकारों ने पत्रिकाओं के माध्यम से तथा काव्य के माध्यम से राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करके पत्रकारिता में तथा साहित्य में योगदान दे कर इनके राष्ट्रीय विचारधाराओं को अभिव्यक्त करके राष्ट्रीयता बढ़ाने में सहयोग दिया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय एकता बनाये रखने का संदेश दिया है।

आधुनिक काल में पत्रकारिता बहुत शक्तिशाली और प्रभावी माध्यम है जो राष्ट्रीयता को बनाये रखने में अनेक राष्ट्रीय धाराओं के कवि माखनलाल चतुर्वेदी, शिवमंगल सिंह सुमन, सूर्यकांत त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर, अज्ञेय आदि कवियों ने काव्य और पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीयता बढ़ाने में योगदान दिया है तथा अपने युग के अनुसार धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक भाव से जुड़े काव्य को अभिव्यक्त करके हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना दिखाई। गांधीजी के नेतृत्व में धर्मातीत राष्ट्रीयता का विकास हुआ। भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के साथ ही राष्ट्रीय धारा की कविताएँ पत्रिकाओं में छापी गयीं। ये कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत थीं। यही राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र की एकता को बनाये रखने में कामयाब हो गयी जैसे - अज्ञेय मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि के काव्य में राष्ट्रीय चेतना तीव्र रूप में प्रकट हुई है। राष्ट्रीय एकता बनाये रखना हर एक भारतीय का परम कर्तव्य है।

संदर्भ

1. विकिपीडिया
2. साहित्यिक निबंध शरतचंद्र कपूर
3. आधुनिक हिंदी कविता डॉ. सुधाकर गोकाककर 95
4. आधुनिक हिंदी कविता डॉ. सुधाकर गोकाककर 96

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्रकारिता में राष्ट्रीयता का स्वरूप

दुलुमनि तालुकदार

पूर्वोत्तर पर्वतीय विज्ञविद्यालय
शिलांग

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय नेता व जनता दोनों ही राष्ट्र निर्माण का स्वप्न देख रहे थे और भारतीय पत्रकारिता भी इसका अपवाद नहीं थी। राष्ट्र निर्माण के लिए हिन्दी पत्रकारिता भी अपनी सकारात्मक भूमिका के लिए स्वयं को तैयार करने में लगी थी। प्रसिद्ध पत्र 'आज' के 15 अगस्त, 1947 को प्रकाशित संस्करण के अग्रलेख में संपादकाचार्य श्री बाबूराव विष्णुराव पराडकर ने पत्रकारिता के दायित्वों को रेखांकित करते हुए लिखा- "स्वतंत्रता होने के साथ साथ हमारे कंधों पर जितना भारी उत्तरदायित्व आ गया है उसे हमें न भूलना चाहिए। हमारी लेशमात्र की असावधानी का परिणाम घातक हो सकता है। हम जरा चूके नहीं कि सर्वनाश हमारे सम्मुख उपस्थित है।"

हमारे देश में स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। अत्यधिक तीव्र गति से पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ और इनके प्रचार-प्रसार को अत्यधिक बल मिला। प्रसार और विकास के इस मूल में परिवर्तित परिस्थितियाँ, स्वतंत्र भावना और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के मनोभाव प्रबल रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर वर्षों में प्रायः इस धारणा को बढ़ावा मिला कि लेखकीय अभिव्यक्ति पर किसी प्रकार का अंकुश न लगाया जाय। इसी लेखकीय स्वाधीनता तथा अभिव्यक्ति की निर्भीकता प्रेरक स्वाधीनता के माध्यम से अनेक दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव हुआ। दैनिक पत्रों में मुख्य रूप से राजनैतिक गतिविधियों, सामाजिक घटना क्रम, दैनिक जीवन के क्रियाकलापों को प्रस्तुत किया जाता है। इन पत्रों के शीर्षकों से इस बात का आभास होता है कि दैनिक जीवन की गतिविधियों में साहित्य का स्थान अपेक्षाकृत कम है। दैनिक पत्रों की इस कमी की पूर्ति इन पत्रों के शनिवारीय और रविवारीय विशेषांक कर देते हैं जिनमें समाचारों के अतिरिक्त अनेक प्रकार की पठनीय सामग्री पाठकों को उपलब्ध हो जाती है। अनेक बार दैनिक पत्रों में विशेष प्रकार की परिस्थितियों का समावेश किया जाता है। ये परिस्थितियाँ हमारी सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक आविष्कार, सिनेमा जगत, खेलकूद, पर्यटन, साहित्यिक, स्वास्थ्य, ऐतिहासिक आदि क्षेत्रों से संबंधित होती हैं।

विदेशी सत्ता के मुक्ति के पश्चात् हमारे देशमें नए युग का पदार्पण हुआ। परतंत्रता से ग्रस्त जनमानस निश्चित हुआ और स्वतंत्र नागरिकों में नवजीवन एवं स्फूर्ति का संचार हुआ। स्वतंत्र भारत के मानस में जागृति, स्वतंत्र बोध, जीवनदायिनी मूल्य एवं रचनात्मक प्रतिभा का विकास हुआ। औद्योगिक एवं वैज्ञानिक विकास के साथ साथ मुद्रण कला में भी विकास हुआ। प्रेस और प्रकाशन की सुविधाएँ बढ़ीं। पत्रकारिता के मार्ग में जो रुकावटें थीं, वे समाप्त हुई तथा पत्रकारिता का पथ प्रशस्त हुआ। पत्रों के द्वारा परिवेश, समस्याएँ और संघर्ष मुखरित हुए। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक साहित्यिक और सांस्कृतिक जगत की छवि पत्रों द्वारा प्रदर्शित हुई। पत्रकारिता क्षेत्रिय प्रांतीय और राष्ट्रीय विकास के साथ ही मानव मूल्यों के उन्नयन का हेतु बनी। सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से यह 'संक्रमण काल' था जिसमें पत्रकारों का रचनात्मक अवदान अविस्मरणीय है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जन जीवन पर गांधी जी के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। असमानता, गरीबी, पिछड़ापन को दूर करने हेतु बापु ने स्वराज्य तथा सर्वोदय के अनुरूप जीवन ढालने का मार्ग बताया। महात्मा गांधी के विचारों को कार्यरूप में परिणत करने हेतु डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पंडित नेहरू, संत बिनोवा, जयप्रकाश आदि जननायकों ने अहर्निज प्रयास किया। एक ओर निर्धनता, आर्थिक विषमता, असंतुलित विकास, बेरोजगारी, शोषण और उत्पीड़न के विरोध में जन नेताओं के साथ मिलकर हिन्दी के पत्रों ने आवाज बुलंद की वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय आय, उत्पादकता, रोजगार, आत्मनिर्भरता और सामाजिक कल्याण की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। अपने देश का तेजी से आर्थिक विकास हो इसलिए राष्ट्रीय उत्पादन की बढ़ोत्तरी, प्राकृतिक संसाधनों के श्रेष्ठतम उपयोग, कृषि तथा उद्योगों की उन्नति, सामाजिक सेवाओं जैसे यातायत, परिवहन, दूर संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन के विस्तार हेतु पत्र-पत्रिकाओं ने आदर्श लोक शिक्षण का कार्य किया।

सन् 1947 ई में अवतरित 'नवभारत टाइम्स', 'नई दुनिया', 'प्रदीप', 'नवजीवन', 'स्वतंत्रभारत', 'दैनिक जागरण' आदि विविध दैनिक पत्रों ने नये भारत के अवतरण और उत्कर्ष हेतु प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत किया। एक ओर बंग-प्रांत से 'विश्वमित्र', 'नया समाज', 'ज्ञानोदय', मध्यप्रदेश से 'जयभारत', 'नया जमाना', 'नई दुनिया', 'मंगल प्रभात', 'नव प्रभात',

‘आजाद हिन्द’, ‘स्वतंत्रभारत’, ‘अपना राज’, ‘देशबंधु’, ‘नव भारत’, ‘नवीन दुनिया’, राजस्थान से ‘अमर ज्योति’, ‘पन्द्रह अगस्त’, ‘स्वतंत्र भारत’, ‘नवयुग’, ‘लोकजीवन’, ‘जयहिन्द’, ‘लोकमत’, ‘लोकराज’, ‘राष्ट्रदूत’ आदि पत्रों ने अपनी समर्पित भावना से जनतंत्र की स्थापना में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया तो दूसरी ओर बिहार से ‘जनशक्ति’, ‘नवीन भारत’, ‘जनता’, ‘पंचायत राज’, ‘राष्ट्रसंदेश’, हिमाचल से ‘प्रजामित्र’, ‘सुध’, ‘हिमाचल संदेश’, ‘लोकतंत्र’, ‘भावना’, पंजाब से ‘वीर प्रताप’, ‘हिन्दी मिलाप’, ‘पंजाब केशरी’ और महाराष्ट्र से ‘उजाला’, ‘दैनिक लोकमान्य’, ‘दैनिक विश्वमित्र’, ‘युगधर्म’, आदि पत्रों ने राष्ट्र को निर्माण की एक नयी दिशा दी। दिल्ली से प्रकाशित ‘हिन्दुस्तान’, ‘नवभारत टाइम्स’, ‘वीर अर्जुन’, ‘जनयुग’ आदि विभिन्न पत्रों ने नूतन भारत के निर्माण हेतु अपने को समर्पित कर दिया। सन् 1948 से 74 तक प्रकाशित हिन्दी के पत्रों ने अपनी प्रतिभा द्वारा सृजन के आयाम को आलोकित किया। गरिमापूर्ण भारत को विश्व मंच पर प्रतिष्ठित करने का कार्य पत्र और पत्रिकाओं द्वारा संपन्न हुआ। भारत की संस्कृति, उसके संपूर्ण इतिहास और राष्ट्र की सृजनात्मक शक्ति पर जो नया आलोक बिखेरा गया उसके मूल में पत्रकारों की अहम भूमिका थी।

जब जब भी देश पर संकट के बादल मंडराएँ, पत्रकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से एकता, संगठन तथा कर्मठता का मंत्र फूँका। एक तरफ राष्ट्रीय चरित्र के पतन पर कठोर प्रहार किया गया तो दूसरी ओर देशवासियों को लगन, साहस, निष्ठा के साथ राष्ट्र की सेवा में जुट जाने हेतु अनुप्राणित किया गया। चीन और पाकिस्तान द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने पर ‘साप्ताहिक हिन्दुस्तान’ ने अपनी संपादकीय टिप्पणियों द्वारा जन जन को इस तरह उद्बुद्ध किया— “आज भारतवासियों को इसी दृढ़ विश्वास के साथ राष्ट्र की रक्षा में तन, मन, धन से जुट जाना है। संसार के अधिकांश देशों का नैतिक समर्थन हमें प्राप्त है। आवश्यकता पड़ने पर हमें उनका सक्रिय सैनिक सहयोग भी प्राप्त होगा क्योंकि यह विश्व शांति की रक्षा का प्रश्न है, यह एक शांतिप्रिय देशके जीवन मरण का प्रश्न है, यह एक लोभी आततायी के संहार का प्रश्न है और अंततः यह सत्य की विजय का प्रश्न है।” (11 नवम्बर, 1962 ई.)

हिन्दी पत्रकारिता ने युग की आत्मा को सदैव पहचाना है। मधुकाल में जीवंत वृक्ष अपने जीर्ण पत्तों को झाड़ देता है। उनकी जगह नए कोमल पत्ते निकल आते हैं। मरे पत्तों को डाल से चिपकाना मूढ़ता है। सक्षम पत्रकार जीवंत और मृत की पहचान रखते हैं। वे नये परिवेश में कुछ पुरानी बातें छोड़ते हैं एवं नयी बातें जोड़ते हैं। परिवर्तन के क्रम में कुछ न कुछ बदलता रहता है, जुड़ता रहता है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् पत्रकारों ने नए युग, नए जमाने, नये ढंग एवं नयी परिपाटी पर दृष्टि डाली। उन्होंने आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को अपना उपजीव्य बनाया। उनका यथार्थवाद संपूर्णता, स्वतंत्रजीवन चित्रण एवं मानव के सामाजिक संबंधों पर आधारित था। पत्रकारों के समाजवादी यथार्थवाद द्वारा अस्थिर बुर्जुआ ढांचे पर निर्मम प्रहार हुआ। कुछ यथार्थवादी पत्रकारों ने सतर्क, जागरूक और सोद्देश्य समाज रचना पर बल दिया। समाजवाद के समर्थन में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने स्पष्ट किया कि समाजवादी यथार्थवाद जीवन के ज्वलंत प्रश्नों की अथक गवेषणा है। इसके समर्थकों के समक्ष एक मात्र यही उद्देश्य रहता है कि कैसे समूची मानव जाति में एक सामाजिक चेतना पैदा हो जिससे लोग सुख-शांति से रह सकें। शोषण, उत्पीड़न का अंत हो जाए और मानवता पल्लवित पुष्पित हो।

नव निर्माण काल की पत्रकारिता संपूर्ण मानव जीवन को युग और विचार के संदर्भ में यथार्थ बनाना चाहती थी। ‘नये पत्ते’, ‘पातल’, ‘प्रतीक’, ‘निकर्ष’, ‘संदेश’, ‘भारती’, ‘अपरम्परा’, ‘युगचेतना’, ‘आधार’, ‘उत्कर्ष’, ‘क ख ग’, ‘लय’, ‘ज्ञानोदय’, ‘कल्पना’, ‘धर्मयुग’, ‘साप्ताहिक हिन्दुस्तान’, ‘नयी धारा’ आदि पत्र-पत्रिकाओं से यही स्वर गुंजायमान हुआ कि समाजवादी किसी बाहरी प्रेरणा में विश्वास करने के बजाय इंसान की दिली, दिमागी में विश्वास करता है। मार्क्सवाद, लेलिनवाद में आस्था रखनेवाले पत्रकारों ने ऐसे मानव के निर्माण का उपक्रम रचा जिससे नव भारत रूढ़िग्रस्त चेतना से मुक्त हो, मानव मूल्यों के प्रति आस्थावान हो, समाज को समस्त मानवता के हित में प्रवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृत संकल्प हो, संकीर्णता और कृतिम विभाजन से दूर रहे, एवं स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ़ तथा संगठित हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने देश में सूचना माध्यमों का जाल बिछा दिया गया। स्वतंत्रराष्ट्र के नागरिकों को सूचनाएँ प्राप्त करने का नैतिक अधिकार होता है। प्रजातंत्र की सफलता हेतु आवश्यक है कि नागरिकों को देश और सरकार की सही सही जानकारी समय पर दी जाए। विधि कार्यों के संपादन हेतु जन माध्यम अभिप्रेरक के रूप में कार्यरत हुए। राष्ट्र के नव निर्माण में जन संचार के माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

पत्रकारिता समय और समाज का यथार्थ प्रतिबिम्ब होती है। समाज से प्रेरित होकर पत्रकार समाज की वस्तुस्थिति, उसमें व्याप्त असंगति और विषमताओं की यथार्थ चर्चा करता है। स्वतंत्रोत्तर भारत के पत्रकारों ने उन कारकों की खोज की जिनसे समाज आन्दोलित हुआ। विभिन्न समस्याओं के निदान, समाधान की चेष्टा द्वारा हिन्दी पत्रों ने रचनात्मक भूमिका निभाई। स्वाधीनता के पश्चात् दैनिक पत्रों के प्रकाशन एवं प्रसार संख्या में वृद्धि हुई। नव निर्माण काल के कुछ श्रेष्ठ पत्रों में ‘नवभारत टाइम्स’ (नई दिल्ली, 1947), ‘नई दुनिया’ (इंदौर, 1947), ‘प्रदीप’ (पटना, 1947), ‘नव प्रभात’ (ग्वालियर, 1948), ‘युगधर्म’ (नागपुर, 1951), ‘स्वतंत्रभारत’ (लखनऊ, 1947), ‘जागरण’ (कानपुर, 1947), ‘अमर उजाला’ (आगरा, 1948), ‘सन्मार्ग’ (कलकत्ता, 1948), ‘नवजीवन’ (लखनऊ, 1947), ‘राष्ट्रदूत’ (जयपुर, 1951), ‘राजस्थान पत्रिका’ (जयपुर, 1950), ‘देशबंधु’ (भोपाल), ‘आज’ (वाराणसी), ‘हिन्दुस्तान’ (जबलपुर 1959), ‘दैनिक ट्रिब्यून’ आदि सैकड़ों हिन्दी पत्र प्रकाशित हुए जिनके द्वारा नवयुग की चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई। ‘धर्मयुग’ (1950), ‘साप्ताहिक

हिन्दुस्तान' (1950), 'ब्लिट्ज' (1962), और 'दिनमान' (1965) साप्ताहिक पत्रों के अतिरिक्त हजारों पाक्षिक और मासिक पत्रों ने सन् 1948 से 1974 के मध्य भारत में साहित्य, राजनीति, शिक्षा, वाणिज्य, कृषि, विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा, खेल, फिल्म, संस्कृति, धर्म के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला।

स्वातंत्र्योत्तर पत्र-पत्रिकाओं ने जहाँ सांस्कृतिक अभिरुचि को प्रोत्साहित किया, नवचेतना का विकास किया और सामाजिक जीवन के उत्थान को शिक्षा दी है वहीं भाषा और शिल्प के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। पहले समाचार पत्रों के द्वारा बोल-चाल व सामान्य जन की भाषा को परिष्कृत जनभाषा के रूप में प्रयोग करने के लिए सफल प्रयत्न किया। भारतीय पत्रकारिता ने आरंभ में तदयुगीन जीवन को नवचेतना का मंत्र दिया। इस नव चेतना से सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और दैनिक जीवन ने अंगड़ाई ली और सोई हुई चेतनाएँ जागृत हो गई जिसने साहसिक संघर्षों को प्रेरणा दी और राष्ट्र को पराधीनता से मुक्त कराया।

स्वतंत्रता के पश्चात् पत्र-पत्रिकाएँ एक आवेग के साथ सामने आने लगी और उनमें छपे हुए समाचार जीवन को एक दूसरी दिशा की ओर ले जाने में सक्षम हुए। मनुष्य का व्यक्तित्व एक बन्द कमरे के समान होता है और पत्रकारिता वह हवा है जो उस बन्द कमरे को झटके से खोल देती है। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता ने यह काम और भी अधिक तीव्रता से किया है। एक ओर जहाँ उसने सुप्त मानव तन्त्र को आगे बढ़ाया है वहीं दूसरी ओर अंधविश्वासों में कमी आई है। पुरानी मान्यताएँ धीरे धीरे समाप्त हो रही हैं। नित्य प्रति समाचार पत्रों में ऐसे समाचार प्रकाशित होते हैं जो न केवल सड़ी गली मान्यताओं के प्रति अविश्वास पैदा करती हैं, अपितु विद्रोह की आग भी भड़काती है। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता ने प्रत्येक मनुष्य के मन में स्वाभिमान, आत्मरक्षा का भाव, अस्तित्व के प्रति चिंता और बौद्धिक क्षमता जैसी भावनाओं को विकसित किया है। पत्रकारिता ने यह काम सीधे और सरल भाषा में कर दिखाया। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता ने जहाँ जनजागरण का संदेश दिया है वहीं सुधार और परिष्कार का भी काम किया है। समानता, भातृत्व, स्वतंत्रता और उन्मुक्तता की नींव पर निर्मित मानव समाज का ढांचा खड़ा करने और उसे मजबूत बनाने में भी विशेष योगदान दिया है। शिशु हत्या, बाल विवाह, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति और छुआछूत जैसी कुप्रथाओं को दूर करने में हिन्दी पत्रकारिता ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। पत्रकारिता ने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक अर्थात् समग्र राष्ट्रीय चेतना को गहन रूप में परिवर्तित किया है। भारतीय जनजागरण का अनुभव सर्वप्रथम बंगभूमि ने किया, इसलिए स्वाभाविक रूप से भारतीय पत्रकारिता जिस नव जागरण और सुधार परिष्कार की भावना को लेकर चली उसका क्रम आज भी जारी है। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में ही हिन्दी पत्रकारिता ने इस दिशा में नवीन चेतना को जागृत किया। फलस्वरूप स्वातंत्र्योत्तर भारत में विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति मिल गई। स्वतंत्रता के पूर्व में पत्रिकाओं का मुख्य ध्येय राष्ट्रीय स्वाधीनता का संघर्ष और प्रजा की समस्याओं का समाधान करना ही था, किंतु स्वातंत्र्योत्तर वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता ने जहाँ देश और समाज का सर्वांगीन विकास करने का प्रयास किया वहीं जन-जागृति, नवोन्मेष और समाज सुधार व परिष्कार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता युगीन चेतना की अभिव्यक्ति है उसमें लोकमानस प्रतिरूपित हुआ है और यही युगधारा स्वातंत्र्योत्तर पत्रिकाओं की प्राणधारा है।

पत्र-पत्रिकाएँ समाज का दर्पण होती हैं। समाज में जो हुआ और जो हो रहा है या होगा इससे संबंधित समस्त कार्यकलाप पत्र-पत्रिकाओं में चित्रित होता है। इस समस्त कार्य के पीछे पत्रकार का विशेष हाथ होता है। पत्रकारिता में जीवन के यथार्थ को अधिकाधिक रूप से समाज को प्रभावित करने की जो क्षमता होती है यदि उसमें पूर्ण सच्चाई हो तो उस क्षमता को और भी बल मिलता है और अनिवार्यतः समाज उससे प्रभावित होता है। भारतीय पत्रकारिता के विकास की कहानी राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों एक-दूसरे के संपूरक हैं। यदि पत्रकारिता को राष्ट्रीयता ने प्रवर्धन दिया तो पत्रकारिता ने राष्ट्रीयता के विकास की अनुकूल भूमि तैयार की। प्रत्येक युग का पत्रकार समाज के समक्ष सच्चाई को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। पत्रकारिता जनता का सेवक है। यह न मालिकों के प्रति उत्तरदायी है और न किसी सरकार या अधिकारी के प्रति सिर झुकाने को बाध्य है। उसे जनता के सामने जवाब देना है।

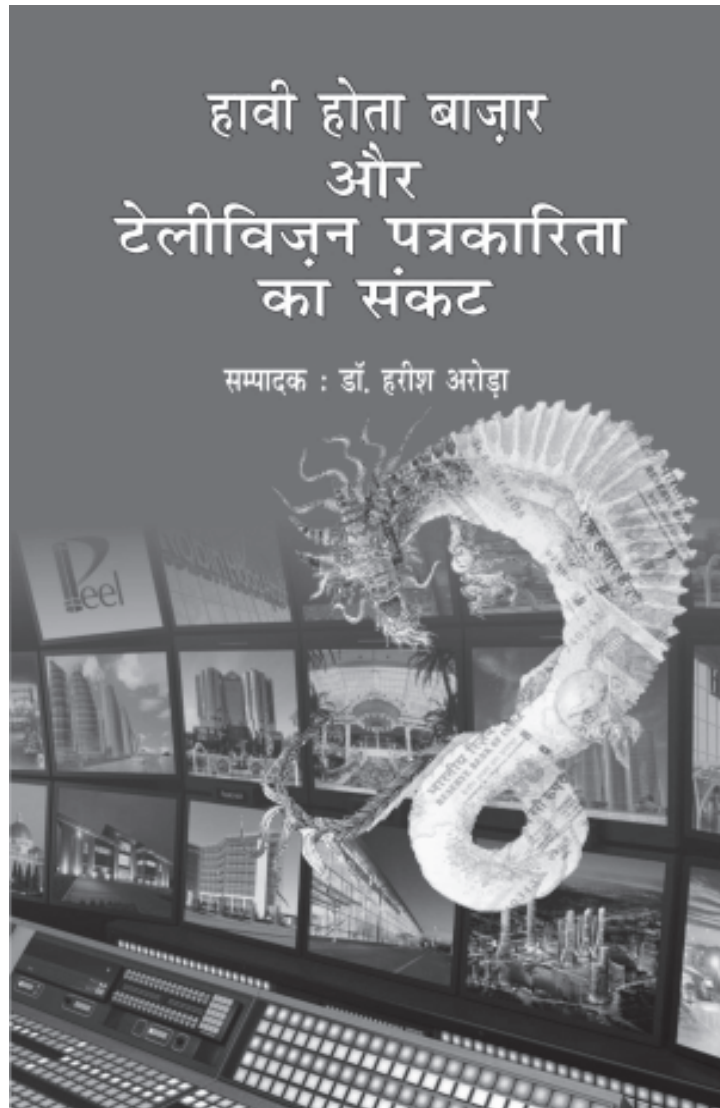
आज की पत्रकारिता का दायित्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। पत्रकारिता और सामाजिक दायित्व के विस्तृत पटल पर यह विचारणीय है कि पत्रकारिता द्वारा अब तक किन किन क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन हो रहा है या किस किस क्षेत्र में संभव है। आज पत्रकारिता के विस्तीर्ण जगत में क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार पत्रों की प्रसार संख्या में हो रही निरंतर वृद्धि इस तथ्य की द्योतक है कि उनका भविष्य उज्वल है, पर आज जिस प्रकार से पत्रकारिता पर महानगरीय मानसिकता मुख्य रूप से हावी है, उसे देखकर कहना पड़ता है दृष्टि से व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। वर्तमान समय में समाज में रहने वाले व्यक्तियों के अस्तित्व को प्रभावित करने वाली अनेक समस्याएँ हैं जो उसके लिए खतरा बनी हुई हैं। इन समस्याओं में निर्धनता, अकाल, महिलाओं के प्रति भेदभाव, हथियारों की होड़, निरक्षरता, बेरोजगारी, आर्थिक अन्याय, जनसंख्या वृद्धि, जाति भेद, पर्यावरण में बढ़ता प्रदूषण आदि अनेक सम्मिलित हैं। पत्रकारिता के माध्यम से इन समस्याओं के बारे में समाज को अवगत कराया जा सकता है तथा इनका विस्तृत विश्लेषण किया जा सकता है। समाचार पत्रों, रेडियो, दूरदर्शन आदि के माध्यम से इन समस्याओं पर प्रकाश डाला जा सकता है जिससे समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इन समस्याओं को दूर करने तथा इनसे निपटने की शिक्षा मिल सकती है। पत्रकारिता ही वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज को उचित और सही दिशा का ज्ञान होता है। समाज में व्याप्त विभिन्न विषमताओं पर टीका-टिप्पणी करना ही पत्रकारिता का मूल कर्तव्य है। आज की विषम परिस्थितियों

में देश को सक्षम बनाए रखना, राष्ट्रीय भावना को मजबूती प्रदान करना, सामाजिक तथा आर्थिक बुराईयों का समाधान करना, धर्म निरपेक्ष भावना को बलवान बनाना, समाज के विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे के समीप लाकर एकजुट करना, क्षेत्रीय भावना को समाप्त करना आदि पत्रकारिता के मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। निष्कर्ष रूप में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि स्वतंत्रता के पश्चात् की पत्रकारिता आज प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी है। आज प्रत्येक देश पत्र-पत्रिकाओं के योगदान के फलस्वरूप जन जागृति के नये नये दरवाजे खोलकर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

संदर्भ

1. 'आधुनिक पत्रकारिता', डॉ. अर्जुन तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. 'पत्रकारिता के नए परिप्रेक्ष्य', राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. 'पत्रकारिता के विविध रूप', डॉ. रामचन्द्र तिवारी, आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली
4. 'हिन्दी पत्रकारिता', डॉ. रत्नाकर पाण्डे, मणिमय प्रकाशन, कलकत्ता
5. 'हिन्दी पत्रकारिता के नए प्रतिमान', बच्चन सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
6. 'हिन्दी पत्रकारिता का विकास', एन. सी. पंत, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
7. 'हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता', डॉ. अवधेश कुमार, के. के. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
8. 'हिन्दी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास', डॉ. अर्जुन तिवारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. 'हिन्दी पत्रकारिता: दशा और दिज्ञा', संपा- जयप्रकाश भारती, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
10. 'हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास', डॉ. रमेश कुमार जैन, हंस प्रकाशन, जयपुर
11. 'हिन्दी पत्रकारिता: विविध अयाम', डॉ. वेद प्रताप वैदिक, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तक



उन्नीसवीं सदी की साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रवादी चिन्तन

बबिता सिंह

शोधार्थी, भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदंत मार्तण्ड' (1826) का प्रकाशन प. युगल किशोर सुकुल ने 'हिन्दुस्तानियों के हित हेतु' किया। लेकिन 'पयामें आजादी' (1857) हिन्दी का पहला पत्र था जिसने क्रांति का बिगुल बजाया।¹¹ अल्प समय तक निकलने वाला यह पत्र लोगों को उद्वेलित करने वाला था। इस पत्र ने रइसों, रजवाड़ों को एकजुट होने की अपील की। धीरेन्द्र नाथ सिंह लिखते हैं 'यह पत्र स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करने तथा जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने वाला प्रथम पत्र था। उसमें जनता को उद्वेलित करने वाली भाषा थी। उस पत्र ने जनता को एकजुट होकर फिरंगी सरकार को देश से भगाने का आह्वान किया था। राष्ट्रीय चेतना जगाने वाला अपने युग का अकेला पत्र था।'¹²

आन्दोलन की विफलता के कारण यद्यपि यह पत्र बंद हो गया। 1857 के बाद प्रेस पर जिस तरह की सेंसरशिप लगाई गई अपने ओजस्वी स्वर के कारण इसे बंद होना ही था।

'हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा
पाक वतन है कौम का, जन्मत से भी प्यारा।

X X X

तोड़ो गुलामी की जंजीरे बरसाओ अंगारा
हिन्दू, मुसलमां सिख हमारा भाई-भाई प्यारा,
ये है आजादी झंडा, इसे सलाम हमारा।'¹³

यह हिन्दी पत्रकारिता का आह्वान था जिसने ब्रिटिश राज की नींव हिला दी। घबराई ब्रिटिश सरकार ने विद्रोह की इस आवाज को दबाने के लिए 13 जून 1857 को जिस गैंगिंग एक्ट को लागू किया उसने आने वाले वर्षों में विद्रोह के स्वर को धीमा तो कर दिया लेकिन खत्म नहीं कर पाई। दस वर्ष के पश्चात हिन्दी पत्रकारिता अपने नये स्वरूप में अवतरित हुई।

उन्नीसवीं सदी का पाँचवा दशक भारत के इतिहास का ऐसा समय था जब राष्ट्रीय चेतना अब तक के अपने प्रबलतम रूप में उपस्थित थी। चारों तरफ से अंग्रेजी शासन के चंगुल में जकड़ा जन-मानस छटपटा रहा था। 1857 के विरोध के द्वारा क्रांति का जो बिगुल फूँका गया वह कम्पनी शासन के अंत का बायस बना, किन्तु यह कम्पनी शासन का अंत था अंग्रेजी शासन का नहीं। अब शासन ब्रिटिश पार्लियामेण्ट प्रकारान्तर से क्राउन के निगरानी में होने लगा। भारत में उनके प्रतिनिधि वही पुराने कम्पनी कर्मचारी ही थे। बदलाव सिर्फ इतना ही था कि अब लाभ ब्रिटेन की सरकार ले रही थी और मुनाफाखोरी की प्रकृति ज्यों की त्यों थी। 1857 के पश्चात बस शासन की रणनीति बदली थी।

स्वदेशी के स्थान पर विदेशी वस्तुओं आयात और उच्च कीमत पर बिक्री, देश में कल कारखानों का अभाव कर के आर्थिक प्रगति रोक रहे थे, तो शिक्षा के नाम पर अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार कर सांस्कृतिक प्रगति को। समाज में बाल-विवाह चरम सीमा पर था तथा स्त्री शिक्षा का अभाव था। बाल-विवाह के कारण एक और जहाँ स्त्री मृत्यु दर पर बढ़ रही थी तो दूसरी ओर विधवाओं की समस्या भी बढ़ रही थी। देश में सामाजिक सुधार के लिए ब्रह्म समाज, आर्य समाज और प्रार्थना सभा आदि सक्रिय हो समाजिक उत्थान के लिए कटिबद्ध थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में विदेशी सत्ता से मुक्ति के लिए सभी स्तरों पर जनचेतना जगाने के लिए हिन्दी पत्रकारिता ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से जन-मन में नई चेतना उद्वुद्ध करना पत्रों का मुख्य धर्म बन गया। अतः उस युग की पत्रकारिता की मुख्य धारा नवजागरण ही कही जायेगी। इस काल में अपनी पत्रकारिता के द्वारा हिन्दी भाषा जनता को जाग्रत करने का कार्य भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने किया। 15 अगस्त 1867 को 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन हुआ उससे समाज एवं देश के उद्धार की आकांक्षा स्पष्ट होती है-

'खल गन साँ सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।

अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुःख बहै।

बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, जग आनंद लहै।

तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।”¹⁴

अपने अस्मिता की पहचान और स्त्री-पुरुष समानता जो मानवता की सबसे बड़ी पुकार है, उसकी आवश्यकता को समझने का सर्वप्रथम प्रयास हिन्दी में भारतेन्दु द्वारा ही किया गया। मध्यकालीन कवियों के साहित्य से परिचित करवाने के साथ-साथ पत्रिका अपने समय पर दृष्टि रखते हुए अपने पत्रकारीय दायित्व का भी निर्वहन कर रही थी।

यह वही समय था जब हिन्दी गद्य भाषा को स्थायित्व प्राप्त हो रहा था। हिन्दी पत्रकारिता का दूसरा चरण हिन्दी गद्य-निर्माण का युग माना जाता है। गद्य के परिष्कृत और परिमार्जित होने का यह ऐसा युग था जिसने अपना प्रभाव परवर्ती लेखन पर डाला। स्वालंबन और स्वदेशी की आवश्यकता का हिन्दी नवजागरण के पुरोधा अनुभव कर रहे थे और जनता को इसके प्रति सचेत कर रहे थे। उन्हे स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि ब्रिटिश शासन देश को खोखला कर रही है जिसके कारण दैन्यता बढ़ती जा रही है। “मार्च 1874 में ‘कविवचन सुधा’ में भारतेन्दु हरिश्चंद्र एक प्रतिज्ञा पत्र प्रकाशित किया था, जो हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी चेतना का प्रथम शंखनाद था- ‘हम लोग आज के दिन से कोई बिलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे। हिन्दुस्तान का ही बना कपड़ा पहिनेंगे।”¹⁵

1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से बहुत पूर्व ही भारतेन्दु यह घोषणा कर रहे थे। बाद में 1905 में बंगाल विभाजन के साथ जो स्वदेशी आंदोलन उद्वेलित हुआ चेतना के निर्माण में कहीं न कहीं पत्रकारिता का बहुत बड़ा योगदान था। ‘हरिश्चंद्र चंद्रिका’ (1884) में भारतेन्दु ने लिखा-

“भीतर-भीतर सब रस चूसै। / बाहर से तन-मन-धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज, / क्यों सखि, साजन! नहिं अंग्रेज।”¹⁶

‘नारि नर सम होंहि’ भारतेन्दु के लिए मात्र विचार नहीं था। इसे मूर्त रूप देते हुए उन्होंने 1 जनवरी 1874 में स्त्रियों के लिए पत्रिका ‘बाला बोधिनी’ का प्रकाशन किया।

“जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति,
नारी जो सोई पुरुष, यामैं कुछ न विभक्ति।”¹⁷

यों तो स्त्री संबंधी प्रश्नों को नवजागरण के उन्नायक पूरे देश में उठा रहे थे लेकिन हिन्दी विभिन्न कारणों से इससे अछूता था, वैसे स्वामी दयानंद स्त्री संबंधी प्रश्नों पर बड़े मुखर थे। स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार के लिए यह पत्रिका महत्वपूर्ण थी। उस समय जबकि नारी की अधोगति अपनी चरम सीमा पर थी इस पत्रिका ने नारी प्रगति की दिशा में नई मशाल जलाई। अपनी विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से भारतेन्दु नवजागरण का संदेश प्रसारित कर रहे थे साथ ही साथ जनता का आह्वान भी कर रहे थे। भारतेन्दु की पत्रिकाओं ने हिन्दी भाषी जनता तथा हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए जिस राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया उससे सर्वसाधारण में जागृति की एक नई लहर फैलने लगी।

सन् 1877 में हिन्दी पत्रकारिता में नया मोड़ आया। कलकत्ते से प०. दुर्गादास मिश्र एवं प०. छोटू लाल मिश्र ने ‘भारत मित्र’ का प्रकाशन किया। अपनी मनोरंजनपूर्ण शैली और अंग्रेजी सरकार पर किए गए तीखे व्यंग्य के कारण यह जनता के बीच बहुत लोकप्रिय थी। यह पत्र राजनीति के अधिक निकट था। बालमुकुंद गुप्त ने जब 1899 में इसका संपादन भार संभाला तो इसे विशेष ख्याति मिली। ‘शिवशंभु के चिट्ठे’ तथा ‘चिट्ठे और खत’ इनके विशेष कॉलम थे। भाषा परिष्कार का कार्य भी इन्होंने ‘भारत मित्र’ के माध्यम से किया। बंगाल की नवजागरण की चेतना से प्रेरित यह पत्र हिन्दी प्रदेश में काफी प्रतिष्ठित था।

“‘भारत-मित्र’ शुद्ध राष्ट्रवादी समाचार पत्र था। देश की राजनीति, वाणिज्य भाषा और समग्र जातीय चेतना का विकास उसका लक्ष्य था।”¹⁸ भाषा और साहित्य के उन्नति के अभिप्राय से एक बहुत ही विख्यात पत्र ‘हिन्दी प्रदीप’ (1877-1910) निकला। इसके संपादक बालकृष्ण भट्ट थे। निरन्तर घाटा सहते हुए भी 33 वर्षों तक मातृभाषा और मातृभूमि की उन्नति के लिए पत्र का प्रकाशन अन्यत्र नहीं मिलता। श्रीनारायण चतुर्वेदी के हवाले से सुजाता राय लिखती हैं- “इस पत्रिका में उच्च कोटि के साहित्यिक निबंध, कहानी, कविताएं आदि निकलती ही थीं साथ ही यह ऐसा मासिक पत्र था जो हिन्दी क्षेत्र में राजनीतिक चेतना जागृत करने में बराबर संलग्न रहा था। भट्ट जी इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। वे अपने अल्प वेतन से अपना और अपने परिवार का पेट काटकर और घाटा सहकर इस पत्र को निकालते रहे। हिन्दी पत्रकारिता की इतनी लंबी निष्काम सेवा का उदाहरण हमें नहीं मिलता।”¹⁹

‘हिन्दी प्रदीप’ में सामाजिक-धार्मिक समस्याओं एवं कुरीतियों का भंडाफोड़ एवं राजनीतिक कुठाराघातों पर तीव्र आलोचना प्रकाशित होती थी लेकिन उसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषा का प्रचार, उसकी समृद्धि तथा देश-दशा का सुधार था। भट्ट जी की मान्यता थी कि देश की एकता के लिए हिन्दी का प्रचार आवश्यक है। 1877 में ‘हिन्दी प्रदीप’ का प्रकाशन हुआ और 1878 में ही लार्ड लिटन का दमनात्मक वर्नाक्युलर एक्ट पास हुआ। विपरीत परिस्थितियों में भी यह पत्र अपने धर्म पर अडिग रहा। सुजाता राय लिखती हैं- “‘हिन्दी प्रदीप’ पूरी तरह से साहित्य, देश और समाज कल्याण के लिए समर्पित पत्र था। उस समय स्वतंत्रता और स्वाभिमान जैसी बातों की कल्पना करना भी अपराध माना जाता था। ऐसे समय में अंग्रेजी राज के खिलाफ

आवाज उठाना अथवा उसको करना बहुत बड़े साहस का काम था।¹⁰

‘हिन्दी-प्रदीप’ के पश्चात ‘सारसुधानिधि’ (1879) तथा ‘उचित वक्ता’ (1880) नामक दो प्रसिद्ध हिन्दी पत्र प्रकाशित हुए। ‘सारसुधानिधि’ प०. दुर्गा प्रसाद मिश्र का साप्ताहिक पत्र था। आरंभ में यह पत्र अपेक्षा कृत मध्यमार्गी दृष्टि अपनाते वाला था। लेकिन जैसे ब्रिटिश शासन का शोषणकारी चरित्र बेनकाब होता गया इस पत्र का तेवर बदलता चला गया और यह कठोर राजनीतिक टिप्पणियाँ प्रकाशित करने लगा। यह पत्र उस युग का सचेत और सतेज पत्र था जिसमें प्रकाशित सामग्री राजनीतिक और सामाजिक चेतना के प्रसारण में बहुत सहायक सिद्ध होती थी। टैक्स, अकाल और महंगाई से संबंधित अनेक गीत इसमें प्रकाशित हुए-

“इत अकाल उत टिकस लगाये कर सब पै बरजोरी,
तेज अनाज ठीक कहूं नहीं भरत प्रजा सब दोरी।
भीख मांगत लै झोरी।”¹¹

‘सारसुधा निधि’ नितान्त लोकपरक पत्र था, क्योंकि इसमें लोकजीवन और देश-दशा का बड़ा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया। हिन्दी भाषा के प्रसार और हिन्दी भाषी जनता के उद्धार के लिए कलकत्ते से प्रकाशित यह पत्र प्रतिबद्ध था। पत्र के प्रथम वर्ष में श्री राधाचरण गोस्वामी का निबंध ‘यमलोक की यात्रा’ छपा। जिसमें भारतीयों की आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है- ‘...हाय! अभी मर गए! कुछ भी तो जिन्दगी का मजा न देखा। उनविंशति शताब्दी में केवल 25 वर्ष ही जिए। हा! न सारे हिन्दुस्तान में नागरी का दफ्तर और हिन्दी भाषा का प्रचार देखा। न विधवा-विवाह प्रचलित हुआ। न विलायत जाने की रोक उठी। न जाति-पाति का झगड़ा मिटा। न सिविल-सर्विस में भर्ती होकर हिन्दुस्तानियों को उच्च पद मिले। न हमारे जीते प्रेस एक्ट उठा। न लाइसेंस टेक्स का काला मूँ हुआ। न लिबरलों की दयादृष्टि देखी। और हाय! न काबुल की लड़ाई का शुभाशुभ परिणाम मालूम हुआ।’¹²

इन तमाम बाधाओं के उपरान्त भी उस युग के पत्रकार हार नहीं मानते थे। कृष्ण बिहारी मिश्र लिखते हैं- “देशप्रीति की प्रेरणा उस काल के पत्रकारों की मुख्य प्रेरणा थी इस प्रेरणा का मुकाबला इस साम्राज्यशाही दैत्य से था, जो नृशस शासन तंत्र से जातीय प्रेरणा को ही कुचल देने पर आमादा था। पत्रकारिता की अदम्य शक्ति से अंग्रेजी सरकार परिचित थी। इस शक्ति को कुठित करने के लिए तरह-तरह के जटिल कानून की रचना करती रहती थी। ... आदिकाल के पत्रकारों का संघर्ष अनेकमुखी था। जिस हिन्दी समाज के जागरण के उद्देश्य लेकर पत्रों की यात्रा शुरू हुई उस समाज में पत्रों और आधुनिक ज्ञान के स्वागत की आबोहवा का सर्वथा अभाव था।”¹³

इन सब के बावजूद जागरण काल की पत्रकारिता अपने उद्देश्य के अनुकूल अपने दायित्व का निर्वहन करने में प्रतिबद्ध थी। इस कठिन संघर्ष में मात्र उनकी जातीय उत्थान की अभिलाषा उन्हे इस राह पर अडिग रहने के लिए प्रेरित करती थी। जातीयता कि उत्थान के लिए प्रतिबद्ध प०. दुर्गा प्रसाद मिश्र ने 1880 में पुनः एक पत्र ‘उचित वक्ता’ का प्रकाशन किया। ‘उचित वक्ता’ के माध्यम से दुर्गा प्रसाद मिश्र हिन्दी के प्रचार-प्रसार तथा पाठक तैयार करने में मन-वाणी-कर्म से प्रयासरत थे। लेकिन अपने समय के तमाम पत्रों की भाँति यह पत्र भी वित्तीय समस्याओं का सामना करता रहा लेकिन सत्य की अभिव्यक्ति में निर्भीक रहा। अंग्रेजी शासन के कारण देश की दिन प्रतिदिन होती दयनीय दशा को अपने संपादकीय में प्रमुख स्थान दिया- “भारत वर्ष को अंग्रेज राजपुरुषों में ऐसा हुआ है कि अब यह अस्थिचर्म विशिष्ट हो गई है। इसके शरीर में रक्त मांस का लेशमात्र भी नहीं रहा। वस्तुतः भारतवर्ष की न्यायी दीन-देश आजकल पृथ्वी में अतिविरल है।”¹⁴

अपने दीन-हीन दशा से उबरने के लिए उन्होंने देशवासियों का आह्वान किया। साथ ही साथ अपने इस स्थिति से उबरने के लिए राजनैतिक प्रतिभागिता की भी आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने जोर दिया कि इंग्लैण्ड में भारतीय प्रतिनिधि जरूर रखे जायें- “आज हमारा प्रतिनिधि विलायत में नहीं हैं। इसी से हम भारवासी अंध एवं पंगु की न्यायी बैठे मुंह निहार रहे हैं और कुछ बस नहीं चलता। बस, पिंजरे के पक्षी की तरह फड़फड़ा रहे हैं।”¹⁵ अपने समय की विशिष्ट मांग स्त्री संबंधी प्रश्नों पर भी ‘उचित वक्ता’ अत्यंत मुखर था। स्त्री शिक्षा को सामाजिक उत्थान का प्रतीक मानते हुए उन्हें कुरीतियों से बाहर निकालने का माध्यम भी बताया। सन् 1881 में बांकीपुर, पटना के प्रसिद्ध छापाखाने ‘खड्गविलास प्रेस’ से ‘क्षत्रिय पत्रिका’ का प्रकाशन हुआ। कुँवर पाल सिंह लिखते हैं- ‘यह पत्रिका उस युग के नवजागरण की प्रतिरूप थी। इसने सामाजिक कुरीतियों पर सशक्त प्रहार किया।’¹⁶ भाषा के संबंध में इसका स्पष्ट मत था- ‘उर्दू की अपेक्षा हिन्दी सरल और सुगम भाषा है अतः यही जन भाषा है और इसे ही कचहरी की भाषा बननी चाहिए। हिन्दू तथा मुसलमान एक होकर हिन्दी का प्रचार करें तभी देश का कल्याण होगा।’¹⁷ यह पत्रिका भी वित्तीय अभाव का शिकार हुई। यह पत्रिका यद्यपि नाम से जाति बोधक प्रतीत होती है किन्तु यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी। ‘क्षत्रिय पत्रिका’ कभी जाति पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुई और वह आधुनिक हिन्दी की प्रगति के लिए निरन्तर सचेष्ट रहीं। ... इसमें संदेह नहीं कि ‘क्षत्रिय पत्रिका’ ने हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता को दिशा दी।¹⁸

नवजागरण कालीन पत्रों में तेजस्वी और हास्यव्यंग्य से परिपूर्ण कानपुर से प्रकाशित ‘ब्राह्मण’ (1883) पत्रिका बेमिसाल

रही। भारतेन्दु युग के जाने माने साहित्यकार पण्डित प्रताप नारायण मिश्र इसके संपादक थे। 'क्षत्रिय' पत्रिका की भाँति यह भी अपने नाम से जातीय पत्रिका का बोध करवाता रहा लेकिन यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका अपने समय के श्रेष्ठ निबंधों के लिए जानी जाती है। 'ब्राह्मण' एक स्वाभिमानी पत्र था। जिसकी घोषणा प्रस्तावना में की गई थी कि "हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा जिस तरह सब जहान में कुछ हैं। हम भी अपने गुमान में कुछ हैं।"¹⁹ मुहावरेदार भाषा और हिन्दी गद्य को सहज, सुगम और प्राणवंत स्वरूप प्रदान करने में इस पत्रिका का विशेष योगदान रहा। इसके ग्राहकों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी लेकिन उधार वाले अधिक थे। जिनके विषय में मिश्र जी ने चुटीलेपन से फरियाद किया-

“दाता जजमान! प्यारे पाठक! अनुग्राहक ग्राहक!!!

चार महीने हो चुके 'ब्राह्मण' की सुधि लेहु

गंगा माई जै करे हमें दक्षिणा देहु।।

X X X

आठ मास बीते जजमान

अब तो करो दच्छिनादान।। हर गंगा।।"²⁰

हिन्दी पत्रों के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई थी कि उसे ग्राहकों का सहयोग नहीं मिल पाता था। इसके कई कारण थे- इस युग में अभी शिक्षा का प्रसार सीमित था। शिक्षित समाज के अभाव में अखबारों का प्रचलन कम था। यद्यपि हिन्दी भाषी समाज में राष्ट्रवाद की भावना प्रबल थी, वह दूसरों से अपने देश-दशा का हाल जानने को उत्सुक रहते थे लेकिन स्वयं पत्र खरीदकर पढ़ने का प्रचलन बहुत कम था। साथ ही साथ प्रशासन का असहयोगात्मक रवैया भी इसके मार्ग में बड़ी बाधा उत्पन्न करता था। तमाम बाधाओं के बाद प्रखर राष्ट्रवाद की चेतना ही थी। इन भाषा सेवी पत्रकारों को प्रेरणा प्रदान करती रहती थी।

हिन्दी भाषा की उन्नति तथा हिन्दी भाषा प्रचार के उद्देश्य को ही लेकर सन् 1886 में एक अत्यंत प्रसिद्ध पत्रिका का जन्म काशी में हुआ। वह पत्रिका थी- 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'। इस पत्रिका के उदय से हिन्दी पत्रिकाओं के इतिहास में स्वर्ण युग प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका के उद्देश्य के विषय में कुँवरपाल सिंह ने उसके मत के द्वारा स्पष्ट किया है- "यद्यपि वर्तमान समय में बहुतेरे हिन्दी के बड़े-बड़े पत्र प्रकाशित होते हैं परन्तु उनके उद्देश्य ऐसे महान उदार और सर्व विषय पूरित होते हैं कि अपनी हीन मातृभाषा पर विशेष ध्यान देने का उन्हें अवसर ही कम मिलता है। इसलिए इस पत्रिका का उद्देश्य केवल हिन्दी साहित्य सेवा रखा गया है।"²¹

इस काल (1826-1885) में नवजागरण और नयी चेतना से पूरा देश प्रभावित हो रहा था। नये विचारों को प्रसारित करने के लिए प्रेस और पत्र अद्वितीय भूमिका के साथ सामने आये। ब्रिटिश शासन और उसके दमनकारी चरित्र का स्वरूप जैसे-जैसे उजागर होता गया नवजागरण और परिवर्तन के कामी देशसेवी पत्रकारों की दृष्टि व्यापक एवं यथार्थवादी होती गई। इन परिवर्तनों से साहित्य भी निरपेक्ष न रह सका। दरबारी वृत्ति और रसिकता में कमी के साथ ही साहित्य और जीवन का संबंध जुड़ा जिससे कथ्य और शिल्प बदले। पत्रकारिता के ओजस्वी स्वर की क्षीण करने के लिए अंग्रेजी सरकार आरंभ से ही दमनात्मक रुख अपनाती रही। लेकिन पत्रकारिता के आदि पुरुष सीमित साधनों में भी बड़े आदर्श के साथ उपस्थित थे। नई चेतना के संपर्क में आये ये लोग अपने देश तथा समाज को नवीनता से संयुक्त करने की आकांक्षा रखते थे। दरअसल युगीन चेतना से संयुक्त ये पत्रकार अपने पत्रों के माध्यम से हिन्दी समाज तथा युगीन देशीय वातावरण एवं परिस्थितियों के बीच सेतु का काम कर रहे थे। पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को उभारने का कार्य 1857 में हुआ लेकिन सशक्त अंग्रेजों की कठोर दमन नीति ने विरोध के स्वर को मध्यम कर दिया। 1868 में देश की दुर्दशा-मोचन के लिए भारतेन्दु और उनके मण्डली के साहित्यकार जो सभी पत्रकार भी थे, नई प्रतिबद्धता के साथ सामने आये। यद्यपि आरंभ में ये पत्रकार राजभक्ति से युक्त थे। 'भारतेन्दु और प्रेमधन' में राष्ट्रीय चेतना का उत्तरोत्तर विकास हुआ जबकि बालकृष्ण भट्ट और सबसे अधिक प्रताप नारायण मिश्र अपनी तेजस्वी भूमिका में सामने आये। इनकी पत्रकारिता का स्वर भारत-दुर्दशा के वर्णन के साथ स्वदेशी का आह्वान है जिसके पुरोधा भारतेन्दु हैं। इनके साथ स्वर मिलाते हुए 'सारसुधानिधि' 'उचित वक्ता' और 'भारतमित्र' आदि पत्र भी सामने आते हैं। ये सभी औपनिवेशिक शासन से मुक्ति का मार्ग स्वदेशी में देखते हैं।

स्वदेशी और स्वभाषा ही इस युग की पत्रकारिता का मूल स्वर है। प्रताप नारायण मिश्र की निम्न पंक्तियाँ इस युग की पत्रकारिता के स्वरूप को स्पष्ट करने में समर्थ हैं- "यदि आप हिन्दुस्तानी हैं और हिन्दुस्तानी का उद्धार किया चाहते हैं तो अपने यहाँ की तुच्छ वस्तु एवं व्यक्ति को सारे संसार के उत्तमोत्तम पदार्थों अथवा पुरुषों से श्रेष्ठ समझिए और पूर्ण पौरुष के साथ दूसरे को भी यही समझाते रहिए यह प्रण कर लीजिए के चाहे जैसी हानि हो, चाहे जो कष्ट हो, कुछ चिन्ता नहीं हैं, सर्वस्व जाता रहे ...कठिन से कठिन नर्क जातना अनंत काल तक सहनी पड़े, पर हिन्द और अपनी हिन्दी से 'हम यह दो बात कहते हारे हैं, तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं।"²²

पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास के इस नवजागरण काल में हिन्दी समाचार पत्रों को अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त हुआ। पत्रों के संचालक या संपादक प्रायः सभी साहित्यकार थे जिनका उद्देश्य साहित्य सेवा तो था किन्तु वह सेवा केवल साहित्य तक

ही नहीं बल्कि देश की समस्याओं से संघर्ष करना भी उनका लक्ष्य था। इस समय के पत्र अपने साहित्य के माध्यम से युग-सत्य को व्यक्त करते थे। पत्रों की मुख्य चेतना राष्ट्रीय भावना जगाना, समाज-सुधार, हिन्दी भाषा एवं साहित्य को नया स्वरूप देना, देश को पराधीनता से मुक्त कराना स्वदेशी चेतना जगाना लक्ष्य था। वस्तुतः देश के निर्माण में उस युग के पत्रों की मुख्य भूमिका थी। इन पत्रों ने हिन्दी भाषा और साहित्य को नया स्वरूप प्रदान किया।

संदर्भ

1. हिन्दी पत्रकारिता का बृहद् इतिहास, अर्जुन तिवारी, वाणी प्रकाश, दिल्ली, 1997, पृष्ठ 97
2. हिन्दी पत्रकारिता : भारतेन्दु-पूर्व से छायावादोत्तर-काल तक, धीरेन्द्र नाथ सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2003, पृष्ठ 18
3. अर्जुन तिवारी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 96-97
4. वही, पृष्ठ 104
5. वही, पृष्ठ 105
6. कृष्ण बिहारी मिश्र, जातीय अस्मिता की जागरण भूमिका, पृष्ठ 13
7. अर्जुन तिवारी, पृष्ठ 107
8. वही, पृष्ठ 107
9. राष्ट्रीय जागरण और हिन्दी पत्रकारिता का आदिकाल, सुजाता राय, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 101
10. वही, पृष्ठ 93-94
11. सुजाता राय, पूर्वोक्त पृष्ठ 109
12. कृष्ण बिहारी मिश्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 25
13. अर्जुन तिवारी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 117
14. कृष्ण बिहारी मिश्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 26
15. हमारी विरासत, पूर्वोक्त, पृष्ठ 122
16. धीरेन्द्रनाथ सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 43
17. कुँवरपाल सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 53
18. धीरेन्द्रनाथ सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 43
19. वही, पृष्ठ 48
20. अर्जुन तिवारी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 120
21. कुँवरपाल सिंह, पूर्वोक्त, पृष्ठ 53
22. सुजाता राय, पूर्वोक्त, पृष्ठ 222

Oral Tradition and Culture: A Study of Dogra Folk Songs

KAMALDEEP KAUR

Assistant professor, English
Government Degree College, Udhampur, J&K

In a society, a message from one person to another is communicated through the mechanism of a medium. Oral narratives, being one of the active medium, transmit cultural knowledge from one generation to another where in they reflect gender dogma in many ways. Among the several ways, oral narrations play a major part in creating and reflecting gendered culture in a society. This paper is based on an exploration of oral folk songs sung by Dogra women of the Duggar community of North India. These songs are in the Kandi and Pahari dialects of Dogri. The study is only circumscribed to those Dogri folk songs that expose women's wishes, feelings, emotions, unfulfilled desires, and reactions. Folk songs with the themes containing rituals, festivals, or ceremonies have been excluded.

Keywords: Gender dogma, folksongs, Heritage, Rituals, Femininity, Patriarchy

The Dogri folksongs give an insight of Dogri culture, beliefs, social setup and response to historical change. Reflecting a broader domain of experiences—from mundane to extra ordinary, material to mystical, depressing to joyful, from birth to death, they serve as a repository of rich heritage of Dogri culture. Ostensibly, these songs instead of focusing on the domestic rituals and ceremonies deal with the conventional stereotypes associated with the idea of emphasized femininity. The paper aims to present an empirical study of women's folk songs in Dogri culture as an expression of their desires, feelings, perception in a socially acceptable form, i.e., within the domains of patriarchal setup.

Being an oral tradition, the Dogri folk songs include a wide range of styles, influences and social practices. They have the ability to engage people with the richness of the culture in an emotional way. This nexus between the folksongs and the folks representing that particular language can be analyzed as: "Folksongs not only help in understanding the socio – cultural and religious life of the community but also human psychology and the adaptability of an individual to his/her culturally constituted world."¹

A large diversity of folk songs like *pakhaan*², *murkiyaan*³, and *lokgeet*⁴ are available in Dogri culture. The contents of these songs are same but there are variations in dialects, tunes, and rhythms of the folk songs. They are mostly sung with musical instruments in a rhythmic manner in Jammu and Kashmir (a state in northern part of India). Their lyrics being almost simple and naive in their nature are based on candor and traditional Dogri folk tunes. Main occasions of singing these songs are boy childbirth, wedding, festival, welcoming and *vidaigeet*⁵, *satsang*⁶, joking relations, love theme, separation, costumes, farming, cultural awakening, historical events, fasting- feasting, festivals and so on.

The females who sing these songs internalize them and pass them to further generations through their performances. "Dominant forms of subjectivity (or identity) are maintained, not through physical restraint or coercion, but through self-surveillance and self-correction to social norms."⁷ In this way *lokgeet* (folk song)— contents spread across the community without any deliberate efforts. This normative control through gender inequality ensures the spread of the idea of emphasized femininity in a more potent way. Subscribers of these songs tend to be stereotypical images denied of their autonomous choices.

Much of work has been done on the North Indian folk songs by many writers, who have dealt with folk songs from various perspectives, but none of them has taken women as a talking point, which is hence the main hub in this paper. Mishra⁸ has only tingled upon women's conditions in brief, leaving most of the important issues untouched. Wade⁹ stressed only on the wedding songs. Chauhan¹⁰ and Srivastava¹¹, on the other hand, have dealt with the folk songs from a socio-cultural context. Whereas, Kuldeep¹² and Upadhyaya¹³ have given only a customary view of folk songs and have not worked on

them from the woman's perspective. Henry¹⁴ talks about a few types of women's songs, but does not give any folk texts or discussions on women's stance as expressed in these songs. Another category is the *caitr*¹⁵ songs, which are generally composed by men, although the text usually expresses women's feelings and dilemmas. Tewari¹⁶ has listed few folk songs of women, but he primarily focuses upon those which portray domestic rituals and customs. Avasthi¹⁷ though gives a good array of women's folk songs, but his assistance remains constrained to anthology. Singh¹⁸ has made an inclusive study of Avadhi folk songs, and Tripathi¹⁹ has done the equivalent for Bhojpuri songs, but they have not dealt with them from the explicit viewpoint of women. Jassal²⁰, an anthropologist, investigates women's lives in rural north India using the Dogri folksong as a logical frame. She considers of songs as unrestrained vehicles, cultural assets, as "existing cultural codes of approved behavior and norms," (p8) and "cultural discourses on emotion," acknowledging that the "act of singing imparts psychological strength to individual women and to women's collectivities."

Singh & Gil²¹ provided examples of various types of folksongs, unfolding their genres, analyzing their themes and presented a sample of lifecycle songs; but they did not take in hand the theme of women representation in particular. How a woman is portrayed in women's folk songs and what needs, desires, and aspirations she apprizes, what aggravation and discrimination she undergoes, is a matter that has attained till date very little attention in the literature. The paper at hand strives to fill this gap.

Methodology

In order to study the semantics of the selected folk songs, two well-known textual analysis methods have been used: the content analysis procedures and the Hermeneutics approach. The application of content analysis method is done to identify and examine the messages contained in the folk songs about womanhood. Underlying hermeneutic interpretative orientation is the view that the meaning of a text is largely determined by the complex whole that constitutes the context of use.

Texts reveal their significance, not on the surface of images and representations, but rather, in the complex ways that they produce, transform and shape meaning-structure... Thus, the interpretation of a text requires an appreciation of the specific rules of its formal existence as a signifying practice.²²

In analyzing and interpreting the folksongs, three major inherent processes of the hermeneutic approach are considered. These are:

- (i) Interpreting the individual concepts rooted within the folksongs,
- (ii) Accommodating the social and cultural contexts through which the various concepts are associated to a particular folksong, and
- (iii) Drawing conclusion about the overall meaning of the folksongs.

The Dogri Folk songs have played a key role in the social and cultural portrayal of the Dogri culture. In this segment, attempt lies to seek answers of the subsequent questions:

RQ1. Is the rural Dogri speaking community innately very violent towards Women?

RQ2. Is linguistic hostility common to them?

RQ3. Do these folk songs mirror real cultural and social practices?

Reviewing all folk songs, the main categories that have emerged and are dealt within this paper are folk songs based on the themes of gender discrimination, stances from before marriage and after marriage, and songs of separation: soldier's (*foji*)²³ wife struggle in the society. Women's folk songs, particularly those describing women's emotions, can, however, be divided into three categories depending on the occasions they are meant for, and that is how they shall be treated in the paper: Gender Discrimination, marriage and separation.

Gender Discrimination: Dogri or 'Duggar' society is a male dominated society. Like any other modern society, it is basically patrilocal, patrilineal in its manner of organization. Women are expected to leave her birth-place after marriage to join her husband's clan. The property rights get transferred from senior male to the next in order. Man, therefore, always enjoys the upper hand in any clash of interests with women. Therefore, women are dependent on men for getting support and defense all over the life. As a daughter, she is dependent and protected by her father and brothers, as a wife by her husband and as a mother by her sons. Brothers are given more importance in homes and having a brother is considered as a social qualifier, i.e., one has both emotional and material support. It is evident in folk songs and a huge category is devoted to them.

Societal preference of male child, which is supported by statistical data almost everywhere shows

that girls' number is far less than boys primarily due to female feticide. After birth on every step she faces gender discrimination. Folk songs are sung everywhere on occasion of boys' birth but on girls' birth nowhere in the society. The situation specific son-birth folk songs are known as *pakhaan* or *badaiyian*²⁴ and are sung on the birth of male baby and on ceremonies like *ritaan*²⁵ and *sutra*²⁶ of male child. The following refrain of a song sets the tone of the celebrations on the birth of a son in Dogra family: *Khed khed venayanaya khed ve, apni maata di godi vich khed ve, tera babul bande lakh behl ve...* (Translation: play dear baby boy; play in your mother's lap, your father distributes offerings, gifts especially to affinal relations...)

Kaar nandji de baden badaayian ji, kaar nand ji de, bajjan badaayian te chadhan kadaaiyaan ji, kar nandji de... (Translation: Greetings enter *nandji*²⁷ house, Greetings enter Nandiji's house, Greetings enter and feasts are made in Nandiji's house...)

There are hardly any folk songs that celebrate the birth of a female child, except for progressive families. Since there are no exclusive songs for girls, the same songs that are sung at the birth of a boy are sung for by replacing the words for boy child with the words for girl child to make it suitable for the occasion.

Marriage

One of the major categories in Dogri folksongs is the *suhaag*²⁸, a type of nuptial songs where societal expectations resound through the anxious and willing persona of young women rousing her family to seek her suitable match. On the other hand, almost all wedding songs call to bride *laado*²⁹ and where she projects her desires, emotions and feelings mainly for searching handsome husband; asking for proper arrangement of *baraat*³⁰, decoration of her palanquin, *batnaa*³¹ related to her special bath and facial and so forth. The folk songs supporting above comments is as follows: *Buye te khadotiye tu mal mal per na toh, baagi chamba khidi reha, tu baithi haar paroh, maayeni sun meriye, mere babul nu samjha, tiyaan hoyian latt baberiyaan, kise nokar de latt laa...* (Translation: O mother now you ask my father that your daughter has now turned maiden, find some suitable match, particularly a government employee.)

Baabul bede harya shehtoot ni maaye, do aaye jattan wale saadh maaye, ohte mangde kanya da daan maaye, mere babul nu chithiyaan paa maaye, aape devega kanya da daan maaye... (Translation: The girl is praising the lush green mulberry tree in my father's courtyard, and the same moment two saints enter and ask for alms, and then the girl asks her mother to send a letter to her father, asking him to come home and give them alms (do *kanyadan*³²).

The persona of an aspirant bride is in conversations with his parents as to what type of husband she seeks. In these songs, the girl is seldom portrayed as docile, submissive or passive; on the contrary she is bold, daring and fearless. In real life, however girls have hardly any say in their own marriages. The daughter getting married and leaving her father's home: Having nostalgic memories and emotions, this category is overwhelmed. *Kanyadan*, the giving of chaste daughters in marriage, is considered an act of charity worthy of the highest merit in the Indian context, and bestows honor and virtue. The following example showcases a bride's active reception of the responsibilities and worries that come with entering the new social space of her new home.

Guddiyan pataari vich reh geiyaan, ho merakirnu te reya wich tadke, saambh lo babul ji kaar apna ho tiyaan chaliyaan bagaane des ve, galiyaan babul ji hoyiaan pidiyan, ho tera veda te hoyia pardes ve... (Translation: The dolls are left behind in the basket now, along with the other toys, she is pleading her father to take care of his home now, because she is going to leave that house permanently to live at a strange place among strange people.)

In this category, we see a paradox between the way a daughter is so dearly loved and brought up that her going away can be heartrending, while, on the other hand, once she gets married she cannot visit her parents without an invitation.

The conditions in in-laws family and women's family support especially brother protect and support her in this tough time: Even in Hindu Law there is a provision to give women a fair deal in the sharing of ancestral property but there are hardly such women's cases which claim for it in Dogri. Chowdhary³³ confirmed the fact by reiterating that "*The Hindu Succession Act of 1956*"³⁴ granted to females inheritance rights equal to those of male members in the family for the first time in independent India. Otherwise brother protects and supports his sister and visit with gifts during festival seasons and also usher her to

her natal home *Maykaa*³⁵. It is also believed that parents feel insecure and helpless for their daughter, if she is not happy with in-laws. However, brother's strong position does matter, and this again promotes son preference. Following local adages support this point, for example, "*Jiski beti sukhi uska janam sukhi* (if someone's daughter is happy, it means he has fulfilled the purpose of life); girl does not take extra diet, but you (parents) are helpless when she is unhappy/tortured at in-laws family, this is painful; girls need a care taker as a brother and so forth. A Dogri girl almost worships her brother. She feels fortunate to have him and shows an extravagant hospitality when he visits her on festive occasions. Traditionally, a sister is sent from her in-laws to her parent's home with her brother only. Frequent visits keep mutual touch between two families and subsequently in two villages and thus results inter-familial and inter-villages bonding.

Woman is complaining her mother about her mother-in-law: Since past so many years, Dogri girls are taught to be reverent and compliant to their husbands and their relatives (in-laws). In contrast to this, we can hear derogatory and denouncing words against these same relatives, who in real life are treated with great respect. Generally, a daughter-in-law does not dare to argue with her mother-in-law or sister-in-law, but in the folk songs these directions of normal conduct can be set aside with liberty. A plethora of anecdotes on women's pathetic and helpless life, the tyranny and torture she faces has been portrayed in such Dogri folksongs.

Mere bede diye khajoore, mein saariyaan kaliyaan todh rakhaan, meri sasu ne bole mande bol, mein dabbi wich paayi rakhaan, mera babul ji aawan mere kol, mein saare dukh kholiye dasaan... (The girl is addressing the date palm tree in her courtyard; I will pluck all the flower buds and store them in a box, my mother-in-law has abused me, and I will also store those bad words in a box, when my parents will come to me, I will tell them all.)

Sometimes these songs smoothens the social confrontation and discontent and ease the women in efforts to adjust herself into her setting and fate. Many comforting and quieting songs sung at the time of farewell of a bride are remarkable in this context. Woman is complaining her husband about her mother-in-law: Woman sends message to her husband to meet without delay. Immediately he reaches and is told about her complaints and gripes, about his mother who berates and rebukes her. Subsequently, her husband feels very sorry for her but he does not promise to do anything about this.

Aaun galaaniyaan saach vo, mere baanku deya chachua, mikki vi leyi chal kach vo mere banku deya chachua, sas nanaan miki jeen nyi dindiyaan, thande paani da kut peen nyi dindiyaan, aakhdiyaan charkha katt wo, mere baanku deya chachua... (Translation: I am telling you the truth, take me along, my mother-in-law and my sister-in-law don't let me live happily, they don't let me drink even a sip of cold water, and ask me to spin the wheel all day...)

Separation

Soldier's wife struggles in the society: Joining Army has been the most reputable occupation in Dogri culture. Since most of the time the soldier's wife does not accompany him due to some unavoidable circumstances, she has to struggle alone in the society. She is pining for him in his absence, seen carping that how could I celebrate my festivals when my husband is fighting on border. She further signs that the weather is so pleasant and her husband is playing with bullets on the country's border; waiting for him is another aspect that describes her loneliness. The rainy season is one of the favorite seasons of women and is held to evoke many romantic and nostalgic feelings. The drizzle, the soft breeze and the lightening make her husband's absence more unbearable and cause her to feel sad and lonely. The loss of social inhibition in the absence of the husband is painted in the following folksong known as *surma*³⁶:

Palaa shipaaiya dogreya, rusliyaan-rusliyaan taaran tera badaa mandaa lagda, doo din chuttiyaan aayija suhaani rutt ambarein di... (Translation: My dear Dogra soldier, I really miss you, take leave and come home for two days, the weather is so pleasant...)

Conclusion

The Dogri folk songs discussed above represent a multi-colored picture of the Dogri women. They not only symbolize an orthodox typecast of her, but also portrays her as buoyant and capable of expressing her emotions liberally and heedlessly. The songs articulate of her longings and wishes, her frustrations, and the dilemmas that go with different facades of her life. The songs lay naked the truth of her status in the society. Some songs describe her as passive and subservient, while others show her as valiant and rebellious. Some show that the girls are unsolicited and can only bring unhappiness to

the family, while others celebrate their upbringing.

The conservative typecast of a Dogri woman describe her as immature, naive, and superstitious, as a person who looks upon the melancholy of life, disease, and death originating from the rage of gods and goddesses. She is regarded as pious and god fearing. This stereotype of the Dogri woman finds its pronouncement in the folk songs, but also its negation, as sometimes the Dogri woman appears as eccentric and radical mocking at the social precincts, as someone who is prepared to tackle the established authorities of social norms and customs, and is prone to speak about the injustices and inequities to which she is subjected. While she can be meek and submissive, she can even be strong and indomitable. Women's folk songs can be called a safety valve that works as an outlet for women through which they can put across their bottled-up bitterness against the social order.

Anything, however intolerable it may be in real life, finds a suitable outlet in the folk songs. It is through folk songs that women find expression for their passions, their frustrations, their anger, and their love. It is through them that they voice their grievances and show their hurt. The folk songs offer beautiful vignettes through which we can look into the intricate phenomenon we term culture. Folk songs, mainly women's folk songs, are a rich basis for understanding the place of women in Dogra society.

It is a decisive analysis of the folk songs that deal with women's common wishes, contained emotions, discontented desires, hopes, disappointments, and their reactions to their social environment. The portrait of woman as depicted in these songs is time and again at variance with the conventional typecast of an subservient, submissive, and traditionalist woman that is fabricated in one's mind. This paper highlights the very significant safety-valve function of these folk songs in which women are afforded an occasion to express their bottled-up feelings and their longings in a socially acceptable form.

The songs of women discussed above give a dappled picture of Dogra women. They do not portray only a conformist stereotype of a Dogra woman; they also portray her as jovial and capable of expressing her emotions liberally and with abandon. The songs tell us about her longings and desires, her frustrations, and the predicaments that go with different facets of her life. The songs lay uncovered her status in the Dogra society. Some describe her as obedient and submissive, others depict her as bold, audacious and rebellious. Some show us that girls are unwelcome and can only bring sorrow to the family, while others illustrate how affectionately and with what loving care they are brought up. In these folk songs, we also see the incongruity stuck between the ways a daughter is so dearly loved that her going away can be painful, while, on the other side, once she gets married she cannot visit her parents without an appropriate invitation.

The traditional stereotype of a Dogra woman portrays her as innocent, gullible, and superstitious, as a person who looks upon the miseries of life, disease, and death as stemming from the rage of gods and goddesses. She is deemed to be devout and god-fearing. This stereotype of the Dogra woman finds its affirmation in the folk songs, but also its denial, for on occasion the Dogra woman appears as a maverick who is contemptuous of social constraints, as someone who is primed to confront the conventional authority of social norms and mores, and is prepared to convincingly articulate the injustices and inequities to which she is subjected. While she can be passive, she can be strong and determined as well. Women's folk songs are a type of safety valve meant to supply a vent for women through which they can put across their bottled-up antipathy against the social order. From their initial age, Dogra girls are taught to be courteous and submissive to their husbands and their relatives.

In contrast to this, we often hear in the folk songs strongly offensive and accusatory words against these same relatives, who in real life would be treated with great reverence. Usually a daughter-in-law does not defy or argue with her mother-in-law or sister-in-law, but in the folk songs these rules of normal behavior can be set aside with impunity. Whatever thing, however undesirable it may be in real life, finds an appropriate passage in the folk songs. It is through folk songs that women give voice to their passions, their frustrations, their resentment, and their love. It is through them that they voice their grievances and show their upset. The folk songs offer beautiful vignettes through which we can look into the intricate phenomenon we call culture. Folk songs, chiefly women's folk songs, are a rich source for understanding the locale of women in a Dogra society.

Dogri cosmology, ethics and societal norms come to light in folksongs in ways that complement the

existing historical record, but also offer new insights into the processes of socializing individual's development, but also a part of Dogra society.

Folksongs are vital to Dogri culture in that they emerge as the fruits of a vague thing like a folk or a collective mind, and make existent for us the natural, social and ethical, and changing world that Dogra people occupied. The Dogra rebellious spirit, readiness for love and war, sacrifice for tribe or lover is among the intangibles of the regions philosophy that impulsively appear in its folksongs.

On the other hand, these folksongs can be treated as texts for the study of Dogri as a language-captured out of the ether and potted with pen and paper. Yet these songs are basically not texts, in that they are difficult to pin down, living, flexible and changing. That these songs have chiefly been the realm of women's expression is not insignificant: they are the counterparts to the written texts, feminine in that they quietly work behind literatures scenes, but yet dynamically occupied in the process of fabrication.

For modern Dogra's, the maintenance of folksongs is a heritage question- we do not wish to be inferior in the loss of lessons learned by our predecessors ever since times

immemorial. We might want to add access to the experiences of people who populated in the J&K regions, but lived in a very dissimilar world. Nostalgia and inquisitiveness draw us to folksongs, and their rhythms, themes and concerns move us in surprising ways.

Scholars may anticipate using the folk texts to rebuild the daily, annual, and life cycle concerns of Dogra's and the power dynamics that permeated village life. Folksongs can help us better comprehend Dogri written literature, and perchance literature can help us come to these folksongs with bright lenses.

The folksongs offer the milieu and framework out of which literature and history emerge. Folk expressions can be captured by the poets, whose writings in turn can instigate and become part of Dogri Folk reminiscences. Just as Dogri written and oral traditions have enjoyed vigorous interface for centuries, the agenda's of heritage seekers and logical scholars are mutually harmonizing. Dogri folksongs make us conscious of how Dogra's steer problems posed by communal living, uncultivated natural forces and historical change, and hence demand our attention.

References

- 1 Deep Punia, *Social Values in Folklore*. (Rawat Publications, 1993), 11.
- 2 These kinds of folk songs are widely prevalent form of mass entertainment in Dogri region. They are independent of instruments. They are in verse form.
- 3 Dogri folksong sung with the help of gestures.
- 4 They are a kind of Indian folksongs meant for all memorable occasions, to celebrate festivals and rituals.
- 5 Folk songs sung at the see-off ceremony of the bride.
- 6 Gatherings to sing religious songs of Gods and Deities.
- 7 Sylvia Blood, *Body Work: The Social Construction of Women's Body Image* (London: Routledge, 2005), 55.
- 8 L. Grossberg, *Strategies of Marxist Cultural Interpretation*, ed. R.K. Avery, D. Eason in *Critical Perspectives of Media and Society*, (The Guilford Press, New York, 1991), p. 134.
- 9 S. D. Mishra, "Importance of Women in Hindi Folk Songs," *Women in Hindi folklore* (Calcutta: Indian Publications 1969).
- 10 Bonnie C. Wade, "Songs of Traditional Wedding Ceremonies in North India," *Yearbook of the International Folk-Music Council* 3-4 (1971): 72.
- 11 Vidaya Chauhan, *Lok Geeton ki Sanskritik Prishfabhrtimi* [The cultural background of the folk songs] (Agra: Pragati Prakashan 1972).
- 12 S. Srivastava, *Bhojpuri Lok Geeton Men Sanskritik Tatva* [Cultural aspect of Bhojpuri folk songs] (Allahabad: Kendra Prakashan 1982).
- 13 Kuldeep, *Lok Geeton ka Viksdtmaka Adhyayana* [A study of the evolution of folk songs] (Agra: Pragati Prakashan 1972).
- 14 K. D. Upadhyaya, *Avadhi Lok Geet* [Avadhi folk songs] (Allahabad: Sahitya Bhavan 1978).
- 15 Edward. O. Henry, "The Variety of Music in a North Indian Village: Reassessing Cantometrics," *Ethnomusicology* 20 (1976): 49-66.
- 16 They are semi-classical songs sung in the Hindu calendar month of Ciat. These songs are rendered during the holy month of Shri Rama Navami in Mar/Apr. It falls under light classical of Hindustani classical music. The songs typically have the name of lord Rama.
- 17 L. G. Tewari, *Folk Music of India: Uttar Pradesh* Microfilms International, 1988 and "Sohar: Childbirth Songs of Joy" *Asian Folklore Studies* 47 (1974): 257-76.

- 18 Avasthi, Maheshpratap Narayan. *Avadhi Lok Geet Hazard* [One thousand Avadhi folk songs]. (Allahabad: Asumati Prakashan, 1985).
- 19 Singh, V .V. *Avadhi Lok Geet: Samikshatmak Adhyayan* [Avadhi folk songs: A Critical Study]. (Allahabad: Parimal Prakashan,1983).
- 20 Tripathi, R. N. (samvat 1906) *Kavita kaumudi, bhag 5* [Elucidation of poems, part 5]. Cited in Singh 1983.
- 21 Jassal, Smita.T. *Unearthing Gender: Folksongs of North India*. (Duke University Press, 2012): 8.
- 22 Singh & Gill: *Folksongs of Punjab*. JPS, 11: 2.
- 23 Term used for soldier in Dogri language.
- 24 Folksongs to express greetings.
- 25 Different ceremonies for different occasions.
- 26 Gathering ceremony conducted on the birth of a boy child.
- 27 The term 'Nandji' in Hindu context is used to denote 'Lord Krishna'. The meaning of the term is joyful, happy or pleasure, father of Krishna, etc.
- 28 They are basically the category of marriage songs which catches that transient between a known past and a dreamed future. It shimmers with anticipation. This segment is filled with daughter's feeling of alienation or separateness from her paternal home and segues into the sorrow of the real separation that occurs with her marriage. These songs give sharp rending of degrees of attachment with family. Affection between daughter and father is sweetly brought out through these songs.
- 29 Term used for a beloved daughter in Dogri culture.
- 30 In North Indian communities, it is customary for the bridegroom to travel to the wedding venue on a mare accompanied with his family members and guests. This wedding procession is known as baraat.
- 31 Ceremony related to the special bath of the Bride, where turmeric paste is applied on the face and body of the bride. The concept behind this ceremony is that this brings glow on the bride's face on the day of her marriage.
- 32 It is the most auspicious and significant ritual in Hindu Religion. The literal meaning of the term 'kanya' is 'virgin' and 'daan' is 'gifting', therefore it means gifting away a virgin daughter. It is very pious and dutiful ritual which is said to bring fortune as well as relief from the sins for the bride's parents.
- 33 Prem Chowdhry, "Enforcing Cultural Codes: Gender and Violence in Northern India," *Economic and Political Weekly*, 32(1997): 1919–28.
- 34 Under the Hindu Succession Act, 1956, females are granted ownership of all property acquired either before or after the signing of the Act, abolishing their "limited owner" status. However, it was not until the 2005 Amendment that daughters were allowed equal receipt of property as with sons. This invariably grants females property rights.
- 35 Bride's paternal home.
- 36 This song in Dogri, set to dance reveals the anguish of a newly married girl whose husband is away in the Army. The ever increasing yearning of re-union is depicted through this song and dance.

References

- Charak, Sukhdev S (1980). *History and Culture of Himalayan States- Jammu Kingdom*. Jammu: Light and Life Publishers.
- Deep, Shiv Ram (1989). *Dogri Lok Geet* (Part 16), Jammu: Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages.
- Deep, Shiv Ram (1990). *Dogri Lok Geet* (Part 17), Jammu: Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages.
- Goswami, Om (1979) *Dogri Lok Geet* (Part 11), Jammu: Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages.
- Goswami, Om (1985). *Duggar Da Sanskritik Itihas* (Dogri). Jammu: Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages.
- Gupt, Om Prakash (1979). *Dogri Folksongs-Collection and Analysis* (Hindi). New Delhi: Seemant Prakashan.
- Islam, Muzharul (1985). *Folklore- The Pulse of the People*. New Delhi: Concept Publishing Company.
- Raheja, Gloria Goodwin (1997). Introduction The Paradoxes of Power and Community: Women's Oral Traditions and the Uses of Ethnography. *Oral Tradition* 12 (1): 122.
- Narayan, Kirin (1995). The Practice of Oral Literary Criticism: Women's Songs in Kangra, India. *The Journal of American Folklore* 108: 243264.
- Wade, Bonnie C (1971). Songs of Traditional Wedding Ceremonies in North India. *Yearbook of the International Folk-music Council* 3 (4): 58-71.
- Shrivastav (1991). Women as Portrayed in Women's Folk Songs of North India. *Asian Folklore Studies* 50: 269-310.

वैश्विक मूल्य और भारतीय राष्ट्रवाद

कपिलदेव प्रसाद निषाद

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

यह सही है कि भारत में राष्ट्रवाद एक विचारधारा या भावना के रूप में ब्रिटिश शासन से पहले अस्तित्व में नहीं था। एक प्रकार से राष्ट्रवाद का जन्म स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान हुआ। कुल मिलकर भारत में 'राष्ट्रवाद' आधुनिक समय की उपज है। जिसका जन्म 18वीं शताब्दी में यूरोप में सुधारवादी आंदोलन के रूप में हुआ। वहीं पर राष्ट्र राज्य के रूप में नवोदित मध्यम वर्ग, व्यापारी वर्ग और राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में अवतरित हुआ। जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार, 'मानव जाति का कोई हिस्सा एक राष्ट्र की संस्थापना की बात कह सकता है यदि उसके लोग उस समान अनुभूति के आधार पर आपस में जुड़ते हैं जिनका उनमें और दूसरों में अस्तित्व ही नहीं होता है। राष्ट्रवाद की यह भावना विभिन्न कारणों से उत्पन्न हो सकती है। कभी-कभी यह नस्ल और वंश की अस्मिता के प्रभाव के कारण होती है। भाषा, समुदाय और धर्म समुदाय का इसमें गहरा योगदान होता है। भौगोलिक सीमाएं भी उन्हीं कारणों में से हैं। लेकिन पूर्व विद्यमान राजनीतिक वृत्तों राष्ट्रिय इतिहास पर कब्जा और गौरवपूर्ण समुदाय की स्मृति, सामूहिक अभिमान और अपमान आनंद और दुख अतीत में घटी समान घटनाएं सबसे शक्तिशाली कारण होते हैं।'¹

राष्ट्रवाद और देशभक्ति दोनों भिन्न बातें हैं। देशभक्ति व्यक्ति विशेष से है, जबकि राष्ट्रवाद का संबंध सामाजिक अभिव्यक्ति से। समर्थ राष्ट्र द्वारा दूसरों राष्ट्रों को पराधीन बनाने व विनाश करके पूरी तरह से अपने नियंत्रण में रखकर अपना विस्तार करना साम्राज्यवाद है। पश्चिमी सभ्यता इस कार्य में मुख्य भूमिका में रही है। चूंकि पश्चिमी सभ्यता विज्ञान और वाणिज्य पर आधारित है। तथा समस्त भूमंडल पर अपना अधिकार जमा लेना एक बाजार के रूप में उसका इस्तेमाल करना, साथ ही वैज्ञानिक आविष्कारों के बीच हथियारों का प्रदर्शन, पराधीन राष्ट्र को अप्रत्यक्ष रूप से हथियार बनाने की होड़ में धकेल देना साम्राज्यवादियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। विश्वयुद्ध से उपजे दुर्गंध, सड़ांध और धुएँ ने व्यापक रूप से राष्ट्रीयता का भाव पैदा करने में अग्रणी रहा है। समस्त दुनिया के मानवतावादी समझ ने यही बताया कि मनुष्य और मनुष्यता श्रेष्ठ है। इसे बचाना जरूरी है लेकिन विश्वयुद्ध में विवेक, आस्था और नैतिकता का मखौल उड़ाया गया। और यह युद्ध सभ्यता के विरुद्ध अपराध जैसा साबित हुआ। युद्ध को शांति में बदलने के लिए सैनिक और हथियार दोनों की कहां तक जरूरत है? क्या वे मनुष्यता के प्रति कारगर सिद्ध होंगे? इसका उत्तर यही है कि नहीं। किंतु सभी राष्ट्र हथियारों को बनाने और संग्रह करने में मशगूल हैं। जबकि वे अपनी तथा सबकी सुरक्षा के लिए नैतिक मूल्य, आपसी भाईचारा, विश्व-बंधुत्व जैसे औजारों को अपनाकर समस्त विश्व का कल्याण कर सकते हैं। विज्ञान के आविष्कार ने पश्चिमी जगत को अंधा बना दिया। जिससे उन्होंने मनुष्यता को अपने पैरों तले रौंदने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इस साम्राज्यवादी नीति के कारण पराधीन राष्ट्रों के अंदर हथियारों की होड़ के विचारों का विस्तार इस कदर बढ़ने लगा कि उस पर रोक लगाना मुश्किल-सा हो गया। जो सभ्यता, संस्कृति, समाज, अर्थ, भाषा, लिंग, राष्ट्र-राज्य के प्रति ईमानदार है, वह राष्ट्रवादी हो सकता। विश्व पटल पर विज्ञान, वाणिज्य और राजनीति राष्ट्रवाद के प्रमुख हथियार हैं। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए ताकतवर राष्ट्र, कमजोर राष्ट्र को तबाह करता है उसे गुलाम बनाता है। इस गुलामी में तथाकथित राष्ट्र के सारे संसाधन खत्म हो जाते हैं और वह दरिद्र राष्ट्र की कोटि में गिना जाता है। दादाभाई नौरोजी के अनुसार भारतीय गरीबी ब्रिटिश उपनिवेशवाद की देन है। 'अन्य देशों का जो भी राजस्व प्राप्त किया जाता है, उदाहरण के तौर पर, इंग्लैंड के द्वारा 70,000,000 पाँड उसे उसी देश की जनता को वापस कर दिया है और उसी देश में रहता है और इस प्रकार यह राष्ट्रीय पूंजी बन जाती है जिस प्रकार किसी देश का उत्पादन टिका होता है इससे कोई ह्रास नहीं हुआ, जबकि विदेशी शासन के अधीन होने के कारण भारत में प्रतिवर्ष उगाहे गए 50,000,000 पाँड राजस्व में से लगभग 12,000,000 पाँड या उससे अधिक राशि इंग्लैंड भेज दी जाती है और राष्ट्रीय पूंजी अथवा जिसे दूसरे शब्दों में उसके उत्पादकता की क्षमता कह सकते हैं-लगातार प्रति वर्ष गिरती जा रही है।'²

साम्राज्यवाद अपने सभी औजारों के साथ किसी भी समाज, वर्ग, समुदाय, राष्ट्र को पराधीन बनाने के लिए सभी हथकंडे अपनाता है ठीक उसी प्रकार से गुलाम देश के नागरिक स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अपने दल, अपनी विचारधारा, को समस्त देशवासियों के ऊपर थोप कर, सबको अपने अनुसार चलाने की कोशिश करते हैं। जो उनके अनुसार नहीं चल पाता उनके अनुसार वह राष्ट्रवादी नहीं कहलाता है। जबकि देश के ऊपर प्राण न्यौछावर करने वाले सच्चे वीर सपूतों की कमी नहीं है,

लोगों ने सर्वोच्च बलिदान दिए हैं किन्तु विस्तारवादी शक्तियाँ राष्ट्र को गुमराह करने में कोई कमी नहीं रखतीं। पश्चिमी वैज्ञानिक आविष्कार ने मनुष्यता की श्रेष्ठ कौमों को भी नष्ट करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। परिणाम में पराधीन राष्ट्र के राजनीतिक संगठनों ने अपना और अपनी नीतियों का साम्राज्यवादी तरीके से विस्तार किया। विश्व युद्ध की विभीषिका को देखकर विद्वानों, चिंतकों, मनीषियों व स्वराष्ट्र हितैषियों को बहुत आघात पहुंचा। पश्चिम विज्ञान को सर्वोपरि मानता है। अणुबमों की बेशुमार उत्पादन से दो विश्व युद्ध हुए। इन बमों के प्रयोग से मानव मात्र का ही विनाश नहीं होता। बल्कि पर्यावरण का भी नुकसान होता है वनस्पतियाँ झुलस जाती हैं। पत्थर-पहाड़ सब झुलस जाते हैं, धरती बंजर हो जाती है। आने वाले समय में संततियाँ बौना पैदा होने लगती हैं। जापान इसका जीता जागता उदाहरण है। कुल मिलाकर मनुष्य और उसके पर्यावरण का विनाश। इस विनाश की गहनता को महसूस करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं कि- 'यह लोगों का राजनीतिक और आर्थिक संघ है।'³ पश्चिमी जन समुदाय भौतिकता को महत्व देता है। इसकी पूर्ति के लिए उसे धन चाहिए। उस धन को प्राप्त करने के लिए वह आक्रमण करके अपने साम्राज्य का विस्तार करता है। पूंजीवादी और सामरिक युग में बाजार कौम, जाति, वर्ग संप्रदाय को पराजित करके अपना विस्तार करता है। भारत के संदर्भ में जीतने भी राजनीतिक दल हैं वह भी अपना विस्तार करते हैं तथा जनता के ऊपर अपने विचारों, अपनी कार्यशैली को थोपने का प्रयास करते हैंय उन्हें अपना करने के लिए मजबूर करते हैं, तो क्या इस तरह की सोच साम्राज्यवादी सोच नहीं है जो सिर्फ अपना ही विस्तार, अपने दल का और अपनी विचारधारा का विस्तार करना चाहता है।

देशभक्ति तो निम्न प्रकार से भी की जा सकती है- गांव में जाकर किसानों और उसके परिवेश को ठीक करना, सार्वजनिक शिक्षा को विस्तारित करना, सामाजिक सुधार के लिए आगे बढ़ना, सफाई करना, उसके सुख-दुख को समझना व उसकी जरूरतों को यथासंभव पूरा करने का प्रयास करना, तथा इसमें ईमानदारी और नैतिकता आदि को भी शामिल किया जा सकता है, आदि-आदि। अतीत में देखा जाए तो भारतीयों में धन संचय की प्रवृत्ति बहुत कम रही है। उसने संचयन का सदा निषेध ही किया है। मध्यकालीन संतों के यहां इस प्रकार की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो पूरे विश्व और मानव जाति के लिए हितकारी है-

'साई इतना दीजिए जामे कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूं साधु भूखा न जाए।। (कबीर)

संतों के यहां नागरिक समाज की भरपूर परिकल्पना है, सारा संसार एक परमात्मा से उत्पन्न है, उसकी संतान हैं। इस एकता को रेखांकित करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं कि-'उसके घर, उसके खेत, उसके पूजा के मंदिर, उसके विद्यालय-जहां उसके शिक्षक एवं विद्यार्थी सरलता, निष्ठा व ज्ञान के वातावरण में एक साथ रहते थे, जहां सरल नियमों तथा शांतिपूर्ण प्रशासन के अंतर्गत ग्राम स्व-शासन चलता रहा था, ही उसकी सच्ची पहचान थे। उसे अपने यहां के साम्राज्यों की चिंता नहीं थी।'⁴ इसी क्रम में भारतीय समाज को रखकर देखा जा सकता है कि उसका उद्देश्य किसी भी राष्ट्र को दबाने, उसे गुलाम बनाने, आक्रमण करने की नहीं रही है। यह उनकी सिद्धि रही है किन्तु कालांतर में पराधीन होने के बाद वस्तुस्थिति बदली और राष्ट्रवाद के रूप में एक वैचारिक पद्धति का जन्म हुआ। ऐसा नहीं है कि सभी सभी दल के नेता और उनके विचार अच्छे नहीं हैं। जरूर अच्छे होंगे। किन्तु जब राजनीतिक दल अपनी इसी वैचारिक पद्धति की इच्छा पूर्ति के लिए समस्त राष्ट्र को अपने राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ाने की कोशिश करते रहे हैं- 'राष्ट्र संबंधी मत का सबसे गंभीर खतरा यही है कि यह व्यक्तियों को अपनी निजी इच्छाओं को त्याग कर, अमूर्त राष्ट्रीय इच्छाओं को अपना करने के लिए बाध्य करता है और निर्वैयक्तिक उद्देश्यों के प्रति बने रहने का आग्रह करता है।'⁵ वस्तुतः राष्ट्रवाद बलशाली समुदायवाद की पहचान है। जो केवल पश्चिम तक ही सीमित न रहकर समस्त भूमंडल पर फैल गया है। प्रतिस्पर्धा ने इसे और कट्टर बना दिया है।

धन और हथियार पर जिस भी देश का वर्चस्व रहेगा वह अपने साम्राज्य को बढ़ाएगा ही और दूसरों को पराधीन बनाने के लिए हर संभव प्रयास भी करेगा। इसी होड़ में दूसरे राष्ट्र भी सत्ता लोभी और भूखे भेड़िए की तरह हो जाते हैं। कमजोर राष्ट्र को लूटने से पीछे नहीं हटता। इस लूटने के क्रम में दर्शन, विज्ञान, कलाएं, साहित्य सभी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। दर्शन, विज्ञान, कलाएं अपने राष्ट्र के लोगों को इस तरह जकड़ लेती हैं कि वह क्रूरता के बारे में सोच भी नहीं पाता है। कारण मानव-मात्र के कल्याण में इन सबकी महती भूमिका होती है इसी भूमिका की रोशनी में भारत जैसा राष्ट्र विश्व मानवता की कामना करने लगता है और युद्ध की ओर नहीं बढ़ पाता। वह जानता है कि विज्ञान जान लेने मात्र से जीवन उत्पन्न नहीं किया जा सकता, थोड़ी देर के लिए बचाया जरूर जा सकता है। वह यह जानता है कि विज्ञान-विनाश और विकास दोनों काम को बखूबी कर सकता है। किन्तु विज्ञान मानव जैसा नहीं हो सकता। विज्ञान से ज्ञान तो लिया जा सकता है, स्वभाव नहीं। यहीं विज्ञान अपनी सीमा में बंद हो जाता है।

राष्ट्रवाद के नाम पर जर्मनी में हिटलर का कृत्य जगजाहिर है। हिटलर भी राष्ट्रवादी था और इसी सनक के कारण उसने मानवता को शर्मसार किया। वस्तुतः स्वतंत्रता की ओट में गुलामी होती है जो दिखाई नहीं देती है। कारण वह अदृश्य होती है। यह स्वतंत्रता का नाम धारण कर लेती है जिसमें मनुष्य अपना शौर्य, विश्वास, संस्कृति, भाषा सब कुछ खो देता है। जब यह छद्म गुलामी, यह स्वतंत्रता हट जाए तो पराधीन मनुष्य महानता के चरम कोटि पर पहुंच सकता है।

इसलिए समस्त संसार को शिक्षा, समरसता, सत्य, सौंदर्य, नैतिकता और विकास पर जोर देना चाहिए न कि सत्ता पाने में। सत्ता पाने की होड़ समस्त मानवता को निगल रही है। यह होड़ इतनी जबरदस्त है कि लूट-खसोट की कोई सीमा ही नहीं। क्या इससे मानवता बच पाएगी? और यदि वह बच भी जाए तो भी-वह पंगु और गुलाम मानव जाति होगी। इसलिए समस्त

मानव जाति को बचाने के लिए-विचारों तथा आदर्शों का आदान-प्रदान होना बहुत जरूरी है। भाषा, कला, रीति-रिवाज को व्यापक स्तर पर पुनर्जीवित करना होगा। जिसमें नस्ल की श्रेष्ठता सामने न आए, समानता के भाव का विस्तार होय एक राष्ट्र का हृदय दूसरे राष्ट्र से मिले। जिसमें कला और साहित्य ज्ञान विज्ञान का उन्मुक्त जन्म हो। जिससे देशवासी टूटे-फूटे खंडहरों और पुराने ढांचों के बाद भी जीवित रह सके।

वर्तमान समय में कूटनीति और राजनैतिक चालें किसी समर्थ राष्ट्र के लिए प्राणदायक मानी जा सकती हैं। किंतु इसके उद्गम और पराभव के बीच अनंत चीखें, पुकार भी शामिल हैं। राष्ट्र सत्ता तो चलता रहता है किंतु जो इस की चक्की में पिसता है वह साधारण मानव है किन्तु एक मानव वह भी है जो मानव की तरह दिखता है किन्तु वह हैवानियत का विकराल रूप होता है। 'राजनैतिक सभ्यता, जिसका जन्म यूरोप की मिट्टी में हुआ और तेजी से उगने वाले किसी खरपतवार की तरह अब पूरे विश्व में फैल चुकी है, अनन्यता पर आधारित है। यह अनन्यदेशीय लोगों को अपने पास में फटकने देने या उनका उन्मूलन करने के लिए सदा तत्पर रहती है। इसकी प्रवृत्ति मांसाहारी और नरभक्षी होने की है। यह अन्य लोगों के संसाधनों को हड़प लेती है और उनके समूचे भविष्य को निगल लेने को सदा तैयार रहती है। या अन्य नस्लों द्वारा प्रतिष्ठा पा लेने से हमेशा डरती है और ऐसी उपलब्धि को खतरनाक घोषित करती है। अपनी सीमाओं से बाहर दिखने वाले महानता के किसी भी लक्षण को कुचलने की कोशिश करने लगती है, कमजोर नस्लों के लोगों को दबाए रखती है और चाहती है कि ये हमेशा अपनी कमजोरी का शिकार बने रहें। इस राजनैतिक सभ्यता द्वारा शक्ति प्राप्त कर लेने तथा धरती के महान प्रायः दीपों को निकलने के लिए अपने जबड़े खोलने से पहले ही हमें युद्धों, लूटपाटों, राज सत्ताओं में परिवर्तन और इसके परिणाम स्वरूप होने वाली आपदाओं ने घेर लिया। लेकिन उससे पहले अतृप्ति का ऐसा डरावना तथा निराशाजनक रूप, एक के बाद एक राष्ट्र का ऐसा भक्षण, धरती के बड़े-बड़े हिस्सों को मांस की तरह पीस देने वाली विशाल मशीनें, बदसूरत दांतों तथा पंजों से युक्त भयानक ईर्ष्याएँ जो मनुष्य के सभी प्राणाधार अंगों को फाड़ देने को तैयार हों, यह राजनैतिक सभ्यता वैज्ञानिक है, मानवीय नहीं। यह बेशर्मी से अपने झूठ का जाल बुनती रहती है, यह अपने मंदिरों में लालच की मूर्तियों को प्रतिष्ठित करती है और इनकी पूजा के खर्चीले कर्मकांडों पर खूब गर्व करती है, और इसे देश भक्ति करती है।'⁶

इस प्रकार राजनीति (जो विज्ञान पर आधारित है) से नैतिक मूल्य को खत्म कर दिया जाता है आदर्श बेच दिए जाते हैं। इससे समाज के प्रत्येक स्तर में गिरावट होने लगती है। इस राजनीति का जन्म ग्रीक की धरती पर तैयार हुआ और वहीं दफन भी हो गया। अपनी क्षमता को ऊंचाइयों तक ले जाने के लिए कोई भी राष्ट्र बुरे काम को करने से नहीं हिचकता। अपने लोगों का ध्यान रखना और पराधीन राष्ट्र को पैरों तले रौंदना इस ऊंचाई की फितरत है तो क्या फिर वही जंगली नियम मनुष्य जाति पर राज करेंगे कि-जो शक्तिशाली है वही जीवित रहेगा शेष गुलाम?

बाजार की भी इसमें भूमिका होती है पराधीन राष्ट्र में माल खपाने की बड़ी जगह होती है। लालच, लूट, होड़, बाजार के आवश्यक औजार हैं, जिस भी राष्ट्र-समाज को लूटना है पहले उसे पराधीन बना कर छोड़ देना है- 'क्या हम ऐसे राष्ट्रवाद के आगे अपने घुटने टेकने होंगे जो सारी दुनिया में भय लालच संदेह कूटनीति के बेशर्म झूठ शांति सद्भाव व मानव के सार्वभौम भाईचारे के दंभी झूठ के बीजों को बोने की खुली तौर पर घोषणा कर रहा है।'⁸ इससे यह होगा कि हम अपनी विरासत को छोड़कर पश्चिमी सभ्यता की विरासत को अपनाने लगेंगे। कारण यह है कि उसका नशा इस कदर चढ़ गया है जिसके आगे कुछ दिखाई नहीं देता है। राजनीति बाजार की अमानवीयता को कभी भी त्याग नहीं सकती वह बाजार की पद्धति बदलने में प्रवीण है, हृदय नहीं। बाजार का लक्ष्य किसान और उसके उत्पाद हैं- 'वाणिज्य राजनीति और देशप्रेम के नाम पर झूठ व शान से गर्वीले कदम उठाता हुआ आगे बढ़ता जाता है।'⁸ जिसे राजनीतिक भावुक तरीके से दूर करने की छद्म अपील करती है। बाजार और राजनीतिक महत्वकांक्षा राष्ट्रवादी समझ में कभी खत्म नहीं हो सकती। राष्ट्र के प्रति आस्था और सही सोच नहीं है तो इस छद्म रूप को देख पाना कठिन है। राष्ट्रवाद के खतरों पर विचार करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि- 'हमें युद्ध के शोर, नफरत की चीखों, निराशा भरे रुदन, सदियों के मंथन से राष्ट्रवाद के तल में जमें बेशुमार कीचड़ से आती है आवाज सुनाई नहीं दे रही-एक ऐसी आवाज जो हमारी आत्मा को चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है कि राष्ट्रीय स्वार्थ की मीनार, जो देश भक्ति के नाम पर निर्मित की गई है और जिसने स्वर्ग के विरुद्ध अपना परचम फहराया हुआ है, उसे अब अपने ही बोझ से हहराकर ढह जाना चाहिए।'⁹

संदर्भ

- 1 हिंदी समुदाय और राष्ट्रवाद, सुधीर रंजन सिंह पृष्ठ -17
- 2 भारत में उपनिवेशवाद, स्वतन्त्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, शिवानी किंकर चौबे,-पृष्ठ -76
- 3 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 13
- 4 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 17
- 5 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 18
- 6 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 7
- 7 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 20
- 8 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 21
- 9 राष्ट्रवाद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, भूमिका पृष्ठ 24

भारत में राष्ट्रवाद

डॉ. एकता रानी
राजकीय महाविद्यालय
उधमपुर

राष्ट्र के लिए अंग्रेजी के 'Nation' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के 'नेशियो' शब्द से हुई है जिसका अर्थ जन्म या जाति से लिया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि एक ऐसा जन-समूह जो निश्चित भू-भाग अर्थात् एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहते हैं जिनमें एक समान परम्परा, समान हितों तथा समान रूप से राजनैतिक स्वाधीनता का उपभोग करते हैं। उसी प्रकार राष्ट्रवाद के लिए अंग्रेजी में Nationalism शब्द का प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया बहुत कठिन और बहुआयामी रही है। फिर भी राष्ट्रवाद का उद्भव 18वीं-19सवीं सदी में यूरोप में माना जाता है। कुछ लोग राष्ट्रवाद को देश भक्ति का भी पर्याय मानते हैं। देश भक्ति की भावना व्यक्ति के हृदय से जुड़ी होती है जिसमें राष्ट्र के प्रति अपार श्रद्धा रहती है। जिसमें उग्रता के लिए कोई स्थान नहीं रहता है जबकि राष्ट्रवाद की अवधारणा में तर्कों का समावेश रहता है। इसमें अपने राष्ट्र के प्रति भक्ति, प्रेरणा, संचार आदि सम्मिलित रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप कभी-कभी इसमें उग्रता भी सम्मिलित हो जाती है। राष्ट्रवाद एक विविध आयामी अवधारणा है। राष्ट्रवाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। यह लोगों के समूह की वह आस्था है। जिसमें वे परम्परा, भाषा, इतिहास तथा जातीय स्तर पर एक-दूसरे से जुड़े हुए मानते हैं। हिन्दी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली के अनुसार 'राष्ट्रवाद से हमारा तात्पर्य राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा से होता है, परन्तु विभिन्न स्थानों एवं समयों पर इस पर जिन विविध दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है, उनके कारण इसके स्वरूप भी अनेक हो गए हैं। इनमें रूढ़िवादी राष्ट्रवाद, उदारवादी राष्ट्रवाद, जनवादी राष्ट्रवाद, एकाधिकारवादी राष्ट्रवाद और मार्क्सवादी राष्ट्रवाद आदि प्रमुख हैं।'¹

राष्ट्रवाद एक ऐसी मानसिकता है जिसमें राष्ट्र के प्रति प्रेम और भक्ति की भावना विद्यमान रहती है। राष्ट्रियता की भावना किसी भी देश की जनता को एकजुट या कहे कि एकता के सूत्र में बाँधे रखती है। वे लोग प्रभुसत्ता से सम्पन्न तथा पराधीनता से मुक्ति के लिए संघर्षरत रहते हैं। राष्ट्र के लिए भक्ति भावना ही पराधीन जनता को स्वाधीनता आन्दोलनों के लिए प्रेरित करती है। देश के प्रति प्रेम तथा समर्पण की भावना ही व्यक्ति को अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हित के लिए चिंतन के लिए प्रेरित करती है। यही भावना व्यक्ति को देश की अखंडता और स्वतंत्रता के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए प्रेरित करती है।

राष्ट्रवाद की व्याख्या विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर राजनीतिक अवधारणा के रूप में की है। इसका प्रमुख कारण है 18वीं तथा 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही वैश्विक स्तर पर सभी देशों ने औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी सत्ता से मुक्त होकर राष्ट्र-राज्यों का उद्भव हुआ। आधुनिक अर्थ में राष्ट्रवाद की भावना का उदय फ्रांस की राज्य-क्रांति से हुआ मानते हैं। फ्रांस में जो राज्य-क्रांति हुई उससे जिन नयी शक्तियों को बढ़ावा मिला उनमें राष्ट्रवाद की भावना प्रमुख थी। इसी राष्ट्रवादी विचारधारा को बहुत समर्थन प्राप्त हुआ, प्रत्येक देश अपना राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे। इसके पश्चात् ग्रीस, बेल्जियम, स्पेन, पोलैंड, आस्ट्रिया, नार्वे, अमेरिका आदि जैसे बड़े देशों में राष्ट्रवाद का झंडा लहराया।

भारत में राष्ट्रवाद का विकास सन् 1857 की क्रांति के दौरान माना जाता है। भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व हमारे देश की सामाजिक संरचना ऐसी थी, जो किसी अन्य देश में नहीं। भारत का आर्थिक ढाँचा भी काफी सशक्त था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की छोटी-छोटी जरूरतें गाँव में ही पूरी हो जाती थी परन्तु ब्रिटिश शासन के स्थापित होते ही छोटे-छोटे उद्योग-धंधे नष्ट कर दिये गए। अगर भारत की सामाजिक, संरचना की बात करें तो जहाँ विभिन्न जातियों, धर्मों, भाषा-भाषी तथा विभिन्न रीति-रिवाजों को मानने वाले लोग रहते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, प्रमुख रूप से चार धर्मों के लोग रहते हैं। भारत में हिन्दुओं की जनसंख्या सर्वाधिक है और यह समाज विभिन्न जातियों तथा उपजातियों में विभाजित रहा है और आज भी है। जिस प्रकार भारत में राष्ट्रियता का उदय हुआ, उस तरह से किसी अन्य देश में नहीं। भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास बड़ी ही जटिल परिस्थितियों में हुआ, परन्तु भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि विभिन्नता होते हुए भी यह देश एकता के सूत्र में बँधा हुआ है और यही एकता राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन देती है।

अगर भारत की ब्रिटिश पूर्व पृष्ठभूमि को देखा जाए तो ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय गाँव आत्म निर्भर थे। भारत कृषि प्रधान देश है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था पूरी तरह से कृषि और छोटे-मोटे उद्योगों पर निर्भर थी और यह व्यवस्था सदियों से चली आ रही थी। निर्णायक व्यवस्था के रूप में पंचायत विद्यमान थी जो समाज, पारिवारिक झगड़ों तथा जातिगत झगड़ों को सुलझाया करती थी। नगरों में अधिकतर लघु उद्योग-धंधे का ही प्रचलन था। परन्तु ब्रिटिश शासन के आगमन से यह उद्योग-धंधे नष्ट हो गए और नई अर्थव्यवस्था का आगमन हुआ। बिपिन चन्द्र अपनी पुस्तक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद में लिखते हैं 'उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्ध यदि भारत में ब्रिटिश आर्थिक प्रसार और शोषण का और भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन रखकर उसका पूरक बनाने का युग था, तो यह वह काल भी था जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अंदरूनी अंतर्विरोध परिपक्व हुए, भारतीय अर्थव्यवस्था के आधार के रूप में भूमि-व्यवस्था के सुनिश्चित विनाश की प्रक्रिया आरंभ हुई, एक देशीय औद्योगिक पूँजीपति वर्ग उदित हुआ और राष्ट्रवादी बुद्धिजीवी वर्ग की जड़े मजबूत हुई।' तत्कालीन समय में भारतीय अर्थव्यवस्था में तीव्रता से परिवर्तन आया। पारम्परिक अर्थव्यवस्था के स्थान पर नयी अर्थव्यवस्था आई। ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित होने से भूमि पर ग्रामीण समुदायों का अधिकार न रहकर बल्कि व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। जहाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन आया वही नगरीय अर्थव्यवस्था में भी बदलाव आया। पारम्परिक धंधे नष्ट हो गये। ब्रिटिश सरकार ने जहाँ नए-नए उद्योग स्थापित किए।

भारत में विदेशी वस्तुओं का क्रय-विक्रय होने लगा। व्यापार पर अंग्रेजों का एकाधिकार हो गया। ब्रिटिश सरकार को अपने पूँजीवादी वर्ग तथा उद्योगों को संभालने के लिए एक शिक्षित वर्ग की आवश्यकता पड़ी जिसके लिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया और भारत में एक नये वर्ग का उदय हुआ बुर्जुआ वर्ग, मध्यवर्ग। ब्रिटिश सरकार का भारत के सभी क्षेत्रों पर अधिकार हो गया और उन्होंने अपने कानून लागू किए। पढ़े-लिखे वर्ग ने ही राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात किया।

ब्रिटिश शासनकाल में ही भारत में राष्ट्रवाद की भावना, देश भक्ति की भावना और राजनीतिक गतिविधियाँ, विशेष रूप से सक्रिय तथा मुखर हो उठी। अगर इतिहास उठाकर देखे तो महाभारत युग में भी राष्ट्र की संकल्पना परिलक्षित होती है। प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल तक मुख्य रूप से चन्द्रगुप्त मौर्य से गुप्तों के शासन काल में भी राष्ट्रवाद का चित्रण मिलता है वहीं तुर्कों और मुगलों के शासन काल में भी राष्ट्रीय भावना का उल्लेख मिलता है। ब्रिटिश शासन काल में क्रांतिकारियों ने राष्ट्रवाद के विकास में विशेष योगदान दिया। ब्रिटिश शासन काल में क्रांतिकारी आन्दोलनों के प्रभावों में राजनैतिक एकता की स्थापना, अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात और विकास, समचार पत्रों, रेल का उद्भव, औद्योगिक और सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है। भारतीय राष्ट्रवाद का ब्रिटिश सरकार ने कभी समर्थन नहीं किया क्योंकि भारतीय राष्ट्रवाद उनकी सत्ता के लिए सबसे बड़ा खतरा था। बल्कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राष्ट्रवाद की मौजूदगी को पूरी तरह से नकार दिया। जब भारत में राष्ट्रवाद की भावना में तीव्रता आई तो ब्रिटिश सरकार ने उसे नष्ट करने का भरपूर प्रयत्न किया। राष्ट्रवादी भावना देश में उत्पन्न तथा बढ़ोतरी करने का श्रेय साम्राज्यवाद की अपेक्षा औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न परिस्थितियों का अधिक है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात विश्व के सभी कोणों में राष्ट्रीय भावना का प्रारम्भ हो गया जहाँ मूलभूत संस्कृति, जाति, भाषा, भौगोलिक एकता पाई जाती थी। भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलनों का जन्म तथा विकास ब्रिटिश सरकार से स्वतंत्रता पाने हेतु हुआ और इसमें सफल भी रहे। इसी भावना के परिणामस्वरूप देश आजाद हुआ, देश-भक्ति की भावना का जन-जन में संचार हुआ।

आज राष्ट्रवाद की अवधारणा को कुठित मानसिकता वाले लोगों ने इस विशाल विचार धारा को संकुचित कर दिया है। उनकी सोच में राष्ट्रवाद का अर्थ अपने धर्म, जाति के प्रति वफादार और उन्हीं की सेवा करना रह गया है। ऐसी संकुचित मानसिकता के परिणामस्वरूप ही आतंकवाद का जन्म हुआ आए दिन साम्प्रदायिक दंगे होते हैं।

अतः राष्ट्रवाद का क्षेत्र विस्तृत है जिसमें देश के प्रति भक्ति, देश प्रेम आदि सभी भावनाएं सम्मिलित रहती हैं। तत्कालीन समय में राष्ट्रवाद के विस्तृत दायरे को संकुचित कर दिया है जो समाज तथा राष्ट्र के लिए हितकारी नहीं है। राष्ट्रवाद के नाम पर हमारे के कुछ स्वार्थी राजनेता अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए देश को दाँव पर लगाए हुए है। राष्ट्रवाद के नाम पर जनता की भावनाओं से खिलवाड़ कर रहे हैं। ऊपर से राष्ट्रवादी बनते हैं और भीतर ही भीतर इस राष्ट्रवादी भावना को तहस-नहस करने में लगे हुए हैं। हमारे देश के महान् नेताओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन कर स्वतंत्रता को पाया था एक स्वस्थ राष्ट्र की कल्पना की थी परन्तु आज कुछ स्वार्थी तत्व इस भावना को तहस-नहस करने में लगे हुए हैं। प्रत्येक देश के लिए उसकी जनता के हृदय में राष्ट्रवादी भावना का होना आवश्यक है तभी एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण ही सकेगा।

संदर्भ

1. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली पृष्ठ 301
2. बिपिन चंद्र, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद पृष्ठ 73-74

राष्ट्रवाद के निर्माण में साहित्य एवं मीडिया की महत्ता

डॉ. रेणु गौतम
लेडी श्री राम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्रवाद के निर्माण में मीडिया महत्वपूर्ण योगदान ही नहीं निभा सकता बल्कि मूल प्रेरणा स्रोत भी बन सकता है। जैसे-जैसे मुनष्य के जीवन के सरोकार बदले हैं, राजनीतिक परिदृश्य बदले हैं, वैसे-वैसे राष्ट्रवाद भी बदलता गया। राष्ट्रवाद का मुद्दा जितना प्रासंगिक अंग्रेजों की गुलामी के समय महत्वपूर्ण था उतना ही आज भी महत्वपूर्ण है। आजकल मीडिया में इसकी चर्चा जोर शोर से हो रही है।

राष्ट्रवाद आता है 'राष्ट्र' से और हमारा भारत देश एक लोकतांत्रिक देश है और आजकल प्रश्न इन्हीं विषयों पर उठाने लगे हैं की क्या हमारा देश इतना लोकतांत्रिक है? क्या वह उन मूल्यों का प्रतिस्थापन एवं संवर्द्धन अपने नागरिकों में कर रहा है? कुछ लोगों का तर्क है की आज राष्ट्रवाद धर्मवाद बनता जा रहा है जबकि मैं ऐसा मानती हूँ कि ऐसा नहीं है। भारत देश का राष्ट्रवाद किसी धर्म, मत, पथ, पार्टी से प्रभावित होने वाला नहीं है। हाँ मीडिया इसे तरह-तरह से व्याख्यायित आवश्यक कर रहा है एवं देश के सभी नागरिक सोशल मीडिया के माध्यम से इसे अपने अनुसार व्याख्यायित आवश्यक कर रहे हैं। यह किसी राजनीतिक पार्टी की बपौती नहीं है, यह भारत देश के जनमानस से जुड़ा संदर्भ अवश्य है।

गणेशशंकर विद्यार्थी मानते थे की पत्रकार को सदा सरकार के विरोध में होना चाहिए। परंतु ये मत एकांगी अवश्य लगता है। हर सरकार कुछ मूल्य लिए होती है और समाज की सहृदयता एवं भाईचारा बनाए रखना उनका प्रशासनिक ही नहीं, नैतिक दायित्व भी होता है। ऐसे में मीडिया एवं पत्रकार की जिम्मेदारी बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है। अगर ऐसे में, मीडिया समाज में नकारात्मकता फैलाता है तो उसे समाज के प्रति अपनी भूमिका पर ध्यान देना चाहिए।

राष्ट्रवाद या राष्ट्रहित का यह कतई मतलब नहीं कि पत्रकार या मीडिया हाऊस सरकार के पक्ष में ही हो वे समय पड़ने पर अपनी असहमति एवं अपने राय देने में बेबाक हो सकते हैं मगर राष्ट्रवाद और राष्ट्रद्रोह के बीच महीन डोरी है। जिसमें हमें पता ही नहीं चलता और पत्रकार या मीडिया दोनों स्थितियों में अर्थात् राष्ट्रहित एवं राष्ट्रद्रोह में जाता रहता है और इसका समाज पर बहुत दुष्परिणाम पड़ता है। कोर्ट आ कर इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

अभी हाल ही में पत्रकारों के लिए कई कड़े निर्देश बनाए गए बाद में हटा लिए गए। मुझे लगता है कुछ सख्त निर्देश आवश्यक है ताकि मीडिया अपनी जिम्मेदारी ज्यादा प्रभावशाली ढंग से निभा सकें। कई राज्यों में पत्रकारों के साथ दुर्व्यवहार, कथित हत्या ने लोकतंत्र पर आघात अवश्य किया है ऐसा नहीं कि उन्होंने राष्ट्रवाद के पक्ष में अपनी आवाज बुलन्द नहीं की बल्कि उन्होंने सैनिकों की तरह किसी भी प्रकार के समझौते से इनकार किया और अपने प्राणों की आहूति दी।

मीडिया पर बढ़ते बाजारवाद के प्रभाव ने मीडिया पर काफी नकारात्मक प्रभाव छोड़े हैं। सम्पन्न धनाढ्य या सत्ताधीशों ने तो मीडिया को प्रभावित करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। सरकार या विपक्ष दोनों के हाथ का खिलौना ज्यादा है 'मीडिया' इसके पीछे पत्रकार या मीडिया हाऊसों के निजी स्वार्थ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। इस तरह मीडिया ने केवल अपने कर्म से भटका है बल्कि पत्रकारिता की छवि को भी कलंकित किया है। यह हमारे देश की ही समस्या नहीं है समूचे विश्व में यही स्थिति है। अनेक प्रभावशाली देश भी इस से अछूते नहीं हैं। वहाँ भी बाजारवाद का प्रभाव मीडिया पर दिखाई पड़ता है और यह मीडिया पर पड़ते बाजारवाद ने उसे महत्वपूर्ण मूल्य छोड़ देने के लिए बाध्य किया है।

सोशल मीडिया की स्थिति तो और भी दयनीय है आज सोशल मीडिया की साइट्स अपने डाटा अपने हित के लिए या अर्थ उत्पन्न करने हेतु बेचती दिखाई देती है। ये डाटा का बिकना किसी भी देश के राष्ट्रवाद के विरोध में हमारे सामने आ रहा है। इससे चुनाव प्रभावित हो रहे हैं और लोगों की मानसिकता को एक तय दिशा में धकेल रहे हैं। एक देश की राजनीतिक स्थितियों को दूसरा देश न केवल प्रभावित कर रहा है बल्कि राष्ट्रवाद का निर्माण या उस देश के नागरिकों में विदेशी चीजों एवं सरोकारों के प्रति रुचि भी उत्पन्न कर रहा है। इस प्रकार आज का राष्ट्रवाद पुराने राष्ट्रवाद से ज्यादा प्रभावित है। मीडिया में चाहे वे प्रिंट मीडिया हो या इलैक्ट्रॉनिक मीडिया हो या सोशल मीडिया हो सभी से किसी भी देश के राष्ट्रवाद को ज्यादा खतरा है।

वर्तमान में मीडिया समाज के लिए मजबूत बड़ी साबित हो रहा है समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं की प्रासंगिकता सदैव रही है और वह भविष्य में भी रहेगी। मीडिया में परिवर्तन युगानुकूल आए हैं मगर भाषा की दृष्टि से उनमें गिरावट देखी जा सकती है। इसका कारण है समाचार पत्रों से सहित्य प्रायः लुप्त होता जा रहा है। आज आवश्यकता है समाचार-पत्रों में साहित्य का समावेश हो और वो भी उन समाचार पत्रों के माध्यम से लोगों में राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ा सके। वैसे यह कोई आसान काम नहीं है क्योंकि समाचार-पत्रों में संपादक का दायित्व ऐसे लोग ज्यादा निभा रहे हैं जिनका साहित्य से कोई सरोकार नहीं है। उन पर बढ़ रहे बाजारवाद के दबाव ने उन पर मोटी धनराशि कमाने का दबाव है। समाचार पत्रों या मीडिया हाऊसों को जो ज्यादा से ज्यादा विज्ञापन दिला सकें या फिर राजनीतिक गलियारों तक उनकी पहुँच बढ़ा सकें। प्रतिष्ठित लोगों से उनका सम्पर्क जुड़ सकें।

इस बीच कुछ समाचार-पत्र ऐसे हैं जो सप्ताह में एक दिन सहित्यिक जानकारी देते हैं। परन्तु राष्ट्रवाद को लेकर उनके अंक अधिक प्रकाशित नहीं हो उनके अनुसार राष्ट्रवाद की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में आते ही वह एक धर्म विशेष से जुड़ जाएगा और फिर वही असहिष्णुता की दुहाई देकर सब ओर उनके पत्र की बुराई होगी। सभी पत्रकार अपने को राष्ट्रवाद के मुद्दे से दूर रखने में ही भलाई समझते हैं। इसलिए राष्ट्रवाद शब्द स्वयं में साम्प्रदायिक अधिक हो गया है और जिसके पीछे राष्ट्र की या राष्ट्रहित की अवधारणा बहुत पीछे छिप गई है। ऐसे में साहित्य से जुड़ना पत्रकारों के लिए बेहद आवश्यक है क्योंकि आजादी के समय से पूर्व एवं उसके बाद प्रेमचन्द, निराला, मैथिलीशरणगुप्त जैसे साहित्यकारों ने राष्ट्रवाद जैसे विषय एवं उनके जुड़े जटिल विषयों पर अपनी लेखनी के करिश्मों से अनेक विवादास्पद विषय कर कृतियाँ लिखी और ये कृतियाँ प्रसिद्ध भी हुई। साहित्य ने सदैव राष्ट्र और समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। साहित्य जनमानस को सकारात्मक सोच तथा लोक कल्याण के कार्यों के लिए प्रेरणा देने का कार्य करता है। साहित्य के विकास में मानव सभ्यता का विकास है। इसलिए साहित्य लेखन बहुत आवश्यक है। यह लेखन निरंतर रहना चाहिए अन्यथा सभ्यता का विकास अवरुद्ध हो जाएगा। मीडिया इन्हें अपने में शामिल कर समाज का पथ-प्रदर्शक बन सकता है।

अगर भारतेन्दुयुगीन एवं द्विवेदीयुगीन अनेक साहित्यकारों ने राष्ट्रवाद के विषय को उठाया और वह जनता के जनमानस तक पहुँचा और वह साहित्य उद्बोधन का साहित्य बना। कभी वह सांस्कृतिक उत्थान के रूप में साहित्य में अपनी जगह बना पाया और जनता में राष्ट्रवाद को जगाने का काम किया। शिवशम्भू के चिट्ठे जैसे निबंधों से अंग्रेजी शासक भी जागे और वे राष्ट्र की भावना को लोगों के हृदय से निकाल सकें। जिसका प्रकिलन स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में हुआ। उस समय के सम्पूर्ण साहित्य में भारतीयता की अन्तर्ध्वनि मिलती है जिसपर उस समय राष्ट्रवाद बनाम हिन्दूवाद का आरोप नहीं लगा परन्तु आज राष्ट्रवाद से 'हिन्दू' शब्द च्युत नहीं हो पाता। हमारे मीडिया ने बँटवारे कर समाज में इस तरह के बीज बो दिए हैं जो बेहद निन्दनीय हैं। आज भारतीयता शब्द की कोई कीमत हमारे मीडिया हाऊसों के पास नहीं है। उनकी आवश्यकता मात्र अपने स्वार्थ-पूर्ति से आगे ही नहीं बढ़ पा रही है। यह उन्हें चल-अचल सम्पत्ति ही नहीं रसूक बढ़ाने में भी सहयोग दे रही है।

हमारे मीडिया में राष्ट्रवाद से जुड़े मुद्दों एवं सरोकारों के एकांगी दर्शन न हो। उसे निरपेक्ष होना चाहिए एवं दर्पण की तरह कार्य करना चाहिए। जिस सब से हमारा देश मजबूत बने। उसे ही खबरों में दिखाना ही मीडिया के लिए आवश्यक होना चाहिए। देश के अतीत गौरव, उसके लोकतांत्रिक मूल्य, उसके कुटुम्ब की तरह नागरिकों में सौहार्द, भाईचारा, परम्परागत आस्थाएँ उनसे जुड़े सरोकारों के द्वारा आपसी बंधन में बंधती विभिन्न जातियाँ धर्म, पंथ आदि इन सभी से जनता को परिचित कराना मीडिया का धर्म होना चाहिए न कि उनको बाँटना। आज मीडिया दूसरा कर्म ज्यादा जोर से कर रहा है वह हर दिन के एजेन्डे के साथ लोगों को बाँटने पर ज्यादा जोर दे रहा है और अपने द्वारा उठाए जाने लायक मूल-भूत प्रश्नों से कोसो दूर है। मीडिया व्यापार हो गया है जिसके आगे जनता तो क्या सरकारों तक मजबूर हो गई है। वह समाज को राह दिखाने वाली रचनात्मक खबरों को प्रमुखता देता ही नहीं है।

राष्ट्र या राष्ट्रवाद कर अवधारणा भारतेन्दु, गणेशशंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य नरेन्द्र देव आदि के साथ ही खत्म हो गई। आज मीडिया में हिन्दू विरोध में लिखना, समाचार दिखाना ही प्रगतिशीलता है। हिन्दू को असहिष्णु दिखाना ही पत्रकारों को महत्वपूर्ण लगता है जबकि इसके पीछे उनके निजी स्वार्थ ही छिपे हैं। इस प्रकार मीडिया समाज को तोड़ रहा है और भारत जैसे देश में ऐसे विषय बहुतायत में हैं क्योंकि भारत विविधता का देश है। आप जितने चाहे उतने मुद्दे भड़का सकते हैं और अपनी स्वार्थ की रोटिया सेंक सकते हैं।

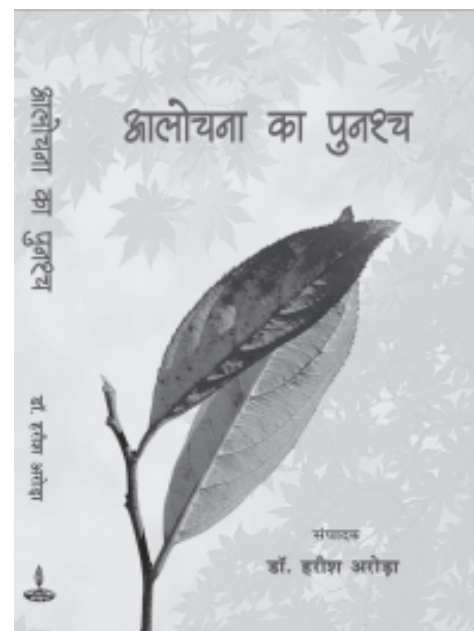
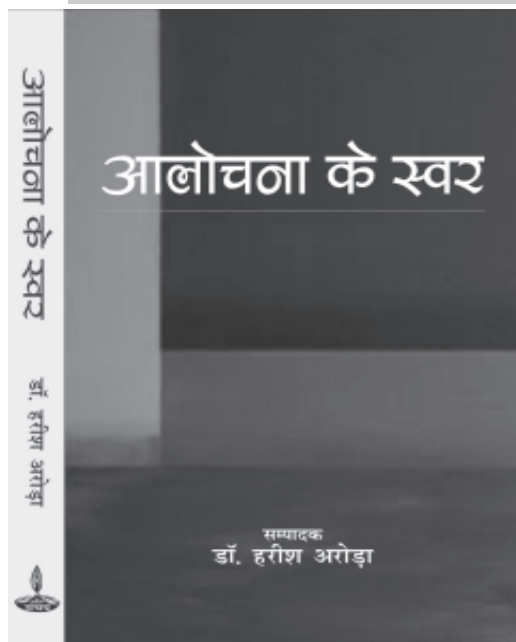
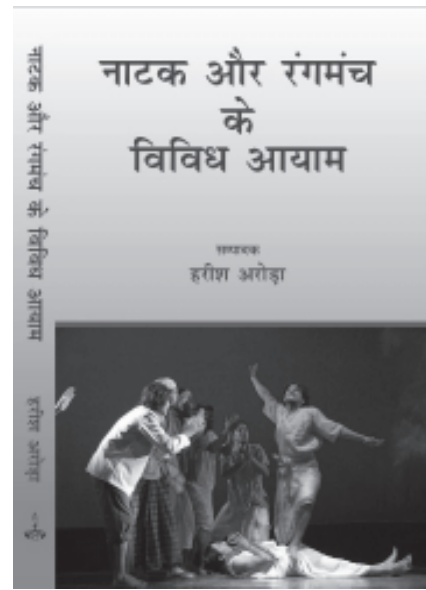
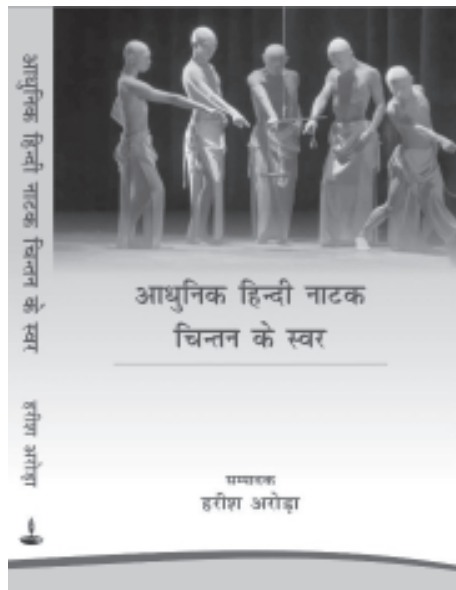
मीडिया राष्ट्र या प्रांत की एकता हो स्थानीयता के आधार पर बाँट रहा है, भाषाओं को बाँट रहा है। बड़े-बड़े समाचार-पत्र स्थानीय पत्रों का रूप लेते जा रहे हैं। एक भाग में हुई घटना पर दूसरे भाग में प्रतिक्रिया न होने पर आज मीडिया उसे इतना उठाता और दिखाता है कि देश की अखण्डता ही खतरे में पड़ जाती है। इनमें महत्वपूर्ण घटनाएँ, राष्ट्रीय स्तर की सामाजिक, वैज्ञानिक, अकादमिक सम्मेलनों के प्रस्ताव नगरीय पन्ने में ही स्थान या सकते हैं यदि नेता या अभिनेता उस सम्मेलन में उपस्थित नहीं हो तो।

पत्रकारों को आज गम्भीरता से सोचना चाहिए की समाचार प्रकाशित कराने एवं दिखाने का आधार क्या होना चाहिए।

भूमंडलीकरण के इस दौर में राष्ट्रवाद एवं उससे प्रेरित मीडिया मिलना कठिन है। इसके बिना कोई राष्ट्र भी मजबूत नहीं बन सकता न ही उसमें राष्ट्रवाद के तत्वों को लोगों में भरा जा सकता है। इसके लिए मीडिया के लोगों को आत्ममंथन की आवश्यकता है। इस प्रकार राष्ट्र को होने वाली क्षति को रोका जा सकता है।

मीडिया के ऊपर आज देश की मानसिक-गठन निर्माण का जो महत्वपूर्ण दायित्व है उसके लिए उसे अधिक गम्भीरता से सोचते हुए जिम्मेदारी निर्वहन के लिए तैयार होना चाहिए। मीडिया चाहे तो राष्ट्र निर्माण के एक बड़े आन्दोलन को भी वह तैयार कर सकता है। इसलिए राष्ट्रवाद के लिए मीडिया में सुधार की अपेक्षा अधिक है वह चाहे तो इसके लिए राजनेताओं से लेकर, समाजसुधारक या आम जनता सभी का सहयोग ले सकती है। राष्ट्र के लिए युवाओं में जोश जगा सकती है उन्हें सकारात्मक जीवन जीने के लिए ही नहीं एक अच्छे राष्ट्र निर्माण के अग्रदूत के रूप में भी भूमिका निभाने का संदेश दे सकती है इससे समाज के एक वर्ग ही नहीं, एक धर्म या एक जाति ही नहीं बल्कि सभी को इससे लाभ होगा और कोई भी राष्ट्र अधिक सम्पन्न, प्रभावशाली एवं सजग रूप में सम्पूर्ण दुनिया के सामने प्रतिस्थापित होगा और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्राचीन जीवन मूल्यों को लेकर सम्पूर्ण विश्व का पथ-प्रदर्शक बनेगा और इससे आपसी भाईचारे प्रेम का संदेश सभी को दे सकेगा।

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तकें



नए भारत में राष्ट्रवाद का स्वरूप और भारतीय पत्रकारिता

संगीता रॉय

शोध छात्रा

आबासाहेब गरवारे महाविद्यालय, पुणे

राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्वों में राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पायी जानेवाली सामुदायिक भावना है जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में राष्ट्रीयता की भावना का विशेषरूप से विकास हुआ, इस विकास में विशिष्ट बौद्धिक वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारतीय राष्ट्रवाद एक आधुनिक तत्त्व है। इस राष्ट्रवाद का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है।¹ नए भारत में पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक ही धारा में प्रवाहित होने वाले जल के समान हैं। भारतीय पत्रकारिता ने सदैव राष्ट्रवाद को ही मुखरित करने का कार्य किया है।²

‘अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

उपर्युक्त कथन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने लंका पर विजय प्राप्त करने के बाद लक्ष्मण से कहा था जिसका सीधा सा अर्थ है कि यद्यपि लंका सोने की है लेकिन मुझे मेरी माँ और जन्मभूमि स्वर्ग से भी प्यारी है। भारतीय संस्कृति में राष्ट्रवाद की जड़ें शायद उससे पहले से ही विद्यमान हैं। यहां भारतीय राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य का अपना सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ है।³

भारतीय परिवेश में राष्ट्रवाद का तात्पर्य होता है कि राष्ट्र के प्रति सरोकार रखना, राष्ट्र के प्रति सरोकार रखने में सिर्फ भौगोलिक सीमाएँ नहीं हैं बल्कि यहां के जन, यहां का इतिहास, हमारी जीवन संस्कृति इत्यादि इन सबके प्रति जब आप सरोकार रखते हैं तो वह राष्ट्रीयता के दायरे को परिभाषित करता है।

पत्रकारीय जीवन का बहुमूल्य सिद्धांत अगर हम कहें तो गाँधी जी का वह सबसे चर्चित कथन ही वास्तविक है कि सार्वजनिक क्षेत्र के व्यक्ति को चाहिए कि वो अपने जीवन में जिस किसी व्यक्ति को सबसे दीन-दुखी देखा हो उसको ध्यान में रखकर ये सोचते हुए कार्य करता है कि क्या मेरा ये कदम उसके जीवन में बदलाव ला सकता है क्या? .तो उसके द्वारा उठाया गया कदम गलत नहीं होगा। तो जब आप इन आदर्शों को ध्यान में रखकर अपने कार्यों को करेंगे तो वो राष्ट्र के जन के लिए उठाया गया राष्ट्रीयता का ही अंश होगा।⁴

व्यक्ति के भाव, विचार, और क्रिया -व्यापार द्वारा राष्ट्र के हित कल्याण और मंगल की भावना और चेतना राष्ट्रवाद है जैसा की स्पष्ट है - ‘राष्ट्रवाद राष्ट्र में अवस्थित दिव्य एकता को अनुभव करने की भाव प्रवण आकांक्षा है। यह एक ऐसी एकता है जिसमें सभी अंगभूत व्यक्ति राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र में अपने कार्यों की सृष्टि से विविध व असमान होने पर भी मूलरूप से वस्तुतः एक ही होते हैं। राष्ट्रवाद एक अदम्य शक्ति है। वह परमात्मा की शक्ति में जीवित रहता है और उसे कुचलना संभव नहीं है।’⁵ - महर्षि अरविंद

राष्ट्रवाद राजनीतिक उत्तेजना या भावुकतापूर्ण कल्पना मात्र नहीं है। यह स्वदेश प्रेम को सर्वोच्च कर्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है। प्रेम की शुरुआत मनुष्य के अपने ‘स्व’ से होकर उसका विस्तार रिश्तेदारों, समाज, देश व अंततः सम्पूर्ण विश्व तक होना चाहिए। जिस प्रकार राष्ट्र रक्षा आत्मरक्षा से श्रेष्ठ है उसी प्रकार वह परिवार रक्षण से भी उच्चतर कर्तव्य है क्योंकि परिवार समाज का नगण्य अंग मात्र है। अतः ‘सम्पूर्ण’ के लिए ‘अंश’ का बलिदान समीचीन है। - बंकिम चंद्र चटर्जी

‘प्रत्येक जाति को संसार में एक सन्देश देना पड़ता है और एक व्रत विशेष का उद्घापन करना पड़ता है। प्रत्येक राष्ट्र में पुरुष या स्त्री किसी एक आदर्श को व्यक्त करते हैं जिसकी पूर्ति ज्ञात या अज्ञात भाव से होती रहती है। व्यक्ति विशेष अभिप्रेत आदर्श का बाह्यरूप मात्र है। ऐसे व्यक्तियों के समूह को राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्र किसी महान आदर्श का प्रतीक होता है, जिसकी ओर वह बढ़ता रहता है। यही राष्ट्रवाद है।’⁶ - स्वामी विवेकानंद

उपर्युक्त तथ्यों से यही महसूस होता है कि सभी दलों, धर्मों, समुदायों, वर्णों और क्षेत्रों के लोगों को एक सूत्र में बाँधकर रखने कि भावना ही भारतीय राष्ट्रवाद कि मूल आत्मा है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में देखें तो पत्रकारिता का जीवन बहुत ही दिग्भ्रमित सा हो गया है समाज के हित कि नहीं, लोकहित की नहीं, राष्ट्रहित की नहीं वरन हम बात अभिव्यक्ति के आड़ में एजेंडा संचालन की करने लगे हैं! कमोबेश सभी पत्रकारों या पत्रकारिता संस्थान की बात मैं नहीं कर रही लेकिन यह आजकल प्रचलन में आ गया है जो आलोचना के नाम पर एजेंडा को संचालित करते बहुधा दिख जायेंगे।

वर्तमान काल देश का 'नौजवान काल' है और संचार माध्यमों का स्वरचित 'सोशल मिडिया काल' है जहाँ पर आप किसी भी विषयवस्तु को त्वरित संचारित कर सकते हैं ! जब देश कि बहुधा आबादी नवयुवक हो तो हमारे वैचारिक व सामाजिक दायित्व और भी बढ़ जाते हैं ! हम किस तरह का मार्ग देश के युवाओं को दिखाना चाहते हैं वो हमारे संचार, समाचार व पत्रकारिता की कलम पर निर्भर है! यदि हमारी कलम राष्ट्र के प्रति समर्पित रहेगी तो हमारा नौजवान भी राष्ट्रहित के दायरे में अपने आपको विकसित व संवर्धित करेगा। मूलभाव यही है कि हम देशहित व जनहित में राष्ट्रवादी पत्रकारिता को ही जनमानस के प्रशिक्षण का साधन बना सकते हैं।⁷

वास्तव में देखा जाए तो समाज कि आवश्यकता ने ही पत्रकारिता को जन्म दिया और तत्कालीन परिस्थितियों से पत्रकारिता प्रभावित हुई। आज समाचार – पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, निजी चैनल, इंटरनेट आदि पत्रकारिता के सभी अंग हमारे जीवन पर व्यापक प्रभाव डालने लगे हैं। राष्ट्र के नागरिकों के मन में अपने राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान की भावना निर्माण कराने में वर्तमान हिंदी पत्रकारिता का उल्लेखनीय योगदान है। राष्ट्रीय भावना की अभिवृद्धि में सहायक बनना वर्तमान हिंदी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारत में पत्रकारिता का प्रारंभ ही भारत की स्वतंत्रता के लिए हुआ था भारतीय स्वतंत्रता का अनहद नाद हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से जन जन तक पहुँचा। नए भारत में हिंदी पत्रकारिता स्वतंत्रता आंदोलन के समय की पत्रकारिता के समान अपने उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है, किंतु यह मानना गलत होगा कि वर्तमान पत्रकारिता को हमारे पावन आदर्शों और निश्चित उद्देश्यों से कोई सरोकार नहीं। वर्तमान हिंदी पत्रकारिता अपनी राष्ट्रीयता के लिए समर्पित है। आज जब भी कहीं राष्ट्रीय अस्मिता और अखंडता पर आँच आती है तो हिंदी पत्रकारिता एक स्वर में उसका विरोध करती है जब भारत में कहीं आतंकी हमला होता है, प्रांतीय संघर्ष होते हैं, जातीय दंगे होते हैं तो वर्तमान पत्रकारिता द्वारा उसका विरोध किया जाता है। राष्ट्र के लोगों को भावनात्मक स्तर पर एक-दूसरे से जोड़ने का कार्य हिंदी पत्रकारिता के द्वारा ही संभव होता है।⁸

नए भारत में हिंदी पत्रकारिता ने ही अनेकता में एकता का निर्माण किया है। राष्ट्र के अलग-अलग प्रांत में, अलग-अलग जातियों में बिखरे हुए भारतीय जन को सभी भेदभाव भुलाकर राष्ट्रीयता के सूत्र में जोड़ना हिंदी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। सामाजिक कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निर्वह –

“यश वैभव कि चाह नहीं, परवाह नहीं जीवन न रहे।

यदि इच्छा है, यह है, जग में स्वेच्छाचार, दमन न रहे।”

‘नवीन राजस्थान’ के इस आदर्श वाक्य से पत्रकारिता के सामाजिक कर्तव्यों की भावना स्पष्ट होती है। पत्रकारिता का कार्य केवल सूचना देना ही नहीं है। पत्रकारिता का समाज से अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज में जो कुछ घटित होता है वह पत्रकारिता के माध्यम से प्रकाश में आता है! पत्रकारिता के माध्यम से प्रस्तुत खबरों का समाज पर प्रभाव पड़ता है।

पत्रकारिता समाज को दिशा-निर्देश देने का कार्य करती है। समाज में घटित आदर्श कार्यों को प्रकाश में लाकर समाज को एक नई राह दिखाती है साथ ही समाज में व्याप्त रूढ़ियाँ, गलत परम्परा, अंधविश्वास, दहेजप्रथा, बालविवाह इत्यादि पर प्रहार कर समाज सुधार का कार्य पत्रकारिता के द्वारा ही संभव होता है! पत्रकारिता के माध्यम से अनेक कार्य किये जाते हैं। 2008 में हुए मुंबई में आतंकवादी हमलों में शहीद हुए पुलिस वालों के लिए ‘लोकमत’ समूह द्वारा शहीद निधि संकलन का कार्य किया गया। गुजरात में आये विनाशकारी भूकंप के बाद वहां के लोगों को आर्थिक एवं अन्य सहायता पत्रकारिता के माध्यम से उपलब्ध कराई गयी थी। व्यक्तिगत स्तर पर भी सामान्य जनता कि सहायता कर पत्रकारिता अपने सामाजिक कर्तव्यों को सफलतापूर्वक निभाती है। कई बार यह देखा जाता है कि किसी व्यक्ति को खून की जरूरत है, कोई प्रतिभाशाली खिलाड़ी धन के अभाव में राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेल नहीं पा रहा है, किसी अच्छे कलाकार या रचनाकार को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है तो ऐसे समय में हिंदी पत्रकारिता पूरे देश में उनकी समस्याओं को पहुँचाकर उनके समाधान के लिए प्रयत्न करती है।⁹

पत्रकारिता समाज का दर्पण होती है। समाज में जो हुआ, जो हो रहा है और जो होगा इस त्रिकाल से संबंधित समस्त हिसाब पत्रकारिता के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। पत्रकारिता ने अंधविश्वासों से ग्रसित समाज की मान्यताओं को समाप्त करने का कार्य किया है! चेचक को अब शीतला माता का प्रकोप नहीं मन जाता है! वर्तमान समय में समाज में रहने वाले व्यक्तियों के अस्तित्व को प्रभावित करने वाली अनेक समस्याएँ हैं जिनमें निर्धनता, अकाल, बेरोजगारी, महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, जनसंख्या वृद्धि, जातिभेद, निरक्षरता, पर्यावरण प्रदूषण इत्यादि प्रमुख हैं।¹⁰ पत्रकारिता ने इन समस्याओं के बारे में

समाज को अवगत कराया हैं। पत्रकारिता राजनैतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक समस्याओं पर बहस कर निर्णय देकर अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह करती हैं।

निष्कर्षतः नए भारत में भारतीय पत्रकारिता के सामने कई चुनौतियों के बावजूद नए रचनात्मक क्रियाकलापों और राष्ट्र हित में कर्तव्यों के परिपालन में ठोस भूमिका निभा रही है। वर्तमान में पत्रकारिता के द्वारा ही सम्पूर्ण समाज में नव-संचार, सजीवता, जागरण, सक्रियता और गतिमयता के सन्देश का प्रचार-प्रसार संभव हो सका हैं। पत्रकारिता कल्याणकारी समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई है। पत्रकारिता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है सामाजिक कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निर्वहण कर समाज सुधार में महत्वपूर्ण योगदान देना।

भावी पीढ़ी को यदि हम गौरवशाली अतीत का भारत बतायेंगे तो वही पीढ़ी भविष्य के सर्वसत्ता सम्पन्न भारत का निर्माण करेगी और हमारी भारतमाता परमवैभव के सिंहासन पर विराजमान होगी। जगद्गुरुओं का देश भारत फिर मानवता को प्रकाशमय बना देगा, इसी में जन-जन का कल्याण सन्निहित है क्योंकि जो संस्कृति अभी तक दुर्जेय सी बनी है, जिसका विशाल मन्दिर आदर्श का धनी है। उसकी विजय ध्वजा के साथ हम विश्व में चलेंगे। नए भारत में भारतीय पत्रकारिता यही संदेश के साथ हमारे राष्ट्र के सामने आती है।

सन्दर्भ

1. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
2. avadhbhumi.wordpress.com
3. <http://readerblogs.navbharattimes.indiatimes.com>
4. <http://readerblogs.navbharattimes.indiatimes.com>
5. पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास, लेखक - डॉ. अर्जुन तिवारी , पृष्ठ नं. 21
6. वही - पृष्ठ नं. 22
7. <http://readerblogs.navbharattimes.indiatimes.com>
8. वर्तमान हिंदी पत्रकारिता : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ, लेखक-प्रा. आनंदमणि त्रिपाठी, पृष्ठ नं.108
8. वहीं - पृष्ठ 109
9. वहीं - पृष्ठ 109-110

मीडिया और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

डॉ. सपना सावईकर

सेन्ट एन्ड्रयूज उच्च माध्यमिक विद्यालय
वास्को-गोवा

राष्ट्रवाद लोगों के किसी समूह की उस आस्था का नाम है जिसके तहत वे खुद को साझा इतिहास, परंपरा, भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एकजुट मानते हैं। किसी भी राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति होती है। यह जरूरी नहीं है कि किसी राष्ट्र में एक ही संस्कृति हो, लेकिन अलग-अलग समाज की भिन्न-भिन्न संस्कृति होने के बावजूद उनके बीच एक ऐसी अंतर्धारा प्रवाहित होती है, जो सबको एकसूत्र में बाँधकर रखने का काम करती है। भारतीय समाज भी कई संस्कृतियों का समूह है। इसमें अनेक धर्म, संप्रदाय और भाषा-भाषी लोग रहते हैं। इनकी अपने आप में अलग-अलग पहचान है और सामूहिक रूप से इनकी केवल एक ही पहचान है - भारतीय। भारतवासियों को एकसूत्र में बाँधने का काम भारतीय संस्कृति सदियों से करती आयी है। इस सनातन संस्कृति की शाखाएँ अनेक क्षेत्रों में अनेक धर्मों, जातियों, संप्रदायों में फैलती और विकसित होती चली गयी हैं। ऊपरी ऊपर अलग भी दिखायी देती हैं लेकिन यह बात सच है, कि इसका मूल एक ही है, वह है भारतीय संस्कृति।

भारतीय संस्कृति अपने अतीत से गौरवशाली रही है। इस गौरवशाली अतीत को आगे बढ़ाने और मजबूती पदान करने में मीडिया की अहम भूमिका है। आज हम देख सकते हैं कि इन्हीं जनसंचार माध्यमों की वजह से पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावी होती जा रही है। ऐसे में मीडिया की ताकत को समझते हुए हमारी संस्कृति की विरासत को संभालकर रखने का दायित्व हम पर आ जाता है। भारतीय संस्कृति के गौरवशाली पन्नों को विश्वभर फैलाने में मीडिया ने ही अहम भूमिका निभायी है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में बड़े पैमाने पर समाज में जागृति लाने और परिवर्तन लाने में दूरदर्शन और आकाशवाणी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शिक्षा, तकनीक, विज्ञान, स्वास्थ्य, जैसे विविध विषयों को जनता तक पहुँचाने का काम किया। भ्रष्टाचार को मिटाने की प्रेरणा देते हुए क्षरित होते सांस्कृतिक मूल्यों के बचाव के लिए आवाहन किया। आज हम देख रहे हैं कि आकाशवाणी और दूरदर्शन के अलावा फिल्म और इंटरनेट भी पभावी माध्यम बनकर सामने आ रहे हैं। भारतीय पत्रकारिता तो समाज परिवर्तन और सांस्कृतिक उत्थान के लिए सदियों से प्रतिबद्ध रही है। इन सभी संचार माध्यमों ने भारत की विविधता में एकता बनाए रखने में योगदान दिया है। रेडियो जैसे पभावी माध्यम ने विविध भारती तथा अपने अन्य चैनलों के माध्यम से कई ऐसे कार्यक्रमों का प्रसारण किया, जिनसे भारतीय संस्कृति की विविधता और सांस्कृतिक एकता का स्वरूप केवल भारतीयों तक ही नहीं बल्कि विदेशियों तक पहुँचाया। भक्ति संगीत, सुगम संगीत, फिल्मी गीत, चित्रशाला, पसिद्ध कृतियों पर आधारित नाटक, धारावाहिक नाटक, आदि का स्तरीय प्रसारण भारतीय संस्कृति की गौरवगाथा का प्रतीक बन गया। आकाशवाणी के विविध केंद्रों से लोकगीत, लोकगाथाएँ, पर्व, त्योहार आदि से संबंधित रूपकों का प्रसारण भी सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहित करता रहा है। आकाशवाणी के विविध भारती एवं एफ.एम चैनलों के जरिए अनेक राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गानों का प्रसारण किया जाता रहा है जो राष्ट्रीय प्रेम को बढ़ावा देते हैं।

भारत की बहुरंगी संस्कृति के प्रसार में फिल्मों का भी अभूतपूर्व योगदान रहा है। कहानी, उपन्यास, संस्मरण जैसी साहित्यिक विधाओं को फिल्मों ने रचनात्मक प्रस्तुति दी है। भारत की अशिक्षित जनता भी टेलीविजन और फिल्म देखकर प्रभाव ग्रहण करती है। गर्मीण भारत के लिए सर्वाधिक आकर्षक और लोकप्रिय माध्यम होने को कारण सांस्कृतिक उन्नयन के लिए फिल्म बहुत उपयोगी साधन है। "राष्ट्रीय एकता, अछूतोद्धार, नारी जागरण, अन्याय, शोषण, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद जैसे राष्ट्रीय हित के प्रश्नों पर जन-जन को जागरित करने वाला माध्यम फिल्म ही है।" (आधुनिक पत्रकारिता-डॉ. अर्जुन तिवारी, पृ-२२२) सामाजिक परिवर्तन, लोक जागरण, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य फिल्में आज कर रही हैं। फिल्म सरफरोश कर्मा, दिल जले, दीवार, परदेस, रंग दे बसंती, मंगल पाण्डे, स्वदेश, बॉर्डर, द लीजेंड ऑफ भगतसिंह, एअर लिफ्ट, गदर जैसी फिल्मों के माध्यम से जनता में देश प्रेम के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना भी जगाने का काम किया है। श्याम बेनेगल,

मृणाल सेन, गोविंद निहलानी, रमेश शर्मा, चेतन आनंद जैसे फिल्मकारों ने कला फिल्मों का निर्माण कर भारतीय जीवन मूल्यों के महत्व को रेखांकित करते हुए मानवतावादी धर्म की स्थापना की है।

फिल्मों की तरह टीवी भी समकालीन दौर में संचार का महत्वपूर्ण माध्यम रहा है। दृक-श्रव्य माध्यम होने की वजह से लोगों में पि'य भी हुआ है। टीवी पर अनेक फिल्मों के साथ धारावाहिक, विज्ञापन, गीत, वृत्तचित्रों का भी प'सारण होता रहा है। 'हर दिल में जगाए' राष्ट्र ज्योति', 'एकता का वृक्ष', 'मानव-मशीन', आदि वृत्तचित्र प'रणादायी साबित हुए। अनेक साहित्यकारों के जीवन पर आधारित तथा 'पुष्कर मेला, हरिद्वार और महाप'याग का कुंभ मेला, रथयात्रा, ब'ज और वृंदावन का होली महोत्सव, छठ पर्व, विभिन्न मंदिरों पर आधारित फीचर-फिल्मों ने भारत की संस्कृति के विविध पक्षों की प'स्तुति की। दूरदर्शन ने नाटक, गीत, संगीत, नृत्य, लोक नृत्य, लोकगीत आदि से संबंधित कार्यक्रमों का प'स्तुतिकरण कर भारतीय दर्शकों के बीच प'सिद्धि पायी। उसके इस प'यास ने भारत की सांस्कृतिक एकता के लिए सेतू निर्माण का काम किया है।

समकालीन युग में भूमंडलीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद की दुनिया में मीडिया की भूमिका भी बदलती हुई नजर आ रही है। मीडिया का व्यवसायीकरण हो गया है और इसी वजह से जिससे उन्हें लाभ की गुंजाइश होती है, वही उसके माध्यम से लोगों तक पहुँचाया जाने लगा है। कमोवेश रूप से कुछ ही ऐसे लोग हैं जो भ'ष्टाचार के खिलाफ, पर्यावरण रक्षा की दृष्टि से, आतंकवाद के खिलाफ, अनावश्यक रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं और देश के हित में अपना योगदान दे रहे हैं। भारत में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना अनादि काल से भारतीयों के मन में रही है। इसलिए विश्व में आनेवाले बदलाओं का प'भाव भारतीयों पर हुआ है। मीडिया ने विश्व को नजदिक लाने में अहम् भूमिका निभायी है। आज इसी वजह से मीडिया के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावी होती जा रही है। अनेक फिल्म, विज्ञापन, धारावाहिक, समाचार में दिखाए जानेवाले चित्र, प'संग, घटनाएँ, आदि का प'भाव भारतीय जीवन-शैली, खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन, सोच-समझ, विचार करने का तरीका आदि बातों पर होने लगा है। विज्ञापन के माध्यम से प'सारित होने वाले उत्पादों के जरिए विदेशी चीजों ने भारतीय बाजार और संस्कृति पर धावा बोल दिया है। लोगों के मन में राष्ट्रवाद की भावना संकुचित न रहते हुए व्यापक बनती जा रही है। आज सूचना एवं प'द्योगिकी ने इतना विकास किया है कि चंद पलों में सूचनाएँ एक जगह से संपूर्ण विश्वभर में पहुँचायी जा सकती हैं। इस वजह से कहीं भी कुछ भी घटना घटित होने से उसका असर विश्व के सभी लोगों पर होता है। विश्व भर से प'तिकि'याएँ उभरने लगती हैं, विश्व के बाजार पर भी कई बार ऐसी घटनाओं का असर होता हुआ देखा गया है।

आज हम देख सकते हैं कि विदेशी संपन्न कंपनियों ने अपने उत्पाद के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक चीजों को नष्ट करने की कोशिश जारी रखी है और मीडिया इस काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज भारतीय लोग अपना पहनावा तो पूरी तरह से भूलते जा रहे हैं, खाने में चायनीज और फास्ट फूड का जमाना आ गया है। अनेक तरह के कॉस्मेटिक्स का उपयोग बढ़ता जा रहा है। सीधी-साधी जीवन-शैली का कायापालट होकर हायफाय जीवन-शैली को बढ़ावा दिया जा रहा है। यह पश्चिमी देशों की ही कुटनीति है। आज "पश्चिमी संपन्न देशों के बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का प्रचार किया जा रहा है और उसमें हमारे देश के पूँजीपति, उद्योगपति, जन संचार माध्यमों के स्वामी भी हिस्सेदार हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पास धन-बल है। इसके बलबूते पर निगम अपने देश की सरकारों के साथ अन्य देश की सरकारों को नियंत्रित करते हैं, अपने लाभ के लिए सरकार की नीतियों को अनुकूलित करते हैं। पश्चिमी संचार एवं सूचना नीति अन्य राष्ट्रों को उनकी नीति के अनुरूप चलने के लिए बाध्य करती है।" (अंतरराष्ट्रीय संचार-विमर्श-डॉ जितेंद्र वत्स, पृ-२१६) इन निगमों के पास कई तरह के उत्पादों की कंपनियाँ हैं। इस उत्पादों का प्रचार-प्रसार करने के लिए उनके पास अपने संचार माध्यम हैं या अन्य संचार माध्यमों के साथ इनकी भागीदारी या समझौते हैं। इन्हीं माध्यमों के जरिए वे विश्व के कोने-कोने तक अपने उत्पाद को पहुँचाते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य है बाजारवाद और उसका विस्तार। इसके विस्तार के लिए उनका प्रमुख लक्ष्य है भारत। इसलिए कि भारत की आबादी ही उन्हें बड़े पैमाने पर बाजार उपलब्ध करा सकती है।

भारत के संचार माध्यम जाने-अनजाने इस सांस्कृतिक साम'ज्यवाद का साथ दे रहे हैं क्योंकि उसके माध्यम से उन्हें लाभ मिलता है। भारत के अधिकांश जनमाध्यमों के स्वामी उद्योगपति हैं और उन्हें विदेशियों की तरह बाजार पर कब्जा करने की जरूरत है। प'चीन काल में अपने स्वार्थ के लिए भारतीय राजाओं ने मुगलों और अंग'जों के साथ मिलकर खुद बड़े बनने के सपने देखे थे लेकिन उसके बदले में सभी भारतवासियों को उन्होंने मुगल और अंग'जों का गुलाम बनाकर छोड़ा। आज भी अपने स्वार्थ की खातिर मीडिया के जरिए भारतीयों को सांस्कृतिक रूप से गुलाम बनाया जा रहा है, ऐसे में भारतीय लोगों को सतर्क रहने की आवश्यकता है। कहीं सदियों के कष्टों से पायी हुई हमारी आजादी खतम न हो जाए। मीडिया को भारतीयों को सतर्क कर जनता में जागृति लाने की बड़ी आवश्यकता है। आज हम

देख रहे हैं कि विदेशी जीवन शैली अपनाकर भारतीय लोग बिल्कुल सुखी नहीं हो पा रहे हैं। विदेशी जीवन-शैली, भारतीयों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से खोखला करके छोड़ रही है। फास्ट-फूड के सेवन से अनेक बिमारियाँ फैलने लगी हैं। यह जानते हुए भी कि फास्ट-फूड जीवन के लिए हानीकारक है, हम वह खाने के लिए लालायित रहते हैं। शीत-पेयों के हमले से छोटे-छोटे बच्चे भी नहीं बचे हैं। अनेक तरह के रसायनिक उत्पादों से भरी चीजों को आज पसंद किया जा रहा है, जो सेहत के लिए बिल्कुल अच्छी नहीं है। ऐसे में जनसंचार माध्यमों की जिम्मेदारी बनती है कि जनता तक वह सही बात पहुँचाए और अपने लोगों और अपने राष्ट्र को विदेशियों की कुटनीति से बचाए।

आज हम देख रहे हैं कि टीवी पर कई चैनलों का बोलबाला है। कई चैनल विदेशियों की जेब में हैं तो कई भारतीयों की हित की रक्षा करने के लिए सक्रिय है। भारत का दूरदर्शन भारत की विविध छटाओं वाली संस्कृति की रक्षा करने, उसे सवारने सजाने और अनंत काल तक बनी रहने की परंपरा देता रहा है। इसी वजह से अनेक अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम भी इस चैनल पर देख सकते हैं। भारत के गौरवशाली इतिहास पर आधारित अनेक धारावाहिक, फीचर, फिल्मों का प्रसारण भी किया जाता है ताकि भारत के लोग अपने ऐतिहासिक ऐश्वर्य से परिचित हो सकें और राष्ट्र के हित के लिए सदैव समर्पित हो सकें।

मीडिया एक प्रभावी माध्यम होने की वजह से उस पर आनेवाली हर बात को लोग तुरंत आत्मसात करने की कोशिश करते हैं। इसके परिणाम सकारात्मक भी हो सकते हैं और नकारात्मक भी। देश पर संकट आने पर सभी जनता को संघटित कर समस्या का हल निकालने के लिए मिडिया ही एक माध्यम हो सकता है। मोबाईल, संगणक, इंटरनेट के कारण एक-दूसरे से जुड़ना बहुत आसान हो गया है इसलिए आज एक राज्य की समस्या केवल उसकी ही बनी नहीं रहती बल्कि वह सभी भारतवासियों की समस्या बन जाती है और देश के कोने-कोने से लोग मदद के लिए आगे आते हैं। इस तरह से मीडिया जरूर आज विदेशी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दे रहा है, लेकिन साथ ही साथ हमें यह भी देखना आवश्यक है कि उतनी ही शिद्दत से वह भारत की संस्कृति एवं राष्ट्रवाद की भावना को प्रेरणा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

१. अंतरराष्ट्रीय संचार-विमर्श - डॉ. जितेंद्र वत्स
२. संस्कृति, जनसंचार और बाजार - नंद भारद्वाज

पत्रकारिता में राष्ट्रबोध की प्रासंगिकता

कान्ता देवी

शोधार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक

वर्तमान जीवन की घटनाओं व आवश्यकताओं को सही तरीके से प्रकट करने का कार्य आज जिस माध्यम से हो रहा है, वह माध्यम पत्रकारिता है। पत्रकारिता एक ऐसी कड़ी है जो मानव को मानव से तथा समाज को विश्व से जोड़ने का कार्य करती है। पत्रकारिता का हिन्दी रूपान्तर जर्नलिज्म है, जर्नलिज्म शब्द 'जर्नल' से निकला है, जिसका अर्थ है दैनिक। अर्थात् प्रतिदिन के कार्यों अथवा घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करना। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा के अनुसार, "पत्रकारिता कोई पेशा नहीं है, यह जनसेवा का माध्यम है। लोकतांत्रिक परम्पराओं की रक्षा करना तथा भाई-चारे की भावना को बढ़ाने में इसकी भूमिका है।"¹

पत्रकारिता को राष्ट्र के 'चौथे स्तम्भ' की संज्ञा दी जाती है इसके अन्तर्गत सभी तरह के संचार माध्यम गिने जा सकते हैं जैसे-समाचार पत्र, पत्रिकाएं, दूरदर्शन तथा रेडियो आदि। मुद्रणकाल के आविष्कार का जनक जाने का श्रेय चीन को जाता है। भारत में इस काल को विकसित करने में पूर्तगाल मिशनरियों का विशेष योगदान रहा और 1550 ई. में इस मिशनरी ने गोवा में पहला प्रिंटिंग प्रेस स्थापित किया। भारत में प्रेस छापाखाना और समाचार पत्र गैर सरकारी अंग्रेजों के प्रयास से ही स्थापित हुए। स्वतंत्रता के संघर्ष के समय हिन्दी पत्रकारिता तथा उसके प्रसिद्ध पत्रकारों ने सभी विषयों में वाणी प्रदान की। लेकिन महत्वपूर्ण था सामयिक प्रश्न राष्ट्रवाद को प्रखर स्वर प्रदान करना था। भारत में पत्रकारिता का बीजारोपण 19वीं शताब्दी में हुआ था। उस समय सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोने, राष्ट्रीयता की चेतना को जागृत करने में पत्रकारिता की अहम् भूमिका थी। राष्ट्रीय शब्द 'राष्ट्र' का विशेषण है और 'राष्ट्र' शब्द अंग्रेजी शब्द नेशन के पर्यायरूप में हिन्दी में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार राष्ट्रीय शब्द को नेशनलिस्टिक के समीप रखा जा सकता है। विश्व में राष्ट्रीय भावना का साहित्य से गहरा सम्बन्ध है और साहित्य का पत्रकारिता से।

19वीं शताब्दी में हमारे राष्ट्र की आशाओं और आकांक्षाओं को वाणी देने वाले हमारे पत्र और पत्रकार ही थे। जिन्होंने जन-मन को राजनीति की दिशा दिखायी और संस्कृति के गौरव का स्मरण कराया जिससे यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय पत्रकारिता न केवल इस युग की दस्तावेज भी वरन् सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संवाहिका भी थी। युगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में 30 मई, 1826 को 'उदन्त मार्तण्ड' पत्र कलकत्ता से निकला जो शोध के आधार पर हिन्दी का प्रथम पत्र सिद्ध हुआ। इस पत्र ने देश को राष्ट्रीयता से परिचित कराने का प्रयास किया। युगल किशोर शुक्ल ने 'उदन्त मार्तण्ड' में लिखा था, "हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु तथा परावलम्बन से मुक्ति दिलाना इस पत्र का उद्देश्य है।"²

परतंत्र भारत में राष्ट्रीय चेतना के उदय और विकास में भारतीय प्रेस की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय समाचार पत्रों का जन्म हुआ। भारतीय समाचार पत्रों ने अंग्रेजी समाचार पत्रों का जोरदार प्रतिवाद किया। हरिश्चन्द्र राय की 'संवाद कौमुदी' (1818) एवं राजाराम मोहन राय के 'मिरातुल अखबार फारसी 1821 ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का महान कार्य किया।"³ राजा राम मोहनराय ने 1833 ई. के समाचार पत्रों में नियम के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता के लिए उनके द्वारा चलाये गये आन्दोलन के द्वारा ही 1835 ई. में समाचार पत्रों की आजादी के लिए मार्ग बना। राजा राम मोहनराय कहते हैं कि "मेरा उद्देश्य इतना ही है कि जनता के सामने बौद्धिक निबन्ध उपस्थित करूँ, जो उनके अनुभव को बढ़ाए और सामाजिक प्रगति में सहायक हो, मैं अपनी शक्ति भर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता है और प्रजा को उनके शासकों द्वारा स्थापित विधि-व्यवस्था से परिचित कराना चाहता हूँ ताकि शासन जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सकें और जनता उन उपायों से अवगत हो, जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पाई जा सकें और अपनी मांगें पूरी कराई जा सकें।"⁴

श्यामसुन्दर सेन के संपादन में 1854 ई. में कलकत्ता से हिन्दी-बांग्ला भाषा में 'सुधावर्षण' नामक दैनिक पत्र निकला। जिसने अपनी प्रखर वाणी से जनता में स्वतंत्रता का स्वर फूँका। 'अपनी निर्भीकता तथा प्रगतिशीलता के कारण इसे ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा।"⁵ 1857 का परवर्ती काल हिन्दी पत्रकारिता का द्वितीय चरण है। 1857 के बाद उनके महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, भारतमित्र, सार सुधानिधि, उचित वक्ता, बिहार बन्धु, हंस आदि ने राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 23 मार्च 1874

को 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु ने एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की बात कही थी। रामविलास शर्मा ने लिखा है, "राष्ट्रीय आन्दोलनों में स्वदेशी का प्रारम्भ करने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। भारतेन्दु जी ने कविवचन सुधा में लिखा है कि हम मोल लेकर किसी भी प्रकार का विलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे। कांग्रेस ने अभी स्वदेशी आन्दोलन विधिपूर्वक न आरम्भ किया था, न बंग भंग आन्दोलन का ही जन्म हुआ था, किन्तु हिन्दी पत्रकारिता द्वारा भारतेन्दु ने स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात करके भारत में नवोत्थान का सन्देश दिया।"⁶

1877 में बालकृष्ण भट्ट के सम्पादन में 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका प्रकाशित हुई। डॉ. रामरतन ने, "बालकृष्ण भट्ट को राष्ट्रवादी हिन्दी पत्रकारिता का पिता कहा है, क्योंकि इनका पत्र 'हिन्दी प्रदीप' साहित्य के साथ राष्ट्रीयता के भावों से अधिक परिपूर्ण था।"⁷ हिन्दी प्रदीप पत्र हिन्दी प्रचार को साथ-साथ राष्ट्रीयता का पक्षधर था। राष्ट्रीय व राजनीतिक जागरण के क्षेत्र में 'ब्राह्मण' पत्र अग्रणी था। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान की गरिमा व प्रतिष्ठा के उन्नायक पत्रों में 'ब्राह्मण' पत्र का विशिष्ट स्थान है।"⁸ इसके अतिरिक्त 'भारत मित्र' पत्र राष्ट्र प्रेम एवं स्वाधीनता के लिए हमेशा संघर्षरत रहा है।

19वीं शताब्दी में अनेक आन्दोलन हुए जिनकी प्रेरणा से अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। जिनमें 'सन्ध्या', 'वन्देमारतम', 'अंग्रेजी नवशक्ति' तथा 'युगान्तर' पत्रिकाओं ने अपनी प्रखर व उग्र राष्ट्रीयता के कारण विशेष प्रसिद्धि पाई। युगान्तर की प्रखरता को देखते हुए चीफ जस्टिस सर लारेन्स जेन्किन्स ने कहा था, "युगान्तर की हर एक पंक्ति से अंग्रेजों के विरुद्ध द्वेष टपकता है। प्रार्थक शब्द के लिए उत्तेजना झलकती है।"⁹ 17 जनवरी, 1920 ई. को जबलपुर से माखनलाल चतुर्वेदी के संपादन में 'कर्मवीर' समाचार पत्र निकला जिसके प्रवेशांक में उन्होंने लिखा था, "हम स्वतंत्रता के पुजारी हैं। मुक्ति के उपासक हैं, दासता से हमारा मतभेद रहेगा। फिर चाहे वह शरीर की हो या मन की, व्यक्तियों की हो या परिस्थितियों की।"¹⁰

प्रेमचन्द एक जागरूक पत्रकार थे। प्रेमचन्द की पत्रकारिता का उद्देश्य देश को दासता से मुक्त कराना था। सन् 1930 में हंस का प्रकाशन उन्होंने इसी संकल्प से किया था। 'हंस प्रेमचन्द ने निकाला और देश के स्वाधीनता आन्दोलन के सन्दर्भ में जो राष्ट्रीय जागरण का लक्ष्य सामने था, उसको लेकर लेखकों को समेटते हुए सर्जनात्मक साहित्य के माध्यम से उसी नवजागरण के संदेश को विभिन्न तरीकों से उपस्थित करने की प्रतिज्ञा उनके सामने थी और इसी रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़कर वह सन् 1930 में निकला था।"¹¹ इसके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। निराला की 'मतवाला', प्रेमचन्द की 'जागरण', इलाचन्द्र जोशी की 'गांधी और सुभाष' व धर्मयुग, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'चरचे और चरखे' आदि में राष्ट्रीयता की प्रखर ध्वनि विद्यमान थी। ईश्वर दत्त शर्मा के सम्पादन में 'हिन्दू पंच' का बलिदान अंक प्रकाशित हुआ, जो आजादी से सम्बन्धित थी जिसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया। यह अंक आजादी का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन को पत्रकारिता के रूप में शक्ति मिली। पत्रकारिता जनभावना की अभिव्यक्ति है। संस्कृति सभ्यता तथा स्वतंत्रता की चाभी होने के साथ ही यह जीवन में अभूतपूर्व क्रांति की अग्रदूतिका है। पत्रकारिता ने ही भारतवासियों के हृदय में स्वाभिमान का द्वीप प्रदीप्त किया तथा उन्हें यह प्रेरणा दी कि स्वतंत्रता राष्ट्रीय और एकता जैसी जीवन मूल्य ही मनुष्य के अस्तित्व को सुरक्षित रख सकते हैं। अतः कहा जा सकता है कि विभिन्न पत्रकारों ने अपने पत्रों के माध्यम से भारतीय समाज को हीनभावना से मुक्त करके आत्मविश्वास और आत्मगौरव द्वारा राष्ट्रीय भावना से सुदृढ़ किया।

पत्रकारिता से जुड़े बुद्धिजीवियों ने लोगों को राजनीतिक जागृति का पाठ तो पढ़ाया, साथ ही विभिन्न पत्रिकाओं ने हिंसामूलक क्रान्तिकारी विचारधारा द्वारा लोगों को राजीतिक स्तर पर ललकारा। 'स्वराज' के सम्पादकों ने तो राष्ट्र प्रेम में अभिभूत होकर राष्ट्रीय जनजागरण को इतना पुख्ता स्वर प्रदान किया, कि उनमें से कई को कई बार राजद्रोह के अपराध में जेल जाना पड़ा। वास्तव में इन लोगों ने देशहित में स्वराज अखबार के लिए ऐसा संकल्प लिया था कि इस ऐसा संपादक चाहिए जिसे दो सूखी रोटियाँ एक गिलास ठण्डा पानी और हर सम्पादकीय पर दस वर्ष की सजा।

संदर्भ

1. डॉ. अर्जुन तिवारी, आधुनिक पत्रकारिता, पृष्ठ 14
2. लक्ष्मी सागर वाष्ण्य, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 472
3. राजीव गर्ग, आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 354
4. डॉ. राजीव भानावत, पत्रकारिता के विविध परिदृश्य, पृष्ठ 47
5. वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता के 150 वर्ष, हिन्दुस्तान साप्ताहिक, 23 मई, 1976, पृष्ठ 10
6. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग, पृ. 18
7. डॉ. रामरतन भटनागर, द राईज ऐंड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म, पृष्ठ 480
8. डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल, पं. प्रताप नारायण मिश्र, जीवन और साहित्य, पृ. 360
9. स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी पत्रकारिता की भूमिका, नवभारत टाइम्स, 26 जून, 1994, पृष्ठ 07
10. डॉ. कैलाश नारद, मध्यप्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता, पृष्ठ 119
11. अमृतराय से कमलगुप्त की बातचीत-अगस्त 1936, हंस, पृष्ठ 11

भारतीय जीवन मूल्य और पं. दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता

डॉ. शीला भास्कर

अस्सिस्टेंट प्रोफेसर

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर कॉलेज, हुबबल्ली

भारत की पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक ही धारा के प्रवाहित होने वाले जल के समान है। भारतीय पत्रकारिता ने सदैव राष्ट्रवाद के ही मुखरित करने का कार्य किया है। पत्रकारिता को इसी राष्ट्रवादी प्रवाह को गति देने वाले पत्रकारों ने एक महत्वपूर्ण नाम दीनदयाल उपाध्याय। भारत की राजनीति को एक ध्रुव से दो ध्रुवीय करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को अपने विचारों के प्रसार का माध्यम बनाया था। पत्रकारिता को किस तरह जनमत बनाया जाए उसको उन्होंने बखूबी समझा था।

दीनदयाल जी ने कालेज के पढाई के दौरान ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए और पूरी तन्मयता से संघ कार्य में जुट गए। कालेज के पढाई के बाद वह किसी नौकरी अथवा व्यापार में संलग्न न होकर संघ के कार्य में रम गये। उनके मामा जब शादी कराने की कोशिश की तो वह बड़े चालाकी से मना कर दिया। इससे यह पता चलता है शायद वह राष्ट्र की सेवा का व्रत लेकर ही जन्मे थे, जिस कारण सभी सांसारिक बंधनों से दूर केवल भारतमाता के बंधन में रहे। उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र के लिए अथक कार्य किया। विवाह न करने को लेकर वे बड़े तर्कपूर्ण ढंग से अपनी बात कहा करते थे। इस संबंध में उन्होंने अपने विचार जगद्गुरु शंकराचार्य, पुस्तक में व्यक्त किए हैं – “है ना पितृ ऋण है और उसी को चुकाने के लिए मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। पिताजी ने जिस धर्म को जीवन धर्म को जीवन भर निभाया यदि वह धर्म नष्ट हो गया तो बताओ माँ क्या उन्हें दुःख नहीं होगा? उस धर्म से ही उन्हें शांति मिल सकती है और फिर अपने बाबा उनके बाबा और भी बाबा की ओर देखें। हजारों वर्ष का चित्र आँखों के समक्ष उपस्थिति हो जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने धर्म की रक्षा के लिए स्वयं के जीवन को दाव पर लगा दिया, कौरव पांडवों में युद्ध करवाया। अपने जीवन में के धर्म की स्थापना कर गए, पर लोग धीरे-धीरे भूलने लगे। शाक्यमुनि के काल तकदिर धर्म में बुराईयाँ आ गईं। उन्होंने भी बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया पर अब आज उनके सच्चे अभिप्राय को भी भुल गये हैं। माँ इन सब पूर्वजों का हम सब पर ऋण है अथवा नहीं !

यदि हिंदू समाज नष्ट हो गया तो हिन्दू धर्म भी नष्ट हो जायेगा – तो फिर तू ही बता माँ कोई दो हाथ दो पैर वाला तेरे वंश में हुआ तो क्या तुझे पानी देगा? कभी तेरा नाम लेगा। ऐसे समय में जब देश को सशक्त राजनीतिक विकल्प एवं विपक्ष की आवश्यकता भी है, तब दीनदयाल उपाध्याय ने इयाम प्रसाद मुखर्जी के साथ मिलकर देश की राजनीति को दो ध्रुवीय करने का कार्य किया था। उन्होंने राजनीति को समाज कल्याण के मार्ग के रूप में चुना था। एकात्म मानववाद के रचयिता दीनदयाल उपाध्याय ने गाँधी के विचार को पुनः व्याख्यति करते हुए पुनः उदय की बात की।

दीनदयाल जी ने पत्रकारिता के माध्यम अपने विचारों को जन मानस तक पहुँचाने का कार्य किया था। जो आजादी के उपरांत अपने लिए किसी लक्ष्य अथवा सन्नमार्ग की तलाश में थी। इसी कारण वश वह राह दिखाए का कार्य किया था। सन १९४७ में दीनदयाल जी ने राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी। जिसके अंतर्गत स्वदेश, राष्ट्रधर्म एवं पांचजन्य नामक पत्र प्रकाशित होते थे, राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड ने वचनेश त्रिपाठी महेन्द्र कुल श्रेष्ठ, गिरिश चन्द्र मिश्र, अटल बिहारी बाजपेयी, राजीव लोचन जैसे श्रेष्ठ पत्रकारों को तैयार किया था। पं. दीनदयाल ने पांचजन्य, राष्ट्रधर्म एवं स्वदेश के माध्यम से राष्ट्रवादी जनमत निर्माण करने का महत्वपूर्ण काम किया था। उनके लेख पांचजन्य के घोष वाक्य के अनुरूप ही राष्ट्र जागरण का शंखनाद करते थे। राष्ट्रीय एकता के मर्म को समझाते हुए उन्होंने लिखा था, – ‘यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता जो हिन्दू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति जो हिन्दू संस्कृति है उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चले। भागीरथी

की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा में एकरूप हो जायेगी। पांचजन्य, २४ अगस्त (१९५३)

दीनदयाल उपाध्याय ने देश में बदलाव के लिए नारे एवं बेवजह प्रदर्शनों को कभी प्राथमिकता नहीं दी। देश की समस्याओं के निवारण के लिए वह पुरुषार्थ करने को ही महत्वपूर्ण मानते थे। जिसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा—

‘आज देश के व्याप्त अभावों की पूर्ति के लिए हम सब व्यग्र हैं। अधिकाधिक परिश्रम आदि करने के नारे भी सभी लगाते हैं। परंतु नारों के अतिरिक्त वस्तुतः अपनी इच्छानुसार सुनहले स्वप्नों, योजनाओं तथा महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल देश का चित्र निर्माण करने के लिए उचित परिश्रम और पुरुषार्थ करने को हममें से पंचानवे प्रतिशत (९५%) लोग तैयार नहीं है। जिसके अभाव में यह सुंदर-सुंदर चित्र शोखचिल्ली के स्वप्नों के अतिरिक्त कुछ और नहीं। (पांचजन्य, आश्विन कृष्ण २, वि.सं.२००७)

सन १९४७ में भारत राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो गया था। किंतु, अंग्रेजों के जाने के पश्चात भी पाश्चात्य संस्कृति के अवशेष भारत के तथाकथित बुर्जुआ वर्ग पर हावी रहे। इस मानसिकता को राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में बाधक बताते हुए दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा था— ‘राष्ट्रभक्ति की भावना को निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय भी राष्ट्र की संस्कृति का ही है तथा वही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर मानव की एकात्मता का अनुभव कराती है। अतः संस्कृति की स्वतंत्रता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं, टिकाऊ भी नहीं रह सकेगी।’ (पांचजन्य, भाद्रपद कृष्ण ९, वि. सं. २००६)

दीनदयाल उपाध्याय का स्पष्ट मत था कि राष्ट्रीय एकता को आखंड बनाए रखने के लिए राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मता भी परम आवश्यक है। अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखते हैं — “भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लोगों का द्वि-संस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक संस्कृतिवाद को संप्रदायवाद कहकर ठुकराया गया किंतु अब कांग्रेस के विद्वान भी अपनी गलती समझकर इस एक संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है तथा तभी हम अपनी संपूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं।” (राष्ट्रधर्म, शरद पूर्णिमा, वि. सं २००६)

पं. दीनदयाल जी ने राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु राष्ट्रधर्म प्रकाशन की स्थापना की थी। अपने इस ध्येय पथ पर वे संपूर्ण जीवन अनवरत चलते रहे। जीवन में अनेकों दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी दीनदयाल जी ने अपने पत्रकारीय जीवन के प्रवाह को प्रवाहीत बनाये रखा। स्वतंत्रता के पश्चात जब भारत का पत्रकारिता जगत लक्ष्यविहीन हो रहा था, तभी दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को उसका उद्देश्यपूर्ण मार्ग दिखलाने का कार्य किया।

दीनदयाल जी ने अपने राजनीतिक लेखों में एक नया समन्वयवाद पैदा किया। राजनीतिक महात्वाकांक्षा के आकांक्षी लोगों का व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा कि शिखर पर बैठने की इच्छा सबकी होती है मगर मंदिर के शिखर पर तो कौए भी बैठते हैं — हमें तो उस नींव का पत्थर बनने की आकांक्षा करनी चाहिए जो अपने कंधों पर मंदिर को भव्य स्वरूप देता है। उपाध्याय जी ने इसे खुद पर भी लागू किया। एक प्रसिद्ध विचारक लिखते हैं कि जनसंघ का अध्यक्ष बनने के लिए उन्हें दो बार आग्रह किया गया लेकिन उन्होंने इसे ठुकरा दिया।

दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय पत्रकारिता के उन महापुरुषों में से एक हैं जिसे हिन्दुस्तान की धरा जन्मा है। उनका पत्रकारीय-जीवन महज २० साल रहा लेकिन अपने विचारों और लेखों से दुनिया को विशेष रूप से प्रभावित करते रहे। १९६३ में जब दीनदयाल जी लन्दन गए और वहां पर विपक्ष के नेता के तौर पर जो उद्बोधन दिया, उस पर स्थानीय अखबार ‘द गार्जियन’ ने लिखा कि यह वह शख्स है जिस पर भारत को विशेष ध्यान देना होगा। भविष्यवाणी तब सही साबित हुई जब पण्डित जी ने १९६५ में दुनिया को एकात्म मानव-दर्शन दिया।

माना जाता है कि पं. दयालजी का पत्रकार का शुरुआत वर्ष १९४७ रहा है। उनके मानवता को धर्म और राष्ट्र से अधिक महत्व दिया है अतः अपनी पत्रकारिता में भी मनवता को सर्वोपरि रखा। सृष्टि के प्रथम संचारक नारदजी हों या तिलक की लोकमान्य पत्रकारिता या जैसा गांधीजी ने १८८८ में इंडियन ओपिनियन में कहा कि कोई भी धर्म या देश मनुष्यता से बड़ा नहीं हो सकता। पण्डित उपाध्याय जी ने लोक कल्याण को ही पत्रकारिता का प्रमुख आधार माना।

पंडित दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद के आधार पर एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की जिसमें विभिन्न राज्यों

की संस्कृतियाँ विकसित हों और एक ऐसा मानव धर्म उत्पन्न हो जिसमें सभी धर्मों का समावेश हो, जिसमें व्यक्ति को सामान्य अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त हो जो एक सुदृढ़, सम्पन्न एवं जागरूक राष्ट्र कहलाये।

पंडित जी के शब्दों में एकात्म मानववाद का सार कुछ इस तरह है- “हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केंद्र ‘मानव’ होना चाहिए, जो “यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे” के न्याय के अनुसार समिष्ट का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक चीजें मानव के सुख के साधन हैं, साध्य नहीं। पंडित जी का मानना था कि व्यक्ति का अर्थ सिर्फ उसका शरीर नहीं है, बल्कि उसका मन, बुद्धि, और आत्मा भी है। यदि इन चारों में से किसी एक को भी उपेक्षा की जाए तो व्यक्ति का सुख विकलांग हो जाएगा।”

निष्कर्ष

दीनदयाल जी सिर्फ एक राजनेता नहीं थे, वे एक पत्रकार, लेखक, संगठनकर्ता, वैचारिक चेतना से ससज्ज एक सजग इतिहासकार, अर्थशास्त्री और भाषाविद् भी थे। उनके चिंतन, मनन और अनुशीलन ने देश को ‘एकात्म मानवदर्शन’ जैसा एक नवीन भारतीय विचार दिया। सही मायने में एकात्म मानवदर्शन का प्रतिपादन कर दीनदयाल जी ने भारत से भारत का परिचय कराने की कोशिश की। विदेशी विचारों से आक्रांत भारतीय राजनीति को उसकी माटी की महक से जुड़ा हुआ विचार देकर उन्होंने एक नया विमर्श खड़ा किया। अपनी प्रखर बौद्धिक चेतना, समर्पण और स्वाध्याय से वे भारतीय जनसंघ को एक वैचारिक और नैतिक आधार देने का कार्य किया।

राजनीति में विचारों के लिए सिकुड़ती जगह के बीच पं. दीनदयाल उपाध्याय का नाम एक ज्योतिपुंज की तरह सामने आता है। अब जबकि उनकी विचारों की सरकार पूर्ण बहुमत से दिल्ली की सत्ता में स्थान पा चुकी है, तब यह जानना जरूरी हो जाता है कि आखिर दीनदयाल उपाध्याय की विचारयात्रा में ऐसा क्या है जो उन्हें उनके विरोधियों के बीच भी आदर का पात्र बनाता है।

स्वतंत्रतापूर्व साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना

डॉ. गीतांजली द. सुखसारे

फ़स्ट ग्रेड महिला कॉलेज
बेलगाम

पत्रकारिता शब्द अंगेजी के "जर्नलिज्म" (Journalism) का हिंदी रूपांतर है। शब्दार्थ की दृष्टि से "जर्नलिज्म" शब्द 'जर्नल' से निर्मित है और इसका आशय है 'दैनिक'। अर्थात् जिसमें दैनिक कार्यों व सरकारी बैठकों का विवरण हो। आज जर्नल शब्द 'मैगजीन' का धोतक हो चला है। यानी, दैनिक, दैनिक समाचार-पत्र या दूसरे प्रकाशन, कोई सर्वाधिक प्रकाशन जिअमें किसी विशिष्ट क्षेत्र के समाचार हो। (डॉ. हरिमोहन एवं हरिशंकर जोशी-खोई पत्रकारिता, तत्तशिला प्रकाशन)

पत्रकारिता लोकतंत्र का अविभाज्य अंग है। प्रतिपाल परिवर्तित होनेवाले जीवन और जगत का दर्शन पत्रकारिता द्वारा ही संभव है। परिस्थितियों के अध्ययन, चिंतन-मनन और आत्मभिव्यक्ति की प्रवृत्ति और दूसरों का कल्याण अर्थात् लोकमंगल की भावना ने ही पत्रकारिता को जन्म दिया। सामाजिक सरोकारों तथा सार्वजनिक हित से जुडकर ही पत्रकारिता सार्थक बनती है। सामाजिक सरोकारों को व्यवस्था की दहलीज तक पहुंचाने और प्रशासन के जनहितकारी नीतियाँ तथा योजनाओं का समाज के सबसे निचले तबके तक ले जाने के दायित्व का निर्वाह ही सार्थक पत्रकारिता है।

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा पाया (स्तंभ) भी कहा जाता है। पत्रकारिता ने लोकतंत्र में यह महत्वपूर्ण स्थान अपने आप नहीं हासिल किया है बल्कि सामाजिक सरोकारों के प्रति पत्रकारिता के दायित्वों के महत्व को देखते हुए समाज ने ही दर्जा दिया है। कोई भी लोकतंत्र तभी सशक्त है जब पत्रकारिता सामाजिक सरोकारों के पति अपनी सार्थक भूमिका निभाती रहे। सार्थक पत्रकारिता का उद्देश्य ही यह होना चाहिए की वह प्रशासन और समाज के बीच एक महत्वपूर्ण कडी की भूमिका अपनाये।

पत्रकारिता के इतिहास पर नजर डाले तो स्वतंत्रता के पूर्व पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य था। स्वतंत्रता के लिए चले आंदोलन और स्वाधीनता संग्राम में पत्रकारिता ने अहम और सार्थक भूमिका निभाई। उस दौर में पत्रकारिता ने पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोने के साथ-साथ पूरे समाज को स्वाधीनता की प्राप्ति के लक्ष्य से जोड रखा।

इंटरनेट और सूचना के आधिकार (आर.टी.आई) ने आज की पत्रकारिता को बहुआयामी और अनंत बना दिया है। आज कोई भी जानकारी पलक झपकते उपलब्ध की और कराई जा सकती है। मीडिया आज काफी सशक्त, स्वतंत्र और प्रभावशाली हो गया है। पत्रकारिता की पहुंच और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का व्यापक इस्तेमाल आमतौर पर सामाजिक सरोकारों और भलाई से ही जुडा है, किंतु कभी कभार इसका दुरपयोग भी होने लगा है।

पत्र-पत्रिकाएं मानव समाज की दिशा-निर्देशिका मानी जाती है। समाज के भीतर घटती घटनाओं से लेकर परिवेश की समझ उत्पन्न करने का कार्य पत्रकारिता का प्रथम व महत्वपूर्ण कर्तव्य है। राजनीतिक-सामाजिक चिंतन की समझ पैदा करने के साथ विचार की सामर्थ्य पत्रकारिता के माध्यम से ही उत्पन्न होती है। पत्रकारिता ने युगों से अपने इस दायित्व का निर्वाह किया तथा दायित्व निर्वहन की समस्त कसौटियों को पूर्ण करते हुए समय-समय पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज की। यह अध्ययन करन अपने आप में अत्यंत रोचक है कि पत्रकारिता की यह यात्रा कब और कैसे आरंभ हुई और किन पडावों से गुजरकर राष्ट्रीयता के मिशन से व्यावसायिकता तक की यात्रा को उसने संपन्न किया।

आजादी से पूर्व का युग राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चेतना की अनुभूति के विकास का युग था। इस युग का मिशन और जीवन का उद्देश्य एक ही था। स्वाधीनता की चाह और प्राप्ति का प्रयास। इस प्रयास के तहत ही हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का आरंभ हुआ। इस संदर्भ में इस तथ्य को भी ध्यान में रखना होगा कि हिंदी क्षेत्रों के बाहर भी विशेषकर हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में भाषाको राष्ट्रीय अस्तित्वता का वाहक मानकर सभी पत्रकारों ने हिंदी को ही अपनी 'भाषा' के रूप में चुना और हिंदी भाषा के पत्र-पत्रिकाओं के संवर्धन में

अपना योगदान दिया।

भारतेंदु के आगमन से पूर्व ही पत्रकारिता का आरंभ हो चुका था। हिंदी भाषा का प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' ३० मई १८२६ को कानपुर निवासी पं. युगल किशोर शुक्ल ने निकाला। सुखद आश्चर्य की बात यह थी कि यह पत्र बंगाल से निकला और बंगाल में ही हिंदी पत्रकारिता के बीज प्रस्फुटित हुए। 'उदन्त मार्तण्ड' का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को जागृत करना तथा भारतीयों के हितों की रक्षा करना था। यह बात इसके मुख पृष्ठ पर छपी पंक्ति से ही जात होती है: यह उदन्त मार्तण्ड अब पहले पहल हिंदुस्थानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया...।

समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का मूल उद्देश्य सदैव जनता की जागृति और जनता तक विचारों का सही संप्रेषण करना रहा है। महात्मा गांधी की पंक्तियाँ हैं: समाचार पत्र का पहला उद्देश्य जनता की इच्छाओं विचारों को समझना और उनमें व्यक्त करना है। दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना है। तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को निर्भयतापूर्वक प्रकट करना है।

समाचारपत्र और पत्रिकाओं ने इन उद्देश्यों को अपनाते हुए आरंभ से भारतीय के हितों के लिए विचार को जागृत करने का कार्य किया। बंगाल से निकलने वाला 'उदन्त मार्तण्ड' जहाँ हिंदी भाषी शब्दावली का प्रयोग करके भाषा निर्माण का प्रयास कर रहा था वही काशी से निकलने वाला प्रथम साप्ताहिक पत्र 'बनारस अखबार' पूर्णतया उर्दू और फारसीनिष्ठ रहा। भारतेंदु युग से पूर्व ही हिंदी का प्रथम समाचार पत्र (दैनिक) 'समाचार सुधावर्षण' और आगरा से 'प्रजाहितैषी' का प्रकाशन हो चुका था। अर्जुन तिवारी पत्रकारिता के विकास को निम्न लिखित कालखण्डों में बांटते हैं:

१) उध्दव काल (उध्दोधन काल) १८२६-१८८४ ई.

२) विकासकाल

अ) स्वातंत्र्य पूर्ण काल

१) जागरण काल १८८५-१९१९

२) क्रांती काल १९२०-१९४७

ब) स्वातंत्र्योत्तर काल- नवनिर्माण काल १९४८-१९७४

३) वर्तमान काल - बहुद्देशीय काल १९७५

भारतेंदु ने अपने युग धर्म को पहचाना और युग को दिशा प्रदान की। भारतेंदु ने पत्र पत्रिकाओं को पूर्णतया जागरण और स्वाधीनता की चेतना से जोड़ते हुए १८६७ में कवि वचन सुधा का प्रकाशन किया जिसका मूल वाक्य था : 'अपधर्म छुटे, सत्य निज भारत गहै' भारत द्वारा सत्व ग्रहण करने के उद्देश्य को लेकर भारतेंदु ने हिंदी पत्रकारिता का विकास किया और आने वाले पत्रकारों के लिए दिशा निर्माण किया। भारतेंदु ने कवि वचन सुधा हरिश्चंद्र मैगशीन बाला बोधिनी नामक पत्र निकाले। कवि वचन सुधा को १८७५ में साप्ताहिक किया गया जबकी अनेकानेक समस्याओं के कारण १८८५ ई में इसे बंद कर दिया गया। १८७३ में भारतेंदु ने हरिश्चंद्र मैगशीन का प्रकाशन किया जिसका नाम १८७४ में बदलकर हरिश्चंद्र चंद्रिका कर दिया गया। १८७३ में भारतेंदु ने हरिश्चंद्र मैगशीन का प्रकाशन किया जिसका नाम १८७४ में बदलकर हरिश्चंद्र चंद्रिका कर दिया गया। देश के प्रति सजगता, समाज सुधार राष्ट्रीय चेतना, मानवीयता स्वाधीन होने की चाह इनके पत्रों की मूल विषयवस्तु थी। स्त्रियों को गृहस्थ धर्म और जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए भारतेंदु ने बाला बोधिनी पत्रिका निकाली जिसका उद्देश्य महिलाओं के हित की बात करना था।

भारतेंदु से प्रेरणा पाकर भारतेंदु मंडल के अन्य पत्रकारों ने भी पत्रों का प्रकाशन किया। इस पत्र की शैली व्यंग्य और विनोद का सम्मिश्रण थी और व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए जन जागृती का प्रयास करना उद्देश्य था।

सूझे विवेक विचार उन्नती, कुमति सब यामैं जरै।

हिंदी प्रदीप प्रकाशि मुखतादि भारत तम हरै।

१८५७ के संग्राम से प्रेरणा लेकर भारतवासियों की जागृती का यह प्रयास चल रहा था कि १४ मार्च १८७८ को वर्नाकुल प्रैस एक्ट लागू कर दिया गया। लार्ड लिटन द्वारा लागू इस कानून का उद्देश्य पत्र पत्रिकाओं की अभीव्यक्ति को दबाना और उनके स्वातंत्र्य का हनन करना था। १८८१ में पं. बद्रीनारायण उपाध्याय ने आनंद कादम्बिनी नामक पत्र निकाला और पं. प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर से ब्राह्मण का प्रकाशन किया। १८९० में हिंदी बंगवासी ने कांग्रेस परव्यंग्य की बौछार के वही १९८१ में बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने नागरी नीरद का प्रकाशन किया। राष्ट्र को चैतन्य करना व अंग्रेजी की काली करतूतों का

पर्दाफाश करना इस पत्र का उद्देश्य था।

यह युग राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का युग था। पत्रकारों का उद्देश्य किसी भी प्रकार की व्यावसायिक पत्रकारिता को प्रशय देना नहीं था। वह पत्रकारिता का सही दिशा में सदुपयोग करते हुए आम जन के भीतर वह जोश एवं उमंग करना चाहते थे जिसके द्वारा वह स्वयं खड़े होना का साहसकर सके। इसी राष्ट्रीयता का विस्तार था सरकार की नीतियों का पर्दाफाश करना। बालमुकुंद गुप्त ने शिवशम्भु के चिट्ठे में ब्राह्मण शिवशम्भु शर्मा के छद्म नाम सेलार्ड कर्जन की नीतियों पर व्यंग्य किया।

इस समय की दो महत्वपूर्ण घटनाएं थी : १) १८७८ का वर्नाकुलर प्रेस अक्ट २) १९०५ का बंग विभाजन। १८७८ के इस एक्ट द्वारा प्रेस की आशादी पर पाबंदी लगाने का प्रयास किया गया। ब्रिटीश सरकार अपने खिलाफ स्वतंत्रता के स्वर उठाने वाले पत्रों का दमन करना चाहती थी और इसलिए उन्होंने १८७८ में प्रेस एक्ट लागू किया। यथार्थ हिंदी भाषा का प्रचार करना और हिंदी लिखने वालों की संख्या में वृद्धि करना सार सुधानिधि का दूसरा प्रयोजन है। राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ भाषा की महत्ता स्थापित करने का प्रयास इस युग के सभी पत्रकारों का उद्देश्य था। सबसे बड़ी बात यह है कि इन्होंने कही भी भाषा को प्रबुद्धजन से ही जोड़ने का आग्रह नहीं दिखाया, सामान्य जन की ही शब्दवली का प्रयोग करते हुए उन्हें सचेतन करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए सारसुधानिधि में हिंदी भाषा नाम से छपे लेख की भाषा द्रष्टव्य है : “..जब हम सोचते हैं तो पृथम दृष्टी हमारी भाषा पर पडाती है, क्योंकि जब तक निष्कपट विशुद्ध भाषा की उन्नति होगी जब तक निष्कपटसभ्यता और देश की उन्नति भी नहीं होगी”

इस दिशा में सबसे बड़ा योगदान भारतेन्दु का है। भारतेन्दु ने १८७३ में कहा : हिंदी नयी चाल में ढली यह नयी चाल भाषा की राह को सुगम बनाने का प्रयास थी जिसके लिए भारतेन्दु ने सर्वाधिक प्रयास किया। इस युग की पत्रकारिता के उद्देश्य बहुआयामी थे। एक और राष्ट्रीयता की चेतना के साथ-साथ राजनीति की कलाई खोलना तो दूसरी और सामाजिक चेतना जागृत करना समाजिक कुरितिया और दुष्प्रभावों का परिणाम दर्शाना, स्त्रियों की दीन-हीन दसह में सुधार और स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना पत्रकारों के प्रमुख उद्देश्य थे। भारतेन्दु इस कार्य के लिए युग द्रष्टा के रूप में आए। उनके योगदान के लिए ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल उने विशेष स्थान प्रदान करते हैं। द्विदेवी जी ने भाषा की समृद्धी करके नवीन साहित्यकारों को राह दिखाई उनका व्यक्तव्य है : हमारी भाषा हिंदी है। उसके प्रचार के लिए गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है, सो तो कर रही है, हमें चाहिए कि हम अपने घरों का अज्ञान तिमिर दूर करने और अपना ज्ञानबल बढ़ाने के लिए इस पुण्यकार्य में लग जाए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से ज्ञानवर्धन करने के साथ-साथ नए रचनाओं को भाषा का महत्व समझाया व गद्य और पद्य के लिए राह निर्मित की। भाषा का निर्माण करना साथ ही गद्य-पद्य के लिए खड़ी बोली को ही प्रोत्साहन देना इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य था।

१९०१ में प्रकाशित होनेवाले पत्रों में चंद्रधर शर्मा गुलेरी का समालोचक महत्वपूर्ण है। इसपत्र का दृष्टिकोण आलोचनात्मक था और इसी दृष्टिकोण के कारण यह पात्र चर्चित भी रहा। १९०५ में काशी से भारतेन्दु पत्र का प्रकाशन हुआ। यह पत्र भारतेन्दु हरिश्चंद्र की स्मृति में निकला गया। जगमंगल करै के उद्घोष के साथ इस पत्र ने संसार की भलाई करने का महत् उद्देश्य अपने सामने रखा परंतु लंबे समय तक इसका प्रकाशन नहीं हो सका। १९०७ का वर्ष समाचार पत्रों की दृष्टी से महत्वपूर्ण रहा। महानता मालवीय ने अभ्युदय का प्रकाशन किया वही बाल गंगाधर तिलक के केसरी की तर्ज पर माधवराव सप्रे ने हिंदी केसरी का प्रकाशन किया। मराठी केसरी के महत्वपूर्ण अंशों और राष्ट्रीय चेतना का उद्घोधन करने वाले अवतरणों की हिंदी आनुवाद करके हिंदी केसरी ने उसे जन साधारण तक पहुंचाया। इसके निकालने का पूरा श्रेय पं. माधवराव सप्रे बी.ए. को है। महाराष्ट्री होकर हिंदी भाषा पर आपके आखंड और अकृत्रिम प्रेम को देखकर उन लोगों को लज्जित होना चाहिए जिनकी जन्मभाषा हिंदी है पर जो हिंदी में एक सतर भी लिख नहीं सकते या लिखना नहीं चाहते।

१९१० में गणेश शंकर विद्यार्थी ने प्रताप का प्रकाशन किया। यह पत्र उग्र एवं क्रांतिकारी विचारधारा का पोषक था। उग्र नीतियों के समर्थक इस पत्र ने उत्साह एवं क्रांती के पोषण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन पात्रों का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना एवं भाषा नीति का प्रसार करना था। उग्र एवं क्रांतिकारी विचारधारा के पोषण पत्र स्वाधीनता के प्रसार के लिए प्रयास कर रहे थे, साथ ही साथ साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं ने अनेक लेख लिखकर जनता की सुप्त भावनाओं का दिशा निर्देशन किया।

छायावाद काल में पत्रिकाओं का प्रकाशन अधिक हुआ। इस काल की प्रमुख पत्रिकाओं में इन्दु प्रभा चांद माधुरी एवं शारदा मतवाला थी। सभी साहित्यकारों : जयशंकर प्रसाद सुमित्रानंदन पंत निराला महादेवी

वर्मा ने पत्रिकाएं निकालीं। १९०९ में जयशंकर प्रसाद ने इन्दु पत्रिका का प्रकाशन किया। हिंदी काव्यधारा में छायावाद का आरंभ इसी पत्रिका से ही हुआ। 'प्रभा' का प्रकाशन सन १९१३ में हुआ इसके संपादक कालूराम गंगराडे थे। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस पत्र को उग्र एवं सशक्त स्वर जागरण का माध्यम बनाया। 'चांद' का प्रकाशन सन १९२० में हुआ। आरंभ में यह साप्ताहिक पत्र था बाद में मासिक हो गया। इस पत्रिका में अनेक सामाजिक धाखमक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विषयों पर लेख प्रकाशित किए जाते थे।

'माधुरी' का प्रकाशन १९२१ से हुआ। यह छायावाद की प्रमुख पत्रिका थी परंतु अनेक अस्थिर नीतियों का इसे भी सामना करना पड़ा तथापि यह छायावाद की सबसे लोकप्रिय पत्रिका रही। श्री विष्णुनारायण भार्गव इस पत्रिका के संस्थापक थे। 'माधुरी' के मुख पृष्ठ पर दुलारे लाल भार्गव का लिखा दोहा प्रकाशित होता था।

सिता मधुर मधु सुधा तिय अधर माधुरी धन्य!

पै नव रस साहित्य की यह माधुरी अनन्या।

१९२२ में रामकृष्ण मिशन से जुड़े स्वामी माधवानंद के संपादन में समन्वय का प्रकाशन हुआ। यह मासिक पत्र था। निराला की सूझ-बूझ और उनके पाण्डित्य का उत्कृष्ट उदाहरण यह पत्र है। आचार्य शिवपूजन सहाय और निराला ने विभिन्न उत्कृष्ट सामाजिक धाखमक लेखों द्वारा इस पत्र के माध्यम से सर्वसाधारण तक अपना स्थान बनाया।

निराला ने हिंदी भाषा सीखने के लिए 'सरस्वती' पत्रिका को आधार बनाया। इस पत्रिका के प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापन करते हुए कहते हैं, "जिसकी हिंदी के प्रकाश के परिचय के समस्त मैं आंख नहीं मिला सका, लजा कर हिंदी शिक्षा के संकल्प से कुछ दिनों बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया तह और उस हिंदी हीन प्रांत में बिना शिक्षक के सरस्वती की प्रतियां लेकर पदसाधना की और हिंदी सीखी।" हास्य व्यंग्य एवं विनोद का प्रयोग करके नई चेतना जगानेवाले इस पत्र के मुखपृष्ठ पर छपने वाली पंक्तियां थीं। 'सुधा' का संपादन १९२७ में श्री दुलारे लाल भार्गव व पं. रुपनारायण पाण्डेय ने किया। 'निराला' के आगमन से 'सुधा' को एक नई दिशा मिली। इस पत्रिका के प्रमुख विषयों में समाज सुधार, विज्ञान से लेकर साहित्य और गृहविज्ञान की सामग्री भी प्रकाशित होती थी। छायावाद की पत्रकारिता इस दृष्टीकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी की भाषा का एक नया संस्कार और भाषा में कोमलता प्रांजलता लाने का श्रेय इस युग की पत्रिकाओं का था।

एक ओर इन पत्रिकाओं के माध्यम से स्वच्छंदतावाद की स्थापना हुई वहीं सामाजिक राजनीतिक घटनाओं को स्वर मिला। अनेक सुंदर कविताओं का प्रकाशन इस युग की पत्रिकाओं में हुआ। 'जूही की कली', को मुक्त छंद के प्रवर्तन का श्रेय दिया जाता है। 'चांद' पत्रिका में ही महादेवी वर्मा का अधिकांश साहित्य छपा। 'छायावाद' के प्रसिद्ध रचनाओं में से सुमित्रानंदन पंत जी ने 'रूपाभ' का प्रकाशन किया।

प्रेमचंद ने १९३२ में 'जागरण' और १९३६ में 'हंस' का प्रकाशन किया। 'हंस' का उद्देश समाज का आवाहन करता था। 'हंस' साहित्यिक पत्रिका थी जिसमें साहित्य कि विविध विधाओं का प्रकाशन किया जाता था। महात्मा गांधी की अहिंसा को साहित्य के माध्यम से स्थापित करनेवाले प्रेमचंद ने 'हंस' में भी इसी आदर्श को स्वर दिया। भारत के कर्नधार महात्मा गांधी ने इस विचार की सृष्टि कर दी। अब वह बड़ेगा फूले फलेगा। हमारा यह धर्म है कि उस दिन को जल्द लाने के लिए तपस्या करते रहें। यही हंस का ध्येय होगा और इसी ध्येय के अनुवृफल उसकी नीति होगी।

गांधी की नीतियों का समर्थन स्वराज्य स्थापना के लिए जागरण का प्रयास और साहित्यिक विधाओं का विकास ही 'हंस' का लक्ष्य था। प्रेमचंद के पश्चात शिवरानी देवी विष्णुराव पराडकर, जैनेंद्र शिवदान सिंह चौहान अमृतराय ने इस पत्रिका का संपादन किया।

स्वतंत्रता से पूर्व अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं ने दोहरे कार्य को लेकर उसे पूर्ण करने का प्रयास किया।

१) राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार २) साहित्य की विविध विधाओं का विकास

इसी के साथ भाषा के विविधवर्णी रंगों की खोज और साहित्यके दोनों पक्षों गद्य एवं पद्य की स्थापना करना भी इनका लक्ष्य था जिसे कवि हृदय पत्रकारों ने पूर्ण किया।

१९४७ में मिली स्वतंत्रता के पश्चात भारत को लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने और इसकी संप्रभुता की रक्षा करने का संकल्प प्रत्येक भारतवासी ने किया। अपनी भाषा की समृद्धी और उसका विकास करने की चाह सभी के हृदय में विद्यमान थी परंतु धीरे-धीरे राजभाषा विधेयकों के माध्यम से हिंदी की उपेक्षा करके अंग्रेजी को उसके माथे पर बिठाने की तैयारी की योजनाएं बनने लगीं। "भारत के सुदर्शनधारियों आंखे

खोलकर देखो, अंग्रेजी का दुःशासन आज राष्ट्रभाषा का चीर हरने की हठधर्म ठाने खड़ा है। सब भाषाओं का मिलकर राष्ट्रभाषा का चीर बढ़ाना होगा।” स्वतंत्रता के पश्चात पत्रकारिता के समस्त अनेक आदर्श थे। इसी के साथ साथ पाठक की चेतना में प्रवेश करके उसकी रुचि को संस्कारित करना भी पत्रकारिता का ही दायित्व था।

स्वतंत्रता के साथ ही भारत के विभाजन का दंश सभी को पीड़ित कर गया। १९६२ के आक्रमण के समय पत्र पत्रिकाओं ने निरंतर बलिदान का आव्हान करके अपनी सशक्त भूमिका का निर्वाह किया। ‘साप्ताहिक हिंदुस्थान’ में छपी टिप्पणियां किसी भी सुप्त हृदय को भी जगाने में सक्षम थीं। देशवासियों आओ, आज हम अपने छोटे-छोटे मतभेदों को भुलाकर बृहतर राष्ट्र की रक्षा के लिए पूर्णरूप से संगठित हो जाएं और अपनी एकता की दहाड़ से शत्रु का कलेजा दहला दें... सन ६४ में नेहरू की मृत्यु १९६५ में पाकिस्तान से युद्ध ताशकंद समझौते के बाद लालबहादुर शास्त्री जी की मृत्यु ७० में पाकिस्तान में पुनः युद्ध आदि घटनाओं के समय पत्र पत्रिकाएं अपनी जिम्मेदारी पूर्ण निष्ठा के साथ निभाती रहीं।

समाचार-पत्रों के लिए सबसे अधिक संकट की घड़ी आपात्काल की थी जब आभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन किया गया और सृजन पर रोक लगा दी गई। यह पत्रकारों के लिए अंधेरी सुरंग में से गुजरने जैसा कठोर यातनादायक अनुभव था। धीरे धीरे पत्रों पर भी व्यावसायिकता हावी होने लगी। पत्रों को स्थापित होने के लिए अर्थ की आवश्यकता हुई और अर्थ की सत्ता उद्योगपतियों के हाथों में होने के कारण इनके द्वारा ही पत्रों को प्रश्रय प्राप्त हुआ। ऐसे में उद्योगपतियों के हितों को ध्यान में रखना पत्रों का कर्तव्य हो गया। पूंजी पतियों के हाथ में होनेवाले पत्रों में बौद्धिकता का स्तर गिरने लगा और वह मुक्तिबोध के शब्दों में: बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास बन कर रह गया। इसके बावजूद पत्र-पत्रिकाएं आज भी किसी सीमा तक अपने दायित्व को पूर्ण कर रही हैं। आज मुख्य रूप से पत्र-पत्रिकाएं तीन कार्यों को निभा रही हैं;

- १) साहित्यिक अभिरुचि का विकास
- २) राजनीतिक सूचनाओं में अभिवृद्धि
- ३) सांस्कृतिक एवं मनोरंजक सूचनाएं

इसके अतिरिक्त खेल शिक्षा और कैरियर संबंधी दिशाएं सुझाने का कार्य भी पत्रों द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त पत्रों द्वारा ‘अतिरिक्त’ या ‘विशेषांक’ भी निकाले जाते हैं जिसमें : साहित्य संस्कृति ज्ञान विज्ञान खेल कृषि जनसंख्या समसामयिकी आदी विषयों पर पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

इसके अतिरिक्त आजकल प्रत्येक दिन पत्र के साथ कोई विशेष अंक भी जाता है जिसमें अलग-अलग दिन अलग-अलग विषयों के लिए निर्धारित रहते हैं। अनेक उत्कृष्ट साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत धर्मयुग, उत्कर्ष ज्ञानोदय नये पत्ते पाटल प्रतीक निकष से हुई जो अब तक कादम्बिनी नया ज्ञानोदय सरिता आलोचना इतिहास बोध हंस आजकाल तक विकसित हो रही है। यद्यपि अनेक पत्रिकाएं प्रसिद्ध व स्थापित नामों को महत्व देती हैं पर नवीन उभरती पत्रिकाएं नए नामों और नए विचारों को भी प्रोत्साहन दे रही हैं। कथन कथादेश स्त्री मुक्ती अनभै सांचा आदि अन्य महत्वपूर्ण पत्रिकाएं हैं।

पत्र पत्रिकाओं में नवीन विचारों और मान्यताओं को प्रश्रय मिलने के कारण भाषा व शिल्प में भी लचीलापन आया है। कविताओं में छंदबद्धता के प्रति आग्रह टूटा है। नई कहानी व कविता प्रतियोगिता आयोजित की जाती है और उनसे जुड़े रचनाकारों को सम्मानित भी किया जाता है। अनेक पत्रिकाएं तो किसी विशेष विधा को केंद्र में रखकर ही कार्य कर रही हैं। इससे उस विधा विशेष का तो विकास होता ही है साथ ही पाठकों को भी रुचि के अनुरूप चयन की सुविधा मिल जाती है यथा :

‘रंग प्रसंग’ (नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा) राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा निकाली जाती है। इसके प्रत्येक नए अंक में एक नए नाटक को प्रस्तुत किया जाता है। इसके अतिरिक्त नाट्य एवं रंगकर्मियों के अनुभवों से जनता को रु-ब-रु कराया जाता है। ‘नटरंग’ भी नाट्य जगत की प्रसिद्ध पत्रिका है जिसका प्रकाशन अभी तक नेमिचंद जैन जी द्वारा किया जाता रहा। नाटक के विविध रंगों की छटा उकेरती यह पत्रिका अपने आप में अनुपम है। ‘अखंड जोति’ जहा धर्म और अध्यात्मको स्थान देती है वही योजना में उद्योग जगत की खबरों को प्रमुखता मिलती है। फिल्म दुनिया, फिल्म कलियां जहाँ मनोरंजन उद्योग की तस्वीर उकेरती है वही गृहशोभा, मनोरमा स्त्रियों के निजी संसार में हस्तक्षेप करती है। बच्चों के लिए चन्दामामा नन्हें सम्राट चंपक नए क्लिपज खोलती है वही ‘विज्ञान डाइजेस्ट’ विज्ञान के नए अविष्कारों से परिचय करती है। इसके अतिरिक्त अनेक समस्याओं जैसे : १) अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में बेहतर प्रदर्शन २) अधिकांश समाचारों के अनुवाद की समस्या का भी हिंदी पत्रों को सामना करना पड़ता है। इसके बावजूद

पत्र पत्रिकाएं निरंतर प्रगति कर रही हैं और इसे देखते हुए पत्रकारिता के बेहतर भविष्य की उम्मीद की जा सकती है।

स्वतंत्रता के बाद के पत्र पत्रिकाओं का विश्लेषण अलग-अलग करना उचित होगा। आजकल के महत्वपूर्ण समाचार पत्रों में 'हिंदुस्थान' का नाम एवं स्थान अग्रणी है। मृणाल पाण्डे के संपादन में यह पत्र एच.टी. मीडियालिमिटेड के द्वारा कस्तूरबा गांधी मार्ग से प्रकाशित होता है। इस पत्र में राजनीतिक सामाजिक आख्यक सूचनाओं के साथ-साथ साहित्य संबंधी सामग्री पुस्तक समीक्षा विशेष रूप से प्रकाशित की जाती है।

मृणाल पाण्डे साहित्य क्षेत्र से एक लंबे समय से जुड़ी रही हैं तथा बाल पत्रिकाओं जैसे 'नंदन' से लेकर साहित्य जगत की 'कादम्बिनी' का भी वह संपादन करती रही हैं। भाषा में भी सरलता आई है तथा व्यंग्य और फीचर का मेल अधिक दिखाई देता है। हिंदुस्थान टाइम्स प्रकाशन द्वारा ही 'साप्ताहिक हिंदुस्थान' 'नंदन' और 'कादम्बिनी' का प्रकाशन किया गया। 'नन्दन' का प्रकाशन १९६४ से हुआ और इसके संपादक थे राजेन्द्र अवस्था। 'तेनालीराम' की सूझबूझ का प्रदर्शन ज्ञान पहेली वर्ग पहेली इसके मुख्य आकर्षण थे। बालकों के ज्ञान में वृद्धि और स्वस्थ मनोरंजन को प्रोत्साहन देना इसका लक्ष्य रहा।

'बेनेट कोलेमेन' कंपनी लिमिटेड द्वारा १९४७ में आरंभ किए गए 'नवभारत टाइम्स' के प्रथम संपादक हरिशंकर द्विवेदी थे। आगे चलकर अज्ञेय ने भी इस पत्र का संपादन किया। धर्मयुग, दिनमान, पराग व सारिका जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाओं का प्रकाशन भी बेनेट कोलेमेन एण्ड कम्पनी लिमिटेड द्वारा हुआ।

'राष्ट्रीय सहारा' के नाम से इसकी भूमिका का ज्ञान हो जाता है। राष्ट्रीय चेतना, अखंडता को आधार बनाकर १५ अगस्त १९९१ से प्रकाशित होनेवाला यह पत्र सहारा इण्डिया समूह द्वारा प्रकाशित किया जाता है। दैनिक समाचार पत्रों में 'अमर उजाला' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह पत्र १९४८ से प्रकाशित हो रहा है। यह पत्र भी उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से लोकप्रिय है। इसके लोकप्रिय स्तंभों में संपादकीय पत्र, आपका भविष्य, आज का आयोजन, स्वास्थ्य चर्चा तथा बच्चों का कोना प्रमुख है। 'वीर अर्जुन' का प्रकाशन १९५४ से आरंभ हुआ। राष्ट्रीयता कर्तव्य परायणता व ओजस्विता को आधार बनाकर चलनेवाले इसपत्र में गंभीर साहित्यिक पत्रकारिता के भी दर्शन होते हैं। आज के प्रतियोगी माहौल में विविध अवसरों की खोज और उनके विषय में जानने की इच्छा प्रत्येक युवा में पाई जाती है। एक ही साथ अनेक अवसरों अनेक नवीन विषयों प्रतियोगी परीक्षाओं परीक्षा की तिथियों की जानकारी के साथ नवीन अवसरों और दिशाओं की जानकारी 'रोजगार समाचार' के माध्यम से प्राप्त होती है।

हिंदुस्तान टाइम्स समूह द्वारा प्रकाशित एक महत्वपूर्ण पत्रिका है : कादम्बिनी। इसका प्रकाशन १९६० से आरंभ हुआ। इसके प्रथम संपादक बालकृष्ण राव थे। पहले ज्ञानोदय के नाम से निकलने वाली प्रसिद्ध पत्रिका अब 'नया ज्ञानोदय' के नाम से प्रभाकर श्रोतिय के संपादन में प्रकाशित होती है। विविध कथाओं के अनुवाद करने और भाषाओं को समानांतर स्तर पर लाने के संदर्भ में इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है। भारतीय-अमरिकी मित्रों के सहयोग से आरंभ की गई पत्रिका 'अन्यथा' कृष्ण किशोर के संपादन में संयुक्तराज्य अमरिका से निकाली जाती है।

'भाषा' पत्रिका भारतीय भाषाओं एवं साहित्य की महत्वपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन विश्वनाथ त्रिपाठी के संपादन में योजनाभवन नई दिल्ली से होता है। भाषा और अनुवाद भाषा और प्रौद्योगिकी सूचना और साहित्य साहित्य एवं विज्ञान जैसे मुद्दों पर विचार करना इनका महत्वपूर्ण कार्य है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने अनेक उतार चढ़ाव का सामना करते हुए भाषा और विषय को परिपक्व किया है व अपनी सशक्त उपस्थितिदर्ज की है।

हिंदी कविता में राष्ट्रियता

डॉ. साधना अग्रवाल

कमला नेहरू कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र शब्द अनेक स्थानों पर कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। कहीं उसका प्रयोग देश, राज्य, जन समुदाय के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तो कहीं प्रांत तथा समाज के अर्थ में किया जाता है। अंग्रेजी शब्द 'नेशन' की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'नेशियो' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है जन्म या जाति। इस आधार पर कुछ लोग एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहने वाली एक जाति को ही राष्ट्र के नाम से संबोधित कर देते हैं। परंतु राष्ट्र के बारे में यह धारणा अधूरी है। वास्तव में 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ इतना संकीर्ण नहीं है, जितना प्रायः समझ लिया जाता है। राष्ट्र की व्याख्या करते हुए जॉन स्टुअर्ट मिल ने भी कहा है, 'राष्ट्र मनुष्य जाति का एक ऐसा भाग है, जो एक दूसरे के प्रति सहानुभूति से बंधा हुआ एक सरकार के अधीन रहने की प्रबल इच्छा रखता हो।' इसलिए राष्ट्रियता उस भावना विशेष का नाम है, जिसके कारण कोई व्यक्ति या समुदाय पारस्परिक एकता की भावना का अनुभव करता है। वह श्रद्धा या निष्ठा पर आधारित एक ऐसा आदर्श है, जिसका केन्द्र राष्ट्र होता है। वह एक ऐसी मनोदशा है जिसमें व्यक्ति अपनी राष्ट्रियता एवं राज्य के प्रति उच्चतर भक्ति-भावना का अनुभव करता है।

राष्ट्रियता की भावना में अपनी राष्ट्रभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा की भावना होती है। जैसा कि बालगंगाधर तिलक कहा करते थे कि 'ईश्वर और हमारा देश अलग-अलग नहीं है। हमारा देश ईश्वर का ही एक रूप है।' मनुष्य जाति में सदा से ही यह प्रवृत्ति रही है कि एक नस्ल, एक भाषा, एक धर्म, रीतिरिवाज तथा एक जैसे ऐतिहासिक अतीत वाले लोग प्रायः एक संगठन में बंध जाते हैं। यद्यपि अनेक नस्ल वाले अथवा अनेक भाषा-भाषी अथवा अनेक धर्मों के अनुयायियों अथवा विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाजों के मानने वाले लोगों के भी राष्ट्र बने हैं और वर्तमान में भी विद्यमान हैं, परंतु राष्ट्रियता की भावना एवं राष्ट्र के निर्माण में ये तत्व प्रायः सहायक होते हैं, यह निर्विवाद है। परंतु आधुनिक अर्थ में राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का उदय फ्रांस की राज्य क्रांति से माना जाता है और भारत के इतिहास में 1857 एक ऐसा मोड़ है जब हमारे भीतर स्वाधीनता के साथ राष्ट्रियता के लिए चेतना जगी। यद्यपि सन् 1857 की क्रांति को इतिहास में अनेक नामों से पुकारा जाता है। इसे गदर कहा गया, विद्रोह कहा गया, राष्ट्र-क्रांति कहा गया और बाद में इतिहासकारों ने इसे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन कहा है।

चूंकि साहित्य लोगों को न केवल झकझोरता है बल्कि उनके भीतर चेतना भी जगाता है। यही कारण है कि प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। हिंदी कवियों की राष्ट्रीय भावना की मोटामोटी तीन मंजिलें दिखाई पड़ती हैं। पहली मंजिल देशभक्ति की है, जिसमें राजभक्ति मिली हुई है, दूसरी स्वातंत्र्य-चेतना की और तीसरी मंजिल वह है, जिसमें स्वातंत्र्य-चेतना में वर्ग-चेतना का समावेश हो गया है। ये तीनों ही मंजिलें हमेशा एक-दूसरे से साफ-साफ अलग नहीं और अनेक बार एक दूसरी में संक्रमण कर जाती हैं।

स्वतंत्रता की नब्बे वर्ष तक चली इस लड़ाई में हिंदी साहित्यकारों की क्या भूमिका थी, किस तरह उन्होंने अपने देश के लोगों के हृदय में 1857 ई0 से 1947 ई0 आजादी मिलने तक स्वतंत्रता की चिंगारी को बुझने नहीं दिया, इसका एक लंबा इतिहास है जो भारतेन्दु हरिश्चंद्र से लेकर गिरिजा कुमार माथुर तक फैला है। इस इतिहास में खून के छीटें भी हैं और अमर शहीदों-लाला लाजपतराय, भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद, खुदीराम बोस, सुभाषचंद्र बोस, वैकुण्ठ सुकुल जैसे स्वतंत्रता सेनानियों की शहादत भी। वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास भारतेन्दु युग से लेकर छायावादोत्तर युग तक लगातार कवि-लेखकों द्वारा भारतीय जनता के मनोबल को राष्ट्रीय कविताओं से उद्बुद्ध करने वाला है।

सचमुच यह विडम्बना की बात है कि स्वाधीनता आंदोलन के लंबे दौर में हिंदी कवियों द्वारा लिखित कविताओं के प्रति पहले हमने ध्यान नहीं दिया। दिनकर की कविता पंक्तियां हैं- 'कलम आज उनकी जय बोल/ जला अस्थियां बारी-बारी/ जिनने छिटकाई चिंगारी/ चढ़ गए जो बलिवेदी पर/ लिए बिना गरदन का मोल/ कलम आज उनकी जय बोल।' हिंदी के प्रतिष्ठित आलोचक और आधुनिक कविता के गहन अध्ययता डा० नंदकिशोर नवल द्वारा चयनित एवं संपादित पुस्तक 'स्वतंत्रता पुकारती' हिंदी की चुनिंदा राष्ट्रीय कविताओं का एक ऐसा महत्वपूर्ण संकलन है, जिसमें 23 कवियों की 173 कविताएं शामिल हैं। डा०

नवल यह महसूस करते हैं कि राष्ट्रीय कवियों ने अपनी कविताएं मानो स्याही से नहीं, वरन् अपने हृदय के रक्त से लिखी हैं। उनकी कविताएं पाठकों में सच्चा देश-प्रेम जगाती हैं, उन्हें राष्ट्र की अस्मिता से परिचित कराती हैं और वर्तमान स्थिति के प्रति उन्हें असहिष्णु बनाती हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने न केवल आधुनिक काल में हिंदी गद्य की विविध विधाओं में खड़ी बोली का विकास किया बल्कि अब तक हिंदी कविता में चली आ रही ब्रजभाषा को खड़ी बोली में संभव कर दिखाया। 1857 की सबसे बड़ी अनुगूँज भारतेंदु जी की कविताओं में सुनाई पड़ती है। उनकी प्रसिद्ध कविता – ‘रोअहु सब मिलिकै’ की पंक्तियां हैं—हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई/ अंग्रेजराज सुख साज सजे सब भारी/ पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी/ताहू पै मंहगी काल रोग बिस्तारी/ दिन दिन दूने देख ईस देत हा हा री/ सबके उपर टिकस की अफत आई/ हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।’, जिसमें उनकी चिंता यह है कि अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत के कच्चे माल को विदेशों में ले जाकर वापस हमारे ही बाजार में उसे उंचे दामों में बेचते थे और टैक्स वसूलते थे। भारतेंदु युग के दूसरे कवि हैं बदरीनारायण चौधरी ‘प्रेमघन’, जिनकी कविता ‘क्षोभ’ का मुख्य विषय राष्ट्र की मुक्ति की चिंता है। कवि का मानना है कि—‘है कैसी कजरी यह भाई ? भारत अंबर उपर छाई/ मूरखता, आलस, हठ के धन मिलि मिलि कुमति घटा धिरि आई।’ यानी गुलामी ने हमें चारों ओर से ढक लिया है और सुख का मार्ग दिखाई नहीं देता।

भारतेंदु युग के ही तीसरे कवि प्रताप नारायण मिश्र की कविताओं में न केवल 1857 की अनुगूँज हैं बल्कि राष्ट्रीय चेतना भी है। कवि कहता है कि जब सब कुछ तुम्हारे हाथ से निकल गया तब यह उचित नहीं है कि तुम चुप बैठो। सवाल यह भी है कि जब सारा सामान विदेशों में ले जाया जा रहा है तब होली या दूसरे त्योहार और खुशियां हम कैसे मनाएं? इसलिए कवि कहता है कि—‘ अब तो चेत करो रे भाई/ जब सर्वसु कढ़ि गयो हाथ ते तब न उचित हरिहाई।’ भारतेंदु युग के अंतिम दौर के कवियों में श्रीधर पाठक एक उल्लेखनीय कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने देश की प्रकृति के वर्णन को कवियों के देश-प्रेम का अचूक प्रमाण माना है।

द्विवेदी युगीन कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ जी की कविता में देशभक्ति की भावना और उसकी अभिव्यक्ति दोनों अनूठी हैं। ‘हमारा पतन’ कविता में लक्ष्य करने वाली बात यह है कि अंग्रेजों की गुलामी के बाद हम गहरी निद्रा में सो गए, इस निद्रा के प्रति कवि ने अपनी चिंता प्रकट की है और भारत के स्वर्णिम अतीत की याद दिलाई है। कवि हमारी राजनीतिक चेतना को झकझोरने की कोशिश करता हुए कहता है—‘ जैसा हमने खोया, न कोई खोवेगा/ ऐसा नहिं कोई कहीं गिरा होवेगा/ एक दिन थे हम भी बल विद्या बुद्धि वाले/ एक दिन थे हम भी धीर वीर गुनवाले/ एक दिन थे हम भी आन निभाने वाले/ एक दिन थे हम भी ममता के मतवाले/ जैसा हम सोए क्या कोई सोवेगा/ ऐसा नहिं कोई गिरा होवेगा।’ कवि की चिंता है कि हमारी स्थिति को देखकर कौन नहीं रोयेगा। हमने आलस्य के कारण अपनी सांस्कृतिक विरासत और अपनी मर्यादा को खत्म कर दिया। हरिऔध जी ने निश्चित रूप से अपनी इन पंक्तियों के माध्यम से हमारी चेतना को चुनौती दी है।

रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं का सबसे बड़ा गुण प्रांजलता है। उनकी कविताएं गहरी देशभक्ति का भाव जगाने वाली हैं। ‘स्वतंत्रता’ कविता में उन्होंने संकेत किया है कि हम अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करके ही जीवन जी सकते हैं। उनकी दूसरी कविता है ‘वह देश कौन-सा है ?’ में भी वे हमारी सांस्कृतिक चेतना और स्मृति को झकझोरते हैं। गौर करने की बात यह है कि वे हमसे सवाल पूछते ही नहीं बल्कि हमारे देश के अतीत के बारे में भी बताते हैं। वे कहते हैं—‘ वाल्मीकि, व्यास ऐसे महान कवि थे/ श्रीकालिदास वाला वह देश कौन सा है?/ निष्पक्ष न्यायकारी जन जो पढ़े लिखे हैं/ वे सब बता सकेंगे वह देश कौन सा है ?/ छत्तीस कोटि भाई सेवक सपूत जिसके/ भारत सिवाय दूजा वह देश कौन सा है ?।’ कविता के अंत में वे सारे सवालों का जवाब देते हुए कहते हैं कि वह देश भारत ही है।

गयाप्रसाद शुक्ल ‘सनेही’ का राष्ट्रीय कविताओं का अलग ही रंग है। उनकी ओजस्विता देखते ही बनती है। ‘झन-झन झनक रही हैं कड़ियाँ’ कविता में ये कड़ियाँ गुलामी की कड़ियाँ हैं। आजादी के दौरान जो नेता जेल गए उनका ही स्मरण करते हुए कवि कहता है—‘झन-झन झनक रही हैं कड़ियाँ/ दर्शनीय जो दिव्य मूर्तियाँ/ उन पर ऐसी घड़ियाँ।।’ सनेही जी की ही एक और कविता है—‘ सन् 1857 की जनक्रांति,’ जिसमें 1857 की अनुगूँज देर तक ही नहीं दूर तक सुनाई पड़ती है। जैसा कि हम जानते हैं कि सन् 42 में गांधीजी ने नारा दिया था ‘अंग्रेजों भारत छोड़ो’। संभवतः सन् 42 का इतना व्यापक असर हुआ कि अंग्रेजी सत्ता हिल गई और अंग्रेजों ने समझ लिया कि अब उन्हें आजादी देनी पड़ेगी। सनेही जी ने ‘असहयोग’ कविता में गांधीजी के असहयोग आंदोलन का चित्रण किया है। साथ ही 1919 में पंजाब में जलियांवाला कांड, जिसमें अनगिनत लोग मारे गए थे, के अत्याचारी जनरल का भी चित्रण किया है।

मैथिलीशरण गुप्त को ‘राष्ट्रकवि’ की अभिधा स्वयं महात्मा गांधी ने प्रदान की थी। उनकी ‘भारत-भारती’, ‘स्वर्ग-सहोदर’, ‘मातृभूमि’, ‘भारत-संतान’ और ‘भारतवर्ष’ जैसी कविताएं शुद्ध देशभक्ति की कविताएं हैं, जिनमें भारत के भौगोलिक सौंदर्य और ऐतिहासिक गरिमा का उदात्त स्वर में गान है। इन कविताओं को देखकर लगता है कि राष्ट्रीय भावापन्न कवियों ने सहस्रकंठ से वह गान किया, जिससे भारत का आकाश गूँज उठा।

जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैशी' की गजल में जुझारू राष्ट्रवाद का स्वर सुनाई पड़ता है। हितैशी जी की यह गजल क्लासिक का दर्जा प्राप्त कर चुकी है जो कभी बच्चे-बच्चे की जुबान पर भी थी- 'शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले/ वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा/ कभी वह दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे/ जब अपनी ही ज़मी होगी और अपना आसमां होगा।।'

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय कविता के क्षेत्र में एक नई तड़प लेकर ही नहीं, एक नई अभिव्यक्ति लेकर भी आए। इस तड़प ने ही जैसे भाषा को एंठ दिया है। 'निशस्त्र सेनानी' कविता अफ्रीकी गांधी पर लिखी गई है, जिसकी अंतिम पंक्ति में 'मुक्ति के फट पड़ने की धूम' की बात है। उनकी 'पूरी नहीं सुनोगे तान', 'पुष्प की अभिलाषा', 'सौदा', 'मुक्ति का द्वार' और 'मरण ज्वार' प्रायः इन सभी कविताओं में उनका बलिदानी मतवालापन बहुत असरदार ढंग से व्यक्त हुआ है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'विप्लव गायन' एक प्रसिद्ध कविता है जो उनके जुझारू राष्ट्रवाद का पुरजोर इजहार है। जिसमें कवि से आग्रह है- 'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए/ एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए।'

1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की गूँज हिंदी साहित्य में कितनी दूर तक सुनाई पड़ी, इसका प्रमाण सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध कविता 'झांसी की रानी' है जो हर भारतीय जनमानस के मन-मस्तिष्क में रची-बसी है- 'सिंहासन हिल उठे, राजवंशो ने भृकुटि तानी थी/ बूढ़े भारत में भी आई / फिर से नई जवानी थी/ गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी/ दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी/चमक उठी सन् सत्तावन में/ वह तलवार पुरानी थी/ बुंदेले हरबोलों के मुहं/ हमने सुनी कहानी थी/ खूब लड़ी मर्दानी वह तो/ झांसी वाली रानी थी।' यह न केवल 1857 की वीरांगना झांसी की रानी की स्मृति भर है, बल्कि यह आजादी की लड़ाई के लिए प्राणपन से हमें झकझोरने की चेतावनी भी है। यह हमें याद दिलाती है कि जिन अस्त्र-शस्त्रों से हमने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी वे बहुत पुराने और नाकाफी थे। यही कारण है कि अंग्रेजों ने भारत को अपना उपनिवेश बनाया।

निराला की कविताओं में स्वतंत्रता के लिए बेचैनी दिखती है। 'जागो फिर एक बार' में वे स्वतंत्रता आंदोलन में वेदांत का इस्तेमाल करते हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय कविताओं में 'हिमालय' कविता सबसे प्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने जुझारू राष्ट्रवाद का आख्यान किया है। सियाराम शरण गुप्त, पंत, नरेन्द्र शर्मा, अज्ञेय आदि कवि भी हमें कम नहीं झकझोरते।

गिरिजाकुमार माथुर की 'पन्द्रह अगस्त' कविता का महत्व यह है कि यह कविता 15 अगस्त 1947 के दिन लिखी गई थी। इसमें कवि हमें जनतंत्र में सावधान रहने के लिए कहता है- 'आज जीत की रात/ पहरुए, सावधान रहना/ खुले देश के द्वार/ अचल दीपक समान रहना।' इसके बिंब और प्रतीक पर ध्यान देने की जरूरत है कि आजादी का दीपक जलते रहना चाहिए।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिंदी कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे अंदर न केवल राष्ट्रीयता की चेतना जगाई बल्कि हमें सावधान रहने के लिए भी प्रेरित किया।

संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएं- डा0 इकबाल नारायण
2. भारत में उपनिवेशवाद स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद- शिवानी किंकर चौबे अनुवाद: मिलिंद भारद्वाज
3. भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद- विपिनचंद्र
4. सन् सत्तावन की राज्यक्रांति- रामविलास शर्मा
5. स्वतंत्रता पुकारती- चयन एवं संकलन- नंदकिशोर नवल
6. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली- डा0 अमरनाथ

कबीर : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रस्तोता

डॉ. प्रदीप कुमार

स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पदबंध की अवधारणा के मूल में 'संस्कृति' और 'राष्ट्र' है। यह पदबंध आज तथाकथित प्रगतिवादी बौद्धिक जगत् में हिन्दुत्व का पर्याय समझा जाता है। परंतु यह इसका संकुचित अर्थ है। समग्र रूप में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से आशय है- राष्ट्र को एकजुट कर सुदृढ़ता प्रदान करने वाली शक्ति। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का भाव भारतीय जनजीवन में सतत् प्रेरणा, स्फूर्ति और जनजागरण के साथ-साथ संघर्ष, त्याग और बलिदान के लिए प्रेरित करता है।

हमारे समय और समाज में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को लेकर अनेक ऐंद्रजालिक भ्रमों का सृजन व पोषण किया जा रहा है। विघटनकारी शक्तियाँ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को गलत तरीके से व्याख्यायित कर समाज को जोड़ने के स्थान पर तोड़ने का काम कर रही हैं। इसके लिए वे संस्कृति और इतिहास के तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर जनसामान्य के समक्ष रख रहे हैं। उनके इस कार्य में धर्म के ठेकेदार और राजनीति के सत्ता लोलुप, पूँजीवादी संस्कृति के पुरोधा, बिकाऊ मीडिया और साम्राज्यवादी शक्तियाँ निहित तुच्छ स्वार्थों के लिए इस देश के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को छिन्न-भिन्न करने में सहयोग कर रही हैं। वास्तव में इससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के स्थान पर फासीवादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार के कुटिल प्रयास हो रहे हैं। ऐसे में हमें मध्यकाल एक प्रकाश स्रोत की भाँति प्रतीत हो रहा है। इसमें मुख्य रूप से निर्गुण संत श्रेष्ठ कबीर का चिंतन और आचार-व्यवहार भी उपर्युक्त भ्रमों का निराकरण कर समाज को भ्रमित होने से बचाने में सक्षम है।

कबीर भारतीय समाज के यथार्थ और घात-प्रतिघात की पैदाइश है। कबीर, तेहरवीं-चौदहवीं शताब्दी के भारत में सांस्कृतिक जड़ता पर प्रहार कर समाज एवं संस्कृति के संस्कारक के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'कागद लेखी से अधिक आँखिन देखी' और 'कथनी से अधिक करणी' यानि सामाजिक जीवन में विचार से अधिक आचार पर बल दिया।

मध्यकाल में भारतीय संस्कृति की उदात्त भावना- 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'सर्वे खल्विदं ब्रह्मः', 'ईशावास्यमिदं जगत्सर्वम्', 'अहिंसा परमो धर्मः', 'एकं सद्ब्रह्मः बहुधा वदन्ति, नेह नानास्ति किंचन', -आदि मान्यताएँ जो न केवल भारत अपितु समस्त विश्व को स्पंदित करती थीं, जड़ हो गईं। ये सभी मान्यताएँ केवल सैद्धान्तिक ज्ञान बघारने के साधन बनकर रह गई थीं। वैसे भी हमारे यहाँ जब-जब धर्म की हानि होती है तो कोई न कोई महापुरुष अवतार रूप में धर्म की संस्थापना करता है। इसके पीछे मूलभाव यह है कि समाज में नई परिस्थितियों व चुनौतियों के अनुरूप संस्कृति में भी परिवर्तन-परिवर्द्धन अनिवार्य हो उठते हैं, जो संस्कृतियों परिवर्तन-परिवर्द्धन की इस अनिवार्यता को नहीं समझ पातीं वे प्रायः मर जाती हैं। या वे दूसरों के रंग में इतना अधिक रंग जाती हैं कि अपना मूल परिचय ही खो बैठती हैं।

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दृष्टि से हमारे गौरवशाली हजारों वर्षों के इतिहास में, दीर्घ जीवनकाल में उत्थान-पतन को कई बार देखा और हर संकटकाल में ऐसे महापुरुषों को जन्म दिया जो प्राचीन के जड़ अंश को काटकर उसके चेतन अंश में नवीन का सृजन कर राष्ट्र और संस्कृति को समृद्ध और शक्तिशाली बनाते रहे हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दृष्टि से संत कबीर का महत्त्व निर्विवाद रूप से है।

मध्यकालीन समाज में धर्म एवं संस्कृति के नाम पर जाति, धर्म, पूजा, तीर्थ, व्रत, जप-तप, दान आदि सहित ऊँच-नीच, हिन्दू-मुस्लिम के खूनी खेल सहित सामंतों एवं राजे-रजवाड़ों के व्यभिचार का बोलबाला था। उस समय काशी धर्म एवं व्यापार का गढ़ थी। इसी के साथ यह उच्च वर्ग की विकृतियों को भी समाहित किए हुई थी। यहा - 'राँड, साँड, सीढ़ी, सन्यासी, इनसे बचै तो सेवै काशी यानि - रांड साँड' 'पंडों' और ठगों वाली उक्ति यहाँ फैले अनाचार- व्यभिचार, रूढ़िवादिता, जड़ता, धर्माधता व अंधविश्वास की ओर संकेत करती है।

धर्म और संस्कृति पर समय के साथ परम्परा के नाम पर रूढ़ियों का मुलम्मा चढ़ता जाता है। एक समय ऐसा आता है कि जो धर्म और संस्कृति समाज की भलाई के लिए सृजित हुई थी, वही लोगों के जीवन को असहज बनाने लगती है। चूँकि संस्कृति की परिधि में सम्पूर्ण समाज - लोकजीवन, धर्म, दर्शन और सम्प्रदाय आदि सभी का समावेश हो जाता है। कबीर ने अपने साहित्य के द्वारा संस्कृति की समीक्षा की है। उन्होंने अपने विचारों को बड़ी ही निर्भीकता और स्पष्टता के साथ रखा

और मानव समाज को सुसंस्कृत करने वाले महान् भक्ति आंदोलन को गति प्रदान की।

‘संस्कृति’ शब्द का अर्थ है- ‘सम्यक् कृति’ यानी संस्कार या परिमार्जन। प्राचीनकाल का ‘संस्कार’ शब्द ही सामूहिक कर्म के रूप में भारतीय संस्कृति है। संस्कृति शब्द के मूल में- ‘संस्करोतीति संस्कृति’ अर्थात् संस्कृति वह है जिससे संस्कार या परिमार्जन होता है। मानव जब से धरती पर आया या हम यूँ कहें कि जब से प्रकृति की रचना हुई, मानव की रचना से भी बहुत पूर्व, तब से यह प्रश्न बराबर सामने रहा होगा कि सृष्टि का स्वभाव है उपजना, अतः नूतनता को तो जन्म मिलता ही रहेगा। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि हमारी संस्कृति केवल वह निधि है जो हमें अतीत से मिली है, अपितु संस्कृति उस प्रक्रिया का नाम है जो अतीत की अभिराम, सुंदरतम विधि को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अनूदित कर सके ताकि हम एक नये भविष्य का निर्माण कर सकें। ‘संस्कृति’ हम उस भाषा को कहते हैं जो परिष्कृत है, परिमार्जित है।² वस्तुतः मोटे रूप में संस्कृति से आशय है सीखा हुआ वह आचार-व्यवहार जो हमें पशु जगत् से अलग पहचान प्रदान करता है। व्यापक रूप में संस्कृति किसी समाज की जीवन-पद्धति है, जिसमें उस विशिष्ट समाज के विश्वास, मान्यताएँ, मूल्य, संस्कार, परम्पराएँ, जीवन दर्शन और धर्म आदि सब समाहित रहता है।

संस्कृति शब्द के विषय में वामन शिवराम आपटे के संस्कृति-हिन्दी कोश में लिखा है- संस्कृति- (सम्+कृ+क्तिन) परिष्कार, तैयारी, पूर्णता, मनोविकास।³ यानि संस्कृति शब्द ‘कृ’ धातु में ‘क्तिन’ प्रत्यय जुड़कर बना है, जिसका भाव मन-मस्तिष्क का संस्कार-परिष्कार करना है। संस्कृति का संबंध मानसिकता से है- उसके सर्जनात्मक क्रिया-कलापों तथा तज्जन्य सौंदर्यबोधोत्पन्न अभिरुचियों से है।⁴

कबीर ने वेद, वेदांत, शैव, शाक्त, बौद्ध, सिद्ध आदि से श्रेष्ठ बातों को ग्रहण कर अपनी बात रखी। वास्तव में निर्गुण संतों का मत सभी प्रकार की कट्टरता और भेद-भाव से रहित है। इनका धर्म मानव-समाज को धर्म के नाम पर भिन्न-भिन्न वर्गों में विभाजित करने वाला नहीं था। वह तो सत्य, निरपेक्ष, उदात्त धर्म भावना की छत्रछाया में प्राणी मात्र को आत्मसात् करने वाला एक व्यापक एवं सार्वभौम धर्म था जो निरंतर विश्व कल्याण के मार्ग पर चलकर मानव की प्रतिष्ठा का प्रचार-प्रसार कर रहा था। भक्तिकालीन निर्गुण संतों ने भारतीय चिंतन परम्परा में विकीर्ण प्रायः सभी पूर्ववर्ती विचार व साधना-परम्पराओं से न्यूनाधिक सार ग्रहण किया, जो सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित थीं।⁵ इस दृष्टि से कबीर के साहित्य में मानव जीवन की गहराई अभिव्यक्त हुई है, उसमें योग, भक्ति, प्रेम और सभी का सार था, जिससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पल्लवित-पुष्पित हुआ। उससे जिस सुवास और स्वाद की अनुभूति हुई उसमें सभी तत्त्वों का समावेश होते हुए भी किसी एक का नहीं ठहराया जा सकता।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कबीर के विषय में लिखते हैं - ‘संत कबीर एक ऐसे सजग विचारक थे, जिन्होंने न केवल सत्यता पर अग्रसर होने के लिए परामर्श देना उचित समझा, अपितु जिसने इसके साथ इतना और भी बतला दिया कि जो कुछ भी किया जाये, उसे समझ-बूझकर ही किया जाये। अपने दैनिक जीवन में सदा सजगता के साथ काम करना और भेड़ियाधसान के फेर में पड़कर कभी अपने को धोखे में न डाल देना, यह उनका एक ऐसा उपदेश था, जिसका महत्त्व किसी भी समय कम नहीं हो सकता। इसके द्वारा एक ओर जहाँ स्वावलंबन एवं आत्मविश्वास की सीख मिलती है, वहाँ दूसरी ओर, इसके परिणामस्वरूप हमें अपनी कथनी एवं करनी में वैसे सामंजस्य के लाने का अभ्यास भी पड़ जाता है, जो सामाजिक व्यवस्था के लिए भी उपयोगी है।’⁶

दूसरे शब्दों में कबीर की भक्ति सहज स्वाभाविक आडम्बरहीन है, जो राम को मानकर भी उसके सगुण रूप से परे निर्गुण रूप पर जोर देते हैं। पिंड में ब्रह्मांड मानकर भी यौगिक क्रियाओं-कर्मकांडों से दूर है, साधु होकर भी गृहस्थ का आदर्श समाज के सामने रखते हैं और अल्लाह को मानकर भी नमाज की रूढ़ि को नहीं मानते। कबीर के वचनों से भारतीय समाज में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का भाव विकसित हुआ और इससे समाज के नवनिर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। उन्होंने अपने समय में हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों सहित, सिद्ध नाथ, जैन-बौद्ध आदि के आडम्बरों पर भी प्रहार किया। अपने एक पद में वे कहते हैं -

“देव पूजि पूजि हिन्दू मूये, तुरुक मुये हज जाई।
जटा बाँधि बाँधि जोगी मूये, कापडी के दारौ जाई॥
केसू लूँचि लूँचि मूये बरतिया, इनमें किनहुँ न पाई।
धन संचते राजा मूये अरु ले कंचन भारी।
बेद पढ़ि पढ़ि पंडित मूये रूप भूले मूई नारी।”

इस प्रकार कबीर और उनका साहित्य सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रस्तोता है। उनके साहित्य का अध्ययन मनन एवं आचरण कर हम एक सभ्य समाज का निर्माण कर सकते हैं।

मानव सभ्यता के विकासक्रम में ‘एकाकी मानव’ का कुटुंब, कुल, ग्राम, नगर और राज्य की चरम परिणति ‘राष्ट्र’ के रूप में हुई। फिर यही भाव ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ और ‘यत्र विश्वंभवत्येकनीडम्’ की भावना अंतर्राष्ट्रीयता या विश्व मानवता का रूप आकार लेती है।

संस्कृति के समान ‘राष्ट्र’ भी एक भावात्मक ‘स्वरूप’ है। रूप नहीं। रूप बाहर-बाहर होता है। स्वरूप आंतरिक चेतना

है। बाहर-बाहर यह देश भूमि, जनता और राज्य व्यवस्था का योग है। लेकिन आंतरिक रूप में यह एक दिव्य चेतना है। चेतना का यह साक्षात्कार युगों-युगों से सामूहिक चिंतन का ञल है। इसे ही हम भारत में अपनी संस्कृति कहते हैं। यहाँ जीव, आत्मा, चित और विराट का साक्षात् हुआ है। धर्म यहाँ बंधनकारी नहीं है। सारे पंथ अनुशासन देते हैं। भारत का धर्म आत्म अनुशासन देता है। यह बांधता नहीं, मुक्त करता है। ऋग्वेद से उपनिषद्, महाभारत और रामायण तक यही धारा चली। गौतम बुद्ध और आदि शंकराचार्य ने अपनी-अपनी बोली में सत्य तत्त्व ही बताया है।... राष्ट्र एक भावनात्मक शक्ति है। वह प्रेरणा का स्रोत है युग-युग से मानव के मर्मस्थल में टिका हुआ है। वह सुप्त होकर भी जागृत है। इसका एक ही कारण है कि एक राष्ट्र के हृदय में संस्कृति की अमर आत्मा का निवास है। देश की सीमा घटती-बढ़ती है, परंतु सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का कभी क्षरण नहीं होता। वह सूक्ष्म से सूक्ष्मतर है और विराट से विराटतर है और जन जन के जीवन में श्रद्धा और निष्ठा के रूप में सदा सर्वदा वर्तमान है।⁷

किसी विशिष्ट भू-भाग के लोग एक विशिष्ट भाषा द्वारा अपने दैनंदिन आचार-व्यवहार सम्पन्न करते हैं, वह स्थल विशेष राष्ट्र है। या फिर 'पशुधान्य हिरण्य सम्पदा राजते शोभते इति राष्ट्रम्' अर्थात् पशुधन, खनिज पदार्थ आदि सम्पत्तियों से शोभित प्रदेश राष्ट्र है। राष्ट्र शब्द के प्रयोग में राज्य, जनसमुदाय, प्रजा, भाषा, भूभाग आदि पर जोर देते हुए इसे अनेक अर्थ संदर्भों में प्रयुक्त किया गया है। वस्तुतः 'राष्ट्र' शब्द 'जनपद' का बोध कराता है। जन यानी जनसमूह और 'पद' यानी भू-भाग। यहाँ डॉ. सुधीन्द्र का यह मत उल्लेखनीय है कि- 'भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जनगण की राजनीतिक एकता और जन संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता और जन संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता-तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है।... भूमि उसका (राष्ट्र का) कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस है।' राष्ट्र के लिए भू-भाग, उस भू-भाग पर निवास करने वाले लोग, उनकी भाषा, साहित्य, इतिहास और संस्कृति की एकता तथा पारस्परिक एकानुभूति अत्यावश्यक है। इनमें राष्ट्र के लिए मुख्य बल एनिष्ठ व परस्पर ऐक्यता के भाव पर रहता है। क्योंकि राष्ट्र का मतलब केवल उस मिट्टी, आकाश, धन या सम्प्रभुता नहीं होता बल्कि राष्ट्र का मतलब उसके निवासियों के उस भाव से है जो इतिहास बनकर रुक जाता है। डॉ. फतह सिंह राष्ट्र का मतलब इसीलिए 'देन' बताते हुए लिखते हैं- 'राष्ट्र का शाब्दिक अर्थ है रातियों का संगम स्थल और राति शब्द 'देन' की यह संयुक्त इकाई राष्ट्र इसीलिए कही जाती है कि यहाँ राष्ट्रजन अपनी-अपनी राति (देन) राष्ट्रभूमि के चरणों पर अर्पित करते हैं।'⁸

मध्यकालीन भक्त एवं संत कवियों ने राष्ट्रीयता की दृष्टि से अपने समय की जड़ता, संकीर्णता, भेदभावपूर्ण छल-छद्म एवं आडम्बरों को दूर कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आदर्श प्रस्तुत किया। कबीर के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के मूल में आदिम राष्ट्रवाद से एकमएक विश्व समाज और सार्वभौम मानव-सभ्यता का विकास करना है। कबीर ने भारतीय समाज में धर्म, जाति, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुस्लिम, ब्राह्मण-शूद्र आदि के बैरभाव को दूर करने का संदेश अपने काव्य के द्वारा दिया। उन्होंने सभी लोगों को 'एक ज्योति' से उत्पन्न बताकर राष्ट्रीयता के भाव को मजबूत कर समाज का संस्कार करने का प्रयास किया। उन्होंने देश को निर्जीव रूढ़ियों के पाश से मुक्त कर भारत की जनता के मन-मस्तिष्क में स्वतंत्रता का भाव भरने का साहसिक कार्य किया। उन्होंने अध्यात्म के द्वारा मूल भारतीय जीवन दृष्टि और संस्कृति का बीजारोपण किया। इससे उन्होंने भारतीय जनता में खोए हुए स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास को पुनः जागृत कर देश में जनजागरण की विद्युत शक्ति का संचार किया। आध्यात्मिकता भारत की चिरंतन जीवन-पद्धति है। डॉ. राधाकमल मुखर्जी के अनुसार- 'भारत में राज्य, राजनीति और विजय को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता जितना कि अध्यात्म, धर्म और कला को सामाजिक समन्वय के घटकों के रूप में दिया जाता है। संसार में शायद ही कोई ऐसी जाति हो जो भारतीयों की तरह राजनीतिक-घटनाओं शासन, चढ़ाई या युद्ध - से इतनी कम शासित रही हो और आध्यात्मिक तथा धार्मिक आंदोलनों से सामान्य कल्पनाओं, मानदंडों और परम्पराओं की पांडित्यपूर्ण स्थापनाओं से इतनी अधिक शासित रही हो। मध्य पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया इन्हीं के द्वारा अनेक शताब्दियों तक एक आध्यात्मिक समाज के रूप में संगठित रहा है।'¹⁰

कबीर ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए इसी आध्यात्मिकता का सहारा लिया। ईसा की 15वीं सदी तक आते-आते भारत में राजनीतिक रूप से तुर्कों-अफगानों की सत्ता स्थापित हो गई थी। इस राजनीतिक फेर-बदल के फलस्वरूप यहाँ पूर्व स्थित संस्कृति से अधिक इस देश में एक नवीन आक्रामक धर्म एवं संस्कृति भी भारत में प्रवेश कर गई। अनेक जातियों-उपजातियों और सम्प्रदायों में विभक्त भारत, हृदय व प्राणहीन सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था। भारत के समाज और बाह्याडम्बरी प्रधान धर्म की विसंगतियाँ जगजाहिर हो असहनीय हो गई थीं। इसके साथ ही नवांगतुक शासक धर्म-इस्लाम में भारतीय जनता की दुर्दशा को गुणात्मक रूप से बढ़ा दिया था। इस काल के समाज की स्थिति को देखें तो- इस्लामी आक्रमण के कारण ऊँच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना पर आधारित हिन्दू धर्म का वर्ण-व्यवस्थावादी ढाँचा चरमाया।

निम्न कही जाने वाली जातियों ने सामाजिक विषमता का प्रतिवाद किया, ज्ञान और योग दुखी-हताश जनमानस को आश्वस्त करने में असमर्थ सिद्ध होने लगे, कर्मकांड प्रधान धर्म-साधना कठिनतर हो गई। इससे भक्ति को बल मिला, जिसके

लिए जाति, कुल, कर्म और योग-ज्ञान आदि की कोई आवश्यकता नहीं थी। भक्ति न तो विदेशियों या विधर्मियों के स्पर्श से अपवित्र होने वाली थी और न इतनी कठोर की अज्ञान या प्रलोभन के कारण हुए पतन या स्लखन को क्षमा न कर सके। भक्ति में वैयक्तिक हित के माध्यम से सामाजिक हित की बात मुख्य थी। कबीर ने भी अपनी भक्ति के द्वारा इसी सामाजिक हित का प्रचार प्रसार किया। भक्तमाल में कबीर के विषय इसीलिए कहा गया है-

‘कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम शट्दरसनी॥
भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि भायो॥
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी॥
पच्छपात नहिं बदन सबहि के हित की भाखी॥
आरूढ दशा हवै जगत् पर मुख देखी नाहिन भनी॥
कबीर कानि राखनी नहीं वर्णाश्रम शट् दससनी॥

कबीर ने अपनी साखियों, रमैनियों और सबदों आदि सभी में राष्ट्र का उद्बोधन किया और सभी के हित की बात करते हुए भक्तिहीन धर्म और शब्ददर्शनों की रुढ़ियों का भी विरोध किया। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- ‘ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्त-मौला; स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साक, दिमाग के दुरुस्त; भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियाँ बेधनेवाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे।’¹¹

उस समय के धार्मिक वातावरण में हिन्दू धर्म में विभिन्न जातियों में ऊँच-नीच यानि ब्राह्मण-शूद्र के झगड़े सहित हिन्दू-मुस्लिम का झगड़ा अपने चरम पर था। ऐसी स्थिति को देख समझ कर कबीर ने समाज को समझाते हुए कहा कि ‘भाई रे! बताइए दो ईश्वर कहाँ से आए, किसने यह भ्रम फैलाया है -

‘(भाई रे) दुई जगदीश कहाँ से आया, कहु कवने भरमाया।
अल्लह-राम-करीमा केसो, (ही) हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक तें गढ़ना, इनि महँ भाव न दूजा।
कहन-सुनन को दुर करि पापिन, इक निमाज इक पूजा।
वही महादेव वही महंमद, ब्रह्मा-आदम कहिये।
को हिंदू को तुरुक कहावै, एक जिमीं पर रहिये॥
वेद-कितेब पढ़े वे कुतुबा, वे मोलाना वे पाँडे।
बेगरि बेगरि नाम धराये, एक मटिया के भाँडे॥
कहाँहि कबीर वे दूनौं भूले, रामहिं किनहूँ न पाया।
वे खस्सी वे गाय कटावै, बादहिं जन्म गँवाया॥’¹²

कबीर पुस्तकीय या शास्त्रीय ज्ञान की निस्सारता से भी भलीभांति परिचित थे। वे विद्या ज्ञान को अहंकार का मूल कारण बताते हैं और ‘रामनाम’ को ब्रह्म प्राप्ति का सूत्र-

‘विद्या न पढ़ो वाद नहीं जानो.... कहि कबीर रामै रंगि राता॥’
‘पढ़े गुनें उपजै अहंकारा, अधधर डूबे वार न पारा॥
कहै कबीर सुनहु रे भाई राम नाम किन सिधि पाई॥’
‘में जान्युँ पढ़िबौ भलो, पढ़िवा थें भलो जोग॥
राम नाम सुँ प्रीति करि, भल भल नींदी लोग॥’
‘पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोई।
एकै आषिरी पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ॥’

कबीर का यह चिंतन उस समय ही नहीं बल्कि आज के समाज के लिए भी राष्ट्रीय दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। प्रायः किसी भी काल विशेष में जब नए विचार आते हैं, विशेष तौर से जोखिम भरे आंदोलनों के भीतर से तो वे कई कठोर चौखटों को तोड़ते-हटाते हुए और कई विरोधी तत्त्वों को शामिल किए हुए आते हैं। इसलिए सब कुछ तार्किक संगति के साथ नहीं हो पाता। ऐसे विचारों की केंद्रीय भावना यानि मंशा को समझा जाना चाहिए। जड़तापूर्ण सुसंगति की कुछ अंतर्विरोधों और असंगतियों से भरे विचार ज्यादा महत्वपूर्ण एवं समसामयिक होते हैं, जिनमें मानव जीवन को जड़ता, रूढ़िवादिता और भय से मुक्त कर नई गति देने की शक्ति होती है। इस दृष्टि से कबीर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रस्तोता ठहरते हैं।

संदर्भ

- 1 यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ गीता- 4/7-8
- 2 भारतीय संस्कृति विविध आयाम, सं. डॉ. शशिप्रभा कुमार, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, सं- 2005, पृ. 15 द्धभारतीय संस्कृति में समन्वय-भावना, लखन लाल मेहरोत्र का लेख
- 3 संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, सं.- 1984, पृष्ठ-1348
- 4 हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, डॉ. बच्चन सिंह, वाणी प्रकाशन, सं.- 2001, पृष्ठ- 123
- 5 संत साहित्य में दलित चिंतन, डॉ. अनिल कुमार, नमन प्रकाशन, सं.-2016, पृष्ठ- 90
- 6 कबीर साहित्य चिंतन, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, स्मशति प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1970, पृष्ठ 184
- 7 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, सं. प्रभात झा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं.- 2016, पृष्ठ- 69-70 (राष्ट्र को जोड़ने का मंत्र है सांस्कृतिक राष्ट्रवाद- राजनाथ सिंह के लेख से)
- 8 हिन्दी कविता में युगांतर, डॉ. सुधीन्द्र, पृष्ठ- 164-167
- 9 साहित्य और राष्ट्रीय स्व. डॉ. फतह सिंह, पृष्ठ-28
- 10 भारत की संस्कृति और कला, डॉ. राधाकमल मुखर्जी, पृष्ठ- 13
- 11 कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 134
- 12 कबीर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-271

मैथिलीशरण गुप्त और महाकवि नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' के काव्य में राष्ट्र-बोध

डॉ. राजेश कुमार

सेठ पी.सी. बागला (पी.जी.) कॉलेज

हाथरस-204101 (उ.प्र.)

आधुनिक हिन्दी-कविता में भारतेन्दु युग में ही राष्ट्र-बोध की नींव पड़ गई थी, यद्यपि उसका परिपूर्ण विकास द्विवेदी युग में हुआ था। द्विवेदी युगीन कवियों में नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लोचन प्रसाद पाण्डेय इत्यादि ने राष्ट्रीय चेतना से हिन्दी-कविता को सुरभित एवं सुवासित किया है। आचार्यप्रवर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य और पद्य की भाषा में एकरूपता के प्रयास का सुमधुर उद्योग किया, फलतः गद्य और पद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई। द्विवेदी युग में कविता की भाषा के रूप में खड़ी बोली की स्थापना में जिन कवियों ने योगदान किया है, उनमें महाकवि नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर', मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' इत्यादि की भूमिका अत्यन्त महत्त्व की है।

द्विवेदी युगीन काव्य की ऐतिहासिकता की ओर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन था। अंग्रेजों द्वारा दमन से भारतीय जनता संतप्त थी। चतुर्विध परेशानियों का संजाल देश को जकड़े हुआ था। ऐसी दशा देश के लिए शोचनीय थी। अंग्रेज हिन्दू और मुसलमान के बीच विभाजक रेखा खींचने का कुत्सित यत्न कर रहे थे। देशभक्तों को अंग्रेजों द्वारा जेलों में ठूँसा जा रहा था। भारतीयों का आलस्य-प्रमाद भी किसी से नहीं छिपा था। महात्मा गाँधी के प्रति जनता का सम्मोहन बना हुआ था। इन सब दशाओं से हिन्दी-कविता प्रमुदित हुई और उस के स्वर में राष्ट्र-बोध की विचारधारा का पल्लवन हुआ। ऐसे में मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' का सर्जन कर जनता के चित्त का प्रक्षालन किया। अपने अतीत का गौरव-गान करते हुए उन्होंने वर्तमान को सावधान किया था -

“हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिल कर ये समस्याएँ सभी।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।”¹

'भारती-भारती' मैथिलीशरण गुप्त का ऐसा काव्य है, जिसमें देशोद्धार का भाव-चेतना का प्रखर प्राधान्य है। कवि और काव्य, दर्शन और इतिहास, विज्ञान, आलोचना, काव्य-शास्त्र, भाषा-विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, शल्य-चिकित्सा, नीति-शास्त्र, आर्यों का स्तुति-गान सब कुछ 'भारत-भारती' में व्याप्त है। श्रीयुत गुप्त जी ने ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ अपनी वाणी को प्रमाणित किया है, जो विलक्षण चीज है।

तत्कालीन समय में भारत संकटापन्न था। दुर्भिक्ष-अकाल से मनुष्य भूखों मर रहे थे। नारी-जाति की अस्मिता पर संकट मँडरा रहा था। नारी की विवशता के अत्यन्त मार्मिक चित्र गुप्त जी ने अपने काव्य में व्यक्त किए हैं। हिन्दी-ग्रन्थमाला की मई, सन् 1908 में प्रकाशित सूचना के आधार पर संसार की लड़ाइयों में सौ वर्ष के अन्दर (1793 से 1900 तक); पचास लाख मनुष्य मारे गए, जबकि भारत में दस वर्ष में (1891 से 1901 तक) अकाल और भूख से एक करोड़ नब्बे लाख मनुष्यों ने दम तोड़ दिया। यह स्थिति देश और समाज के लिए अत्यन्त द्रावक थी। कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त ने इस ओर लक्ष्य करते हुए लिखा है -

“दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है,
हा! अन्न! हा! हा! अन्न का रव गूँजता घनघोर है।
सब विश्व में सौ वर्ष में, रण में मरे जितने हरे,
जन चौगुने उनसे यहाँ दस वर्ष में भूखों मरे।”²

गुप्त जी देशानुराग से तादात्म्य रखने वाले अद्भुत कवि हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में देशभक्ति का जो स्वरूप प्राप्य है, उसका सम्यक् विकास 'भारत-भारती' में है। गुप्त जी में कालानुसरण की क्षमता वर्तमान है, जो उनकी कारयित्री प्रतिभा का

वैशिष्ट्य है। गुप्त जी की 'भारत-भारती' पढ़कर हमें भान होता है कि इस कवि के हृदय और आत्मा में आर्ष-संस्कृति के अभ्युदय की कितनी चिन्ता रही है। 'भारत-भारती' की पंक्तियाँ इसकी साक्षी हैं -

“थे भीम-तुल्य महाबली, अर्जुन-समान महारथी,
श्रीकृष्ण लीलामय हुए थे आप जिनके सारथी।
उपदेश गीता का हमारा युद्ध का ही गीत है,
जीवन समर में भी जनों को जो दिलाता जीत है।”³

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भारत-भारती' की प्रशंसा में ठीक ही लिखा है - “भारतेंदु के समय से स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी, उसका विकास 'भारतभारती' में मिलता है।”⁴ द्विवेदी-युग की काल-सीमा 1900 ई० से 1918 तक मानी गई है। यह युग नवजागरण का काल रहा है। आचार्य प्रवर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस युग के कवियों को नसीहत दी कि चींटी से लेकर विराट् विषयों पर भी लेखनी चलाई जाए। द्विवेदी जी का कवियों पर प्रभाव लक्ष्यशील हुआ और तदनुरूप राष्ट्रीय भावनाओं की ओर कविगण आकर्षित होकर उस में प्रविष्ट हुए। भारतीय नवयुवकों को आज़ादी के लिए प्रेरित करना इस काव्य की मुख्य विशेषता रही है, जिसका स्तवन द्विवेदीयुगीन महाकवि नाथूरामशंकर शर्मा 'शंकर' के काव्य में विद्यमान है -

“देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।”⁵

'हमारा हास' महाकवि 'शंकर' की ऐसी कविता है, जिसमें अधःपतन की दुर्दशा तथा अतीत के गौरव का जयगान है। रुढ़िवादी अंधजड़ता के कारण हमारी प्रगतिशील भावनाएँ तार-तार होती दिख रही हैं। आतताइयों के बढ़ रहे संताप से जनजीवन की दुरवस्था भासित हो रही है। जातिवादी व्यवस्था से सारा समाज छिन्न-भिन्न है। इन विकृत दशाओं की ओर कवि 'शंकर' की काव्य-दृष्टि बहुत पहले ही जागरित हुई है -

“व्रतशील सुबोध हैं न शर्मा, रण रोप लड़ें न वीर वर्मा।
धन-राशि न गुप्त गाढ़ते हैं, गुरु-भाव न दास काढ़ते हैं।
निगमागम छान-छीन छोड़े, उपदेश बना दिए गपोड़े।
अब जो विधि जाति में भरी है, उसकी जड़ भी बिरादरी है।”⁶

'समस्या-पूति' का दौर द्विवेदी-युग में भी जारी रहा, यद्यपि समसामयिक समस्याओं के प्रति इन कवियों का भाव-बोध बराबर बना रहा। कवि 'शंकर' ने अपने पूर्वजों का न केवल गुणगान किया है, अपितु उन के माध्यम से तत्कालीन समाज को नई दिशा भी प्रदान की है। सारोपा लक्षणा का विशेष प्रयोग कर महाकवि 'शंकर' ने ऐसे छन्द की रचना की, जिसे पढ़ कर पाठकों में नई स्फूर्ति का संचार लक्ष्यशील हुआ है -

“देवकी के जाये प्यारे पुत्र वसुदेव जी के,
लाड़ले यशोदाजी के नन्दजी के लाल हैं।
भारत के भूषण प्रतापशील-पूषण-से,
दूषणविहीन बोध-वारिधि विशाल हैं,
ज्ञानियों के गौरव सनेही धर्मधारियों के,
सज्जनों के जीवन खलों के महाकाल हैं।
बैठे हैं कदम्ब तले बाँसुरी बजाते हुए,
शंकर विलोक लोक-बल्लभ गोपाल हैं।”⁷

अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के गौरव से नई पीढ़ी को अवगत कराना द्विवेदी युगीन काव्य का मुख्य उद्देश्य रहा है। पुरुषोत्तम परशुराम, महावीर हनुमान, राजर्षि भीष्म पितामह, महात्मा शंकराचार्य तथा महर्षि दयानन्द जी की प्रशंसा में महाकवि 'शंकर' ने काव्य-सर्जना की है, ताकि आज की पीढ़ी को उन से सीख मिल सके। ब्रह्मचर्य-महिमा के नाम पर 'शंकर' जी ने पाँच प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, जो अत्यन्त प्रासंगिक हैं। महावीर हनुमान जी पर लिखी हुई यह कविता मनमोहक है -

“सुग्रीव का सुमित्र बड़े काम का रहा।
प्यारा अनन्य भक्त सदा राम का रहा।।
लंका जलाय काल खलों को सुझा दिया।
मारे प्रचण्ड दुष्ट दिया भी बुझा दिया।
हनुमान बली वीर-वरों में प्रधान है।
महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान है।।”⁸

महाकवि शंकर के काव्य में विज्ञानी चेतना का परिपूर्ण दर्शन विद्यमान है, जिससे उन का काव्य-बोध तर्कपुष्ट भाषा में

समलंकृत हुआ है। परम्परानुमोदित जड़ता को छिन्न-भिन्न करने की काव्य-रचना की शैली 'शंकर' को महान् कवि बनाती है। आलस्य प्रमाद से पीड़ित जनता को 'शंकर' का प्रबोधन विशिष्ट बनाए हुए है। निरपराध मनुष्यों को प्रताड़ित करने वालों पर 'शंकर' का काव्य विवेक दार्शनिक शैली में नए अनुबन्ध का बोध कराता है। इसी प्रकार शारीरिक रक्षा के नाम पर अंग-विन्यास की स्फाई न करने पर शंकर जी ने ध्यान आकर्षित किया है -

“खलों में खेलते खाते भलों को जो जलाते हैं,
विधाता न्यायकारी से सदा वे दण्ड पाते हैं।
प्रतापी तीन तापों से प्रमत्तों को तपाता है,
कुटुम्बी, मित्र, प्यारे भी बचाने को न आते हैं।
अजी जो अंग-रक्षा पै न पूरा ध्यान देते हैं,
मरें वे नारकी पीछा न रोगों से छुड़ाते हैं।
प्रमादी, पोच, पाखन्डी, अधर्मी अन्धविश्वासी,
अविद्या के अँधेरे में, मत्तों की मार खाते हैं।
अभागी, आलसी, ओछे, अनुत्साही, अनुद्योगी,
पड़े दुदैव को कोसों मरे जीते कहाते हैं।”⁹

द्विवेदी युग के ख्यात कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में गो-वध किए जाने पर गहरा आक्रोश मुखरित हुआ है, क्योंकि भारतीय कृषि बैलों पर अवलम्बित रही है। गो-हत्या पर गाय का मानवीकरण शैली में यह कथन कितना मार्मिक है -

“दाँतों तले तृण दाबकर हैं दीन गायें कह रहीं
हम पशु तथा तुम हो मनुज, पर योग्य क्या तुमको यही?
हमने तुम्हें माँ की तरह है दूध पीने को दिया,
देकर कसाई को हमें तुमने हमारा वध किया।”¹⁰

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कवियों में तत्कालीन परिदृश्य का बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। राष्ट्र की अनेक समस्याओं को भस्मसात् करने की उन की नैसर्गिक चेतना राष्ट्रोद्धार के लिए आकुल-व्याकुल थी। इस युग का सच्चा प्रतिनिधित्व महाकवि शंकर और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में साकार हुआ है। इतिवृत्तात्मक शैली भले ही इस काव्य की सीमा हो, लेकिन राष्ट्रोद्धार के लिए सन्नद्ध युवाओं को नवजागरण का संदेश देने में इस काव्य की ऐतिहासिक भूमिका रही है। यदि हम छंदों के व्यवस्थित विन्यास की बात करें, तो कहना होगा कि महाकवि 'शंकर' जैसे छंद लिखना किसी अन्य कवि के लिए दुर्लभ है। मात्रिक छंदों को वर्णवृत्त बनाने की कला में शंकर बेजोड़ हैं। गुप्त जी तथा शंकर की कविताएँ राष्ट्र-बोध की साक्षी हैं।

संदर्भ

1. 'भारत-भारती', मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक : साहित्य-सदन, पृष्ठ : 10
2. वही, पृष्ठ : 93
3. वही, पृष्ठ : 55
4. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली - 110002, आवृत्ति संस्करण : 2015, मूल्य : 160/- रुपए, पृष्ठ : 491
5. 'वैदिक गीतांजलि', रचयिता : महाकवि नाथूरामशंकर 'शंकर', सम्पादक : देशराज सिंह, पृष्ठ : 103
6. वही, पृष्ठ : 104-105
7. वही, पृष्ठ : 74
8. वही, पृष्ठ : 71
9. वही, पृष्ठ : 43-44
10. 'भारत-भारती', मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक : साहित्य-सदन, पृष्ठ : 105

Reinterpreting Historiography 'Notes' on Tipu Sultan and his Religious Nationalism

TRIPTI TYAGI

Assistant Professor, Department of English
Manav Rachna International Institute of Research and Studies

Nationalism identifies “oneself with a single nation or other unit, placing it beyond good and evil and recognizing no other duty than that of advancing its interests”. George Orwell mentions such in his essay ‘Notes on Nationalism’. He states that some natives get “obsessed” with their power, sovereignty, nation, or community. They exercise violence to expand their power, ideology, and region. Orwell’s describes it as one of the frenzied states of the nationalistic thoughts and “the worst enemy of peace”. He asserts “Nationalism is inseparable from the desire for power” (1945: 1). This theory may be well correlated to the life of Tipu Sultan. His reign in Seringapatam elicits the substantial confrontations with his policies related to ‘Nationalism’. The confrontations exist, mainly on his religious policy because he was a Muslim ruler who lived in the domain of the Hindu majority. It ushers an analysis on his conduct of religious nationalism in his region.

A multitudinous rug of historiography is witnessed so far. For instance, one school of thought accuses him of being an Islamic despot who had no regard for other religions. Kirkpatrick calls him “the intolerant bigot or the furious fanatic; the oppressive and unjust ruler; the harsh and rigid master; the sanguinary tyrant” (1811: x.). Mark Wilks alleges “he persecuted the innocents into Mohammedanism and destruction of temples by him shows that he was an intolerant bigot. His bigotry was such that unlimited persecution united in detestation of his rule every *Hindoo* in his dominions” (1817: 766). He compares him with “Aurangzeb or even worse” (Habib, 1999: 111). H.D. Sharma in his work *The Real Tipu* recounts evidences that show Tipu was the “Islamic Zealot”. He quotes Sardar K. M. Panicker who had found letters in India Office Library, London; written by Tipu to his men. For instance, a letter dated 14th December 1788; by Tipu to his army commander in Calicut mentions “I am sending two of my followers with Mir Husain Ali. Along with them you should capture and kill all Hindus. Those below 20 years may be kept in prison, and 5000 from the rest should be killed free from tree tops. These are my orders” (Sharma, 1997: 111 -2.)

Vikram Sampath discusses Tipu’s letter to Syed Abdul Dulai on January 18, 1790 “With the grace of Prophet Mohammad and Allah almost all Hindus in Calicut are converted to Islam. Only on the borders of Cochin State a few are still not converted. I am determined to convert them also very soon” (2006: 2).

Hayavadana C. Rao asserts “the acts of Tipu that were constructive towards Hindus were primarily political and ostentatious rather than an indication of certain tolerance” (1946: 1047–53).

A literature by the eminent poets and writers has also delineated about his tyranny sublimating his ideas of nationality as confined to religion. The French dramatist and poet Henri Auguste Barbier (1805–1882); once visited the East India Company museum, where he noticed Tipu’s Tiger both as the amusement of an infantile tyrant and as a herald of *jihad*:

As day’s divine glimmer lit up the sky;
One of his servants cranked the machine
And the master, awoken, passed his eyes
Over the hellish plaything; its horrid noise
Relit his fury and raised up his hate
Against the conquerors of India (Smith, 2014: 1)

The other school of thought refutes the above perspective. Irfan Habib heaps a convoy of praises upon the Sultan by saying that he was equally responsive to the Hindus. He made numerous charities, endowments and offered help to them. Mohibul Hasan also asserts that Tipu neither harmed Hindus, nor he forced them to convert. On the contrary, he raised them to high position in his Government. Buchanan confronts Hasan "his father appointed the Hindu employees, and Tipu would have entirely displaced them if he could have, but that was impossible; for no other persons in the country had any knowledge of business" (*Habib, 1999: 167*).

Hasan adds "Tipu granted Hindus the complete freedom of worship, conferred grants on temples and Brahmins; gave money for the consecration of images, and on one occasion even ordered the building of a temple" (*1951: 355*). But, Buchanan refutes it "he paid no attention to the religious prejudices of the greater part of his subjects but wantonly destroyed their temples" (*2011: 70- 3*). Wilks alleges that Tipu oppressed and insulted his Hindu subjects (*1817: 766*).

Some versions of History also accuse Tipu for converting the Christians like Wilks, Kirkpatrick, and H. D. Sharma. According to James Scurry, a British officer, who was held captive along with the Mangalorean Catholics, said "30,000 of them were forcibly converted to Islam. The young women and girls were forcibly made wives of the Muslims living there" (*1824: 103*). Bowring to assert "Tipu had signalized his zeal for the faith of Islam by driving out of the coast region no fewer than 30,000 of its Christian inhabitants, who were forcibly deported into Mysore" (*1893: 125*).

Hasan disapproving of the above accusations; quotes from Pissurlencar, Antigualhas, the Portuguese document, saying "Tipu undoubtedly reprimanded the Christians but only those who were traitors like some Kanara Christians who indulged in the espionage for the General Mathews in the second Anglo-Mysore War against Tipu and provided financial assistance to him. They also helped Campbell and entered the league with Rustam Ali and Muhammad Ali who had formed a plot with the English for Tipu's overthrow" (*1951, 361: 2*). He also emphasizes "Tipu Sultan did not convert them as he banished them to Cochin and Goa. While some were put as prisoners at Seringapatam and Chitaldrug and only one was hanged. Those who were staying in the prison were allowed to retain their religion" (*Ibid: 362*).

Kabir Kausar in his *Secret Correspondence of Tipu Sultan* vehemently confronts the notions that hail him as a nationalist and tolerant ruler. He states "he considered the Muslims as a "nation" as he did in respect of the English and the French by considering them as nations of infidels" (*1980: 268*). Narsingha Gill adds "He could not have aspired to a prosperous and independent India, as he was aware only of his own *patria (nation)*, Mysore and its dependencies, not of a larger political entity called *Hindustan* (though he was certainly aware of its spatial identity)—much like the patriots of Renaissance Tuscany, Lombardy, or Venetia who had no concept of Italy but who passionately loved their individual principalities, republics, or signoria, nonetheless" (*2015:9*).

Arjun Appadurai proposes that nationalists are those who engage in aggressive and expansionist politics (*Brittlebank, 1997:4*). H. D. Sharma particularizes Tipu's anti - nationalist image despite his expansionist ideas. He suitably consolidates his view as "Tipu was continuously beseeching Zaman Shah, the ruler of Afghanistan to invade India. He had personally sent two ambassadors Mir Habibullah and Mir Muhammad Riza to him, but could not succeed" (*1997: 130*). He also blames him for befriending the French because the latter had already devised a plan to invade India; of which Tipu was much aware. He repeats were he a nationalist; he would not have tried to welcome the French in his nation.

Some argue that an act of his religious intolerance, befriending the French and his vainglorious pride ruined his life. John Leydon in his *Dirge on Tipu Sultan* mourns his death and satirizes at his vainglorious and ephemeral power that finally, ruined him.

How quickly fled our sultan's state!
How soon his pomp has passed away!
How swiftly sped Seringa's fate
From wealth and power to dire decay!
How proud his conquering banners flew!

How stately marched his dread array!
Soon as the King of earth withdrew
His favoring smile, they passed away (2008:1).

This paper presents multiple interpretations of the life of Tipu Sultan. These interpretations amply give us an idea to analyze the character in context to his notion of 'religious nationalism', his sense of nationality and his reign as a ruler of a state.

References

Bowring, B. Lewing. *Haider Ali and Tipu Sultan: And the Struggle with Musalman Powers of the South*. Oxford: Clarendon Press, 1893. Print.

Brittlebank, Kate. *Tipu Sultan's Search for Legitimacy: Islam and Kingship in a Hindu Domain*. Delhi: OUP, 1997. Print.

Habib, Irfan, ed. *Confronting Colonialism, Resistance and Modernization under Haider Ali and Tipu Sultan*. New Delhi: Tulika, 1999. Print.

Hasan, Mohibul. *History of Tipu Sultan*. Calcutta: Bibliophile, 1951. Print.

Kirkpatrick, William, ed. "Select Letters of Tippoo Sultan to Various Public Functionaries." London: ReInk Books, 1811. Reprint: 2017.

Kirmani, Mir Hussain Ali Khan. *History of Tipu Sultan*. Trans. Colonel W. Miles. New Delhi: Oriental Publishers, 1980. Print.

Leyden, John and James Morton. *The Poetical remains of the late Dr. John Leyden, with memoirs of his Life by J. Morton*. OUP: England, 2008. Web.

Orwell, George. "Notes on Nationalism". *Magazine of Philosophy, Psychology, and Aesthetics Polemic*. October 1945. Web. Google.

Rao, Hayavadana C. *History of Mysore (1766-1799 AD)*. Vol. I-III. Bangalore: Government Press, India, 1946. Print.

Sampath, Vikram. "He Stuck to his Dream of a United Mysore." *Deccan Herald*. The Printers (Mysore) Private Ltd, 04 Oct. 2006. deccanherald.com. 21 Mar. 2017.

Sharma. H. D. *The Real Tipu: A Brief History of Tipu Sultan*. Vanarasi: Rishi Publications, 1997. Print.

Sil, Narasingha. "Tipu, as He Was." *The Indian Express*. The Indian Express (P) Ltd, 17 Nov. 2015. indianexpress.com. 21 Oct. 2016

Smith, Blake. "Robot of Jihad? A Guide to Tipu's Tiger." *The Appendix*. Jekyll, May 6, 2014. theappendix.net. 28 April 2017.

Wilks, Major Mark. *Historical Sketches of the South of India, in an Attempt to Trace the History of Mysoor*. Vol. 1. Madras: Higginbotham, 1869 [1817]. Print.

हिंदी उपन्यासों में राष्ट्रवादी स्वर

डॉ. सुरैया खान

जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी उपन्यासों में राष्ट्रवादी स्वर स्वतंत्रता पूर्व के उपन्यासों से शुरू होकर आज वर्तमान युग तक देखने को मिलता है। बाबू गुलाब राय ने राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए लिखा है कि “एक सम्मिलित राजनैतिक धैर्य में बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जनसमुदाय के परस्पर सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम गर्व की भावना को राष्ट्रीयता कहते हैं।” हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में इसी राष्ट्रीयता को महत्वपूर्ण विषय के रूप में लिया है। स्वतंत्रता के पूर्व के साहित्यिक इतिहास को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि साहित्यकारों ने युग की प्रगति का साथ दिया है संघर्ष किया है और इस दिशा में वे भी किसी अन्य वर्ग के लोगों से पीछे नहीं रहे हैं। यद्यपि स्वतंत्रता के लिए आंदोलन करना राजनीतिज्ञों का काम था, परंतु अनेकानेक साहित्यिक अपनी लेखनी के बल से आंदोलन को तीव्रतर करते रहे हैं। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट देखा जा सकता है कि इस अर्ध शताब्दी के प्रायः सभी प्रमुख साहित्यिक राष्ट्रीय चेतना से संपन्न रहे हैं और सभी ने अपनी-अपनी दृष्टि से उसके विकास में सहायता पहुंचाई है। राजनीति का लक्ष्य जनसमाज के बाहरी जीवन के हितों को देखना उनकी रक्षा करना और उनका संवर्धन करना है। जबकि साहित्य का लक्ष्य समाज को ऐसी प्रेरणा देना है कि वह स्वयं अपने हितों और अधिकारों को समझ सकें और अपने दायित्वों के प्रति सजग हो सकें।

राष्ट्र एवं राष्ट्रीय महत्व के विषय सदैव ही साहित्य में स्थान पाते रहे हैं। प्रेमचंद और उनके समकालीन उपन्यासकारों ने परतंत्र भारतीय समाज के सभी वर्गों और तद्दुगीन समाज में उभरती विभिन्न प्रवृत्तियों के उदय और अस्त बिंदुओं का मार्मिक एवं यथार्थपरक चित्रण किया है। एक ओर ब्रिटिश दासता के उस युग में वर्तमान जमींदारी उत्पीड़न और शोषण, सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार एवं रिश्वतखोरी, बेकारी की समस्या तथा सरकारी दमनचक्र की कुटिल नीतियों जैसे राष्ट्रीय महत्व के विषय उनकी लेखनी के माध्यम से मुखरित हो रहे थे, तो दूसरी ओर भारतीय जनता कि अपरिसीम उमंग से भरी सर्वस्व बलिदान कर देने की अदम्य भावना भी उनके चित्रण का विषय थी, जो अपने देश को विदेशी दास्तां के बंधन से मुक्त कराने के लिए जन जन में कसमसा रही थी। हिंदी उपन्यासों में वर्तमान समय में राष्ट्रवादी स्वर की जब बात होती है, तो उसमें पितृसत्ता का वर्चस्व, जातिवाद, सांप्रदायिक वर्चस्व, अंध-प्रांतीयतावादी वर्चस्व, महानगरीय केंद्रीकरण, अंग्रेजी वर्चस्व और कॉर्पोरेट वर्चस्व का बोलबाला रहता है। दरअसल जातिवाद और सांप्रदायिकता को कथा साहित्य का विषय काफी जमाने से लगातार बनाया जा रहा है। हिंदी उपन्यासों में राष्ट्रवादी स्वर लगभग आजादी से पहले से ही देखा जा सकता है। इन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में राष्ट्रीयता की भावना को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में प्रयुक्त किया है। यहां कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों को लिया जा रहा है।

हिंदी उपन्यास ‘परीक्षा-गुरु’ (1882) अंग्रेजी राज के भोग-विलास में डूबे एक ऐसे व्यापारी की कथा बनकर आता है। जो औपनिवेशिक आधुनिकता के अनुकरण में डूबा है और व्यापार से विरत है। उपन्यासकार चाहता है कि दिल्ली का यह रईस अंग्रेजों के सिर्फ ‘सद्गुणों की नकल’ करें। बकिमचंद्र ने बांग्ला उपन्यास ‘आनंद मठ’ (1882) में हिंदुओं के कष्टों के लिए, मुसलमानों को जिम्मेदार ठहराया। यह औपनिवेशिक राष्ट्रीयता का असर था। राधाकृष्णदास ने ‘निस्सहाय हिंदू’ में भी इसी विषय को उठाया है। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती और समकालीन (1901-1920) तक उपन्यासकारों ने देश की पराधीनता के यथार्थ का सही और तीखा बोध नहीं था। अधिकतर पूर्ववर्ती उपन्यासकार तो ब्रिटिश शासन का गुणगान ही कर रहे थे और जिन्हें ब्रिटिश शासन की वास्तविकता का बोध हो चुका था। वह भी उसके आतंक और दमन से त्रस्त थे। इन उपन्यासकारों ने अधिक से अधिक अपने उपन्यासों में ब्रिटिश शासन के द्वारा होने वाले आर्थिक शोषण, देशोन्नति, शिक्षा के प्रसार, उद्योग-धंधों और कृषि के विकास, सामाजिक सुधार, स्त्रियों की स्थिति में बदलाव लाने, जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण और दमन पुलिस विभाग की रिश्वतखोरी और अत्याचार सरकारी अमलों में फैले भ्रष्टाचार आदि का चित्रण और यत्किंचित आलोचना तो करते थे। पर शासन का विरोध करने का साहस उनमें नहीं था। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करने की कोशिश की और जिसके लिए उन्हें सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

प्रेमचंद पर गांधीवाद का बेहद प्रभाव रहा है। गांधीवादी आंदोलन से प्रभावित प्रेमचंद के तीन उपन्यास विशेष महत्वपूर्ण हैं, जिन पर इस आंदोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा – प्रेमाश्रम, रंगभूमि और कर्मभूमि। राष्ट्रीय आंदोलन की औपन्यासिक त्रयी रही है इन में चित्रित आंदोलन का स्वरूप पूंजीवाद और सामंतवाद के विरुद्ध है। गाँधी जी भी पूंजीवाद के विरुद्ध आंदोलन चला रहे थे। प्रेमाश्रम का 'प्रेमशंकर' रंगभूमि का 'सूरदास' और कर्मभूमि का 'अमरकांत' जन आंदोलन का सूत्रपात करते हैं। वे राष्ट्रीय आंदोलन की प्रतिछाया है – “गत युग के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में आर्थिक विषमताओं के जितने भी रूप संभव थे, प्रेमचंद की दृष्टि उन पर पड़ी थी।” प्रेमशंकर, सूरदास और अमरकांत में गांधी का प्रतिबिंब स्पष्ट देखा जा सकता है। असत्य पर सत्य की विजय, हृदय परिवर्तन, सत्याग्रह आंदोलन चरखा और करघा, लगान बंदी आंदोलन, गांधी इरविन समझौता, नरम दिलिय मनोवृत्ति, नौकरशाही का दमन, स्वराज्य की व्याख्या, स्वदेशी की भावना, नारी जागरण, किसान और मजदूर आंदोलन, जमींदारों का शोषण, रियासतों का अत्याचार आदि अनेक यथार्थवादी राजनीतिक घटनाओं को उपन्यासकार ने चित्रित किया है। निश्चय ही प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य अपने युग के भारत का और उसके स्वाधीनता संग्राम का स्पष्ट प्रतिबिंब है।

इधर जैनेंद्र कुमार भी गांधीवादी युग की देन है। गांधीवाद पर उनकी पूर्ण निष्ठा और आस्था रही है। गांधीवाद की स्थापना के लिए उन्होंने अपने साहित्य में आतंकवादी क्रांतिकारी आंदोलन को अपनी भर्त्सना का विषय बनाया है। इसलिए उनके उपन्यासों में गांधीवाद का समावेश तो है ही क्रांतिकारी राजनीतिक वातावरण का घटाटोप भी कम नहीं है। 'सुनीता' (1935) का हरिप्रसन्ना क्रांतिकारी है सुनीता के सौजन्य से हरि प्रसन्ना की क्रांतिकारिता का अवसान हिंसा में अहिंसा- गांधीवाद की विजय है। मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यास 'गृह युद्ध' (1947) में देश विभाजन के ठीक पूर्व गठित होने वाले सांप्रदायिक उत्पादों का लोमहर्षक वर्णन है। जिनके मूल में मानवता के पराभव का षड्यंत्र रचने वाली उद्धृत कुत्सित मनोवृत्तियाँ क्रियाशील थीं। उस समय धर्माधता एवं सक्रियता की उद्धृत शक्तियाँ प्रबल वेग से सक्रिय होकर देश के दुर्भाग्य की कहानी लिख रही थी। इसी तरह इलाचंद्र जोशी का उपन्यास 'मुक्तिपथ' (1950) था इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा के परिप्रेक्ष्य में राजीव नामक क्रांतिकारी युवक की संघर्ष कथा वर्णित है। 'बलचनमा' नागार्जुन के उपन्यास में कथा नायक का बचपन स्वतंत्रता पूर्व की जमींदारी 'शोषणवादी' निरंकुश उत्पीड़न के सहने की कहानी है। राजेंद्र यादव के उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' में कथानक केवल सात दिनों का है केवल सात दिनों के माध्यम से शासनतंत्र एवं भ्रष्ट नेताओं के जीवन की गाथा को कहने का प्रयास किया है। जिसका मुख्य उद्देश्य कांग्रेसी नेताओं और सामाजिक राजनीतिक दलों की दुर्बलता का उद्घाटन करना है।

अमृतलाल नागर ने 'बूंद और समुद्र' (1956) में मुख्य रूप से पुरानी समाज व्यवस्था के अंतर्विरोधों तथा उसके टूटने और बदलने का चित्रण किया है। बुद्धिजीवी और मध्यम वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों की समस्याओं और रूढ़िगत संस्कारों, आस्था के संकट आदि का चित्र भी उपन्यासकार का लक्ष्य है। उपन्यास का कथा संसार अत्यंत व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। चुनाव की राजनीति, राजनीतिक दलों की आपसी खींचातानी, पुलिस की धांधली, न्यायालयों की न्याय देने में असमर्थता, मंदिरों में फूले प्रपंच और भ्रष्टाचार संस्कृति के नाम पर जारी रीति-रिवाजों के व्यापक चित्र तथा पाखंड उपन्यासों में देखने को मिलता है। 'अमृत और विष' (1966) में इस आस्था में दरार दिखाई देती है। राजनीतिज्ञों और पूंजीपतियों की मिलीभगत से होने वाली लूट, चुनावी भ्रष्टाचार, राजनीति में धन शक्ति और गुंडा शक्ति का बढ़ता प्रभाव, बुद्धिजीवियों का चारित्रिक खोखलापन, नौकरशाही का संवेदनाशून्य कठोर खुशामदी चरित्र आदि के माध्यम से राष्ट्रवादी स्वर देखने को मिलता है।

भगवती चरण वर्मा का उपन्यास 'सबहिं नचावत राम गोसाई' एक सामाजिक व्यंग्य रचना है। उपन्यास में गृह मंत्री द्वारा उलटफेर और राजनीतिक नेताओं पर प्रभाव के संरक्षण में भ्रष्टाचार को अनावृत किया गया है। उनके उपन्यासों में देश में होने वाली राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल का अंकन किया गया है। 'सबहिं नचावत राम गोसाई' (1970) और 'सामर्थ्य और सीमा' (1962) का कथ्य भी स्वतंत्र भारत के इतिहास से ही जुड़ा है, जबकि 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' (1946) का विषय स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि से सम्बद्ध है। आजादी के बाद राजनीतिक जीवन में आई विकृतियों का भगवती चरण वर्मा ने प्रमुखता के साथ अंकन किया है। रेणु ने भी 'मैला आंचल' (1954) में नगरीय परिवेश से दूर गाँवों में राजनीतिक चेतना के सुगबुगाने का पर्याप्त विस्तार और समझ के साथ चित्रण किया है। अमृतराय ने भी 'हाथी दांत' (1957) में आजादी पूर्व के दो दशकों में जमींदारों द्वारा किसानों पर किए जाने वाले अत्याचारों और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के उनके नेता बनकर राजनीति में प्रवेश और हिंसा पैसा तथा तिकड़म के बल पर सत्ता हथिया कर सरकारी धन की लूट और भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। 'झूठा सच' (1960) में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दशक में देश के निर्माण में बुद्धिजीवियों और नेताओं की प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों प्रकार की भूमिकाओं का चित्रण किया है। गिरिराज किशोर ने लोग 1966 में इतिहास के उस काल कालखंड का चित्रण किया है। जब औपनिवेशिक शासन भारत में अंतिम घड़ियां गिन रहा था और उसके साथ ही जमींदार वर्ग भी अपने वर्गीय अधिकारों से वंचित होने की आशंका से ग्रस्त अनिश्चय और आशंका की मानसिकता में जी रहा था। यह वर्ग (1857) के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद अंग्रेजों की सोची समझी नीति के तहत पैदा किया गया था जो अंत तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति वफादार और आजादी की लड़ाई का विरोधी बना रहा। यहां मन्नु भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' (1979) में दा साहब

के रूप में और शैलेश मटियानी ने 'सर्पगंधा' (1979) कल्याण ठाकुर के रूप में जिन नेताओं का चित्र प्रस्तुत किया है उसे लेना भी लाजमी है। महाभोज में राजनीति में प्रविष्ट मूल्यहीनता, शैतानियत और नैतिक सड़ांध का अत्यंत यथार्थ और सजीव चित्रण मिलता है। आठवें दशक में सत्ता और हस्तान्तरण तो एक राजनीतिक दल से दूसरे राजनीतिक दल में जरूर हुआ, पर मूल्य भ्रष्टता और सड़ांध में कोई फर्क नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि जिन राजनीतिक दलों के बीच सत्ता का हेरफेर हुआ वे सभी भ्रष्ट मूल्यों की शिकार थे। कांग्रेस के शासन में, समाजवादी शासन की स्थापना के दिखावे के बावजूद पूंजीवादी और सामंतवादी व्यवस्था ही राजनीति पर हावी रही। राजनीति में धन गुंडागर्दी और छल-प्रपंच का बोलबाला हो गया जिसकी आपूर्ति पूंजीवादी सामंतवादी शक्तियां खूब करती रही। समकालीन राजनीति के इस घिनौने चेहरे को बेनकाब करने में मन्नू भंडारी को 'महाभोज' में अद्भुत सफलता मिली।

मुदुला गर्ग के 'अनित्य' (1980) में 1930 के दशक से 1960 के दशक की अवधि में भारतीय राजनीति की प्रमुख धाराओं का विश्लेषण करते हुए साम्यवादी और सशस्त्र क्रांतिकारी धारा को अपनी सहानुभूति दी और यह विचार प्रस्तुत किया कि इस क्रांति की असफलता ही भारत के पिछड़ेपन और आर्थिक वैषम्य का कारण है। कामतानाथ 'कालकथा' (1998) में दशक 1918 से 1929 की कार्यावधि में उत्तर भारत के सामाजिक मसलो को स्वाधीनता आंदोलन से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं। संजीव के उपन्यास 'जंगल जहां शुरू होता है' (2000) में नेपाल की सीमा से लगे बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले के जंगलों में निवास करने वाली जनजाति तथा क्षेत्र के डाकू और राजनीतिज्ञों, पुलिस और प्रशासन के बीच छिड़ी जंग का चित्र प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि वास्तविक डाकू से बड़े डाकू तथाकथित राजनेता है। जो सत्ता प्राप्त करने के लिए इनका उपयोग करते हैं देश में राजनीति के अपराधीकरण और साथ ही अपराध के राजनीतिकरण की बढ़ती प्रवृत्ति को भी कथाकार ने एक अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया है। काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'अपना मोर्चा' रिपोर्टाज शैली में लिखा गया एक लघु उपन्यास है जिसमें पहली बार समकालीन राजनीति के महत्वपूर्ण पक्ष छात्र आंदोलन को भुक्तभोगी निष्ठा के साथ प्रस्तुत किया गया है। 'तमस' में देश विभाजन से पूर्व हुए सांप्रदायिक दंगों तथा उन्हें प्रेरित करने वाले कारणों को दिखाया गया है। यद्यपि 'तमस' के घटनाक्रम का घटना केंद्र का नाम नहीं दिया गया है। किंतु उसमें विभाजन पूर्व रावलपिंडी में हुए और शहर तथा गांव दोनों में लगातार पांच दिन चलने वाले भीषण सांप्रदायिक दंगों का वर्णन है तमस का अर्थ 'अंधकार' होता है। उपन्यास में अनेक पात्रों एवं छोटे-छोटे कथा प्रसंगों के माध्यम से पूरे देश के महत्वकांक्षी, हिंदू मुस्लिम नेताओं, विभिन्न राजनीतिक दलों एवं अंग्रेजी, प्रशासनिक अधिकारियों की कुटिल नीति का चित्रण मिलता है।

गिरिराज किशोर का उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के शिकार भारतीय डायस्पोरा के आत्म सम्मान के लिए गांधी के 21 सालों के संघर्ष की कथा है। राजनीति जैसे महत्वपूर्ण सत्ता के क्षेत्र में पांव रखने पर एक स्त्री को घर बाहर कि जिन कठोर और विपरीत परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता है। उसका बेहद रोचक और विश्वसनीय चित्रण मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' में हुआ है। परंपरागत पुरुष वर्चस्व के विपरीत स्त्री का राजनीति में सक्रिय हस्तक्षेप, समाज और राष्ट्र के लिए ज्यादा लाभदायक और रचनात्मक होगा पुरुषों की राजनीति में जहां ठेठ अवसरवाद, हिंसा, लूट-खसोट की प्रबलता रहती है। वहीं पर स्त्री राजनीति को ज्यादा संवेदनशील मानवीय और रचनात्मक बना सकती है। इस तरह लेखिका ने स्त्री के साथ पुरुष का समाहार करवाकर समाज के सामने नए मूल्य प्रस्तुत किए हैं। अमरकांत बीसवीं शताब्दी और इक्कीसवीं शताब्दी के यथार्थवादी उपन्यासकार माने जाते हैं। उनके उपन्यासों में खासकर 'सूखा पत्ता' और 'इन्हीं हथियारों से' में लेखक का रचनात्मक एवं जिजीविषा का भाव मिलता है। इन उपन्यासों में जहां एक तरफ भारतीय सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष को नए ढंग से चित्रित किया गया है। वहीं दूसरी तरफ युवा क्रांति एवं प्रेम को नए स्वरूप संवेदना के साथ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास भी किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आजादी के बाद के उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम के सक्रिय रूप ग्रहण करने से लेकर बीसवीं सदी के अंत तक का व्यापक राष्ट्रवादी स्वर इन उपन्यासों में देखने को मिलता है। गांधीवाद का प्रभाव, राजनीति की उथल-पुथल, विभाजन का दंश, वोट बैंक की राजनीति इन सभी का बोलबाला हिंदी उपन्यासों में देखने को मिलता है। प्रत्येक उपन्यासकार अलग विषय को अपनी नवीन शैली में प्रस्तुत कर साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में कामयाब हो रहा है। समकालीन परिस्थितियों पर यदि नजर डाली जाए तो हिंदी उपन्यासों में राष्ट्रवादी स्वर की और भी जरूरत महसूस की जा रही है, इस पर दो मत नहीं हो सकते।

संदर्भ

1. राष्ट्रीयता; बाबू गुलाबराय, पृष्ठ संख्या 3, किताबघर प्रकाशन
2. डॉ. नगेंद्र, विचार और विवेचन, पृष्ठ संख्या 92

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सूत्र सुर संस्कृत पत्रकारिता

उत्तरा सिंह

सहायक प्रोफेसर

कुँ.आर.सी. महिला महाविद्यालय, मैनपुरी

सत्याहिंसागुणैः श्रेष्ठैः, विश्वबन्धुत्वशिक्षिका।

विश्वशान्तिसुखाधात्री, भारतीया हि संस्कृति।।

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने विचारने कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है। 'संस्कृति' शब्द संस्कृत के 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ्' (करणे) धातु से सुट का आगम करके "क्तिन" प्रत्यय से बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ है - साफ या परिष्कृत करना। वास्तव में संस्कृति शब्द का अर्थ अत्यन्त ही व्यापक है, कुछ विद्वान संस्कृति को संस्कार का रूपान्तरित शब्द मानते हैं। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम समुन्नत, संस्कृतियों में से एक है। इसकी सुदीर्घ परम्परा में अनेक मनीषी विद्वानों, मंत्र द्रष्टा ऋषियों तथा तत्ववेत्ता मुनियों के जीवन अनुभवों के शाश्वत निष्कर्षों की संचित निधि जुड़ी है। इसकी वरेण्यता आप्त ऋषियों ने 'सा संस्कृति विश्ववारा' कहकर रेखांकित की है। इसी संस्कृति के आचरित चरित्र ने सर्व मानवों को प्रशिक्षित कर संस्कारित किया है। प्रमाण में यह श्लोक उद्धृत कर सकते हैं-

एतद्येश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मना,

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

डॉ० मदन गोपाल गुप्त ने संस्कृति के विषय में लिखा है- संस्कृति शब्द का तात्पर्य तीन अर्थों से स्पष्ट होता है - व्युत्पत्त्यर्थ, कोशगत अर्थ और व्यावहारिक अर्थ। व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृति, का परिष्कार अथवा परिमार्जन की क्रिया अथवा सम्यक कृति है। संस्कृति को अंग्रेजी में कल्चर शब्द का पर्याय भी माना जाता है, जहाँ वह मूलतः 'उपासना' या 'जोतना' अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है, प्रयोग की दृष्टि से संस्कृति शब्द प्राचीन काल से वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त हुआ है, जबकि 'कल्चर' का प्रयोग संस्कृति के अर्थ में अंग्रेजी साहित्य में सन् 1420 में सर्वप्रथम मिलता है। डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र ने संस्कृति की परिभाषा इन शब्दों में दी है:- "संस्कृति मानव जीवन के विचार आचार का संशुद्धिकरण अथवा परिमार्जन है। वह मानव जीवन की सजी-संवरी हुई अन्तः स्थिति है। वह मानव समाज की परिमार्जित रुचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम है।

भारतीय संस्कृति का स्वरूप अत्यन्त उदार एवं व्यापक रहा है। उसमें एकमात्र मानव-मंगल कामना की गई है। उसमें एकता में अनेकता और अनेकता में एकता स्थापित करके इसी मानव मंगल को परिमण्डित किया है। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् उसके शाश्वत तत्व हैं। दर्शन में उसके सत्य स्वरूप का, नीति में उसके शिव रूप का और साहित्य एवं कला में उसके सुन्दर रूप का ही दिग्दर्शन हुआ है। भारतीय संस्कृति ने इन तत्वों का समाहार करते हुए ही मानव-हित की संरक्षा की है, मानव कल्याण की संसाधना की है। उसका एकमेव स्वर यही रहा है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्॥

सांस्कृतिक विकास की अविच्छिन्न निरन्तरता भारतीय संस्कृति की ऐसी विशेषता है जिसकी तुलना चीन को छोड़कर किसी दूसरे देश के इतिहास से नहीं मिल सकती। भारत की संस्कृति संसार की सबसे प्राचीन संस्कृतियों में से है। यहाँ संस्कृति का उदय ईसा के पाँच हजार वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की घाटी में हुआ और मिस्त्र तथा मेसोपोटैमिया की प्राचीनतम सभ्यताएँ काल प्रवाह में विलीन हो गई हैं। भारतीय संस्कृति का विकासक्रम पाँच हजार साल से अटूट चला आ रहा है। यूनान की अत्यन्त गौरवमयी सभ्यता और रोम की अद्भुत ऐश्वर्यशीलता इस समय इतिहास की विस्मृत गाथा-मात्र रह गई किन्तु भारतीय संस्कृति ही केवल अभी जीवित है बल्कि पश्चिम से नए तत्वों को ग्रहण करके विकास के पथ पर अग्रसर हो रही है।

जब हम राष्ट्र के आगे सांस्कृतिक शब्द का प्रयोग करते हैं, तब तत्काल हमारा ध्यान, राष्ट्र जनों के उन जीवन मूल्यों की ओर जाता है जो शाश्वत ही नहीं, राष्ट्र जीवन को अहम् से वयम् की ओर तथा सत्यम से ओम तत्सत की ओर ले जाने वाले हैं। राष्ट्र जीवन को पूर्ण एवं सार्थक बनाने वाले हैं। राष्ट्रजनों की अंतचेतना को विकसित एवं सुदृढ़ बनाने वाले हैं। इन्होंने

सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था जनित निष्ठा ही राष्ट्रजनों को राष्ट्रीय बनाती है। इसी तरह राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप राजनीतिक न होकर सांस्कृतिक है। निश्चित भू-भाग तथा निश्चित निष्ठावान जन तो भौतिक उपकरण है। संस्कृति ही आध्यात्मिक, गुणात्मक तथा शाश्वत जीवन मूल्य है, जिनका अनुसरण करती प्रजा उसे राष्ट्र का रूप प्रदान करती है। मातृभूमि के प्रति भक्ति तथा जन के प्रति आत्मीयता का भाव सांस्कृतिक मूल्य हैं। यही तीनों मिलकर राष्ट्र को राष्ट्र बनाती है। राष्ट्र किन्हीं सम्प्रदायों तथा जन-समूहों का समुच्चय न होकर, एक जीवमान इकाई है। ऐसे राष्ट्र पुरुष का सजीव व्यक्तित्व है, जिसमें भूमि, जन एवं संस्कृति की जीवंत एकता का सतत निवास वर्तमान रहता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में ऋग्वेद के ऋषि से शिष्य पूछता है कि राष्ट्र पुरुष के जो विविध रूप दिये गये हैं, वे कितने प्रकार से व्यकल्पित किए जा सकते हैं? मंत्र है-

यत्पुरुषं व्यद्धु, कतिधा व्यकल्पयन्।

मुखं किमस्य कौ बाहू का उरू पादा उच्येते।

तब ऋग्वेद का ऋषि उत्तर देता है:-

ब्राह्मणो राष्ट्रस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कशतः।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।

अर्थात् राष्ट्र पुरुष का मुख ब्राह्मण, बाहु राजन्य, उरू वैश्य तथा पाद शूद्र है। चारों वर्णों के संघात् से ही राष्ट्र प्रमुख का निर्माण होता है। इनमें कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह कहना अपराध ही होगा। जो राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से संगठित होता है, उसे न कोई तोड़ सकता है और न ही कोई उसका कुछ बिगाड़ सकता है। वह राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक एकता एवं सामूहिक प्रयास के कारण सदा प्रगति के पथ पर अग्रसर रहता है। किसी राष्ट्र को अखण्ड बनाने के लिए सांस्कृतिक एकता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति कुछ कारणों से अलग होती है, किन्तु मूल रूप में सभी संस्कृतियाँ एकरूप ही हैं। प्राचीन काल में विश्व अनेक प्रकार की कलाओं के विकास और विविध विलासों से सुशोभित था, भारतीय संस्कृति का कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आत्मिक-मानसिक आदि संस्कृतियों का जो विकास मनुष्य ने किया वह संस्कृति में अन्तर्भूत होता है, जिसके द्वारा भारतवासी सांस्कृतिक राष्ट्र की एकता के सूत्र में बँधे हैं। विविध विचारों और आचारों की भिन्नता होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से भिन्नता का अभाव होना भारतीय संस्कृति की प्रथम विशेषता है।

राष्ट्रवाद लोगों के किसी समूह की उस आस्था का नाम है, जिसके तहत वे खुद को साझा इतिहास, परम्परा, भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एकजुट मानते हैं। कोई भी विचार तभी वाद का रूप लेता है जब उसके आचरण कर्ता उस विचार को जीवन का एक अंग बना लेते हैं। राष्ट्र को सामने रखकर जब कोई सिद्धान्त या चिन्तन निरूपित होता है, तब वह विचार राष्ट्रवाद के नाम से अभिहित किया जाता है। 'राष्ट्रवाद' लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने वाली सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भावना है। राष्ट्रवाद एक ऐसी सामूहिक भावना है जो एक भू-भाग पर रहने वाले विविध लोगों को एक राजनीतिक संगठन का सदस्य बने रहने के लिए प्रेरित करती है और अपने देश से प्रेम करना सिखाती है।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो जाना स्वभाविक है। जब राष्ट्र की परिभाषा में संस्कृति शब्द समाहित है तब राष्ट्र के आगे अतिरिक्त सांस्कृतिक शब्द लगाने की आवश्यकता क्यों पड़ी। सच में यह एक गम्भीर प्रश्न है तथा गहराई से विवेचन की अपेक्षा रखता है। संस्कृत शब्द में "ठक" प्रत्यय लगकर "कितिच्" सूत्रानुसार सांस्कृतिक शब्द बनता है। इसे हम संस्कृत का भाववाचीकरण कह सकते हैं। सांस्कृतिक शब्द अपनी परिधि की व्यापकता में संस्कृति के सभी उपादानों एवं उपकरणों को समेटे होता है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक परम्परा के शाश्वत मूल्यों से जब तक जुड़ा चलता है, तब तक वह जीवन्त एवं समुन्नत बना रहता है। स्वलन उसकी गरिमा तथा प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाता है। मर्यादाओं को नष्ट ही नहीं करता, उपेक्षा तथा तिरस्कार का भाव जगा, परिणामगत दुर्बलताओं को स्वीकारने में भी संकोच नहीं करता। हम जानते हैं कि सांस्कृतिक स्वलन के कारण ही विश्व के अनेक राष्ट्र मिट गए। इकबाल ने कहा भी है-

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,

अब तक मगर है बाकी नामोनिशा हमारा।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,

सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।

यह जो 'कुछ बात है' यह हमारी सांस्कृतिक निष्ठा ही है। अपनी सनातन संस्कृति के साथ अटूट जुड़ाव ही है। इसी से अनेकों झंझावतों के बीच भारत-तरणी विपत्ति समुद्र को पार करने में सक्षम एवं समर्थ सिद्ध हुई है। इसकी पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्रीय जीवन का अपनी मूल्यवान आध्यात्मिक संस्कृति को जड़ से दृढ़ता से पकड़े रहना ही है। इसी सत्य को बार-बार उजाकर करने के हेतु से मनीषियों को राष्ट्रवाद के आगे सांस्कृतिक शब्द जोड़ने की आवश्यकता अनुभव हुई है। जब राष्ट्रवाद के आगे सांस्कृतिक शब्द जुड़ जाता है। तब वह सोच का एकमेव सांस्कृतिक अधिष्ठान भी निर्धारित कर देता है। जब मनीषी जीवन के समस्त व्यवहारों में संस्कृति को सामने रखकर ही नीति निर्धारित नहीं करते, आचरण तक भी सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में ही तय करते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ही सदा सर्वदा साहित्य का आदर्श रहा है, क्या संस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य, पाली साहित्य,

अपभ्रंश साहित्य और क्या लोकभाषा साहित्य, सभी ने संस्कृति और राष्ट्रीयता को ही अपना कथ्य बनाया है। सामाजिक सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों पर साहित्य के माध्यम से कभी स्वीकार नहीं हुआ। सामाजिक सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों पर साहित्य के माध्यम से किया जाता यह सीधा आक्रमण भारतीय समाज को भी गले नहीं उतरा। इसी तरह से भारतीय समाज ने अस्तित्ववादी, क्षणवादी आधे-अधूरे पाश्चात्य दर्शन को भी कभी स्वीकार नहीं किया है। भले ही इन्होंने प्रयोगवाद, नई कविता आदि के नाम लेकर कितने ही बड़े नाटक क्यों न किये हों। इनके समकालीन प्रयास समय की कसौटी पर खरे नहीं उतरे हैं। इसका कारण भी है। साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। साहित्य संस्कृति का संवाहक है और संस्कृति साहित्य की आशा है, संस्कृति साहित्य में लिपटी रहती है। कभी कथानक के रूप में तो कभी शिल्प के रूप में। वही साहित्य श्रेष्ठता अर्जित करता है जो संस्कृति को अधिकाधिक आत्मसात् किए होते हैं। संस्कृतिविहीन साहित्य की कल्पना शशक शृंगवत है। साहित्य की परिधि में जहाँ सामाजिक सम्बन्धों का नैकट्य आता है वहीं सांस्कृतिक परम्परा की पहचान को नवीनतम रूपों से ग्रहण करने की प्रेरणा भी आती है। इस सांस्कृतिक समर में भारत को साहित्य के साथ-साथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को भी ध्येय के रूप में अंगीकार कर आलोक की नवीनतम दीपशिखा के साथ विश्वमंच पर खड़ा होना है।

पत्रकारिता, कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका के साथ-साथ लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ है। 'डेविड वेनराइट के अनुसार', पत्रकारिता एक जनसंचार है। यह रोजमर्रा की घटनाओं को कुछ शब्दों, ध्वनियों या तस्वीरों को जनसंचार के तन्त्र द्वारा पेश करती है, जिसे जानने के लिए मानव सदा उत्सुक रहता है कि नया क्या है। पत्रकारिता एक पेशा है किन्तु साथ ही वह लोकसेवा भी है। संस्कृत भारत की सांस्कृतिक-धरोहर है। इस राष्ट्र की पहचान और अस्मिता है। स्वतन्त्र भारत की भाषाई नीति के चक्रव्यूह में न पड़कर आज संस्कृत पत्रकारिता के क्षेत्र में नित-नूतन हो रहे प्रयोगों की पड़ताल करें तो लगता है कि विश्व की अधिकाधिक भाषाएँ, इस वैज्ञानिक और गणितात्मक वाणी-विज्ञान से लाभान्वित हो रही हैं। COMPUTATIONAL LINGUISTIC SCIENCE को परिपोषित और संवर्धित करने में संस्कृत के शब्दानुशासन से अधिकाधिक मदद ली जा रही है। ऐसे परिदृश्य में किन्हीं कारणों से शिथिल गति वाली संस्कृत-पत्रकारिता अब, आधुनिक संचार माध्यमों के सर्वविध क्षेत्रों में और सामाजिक संचार माध्यमों में अपनी उपयोगिता और प्रभाव को स्थापित कर रही है।

जब भी हिन्दी पत्रकारिता की बात होती है तो हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' (1826 ई0, सम्पादक- पं0 जुगलकिशोर शुक्ल) का सन्दर्भ अवश्य दिया जाता है। ठीक उसी तरह से, संस्कृत-पत्रकारिता के इतिहास में ईस्वी सन् 1866 में पहली जून को काशी से प्रकाशित 'काशीविद्यासुधानिधि:' का उल्लेख अवश्य होता है। संस्कृत-पत्रकारिता की इस प्रथम पत्रिका का दूसरा नाम था - "पण्डित पत्रिका"। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जन सामान्य की भाषा में संचार और संवाद करना जरूरी था, इसलिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में तुलनात्मक रूप से अधिक और संस्कृत में कम, पत्र-पत्रिकाएँ छपती रहीं। किन्तु भारत के सभी राज्यों से प्रकाशित होने वाली संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की बात करें तो किसी एक प्रान्तीय भाषा या राष्ट्रभाषा हिन्दी या अंग्रेजी-उर्दू की तुलना में समग्र रूप से संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं की संख्या अधिक मानी जा सकती है। शोध के आधार पर यह संख्या 120 से 130 के बीच की कही जा सकती है। इस छोटे से आलेख में पूरे 150 सालों के इतिहास को विस्तार से देना तो सम्भव नहीं है, किन्तु कुछ मुख्य संस्कृत पत्र पत्रिकाओं का अध्ययन करें, तो दो प्रकार की संस्कृत-पत्रिकाएँ बहुतायत से मिलती हैं। एक तो वे जो मुख्यरूप से शोध पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती रहीं और शोध-लेखों, प्राचीन ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों को ही प्रकाशित करती रहीं। दूसरी वे, जो एक सामान्य साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक पत्रिका के कलेवर में प्रकाशित की जाती थी, जिनमें प्रायः सभी विषयों की सामग्री छपी मिलती थीं। आज स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। संस्कृत पत्रकारिता स्वतन्त्रता संग्राम की एक विशिष्ट उपलब्धि है। नवीन विचारों के सूत्रपात और राष्ट्रीयता की वृद्धि में इसने अभूतपूर्व योगदान किया है। ईस्वी सन् 1832 में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने अंग्रेजी और संस्कृत में एक द्विभाषी शोध पत्रिका प्रकाशित की थी। इस पत्रिका में संस्कृत साहित्य की गवेषणाओं एवं पुरातन सामग्री से आपूरित लेखादि प्रकाशित होते थे। इसने अंग्रेजी पढ़े-लिखे संस्कृतज्ञों के हृदय में नवीन चेतना का संचार किया और राष्ट्रभाषा एवं साहित्य के प्रति गौरव का भाव जागृत किया। जैसा कि पहले उल्लेख कर चुके हैं, 1 जून 1866 ई0 को काशी स्थित गवर्मेन्ट संस्कृत कॉलेज ने 'काशी-विद्यासुधा-निधि:' अथवा 'पण्डित' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया। काशी से ही 1967 ई0 में 'क्रमनन्दिनी' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। विशुद्ध संस्कृत की ये दोनों पत्रिकाएँ प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन करती थीं। अप्रैल 1872 में लाहौर से "विद्योदय:" नए साज-सज्जा के साथ शुद्ध समाचार पत्र के रूप में अवतरित हुआ। हृषीकेश भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में इस पत्रिका ने संस्कृत पत्रकारिता को अपूर्व सम्बल प्रदान किया। 'विद्योदय:' से प्रेरणा पाकर संस्कृत में अनेक नयी पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। इससे पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि संस्कृत पत्रकारिता का भविष्य सकारात्मक और उज्ज्वल है।

सन्दर्भ

1. संस्कृत-निबन्ध-शतकम्। डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी आचार्य/प्रकाशक विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी - 221001। पृष्ठ संख्या-175।

2. शुक्लोत्तर हिन्दी निबन्धों में सांस्कृतिक चेतना। डॉ० बाबूराम मैहला। प्रकाशन-निर्मल पब्लिकेशन्स। पृष्ठ संख्या - 2, 27
3. डॉ० मदन गोपाल गुप्त, मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृष्ठ संख्या-2
4. डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान, पृष्ठ संख्या - 9
5. आधुनिक हिन्दी निबन्ध/ओम प्रकाश मालवीय। प्रकाशन पाइनियर पब्लिकेशन्स। पंचम् संस्करण। पृष्ठ संख्या - 197
6. ऋक्-सूक्त संग्रह/डॉ० हरिदत्त शास्त्री, डॉ० कृष्ण कुमार साहित्याचार्य, मेरठ-2, पृष्ठ संख्या - 400, 401
7. साहित्यिक हिन्दी निबन्ध/अरिहन्त प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-207
8. संस्कृत निबन्ध निकुंज - डॉ० वासुदेवकश्यप चतुर्वेदी एवं डॉ० चन्द्रशेखर द्विवेदी, पृष्ठ संख्या - 21
9. राष्ट्रवाद के सूत्र - डॉ० ए०के० चतुर्वेदी, डॉ० वी०सी० सिन्हा, डॉ० चतुर्भुज, डॉ० जे०सी० जौहरी। पृष्ठ संख्या - 36।
10. प्रयोजनमूलक हिन्दी/डॉ० अशोक तिवारी/प्रकाशक - संजय पब्लिकेशन्स, हॉस्पिटल रोड, आगरा-3। पृष्ठ संख्या - 82।

प्रसाद के नाटकों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना

मीनू पारीक

रिचर्स एसोसिएट

हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के प्रमुख नाटककार जिन्होंने अपने नाटकों में इतिहास, संस्कृति व राष्ट्रीय भावनाओं का समन्वय किया। भारतीय संस्कृति के बिखरे अवयवों को जोड़कर उन्होंने अपनी भावुकता, चिंता, कल्पना का संचार अपने नाटकों में किया और साथ ही राष्ट्रीय सभ्यता व संस्कृति के नवीन उत्थान का प्रयास प्रसाद के नाटकों में दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद ने राष्ट्रीयता को सशक्त रूप से आगे बढ़ाने के साथ उसे व्यापक अभिव्यक्ति दी है।

देशभक्ति राष्ट्रीय चेतना का अनिवार्य अंग है। प्रसाद के नाटकों में देशभक्ति के प्रखर स्वर विद्यमान हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सिंहरेण अलका से कहता है कि "जन्मभूमि के लिए ही जीवन है।" अलका देश के प्रत्येक अणु-परमाणु को महत्व देती है। "मेरे देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।" विदेशी कन्या कार्नेलिया ने भारत की सुषमा और महत्ता का गीत गाया-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा,
सरस ताम्रसर गर्भ विभा पर नाच रही शिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर-मंगल कुंकुम सारा।"³

'स्कन्दगुप्त' नाटक में मालवराज बंधु वर्मा देश के हित के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने की अभिलाषा प्रकट करता है। 'राज्यश्री' में विदेशी ह्वेनसांग द्वारा भारत भूमि के प्रति पूजा भावना की अभिव्यक्ति हुई है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में अथवा राष्ट्रीय संकट के काल में गौरवपूर्ण अतीत की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। मोहनिन्द्रा से ग्रस्त जनसमुदाय को उद्वेलित करने तथा उसे राष्ट्रीय अपनापन का बोध कराने के साथ ही विदेशी कुप्रथा से अपनी संस्कृति को विशुद्ध रखने के लक्ष्य से साहित्यकार स्वर्णिम अतीत की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिक उत्कर्ष व भारत वर्ष का आध्यात्मिक गौरव सुरक्षित है। 'चन्द्रगुप्त' में विश्व विजय का आकांक्षी वीर सिकन्दर भारतीय आध्यात्मवाद के सम्मुख नत शिर दिखाई पड़ता है। 'अजातशत्रु' में गौतम राजा बिम्बसार से भारतीय अध्यात्म की मूल भावना स्पष्ट करते हैं- 'गौतम अजातशत्रु को आध्यात्मिक जीवन लाभ के लिए राजत्याग का उपदेश देते हैं।' डॉ दशरथ ओझा मानते हैं कि- "प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिक और अधिभौतिक दोनों शक्तियों के सामंजस्य के मानव की गहनतम नैतिकता विकासोन्मुख बनती है। प्रसाद ने एक सिद्धहस्त कलाकार के साथ इसी नैतिकता के बल से मानवतत्व और देवत्व को एकाकार कर दिया है। यह प्रसाद के नाटकों की बहुत बड़ी विशेषता है।"⁵ 'स्कन्दगुप्त' का एक गीत भारत के सभी नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर संकेत करता है।

"जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।"⁶

इसी तरह जनमेयजय के 'नागयज्ञ' में आर्य संस्कृति का गुणगान किया गया है। प्रसाद के नाटकों में भौतिक उत्कर्ष को भी महत्व दिया गया है। 'स्कन्दगुप्त' में बंधु वर्मा क्षत्रियों का कर्तव्य बताते हैं- "आर्तप्राण परायण होना, विपद का हँसते हुए, आलिङ्गन करना, विभीषिकाओं की मुस्कुराकर अवहेलना करना विपत्तियों के लिए, अपने धर्म के लिए देश के लिए प्राण देना।"⁷

प्रसाद ने तत्कालीन समस्याओं दुर्दशाओं के हृदय विदारक और मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किए हैं। जब तक वर्तमान दुरावस्था से देश मुक्त नहीं हो पाता, सच्ची स्वतंत्रता व उन्नति का मार्ग अवरुद्ध होगा। प्रसाद के नाटकों में सांकेतिक भाषा में विदेशी शासक की पक्षपातपूर्ण कुटिल तथा दमनकारी नीति से मुक्ति पाने की प्रेरणा दी गई है। 'स्कन्दगुप्त' में राजनीतिक दुरावस्था का व्यापक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद जी को भारत की पराधीनता खल रही थी। जिसका विरोध प्रतिक्रमिक रूप से मनोवृत्तियों के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। प्रसाद ने अपने नाटकों में सामाजिक कुरीतियों तथा संकीर्णताओं का यथार्थ चित्रण कर जनता को सभ्य तथा सुशिक्षित समाज के निर्माण की प्रेरणा दी है। 'विशाख' में सत्यशील नरदेव, महापिंगल आदि पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त सामाजिक अनीति और चुनौतीपूर्ण दुराचार को प्रस्तुत किया है। 'अजातशत्रु' में अवर्ण-स्वर्ण की

समस्या का चित्रण किया गया है। प्रसाद ने विधवा स्त्रियों की समस्या उठाई है वे विधवा विवाह का समर्थन करते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' में अनमेल विवाह का विरोध किया है। रामगुप्त जैसे क्लीव राजा से प्रतिभाशाली 'ध्रुवस्वामिनी' का संबंध विच्छेद कराया गया। 'ध्रुवस्वामिनी' के माध्यम से प्रसाद ने स्त्री की स्वतंत्रता और प्रगतिशीलता का समर्थन किया है—“मैं कवल यही चाहती हूँ कि मनुष्यों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया, वह मेरे साथ नहीं चल सकती यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते”⁸

प्रसाद ने अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक बंधनों का भी उपहास किया है। जहाँ नाटक में विवाह विच्छेद कर पति-अयोग्य होने पर पति के जीवित होते हुए भी स्त्री को पुनर्विवाह करने की छूट दी है। चन्द्रगुप्त' नाटक में अंतर्जातीय विवाह को भी प्रश्रय दिया है। प्रसाद ने संस्कृति व शिक्षा दुर्दशा का भी उद्गार किया है। आध्यात्मिक व नैतिक पतन सत्-असत् प्रवृत्तियों का संघर्ष प्रकट किया गया है। प्रसाद युग में भारतेन्दु युग की तुलना में राजनीति उग्रता' की ओर अग्रसर हुई। राष्ट्रीयता बोधक नवीन स्वरो की गूँज सुनाई देने लगी। प्रसाद के नाटकों में स्वराज प्राप्ति की भावना परिलक्षित होती है। प्रसाद के नाटकों में प्रसाद के हृदय की पीड़ा, कसक वेदना जो उपयुक्त अवसर पाकर नूट पड़ी है—चन्द्रगुप्त' में वह कहते हैं—“पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है।”⁹ उनका विचार है कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है।”¹⁰

अलका द्वारा नए प्रबोधन गीत में स्वतंत्रता के पथ की ओर बढ़ते जाने का ओजपूर्ण संदेश—

“हिमाद्रि तुंगशृंग से / प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला / स्वतंत्रता पुकारती।”¹¹

कामना में युवक घृणित शासन से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा प्रकट करता है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में नाग जाति अपनी पराधीनता में स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कृत संकल्प है और स्वाधीनता की रक्षा अपने प्राणों के मूल्य पर भी करने को तत्पर दिखाई देती है। प्रसाद के नाटकों में एक राष्ट्र एवं एक देश की कल्पना व धारणा की अभिव्यक्ति हुई है। 'चन्द्रगुप्त' में संपूर्ण आर्यावर्त के भूखण्ड को अपना देश समझने की शिक्षा दी गई है। नाटक के प्रारंभ में ही सिंहरण संपूर्ण आर्यावर्त के लिए चिंतित प्रतीत होता है। 'स्कंदगुप्त' में मालवराज बंधुवर्मा के अपनी स्त्री जयमाला से कह गए वचनों में समस्त आर्यावर्त की मंगल कामना की भावना लक्षित होती है।

प्रसाद के नाटकों में गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव है। 'विशाख' के प्रेमानंद महात्मा गाँधी ही है। 'प्रेमानंद' में अहिंसा, प्रेम, दया, शांति का संदेश दिया, प्रेमानंद सुश्रवा से कहते हैं—“सत्य को सामने रखो आत्मबल पर भरोसा रखो, न्याय की मांग करो।”¹² प्रसाद ने वसुधैव कुटुम्बकम की भावना में विश्वास प्रकट किया है, 'अजातशत्रु' में वासवी के शब्द इसकी पुष्टि करते हैं—“कुटुम्ब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवान! क्या कभी वह दिन भी आवेगा, जब विश्व भर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जाएगा और मानव मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सँभालेंगे?”¹³ 'जनमेजय का नागयज्ञ' में समस्त सृष्टि को एक प्रेम की धारा में बहने तथा अनंत जीवन लाभ करने की मंगल कामना की गई है। इसके साथ ही 'विशाख' की नागजाति का स्वतंत्र्य संघर्ष, भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष के अनुरूप है और साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरक शक्ति भी, 'स्कंदगुप्त' में स्वतंत्रता तथा स्वाधिकारों की रक्षा का प्रयास दिखाई पड़ता है। सर्वनाग देश के नागरिकों को स्वाधिकार प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।

नाटकों में यत्र-तत्र चर्खा खादी का भी प्रतिपादन किया गया है। प्रसाद की कामना में कृत्रिम तथा कल-मशीनों के प्रयोग की अपेक्षा प्राकृतिक तथा नैसर्गिक जीवन को श्रेष्ठ बताया गया है। प्रसाद के नाटकों में आत्मबलिदान की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में नाग जाति देशहित के लिए आत्मोसर्ग की दृढ़ धारणा व्यक्त करती है। एक नागबंदी आर्य सेनापति से कहता है—“होगा रणचंदी का विकट ताड़व, आर्यों का स्वाहगान और हमारे जीवन की आहुति। नाग मरना जानते हैं। अभी वे पौरुषहीन नहीं हुए। जिस दिन वे मरने से डरने लगेंगे, उसी को इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार रहेगा।”¹⁴

'चन्द्रगुप्त' संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ नहीं समझता कि 'आत्म सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्यजीवन है।' प्रसाद के नाटकों में क्रांतिकारी विचार हैं। “कनक स्कंदगुप्त को उत्तेजित करती है—उठो स्कंद आसुरी शक्तियों का नाश करने वालों को जगाओं और रोने वालों को हंसाओं आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और आर्य पताका के नीचे समग्र विश्व होगा।” 'ध्रुवस्वामिनी' में सामंतकुमारी के गान में क्रांति का संदेश निहित है।

प्रसाद के नाटकों में राष्ट्र निर्माणात्मक अन्य पक्ष व भाव भी दिखाई देते हैं। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त और यवन कन्या कार्नेलिया का विवाह संबंध स्थापित कराकर धार्मिक तथा साम्प्रदायिक समन्वय किया है। जनमेजय का नागयज्ञ में सरमा संपूर्ण मानवता की एकता का आदर्श उपस्थित करती है। “मैं तो एक मनुष्य जाति देखती हूँ—न दस्यु और न आर्य।”¹⁵

इस तरह जातीय एकता पर बल देने का प्रयास किया गया। साथ ही अस्पृश्यता निवारण का प्रयास भी 'जनमेजय' का 'नागयज्ञ' में स्पष्ट दिखाई देता है। “वर्ण समानता, आर्य जाति की विशेषता और गौरव गाथा।”¹⁶ मादक द्रव्य निषेध संबंधी

रचनात्मक तथ्यों का प्रदर्शन प्रसाद के नाटकों में है। 'कामना' नाटक में स्वर्ण और मदिरा का प्रचार जाति को पतित करने का कारण माना गया है।

प्रसाद ने अपने नाटकों में स्त्री स्वतंत्रता पर बल दिया है 'ध्रुवस्वामिनी' में स्त्री विद्रोहिणी रूप दृष्टिगोचर होता है। ध्रुवस्वामिनी क्लीन और कायर पति रामगुप्त से मोक्ष प्राप्त करती है। "मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीलमणि नहीं हूँ, मुझमें रक्त की लालिमा है, मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है, उसकी रक्षा में ही करूँगी।"¹⁷ प्रसाद के नाटकों में आत्म सम्मान व राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाने वाला इतिहास है।

चाटुकारिता पर व्यंग्य भी प्रसाद के नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अतः प्रसाद ने चाटुकारिता कर अपने स्वार्थ की पूर्ति करने वालों पर व्यंग्य किया है। ध्रुवस्वामिनी में शिखर स्वामी द्वारा अंत में रामगुप्त का पक्ष त्याग देना। साथ ही देश द्रोहियों पर भी व्यंग्य किया गया है। प्रसाद ने उन देशद्रोहियों के चरित्र भी समक्ष रखे हैं। जो षडयंत्रों के द्वारा राष्ट्र को निर्बल करने में लगे हुए हैं। प्रसाद ने स्वतंत्रता विरोधियों व कायरों पर भी व्यंग्य किया है।

प्रसाद के नाटकों में गीतों का भी बहुत महत्व है। जिनमें भक्ति परक व प्रार्थना परक गीत प्रधान हैं। विदेशी कन्या कार्नेलिया द्वारा गया गीत मातृभूति की वंदना का सिरमौर है-

“अरूण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता सहारा।”¹⁸

‘जनमेजय का नागयज्ञ’ में नाग सैनिकों तथा सखियों का समूहगान अत्यंत प्रभावोत्पादक और उत्साहवर्धक है।

“क्या सुना, नहीं कुछ, अभी पड़े सोते हो,

क्या निज स्वतंत्रता की लज्जा-खोते हो।”¹⁹

प्रसाद के नाटकों में प्रसाद की कामना यही रही थी कि शोषण, विलासिता और षडयंत्र की सभ्यता हमारे देश के प्रांगण से विदा ले ले। प्रसाद अपने देश के मंगल का स्वप्न देखते हैं। साथ ही मानवता को महत्व देते हैं और त्याग, दान, क्षमा के भाव हमारे शौर्य तथा राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के साथ जुड़े हैं।

संक्षेप में प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय चेतना मुखर है-प्रसाद सच्ची भारतीय संस्कृति के पक्षधर व मानवीय प्रेम व जीवन मूल्य की रक्षा को अपना कर्तव्य मानते हैं। नाटकों के माध्यम से प्रसाद का प्रमुख उद्देश्य समाज में सदभाव की स्थापना, नारी उत्कर्ष व राष्ट्रप्रेम का संदेश अपने नाटकों के माध्यम से देना रहा है। प्रसाद अपने नाटकों में इतिहास के माध्यम से युगीन राजभक्ति को राष्ट्रभक्ति में परिणित कर रहे थे।

संदर्भ

- 1 प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 80
- 2 वही, पृष्ठ 92
- 3 वही, पृष्ठ 100
- 4 प्रसाद, अजातशत्रु, पृष्ठ 37
- 5 डॉ. दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक, उद्भव एवं विकास, पृष्ठ 478
- 6 प्रसाद स्कंदगुप्त, प्रकाशन भारती भगर, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ 16
- 7 वही, पृष्ठ 115
- 8 प्रसाद ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ 25
- 9 प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 129
- 10 वही, पृष्ठ 173
- 11 वही, पृष्ठ 194
- 12 प्रसाद : विशाख, पृष्ठ 75
- 13 प्रसाद : अजातशत्रु, पृष्ठ 24
- 14 प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ 70
- 15 वही, पृष्ठ 31
- 16 वही, पृष्ठ 1
- 17 प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृष्ठ 27
- 18 प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 73
- 19 जयशंकर प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ 75

भारतेंदु युगीन पत्रकारिता और राष्ट्रीय चेतना

सतीश कुमार भारद्वाज

हिंदी प्राध्यापक

विद्यालय शिक्षा विभाग, हरियाणा

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही सामाजिक व सांस्कृतिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत करने के प्रयासों का श्रीगणेश हो गया था। इस क्रांति के बाद पूरे भारत पर अंग्रेजों का शासन हो गया और भारत ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकलकर विक्टोरिया के हाथों में चला गया। परिणाम स्वरूप दमनकारी नीतियों में वृद्धि हुई और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कई प्रकार के खतरों में पड़ गई। साथ ही इसी क्रांति के फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक नवीन चेतना का विकास हुआ और उपनिवेश विरोधी तथा स्वतंत्रता प्राप्ति की चेतना जाग्रत हुई। इसकी किलता से हताश भारतीय जनता को पुनः जाग्रत करने और भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को प्रकट करके लोगों में नवजीवन का संचार करने में हिंदी पत्रकारिता का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके द्वारा भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के समन्वय ने इस पुनर्जागरण में विशिष्ट भूमिका निभाई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अनेक जातीय, साम्प्रदायिक, धार्मिक पत्र भी निकले पर कहीं न कहीं वे सब देशप्रेम की भावना और राष्ट्रीय चेतना से जुड़े हुए थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का पदार्पण हिंदी पत्रकारिता की एक युगांतरकारी घटना थी। उनके आगमन से हिंदी पत्रकारिता को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके असाधारण योगदान को देखते हुए हिंदी पत्रकारिता के 1867 से लेकर 1900 तक के कालखंड को 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है। इस काल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका आधुनिक हिंदी साहित्य व पत्रकारिता के पुरोध 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' की रही है। उन्होंने न केवल स्वयं समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं का संपादन किया, बल्कि लेखकों व संपादकों का एक ऐसा समूह भी तैयार किया जिसने हिंदी पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देने के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना जगाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस समूह को 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है।

भारतेंदु के समय देश में नवीन राजनैतिक-सामाजिक चेतना का उदय होना प्रारम्भ हो गया था। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचारों तथा लेखों पर जन-सामान्य अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा तथा उनमें व्यक्त विचारों से उद्वेलित भी होने लगा। भारतेंदु के बारे में हिंदी साहित्य कोश (भाग-2) में लिखा है- 'भारतेंदु हरिश्चंद्र नवयुग के अग्रदूत और हिंदी साहित्य में आधुनिकता के जन्मदाता थे। उनकी रचनाएँ देशप्रेम से ओतप्रोत हैं। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज की सर्वतोमुखी अधोगति का हृदयविदारक चित्र अंकित किया और उसके भावी उज्ज्वल भविष्य का स्वर्णिम स्वप्न देखा।'

भारतेंदु और अन्य पत्रकारों ने संपूर्ण भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता को पहचानते हुए सांस्कृतिक पुनरुत्थान को पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस कारण तत्कालीन पत्रकारों ने साहित्यकार, संपादक, विचारक, समाज सुधारक और क्रांतिकारी आदि बहुमुखी दायित्वों का निर्वहन किया। सामाजिक व सांस्कृतिक पुनर्जागरण द्वारा राष्ट्रीय चेतना को जगाने के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के विरोध की दोहरी भूमिका उन्होंने अत्यंत कुशलता से निभाई।

भारतेंदु युग का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' (1867) से होता है। इसके माध्यम से हिंदी भाषा के परिष्कार और खड़ीबोली हिंदी गद्य को व्यवस्थित रूप देने के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना का भी व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार हुआ। उन्होंने स्वदेशी के प्रचार और ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों का विरोध करने के लिए अपनी पत्रकारिता को माध्यम बनाया और स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय चेतना को जगाने के लिए भारतीयों का आह्वान किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी अपनाने पर जोर, आर्थिक विकास, सामाजिक बुराइयों को दूर करना, आधुनिक प्रगति से अवगत कराना, शिक्षा के प्रचार-प्रसार आदि विषयों को इसमें महत्व दिया जाता था।

इसमें साहित्य के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों व नवजागरण से संबंधित सामग्री भी प्रकाशित होती थी। इसमें ब्रिटिश शासन की कठोर नीतियों की कटु आलोचना और स्वाधीनता के लिए प्रेरित करने वाले लेखों की प्रधानता रहती थी और इसका तो आदर्श वाक्य ही 'स्वत्व निज भारत गहे' था। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक चेतना से ओतप्रोत सामग्री सुसंगठित ढंग से प्रकाशित होती थी क्योंकि इसमें जाति-प्रथा, बाल-विवाह के विरोध, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह के समर्थन आदि के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं को भी सम्मिलित किया जाता था।

भारतेंदु के ही संपादन में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन 1873 में आरंभ हुआ, जिसका नाम बाद में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' हो गया। अपनी समकालीन पत्रिकाओं में यह सर्वाधिक सुव्यवस्थित ढंग से संपादित पत्रिका थी। इस पत्रिका ने राष्ट्रीय चेतना की भावना को तीव्र करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रप्रेम को जगाना, सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करना, हिंदी साहित्य के प्रति रुचि पैदा करना, साहित्य की विधाओं को समृद्ध करना, परिष्कृत हिंदी को बढ़ावा देना और राजनीतिक जागरूकता लाना इसके प्रमुख उद्देश्यों में सम्मिलित थे। समाज का प्रतिनिधित्व और जनमानस का मार्गदर्शन इसकी प्रमुख विशेषताएं थी। अपनी स्पष्टवादिता और ब्रिटिश सरकार के विरोधी लेखों के कारण इसे अनेक बार सरकारी प्रताड़ना भी झेलनी पड़ी। इस पत्रिका ने हिंदी पत्रकारिता का आदर्श स्वरूप स्थापित किया।

1874 में नारी-शक्ति के विकास और उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने के उद्देश्य को लेकर भारतेंदु ने 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जो उस समय महिलाओं की प्रथम मासिक हिंदी पत्रिका थी और इसका प्रकाशन उस समय एक क्रांतिकारी कदम था। इसका प्रमुख उद्देश्य ही नारी को सुशिक्षित करके उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना था। इसमें प्रगतिशील दृष्टिकोण से महिला समस्याओं पर आलेख प्रकाशित होते थे। नारी शिक्षा और सशक्तिकरण की दृष्टि से इस पत्रिका का हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है।

भारतेंदु की राष्ट्रीय चेतना की भावना और उत्कृष्ट पत्रकारीय कौशल से प्रभावित होकर अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुए, जिनमें हिंदी प्रदीप (1877), भारत मित्र (1878), सारसुधानिधि (1879), केसरी (1881), ब्राह्मण (1883), हिंदोस्थान (1885) आदि प्रमुख थे। इनके माध्यम से भारतीय जनमानस को जाग्रत करके स्वतंत्रता संग्राम के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया गया। अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के बावजूद इस संकटकाल में भी भारतेंदु युग के पत्रकारों ने भारतीय में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने की इस कठिन चुनौती को स्वीकार किया।

भारतेंदु मंडल के एक वरिष्ठ सदस्य बालकृष्ण भट्ट के संपादन में 1877 में 'हिंदी प्रदीप' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसका हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है और यह उस युग की सर्वाधिक दीर्घजीवी पत्रिका थी। इसके द्वारा हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रबल समर्थन किया गया। साहित्य के साथ-साथ इसकी सामग्री राष्ट्रीय चेतना से भी ओतप्रोत होती थी। तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिस्थितियों का सटीक चित्रण करते हुए जनजागरण के आंदोलनों में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपनी प्रबल इच्छाशक्ति, दृढ़-संकल्प और उच्च आदर्शों के कारण अनेक विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी यह पत्रिका निरंतर 35 वर्ष तक प्रकाशित होती रही जो इसकी एक विशिष्ट उपलब्धि है।

'हिंदी प्रदीप' पर बाल गंगाधर तिलक के क्रांतिकारी विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे इसमें सामाजिक व सांस्कृतिक जागरण के साथ-साथ अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के प्रति असंतोष को भी प्रकट किया जाता था। ब्रिटिश सरकार के तीव्र विरोध के परिणामस्वरूप ही इसे सरकार के कोप का भाजन बनना पड़ा और इसे हमेशा के लिए बंद करना पड़ा। लेकिन इस पत्र ने राष्ट्रीय चेतना की भावना और अभिव्यक्ति की आजादी का जो प्रश्न उठाया था, उसे परवर्ती पत्रकारों ने भी जारी रखा।

'भारत मित्र' (1878) भी इस युग का एक प्रमुख लोकप्रिय पत्र था, जो कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह पत्र बहुत कम समय में ही लोकप्रिय हो गया और पाक्षिक से साप्ताहिक भी प्रकाशित होने लगा। बालमुकुंद गुप्त के संपादन काल में इसने भारत के सांस्कृतिक व सामाजिक पुनरुत्थान में विशेष योगदान दिया। इसके विचारोत्तेजक लेखों ने भारतीय जनता को उद्वेलित करके राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंगाल विभाजन की अंग्रेजों की देश को खंडित करने की नीति के विरोध में संपूर्ण भारत में जो आंदोलन चला, उसका नेतृत्व पत्रकारिता के क्षेत्र में 'भारत मित्र' ने ही किया था और इसकी कटु आलोचना भी की थी। अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी इसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर लोगों को इसके दुष्परिणामों के प्रति जागरूक किया और राष्ट्रीय स्तर पर जनमत बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य किया।

'सारसुधानिधि' (1879) ने भी स्वतंत्रता आंदोलन के लिए जनमानस को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश शासकों के क्रूर हाथों से भारतीय जनता को मुक्त कराने के लिए इसने सक्रिय प्रयास किए और जनता को जाग्रत करने के साथ-साथ सत्ता के विरुद्ध भी अपने संघर्ष को जारी रखा। इसमें राजनीतिक विषयों पर गहन अध्ययन के बाद सारगर्भित लेख व टिप्पणियां प्रकाशित होती थी जो भारतीय जनमानस को राजनीतिक विषयों पर जागरूक करते थे।

1881 में 'केसरी' का प्रकाशन आरंभ हुआ जो राष्ट्रीय चेतना का प्रबल समर्थन करने वाला प्रमुख पत्र था। सन् 1890 में भारतीय राजनीति के पुरोधा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक इसके संपादक बने। उनकी उग्र विचारधारा की झलक इसके संपादकीय में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। जनता को जागरूक करना और उन्हें उत्साहित करके स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सर्वस्व अर्पण करने की भावना पैदा करना ही इसका मूल उद्देश्य था।

1883 में प्रतापनारायण मिश्र के संपादन में 'ब्राह्मण' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ, जिसमें उस समय के सभी प्रतिष्ठित लेखकों के लेख प्रकाशित होते थे। स्वदेश-प्रेम और हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं जैसे दहेज की समस्या, अशिक्षा, धार्मिक कट्टरता, राजनीतिक जागरूकता की कमी, नारी शिक्षा की आवश्यकता आदि पर भी इस में लेख प्रकाशित होते थे। अपने तेरह वर्षों के प्रकाशन काल में इसने हिंदी जगत को अनेक श्रेष्ठ निबंध

दिए और हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह पत्र हास्य-व्यंग्य को भी महत्व देता था और समालोचना शीर्षक से पुस्तक-समीक्षा भी प्रकाशित होती थी। इसकी विशेषता यह थी कि इसके माध्यम से लोकमत को समाज और ब्रिटिश सरकार तक निर्भीकता से पहुंचाने का प्रयास किया गया, जिससे इसे जनमानस में पर्याप्त लोकप्रियता मिली।

भारतीयों की समस्याओं के प्रति ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करने और भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के लिए 1885 में अंग्रेजी त्रैमासिक पत्र 'हिंदोस्थान' का प्रकाशन आरंभ किया गया। बाद में हिंदी और उर्दू में भी समाचार प्रकाशित होने लगे। जब यह हिंदी भाषी क्षेत्र का प्रथम दैनिक हिंदी पत्र बना तो पंडित मदन मोहन मालवीय इसके संपादक बने। अपने 27 वर्षों के प्रकाशन काल में इस पत्र का संपादन बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र जैसे यशस्वी पत्रकारों ने भी किया। इसमें राष्ट्रीय विचारधारा, देश की राजनीतिक गतिविधियों, सामाजिक समस्याओं, भारतीय संस्कृति, हिंदी भाषा और साहित्य सहित भिन्न-भिन्न विषयों पर आलेख प्रकाशित होते थे। इसने काँग्रेस की विचारधारा का समर्थन किया और जनता को भी स्वतंत्रता संग्राम के प्रति जागरूक करने और काँग्रेस की नीतियों के जनता में प्रचार-प्रसार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

1891 में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'नागरी नीरद' का प्रकाशन किया। राष्ट्र की चेतना को जगाना और अंग्रेजों के काले कारनामों और उत्पीड़न का पर्दाफाश करना इस पत्र का प्रमुख उद्देश्य था। इस पत्र की मूल विषयवस्तु भारतीयों को जाग्रत करना तथा सत्य, न्याय और कर्तव्यनिष्ठा का प्रसार करना तथा जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना था।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतेंदु युगीन पत्रकारिता में राष्ट्रीय चेतना का स्वर ही सर्वोपरि था। साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से जनमानस को एक नवीन दृष्टि प्रदान करने और नवजागरण लाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस युग में राष्ट्रीयता की भावना के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया गया जिसे परवर्ती पत्रकारों ने आगे बढ़ाया। सामाजिक व राजनीतिक सुधार के साथ-साथ सांस्कृतिक पुनर्जागरण में भी इन पत्रकारों की सराहनीय भूमिका रही। राष्ट्रीय चेतना के इस युग में पत्रकारों का उद्देश्य किसी भी प्रकार की व्यावसायिक पत्रकारिता को प्रश्रय देना नहीं था बल्कि पत्रकारिता का सही दिशा में सदुपयोग करते हुए जनमानस में वह जोश एवं उमंग भरना था जिसके द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ वह स्वयं खड़े होने का साहस कर सकें।

भारतीयों की सामाजिक व राजनीतिक दशा का यथार्थ चित्रण और ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों का साहसपूर्वक विरोध करना तत्कालीन परिस्थितियों में एक असाधारण कार्य था। इसके अलावा पाठकों की अनभिज्ञता और अरुचि के बावजूद अपने आदर्शों के कारण इस युग की पत्रकारिता ने विपरीत परिस्थितियों में भी अनुकरणीय कार्य करके पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित किए। तत्कालीन पत्रकारों ने कर्मठता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता जैसे गुणों द्वारा विपरीत परिस्थिति में भी राष्ट्रीय चेतना की दिशा में निरंतर उल्लेखनीय कार्य किया जो आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्रोत है। इस युग की पत्रकारिता को राष्ट्रीय चेतना के विकास की नींव कहा जा सकता है, जिस पर सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व राजनीतिक पुनर्जागरण तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित करने का महल बना।

संदर्भ

1. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र - 'हिंदी पत्रकारिता' 1998
2. डॉ. सुशीला जोशी - 'हिंदी पत्रकारिता- विकास और विविध आयाम' 2000
3. शिवकुमार दुबे - 'हिंदी पत्रकारिता- इतिहास एवं स्वरूप' 1992
4. वंशीधर लाल - 'भारतेंदु युगीन हिंदी पत्रकारिता' 1986
5. डॉ. अर्जुन तिवारी - 'स्वतंत्रता आंदोलन और पत्रकारिता' 1982
6. डॉ. वेदप्रताप वैदिक - 'हिंदी पत्रकारिता- विविध आयाम' 2002
7. डॉ. संजीव भानावत - 'पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम 1995

भारतेन्दु एवं प्रसादयुगीन नाटकों में राष्ट्रवादी तत्व

डॉ लक्ष्मी गुप्ता

यमुना नगर (हरियाणा)

भारतीय वाङ्मय में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता रहा है। यजुर्वेद के 'राष्ट्र में देहि' और अथर्ववेद के 'त्वा राष्ट्र भृत्याया' में राष्ट्र शब्द समाज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मानव की सहज सामुदायिक भावना ने समूह को जन्म दिया, जो कालान्तर में राष्ट्र के रूप में स्थापित हुआ। राष्ट्र एक समुच्चय है, कुलक है और राष्ट्रीयता एक विशिष्ट भावना है। जिस जन समुदाय में एकता की एक सहज लहर हो, उसे राष्ट्र कहते हैं। आर्यों की भूमि आर्यावत में एक वाह्य एकता के ही नहीं वैचारिक एकता के भी प्रमाण मिलते हैं। आर्यों की परस्पर सहयोग तथा संस्कारित सहानुभूति की भावना राष्ट्रीय संचेतना का प्रतिफल है। साहित्य का मनुष्य से शाश्वत संबंध है। साहित्य सामुदायिक विकास में सहायक होता है और सामुदायिक भावना राष्ट्रीय चेतना का अंग है।

यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य उद्देश्यपूर्ण होता है। साहित्य की कोई भी विधा निरुद्देश्य नहीं होती है और जब बात नाटक की होती है तो यह उक्ति शत-प्रतिशत सत्य उजागर होती है क्योंकि नाटक का सीधा संबंध समाज से होता है। इसी कारण अन्य विधाओं से नाटक की प्रासंगिकता अधिक बढ़ जाती है। हिन्दी नाटक का प्रारंभ राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण से जुड़ा हुआ है। आधुनिक काल के प्रथम चरण से ही नाट्यकारों ने अपने परम्परागत आदर्शों, विश्वासों, नैतिक मूल्यों को नहीं छोड़ा। जिसका मूल कारण यह था कि वे नवजागरण की पृष्ठभूमि में जनता का सांस्कृतिक उत्थान करना चाहते थे। इससे प्रेरित होकर भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने राष्ट्रीय एकता को दृढ़ बनाने वाले नाटकों की रचना की। इन नाटककारों ने अपने नाटकों में देश की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करके देशभक्ति जगाने का प्रयास किया। भारतेन्दु के 'नीलदेवी', 'भारतदुर्दशा', 'अन्धेर नगरी' आदि नाटक इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त राधाकृष्णदास का 'महाराणा प्रताप', पंडित राधाचरण गोस्वामी का 'अमरसिंह राठौर', गदाधर भट्ट का 'मृच्छकटिकम' आदि में भी राष्ट्रीयता के चिह्न दिखाई पड़ते हैं क्योंकि भारतेन्दु युगीन नाट्यकारों का मुख्य लक्ष्य पराधीन भारत को जगाना ही रहा था।

यदि देखा जाए तो भारतेन्दुयुगीन नाटक ने प्रसाद युगीन नाटक के लिए सुदृढ़ पृष्ठभूमि निर्माण करने का कार्य किया। प्रसादयुगीन नाटकों में भी राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रगौरव एवं राष्ट्र प्रेम की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है। प्रसाद एवं प्रसादयुगीन नाटककारों ने वर्तमान समय की आवश्यकता को समझा और देश में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चल रहे स्वाधीनता आन्दोलन में नवयुवकों को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रसाद ने प्रायः अपने सभी नाटकों में ऐसे चरित्रों का निर्माण किया है जो देश की एकता, अखंडता, गौरव व स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान देते हुए नजर आते हैं।

भारतेन्दु और प्रसाद युगीन मुख्य नाटकाकारों ने देशवासियों को प्रेरित करके नवजागरण के लिए जगाया। अपने 'नाटकों' के पात्रों एवं संवादों से जनता में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। प्रायः इन नाटकों के चरित्र देश की आन, बान और शान की खातिर अपने प्राणों का बलिदान देते हुए नजर आते हैं। व्यक्ति बड़ा नहीं है, महान नहीं है बल्कि राष्ट्र महान है, का संदेश तथा एकजुट होकर देश पर आये संकट का सामना करने का संदेश देते हैं। जिनमें पुरुष चरित्रों के साथ-साथ नारी चरित्रों का भी भव्य एवं उद्दातरूप सामने आता है।

भारतेन्दु युग से पूर्व आजादी की पहली असफल लड़ाई लड़ी जा चुकी थी। 1857 में अंग्रेजी शासकों से निर्णायक लड़ाई लड़ने के लिए जिन कारकों की जरूरत थी, वे कारक पूरी तरह भारतीय समाज में मौजूद नहीं थे। राष्ट्रवाद की शुरुआत बंधुत्व, समानता और स्वाधीनता के असहसास से होता है। भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने इन्हीं तत्वों को गहराई से उकरने की कोशिश की। भारतीय राष्ट्रवाद में सामंतवाद जो विकृति पैदा कर रहा था वह कुछ अंशों में आज भी मौजूद है। यह विकृति भारतेन्दु एवं उनके सहयोगी नाटककारों के नाटकों में भी परिलक्षित होती है। इन विकृतियों को नाटककारों ने अपने नाटकों के द्वारा समाज को फल एवं मजबूत बनाने में किया।

भारतेन्दु युग के मुख्य नाटककारों में लाला श्रीनिवासदास, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र एवं जी.पी. श्रीवास्तव का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इन साहित्यकारों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से देशवासियों को तत्कालीन परिस्थितियों का बोध कराया और उनमें राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। जिससे भारतीय जनता को नयी ऊर्जा मिली। इस काल के नाटकों में राष्ट्रीयता की धारा का संचार हुआ क्योंकि नाटक ही ऐसा

माध्यम था जिसके द्वारा आम जनमानस के हृदय में कम समय में राष्ट्रीय चेतना की भावना जगाई जा सकती थी। ऐसे में भारतेन्दु नवजागरण के अग्रदूत बनकर सामने आये।

भारतेन्दु कालीन नाटककार एक नवीन और समस्त दृष्टिकोण लेकर देश और जाति के विशाल प्रांगण में प्रवीण हुए। इनके प्रवेश के साथ इस युग में नई चेतना का सूत्रपात और नई दिशा तथा पश्चिमी विचारों का प्रकाश तेजी से फैलना प्रारंभ हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके साथी नाटककारों ने अपने चारों ओर के जीवन तथा भारतीय पुराणों तथा इतिहास से संवेदना स्वीकार की और भारतीय जनता के जीवन को पुष्ट करने का प्रयास किया। इन नाटककारों ने राजहित और राष्ट्रकल्याण की तीव्र भावना प्रकट की। परिणामस्वरूप इस काल में स्वदेश संगठन की लहर सी दौड़ गई। श्री राधाचरण गोस्वामी ने अपने नाटक 'अमर सिंह राठौर' के माध्यम से देश प्रेम को आम जन तक पहुँचाया-

‘जय भारत, जय भारत, जय भारत कहुरे।
भारत की भक्ति करो, भारत में रहूँ रे।।’¹

इसी समय प्रेमघन भी भारतेन्दु के रास्ते पर चलते हुए अपनी कृतज्ञता तथा भक्ति का प्रदर्शन कर रहे थे -

‘मेरी यह जन्मभूमि, प्रिय न ओर यासी।’²

डॉ. गोपीनाथ तिवारी का मानना है कि- ‘जिन नाटककारों ने भी देश-प्रेम पर लेखनी दौड़ाई है, उन्होंने प्राचीन भारत का गुण अवश्य गया है।’³ तत्कालीन नाटककार भारतीय जनता को अतीत के सुनहरे इतिहास का हवाला देकर वर्तमान समय में राष्ट्र के प्रति चेतना को जागृत करने चाहते थे। प्रताप नारायण मिश्र वर्तमान की तुलना अतीत से कर देशोद्धार की प्रेरणा ‘भारत दुर्दशा रूपक’ में देते नजर आये - ‘कहाँ वह सार्वभौम राज्य? कहाँ यह दुर्दशा? कहाँ एक दिन यह था कि इन्हीं पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय को भू-मंडल के मनुष्य अपना शिरोमुकुट समझते थे।’⁴

भारतेन्दुयुगीन नाटककारों ने स्वर्णमय अतीत के साथ-साथ वर्तमान दुर्दशा का भी सजीव चित्रण किया है। गोपालराम गहमरी ने अपने नाटक ‘देश दशा’ में तत्कालीन परिवेश का सशक्त चित्रण किया है। इस नाटक में उन्होंने व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल निर्भीकता के साथ खोली साथ ही, चपरासी, वकील, पुलिस को भ्रष्टाचार का मुखड़ा बनाकर जनता के बीच रखा - “लीजिए, देश दशा समर्पित है। अंगीकार कीजिए! इसकी एक-एक पंक्ति में दुःख की शृंखला भरी पड़ी है, इससे आपका मन तो अवश्य दुःखेगा, परन्तु बिना दिखाए रहा नहीं जाता।”⁵

भारत सौ पराधीन हाय!

हाय! हाय! भारत सों दीन दुःखत रोवत बिलखाय।।

भारत को वेगि दास भाव से छुड़ाओं

जय भारत, जय भारत, जय भारत गाओं।⁶

भारतेन्दु और प्रसादयुगीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना : राधाचरण गोस्वामी ने पराधीनता से देश की दुर्दशा का वर्णन ‘अमर सिंह राठौर’ में किया है। साथ ही अकाल, महंगाई और निर्धनता ने देश की कमर तोड़ दी थी। प्रेमघन ने इसे पंक्तियों में बाँधा-

भागो भागो अब काल पड़ा है भारी।

भारत पे घेरी घटा विपत की कारी।⁷

भारतेन्दुकालीन नाटकों में राष्ट्रीयता के अनेक भाव - देशभक्ति, अतीत का गौरवगान, वर्तमान के प्रति क्षोभ, तत्कालीन भ्रष्ट शासन-प्रबंध से असंतोष, अपनी भाषा, संस्कृति तथा धर्म के प्रति अगाध निष्ठा तथा अन्य अनेक राष्ट्र निर्माणात्मक भावों का नवनिर्माण किया गया। इस युग के सभी नाटककार अपने युग के प्रति सजग दिखाई प्रतीत हुए। उन्होंने भारत का अधपतन अपनी आँखों से देखा था। चारों ओर रुढ़िग्रस्त मानसिकता, पाश्चात्य सभ्यता से उत्पन्न दूषित प्रभाव, भ्रष्ट शासननीति, खस्ता आर्थिक अवस्था, आदि ने देश की जनता को खोखला कर रखा था। फलस्वरूप युगीन नाटककारों ने राष्ट्रीय चेतना को जन-जन के हृदय में जगाने का प्रयास किया। यदि देखा जाए तो भारतेन्दुयुगीन नाटकों ने प्रसाद युगीन नाटकों के लिए सुदृढ़ पृष्ठभूमि निर्माण करने का कार्य कर दिया था। प्रसाद से पूर्व बद्रीनाथ भट्ट ने दुर्गावती एवं चन्द्रगुप्त जैसे नाटकों की रचना करके प्रसाद के लिए नवमार्ग का निर्माण कर दिया था। माखनलाल चतुर्वेदी और मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों के नाटक भी इसी पृष्ठभूमि पर लिखे गए।

प्रसाद युग के प्रमुख नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। उनके प्रसिद्ध नाटकों में- ‘सन्ध्यासी’, ‘राक्षस का मन्दिर’, ‘मुक्ति का रहस्य’, ‘राजयोग’, ‘सिन्दूर की होली’ और ‘आधी रात’ के नाम लिए जा सकते हैं। मिश्र जी समस्या प्रधान नाटकों की रचना के लिए प्रख्यात रहे हैं। ‘सिन्दूर की होली (1934) में मिश्र जी ने विधवा विवाह एवं नारी उद्धार की रचना भी की है। इनमें गरुडध्वज (1945 ई.) वत्सराज (1950), दशाशमेध एवं वितस्ता की लहरें (1953) विशेष प्रसिद्ध हुए। उनके नाटक तीन अंकों के हैं तथा अंकों को दृश्यों में विभाजित नहीं किया गया।

उपेन्द्रनाथ अशक ने ‘स्वर्ग की झलक’, ‘छठा बेटा’, ‘अलग-अलग रास्ते’, ‘अंजो दीदी’, ‘अंधी गली’, ‘कैद’, ‘उड़ान’ एवं ‘जय-पराजय’ आदि अनेक नाटकों की रचना की। ‘छठा बेटा’ उनका प्रसिद्ध नाटक है, जिसमें पुत्रों की स्वार्थपरता का

हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली में यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। 'अंजो दीदी' में नाटककार ने अहंवादिता एवं प्राचीन संस्कारों के दुष्प्रभावों का वर्णन किया है। वह टूट जाती है, किन्तु झुक नहीं पाती। दो अंकों का यह लघु नाटक रंगमंच की दृष्टि से पूर्ण सफल रहा है।

प्रसादयुगीन नाटककार बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। वे भारत की सच्ची संस्कृति के पक्षधर थे, मानवीय प्रेम और जीवन मूल्यों की रक्षा चाहते थे। समाज के भीतर सद्भाव की स्थापना, नारी-उत्कर्ष, राष्ट्रप्रेम और करुणा का संदेश अपने नाटकों के माध्यम से समाज और देश को देना प्रमुख उद्देश्य था। हरिकृष्ण प्रेमी अपने नाटक 'रक्षाबंधन' में भारत की प्रकृति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं - "कितना खुशनुमा है अपना देश महाराज! आसमान से बातें करने वाले हरे-हरे पहाड़, कलकल छल-छल करते हुए नाचते, कूदते बहने वाले झरने, समुद्र से होड़ करने वाले तालाब, बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग, घने जंगल। कुदरत ने अपनी सारी दौलत यहीं बिखेर दी है। यहाँ के सुबह जिंदगी के गीत गाते हुए आते हैं, यहाँ की शाम हमदर्दी की तान छेड़ती हुई जाती है, जहाँ की रात सेज बिछाती हुई आती हैं।"⁸

'भारत वर्ष हमारा प्यारा भारतवर्ष हमारा है,
दुनिया भर में प्रकृत देव की आँखों का यह तारा है,
इसका मुकुट किरीट हिमांचल, है यज्ञोपवीत गंगाजल।
फलकर इसमें विविध फूल फल, सुरभि सुयश विस्तारा है।"⁹

X X X X X X X

'धन्य धन्य यह भारत देश।
लेते जहाँ सदा अवतार स्वयं अखिलेश।
पहले-पहले उदय हुआ जिसमें वह ज्ञान दिनेश।
जिससे अन्धकार का जग में रहा न लेश।"¹⁰

बदरीनाथ भट्ट के अनेक नाटकों में राजनीतिक दुर्दशा तथा राजनीतिक संघर्ष दिखाई पड़ता है। 'दुर्गावती' में अकबर की कूटनीति अंग्रेजी कूटनीति की याद दिलाती है। अकबर का दरबारी पृथ्वी सिंह अपना शोक इन शब्दों में प्रकट करता है - "क्या हम सच्चे राजपूत है? हमारे राज्य में घोड़ागाड़ी पर कोई नहीं चढ़ सकता और न कोई छतरी लगा सकता है, तो क्या इतने से ही हम क्षत्रिय कहलाने के योग्य हैं।"¹¹ अपने नाटक में देशी रियासतों और जमींदारियों की बिगड़ी अवस्था का भी दिग्दर्शन कराया गया है। राष्ट्र संघातक चरित्रों की भी कमी नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' में राक्षस राजनीतिक दासता की विभीषिका से अत्यंत दुःखी दिखाई पड़ता है -

'दासता से अधमतर संसार में कुछ भी नहीं
पर देश का दासत्व भी है, स्वर्ग से बढ़कर कही।"¹²

'चुंगी की उम्मेदवारी' में राज्य-प्रदत्त उपाधियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं - "एक सेठ कहता है - जहाँ चुंगी की कुर्सी को अपने बोझ से हलाया झुलाया, अजी मतलब जे हैं कि बिसै दबाया, डिगमिगाया कै रायबहादुरी का खिताब पाया, जरा किसी ऊँचे आदमी के पैर छुए कै राजाहुए क्या मुशिलक है?"¹³

बदरीनाथ भट्ट का प्रसादयुगीन नाटकों में राष्ट्रीय चेतना को आगे बढ़ाने में प्रमुख स्थान रहा। उनके नाटकों में स्वदेश प्रेम के भाव व्यंजित हुई हैं। जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने अपने नाटक 'प्रताप प्रतिज्ञा' नामक ऐतिहासिक नाटक में मातृभूमि के प्रति उत्कृत प्रेम प्रदर्शित किया है। महाराणा प्रताप अपनी जन्मभूमि मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं। वीर चन्द्रावत कहता है - "जिस देश में हमने जन्म लिया है, वही हमारी माँ है - ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी है।"¹⁴ इन्द्रवेदालंकार 'स्वर्णदेश का उद्धार' नामक नाटक के माध्यम से मातृभूमि के प्रति कृतज्ञता, आत्मसमर्पण का भाव प्रकट करते हुए कहते हैं -

हे मातृभूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊ
मैं बलि भेंट अपनी सेवा में तेरी लाड।
माथे पै तू ही चंदन, छाती पै तू ही माला,
जिह्वा पे गीत तू ही, में तेरा नाम गाऊँ।"¹⁵

प्रेमचन्द्र के नाटक 'कर्बला' में भी भारत की वंदना की गई -

जय-भारत, जय भारत, जय मम प्राण पते।
भाल विशाल चमत्कृत सित हिम गिरि राजै,
परसत बाल प्रभावक हेम प्रभा बाजै।"¹⁶

तत्कालीन नाटककारों ने जहाँ देश के लिए मर-मिटने का संदेश दिया तो साथ में जनता के हृदय में उच्च-नैतिक गुणों का समावेश भी किया। 'प्रताप प्रतिज्ञा' के माध्यम से नाटककार कहता है - पुरोहित, सगे भाइयों - प्रताप सिंह और शक्ति सिंह ने पारस्परिक युग को रोकने का प्रयास अपने प्राण देकर करता है और मरते समय कहता है- "वत्स, मेरे लिए पश्यात न करो।

में आज संसार को दिखा देना चाहता हूँ कि भारत के विद्वान् केवल दान लेना ही नहीं जानते, समय पड़ने पर देश के लिए प्राण भी होम देते हैं।¹⁷ 'प्रताप प्रतिज्ञा' में विदेशी साम्राज्य का नग्न रूप दिखाई पड़ता है। अकबर फूट डालकर कूटनीति से साम्राज्य विस्तार करता है। प्रताप देश दशा से चिंतित दिखाई पड़ते हैं – 'माँ का स्वर्ग संसार आज श्मशान हो रहा है, हमारे चितौड़ में एक भी दीपक नहीं – उसका सम्मान आज विदेशियों के अत्याचारों की पद-रज बना हुआ है। क्या अब भी हम सुख की नींद सो सकेंगे?'¹⁸ बदरीनाथ भट्ट 'चन्द्रगुप्त' में क्रांति का उद्घोष करते हुए लिखते हैं-

मातृभूमि के शत्रु को दंड न देना पाप है,

है वही धन्य निज देश का हरता जो संताप है।¹⁹

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रसाद-युग के नाटकों की मूल भावना देशभक्ति है, और इस देशभक्ति में उत्साह और राग दोनों ही दिखाई देते हैं। उत्साह उसके राष्ट्रीय स्वरूप का आधार है और राग उसके मानवीय सांस्कृतिक रूप का। यह भावना किन-किन संदर्भों में राष्ट्रीयता और संस्कृति के घटक तत्वों का विचार किया है। वस्तुतः प्रसाद-युग के भिन्न-भिन्न नाटककारों ने इन्हीं घटक तत्वों में से किसी एक या दूसरे पर बल देते हुए अपने नाटकों में राष्ट्रीय-चेतना का स्फुरण किया है।

अस्तु, साहित्य की कोई भी विधा निरुद्देश्य नहीं होती। समस्त साहित्य लोकहित एवं राष्ट्रहित की कामना से लिखा जाता है। साहित्यकारों ने देश के *भारतेन्दु और प्रसादयुगीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के प्रति राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद* किया और अपनी-अपनी कलम द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं में राष्ट्रीय एकता के मोती पिरोये। आधुनिक काल के प्रथम चरण से ही नाट्यकारों ने अपने परम्परागत आदर्शों, विश्वासों, नैतिक मूल्यों को नहीं छोड़ा, साथ ही नवजागरण की पृष्ठभूमि में जनता का सांस्कृतिक उत्थान किया।

भारतेन्दु तथा समकालीन रचनाकारों ने राष्ट्रीय चेतना को दृढ़ बनाने वाले साहित्य की रचना की। इन्होंने अपने साहित्य लेखन में देश की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करके देशभक्ति जगाने का फल प्रयास किया। प्रसादयुगीन नाटकों के साथ-साथ अन्य विधाओं में भी राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रगौरव एवं राष्ट्र प्रेम की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई। हिन्दी नाटकों के विकास को प्रसाद युग में गति मिली। प्रसादयुगीन नाटककारों ने वर्तमान समय की आवश्यकता को समझा और महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहे स्वाधीनता आन्दोलन में नवयुवकों को प्रेरित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। यदि यह कहा जाए कि भारतेन्दु युग से शुरू हुई 'राजभक्ति' प्रसाद युग में आकर पूर्णतः 'राष्ट्रभक्ति' में बदल गई।

सन्दर्भ

- 1 राधाचरण गोस्वामी : अमर सिंह राठौर, पृष्ठ 1.
- 2 प्रेमघन : भारत सौभाग्य, पृष्ठ 7.
- 3 डॉ. गोपीनाथ तिवारी : भारतेन्दु कालीन नाटक (सम्पादन, पृष्ठ 364.
- 4 राधाकृष्ण दास : प्रताप सिंह, पृष्ठ 1.
- 5 गोपालराय गहमरी : देशदशा (समर्पण से, पृष्ठ 9.
- 6 राधाचरण गोस्वामी : अमरसिंह राठौर, अंक-1, दृश्य-1, पृष्ठ 1.
- 7 प्रेमघन : भारत सौभाग्य, अंक-4, पृष्ठ 6.
- 8 हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षाबंधन, पृष्ठ 18.
- 9 बदरीनाथ भट्ट : चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 31.
- 10 बदरीनाथ भट्ट : चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 176.
- 11 बदरीनाथ भट्ट : दुर्गावती, पृष्ठ 23.
- 12 बदरीनाथ भट्ट : चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 27.
- 13 बदरीनाथ भट्ट : चुंगी की उम्मेदवारी, पृष्ठ 28.
- 14 जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' : प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ 41.
- 15 इन्द्र वेदलंकार : स्वर्णदेश का उद्धार, पृष्ठ 13.
- 16 प्रेमचंद : कर्बला, पृष्ठ 257.
- 17 जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' : प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ 21.
- 18 जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' : प्रताप प्रतिज्ञा, पृष्ठ 22.
- 19 बदरीनाथ भट्ट : चन्द्रगुप्त, पृष्ठ 29.

कवि मुक्तिबोध की पत्रकारिता में निहित जनवादी राष्ट्रीय चेतना

सत्य प्रकाश तिवारी

शासकीय वीर गैद सिंह महाविद्यालय

पखांजूर (छ.ग.)

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा हिंदी पत्रकारिता के संबंध में यह कथन अत्यंत ही महत्वपूर्ण है- 'नवीन युगबोध से संबद्ध होने के कारण हिंदी पत्रकारिता के पास विशेष प्राचीन परंपरा न हो यह स्वाभाविक है, परंतु लक्ष्यतः वह भारतीय चेतना तथा संस्कृति की वाहिका रही है। चाहे पत्रों को अहिंदी भाषी क्षेत्र में जन्म और विकास मिला हो, चाहे हिंदी भाषी क्षेत्र में, उनका लक्ष्य राष्ट्रीय अखंडता का संरक्षण तथा प्रदेश से महादेश तक व्याप्त चेतना का जागरण रहा है।'¹

प्रगतिशील कवि मुक्तिबोध की गणना हिंदी के उन साहित्यकारों में की जाती है, जिन्होंने अपनी रचना के साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी अपने समय एवं समाज की नस को टटोला है तथा जनता के सामने उसके यथार्थ को पूरी बेबाकी से रखा है। आजादी के बाद भारत की आम जनता जिस सपने को सजाए बैठी थी, उसके टूटने पर उनमें पैदा होने वाले मोहभंग की ही अभिव्यक्ति उस दौर के साहित्य से लेकर पत्र-पत्रिकाओं के भी केन्द्र में दिखाई देता है। बुद्धिजीवी मध्यम वर्ग इस मोहभंग की स्थिति से सर्वाधिक प्रभावित था और इसी वर्ग से मुक्तिबोध का भी संबंध था। मुक्तिबोध आजीवन रोजगार हेतु संघर्षरत रहे, अतः बेरोजगार युवा मन की टीस उनकी अपनी स्वानुभूति के रूप में साकार होकर, उनकी रचनाओं के साथ-साथ पत्रकारिता में भी दिखाई देती है।

मुक्तिबोध ने अपने जीवन में लगभग आधा दर्जन से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में संपादक तथा परामर्शदाता के रूप में कार्य किया, परन्तु अधिक समय तक कहीं टिक कर नहीं रह सके। इसका एक कारण यह भी रहा कि पत्रकारिता मुक्तिबोध की प्राथमिक रुचि न होकर, बेरोजगारी से बचने का एक मार्ग था किन्तु फिर भी पत्रों में व्यक्त उनका निर्भीक जनवादी दृष्टिकोण और विभिन्न विषयों पर गहन-सूक्ष्म ज्ञान किसी भी प्रकार से अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में यह कथन अवलोकनीय है- 'पत्रकारिता मुक्तिबोध की असली दुनिया नहीं थी, हर लिहाज से यह उनकी मजबूरी थी कि वे अपनी सामयिक प्रतिक्रियाओं को प्रकट करने के लिए कोई न कोई पत्र ढूंढ ही लेते थे। पत्रकारिता की दुनिया में वे 'हंस' से लेकर 'सबेरा संकेत' (राजनांदगांव) के अनुभवों तक पहुँचते हैं। बीच में उन्होंने 'जय हिंद' (जबलपुर) में कुछ दिन काम किया, 'समता' (जबलपुर) के संपादन में प्रमुख योग दिया और 'नया खून' (नागपुर) के स्वामी कृष्णानंद सोखता ने तो अपना पत्र पूर्णतः उन्हीं को सौंप दिया था। 'सारथी' (नागपुर) में भी वे साहित्यिक गैर-साहित्यिक लेख बराबर लिखते रहे थे। 'नयी दिशा', 'संस्कार', 'वसुधा' आदि पत्रिकाओं को मुक्तिबोध ने अपने सुझाव और सहयोग मुफ्त में प्रदान किये थे।'²

पत्र-पत्रिकाएँ ही वह माध्यम हैं, जिनके सहारे समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के साथ-साथ आम जनमानस तक अपने विचारों को सीधा पहुँचाया जा सकता है। मुक्तिबोध ने भी इसी माध्यम का चुनाव किया और अपने सजग सामाजिक, साहित्यिक, राजनीति, आर्थिक दृष्टिकोण से जन सामान्य में चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। आजादी के बाद सरकार का प्रमुख लक्ष्य था युवाओं को रोजगार प्रदान करना, जिसमें वह पूरी तरह विफल रही। युवाओं की मानसिक यंत्रणा और सरकार की नाकामी को उजागर करते हुए मुक्तिबोध 'नौजवन का रास्ता' शीर्षक लम्बा संपादकीय लेख 1952 के 'नया खून' में लिखते हैं- 'नौजवान के दिलों दिमाग की ताकत को बिजली में रूपान्तरित करते हुए, देश-निर्माण और मानव-निर्माण में लगने के लिए, जिस बिजलीघर की जरूरत होती है, वह हिन्दुस्तान में नदारद है। अब देश की उन्नति हो तो कहाँ से हो और कैसे हो? जिस देश के नौजवान मारे-मारे फिरते हैं, बेकार रहते हैं, भूखों मरते हैं, तो उस देश के नौजवान अगर अपनी खाली जेब और भूख की यंत्रणाओं को, अपने दुर्भाग्यों को चव्वनी-छाप एक्स्ट्रेमों की सूरत देखकर दो मिनट के लिए भुलाना चाहता हो, तो उस नौजवान की तृषित आँखों को लोग भले गलत समझें, हम उनके बारे में किसी गलतफहमी में नहीं हैं क्योंकि हमारा नौजवान बेहद सच्चा है और बेहद अच्छा है।'³

मुक्तिबोध देश और समाज के विकास में युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका मानते थे इसीलिए उन्होंने एक ओर युवाओं के भविष्य से खिलवाड़ करने वाले अवसरवादी राजनीतियों को आड़े हाथों लिया, तो दूसरी तरफ ऐसे युवाओं पर भी कटाक्ष किया जो भाग्यवादी, निठल्ले बनकर किसी चमत्कार के इंतजार में पड़े हैं। उन्होंने सदैव कठिन परिस्थितियों के बीच से भी अपने परिश्रम और आत्मविश्वास से सफलता प्राप्त करने के लिए, युवाओं को प्रेरित किया है। 'दीपमालिका' शीर्षक से 'नया खून'

के 1957 के एक अंक में मुक्तिबोध लिखते हैं- 'हमारे हिन्दुस्तान की जनता भी इसी प्रकार आज स्वर्गलोक के सपने देखती है किन्तु फिलहाल वह केवल अपने दुःख-दर्द की कराह के अलावा निर्णायक रूप में वह कुछ कर नहीं पा रही है निश्चय ही, यदि उसे भारत को स्वाभाविक मानव-जीवन का स्वर्गलोक बनाना है, तो शोषण और अत्याचारों के पहाड़ों को चीरकर, नीचे की रेगिस्तानों में अपार श्रम से नयी प्राण धारा बहानी होगी। तभी हमारे जीवन में मानवोचित स्वाभाविकता और समृद्धि आ सकती है।'⁴

मुक्तिबोध जितनी गहरी समझ साहित्य और राजनीति की रखते थे, उतनी ही भारतीय अर्थव्यवस्था की भी। उन्होंने अपनी गहरी और दूरदर्शी सूझ से सरकार की गलत आर्थिक नीति को परखा और कर्ज के बोझ से देश को पंगु बनाने वाली इस नीति की कटु आलोचना करते हुए, 'सारथी' के 3 अक्टूबर 1954 के अंक में 'अंग्रेज गये, परन्तु इतनी अंग्रेजी पूँजी क्यों?' शीर्षक अपने लेख में लिखते हैं- 'किसी भी देश का औद्योगिकरण मशीनों को बनाने वाली मशीनों की स्थापना से ही शुरू होता है किन्तु इस ओर न भारतीय सरकार ही काम कर रही है न कोई प्रभावशाली राजनैतिक पार्टी ही आवाज लगा रही है। जिस साम्राज्यवादी पूँजी से हमारे उद्योगपति संबद्ध हैं, वे साम्राज्यवादी देश हमें बुनियादी कारखाने खोलने नहीं देते। इस प्रकार भारत की औपनिवेशिक स्थिति को बनाए रखते हैं। जब तक हमारे यहाँ विदेशी पूँजी का राष्ट्रीयकरण नहीं होता, बुनियादी कारखाने नहीं खुलते, तब तक यह कहना कि हम देश की पुनर्रचना कर रहे हैं बिल्कुल असंगत है। कहना न होगा कि भारतीय आर्थिक स्थिति सच्ची आर्थिक स्वतंत्रता और साम्राज्यवाद से मुक्ति हमें तभी प्राप्त हो सकती है जब हम भारतीय बाजार का विदेशी शोषण बंद करेंगे।'⁵

मुक्तिबोध ने अपने प्रखर राजनीतिक चेतना के बल पर भारतीय राजनीति तथा तत्कालीन सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी की कमजोरियों, राजनीतिक षडयंत्रों तथा पूँजीपतियों से सॉठ-गॉठ के विरुद्ध निर्भीकता से लिखा। राजनीति में फैले भ्रष्टाचार को उजागर करने के पीछे मुक्तिबोध का एकमात्र उद्देश्य जनता को जागरूक करना था, ताकि वह अपने द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों से ही ठगे न जाएँ। कांग्रेस सरकार में पूँजीपतियों के अधिक हस्तक्षेप तथा प्रभुत्व जमाने की ओर सभी का ध्यान आकर्षित करते हुए, मुक्तिबोध 'नया खून' के संपादकीय में 'अनुशासन का भोंधरा परशु' नाम से लिखते हैं- 'ध्यान रहे कि समाज में बहुतेरे दबाव-गुट पैदा हो गए हैं। मंत्रिमंडल इन दबाव-गुटों को संतुष्ट करने की नीति अपनाता है। ये ही दबाव-गुट कांग्रेस संगठन पर भी अधिकार करने जा रहे हैं, काफी हद तक कर चुके हैं। कांग्रेस की प्रतिष्ठा की हानि की जो घटनाएँ होती जा रहीं हैं वे तब तक नहीं रुक सकती, जब तक कांग्रेस नैतिक रूप से शुद्ध नहीं होती और जनता की भावनाओं का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती।'⁶

'सबेरा-संकेत' में सन् 1958 से लेकर 1961 तक मुक्तिबोध के विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक लेख प्रकाशित हुए, जो उनकी गहन वैचारिकता को स्पष्ट करता है। इन लेखों में मुक्तिबोध साहित्यकार कम, सजग पत्रकार की भूमिका में अधिक दिखाई देते हैं, जिसका लक्ष्य जनता को समाज में घटित होने वाले प्रत्येक यथार्थ से रूबरू कराना है और उनमें जागरूकता पैदा करना है। 'यही कारण है कि सामान्य समाचार-पत्रिय तथ्यों को लेकर उनकी प्रतिक्रियाएँ प्रतिक्रियावादी तत्वों का सीधे शब्दों में विरोध करती हैं। केरल में केन्द्रिय हस्तक्षेप भारत में नयी परिस्थिति पैदा करेगा (सबेरा संकेत), पं. नेहरु के समर्थकों और विरोधियों की मोर्चेबंदी (सबेरा संकेत), कांग्रेस द्वारा देश के जनतंत्र के खात्मे की तैयारी (सबेरा संकेत), कलेक्टर मिश्रा जी के द्वारा दस-सूत्री कच्चा चिट्ठा (सबेरा संकेत), देश का तेजी से औद्योगिकरण हो (सबेरा संकेत), आम चुनाव के पहले साम्प्रदायिकता का प्रश्न हल हो (सबेरा संकेत), आदि अनेकानेक टिप्पणियों के अंतर्गत किया गया विश्लेषण मुक्तिबोध की सूक्ष्म दृष्टि के साथ-साथ उनके जनोन्मुख हित चिंतन का भी परिचायक है। इन सामयिक संदर्भों में वे एक साहित्यिक की जगह विशुद्ध पत्रकार लगने लगते हैं, जो लोकमंगल की भावना से परिचालित होकर जनता की आवाज को बुलंद करता है।'⁷

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन कर्म और विभिन्न विषयों पर लिखे मुक्तिबोध के लेख, उन्हें साहित्यकार के समकक्ष पत्रकार रूप में भी प्रतिष्ठित करता है। एक पत्रकार के रूप में मुक्तिबोध का प्रखर लेखन निर्बाध रूप से उनकी स्वतंत्र वैचारिक चिंतन को अभिव्यक्त करता, जनवादी राष्ट्रीय चेतना की हुंकार भरता है। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पटल की घटनाओं को पूरी ईमानदारी से, सूक्ष्म विश्लेषण के साथ जन सामान्य से साक्षात्कार कराके, अपने पत्रकार के कर्तव्य का निर्वहन किया। विभिन्न पत्रों में प्रकाशित मुक्तिबोध के लेखों के संबंध में श्री नेमिचंद्र जैन का यह विचार उल्लेखनीय है- 'ये लेख मुक्तिबोध के पत्रकार रूप को सामने लाते हैं और आज इन्हें पढ़कर बड़ा सुखद आश्चर्य होता है कि इनमें भी उन्होंने वैसी ही अंतर्दृष्टि और मौलिकता का परिचय दिया, जैसे कि उनके साहित्यिक लेखन में मिलता है।... ये निबंध न सिर्फ मुक्तिबोध के लेखक-व्यक्तित्व का एक सर्वथा नया रूप उजागर करते हैं बल्कि हिंदी पत्रकारिता की भाषा को भी एक नया आयाम देते हैं।'⁸

संदर्भ

1. जैन, निर्मला. संपा. महादेवी समग्र. खण्ड-3. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, सं.-2000. पृष्ठ-563.

2. वर्मा, मोतीराम. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य. दिल्ली: विद्यार्थी प्रकाशन, सं.-1973. पृष्ठ-40.
3. जैन, नेमिचंद्र. संपा. मुक्तिबोध रचनावली. खण्ड-6. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, सं.-1980. पृष्ठ-23.
4. वही, पृष्ठ- 191
5. वही, पृष्ठ- 63
6. वही, पृष्ठ- 189-190
7. वर्मा, मोतीराम. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य. दिल्ली: विद्यार्थी प्रकाशन, सं.-1973. पृष्ठ-39-40
8. मुक्तिबोध रचनावली. खण्ड-6. भूमिका

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तक



भारतीय जीवन मूल्य और पं. दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता

विशाल कुमार यादव

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय, गुरुग्राम (हरियाणा)

भारत विश्व की पुरातन संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति और उनमें व्याप्त जीवन मूल्य सम्पूर्ण भारतीयता की पोशक है। भारतीय जीवन मूल्य और उनमें निहित विचार 'वसुधैव कौटुम्बकम्' की अवधारणा को जीवन्त बनाए रखने की प्रतिबद्धता के साथ निहित है। मानव जीवन अमूल्य है और जीवन एवं मरण के मध्य संघर्षरत् व्यक्ति की यात्रा जिन विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरती है, उन्हें उपयुक्त और निर्दिष्ट दिशा प्रदान करने में मानवीय जीवन मूल्य की भूमिका अग्रणी है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बहु-विस्तृत विधान को समझना, परखना और उसका अवलोकन करना आसान कार्य नहीं है। प्रकृति का कण-कण, पेड़-पौधे शिलाखण्ड, धूल-मिट्टी, जल-थल सभी अपने प्रत्येक अणु में भारत की वैभवपूर्ण संस्कृति और मूल्यों को सहेजे समेटे हैं। वेद, पुराण, ब्राह्मण, उपनिषद्, स्मृति, भाष्य, रामायण, महाभारत, गीता एवं अन्य साहित्यिक सांख्यिकाएँ मानवीय जीवन मूल्यों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व में भारत वर्ष जीवन एवं मानवीय मूल्यों की जिस रूप में व्याख्या करता है, वह अन्यत्र किसी अन्य रूप में विश्व की विभिन्न और बहुआयामी संस्कृतियों के द्वारा एक आदर्श रूप में ग्रहण की जाती है। इसी आदर्श संस्कृति, इतिहास, मानवता और मानवीय मूल्यों के पोषक और 'एकात्म दर्शन' के प्रणेता है... युग पुरुष दीनदयाल उपाध्याय। आदरणीय दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति और उनमें व्याप्त मूल्यों को न केवल अपने जीवन में ग्रहण किया, अपितु उनकी नवीन व्याख्या भी प्रस्तुत की है। निश्चित रूप से यह एक चेतना सम्पन्न व्यक्ति की निष्ठा, दूरदर्शिता, मौलिक चिन्तन और समाज एवं देश के प्रति एक निष्ठा का ही परिणाम था। दीनदयाल जी का हिन्दी पत्रकारिता में प्रवेश निश्चित रूप से हिन्दी पत्रकारिता के लिए एक नए युग की शुरुआत थी।

भारत में पत्रकारिता और राष्ट्रवाद दोनों एक ही धारा में प्रवाहित होने वाले जल के समन हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय पत्रकारिता की दशा और दिशा निश्चित रूप से तत्कालीन समय से भिन्न थी। भूमण्डलीकरण के दबाव से मुक्त पत्रकारिता राष्ट्रवादी प्रवाह को गति प्रदान करने में सहायक थी। यही कारण है पं. दीनदयाल उपाध्याय पत्रकारों के प्रति होने वाले अन्याय के प्रति सजग थे। वे कहते हैं, 'उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके सात सदस्यों की एक आधिकारिक कमेटी का गठन किया है, जो श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन का निर्धारण करेगी। हमारी समझ में यह नहीं आता कि जब हम श्रमजीवी पत्रकारों की आवश्यकता को मानते हैं, तब इस मामले में समाधान के लिए अध्यादेश लाने में इतनी देरी क्यों की गई? उच्चतम न्यायालय ने तो महीनों पहले इसका निर्णय कर दिया था।'

पं. दीनदयाल उपाध्याय की विचारधारा में प्राचीन और नूतन का विशिष्ट समावेश है। एक तरफ पत्रकारों के साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध जहां उनकी वाणी प्रखर हो उठती है, वहीं दूसरी तरफ समाज और राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता को व्यक्त वह स्वयं के लिए 'संन्यास' की माँग करते हैं। आधुनिक युग का यह युगपुरुष राष्ट्र की वेदी पर स्वयं को समर्पित कर राष्ट्र एवं भारतीय जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार 'जगद्गुरु शंकराचार्य' पुस्तक में व्यक्त किए हैं- 'हे माँ पितृऋण है, और उसी को चुकाने के लिए मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। पिताजी ने जिस धर्म को जीवन भर निभाया यदि वह धर्म नष्ट हो गया तो बताओ माँ! क्या उन्हें दुःख नहीं होगा? उस धर्म की रक्षा से ही उन्हें शान्ति मिल सकती है और फिर अपने बाबा उनके बाबा और उनके भी बाबा की ओर देखो। हजारों वर्षों का चित्र आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने धर्म की रक्षा के लिए स्वयं के जीवन को दांव पर लगा दिया, कौरवों पाण्डवों में युद्ध कराया। अपने जीवन में वे धर्म की स्थापना कर गए, पर लोग धीरे-धीरे भूलने लगे। शाक्यमुनि के काल तक फिर धर्म में बुराईयाँ आ गई। उन्होंने भी बुराईयों को दूर करने का प्रयत्न किया, पर अब आज उनके सच्चे अभिप्राय को लोग भूल गए हैं। माँ! इन सब पूर्वजों का हम सब पर ऋण है अथवा नहीं?'

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राह दिखाने का कार्य किया था। वह पत्रकारिता जो स्वतन्त्रता के उपरान्त अपने लिए किसी लक्ष्य अथवा निश्चित दिशा की तलाश में थी उसे राष्ट्रोन्मुख एवं सत्यता की कसौटी पर खरा उतारने के लिए पण्डित जी प्रयत्नशील थे। दीनदयाल उपाध्याय जी का स्पष्ट मत था कि राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मकता भी आवश्यक है। इन विचारों को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'भारत में एक

ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृति का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लीग का द्वि-संस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्वि-संस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक संस्कृतिवाद को सम्प्रदायवाद कहकर ठुकराया गया किन्तु अब कांग्रेस के विद्वान अपनी गलती समझकर इस एक संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता और अखण्डता बनी रह सकती है तथा तभी हम सम्पूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं।'

भारतीय जीवन मूल्य और उनमें निहित प्राण कर्म, कर्तव्य, पुरुषार्थ और उनमें उपस्थित त्याग की भावना को दर्शाते हैं। इन जीवन मूल्यों की सापेक्षिक गति भारतीय ग्रामीण जीवन में परम्परा और प्रकृति के रूप में पोषित होती है। यही कारण है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण जीवन के साथ जुड़कर राष्ट्र को मजबूत और गौरवशाली बनाने की बात कहते हैं, पं. दीनदयाल के शब्दों में, 'हमें यह भी ज्ञात है कि भारत गाँवों का देश है। गाँवों में अभी हमें बहुत काम करना है। अतः आवश्यकता है कि हमारी दृष्टि 'गाँवोन्मुखी' हो। किन्तु एक बात का हम ध्यान रखें। गाँवों में जाकर उपदेश देने वालों की हमारे देश में कमी नहीं है। यदि कमी है तो ग्रामवासियों के साथ एकरस होकर ठोस काम करने वाले कर्मठ कार्यकर्ताओं की। इस कमी को हमें पूरा करना है। साथ ही हमें गाँवों में उत्पन्न हो रही नई चेतना का स्वागत करना है और उसे ठीक दिशा देना है। अतः हम 'गाँव की ओर चले' का घोषवाक्य लेकर आगे बढ़ें। समय हमारे साथ है।'

भारतीय संस्कृति और उनमें निहित जीवन मूल्यों के अन्तर्गत व्यक्ति स्वतन्त्रता, स्वायत्ता, चेतना और पराधीनता (आन्तरिक या बाह्य) से मुक्ति की बात उठाई गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु व्यक्ति का किसी भी प्रकार के बंधन से मुक्त हो जाना आवश्यक है। विदेशी उपनिवेशवाद से मुक्ति और स्वतन्त्र राष्ट्र की कल्पना के उद्घोष से प्रेरित दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा छिंदवाड़ा में मध्य प्रदेश जनसंघ के अधिवेशन का उद्घाटन भाषण इस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, 'भारत की विदेशी बस्तियों में जो मध्ययुगीन साम्राज्यवाद और शोषण अभी तक बना हुआ है, उसका हमें न केवल एशियावासी के नाते बल्कि भारतीय के नाते भी अंत करना ही चाहिए, क्योंकि पांडिचेरी, माहे, करैकल तथा यनम में हमारे बन्धु अपने आपको विदेशी बंधन से मुक्त करने के लिए बड़ा संघर्ष कर रहे हैं।'

एक अन्य वक्तव्य में भारत की राष्ट्रीय स्थिति के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए पं. दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं, 'भारत का राजनीतिक माहौल अन्तर्राष्ट्रीयता से इतना आवेशित है कि इसके सम्मोहक प्रभाव के तहत हम अपने देश की अहम समस्याओं को नजरअंदाज करने लगते हैं और भूल जाते हैं। यहाँ तक कि जब हम उन पर डालते हैं, तो हम ऐसा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से कम और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अधिक करते हैं।'

पं. दीनदयाल उपाध्याय अन्वेषी दृष्टिकोण के धनी थे। भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्य, एतिहासिकता और समस्त भारतीयता को हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से मंच प्रदान कर उनकी नवीन व्याख्या करने में दीनदयाल जी सिद्धस्त थे। सन् 1947 में दीनदयाल ने राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी। जिसके अन्तर्गत स्वदेश, राष्ट्रधर्म एवं पाँचजन्य नामक पत्र प्रकाशित होते थे। आगे चलकर राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड ने वचनेश त्रिपाठी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, गिरिश चन्द्र मिश्र, अटल बिहारी वाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री जैसे श्रेष्ठ पत्रकारों को तैयार किया जिन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को नए आयाम प्रदान किए। हिन्दी पत्रकारिता को दिए इन अमूल्य धरोहरों के लिए सम्पूर्ण भारतीय पत्रकारिता दीनदयाल उपाध्याय जी की सदैव ऋणी रहेगी।

सन्दर्भ सूची

1. पुस्तक-जगद्गुरु शंकराचार्य
2. पाँचजन्य भाद्रपद, कश्शण 9ए वि.सं.-2006
3. पाँचजन्य, 8 नवरी 1954 का अंक
4. दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा छिंदवाड़ा में, मध्यप्रदेश जनसंघ अधिवेशन का उद्घाटन भाषण
5. राष्ट्रधर्म, शरद पूर्णिमा, वि.सं-2006

भारतेन्दु की पत्रकारिता में राष्ट्रवादी चिन्तन

डॉ. नीलम सिंह

शि.इ.कॉलेज. साहसों, इलाहाबाद

कोई भी राष्ट्र तभी जीवित रहकर प्रगति कर सकता है जब वहाँ के नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति समुन्नत हो। उस राष्ट्र में स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व और न्याय की सभी को अनुभूति हो इसके लिए महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षा निभा सकती है। भारतेन्दु ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से शिक्षा और आर्थिक स्वाधीनता पर बहुत जोर दिया क्योंकि प्रशिक्षित और आर्थिक रूप से स्वाधीन व्यक्ति राष्ट्र में व्याप्त सभी बुराइयों का मुकाबला कर सकता है, चूँकि भारतेन्दु के समय ब्रिटिश हुकूमत थी और जनता अशक्त थी इसलिए वे ब्रिटिश के अधीन रहकर अपने राष्ट्र के लोगों को जागरूक और सम्पन्न करना चाहते थे। उन्होंने 'कविवचन सुधा' में अंग्रेजों द्वारा दुष्प्रचारित औद्योगिक उन्नति का बड़ी चतुरायी से नोटिस लिया।¹

सन् 1868 ई0 में भारतेन्दु ने 'कविवचन-सुधा' का प्रकाशन आरम्भ किया। अल्प आयु के हरिश्चन्द्र ने इस पत्रिका के द्वारा हिन्दी पत्रकार कला में ही नहीं हिन्दी गद्य और हिन्दी जनता के सांस्कृतिक जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया। इसी पत्रिका में भारतेन्दु ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार के लिए अपना प्रतिज्ञापत्र छपा था, इसी में उन्होंने खानदेश के बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए अपील छपी थी। इसी पत्रिका में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा, अंग्रेजी-नीति का भंडोड़ किया था, इसी में उन्होंने हिन्दी के प्रचार और विकास के लिए आन्दोलन किया था। भारतेन्दु ने सत्य के लिए हजारों रुपए की सरकारी सहायता टुकरा दी। अपने ग्राहकों से सत्य कहने वाले पत्र की सहायता करने की अपील करते हुए उन्होंने लिखा- "अब तुम ही लोगों का भरोसा है सो तुम लोग भी मत रुष्ट हो क्योंकि 'हरौ रुष्टे गुरुस्त्रता गुरौ रुष्टे न कश्चना।"² 31 अगस्त 1874 की 'कविवचन-सुधा' में 'सच मत बोलो' नाम का एक व्यंग्य लेख छपा है। इससे सत्य के लिए लड़ने वाले पत्रकारों की दशा पर प्रकाश पड़ता है। भारतेन्दु जी कहते हैं- "देखो सच बोलने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी इससे सच मत बोलो एक माँ बेटे से सदा सच बोलने को कहै तब एक दिन बेटे ने कहा कि माँ तुम तो राँड हो सिंगार किसके वास्ते करती हो इस पर उसकी माँ ने लड़के को घर से निकाल दिया।"³ अंग्रेजी राज्य का सत्य प्रेम राँड के सिंगार जैसा ही था। खरी कहने वाले पत्रकार जैसे ही कष्ट पाते थे, जैसे घर से निकाला हुआ लड़का। भारतेन्दु आगे कहते हैं, "अखबार वाले इतना भूँकते हैं कोई नहीं सुनता अंधेर नगरी है व्यर्थ न्याय और आजादी देने का दावा है सब स्वार्थ साधते हैं। कहोगे गवर्मेन्ट के लोग तुमसे भला न मानेंगे सारांश यह कि सच्ची बात जिनसे कहोंगे वे तुम्हें शत्रु जानेंगे।"⁴

1 सितम्बर 1873 से 'कविवचन-सुधा' साप्ताहिक हो गया था। 3 नवम्बर 1873 ई0 के अंक में 'स्त्री-शिक्षा' नाम के लेख में कहा गया है, "यह बात तो सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी जब तक कि यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी, क्योंकि यदि पुरुष विद्वान और पंडित होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्खा होंगी तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह ही होगा।"⁵ 16 फरवरी 1873 के अंक में उद्योग-धन्धों का महत्व बतलाते हुए भारतेन्दु ने लिखा था, "जाने को तो यहाँ से तत्व खिंचकर जाता है और आने के समय शीशा खिलौना और कलम पेंसिल आती है बड़े-बड़े एम0ए0 और बी0ए0 अब इस दुर्भिक्ष में किस काम आवेंगे, एक राजा अच्छा पढ़ा लिखा और एक बसफोड़ कभी दोनों एक जंगली टापू में छोड़ दिए गए थे, वहाँ के लोग उनकी बोली नहीं समझते थे और क्रूर थे राजा का सौन्दर्य बुद्धि विद्या वहाँ कुछ काम न आई, उस बसफोड़ ने बाँस और लकड़ी लेकर माला बनाई उसे देखकर जंगली लोग बड़े प्रसन्न हुए और उसी लकड़ी के माला की कृपा से उन दोनों को भोजन मिला तो, हे देशवासियों तुम भी इस निद्रा से चौंको इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो ये विद्या कुछ काम न आवैगी यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा नहीं तो अन्त में यहाँ का धन विलायत चला जाएगा तुम मुँह बाये रह जाओगे।"⁶

9 अप्रैल 1874 के अंक में चित्रकूट के एक महन्त की खबर ली गई है। इस महन्त ने अपने जजमान के आटे में अनुष्ठान के बहाने जहर मिला दिया था और उसकी स्त्री का सतीत्व नष्ट किया था। इस समाचार के सिलसिले में महन्तों पर यह टिप्पणी की गई है, "इन लोगों का यही काम है कि भगवान का नाम आगे करके पीछे एक धोके की टट्टी बनाते हैं कि जिसके भीतर बड़े-बड़े बुद्धिमान राजा और प्रजाओं को फँसा लेते हैं और उन्हें अच्छी तरह लूट लेते हैं। बहुधा देखा गया है कि इन गुरुओं और महन्तों ने कितनों का अन्त कर डाला और पता उसका किसी को कभी न लगा।"⁷

13 जुलाई 1874 के अंक में यह सवाल किया गया कि “श्रीमती को भारतवर्षीय प्रजा राज्य-प्रबन्ध में उच्चपदाधिकारी क्यों नहीं होती।”⁸ भारतेन्दु के समय में भी बाजे-गाजे को लेकर हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े होने लगे थे। 15 जून 1874 के अंक में यह समाचार छपा है कि लखनऊ में शंख बजने से हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हुआ और मजिस्ट्रेट ने फैसला दिया कि शाम को सात-आठ बजे के बीच सिर्फ सात मिनट को शंख बजेंगे। इस तरह के समाचारों को पढ़कर यह पता चल जाता है कि एक तरफ अगर देश प्रेमी ताकतें एक जुट हो रही थीं, तो दूसरी तरफ हुकूमत भी लोगों में फूट डालकर अपनी रक्षा करने में सतर्क थी। 19 जनवरी 1874 के अंक में एक विज्ञापन छपा है जो भारतेन्दु की धार्मिक सहिष्णुता का उज्ज्वल प्रमाण है विज्ञापन है- “कुराने शरीफ अर्थात् मुसलमानों के मन की पवित्र धर्म पुस्तक हिन्दी भाषा में। इस बड़े ग्रंथ को मैंने बड़े परिश्रम से हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है और अब इसको छापने का भी विचार है परन्तु बड़ा ग्रंथ है और व्यय विशेष है इससे यह इच्छा की है कि पहिले 100 ग्राहक ठहराकर तब छापना आरम्भ करूँ इससे विद्यानुरागी और मतों के जानकारों से निवेदन है कि वे लोग इसके छापने का उत्साह अपने आज्ञापत्र से शीघ्र बढ़ावै और मूल्य इसका छपने के पीछे व्यय के अनुसार रक्खा जाएगा परन्तु किसी दशा में 101 रु० से वह विशेष न होगा। 12 जनवरी हरिश्चन्द्र।”⁹ इस प्रकार जहाँ विदेशी हुकूमत और उसके सहायक देश में साम्प्रदायिकता फैलाकर जनता की गुलामी के बन्धन और मजबूत कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास करने वाले और उसी के अनुसार आचरण करने वाले साहित्यकार हिन्दुओं-मुसलमानों को नजदीक लाने के लिए मुस्लिम धर्म ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद छापने की तैयारी कर रहे थे।

‘कविवचन-सुधा’ जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भय सैनिक की तरह थी। उसने अंग्रेजी राज्य में जनता के शोषण की सच्ची तस्वीर खींची। उसने अंग्रेजों के न्याय, जनतन्त्र और उसकी सभ्यता का पर्दाफाश किया। उसने देश के औद्योगिकरण और शिल्प की शिक्षा के लिए संघर्ष किया। अपने प्रान्त में हिन्दी के चलन के लिए और राज-काज में उसके व्यवहार के लिए उसने शक्तिशाली आन्दोलन किया। देश-विदेश के जीवन से उसने हिन्दी भाषियों को परिचित कराया। देश के रूढ़िवाद का खंडन करना और महंतों, पंडे-पुरोहितों की लीला प्रकट करना निर्भीक पत्रकार हरिश्चन्द्र का ही काम था। कविवचन सुधा में साहित्यिक, ऐतिहासिक, भाषा-सम्बन्धी, यात्रा-सम्बन्धी, हास्य और व्यंग्य से सरस सभी तरह के लेख छपे। कविवचन सुधा को भारतेन्दु युग का दर्पण कह सकते हैं जो एक युग का सजीव इतिहास है।

1872 ई० में ‘हरिश्चन्द्र मैगजीन’ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह पत्रिका नये लेखकों के संगठन का आधार बन गई, उसे भारतेन्दु युग का साहित्यिक मुख पत्र कहना अत्युक्ति न होगा। तोताराम, काशीनाथ, ज्वालाप्रसाद, श्रीनिवासदास, बिहारी चौबे आदि लेखक इसमें लिखा करते थे। इसमें ब्रजभाषा की कविताओं के साथ कभी संस्कृत में भी रचनाएं छपती थी। विज्ञान और इतिहास पर के सब निबन्ध और नाटक खासतौर से प्रकाशित होते थे।

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के एक अंक में एक लेख का शीर्षक है- “अंग्रेजों से हिन्दुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता।”¹⁰ इसमें शासक और शासित का सम्बन्ध भक्ष्य और भक्षक का बतलाया गया है। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका ने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय सम्मान की भावना जगाने, साहित्यिक रुचि फैलाने, हिन्दी साहित्य में विभिन्न अंगों को समृद्ध करने और हिन्दी भाषा को देश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उचित स्थान दिलाने के प्रशंसनीय काम किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की निबन्ध कला का जन्म और विकास उनकी पत्रकारिता से ही हुआ। भारतेन्दु और उनके युग की निबन्ध कला हिन्दी की एक मौलिक सम्पत्ति है जो निबन्ध लैंब, हैंडलिट आदि जैसे रोमांटिक निबन्धों की भाँति नहीं है, इसका कारण लेखक के व्यक्तित्व या दुनिया की तरह उनके दृष्टिकोण की विचित्रता नहीं है। ये निबन्ध किसी सामाजिक संघर्ष से बचकर काल्पनिक समाधान ढूँढ़ने के लिए नहीं लिखे गये बल्कि देश की उन्नति के उद्देश्य से लिखे हैं जिनका प्राण हास्य व्यंग्य है। लेखक के व्यक्तित्व की छाप जैसे उनकी जिन्दादिली भविष्य में अटूट विश्वास और देश के प्रति प्रेम आदि। 27 अप्रैल 1874 में कविवचन सुधा में एक हास्यपूर्ण निबन्ध छपा था- जिसका शत्रु कौन है ? इसका उल्लेख प्र० रामविलास शर्मा जी ने इस प्रकार किया है कि- “भारतेन्दु ईश्वर से लेकर हाकिमों तक के शत्रु खोजते हुए समाज के विभिन्न वर्गों और उनकी रुचि पर इस तरह प्रकाश डालते हैं- “ईश्वर की शक्ति उनकी इच्छा है जिसके वश में होकर उसने यह सब संसार का बखेड़ा किया, आत्मा का शत्रु इच्छा है। अमीरों के शत्रु सिफारिशी है, हाकिमों के शत्रु दरबारी है, कारगुजारी के शत्रु अखबार वाले हे, पंडितों की शत्रु दक्षिणा है जिसके पीछे वे ईमान खो देते हैं।”¹¹ 8 जून 1874 की कविवचन सुधा में ‘ग्रीष्मवर्णन’ नाम का निबन्ध छपा है। वर्णन में उपन्यास की सी रोचकता है। “लोग बाँधे जनरु कमर में खोंसे बनारसी पंखी लिए एक पंडित जी आते है। अहह क्या फरमाइशी गरमी है मन में आता है कि थोड़ी सी मोल ले लें सन्दूक में तालों से खूब जकड़ इसे बन्द कर रखें और उसे माघ पूस के किल्ले ठिठुरते जाड़े में खोलें।”¹² इसके बाद भारतेन्दु गर्मी के प्रताप का वर्णन करते हैं कि सूर्य की किरणों से उसका जन्म है, मच्छर और कुटकी उसके गण है, वायु उसके सामने कुछ नहीं है, जल डरकर छिप जाता है। आगे गर्मी की क्रूरता का उल्लेख करते हुए कहते हैं- “चुंगी और टैक्स की निष्ठुरता को भी आपकी क्रूरता माता करती है। हम ऐसे कंगालों पर तो तुम इतना जोर जुलुम प्रकट करती हो पर अमीरों और साहेब लोगों के धरम्यन्टीडोट और खस की टट्टियों से तुम्हारा कुछ वश नहीं चलता।”¹³

इस प्रकार भारतेन्दु जी के यथार्थवादी निबन्धों में अमीरी-गरीबी का भेद दिखायी देता है। वे संसार को अमीरों की निगाह से नहीं बल्कि साधारण जनता की नजर से देखते हैं।

भारतेन्दु जी के लिए कहा जाता है कि वे शहरी व्यक्ति थे प्रकृति प्रेमी नहीं। किन्तु उनका प्रकृति प्रेम उनके द्वारा लिखी गए यात्रा-सम्बन्धी निबन्धों में देखा जा सकता है। उनकी 'वैद्यनाथ की यात्रा' नामक निबन्ध में सुबह के वक्त पहाड़ी दृश्य का सुन्दर वर्णन इस प्रकार मिलता है- "खैर इसी सात पाँच में रात कट गई। बादल के परदों को फाड़कर उषा देवी ने ताकड़ाँक आरम्भ कर दी, परलोकगत सज्जनों की कीर्ति की भाँति सूर्यनारायण का प्रकाश पिशुन मेघों के वागाडम्बर से घिरा हुआ दिखलाई पड़े लगा प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ ठंडी-ठंडी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी दूर से धानी और काही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला, कही आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए कहीं एक साथ बाध्य निकलने से उनकी चोटियाँ छिपी हुई और कहीं चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुल्के की होली खेलते हुए बड़े ही सुहावने मालूम पड़ते थे। पास से देखने से भी पहाड़ बहुत ही भले दिखलाई पड़ते थे। काले पत्थरों पर हरी-हरी घास और जहाँ तक छोटे-बड़े पेड़ बीच में मोटे पतले झरने नदियों की लकीरें, कही चारों ओर से सघन हरियाली, कहीं चट्टानों पर ऊँचे-नीचे अनगढ़ ढोके और कही जनपूर्ण हरित तराई विचित्र शोभा देती थी।"¹⁴ हरिद्वार के वर्णन में भी उनका प्रकृति-प्रेम अच्छी तरह प्रकट हुआ है। आस-पास के पहाड़, हरे वृक्षों पर चिड़ियों के गीत, स्वच्छ जलवाली गंगा और गंगा तट पर हरिश्चन्द्र का रसोई बनाना इन सभी का वर्णन बहुत की स्वाभाविक हुआ है। इन सबको पढ़कर ऐसा लगता है कि लेखक का जीवन शहर के बदले प्रकृति दर्शन करने में बीता है। किन्तु हरिश्चन्द्र सामाजिक समस्या से उदास होकर प्रकृति में ही रमने वाले कवि नहीं है। उनके अध्ययन का केन्द्र बिन्दु तो मनुष्य ही है प्रकृति तो मात्र उनका कार्य क्षेत्र है।

इस प्रकार रामविलास शर्मा जी ने अपनी पुस्तक 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ'¹⁵ में ठीक ही कहा है कि- "कविवचन सुधा' का प्रकाशन आरम्भ करके भारतेन्दु ने वास्तव में एक नये युग का सूत्रपात किया। पत्र-पत्रिकाओं ने हमारे जातीय जीवन को पहले कभी इतना प्रभावित न किया था और कोई भी पत्रिका हिन्दी के चोटी के लेखकों को प्रभावित करने का ऐसा निरपवाद श्रेय नहीं ले सकती जैसे 'कविवचन सुधा' यह पत्रिका जनता का पक्ष लेने वाली, जनता के हितों के लिए संघर्ष करने वाली, राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई नहीं वरन् उसे मशाल दिखाने वाली सच्चाई थी।

संदर्भ

1. देखें- कविवचन सुधा, अंक, 9 मार्च 1874, 18 मई 1874, 8 नवम्बर 1874
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, रामविलास शर्मा, पृ0 69
3. वही, पृष्ठ 97
4. वही, पृष्ठ 97
5. वही, पृष्ठ 98
6. वही, पृष्ठ 98
7. वही, पृष्ठ 98
8. वही, पृष्ठ 99
9. वही, पृष्ठ 99
10. वही, पृष्ठ 101
11. वही, पृष्ठ 103
12. वही, पृष्ठ 103
13. वही, पृष्ठ 104
14. वही, पृष्ठ 105
15. वही, पृष्ठ 105

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और राष्ट्रवादी पत्रकारिता

सरला कुमारी

द्रोणाचार्य राजकीय महाविद्यालय, गुरुग्राम

राष्ट्र कोई भू-भौतिक संरचना मात्र नहीं है। राष्ट्र कोई जमीन का टुकड़ा मात्र नहीं है न ही किसी कबीले या कुनबे का नाम है। भारत के संदर्भ में इसका जन्म 15.08.1947 को नहीं हुआ राष्ट्र एक सनातन अवधारणा है जैसे समाज जो किसी भू-भाग को अपनी जन्मभूमि, पितृभूमि पुण्यभूमि समझता है और भारत का राष्ट्रवाद यूरोपीय नेशन स्टेट के सादृश्य भी नहीं है राजनीतिक गंध अधिक है। भारत का राष्ट्रवाद यहां की आत्मा आध्यात्म को समझे बिना नहीं समझा जा सकता। **विष्णुपुराण** में कहा गया है - 'उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्/वर्षं यत् भारतं नाम भरती यत्र सन्तति॥'

भारतीय राष्ट्रवाद किसी के विरुद्ध नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता का द्योतक है। मीडिया यदि समाज का एकांगी दर्शन कराए तो वह मीडिया कहाँ रह जाती है मीडिया को यदि समझा जाए तो उसे वायु की भाँति निरपेक्ष होना चाहिए जो समाज के दर्पण साहित्य की तरह जैसी भी गंध - सुगंध या दुर्गंध को जिस का तस प्रसारित कर दें।

राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत मीडिया भूमंडलीकरण की दौड़ में होना कठिन है पर इसकी मदद के बिना कोई राष्ट्रीय आंदोलन भी तो खड़ा नहीं किया जा सकता पर जब तक हमारी राष्ट्रीयता क्या है मीडिया के लोग स्वयं आत्ममंथन से नहीं समझेंगे वे चाह कर भी जाने-अनजाने में ऐसी भूल करते रहेंगे जिनसे राष्ट्र को क्षति होगी, उस राष्ट्र को जिसकी देवमयी, महिमामयी मूर्त सबके हृदय में स्थापित है।

मीडिया में जनसंचार माध्यमों की अग्रणीय भूमिका है। जनसंचार अंग्रेजी के Mass Communication शब्द का पर्याय है जिसका अर्थ है किसी वस्तु या विषय का साँझा होना। कॉलंबिया एनसाइक्लोपीडिया ऑफ कम्यूनिकेशन में कम्यूनिकेशन शब्द का अर्थ है-विचार एवं संदेशों के आदान प्रदान। जो चीजों और व्यक्तियों की दुलाई या परिवहन से अलग है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और राष्ट्रवादी पत्रकारिता - ब्रिटिश हुकूमत से भारत को आजाद करवाने के काम में जहाँ एक और अहिंसावादी आंदोलनकारियों क्रांतिकारियों कवियों ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए सर्वस्व लगा दिया वहीं हिंदी पत्रकारिता ने आजादी की अग्निशिखा को अनवरत प्रज्वलित रखने में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। इसको समझने के लिए हमें देश की मुख्य धारा के साथ जुड़कर देखने का प्रयत्न करना पड़ेगा। पत्रकारों के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जाता है महादेवी वर्मा के द्वारा कहे गए वाक्य का एक-एक शब्द स्वतंत्रता आंदोलन में पत्रकारों की भूमिका को स्पष्ट करता जान पड़ता है स्वाधीनता संग्राम का अर्थ राजनीतिक क्षेत्रों में विदेशी साम्राज्य से मात्र सशक्त टक्कर लेना ही नहीं था बल्कि जनसाधारण को इस संग्राम के लिए प्रेरित करना भी था। पत्रकारों ने अपनी कलम के बल पर ऐसा माहौल तैयार किया कि सारा देश एक होकर अंग्रेजी सरकार के शोषण, अन्याय और दमनकारी नीतियों का विरोध करने के लिए एक साथ खड़ा हो गया। अकबर इलाहाबादी की पंक्तियाँ - खीचै न कमानो को न तलवार निकालो जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो ने सारे देश में एक ऐसी लहर पैदा की कि हर कोने से समाचार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हो गया। किसी संकट की परवाह किए बिना देश प्रेमियों ने हिंदी समाचार पत्रों का प्रकाशन एक मिशन के रूप में शुरू किया। अंग्रेजों की कठोर नीतियों व धनाभाव के कारण पत्र बंद भी होते रहे लेकिन नए पत्रों का प्रकाशन नहीं रुका। हिंदी में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों ने संपूर्ण देश को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया। इसकी शुरुआत 'उदन्त मार्तण्ड' से मानी जाती है जो कि 30.05.1826 को कलकत्ता के कोलू टोला मोहल्ले से पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में आरंभ हुआ। इसका अंतिम अंक 4.12.1827 को प्रकाशित हुआ। वहीं राजा राममोहन राय ने जनता की दुर्दशा और संकटों का जनता की भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए 10.05.1829 को कलकत्ता से **हिंदू हेराल्ड** का प्रकाशन शुरू किया। जिसके **बंगदूत** नाम से बंगला, हिंदी, फारसी तीन संस्करण अलग से प्रकाशित होते थे। लेकिन यह अखबार भी शीघ्र बंद हो गया। 28.01.1830 को **संवाद** प्रभाकर पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ इसने बंकिम चंद्र चैटर्जी जैसे लेखक को स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई। इस पत्र ने ईस्ट इंडिया कंपनी का जमकर विरोध किया। इसी क्रम में **राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद** की मदद से गोविंद रघुनाथ धत्ते ने 1845 में **बनारस अखबार**, प्रेम नारायण ने इंदौर सं 06.03.1848 को **मालवा अखबार** 1850 में तारामोहन मैत्रीय ने काशी से **सुधाकर पत्र** इसी बीच हिंदी उर्दू अखबार का प्रकाशन शुरू हुआ। इसने अंग्रेजी हुकूमत के विरोध के लिए सीधे-सीधे माहौल तैयार किया। दंडस्वरूप इसके संपादक मौलाना अब्दुल को तोप से बांध कर उड़ा दिया। 1857 में '**पयामे आजादी** का प्रकाशन शुरू

हुआ इसने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणीय भूमिका निभाई। इसे जंगे आजादी का अखबार भी कहा जाता है।

15.08.1867 को भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने नए युग की पत्रकारिता की शुरुआत काशी से **कविवचन सुधा पत्रिका** के प्रकाशन से की। इसके बाद 15.10.1873 को **हरिश्चंद्र मैगजीन** 9.1.1874 को **बाला बोधिनी पत्रिका** का प्रकाशन किया। लाला श्रीनिवास द्वारा 1874 में **सदादर्श** का प्रकाशन किया। 1.09.1877 को प्रयाग से **प्रदीप** मासिक पत्रिका के प्रकाशन को डा० सुशीला जोशी ने हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना बताया। 1857 में अखबारों की भूमिका से परिचित सरकार जानती थी कि आने वाले समय में अखबार खतरा साबित हो सकते हैं। इन पर दबाव डालने के लिए 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट बनाया गया। इस एक्ट के तहत संपादकों पर भारी जुर्माने व जेल भेजने की कार्यवाही ने जोर पकड़ा। उसी रफ्तार से पत्रकारों की संख्या में भी वृद्धि होती चली गयी। 1881 में विष्णु शास्त्री व बाल गंगाधर तिलक ने **केसरी व मराठा** का प्रकाशन किया। कविवचन सुधा उत्तर प्रदेश के प्रतिष्ठित पत्र के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुका था। 1871 में अल्मोड़ा नगर से प्रकाशित **अल्मोड़ा अखबार** मुंशी सदानंद सनवाल के कुशल संपादन में कवि वचन सुधा के समकक्ष ख्याति अर्जित कर रहा था। इसके 1875 के अंक में महारानी विक्टोरिया की 1.11.1858 की घोषणा प्रकाशित की गई थी। अल्मोड़ा अखबार ने 1918 के हाली अंक के संपादकीय में नौकरशाही पर व्यंग्य करते हुए **जी हजूर होली** और डिप्टी कमीश्नर लोमस पर **लोमस की भालू शाही** से लेख प्रकाशित किया। 1922 में बाल कृष्ण प्रेस से **‘समन्वय साप्ताहिक** 1923 में **‘मतवाला** 1923 में **‘रंगीला’** निराला जी के कुशल संपादन में प्रकाशित हुआ।

राष्ट्रवादी पत्रकारिता – भारत में पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक ही धारा में प्रवाहित होने वाले जल के समान है। भारतीय पत्रकारिता ने सदैव राष्ट्रवाद को ही मुखरित करने का कार्य किया है। पत्रकारिता के इसी राष्ट्रवादी प्रवाह को गति देने वाले पत्रकारों में एक महत्वपूर्ण नाम पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भी है। भारत की राजनीति को एक धुन्न से दो धुन्न कर देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता का अपने विचारों के प्रसार का माध्यम बनाया था। पत्रकारिता किस प्रकार से जनमत निर्माण करने में सहायक हो सकती है यह दीनदयाल जी ने बखूबी समझा था।

जब देश को सशक्त राजनीतिक विकल्प एवं विपक्ष की आवश्यकता थी, तब **दीनदयाल उपाध्याय** ने **श्यामा प्रसाद मुखर्जी** के साथ मिलकर देश की राजनीति को दो धुन्न कर देने का कार्य किया था। उन्होंने राजनीति को समाज कल्याण के रूप में चुना था एकात्म मानवतावाद के रचयिता दीनदयाल उपाध्याय ने गाँधी के विचारों को पुनः व्याख्याित करते हुए अंत्योदय की बात की। दीनदयाल जी ने अपने विचारों को पत्रकारिता के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया। 1947 में दीनदयाल उपाध्याय ने **राष्ट्र धर्म प्रकाशन लिमिटेड** की स्थापना की। जिसके अंतर्गत **स्वदेश**, **राष्ट्रधर्म** एवं **पांचजन्य** नामक पत्र प्रकाशित होते थे। राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड ने वचनेश त्रिपाठी, महेंद्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चंद्र मिश्र, अटल बिहारी वाजपेयी, राजीव लोचन, अग्निहोत्री जैसे श्रेष्ठ पत्रकारों को तैयार किया। उपाध्याय जी ने देश में बदलाव के लिए नारे एवं बेवजह प्रदर्शनों को प्राथमिकता नहीं दी। देश की समस्याओं के निवारण के लिए वह पुरुषार्थ को ही महत्वपूर्ण मानते थे।

संस्कृतनिष्ठ दीनदयाल जी के द्वारा निर्मित राजनैतिक जीवन का पहला सूत्र है उनके शब्दों में – ‘भारत में रहने वाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन है –उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य दर्शन सब भारतीय संस्कृति है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है। इस संस्कृति में निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा।’

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ हमारी सभ्यता में प्रचलित है। इसी के अनुसार भारत में सभी धर्मों को समानाधिकार प्राप्त है। संस्कृति में किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि की वे बातें जो उनके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता का सूचक होता है। दो शब्दों में कहें तो यह जीवन जीने की शैली है। भारतीय सरकारी राज्य पत्र इतिहास व संस्कृति संस्करण में यह स्पष्ट वर्णन है कि **हिंदूत्व** और **हिंदूइज्म** एक ही शब्द हैं तथा भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सूचक है।

अंत में निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि मीडिया आज के संदर्भ में जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही स्वतंत्रता पूर्व थी। जो काम तलवार के बल पर नहीं किया जा सकता वह कलम के द्वारा किया जा सकता है भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में राष्ट्रवादी पत्रकारिता का विशेष स्थान है। पत्रकारिता व्यक्तियों में ऐसी भावना जाग्रत कर देती है कि वे सब भेदभाव भूलकर एकजुट हो जाते हैं तथा देश समाज हित के लिए कुछ भी कर सकते हैं वे देश पर अपनी जान भी कुर्बान कर देते हैं।

संदर्भ

- 1 डॉ० धनाकर ठाकुर के विचार
- 2 हेमंत कुमार जोशी भवानी लॉज कैंप तल्लीताल नैनीताल?
- 3 पंडित दीनदयाल उपाध्याय की जीवनी के कुछ अंश

महिला सशक्तिकरण से राष्ट्रवाद की लहर उठाती फिल्म पत्रकारिता

ऋतु शर्मा

पीजीटी व्याख्याता

आई आई एस विद्यालय, जयपुर

महिला सशक्तिकरण के अंतर्गत महिलाओं से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और कानूनी मुद्दों पर रूप से संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किया जाता है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया में समाज को पारंपरिक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागरूक किया जाता है, जिसने महिलाओं की स्थिति को सदैव कमतर माना है। वैश्विक स्तर पर नारीवादी आंदोलनों और यूएनडीपी आदि अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने महिलाओं के सामाजिक समता, स्वतंत्रता और न्याय के राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। महिला सशक्तिकरण, भौतिक या आध्यात्मिक, शारिरिक या मानसिक, सभी स्तर पर महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा कर उन्हें सशक्त बनाने की प्रक्रिया है।

मिशेल बेकरिंग इंटरनेशनल रिपब्लिकन इंस्टीट्यूट -आईआरआई- में इंडोनेशिया की रजिडेंट कंट्री डायरेक्टर हैं। आईआरआई निष्पक्ष, गैरसरकारी संगठन है जो दुनियाभर में लोकतंत्र को बढ़ावा देने का काम कर रहा है। बेकरिंग 2005 में आईआरआई में आई। उन्होंने मार्च और अप्रैल में नई दिल्ली, तिरुवनंतपुरम और कोलकाता की यात्रा की और विश्वविद्यालय समूहों, स्थानीय व्यावसायिक संगठनों, नागरिक संगठनों से जुड़ी महिलाओं और महिला मुद्दों के लिए काम करने वाली कार्यकर्ताओं से बातचीत के बाद उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में बताया कि हमने यह भी पाया है कि नेतृत्वकारी पदों पर ज्यादा महिलाओं के होने से शांति और सुरक्षा के पहलुओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, यदि आप किसी ऐसे देश को देखें जो संघर्ष से जूझ रहा हो, तो शांति समझौतों में ज्यादा महिलाओं के शामिल होने से ज्यादा समावेशी और ज्यादा टिकाऊ शांति समझौतों का रास्ता प्रशस्त होता है। मामलों के निपटारे में भी ज्यादा महिलाओं के शामिल होने से उन महिलाओं को न्याय सुनिश्चित हो सकता है जो संघर्ष के दौरान पीड़ित रही हों। और आखिर में महिलाएं 'महिलाओं के मुद्दे' समझे जाने वाले मुद्दों को 'सामाजिक मुद्दों' के तौर पर देखती हैं कि ये मुद्दे किस तरह से परिवारों, समुदायों को प्रभावित करते हैं। यह बेहद महत्वपूर्ण है।

महादेवी वर्मा - समाज सुधार और नारी स्वतंत्रता से संबंधित उनके विचारों में दृढ़ता और विकास का अनुपम सामंजस्य मिलता है। सामाजिक जीवन की गहरी परतों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आंकने वाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्न वर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों के अनूठे चित्र उन्होंने ही पहली बार हिंदी साहित्य को दिये।

भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिन है। इसी दिन तत्कालीन बंबई के वाटकिंस हॉटल में ल्युमेरे ब्रदर्स ने छः लघु चलचित्रों का प्रदर्शन किया था। इन छोटी-छोटी फिल्मों ने ध्वनिरहित होने बावजूद भी दर्शकों का मनोरंजन किया था। इन लघु चलचित्रों से प्रभावित होकर श्री एच.एस. भटवडेकर और श्री हीरालाल सेन नामक व्यक्तियों ने ल्युमेरे ब्रदर्स की तरह क्रमशः मुंबई (पूर्व नाम बंबई) और कोलकाता (पूर्व नाम कलकत्ता) में लघु चलचित्रों का निर्माण प्रारंभ कर दिया। सन् 1899 में श्री भटवडेकर ने भारत के प्रथम लघु चलचित्र बनाने में सफलता प्राप्त की।

दादा साहेब फालके ने अपने लंदन प्रवास के दौरान ईसा मसीह के जीवन पर आधारित एक चलचित्र देखा। वह फिल्म ल्युमेरे ब्रदर्स की फिल्मों की तरह लघु चलचित्र न होकर लंबी फिल्म थी। उस फिल्म को देख कर दादा साहेब फालके के मन में पौराणिक कथाओं पर आधारित चलचित्रों के निर्माण करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। स्वदेश आकर उन्होंने राजा हरिश्चंद्र बनाई जो कि भारत की पहली लंबी फिल्म थी और सन् 1913 में प्रदर्शित हुई। उस चलचित्र ने (ध्वनिरहित होने के बावजूद भी) लोगों का भरपूर मनोरंजन किया और दर्शकों ने उसकी खूब तारीफ की।

फिर तो चलचित्र निर्माण ने भारत के एक उद्योग का रूप धारण कर लिया और तीव्रता पूर्वक उसका विकास होने लगा। उन दिनों हिमांशु राय जर्मनी के यू.एफ.ए. स्टुडिओ में निर्माता के रूप में कार्यरत थे। वे अपनी पत्नी देविका रानी के साथ स्वदेश वापस आ गये और अपने देश में चलचित्रों का निर्माण करने लगे। उनकी पत्नी देविका रानी स्वयं उनकी फिल्मों में

नायिका (हीरोइन) का कार्य करती थी। पति-पत्नी दोनों को खूब सफलता मिली और दोनों ने मिलकर बांबे टाकीज स्टुडिओ की स्थापना की।

अब तक केवल मूक फिल्में ही बना करती थीं पर 1930 के आसपास चलचित्रों में ध्वनि के समावेश करने का तकनीक विकसित हो जाने से सवाक् (बोलती) फिल्में बनने लगीं। आलम आरा भारत की पहली सवाक् फिल्म थी जो कि सन् 1931 में प्रदर्शित हुई। 1933 में प्रदर्शित फिल्म कर्मा इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि उस फिल्म की नायिका देविका रानी को लोग फिल्म स्टार के नाम से संबोधित करने लगे और वे भारत की प्रथम महिला फिल्म स्टार बनीं।

नारी केंद्रित फिल्में

साहित्य क्या है? मात्र एक किताबी ज्ञान शायद नहीं। साहित्य समाज में जागरूकता लाने, बदलाव लाने का माध्यम भी है। साहित्य का अर्थ केवल किताबों से नहीं लिया जा सकता वह सब जो समाज की सही तस्वीर को दिखा सके साहित्य है। वर्तमान में इंसानी सोच में बदलाव आवश्यक है और यह बदलाव दृश्य - श्रव्य मीडिया के द्वारा भी संभव है 21 वीं सदी में जहाँ लोगों के पास वक्त का अभाव है वहीं दूसरी तरफ 3 डी चित्र और ध्वनि प्रभाव की बदौलत मीडिया किताबों से कही आगे निकल गया है।

दृश्य-श्रव्य मीडिया में फिल्मों का नाम कहीं आगे है। सिनेमा केवल पैसा ही नहीं बनाता बल्कि देखने वाले के ऊपर भी गहरा प्रभाव डालता है। विचारों और चित्रों के संचार हेतु यह मीडिया यातायात के एक साधन की तरह काम करता है। यह कभी-कभी ऐसे संचार का निर्माण करता है जो वास्तविक है जैसे जहाँ एक तरफ अंजाम फिल्म में हैवानियत का भयावह रूप देखने को मिला वहीं दूसरी तरफ बैडिट क्वीन में अपने उपर हुए बलात्कार और शोषण का बदला एक नारी द्वारा लिया जाना भी न्यायपूर्ण लगा। सदियाँ बीत गयी और वक्त यूँ ही बीत रहा है लेकिन स्त्री की ताकत और मजबूती को स्वीकारना पुरुष के लिए हरदम कठिन रहा इसलिए हर फिल्ममेकर ने स्त्री को अपने अनुभवों के बलबूते पर आंका, परखा और जांचा भीद्य उन्होंने अपने अनुभवों से स्त्री के व्यक्तित्व का चित्रण भी किया। मद्र इंडिया (1957), अर्थ (1982), मिर्च मसाला (1987), दामिनी (1993), चांदनी बार (2001) जैसे अनेक भारतीय फिल्मों में नारी के व्यक्तित्व के अलग अलग रूप देखने को मिले।

एलियन (1979), ऑल अबाउट ईव (1950), जैकी ब्राउन (1997), साइलेंस ऑफ द लैम्ब्स (1991) जैसी अनेक अमेरिकी फिल्में नारी केंद्रित रही। भारत विशेषकर हिन्दी क्षेत्र में स्त्री विमर्श को पश्चिम से आयातित फैशनेबल अवधारणा मानने का पूर्वग्रह रहा है। निःसन्देह स्त्री विमर्श एक वैश्विक वैचारिक आन्दोलन है, किन्तु इतिहास साक्षी है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में ही नवजागरण की लहर के साथ पूरे देश में स्त्री-विषयक प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा था। स्त्रियाँ के जीवन को विषाक्त करने वाली सामाजिक कुप्रथाओं, यथा-सती प्रथा, बहुविवाह प्रथा, कुलीन विवाह प्रथा, बाल विवाह प्रथा पर खुलकर प्रहार किया जाने लगा था। राजा राममोहन राय, विद्यासागर, महर्षि कर्वे, राना डे, स्वामी दयानन्द सरस्वती के अतिरिक्त जोतिबा फुले और उनका समाज, पेरियार और उनका स्त्री पुरुष समानता आन्दोलन तथा बाबा साहब अंबेडकर और उनकी सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों ने स्त्रियों की मानवी गरिमा की रक्षा के लिए समाज को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया। इस दौरान स्त्रियों की भूमिका सहायक की रही। नेतृत्व से लेकर रणनीतियाँ बनाने तक सभी महत्वपूर्ण सेवाएँ पुरुष नेताओं द्वारा ही लिए जाते थे। किन्तु धीरे-धीरे स्त्रियों ने वीमैन्स इंडियन एसोसिएशन (1917), नेशनल काउन्सिल ऑव वुमैन (1925) तथा अखिल भारतीय महिला परिषद (1927) की स्थापना कर स्त्रियों की समस्याओं को अपने दृष्टिकोण और दबाव के साथ रखना शुरू किया। सरोजिनी नायडू, हंस मेहता, राजकुमारी अमृतकौर, कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि की राजनीतिक-सामाजिक सक्रियता के कारण विदेशी प्रशासकों तथा देशी नेताओं द्वारा उनकी आवाज को अनसुना करना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप 1946 में अखिल भारतीय महिला परिषद द्वारा प्रस्तुत अधिकारों एवं कर्तव्यों के चार्टर में वर्णित कुछ माँगों को भारतीय संविधान में ज्यों का त्यों स्वीकार किया गया, जैसे-धारा 44 के अन्तर्गत देश भर में समाज सिविल कोड लागू किया जाना, धारा 15 के अन्तर्गत लिंग, जाति, धर्म के आधार पर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र में भेदभाव न किया जाना, धारा 16 के अन्तर्गत लिंग, जाति, धर्म के आधार पर सरकारी नौकरियों और दफ्तरों में भेदभाव न किया जाना। इससे हुई महाराष्ट्र में स्त्री आन्दोलनकारियों ने वैचारिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में अपनी गतिविधियों का प्रसार किया। इनमें प्रमुख हैं पंडिता रमाबाई, ताराबाई शिन्दे, तथा आनन्दी गोपाल। पंडिता रमाबाई ने 1890 के कांग्रेस अधिवेशन में स्त्री प्रतिनिधित्व का मुद्दा उठाया तो ताराबाई शिन्दे ने 'स्त्री पुरुष तुलना', 'तुम्हारे देवता दगाबाज दिखते हैं' तथा 'स्त्री गृहबन्दी शाला में गुलाम है' जैसे लेख लिख कर धार्मिक पाखंड और मर्दवादी वर्चस्व को चुनौती दी। डॉ. रमाबाई में बौद्धिक-मानसिक हर दृष्टि से हीन पति के साथ न रहने और प्रतिकूल फैसला सुनाने पर अदालत के मुह पर थूक सकने का अपूर्व साहस था कि 'कोर्ट के आदेश का पालन न करने के जुर्म में चाहे तो मुझे फाँसी पर चढ़ाया जाए या आजीवन जेल की सजा दे दी जाए किन्तु अपनी इच्छा के विरुद्ध मैं उस पति के घर नहीं जाऊँगी जो मुझे पसन्द नहीं।''

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में स्त्री आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ बल्कि दमन, उत्पीड़न और विषमता के खिलाफ आज भी कमर कस कर खड़ा है। स्त्रियों की राजनीतिक-सामाजिक आन्दोलन, में भागीदारी को तीन स्तरों पर रेखांकित किया जा सकता है। एक, जमीनी सच्चाइयों से जुड़े मुद्दों को लेकर आदिवासी, किसान एवं कामगार महिलाओं के आन्दोलन दूसरे, पर्सनल लॉ को चुनौती देती अल्पसंख्यक वर्ग की स्त्रियों के आन्दोलन और तीसरे, राष्ट्रीयता के सवाल पर उठे आन्दोलन। पहले प्रकार के आन्दोलन में तेभागा आन्दोलन, तेलंगाना आन्दोलन, श्रीकाकुलम आन्दोलन, बोधगया आन्दोलन, चिपको आन्दोलन, दंडकारण्य में क्रान्तिकारी आदिवासी महिला आन्दोलन, विप्लव महिला संघम, बलात्कार-घरेलू हिंसा-दहेज-कन्या भ्रूण हत्या-सती प्रथा के खिलाफ आन्दोलनों आदि को लिया जाता है। घरेलू उपकरणों जैसे चाकू, डंडा, झाड़ू को हथियार बनाकर पुरुषों के साथ साझी लड़ाई लड़ने वाली खेतिहर किसान मजदूर महिलाओं ने 1946 के तेभागा आन्दोलन में जोर-शोर से अपनी माँग मंगवायी कि "फसल काटने में हमारी आधी भूमिका होती है तो फिर उस आधे उत्पादन पर भी हमारा मालिकाना हक होना चाहिए।" 1944 में "आन्ध्र महिला संघम की प्रातीय परिषद (जिसमें 7000 महिलाओं और 3000 पुरुषों ने भाग लिया) में मातृ-बाल कल्याण योजना से अधिक हिन्दू कोड बिल बनाने की आवश्यकता पर बात की गयी (पृ 42) तथा पश्चिमी महाराष्ट्र की महिला आघाड़ी की सदस्याओं ने माँग की कि प्रत्येक किसान जमीन का एक छोटा हिस्सा अपनी पत्नी के नाम करें, उल्लेखनीय है कि स्त्री जागृति की ये तीन तस्वीरें हिन्दू कोड बिल के आगमन से पूर्व की हैं और पश्चिमी के नारी मुक्ति आन्दोलन के धमाके से बहुत पहले चुपचाप भारतीय समाज में अपनी उपस्थिति और सार्थकता दर्ज करा चुकी है। आज भले ही विकास की परम्परागत अवधारणा के विरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय सेमिनार निष्कर्ष विहिन समाप्त हो जाते हो, पश्चिमी महाराष्ट्र की शेतकरी महिला आघाड़ी ने 'सीता सती आन्दोलन' के जरिए 'लक्ष्मी मुक्ति आन्दोलन' से मिली जमीन पर नैसर्गिक खेती की शुरुआत की और रासायनिक खाद के प्रयोग के बिना भी हरित क्रान्ति की अवधारणा को फलीभूत होते सिद्ध किया। दूसरे प्रकार के स्त्री आन्दोलन में पर्सनल लॉ को चुनौती देते हुए महत्वपूर्ण स्वयं को शब्दबद्ध किया जा सकता है। इसमें महाराष्ट्र के 1968 तथा 1978 में हुए मुस्लिम महिलाओं के आन्दोलन प्रमुख हैं, जिनके माध्यम से मुस्लिम स्त्रियों ने हिन्दू स्त्रियों को दिये जाने वाले कानूनी अधिकारों की माँग करते हुए सौतबन्दी और एकतरफा जुबानी तलाक पर पाबन्दी लगाने की पैरवी की। तीसरे प्रकार का स्त्री आन्दोलन राष्ट्रीयता के सवाल पर उठे आन्दोलन तथा कट्टरपंथी प्रतिक्रियावादी ताकतों द्वारा संचालित स्त्री आन्दोलन में स्त्री की भूमिका पर सवाल उठाता है। राष्ट्रीयता के सवाल पर उठे आन्दोलन कश्मीर तथा उत्तर-पूर्वी प्रान्तों में सक्रिय है, जहाँ स्त्रियाँ आतंकवादियों से अधिक भारतीय सेना और पुलिस द्वारा बलात्कार के आतंक से त्रस्त हैं। उत्तर पूर्व राज्यों में आदिवासी स्त्रियों की समस्या, स्त्री आन्दोलन के राजनीतिक सरोंकारों की सशस्त्र क्रान्तिकारी भूमिका को स्पष्ट करते हुए विशेष रूप से मणिपुर के स्त्री आन्दोलन के इतिहास में 1903 तथा 1939 में हुए दो 'नुपिलनों' (महिला युद्धों) का उल्लेख किया जा सकता है, जिनकी पृष्ठभूमि में बलात्कार के विरोध में हुए मणिपुरी महिलाओं के निर्वसन जुलूस को भली-भाँति समझा जा सकता है। इसी कड़ी में 16 दिसम्बर 2012 को दिल्ली में 'दामिनी' के साथ हुई गैंगरेप की घटना को भी लिया जा सकता है, जिसने समूची युवाशक्ति को न केवल उद्धेलित किया, अपितु लैंगिक भेद को भुला कर युवक-युवतियों ने प्राणिमात्र की मानवीय अस्मिता के लिए व्यवस्था, राजनीति, कानून और बुद्धिजीवियों को नये सिरे से विचार करने के लिए प्रेरित किया। यह एक ऐसी घटना है जिसे क्रिया की तात्कालिक प्रतिक्रिया कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यह आन्दोलन स्त्रीविमर्शकारों को आश्वस्त करता है कि जेंडर सेसिटिजेशन के लिए लड़ी जाने वाली उनकी लड़ाई सकारात्मक दिशा भी ले रही है और नयी पीढ़ी के हाथ में आने से परम्परावादी पूर्वग्रही बाधाओं से लड़ने का माद्दा भी ज्यादा बटोर रही है।

स्त्री लेखन को लेकर आक्षेप की मुद्रा में प्रायः दो प्रश्न उठाये जाते हैं। एक, क्या स्त्री लेखन स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के लिए स्त्रियों की समस्याओं पर लिखा जाने वाला साहित्य है ? दूसरा, क्या स्त्री लेखन देह विमर्श में तब्दील होकर अपनी प्रासंगिकता एवं वैधता नहीं खो रहा ? वस्तुतः ये शंकाएँ सवाल नहीं, वर्चस्ववादियों द्वारा किसी भी अस्मिता आन्दोलन को कुचलने की साजिशें हैं। गहराई से देखें तो पहला प्रश्न अपने भीतर एक अन्य प्रश्न छिपाये हैं कि क्यो पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्चस्ववादी पक्ष (पुरुष एवं पुरुषवादी स्त्रियाँ) स्त्री रचित साहित्य से कतराता है ? क्या इसलिए कि यह इन्हें आत्म-साक्षात्कार करने की कटु प्रतीति देता है जहाँ वे स्वयं अभियुक्त कि रूप में कठघरे में खड़ा पाते हैं ? क्या इसलिए कि यहाँ वह नख-शिख वर्णन के सहारे स्त्री देह को अंग-उपांगों में खंडित करने और वर्जनाओं के सहारे उसकी निजता को लीलने वाली कर्ता की भूमिका में नहीं है, वरन ऐसा करने का जवाबदेही माँगती स्त्री की कौधती निगाहो से संत्रस्त है ? क्या इसलिए कि स्त्री रचित साहित्य में वह 'अन्य' है, ठीक उसी प्रकार जैसे पुरुष रचित साहित्य में स्त्री सदियों से 'अन्या' रही हैं और 'अन्य' होने की स्थिति उसके अहं को कुचलती है।

दूसरा प्रश्न नैतिकतावादी दृष्टिकोण से स्त्रियों के उन्मुक्त सम्बन्धों से समाज पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को लेकर उपजी चिन्ता को व्यक्त करता है। यहाँ भी प्रतिप्रश्न उठता है कि स्त्रियों के दाम्पत्येतर एवं प्रेम सम्बन्धों के कारण स्त्री रचनाकारों द्वारा रचित साहित्य तिरस्करणीय है तो इससे पूर्व स्त्री को भोग्या समझ कर रचा जाने वाला शृंगारी एवं रीतिकालीन साहित्य क्यों त्याज्य नहीं ? स्त्री विमर्श भोगपरक दृष्टि से देहमुक्ति की बात नहीं करता, देह को पुरुष की सम्पत्ति बनाने वाली पुंसवादी

मान्यताओं का विरोध करता है। अतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था की बौखलाहट अपनी स्थिति के कमजोर होते चले जाने की अनुभूति को लेकर है। फिर भी यह सत्य है कि आज स्त्री विमर्श के नाम पर दैहिक सम्बन्धों का खुला चित्रण किये जाने का प्रचलन हो गया है। किन्तु यह स्त्री विमर्श की मूल चेतना नहीं है। इसे स्त्री विमर्श का स्वलन एवं दुर्बलता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, ताकि उदात्त सरोकारों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए स्त्री विमर्श को संवेदनात्मक धरातल प्रदान किया जाए क्योंकि देह होते हुए भी देह के भूगोल से मुक्त रख कर स्त्री को मनुष्य की संज्ञा से विभूषित करना इसका आत्यन्तिक लक्ष्य है।

जिस समाज में नारी की पूजा की जाती थी उसी समाज में वें भूख, उत्पीड़न, शारीरिक और मानसिक यातना, अपमान, अशिक्षा, बीमारी और सामान्य उपेक्षा से ग्रस्त है। जरूरत है, मानव सोच को बदलने की जिसमें मीडिया एक बेहद सशक्त हथियार है, मीडिया के अधिकारियों को उनकी जिम्मेदारी के बारे में जागरूक होना चाहिए क्योंकि महिलायें भी समाज में सम्मान की अधिकारी होती हैं।

सन्दर्भ

1. जावेद अख्तर, नसरीन मुन्नी कबीर, सिनेमा के बारे में ख़ूबराजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
2. जोहाना बर्नर, वूमेन एण्ड द पालिटिक्स आफ क्लास, एडीशन, अकबर रोड, दिल्ली, 2006
3. प्रगति सक्सेना (अनुवादक), जान स्टुअर्ट मिल, स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
4. डा. इन्दु वशिष्ठ, आधुनिक कवि और नारी असिमता, अन्नपूर्णा प्रकाशन, 1991
5. डा. उषा यादव, हिन्दी महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
6. डा चन्द्रमोहन अग्रवाल, भारतीय नारी : विविध आयाम खण्ड-2, अल्मोड़ा बुक डिपो, 1994
7. डा नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा (उ.प्र.) 1993
8. डा. पुरुषोत्तम अग्रवाल, संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1995
9. डा. प्रभा खेतान, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
10. डा. भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, वि.वि. प्रकाशन वाराणसी, 1993
11. डा. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1975

राष्ट्रवाद की अवधारणा और तमिल पत्रकारिता

डॉ.जी. शांति

श्री अबिरामी इल्लम, वडवल्लि
कोयम्बतूर (तमिलनाडु)

संचार माध्यमों में प्रिन्ट मीडिया या शब्द माध्यम का अपना विशिष्ट स्थान एवं महत्व है। पत्र पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, मानव मित्र ही नहीं मानव जीवन का अंग बन गया है। इसे आधुनिक वैज्ञानिक युग में समाचार प्राप्त करने की कई साधन उपलब्ध होने पर भी प्रातःकाल के समय समाचार पत्र और चाय का एक अटूट सम्बन्ध को हम आज भी देख सकते हैं। शिक्षित हो या अशिक्षित मानव मन में कहीं? क्या? कैसे? यह जानने की जो प्रवृत्ति है। वह जन्मजात प्रवृत्ति है। जिसके कारण हर क्षेत्र, प्रदेश, प्रान्त, देश में पत्रकारिता का शुभारम्भ हुआ।

‘अनेकता में एकता’ भारत का मूल मन्त्र है। यहाँ भिन्न भिन्न जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति के लोग रहते हैं। फिर भी सब के मन में देश भक्ति एवं देश के प्रति जो रागात्मक भावना है उसमें भिन्नता या अखण्डता लेश मात्र नहीं है। सभी भारतवासियों को वही राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना एक सूत्र में पिरोकर, बाँधकर रखता है। राष्ट्र की समृद्धि, प्रगति, उन्नति, मंगलकामना आदि राष्ट्रीयता की भावना है। सभी नागरिकों को अपने राष्ट्र के प्रति रागात्मक सम्बन्ध और आत्मीयता की भावना होना अनिवार्य है। यही राष्ट्रीयता के लक्षण है।

यही राष्ट्र प्रेम व राष्ट्रीयता की भावना भारत के हर प्रान्त व प्रदेश के निवासी के हृदय में स्थित है। जिस प्रकार दीपक के बाती को आगे बढ़ाने से उस दीपक की लौ एवं प्रकाश की तेज बढ़ती है उसी प्रकार जनता के मन में सोई हुई या दबी हुई राष्ट्रीय चिन्तन एवं भावना को उजागर करने में कई नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत माता को गुलामी के जंजीरों से मुक्त कराने हेतु ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध नारा लगाया, आन्दोलन चलाया, जोशपूर्ण भाषण दिया। जेल जाने और प्राण त्यागने के लिए भी तैयार थे। तन मन से किए उनके अथक प्रयासों के विभिन्न साधन एवं माध्यमों में पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम रहा। नेताओं और साहित्यकारों के संदेश एवं विचारों को जनता तक पहुँचाने में पत्रकारिता एक सशक्त वाहिका रही। इसलिए हर प्रान्त में उनकी अपनी प्रान्तीय भाषाओं में पत्रकारिता की शुरुआत हुई।

तमिल द्राविड़ भाषा परिवार की अति प्राचीनतम भाषा है। राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय आन्दोलन, स्वतंत्रता संग्राम में तमिल साहित्य का ही नहीं तमिल पत्रकारिता का भी अद्वितीय स्थान है। निम्न पत्र पत्रिकाएँ स्वतंत्रता संग्राम के महा यज्ञ में अपनी महत्वपूर्ण योगदान से तमिल पत्रकारिता के क्षेत्र में ही नहीं भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में शंखनाद किया है।

स्वदेशीमित्र – दृढ़ नेता, देश भक्त एवं समाज सुधारक जी. सुब्रह्मण्य अय्यर अंग्रेजी साप्ताहिक इन्दु के सम्पादक थे। उन दिनों अंग्रेजी जानने वाले बहुत कम ही थे। इसलिए देश में घटित होने वाली घटनाओं के बारे में जनता को मालूम कराने के लिए, उनकी सुविधा हेतु सुब्रह्मण्य अय्यर ने तमिल भाषा में स्वदेशीमित्र पत्रिका का प्रारम्भ किया। उनकी इस सेवा की प्रशंसा में महाकवि सुब्रह्मण्य भारती और चिदम्बरनार ने उन्हें स्वदेशीमित्र जी. सुब्रह्मण्य अय्यर कहकर पुकारते थे। सन् 1909 में प्रकाशित अपनी पुस्तक जननिर्माणम में अय्यर ने पत्रिकाओं को मातृभाषा में प्रकाशित करने के महत्व एवं आवश्यकता का उल्लेख किया है। तमिलनाडु के जनता के मन में स्वतंत्रता संग्राम और राजनीतिक ज्ञान के बीज बोने में स्वदेशीमित्र की अहम् भूमिका रही।

स्वदेशीमित्र के संवाददाताओं से प्राप्त समाचार इन्दु पत्रिका में भी छपा जाता था। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लेखों को प्रकाशित करने के कारण स्वदेशीमित्र को बन्द करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने बहुत प्रयास किया। इसलिए कई कठिनाइयों के बीच स्वदेशीमित्र का प्रकाशन हो रहा था। सन् 1904 नवम्बर से सन् 1906 अप्रैल तक महाकवि भारतियार स्वदेशीमित्र में काम किए। भारतियार अनूदित समाचारों को उक्त शीर्षकों के साथ प्रकाशित करते थे। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत कविता और भाषण भी पत्रिका में प्रकाशित होती थी।

इन्दिया – तमिल पत्रकारिता के क्षेत्र में एक नया मोड़ लाने का श्रेय तो भारतियार द्वारा प्रकाशित इन्दिया पत्रिका को ही है। तिलक के तीव्र भक्त मण्डैयम परिवार वालों के स्वामित्व में इन्दिया पत्रिका थी। फिर भी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ भारतियार इस पत्रिका में काम करते थे। अपनी जोशपूर्ण भाषा एवं शैली के माध्यम से उन्होंने इन्दिया पत्रिका में अग्नि की वर्षा बरसा

दी। भारतियार के राजनीतिज्ञ गुरु तिलक के मराठा, केसरी, राष्ट्रमत, बंगाल के वीर भूपेन्द्रनाथ दत्त के युगान्तर, कोलकत्ता के प्रमुख पत्रकार ब्रह्मपान्द उपाध्याय के सन्ध्या और विपिन चन्द्रबाल के वन्देमादरम की भाँति इन्दिया पत्रिका भी राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय आन्दोलनों को प्रोत्साहित कर लेखों को प्रकाशित करती थी। सन् 1906 चेन्नै मानिल नेटिव न्यूज पेपर रिपोर्टर में इन्दिया पत्रिका की प्रशंसा में अंग्रेजी के निम्न उल्लेख दृष्टव्य हैं - 'Contains Local And general news, discusses Religious, Social And political matters; Strongly supports the Swadeshi movement; s Tone; Strong.'

इन्दिया साप्ताहिक चेन्नै में ही नहीं पाण्डिचेरी में भी प्रकाशित होती थी। स्वतंत्रता संग्राम में एक तलवार की तरह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध ही नहीं मौन स्वदेशियों को भी आक्रमण कर इन्दिया पत्रिका अपना कर्तव्य निभाती थी। सर्व प्रथम राजनीतिक कार्टूनों का प्रयोग करने का श्रेय भी इन्दिया को ही है। सन् 1908 जून 27 के पत्र में भारतियार ने कार्टून का एक चित्र खींचा और वह इस प्रकार था - उन्होंने अंग्रेजी शोषण को एक बृहत बगुला बकासुर राक्षस के रूप में दिखाया और उस राक्षस के पेट को फाड़ कर निकले श्रीकृष्ण को स्वतंत्रता रूपी देवी की तरह चित्रण किया। अंग्रेजी सरकार ने इन्दिया पत्रिका पर मुकदमा चलायी। जिस के कारण श्रीनिवास अय्यंगार को पाँच साल की सजा मिली और भारतियार को भी पत्रिका छोड़ना पडा।

देसभक्तन - श्री वी. कल्याण सुन्दरनार चेन्नै से प्रकाशित इस दैनिक के संपादक थे। काली देवी के समान देसभक्तन उग्र रूप से अपना कार्य करती थी। इस पत्र की भाषा एवं शैली तो काली देवी के नृत्य से उत्पन्न ज्वाला की तरह रहा। वर्ण भेद को मिटाने में भी इस पत्र की भूमिका रही। तमिल पत्रकारिता के क्षेत्र में शास्त्रीय तमिल भाषा, शैली, उक्ति एवं चिहनों का प्रयोग करने का श्रेय देसभक्तन को ही है। कल्याण सुन्दरनार के बाद वणवेणुसुण्डर अय्यर इसके संपादक बने। अय्यर गाँधीजी के भक्त थे। उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा के तत्वों को सुन्दर रूप से चित्रण किया।

नवशक्ति - सन् 1920 अक्टूबर 22 तिरु.वि.कल्याण सुन्दरर ने नवशक्ति नामक साप्ताहिक का प्रारम्भ किया। स्वतन्त्रता संग्राम के समय एक नई शक्ति के रूप में तमिल में ही नहीं अनेक भारतीय भाषाओं में भी इस नाम से पत्रिका निकली। नवशक्ति गाँधीजी के आदर्शों के आधार पर निकल रही थी। एक बार एनीबेसण्ट ने गाँधीजी के सत्याग्रह के विरुद्ध कुछ बताने के कारण कल्याणसुन्दरर ने उनके विरोध 16.6.19 देसभक्तन पत्रिका में 'हो ईश्वर' शीर्षक लेख में कठोर निन्दा किया था। कल्याणसुन्दरर गाँधीजी के आदर्शों से आकर्षित उनके अनन्य भक्त थे। कल्याणसुन्दरर का कथन है कि गाँधीजी के सभी राजनीतिक आंदोलन श्रेष्ठ हैं। हर नागरिक को उसे अपने धार्मिक व सामाजिक आंदोलन समझकर काम करना चाहिए। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के काल में श्रमिकों का आन्दोलन भी तीव्र रूप से स्वतंत्रता संग्राम में सहायक रहे। इस मजदूर आन्दोलन की प्रारंभ कर नेतृत्व प्रदान करने वालों में प्रमुख थे कल्याणसुन्दरर एमुदलियार, गिरी, शक्करै चेट्टियार, आदिनारायण चेट्टियार आदि।

तमिलनाडु - डॉ.पी.वरदराजुलु इस पत्रिका के संपादक थे। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेने के कारण तीन बार उन्हें जेल जाना पडा। अपने सजीव एवं जोशपूर्ण भाषण से सब को आकर्षित करते थे। इस पत्रिका में विभिन्न प्रकार के कार्टून भी प्रकाशित होती थी। अपनी प्रचार एवं प्रकाशन से काँग्रेस को सबल एवं सफल बनाया।

लोकोबकारी - चेन्नै में सन् 1895 दिसम्बर को यह एक मासिक के रूप में प्रकाशित हुआ। 1895 से 1906 तक स्वयं नटराज अय्यर इसके सम्पादक थे। उनके बाद नेल्लैयप्पर इसके सम्पादक बने। गाँधीजी के काँग्रेस प्रचार में लोकोबकारी का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी देशभक्ति, भाषा के प्रति लगाव, शैव भक्ति, समाज सुधार आदि भावनाओं का प्रतिबिम्ब इस पत्रिका में हम देख सकते हैं। इस पत्रिका का नाम तमिल और अंग्रेजी में ही नहीं हिन्दी भाषा में भी छापा जाता था। श्रीलंका से प्राप्त समाचारों के लिए भी इस में अलग स्थान दिया जाता था।

दिनमणि - प्रसिद्ध पत्रकार एस.सदानन्दन दिनमणि के सम्पादक थे। इनके बाद रामनाथ गोयन्का इसके सम्पादक बने। यह सन् 1934 सितम्बर 11 महाकवि सुब्रह्मण्यम भारतियार के स्मृति दिवस पर प्रारम्भ की गई। इसके लेखक भारती की तरह जोशपूर्ण लेखक थे। इसमें भी कार्टूनों का सफल प्रयोग किया गया। भारतीय काँग्रेस के नेताओं के भाषणों को आकर्षक शीर्षकों के साथ प्रकाशित किया गया। 14.8.1947 में निकली इस पत्र में निम्न लक्ष्य बताया गया था - अभी तक हमारी पूरी शक्ति तो विदेशी शासनों को निकालने में प्रयोग हुआ। वह काम पूर्ण हो गया। आगे हम अपनी शक्ति को गरीबी मिटाने में प्रयोग करेंगे।

सुदन्दिर शंगु - सन् 1930 जनवरी 26 को सुदन्दिर शंगु पत्रिका का प्रकाशन हुआ। काँग्रेस के कार्यकारिणी समिति ने 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया। सुदन्दिर शंगु काँग्रेस के इस निर्णय का प्रचार एवं प्रसार किया। सुदन्दिर शंगु गाँधीजी की बाँसुरी बनकर गूँज रही थी। सप्ताह में तीन बार निकली इस पत्रिका में कार्टून और भारती के राष्ट्रीय गीतों का प्रकाशन हुआ। तमिल पत्रकारिता के क्षेत्र में पहली बार लाख प्रतियों की बिक्री होने वाली पत्रिका यही थी। सुदन्दिरम और जनशक्ति पत्रिकाएँ भी स्वतंत्रता संग्राम में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किये हैं।

स्वतंत्रता की भावना के उदय हो जाने के बाद पत्रिकाओं ने अपना ध्यान भारतीय जनता के प्रति लगाया। राष्ट्रीय पुनर्जागरण काल एवं स्वराज्य आन्दोलन में तीव्रता की भावना के आते आते पत्रिकाओं का प्रचलन भी अधिकाधिक होता गया। जितनी

भी भाषाओं का ज्ञान क्यों न हो पर हर मानव को अपनी मातृभाषा के प्रति एक अलग लगाव एवं आकर्षण तो अवश्य होता है। जनता को उनकी अपनी भाषा में बताई गई संदेश तो उन तक जल्दी पहुँचती है और समझ में भी आ जाती है। तमिल पत्रकारों ने जन-जन के हृदय में देश के प्रति अनुराग करना सिखाया। जनता को देश की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से अवगत कराया। देश की दयनीय एवं दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया। जागरण के साथ देश तथा अपनी संस्कृति का गौरव गान भी गाया।

संदर्भ

- 1 डॉ ईश्वरन, आर. सभापति, इदलियल, पावै पब्लिकेशन्सए चेन्नै, प्रथम संस्करण 2004
- 2 एम. आर. रघुनाथन, तमिल इदलियल वरलारू, चेण्बगा पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण 2008

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'के.के. पब्लिकेशन्स' से प्रकाशित पुस्तक



आधुनिक राष्ट्र निर्माण में मीडिया की भूमिका

निर्मल सिंह

राजकीय महाविद्यालय, लिलहकोठी
चम्बा, हिमाचल प्रदेश

मनुष्य ने जब से समाज में रहना आरंभ किया है उसके सामाजिक संबंधों का दायरा उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। व्यक्ति को अपने चहुंमुखी विकास के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके लिए वह अन्य लोगों से संपर्क स्थापित करता है, सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है। परस्पर संपर्क स्थापित करने तथा सूचनाओं के संप्रेषण के लिए जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है उन्हें आधुनिक शब्दावली में मीडिया की संज्ञा दी गई है। मीडिया लैटिन भाषा के Medium शब्द से बना है जिसका अर्थ है माध्यम। यह मानना कि मीडिया का जन्म आधुनिक युग में हुआ एक भ्रांति के अलावा कुछ नहीं है। प्राचीन काल से ही सूचना एवं प्रसार का कार्य अबाध रूप से होता रहा है। भले ही इसके साधन कम एवं अविकसित थे। आधुनिक युग में मीडिया के अनेक साधन सूचनाओं के संप्रेषण में अपनी महती भूमिका निभा रहे हैं जिन्हें प्रिंट मीडिया एवं इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में वर्गीकृत किया गया है। प्रिंट मीडिया के अन्तर्गत समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं तथा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन इत्यादि प्रमुख हैं।

विज्ञान एवं तकनीकी के इस युग में समाज एवं मानव मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने पूरे विश्व को एक गांव में तबदील कर दिया है। सांस्कृतिक संक्रमण के कारण राष्ट्रवाद की परिभाषा भी बदल चुकी है। नवीन राष्ट्र निर्माण का पूरा जिम्मा आज मीडिया के कंधों पर है। मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं उनके प्रसारण में मीडिया प्रमुख भूमिका निभा रहा है। वसुन्धरा भारद्वाज के शब्दों में “आज मीडिया राष्ट्र और समाज के नव निर्माण का माध्यम बन गया है। मीडिया की भूमिका समाज के समक्ष उस गुरु के समान है जो अपने शिष्यों को चारित्रिक मूल्यों का पतन किए बिना उन्नति के पथ पर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।” वास्तव में आज के युग संदर्भों में मीडिया की भूमिका समाज एवं राष्ट्र के लिए एक आदर्श गुरु की तरह है जो देश के हर नागरिक को एक जिम्मेवार एवं नैतिक दृष्टि से संपन्न व्यक्ति बनाने में अपना योग देता है।

ज्यों-ज्यों समय बदलता गया मीडिया के साधन विकसित होते गए और साथ ही इसकी भूमिका भी बढ़ती गई। व्यक्ति के जीवन में मीडिया के योगदान को इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि वह हर पल प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ढंग से उसे प्रभावित करता है। आज मीडिया के क्रांतिकारी विकास के चलते पूरे विश्व की परिकल्पना एक ‘ग्लोबल विलेज’ के रूप में बन चुकी है। आधुनिक युग में राष्ट्रों की परस्पर बढ़ती निकटता ने सांस्कृतिक संक्रमण को प्रश्रय दिया। सांस्कृतिक संक्रमण के कारण मूल्य प्रभावित हो रहे हैं। ऐसे समय में संस्कृति एवं मूल्यों के संरक्षण तथा सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण का उत्तरदायित्व मीडिया पर है। राष्ट्र को कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान, तकनीकी आदि क्षेत्रों में सबल एवं आत्मनिर्भर बनाने में मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारत महज एक भूमि का टुकड़ा नहीं जीता जागता राष्ट्र पुरुष है। राष्ट्र के रूप में भारत की एकता और अखंडता को तोड़ने का कार्य सदियों से बाह्य एवं आंतरिक शक्तियों ने किया है। आरंभ में विदेशी मुस्लिम आक्रांताओं ने भारत को तोड़ने का प्रयास किया तत्पश्चात् अंग्रेजी हुकूमत ने इस राष्ट्र को खंडित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यदि विदेशी शासन की बात की जाए तो ब्रिटिश हुकूमत ने भारत की एकता को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया। यदि मीडिया न होता तो भारतवासी शायद ही कभी संगठित होकर अंग्रेजों को देश से बाहर कर पाते। ऐसी स्थिति में भारत के स्वाधीनता संग्राम को सफल बनाने में मीडिया की महती भूमिका रही है। तत्कालीन समय में समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के माध्यम से देश में आजादी का बिगुल बजाया गया। राजा राममोहन राय, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, मदनमोहन मालवीय, माखनलाल चतुर्वेदी, महात्मा गांधी जैसे कुशल पत्रकारों ने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से सोए हुए भारतीय जनमानस में स्वाधीनता की नवीन चेतना को विकसित किया।

राजा राममोहन राय ने सन् 1829 में ‘बंगदूत’ नामक समाचार पत्र कलकत्ता से निकालना शुरू किया जो हिन्दी, अंग्रेजी, बांग्ला तथा उर्दू चार भाषाओं में छपता था। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चंद्र की ‘कविवचन सुधा’, ‘हरिश्चंद्र मैगजीन’, मदनमोहन मालवीय का ‘अभ्युदय’, माखनलाल चतुर्वेदी का ‘प्रताप’ और ‘प्रभा’ और महात्मा गांधी का ‘हिन्दी नवजीवन’ आदि कुछ ऐसी पत्र-पत्रिकाएं थीं जिन्होंने ब्रिटिश हुकूमत की भारत विरोधी नीतियों को सामने लाकर देशवासियों को इनके प्रति

जागरूक किया। इन पत्रों एवं पत्रिकाओं का उद्देश्य राष्ट्रोत्थान, जनजागरण, सामाजिक ऐक्य और सद्भावना के संदेश को संप्रेषित करना था। मीडिया और साहित्य स्वतंत्रता आंदोलन में अत्यधिक सक्रिय रहे परिणामस्वरूप अंग्रेजी सरकार को कई क्रांतिकारी पत्रों और इस प्रकार के साहित्य को जप्त करना पड़ा। स्वतंत्रता पूर्व के प्रिंट मीडिया ने भारतीय जनता को स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। लोगों को एकता के सूत्र में बांधकर देश की आजादी में भाग लेने के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में मीडिया की प्रमुख भूमिका रही।

15 अगस्त 1947 को भारत, विभाजन का दंश झेलते हुए आजाद हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश के सामने अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हुईं जिनसे निपटने के लिए गहन सूझ-बूझ एवं विवेक की आवश्यकता थी। ऐसे समय में राष्ट्र के पुनर्निर्माण का सबसे बड़ा दायित्व मीडिया पर आ गया। कुशल एवं बुद्धिजीवी पत्रकारों ने बेरोजगारी, भूखमरी, गरीबी जैसी समस्याओं से जूझती जनता को दृढ़ता से इनका सामना करने का संबल प्रदान किया। वास्तव में समाज एवं राष्ट्र को किसी भी प्रकार की विपरीत परिस्थितियों से उबारने में कुशल पत्रकार एवं पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। संजय शर्मा इस सम्बन्ध में लिखते हैं “समाज के सामने ऐसी समस्याएँ और स्थितियाँ निरंतर ही आती रहती हैं जिनके निवारण के लिए विवेक सम्मत तर्कों और उपायों की आवश्यकता होती है। एक सही पत्रकार का दायित्व यही होता है कि वह उन उचित व सार्थक निर्णयों से समाज को अवगत कराए जिससे जनजीवन व आम जनता की सोच पर सकारात्मक प्रभाव पड़े।” सारांश रूप में यदि कहा जाए तो मीडिया समाज के एक सजग प्रहरी के रूप में कार्य करता है।

कोई भी राष्ट्र कुरीतियों और कुप्रथाओं से अछूता नहीं हो सकता। अच्छाई और बुराई किसी भी समाज के दो अनिवार्य पहलू हैं। भारतीय समाज भी आरंभ से ही अनेक प्रकार की कुरीतियों का शिकार रहा है। दहेज प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथाओं ने सदियों से भारतीय समाज को अपने पाश में बांध रखा है। इसके अतिरिक्त धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के अंधविश्वासों का पालन, छोटी-छोटी प्राकृतिक घटनाओं में किसी दैवीय शक्ति की उपस्थिति मानना, जड़ परंपराओं की विवेकहीन स्वीकृति आदि चीजें भी भारतीय समाज में प्रचलित हैं। इन रूढ़ियों से राष्ट्र को मुक्त करने का कार्य मीडिया ने बखूबी निभाया है। दहेज प्रथा एवं बाल विवाह के असंख्य उदाहरण अभी भी भारतीय समाज में देखने को मिलते हैं। ऐसी कुरीतियों को सामने लाने में मीडिया का मुख्य योगदान है। आए दिन समाचार पत्रों एवं दूरदर्शन ऐसी खबरें प्रसारित करते हैं जिससे सरकार एवं प्रशासन ऐसे मुद्दों पर गंभीरता से विचार करते हुए भविष्य में ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाते हैं। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे इस प्रकार की कुरीतियाँ समाप्त हो रही हैं जो सशक्त राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण है। अतः सामाजिक सुधार में भी मीडिया की भूमिका निर्विवाद रूप से लक्षित होती है।

पत्रकारिता का जन्म ही जनकल्याण के लिए हुआ है। मीडिया ने अपने साधनों के रूप में समाचार पत्रों, रेडियो, टेलीविजन से होते हुए आधुनिक युग में फेसबुक, व्हाट्सएप्प तथा गूगल तक का सफर तय किया है। इन साधनों का जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे ही सूचनाओं का संप्रेषण सरलता और शीघ्रता से होता गया। इंटरनेट के विकास और आम आदमी द्वारा इसके प्रयोग से व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से देश-दुनिया से जुड़ गया। भारत के परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया जैसे फेसबुक और व्हाट्सएप्प ने शासन-प्रशासन से जुड़े मुद्दों में लोगों की प्रत्यक्ष एवं सक्रिय भूमिका को सुनिश्चित करवाया। अन्ना हजारे के जन लोकपाल आंदोलन को सोशल मीडिया से ही प्रोत्साहन मिला। सोशल मीडिया आज पब्लिक ओपीनियन को जानने में मददगार साबित हो रहा है। देश हित से जुड़े किसी मुद्दे पर जनता फेसबुक, व्हाट्सएप्प आदि सोशल साइट्स के माध्यम से अपने विचार साझा कर सकती है। सोशल मीडिया ने आज देश के आखिरी व्यक्ति तक अपनी पहुंच दर्ज करवाई है। जिसका परिणाम यह हुआ कि इसके माध्यम से आम जन में जागरूकता बढ़ी और देश सशक्त हुआ। जनता अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई और राष्ट्र निर्माण में लोगों ने अपनी सहभागिता सुनिश्चित की।

मीडिया किसी भी राष्ट्र को उन्नत और सशक्त बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। समाज, राजनीति, संस्कृति एवं अर्थ आदि के क्षेत्र से जुड़े हर पहलू को सामने लाना इसका मुख्य ध्येय है। आज देश में राजनीति का क्षेत्र सबसे विकृत हुआ है। राजनीति में बढ़ता भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता इत्यादि किसी से छिपी नहीं है। राजनेताओं की अनेक प्रकार के घोटालों में बढ़ती सलिप्तता देश के लिए चिंता का विषय है। ऐसे प्रतिकूल समय में मीडिया ही एक साधन है जो इन भेड़ की खाल में छिपे भेड़ियों से आमजन को बचाता है। मीडिया के डर से कोई भी नेता कुछ हद तक भ्रष्ट आचरण करने से परहेज कर सकता है। कोई भी ऐसा राजनीतिक दल अथवा नेता जो धर्म और जाति को वोट बैंक के लिए इस्तेमाल कर देश की एकता एवं अखंडता को नुकसान पहुंचाना चाहता है उसे मीडिया ही बेनकाब करता है। मीडिया एक दबाव समूह के रूप में काम करते हुए सरकार पर देशहित में कार्य करने के लिए सकारात्मक दबाव बनाता है। वास्तव में मीडिया दबाव समूह की भूमिका निभाते हुए सरकार एवं प्रशासन की जनविरोधी गतिविधियों पर अंकुश लगाता है।

भारत आज भी गांवों में बसता है और लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। ऐसे में आम जनता अपने गांव-देहात तक सीमित रहने के कारण शासन-प्रशासन के कार्यों में अधिक सहभागिता दर्ज नहीं कर पाती। जिसका परिणाम यह होता है कि जनता कई प्रकार की ऐसी कल्याणकारी योजनाओं से अनभिज्ञ होती है जो सरकार ने उनके हित में संचालित की हुई होती है। अतः

मीडिया समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा दूरदर्शन के माध्यम से ऐसी कल्याणकारी योजनाओं से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारियों को जन-जन तक पहुंचाता है। लोग जब इन योजनाओं से लाभान्वित होते हैं तो आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनते हुए देश की उन्नति में अपना सहयोग देते हैं। इसके साथ ही ऐसे लोग जो अत्यंत गरीब एवं पिछड़े हुए हैं और जिन्हें तत्काल सरकारी अथवा प्रशासनिक मदद की दरकार है उन्हें भी मीडिया का ही सहारा मिलता है। मीडियाकर्मी ऐसे वंचित लोगों को रेखांकित करके उनकी समस्याओं को प्रमुखता से उठाते हुए ऐसे मामलों को सरकार एवं प्रशासन के ध्यान में लाता है। इसके लिए मीडिया आम लोगों के मध्य जाकर उनसे संवाद स्थापित करके उनके दुख-तकलीफों को गहनता से समझते हैं। आए दिन समाचार पत्र एवं टीवी चैनल ऐसे मामलों को प्रमुखता से तवज्जो देते हुए देखे जाते हैं। इस संबंध में दीप्ती रुसिया का विचार है “आज मीडिया सिर्फ बिखरे हुए को एकत्र या उपदेश ही नहीं देता, बल्कि अपने श्रोता, दर्शक व पाठकों के बीच जाकर संवाद भी करता है।”³ इस प्रकार मीडिया आज के समय की आवश्यक मांग बन चुकी है जो आम से लेकर खास अर्थात् हर व्यक्ति के हित की बात को उठाते हुए राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका निभाता है।

वर्तमान समय में किसी भी राष्ट्र और समाज की तरक्की और समृद्धि इस बात पर अबलंबित है कि वहां की महिलाएं कितनी सशक्त हैं। आज महिला सशक्तिकरण से ही देश की प्रगति को निर्धारित किया जाता है। महिलाएं किसी भी समाज की आबादी का आधा हिस्सा होती हैं। अतः राष्ट्र की उन्नति को जनसंख्या के इस आधे भाग को नजरअंदाज करके नहीं आंका जा सकता। भारतीय समाज में मध्यकाल में नारी की स्थिति अत्यंत त्रासद थी। महिलाओं को हमेशा दोगले दर्जे का नागरिक मानकर उन्हें विकास से वंचित रखा गया। लेकिन आज यह परिदृश्य काफी हद तक बदल चुका है। नारी की शिक्षा, स्वास्थ्य, और उसके रोजगार के नारे को प्रचारित कर जन-जन तक इसके प्रसारण में मीडिया ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। देवकन्या ठाकुर इस संबंध में लिखती हैं “महिला विकास में मीडिया अथवा जन संचार के विभिन्न माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।”⁴ परिवार एवं समाज में सदियों से हो रहे नारी शोषण एवं उसके उत्पीड़न को मीडिया ने ही सामने लाया है। कन्या भ्रूण हत्या, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, अनमेल विवाह जैसी कुरीतियां किसी भी राष्ट्र को विशृंखलित करने के मुख्य कारक हैं। ये मीडिया के सद्प्रयासों से ही संभव हो पाया है कि इन कुरीतियों को देश-दुनिया के सामने उघाडकर इसमें राजनीतिक हस्तक्षेप संभव हो पाया और ऐसी कुप्रथाओं को पनपने से रोकने के लिए कड़े कानून अस्तित्व में आए। इसी प्रकार महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों को भी मीडिया ने गंभीरता से लिया है। महिला सशक्तिकरण के आंदोलन को सोशल मीडिया द्वारा भी आगे बढ़ाया गया है। इस प्रकार देश को विश्व में प्रथम पंक्ति में खड़ा करने में मीडिया के प्रयास सराहनीय हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मीडिया किसी भी राष्ट्र को सशक्त एवं उन्नत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं सोशल मीडिया ने भारत के नवनिर्माण में सराहनीय योगदान दिया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय का भारत और आज के भारत में जमीन आसमान का अन्तर है। भारत ने आजादी के 70 सालों में ही हर क्षेत्र में आशातीत उन्नति की है जिसमें मीडिया की प्रमुख रही है। देश को अनेक प्रकार की जड़ परंपराओं एवं रूढ़िवादी सोच से मीडिया ने ही आजाद किया है। इसके अतिरिक्त देश के कोने-कोने तक सूचना एवं तकनीकी के प्रसारण को सर्वसुलभ बनाना भी मीडिया की बदैलत संभव हो पाया है। महिला सशक्तिकरण हो अथवा शिक्षा का प्रसार, स्वास्थ्य सेवाओं एवं सूचनाओं का अबाध प्रसारण हो या राजनीतिक जागरूकता मीडिया ने हर क्षेत्र में अपना सर्वोत्तम योगदान दिया है। यहां यह बात भी ध्यातव्य है कि आज मीडिया की कार्यप्रणाली एवं कर्तव्यनिष्ठा पर सवाल उठ रहे हैं। ऐसे में मीडिया को पूरी निष्पक्षता के साथ अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि किसी भी तरह वैश्विक पटल पर भारत की छवि धूमिल न हो। मीडिया मात्र पैसा बटोरने का साधन न बनकर रह जाए और अनावश्यक रूप से बढ़ा-चढ़ा कर किसी खबर को प्रसारित न किया जाए। मीडिया राजनीतिक नियंत्रण से सर्वथा मुक्त होकर आम जन की सेवा करते हुए राष्ट्र के सशक्तिकरण में अपना योगदान दे।

संदर्भ

- 1 दयानन्द गौतम (सं०), मीडिया : साहित्य, समाज एवं सरोकार, अक्षरधाम प्रकाशन, संस्करण : 2013, पृष्ठ 148
- 2 वही पृष्ठ 133
- 3 वही पृष्ठ 172
- 4 वही पृष्ठ 180

भारतेन्दु युगीन हिन्दी पत्रकारिता एवं राष्ट्रवाद

सुमिता त्रिपाठी

शोधार्थी

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

हिन्दी पत्रकारिता के दूसरे दौर का आरंभ 1877 ई. से माना जाता है। हिन्दी साहित्य का यह भारतेन्दु युग था। यह वह समय था जब भारत पूरी तरह से अंग्रेजों के अधीन हो चुका था। अंग्रेजी सरकार भारत को आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर पराधीन करने में सक्रिय थी। गरीब जनता पर करों का बोझ बढ़ता जा रहा था। लोग अपने देश की वस्तुओं के बजाय विदेशी वस्तुओं का आयात कर भारतीय जनता को अधिक कीमत पर वस्तुएं सुलभ कराई जा रही थीं। देश में बेराजगारी बढ़ रही थी।

भारतेन्दु युग में परिस्थितियाँ बहुत विषम थीं। अपने को कुलीन मानने वाले ब्राह्मण समुदाय अन्य समुदायों को हीन समझने लगे थे। जिसके परिणाम स्वरूप आपस में मतभेद पैदा हो गया था। समाज में कुरीतियाँ फैल रही थीं किन्तु भारतेन्दु युगीन पत्रों ने इन पर सदैव चोट की तथा सामाजिक मार्गदर्शन के दायित्व का निर्वहन किया। 'जाति, वर्ग, वर्ण भेद, संप्रदाय भेद ने समाज को महारोगी, निर्बल और क्षीण कर डाला किन्तु पराधीनता पिशाची चंगुल में पड़े हुए इन अनर्थों को हटाने का कभी उद्यम नहीं किया, वरन् शाखा-प्रशाखा के रूप में अनेक कुसंस्कार की नींव इन्हीं जाति भेद संप्रदाय भेद के कारण बड़ी है। नित्य नए होते गए हैं।'¹

भारतेन्दुयुगीन सामाजिक परिवेश जिस प्रकार का था उसमें देसी व्यवसायों को बढ़ावा न मिल सका। ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा विदेशी माल को जिस ढंग से प्रोत्साहित किया जा रहा था तथा हमारे कच्चे माल का भारी निर्यात होकर विदेशी साँचे में ढले माल का आयात हो रहा था और स्वदेशी व्यापार मुरझा रहे थे। फिर भारत वर्ष की आर्थिक स्थिति जर्जर ही थी। भारतेन्दु जी के लिये यह वेदना असहनीय थी। उन्होंने लिखा-

अंग्रेज राज सुख साज, सजै सब भारी।

पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।²

परिस्थितियों को देखते हुए पत्रकारों द्वारा देश को भारतीयता के सूत्र में बांधने के लिए 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान' के नारे लगाये जाने लगे। हिंदी समाचार पत्रों ने विदेशी सत्ता से मुक्ति के लिए सभी स्तरों पर जनचेतना जगाने के लिए अपनी सक्रिय भूमिका निभायी। युग के सभी पत्र-पत्रिकाओं ने जनता में विषम स्थितियों के विरुद्ध संघर्ष के लिए नयी चेतना जगाने का कार्य किया। उस युग की पत्रकारिता की मुख्य धारा नवजागरण ही कही जायेगी। यह कहना अनुचित नहीं है कि 'भारतेन्दु युग के साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी के संपूर्ण राष्ट्रीय प्रयत्न और जातीय चेतना का जीवन्त स्पर्श और यथार्थ आनयन हुआ है।'³

भारतेन्दु युग के पत्रों की मुख्य चेतना राष्ट्रीय भावना जगाना, देश को पराधीनता से मुक्त करना, स्वदेशी चेतना जगाना था। वस्तुतः देश के निर्माण में उस युग के पत्रों की मुख्य भूमिका थी। उन पत्रों ने हिंदी भाषा और साहित्य को नया स्वरूप प्रदान किया। 'कविवचन सुधा' के उद्देश्यों को धीरेन्द्र नाथ सिंह ने इस प्रकार व्यक्त किया- 'उस पत्रिका का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक हो गया। सामाजिक बुराईयाँ दूर करना, राजनीतिक चेतना जगाना, भारत को स्वतंत्र कराना नारी शिक्षा को बढ़ावा देकर पुरुष के समान ही समाज में नारी को स्थान देना उस पत्र का लक्ष्य बन गया।'⁴

कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले पत्रों में 'भारत मित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचित वक्ता' अपनी राजनीतिक तेजास्विता के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध एवं सम्मानित थे। 'भारत-मित्र' तेजस्वी राजनीतिक पत्र था। यह स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन और उसके उपयोग का हिमायती तथा विदेशी वस्तुओं का विरोधी था। उसमें राष्ट्रीय चेतना बड़ी प्रखर थी। अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के अनुसार- 'भारत मित्र राजनीतिक पत्र था, यद्यपि अन्य विषयों के लेख भी उसमें छपते थे। हिंदी का आन्दोलन राजनीतिक ज्ञान का प्रचार और भाषा का विचार उसके कर्तव्य की अवहेलना उसने नहीं की।'⁵

'सार सुधानिधि' का मुख्य उद्देश्य जनता में राजनीतिक चेतना जगाना था। इस पत्र में एक भी ऐसा शब्द नहीं छपता था जिसमें प्रखर राष्ट्रीयता का स्वर न हो। 'उचित वक्ता' का उद्देश्य भी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत था। धीरेन्द्र नाथ सिंह ने भी कहा- 'उचित वक्ता तेजस्वी पत्र था। वह राष्ट्रीय चेतना की बातें बड़ी निर्भीकता से कहता था। सरकार का विरोध करने से नहीं

हिचकता था। पत्र ने देश की दरिद्रता और जनता के शोषण के लिए अंग्रेजी सरकार को दोषी ठहराया अंग्रेजी व्यवसायी भारत से अधिकाधिक धन कमाना चाहते थे। इसलिए देशहित उनके समक्ष नहीं था।⁶

नवजागरण काल के पत्रों में प्रताप नरायण मिश्र द्वारा सम्पादित 'ब्राह्मण' का कोई मिसाल नहीं है। मिश्र जी अपने उद्देश्यों की पूर्ति हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से करते हैं। एन.सी. पन्त के अनुसार- 'देशोन्नति में बाधक विचारों और कार्यों की कटु आलोचना विदेशी सरकार की भर्त्सना, समाज में फैले हुए अंधविश्वासों, मत-मतांतरों और कुरीतियों का जमकर विरोध करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य रहा।'⁷

राष्ट्रीय चेतना का अलख जगाने में बड़े नेताओं ने जो काम किया वही कार्य पत्रकारिता के माध्यम से 'भारतेन्दु मण्डल' के साहित्यकारों ने किया। भारतेन्दु युगीन लगभग सभी लेखकों का अपना पत्र था जिसमें विभिन्न साहित्यिक विधाओं के नवीन हस्ताक्षरों को तक्जो दी जाती थी। साथ ही साथ हिन्दुस्तान में फैली सामाजिक संस्थाओं के बारे में विस्तार से चर्चा मिलती थी।

भारतेन्दु युगीन पत्रिकाओं ने स्वतंत्रता की प्राप्ति कराने में जो सहयोग दिया वह अद्वितीय था। ये पत्रिकाएं स्वार्थ से परे थी। इनका उद्देश्य था समाज को एक अच्छा संदेश देना और स्वतंत्रता के प्रति चेतना जगाना। भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से नौजवानों, किसानों, विद्यार्थियों सब में एक जोश भरने का काम किया और वही जोश आजादी की लड़ाई में काम आया।

भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता का जन्म ऐसे समय में हुआ जिसमें पत्रकारों का दायित्व बहुत बड़ा था। उस संघर्ष काल में भी हिंदी पत्रकारिता ने राष्ट्रीय चेतना का स्वर सर्वोपरि रखा। किसी भी समाज की तत्कालीन दशा का जायजा लेना हो तो उस समय की पत्रिकाओं से लिया जा सकता है। स्वतंत्रता संग्राम के समय पत्र ही जनता तक सरकार के काले कारनामे पहुँचाते थे। 'देश दशा का जितना यथार्थ चित्र इन पत्रों में है और ब्रिटिश सरकार के अनौचित्य का उद्घाटन जिस साहस से इस समय के तेजस्वी पत्रकारों ने किया वह वस्तुतः हर दृष्टि से असाधारण महत्व की बात है।'⁸ पत्रकार जब अनुभवी होगा तब वह स्वयं समझ जाता है कि पाठक वर्ग किस प्रकार का समाचार चाहते हैं। अनुभवी न होना यह दर्शाता है कि पत्रकार समाचारों को उचित स्थान देने में अक्षम हो जाते हैं - 'समाचारों को संकलित करते समय और लिपिबद्ध करते समय उसे घटनास्थल मानवीय रुचि, आत्मीयता और समय का ध्यान रखना चाहिए।'⁹

भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता अनुभवों की खान थी। अनुभवी पत्रकारों के कारण ही तत्कालीन युग की पत्रकारिता शिखर को छूती नजर आयी है। भारतेन्दु युग की पत्रकारिता हिंदी की अपनी वस्तु है। उन पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य देश की उन्नति था, व्यंग्य और हास्य उनके प्राण थे। भविष्य में विश्वास और देश प्रेम की उन पर अमिट छाप है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- 'बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया। हिंदी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर हमारे जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने हरिश्चन्द्र ही हुए।'¹⁰

साहित्य का उद्देश्य देश में बढ़ते असंतोष को प्रकट करना भर न था बल्कि सदियों से चले आ रहे समाज की हड्डियों के बसे हुए सामन्ती कुसंस्कारों से भी मोरचा लेना था। पत्रकारिता ने तत्कालीन दायित्वों को पूरा करने में अपने कदम पीछे नहीं हटायें। भारतेन्दु युग की पत्रकारिता अर्थात् हिंदी के दूसरे दौर की पत्रकारिता की विवेचना करते हुए रामविलास शर्मा जी ने लिखा है- 'पत्र साहित्य की परम्परा न होते हुए भी उसने थोड़े ही वर्षों में जो उन्नति की उसका एक मात्र कारण लेखकों की धुन थी। परिस्थितियाँ कठोर थी परन्तु उन्होंने अपने आपको दृढ़तर सिद्ध किया। यदि उस युग के साहित्यिकों ने यह लगन और फक्कड़पन न प्रकट किया होता तो निश्चय ही वह परिस्थितियों के नीचे कुचल दिये गये होते।'¹¹

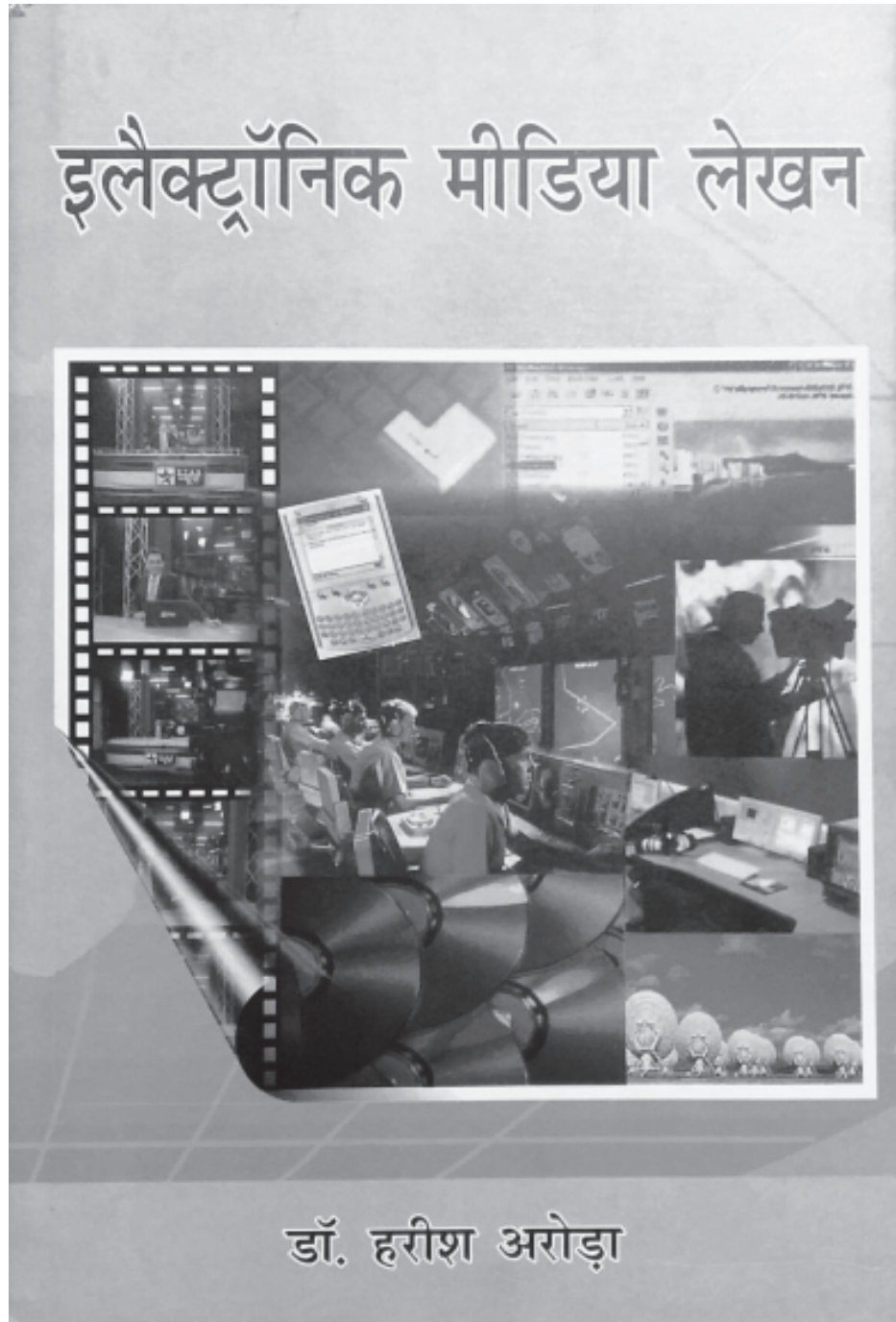
निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भारतेन्दु युग में राष्ट्रवादी देशभक्तों, कांग्रेसजनों और क्रांतिकारियों ने कई समाचार पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित कीं। इन पत्रिकाओं ने ब्रिटिश शासन के शोषण व उपनिवेशवादी स्वरूप का पर्दाफाश किया। साम्राज्य विरोधी जन आंदोलनों का समर्थन किया और राष्ट्रीय युक्ति संघर्ष में शिक्षक संगठनकर्ता, आन्दोलन कर्ता, समीक्षक और प्रचारक की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय पत्रों से स्वाधीनता आन्दोलन में बहुत प्रेरणा व मदद मिली। सरकार द्वारा इन पत्रों का मुँह बंद करने के लिए सख्त विरोधी प्रेस कानून बनाये गये और पुलिस कार्यवाहियाँ कीं। उस समय के अधिकतर समाचार पत्र व्यापारिक लाभ के लिए नहीं बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन के अंग के रूप में प्रकाशित किए गये। ये समाचार पत्र स्वाधीनता के संदेश को आम जनता तक ले गये। ये मूलतः राष्ट्रीय भावनाओं और राष्ट्रभक्ति के विचारों से अनुप्राणित थे।

संदर्भ

- 1 हिंदी प्रदीप, 1 सितंबर 1879 ई., पृष्ठ 13
- 2 कृष चतुर्वेदी, भारतेन्दु युगीन हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ सं. 13
- 3 कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ सं. 117
- 4 धीरेन्द्र नाथ सिंह, हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ सं. 122
- 5 समाचार पत्रों का इतिहास, पृष्ठ सं. 160

- 6 हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ सं. 38
- 7 हिंदी पत्रकारिता का विकास, पृष्ठ सं. 102
- 8 कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ सं. 118
- 9 राजेन्द्र, संवाद और संवाददाता, पृष्ठ सं. 17
- 10 रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ सं. 449-450
- 11 रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग, पृष्ठ सं. 03

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'के.के. पब्लिकेशन्स' से प्रकाशित पुस्तक



स्वतंत्रता पूर्व की पत्रकारिता में राष्ट्रीय जीवन चेतना

डॉ. पूनम सेठी

दी आई.आई.एस.विश्वविद्यालय

जयपुर

मानव जीवन में पत्रकारिता का बहुत महत्व है। आरम्भ में साहित्य और पत्रकारिता एक-दूसरे से घुले-मिले थे। साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की महती भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और हिन्दी पत्रकारिता की कहानी तो भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता की कथा यात्रा भारतीय राष्ट्रीयता के उद्भव और विकास से सम्बद्ध है। हिन्दी पत्रकारिता ने 'राष्ट्र जागृयां वयम्' के शुभ संकल्प को मूर्तिमान करने का अविस्मरणीय कार्य किया। वस्तुतः हिन्दी के सभी पत्र ऋग्वेद के 'यतेमहे स्वराज्ये' (हम स्वराज के लिए सदा प्रयत्न करें) के उद्घोषक रहे हैं। 'हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना, युगबोध और अपने महत् दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। कदाचित इसीलिए विदेशी सरकार की दमन-नीति का उन्हें शिकार होना पड़ा था। उनके नृशंस व्यवहार की यातना झेलनी पड़ी थी। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य निर्माण की चेष्टा और हिंदी प्रचार आन्दोलन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भयंकर कठिनाइयों का सामना करते हुए भी कितना तेज और पुष्ट था इनका साक्ष्य 'भारतमित्र' (सन् 1878 ई.) , 'सारसुधानिधि' (सन् 1879 ई.), और 'उचितवक्ता' (सन् 1880 ई.) के जीर्ण पृष्ठों पर मुखर है।¹

राष्ट्रीय चेतना के विकास में स्वातंत्र्य पूर्व की हिन्दी पत्रकारिता का विशिष्ट योगदान रहा है। उस समय हिन्दी गद्य किसी छोटे उद्देश्य से नहीं बल्कि विशाल राष्ट्रीय चेतना और मानवी संवेदना के प्रचार का साधन बनकर निखरा। 'हिंदी के निर्माण में अनेक दिशाओं से प्रयत्न हुए हैं और गद्य का वर्तमान रूप असंख्य साधनाओं का परिणाम है। किन्तु सबसे बलवती साधना पुराने पत्रकारों की है। कलकत्ता के हिंदी पत्रकारों ने इस गद्य के आरम्भिक रूप को सजाया संवारा और उसे पुनर्जागरण-कालीन भारतीय राष्ट्र की समस्त आकांक्षाओं और सम्भावनाओं के समर्थ माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया।²

भारतीय पत्रकार अपनी राष्ट्रीय भावना, अपनी देशभक्ति के लिए प्रख्यात थे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनके अपूर्व त्याग व बलिदान को भुलाया नहीं जा सकता है। देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष तथा राष्ट्रीयता का प्रचार करना ही वे अपने जीवन का चरम लक्ष्य व पुनीत कर्तव्य समझते थे। प्रारम्भ से ही हिन्दी पत्रकारिता अपने ऊँचे आदर्शों का पालन करती आ रही है। सदा से ही राष्ट्रीयता उसका मुख्य स्वर रहा है और स्वरूप सार्वदेशिक। राष्ट्रीय सम्मान व मर्यादा की रक्षा के लिए पत्रकारों ने अनेक कष्ट और यातनाएँ सहीँ पर वे अपने कर्तव्य से विचलित नहीं हुए। भारतीय पत्रकारों ने पत्रकारिता का मानदण्ड सदैव ऊँचा बनाये रखा। देश की भावात्मक और सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के उनके वे प्रयत्न आज भी महत्वपूर्ण हैं। उन्नीसवीं शती के पत्रों की तेजस्वी वाणी उस युग की राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय जागरण की परिचायक है। तब पत्रकारिता एक मिशन थी तब हर तरह का खतरा उठाने के लिए तैयार राष्ट्रभक्तों ने अपनी जेबों से पैसा खर्च कर सतत् घाटा उठाते हुए पत्रकारिता की मशाल को जलाए रखा। अंग्रेजों के शासन काल में बार-बार प्रेस की जमानत जब्त होने, प्रेस बंद हो जाने एवं स्वयं की गिरफ्तारी की सम्भावनाएँ थीं, पर इस सबके बावजूद उस पीढ़ी के सम्माननीय पत्रकारों ने कभी हिम्मत नहीं हारी, विकट व विषम परिस्थितियों का डटकर सामना किया और कभी लेखन कार्य बंद नहीं किया।

उस युग की पत्रकारिता एक प्रकार से एकसूत्री पत्रकारिता थी। ब्रिटिश शासन का विरोध और स्वातंत्र्य चेतना का विकास ही उसका आदर्श था। उस समय के कई पत्रकार तो अपनी प्रेस में स्वयं अखबार छाप कर उसकी प्रतियाँ झोले में रखकर उसे कंधे पर लटकाये घर-घर जाकर वाचकों के यहाँ पहुँचाकर सुप्त भारतीयों की राष्ट्रीय चेतना को जगाने का कार्य करते थे। इनकी पत्रकारिता के महत् उद्देश्य थे- देश को अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त कराना, राष्ट्रीय अस्मिता का बोध कराना, घर-घर में राष्ट्रभक्ति की लहर जगाना, राष्ट्रभाषा को एक प्रांजल रूप प्रदान करना आदि। मात्र राष्ट्रसेवा ही उनका उद्देश्य था। इस प्रेरणा से प्रेरित होकर ही सम्पन्न लोग अखबार निकालने के लिए प्रेस की व्यवस्था करते थे और बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग ऊँचे वेतन वाली नौकरियों को छोड़कर 20-25 रू. की पत्रकारिता को स्वीकार करते थे। इस पत्रकारिता ने हमें महान, त्यागी व विद्वान पत्रकार दिए जिन्होंने अज्ञान की नींद में सोये हुए भारतीयों में स्वाधीन चेतना को जगाने का महनीय कार्य किया।

स्वतंत्रता पूर्व की हिन्दी पत्रकारिता को तीन कालखण्डों में बांटा जा सकता है-

1. उद्भव काल 1826-1884, उद्बोधन काल
2. विकास काल, प्रथम चरण 1885-1919, जागरण काल
3. विकास काल, द्वितीय चरण 1920-1947, क्रांतिकाल

हिन्दी पत्रकारिता का उद्बोधन काल - हिन्दी पत्रकारिता के उद्बोधन काल में पूरा राष्ट्र एक नई करवट ले रहा था। यह वह समय था जब भारत में आधुनिकता का प्रवेश हो रहा था। आधुनिकता भारतीय नव जागरण की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आधुनिकता से अभिप्राय है एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण जो पूर्व और पश्चिम के बीच सांस्कृतिक सेतु बना। अंग्रेजों के सम्पर्क से तथा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली द्वारा ज्ञान-विज्ञान के नये आयाम उद्घाटित हुए। प्रेस व समाचार पत्रों से विचारों के प्रचार-प्रसार में सुविधा हुई। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, राधा-स्वामी सत्संग, बहाबी आंदोलन, अहमदिया आंदोलन और दारूलउलुम जैसी संस्थाओं द्वारा प्रगतिवादी विचारों का संचार हुआ तथा स्वदेश प्रेम की भावना का उन्मेष हुआ। इन परिवर्तित परिस्थितियों से पत्रकारिता व साहित्य दोनों ही प्रभावित हुए। विचारों में परिवर्तन हुआ तथा विषयवस्तु में व्यापकता के साथ साहित्यकारों व पत्रकारों की दृष्टि यथार्थवादी हुई। साहित्य व जीवन में घनिष्टता हुई तथा कथ्य व शिल्प के क्षेत्र में नये प्रतिमानों की स्थापना हुई। मातृभाषा तथा मातृभूमि की महिमा का ज्ञान हुआ तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की होड़ बढ़ी। पत्रकारों ने देश की दुर्बल्यवस्था को मिटाने के लिए जन-सामान्य को उद्बोधित किया।

सन 1857 में अंग्रेजों के भयानक अत्याचार से सारे देशवासी परिचित हो गये। अब उन्हें विदेशी शासन की क्रूरता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगी। भारत के गौरवमय अतीत के प्रतिप्रेम, देश की वर्तमान दुर्दशा पर अश्रुपात तथा देश की प्राकृतिक सुषमा के प्रति आस्था के भाव से भारतीयता की पुष्टि हुई। सामाजिक सुधार भी राष्ट्रीय चेतना का एक अंग था क्योंकि भारतवर्ष की उन्नति हेतु सामाजिक सुधार व सामाजिक कुप्रथाओं का परिहार भी आवश्यक था। इस सुधारवादी आंदोलन के आदि संचालक और भारतीय नवजागरण के उन्नायक थे **राजा राम मोहन राय**। भारतीयों की हीन मनोवृत्ति के विरुद्ध उनमें सांस्कृतिक जागरण और आस्था का भाव भरने के लिए प्रयासरत यह अनोखा व्यक्तित्व अंग्रेजी, बंगला, फारसी तथा संस्कृत आदि अनेक भाषाओं का ज्ञाता था। उन्होंने अंग्रेजी - शिक्षा के प्रचार - प्रसार का समर्थन कर अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया क्योंकि आधुनिकता के मूल वैशिष्ट्य को पूरी तरह आत्मसात करने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक था। राजाराम मोहन राय ने सम्पूर्ण आधुनिक बोध को आत्मसात कर भारतीय नवजागरण को नयी दिशा प्रदान की। उनमें प्राचीन व नवीन का अद्भुत सम्मिश्रण था। भारतीय विचारधारा और दर्शन के वे मर्मज्ञ विद्वान थे। इनके साथ ही एक ऐसी स्वस्थपरम्परा अविर्भूत हुई जिसने आधुनिक भारत व प्रकारान्तर से सम्पूर्ण मानवजाति को उपकृत किया। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, रविन्द्रनाथ ठाकुर और श्री अरविन्द इसी परम्परा के उन्नायक मनीषी थे।

राजाराम मोहन राय ने अपने उदार एवं सुधारवादी विचारों के पोषण के लिए समाचार पत्रों का भी प्रकाशन किया। अपने लक्ष्यों व उद्देश्यों को सामने रखते हुए उन्होंने 4 दिसम्बर 1821 से बंगला साप्ताहिक **संवाद कौमुदी** का प्रकाशन किया। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने सती प्रथा का तीव्र विरोध किया। 12 अप्रैल 1822 को **मिरातुल अखबार** नाम से फारसी पत्र का आरम्भ कर उन्होंने अपने विचारों को व्यापकता प्रदान की। सन 1829 में राय ने अंग्रेजी में **बंगाल हेराल्ड** का भी प्रकाशन शुरू किया तो 10 मई 1829 में बंगला, फारसी तथा हिन्दी भाषा में **बंगदूत** पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस प्रकार श्री राय ने अपने पत्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों और कुरीतियों पर करार प्रहार किए। उनके प्रगतिशील विचारों से समाज के पुरातनपंथी तथा अनुदार विचारों के लोग तिलमिला उठे। सौम्येन्द्र नाथ ठाकुर लिखते हैं- 'यह याद रखना आवश्यक है कि जितने प्रकाशन राजा राम मोहन राय ने शुरू किए उन सबमें महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक हितों का समर्थन रहता था। प्रेस को सामाजिक उद्देश्य से प्रतिबद्ध राम मोहन राय ने किया। धर्मयुद्ध की जो परम्परा उन्होंने डाली थी, वह स्वतंत्रता आन्दोलन के समय में बहुत शक्तिशाली हो गयी।'³

प्रेस की स्थापना हो जाने के बाद अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी, फारसी तथा उर्दू में दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र निकलने लगे। इस उद्बोधन काल के प्रमुख पत्र थे- **उदन्त मार्तण्ड** (1826, कलकत्ता), **बंगदूत** (1829, कलकत्ता), **बनारस अखबार** (1845, बनारस), **ज्ञानदीपक** (1846, कलकत्ता), **मालवा अखबार** (1848, मालवा), **बुद्धि विलास** (1852, आगरा), **ग्वालियर गजट** (1853, ग्वालियर), **प्रजा हितैषी** (1853, आगरा), **समाचार सुधा वर्षण** (1854, कलकत्ता), **पयामें आजादी** (1857, दिल्ली), **धर्मप्रकाश** (1859, अहमदाबाद), **सूरज प्रकाश** (1861, आगरा), **लोकहित** (1863, आगरा), **जोधपुर गर्वन्मेन्ट गजट** (1864, जोधपुर), **ज्ञानप्रदयिनी पत्रिका** (1866, लाहौर), **मारवाड़ गजट** (1866, जोधपुर) आदि। **पयामें आजादी** इस दौर का एक प्रमुख पत्र था। अपने नाम के अनुरूप ही यह पत्र आजादी का संदेश लेकर आया। स्वतंत्रता का शंखनाद करने वाले इस पत्र ने तत्कालीन स्थितियों पर खुलकर लिखा तथा सरकार की नीतियों की निर्भीक आलोचना की। 1858 में ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बंगाली पत्र **सोमप्रकाश** का प्रकाशन किया जो अपनी निर्भीक व साहसिक आलोचना के लिए प्रसिद्ध हुआ।

हिंदी पत्रकारिता के स्तम्भ : भारतेन्दु - हिंदी पत्रकारिता की इतिहास यात्रा में भारतेन्दु का उदय एक क्रांतिकारी घटना है। उन्होंने साहित्य जगत में नयी प्रवृत्तियों और विधाओं को विकसित किया। साहित्य जगत में हिन्दी की प्राण प्रतिष्ठा करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को ही है। हिंदी गद्य व पद्य दोनों को ही इन्होंने परिपुष्ट किया। भारतेन्दु की सबसे बड़ी देन है

हिंदी को परिष्कृत रूप प्रदान करना। सन 1873 की हरिश्चंद्र चन्द्रिका में उन्होंने स्वतः लिखा, 'हिंदी नयी चाल में ढली'। उनके पहले हिंदी भाषा का कोई सर्वमान्य प्रामाणिक रूप नहीं था। हिंदी कई अतिवादों से ग्रस्त थी। सर्वप्रथम भारतेन्दु ने ही भाषा में संक्रमण की स्थिति को समाप्त किया, एक मध्यम मार्ग को अपनाया तथा उसे सर्वसम्मत स्वरूप प्रदान किया।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी पत्रकारिता को भी नयी दिशा भारतेन्दु ने प्रदान की। इस काल में प्रकाशित होने वाली सभी पत्रिकाओं से भारतेन्दु किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध अवश्य रहे। भारतीय जन मानस को इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारतेन्दु ने चिन्तनशील व उदार बनाने तथा राष्ट्रीय चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। जातीय उन्नयन के प्रति समर्पित इन पत्र-पत्रिकाओं में जो सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबद्धता दिखाई देती है उसके मूल में भारतेन्दु की ही अद्भुत प्रेरणा शक्ति कार्य कर रही थी।

इन पत्र-पत्रिकाओं में जहाँ ब्रिटिश सरकार की कड़ी आलोचना होती थी वहीं राजनीतिक-सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं विसंगतियों पर भी करारे व्यंग्य होते थे। भारत की तत्कालीन स्थिति पर दुख प्रकट करते हुए भारतेन्दु ने लिखा है-

**अब जहं देखुंह वंह दुखहि दुख दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥**

इस प्रकार भारतेन्दु युगीन चेतना राष्ट्रीयता एवं सामाजिकता की भावना से सम्पृक्त है। सन 1990 में सरस्वती पत्रिका के माध्यम से जिस साहित्यिक पत्रकारिता की सशक्त धारा प्रवाहित हुई उसकी पृष्ठभूमि इस युग की पत्र-पत्रिकाओं ने तैयार कर दी थी। 15 अगस्त 1868 में काशी से कविवचन सुधा का प्रकाशन कर भारतेन्दु ने पत्रकारिता के क्षेत्र में नया मार्ग प्रशस्त किया। यह एक ऐसी सर्वांग पत्रिका थी जिसने पत्रकारिता के स्वरूप को हिन्दी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

स्वतंत्र भारत की घोषणा उस दौर में करना भारतेन्दु जैसे साहसी एवं निर्भीक पत्रकार के लिए ही सम्भव था। स्वदेशी आंदोलन को प्रारम्भ करने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। 23 मार्च 1874 को कवि वचन सुधा के माध्यम से उन्होंने देश की जनता से देश हित के लिए स्वदेशी वस्त्र पहनने का आह्वान किया। डॉ. राम विलास शर्मा ने राष्ट्रीय आंदोलन में भारतेन्दु के इस योगदान को रेखांकित करते हुए लिखा है- 'कांग्रेस ने अभी स्वदेशी आंदोलन विधिपूर्वक आरम्भ नहीं किया था, न बंग-भंग आंदोलन ने जन्म लिया था। केवल हिंदी में भारतेन्दु ने स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात बहुत पहले कर दिया था।'¹⁴

महर्षि दयानंद द्वारा संस्थापित आर्य समाज और उसकी विविध पत्र-पत्रिकाओं ने भी हिंदी और हिन्दुस्तान की भावना को जितना प्रबल बनाया उतना अन्य किसी संस्था ने नहीं। उर्दू के मध्य हिंदी की नींव को सुदृढ़ करने में आर्य समाज अग्रणी है। आर्य समाज के समर्पित अनुयायियों ने हिंदी को आर्य भाषा के रूप में पल्लवित व पुष्पित किया तथा हिंदी को सर्वथा नवीन विचार भूमि प्रदान की। सभी ने हिंदी को समाज सुधार तथा स्वतंत्रता की संवाहक बनाया। आर्य समाज के सभी सदस्य महर्षि दयानंद के इस कथन को साकार देखना चाहते थे- 'भाई मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने व बोलने लगेंगे, वे इस कार्य भाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे, अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।'

आर्यवृत्त (1878), आर्यमित्र (1890), आर्यपत्र (1895), आर्य भास्कर (1896), आर्यसेवक (1900), आर्य वनिता (1902), आर्य दर्पण (1906), आर्य कुमार (1917) आदि कुछ ऐसे पत्र हैं जिनसे भारतवासियों ने निर्भीकता तथा साहस का पाठ पढ़ा। सतत जागरूक रहकर भारत को मुक्त कराने का मंत्र गुंजायमान करने वाले हिंदी के ये पत्र सदैव स्मरणीय रहेंगे।

जागरण काल - पत्र समाज को जागरूक बनाते हैं परन्तु पत्रों को संगठित होकर स्वकर्मनिरत होने की प्रेरणा जागरण काल के पत्रों ने दी। इस समय के सुयोग्य व समर्पित सम्पादकों ने अपने पत्रों के द्वारा हिंदी निष्ठा एवं स्वदेश भक्ति का पाठ पढ़ाया, जिससे भारत में चतुर्दिक जागरण की लहर दौड़ पड़ी। ब्रिटिश शासन की दुर्दमनीय नीतियों से आक्रांत समाज को चैतन्य बनाने, उन्हें सतत जगाने और जुझारू बनाने की दिशा में जागरण काल की पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत के अतीतकालीन वैभव तथा विशिष्टताओं का अनावरण कर 1885 से 1919 तक प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने जागरण का प्रकाश बिखेरा है। महाकवि निराला ने जागो फिर एक बार कविता के माध्यम से मोह अज्ञान व पराधीनता की नींद में सोए भारतवासियों को जगाने का प्रयास किया तो बालकृष्ण शर्मा नवीन की निम्न पंक्तियों ने भी जनमानस को उत्तेजित व उद्वेलित कर दिया-

जागो जागो अमृत सुवन तुम
जागो-जागो सोने वालो
जागो तुम सिंहों के छौनो
जागो सब कुछ खोने वालो।

कांग्रेस की स्थापना के बाद महामना मदन मोहन मालवीय और लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र बालमुकुन्द गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, झावरमल्ल शर्मा, श्रद्धानंद, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराडकर, मूलचन्द अग्रवाल, दशरथ प्रसाद द्विवेदी माधवराव सप्रे जैसे राष्ट्रभक्त सम्पादकों ने भारत में जागरण की चेतना जगा दी। हिंदी प्रदीप, इन्दु, समालोचक, प्रभा, मर्यादा, माधुरी, प्रताप, अभ्युदय, कर्मवीर, स्वदेश, ज्ञान शक्ति आदि पत्र-पत्रिकाओं

ने हिंदी भाषा के विकास तथा राष्ट्रीय चेतना को जगाने में अविस्मरणीय योगदान दिया। सरस्वती पत्रिका तथा नागरी प्रचारिणी सभा के माध्यम से हिंदी को व्याकरणनिष्ठ, संयमित, सरल, स्पष्ट एवं प्रवाहपूर्ण बनाने का सफल प्रयास हुआ। भाषा के प्रयोगों में एकरूपता लाने, तत्सम प्रधान समास बहुल तथा विचारप्रधान सुबोध और रमणीय गद्य शैली को अपनाने की दिशा में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की अहम भूमिका थी।

1 सितम्बर 1877 में प्रकाशित **हिंदी प्रदीप** पं. बालकृष्ण भट्ट की सम्पादकीय प्रतिभा का अनुपम उदाहरण है। लगभग 33 वर्ष तक निरन्तर प्रकाशित इस पत्र ने अंग्रेज सरकार की नीतियों का जमकर विरोध किया। समकालीन कुछ पत्रों की नरम नीति तथा **भारत-बन्धु** आदि का भी इसने घोर विरोध किया तथा जनशक्ति को संगठित होने की प्रेरणा दी। 15 मार्च 1883 में कानपुर से प्रकाशित प्रतापनारायण मिश्र का पत्र **ब्राह्मण** हिंदी, हिन्दु व हिन्दुस्तान की गरिमा का प्रतीक था। ब्रिटिश सरकार की भाषा, प्रेस कर आदि नीतियों पर इसने जमकर प्रहार किया। कालाकांकर से 1885 में हिंदी दैनिक **हिन्दोस्थान** का प्रकाशन राजा रामपाल सिंह द्वारा किया गया। पं. मदन मोहन मालवीय इसके प्रथम सम्पादक थे।

भारत में अपनी शक्ति एवं सत्ता को कायम रखने के लिए सभी प्रकार के हथकण्डे ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाये गये। भारतीयों को हतोत्साहित करने तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रहार करने की दृष्टि से जुलाई 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी गयी। बंग-भंग आंदोलन की प्रेरणा से भी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। **संध्या**, **युगान्तर**, **बन्देमातरम** (अंग्रेजी भाषा में), **नवशक्ति** आदि पत्र-पत्रिकाएँ अपनी उग्र राष्ट्रीयता के कारण विशेष लोकप्रिय होने लगीं। **युगान्तर** ने जहाँ पूर्ण स्वतंत्रता का नारा दिया वहीं महर्षि अरविन्द ने अपने पत्र **बन्देमातरम्** में ब्रिटिश सरकार को यह बता दिया कि भारत भारतीयों के लिए है।

क्रांति काल - क्रांति मचाने वाली हिंदी पत्रकारिता - बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों की पत्रकारिता में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस काल में प्रकाशित पत्रों ने खुलकर पूरी शक्ति के साथ क्रांति व बगावत की वकालत की। यह युग हिंसा और विद्रोह का युग था। 1920 से 1947 तक पूरा भारत असहयोग आंदोलन, चौरी-चौरा काण्ड, लाहौर अधिवेशन की उद्घोषणा, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक आंदोलन एवं साम्प्रदायिक दंगों के कारण उन्मथित था। ऐसी ही विकट परिस्थिति में महात्मा गाँधी ने राष्ट्र का नेतृत्व किया। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को जनसाधारण का आंदोलन बनाया। स्वतंत्रता संग्राम में अस्त्र-शस्त्र के स्थान पर सत्य, अहिंसा, असहयोग, सविनय अवज्ञा, अनशन एवं प्रार्थना का प्रयोग करने वाले गाँधी ने अभूतपूर्व ढंग से भारत को स्वतंत्र कराया। हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक होने के साथ ही वे सादा जीवन उच्च विचार के मंत्र दाता थे। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन किया तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दिया। वास्तव में क्रांतिकाल के शीर्षस्थ नायक महात्मा गाँधी ही थे।

महात्मा गाँधी एक सिद्धहस्त पत्रकार थे। उन्होंने पत्रकारिता को वैचारिक क्रांति का एक सशक्त माध्यम माना। सत्याग्रह, यंग इंडिया, नव-जीवन, हरिजन आदि पत्रों के माध्यम से एक सजग पत्रकार के रूप में गाँधी जी भारतीय जनमानस पर छा गये। उनके व्यक्तित्व ने जनता पर जादू कर दिया। उनकी आवाज पर स्वतंत्रता प्रेमी मर-मिटने को तैयार हो गये। आज, स्वतंत्र, कर्मवीर, सैनिक, महारथी, संघर्ष, विप्लव, प्रजामण्डल, प्रताप, स्वदेश, समय, अर्जुन, हंस, जागरण, सेनापति, पंजाब केसरी, आदि ने राजस्थान केसरी के स्वर में स्वर मिलाया-

सम्भलों ब्रह्माण्ड बदलता है, प्यारी आँधी का झोंका है।

सोने की लंका गिरती है, गहरा गाँधी का झोंका है।

मतवाला, सुधा, चाँद, माधुरी, कल्याण, विशाल भारत आदि पत्रों ने युग की साहित्यिक चेतना को रेखांकित किया तथा राजनीतिक परिवेश को भी समुन्नत बनाने में अविस्मरणीय भूमिका का निर्वहन किया। इस काल की पत्र-पत्रिकाएँ शब्दों के माध्यम से मानों आग उगल रही थीं। आजादी से कम किसी भी स्तर पर कोई समझौता स्वीकार्य नहीं था। स्वतंत्रता आंदोलन को एक प्रकार से धर्मयुद्ध की संज्ञा देकर इस युग की पत्रकारिता ने जन के सहयोग का आहवाहन किया।

इस काल की राजनीति में लोकमान्य तिलक भी भारतीय रंगमंच पर छाए हुए थे। स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे- तिलक का यह नारा जन-जन के कण्ठ से उच्चरित होने लगा। देश की युवा पीढ़ी तिलक के साथ ही पूर्ण स्वराज्य के इस आंदोलन के प्रति पूरी तरह समर्पित हो गई। देश के इन नौजवान क्रांतिकारियों के हृदय में हिलोरें मारती भारतीय राष्ट्रप्रेम तथा कर्त्तव्यनिष्ठा की भावनाओं को केसरी, मराठा जैसे पत्रों ने व्यक्त किया। तिलक की निर्भीक लेखनी और वाणी ने समाज की जड़ता को तोड़ा एवं स्वराज्य प्राप्ति की तीव्र ललक को उन्होंने जन-जन के हृदय में प्रज्वलित किया। तिलक की लेखनी में जबरदस्त प्रभाव निहित था। एक-एक शब्द आक्रामक था तथा सीधा प्रहार करता था।

सन 1907 में श्री अम्बिका प्रसाद बाजपेयी के सम्पादन-प्रकाशन में निकला पत्र **नृसिंह** भी एक तेजस्वी पत्र था। यह पत्र मात्र देश की दुर्दशा का चित्रण करने तक ही सीमित नहीं रहा। उसने देश के लोगों में आत्माभिमान तथा कर्म में प्रवृत्त होने की प्रेरणा भी दी। इलाहाबाद से श्री शक्ति नारायण के सम्पादन में प्रकाशित होने वाला पत्र **स्वराज्य** अपनी उग्रवादी विचारधारा के कारण सरकारी कोप का भाजन बना। स्वतंत्रता का तुमुल घोष करने वाले इस पत्र के सम्पादक का एक विज्ञापन इस प्रकार निकाला गया - “चाहिए स्वराज्य के लिए एक सम्पादक। वेतन दो सूखी रोटियाँ, एक ग्लास ठण्डा पानी और हर सम्पादकीयके लिए दस साल जेल।” इस विज्ञापन से यह स्पष्ट है कि उस समय सम्पादक का कार्य कितना जोखिम भरा

था। विज्ञापन की इन पंक्तियों में स्वतंत्रता प्राप्ति का अप्रतिम जोश स्पष्ट रूप से मुखरित हो रहा है।

सन 1907 में प्रयाग से निकलने वाले अभ्युदय नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक मदन मोहन मालवीय थे। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में अभ्युदय सदा स्मरणीय रहेगा। निर्भीकता, राष्ट्रोत्थान, सहिष्णुता, सद्भावना, समाचार पत्रों की स्वतंत्रता तथा सामाजिक सुधार अभ्युदय की नीति के मूल आधार थे। सन 1909 में कर्मयोगी का प्रकाशन भी प्रयाग से शुरू हुआ। अल्पकाल में ही कर्मयोगी के तीन सम्पादकों को लम्बी सजाएँ मिली किन्तु इसके उपरान्त भी जब पत्र का प्रकाशन यथावत रहा तो सरकार ने जमानत मांग कर इसके प्रकाशन को बन्द कर दिया। सन 1913 में कानपुर से साप्ताहिक प्रताप का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है जिसके प्रथम सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी थे। हिंदी पत्रकारिता में प्रताप का प्रकाशन युगान्तरकारी कदम था। प्रताप और जनआंदोलन पर्याय बन गए।

साप्ताहिक स्वदेश का प्रकाशन सन 1919 में गोरखपुर से हुआ। सन 1920 से 1926 तक प्रभा का प्रकाशन कानपुर के प्रताप प्रेस से हुआ और गणेश शंकर विद्यार्थी एवं बालकृष्ण शर्मा नवीन इसके सम्पादक रहे। यह एक साहित्यिक पत्रिका थी जिसके स्वर में निर्भीकता, साहसिकता, देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता का गौरवपूर्ण समावेश था। इस युग के अन्य प्रमुख पत्र थे— आज (बनारस 1920), स्वतंत्र (कलकत्ता, 1920), कर्मवीर (जबलपुर, 1920), सैनिक (आगरा, 1925), महारथी (दिल्ली, 1925), विप्लव (लखनऊ 1938), नवजीवन (1939), प्रजामंडल पत्रिका (इन्दौर, 1940), संसार (काशी 1947), आदि। 5 सितम्बर 1920 को आज का प्रकाशन एक ऐतिहासिक घटना थी। देश में स्वतंत्रता की अलख जगाते हुए आज ने राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना को अधिक वेगवान बनाया। पराङ्कर जी ने आज को क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान किया। जब यह पत्र सरकार द्वारा प्रतिबंधित हो गया तो पराङ्कर जी ने रणभेरी नामक गुप्त प्रकाशन शुरू किया। रणभेरी की हुंकार कभी बंद नहीं हुई। इसके प्रकाशनों को बंद करने के लिए विदेशी सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। रणभेरी, तूफान तथा शंखनाद आदि गुप्त पत्र पूरी कर्मठता व शक्ति से जन जागरण के कार्य के प्रति समर्पित रहे। विष्णु पराङ्कर जी के सम्पादकीयों में आग की गर्मी थी, हृदय की मार्मिकता थी तथा देश के प्रति सर्वस्व न्यौछावर कर देने की अमिट ललक थी। नवजाग्रति तथा राष्ट्रीय प्रेम के संदेशवाहक ये सम्पादकीय आज भी हमारी प्रेरणा के स्रोत हैं। यशपाल का विप्लव एक विप्लवकारी पत्र था। राजनीति से लेकर साहित्यिक विषयों को अपने में समेटे हुए इस पत्र ने जनता में अपने अधिकारों के प्रति ललक पैदा की तथा संघर्ष की प्रेरणा दी।

गाँधी युग में राजनीतिक पत्रकारिता, साहित्यिक पत्रकारिता से स्पष्ट रूप से अलग हुई। मतवाला, सुधा, चाँद, विशाल भारत, हंस आदि पत्रों ने इस युग की साहित्यिक चेतना को तो रेखांकित किया ही, साथ ही राजनीतिक परिवेश को भी अभिव्यक्ति प्रदान की। क्रांति मचा देने वाली इस हिंदी पत्रकारिता में शामिल पत्रों की सूची बहुत लम्बी है। इन पत्रों में विविध आंदोलनों की गतिविधियों, सरकारी दमन, स्वयंसेवकों एवं नेताओं की गिरफ्तारी, राष्ट्रीय नेताओं के संदेश, आन्दोलन को उत्प्रेरित करने वाले समाचार तथा राष्ट्र निष्ठा संबंधी लेखों को महत्व के साथ प्रकाशित किया जाता था। चरखा, कताई-बुनाई, शराबबंदी, अस्पृश्यता निवारण, स्वदेशी प्रचार, समाज सुधार के रचनात्मक कार्यक्रमों को प्रमुखता से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था।

निष्कर्षतः 'भारतीय पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों की विकास भूमियाँ एक-दूसरे की सहायक रही हैं। यदि पत्रकारिता को राष्ट्रीयता ने प्रवर्द्धन दिया तो पत्रकारिता ने भी राष्ट्रीयता के विकास की अनुकूल भूमि तैयार की।'⁵ हिंदी पत्रकारिता का उदय राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक चेतना को समुन्नत करने के लिए ही हुआ। व्यावसायिक उद्देश्यों से दूर त्याग, तपस्या और बलिदान की भावना इसमें मुख्य थी, हिंदी पत्रकारिता ने दिशाहीन समाज को दिशा निर्देशित किया तथा अतीत के गौरव से परिचित कराया। देश की चेतना को झंकृत करके निराश हृदयों में आशा का संचार करने तथा जड़ और मृतप्राय भावनाओं में क्रांति अंकुरित करने में पत्रकारिता का विशिष्ट योगदान रहा।

उस समय के पत्रकारों के लिए राष्ट्रीयता फैशन और व्यवसाय नहीं था अपितु एक पवित्र व्रत और साधना थी। स्वतंत्रतापूर्व के समस्त पत्रकारों ने अवहेलना, अन्याय, शोषण एवं दमन के प्रतिकार हेतु विचारों का एक नया संस्कार जगाया तथा न्याय प्राप्ति के लिए संघर्ष की ज्वाला प्रज्वलित की। पत्रकारों ने अपने तप तथा उत्सर्ग द्वारा कंटकाकीर्ण मार्ग की ओर निरन्तर बढ़ते रहने का अनुकरणीय कार्य किया। भारत की स्वतंत्रता तथा राष्ट्र की मर्यादा हेतु अनेक पत्रकारों ने अपनी जान की बाजी लगा दी। इस प्रकार 1947 तक की पत्रकारिता का इतिहास क्रांति का इतिहास रहा है। पत्रों की साधना से ही राष्ट्र स्वतंत्र हुआ तथा हम विश्व मंच पर प्रतिष्ठित हुए।

संदर्भ

1. हिंदी पत्रकारिता- कृष्ण बिहारी मिश्र, लेखक -हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-7
2. हिंदी पत्रकारिता- कृष्ण बिहारी मिश्र, लेखक -हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-7-8
3. राजा राम मोहन राय- सौम्येन्द्र नाथ ठाकुर, पृष्ठ-131
4. डॉ. राम विलास शर्मा- भारतेन्दु युग
5. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र : हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 48

अस्तित्व की खोज पर आधारित भारतीय फिल्म क्वीन और अमेरिकी फिल्म वाइल्ड

डॉ स्वाति शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
द आई आई एस यूनिवर्सिटी, जयपुर

अपने अस्तित्व को खोजती हुई रानी जहाँ अपनी टूटी हुई शादी से दुःखी होकर लंदन अपने हनीमून पर अकेली ही जाती है वहीं दूसरी ओर अपनी माँ बॉबी की मृत्यु के अवसाद को मिटाने के लिए शेरिल स्टेट 1100 मीट पेसेफिक की आत्मखोजी यात्रा पर अकेली निकल पड़ती है। जहाँ एक तरफ दोनों फिल्मों की विषय वस्तु एक जैसी ही हैं वहीं दूसरी ओर इन फिल्मों का चित्रांकन करते समय भारतीय और अमेरिकी फिल्म निर्देशकों ने न केवल अपने-अपने सांस्कृतिक परिवेश को जगह दी है बल्कि शब्दों का, भाषा का, मुख्य किरदारों की रचना का, कैमरे की फोकस का इन सभी मुद्दों का ध्यान रखते हुए इन फिल्मों में कहीं-कहीं समानताएँ तो कहीं कहीं विभिन्नताएँ पेश की हैं।

फिल्मों की कहानी या विषयवस्तु के आधार पर

दोनों कहानियों की विषयवस्तु में थोड़ी भिन्नता है पर मुद्दा एक है। जहाँ भारतीय परिवेश यह मानता है कि हनीमून पर ले जाने का श्रेय केवल भारतीय समाज के पुरुषों का है वहीं दूसरी ओर अमेरिकी समाज में भी यह माना जाता है कि हाइकिंग जैसा मुश्किल कार्य केवल मर्दों के लिए बना है। चाहे क्वीन फिल्म की रानी हो या वाइल्ड फिल्म की स्ट्रेड दोनों ने ही इन मिथकों को तोड़ा है बस फर्क इतना है कि रानी भारतीय परिवेश से निकल कर भारतीय समाज से निकल कर पश्चिमी समाज की ओर जाती है वहीं स्ट्रेड अपने घर की दहलीज से निकलकर रेगिस्तान, पहाड़, बर्फ और जंगल में अपने अस्तित्व को खोजती है। इन दोनों फिल्मों की नायिकाओं द्वारा पुरुषों के आधिपत्य वाले क्षेत्रों पर अपने अपने अस्तित्व की पहचान करवाई है। क्वीन फिल्म की शुरुआत एक पंजाबी परिवार से होती है जहाँ पर रानी की शादी का महिला संगीत चल रहा है। रानी अपने पूरे परिवार के साथ बैठी है और टिपिकल दिल्ली अंदाज में अपनी मेंहदी का आनन्द ले रही है। वह फिक्र कर रही है कि उसकी मम्मी ने अभी तक सूट भी नहीं बदला, चिट्ठू ने उसकी फोटो भी नहीं खिंची और वह परेशान है कि वह कैसे फेसबुक पर उसे अपडेट करेगी। विजय लंदन से लौटकर कितना स्मार्ट लगने लगा है। वह अपनी शादी के सपनों में खोई हुई है जहाँ क्वीन फिल्म की शुरुआत ऐसी है वहीं दूसरी ओर वाइल्ड फिल्म की स्ट्रेड फिल्म के पहले दृश्य में बिल्कुल अकेली खड़ी दिखाई देती है। वह डरते डरते अपने खून से लथपथ पैर को देखती है, पैर में से कील को ऐडी से निकालती है, कील को निकालते हुए वह जोर से चिल्लाती है जिसके कारण उसका जूता पहाड़ की ढलान से नीचे लुडकते हुए गिर जाता है। निराश होते हुए वह चिल्ला चिल्ला कर अपशब्द कहती है। दोनों फिल्मों की शुरुआत बेहद अलग है, जहाँ एक तरफ क्वीन हँसी खुशी के माहौल में खुश है वहीं स्ट्रेड के चेहरे पर थकान के साथ साथ गुस्सा भी है। कहानी के दूसरे पड़ाव में जैसे जैसे क्वीन फिल्म की कहानी आगे बढ़ती है उसी समय कहानी के नायक की बारी आती है। कहानी का नायक है विजय, जो हाल ही में लंदन से लौट कर आया है या कहे की वह मार्टिन हो गया है। वह रानी को शादी के ठीक दो दिन पहले मिलने के लिए बुलाता है और एक कॉफी हाउस में शादी के लिए मना कर देता है। कारण देता है कि रानी उसके लायक नहीं रह गई है और यहाँ रानी की शादी टूटने का चित्रण फिल्माया गया है। इसी समय तक वाइल्ड मूवी में स्ट्रेड अभी भी अपनी फिल्म की नायिका की तरह है। यहाँ तक वह अपना सामान बांध रही है जितने भी जरूरी सामान हैं चाहे वह खाना बनाने के लिए गैस हो या फिर पानी की बोतल। उसने अपने सामानों में शारीरिक सम्बन्धों को बनाए रखने वाले सामान भी ले लिए हैं, जो शायद उसकी जरूरत को दिखाते हैं। इससे जब कहानी आगे बढ़ती है तो शेरिल स्ट्रेड अपनी हैकिंग की यात्रा शुरू कर देती है। वह अपना ट्रैक मोजव डेजर्ट साउथ कैलीफोर्निया से शुरू करती है। हाईक में उसे पहली रात में पता चल जाता है कि वह गलत प्रकार की गैस अपने साथ लेकर आई है। इसी कारण वह हाईक पर खाना भी नहीं बना पाती। इस समय तक क्वीन फिल्म की रानी जो कि विजय के साथ शादी टूटने से बेहद दुःखी है, घर आती है और अपने आप को कमरे में बंद कर लेती है। अगले दिन सुबह उसे महसूस होने पर कि सब कुछ खत्म हो चुका है। वह अपने पिता से अपने हनीमून पर अकेले जाने को कहती है। चूँकि माता पिता अपनी बेटी की इस हालत को देखकर दुःखी हैं तो वे उसे जाने की अनुमति देते हैं। यहाँ पर रानी को उसके पूरे परिवार द्वारा एयरपोर्ट पर छोड़ा जाता है, हालाँकि एयरपोर्ट पर रानी वापिस अपने घर जाने का सोचती है। प्लेन में बैठने के बाद उसे डर भी महसूस होता है। इसी समय वाइल्ड फिल्म की शेरिल भी एक या दो बार अपने आप से बोलती है 'यू

केन क्वीट ऐनी टाईम'। इस तरह दोनों फिल्म की शुरुआत करती हैं तो दोनों यह मानती हैं कि यह बहुत लम्बा सफर है। जिसे उन्होंने अकेले तय करने का खुद ही मन बनाया है। इस कहानी में क्वीन जहाँ अपनी पहली रात लंदन पहुँचने के बाद एक बेहद आलीशान होटल में बिताती है वहीं दूसरी ओर शेरिल अपनी पहली रात एक रेगिस्तान में बिताती है। जहाँ उस रात क्वीन अपनी और विजय के साथ बिताए हुए पलों को याद करती है वहीं शेरिल अपनी और अपनी माँ की यादों को याद कर रही है। लंदन पहुँचने के बाद रानी की मुलाकात होटल में काम करने वाली एक लड़की विजयलक्ष्मी से होती है। वह अपने होटल में आने वाले विदेशियों के साथ संबंध भी बनाती है पर वह बहुत सुलझी हुई लड़की है। अपनी जिंदगी को अपनी शर्तों पर जीती है। इसी तरफ शेरिल की मुलाकात वाईल्ड फिल्म में फ्रेंक नामक एक इन्सान से होती है, जो कि पेशे से किसान है, वह और उसकी पत्नी शेरिल को अपने घर में रुकने के लिए खाना और नहाने के लिए बुलाते हैं। दोनों फिल्म में समानताएँ यह है जहाँ रानी पूरी तरह से शाकाहारी है, पेरिस पहुँचने के बाद वह वहाँ की भाषा से भी अनजान है। वह होटल से एक मांसाहारी खाना गलती से मंगवा लेती है। उसे देखकर रानी डर जाती है। वही दूसरी और शेरिल के पास खाने के लिए साधन नहीं है, वह भी अपनी भूख से लड़ रही है। कह सकते हैं कि अगर हम किसी लक्ष्य को पाना चाहते हैं या मन में उसके लिए कोई विचार रखते हैं तो हमें ऐसी ही बाधाओं का सामना करना पड़ता है। क्वीन के लिए खाने की व्यवस्था जहाँ विजयलक्ष्मी कर रही है वहीं दूसरी और शेरिल के लिए खाने की व्यवस्था उसके किसान दोस्त ने की है।

कहानी के इस पड़ाव तक आते आते रानी को अनजान चेहरों, अनजान रास्तों, पुलिस, चोर सभी से लड़ना पड़ रहा है उसी तरह शेरिल को जंगली जीव जन्तु जैसे अजगर, जंगली कीड़े, पानी इन सभी से अपने आप को बचाना पड़ रहा है। इन दोनों फिल्मों में इस समय रानी जहाँ एक ओर इन सभी चीजों के कारण खुद में खोई हुई है, वहीं दूसरी ओर शेरिल अपनी माँ बाबी के अवसाद को मिटाने के लिए कई सारी उपचार जैसे हेरोईन, ड्रग्स जैसों को सहारा लेती है, जैसे ही उसे पता चलता है कि वह गर्भवती है, वह गर्भपात भी करवा लेती है। अब शेरिल की मुलाकात कैम्पस इन्सान से होती है जो उसकी सहायता उसके भारी सामान को कम करके करता है। वह शेरिल के पुराने हाईकिंग के जूतों को नए जूतों में बदलने के लिए राजी हो जाता है। क्वीन फिल्म की रानी पेरिस के अन्दर एक चोर से अपने बैग को छीनते हुई उससे अकेले डटकर सामना करती है और वापिस इण्डिया जाने का सोचती है। लेकिन तभी उसे अपने दोस्त विजयलक्ष्मी की याद आती है, वह विजयलक्ष्मी से मिलने के लिए डांस बार चली जाती है, जहाँ गलती से वह पानी की जगह शराब का सेवन कर लेती है। वहाँ फिर पागलों की तरह नाचती है। कुछ पुरानी यादों को याद करके उसके चेहरे पर गुस्से के भाव आते हैं। और साथ ही साथ एक सवाल कि यहाँ पर वह सबके सामने नाच सकती है तो क्यूँ भारत में विजय द्वारा इसी नाचने पर डांटा गया था। अब शेरिल थकान और प्यास से बेहाल है। वह मिट्टी के खड्डे में से पानी निकालने का प्रयास करती है। इसी दौरान उसे दो शिकारियों की आवाज सुनाई देती है, जो उसे आने वाले खतरों का आभास करा रही है। शेरिल अपनी जान बचाकर भागती है और अपना रास्ता कैलिफोर्निया से पार कर ऐशलेण्ड में पहुँचती है। धीरे-धीरे रानी अपनी दोस्त विजयलक्ष्मी के साथ घूमते हुए जिन्दगी का आनन्द ले रही है। जहाँ कुछ समय पहले वह ऐफिल टावर से बचने की कोशिश करती है वहीं यहाँ तक आते विजयलक्ष्मी के साथ ऐफिल टावर देखने आती है। यहाँ रानी में कुछ बदलाव आ गए हैं। ना केवल उसके पहनावे में बल्कि उसके आत्मविश्वास में। अब शेरिल भी अपनी हाईकिंग को मजबूती दे रही है। यहाँ से दोनों नायिकाएँ आगे बढ़ती हैं। क्वीन अब एम्सडम पहुँची है। यहाँ उसकी मुलाकात तीन लड़कों से होती है, वहीं शेरिल की मुलाकात जोनाथन नामक इन्सान से होती है। कुछ दिनों बाद शेरिल नेशनल फोरेस्ट पहुँचती है यहाँ पर वह जवान हाईकर्स के एक समूह से मिलती है, ये सब अपना अपना अनुभव बांटते हैं। स्ट्रेड कविता की पंक्तियों के साथ अपना रास्ता पार करती है। क्वीन की रानी इन तीन लोगों से पहले दूर भागती है लेकिन बाद में वह उन्ही की दोस्त बन जाती है। इनमें से एक लड़का फ्रेन्च से है, जो चौराहे पर गिटार बजाता है, रशियन पेन्टिंग करता है, तीसरा जापानी वह भी कुछ न कुछ काम कर लेता है। क्वीन इन तीनों से दोस्ती करती है और एम्सडम घूमती है। वह चर्च जाती है, और विजयलक्ष्मी की एक दोस्त से मिलकर उसे सामान भी लौटाती है। स्ट्रेड इस समय जब सड़कों पर घूम रही है तब उसकी मुलाकात एक छोटे से बच्चे से होती है, जो अपनी दादी के साथ घूम रहा है। वह बच्चा स्ट्रेड से उसके माता पिता के बारे में पूछता है। शेरिल उसे अपनी मरी हुई माँ के बारे में बताती है। वह बच्चा गीत गाता है, रेड रीवर वेली जो कि उसकी माँ उसे सुनाया करती थी फिर वह वहाँ से चला जाता है। शेरिल फूट फूट कर रोती है। अब क्वीन की मुलाकात रेस्तरां चलाने वाले एक इन्सान से होती है, जो उसके भोजन पकाने की कौशल को भांप लेता है। वह उसे एक प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए बोलता है। यहाँ वह सफल होती है। इसी बीच क्वीन के पुराने मंगेतर को अपनी गलती समझ आती है। वह उससे अपनी गलती मांगते हुए वापिस आता है, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी है। यहाँ पर अपने हाईकिंग के 94 दिन 'ब्रिज ऑफ गॉड' नामक जगह पर पहुँचती है, जहाँ उसकी यात्रा खत्म होती है। अब क्वीन भी अपनी यात्रा को खत्म करते हुए साहस के साथ अपनी सगाई की अंगूठी विजय को वापिस लौटा देने से खत्म करती है।

मुख्य किरदारों की रचना के आधार पर

क्वीन और शेरिल दोनों ने ही अपनी फिल्मों में मुख्य किरदार निभाए हैं। दोनों ने ही अपने दम पर ऐसे कार्यों को करके दिखाया है जिसमें अक्सर लोग यह सोचा करते हैं कि यह सिर्फ पुरुषों के द्वारा ही किया जा सकता है या इसके लिए पुरुषों

में ही शारिरिक और मानसिक बल है। चाहे अकेले हनीमून पर जाने की बात हो या 1100 मील लम्बी यात्रा इन दोनों महिलाओं ने अपने अपने किरदारों से लोगों को सोचने को मजबूर किया।

रानी अपनी शादी को लेकर नर्वस है। वह पासपोर्ट डिपार्टमेंट में जाकर अपने हनीमून का पूरा ब्यौरा पासपोर्ट अधिकारी को देने लगती है। वह अपनी शादी को लेकर नए-नए ख्याल भी बनाती है, जैसे शादी के बाद उसकी पहली रात कैसी होगी। इन सभी कारणों से रानी थोड़ी डरी हुई है दूसरी तरफ शेरिल पूरी कहानी में कही भी नर्वस नहीं है। वह बहुत ही बोलड और मजबूत औरत के रूप में सामने आई है। वह डरावने और पीड़ाजनक खतरनाक दृश्यों में जहाँ वह अपनी आँखों को टमकाती है और अपनी विजय पर हल्का सा मुस्कुरा देती है।

क्वीन फिल्म की रानी थोड़ी शर्मिली है, कॉफी हाउस में जब विजय उसे मिलने बुलाता है तब वह विजय को बोलती है कि आप एक दिन भी इन्तजार नहीं कर सकते थे और इस तरह कहकर थोड़ा शरमा जाती है। फिल्म के एक और दृश्य में विजय नींबू पानी वाले के सामने उसे आई लव यू कहने में जब थोड़ी मुश्किल पाता है तब नींबू पानी वाले का यह संवाद कि 'भैया आपको आई लव यू बोल रहे हैं' तो रानी थोड़ा शरमाते हुए नींबू पानी वाले को आई लव यू टू बोलती है। दूसरी ओर वाईल्ड फिल्म की शेरिल में शर्म नहीं है। वह बीच बीच में गाली बोलती है। एक अन्य पुरुष के द्वारा जब उसके सामान में आपत्तिजनक वस्तुएँ पाई जाती हैं तो वह बड़ी मुस्कुराते हुए उसे अपने साथ रख लेती है। कह सकते हैं कि रानी भारतीय संस्कृति में ढली हुई लड़की है और शेरिल पाश्चात्य संस्कृति से पूरी तरह लबालब भरी हुई औरत है।

क्वीन की रानी अपने परिवार से जुड़ी हुई है उसे अपने माता-पिता से बेहद प्यार है। खासकर अपने पिता से वह अपने पिता की इकलौती बेटी है। वह विजय के द्वारा शादी के लिए मना किए जाने पर विजय को कहती है कि 'पापाजी को हार्ट अटैक आ जाएगा और अगर आपको रिश्ता खत्म करना ही है तो आप मेरे डैडी जी से बात करो'। पूरी तरह से टूट जाने के बाद उसकी माँ उसको समझाती है कि उसके रिश्ते को बचाने के लिए पापा उसके पिता से बात करेंगे। दूसरी तरफ शेरिल का जुड़ाव अपनी माँ से है, वह अपनी माँ से बेहद प्यार करती है। उसकी माँ एक समझदार महिला है, जो अपनी बेटी द्वारा की गई गलतियों को माफ करती है। वह अपनी माँ से इतना प्यार करती है कि जब उसकी माँ बीमार है तो भगवान से नाराज होने के बाद भी वह हाथ जोड़कर अपनी माँ के लिए प्रार्थना करती है। एक लड़के द्वारा रेड रीवर वेली गीत गाए जाने पर शेरिल को अपनी माँ की याद आती है और वह फूट फूट कर रोती है। अपनी माँ की मौत से आहत होकर वह उसको खोजती हुई अपने अन्तर्मन से जूझती हुई इतनी लम्बी यात्रा करती है।

क्वीन फिल्म की रानी प्यार में पागल है। वह बार बार विजय को फोन करती है। वह अपने रिश्ते को बचाने के लिए हर संभव कोशिश करती है। वह विजय से कहती है कि 'वह हर वो काम करेगी जो बस विजय कहेगा'। विजय द्वारा नौकरी मना किए जाने पर वह मान जाती है। विजय संगीत में जब डान्स किए जाने पर रानी को डांटता है तो रानी इसके लिए माँफी मांगती है। रानी अपनी नौकरी भी विजय के कहने पर छोड़ती है। शेरिल अपने पति से उतनी जुड़ी हुई नहीं है, क्योंकि वह माँ के अवसाद में जुड़ी हुई है। वह अपने वैवाहिक जीवन को मुश्किलों में डाल देती है। वह अपनी शादीशुदा जिन्दगी तबाह कर देती है हालांकि उसका विवाह एक सभ्य इन्सान से होता है। यहाँ कहानी के दोनों पात्रों में चाहे वह रानी का प्रेमी हो या शेरिल का पति, दोनों में इतना अन्तर है कि शेरिल का पति सभ्य होने के कारण शेरिल को स्वतन्त्रता और आजादी देता है उसकी दूसरी तरफ रानी का प्रेमी उसे बांधकर रखना चाहता है।

क्वीन की रानी बहुत बातूनी है। शराब पीने के बाद गुप्ता जी से लेकर अपने स्कूल में बिताए गए लम्हे, छोटी छोटी स्कर्ट से लेकर रजौरी तक दिल्ली वालों की हर बातें वह बोलती चली जाती है। सन्ता बन्ता के चुटकुलों से लेकर डकार लेने तक किसी भी बात में रानी अपनी दोस्त विजयलक्ष्मी को हँसाती रहती है। जबकि दूसरी तरफ शेरिल अपना रास्ता चिल्लाते, पसीना बहाते, काँपते, खुद से बातें करते हुए चलती है। वह गर्मी, सर्दी बिना पानी के, बिना पके भोजन को जल्दी जल्दी खाते हुए सिर्फ खुद में ही डुबी हुई चलती रहती है।

क्वीन की रानी और वाईल्ड की शेरिल दोनों बहादुर महिलाएँ हैं। जहाँ रानी लंदन अकेले हनीमून पर जाने का फैसला करती है, टैक्सीवाले को जैसे तैसे अपने पहुँचने की जगह बताती है। अपना भारी सामान खुद सीढ़ियों से ऊपर लेकर आती है। चोर के छक्के भी छुड़ाती है वहीं दूसरी ओर शेरिल अपनी हिम्मत के दम पर अपना जूता टूट जाने के बाद बिना जूता चलने को मंजूर करती है। बाकी की चढ़ाई अपने जूतों पर टेप बांधकर करती है। 'इफ योर नर्व डिनाई यू गो अबॉव योर नर्व' इस बात को लेकर जब वह अपनी यात्रा खत्म करती है तो वह यह संदेश देती है कि अगर विपरीत परिस्थितियों में भी शरीर आपका साथ छोड़ रहा है तो उन परिस्थितियों से आगे जाकर आपको अपने आपको साबित करना ही होगा।

क्वीन आशावादी है, उसे कहीं न कहीं यह आशा है कि वह अपने आपको इतना बदल देती कि वह विजय की नजरों में वापिस अपनी जगह पा सके। वह अपने पहनावे को बदलने की कोशिश करती है। साथ ही साथ जिन्दगी के प्रति अपनी सोच को भी। दूसरी तरफ शेरिल अपने आपको बचाने के लिए तम्बू पर जीभ से ओस को चाटती है। जीवन की आशा से बँधी शेरिल बहुत मुश्किलों के बाद भी वह अपने आपसे यही कहती है कि 'आई एम गोईंग टू वाक माईसेल बैक टू द वूमन माई मदर थाट आई वाज', मैं उस औरत को पा ही लूंगी जिस औरत को मेरी माँ मेरे लिए सोचती थी, वो भी अपने अन्तर्मन से।

भारतीय परिवेश में महिला को थोड़ा कमजोर और नाजुक माना है। यही गुण क्वीन में भी है, इसी वजह से वह एलिन टावर से भी भागती है, वह अकेली तीन अजनबियों के साथ रहने को मना करती है। वहीं दूसरी तरफ शेरिल सॉप, लोमड़ी, कीड़ों का डटकर सामना करती है। वह अजनबियों से भागती नहीं बल्कि उन्हें अपनी कहानी सुनाती है और उनकी कहानी सुनती है। वह जोनाथन नाम के एक व्यक्ति से मिलती है और अपनी पूरी शाम उसी के साथ बिताती है। रानी बेहद सरल औरत है। उसकी वेशभूषा भी साधारण है ना कोई साजों सज्जा है। चुटी हुई गुँथी, भारतीय कुर्ता और बालों में पिन लगाए वह लन्दन जाती है। पर शेरिल न तो साधारण है और न ही वह अपने आपको साधारण दिखाने की कोशिश करती है। फिल्म में एक बार वह पूरी नग्न होकर भी सामने आई, वह टी शर्ट और शर्ट पहनने वाली आधुनिक लड़की है। वह खुले दिल की स्वतन्त्र लड़की है।

रानी और शेरिल दोनों ही सनकी हैं। रानी जहाँ पागलों की तरह डांस बार में कूदती है, रेस्तरां वाले के साथ लिप टू लिप किस करती है और अपनी सनक के चलते वह अन्तिम दृश्य में तीनों दोस्तों के पास मिलने अपने मंगेतर को छोड़कर फिर से चली जाती है। उसी तरह शेरिल भी नौसिखिया होने के बावजूद बीहड़ की ओर निकल पडती है। अपना नाखून खोने के बाद भी वह अपनी यात्रा करती रहती है। पुरुष शिकारी द्वारा परेशान किए जाने के बाद भी वह हिम्मत नहीं हारती।

रानी थोड़ी मासूम है, चाहे बरफी बनाने की विधि हो या फिर एम्सडर्म में दुकान में जाकर कुछ ऐसा सामान लेने की जिस पर उसके दोस्त उसका मजाक उड़ाते हैं, क्योंकि वह उस सामान से अन्जान है। यहां उसकी मासूमियत झलकती है पर दूसरी तरफ शेरिल थोड़ी चालाक औरत है, वह शिकारी पुरुषों की आवाज सुनकर बड़ी चालाकी से वहाँ से भाग जाती है क्योंकि वह उनके मंसूबे पहचान चुकी है। कह सकते हैं दोनों का किरदार अलग-अलग है पर दोनों में समानता है। हिम्मत जुटाकर एक लम्बी लड़ाई लड़ने की। अपने अस्तित्व को खोजने की और कुछ ऐसा करने की जिससे वह अपने अस्तित्व की गरिमा को जान सकें, पहचान सकें और उस औरत को अपने अन्दर ढूँढ सके जो कि हिम्मत बाँधकर मुश्किलों से डरने को मना करती है।

सांस्कृतिक परिवेश के आधार पर

भारतीय संस्कृति की झलक और अमेरिकन संस्कृति की छाप दोनों ही फिल्मों में दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति जहाँ एक तरफ पंजाबी तड़के के साथ आई है वहीं अमेरिकी संस्कृति अपने मॉडर्न नारी को लेकर आई है। सांस्कृतिक परिवेश अलग-अलग होने के कारण दोनों ही फिल्मों में उनका प्रभाव देखने को मिला है। क्वीन की रानी एक भारतीय नारी है। वह एक पंजाबी परिवार से है, जो 1947 में देश के विभाजन के बाद पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों द्वारा अपने व्यापारिक कौशल से सम्पन्न हुए दिल्ली में रहता है। इस पंजाबी परिवार की खासियत यह है कि यहाँ सभी मिल जुल कर रहते हैं। सभी एक साथ मिलकर नाचते हैं। गिद्दा शिद्दा, मेहन्दी के साथ परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। पूरा परिवार मिलकर रानी की शादी का आनन्द उठा रहा है। पंजाबी परिवार होने के नाते नाच गानों का भी दृश्य है। यह परिवार थोड़ा आधुनिक ढंग में ढला हुआ है जो कि अपनी बेटी को अपनी मिठाई की दुकान में भी बिठाता है, यह सोच कर नहीं दुकान केवल पुरुषों द्वारा संभाली जाती है। इस पंजाबी परिवार में एक ओर विशेष बात है कि क्वीन के माता पिता के बीच बेहद मजबूत और प्यार भरा संबंध है और दोनों के साथ साथ पूरा परिवार एक खुली हवा में सांस लेता है। दूसरी तरफ अमेरिकी फिल्म वाईल्ड एकल परिवार की कहानी है जिसमें शेरिल के पिता नहीं है, जो अपने पूरे परिवार को छोड़कर चले गए हैं। शेरिल अपनी माँ और भाई के साथ रहती है। माँ भावनात्मक रूप से बच्चों से जुड़ी हुई है। जब उसकी बेटी बोलती है कि हमारी जिन्दगी में कुछ बचा ही नहीं तो इस पर माँ का जवाब आता है कि मैं तुम दोनों को पाकर बेहद खुश हूँ। इस परिवार के सदस्य भी आपस में एक दूसरे से प्रेम करते हैं। परन्तु भारतीय संस्कृति में प्रेम को उजागर करने की भावना ज्यादा है जो कि क्वीन फिल्म में उभर के सामने आई है।

क्वीन फिल्म में रानी का पहनावा, कपड़ों और स्टाइल बिल्कुल भारतीय है, जो भारतीय संस्कृति के परिचायक है। उसकी सोच भी सामान्य भारतीय लड़की जैसी है। वह अपनी शादी के लिए बेहद उत्साहित है, जब उसकी दोस्त विजयलक्ष्मी उससे विदेशी कपड़ों पहनने को बोलती है और उस पर दबाव डालती है तो वह शरमा के कमरे में जाती है। उसका पहनावा भारतीय संस्कृति को दर्शाता है। दूसरी तरफ शेरिल थोड़ी बोलू है, उसके पहनावे में विदेशी संस्कृति झलकती है। पूरी फिल्म में उसको कई बार कम कपड़ों के और बिना कपड़ों के भी देखा गया। ऐसा नहीं है कि वह केवल शारिरिक प्रदर्शन था, बल्कि शायद भारतीय संस्कृति में इसकी मंजूरी नहीं है।

भारतीय संस्कृति पुरुष प्रधान है, जो कि क्वीन फिल्म में दिखाई गई है। क्वीन फिल्म का नायक रानी को बोलता है 'मेरे नाम का टैटू करवा लो, सैफ ने भी करवाया है करीना के लिए'। रानी जवाब देती है 'तो तुम्हें कराना चाहिए', बात को बदलते हुए वह बोलता है कि 'करवा रखा है ना तेरे नाम का टैटू अपने दिल में'। विजय का रानी से सगाई तोड़ने का एक मुद्दा यह भी था कि उसे और रानी दोनों का स्टैण्डर्ड समान नहीं लगता। वह बड़ी ही चालाकी से बोलता है कि मैं मीटिंग्स ट्रेवल्स इन सभी में व्यस्त हूँ, मैं बदल गया हूँ, और वह बिल्कुल नहीं बदली। बावजूद इसके कि वह विजय की हर बात मानती है। शायद यहीं हमारी कमजोरी है, पर इसी कमजोरी की सबसे मजबूत ताकत अमेरिकी संस्कृति की वाईल्ड फिल्म में दिखाई गई। शेरिल अपने रिश्ते में दोनों को समानता देती है, वह अपनी जिन्दगी में जो कुछ भी करना चाहती है, वही करती है। वह इतनी परेशान

है कि अगर वह माँ बनने की मानसिक स्थिति में नहीं है तो वह गर्भपात भी करवा लेती है।

भारतीय संस्कृति में किसी भी हालत में किसी भी लड़की का शादी टूटना मंजूर नहीं है। रानी रोते हुए विजय से कहती है कि प्लीज मुझसे शादी कर लो वरना मुझसे कौन शादी करेगा। शायद इस समाज में शादी टूट जाने के बाद लड़कियों को ऐसी नजरों से देखा जाता है मानों उन्होंने कोई गुनाह किया है। दूसरी तरफ शेरिल जब ब्रिज ऑफ गॉड पर एक लोमड़ी से मिलती है तो उसे अपनी माँ बाबी का रूप बताती है। वह उसे बताती है कि वह 4 साल बाद फिर से शादी करेगी, चौथे साल उसको बेटा होगा और पाँचवें साल बेटा।

भारतीय संस्कृति के अनुसार परिवार में आपसी प्रेम होना बेहद जरूरी है। इसी प्रेम का एक दृश्य क्वीन फिल्म में देखने को मिला। सगाई टूटने के बाद जब रानी अपने आपको कमरे में बंद करती है तो पूरा परिवार उसे संभालने के लिए आ जाता है। उसकी दादी उसे समझाते हुए कहती है 'जो मिलना होता है वह तो मिलकर ही रहता है'। परिवार का आपसी प्रेम उसे इस दुःख से निकालता है। यही प्रेम अमेरिकन संस्कृति की वाईल्ड फिल्म में भी देखने को मिला। बस तब इतना है कि शेरिल अपनी लड़ाई खुद लड़ती है। वह परिवार से भावनात्मक रूप से जुड़ी हुई नहीं है पर प्रेम अपनी माँ से अवश्य करती है। क्वीन फिल्म के दृश्य में विजय के पिता क्वीन के पिता को कहते हैं 'इतनी बड़ी हो गई है', पड़ोसियों का हस्तक्षेप तो भारतीय समाज में अक्सर देखा जाता है। वहीं अमेरिकन संस्कृति में शेरिल को किसी से कोई मतलब नहीं। ना उसका पड़ोसी उसको घूरता है, और न वो उनके पास जाती है। वह हाईकिंग करते हुए अपने अन्य साथियों से मिलती है और अपनी पूरी जीवनगाथा उनको सुनाती है।

अरेन्ज मेरिज में किन्नरों का आना, पंजाबी भाषा में गीत, रानी का शरमाना, शेरिल की बोलडनेस, उसका बीहड़ में निकलना, शादी के बाद भी खुद के हिसाब से जीना, ये कुछ ऐसे मुद्दें हैं जिन मुद्दों पर दोनों संस्कृतियों का प्रभाव इन दोनों फिल्मों में देखने को मिलता है।

सिनेमाई तकनीक के आधार पर

भारतीय और अमेरिकी फिल्म निर्देशकों ने अपने अपने कैमरों द्वारा अलग-अलग भाषा का प्रयोग करते हुए दोनों ही फिल्मों को निर्देशन बखूबी किया है। क्वीन फिल्म में नाँचते हुए बच्चों, हँसते हुए लोग, ढोलक से लेकर दादी के आँखों के भाव तक कैमरे ने हर एंगल को जीवन्त किया। डान्स करते वक्त जब रानी की माँ भावुक हो जाती है तो कैमरा वहाँ फोकस हो गया है। उसके पापा उसके ऊपर पैरों वार रहे हैं और पूरा का पूरा दृश्य धीरे धीरे स्लो मोशन में चल रहा है। वहीं दूसरी तरफ बड़े ही नाटकीय तरीके से पैरों से खून निकलने से लेकर शेरिल के चीखने तक की आवाज का गूँजना, खाईयों से लुढ़कता हुआ जूता यह सभी नाटकीय अंदाज में चित्रित किए गए हैं।

निर्देशक ने डान्स बार में जब पुरानी बातों को याद करती हुई रानी पर फिल्म का दृश्य अजमाया तो उसके मुख पर आए हुए गुस्से के साथ पीछे चलने वाली नीली रोशनी, खुलते हुए बाल और पागलों की तरह नाचती हुई रानी अपनी आजादी की पहली सीढ़ी पर चढ़ती है। यह दृश्य भारतीय सिनेमा में रोंगटे खड़े करने वाले दृश्यों में से एक होगा। दूसरी तरफ हाईकिंग के दौरान शेरिल का अपनी चोट को देखना उसे अपने पुराने समय कि किन्ही और चोटों की याद दिलाता है। फ्लैश बैक का यह सीन एक सवालिया निशान उठाता है कि बेशक भारतीय समाज में पुरुषों का शारीरिक बल महिलाओं से ज्यादा हो सकता है, पर मानसिक तौर पर क्वीन उनसे कहीं आगे है।

भावनात्मक रूप से दर्शाये गये दृश्यों में जब रानी की सगाई विजय से टूटती है तो रानी काफी हाउस से बाहर आती है। कैमरा काफी हाउस के ऊपर लिखी हुई एक लाईन पर फोकस हो जाता है, 'ए लोट केन हैपन ऑवर कॉफी'। इसमें एक काफी के दौरान बहुत कुछ हो गया, किसी की सगाई टूट गई और कोई अपने धमण्ड में चूर होकर सामने वाले इन्सान का सबकुछ बर्बाद कर चुका है। ऐसा ही भावनात्मक दृश्य वाईल्ड फिल्म में एक गीत के दौरान आया, जब शेरिल भावनात्मक रूप से पूरी तरह से बिखर जाती है, वह गाना रेड रीवर वैली के दौरान शेरिल अपने दोनों घुटनों जमीन पर टिका देती है और बिलख पड़ती है।

ढोलक की थाप से लेकर शेरिल की चीख की गूँज को कैमरे ने बखूबी फिल्माया है। दोनों ही फिल्मों के फिल्मांकन ने कई अवार्ड्स इनकी झोली में डाल दिया है। जहाँ एक तरफ रानी की पूरी जिन्दगी शादी के टूटने पर हिल गई, वहीं दूसरी तरफ शेरिल की आत्मा उसकी माँ के मरने के कारण बिखर गई। पहले दिल्ली का दृश्य, उसके बाद पेरिस की गलियाँ, फिर एम्सडम की चकाचौंध भारतीय से आधुनिक भारतीय होने के सफर को दर्शाती है। साईकिल चलाती विजयलक्ष्मी, एफिल टावर के पास फुटबाल से खेलता खम्भे पर लटका आदमी, सड़कों पर चलती ट्राम, एम्सडम में दीवारों पर टकी तस्वीरें बेहद खूबसूरती से उबारा गया है।

जहाँ एक तरफ रंगीन चकाचौंध क्वीन फिल्म से दिखाई दी, वहीं वाईल्ड फिल्म में मिट्टी खोदकर पानी निकालने को लेकर, दूर दूर तक नैले रेगिस्तान, बड़े-बड़े टीलें, जानवरों से लड़ती शेरिल, पेड, तालाब, प्राकृतिक दृश्य दिखाते हैं, जो बेहद प्रभावशाली है। क्वीन फिल्म में दिल्ली से एम्सडम का रास्ता हो या फिर वाईल्ड फिल्म में डेजर्ट से लेकर आर्गन के धुंधले जंगलों की यात्रा को पहले दुश्मन की तरह दिखाया गया, जिसे उन दोनों को हराना है। परन्तु जैसे जैसे यह लड़ाई आगे बढ़ती है, दोनों ही बढ़ती चली जाती है। फिल्म के एक सीन में जहाँ क्वीन शराब पीने के बाद विजयलक्ष्मी को कुछ अजीबो गरीब

बोलती चली जाती है, जैसे 'मेरी जिन्दगी बर्बाद हो गई है, या फिर मैंने अपने टीचर की हर बात मानी हैं, या गुप्ता जी ने कभी दारू नहीं पी, कभी सिगरेट नहीं पी, फिर भी कैंसर हो गया, इससे अच्छा तो पी लेते'। ऐसे कई दृश्य फिल्म को भावनात्मक गति देते हैं। वाइल्ड फिल्म में भी एक दृश्य है, जब शेरिल चट्टान के एक जमघट में पहुँचती है, जो बेहद डरावना दिखता है। वह बहुत बहादुरी से उसको पार करती है।

शेरिल और क्वीन दोनों के द्वारा कमजोर होने के बावजूद जिस तरह अपने सामान को उठाने का दृश्य है, वह यह बताता है कि शरीर की शक्ति के सामने मन की ईच्छा शक्ति जीत जाती है। दोनों ही फिल्मों को दोनों ही नायिकाओं ने बिना मेकअप के बड़ी खूबसूरती से संवारा है। क्वीन की फिल्म की रानी जीन्स और कुर्ती पहने जहाँ पहले झिझक कर चलती है और आखिरी में दौड़ती हुई रानी की तरह भागती है, उसी तरह का बदलाव का भाव शेरिल के चेहरे पर कैमरे ने दर्शाया। फिल्माए गए गानों में जहाँ क्वीन फिल्म का गाना धुंधली सी धुंधली सी मैं इधर उधर फिरू, क्वीन की मनःस्थिति को दर्शाता है। 'हरजाईया' गाना हो या फिर 'बदरा बहार', साहित्यिक भाषा को दरकिनार करते हुए व्यवहारिक भाषा को अपनाया गया। जो किसी भी इन्सान के मन-मस्तिष्क में पूरी तरह उतर गई। उसी तरह शेरिल पर फिल्माया गया गाना चाहे एल्कोण्डर पासा या फिर होम वुड बाउन्ड फिल्म के हर गीत के द्वारा शेरिल के उस समय की मन की भावना को स्थितियों को पूरा का पूरा सहारा मिलता है। दोनों ही फिल्में बेहतरीन हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. क्वीन, विकास बहल वर्ष 2014
2. वाइल्ड, जीन मार्क वैल्ली वर्ष 2014
3. उमाशुक्ल, भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान, लोकभारती प्रकाश, इलाहाबाद
4. उषा महाजन, बाधाओं के बावजूद नयी औरत, मेधा बुक्स, दिल्ली
5. कमला प्रसाद : सं., स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
6. कमला भसीन, अंडरस्टैंडिंग, जेंडर कॉली फॉर वूमेन, दिल्ली
7. कुन्दिका कपाड़िया, दीवारों से पार : आकाश, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
8. कशपा शंकर चौबे, मशगाल सेन का छायालोक, आधार प्रकाशन, पंचकुला
9. युगांक धीर : अनुवादक, क्लाद फ्रांसिस और फेनार्ड गॉटिये, स्वतंत्रता और प्रेम की राह, सिमोन द बोउआर, संवाद प्रकाशन, मेरठ
10. गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
11. गुलजार, मेरा कुछ सामाना, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
12. जयप्रकाश चौकसे, राजकपूर, संवाद प्रकाशन, मेरठ
13. जवरीमल्ल पारख, लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रवादी विचार

डॉ० मोनिका

सहायक प्रोफेसर (जनसंचार विभाग)
राजकीय महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

हिन्दी पत्रकारिता में राष्ट्रवाद की आज हमें चर्चा करनी पड़ रही है। जबकि यदि हम हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर नजर डालें तो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान अतुल्य है। सन् 1857 के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम को स्वतंत्रता की पहली लड़ाई माना जाता है। उस समय तक समाचार-पत्रों का बड़ा प्रचार नहीं हुआ था। आज हमें समाचार पत्र जिस रूप में प्राप्त हो रहे हैं, तब ऐसा संभव नहीं था। 1836 में 'समाचार चन्द्रिका' की 250 प्रतियाँ छपती थी, 'समाचार दर्पण' की 398, 'बंगदूत' की 70 से भी कम, 'पूर्ण चन्द्रोदय' की 100 प्रतियाँ छपती थी। सन् 1939 में कलकत्ता में, जो उस समय भारत की राजधानी थी, वहाँ से 26 यूरोपीयन के पत्र निकलते थे जिसमें से 6 दैनिक पत्र थे। हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भ कलकत्ता से हुआ था कलकत्ता में सन् 1755 से छपाई प्रारम्भ हो गई थी। जेम्स आगस्टक हिकी ने 29 जनवरी 1780 को भारत के प्रथम समाचार-पत्र 'बंगाल-गजट: कलकत्ता जनरल एडवार्टरइजर' की स्थापना की। इस समाचार-पत्र ने पश्चिम के समाचार पत्रों की परम्परा को स्वीकार करते हुए भारतीय पत्रों के आदर्शों और उनके भविष्य को निर्धारित किया। जेम्स आगस्टक हिकी ने अपने प्रथम अंक में लिखा था, "मुझे अपने मन और आत्मा के लिए स्वतंत्रता मोल लेने के अपने शरीर को दास बनाने में प्रसन्नता होती है।" पत्र के शीर्षक के नीचे लिखा गया, "राजनैतिक और व्यापारिक साप्ताहिक खुला तो सब पार्टियों के लिए है, पर प्रभावित किसी से नहीं है।" बंगाल गजट में गवर्नर जनरल वाटेन हेस्टिंग की कड़ी आलोचना होती थी। राजा राम मोहन राय ने 'संवाद कौमुदी' 4 दिसम्बर 1821 को निकाला। उसके बाद 5 मार्च 1822 को 'समाचार चन्द्रिका' प्रकाशित हुआ। 30 मई 1826 को हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ। 'उदन्त मार्तण्ड' की स्थापना युगल किशोर शुक्ल ने कलकत्ता से की थी। उदन्त मार्तण्ड बहुत अधिक दिनों तक नहीं चल सका और एक वर्ष सात महीने बाद बन्द हो गया। 'उदन्त मार्तण्ड' के साथ बंगाल में 'समाचार दर्पण' जिसके सम्पादक मार्शमैन थे और 'समाचार चन्द्रिका' व 'समाचार कौमुदी' बंगाली साप्ताहिक पत्र निकले थे। अप्रैल 1823 को हरिहर दत्त ने 'जामे जंता नुमा' नाम से फारसी व उर्दू का पत्र प्रकाशित किया। जिसके सम्पादक मुंशी सदा सुखलाल थे। उसी समय लगभग 6 मई 1823 को फारसी और उर्दू में एक दूसरा साप्ताहिक 'शमसुल अखबार' नाम से समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। जिसके सम्पादक मनीराम ठाकुर और प्रकाशक माथुर मोहन मित्र थे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ ही भारत में स्वाधीनता के लिए लोगों में चेतना जागने लगी थी, तथा पत्रकारिता ने भी अब जनमानस के बीच अपना स्थान धीरे-धीरे बनाना प्रारम्भ कर दिया था। पत्रकारिता के प्रति लोगों की चेतना व रुचि के साथ-साथ ब्रिटिश हुकुमत ने भी भारतीय प्रेस पर विभिन्न प्रकार के अंकुश लगा दिए थे, जिसमें प्रेस पर सेंसरशिप, अनुज्ञप्ति नियम, पंजीकरण नियम, देशी भाषा, समाचार-पत्र नियम प्रमुख थे। इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास राष्ट्रीय पुर्नजागरण और स्वाधीनता संग्राम का इतिहास भी रहा है। अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाने तथा आजाद देश में सांस लेने की भावना को हिन्दी पत्रकारों ने आम जनता तक पहुंचाया तथा वे स्वयं भी स्वतंत्रता सेनानी के रूप में ब्रिटिश सरकार से संघर्ष करते रहे। भारत को आजादी दिलाने से स्वतंत्रता सेनानियों लोकमान्य तिलक, नेहरू, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस, भगतसिंह, महात्मा गांधी, वल्लभ भाई पेटल आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, वही समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं जैसे कवि वचन सुधा, भारत मित्र, केसरी, मराठा, स्वराज्य, अभ्युदय, हिन्दूस्तान आदि की भूमिका को भी कम नहीं माना जा सकता।

पण्डित युगल किशोर शुक्ल ने तो 'उदन्त मार्तण्ड' के पहले ही अंक में घोषणा की थी, कि यह पत्र हिन्दुस्तानियों के हित हेतु प्रकाशित किया जा रहा है। दिल्ली से 1857 में अजीमुल्ला खा द्वारा निकाले गये पत्र 'पयामें आजादी' के प्रथम पृष्ठ पर लिखा गया था,

"आज शहीदों ने तुमको, अहले वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की जजीरें, बरसाओ अंगारा,
हिन्दू मुस्लिम सिख, हमारा भाई प्यारा
यह है आजादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा"

इसी समाचार पत्र में अंतिम मुगल शासक बहादुर शाह जफर ने अपना ऐतिहासिक संदेश दिया था, "हिन्दुस्तान के हिन्दुओं, मुस्लिमों उठो। भाइयों उठो। खुदा ने इंसान को जितनी बरकते अदा की है, उनमें सबसे किमती बरकत आजादी है,"

1947 में भारत के अंग्रेजी शासन से आजाद होते ही हिन्दी पत्रकारिता के आदर्श भी बदलने लगे। हिन्दी पत्रकारिता जो आजादी से पहले एक मिशन के रूप में प्रारम्भ हुई थी, वह अब व्यावसायिक रूप लेने लगी थी। जन-सेवा व आजादी के मिशन की पत्रकारिता में अब पूंजी का प्रवेश होने लगा था। और पूंजी के निवेश होने से 'मिशन' वाली पत्रकारिता 'प्रोफेशन' वाली पत्रकारिता बनने लगी थी। ब्रिटिश राज में जहाँ पत्रकारिता का उद्देश्य अंग्रेजी शासन से आजादी पाना था, वही अब आजादी मिलने के बाद व पूंजी निवेश के कारण पत्रकारिता के उद्देश्य भी बदलने लगे थे। पत्रकारिता के सामने अब नया उद्देश्य आ गया- समाजवाद परन्तु पत्रकारिता में व भारत में भी पूंजीवादी व्यवस्था होने के कारण पत्रकारिता की करनी व कथनी में अंतर आ गया। जिसके चलते पत्रकारिता के वो आदर्श जो आजादी से पहले निर्धारित किए गए थे, वो भी अब बदलने लगे थे। इन आदर्शों के बदलने के और भी समसामयिक कारण थे, जिनमें से एक था औद्योगिक क्रान्ति। औद्योगिक क्रान्ति ने लोगों के जीवन को और जटिल बना दिया था। संचार के साधन भी बहुत तेजी से तरक्की कर रहे थे। जिसके कारण पत्रकारिता का प्रभावित होना भी स्वाभाविक था। इसका सकारात्मक प्रभाव यह हुआ कि लोग शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूक हुए। जिससे शिक्षा प्राप्त करना समाज में अनिवार्य माना जाने लगा। लोगों के शिक्षित व जागरूक होने से उनकी देश-दुनिया में होने वाली घटनाओं को जानने की उत्सुकता भी बढ़ने लगी। इस बदलाव का सबसे बड़ा प्रभाव समाचार पत्रों की प्रसार संख्या पर पड़ा। समाचार पत्रों की प्रसार संख्या निरंतर बढ़ने लगी। फलस्वरूप पत्रकारिता में अब विविध विषयों को जोड़ा जाने लगा। हिन्दी समाचार पत्रों की संख्या सर्वाधिक थी। हिन्दी समाचार पत्रों में पृष्ठों की संख्या भी लगातार बढ़ रही थी। समाचार-पत्रों में सामयिक लेख के अलावा व्यंग्य, फीचर कहानी, कविताएं, खेल, शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, फोटोग्राफी और फिल्मों की खबरें मुख्य बन गई थी। इस विषयों पर रोचक व नियमित जानकारी आज के हिन्दी समाचार पत्रों तथा समाचार चैनलों में देखी जा सकती हैं।

समय के साथ-साथ पत्रकारिता में बड़े उद्योगपति व पूंजीपतियों ने भी प्रवेश कर लिया व अपना समाचार-पत्र या टेलिविजन चैनल प्रारम्भ कर दिया। औद्योगिकरण, प्रकाशन व छपाई की तकनीकों में सुधार तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में विस्तार व प्रतिस्पर्धा को जो आदर्शवादी पत्र नहीं अपना सके, उन्हें 'आउट ऑफ डेट' मान लिया गया। जिससे कारण लोगों में उनकी छवि खत्म हो गई। जिसके चलते वे पत्र बन्द हो गया, अथवा पूंजीपतियों के हाथ बिक गए। हिन्दी पत्रकारिता सत्तर और अस्सी के दशक में पूर्ण रूप से व्यवसाय के रूप में स्थापित हो गई। अब समाचार-पत्र व समाचार चैनल एक प्रोडक्ट बन गये, जिनके लिए ब्रांड एम्बेसेडर रखे जाने लगे। इनकी पहुँच बहुत बड़े जनसमूह तथा बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र तक हो गई। इतनी बड़ी संख्या में पत्रों को प्रकाशित करना व इतने बड़े क्षेत्र में चैनल का प्रसारण करना एक बड़ा व्यवसाय बन गया। इसमें रोजगार की भी अपार संभावनाएं दिखने लगी। इसी कारण पत्रकारिता में इस प्रकार के लोगों का प्रवेश भी होने लगा, जो केवल आजीविका कमाने के उद्देश्य से इस क्षेत्र में आये थे। ऐसे लोगों का पत्रकारिता को व्यवसाय मान लेना भी स्वाभाविक था।

पत्रकारिता ने ब्रिटिश शासन से देश को आजाद कराने में बहुत बड़ा योगदान दिया। देश की जनता को अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने व अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए जागरूक किया। पत्रकारिता के इन्हीं योगदान के कारण आजादी में बाद पत्रकारिता को लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक बदलाव आये। उससे पत्रकारिता भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। पत्रकारिता अपने उद्भव, विकास के साथ चलते-चलते वर्तमान समय में एक ऐसा प्रोफेशन या व्यवसाय बन गई है, जहाँ सभी पत्रों व चैनलों में गलाकाट प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई। सभी रीडरशिप या TRP के पीछे भागने लगे। 2010 में आई हिन्दी फिल्म 'पीपली लाइव' में भी TRP के लिए मीडिया का गिरता स्तर दिखाया गया था। इन्हीं कारणों से लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ का दर्जा प्राप्त इस पत्रकारिता पर कई तरह के प्रश्न उठने लगे हैं आज समाज में भी यह बात होने लगी है, कि पत्रकारिता एक व्यवसाय या व्यापार है जो अपने फायदे नुकसान को सोचकर खबरे दिखाता है। जिसके कारण इनकी विश्वसनीयता भी प्रभावित हुई है।

कहा जाता है कि संचार माध्यमों भी स्वतंत्रता का व्यापक संबंध अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से हैं। अतः पत्रकारिता की स्वतंत्रता आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। पत्रकारिता सूचना का प्रवाह है और वर्तमान समय में इसे मानवाधिकार से भी जोड़ कर देखा जाने लगा है। लेकिन यहाँ यह प्रश्न भी उठता है, कि क्या पत्रकारिता की स्वतंत्रता असीमित है। इसका समाज, संस्कृति और राष्ट्र से कोई सरोकार नहीं है। क्या पत्रकारिता पर कोई प्रतिबन्ध या सेन्सरशिप होनी चाहिए? पत्रकारिता केवल व्यवसाय नहीं जहाँ केवल लाभ कमाया जाये। पत्रकारिता की स्वतंत्रता के साथ उसके दायित्व भी जुड़े हैं और ये दायित्व व्यापक रूप से जन-मानस के साथ है।

वर्तमान समय में पत्रकारिता शक्ति का केन्द्र बन गया है। राजनीति व सरकार के समीकरण भी इसके अनुसार होने लगे हैं। जिसके कारण अब पत्रकारिता की आधार संहिता की आवश्यकता भी महसूस होने लगी है। पत्रकारिता में राष्ट्रीयवाद के भी अलग-अलग पैमाने पत्रकारों ने बना रखे हैं। उदाहरण के लिए, क्रिकेट मैच में यदि पाकिस्तान के साथ हो तो राष्ट्रवादी

सोच ज्यादा प्रबल हो पाती है। ऐसे समय में हिन्दी समाचार पत्रों में खबर पढ़ने को मिलती है कि पाकिस्तान की जीत का जश्न मानते दस गिरफ्तार। यहाँ राष्ट्रवाद केवल क्रिकेट मैच तक सीमित हो जाती है। इसके अलावा केवल सरकार का गुण-गान भी किसी पत्रकारों वर्ग के द्वारा राष्ट्रवाद मान लिया जाता है। जिसमें केवल सरकारी निर्णयों व कार्यों की प्रशंसा की जाती है। जबकि राष्ट्रीयता की विचाराधारा इससे परे आम जन मानस से जुड़ी है। जिसमें पत्रकारों को आम जनता से जुड़े हुए मुद्दों को सरकार के सामने लाना चाहिए। लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ को सरकार व जनता के बीच एक कड़ी का कार्य करना चाहिए, जिससे इसकी विश्वसनीयता व महत्ता बनी रही। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ-साथ पत्रकारिता को अपने दायित्वों को याद रखना चाहिए। यदि इसे व्यवसाय समझकर, “तैमुर ने चलना सिखा, खाना सीखा” जैसी खबरों को राष्ट्रीय पत्रों और चैनलों पर तवज्जो देना बन्द नहीं किया तो वह दिन दूर नहीं जब आम जनता के बीच इसकी छवि एक खबर या सामान बेचने वाले की हो जाएगी, जो भविष्य में पत्रकारिता के लिए बहुत घातक सिद्ध होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- * पत्रकारिता के मूल सिद्धान्त - नवीन चन्द्र पंत (2004) कनिश्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- * भारतीय पत्रकारिता के आधार- भारत भूषण डल्लू (2005) ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- * पत्रकारिता की चुनौतियाँ- गणेश मन्त्री सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
- * बदलती पत्रकारिता गिरते मूल्य - डॉ० निषान्त सिंह (2006) नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
- * हिन्दी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप - श्रवण कुमार (2006) ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- * भूमंडलीकरण और मीडिया - कुमुद शर्मा (2003) ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली।
- * पत्रकारिता का अवलोकन - एन.सी.पंत (1996) राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- * पत्र-पत्रिकाएँ दशा और दिशा - पल्लनी अग्रवाल (2006) वंदना पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- * हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास-जगदीष प्रसाद चतुर्वेदी (2004) प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
- * पत्रकारिता कल आज और कल - संतोश कुमार (2012) ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली।
- * मीडिया /360 - संदीप उपाध्याय (2015) तक्षशिला प्रकाशन।
- * मीडिया मंथन - डॉ० राजेन्द्र मिश्र (2009) तक्षशिला प्रकाशन।
- * हिन्दी पत्रकारिता: इतिहास एवं विकास - आर.के.गुप्ता (2008) ओमेगा प्रकाशन।
- * पत्रकारिता के विविध आयाम - डॉ० राजेन्द्र मिश्र, डॉ० देवीसिंह राठौर (2003) तक्षशिला प्रकाशन।

राष्ट्रवाद और हिन्दी पत्रकारिता

सर्वदमन त्रिपाठी

प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान

मानव सभ्यता के निरंतर विकास ने मानव को परिवार, ग्राम तथा छोटे राज्य की सीमा से पार देश के विस्तृत भूखण्ड के मोह पाश में बांध दिया है। राष्ट्रीय भावना से युक्त देश को ही राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। राष्ट्र के प्रति तीव्र एवं गहन अपनत्व तथा ममत्व की भावना में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि राष्ट्रवाद का अर्थ है मनुष्य अपने सभी हितों की अपेक्षा राष्ट्र के हित को प्रधानता और प्राथमिकता दी। यदि राष्ट्र को आवश्यकता पड़े तो स्वयं को बलिदान भी कर दे। राष्ट्रवाद में व्यक्ति अपने आपको पहले भारतीय मानता है बाद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, हिन्दू, मुस्लिम मानता है। राष्ट्रवादी अपने राष्ट्र के प्रति उनमें आदर, सम्मान, गौरव की भावना होती है।

पत्रकारिता आधुनिक युग बोध, राष्ट्रीय चेतना बौद्धिक जागरूकता एवं व्यापक जन चेतना को संप्रेषित करने का सशक्त माध्यम है। यह ऐसी जीवन्त विधा है जिसमें जनता की आत्मा के स्वर, उसके सुख-दुख, जय-पराजय, आशा आकांक्षा आदि मुखर हो उठते हैं। पत्रकारिता शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'जर्नलिज्म' के पर्याय के रूप में होता है। जिसका अर्थ है एक दिन और समाचार पत्र।

पत्रकारिता नित्य परिवर्तित होते सामयिक जनजीवन, भौतिक घटनाचक्र राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकलापों का संकलन एवं प्रस्तुतीकरण मात्र नहीं है। यह कला व्यापक जनसंवेदना, मानवीय अनुभूतियों एवं अमूर्त भावनाओं को संप्रेषित करने का जनमाध्यम भी है। पत्रकारिता की आत्मा समाचारों और विचारों में व्याप्त मानवीय सहजानुभूति एवं अमूर्त संवेदनशीलता है। जिसकी उष्णता का अनुभव किसी घटना के समाचारों और विचारों को पढ़ सुनकर सहज ही होने लगता है। पत्रकारिता अनदेखी घटनाओं, समाचारों का निष्पक्ष विवरण ही नहीं है बल्कि समाचारों एवं विचारों में व्याप्त मानवीय अनुभूतियों का संवेदनशील सम्मूर्तन भी है। पत्रकारिता लोक मानस में किसी जन मान्यता का निर्माण कर जन जागरण के लिए रूप एवं वाणी देती है।

प्राचीन युगों में पत्रकारिता का आशय था शासकीय नीतियों को जनता तक पहुँचाना। प्राचीन भारत में शिलालेखों के रूप में ऐसी उद्घोषणायें की जाती थीं। भारत ही नहीं अन्य राष्ट्रों में भी पत्र के द्वारा ही सूचनायें प्रसारित होती थीं। भारतेन्दु के उदय के पूर्व पत्र-पत्रिकाओं के विकास का प्रथम चरण पूर्ण हो चुका था। पत्र-पत्रिकाओं का संबंध सीधे जन जागरण से है। किसी प्रकार के अन्याय का प्रतिकार करने के लिए जनता जब-जब उठ खड़ी होती तो उसे अपनी आवाज बुलन्द करने के लिए इन पत्र-पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ता है। इस काल में पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य जनता में जागरण और सुधार की भावना उत्पन्न करना था। भारतेन्दु का स्थान हिन्दी पत्रिकाओं के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी के प्रत्येक अभाव को दूर करने की पूरी चेष्टा की। कविवचन सुधा के प्रकाशन से लेकर भारतेन्दु के अस्त होने तक हिन्दी पत्रकारिता के विकास का दूसरा स्थान पूरा हो जाता है। इस काल में भाषा परिमार्जित हुई। जागरण एवं सुधार की भावना का प्रसार हुआ। भारतवासियों ने अपने जाति वर्ग के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। जिसके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना अधिक प्रखर रूप में सामने आई। उन दिनों जन-जागरण का केन्द्र कलकत्ता नगर था। हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ वहीं से होता है।

राष्ट्रवाद और पत्रकारिता ये दोनों ही शब्द हमारे समाज की बीच की एक कड़ी हैं। राष्ट्रवाद का मुद्दा आजकल काफी गरमाया हुआ है। राष्ट्रवाद आता है राष्ट्र से और हमारा राष्ट्र एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है। एक राष्ट्रवादी पत्रकार को होना चाहिए जो राष्ट्र के बारे में सोचे क्योंकि राष्ट्रहित लोकतंत्र में है। वो पत्रकार जो लोकतांत्रिक बात करे लेकिन वर्तमान समय में राष्ट्रहित को सरकार हित और लोकतंत्र को सरकार तंत्र में बदलने की कोशिशों की जा रही हैं। जिसमें सरकार के विरोधियों के लिए कोई जगह नहीं है। इस संदर्भ में एक महान पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी जिनका कहना था कि पत्रकार को हमेशा सरकार के विरोध में होना चाहिए।

भारतेन्दु को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने स्वदेशियता के मंत्र के लिए व्यापारियों, शिक्षित एवं साधारण लोगों से अपील की। 23 मार्च 1874 की कविवचन सुधा में प्रकाशित प्रतिज्ञा पत्र इस प्रकार है- 'हम लोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य परमेश्वर को साक्षी मानकर यह नियम मानते हैं कि हम लोग आज के दिन कोई विलायती कपड़ा न पहनेंगे और जो कपड़ा पहले से मोल ले चुके हैं और आज की तिथि तक जो हमारे पास है उनका उनके जीर्ण हो जाने

तक काम में लेंगे। पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे। आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देशी हितैशी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करेंगे।¹¹

इस प्रतिज्ञा का बड़ा महत्व है। उस दिन हरिश्चन्द्र की कलम से भारतीय जनता ने अंग्रेजी राज के नाश का वॉरेंट लिख दिया था। इसको सभी लेखकों ने स्वीकार कर एक आन्दोलन का रूप दिया। हिंदी नवजागरण की अपनी विशेषता उसका सामंतवादी प्रवृत्तियों के विरोध के साथ-साथ साम्राज्यवाद विरोध रहा है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है - 'इस युग की कविता में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का माना जाना चाहिए।'¹²

राजनीतिक चेतना की पहली झलक हमें सन् 1857 ई. की क्रांति में मिलती है। इसके बाद स्वदेशियता और राष्ट्रीयता के रूप में राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। इसके ऊपर से दिखने वाली अंग्रेजों की प्रशंसा वास्तव में उनका घोर विरोध थी। यह उस युग की देशभक्ति की विशेषता थी।

भारतेन्दु राज भक्त अवश्य थे खुशामदी नहीं। इसीलिए इस सब की राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और सर सैयद अहमद खाँ जैसे खुशामदियों के साथ कभी पटरी नहीं बैठी। बालकृष्ण भट्ट देश में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने को ही सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। 'उनके अनुसार जिस काम के करने से नेशनलिटी हमारे में आवें हमको अपनी स्वत्व रक्षा का ज्ञान हो। वही मूलधर्म है, सो नहीं है। दूसरी बड़ी त्रुटि हमारे में है भट्ट जी राजनीतिक रूप से सबसे अधिक सजग थे। उनकी स्पष्ट धारणा है कि स्वाधीनता के बिना देशोन्नति संभव नहीं। ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारी हिन्दू जाति को भी वही सुबुद्धि दे जो इस समय यूरोप और अमरीका के निवासियों को दिए हुए हैं। हम लोग बहुत भाग चुके हैं। अब कब तक ऐसे भागते रहेंगे। अब हमारी भी दुःखनिशा का अंत होना उचित है। 'पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचारों एवं लेख इत्यादि के द्वारा जनता के सामने अंग्रेज शासकों का वास्तविक रूप सामने आने लगा। शासकों की शोषण की नीति से जनता भली-भांति अवगत हो गई और अंग्रेज शासकों के प्रति उसमें विद्रोह और असंतोश के भाव ने घर किया। जिससे राष्ट्रीय चेतना का रूप धारण कर लिया।'¹³

भारतेन्दु की सहायता से काशी नॉर्मल स्कूल के हेडमास्टर बालेश्वर प्रसाद ने काशी पत्रिका निकाली। 1884 ई. में रामकृष्ण वर्मा ने काशी से 'भारत जीवन' नाम का प्रसिद्ध पत्र निकाला। काशी हिंदी का केन्द्र था तथा भारतेन्दु का निवास स्थान भी। कानपुर से प्रतापनारायण मिश्र ने ब्राह्मण पत्र निकाला था। उनकी नस-नस में जो शरारत और विद्रोह भरा हुआ था उसकी एक-एक लाइन से प्रकट होता है। 'भारतेन्दु का 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' तथा 'कविवचन सुधा' जनता का सशक्त स्वर बन गई। देश में राष्ट्रीय चेतना फैलाने के क्षेत्र में कविवचन सुधा का बहुत बड़ा स्थान है।'¹⁴ इस काल में राष्ट्रवादी देशभक्तों कांग्रेस जनों और क्रांतिकारियों ने कई समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं प्रकाशित की। इन पत्रिकाओं ने ब्रिटिश शासन के शोषण व उपनिवेशवादी स्वरूप का पर्दाफाश किया। साम्राज्य विरोधी जन आन्दोलन का समर्थन किया और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में शिक्षक, समीक्षक और प्रचारक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आज यह समझने की जरूरत है कि हमें व्यक्ति के पेशे को देखकर उसके मत को समझने की कोशिश करनी चाहिए। हम एक सैनिक और एक पत्रकार से समान कार्य की उम्मीद नहीं कर सकते हैं। दोनों के कार्य क्षेत्र में बहुत अंतर है। दोनों के कर्तव्य और देशहित में कार्य करने का तरीका बिल्कुल अलग है। सैनिक हमेशा से ही सर्वोच्च रहा है और रहेगा लेकिन इसके बाद जो हमें विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बनाये रखने में योगदान देता है और विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बने रहने के लिए लोकतंत्र के हित की बात करनी होगी न कि सरकार के हित की।

भारतेन्दु और उनके साथियों ने कलकत्ता, बंबई, लाहौर के बीच पत्र-पत्रिकाओं का जाल सा बिछा दिया। इन पत्रों ने जनता तक नई राष्ट्रीय चेतना पहुँचाई। यह साहित्य भारतीय जनता के अधिकारों की लड़ाई से जुड़ा हुआ है। इसमें हमारे रोष, हमारे स्नेह, हमारे त्याग की भावनाएँ स्पन्दित हैं। यह उन लोगों का साहित्य है जो पैतीस-छत्तीस साल की आयु में ही अपने प्राणों की होली खेलकर चल दिए। जिन्होंने अपनी दीर्घ जीवन के कुछ गिने वर्षों में केन्द्रित कर दिया। उनका वह आहुति अग्निपरीक्षा सी आज भी प्रज्वलित है। हिंदी भाषा और साहित्य को उससे आज भी जीवन और प्रकाश मिल रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ

- 1 भगवती प्रसाद शर्मा, नवजागरण और प्रतापनारायण मिश्र, पृष्ठ- 56
- 2 रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ- 582
- 3 वहीं, पृष्ठ सं. 409
- 4 कमला कनोडिया, भारतेन्दु कालीन हिंदी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ सं. 407-08

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्रवादी पत्रकारिता

डॉ. प्रेम प्रकाश शर्मा

देशबन्धु कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्रवादी पत्रकारिता का आरम्भ भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ ही साथ चल पड़ा था। जब एक ओर स्वतंत्रता प्राप्ति का आन्दोलन चल रहा था तब वहीं दूसरी ओर भारतीय पत्रकारों, लेखकों, कवियों ने अपने पत्रों, पत्रिकाओं, कविताओं, गीतों, रचनाओं से देश की सोई जनता में राष्ट्रवादी, देशभक्ति के भाव को जगाकर अंग्रेजी शासन का तख्ता पलट कर दिया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का सूत्रपात 1857 में मेरठ के मंगल पाण्डे द्वारा कारतूस न लेना, विद्रोह करना, अंग्रेजों द्वारा उन्हें फांसी देने की घटना तथा झांसी की रानी के बलिदान की घटना के साथ ही हो गया था। यह कारतूस गाय और सूअर की चर्बी से बना था। इट्सहिन्दी.कॉम ने मंगल पाण्डे की जीवनी में लिखा है कि 'मंगल पाण्डे की शहादत ने देश में जो क्रांति के बीज बोए उसने अंग्रेजी हुकूमत को 100 साल के अन्दर ही भारत से उखाड़ फेंका।'

'भारतकोश' में भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारण में लिखा है 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन भारतीय इतिहास में लम्बे समय तक चलने वाला एक राष्ट्रीय आंदोलन था। 1857 से भारतीय राष्ट्रवाद का उदय माना जाता है। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को तीन भागों में बांटा जा सकता है-प्रथम चरण (1885-1905 ई.तक) इस काल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। द्वितीय चरण (1905-1919 ई.तक) -इस दौरान कुछ उग्रवादी विचारधारा वाले संगठनों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए पश्चिम के ही क्रान्तिकारी ढंग का प्रयोग भी किया। तृतीय एवं अंतिम चरण (1919से 1947ई. तक) - इस काल में महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए आंदोलन प्रारम्भ किया।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जनमत, जनता को जोड़ने का कार्य हिन्दी भाषा ने किया। वह राष्ट्रभाषा व सम्पर्क भाषा बनकर देश को जोड़ रही थी। सभी देशभक्तों, राजनेताओं, पत्रकारों, लेखकों, कवियों ने अपने राष्ट्रवादी विचार के लिए एक भाषा को चुना और वह भाषा थी हिन्दी। इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में राष्ट्रवादी पत्रकारिता, देशभक्तों, राजनेताओं, पत्रकारों, लेखकों और कवियों का उदय हुआ। मीडियामिरर.इन ने राष्ट्रवादी पत्रकारिता के बारे में लिखा है कि 'हिंदी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता यानि राष्ट्रवाद की कहानी है। पत्रकारिता का उदय ही राष्ट्रवाद को प्रखर करने के उद्देश्य से हुआ था। पत्रकारिता शब्द स्वयं राष्ट्रवाद का बिम्ब है छाया है। पत्रकारिता को राष्ट्रवाद से अलग करके नहीं देख सकते। पत्रकारिता और राष्ट्रवाद एक दूसरे के पूरक ही माने जा सकते हैं। दोनों का उद्देश्य जनमत निर्माण ही है। पत्रकारिता अतीत से लेकर वर्तमान तक राष्ट्रवाद को प्रबल बनाने का कार्य करती रही है। पत्रकारिता का यही नैतिक धर्म भी है। आजादी के ठीक बाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय, मदन मोहन मालवीय आदि ने राष्ट्रवादी पत्रकारिता से जो प्रकाश पुंज प्रकट किया था उसका उजियाला राष्ट्र निर्माण और विकास में तेजी से फैला है।'

राष्ट्रवादी पत्रकारिता के प्रमुख ध्वज वाहक पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी। जिसका उद्देश्य ही राष्ट्रवादी पत्रकारिता को विस्तार देना था। इसी प्रकाशन के अधीन स्वदेश, राष्ट्र धर्म, पांचजन्य प्रकाशित हुए। जो आज भी हिन्दूराष्ट्र की प्रखर आवाज बने हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी भारत में पत्रकारिता का उदय हुआ। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इन शहरों में कलकत्ता गजट, उदंत मार्तण्ड का प्रारम्भ। पत्रकारिता का मतलब जन चेतना, जनमत निर्माण, राष्ट्र विकास, राष्ट्रवाद ही है। राजा राम मोहन राय, महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय, दीन दयाल उपाध्याय राष्ट्रवादी पत्रकारिता के अग्रणी बने रहे। राष्ट्रवादी पत्रकारिता भी निष्पक्ष और पारदर्शी पत्रकारिता की वाहक है। दरअसल कोई भी ऐसी खबर, रिपोर्ट, खुलासा, सामग्री, तस्वीर जिससे देश का हित हो, देश के नागरिकों का हित हो वही राष्ट्रवादी पत्रकारिता है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में कई पत्र पत्रिकाओं ने अंग्रेजी सरकार से अपने भारत राष्ट्र को स्वतंत्रता दिलाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। आजादी का शंखनाद किया था। राष्ट्रवादी पत्रकारिता को बढ़ावा दिया था। ' भारतीय पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों की विकास भूमियां एक दूसरे की सहायक रही हैं। यदि पत्रकारिता को राष्ट्रीयता ने प्रज्वलित किया तो पत्रकारिता ने भी राष्ट्रीयता को उज्ज्वलित कर राष्ट्रीयता के विकास की अनुकूल भूमि तैयार की। भारतीय पत्रकारिता का उदय राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करने के लिए ही हुआ।

देश की चेतना को झकृत कर निराश हृदयों में आशा का संचार करने तथा जड़ और मृतप्राय भावनाओं में क्रान्ति अंकुरित करने में पत्रकारिता का विशिष्ट योगदान रहा है। इनमें कुछ इस प्रकार हैं - पयामे आजादी इसका मुख्य उदाहरण है। यह पत्र

आजादी का सन्देश लेकर आया। स्वतंत्रता आन्दोलन के नेता अजीमुल्ला खां ने 8 फरवरी 1857 को दिल्ली से पयामे आजादी का प्रकाशन शुरू किया था। स्वतंत्रता का शंखनाद करने वाले इस पत्र ने तत्कालीन स्थितियों पर खुलकर लिखा तथा सरकार की नीतियों की निर्भीक आलोचना की।¹ 'पयामे आजादी' पत्र के बारे में भारत कोश में लिखा है- 'पयामे आजादी' पत्र ने दिल्ली की जनता में स्वतंत्रता की अग्नि को फैलाया। इसी पत्र में भारत का तत्कालीन राष्ट्रीय गीत भी छपा था, जिसकी कुछ पंक्तियां निम्नलिखित थीं- हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा। आज शहीदों ने अहले वतन पुकारा/तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।

बंगदर्शन पत्रिका- बंगदर्शन एक बांग्ला की मासिक पत्रिका थी जिसे बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने सन् 1872 में प्रकाशित करना आरम्भ किया। अप्रैल सन् 1876 तक वे ही इस पत्रिका के संपादक बने रहे। इसकी अधिकांश रचनाएं वे स्वयं लिखते थे। वन्दे मातरम् सबसे पहले इसी पत्रिका में छपा था, बाद में आनन्दमठ में आया। इसके 2 पद संस्कृत में हैं। इस गीत के बारे में 'ज्ञानी पण्डित.कॉम' में लिखा है कि 'भारत का राष्ट्रीय गीत 'वंदेमातरम्' है। जिसका अर्थ है, 'मैं अपनी माँ से प्रार्थना करता हूँ। भारतीय स्वतंत्रता के अभियान के समय वंदेमातरम् ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह सभाओं और रैलियों में आजादी के रूप में गाया जाता था। इंडियन नेशनल कांग्रेस ने इसके पहले छंद को ही यही राष्ट्रीय गीत के रूप में अपनाया। 20 नवम्बर 1909 को इस पूरी कविता को श्री अरविन्दो ने साप्ताहिक अखबार 'कर्मयोगी' में इसका हिंदी रूपांतर किया था।

'प्रताप पत्र' ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निभाई। जो गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा कानपुर से सन् 1913 में निकाला गया था। प्रताप पत्र के बारे में विकीविजुअली.कॉम लिखता है कि 'प्रताप के जरिये चम्पारण सत्याग्रह की नियमित रिपोर्टिंग कर राष्ट्र को गांधी जैसे व्यक्तित्व से परिचित कराया। चौरी चौरा तथा काकोरी काण्ड के प्रतिनिधियों के बारे में नियमित लिखते रहे। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित सुप्रसिद्ध देशभक्ति कविता पुष्प की अभिलाषा प्रताप अखबार में ही मई 1922 में प्रकाशित हुई। बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, सनेहीजी, प्रताप नारायण मिश्र इत्यादि ने प्रताप के माध्यम से अपनी देशभक्ति को मुखर आवाज दी। भगतसिंह ने प्रताप अखबार में कार्य किया। चन्द्रशेखर आजाद से भगत सिंह की मुलाकात विद्यार्थी जी ने ही कानपुर में कराई थी। यह विद्यार्थी जी ही थे कि जेल में भेंट करके क्रांतिकारी राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा छिपाकर लाये और उसे प्रताप प्रैस के माध्यम से प्रकाशित करवाया।'

'भारतमित्र' में बालमुकुन्द गुप्त द्वारा रचित 'शिवशम्भू के चिट्ठे' का प्रकाशन 1903 में हुआ। इसमें लेखक ने कर्जन को एक अत्याचारी शासक बताया है। उनके दिखावटी कार्यों की तुलना सुनहरी बुलबुलों के स्वप्न से की है। बालमुकुन्द गुप्त के बारे में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं 'बंगवासी को छोड़ते ही ये 'भारतमित्र' के संपादक बनाए गए। 'शिवशम्भू का चिट्ठा' से थोड़ा सा अंश नमूने के लिए दिया जाता है- 'हा ! शिवशंभू को इन पक्षियों की चिंता, पर वह नहीं जानता कि इन अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते।' 'पचीसों पत्र पत्रिकाएं हरिश्चंद्र जी के जीवनकाल में निकलीं। जिनके नाम हैं- हिंदी प्रदीप-प्रयाग 1934- बालकृष्ण भट्ट-मासिक, उचित वक्ता- कलकत्ता-1935- दुर्गाप्रसाद मिश्र, देशहितैशी-अजमेर -1936, ब्राह्मण-कानपुर-1940-प्रतापनारायण मिश्र आदि।³

'प्रेमचन्द' में कमल किशोर गोयनका लिखते हैं- 'महात्मा गांधी क्रांति नहीं चाहते और न क्रांति से आज तक किसी जाति का उद्धार हुआ है। 'हंस, जून 1931। 'कम्यूनिज्म और फासिज्म का अस्तित्व इसलिए नहीं है कि उनके पीछे सैनिक शक्ति है बल्कि इसलिए कि वे प्रजाहित को ही अपना आधार बनाए हुए हैं। (जागरण, 21 अगस्त 1933।) आपको ईश्वर ने सेवा और त्याग के लिए रचा है।' -प्रेमचंद की अंतिम कहानी 'रहस्य' से, हंस, सितंबर 1936। प्रेमचंद के दो लेख 'स्वदेश का संदेश' (स्वदेश प्रवेशांक, 1975 वि.) तथा 'पुराना जमाना: नया जमाना' (जमाना फरवरी 1919) बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनमें वे स्वराज्य, स्वदेशी, स्वाधीनता, स्वशासन आदि कई विषयों पर अपने विचार प्रकट करते हैं। हंस के प्रवेशांक में वे लिखते हैं कि, 'कर्णधार महात्मा गांधी' ने ही स्वाधीनता की वृत्ति जाग्रत की है और इस संग्राम में हम एक दिन विजयी होंगे। भारत ने 'शांतिमय समर' की भेरी बजा दी है और हंस आजादी के जंग में योग देने चला है।⁴ प्रेमचंद इस राष्ट्रबोध तथा राष्ट्र प्रेम के कारण ही गांधी के दर्शन तथा आंदोलन से जुड़ते हैं।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि 'भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और राष्ट्रवादी पत्रकारिता' एक दूसरे की प्रेरणा बने जिसके कारण भारत भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलनों में विजयी हुआ तथा अब भी राष्ट्रवादी पत्रकारिता का विकास निरन्तर होता चला आ रहा है। राष्ट्रवादी पत्रकारिता के कारण ही भारत आज भी अपनी स्वतंत्रता को स्वतंत्र बनाए रखने में सफल हो रहा है। इससे भारतीयों में राष्ट्रहित का भाव बना हुआ है।

संदर्भ

1. मीडिया और हिन्दी : बदलती प्रवृत्तियाँ-वाणी प्रकाशन नई दिल्ली। पृष्ठ 83
2. माखनलाल चतुर्वेदी ग्रंथावली-साहित्य अकादमी दिल्ली। पृष्ठ 165
3. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' - रामचन्द्र शुक्ल। पृष्ठ 305, 306, 270-271.
4. प्रेमचन्द - कमल किशोर गोयनका -साहित्य अकादमी दिल्ली। पृष्ठ 38.39
5. गवेशणा - केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा। पृष्ठ 169 अंक 100/2012

आपातकाल : भारतीय लोकतंत्र का काला अध्याय

प्रीति कुमारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

26 जून 1975 को भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में आपातकाल के रूप में एक काला अध्याय जुड़ा। एक ऐसा अध्याय जिसे न कोई पलटना चाहेगा न आगे दोहराना। आपातकाल के दौरान लोकतंत्र का चतुर्थ स्तंभ कहे जाने वाले मीडिया (पत्रकारिता) पर सेंसरशिप लगा दी गई। भारतीय लोकतंत्र अपनी जिस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए जाना जाता है उस पर प्रश्न चिह्न लग गया। आपातकाल के दौरान सरकार के कृत्यों ने भारतीय लोकतंत्र को शर्मसार किया।

भारतीय संविधान के भाग XVIII में अनुच्छेद 352 से 360 तक आपातकालीन उपबन्ध उल्लिखित हैं। भारतीय संविधान में तीन प्रकार का आपातकाल दिया गया है-

1. युद्ध, बाह्य आक्रमण और सशस्त्र विद्रोह के कारण आपातकाल (अनुच्छेद 352), इसे राष्ट्रीय आपातकाल के नाम से जाना जाता है। संविधान में इस प्रकार के आपातकाल के लिए 'आपातकाल की घोषणा' वाक्य का प्रयोग किया गया है।
2. राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता के कारण आपातकाल को 'राष्ट्रपति शासन' (अनुच्छेद 356) के नाम से जाना जाता है।
3. भारत की वित्तीय स्थिति के कारण लगाये गये आपातकाल को 'वित्तीय आपातकाल' (अनुच्छेद 360) कहा जाता है।

'आपातकालीन स्थिति में केंद्र सरकार सर्वशक्तिमान हो जाती है तथा सभी राज्य, केंद्र के पूर्ण नियंत्रण में आ जाते हैं। ये संविधान में औपचारिक संशोधन किए बिना ही संघीय ढांचे को एकात्मक ढांचे में परिवर्तित कर देते हैं।' हमारे देश में अब तक तीन बार आपातकाल की घोषणा की गयी है। भारत-चीन युद्ध के समय 26 अक्टूबर 1962 को बाह्य आक्रमण से भारत की सुरक्षा के खतरे को देखते हुए राष्ट्रपति ने यह उद्घोषणा की। 10 जनवरी 1968 तक यह आदेश बना रहा। 3 दिसंबर 1971 में पाकिस्तानी आक्रमण के समय दूसरी बार आपातकाल की घोषणा की जो 27 मार्च 1977 तक प्रवर्तन में रही। तीसरी बार आपातकाल की घोषणा 26 जून, 1975 को 'आंतरिक अशांति' से देश की सुरक्षा संकट में होने के आधार पर की गई। इस घोषणा को 21 मार्च, 1977 को वापस लिया गया।

1975 का आंतरिक आपातकाल आजादी के बाद भारत का सबसे बड़ा राजनीतिक संकट का समय था। जनता की सरकार से जो अपेक्षाएं थीं वे पूरी नहीं हो पा रही थीं। जनता में असंतोष उभर आया था। असंतोष उभरने का तात्कालिक कारण आर्थिक परिस्थितियों में गिरावट था। इसके कई कारण थे। जिनमें 1971 के दौरान बंगलादेश से आए करोड़ों शरणार्थियों का खर्चा, 1972 और 1973 के दोनों वर्षों में भयंकर सूखा, 1973 का कुख्यात तेल संकट आदि शामिल थे। इन आर्थिक व राजनीतिक संकटों से जन आक्रोश बढ़ने लगा। जनवरी 1974 में गुजरात में यह जन आक्रोश छात्र आंदोलन के रूप में फूट पड़ा। मार्च 1974 में बिहार में छात्र आंदोलन शुरू हुआ। बिहार में 'जयप्रकाश नारायण' ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया और 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दिया। उन्होंने छात्रों से कांग्रेस के त्यागपत्र लेने व विधानसभा भंग करने की मांग करने को कहा। इंदिरा गांधी विधानसभा भंग करने की मांग मानने को बिलकुल तैयार न थीं। क्योंकि उन्हें लगता था कि इससे विरोध की यह आग बढ़ते हुए केन्द्र सरकार तक भी पहुंच सकती है।

12 जून 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति सिन्हा ने राजनारायण द्वारा दायर की गई एक चुनाव याचिका पर अपना फैसला देते हुए इंदिरा गांधी को भ्रष्ट चुनाव आचरण में दोषी पाया व उनके चुनाव को अमान्य करार दिया। इस फैसले का आशय यह भी था कि अगले छह वर्षों तक श्रीमती गांधी न तो चुनाव में खड़ी हो सकती थीं, और न ही किसी पद पर आसीन हो सकती थीं। इसलिए उनका प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना आवश्यक हो गया। इंदिरा गांधी ने त्यागपत्र देने से इंकार कर दिया और सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। सर्वोच्च न्यायालय के अवकाशकालीन न्यायमूर्ति वी०आर०कृष्ण अय्यर ने 24 जून को फैसला दिया कि सम्पूर्ण पीठ का फैसला आने तक श्रीमती गांधी अपने पद पर बनी रह सकती हैं और संसद में बोल सकती हैं किंतु अपना मत नहीं डाल सकतीं। लेकिन जेपी व अन्य विपक्षी दल सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार

आगामी आठ महीनों में होने वाले चुनावों के नतीजे के लिए इंतजार नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने श्रीमती गांधी से त्यागपत्र की मांग की व लोगों से आंदोलन का आह्वान किया। '25 जून को दिल्ली में हुई एक रैली में उन्होंने यह घोषणा की कि श्रीमती गांधी को त्यागपत्र देने के लिए दबाव डालने के वास्ते 29 जून से एक सप्ताह का राष्ट्रव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन और जुलूस आदि का आयोजन किया जाएगा। इस आंदोलन का अंत सैकड़ों-हजारों आंदोलनकारियों द्वारा प्रधानमंत्री निवास के घेराव में होना था। अपनी रैली में दिए गए भाषण में जेपी ने जनता से आग्रह किया कि वे सरकार के कामकाज का चलना असंभव बना दें तथा एक बार फिर सशस्त्र सेनाओं, पुलिस बल और सरकारी अधिकारियों से अपील की कि वे किसी भी सरकारी आदेश को न मानें और उन आदेशों को 'गैर-कानूनी' और 'गैर-संवैधानिक' मानें।'²

इस तरह का माहौल बनाता देख इंदिरा गांधी ने 26 जून को सविधान की धारा 352 के तहत देश में आंतरिक आपातकाल की घोषणा कर दी। इंदिरा गांधी ने आपातकाल को भारत की सुरक्षा, अखंडता और लोकतंत्र की रक्षा के लिए आवश्यक बताया। "दरअसल न तो जेपी और न ही इंदिरा गांधी ने संकट से निकलने का जनवादी तरीका चुना। जेपी0 को लोकसभा के लिए नए चुनावों की मांग करनी चाहिए थी और इंदिरा गांधी को इसे स्वीकार करना चाहिए था। वैसे भी चुनाव 1976 के आरम्भ में होने वाले थे। ये चुनाव अक्टूबर-नवंबर 1975 में भी कराए जा सकते थे। इस तरह श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की मांग और आपातकाल दोनों का ही एक व्यावहारिक विकल्प चुना जा सकता था।"³

जयप्रकाश नारायण कोई निरंकुश नेता नहीं थे। लेकिन उनके आस-पास इस तरह के लोग एकत्र हो रहे थे जो इस आंदोलन पर नियंत्रण स्थापित करते जा रहे थे। क्रांति के इस विचार का आरंभ जेपी से हुआ किंतु आगे चलकर सरकार की विपक्षी पार्टियों के लोग इसमें सम्मिलित होते गये और अंततः तख्ता पलट की पूरी तैयारी कर ली गयी। किंतु इसका आशय यह नहीं है कि उस समय प्रधानमंत्री के पास आपातकाल के अलावा कोई विकल्प ही नहीं था।

इंदिरा गांधी के पास इस परिस्थिति में भी अन्य जनवादी विकल्प उपलब्ध थे। वह लोकसभा भंग कर आगामी चुनाव की घोषणा कर सकती थीं। यदि विपक्ष गैर-संवैधानिक तरीकों से उनसे तत्काल त्यागपत्र मांगता व अपने गलत तरीकों को जारी रखता तो वह तत्कालीन परिस्थितियों में वैधानिक रूप से कुछ समय के लिए आंतरिक आपातकाल लागू कर सकती थीं व परिस्थितियों के सामान्य होते ही आपातकाल वापस ले सकती थीं। किंतु 'यह एक राजनीतिक त्रासदी ही थी कि जेपी0 आंदोलन और इंदिरा गांधी, दोनों ने ही चुनाव के विकल्प को बंद कर दिया था जो एक प्रजातंत्र में राजनीतिक सत्ता की वैधता की वाहक और जनता की इच्छाओं की एकमात्र अभिव्यक्ति होती है।'⁴ अभिव्यक्ति की आजादी में पत्रकारिता अहम स्थान रखती है।

आजादी से पूर्व हमारी पत्रकारिता एक जुझारू दौर से गुजर रही थी। तिलक के 'स्वराज' गाँधी जी के 'हरिजन', गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' माखनलाल चतुर्वेदी के 'कर्मवीर' बाबू विष्णुराव पड़ारकर के 'आज' के द्वारा समतावादी, स्वतन्त्र, स्वाभिमानी समाज निर्माण के लिए पत्रकारिता का प्रयोग किया। इन पत्रों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पाखंड के उद्घाटन के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि जनता में चेतना जाग्रत की जाय जिससे वे जाने-अनजाने में उपनिवेशवादी शोषणतंत्र के अंग न बन जाएँ।

सन् 1947 में भारत को मिली आजादी के बाद पत्रकारिता मिले-जुले विचारों को व्यक्त कर रही थी। पत्रों में आजादी पाने का उल्लास, विभाजन का दर्द साथ-साथ महसूस हो रहा था। देश की आजादी के साथ-साथ पत्रकारिता को भी विचार व्यक्त करने की आजादी मिली। सन् 1962 में भारत-चीन युद्ध में भारत को पराजय मिली। इसकी दो प्रतिक्रियाएँ हुईं। 'एक ओर तो इस धक्के से हमारी रुमानी कल्पनाओं की दुनिया काँच के खिलौने की तरह बिखर गयी, पर दूसरी ओर हमने पाया कि भारत के सामान्य जन में एक नया संकल्प उभरा एक नयी प्रौढ़ दृष्टि उभरी राष्ट्रीय सवालियों पर।'⁵

1962 से 1971 तक का काल पत्रकारिता के उत्कर्ष का काल था। जब पत्रकारिता अपने चरमोत्कर्ष पर भी तभी उसे गहरा झटका लगा। 26 जून 1975 की सुबह देश में आपातकाल लागू कर दिया गया। प्रेस पर कड़ी सेंसरशिप लागू कर दी गई। 'जहाँ विजय का उद्घोष हो रहा था, वहाँ पत्र-पत्रिकाओं की दुनिया में एक गहरा मातम छा गया। एक बेबसी, सहसा लगने वाले मानसिक आघात के बाद की संज्ञाशून्यता उचटा-उचटा सा मन हर निष्ठावान पत्रकार का।'⁶ आंतरिक सुरक्षा प्रबंधन कानून (मीशा) के तहत विपक्ष के सैकड़ों प्रमुख नेताओं, शिक्षाशास्त्री, पत्रकार, ट्रेड यूनियन नेता व छात्र नेताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाला गया। 'पत्र सूचना कार्यालय के पास उपलब्ध रिकॉर्ड के अनुसार आपातकाल के दौरान 253 पत्रकारों को गिरफ्तार किया गया जिनमें कुलदीप नैयर, के0आर0मल्कानी, के0आर0 सुन्दर राजन जैसे प्रख्यात पत्रकार भी सम्मिलित हैं। सर्वाधिक गिरफ्तारियाँ मध्य प्रदेश (59) में हुईं। इसके अलावा उत्तर प्रदेश में 28, महाराष्ट्र में 26, राजस्थान में 23, तमिलनाडु में 14 तथा पं0 बंगाल, बिहार व कर्नाटक में 12-12 पत्रकार गिरफ्तार किए गए।'⁷ कुल मिलाकर उन्नीस महीनों में एक लाख से अधिक लोगों को गिरफ्तार किया गया। आपातकाल के इस निर्णय में इंदिरा गांधी तो दोषी थीं हीं किंतु दूसरों को भी इससे मुक्त नहीं किया जा सकता। 'यदि समय पर कांग्रेस पार्टी व उसके वरिष्ठ सदस्यों ने साहस दिखाया होता तो यह कुकृत्य नहीं हो सकता था। एक व्यक्ति की क्रूर मनमानी के सामने कोई नहीं बोला, सब चुप रहे।'⁸ इस मौन का परिणाम सारे देश को

झेलना पड़ा।

भारतीय संविधान में कहीं भी विशिष्ट रूप से प्रेस स्वातंत्र्य का उल्लेख नहीं किया गया है। वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(i) में प्रत्याभूत किया गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र की आधारशिला है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में ही प्रेस की स्वतंत्रता सम्मिलित है। 'अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य बहुत व्यापक पद है क्योंकि इसमें न केवल बोला हुआ और लिखा हुआ सम्मिलित है, वरन और भी सभी प्रकार के विचारों और भावनाओं का संचार भी सम्मिलित है जैसे चित्रांकन, नाट्य प्रदर्शन, चलचित्र और छपा हुआ पदार्थ आदि। वाक् और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के अंतर्गत प्रेस स्वातंत्र्य और अपने विचारों और अन्य के विचारों के प्रचार की स्वतंत्रता भी आती है।'⁹ आपातकाल के दौरान इस पर प्रतिबंध रहा। प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिए समाचार समितियों का विलय किया गया। आपातकाल पूर्व देश में चार समाचार समितियां थीं-पी.टी.आई., यू.एन.आई., हिन्दुस्थान समाचार और समाचार भारती जिन्हें मिलाकर एक समाचार समिति का गठन किया गया था जिससे यह पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में रहे। वर्ष 1974 तक पत्रकारिता के माध्यम से सत्ता और सरकार की सर्वत्र आलोचना हो रही थी जबकि आपातकाल के दौरान एक ओर जहाँ सत्ता और सरकार की चापलूसी करने वाले पत्रकार थे, वहीं दूसरी ओर प्रेस की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले पत्रकारों की भी कमी नहीं थी।

बुद्धिजीवियों के एक बहुत बड़े हिस्से ने आपातकाल के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। किन्तु अधिकांश जनता की आरंभिक प्रतिक्रिया मौन स्वीकृति, निरपेक्षता व कुछ लोगों की समर्थन की भी थी। 'आपातकाल को जनता द्वारा स्वीकार कर लिए जाने का एक बहुत बड़ा कारण इसका संवैधानिक, कानून सम्मत और अल्पकालिक स्वरूप भी था। यह संविधान की धारा 352 के तहत घोषित किया गया था। इसे संसद द्वारा स्वीकृत किया गया और न्यायपालिका द्वारा वैधानिक ठहराया गया था।'¹⁰ आपातकाल की अचानक घोषणा, वर्षों बाद वातावरण में आयी शांति, सरकार का भय आदि कई ऐसे कारण थे जिनसे जनता सहम सी गयी थी और एकदम आपातकाल का विरोध न कर सकी।

1976 में जाकर आपातकाल सामान्य जनता के बीच अलोकप्रिय होना शुरू हुआ। इंदिरा गांधी ने नवंबर 1976 में संसद द्वारा चुनावों को एक साल की अवधि के लिए टलवा दिया था। आपातकाल को स्वीकार्य बनाने के लिए 1 जुलाई को इंदिरा गांधी ने बहुउद्देशीय 20 सूत्री कार्यक्रमों की घोषणा की। संजय गांधी ने अपने 4 सूत्री कार्यक्रम में 'परिवार नियोजन' के अंतर्गत 'नसबंदी अभियान' चलाया जो कई बार मनमाने, अवैध व निरंकुश रूप में सामने आया। निरंकुश सत्ता, इंदिरा गांधी व संजय गांधी के अत्याचारों से धीरे-धीरे जनता का आपातकाल से मोहभंग होने लगा। इसकी परिणति 1977 के चुनावों में सत्ता परिवर्तन के रूप में हुई।

16 मार्च को स्वतंत्र और निष्पक्ष माहौल में हुए चुनावों में जनता ने कांग्रेस के प्रति विरोध प्रकट करते हुए इंदिरा गांधी को पराजित कर, जनता शासन को चुना। 1977 के चुनावों में इंदिरा गांधी की हार का सबसे बड़ा कारण आपातकाल के विरोधियों की मनोदशा को न समझ पाना था। पत्रों पर संसरशिप होने के कारण सरकार की जो आलोचना हो रही थी वह उस तक पहुँच ही नहीं पा रही थी। वे जनता के बदलते रुख से पूरी तरह अनजान थीं जिसका परिणाम उन्हें हार के रूप में मिला।

1977 में जब आपातकाल हटा, यह पत्रकारिता के इतिहास में एकदम विस्फोटक युग था। इमरजेंसी के दौरान पत्रिकाओं के दबे हुए स्वर ऊँची आवाज में आपातकाल की घटनाओं को अभिव्यक्त करने लगे। सामान्यजन, जो इतने दिनों से प्रेस पर संसरशिप होने के कारण आधे-अधूरे समाचारों को सुन रहा था, आपातकाल के हटते ही पत्र-पत्रिकाओं की ओर टूट पड़ा। 'पत्रकारों की नयी 'इमेज' बनी। वे सामाजिक-राजनीतिक जीवन के 'ग्लैमर ब्वॉय' के रूप में देखे जाने लगे।'¹¹ इंदिरा जी ने संसरशिप के दौरान पत्रकारों को गिरफ्तार कर हीरो बना दिया था। अधिकांश पत्रकारों ने आपातकाल के दौरान हुए अत्याचारों, हिंसा, प्रतिबंध, समस्त घटनाओं का खुलकर पर्दाफाश किया। जनता में यह खबरें अब बिना संसर किये सीधे जा रही थीं। जनता ने जब आपातकालीन समस्त गतिविधियों को जाना तब, इसका सीधा असर आगामी चुनाव परिणामों में दिखा। आगामी चुनाव में इंदिरा गांधी बुरी तरह हारी। ग्लैमर की इस चमक में कुछ पत्रकारों में सत्ता में पद प्राप्ति की आशा भी जागने लगी। "अपने इस नव प्राप्त ग्लैमर की आभा में एक नयी आत्मप्रवचनाने अनेक पत्रकारों में जागी और कुछ तो तुरंत उसे भुनाने के लिए दौड़ पड़े। कुछ बड़े लाभदायक पदों से लेकर राज्यसभा के नामांकन तक के लिए जनता सरकार के मंत्रियों तक ही नहीं, बल्कि बेचारे बीमार जेपी की रोगशय्या तक लेखकों पत्रकारों के जो 'क्यू' उस समय लगे थे, उसे याद कर हँसी भी आती है और रोना भी। पत्रकारिता अपने में शब्द की सच्चाई और उसे जन तक संप्रेषित करने की जिम्मेदारी है, यह बात तो गौण हो गयी। हाँ, पत्रकारिता शक्ति-संचय की एक नयी विधा है, यह बात प्रमुख होने लगी।'¹² आपातकाल के दौरान भूमिगत पत्रकारों की महत्वपूर्ण भूमिका को नहीं भुलाया जा सकता है। ऐसे पत्रकारों के कारण ही जनता तक सच्ची खबरें पहुँच पा रही थीं। इससे जनता सत्ता व सरकार के कारनामों से अवगत हो रही थीं। किन्तु सत्ता और सरकार तक संचार अवरोध के कारण यह समाचार नहीं पहुँच पा रहे थे। इससे सरकार जनता के बदलते विचारों से अवगत न हो सकी। इस पूरे प्रकरण में सरकार के अत्याचार व प्रेस पर लगी संसरशिप में आपातकाल को भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में काले पन्ने के रूप में जोड़ दिया।

निष्कर्षतः 1975 में इंदिरा गांधी ने यदि समझदारी और धैर्य से काम लिया होता तो आपातकाल लगाने की आवश्यकता

न पड़ती। आपातकाल के दौरान सरकार द्वारा प्रेस पर सेंसरशिप लगाना, मीशा के अंतर्गत किसी की भी गिरफ्तारी, संजय गांधी का जबरन नसबंदी अभियान निश्चय ही निंदनीय है। जयप्रकाश नारायण व इंदिरा गांधी के पास अन्य भी कई विकल्प थे जिनका प्रयोग कर वे देश को इस शर्मनाक दिन से बचा सकते थे।

संदर्भ

1. लक्ष्मीकांत एम0, भारत की राजव्यवस्था, MC Grow Hill Education (India) Private limited, New Delhi, चतुर्थ संस्करण 2015, पृष्ठ 16.1
2. चंद्र बिपिन, आजादी के बाद का भारत (1947-2007), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, चतुर्थ संशोधित संस्करण का पुनर्मुद्रण-नवम्बर 2015 पृष्ठ 342
3. वही, पृष्ठ 334
4. वही, पृष्ठ 339
5. भारती धर्मवीर, उत्कर्ष और विघटन के आयाम, सम्पा0-राजकिशोर, समकालीन पत्रकारिताः, मूल्यांकन और मुद्दे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ 31
6. वही, पृष्ठ 33
7. मिश्रा डॉ0 महेन्द्र कुमार, पत्रकारिता के सिद्धांत, प्रथम संस्करण 2014, दिव्यम प्रकाशन, डॉ0 मुखर्जी नगर, दिल्ली, पृष्ठ 241
8. टंडन विशन, आपातकाल: एक डायरी (भाग-एक), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2006, पृष्ठ 42
9. मिश्रा डॉ0 महेन्द्र कुमार, पत्रकारिता के सिद्धांत, प्रथम संस्करण 2014, दिव्यम प्रकाशन, डॉ0 मुखर्जी नगर, दिल्ली, पृष्ठ 209
10. चंद्र बिपिन, आजादी के बाद का भारत (1947-2007), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, चतुर्थ संशोधित संस्करण का पुनर्मुद्रण-नवम्बर 2015 पृष्ठ 342
11. भारती धर्मवीर, उत्कर्ष और विघटन के आयाम, सम्पा0-राजकिशोर, समकालीन पत्रकारिताः, मूल्यांकन और मुद्दे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ 33
12. वही, पृष्ठ 34

वैश्विक मूल्य और भारतीय राष्ट्रवाद

श्री प्रकाश के. मिश्र

आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज
दहेगाम, गांधीनगर (गुजरात)

राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जनसमुदाय के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परंपरा, समान भावनाओं से बँध हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। 'राष्ट्रवाद' मानवता को समर्पित होता है। अपने और अपने वर्ग के स्वार्थ की बलि चढ़ाने के लिए उद्धृत रहना ही मानवता की राष्ट्र के रूप में पूर्णता प्रगति की शर्त है। राष्ट्रीयता की भावना राष्ट्र के सदस्यों में पायी जाने वाली सामूहिक एवं सामुदायिक उत्कंठा है जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है। भारत में अंग्रेजों के शासन काल में राष्ट्रीयता की भावना का विशेष रूप से विकास हुआ, इस विकास में विशिष्ट बौद्धिक वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जो स्वतंत्रता को मूल अधिकार समझता था और जिसमें अपने देश को अन्य पाश्चात्य देशों का इतिहास पढ़कर उसमें राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति में नई पीढ़ी को राष्ट्रवादी बनने की प्रेरणा नहीं मिली है किन्तु आधुनिक काल में नवोदित राष्ट्रवाद अधिकांशतः अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम है। परन्तु भारत जैसे किसी देश में राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था पर अलग-अलग सोच और विचार रखनेवाले लोगों का होना स्वाभाविक है। यही सोच आगे चलकर राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रवाद में बदलती है। ऐसा नहीं है कि यह सोच नवीनतम है, प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा और दर्शन में यही परंपरा रही है। यही भारतीयता और लोकतंत्र की ताकत है। यहाँ हर कोई अपनी रुचि और इच्छा प्रकट कर सकता है। यही गुण एक लोकतंत्र को निरंकुश शासन से अलग करता है। जो राष्ट्रीयता को पुष्पित और पल्लवित करता है।

राष्ट्रवाद के संबंध में बुद्धिजीवियों और समाज विज्ञानियों ने इस बात का अध्ययन किया है कि कैसे एक देश बनता है। उन्होंने इसका भी आकलन किया है कि कौन से कारक देश को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। उन्होंने इस बारे में भी लिखा है कि किन कारणों से एक देश दूसरे देश से अलग होता है। ये सभी अकादमिक कार्य महत्वपूर्ण हैं, लेकिन इसके साथ ही राष्ट्रवाद पर आम जनता की सोच भी इसके बराबर ही मायने रखती है। यदि राह चलता हुआ एक व्यक्ति भारत के सन्दर्भ में इन मुद्दों की बात करता है तो इसका सीधा अर्थ है हर भारतीय राष्ट्र की भावना से ओतप्रोत है। वास्तव में राष्ट्रवाद का सार और उद्देश्य भी यही है।

राष्ट्रवाद और पत्रकारिता

राष्ट्रवाद और पत्रकारिता और पत्रकारत्व ये तीनों ही शब्द हमारे समाज और देश के बीच एक बड़ी महत्त्व रखते हैं, लेकिन क्या ये तीनों शब्द एक साथ चल सकते हैं ? अगर हाँ तो कैसे और नहीं तो क्यों नहीं, ये समझने के लिए हमें इसके स्वरूप और इनके साथ आ रही जवाबदारियों को समझना आवश्यक होगा।

'राष्ट्रवाद' का मुद्दा आजकल पहले से ज्यादा गरमाया हुआ है, इतना कि लोग इसकी व्याख्या से डरने और सोचने तथा नए ढंग से समझने के लिए विवश हो गए हैं और जल जाने के डर से इस बारे में अपना सही विचार नहीं दे पा रहे हैं। मतलब कि वह और वो क्या कहेगा हम जानते हैं कि 'राष्ट्रवाद' की उत्पत्ति 'राष्ट्र' से ही होती है और हमारा राष्ट्र एक लोकतांत्रिक 'राष्ट्र' है, लेकिन क्या हमारा राष्ट्र भी हमें इतनी लोकतांत्रिकता और स्वतंत्रता दे रहा है? वर्तमान समय में तो ऐसा नहीं लगता, क्योंकि एक खास सोच और विचार रखने वाले कुछ विशिष्ट लोगों ने इसे अपना ही हक मानल लिया है और इसी कारण पत्रकार भी खींचातानी का अनुभव कर लिया है और उसी के तहत अपने विचारों को रखने लगा है। अंततः राष्ट्रवाद 'धर्मवाद' बनता जा रहा है। एक राष्ट्रवादी पत्रकार कैसा होना चाहिए? जो राष्ट्र के हित में बात करे और हमारे हित लोकतंत्र में है तो वो पत्रकार भी लोकतंत्र की ही बात करे। लेकिन इस समय राष्ट्र हित को सरकार-हित और लोकतंत्र को सरकार तंत्र में बदलने की कोशिश की जा रही है जिसमें सरकार के विरोध में बोलने वाले कोई स्थान नहीं है अथवा पत्रकार देश विरोधी माना जाता है। इस सन्दर्भ में एक महान् पत्रकार के विचार को देखना आवश्यक हो जाता है, 'पत्रकार को हमेशा सरकार के विरोध में होना चाहिए।' यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रकार सदैव सच्चाई का साथी होना चाहिए। यही पत्रकार का दायित्व और कर्तव्य भी है। यहाँ कहना उचित होगा कि 'पत्रकारिता को किसी राष्ट्र का या समाज का आईना होना चाहिए, जो उसकी समसामयिक परिस्थितियों का निष्पक्ष विश्लेषण करता है।' परन्तु वर्तमान में कुछ पत्रकार भी सरकार हित और लोकतांत्रिक हित को लेकर दो गुटों में बँट

गाए हैं। जो लोकतंत्र और देशतंत्र के लिए अहितकारी है और इन दोनों के बीच में भोली-भाली जनता पिस रही है। ऐसे में जनता का एकमात्र सहारा पत्रकार ही होता है जो व्यक्तिवाद से राष्ट्रवाद की ओर ले जाता है।

अन्ततोगत्वा हमें ये समझने की जरूरत है कि हमें व्यक्ति के पेशे को देखकर उसके मत को समझने की कोशिश करनी चाहिए न कि पैसे को। हम एक सैनिक और पत्रकार से समान काम की उम्मीद नहीं कर सकते, क्योंकि दोनों का ही क्षेत्र अलग है, कार्यभूमि, कर्तव्य और देशहित में कार्य करने का तरीका अलग है। परन्तु राष्ट्रवाद दोनों में अन्तर नहीं होनी चाहिए। शहीदी सर्वोच्च है और रहेगी लेकिन इसके बाद भी कुछ है जो हमें विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बनाए रखने में योगदान देता है और योगदान की भूमिका पत्रकार ही अदा करता है। अतः विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बने रहने के लिए पत्रकार को की बात करनी होगी ना कि सरकार के हित की। सरकार का हित राष्ट्र का हित नहीं होता कहना उचित नहीं है परन्तु सरकार का राष्ट्रवाद उनके अनुसार होता है। वर्तमान में ऐसा ही हो रहा है जिसका रोक पत्रकार ही लगा सकता है। इतना ही नहीं हमारे देश की संस्कृति भी कभी संकीर्ण नहीं रही है और उसने सबको यहाँ रहने की स्वतंत्रता दी है।

वैश्विक मूल्य और भारतीय राष्ट्रवाद

वैश्वीकरण के इस दौर में पत्रकारिता का परिदृश्य पूरी तरह बदल गया है, जिसने विभिन्न माध्यमों के द्वारा पत्रकारिता को स्थापित होने का भरपूर अवसर दिया है। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में भारत में निजी चैनलों का आगमन प्रारंभ हुआ। जी न्यूज ने जब पहली बार समाचारों का प्रसारण किया तो वह समाचार दूरदर्शन के उन समाचारों से बिल्कुल अलग थे। पारंपरिक ढंग से समाचार देखने और पढ़ने के उत्सुक दर्शकों को एक मसालेदार और सनसनीखेज जिसको अंग्रेजी में 'Breaking News' जिसका प्रसारण 'ब्रेकिंग न्यूज' हिन्दी में ही कहा जाने लगा। इसके द्वारा दर्शकों को तुरंत अपनी ओर खींच लिया। इस रुझान को देखते हुए ऐसा लगता है कि आने वाले समय में चैनलों की बाढ़ आ जाएगी, उसका असर तो वर्तमान में दिखाई पड़ने लगा है। अब समाचार खरीद फरोख्त का एक जरिया बन गया है। अब पत्रकार के महत्त्व को कम और मालिक का महत्त्व विशेष बढ़ गया है।

वैश्वीकरण का असर भी भारतीय पत्रकारिता पर साफ दिखाई देने लगा है, जब पश्चिमी देशों में कार्यक्रमों की नकल की गई। 1995 में जी.टी.वी. ने 'इंडियाज मोस्ट वांटेड' कार्यक्रम के जरिए अपराध जगत से जुड़े समाचारों का प्रसारण शुरू किया। यह पूरी तरह ब्रिटेन और अमेरिकी टी.वी. चैनलों में प्रसारित होने वाले कार्यक्रम की नकल थी। भारतीय दर्शकों ने इसे अधिक पसंद किया। जिसका अनुकरण एक के बाद एक चैनल इस तरह के कार्यक्रम में जुड़ते गये। आज 'सनसनी' और 'क्राइम रिपोर्टर' जैसे कार्यक्रमों ने सनसनाहट पैदा कर दिया है।

बीसवीं अंत तक जनसंचार के सशक्त माध्यम के रूप में न्यू मीडिया का आगमन भी हो चुका है। जिसने आते ही अपनी धाक जमा दी है। आज जिस न्यूज पोर्टल पर नजर डालिए, उसमें समाचार लिंक के अलावा कई ऐसे लिंक हैं, जो सेलिब्रिटी और उनसे जुड़े हुए कई चटपटी खबरें आसानी से मिल सकती हैं। ये लिंक भी ऐसे होते हैं, जिसमें एक के बाद एक कई समाचारों को पाठक पढ़ सकता है। वीडियो देखने की सुविधा भी उपलब्ध होती है। वर्तमान में पत्रकार का दायित्व केवल समाचार तक सीमित नहीं रहा समाचार के बदलते स्वरूप भी उनके दायित्व में आ गया है जैसे न्यूज वेबसाइट का एक कोना ऐसा भी होता है, जिसमें मॉडलों और सेलिब्रिटी की हजारों तस्वीरें होती हैं। इसके अलावा भी कई तरह की लिंक होती हैं, जो सूचनात्मक हैं, लेकिन जिस तरीके से एक वेबसाइट को सजाया जाता है, उससे यह साफ प्रतीत होता है कि कुछ प्रमुख समाचारों को छोड़कर ज्यादातर जोर मॉडल और सेलिब्रिटी वाले भाग पर है। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' और 'नवभारत टाइम्स' इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

विश्व बाजारवाद ने दुनिया की शक्ति तेजी से बदली है। स्वार्थ और शोषण पद्धतियाँ अब पहले की मुकाबले कहीं जटिल हैं। पत्रकारिता की दायित्व का स्वरूप भी बदल गया है। जिसका कारण बाजारवाद ही है। आज बाजार हर चीज और प्रसंग पर हावी हो गया है। उक्त बाजारवाद के कारण भारतीय समाज में भयावह अराजकता और बेमरजाद हालत पैदा हो गए हैं। दुर्भाग्य से पत्रकारिता के चरित्र को भी इसने खिलत कर दिया है। पत्रकारिता के सरोकार बदल गए। आज के समाचार पत्र, खबरों, लेखों और विश्लेषणों से नहीं, बल्कि बाजार की साधनों के उपकरणों से भर गए हैं। सम्प्रति राष्ट्रीय सरोकार पर कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश अखबार 'स्टैन्ड' नहीं लेते। वे महज मुनाफा एवं कमाऊ साधन बनकर रह गये हैं। समाज सेवा का अपना स्वधर्म मानने वाली पत्रकारिता आज कई अन्तर्विरोधों का शिकार हो गयी है। इसका बौद्धिक तेज फिलवक्त चुका हुआ दिखाई देता है। वह सम्प्रति अपने पुराने वैचारिक बोझ से मुक्त हो गई है।

भारतीय राष्ट्रीयता से ओतप्रोत मीडिया भूमंडलीकरण की दौड़ में होना कठिन है पर इसके सहायता के बिना कोई राष्ट्रीय आन्दोलन भी तो खड़ा नहीं किया जा सकता। पर जब तक हमारी राष्ट्रीयता क्या है, मीडिया के लोग स्वयं आत्ममंथन से नहीं समझेंगे वे चाहकर भी जाने-अनजाने में भूल करते रहेंगे जिनसे राष्ट्र को क्षति होगी, उस राष्ट्र को जिस की एक देवमयी महिमामयी मूरत हम सबों के हृदय में स्थापित है। अन्ततः वैश्वीकरण की दौड़ में सब कुछ क्षम्य हो गया है। मीडिया व्यापार हो गया है। मीडिया का व्यापारीकरण हो गया है।

संदर्भ

1. हिन्दी पत्रकारिता-संवाद और विमर्श - कैलाशनाथ पाण्डेय

वर्तमान में राष्ट्रवाद के जमीनी धरातलों की पड़ताल (संदर्भ जम्मू-कश्मीर)

रवि कुमार

पीएच.डी. शोध छात्र

लहदी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय

वैश्वीकरण के इस दौर में जब बाज़ार मनुष्य पर इतना हावी हो चुका है कि वो हमारी मूल्यों और मान्यताओं में भी प्रवेश कर चुका है। आज राष्ट्रवाद एक जटिल और उग्र रूप लेकर हमारे सामने है, जिसकी दशा और दिशा का हम निर्धारण तक नहह कर पा रहे हैं। मुख्यतः राष्ट्रवाद 'राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता का पर्याय है। जब किसी राष्ट्र के नागरिक स्थान, वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन, भाषा-साहित्य, मूल्य-मान्यताओं, जाति, समूह और धर्म आदि के अंतर होते हुए भी सभी को एक समझते हैं और राष्ट्रीय हित के समक्ष अपने व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों का परित्याग करते हैं यही भावना राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता कहलाती है।'

आज के समय में यदि अच्छे से निरीक्षण किया जाए तो हम पायेंगे की राष्ट्रवाद आज के समय में सबसे विवादस्पद विषय बन चुका है। यदि राष्ट्रवाद के सैद्धांतिक पक्ष को आज हम एक तरफ छोड़ दें तो इसका व्यवहारिक पक्ष हमें धुंधलाता हुआ नज़र आएगा। अंगरेजों के खिलाफ एकजुट होकर भारतवासियों ने उस समय जो बेमिसाल उदाहरण कायम किया था, उसे धार्मिक राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, भाषिक राष्ट्रवाद, अतिभावुकतावादी राष्ट्रवाद, राजनीतिक राष्ट्रवाद आदि न जाने कितने ही टुकड़ों में बांट दिया गया है। आज हमारे भारतीय समाज के राष्ट्रवाद में अतिभावनात्मक बहाव ऐसी उग्र समस्या है जिसमें बह कर यहां के लोग पूरे भारत को नहीं बल्कि एक अंचल विशेष को ही राष्ट्र समझते हैं। इस कारण ही भले ही राष्ट्रवाद इस बात का दावा न करता हो कि उनका राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से अच्छे हैं किन्तु भारत के लोग अक्सर भावनात्मक बहाव में बहते हुए इस दावे को पीछे छोड़ते हुए नज़र आएंगे।

वर्तमान में इंटरनेट की इस आभासी दुनिया में जब की हर इंसान हर स्थान पर अपनी अलग सार्थकता सिद्ध करने में लगा हुआ है, आज सब से पहले हम ये तय ही नहीं कर पा रहे हैं कि हम राष्ट्रवाद के इस राष्ट्र के क्या मायने रखते हैं। क्या ये पूरा भारत है? या भारत के अलग-अलग राज्य हैं? या फिर कश्मीर जैसे कुछ क्षेत्र विशेष हैं? भारत कुछ धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों, भाषाओं, संस्कृतियों, बोलियों आदि का देश है। यहाँ सही मायने में राष्ट्रवाद की इस अवधारणा को कि 'राष्ट्र के नागरिक स्थान, साहित्य, भाषा, मूल्य, जाति, धर्म आदि के होते हुए भी एकता कायम रखना' वाली अवधारणा को जीवित रखना एक कड़ी मेहनत और जोखिम भरा काम है। राष्ट्रवाद की इस अवधारणा को इन सभी के चलते जीवित रखना हमारे भारत के राजनेताओं, लेखकों, पत्रकारों और मीडिया के लिए एक चिंतन का विषय है। अब बात आ जाती है राष्ट्रवाद से राष्ट्रवादी की आप क्या कहोगे सही मायने में राष्ट्रवादी कौन है? इस देश में आप ध्यान दें नक्सली अपने आप को राष्ट्रवादी कहता है पर अगर हम ध्यान दें तो उनका राष्ट्रवाद उनके अपने नक्सली विचारधारा के ही दायरे में सिमट जाता है जिसके चलते उनके राष्ट्रवाद का क्षेत्र भी सीमित हो जाता है। भारत में बसने वाले मुसलमान भी राष्ट्रवादी हैं पर वो किस किस्म के राष्ट्रवाद का पालन कर रहे हैं या कौन से देश को वो अपना समझ कर उसके हित के लिए लड़ रहे हैं ये हमें तो क्या सच पूछो तो 90 प्रतिशत उन मुसलमानों को भी पता नहीं होता जो राष्ट्रवादी बने फिरते हैं। वरना कश्मीर की ऐसी हालत नहीं होती जैसी आज है या आज़ादी के बाद आज तक भारत की आर्मी में एक मुस्लिम रेजीमेंट ज़रूर बन जाती। मैं कश्मीर का दर्द महसूस करते हुए ये दावे से कह सकता हूँ कि इनका राष्ट्र और इनके लिए राष्ट्रवाद के मायने अपनी ही भाषा, क्षेत्रों, नस्ल और संस्कृति आदि तक सीमित होते हैं न कि सामूहिक हितों का परित्याग करते हुए सम्पूर्ण भारत में एकता कायम करने की। ऐसी कुछ समस्याएं आज इस राष्ट्रवाद के समक्ष सर उठाये खड़ी हैं जिन का निराकरण आसान नहीं दिखता।

अभी हाल में ही 16 दिसंबर 2017 को माधव कॉलेज ग्वालियर मध्यप्रदेश में राष्ट्रवाद पर एक अंतरराष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस के बीच वक्तव्य में राष्ट्रवाद का एक उदाहरण सामने आया जो मैं आप सब महानुभवों के सामने रखना ज़रूरी समझूँगा कि - भारत में राष्ट्रवाद एक काले घुप अंधेरे बंद कमरे में एक सुर्ख काली पौशाक पहना व्यक्ति एक स्याह काली उस बिल्ली को उस कमरे में न जाने कब से ढूँढ़ रहा है जो वहाँ पर है ही नहीं।' इस उदाहरण को सुनने के पश्चात हमारे मस्तिष्क में शायद ही कोई मायने बचें। मेरी समझ में तो ये राष्ट्रवाद की सैद्धांतिक आवधारणा है जो व्यावहारिक दुनिया से काफी परे है, जिनका

आपस में दूर-दूर तक कोई लेना देना नहीं है। उक्त उदाहरण की यदि बात करें तो वो काली बिल्ली अगर कमरे में न होती तो भारत के हज़ारों-लाखों आर.एस.एस. के कार्यकर्ता न जाने कितने समय से उसे ढूँढते नहीं रहते। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता देश की एकता के लिए और राष्ट्रवाद के घटकों के हितों की रक्षा हेतु न जाने कब से कार्यरत हैं। अब क्योंकि मैं स्वयं जम्मू कश्मीर का रहने वाला हूँ मैंने देखा है इनको गोलियों की बौछार के बीच कार्य करते हुए, मैंने देखा है डोडा-भद्रवाह के मंजीत सिंह को जो हमारे आर.एस.एस. के कार्यकर्ता थे समाज के हित हेतु लड़ते हुए अपनी आँखों के सामने छलनी होते हुए। अब बात आती है कि यदि वहाँ उस अंधरे कमरे में वो काली बिल्ली है ही नहीं तो हमारे देश के यह हज़ारों कार्यकर्ता वहाँ क्या ढूँढ रहे हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि उस अंधरे कमरे में वो बिल्ली है ही नहीं, वो वहीं पर है और वही हमारे देश की एकता का एकमात्र माध्यम है जिसे आरएसएस और इन जैसे अनेक संस्थान ढूँढने में जुटे हुए हैं और एक न एक दिन ये उसे ढूँढ निकालेंगे। आप सब को सुनने में थोड़ा अजीब लगेगा पर मैंने देखा है कश्मीर में जहाँ एक पुलिस वाला सरकारी वेतन लेने के बावजूद भी वर्दी पहन कर और बन्दूक लेकर गलियों में इस आशय से नहीं निकलता कि लोग वर्दी और बन्दूक देख कर उन पर हमला कर देंगे वहीं आरएसएस के कार्यकर्ता बिना किसी सरकारी वेतन के भगवा पहन कर अपने कार्य हेतु बेखौफ निकल पड़ते हैं। उनको ही मैं सही मायने में राष्ट्रवादी कहूँगा न कि उन्हें जो धर्म की आड़ में अपना हित साध करते हैं और वादों में फंस कर सैद्धांतिक असला तैयार करते हैं।

हमारे यहाँ राष्ट्रवाद में द्विराष्ट्र या द्विराष्ट्रीय दृष्टि एक बहुत बड़ी समस्या है। मुस्लिम लीग के पाकिस्तान की मांग ने गाँधी जी के अखंड भारत के स्वप्न को धुन्धला कर दिया था। साथ ही ऐसी भावना ने साम्प्रदायिकता को भी हवा दी। नतीजा ये हुआ कि स्वाधीनता संघर्ष के दौरान भारतीय जनता में जो एकता विकसित हुई थी, वह खत्म हो गई और आज के समय में यह धर्माधता साम्प्रदायिकता का रूप ले कर भारतीय राष्ट्रवाद के सामने एक कड़ी चुनौती बन कर खड़ी है जिसका भुगतान हमारे देश के कई सैनिकों और बॉर्डर पर कई मासूम लोगों को अपनी जान से हाथ धो कर चुकाना पड़ रहा है जिन्हें यह तक मालूम नहीं कि उन्हें मौत के घाट आखिर क्यों उतारा जा रहा है।

आज भी विभाजन के समय के जैसी वो विस्थापन व शरणार्थियों की समस्या जम्मू कश्मीर के अरनिया, पूँछ, आर एस पुरा, जैसे कई इलाकों में लगातार जारी है। वहाँ के उन मासूम लोगों को शाम के सोते समय ये पता नहीं होता कि वे सुबह उठेंगे या रातों-रात किसी ग्रेनेड का शिकार हो जाएंगे। भारत के लोग ऐतिहासिक पुस्तकों में विभाजन और शरणार्थियों की समस्याओं को खोजने में लगे हुए हैं और हमें आज भी इन समस्याओं को यथार्थ रूप में सहना पड़ रहा है। देश की आर्मी और निशुल्क काम करने वाले आरएसएस के कार्यकर्ताओं की वजह से आज भी हम वहाँ पर डटे हुए हैं। आप सभी यहाँ उपस्थित महानुभों को स्वयं फ़ैसला करना होगा कि सही मायने में राष्ट्रवादी कौन है? या राष्ट्रवाद के इन सैद्धांतिक घटकों को ज़मीनी धरातलों पर बचाए और बनाए रखने वाले कौन हैं? वो लोग जो अपने आप को राष्ट्रवाद की आड़ में छिपा कर देश के साथ धोखा करते हैं या वो जो निशुल्क अपनी जान जोखिम में डाल कर आर्मी के साथ-साथ हमें वहाँ पर बचाए और बनाए रखने में मदद करते हैं।

धार्मिक उन्माद और उसके कारण उपजा साम्प्रदायिक उन्माद राष्ट्रवाद की राह का सबसे बड़ा रोड़ा है, जो राष्ट्रवाद के सभी पहलुओं पर पानी फेरता हुआ नजर आता है। आज हम देखते हैं कि भारत की राजनीति में भी धर्म ने हस्तक्षेप किया है जो साम्प्रदायिकता को हवा दे रहा है जिसका सबसे बड़ा प्रमाण आज के जम्मू कश्मीर में देखने को मिलता है। पिछले दिनों JNU में राष्ट्रवाद को लेकर ना जाने कितनी ही सैद्धान्तिकी लिखी और गढ़ी गई, न जाने कितने ही राष्ट्रवादी उन दिनों हमारे सामने आए। कन्हैया कुमार जी को तब से जाना जाने लगा और भी कितने ही देशभक्त उन दिनों राष्ट्रवादी कहलाए। यदि इस तथ्य को हम ज़मीनी धरातल पर देखें तो जम्मू कश्मीर में आपको दर्जनों आर्मी वाले मिलेंगे जो देश की रक्षा के खातिर मारे गए और जिन के सही सही आंकड़े शायद ही किसी इतिहास में मिलें। देश की रक्षा के खातिर जिनका धड़ कहीं मिलता और सर कहीं कभी तो केवल धड़ का ही संस्कार या दफन होता है क्योंकि उनके सर का कोई पता ही नहीं चल पाता। जो माइनस डिग्री तापमान में भी चौबीसों घंटे देश की रक्षा में तैनात रहते हैं। जिनकी डेडबॉडी न जाने कब से सियाचिन जैसे दर्जनों ग्लेशियरों की बर्फ में दफन पड़ी हैं जो सदियों से आज तक मिली ही नहीं। मरने के बाद जिनकी डेडबॉडी बर्फ के डब्बे में ना जाने कितने दिनों बाद घर पहुँचा दी जाती है। मैं पूछना चाहता हूँ कि आपको ऐसे कितने आर्मी वालों का पता है जो दुश्मनों से लड़ते लड़ते इस तरह से मारे जा चुके हैं? हम यहाँ धार्मिक राष्ट्रवाद की बात करते हैं जहाँ विभिन्न धर्म आपस में टकराते हैं और राष्ट्रवाद के नाम पर अपना हित साधा करते हैं और राष्ट्रवादी कहलाते हैं या आर्मी जो न हिन्दू देखती है, न मुसलमान, न सिख, न ईसाई, न स्थान, न जाति, न धर्म यह एक इन्सान को देखती है, एक इंसानियत को और पूरे भारत देश को यह सही मायने में राष्ट्रवादी कहलाने का हकदार है। दिल्ली में देशद्रोह के नारे लगे तो पूरे भारत में आवाज़ पहुँची किन्तु कश्मीर में तो यह आम बात है सरेंआम पाकिस्तान के झंडे लहराए जाते हैं वहाँ पर हज़ारों स्कूलों में राष्ट्रगान प्रतिबन्धित कर दिया गया है। देश की आर्मी पर बेबुनियाद इल्ज़ाम लगाए जाते हैं कि ये हमारी बहु बेटियों को छेड़ते हैं। इन सब की आवाज़ क्यों भारत के आवाम तक नहीं पहुँच पाई ? क्यों वहाँ की मीडिया खामोश है? क्या ये सभी कार्य देशद्रोह का कार्य नहीं हैं ? यह

राष्ट्रवाद के ज़मीनी धरातल का सबसे अधिक चिन्तन का विषय है जिसपर समय रहते चिंतन-मनन करने समय की मांग बन चुका है।

भारत की पवित्र भूमि वसुधैव कुटुम्बकम् का उद्घोष करती थी जिसका अर्थ था सब जन हिताय, सब जन सुखाय पर अब इसका स्थान एक जन हिताय एक जन सुखाय ने ले लिया है। वर्तमान में इंटरनेट की इस आभासी दुनिया में हम देश के आदिवासियों को अब तक मुख्य धारा में शामिल नहीं कर पाए हैं। सरकार की लाख बंदिशों के बावजूद भी हम आज तक अपनी बहु बेटी को सुरक्षित महसूस नहीं कर पाए हैं। आज भी दलितों को हेय की दृष्टि से देखा जाता है। संविधान अपनी कथनी और करनी में अंतर कर गया जिसके चलते हम आज तक लहदी भाषा को न्याय नहीं दिला पाए। मैं समझता हूँ कि राजनीति का एक धर्म होता है और होना भी ज़रूरी है पर आज हम देख रहे हैं कि धर्म की राजनीति हो रही है। हमारा भारतीय राष्ट्रवाद अधिकारों पर बल नहीं देता और न ही यह नस्लीय, धार्मिक या जातीय समानता की बात करता है यानी कि बहुलता ही इसकी जड़ है। यही कारण है कि हमारे देश में जिस भी जाति, धर्म या नस्ल के लोग आए हमने सबको स्वीकार किया। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को राष्ट्रवाद का अगवा माना जाता है। वह खुद भी इस बात का उद्घोष करता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद उसका प्रमुख एजेंडा है और यही कारण है कि संघ के मानचित्र के अनुसार भारतीय राष्ट्र में वर्तमान भारत अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, भूटान और बांग्लादेश तक का क्षेत्र आता है। संघ की दृष्टि में पूरा भारतीय उपमहादीप एक राष्ट्र है। इस प्रकार का राष्ट्रवाद समावेशी है बहुलतावादी है। परंतु दुर्भाग्य से वर्तमान में देश में राष्ट्रवाद के अर्थ को बेहद संकुचित कर दिया गया है। आज राष्ट्र का अर्थ चंद राष्ट्रीय प्रतीकों तक सिमट कर रह गया है जो भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को उसके उदय स्थल पर ही झुठलाता है। राष्ट्रवाद पर वर्तमान में चल रही बहस बौद्धिक समाज के भटकाव को ही नहीं वरन लोगों की संकुचित होती मानसिकता को भी प्रदर्शित करती है।

आज राष्ट्रवाद के रास्ते में कई चुनौतियाँ खड़ी हैं जिनके चलते शासन में सत्ता टूटती और बनाई जाती है इस राष्ट्रवाद का रूप आज धुंधला सा नज़र आ रहा है जो कहीं न कहीं अपने मूल को पीछे छोड़ चुका है। हम सब वादों में बुरी तरह से फंस चुके हैं। अतिभावनात्मक बहाव में बह कर हम सब अपने आप को राष्ट्रवादी घोषित करने में लगे हुए हैं। इन सब के बीच हम राष्ट्रवाद के व्यावहारिक धरातल यानी ज़मीनी स्तर को लगातार भूलते और नज़रअंदाज़ करते जा रहे हैं जिसके चलते इसकी नींव पर आंच आने लगी है और शायद जिसका परिणाम अब हमें कश्मीर विभाजन जैसी समस्या के रूप में देखने को मिले। अब वक्त आ गया है कि इस गंभीर समस्या पर हमें चिंतन करना होगा। अगर राष्ट्रवाद के ज़मीनी धरातल की हम अच्छे से पड़ताल करें तो पाएंगे कि भारत में एकमात्र जम्मू कश्मीर ऐसा राज्य है जहाँ राष्ट्रवाद की सबसे अधिक समस्याएं दिखई देती हैं और आज भी जिन्हें देख कर इंसान विभाजन की कल्पना में खो जाता है। आज के समय में यह राष्ट्रवाद की समस्या सबसे बड़ी समस्या बन कर हमारे सामने खड़ी है इसलिए वादों में न फंस कर इसपर विचार विमर्श किया जाए यदि दुर्भाग्यवश मेरी यह कल्पना कल को यथार्थ में बदल गई तो संघ की दृष्टि वाले भारतीय उपमहाद्वीप का मानसपटल भविष्य में कैसा होगा ज़रा सोचिए?

संदर्भ

- 1 लहदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दवाली, डॉ. अमरनाथ ।
- 2 [http:// www.hindisamay.com](http://www.hindisamay.com)
- 3 <http://khabar.ndtv.com>
- 4 <https://sabharwalhardeep.wordpress.com>
- 5 <https://www.pravakta.com@nationalism>

MODI, TELEVISION MEDIA & HUMAN PSYCHOLOGY (WITH REFERENCE TO PRIME TIME & PRIVATE CENSORSHIP)

VIKASH SINGH

Doctoral Fellow (Mass Communication)
Mahatma Gandhi International Hindi University

ABSTRACT

The topic of my research was 'Modi, Television Media & Human Psychology (With Reference to Prime Time & Private Censorship)'. My research method was content analysis with a point of view of qualitative analysis of prime time slot. Objective of this research is to inform masses how politicians and corporate houses are being helped by media houses to manufacture consent? Another objective was to explore merits of Hindu nationalist Modi as leader and reasons behind his win in Lok Sabha Election-2014. Modi believed in visionary manifesto to defeat the UPA and its allies in Lok Sabha polls and for this to be popular he had come in contact with all forms of media and especially social media. Rahul had no presence on social networking sites and therefore Modi became able to wipe out this wide gap prevailing between the congress government and public with the help of media and participatory nature of social media. The UPA regime launched government schemes but proved to be of no meaning for public as the latter wanted employment and Modi made a hope among masses regarding employment and development. On the contrary, Modi proved to be a failure in managing common mass after his victory in General Elections-2014 and got success in managing his big corporate friends. However, BJP won in Uttar Pradesh Assembly polls-2017 and this proved that BJP is right but Modi may be wrong. On the other parlance of ideology, Modi always claims that he is unbiased regarding religion and he cuts all religious boundaries when it comes to nationalism. The paper had scope of the study as time constraint and could not survey people. Some books, magazines, websites, E-journals and tweets had been as sources to analyze.

From an initial position after Godhara riots in 2002 to a journey of becoming Prime Minister of India, so called Hindu nationalist Modi's victory is being projected as media favour which changed the psychology of common masses. The public outcry had been reported at the time of Anna movement and massive response found against the congress. Modi had participated among masses during election campaigns with the help of social media that was more participatory in nature and called as participatory journalism. Rahul had no presence on Twitter and Facebook and thus Modi became able to wipe out this wide gap prevailing between the congress government and public with the help of media and participatory nature of social media. On the contrary, Hindu nationalist Modi is losing favor of Gujarati's after almost three years of his regime as Prime Minister of India due to negligence in employment policies and social benefits to them, which he has already promised. People in Gujarat after three months of General Elections 2014, voted against populist nationalism and PM Modi in bypolls was another and first reaction of Gujarati's. Prime Minister Narendra Modi must have learnt from this lesson but here the situation is vice versa. This situation is going the worst day by day while his leadership as Prime Minister has crossed about four years. People from such a region where he served as Chief Minister four times, are opposing his top leadership. There is a sure dilemma that he may get defeat in General Election-2019. However, BJP won in Uttar Pradesh Assembly polls-2017 and this proved that BJP is right but Modi may be wrong. However, Modi has been reported saying via Twitter, "I was surprised to see a man of associated with spirituality release a Diktat saying remove the nationalist forces from power. It is Rashtra Bhakti that transcends all barriers and it is what guides us to help every Indian, in every part of India and the world: PM @narendramodi". This proves that he believes in nationalism. Whatever religion a person may be from, Modi government helps without prejudice, says Modi.

Somehow, Modi became successful in changing psychological temper of public with the help of media in General Elections- 2014 by following Trump train to polarise voters. Public responded with the help

of different media and due to plenty of reasons to Modi and it was called as Modi Wave. But the question arose why media covered almost all the campaigns of Modi. It is materialistic when Election Commission of India said that paid news was legal, media should not have acted behind the scene. If public sought ownership in media, how would later justify there was no private censorship? Thus, Indian media was not under seize. Editors and the journalists needed to check their soul. Modi government at the centre brought two game changers i.e. currency ban and Goods & Services Tax (GST). These two game changers brought economy down upto a maximum level and for that Modi is accused. Media managed public at the time of currency ban and also after GST but finally the conclusion came that Modi has been made accused by public. This is too early for Indian economy to face economic slowdown therefore these two game changers proved to be failure.

By covering almost all campaigns organized by Modi team during Lok Sabha polls, electronic and print media did a wonderful job for Modi. And in the same line is social media which promoted Modi as Prime Minister by way of tweets, messaging, likes, YouTube contents and 3D conferences. Social media coverage has been an outcome of a strong professionalism in the social media team appointed by Modi. PM select Modi is from Other Backward Class and as per survey done by Times of India, forty one per cent population in India belongs to the same class, has been a much discussed factor in his victory.

As Modi made his routine activities public and had no distance with public as Indian politician, he got popularity in the common denizens as everyone wanted to know about a prominent leader's movement. Gujarat model of development has been one other reason of this unexpected success of him as people in Gujarat are satisfied enough regarding development there when they were interviewed by media persons before voting of Lok Sabha polls.

Social media campaigns on 'India Against Corruption' movement led by Anna Hazare helped a lot to BJP in gaining a vote bank and defaming the congress. As Rajnath Singh observed Modi's campaigns in more laborious form and almost 4000 rallies were organized by Modi during these Lok Sabha polls-2014, Modi showed his wave in the form of confidence and hard work.

But there has been an extraneous help from the side of media in winning Lok Sabha seats by BJP and common people has felt a need of an emerging leader who believe in strengthening economy of a nation and cash crop cultivation for farmers. However, Modi created a history by winning highest number of Lok Sabha seats won till date and thus he deserves to be Prime minister of India.

Media felt satisfied with development model of Gujarat and seeing the backwardness of India since independence, public was in anger during the congress regime so expected differently from Modi to wipe out politics of caste and identity prevailing especially in Uttar Pradesh and Bihar. Earlier, media was covering Kejriwal's campaigns in Delhi Assembly election and in the same way it covered Modi's campaigns. Many times media was accused of being favourable to politicians but if not covering then what is the work of media is yet a big question? On the one hand, Modi's intellect has been praised in Gujarat and on the other hand media manufactured consent of people by way of opinion polls during Lok Sabha polls- 2014. Modi's PR wing helped Modi in manufacturing consent of people by way of speeches and rallies from one year before the Lok Sabha elections. Moreover, other parties like Congress could not give any consolation to the common public and anger of public outraged with the passes of time and this made Modi as winner in these elections. Modi proved himself a good spokesperson as Manmohan proved himself to be as puppet. Congress used Manmohan's credibility as finance minister and senior economist and later the party itself drowned into illusion. Truly speaking, it is the congress which faced media beyond ever any party faced regarding corruption which also brought the former's image down. There were corruption cases in earlier governments too and Anna movement proved to be unfortunate for the congress which was ruling since years.

But what the hell is this that every time we doubt upon media and criticize? Should media cover the politicians as fourth pillar of democratic system in India? Modi assured people about strengthening Indian economy through 5 F model (Farm to Fibre to Fabric to Fashion to Foreign) in the Vidarbha region in a rally, where maximum number of farmers has committed suicide till date, has been a reason of mass victory and media communicated information to masses at the same time by covering the campaign without any delay.

RESEARCH QUESTIONS

1. Did electronic media cover general election campaign 2014 without verifying facts and figures
2. Is Modi a prominent leader for nation building, who won election during a wave

REVIEW OF LITERATURE

Doubtlessly, Modi had not been far away from James Augustus Hicky who published the first newspaper

in India known as Hicky's Gazette. Hicky too wanted monopoly of his newspaper and that is why he opposed a rival newspaper started by Hestings and group. Hicky's Gazette also praised kings and elites at that time to get its publicity and thus we have discourse over media monopoly. PR wing of Modi did a lot for him after Godhara riots in 2002. But Modi changed the image of Ahmedabad by way of flowing investments, flyovers, roads and transportation, education and employment from year 2002 onwards. Early to 2002, Ahmedabad was a dirty, polluted place and ravaged one like many of other cities in India. Modi invited investors in Gujarat also now for the whole nation as PM. Basically, it was corporate section to boost Modi's confidence and then he fought well for prime ministerial post and RSS worked for BJP from behind the scene. RSS showed social service for the people whereas reality was different. It would be worth mentioning that the vote which Modi secured for his win, was the vote bank of Bhartiya Janta Party (BJP) not crediting to Modi. But Modi is confident enough and is a good administrator as it's depicted in Gujarat Model of development. Amit Shah helped Modi, main stream media helped Modi and Anna movement helped Modi. Amit Shah is known for his organizational skills. But behind every help, there was help of media which played sympathetic role to make Modi a leader of all. Media especially electronic and social media favored Modi by way of broadcast and podcast and favorable coverage of each and every campaign. Media did not verify his claims and promises and broadcasted and podcasted.

However, nationalist Modi is perfect enough in good governance as he himself monitors his cabinet ministers from taking his tenure as chief minister of Gujarat to prime minister of India. Modi believes in Skill development and hence he created a separate ministry known as Ministry of Entrepreneurship and Skill Development. He did a lot after riots in Gujarat and even today he works hard. He campaigned for 3 lakh kilometers. His track record of working out for campaigns in General election 2014 has been wonderful. As Rajnath Singh observed Modi's campaigns in more laborious form and almost 4000 rallies were organized by Modi during these Lok Sabha polls-2014, Modi showed his wave in the form of confidence and hard work. It's reality that he is a good administrator and he has good governance system for development and uplifting nation from poverty level in rural areas where more than seventy per cent of Indian population resides and survives on small pieces of landholdings. What is inside the mind of PM Modi is very clear but it will take some time. On the ground of better leadership, Modi sidelined senior leaders of BJP and RSS activists who showed their very interest in leadership and he sustained to be CM and then PM. As we saw in case of General Election 2014 and in different Assembly polls subsequently, media especially television boom led some leaders to height i.e. Narendra Modi, Kejriwal. However, was that any PR trick of Modi or private censorship?

NATIONALIST MODI AT A GLANCE:

Unlike other leaders, Nationalist Modi never oblige to political pressures even at the time or before elections. Modi was asked to stop power theft drive in Gujarat by senior BJP leaders and political advisors before the Assembly election in 2007 but he denied. He kept on the drive. He was known for his flowing investments in Gujarat. He covers all sectors in development, has been his working style for the development. Modi is called Hindu Nationalist PM. But he never thought for help only to Hindus or Christian. Once a Muslim man came to Modi for her daughter wanted to study further but had no funds. Modi said, "I help you to send her to school at any cost." As people in Gujarat love Modi despite a few controversies, Modi also fulfilled promises more than expectations when he was chief minister of the state. Probably, this is a reason why Indian masses voted to Modi as prime ministerial candidate. The marvelous vote bank which Modi secured for Modi wave and the wave was caused after Anna movement. Due to null distance between Modi and public, Modi secured a good vote bank. Modi also approached public with the help of radio also to maximize his reach to the common people.

Leadership is not manufactured nor bought. It is earned like Modi earned. At the time crisis or problems in India, many leaders born and became great ones like Mahatma Gandhi, Kejariwal and so many. When there is a trouble, a man who has leadership, shows loyalty and faith. Modi also did the same to become prime minister of India. Kejariwal also did the same. We can say Modi transformed BJP into a well-oiled, popular machine but it is yet to be proved by the dynamic leader now in power as PM. Every system requires overhaul like a machine and if a leader is able to overhaul or redesign the system, he is called a serious and honest leader. Modi did so to an extent what he promised and more than peoples' expectations. Modi's manifesto of General Elections- 2014 focused upon economic issues, development, corruption and employment. So there are great expectations from Modi and team now. The dynamic leader may take time but will deliver as it is expected. After more than three years as prime minister of India, we critically found that, 'Talk is cheap' is an English proverb which proved to be true for Hindu

Nationalist Modi. Modi talked nationalism but ignored common mass and favored his corporate friends to benefit them instead of poor public. On the other side as a balanced approach, people who are already Modi bhakts know what he represents, we have followed him since the last decade and have seen his consistency and passion for this country. We have seen his political acumen, his shrewdness, his marketing capabilities and his understanding of the most basic issues that grapple Indians, we also see his Machiavellian antecedents when it comes to politics. All of these characteristics coexist with a passion and love for the idea of India. People are squeamish because his idea of India is a bit too strong for their liking.

One de-merit which has been denoted in Modi, is arrogance has been an issue with him because many times he didn't listen even the most senior leader once he takes final decision and he loses too. This is a problem of either arrogance or being publicity crazy, i.e. he wants maximum popularity out of minimum resources or work which can be seen in Gujarat by eyes. Hoardings and photos which display Modi, are maximum and depict what is he? However, Indian public expect a lot from Indian PM Modi. Being much social, he preferred social media. He had 12.4 million likes on Facebook and 3.68 million on Twitter against the second highest 5 million and 1.6 million by Arvind Kejriwal as per site updates on April 7, 2014. Modi is blamed for his interests in corporates, why? This is only option to uplift standard of living. If we do not invite businessmen to invest, we may not give employment and raise per capita income. It was expected Modi will give infrastructure and education a priority in upcoming Budget and will fulfill hopes of common man. He left education at margin in Budget. Modi being fashion oriented and publicity crazy as it can be seen in Gujarat on the posters, hoardings and photos, he also has good relationship with media which help politicians and corporates both.

IS IT A PRIVATE CENSORSHIP?

Indian media especially television slot is undermining democracy by way of private censorship and corporate conglomeration. It means continuous restrictions on Indian media which is regarded as free. And thus corporate and politicians are availing its advantage in an unfair manner. Journalists are told to change their writings and editorials to give maximum advantage to these high profile leaders and corporate houses. Some journalists like Raajdeep Sardesai and Sagarika Ghosh left TV18 just for the sake of their own credibility to go a long way. Are the days of emergency at the time of ex-prime minister Indira Gandhi returning when Indian media houses were told to bend. Our media owners and stakeholders are guiding journalists about how to write, how to manipulate and manufacture news and editorials. According to Rajdeep Sardesai, Ex-editor-in-chief, TV18, Indian media should assess its own soul. It's at stake. When media takes favor of politicians like Arvind Kejriwal, it is criticized and when media criticizes the performance of Kejriwal government in Delhi after victory in Lok Sabha polls, it is criticized. What the hell is this? It seems to be like politicians are losing courage and media losing credibility.

Modi is considered as closer to corporate houses and industrialists for example nearer to Ambani family. Recently Mukesh Ambani, India's richest business person, bought Network18 by acquiring majority of stake which is 78 per cent into the organization. Such a major stake in any media group has been owned by first ever in India by any corporate. Who owns media? The reply is either politicians or corporate houses.

As per report at www.newslandary.com, DB Corporation Ltd. which is owned by Agrawal & family. Here Kasturi Devi Agrawal and Ramesh Chandra Agrawal are leading the group by holding stakes of their sons and daughters-in-law. Government of Singapore, ICICI Prudential, Nalanda India Equity Fund Pvt. Ltd., Bhopal Financial Services Pvt. Ltd. and others hold major stakes in DB Corporation Ltd. (Dainik Bhaskar Corporation Ltd.). It defines that majority of the stake is held by promoter group. Deccan Herald, a national English daily, is owned by T. Venkatraman Reddy by holding a stake of 12.2 per cent and on the position of chairman is son of Late Congress MP T Chandrashekhar and nephew of Congress MP T Subbarami Reddy. Religare holds 14.48 per cent of stake in the group. Will the media house not favor the congress party and corporate holding stake into it? Shobhana Bharatiya, daughter of KK Birla by holding a major stake of 68.83 per cent, promotes Hindustan Times. Misses Bharatiya is mother of Shamit Bharatiya who is Director of the HT Media, is husband of Nayantara Kothari, niece of Mukesh and Anil Ambani. Will the group not favour Ambani Brothers as corporate? HDFC Standard Life, ABP, SBI Life and HPC Mauritius Ltd are a few more corporate who have stakes in HT Media? Radhika Roy promotes NDTV by holding a stake of 16.32 per cent and Dr. Pranoy Roy by holding a stake of 15.94 per cent. Radhika is sister of Rajya Sabha MP Brinda Karat. Oswal Greentech Ltd. By Abhey Oswal has stake of 14.17 per cent in NDTV group. In addition, Abhey is father in law of Congress MP Naveen Jindal.

Will the group speak Against Jindal or Karat?

Raghav Bahl has chaired network 18 with motto of Enable, Enlighten And Entertain since its inception And he carries A stake of 0.07 per cent. Bahl is brother of Vandana Malik holding A stake of 0.13 per cent. Now the first name displayed is Mukesh Ambani with A majority stake into the group by showing toe to Raghav Bahl who could not have guessed earlier. These Are A few examples which prove media is captured into hands of corporate And politicians.

However, downfall in gravity of news And its value is proved due to poor performance of the editors because they finalize news item At the end. Editors have taken place of proprietors, lobbyists And very proud personalities. A term LOBBYING is very famous in media, which is meant the media is mediated And the primary role of some lobbyists like Neera Radia has come into limelight with the help of tapes recorded by investigators. With the help of Radia like lobbyists, politicians And big corporate came closer to media persons And news content. Radia tape matter is one issue to be Addressed. There Are many Radia faces with Indian media houses who Are trying to gain from manufactured And fabricated content. And if public takes part in ownership of media And Also demands fairness And positive change into society, how is it possible? Indian media Are politically free And should remain free but till date A handsome stake is owned by the Aforesaid people As public And thus media is feeling controlled And censored enough. So media is not quite free And fair And this is what is private censorship is? Politicians such As Ashok Chavan caught into paid news controversy And faced charges with enough evidence however for time the decision has been stayed About whether to finally charge him or relieve him under some circumstances. During elections, Representation of the People Act, 1951, Companies Act 1956 And Income Tax 1956 Among other laws Are violated by politicians with regards to paid news And to gain favor of the public.

According to P. Sainath, the phenomenon of paid news goes beyond the corruption of individual journalists And media companies. It has become pervasive, structured And highly organized And in the process, is undermining democracy in India. As per worldwide survey by Forbes magazine, meager number of beauties from India is found in the list of beauties. Why their number is poor? And in the poll expenses, one politician spends lacs And crores to gain favor of public. Telecom Regulatory Authority of India (TRAI) is yet into process of forming some laws And regulations to curb this practice of paid news which is suppressing our freedom to know the truth which is probably the first And the most important principle of journalism. Authorities such As Press Council of India (PCI), Media Certification And Monitoring Committee (MCMC) formed in 2012 by ECI, Election Commission of India (ECI) And Telephone Regulatory Authority of India (TRAI) are requested to form A number of principles And regulations to relieve our democracy from such private censorship And let us see our free media As free. TRAI has recently submitted A new set of guidelines to curb paid news practices to newly formed Modi government.

It is no doubt that Modi, Prime Minister of India, got favor of television media And it was beyond A certain boundary And Almost All the TV channels covered All the campaigns led by Modi just in projecting him As PM face by changing the psychology of common masses who moreover don't bother About mediated communication And content behind the scene. Prime slots Are scheduled And re-scheduled As per government At the center As we have seen in prime time recordings of IBN-7, now News 18 India, which favored Modi And BJP even in Delhi Assembly polls-2015. Therefore, prime time is Also censored by politicians And corporates via media managers.

NEW MEDIA & NEW PM:

There was Another strong tool, which helped Modi or rather to say Modi used it very consciously. Modi used social media; therefore, Modi gets the title As India's first Social Media Prime Minister by media. As per Forbes Asia magazine, Modi made the word 'NAMO' more popular via social media And the word represented Modi As Obama of India. According to Vikas Pande, A media Advisor And volunteer for the Modi campaign, told, "The reach that social media has now is vast. In fact even with two of the top YouTube Channels, 'Narendra Modi' And 'I Support Narendra Modi', there has been A hike in the number of subscribers." Pande Also said, "Even in places like Gorakhpur, the reach of the Internet, no matter how limited, helped voters obtain information, not only About Narendra Modi, but the elections in general." Modi could presume that in this loksabha election social media would take An important role. There were some reasons, like:

1. This electorate of India never had seen this kind of large number of participation of young people. Among 800 million voters, large numbers were Around 25 years in Age.
2. Interactivity feature of social media has desperately been preferred.

3. During last five years, India has witnessed of different citizen movements where large number of young people have shown their dissatisfaction Against government As well As state. Many of these protests were speeded through social media. Therefore, social media gave A platform of free expression.
4. India is rapidly moving towards An urbanizing society, which is Also A sign of upward mobility. With it, the users of social media Are spreading very fast in Areas other than eight metros. According A report, entitled " social media in India -2012" released by the Internet And mobile Association of India (IAMAI), the social number of social media user would go to Around 80 million At the time of loksabha election 2014. Moreover, 25 million of strong NRIs would take A strong position by giving their opinion through social media though they could not physically present in the election.
5. This IAMAI reports Also highlights that 97% of total social media users Are registering A presence on facebook. Moreover, people used to connect internet for social media After to check email.
6. US Presidential election in 2012 showed how social media might work As A powerful tool of communication to influence the youth of the country.

Therefore, the ground was fully prepared. Social media brought the chance to both, like to politicians As well As to citizens.

Now, the question Arises that the magic of social media worked well only for its interactive nature? The Answer will be 'no'. Rajeeka Kacheeria who heads the IT cells for BJP, said in An interview, "Everything that happens on the internet And social media is done under the guidance of Mr Narendra Modi. Hiren Joshi, A senior party professional clears even the smallest of our doubts on Anything related to the net. It is not possible that conversations can happen As per the whim And fancy of A single individual. It's A collective effort." The three American social media giants, Facebook, Twitter And Google, have emerged As major players in the last Lok Sabha election in India, with political parties And candidates competing with each other in breaking the news, spreading their message through these outlets in Addition to those via the traditional media. In Addition, none of these three ever was willing to discuss the Advertisement revenue to this election cycle. However, these three had put several months to tireless effort with their expertise. Katie Harbath, manager for policy At Facebook, told, "Facebook started working on the Indian elections towards the end of last year." Associated Chambers of Commerce And Industry of India (ASSOCHAM) has conducted A study, which states that the political parties spend Around Rs. 300-400 crore for their publicity And campaigns on social And digital media. According to D.S. Rawat, Secretary General of ASSOCHAM, political parties had spent Around 15-20% of their total budget in digital marketing. The report by ASSOCHAM Also states that social networking websites And similar technology giants will generate better revenue this year due to the digital campaigns. The spending on digital media has reached such A level that the Election Commission of India had made it compulsory for the political parties to disclose their Advertising budgets on social And digital media. Therefore, it is very clear that Modi used social media to promote himself to the young masses through A clear blue print And with the help of social media giants. Modi's social media team is working for Modi much before the general elections 2014 And Modi himself gives his half An hour daily on Access of social media to come to know what is happening beyond the territory he is living in. Thus, this is A kind of Alternative media which helped Modi except the help by Main Stream Media (MSM).

RESEARCH METHODOLOY

- 1) Content Analysis: Qualitative Analysis of Available literature And video broadcast (prime time slot) recorded (AajTak And IBN-7) of General election 2014, has been chosen As methodology And As secondary data. The duration of video recorded is As per purpose or objectives of my research. This content has given me A deep insight into carrying my research work. This slot has been chosen As 08:00 pm-10:00 pm.
- 2) Observation method: I have Also taken focused observation As tool for executing this research work.
- 3) Case Study: TV18 group Acquired by Mukesh Ambani by investing crores of rupee into the same.
- 4) Sampling Method: Purposive sampling method

DATA COLLECTION

Broadcast of AajTak And IBN-7 during General Election 2014, has been taken As data to Analyze on the basis of purposive sampling. Broadcasted video has been played And played back on purposive basis to draw relevant findings. Both of the Aforementioned channels had been engaged in coverage of political campaigns live during the general election 2014. No survey method has been chosen.

DEFINITIONS: The independent variable, the political orientation And help to Modi during the general

election 2014 by Aajtak and IBN-7 both is endorsed as political stand of news media. The dependent variable is BJP and Modi which sought help from media on the basis of unidentified claims.

MEASUREMENT: There was 50 hours video taken on purposive basis. The video strength might prove whether media was partial or impartial. Watching video on the basis of dependent and independent variables, there has some conclusion been drawn out of that.

RELIABILITY: The video of fifty hours duration has supported my research work to authenticate results which seems to be reliable or are reliable. Literature study has supported in descriptive and qualitative end.

VALIDITY: The results has shown that media helped Modi during election campaigns and social media proved to be boon for him to diversify Modi wave. Factors such as rich model of development, Anna movement named as India Against Corruption and corruption in congress regime help Modi to win. However, political economy of media especially electronic media is yet not proved well. This teaches us how a nationalist leader is favoring corporates instead of common public. But facts derived by me may help future researchers and media persons for carrying this work forward.

DATA INTERPRETATION & ANALYSIS: Data collected with the help of recording of prime time slot, the same at the time of live broadcast, has been analyzed on the basis of political economy of media and Modi. Analysis proved this that media helped Modi and team and then to BJP to swipe out congress from center. Now, after about four years of his regime the situation is not good for Modi and better for BJP. Talk is cheap is an English proverb which proved to be true for Hindu Nationalist Modi. Modi talked nationalism but ignored common mass and favored his corporate friends to benefit them instead of poor public.

OBJECTIVES:

1. To diagnose merits of Modi as politician and media help to Modi during General Election 2014
2. To diagnose corporate and political relations of electronic media houses in India
3. To find out reasons behind 'Nationalist Modi' Wave and changing human psychology of Indian people

ONE MODEL PROPOUNDED:

IS MEDIA UNDEMOCRATIC: DERIVATION OF A MODEL?

A market model can truly be propounded as there is rapid downfall in reliability of news reports and news based programs. The model is named as Sustainable Existence Model of Media. When we discuss market model, we find that it gives stress upon profit earning and satisfaction of audience needs. Media houses decide the definition of public interest as per what does audience wish to watch read or listen. Markets have an exclusive motto of profit and then customer satisfaction so it is quite different concept from public sphere model of media. There is no space in the market for poorer and sick people as it is more competitive and globalised market after economic reforms and liberalization. If media moguls will not focus upon profit, then too they may not sustain with better media content and public sphere model of media.

We can propound a model, "Sustainable Existence Model of Media" (Image of model is attached with manuscript) to define the current scenario of media market and public interest. The model defines the whole obligation of market and media moguls with regards to profit earning and dependency on market conditions. Media houses seek help from politicians, political parties and corporate houses by way of direct investment or indirect investment i.e. buying of shares issued by media houses through third parties to retain public interest and sustain in market and the same process may also be categorized as paid news to influence media content according to one's self interest. A recent example of crony capitalism of Ambani family may be seen in buying shares of IBN-7 by disinvesting corners of rupees from Ram Raoji's Enadu Television.

Sustainable Existence model of media is to a large extent undemocratic and totally corporate model of media in which there are five elements. The element 'Share buying' defines that there are politicians or corporate houses or business persons who invest in media houses via share buying. The element 'Paid News' define that media telecast or publish some content by taking money from groups or individuals who want to buy space or time. The element 'Profit Earning' defines that media earns profit by way of advertisement and the second last element 'Monopoly in market' defines that media conglomerates have monopolized the media market and there are a few big ones who have captured a large market into their hands. The last element defines that crony capitalism is spread throughout media market and big business person and politicians have put money in an illegal way to gain space, time and favor from media side to flourish.

Thus it is proved that media is partially undemocratic and professional. According to Justice

MarkadeyKatju, Chairman, Press Council of India, "Media isAnti human." PunyaPrasunVajpeyee, Zee News, says that it is true that more than two hundred fifty journalists work for corporate by puttingAside media ethics. Media ethics is slave to Balance sheet today. According to PankajPachauri, "Media has to decide today whetherit wants to do politics, to earn profit inA corporate face or to do journalism. We journalists have to think deeplyAbout how to cover political news storiesAnd publish them so that people could not oppose usAs journalists. All things remaining the same, journalistsAre supposed to be freeAnd fairAnd owners of media houses have to let them work in that direction freely withoutAny such type of private censorship which is defaming mediaAnd its persons.

CONCLUSION

Nationalist Modi gained favor of corporateAnd media. The Modi effect came intoA form of wave. The congressAnd other parties came on the back foot because of several reasonsAnd Bhartiya Janata PartyAnd itsAllies in the National DemocraticAlliance (NDA) foundAn opportunity for encashment of vote bank. Media favored Modi due to poor policy formulationAnd corruption scandals in the regime of the congressAnd UPA II. It was media (Print, electronicAnd new media) help to Modi in changing human psychologyAnd it was end of ideology. NarendraModi became prime minister of IndiaAnd showered with huge number of votesAs he took maximumAdvantage of Gujarat Development Model, Anna MovementAnd high level of corruption prevailing in the regime of congressAt the center. Modi led his campaigns from beforeAnd made public closer within that span of time. ModiAlso known for his stubborn nature, sidelined many senior leaders in BJPAnd itsAllies even people from RashtriyaSvayamSevak (RSS)AndAdministered elections campaigns. Modi worked for Gujarat so he will work for the whole nation, becameA hypothesis of people during the general elections. Amit Shah helped Modi in organizing many events during campaigns etAll. Modi's working style has been fabulous when he was chief minister of Gujarat. So he deserves for being our prime ministerAnd thereAre great expectations of people from Modi to deliver. AfterAbout four years of his regimeAs prime minister of India, there is very less positive for him from public. People have opposed especially Modi in different bypolls conducted. PeopleAre ready to vote BJP but not to ModiAs we have seen in Uttar PradeshAssembly polls- 2017. There isA sure dilemma that he may getA defeat in General Election-2019 but BJP will win.

But questionArises whether media favored Modi inAn illegal way or was it necessary for the nation? Media image isAt stake since yearsAnd thereAre lobbyists in media, leading to private censorship in present scenario. Our media is not free toA large extentAnd it needs freedom. However there is need of some regulatory bodies to make media free toAn extentAnd make media free from political economy. Veer Sanghvi, RajdeepSardesai, Barkha Dutt like well known journalists' image cameAt stake when Radia tape incidence came into limelightAs these journalists were found talking on phone with the lobbyists NeeraRadia to manipulateAnd fabricate the news content to give profit to business housesAnd politicians. Among media, Modi took maximumAdvantage of New Media to be popularAnd gainAn unlimitedAccess to voters timely with certain constraints. But no one can deny that there was no paid news before liberalization in 1992. It was then too but inA limitAndAlmost invisible. As per records, from Hicky's era to today, nothing has changed except mediumAnd its technology. HickyAlso opposed his rival newspaper published by Warren HestingsAnd wanted monopoly in media market. After liberalization in 1992, private television channels came into existenceAnd since then the private censorship in media has been observed. Monopoly began to show its face. As result of which, private censorship took its birthAnd began to flourishAs per media moguls. We have seen prime slots of two television channels, which depicts high level of filtering in reporting. Finally, we reached toA question whether Modi, A nationalist, would beAble to garner votes in General Elections-2019?

CITATIONS & BIBLIOGRAPHY:

1. MandalDileep, Corporate Media Dalal Street (New Delhi: Rajkamal Publisher Pvt. Ltd: 2011)
2. Kumar Vinit, Mandi Mein Media (New Delhi: Vaani Publisher: 2011)
3. Express News Service (March 14, 2014). Media sold out, will jail them if we come to power: Kejriwal. The Indian Express, p.1
4. Bahree, Megha (May 30, 2014). Reliance Takes Over Network18: Is This The Death of Independence? Retrieved from <http://www.forbes.com/sites/meghabahree/2014/05/30/reliance-takes-over-network18-is-this-the-death-of-media-independence/>
5. Mahaprashasta, AjoyAshirwad (March 21, 2014). Behind the scenes. Frontline, p.p.26-29
6. Ramakrishnan, Venkitesh (May 16, 2014). 'Wave' & Reality. Frontline, p.p.4-10
7. Editorial (July 28, 2014). India's Press Under Seize. The New York Times, The Opinion Pages.

8. Thakurta, ParanjayGuha (June 30, 2012). Media Ownership in India-An Overview. Retrieved from <http://www.thehoot.org/web/home/story.php?storyid=6048&mod=1&pg=1§ionId=43&valid=true>
9. Ninan, Sevanti (June13, 2014). Ownership blues. Retrieved from <http://www.thehoot.org/web/home/story.php?storyid=7577&mod=1&pg=1§ionId=10&valid=true>
10. Retrieved from <http://www.newslaundry.com/2014/02/05/who-owns-your-media-4/>
11. Sardesai, Rajdeep (March 21, 2014). AatmParichhanKareBhartiya Media.DainikBhaskar, p. 5
12. Raman,Anuradha (July 14, 2014). Big Ed In The Chair. Outlook, p.p. 30-41
13. Cover Story (October 22, 2011). Media: Crossroads.Tehelka, p.p.32-45
14. Gandhi, Jatin (April 28, 2014). Modi's New BJP. India Today, p.p. 18-25
15. Mahukar, Uday (April 21, 2014). Inside The Mind OfModi. India Today, p.p. 67-70
16. Debroy, Bibek (August 11, 2014). Great Expectations. India Today, pp. 12
17. Retrieved from <https://www.facebook.com/help/community/question/?id=10151813435018563>
18. Retrieved from <http://aibmda.in/sites/default/files/FICCI-KPMG%20Report%202014.pdf>
19. Retrieved from <https://www.independent.co.uk/voices/narendra-modi-gujarat-india-state-elections-bjp-party-majority-hindu-nationalism-a8117276.html>
20. Retrieved from <https://timesofindia.indiatimes.com/india/our-nationalism-helped-us-bring-back-father-tom-father-prem-pm-modi/articleshow/61904629.cms>

भारत में राष्ट्रवाद की समस्याएं

नैन सिंह

एम.ए., हिन्दी

डोडा, जम्मू और कश्मीर

मुख्य रूप से यदि देखा जाए तो हम दावा नहीं कर सकते के राष्ट्रवाद विश्व में या भारत में कब आया। भारत की यदि बात करें तो भारतीय जनसमूह ने अंग्रेजों के खिलाफ एकत्रित होकर जो आंदोलन किए वही पर राष्ट्रवाद के बीज नज़र आते हैं। सन 1857 में भारत में क्रांति के दौरान राष्ट्रवाद विकसित हुआ। हालांकि अंग्रेजों ने इसे 'सिपया मयूरिनी, का नाम दिया पर इस आंदोलन में राष्ट्रीय चेतना के बीज देखने को मिले। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय निर्माण में जिन तत्त्वों का योगदान होता है, प्रायः वे ही तत्त्व राष्ट्रवाद के विकास में सहायक होते हैं। इन तत्त्वों में समान भौगोलिक क्षेत्र, समान नस्ल, समान सांस्कृतिक सम्बन्ध, समान भाषा और समान राजनीतिक संगठन प्रमुख हैं। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि केवल इन्हीं तत्त्वों के द्वारा राष्ट्रवाद का आविर्भाव हुआ हो अथवा उसे प्रोत्साहन मिला हो।

वस्तुतः राष्ट्रवाद के विकास एवं प्रतिष्ठा के कारणों के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों, भिन्न-भिन्न काल और भिन्न-भिन्न कारणों ने राष्ट्रवादी भावना के प्रोत्साहन में योग दिया है। भौगोलिक एकता, नस्ल की एकता, ऐतिहासिक एकता, सांस्कृतिक एकता, सामाजिक एकता, राजनीतिक एकता, विजय-पराजय, व्यापारिक प्रतिस्पर्धा और शोषण एवं उसका विरोध इन सबको राष्ट्रवाद के विकास में योगदान देने का श्रेय दिया जा सकता है। राष्ट्रवाद को अगर हम परिभाषित करें तो यह 'राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता का पर्याय है जब किसी राष्ट्र को नागरिक स्थान, वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन, भाषा-साहित्य, मुल्य-मान्यताओं, जाती-समूह और धर्म आदि के अंतर होते हुए भी सभी को एक समझते हैं और राष्ट्रहित के समक्ष अपने व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों का परित्याग करते हैं यही भावना राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता कहलाती है। इसी राष्ट्रवाद के लिए बालगंगाधर तिलक कहा करते थे 'ईश्वर और हमारा देश अलग-अलग नहीं है, हमारा देश ईश्वर का ही एक रूप है। अंग्रेजों के खिलाफ जब सम्पूर्ण भारत के लोग एकजुट होकर सामने आए थे वे राष्ट्रवाद के सही सरोकार थे अपितु आज राष्ट्रवाद के वादों और गिरावटों में बह चला है। इस में इतनी विकृतियाँ आ चुकी हैं कि राष्ट्रवाद के आज के समय में कोई माईनें नहीं दिखाई देते। इस के रास्ते में आज कई अड़चने सामने आ रही हैं जिनमें से निर्मानिता, युद्ध राष्ट्रीय भावना, अतिभावुकता, सामूहिक एकता और भाषा आदि प्रमुख हैं।

हम सर्वप्रथम बात करते हैं निर्मानिता की, भारत में धर्म इस कदर यहां के लोगों पर हावी है कि जिसके चलते राष्ट्रवाद सामाजिक राष्ट्रवाद का रूप गिरावट कर लेता है। आज के आधुनिक समय में जब की इन्सान पूरी तरह से रोबोट बन जाना चाहता है। आज भी चंद लोग राष्ट्रवाद के नाम पर धर्म की आड़ ले कर लोगों को गुमराह करते हैं। इतिहास की किताबों में सभी भाषाओं में राष्ट्रवाद पर खूब सारी सैद्धांतिकी लिखी गई है। अब राष्ट्रवाद को देशभक्ति का नाम दिया जाने लगा है। अब तो राष्ट्रवाद और देशभक्ति में बहुत अंतर है जिनका मिलो-मील आपस में कोई संबंध नहीं है। आज हम देखते हैं कि किसी भी हिन्दू की देशभक्ति पर कभी शक नहीं किया जाता पर भारत में बसे मुसलमान और पाकिस्तान में बसे हिन्दुओं की देशभक्ति को आज भी शक की नज़र से देखा जाता है। ऐसे में राष्ट्रवाद के प्रमुख घटक एकता की कल्पना कैसे की जा सकती है? यह एक चिंतन का विषय है। राष्ट्रवाद अपने आप में एक बहुत बड़ा विषय है जिसे जितना ज़्यादा खंगाला जाएगा उतना ही ज़्यादा फैलता चला जाएगा और उतनी ही ज़्यादा उसमें समस्याएं नज़र आएंगी। भारत में जम्मू कश्मीर जैसे राज्य जहां धर्म इतने हावी हैं कि इन्ही के चलते सत्ता टूटी और बनती है। इस सामाजिक उन्माद के चलते यहां एक ही राज्य व्यावहारिक गिरावट पर सीमा सीमा दो टुकड़ों में बंटा हुआ है। यहां चिंतन का विषय यह है कि ऐसे स्थान पर राष्ट्रवाद के क्या मायने लागए जा सकें जहां धर्म ही एक आम व्यक्ति से लेकर शासन और सत्ता तक का फैसला करता हो।

राष्ट्रवाद के रास्ते में दूसरी सबसे बड़ी समस्या हम राजनीति को देखते हैं। आज देश में राजनीति का कोई धर्म नहीं रहा बलिक धर्म की खुलेआम राजनीति हो रही है जो राष्ट्रवाद के आगे खतरा बना दिखाई देता है। आज़ादी के बाद सत्ता बनाने का हक जनता को मिला लेकिन ऐसा नहीं है आज भी गौरी, यादव, मुफ्ती, आदि वंशवादी सत्ता पर शासन संभाले हुए हैं। क्या हम यह मान लें की इन्हें यह सत्ता और शासन विरासत में मिली है? या फिर ऐसा मान लें कि इनके सिवा दूसरा कोई

और सत्ता या शासन के काबिल भारत में है ही नहीं? अंग्रेजों के समय से पहले अगर हम देखें तो ये राष्ट्रवाद नाम की कोई बाला कहीं भी नजर नहीं आएगी। 'भारत देश में सदियों तक विदेशी हमलावर यहां आते रहे और फिर यहीं के होकर रह गए। जैसे मुस्लिम हमलावर शासक यहीं बस गए और भारतीय मुसलमान कहलाए, इससे पहले शक, कुषाण यथा और भी जितने हमलावर आए वो भारतीय हो कर रह गए। विभिन्न राजाओं में आपसी संघर्ष और अधिक से अधिक क्षेत्र को अपने अधीन करने की लालसा तो थी पर जनता के मन में कोई राष्ट्रवाद जैसी चीज नहीं थी क्षेत्रवाद सदैव चरम पर रहा। पर जब ब्रिटिश भारत के शासक बने उन्होंने भारत व भारतीय लोगों को हेय दृष्टि से देखा यहीं से भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ और विभिन्न प्रान्तों, धर्मों और विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोग एक साथ आजादी के संघर्ष में साथ आए।' आज के इस तेज तरार दौर में जब की भारत में फ़िल्म बनने के बाद और oh my god जैसी अनेक फिल्मों को देखने के बाद भी यहां के लोग सुधर नहीं पाए हैं ऐसे में राष्ट्रवाद अपने मूल रूप 'अनेकता में एकता' वाले तत्व से लगातार दूर होते हुए दिखाई दे रहा है। वर्तमान में तर्क राष्ट्रवाद पूरी तरह से राजनीति का केन्द्र बना हुआ है जिसकी आड़ में सल्लतनते बन और बिखर रही हैं। मैं अपने पत्र में राजनीति पर ये आक्षेप नहीं नहीं लगा रहा की राजनीति केवल एक बखेड़ा ही है, और बिल्कुल ही भ्रष्ट है ऐसा नहीं है क्योंकि इसी के कारण भारत आज एक विकसित देशों में से एक है। कभी वो वक्त था जब राजनीति में धर्म होता था आज तो हम देखते हैं की धर्म की राजनीति हो चुकी है। ऐसी कारण से कुछ लोग अपने धर्म का ज़्यादा पक्ष ले लेते हैं जिसके चलते यह राष्ट्रवाद की नब्ज पर चोट पहुँचते हैं।

अतिभावुकता रूपी एक और समस्या है जो आज के समय में राष्ट्रवाद पर काले घने बादलों की तरह मंडरा रही है ये अतिभावुकता यानी अपने धर्म के ही हित में मगन रहना बाकी धर्मों को ताक पर रखना। ऐसे में आज यह समझ नहीं आता कि यह राष्ट्र पूरा भारत है कोई राज्य है या राज्य का कोई कश्मीर जैसा विशेष स्थान ? दूसरा यह कि अतिभावुकता के कारण लोग बड़े राष्ट्रवादी बने फिरते हैं पर चिंता की बात यह है कि ये अतिभावुकता अपने ही धर्म, जाति, सम्प्रदाय, स्थान, भाषा आदि तक ही सीमित है। सबसे बड़े देशभक्त तो आर्मी के जवान हैं जो बिना किसी भेद के भारत की रक्षा करते हैं।

रवीश कुमार मानते हैं कि 'जब इतिहास पढ़ने की बारी आती है तो आप और हम इतिहास का मज़ाक उड़ाते हैं। फिर जब राजनीति करनी होती है तो इतिहास की अनाप शनाप व्याख्या करते हैं। मौजूदा समय में राष्ट्रवाद का राजनीतिक इस्तमाल राष्ट्रवाद की कोई नई समझ पैदा कर रहा है या जो पहले कई बार हो चुका है उसी का बेतुका संस्करण है। यह खतरनाक प्रवृत्ति है या लोग ऐसे ऐसे खतरों से निपटने में सक्षम हैं।'

भारत के साहित्यकारों, पत्रकारों लेखकों आदि सभी को चिंतन करना होगा कि आजादी से लेकर आज तक हम अभी तक आदिवासियों को मूल धारा में नहीं जोड़ पाए हैं। आज भी हमारे देश की स्त्री हज़ारों प्रताड़नाओं को सह रही है और दलितों को आज भी हेय की दृष्टि से देखा जाता है। इन सब के चलते राष्ट्रवाद के घटक एकता के क्या मायने रह जाते हैं? आज हमारे आधुनिक समाज में धर्म की जो राजनीति हो रही है उससे राष्ट्रवाद की लोगों के दिमाग में बिल्कुल एक नई समझ पैदा हो रही है जिससे एक अलग उन्माद लगातार देश में बढ़ रहा है जो राष्ट्रवाद के लिए एक कड़ी चुनौती है। जिस प्रकार भारत के लोगों ने अंग्रेजों के लिए एक होकर एकता को एक हथियार बनाकर राष्ट्रवाद का प्रबल उदाहरण कायम किया था उसी प्रकार आज समय आ चुका है की फिर से किसी तहर वो भावना भारतीयों को जगानी होगी तभी राष्ट्रवाद का मूल सिद्ध होगा।

संदर्भ

1. लहदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, डक़्क़ अमरनाथ राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
2. <http://hastakshar.org/gk>
3. <https://sabharwalhardeep.wordpress.com/2017/06/06>
4. ravish kumar ndtv/fdlus nh xqaQkxnE dh NwVA

राष्ट्रीय काव्यधारा में मैथिलीशरण गुप्त का स्थान

सुनीता सिंह

श्री अग्रसेन महाविद्यालय

डलखोला, उत्तर दिनाजपुर (पश्चिमी बंगाल)

राष्ट्रीयता का सम्पर्क केवल भूगोलिक से ही नहीं उस देश की संस्कृति और भावात्मक एकत्र से भी है। राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति किसी कवि के केवल राजनैतिक मुक्ति से नहीं बल्कि सामाजिक विषमता को दूर करने आर्थिक गैर विषमता को प्राप्त करने के लिए भी होता है। राष्ट्रीयता में देश के अतीत का गौरव भी शामिल है। किसी भी देश की अतीत का गुण-गान करने से भी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति भी होती है। देश की दशा को देखकर अतीत का गौरवगान इसलिए करते हैं कि हम अपने देश को बेहतर भविष्य दे सकें।

राष्ट्रीयता का वर्तमान रूप, जिसे हम 'राष्ट्रवाद' कहते हैं, आधुनिक काल की देन है। राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति 'Nation' लेटिन शब्द 'नेशियो' से हुयी है, जिसका अर्थ है - जन्म या जाति। राष्ट्र कहने से केवल उसी समूह विशेष को कहा जा सकता है, जो निश्चित भौगोलिक सीमा में रहते हुये राजनीतिक स्वाधीनता का उपभोग करता हो। जॉन -स्टुअर्ट मिल के अनुसार- 'राष्ट्र मनुष्य जाति का एक ऐसा भाग है, जो एक दूसरे के प्रति सहानुभूति से बंधा हुआ एक सरकार के अधीन रहने की प्रबल इच्छा रखता हो।' राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है, जिसके कारण कोई व्यक्ति या समुदाय पारस्परिक एकता की भावना का अनुभव करता है। राष्ट्रीयता का भावना एक ऐसी भावना है जो श्रद्धा पर आधारित एक ऐसा आदर्श है, जिसका केन्द्र राष्ट्र होता है। राष्ट्रीयता एक ऐसी मनोदशा है जिसमें व्यक्ति अपनी राष्ट्रीयता एवं राज्य के प्रति उच्चतर भक्ति भावना का अनुभव करता है। राष्ट्र निर्माण में जिन तत्वों का योगदान होता है उनमें भौगोलिक क्षेत्र, समान नस्ल, समान संस्कृति सम्बंध, समान भाषा और समान राजनैतिक संगठन प्रमुख है। राष्ट्रवाद के विकास में भौगोलिक एकता सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता, राजनैतिक एकता, जय-पराजय इन सब का विशेष महत्व है।

राष्ट्रवाद का उग्र रूप जगत के लिए अभिशाप भी है और उसके कारण राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय हानियाँ भी हुईं फिर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अपने विशुद्ध रूप में राष्ट्रवाद निस्संदेह वरदान ही साबित हुआ है। इस समय आवश्यकता है कि राष्ट्रवाद को उग्र होने से बचाया जाये और उसे विश्व मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में रख कर देखा जाए।

राष्ट्रीय काव्य कहने से उस काव्य को समझा जाता है जिसमें किसी राष्ट्र की महिमा का गुण-गान, अतीत गौरव के चित्र अंकित किये जाते हैं, जिसमें अपनी मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया जाता है, जिसमें राष्ट्र-विरोधी शक्तियों एवं शत्रुओं के प्रति तीव्र घृणा आक्रोश जागृत करने की शक्ति होती है। जब कोई विदेशी आक्रमणकारी अपना शिकार बनाकर उस राष्ट्र के जन-जन को अपने क्रूर शासन-चक्र से कुचलना चाहता है तब जन-जन के हृदय में क्रांति की लहर दौड़ने लगती है और कविजन अपनी रचनाओं के द्वारा उस क्रांति की ओर भी तीव्र रूप प्रदान किया करते हैं। भारत के स्वतंत्रता का संग्राम को उग्र रूप प्रदान करने वाली कितनी ही राष्ट्रीय रचनाएँ इसके प्रमाण में प्रस्तुत की गयी हैं।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय काव्यधारा का आरम्भ सर्वप्रथम वीरगाथाकालीन काव्य में थोड़ा-बहुत मिल जाता है। वीरगाथाकाल में हमारे राष्ट्र पर विदेशी मुसलमान आक्रमणकारी के साथ निरंतर लोहा लेने के लिए राजपूत-राजाओं में होड़ लगी रहती थी। राजपूत राजाओं में भारत राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता की सुरक्षा हेतु उत्साहित करने के लिए तत्कालीन चारण कवि ओजस्वी काव्य का निर्माण किया करते थे।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में भी कुछ राष्ट्रीय काव्यधारा का स्वरूप मिल जाता है। सचपूछा जाये तो इसी काल में राष्ट्रीय काव्यधारा का प्रथम उन्मेष हुआ। कारण इस समय भारत राष्ट्र औरंगजेब जैसे क्रूर शासक के शासन काल में पिसकर रह गया था। औरंगजेब से लोहा लेने के लिए छत्रपति शिवाजी, महाराज छत्रसाल बराबर युद्ध करते रहें। रीतिकाल के कवियों में सूदन, गुरुगोविन्द सिंह, गोरेलाल इत्यादि प्रमुख हैं। जिनमें विशेषकर भूषण ने अपने राष्ट्र-नायक का गुण-गान कर जन-जन के हृदय में औरंगजेब के अत्याचार एवं अन्याय के विरुद्ध भावनाएँ उत्पन्न की थी।

आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत रचनाएँ प्रस्तुत कीं। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज-सुधार, राष्ट्र प्रेम, देश भक्ति, नारी शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति के महत्व की ओर जनता का ध्यान

आकृष्ट किया और साथ ही जनता की मन में स्वदेश, स्वराष्ट्र एवं स्वभाषा के प्रति तीव्र अनुराग उत्पन्न करने का प्रयास किया।

राष्ट्रवादी काव्यधारा का तृतीय उन्मेष द्विवेदी युग में हुआ। भारतेन्दु युग में राजनैतिक क्षेत्र में एक बहुत बड़ी घटना घटी वह थी 'इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना।' कांग्रेस देश की राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व करने लगी जिस कारण देश के स्वाधीनता आन्दोलन में सहयोग मिलने लगा और देश की राजनीति में जान आ गयी। देश के साहित्यकार भी युग की पुकार को शून्य कर राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत रचनायें लिखने लगे।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक छायावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी ने भी अतीत गौरव का गुण-गान करके जन-जन के हृदय में देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम आदि को जाग्रत करने का प्रयास किया। छायावादी चार स्तम्भों के अलावा सुभद्रा कुमारी चौहान, श्री श्याम नारायण पाण्डे इत्यादि ने भी देश की जनता में स्वराष्ट्र प्रेम को जाग्रत करने का प्रयास किया। मुख्य रूप से हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता भूषण से मानी जाती है। भारतेन्दु के अनुसार राष्ट्रीयता के मुख्य दो रूप हैं - 1. मुसलमानों के विरुद्ध, 2. अंग्रेजों के विरुद्ध। अंग्रेजों के विरुद्ध की राष्ट्रीयता के शुरुआत होती है भारतेन्दु जी से -

अबहूँ सबमिल के रोबहूँ भारत-भाई

हा-हा भारत-दुर्दशा देखी ना जाई।

आधुनिक काव्य में दो ही कवि को राष्ट्र कवि के रूप में प्रमुखता मिली है - दिनकर और मैथिलीशरण गुप्त। मुख्य रूप से गुप्त जी को ही राष्ट्र कवि घोषित माना गया है। पाँच दशकों की अपनी साहित्य सेवा में गुप्तजी ने लगभग चार दर्जन ग्रंथों की रचना किया। गुप्तजी द्वारा रचित कविताओं में यद्यपि परिवारिक और सामाजिक संदर्भों की बेहतर झांकी है। लेकिन मुख्य रूप से राष्ट्रीय कवि के रूप में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त है। गुप्तजी में राष्ट्रीय भावना का मानक उदाहरण है 'भारत-भारती'। भारत-भारती इन्होंने देश के अतीत का गौरव गान करते हुए वर्तमान की दयनीय अवस्था का बोध तीव्रता से कराया है और देश के भविष्य को संवारने की प्रेरणा दी। इस संदर्भ में उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो पंक्तियाँ हैं -

हम क्या थे क्या हो गये क्या होंगे अभी

बैठकर सोचें आज ये समस्याएँ सभी।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारत-भारती की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का उद्घाटन अपने शब्दों में इस रूप में किया है- 'भारत-भारती में प्राचीन भारतीय गौरव के प्रति कवि की आस्था व्यक्त हुई है। भारत-भारती के द्वारा कवि ने लोगों में भविष्य के लिए आशा का संदेश दिया है। भारत-भारती ने तत्कालीन शिक्षित जन की आशा-आकांक्षा को कुण्ठ होने से बचाया है। उन्होंने देश को प्राचीन गौरव की कहानी सुनाकर सजग और राष्ट्रीयता के प्रति सचेत बनाया। भारत-भारती ने उन दिनों विदेशी शासन से मुक्ति पाने की अपूर्व प्रेरणा दी। समूचे हिन्दी-भाषा प्रदेश को उद्बोधित एवं प्रेरित करने में इस पुस्तक में प्रशंसनीय शक्ति का परिचय दिया। तब से गुप्तजी को लोकचित में राष्ट्र-प्रीति की भावना जगाने वाले सबसे शक्तिशाली कवि के रूप में हिन्दी जगत देखता आया है। गुप्तजी सच्चे अर्थों में राष्ट्र कवि है। भारत-भारती सही अर्थ में भारत-भारती हो सकी है।'

गुप्तजी ने भारत-भारती के बाद 'किसान' नामक काव्य में किसानों की दयनीय दशा पर क्षोभ प्रकट किया और उनके दुःख एवं दरिद्रता को उत्पन्न करनेवाली शोषण पद्धति को समाप्त करने के लिए ऐसे काव्यों की रचना की जिनसे किसानों की मन में अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध कदम उठाने की प्रेरणा जाग्रत हो और किसान अपने हक के लिए शासक वर्ग से विद्रोह कर सकें। किसान के उपरांत गुप्तजी ने 'अनघ' काव्य के द्वारा देश के लोगों में सत्याग्रह के लिए प्रोत्साहन एवं राष्ट्र रक्षा के साथ-साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आत्मोत्सर्ग करने की भावना का प्रचार किया। 'स्वदेश-संगीत' के द्वारा गुप्तजी ने परतंत्रता की घोर निद्रा में डूबे भारतवासियों के मन में नवजागरण का संदेश दिया और 'हिन्दु' काव्य की रचना करके राष्ट्रव्यापी सामाजिक जड़ता धार्मिक असहिष्णुता, जातिवाद आदि की कंचूली को उतार फेंकने की प्रेरणा प्रदान की। 'हिन्दु' के बाद 'शक्ति' काव्य की रचना के माध्यम से संघे शक्ति कलियुगे के मूल मंत्र को जन-जीवन में व्यापक बनाने का भरपूर प्रयास किया और सम्पूर्ण भारत राष्ट्र को परतंत्र न रहकर अपनी स्वयं की शक्ति को संचय कर अपने आपको स्वतंत्र करने की प्रेरणा दी। 'शक्ति' के उपरांत गुप्तजी ने 'वन-वैभव' की रचना कर हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या का पौराणिक आधार पर समाधान प्रस्तुत किया और साम्प्रदायिक संघर्ष को दूर करके दोनों जातियों को एक होकर अपने शत्रु से लोहा लेने के लिए प्रोत्साहित किया तथा 'बक-संहार' की रचना कर अन्याय को ना सहने और अन्याय का विरोध करने और फिर न्याय के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी।

'वन-वैभव' के उपरान्त गुप्तजी ने 'गुरुकूल' काव्य की रचना करके सिक्खों के मन में अपने देश के प्रति भक्ति और प्रेम के कारण अपना सबकुछ परित्याग कर तथा सिक्खों के बलिदान-पूर्ण आख्यानों द्वारा देश के जवानों में राज्य-शक्ति अथवा शारीरिक शक्ति की अपेक्षा आत्मिक शक्ति एवं मानसिक बल की श्रेष्ठता का मूल मंत्र दिया। इसके उपरांत गुप्तजी ने 'नहुष' काव्य की रचना करके 'नहुष' के चरित्र द्वारा समूचे देश के जवानों में राष्ट्र के प्रति उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिए सतत प्रयत्न करने की प्रेरणा प्रदान की। 'काबा' और 'कर्बला' के द्वारा गुप्त जी ने पुनः हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना को सुदृढ़ बनाने का सुंदर प्रयास किया और इसी के साथ 'विश्व-वेदना' की रचना करके युद्ध की विभीषिका से राष्ट्र को अवगत

कराया एवं अंग्रेजी शासक द्वारा भारतीय जनता पर अधिक कर लगाने के लिए नीति का घोर विरोध किया। गांधीजी के मृत्यु के उपरांत गुप्तजी ने अपनी रचना 'अंजलि' और 'अर्घ्य' के द्वारा गांधीजी के विशिष्ट गुणों, विविध उपकारों एवं विपुल कार्य से जन-जन को परिचित कराया तथा भारतवासियों की कृतघ्नता पर अत्यन्त क्षोभ प्रकट किया।

गुप्तजी ने 'जय भारत' की रचना करके महाभारत के आख्यानों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते हुए भारत के अतीत का गौरव-गान किया और मानवता के आदर्श को अपनाने की प्रेरणा प्रदान की। इसी प्रकार राजा-प्रजा की रचना करके गुप्तजी ने शासक और प्रजा के कर्तव्यों का उल्लेख किया और बताया कि यदि चाहे तो दोनो आपने पुरुषार्थ से इस पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापना कर सकते हैं। गुप्तजी द्वारा रचित प्रबन्ध काव्य जैसे- यशोधरा, साकेत, पंचवटी अदि में नारी की महत्ता कर्तव्य-परायणता, आत्म अभिमान सहानुभूतिशील आदि उच्चगुणों से विभूषित होकर जन-मानस में विचारों एवं उत्कृष्ट भावों के प्रचार में सहायक सिद्ध हुए हैं। साकेत काव्य के द्वारा गुप्तजी ने समाज में नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया साथ ही तत्कालीन समाज में नारी का जो तिरस्कार हो रहा था तथा नारी के प्रति जो अनादर दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था उस दृष्टिकोण के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए कवि उबल पड़ा -

“हाय वधू ने क्या वर -विषय एक वासना पाई ?
नही कोई क्या उसका पिता, पुत्र या भाई ?
नर के बोंटे क्या नारी की नग्न मुर्ति ही आई ?
माँ बेटि या बहन हाय! क्या संग नही वो लाई?

अर्थात् एक नारी वधू के अलावा भी किसकी पुत्री, बहन या माँ की भी भूमिका निभाती है पर उसके इन रूपों के महत्त्व को लोग भुला देते हैं। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में पुरुष ही नहीं अपितु नारी भी बराबर भाग ले रही थी। नारियाँ विदेशी सत्य के विरुद्ध आंदोलन करके जेल जा रही थीं, यातनाएँ सह रही थी और शत्रु से डट कर मुकबला ले रही थी। साकेत में कैकेयी यह उक्ति - 'मैं निज पति के संग गई थी असुर-समर में जायुंगी, अपुत्र-संग भी अरि-संगर में' - तत्कालीन स्वातन्त्र्य संग्राम में नारियों के भाग लेने की और संकेत कर रहे हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि गुप्तजी असंदिग्ध रूप से राष्ट्र कवि हैं। तभी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि- यदि किसी को अपने देश से प्रेम हो तो मनुष्य, पशु-पक्षी, लता-गुल्म, पेड़-पत्ते, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा सबको वो चाह की दृष्टि से देखेगा, सबकी याद करके विदेश में आंसु बहायेगा, जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है वे यदि दस बन-ठन मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की उसत आमदानी का खसड़ा बता कर देश प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए की भाईयों बिना परिचय का यह देश प्रेम कैसे।

राष्ट्रवाद की भावना और मैथिलीशरण गुप्त का 'भारत भारती'

डॉ. मोहम्मद इसराइल

कमला नेहरू कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र और राष्ट्रवाद क्या है, इसे लेकर कुछ लोगों के बीच भ्रम बना हुआ है। कुछ देश को ही राष्ट्र मान लेते हैं लेकिन वास्तव में देश तो भूमि का एक टुकड़ा है और वह मानचित्र पर दिखता है। जब उसमें रहने वाले लोगों की भावनाएं उस भूमि के टुकड़े से जुड़ने लगे, अपने भूमि के लिए मर मिटने की भावना जगे वही राष्ट्रीय भावना है। अर्थात् देश के विकास के लिए होने वाला प्रयत्न-संघर्ष सभी भाव राष्ट्रवाद के दायरे में आते हैं। वास्तव में राष्ट्रीयता एक भावना है जो किसी भी देश को राष्ट्र का गौरव प्रधान करती है। वस्तुतः राष्ट्रीयता का अर्थ भौगोलिक सीमाओं में नहीं बंधा है इसका सीधा संबंध हृदय से होता है अर्थात् राष्ट्रीयता, जाति, धर्म और भाषा की एकता का नाम है। राष्ट्रवाद राष्ट्र के साथ पूरी तरह से जुड़ने का नाम है। यह वह चेतना है जो व्यक्ति को परंपरागत रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाने को बाध्य करती है। देश की समस्याओं से लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। दूषित मनोवृत्तियों को नष्ट करती है। समानता, निर्भीकता, प्रेम, संगठन, दया, ममता, करुणा, परोपकार, सहयोग जैसी सद्भावनाओं को उद्दीप्त करती है।

डॉ श्रीहरि दामोदर के अनुसार 'चाहे अतीत का प्रेरक-प्रकाश स्तंभ हो चाहे वर्तमान की समृद्धि के प्रति सहज में चाहे योग जीवन की छटपटाती कराहती मानवता का दर्द व्यक्ति के अंतर में संवेदना की आद्रता भर दे अथवा भविष्य की नूतन संभावनाओं के प्रति लालसा के अंकुर ही क्यों ना फूट रहे हो सभी में राष्ट्र-निर्माण राष्ट्र-उन्नति के बीच ही अंतर्निहित है।' रस्किन के शब्दों में 'प्रेम और भ्रातृत्व को अपनाकर एक विशाल कुटुंब की तरह अपनी वृद्धि करने में ही राष्ट्र की सच्ची शक्ति विद्यमान है।' बाबू गुलाबराय के अनुसार 'राष्ट्रीयता एक सम्मिलित, राजनीतिक बंधे हुए किसी भौगोलिक इकाई के जन समुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना है।'

इस भावना को केंद्र में रखते हुए हिंदी साहित्य जिसमें राष्ट्र के प्रति अनेक कवियों ने रचना का सृजन कर अपने भाव व्यक्त किए हैं, उसमें से एक हैं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त। जिनके साहित्य को पढ़कर लगता है कि राष्ट्रवाद से संबंधित जितना बारीकी से विस्तार से उन्होंने लिखा है किसी और ने नहीं लिखा है। उनकी अनेक रचनाएं हमारे सामने विद्यमान हैं। जिसके मूल में भारतीय संस्कृति और राष्ट्रवाद की भावना ही निहित है। गुप्त जी की रचनाओं में 'भारत भारती' उनकी सबसे बड़ी कृति मानी जाती है।

आधुनिक हिंदी कविता के महान राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिंदी जगत के लोकप्रिय यशस्वी एवं मानवतावादी नैतिक सांस्कृतिक नवोत्थानवादी कविता धारा के विलक्षण कवि माने जाते हैं। आस्तिक, आस्थावादी गुणाढ्य तथा विद्या देवी परिवार में पोषित गुप्त जी को कुल एवं परिवार गौरव की भावना तथा राष्ट्र-गौरव का स्वाभिमान विरासत में प्राप्त हुआ था। अनेक भाषाओं का ज्ञान, स्वाध्याय की वृत्ति, संगीत में अभिरुचि, शास्त्रों का बोध, भारतीय अतीत के प्रति गरिमा की भावना तथा जीवन के अनेक संघर्षों ने गुप्त जी को 'भारत भारती' जैसी महान कृति के सृजन का बीज मंत्र प्रदान किया। 'भारत भारती' को सामाजिक-सांस्कृतिक एकता, सहिष्णुता एवं उदारता की राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रचना कहना सर्वथा उचित होगा। जातीय चेतना का संचार करने वाली तथा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और लोकतंत्र की मानवतावादी नीति को संचालित करने वाली यह अद्भुत रचना अखिल भारतीय स्तर पर शांति व्यवस्था की प्रतिष्ठा, मूल्यपरक नैतिक उपदेश-संदेश तथा राष्ट्रीय नागरिकों को सर्वोदय के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय सद्भावना एवं समभाव की शिक्षा देने वाली अतुल्य रचना है। 'भारत भारती' को हिंदू उपदेश तथा उद्बोधन का काव्य कहना गलत ना होगा। 'भारत भारती' का रचनाकाल एक प्रकार से खड़ी बोली हिंदी काव्य के लिए 'वसंत का अग्रदूत' बनकर प्रकट हुआ। यही कारण है कि इस रचना ने हिंदी की तत्कालीन कविता का स्वर बदल डाला। 'भारत भारती' ने मैथिलीशरण गुप्त को हिंदी जगत का लोकप्रिय तथा प्रतिभाशाली कवि घोषित कर दिया। 'भारत भारती' अपने युग का दर्पण है। 'भारत भारती' अपने कथ्य, शिल्प, छंद, संगीत तथा संदेश की दृष्टि से पूर्णतः सफल रचना सिद्ध हुई है। गुप्त जी ने खड़ी बोली में काव्य सृजन को बल दिया है। गुप्त जी ने मात्रिक छंद में डालकर गति तथा आंतरिक अन्विति में जिस तरह पियेया है, वह अद्भुत है। 'भारत भारती' का भाषिक संगीत तथा लयात्मक सौंदर्य इस रचना को 'न भूतो न भविष्यति'

की श्रेणी में ला खड़ा करता है। सुसज्जित शब्द-संपदा, हरिगीतिका छंद के गीत, काव्य के स्वाभाविक मर्म की संप्रेषणीयता 'भारत भारती' को सहृदय जगत का कंठहार बना देती है। स्कूलों की प्रार्थना में भी 'भारत भारती' को अपनाया एवं आत्मसात किया जाता है। युवाओं में और उत्साह का भाव संचालित करने की दिव्य प्रेरणा बनने का श्रेय भी इसी महान रचना को दिया जाता है।

'भारत भारती' राष्ट्रीय भावना से अभिप्रेरित जागरण काव्य है। अलसाए देश का उद्बोधन काव्य है। समस्त देशवासियों में सात्विक ऊर्जा का संचार कर राष्ट्रीयता की निर्मल धारा प्रवाहित करने वाला उत्प्रेरक काव्य है। 'भारत भारती' का नाम लेते ही इसके अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों खंडों में वर्णित भारत की प्राचीन गौरव-गाथा, तत्कालीन दयनीय अवस्था और सुनहरे भविष्य के सपनों का साकार व्यवस्थित होता है। निसंदेह इसे 'आधुनिक गीता' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। 'भारत भारती' के माध्यम से भारतीयता और राष्ट्रवादी भावना को पहचाना जा सकता है। ब्रिटिश हुकूमत की जंजीरों में जकड़े अखंड भारत में नवीन ऊर्जा का संचार इतनी तन्मयता सादगी और सरलता से अब तक नहीं हुआ था।

'भारत भारती' धर्म जातीयता और सांप्रदायिकता से परे है। इन्हें इन धर्म जातीयता और सांप्रदायिकता के चश्मे से देखना घटियापन कहा जाएगा। 'भारत भारती' ने भारतीय सरोकारों को जिस संस्था से संबोधित किया है, वह प्रयास न केवल युगांतकारी है अपितु क्रांतिकारी है। 'भारत भारती' ने बहुत कम समय में भारत को एक सूत्र में पिरोकर सौहार्द, प्रेम और भाईचारे की त्रिवेणी प्रवाहित कर दी है। छात्रावासों में 'भारत भारती' के छंद गाए जाने लगे। राष्ट्रभक्ति की वैतरणी में संपूर्ण भारत सनाथ हो उठा और कदाचित इसी कारण ब्रिटिश सरकार ने इस कृति पर प्रतिबंध लगा दिया। इसकी प्रतियां जप्त कर लीं इसके छंदों के माध्यम से जागरण संदेश देने वाले दलों को जगह-जगह रोका गया और प्रताड़ित किया गया। 'भारत भारती' का कवि राष्ट्र-भक्ति का प्रतीक और राष्ट्रप्रेम का पुजारी है। वह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अग्रदूत है। 'भारत भारती' भारत की शक्ति का महत्वपूर्ण जयघोष है। आदर्शों और जीवन मूल्यों की रक्षा इस कृति का मुख्य उद्देश्य रहा, वहीं समस्त संकीर्णताओं को समाप्त कर उदारता नैतिकता की प्रतिष्ठा को इसने अपना लक्ष्य बनाया। गुप्तजी अपने राष्ट्र के प्रति चिंतित हैं, इसलिए वे लिखते हैं-

हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी

आओ विचारें आज मिलकर यह समस्याएं सभी।

ये पंक्तियां तत्कालीन परिदृश्य में ही प्रासंगिक नहीं है बल्कि हमेशा ही अपने समय को जांचने की एक प्रामाणिक कसौटी है। वर्तमान भारत की पहुंच ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों तक है परंतु आज सर्व शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, जल प्रबंधन, रोजगार, सृजन, भ्रष्टाचार उन्मूलन, ग्रामोत्थान, भूमि सुधार, निर्वाचन सुधार, औद्योगिकीकरण आदि तमाम ऐसे विषय हैं; जिन्हें समग्र क्रियात्मक रूप दिए बिना गुप्त जी के सपनों के भारत का निर्माण कर पाना स्वप्न सदृश्य दिखाई देगा। मैथिलीशरण गुप्त का मानना था कि कविता का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं होना चाहिए। उसमें समाज के लिए दिशा-शिक्षा भी होनी चाहिए इसीलिए वे कहते हैं-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए

इसीलिए उनकी 'भारत भारती' में भी राष्ट्र-जागरण का उद्बोधन है। उन्होंने समाज की कई बुराइयों को इस काव्य में दूर करने का संदेश दिया है जैसे गरीबी और अकाल के लिए वह कहते हैं-

देखो जिधर अब बस उधर ही है उदासी छा रही

काली निराशा की निशा सब ओर से आ रही

दारिद्र्य दुर्धर अब वहां करता निरंतर नृत्य है

आजीविका अवलंब बहुदा भृत्य का ही कृत्य है

कुल जाति न चाहिए यह सब रहे या जाए रे

बस एक मुट्ठी अन्न हमको चाहिए अब हाथ रे

इस पेट पापी के लिए ही हम विधर्मी बन रहे

निज धर्म मानस से निकल अघ पंक में है सन रहे

तत्कालीन व्यापार व्यवस्था के संबंध में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी कहते हैं

केवल विदेशी वस्तु ही क्यों अब स्वदेशी है कहां

यह वेशभूषा और भाषा सब विदेशी है यहां

गुण मात्र छोड़ विदेशियों के हम उन्ही में सन गए

कैसी नकल की वह हम निकाल पूरे बन गए

यदि हम विदेशी माल से मुंह मोड़ सकते हैं नहीं

तो हाथ उसका मुंह ही क्या छोड़ सकते हैं नहीं

क्या बंधुओं के हित तनिक भी काम कर सकते नहीं
 निज देश का क्या अल्प भी अनुराग कर सकते नहीं
 गुप्त जी ने तत्कालीन क्लर्क बनाने वाली जी हुजूरी करने वाली शिक्षा पर भी व्यवस्था पर भी व्यंग किया है-
 वह आधुनिक शिक्षा की सुविधा प्राप्त भी कर सको
 तो लाभ क्या बस क्लर्क बन पेट अपना भर सको
 लिखते रहो जो सिर झुका सुन अक्षरों की गालियां
 तो दे सकेंगी रात को दो रोटियां घरवालियाँ

धर्म के नाम पर चलने वाले ढोंग, अनाचार, जाति-भेद, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों, मिलावट, भ्रष्टाचार, नशाखोरी आदि सभी बुराइयों के विषय में उन्होंने लिखा और अपेक्षा की कि समाज से यह सभी विषमताएं मिट जाएं और चारों तरफ समरसता तथा विश्व-बंधुत्व का साम्राज्य हो। वे राष्ट्र की एकता के लिए चिंतित थे। उन्होंने देश की एक ही भाषा होने पर जोर दिया है-

संपूर्ण प्रांतिक बोलियां सर्वत्र ज्यों की त्यों रहे
 सब प्रांत वासी प्रेम से उनके परिवारों में बहें
 पर एक ऐसी मुख्य भाषा चाहिए होनी यहां
 सब देशवासी जन जिसे समझें समान जहां-तहां

गुप्त जी का मानना था कि राष्ट्र को सच्चा प्रेम वही कर सकता है जो देशवासियों से उन्हीं की भाषा में बात करें वे कहते हैं- 'राष्ट्रभाषा के संदर्भ में वह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऋणी हैं और राष्ट्रभाषा के लिए आज महात्मा गांधी के।' अपनी संस्कृति और राष्ट्र का गौरव गान करने में गुप्त जी कभी पीछे नहीं रहे हैं इसलिए उन्होंने इतिहास का हवाला देते हुए भी भारत का गौरव सुनाया है-

यूनान ही कह दे कि वह ज्ञानी गुणी कब था हुआ
 कहना ना होगा हिंदुओं का शिष्य वह जब था हुआ
 हमसे अलौकिक ज्ञान का आलोक यदि पाता नहीं
 तब वह अरब यूरोप का शिक्षक कहा जाता नहीं

ललित शुक्ल जी के अनुसार 'गुप्त जी हिंदी क्षेत्र में राष्ट्रीय नवजागरण के सुयोग्य पुत्र हैं जिन्होंने एक गांव के कोटा से बाहर निकलकर पूरे क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना को समृद्ध किया और साहित्यकारों को अगली पंक्ति में स्थान प्रदान किया। उनकी सीमाएं इस क्षेत्र के नवजागरण की सीमाएं हैं और उनकी अपनी शक्ति है कि विचारों भावनाओं के संघर्ष में सदा प्रगतिगामी प्रवृत्तियों का साथ देते रहें।' गुप्त जी ने भारतीय शिक्षा दर्शन और वेदों का भी गुणगान किया और बताया कि वे विश्व साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। वह कहते हैं-

विख्यात चारों वेद मानो चार सुख के सार हैं
 चारों दिशाओं के हमारे विजय ध्वज चार हैं
 विज्ञान गरिमा गार हैं विज्ञान के भंडार हैं
 वह पुण्य पारावार हैं आचार के आधार हैं

गुप्त जी ने भारतीय वीरता की भी चर्चा करते हुए को जगाने का प्रयास किया है वह कहते हैं -

जिसके समक्ष ना एक भी विजय सिकंदर की चली
 वह चंद्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली
 जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था ले गया
 कांधार आदिक देश देकर निज सुता था दे गया

अतीत के साथ-साथ 'भारत भारती' के भविष्य खंड में मैथिलीशरण गुप्त जी लिखते हैं-

हमको समय को देख कर ही नित्य चलना चाहिए
 बदले हवा जिस तरह हम को बदलना चाहिए
 विपरीत विश्व प्रवाह के निजी बनाओ जा सकती नहीं
 अब पूर्व की बातें सभी प्रस्ताव पास सकती नहीं

इसलिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी नवीन उत्थान के लिए संदेश देते हैं कि-

है ज्ञात क्या तुम को नहीं तुम लोग तीस करोड़ हो
 यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो
 उत्साह जल से सींचकर हित का अखाड़ा गोड दो

गर्दन अमित्र अद्यपतन की ताल ठोक मरोड़ दो

वास्तव में 'भारत भारती' अपने युग की चेतना तथा समाज और संस्कृति के बोध को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करने वाली एक ऐसी अद्भुत रचना है, जो अपनी वैचारिक संपदा तथा विशुद्ध भावनात्मकता से प्रत्येक राष्ट्रभक्त को उद्वेलित एवं अभिभूत करती है। मैथिलीशरण गुप्त रचना के माध्यम से हमें हमारे उज्ज्वल तथा गरिमा मंडित अतीत चुनौतियों भरे वर्तमान तथा सपनों से भरे भविष्य का एक वृहत परिदृश्य हमारे मन-मस्तिष्क के समक्ष उपस्थित करते हैं। यही वह अवसर है जब साहित्य और साहित्यकार, समाज तथा राष्ट्र की गति एवं प्रगति की चिंता की ओर उन्मुख होता है। स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहे राष्ट्र-निवासियों को कवि व्यापक विस्मृत जीवन की भावभूमि से अवगत कराता है। वह समाज और सामाजिकता के लिए विकास एवं प्रगति का राजमार्ग प्रशस्त करते हुए उसके कल, आज और कल की चिंता करता है। साथ ही अपने सामाजिक राष्ट्रीय सरोकारों का बोध भी कराता चलता है।

मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीयों को पाश्चात्य जीवन शैली के अंधानुकरण से बचने के लिए कहा है। अपने देशवासियों को अपनी गौरवशाली विरासत को सहेज कर रखने पूर्वजों के बताए मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। जीवन-शैली को संयमित रखते हुए पूर्वजों की राह पर चलने की प्रेरणा कवि इन पंक्तियों के माध्यम से देता है-

किस भाँति जीना चाहिए किस भाँति मरना चाहिए
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए
पदचिह्न उनके यत्नपूर्वक खोज लेना चाहिए
निज पूर्व गौरव दीप को बुझने न देना चाहिए

वे कहते हैं कि देशवासियों में जो आलस्य की प्रवृत्ति है वही भारत को कमजोर करती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी 'भारत दुर्दशा' में आलस्य, निद्रा आदि अनेक भारतीयों की कमजोरियों को उजागर कर उनसे दूर रहने की प्रेरणा दी थी। मैथिलीशरण गुप्त भी यह कहते हैं कि आलस्य ही हमारे पिछड़ेपन के और हमारे अभावों का मूल कारण है। परिश्रम से बड़ा कोई मित्र नहीं है। वह देश के सभी लोगों को सर्वांगीण विकास के लिए जगाना चाहते हैं। इसलिए वह कहते हैं-

हे भाइयों सोए बहुत अब तो उठो जागो अहो
देखो जरा अपनी दशा आलस्य को त्यागो अहो

'भारत भारती' गुप्त जी का और भारतीय नागरिकों का भी वह स्वप्न है जिसकी पूर्ति के लिए बाद की अन्य रचनाओं का विसर्जन करते हैं। अंग्रेजों के शासनकाल से मुक्ति की आकांक्षा, अंग्रेजी भाषा के दबाव से मुक्ति का संकल्प, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा का भाव जगाने की उत्कट इच्छा, इतिहास और संस्कृति से परिचय कराने का रचनात्मक प्रयत्न, पूर्वजों-गुरु-बुजुर्गों के प्रति सम्मान का भाव जगाने का स्वर, अपने साहित्य कर्म की ईमानदारी और मूल्यों के प्रति आस्था का बीजवपन करने का संकल्प 'भारत भारती' की मूल आत्मा है। आचार्य नंददुलारे वाजपयी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' में गुप्त जी के विषय में लिखा भी है कि "मैथिलीशरण की काव्य साधना बिल्कुल स्वदेशी ढंग की है। दीन-दरिद्र भारत के विनीत, विनय और नसीर कवि हैं। कल्पना की ऊंची उड़ान भरने की उनमें शक्ति नहीं है किंतु राष्ट्र की और युग की नवीन स्फूर्ति नवीन जागृति के स्मृति चिह्न में हिंदी में सर्वप्रथम गुप्त जी के काव्य में ही मिलते हैं। उनकी करुण काव्य-मूर्ति आधुनिक और तृषित भारत को बड़ी ही शांति दायिनी सिद्ध हुई है।

गुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीयता के विषय में गुलाबराय का कहना है 'राष्ट्रकवि गुप्त जी की राष्ट्रीय कविता में अतीत और वर्तमान कल्पना और यथार्थ उपदेश और कर्म पर प्रार्थना और स्वावलंबन निराशा और आशा, विश्वास और दीनता, पूर्ण नम्रता और क्रांतिपूर्ण उद्गार उभय पक्षों का निरूपण है।' गुप्त जी नारी के साथ सांप्रदायिक एकता के माध्यम से भी राष्ट्रीयता के स्वर को वाणी देते हैं। इस विषय में ललित शुक्ल का कहना है- 'राष्ट्रीय आंदोलन का एक और प्रमुख प्रश्न था, सभी संप्रदायों में एकता। गुप्त जी ने इस समस्या को सदा महत्वपूर्ण समझा और हर कृति में किसी ना किसी बहाने उन्होंने सर्व-धर्म, समभाव और राष्ट्रहित के लिए एकता के सूत्रों का प्रतिपादन किया।' ललित शुक्ल जी आगे लिखते हैं कि 'गुप्त जी की राष्ट्रीयता भी उनकी राजनीतिक चेतना का अविभाज्य अंग है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में उपलब्ध भारतेंदु युग का हिंदू पुनरुत्थानवादी दृष्टिकोण समय के साथ विकसित हुआ और उनकी राष्ट्रीयता संपूर्ण देश की सभी जातियों और धर्मों को एक साथ लेकर चलने वाली राष्ट्रीयता बन गई। यही नहीं अपनी राष्ट्रभक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए भी गुप्त जी ने मानवतावादी सोच को अपनाया और वसुधैव कुटुंबकम का जयघोष किया।'

श्री बलदेव प्रसाद मिश्र ने भी गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना के संबंध में कहा है कि 'राष्ट्रकवि की काव्य कृतियां निश्चय ही ऐसी होनी चाहिए जिनमें समूचे राष्ट्र की उदात्त आत्मा प्रतिबिंबित हो। उस दर्पण में राष्ट्र का वर्तमान ही ना झलके किंतु अतीत भी आ जाए और भविष्य भी स्पष्ट हो उठे। कृतियों की उस शब्दावली में राष्ट्र का वर्तमान अतीत की उज्ज्वलता लेकर भविष्य के निर्माण के लिए विह्वल हो जाए। उन कृतियों का यथार्थ आदर्शोन्मुख होकर आए और वह यथार्थ अथवा वह आदर्श किसी व्यक्ति विशेष का नहीं किंतु समूचे राष्ट्र का है।'

अंततः लेख को विराम देते हुए यह कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' राष्ट्रवाद का एक ज्वलंत प्रमाण है, जो हमें हमारा अतीत, वर्तमान और भविष्य दिखाते हुए, हमें राष्ट्र से सदैव जुड़कर रहने की प्रेरणा देती है। यह रचना तत्कालीन विदेशी प्रभाव से बचने की और स्व के बल पर खड़े होने की प्रेरणा देती है। यह आज भी विदेशी ताकतों से लड़ने, उनके षड्यंत्रों से बचने, अपने अस्तित्व की पहचान कराने और जिजीविषा का गुण देती है। इसमें निहित राष्ट्रीय भाव किसी भी राष्ट्रवादी के लिए प्रेरक है।

सन्दर्भ

- 1 हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
- 2 मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली, कृष्णदत्त पालीवाल
- 3 मैथिलीशरण गुप्त : युग और कविता, ललित शुक्ल

राष्ट्रवादी कला : जामिनी रॉय के सन्दर्भ में

प्रकाश दास खाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर, चित्रकला

स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ परफार्मिंग एंड विजुवल आर्ट्स, रोहतक

कवि मदन कश्यप ने दिनकर के काव्य के सम्बन्ध में कहा था कि - 'दिनकर का राष्ट्रवाद बहुलतावादी राष्ट्रवाद है। वह हर तरह के अंध, कट्टर और नस्ली राष्ट्रवाद को चुनौती देता है। दिनकर भूमि, रक्त, नस्ल, धर्म, जाति की संकीर्णता से मुक्त श्रमजीवी राष्ट्रवाद की खोज करते हैं। दिनकर के राष्ट्रवाद के केंद्र में मनुष्य नागरिक और लोकतंत्र है। आज के राष्ट्रवाद के केंद्र में मनुष्य की जगह मिथक और नस्ली घृणा है। दिनकर एक मात्र आधुनिक कवि हैं जो संस्कृति के चार अध्याय में सच्चे भारत की खोज करते हैं।'

जी.पी. गूच ने राष्ट्रवाद का सूत्रपात 19 वीं शताब्दी में फ्रांस की क्रांति से माना है। इनके अनुसार फ्रांस की क्रांति के उपरांत मानव समुदाय में राष्ट्रवाद की भावना अथवा राष्ट्रीय चेतना का अधिक प्रयास हुआ। राष्ट्रवाद के कई रूप हैं, लेकिन अपने सम्पूर्ण रूप में राष्ट्रवाद एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को जब राजनीतिक सत्ताएं नियंत्रित करने लगती हैं तो स्थिति खतरनाक हो जाती है। राष्ट्रवादी चिंतन की लोकोन्मुखी चेतना का विकास हमें दिनकर के यहाँ मिलता है। राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के अंतर को हमें समझना चाहिए। दिनकर जी ने राष्ट्रवाद को बहुलतावादी मूल्यों के संरक्षक के रूप में रेखांकित किया है। दिनकर अपनी रचनात्मकता में विश्व-मानवबोध की चेतना से अभिप्रेरित दिखाई देते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। कोई भी व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता, उसे अकेलापन से डर लगता है, यह दूसरों की नकल करना पसंद करता है और स्वभाव से ही अपने समूह में प्रचलित दृष्टिकोण को अपना दृष्टिकोण बना लेता है। एक ही रक्त के होने से एक जाति के लोग आपसी सम्बन्ध में बंध जाते हैं और इस बात ने भी राष्ट्रवाद की विचारधारा को प्रगति प्रदान की होगी। राष्ट्रवाद और राष्ट्रभक्ति के बीच के अंतर को समझना समय की मांग है। राष्ट्रभक्ति खुद को किसी भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन से जोड़ती है और इसके साथ ही उनके जीवन स्तर में बेहतरी का भी ध्यान रखती है। इसलिए आप राष्ट्रभक्त हो सकते हैं और इसके साथ ही साथ आप समाज के कुछ खास मुद्दों को लेकर आलोचनात्मक रुख भी रख सकते हैं। ऐसे में किसी भी तरह से यह आपको गैर राष्ट्र भक्त नहीं बनाता।

प्रत्येक युग में संस्कृति और कला पर हमेशा हमला होता रहा है क्योंकि ये जिसका प्रतिनिधित्व करते हैं उससे देश की छवि परिभाषित होती है, एक कलाकार, साहित्यकार मात्र एक व्यक्ति विशेष का न होकर समग्र समाज का प्रतिनिधित्व करता है। राष्ट्र या धर्म के नाम पर राजनीति करके हम न सिर्फ खुद बौने हो जाते हैं बल्कि राष्ट्र को भी छोटा कर देते हैं। समाज में जो भी परिवर्तन होता है वह समाज के समग्र क्षेत्रों को प्रभावित करती है। साहित्य, कला इससे अछूते नहीं रहे हैं। बहुत कम लोगों को ही पता है कि जामिनी रॉय ने अपनी चित्रकारी में राष्ट्रवादी आंदोलन, साहित्य और कला को डिफरेंट शेड्स में उकेरा है। डॉ. अम्बेडकर का मत है कि 'राष्ट्रीयता के बिना न राष्ट्र संभव है और न ही राष्ट्रवाद। राष्ट्रीयता एक सामाजिक भावना है, जो लोगों में यह भाव जगाती है कि वे एक हैं और परस्पर सजातीय हैं। लेकिन यह राष्ट्रीय अनुभूति दुधारी तलवार की तरह है जो एक तरफ अपने लोगों के प्रति अपनत्व दिखाती है तो दूसरी तरफ उन लोगों के प्रति नफरत का भाव पैदा करती है जो उन की जाति के नहीं हैं।'

समकालीन परिपेक्ष्य में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्रवादी चिंतन को काफी हद तक प्रभावित किया है और अब राष्ट्रीय सीमाओं के कोई खास मायने नहीं रह गये हैं। इस स्थिति ने राष्ट्रवाद की भावना को चुनौती पेश की है क्योंकि भूमण्डलीकरण के अलावा इंटरनेट और मोबाइल फोन जैसी प्रौद्योगिकीय प्रगति ने दुनिया के फासलों को बहुत कम कर दिया है। कला एक ऐसी विधा है जिसमें मानव मन में संवेदनाएँ उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिंतन को मोड़ने, अभिरुचि को दिशा देने की अद्भुत क्षमता है। मनोरंजन, सौन्दर्य, प्रवाह, उल्लास न जाने कितने तत्वों से मिल कर बना है, जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है।

टालस्टाय के शब्दों में अपने भावों की क्रिया रेखा, रंग, ध्वनि या शब्द द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्ति करना कि उसे देखने या सुनने में भी वही भाव उत्पन्न हो जाए कला है। हृदय की गहराईयों से निकली अनुभूति जब कला का रूप लेती है, कलाकार का अन्तर्मन मानो मूर्त ले उठता है चाहे लेखनी उसका माध्यम हो या रंगों से भीगी तूलिका या सुरों की पुकार या वाद्यों की

झंकार। कला ही आत्मिक शान्ति का माध्यम है। यह कठिन तपस्या है, साधना है। इसी के माध्यम से कलाकार सुनहरी और इन्द्रधनुषी आत्मा से स्वप्निल विचारों को साकार रूप देता है।

जामिनी रॉय का जन्म 11 अप्रैल, 1887 में पश्चिम बंगाल के बांकुड़ा जिले में 'बेलियातोर' नामक गाँव में एक समृद्ध जमींदार परिवार में हुआ। उनका प्रारंभिक जीवन गाँव में ही बीता जिसका गहरा असर रङ्ग के आरंभिक वर्षों के कार्यों पर पड़ा। आदिवासी और उनकी लोक कला, ग्रामीण हस्तशिल्पी, अल्पना (चावल की लेई से चित्रकारी) तथा पटुआ ने कला और चित्रकारी के प्रति जामिनी की प्रारंभिक रुचि जगाई। जामिनी रॉय के चित्रों का प्रमुख विषय मां-बेटा, पशु-पक्षी व रामायण के दृश्य और राधाकृष्ण प्रमुखता से मिलेंगे। इसका मुख्य कारण भारतीय समाज के संस्कृति के प्रति उनका गहरा लगाव था, ग्रामीण जीवन की सहजता, सौम्यता उनके आदर्श का अभिन्न अंग रहे हैं। इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने हमेशा इन्हीं विषयों पर चित्रकारी की। उन्होंने साधारण ग्रामीणों और कृष्णलीला के चित्र बनाए और महान ग्रंथों के दृश्यों, क्षेत्र की लोक कलाओं की महान हस्तियों को चित्रित किया और पशुओं को भी बड़े विनोदात्मक तरीके से प्रस्तुत किया।

उनकी पेंटिंग्स के मूल स्रोत पूर्व एशियाई लेखन शैली, पक्की मिट्टी से बने मंदिरों की कला वल्लरियों, लोक कलाओं की वस्तुओं और शिल्प परम्पराओं आदि थे जो उनके जन्म स्थान के प्रमुख कला परंपरा रही, जिनसे वे प्रभावित होते रहे। 1920 के बाद के वर्षों में उन्होंने ऐसे चित्र बनाये जो खुशनुमा ग्रामीण माहौल को प्रकट करते थे और जिनमें ग्रामीण वातावरण के भोले और स्वच्छंद जीवन की झलक थी। उन्होंने ग्रामीण दृश्यों को लेकर कई कृतियों का सृजन किया जो लोगों को खुशियां दे सके। दुनिया भर में ख्याति मिलने के बाद भी उनकी जीवन शैली पूर्णतया भारतीय ही बनी रही। इसका असर उनकी पेंटिंग्स में साफ झलकता था।



1920 के ही दशक में उनके जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ आया जब राष्ट्रीय आंदोलन ने भी उनकी कला अभिव्यक्ति की नई शैली की खोज में योगदान दिया। यह एक ऐसी शैली थी जिससे वे आत्मीय व भावनात्मक रूप से जुड़ पाए। जैसे-जैसे वह मूल रूप-विधान और प्राथमिक रंगों से जुड़ते गए, उनकी कला अत्यधिक सृजनात्मक और प्रतीकात्मक होती गई। पाश्चात्य शैली को न अपनाते हुए उन्होंने भारतीय अजंता शैली के दो आयामी चित्रों की तरह रचना की। सपाट रंग, लाइनों को प्रमुखता और मुख्य चित्र के पार्श्व में फूलदार अलंकरण और चारों ओर सुंदर किनारों से सजे उनके चित्रों की धूम मच गई। वह युग यूरोपीय चित्रकारों का था जिसके अत्यधिक प्रतियोगी वातावरण में भारतीय होने के बावजूद उन्होंने अपने आप को सिद्ध कर दिखाया। जहाँ लोक भावपक्ष से ज्यादा तकनीकी पर जोर दे रहे थे। वे इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि 'भारतीय विषय' के बने भारतीय शैली के चित्र 'पश्चिमी परंपरा' से ज्यादा प्रेरणादाई हो सकते हैं। प्रेरणा के लिए उन्होंने जीवित लोक कला और आदिवासी कला का ध्यान पूर्वक अध्ययन किया। कालीघाट पेंटिंग उनके लिए सबसे ज्यादा प्रेरणादायक सिद्ध हुई। जो उनके चित्रों को अमर कर दिया। कोलकाता के 'गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट्स' से पढ़ाई के बाद उन्हें पोर्ट्रेट बनाने का काम

नियमित रूप से मिलता रहा पर राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रभाव से बंगाल में साहित्य और कलाओं में सभी तरह के प्रयोग होने लगे थे। इसके परिणाम स्वरूप पहले तीन दशकों में बंगाल की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में बहुत ज्यादा परिवर्तन आया। यही वो प्रभाव था जो जामिनी को राष्ट्रवाद के मुख्य धारा में जोड़ दिया भले ही क्यों न वह चित्रकला का माध्यम से हो। बंगाल के संथाल परिवार और उनकी आदि कला, काम करते ग्रामीण हस्तशिल्पी, प्राचीन अल्पना तथा पटुआ ने रूप एवं रेखा के प्रति उनकी प्रारंभिक रुचि जगाई। उनकी रेखाओं की लय आत्मा की लय के समान लगती है, जो उन्हें विशिष्ट बनाती है।

राष्ट्रवाद एक भावना है जिसे एक कलाकार अपनी कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इसमें उनकी संस्कृति, समाज, धर्म सभी शामिल होते हैं। 18 वीं शताब्दी में फ्रांस व्यक्ति की स्वतंत्रता का ध्येय को लेकर उपजा तथा विश्व मैत्री की भावना लेकर आरम्भ हुई थीं, किन्तु 19 वीं शताब्दी में यह विचार धारा राष्ट्रवाद तक सीमित हो गई। फ्रांस में इस क्रांति की सफलता ने अन्य देशों में भी अपनी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, साहित्य और कला के प्रति विशेष श्रद्धा और गर्व की भावना विकसित की।

सन्दर्भ

1. आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएं -विद्याधर महाराज
2. लेख - राम पुनियानी
3. रामानुजन ए . के . (2006): कलेक्टेड एसेज : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस , नई दिल्ली .
4. रामानुजन ए . के . (1991): 'टुवर्ड्स ए काउंटर सिस्टम : वीमेनस टेल '
5. <https://twitter-com/SinghMukeshKr>
6. साहित्य और समाजशास्त्रीय ख्रष्टि -मैनेजर पाण्डेय
7. कला के अंतर्दर्शन -र.वि.साखलकर
8. भारतीय कला के मूल स्रोत -डॉ. भानु अग्रवाल

गुरु गोबिंद सिंह के काव्य में राष्ट्रबोध की प्रतिध्वनि

डॉ. भूपिंदर कौर

श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

गुरु गोबिंद सिंह जी वैश्विक इतिहास के अद्वितीय पुरुष हैं। उनका व्यक्तित्व एक ऐसे हीरे की तरह है, जिसका हर पहलु चमकदार है। वे एक राष्ट्रनेता, यौद्धा, महान त्यागी, गुरु-चेला, संत-सिपाही, साहित्यकार, दूरदर्शी विचारक, समाज-सुधारक आदि अनेक गुणों के धनी थे। अखिल मानव जाति के संरक्षक गुरु गोबिंद सिंह अद्भुत एवं विलक्षण प्रतिभा संपन्न कवि थे। कवि का मुख्य कर्म है, अपने काव्य के माध्यम से समूची मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँधना तथा उसे अज्ञान की अंधकारमयी खाई की ओर अग्रसर होने से रोकना। गुरु गोबिंद सिंह ने इसी तत्व से प्रेरित हो सांसारिक अवस्थाओं से ऊपर उठकर, लौकिक प्रलोभनों को त्यागकर, राष्ट्रीय हित को ध्यान में रख, लोकमंगलार्थ काव्य-संरचना कर उसका उपयोग मानव-समाज की सुरक्षा चट्टान के रूप में किया। अपने देश, धर्म और जाति के सम्मान पर आघात होता देखकर उनका वीर व्यक्तित्व आलोड़ित हो, सिंहनाद करने के लिए तत्पर हो गया। वे जिस प्रकार शस्त्रों का उपयोग करने में कुशल हस्त थे, उसी प्रकार लेखनी का वार भी अत्यंत पटुता से करते थे। उनका साहित्य एक ओर अतीत की गौरवशाली परंपरा से सम्बद्ध है, तो दूसरी ओर तद्युगीन यथार्थ की सूक्ष्म दृष्टि से उद्बुद्ध है। गुरु परंपरा से निर्गुणोंपासना एवं भक्ति भावना को विरासत में प्राप्त कर दशम गुरु ने जन-जन में एक ज्योति की प्रतिष्ठा स्थापित करने का सफल प्रयास किया। संस्कृति के प्रति विशेष अभिरुचि एवं दृढ़ आस्था होने के कारण उन्होंने मानव जीवन में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के संचार के लिए तथा मृतप्राय जड़ जनता को गति प्रदान करने के लिए उन्हीं की पौराणिक पृष्ठभूमि का भरपूर प्रयोग किया। समाज की गलित-खंडित मान्यताओं तथा विषमताओं का न केवल उपयोग किया, खंडन किया, वरन अपने काव्य के माध्यम से विभिन्न मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की।

यही कारण है कि जहाँ उनके काव्य में ब्रह्म के निर्गुण, निराकार रूप और सगुण रूप का वर्णन मिलता है, वहीं अत्याचारों, अनाचारों का दमन करने वाली ओजस्वी शमशीर की झंकार भी स्पष्ट सुनाई देती है। मुगल शासकों एवं पड़ोसी राजाओं से युद्ध करते रहने के कारण दशम गुरु का अधिकांश समय रणक्षेत्र में व्यतीत होता था, किंतु इन संघर्षमय स्थितियों के बीच भी उनका साहित्य-प्रेम कभी नहीं हुआ। उनकी अलौकिक काव्य प्रतिभा एक दिव्य प्रकाश पुंज के समान प्रकट हुई और जन-जन के हृदय में अपनी झलक व्याप्त कर गई। अतः यह कहने में जरा भी संकोच नहीं होता कि गुरु गोबिंद सिंह हिंदी के यशस्वी कवियों में अक्षुण्ण स्थान रखने वाले अमर गुरु कवि हैं। अपितु प्रौढ़काव्य की प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले साहित्यकोश में अन्य कवि नक्षत्रों के समान ध्रुव-पद की प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले दशमगुरु का काव्य उनकी अद्भुत कलात्मक शक्ति का द्योतक है।¹

“हिंदी साहित्य के रीति काल में जब केवल आत्मप्रदर्शन हेतु काव्य को अधिक-से-अधिक जटिल बनाकर लक्षण ग्रंथों का प्रणयन किया जा रहा था, अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए उनकी झूठी वीरता का गान अतिशयोक्तिपूर्ण रूप से हो रहा था, सुरा और सुंदरी के नशे में मग्न राजा अपनी रुचि के अनुरूप शृंगार रस से सित्त काव्य रचना करने वाले कवियों को ही प्रश्रय प्रदान कर रहे थे, तब गुरु गोबिंद सिंह ने भक्ति भाव एवं राष्ट्रीयता की भावना को अपने काव्य का मुख्य स्वर घोषित किया।”²

दशमकथा भागवत की भाखा करी बनाइ।

अवर वासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध के चाइ॥

“युगचेतना से अनुप्राणित हो एवं अत्याचारियों एवं विधर्मियों का समूल नाश करने के उद्देश्य से प्रेरित हो उन्होंने अनेक प्रसिद्ध काव्य पुस्तकों की रचना की। यह सभी रचनाएँ दशम ग्रंथ के अंतर्गत संग्रहित हैं। उन्होंने जिस प्राणवान सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय-भावना, राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं धर्मरक्षा का भाव पंजाब के जन-जीवन में जागृत किया था, उससे संपूर्ण दशम ग्रंथ आंदोलित है।”³

विभिन्न अवतार कथाओं का वर्णन करने के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य हिंदू जनता को अत्याचारों एवं अनाचारों का दमन करने के लिए प्रेरित करना था। इसके लिए उन्होंने उन्हीं अवतारों की गाथाओं को अपने काव्य का माध्यम बनाया जिसमें हिंदू

जनता की पूर्ण आस्था थी तथा जिनके अध्ययन से जनता को अधर्म के नाश एवं धर्म की स्थापना की शिक्षा मिलती थी। ऐसा करके उन्होंने कहीं भी सिख पंथ की मान्यताओं का खंडन नहीं किया।

गुरु जी द्वारा रचित दशम ग्रंथ न केवल सिख धर्म बल्कि साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें 17 रचनाएँ हैं जापु साहिब, अकाल उस्तति, विचित्र-नाटक, चंडी-चरित्र (प्रथम) चंडी-चरित्र (द्वितीय), वार श्री भगवती जी की (चंडी दी वार), ज्ञान प्रबोध, चौबिस अवतार, मेहंदी मीर, ब्रह्मा अवतार, रुद्र अवतार, शब्द हजार, स्फुट सवैये, शस्त्रनाममाला, चरित्रोपाख्यान, जफरनामा, हिकायतें। अकाल उस्तुति गुरुजी की अध्यात्मपरक दूसरी रचना है। अकाल की स्तुति के साथ यह सामाजिकता से भी जुड़ा हुआ है। बाह्याडंबर, मिथ्याचार, भौतिक संपन्नता का खंडन, विशुद्ध भक्तिभाव द्वारा ईश्वर प्राप्ति का संदेश देने के कारण अकाल स्थिति का महत्व और भी बढ़ जाता है। गुरुजी ने आँखें बंद कर बगुले की भाँति ध्यान लगाने वालों को गले में लिंग लटकाने वालों को लताड़ा है।

कहाँ भयो दोउ लोचन मूँद के बैठ रह्यो बक ध्यान लगायो,
न्हात फिरयो लिए सात समुंद्रन लोक गयो परलोक गवायो।
बासु कियो विखियान सौ बैठ के ऐसे ही ऐसे सु बैस बितायो।
साच कहो सुन लेहु सभै जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो।”

गुरुजी ने झूठे आडंबरों को त्यागकर विशुद्ध हृदय से ईश्वर भक्ति में तल्लीन होने का उपदेश दिया है। विषय वासना में लिप्त रहने से भगवत्कृपा प्राप्त नहीं होती, वरन वह तो ज्ञान, भक्ति और कर्म के मंजुल समन्वय से प्राप्त होती है।

विचित्र नाटक यह एक बृहद रचना है। इसके दो खंड हैं। प्रथम भाग में गुरु जी के जीवन से संबंधित है, इसे आत्मकथा भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें आत्मकथा की भाँती सत्यता, यथार्थता एवं सहजता है। “तटस्थ आत्मनिरीक्षण की दृष्टि से यह एक आदर्श, उत्कृष्ट एवं प्रभावपूर्ण आत्माभिव्यक्ति एवं विशिष्ट रचना है। इस रचना का उद्देश्य केवल मात्र आत्माभिव्यक्ति एवं आत्मप्रकाशन नहीं है, शहीद के पुत्र और शहीदों के पिता योद्धा गुरु गोबिंद सिंह ने इस काव्य ग्रंथ की रचना भी असहाय एवं निराश जनता में जातीय स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम एवं धर्म रक्षा के उच्च भावों को जागृत एवं उत्तेजित करने के महान उद्देश्य से की है।”¹⁴

जहाँ राष्ट्रीयता होती है, राष्ट्रप्रेम होता है, वहाँ संस्कृति, धर्म, दर्शन, समाज, लोक परंपरा, लोक व्यवहार, इतिहास कला आदि सभी के साथ स्वाभिमान जुड़ा होता है और यह सभी बातें गुरुजी के साहित्य में हमें दिखाई देती है। भारत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक राष्ट्र तो है पर इसमें विभिन्न जाति, धर्म, संस्कृति, समाज, बोली, वेशभूषा, संप्रदाय के लोग रहते हैं। भारत की राष्ट्रीय चेतना सभी संस्कृतियों की मूल देन है। भारत में सर्व धर्म समभाव की प्रवृत्ति रही है। हर एक को अपने धर्मानुसार आचरण की पूरी आजादी है। कोई भी किसी के इन विचारों पर अंकुश नहीं लगा सकता। न ही धर्म बदलने के लिए मजबूर कर जोर-जबरदस्ती कर सकता है। जहाँ पर किसी के अधिकार का हनन है, जुल्म जबरदस्ती हुई उसके लिए वे वीर-सैनिक की भाँति खड़े हो उसकी रक्षा करते हैं। तत्कालीन जनता अत्याचारों को सहते हुए अपना आत्मविश्वास खो बैठी थी उनमें नया विश्वास और कर्मठता पैदा करने हेतु गुरुजी ने विचित्र-नाटक की रचना की।

कवि का मूल लक्ष्य इन अवतार कथाओं में भी धर्म-युद्ध का चाव ही है। इसमें ब्रजभाषा का परिमार्जित रूप मिलता है। यह रचना आत्मचरित्र काव्य की कोटी में अक्षुण्ण स्थान रखती है। गुरुजी ने विभिन्न असुरों के संग जूझती चंडिका अनेकविध चित्रण किया है। कहीं उसकी कराल मूर्ति, कहीं उसके ललाट से उपजती ज्वाला, कहीं उसके अस्त्र-शस्त्र तथा कहीं काली और चंडी का सम्मिलित चित्रण किया है।”

‘वीरन के करते छुट तीर सु चण्डका सिधनिजिउ भमकारी।’

“दशम गुरु के व्यक्तित्व में राष्ट्र-नायक, भक्त, वीर-योद्धा, कुशल सेनानी, मानवीयता, संत- प्रवृत्ति, बलिदान की भावना, साहित्य सर्जक एवं संरक्षक आदि गुणों का समन्वय स्पष्ट दिखाई देता है। इन्होंने राष्ट्र-धर्म और राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षार्थ ‘भक्ति’ और ‘शक्ति’ के समन्वय द्वारा अन्याय, अत्याचार, अनैतिकता और अनास्था के विरुद्ध धर्म-युद्ध किया तथा इस युद्ध में शस्त्र के साथ शास्त्र (साहित्य) अर्थात् तलवार के साथ कलम के सहयोग द्वारा उन्होंने विजयश्री को प्राप्त किया। इस धर्म-युद्ध में उन्होंने स्वयं शक्ति की देवी चंडी से यह वरदान मांगा।”¹⁵

‘देह शिवा बर मोहि इहै शुभ करमन ते कबहूँ न टरौ।

न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं निसचौ कर आपुनी जीत करौ।

अरु सिख हों आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौ।

जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मैं तब जूझ मरौंम

“सिख गुरुओं में वे पहले ऐसे गुरु थे, जिन्होंने सैनिक जीवन अपनाया, जिसका कारण पिता की मृत्यु के प्रतिशोध की भावना तो थी ही, मुगल आततायी शासन से अपने अनुयायियों को मुक्त कराने का भाव भी था। क्योंकि वृ सैनिक होने के साथ-साथ एक संत भी थे, उनके द्वारा लड़े गए युद्ध मात्र आत्मरक्षा के लिए थे, न कि किसी राज्य को हस्तगत करने अथवा

अन्य किसी प्रकार के निहित स्वार्थ के उद्देश्य से प्रेरित। युद्धों में भाग लेने के बावजूद धर्म प्रचार के कार्य को भी उन्होंने पूरी निष्ठा से किया। उन्होंने आर्थिक दृष्टि से विपन्न एवं जरूरतमंद लोगों की सदैव सहायता की।... धर्म प्रचार किया और स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिए। विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोगों को उन्होंने प्रेम से रहने का उपदेश दिया।⁶ ज्ञान-प्रबोध रचना में संसार की नश्वरता बताकर ब्रह्म का बोध कराने के लिए इसकी रचना की गई। यह एक दार्शनिक रचना है।

चौबिस-अवतार - गुरु गोविंद सिंह ब्रह्म के निर्गुण रूप में आस्था रखते थे। परंतु मध्यकालीन स्थितियों को देखकर जनता को पुनः खड़ाकर उनमें आत्मविश्वास भर, उन्हें मुगल सत्ता से टक्कर लेने के लिए तैयार करना था। इसलिए हिंदुओं को उनके देवी-देवताओं के माध्यम द्वारा इस दृष्टि से तैयार करना था। रचना के आरंभ में निर्गुण ब्रह्म द्वारा सगुण रूप धारण करने का अभिप्राय बताया है-

जब-जब होत अरिष्टअपारा। तब-तब देह धरत अवतारा॥

काल सभन के पेख तमासा। अंतह काल करत है नासा॥⁷

स्फुट कवित - गुरुजी सांप्रदायिकता, वर्ण परंपरा के कट्टर विरोधी थे। संपूर्ण मनुष्य जाति को एक समझते थे। वे कहते हैं कि परमात्मा ने वर्ण भेदों में कोई अंतर नहीं किया तो हम उस में अंतर करने वाले कौन हैं? परमात्मा हमारे इस काम के लिए कभी प्रसन्न नहीं होंगे। परमात्मा एक है। इसलिए मुसलमानों से भी उनकी जाति दुश्मनी नहीं थी। सिर्फ अज्ञानता आड़े आ रही थी। जिससे टकराहट पैदा हो रही थी। अच्छाई और बुराई की टकराहट थी।

जिस देवी को उन्होंने सृष्टि की सर्जक, संहारक तथा दुष्ट-विनाशक एवं संत रक्षक कहा है वह अकाल-पुरुष से भिन्न, उससे पृथक किया कोई उत्तम सत्ता रखने वाली देवी या शक्ति नहीं है। वह अकाल-पुरुष का प्रतीक बन कर ही आई है, अकाल पुरुष की ही बोधक है। उसमें अभेद-स्वरूपा है।⁸ इस तथ्य को उन्होंने और अधिक स्पष्ट करते हुए 'विचित्र-नाटक' का वह उद्धरण प्रस्तुत किया जा सकता है, जहाँ उन्होंने 'कालका' को स्वयं महाकाल का कहा है जैसे -

तह हम अधिक तपस्या साधी। महाकाल कालका आराधी॥

अतः स्पष्ट है कि गुरु जी की देवी भावना किसी भी भाँति गुरमत विरोधी नहीं है। उनकी देवी असुरों के संहारक और संतों की रक्षक है, वह 'अकाल-पुरुष' है। वस्तुतः गुरु गोविंद सिंह की शक्ति-भावना उनकी युग-चेतना, राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक-सचेतन और उजागर वीर-भावना की परिचायक है और सिखमत की आध्यात्मिक चिंतनधारा से सर्वथा अनुकूल है।⁹

'यह बात निश्चित है कि गुरु गोविंद सिंह जी ने लोगों से तलवार की पूजा करने की अपील की थी, क्योंकि उस समय तलवार ही एक ऐसी देवी थी जो उन्हें बचा सकती थी।'¹⁰

डॉ अनूप सिंह के कथनानुसार दशम ग्रंथ को अगर ध्यान से पढ़ें तो पता चलेगा कि गुरुजी ने तलवार को भगवती, दुर्गा, ब्रह्मा, शिव, राम, किशन आदि का सृजन करने वाली शक्ति का रूप माना है। इसे और भी अधिक स्पष्ट रूप में देखना चाहे तो इस छंद को ध्यान से पढ़ें।

तैं ही दुरगा साज के दैंता नाश कराइया।

तैथौं ही बल राम लै लाल बाणा दहसिर धाईया॥

तैथौं ही बल किशन लै कंस केसी पकड गिराइया॥¹¹

मुगलों के अत्याचारों से त्रस्त जनता इतनी भयभीत हो गई थी कि अपना आत्मविश्वास, आत्म-सम्मान सब कुछ खो बैठी थी। ऐसी मृतप्राय जनता के हृदय में फिर से जीने की उमंग पैदा करना, उनकी शक्ति और चेतना को फिर से जगाना, उनमें दुश्मन पर टूट पडने की हिम्मत जगाना, बहुत ही कठिन कार्य था। पर गुरु गोविंद सिंह ने हिंदू जनता को उन्हीं के देवताओं का उदाहरण देकर समझाया। जिस प्रकार राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। रावण जो अत्यंत बलशाली था। जिसके पास विशाल चतुरंग सेना सुसज्जित थी। जिनके पुत्रों के पास असीम शक्तियाँ थी और राम के पास तो वानर थे, फिर भी राम ने रावण पर विजय प्राप्त की।

30 मार्च, सन् 1699 की वैसाखी सिक्खों के इतिहास में अविस्मरणीय दिन है। हजारों की तादाद में लोग आनंदपुर साहिब पहुँचे थे। इस दिन गुरु जी ने विशेष संस्कार विधि "पाहुल" द्वारा खालसा पंथ की स्थापना की। पंज प्यारों में एक खत्री और चार निम्न श्रेणी के महापुरुष थे। पहले उन्हें अमृतपान करवाकर केसरी परिधान में सजाया और उन्हें ऐसा रूप दिया जो लाखों की भीड़ में भी नजर आ जाए। फिर उन्हीं को गुरु मानकर स्वयं भी उनसे अमृत पान किया और गोविंद राय से गोविंद सिंह बने। जब पाँच प्यारों ने कहा कि हमने तो अपना शीश अर्पण कर अमृत पान किया है, आप क्या अर्पित करोगे? तब गुरु जी ने कहा कि मैं अपना पूरा परिवार ही धर्म पर वार दूँगा। इस तरह अपने शिष्यों को सिंघों में परिवर्तित कर भक्ति को शक्ति और संत सेवकों को सिपाही बना दिया, खालसा बना दिया।

सिख धर्म के प्रथम गुरु नानक देव जी ने जिन सिद्धांतों और विचारों की नींव रखी थी उन्हें विचारों को अन्य गुरुओं ने आगे बढ़ाया। गुरु गोविंद सिंह में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उनका विराट व्यक्तित्व और कृतित्व इस बात का साक्षात् प्रमाण है। इसी भावना को अंतिम सोपान तक उन्होंने पहुंचाया और 'खालसा' पंथ की स्थापना की। एक ऐसा वर्ण

जिसमें ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं था। निम्न जाति के महापुरुष पुरुष पंच प्यारे थे। जिनसे गुरु जी ने स्वयं अमृतपान किया। यह बहुत बड़ी बात थी कि जो चले थे, उन्हें अपना गुरु बनाया।

वाह प्रगटिओ मरद अगंमडा, वरियाम अकेला।

वाह-वाह गोबिंद सिंह आपे गुरु चेला।। -भाई गुरुदास सिंह।

संपूर्ण विश्व में ऐसा उदाहरण कहीं देखने को नहीं मिलेगा। धर्म, जाति, कुल, गोत्र, ऊंच-नीच इन सबमें मानव-जाति उनके लिए महत्वपूर्ण हो गई थी। राष्ट्रीयता का इससे बड़ा उदाहरण कहाँ मिलेगा।

मानस की जात सबै ऐकै पहचानबो। -गुरु गोबिंद सिंह

उन्होंने अपनी समझ, सूझबूझ से खालसा पंथ की स्थापना कर भारत में ऐसे सूर्य का उदय कर दिया जो क्षीण हो रहा था। डरी, सहमी और मुरझायी कौम में नयी जान फूँक भक्ति के साथ शक्ति, बाणी के साथ बाणा, संत के साथ सिपाही वाले रूप को आकार दे दिया। गुरु गोबिंद सिंह जी ने 'खालसा मेरो रूप है खास' के अनुसार ऐसे सिक्ख का रूप सजा दिया जो मानवता के इतिहास में अमर हो गया। गुरुजी ने खालसा को अपना खास रूप कहा और ये भी कहा मैं उस खालसे में ही निवास करता हूँ जो खालिस है। उसमें तेज भी तब तक होगा जब तक वह खालिस है। जब वह अपने रास्ते से हटकर आडंबरों के रास्तों पर चल पडता है तो वह तेजहीन हो जाता है।

खालसा मेरो रूप है खास। खालसा महि हौं करों निवास।

खालसा मेरो मुख है अंगा। खालसा के हौं सद संग्गा। -गुरु गोबिंद सिंह

वे ऐसे संत, सिपाही थे जिन्होंने मानवता के अधिकारों तथा धर्म रक्षा हेतु अपना सर्वस्व वार दिया। जब मुस्लिम सत्ता जोर-जबरदस्ती से हिंदुओं पर अत्याचार कर रही थी, और उन्हें साम, दाम, दंड, भेद का अनुसरण कर मुस्लिम बनाने पर आमदा थी, उस समय कश्मीरी ब्राह्मणों की धर्मरक्षा हेतु गुरु तेग बहादुर जी आगे आए। वे बोले कि इस समय किसी महात्मा को बलिदान देना होगा। पास खडे गोबिंद राय बोल उठे आपसे बड़ा महात्मा कौन है? तब वे मात्र 9 वर्ष के थे। पूत के पाँव पालने में दिख जाते हैं। यह कहावत यहाँ बिल्कुल सही लागू होती है। उनका यही जज्बा उम्र के साथ बढ़ता गया। सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'खालसा' पंथ की स्थापना थी। खालसा का पहला धर्म है कि वह देश, धर्म और मानवता की रक्षा के लिए तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर कर दे। निर्धनों, असहायों और अनाथों की रक्षा के लिए सदा आगे रहे। वही खालिस है, वही सच्चा खालसा है। उस समय कुछ धर्म ऐसे थे जिनमें वर्ण व्यवस्था का पालन किया जाता था। गुरु गोबिंद सिंह जी की सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्होंने निम्न जाति के लोगों को भी अपने से ऊँचा दर्जा देकर गुरु के स्थान पर रखा और उनसे अमृत पान किया। पूरे विश्व इतिहास में ऐसी बात हमें कहीं भी नहीं मिलेगी।

गुरुनानक देव जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह तक सभी गुरुओं ने इस बात का अनुसरण किया। धार्मिक स्वातंत्र्य सभी को मिलना चाहिए। किसी पर जोर जबरदस्ती ना करें। सभी को अपने धर्म और संस्कृति के अनुसार जीवन जीने का हक मिलना चाहिए। अपनी गुरुबाणी से उन्होंने इसका प्रचार और प्रसार किया।

वाहेगुरू जी का खालसा। वाहेगुरू जी की फतेह।

खालसा ईश्वर का रूप है और ईश्वर की विजय सुनिश्चित है।

गुरु गोबिंद सिंह ने औरंगजेब को जफरनामा लिखकर भेजा। अपनी जीत और औरंगजेब की नीतियों के बारे में लिखा। गुरु जी ने इसमें उसे उनकी जिंदगी का शीशा दिखा दिया। इसे पढ़कर अंहकारी औरंगजेब अपने अपराध बोध से ही खत्म हो गया। जिससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि कलम की धार तलवार से भी ज्यादा ताकतवर है। शहीदी के संबंध में लिखा है कि मेरे चार पुत्र शहीद कर दिए गए तो क्या हुआ? मेरा पाँचवा पुत्र "खालसा" अभी जीवित है। इससे बड़ी राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम की भावना किसी और में थी? उन्होंने फारसी में लिखा-

चिहा शुद कि चूँ, बचगां कुशतह चार।

कि बाकी बमांदशत, पेचिदह मार। -जफरनामा (गुरु गोविन्द सिंह)

इन पुत्रन के सीस पर, वार दिए सुत चार।

चार मुए तो क्या हुआ? जब जीवत कई हजार।

उन्होंने मनुष्य और मनुष्य में प्रेम और सहयोग की भावना को जगा कर उन्हें राष्ट्र के प्रति समर्पित योद्धा बना दिया। आज के युग में जब आदर्श और संस्कार के मूल्यों का क्षरण हो रहा है, ऐसे समय में गुरु गोबिंद सिंह की वाणी ही उसे रोक कर वर्तमान समाज को नई दिशा दे सकती है। इसलिए राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति गुरु गोबिंद सिंह के अवदान के प्रति भारत सदैव ऋणी रहेगा। आज सिक्ख गुरुजी की दिखाए रास्ते पर चल रहे हैं। जरूरतमंद लोगों की मदद के लिए हर वह काम कर रहे हैं जिस पर इंसानिअत को नाज हो। अपने गुणों, सेवा, त्याग, विनम्रता, दान धर्म, दूसरों के धर्म के प्रति सम्मान की भावना के कारण वह उन्हें नई ऊंचाइयों को छू रहे हैं।

संदर्भ

1. चंद्रकांत बाली: पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 270
2. डॉ. जोधसिंह: दशम ग्रंथ सटीक, द्वितीय भाग पृष्ठ 405
3. डॉ. जय भगवान गोयल गुरुमुखि लिपि में हिंदी साहित्य पृष्ठ 46
4. डॉ. जय भगवान गोयल गुरुमुखि लिपि में हिंदी साहित्य पृष्ठ 49
5. डॉ. हरीश अरोड़ा : गुरु गोबिंद सिंह के काव्य में राष्ट्रीय अस्मिता, पृष्ठ 31
6. डॉ. वीना अग्रवाल: गुरु गोबिंद सिंह और खालसा पंथ की स्थापना, पृष्ठ 52
7. डॉ. जोधसिंह: दशम ग्रंथ सटीक, प्रथम भाग पृष्ठ 369
8. जय भगवान, गोयल गुरुमुखी लिपि में हिंदी साहित्य, पृष्ठ 95
9. जय भगवान गोयल गुरुमुखी लिपि में हिंदी साहित्य पृष्ठ 96
10. डॉ. अनूप सिंह दार्शनिक यौध्वा गुरु गोबिंद सिंह पृष्ठ 48
11. वही पृष्ठ 48

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'के.के. पब्लिकेशन्स' से प्रकाशित पुस्तक



हिन्दी कविता की राष्ट्रवादी दृष्टि

महेन्द्र प्रताप सिंह

श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी कविता राष्ट्रवाद के विविध वैचारिक आयामों से आप्लावित है। वर्तमान संदर्भों में राष्ट्रवाद पश्चिमी अवधारण है, जिसका भारत में प्रादुर्भाव अंग्रेजों के आगमन के साथ हुआ। वस्तुतः वर्तमान भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजी राष्ट्रवाद की प्रतिक्रियास्वरूप आरंभ हुआ। अंग्रेजों ने राष्ट्रवादी उपनिवेशवादी विचारों की पूर्वपीठिका में भारत सहित अनेक देशों को गुलाम बनाया। अंग्रेजों के राष्ट्रवादी उपनिवेशवादी शोषण, अत्याचार और अन्याय की समान परिस्थितियों ने भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक-दूसरे के निकट ला दिया। अंग्रेजों के आगमन के समय भारतवर्ष कई राजाओं के अधीन छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, जो एक दूसरे के साथ निरंतर चलने वाले युद्धों में लिप्त रहते थे। सांस्कृतिक रूप से यह भूखण्ड एकरूप अवश्य था, किन्तु उनके शासकों के बीच वर्तमान राष्ट्र जैसी कोई भावना विद्यमान नहीं थी। एक-दूसरे पर विजय हासिल करने के लिए वे इस सांस्कृतिक एकरूप भूखण्ड के बाहर के शासकों की भी मदद लेने से नहीं हिचकते थे। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे इन राजाओं को पराजित कर उनकी रियासतों को एक ही शासन के अधीन कर दिया और शोषण तथा दमन का चक्र आरंभ कर दिया।

सांस्कृतिक रूप से पहले से ही एकसूत्र में बँधे इस भूखण्ड के निवासियों के लिए यह स्वाभाविक ही था कि पश्चिमी शोषणकारी राष्ट्रवाद के शिकार बने वे स्वयं की पहचान एक राष्ट्र के रूप में करते। उनकी दरिद्रता और क्लेश के पीछे एक ही शत्रु था और विपन्नता से मुक्ति तथा परतंत्रता की बेड़ियों को काट फेंकने की उनकी एक ही लड़ाई थी। राष्ट्रवादी शोषण के शिकार लोगों को राष्ट्रवादी अस्मिता में ही अपनी मुक्ति दिखाई दी। इस प्रकार सांस्कृतिक तौर पर एकरूप वे लोग सहज रूप से ही राष्ट्रवाद के पश्चिमी रूप में निबद्ध हो गए। भारतीय राष्ट्रवाद की यही भावना हिन्दी साहित्य में विविध रूपों में परावर्तित हुई।

भारतीय राष्ट्रवाद का उदय तथा हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ कमोबेश समकालीन परिघटनाएँ हैं। इस काल में जहाँ एक ओर भारतीय राष्ट्रवाद का स्वरूप विकसित हो रहा था, तो दूसरी ओर हिन्दी साहित्य अभिव्यक्ति की राहें तलाश रहा था। इन दोनों ही आरंभिक परिस्थितियों में भावोच्छ्वास के आधिक्य की संभावना होती है। भारतेन्दुकालीन हिन्दी कविता में राष्ट्रवाद की सरल अभिव्यक्तियाँ हैं, जिनमें भारत की दुर्दशा से उत्पन्न पीड़ा, दुर्दशा के कारणों का वर्णन, संकट से ना उबर पाने की विवशता, अतीत का गौरव गान, मातृभूमि का मानवीकरण, उसके रूप की प्रशंसा तथा उसकी दुरावस्था पर व्याकुलता आदि। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता हिन्दी साहित्य की आरंभिक राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। पराधीन भारत के कष्टों को देखकर कवि-हृदय करुण स्वर में कृंदन कर उठता है -

“रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।

हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥”¹

अंग्रेजों के अधीन भारतवर्ष की कल्पना वह गुलामी की जंजीरों में जकड़ी भारत माता के रूप में करता है और उसकी दयनीय एवं निस्तेज अवस्था का वर्णन करता है -

“क्यों माता मुख मलिन है रही जिय में कहाँ उदासी।

क्यों घर छोड़ि त्याग आभूषण बैठी है बनवासी॥

कहाँ गई वह मुख की शोभा कित वह तेज गँवायो।

कित वह श्री बल बुधि उछाह सब कुछ नहीं आज लखायो॥”²

भारत माता की इस कल्पना में उसके संपन्न दिनों के सौंदर्य और शोभा की कल्पना भी शामिल है, जिसका विचारकर कवि और भी दुःखी होता है। भारतेन्दु की कविता में भारतवर्ष के अतीत का यह गौरव बार-बार प्रकट होता है -

“सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।

सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥

सबके पहिले जा रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥

X X X

जहाँ भए शाक्य हरिचंद नहुष ययाती।
जहं राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती॥
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥”³

भारतेन्दु की कविता में भावोच्छ्वास का महत्व इस तथ्य से बढ़ जाता है कि भारतेन्दु भारत की दुर्दशा के कारणों से भली-भाँति परिचित हैं। वे जानते हैं कि भारत प्राकृतिक या स्वाभाविक घटनाओं के कारण निर्धन नहीं है, बल्कि वह अंग्रेजों की लूट के कारण विपन्नता का दंश सह रहा है -

“अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥”⁴

स्थूल दुःखों, भावोद्रेक और अतीत के गर्व की यह भारतेन्दुकालीन प्रवृत्ति हिन्दी कविता के विभिन्न कालखण्डों में बार-बार उभरी -

“हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भण्डार है,
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है॥”⁵

“हम खेले-कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में॥”⁶ (मैथिलीशरण गुप्त)

“भारति जय विजय करे!
कनक-शस्य कमल धरे!
लंका पदतल-शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे!”⁷

“आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनि-पतंजलि-व्यास ऋषियों का,
मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
तेरा बढ़ाया है मान
राम-कृष्ण-भीमार्जुन-भीष्म नरदेवों ने
तुमने मुख फेर लिया।”⁸

(-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला)

किन्तु उपरोक्त प्रवृत्ति की परवर्ती कविता में कवियों की नई दृष्टि और संवेदनाएँ इन भावों को तत्कालीन वर्तमान संदर्भों से समर्पित करते हुए प्रस्तुत करती हैं। ऐसी नवीन दृष्टि से युक्त ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पौराणिक रचनाओं में जयशंकर प्रसाद की कामायनी, मैथिलीशरण गुप्त की साकेत, जयद्रथवध आदि, रामधारी सिंह ‘दिनकर’ की कुरुक्षेत्र, रश्मिथी आदि और सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ की राम की शक्तिपूजा आदि शामिल हैं, जिनमें उदात्त जीवनमूल्यों के साथ रचनाओं के समकालीन समाज की विसंगतियों, विषादों, आशाओं और आकांक्षाओं का चित्रण है। साकेत में मैथिलीशरण गुप्त राम की उक्ति के द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं --

“भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया
नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया,
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।”⁹

सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ जब सरस्वती वंदना करते हैं, तब भारत में स्वतंत्रता की पावन ध्वनि और नवीन अमृत मंत्र भरने

की प्रार्थना करते हैं --

“वर दे वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतन्त्र रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे!”¹⁰

‘कुरुक्षेत्र’ में रामधारी सिंह ‘दिनकर’ भीष्म पितामह के द्वारा युधिष्ठिर को भारतभूमि की सेवा के लिए प्रेरित करते हैं--
“क्षत-विक्षत है भारतभूमि का अंग-अंग बाणों से,
त्राहि त्राहि का नाद निकलता है असंख्य प्राणों से।
कोलाहल है, महात्रास है, विपद आज है भारी,
मृत्यु-विवर से निकल चतुर्दिक तड़प रहे नर-नारी।
इन्हें छोड़ वन में जाकर तुम कौन शान्ति पाओगे?”¹¹

हिन्दी की राष्ट्रवादी कविता में राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन जैसे महानायकों का उल्लेख बार-बार होता है, किन्तु उसका मुख्य स्वर हिन्दू राष्ट्रवाद का नहीं है। यद्यपि कुछ कवियों की दृष्टि हिन्दू धर्म के उत्थान तक संकीर्ण रही है, किन्तु मुख्यधारा की प्रमुख प्रवृत्ति असाम्प्रदायिक है। इसमें राम, कृष्ण आदि का वर्णन भूतकाल में विलीन हो चुकी गौरवशाली संस्कृति के गान के रूप में आता है। प्रायः सभी प्रमुख कवि हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के बजाय एक उदात्त धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की कल्पना करते हैं, जिसमें सभी धर्मों के लोग मिलजुलकर रहें -

“खोजो टीपू सुल्तान कहाँ सोये हैं?
अशफाक और उसमान कहाँ सोये हैं?”¹²

साम्प्रदायिकता के स्थान पर यहाँ मानवता का उद्घोष सुनाई देता है। सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ लिखते हैं -

“नहीं आज का यह हिन्दू, आज का मुसलमान,
आज की यह रूपरेखा, नहीं यह कल्पना,
सत्य है मनुष्य, मनुष्यत्व के लिए।”¹³

मैथिलीशरण गुप्त भी धार्मिक भेदभाव को अस्वीकार कर धर्म पर मानवता की श्रेष्ठता स्थापित करते हैं -

“हिन्दू-मुसलमान कोई हो, जो सच्चा है वही मनुष्य,
देव और दानव दोनों ही बन सकता है यही मनुष्य।”¹⁴

जिस भावावेशयुक्त राष्ट्रवादी कविता का उल्लेख किया गया है, वह जनजागृति के लिहाज से उपयोगी और महत्वपूर्ण है, किन्तु इस कविता में अंग्रेजी शासन के शोषण, गरीबी, अशिक्षा, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, सामंतों और महाजनों के दुष्चक्र में फँसी जनता के वास्तविक संघर्षों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति नहीं थी। परवर्ती काल में गाँधी जी के बहुआयामी और अहिंसक आंदालनों तथा प्रगतिशील विचारधारा के प्रभाव से हिन्दी कविता की वायवीय दृष्टि यथार्थ की भूमि पर केन्द्रित होती है। वहाँ आम जनजीवन के चित्र तथा संघर्ष की झलक प्रस्फुटित होती है। अंग्रेजों के विरोध और भर्त्सना के अतिरिक्त वहाँ आत्मालोचन की सूक्ष्म दृष्टि उत्पन्न होती है। मजदूरों और किसानों के संघर्ष और नए समाज के निर्माण का संदेश सुनाई पड़ता है -

“उठो, उठो ओ नंगो भूखो
ओ मजदूर किसान उठो
इस गतिमय मानव समूह के
ओ प्रचंड अभिमान उठो
शक्तियों के आदर्श तुम्हारे
मूर्त रूप धर आये हैं
नव समाज के नवल सृजन का
नया संदेश लाये हैं।”¹⁵

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास और हिन्दी कविता की परिपक्वता के साथ उसमें राष्ट्रीयता की सूक्ष्म अनुभूतियाँ, व्यापक दृष्टि और गहन भावों की अभिव्यंजना होने लगती है। स्वतंत्रता के पश्चात गरीब जनता के दुःख-दर्द-अभावों और आशाओं-आकांक्षाओं को सामंती और पूँजीवादी प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में देखा गया। आजादी के कुछ ही दिनों बाद लिखी ‘जनतंत्र का जन्म’ नामक कविता में रामधारी सिंह ‘दिनकर’ बदले हुए समय के रथ का घर्घर नाद सुनाते हैं -

“सदियों की ठण्डी-बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।”¹⁶

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' अपरोक्ष रूप से पूँजीवाद की भर्त्सना करते हैं -

“अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पायी खुशबू, रंग-ओ-आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट!
बहुतों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा सहाया जाड़ा-घाम।”¹⁷

हिन्दी कविता की राष्ट्रवादी दृष्टि जड़ नहीं है। वह परिस्थितियों के साथ परिवर्तित होती है। भावुक उक्तियों के आरंभिक स्वरूप से विकसित होकर वह सूक्ष्म व्यंजनाओं में परिनिष्ठित होती है। मातृभूमि के अनुरागपूर्ण वर्णनों तथा अतीत के गौरव गानों की शृंखला में भी नवीन दृष्टि का उन्मेष एवं रचना के समकालीन नूतन निहितार्थ अभिव्यंजित होते रहे। इस गतिमान तथा परिवर्तनशील राष्ट्रवादी दृष्टि ने जहाँ परतंत्रता के काल में स्वतंत्रता संग्राम का मार्ग प्रशस्त किया, वहीं स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात आम जनता के अधिकारों के संघर्ष तथा उसकी आशा-आकांक्षाओं को स्वर दिये। जनभावनाओं से अनुप्राणित हिन्दी कविता की यह राष्ट्रवादी दृष्टि संपूर्ण समाज तथा नेतृत्व के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुई है।

संदर्भ

1. भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
2. भारत जननी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
3. भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
4. भारत दुर्दशा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
5. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त
6. मातृभूमि, मैथिलीशरण गुप्त
7. भारत, जय विजय करे, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
8. खण्डहर के प्रति, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
9. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त
10. वीणावादिनी वर दे, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
11. कुरुक्षेत्र, रामधारी सिंह 'दिनकर'
12. परशुराम की प्रतीक्षा, रामधारी सिंह 'दिनकर'
13. अणिमा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
14. गुरुकुल, मैथिलीशरण गुप्त
15. हम विषपायी जनम के, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
16. जनतंत्र का जन्म, रामधारी सिंह 'दिनकर'
17. कुकुरमुत्ता, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

Press and Genesis of Nationalism

Dr. Shruti Vip

Assistant Professor, Deptt. of History
P.G.D.A.V. College (Eve.) , Univ. of Delhi

Synopsis : An attempt has been made in the following paper to understand the role of press in mobilizing nationalist feelings during the colonial period. Print, language and literature can be described as instruments of power, propagation of ideas, protest, and for the formation of national, regional and community identities in modern societies. Print cannot be viewed only as a technology but as a phenomenon that operates in the socio-cultural contexts. During the colonial period, missionaries, scholars, socio-religious reformers, and nationalists extensively made use of print and press to spread their ideas thereby instigating, mobilizing and consolidating nationalist feelings. There has been some debate among scholars about the impact of print on Indian society. As pointed out by Benedict Anderson, print and new literary sensibilities replaced the manuscript, the oral as well as popular culture. Print also encouraged flowering of vernacular literature. Colonial India provided an arena where print, oral and visual media co-existed and influenced each other. Printing during colonial period has been categorized as 'elite' and 'popular' with the former focusing on serious subjects like social reforms, nationalism and religious identities while the later focusing on non-serious mediums like novels, plays, , diaries, entertainment writings etc. With the maturation of national movement the former came to dominate the later.

The paper has been divided into four sections. Section one deals with the history of printing in India. Section II deals with press and nationalism while Section III deals with the colonial reaction and Indian response. The last section deals with the Gandhian phase.

According to Raphael Utz, "Nations have been regarded as a "soul", a "spiritual principle" or a "moral conscious" by nineteenth-century scholars... who also believed in the antiquity of the nation and interpreted its rise merely as a collective process of becoming aware of one's nationality"¹ . Utz highlights the idea of collectivity or the group as the underlying principle of a nation which can be characterized by social, religious or linguistic factors.

I - History of printing in India

The history of Indian press and printing is linked with the coming of the Europeans. Two printing presses were brought in India in 1550. The English East India Company introduced a printing press in Bombay in 1684 though no newspapers were published in the Company's domain, as they were skeptical of sharing their wrong doings. The first newspapers in India were initiated by those Europeans who had complaints against the Company and had resigned from its service to express their resentment. The first newspaper came out in 1780 by James Augustus Hicky, and was known as The Bengal Gazette. It was a weekly paper that exposed the private lives of English East India Company servants and specifically the Governor-General Warren Hastings. Despite his persecution by Warren Hastings, Hickey continued his journalistic career displaying great courage.

Missionaries were among the first to extensively use print in various parts of India to spread Christianity. Soon the natives understood the power of print and transformed the Indian publishing from European and Christian initiative to a new literary culture where Indians developed and printed texts for native audience. Post 1850s a rapid expansion of improved means of organization and communication, railways, telegraph along with market production, along with the development of public institutions, English education, libraries, growing publishing houses, presses, newspapers, books and print culture facilitated the new culture.

Indians' encounter with colonialism made them aware of their language paving way for growth of

vernacular languages like Bengali, Marathi and Tamil which became the medium of new type of knowledge production, social reforms and political awakening. The emergence of a new middle class further enhanced the scope for printing, public gatherings and protests.

Print and Nationalism

The medium of print not only highlighted the dichotomy of colonizer-colonized, but also highlighted the conflicts within the indigenous society as printing reiterated one's caste, class and gender identities. Through the print-language and literature, different groups. Printing facilitated assertion of their authority and representation. It made possible the debates in the public domain between Sanatan Dharma and Arya samaj, Christianity and Hinduism, orthodox Islam and Sufism etc. During the the 19th century Bharatendu Harischandra, known as the Father of Modern Hindi emerged as a playwright, journalist, and publicist who wrote on literary, linguistic and religious issues which had impact on political and national identity. Literary figures like Bhartendu Harishchandray raised their concern for the political and social issues of the times alongwith the strengthening of Hindu/ Indian national identity.²

According to C. A Bayly, 'Print capitalism... gave many existing communities of knowledge the capacity to operate on a wider scale. It was a midwife of intellectual change, not in itself the essence of that change'.³

II Press and Nationalism

Political journalism in India can be traced to 1861 when the Indian Councils Act allowed nomination of distinguished Indians to the legislature. This greatly mobilized public opinion as now Indians could be associated with the government.. There was an efflorescence of many newspapers like Surendranath Banerjee's Bengalee, 1868 Motilal Ghosh's, Harishchandra Mukherjee's Hindu Patriot, Keshab Chandra Sen's Indian Mirror, Sishir Kumar Ghosh's Amrit Bazar Patrika 1868, and Aurobinbo Ghosh's Bande Mataram. Some of the contemporary newspapers were established during this period like The Times of India in 1861, The Pioneer in 1867, the Madras Mail in 1868, The Statesman in 1875, The Hindu in 1878. Paradoxically the Statesman was the mouthpiece of colonial rulers but The Hindu became the supporter of patriotism in south India. Soon the Press became critical of the government and raised issues related to its administration.⁴

In an article in Kesari on January 4, 1881, Tilak compared the newspapers with night watchmen who guard public interest by exposing what was evil and harmful.

Tilak's insistence on political emancipation resulted in his trial in 1908 and he was awarded harsh sentence of six years at Mandalay in Burma. There were many other nationalist journalists like Gopal Krishan Gokhale who championed the cause of social and political awakening. During the period from 1907 to 1914 when the Government initiated the dual policy of introducing political reforms and repressive acts, there was increasing consciousness in the country which helped create a more conducive climate for starting new newspapers with national orientation. Some examples were, The Leader in Allahabad and the Bombay Chronicle in Bombay founded by Pandit Madan Mohan Malviya and Sir Phirozeshah Mehta. Sir C.Y. Chintamani and B.G. Hornima were editors of these papers .

The Indian national Press became the backbone of the freedom struggle from the end of the eighteenth century. Its historical importance is linked to the awareness of public opinion which touched the patriotic nerve in the country. The building up of the Indian public opinion against British rule depended on the use of vernacular languages. Besides daily newspapers, periodical journalism also progressed during this period. G. A. Natesan's Indian Review, Sachidananda Sinha's Hindustan Review, Ramananda Chatterjee's Modern Review and Tej Bahadur Sapru's Twentieth Century were some of the periodicals which provided a particular direction to journalistic writing in India.

Indian newspapers and magazines instigated the propagation of nationalist ideas. During the formative years of the Indian National Congress and till 1918, press became an important means for politicization as mass mobilization had not yet taken off in a big way. Newspapers etc helped in political propaganda, education and propagation of nationalist ideologies. It was not a matter of chance that almost one-third of the founding fathers of the Indian National Congress in 1885

were journalists. Some very impactful newspapers emerged during these years under professional and upright journalists like the Hindu under G. Subramaniya Iyer, Kesari and Mahratta under Bal Gangadhar Tilak, Bengalee under Surendranath Banerjee and Amrita Bazar Patrika under Sisir Kumar Ghosh.⁵

The reach of print and press was far and wide and not limited to only the literati in urban areas. Newspapers and magazines were read amongst people in remote areas to spread among the illiterate the new age ideas and thought processes. With the beginning of library movements a table and a bench along with the newspaper constituted the essential equipment thereby making the newspaper a political instrument and reading or listening to it a form of political participation. In the initial years of printing newspaper printing was not a business endeavor but was undertaken as a national and philanthropic activity. A journalist was not only a selfless political worker but also a public servant who displayed great self-sacrifice. They also stood in opposition to the colonial regime, a stand specifically undertaken by the vernacular press. Colonialists were particularly alarmed by this trend as is visible from the remark by Lord Dufferin, the Viceroy, in March 1886, 'Day after day, hundreds of sharp-witted babus pour forth their indignation against their English oppressors in very pungent and effective diatribe.'

III

The British reaction to early nationalist upsurge was enactment of stringent laws to curb freedom of press. From 1870, Section 12A of the Indian Penal Code mentioned that anyone exciting feelings of disaffection to the Government in British India shall be punished with transportation for life or for any terms or with imprisonment up to three years. To get away from this backlash the early nationalist writers declared their loyalty to the Government and the Queen but poured their heart and soul in their writings. Some writers like Harischandra, used irony, sarcasm and mockery to drive home nationalist agenda.

Many of the Indian newspapers became highly critical of the imperialist acts of Lord Lytton. The terrible famine of 1876-77, which took a toll of over six million people, combined with the vulgar and lavish expenditure by Lytton at the same time on the Imperial Darbar at Delhi aroused the press. In retaliation, the government imposed the Vernacular Press Act of 1878, directed only against Indian language newspapers. The Act was designed to empower the Government with more effective means of punishing and repressing seditious writings. It provided for the confiscation of the printing press, paper and other materials of a newspaper if the Government believed that it was publishing such material. No appeal could be made to a court of law against it. It came to be nicknamed as the Gagging Act. Under the Act, proceedings were instituted against newspapers like Som Prakash, The Bharat Mihir and The Samachar. There was a huge furor by the Indian nationalists against the Act, with many public meetings. As a result, it was repealed in 1881 by Lord Ripon.

The nationalist leader who championed the struggle for the freedom of the Press during the early years of nationalist movement was Bal Gangadhar Tilak. He started the newspaper Kesari (in Marathi) and Mahratta (in English) in 1881, along with G. G. Agarkar. The aim was to spread discontent against British rule and to incite national resistance to it through his writings. Tilak displayed a fiery and courageous journalistic spark whose style was direct and engrossing. He strategically used the traditional Ganpati festival and the Shivaji festival to mobilise Indians for nationalism. Tilak's aggressive views were propagated through journalism. He bitterly opposed various bills and acts, enacted to curb freedom of press. He was quite vocal against the deportation of Punjab revolutionaries in 1907 for which he was imprisoned in 1908.

The national movement had started maturing by the beginning of 20th century. Post 1905 Partition of Bengal, when the policies of Lord Curzon instigated great unrest, the Government passed the Newspaper Act, 1908, under which it started prosecutions against nine newspapers and confiscated seven presses. The Indian Press Act of 1910 further empowered rulers as the local government was authorized to demand at the time of registration security ranging from Rs. 500 to Rs. 2,000 from the owner of a printing press or publisher of a newspaper and to forfeit the security and annul the registration of a hostile newspaper.

IV

Despite repressive measures, nationalist newspapers expanded their outreach. The Gandhian era unleashed newer forms and scale of nationalism and the power of print also came to be acknowledged. Gandhi, an ardent journalist, ran and edited important weeklies like *Young India* and *Harijan*. As nationalism progressed so did the idea of freedom of the Press.

Writing in *Young India* in 1920, Gandhi defended the right of newspapers to protest against Press laws: "The stoppage of the circulation of potent ideas that may destroy the Government or compel repentance will be the least among the weapons in its armoury. We must, therefore, devise methods of circulating our ideas unless and until the whole Press becomes fearless, defies consequences and publishes ideas, even when it is in disagreement with them, just for the purpose of securing its freedom".⁶ According to Gandhi, there were three main

Objectives of newspapers:

1. To highlight people's voice
2. To inspire people with desirable sentiments.
3. To bravely disclose evils in public life.

Gandhi was able to sustain his weeklies on subscriptions as no advertisements were published. Through mass line of the followers within the Congress party and of those engaged in constructive works, the weeklies propagated widely Gandhi's ideas and philosophy among the masses. His weeklies served as the vehicle for his views on various developments in the country and his line of approach to the struggle for national liberation. Nationalism and the demand for independence were not new, but Gandhi provided a new impetus to the freedom struggle. A large number of other prominent leaders engaged in the freedom struggle were also eminent journalists and they derived inspiration from Gandhi.

During freedom struggle journalism, especially the nationalist Press, was more of a socio-political mission, rather than being merely a vocation, and the role of Press was to awaken the masses socially and politically. During the war years, particularly after the Quit India movement of 1942, Britishers followed a repressive policy towards nationalist newspapers, under the Press Emergency Powers Act and war-time ordinances. The power of print and press greatly contributed towards India's freedom struggle.

Reference

1. Utz, R. (2005) *Nations, Nation-Building, and Cultural Intervention: A Social Science Perspective*. In A. von Bogdandy and R. Wolfrum, (Eds.) *Max Planck Yearbook of United Nations Law*, Volume 9, The Netherlands: Koninklijke Brill (pp. 615-647).
2. Dalmia, Vasudha. 1996. *The Nationalization of Hindu Traditions: Bharatendu Harischandra and Nineteenth-century Banaras*. New Delhi: Oxford University Press, 21-27.
3. Bayly, C. A. 1999. *Empire and Information: Intelligence Gathering and Social Communication in India, 1780-1870*. Cambridge: Cambridge University Press, 374.
4. Kuppaswamy. (1984). *Communication and Social Development in India*. University of California, Sterling Publisher, p.137.
5. Chandra, Bipin et.al. 1989. *India's Struggle for Independence*. Delhi: Penguin Books, 102-3.
6. Gandhi, M. K. (1970). *Gandhi – Essential Writings*. edited by V. V. Ramana Murthi. New Delhi: Gandhi Peace Foundation. p.59

लोक सांस्कृतिक मूल्य और पत्रकारिता

डॉ. शिवमंगल कुमार

श्री अरविन्द महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

संस्कृति एक बहती धारा है, जिसमें कुछ-न-कुछ नवीन अंश जुड़ता रहता है और कुछ विलुप्त भी होता रहता है। दादा धर्माधिकारी संस्कृति का असली अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी उन्नति मानते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों का जन्म इसी कुक्षि से होता है। संस्कृति की इस घुलनशीलता में ही वस्तुतः इच्छा, ज्ञान, क्रिया का त्रिपुट रहस्य और जीवन का त्रिताल चिंतन है। पत्रकारिता की वैचारिक भाव चेतना इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों में विकसित होकर बीज से वृक्ष बनती है।

लोक का नैकट्य पत्रकारिता को अर्थवान बना देता है— एटिना, मन्दिर का शीर्ष, मस्जिद का गुम्बद, संग्रहक और संप्रेषक, समयानुकूल परिवर्तन-परिवर्द्धन जीवन और लोकमानस का पुनर्सर्जक, लेकिन बुनियादी मूल्यों की रक्षा करते हुए। वे सामाजिक हों या आर्थिक अथवा सांस्कृतिक-धार्मिक। यह एक सतत धारा है जो कभी खंडित नहीं होती। ये जीवन के शक्तिमंत्र हैं। जीवन के इन शक्तिमंत्रों, मूल्यों के बिना मृत्यु भी सार्थक नहीं है, तो पत्रकारिता इससे कैसे अछूती रह सकती है।

निष्पक्ष, तटस्थ, निरपेक्ष पत्रकारिता लोक रस है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में 'लोकमंगल की साधनावस्था।' लोक सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात कर अभिव्यक्ति की यह कला काँटों भरी पिया की सेज है। लोक धर्म, लोक जीवन की इस चहुँमुखी खांडे की धार पर पत्रकारीय पारदर्शी मूल्य साहित्यिक राजपथ के समानान्तर चलने वाला ऐसा कंटकाकीर्ण ऊबड़-खाबड़ मार्ग है, जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र की मानस-भूमि में होने वाली आकुल हलचलें कैद हैं।

पत्रकारिता के कलाधर्म और कालधर्म में मूल्य चिंताओं के साथ लोक की वैचारिक चेतना का उद्वेलन, घटनाओं की प्रबुद्ध पूर्वापेक्षाएँ हैं, जो समाज की वाणी और मस्तिष्क बनकर सत्य के अनुसंधान की लोक प्रतिष्ठापना है। यही पत्रकारिता की संस्कृति पीठ है। इतिहास चेतना के इसी सत्यनिष्ठ लोक पथ को गाँधी जी ने 'मरकर जीने का मंत्र' कहा है, तो वेदव्यास ने 'सबसे बड़ा बल' स्वीकारा है।

जातक के अनुसार— "पृथ्वी पर जितने भी रस हैं, सत्य का रस उनमें श्रेष्ठ है। लेकिन सत्य को सूचक ही नहीं, प्रेरक भी होना चाहिए।" रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में— 'पत्रकारिता का यह सबसे बड़ा सत्य और लोक मूल्य है।' क्योंकि सत्य में ही लोक प्रतिष्ठित है। इसीलिए वाल्मीकि कहते हैं— "सत्य' प्रणव रूप शब्द ब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अक्षय वेद है।" अर्थ रूप में पत्रकारिता की यही लोक संस्कृति है, यही संस्कार-धर्म है, यही सूर्यकाया है, जिसकी रस-छाया लेकर हमें निरन्तर पत्रकारिता के नए पथों का खनन करना चाहिए। आज ऐसा है या नहीं, इस 'कबीर पथ' का 'महाप्राण निराला' प्रश्न यही है?

पत्रकारिता के विचार समर में आज अनेक कबीर और महाप्राण निराला यक्षप्रश्न हमें भीतर तक कौंच रहे हैं। चाटा और फेंका की पत्तल फेंक संस्कृति आज ग्लोबल मूल्य है। सत्य और झूठ के बीच वंचक बारीक लकीर ने जीवन को आज संदेहास्पद बना दिया है। नसों में 'अंधायुग' उतर आया है, इसलिए युयुत्सु का प्रश्न—

“पक्ष सत्य का हो / या असत्य का

अन्तिम परिणति में दोनों जर्जर करते हैं।”

रूह में उतरता जरूर है, चिंतन को बाध्य भी करता है, लेकिन जीवन का अन्तिम सत्य नहीं हो सकता। यह भी सत्य है कि लोक सांस्कृतिक मूल्य बहुविध चैनलों के मायाजाल में दम तोड़ते दिखाई देते हैं। आज सबसे बड़ा यक्षप्रश्न है कि वैश्विक पटल पर क्या प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया अपनी सार्थक भूमिका निभा रहा है? क्या वह लोक संस्कृति, लोक मूल्यों से जुड़ा हुआ है अथवा सिर्फ अर्थ लोलुपता की अंधी दौड़ में टी.आर.पी. बढ़ाने की होड़ में एक-दूसरे से अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा में जुटा है?

वस्तुतः “पत्रकार के भाग्य में प्रतिपक्ष बदा होता है। पत्रकारिता सुई और तलवार की भूमिका एक साथ निभाती है। लोक नायकत्व की भूमिका निभाते हुए पत्रकारिता ने एक समृद्ध विरासत को जिया है। इस विरासत में पत्रकारिता की चाणक्य दृष्टि थी और पत्रकार दधीचि भाव लेकर मूल्यनिष्ठ लेखन के माध्यम से लोकमानस को न केवल संस्कारित करते थे, अपितु उन्हें सत्ता के अन्याय प्रतिकार का रास्ता देते थे।”

वास्तव में आजादी से पहले मीडिया की जो छवि थी, वह लोक संस्कृति एवं लोकमानस से गहरे रूप में जुड़ी थी। सम्पूर्ण देश के पत्रकार एक आदर्श और विकेंद्रित सृजन प्रयास में जुटे थे। लेकिन आजादी के बाद उनकी भूमिका में ऐतिहासिक बदलाव आया। अब पूँजी उसका संचालन करने लगी। 'मूल्य' अर्थाधारित हो गए। ऐसे में स्वाभाविक रूप से धर्म, सत्य, नैतिकता, आदर्श जैसे लोक मानवीय मूल्य लड़खड़ाने लगे। उनकी स्थिति आज के दिव्यांग सरीखी हो गई। ऐसे में वर्तमान पत्रकारिता की टूटी खिड़कियों से झाँकती साम्राज्यवादी ताकतों से सीधे लोहा लेने वाली स्वतंत्रतापूर्व पत्रकारिता की आँखों में आँसू आने स्वाभाविक है। 'लोकमंगल की साधनावस्था' का मोहभंग इतना विद्रूप है कि सम्पूर्ण पत्रकारिता के आज अर्थ ही बदल गए। वर्तमान के बरक्स अतीत में झाँकें तो स्वतंत्रता पूर्व भारत का प्रत्येक साहित्यकार स्वयं में एक कुशल एवं दक्ष पत्रकार था, संपादक था, लेकिन समय बीतते देर नहीं लगी और आज संपादक नामक संस्था का ही लोप हो गया है। यदा-कदा है भी तो एक ऐसे मासिक वेतन के भरोसे, जो पूर्णमासी का चाँद है। आज काल-कारा में मानस बंधक है। वैचारिक स्वतंत्रता मूल्य नहीं, अर्थमंत्र है। लोक सांस्कृतिक मूल्यों पर विज्ञापन कुंडली की अजगर पकड़ है। पत्रकारिता तंत्र अपने सभी रूपों में (प्रिंट-इलेक्ट्रॉनिक) प्रबंधक समुदाय और मीडिया प्लानरों के कब्जे में है।

बहरहाल जनमाध्यमों का उत्तरदायित्व है— सही सूचना देना, जन-मन को शिक्षित कर शिष्ट बनाना तथा उत्सवपूर्ण जीवन जीना। मानव जीवन में ये लक्ष्य पूरे हो जाएँ, तो राष्ट्र के विकास की तस्वीर उभरकर सामने आ जाए। लेकिन भाषायी पत्रकारिता ने जब से स्थानीय और क्षेत्रिय मुद्दों से कदमताल आरम्भ किया, उसका व्यावसायिक चरित्र भी बदल गया। आज जिन मुद्दों से मीडिया को परहेज करना चाहिए, उन्हीं मुद्दों को बढ़ा-चढ़ाकर अत्यन्त संवेदनशील बनाकर लोक में सरेआम बेचा जाता है। यही कारण है कि हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ी है। आज चहुँओर दहशतगर्दी का माहौल है। क्षेत्रवाद, आतंकवाद, नक्सलवाद, साम्प्रदायिक विद्वेष का बोलबाला है। अपराध संबंधी सुर्खियों से मीडिया की टी.आर.पी. खूब बढ़ी है, जबकि मानवतावादी दृष्टि घटी है। राजनीतिक पैकेज परोसने की हर चैनल में होड़ मची है। फलतः मूल्यों के स्तर पर मीडिया सांस्कृतिक द्वैत का शिकार होकर रह गया है। इसी के चलते औपनिवेशिक अवशेष वाली पत्रकारिता और भाषायी पत्रकारिता में जंग छिड़ी हुई है। एकाध सफल अखबारों को छोड़ दें, तो स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी मीडिया का जो राष्ट्रीय चरित्र बना था, वह अब उसी रूप में नहीं है। चूँकि देश में सांस्कृतिक आत्म विसर्जन की प्रवृत्ति बढ़ी है, इसलिए पत्रकारिता में भी बढ़ी हुई दिखती है। पत्रकारिता में आत्म विसर्जन की प्रवृत्ति घातक है और इसके नुकसान ज्यादा हैं।² क्योंकि पत्रकारिता के मूल्यधर्म वैशिष्ट्य को आज उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवाद के वर्चस्व ने ऑक्टोपस-सा जकड़ लिया है। युद्धिष्ठिर के अर्द्धसत्य-सी पत्रकारिता आज द्रौणीय आचरण की अंगूठा संस्कृति की अगुआई में नए मूल्य गढ़ रही है। सुदामा की गरीबी आज कृष्ण को स्वीकार है, इसलिए वह अभिशप्त है और अधिकांश पत्रकार इस अभिशाप को ढोने को तैयार नहीं। धृतराष्ट्री पत्रकारिता गांधारी पट्टी बांधे दुर्योधनी सत्ता के दशानन अट्टहास को धनुषकोटि कसावट में नहीं उतरती, इसलिए भीष्म शपथ, विदुर नीति, कर्ण मैत्री आज जीवन के प्रक्षिप्त अंश हैं और व्यास दृष्टि अप्रासंगिक।³

दरअसल पहले के मीडिया का मिशन अंततः जीवन-दर्शन था। हमारे पास जो भी परम्परागत माध्यम-लोकनाट्य, नौटंकी, कठपुतली, पोवाड़ा आदि थे, वे लोक जीवन को बड़ी सच्चाई से उद्घाटित करते थे। कर्मकांडियों, ढोंगियों, रूढ़ियों का पर्दाफाश करते थे। लेकिन आज वस्तुस्थिति यह है कि हरेक क्षेत्र से ये लोक माध्यम तकरीबन विलुप्त हो चुके हैं। जहाँ कहीं ये बचे भी हैं, तो केवल सरकारी कार्यक्रमों में या अधिकारियों के स्वाद बदलने के लिए। उनकी सहज, सरल एवं स्वाभाविक गति को आधुनिक जनमाध्यमों ने लील लिया है। पहले समस्त उत्तर भारत के कोने-कोने में जीवनादर्शों, मानवीय मूल्यों की संवाहिका तुलसी की रामलीला का मंचन बहुत ही भव्य तरीके से सम्पन्न किया जाता था। इससे सीख लेकर भारतीय समाज अपने जीवन के सत्-असत् कार्यों पर विचार-मंथन करता था। आज वही रामलीला आधुनिक मीडिया के हाथों इतना रंग चुकी है कि उसकी सूर्पणखा राम के समक्ष प्रेम-विवाह का प्रस्ताव इस प्रकार परोसती है— "अँखिया मिला के/जिया भरमा के/चले नहीं जाना।" जबकि तुलसी की सूर्पणखा का प्रस्ताव था— "तो सम पुरुष न मो सम नारी।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान मीडिया लोक संस्कृति का नहीं, लोक विकृति का परिचायक है।

इसी प्रकार मीडिया चैनलों पर लगातार एक ही दृश्य - वाक्युद्ध, लातयुद्ध, झोंटा-झोंटौवल या सलमान खान के मामले में जज के निर्णय से लेकर जेल तक की घटना-वृत्तांत पर फोकस करना, उस पर चर्चा केन्द्रित करना आदि से समाज किन मूल्यों की ओर अग्रसर होगा। क्या मीडिया का यही जन सरोकार है कि वह किसी 'शो' में किसी मॉडल अथवा कलाकार का गोपन वस्त्र खिसकने का दृश्य दिखाए, किसी नर्तकी का आँख मारने का स्टाइल परोसे, बंद कमरे में नग्न-अर्द्धनग्न दृश्य दिखाए? इससे कौन-सी संस्कृति पनपेगी, सहज ही विचारणीय है। मीडिया यह क्यों भूल गया है कि भारत राष्ट्र में 'काम' और 'सेक्स' में अन्तर है। पश्चिमी राष्ट्रों का 'सेक्स' हमारे यहाँ का काम नहीं है। पाश्चात्य पत्रकारिता का एक ही उद्धरण इस संदर्भ में यहाँ काफी है—

"न्यूज एंकर अब निर्वस्त्र होकर पेश करेंगी समाचार

लंदन, (वार्ता) : बीबीसी ने वीरवार को यह जानकारी देते हुए बताया कि अगले सप्ताह से देश में एक सेटेलाइट टेलीविजन

चैनल पर दर्शकों के समक्ष न्यूज एंकर समाचार पेश करने के साथ-साथ एक-एक करके अपने कपड़े उतारती जाएगी और बुलेटिन के खत्म होते-होते एंकर के शरीर के कपड़े भी खत्म होते जायेंगे। दिलचस्प बात यह है कि लन्दन में इस चैनल के प्रेस लांच का आयोजन कल ब्रिटिश संसद के सेंट्रल हॉल में किया गया और संसद के बाहर न्यूज एंकरों की तस्वीरें भी खींची गईं।¹⁴

इस आदिम, भोगवादी, लैंगिक, आत्मरतिग्रस्त, उन्मादक दैहिक संस्कृति को आप क्या कहेंगे? क्या यही मानव की सांस्कृतिक विकास यात्रा का अन्तिम सोपान है? इसके बाद बचा क्या। यह तो भोग में निर्वाण भी नहीं है। यौनधर्मी भौतिक अराजकता के बीच नारी देहयष्टि की यह तथाकथित लोक संस्कृति बनाम शिष्ट संस्कृति नग्न, वीभत्स, निर्वस्त्र चलती-फिरती सशरीर कुण्ठित मनोवृत्तियाँ हमें जलते हुए अग्निकुण्ड में धकेल रही हैं, ऐसे नागमंडल का आखेट बना रही हैं, जहाँ का सफर अंधेरी गुप्प सुरंगों में ले जाता है। मनुष्य की कर्म चेतना पर लुब्ध मांसलता का छाया कवच, जहाँ साँसें भी गुलाम हो जाती हैं।

जबकि हमारी संस्कृति में 'काम' तभी काम्य और कमनीय होता है, जब वह उदात्त एवं परिष्कृत रूप में हो। कई सदियों तक भारतीय संस्कृति ने उसे 'देव' के रूप में स्थापित कर पूजा की है। जाहिर है कि घोर अश्लील, निकृष्ट, घृणित दृश्यों को बारंबार दिखाकर विज्ञापन तो बटोरे जा सकते हैं, शेयर बाजार का हिस्सेदार बना जा सकता है, आलीशान महल में सुविधा भोगी जा सकती है, लेकिन इससे लोकमानस को क्या लाभ होगा? वर्तमान में फैलाए जा रहे साम्प्रदायिक दंगों, नृशंस हत्याओं, नंगी, अश्लील हरकतों, युद्ध बर्बरताओं से हमारा लोक समाज किस दिशा में उन्मुख होगा, चिंतनीय है।

आजकल तो चैनलों पर अज्ञानता, अंधविश्वास की बाढ़-सी आई है, जैसे- नाग-नागिन का बदला, मंदिरों में रहने वाले या आने वाले लोगों, पुजारियों पर भूतों-चुड़ैलों का साया, देवी-देवताओं की छाया आदि को महिमामंडित करके मीडिया परलोक का नाश तो कर ही रहा है, लोक को भी मिट्टी में मिला रहा है। यह मूलतः अपराधों का, अमानवीयता का और अश्लीलता का उत्सवीकरण है।

अतः यह मीडिया की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह परिवार में, समाज में, राष्ट्र हित में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना पर बल दे। लेकिन आज जबकि परिवार का ही प्रत्येक सदस्य इतना आत्मकेन्द्रित और स्वार्थाधता का शिकार हो गया है कि अपने परिजनों के बारे में उसे सोचने-विचारने तक का अवकाश नहीं है। केवल भोग-विलास ही उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य बनकर रह गया है। ऐसे में जब परिवार ही टूटकर बिखर रहा है, तो समाज और राष्ट्र का क्या होगा। नतीजा यह हुआ है कि हमारे रिश्ते-नाते करक-दरक रहे हैं और हम मानसिक विकलांगता के शिकार हो रहे हैं। इन सब को हवा दी है विदेशी पूँजी और कारपोरेट की दुनिया ने।

आज मीडिया चैनलों पर नारी, जो कि भारतीयता का प्राण है, ममता, श्रद्धा, त्याग, साहस, परोपकार की प्रतिमूर्ति है, का कौन-सा रूप परोसा जा रहा है, किसी से छुपा नहीं है। संस्कृति रक्षक हमारे बूढ़े-बुजुर्गों के लिए जिन्हे समाज उपेक्षित करता जा रहा है, उनके लिए मीडिया के पास क्या है? संस्कृति की रीढ़ कहे जाने वाले किसानों के लिए मीडिया क्यों नहीं आवाज उठा रहा है जो आए दिन आत्महत्या करने को अभिशप्त हैं। बालमन को शिष्ट एवं सुसंस्कृत बनाने वाले 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' की कथाएँ, माँ की लोरियाँ, सब-के-सब कहाँ गुम हो गए। दरअसल उनका स्थान मीडिया द्वारा तरजीह दिए जा रहे कार्टूनों, फिल्मों, पोगो और सुपरमैन ने ले लिया। अब हाथ में स्मार्टफोन आ गया है। फेसबुक, ट्विटर, ह्वाट्स ऐप ने किशोरों को एकाकी बना दिया है और 'ब्लू हेल' ने तो आत्मघाती ही बना डाला है। निस्संदेह संघर्षरत इंसान का जीवन आज मीडिया दृष्टि से ओझल हो चुका है।

आज सब कुछ टके सेर बिक रहा है। झूठ को प्रचारित और प्रसारित करके सच बनाने की कोशिशें जारी हैं। यह सब बहुराष्ट्रीय कंपनियों की ताकत पर चलने वाला मीडिया धर्म के नाम पर लोगों को बाँट रहा है और उसे कामयाबी भी हासिल हो रही है। इनकी दृष्टि में जो विचारवान नहीं हो सकता, वही असली उपभोक्ता है। इन्हें आसानी से जाल में फँसाया जा सकता है। इन कंपनियों में जितने भी लोग हैं, अधिकांश बिके हुए लोग हैं। हमारी मनुष्यता को खुली चुनौती देते हुए आज मीडिया असंख्य निरीह जनता को अधिकारों की अंधी दौड़ में शामिल कर रहा है।

इस सबके बावजूद भारतीय मीडिया ने स्वतंत्रता के बाद बड़ी दूरियाँ तय की है, यह निर्विवाद है। चूँकि मीडिया का मतलब अब केवल प्रिंट-इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ही नहीं है, बल्कि और भी बहुत कुछ हो गया है। इसके बिना जीवन जीने की कल्पना भी बेमानी प्रतीत होती है। अब इसका आशय अंतःजाल में गुँथे उन तमाम माध्यमों से है, जिनके सूत्र पकड़कर मानव समुदाय परस्पर जुड़ता है। यह सही है कि मनुष्य आज अधिक आत्मकेन्द्रित हो गया है, लेकिन कब तक? मनुष्य जन्मतः और अन्ततः सामाजिक प्राणी है, वह ज्यादा दिनों तक समाज से कटकर नहीं रह सकता। उस सुख के मायने क्या, जो दूसरों की गर्दन रेतकर फले-फूले। लेकिन ऐसे सुख-साधनों का वीरान जंगल एक-न-एक दिन काटने तो दौड़ेगा ही। ऐसे में उल्टे पाँव वह अपनों की ओर दौड़ेगा और उसका सेतु बनेगा मीडिया। अब इसका आगाज हो चुका है। संवादहीनता से ग्रस्त समाज में एक बार पुनः संवाद जारी है और इसे आसान बनाया है सोशल मीडिया ने। आभासी ही सही, लेकिन इस बदलते समय में मीडिया का योगदान

कम नहीं है, जिसने मरते सम्बन्धों को पुनर्जीवित किया है।

भाषा भी लोक संस्कृति का प्रमुख अंग है। भाषा के बिना संस्कृति पंगु के समान है। जहाँ तक मीडिया की भाषा का प्रश्न है, इसके विषय में अक्सर कह दिया जाता है कि भाषा को विकृत करके लोगों के सामने परोसना, लोक संस्कृति को विकृत करने जैसा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मीडिया ने भाषा को बाजारू भाषा के रूप में तब्दील कर उसके शब्दों, वाक्यों में औपनिवेशिक भाषा के शब्दों, वाक्यों की घुसपैठ करायी है। लेकिन यह भी सही है कि अज्ञानता के कारण तथा अयोग्य संपादक के अभाव में ही यह सब हुआ है। हमें भूमण्डलीकरण की पीठ पर सवार नव औपनिवेशिकता की सोची-समझी रणनीति को भी समझना होगा, तभी लोक संस्कृति की रक्षा हो सकेगी।

समग्रतः लोक संस्कृति, लोक मूल्य के प्रति मीडिया के दायित्व एवं प्रतिबद्धता के बारे में डॉ. सुरेश गौतम ने ठीक ही कहा है— “पत्रकार लोकतंत्र का पहरुआ है और पत्रकारिता लोकशाही की बुलन्द आवाज। पहरुए की आवाज यदि बुलन्द नहीं होगी तो प्रतिगामी शक्तियाँ जनशक्ति का हरण कर प्रतिकार के हर मार्ग को अवरुद्ध कर देंगी। पत्रकारिता मदमस्त सत्ता की आँख में किरकिरी और मनुष्य आँख का काजल है। सरकार तो जनशक्ति का छोटा-सा अंश है। पत्रकारिता की अंकुश दृष्टि सत्ता के निरंकुश अहंकार को बाँधकर सर्जनात्मक मूल्यात्मकता के झरोखे खोलती है। कालांतर में लोकतांत्रिक परम्पराओं के शिलालेख सर्जनात्मक मूल्यात्मकता की इसी भूमि से मीनार की तरह उठते हैं। सीधी उठान का वज्रासन व्यास सत्त्यों को पत्रकारीय देह में शब्द ब्रह्म कर प्रामाणिकता देता है, ऐसे में जीवन और सत्ता का चक्र नर्तन सुर और लय पाकर पत्रकार और पत्रकारीय धर्म की महत्ता को समझकर उसे अपनी रचनात्मक शक्ति बनाता है। यही से शुरू होती है निर्माण की भूमिका, अन्यथा स्वार्थाध नकारात्मक दर्शन लोकशाही की जड़ें ही खोखली नहीं करता, अपितु जीवन और उसके सत्त्यों को भी अफीम बना देता है। एक अजीबोगरीब सुप्तावस्था जो न राष्ट्र के हित में है और न मनुष्य के। अतः पत्रकारिता और उसके उद्देश्य जीवन और राष्ट्र के जागरण मंत्र हैं, जिन्हें अपनी चेतना में सहेजना प्रत्येक मनुष्य एवं पत्रकार का कर्तव्य है।”

अंत में, मैं मात्र चार पंक्तियों में स्वतंत्रता पूर्व पत्रकारिता और वर्तमान पत्रकारिता की ‘वैभव-दरिद्रता’ को आपके सामने रखना चाहता हूँ। पहली दो पंक्तियों में हमारी इतिहास चेतना के हस्ताक्षर हैं, जीवन-समाज की रस पीठ है, तो अगली दो पंक्तियों में वर्तमान पत्रकारिता का किंकर्तव्यविमूढ़ टी.आर.पी. विवर्तन, जो सनसनी के नाम पर अपने आप में अनधिकृत सर्वोच्च न्यायालय है। इसका सबसे बड़ा अद्यतन उदाहरण ‘उन्नाव’ और ‘कटुआ’ के अमानुषिक जघन्य काण्ड है, जिसका निर्णय पत्रकारिता जगत् ने तुरत-फुरत बिना तथ्यों-सत्त्यों की पड़ताल किए कर दिया। यह ‘मीडिया ट्रायल’ हमें जीवन सत्त्यों से दूर ले जाता है, जो न तो मूल्यनिष्ठ पत्रकारिता है और न ही लोक सांस्कृतिक मूल्यों के साथ न्याया। पत्रकारिता के साथ लोक सांस्कृतिक मूल्य मन का विश्वास है, दृश्य-अदृश्य होते हुए भी इतने शक्तिशाली कि देह की प्रत्येक शिराओं में रक्त की तरह बहते हैं। अतः हम सभी को अपने आप ‘तुलादंड’ पर कसने की जरूरत है। अन्तर्जगत का सत्य-अनुसंधान यही है—

“आसमा को भी अदब से सामने झुकना पड़ा,
अपनी हस्ती को मिटाकर जब हुए मिनार तुम।
दोस्तों ! तुमको तो दस्तावेज़ बनना चाहिए था,
चंद खबरों के लिए बन गए अखबार तुम।”

बस इतना ही !

संदर्भ सूची

1. हिन्दी पत्रकारिता, संपा. सुरेश गौतम, वीणा गौतम, पृ. 15, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2001
2. जनसत्ता, संपा. अच्युतानन्द मिश्र, 16 नवंबर 1998
3. हिन्दी पत्रकारिता, संपा. सुरेश गौतम, वीणा गौतम, पृ. 16
4. द्रष्टव्य : पंजाब केसरी, 11 मई 2007
5. हिन्दी पत्रकारिता, संपा. सुरेश गौतम, वीणा गौतम, पृ. 19

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिन्दी पत्रकारिता

डॉ० ममता देवी

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

आज का युग पत्रकारिता का युग है जिसका प्रमुख कार्य है समसामयिकता को समेटना। इसीलिए समाचार-पत्र को सामयिकता का साहित्य भी कहा जाता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी समाचार-पत्रों ने उस युग के सबसे महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत प्रश्न राष्ट्रवाद' को प्रखर स्वर प्रदान किया। यही नहीं तत्कालीन समाज के सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक प्रश्न को भी गम्भीरतापूर्वक एवं पूरी निष्ठा के साथ निर्वहन किया। भारतीय जन-मानस के सम्मुख सबसे बड़ा प्रश्न था जनसम्प्रभुता की प्राप्ति। हिन्दी पत्रकारिता के प्रसिद्ध पत्रकारों ने स्वतंत्रता संघर्ष के समय सामायिक विषयों को जमकर वाणी प्रदान की।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम असफल रहा जिसने हमारे राष्ट्रीय उत्साह को ठंडा कर दिया और भारतीय जन-मानस अवसाद और उदासी से दब गया। प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों की सहायता से ही बड़ी नृशंस शैली में किया था। इतिहास गवाह है भारतीय राजाओं ने या तो अंग्रेजों को सहयोग दिया था या तटस्थ रहे। इससे स्पष्ट ही पता लग जाता है कि उनकी भूमिका राष्ट्रीय आन्दोलन के विरोध में थी।

इसी समय भारत की शासन- व्यवस्था कम्पनी के हाथों में चली गई जिससे भारतीयों को आश्वासन तो दिया गया, परन्तु व्यवहार पहले के जैसा ही बना रहा। इस प्रकार के रवैये से भारतीय जन-मानस की सुसुप्त आत्मा जाग उठी और प्रत्येक भारतीय के मन में एक राष्ट्रीय भाव धारा का प्रवाह होने लगा। इसी राष्ट्रीय भाव को पूरे देश में फैलाने का श्रेय हमारे उस समय के समाचार पत्रों को जाता है। 23 मार्च 1874 को 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित किया था, जो हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी चेतना का प्रथम शंखनाद था। 'हम लोग आज से कोई बिलायती कपड़ा नहीं पहनेंगे। हिन्दुस्तान का ही बना कपड़ा पहनेंगे।' अपने पत्रों और तदीय समाज के मंच से भारतेन्दु बाबू देश की अस्मिता को जगाने में क्रियाशील थे। स्मरण रखना चाहिए की राजनीतिक मंच और संगठन से स्वदेशी की आवाज बहुत बाद में उठी।

'तदीय समाज' के सदस्यों के लिए स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार उन्होंने अनिवार्य कर दिया था। स्वत्व- सचेत करने के लिए देशवासियों को उन्होंने बार- बार सम्बोधित किया था, 'जैसे हजार धारा होकर गंगा समुन्द्र में मिलती है, ठीक उसी प्रकार तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैंड, जर्मनी, अमेरिका को जाती है।'² भारतेन्दु के स्वदेशी अभियान को दूसरे पत्रकार अपने पत्रों के माध्यम से समृद्ध कर रहे थे, ब्राह्मण अपने पत्रों के माध्यम से समृद्ध कर रहे थे। 'ब्राह्मण' के सम्पादक प्रताप नारायण मिश्र ने बड़े दुख के साथ लिखा है कि - 'हम और हमारे सहयोगीगण लिखते-लिखते हार गये कि देशोन्नति, करो पर यहाँ वालो का सिद्धान्त है कि अपना भला हो, देश चाहे चूल्हे में जाय, यद्यपि जब देश चूल्हे में जायेगा तो हम बचे न रहेंगे।'³ देश-प्रीति की इस भावना ने हिन्दी पत्रकारिता के दूसरे दौर को जन्म दिया। अर्थात् इसी राष्ट्रप्रेम ने हिन्दी पत्रकारिता का उत्साह-वर्धन किया।

हिन्दी पत्रकारिता के दूसरे चरण को गद्य-निर्माण का युग भी कहा जाता है। सन् 1857 के बाद उन्नीसवीं शताब्दी तक अनेक महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगनीज, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, हिन्दोस्थान, भारतमित्र, सारसुधानिधि, उचितवक्ता, बिहारवन्धु श्री बेंकेश्वर समाचार इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन पत्रों का एक मात्र उद्देश्य था सामाजिक कलुष प्रक्षालन और जातीय उन्नयन। शायद इसीलिए इन पत्रों का झुकाव सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर ही रहा। निम्नलिखित पंक्तियों से भी देशानुराग झरता दिखाई देता है-

अहमजिम सहमान उत्तेरा नाम भय्याम।

अभिपास्मि विन्नवासा शामाशां विवासहि है।⁴

अर्थात् मैं अपनी मातृभूमि की समृद्धि और कीर्ति के लिए सब सहते हुए पृथ्वी पर श्रेष्ठ हूँ। सभी दिशाओं में उसके लिए कामना करता हूँ। यह भी अटूट सत्य है कि देश भक्ति का संचार जब हमारे हृदय से स्वार्थ को निकालकर फेंक देगा तब हम ऐसे कार्य कदापि नहीं करेंगे जिनसे हमारे प्रिय देश वासियों को कोई हानि पहुँचे, बल्कि दूरदर्शी परमार्थी सत्यशील और दृढ़प्रतिज्ञ आत्माओं की भाँति असंख्य कष्ट उठाते हुए भी ऐसे कार्य करेंगे जिससे देश का भला हो।⁵ इसी प्रकार सर्वप्रथम

राष्ट्रीय भाव को जगाने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता का महानतम अर्थ भी यही है कि व्यक्ति अपने स्वभावानुकूल नियम द्वारा परिपूर्णता की ओर विकसित और उन्नत हो सके।⁶

हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य में भी राष्ट्रीय चेतना का व्यापक क्षेत्र रहा है। वेदों को भारतीय साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। ऋग्वेद काल में भारतीय युक्त अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऋग्वेद काल में भारतीय राष्ट्र की आर्य जाति ने अध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी उन्नति प्राप्त की थी। भारतीयों के परम पवित्र ग्रन्थ वेदों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्रमरुत का केवल गायन ही नहीं किया गया बल्कि इसके साथ तत्कालीन समाज के चित्र भी उपस्थित किये गये हैं।⁷

‘ऋग्वेद में उल्लिखित राष्ट्र शब्द से आर्यों की समस्त भावना के साथ- देश, राज्य, जाति व संस्कृति सभी का समग्र चित्र उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार वेदों में राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति करने वाले अनेक सूत्र हैं। हॉ इसका स्वरूप देवताओं के कीर्तिमान में मातृभूमि के स्तवन में समृद्ध सामूहिक जीवन की कामना करने में देखा जा सकता है। यथा- ‘माता भूमिः पुत्रो ह पृथिव्या।’⁸

पुराणों में राष्ट्रीय चेतना का विकास- राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में पुराणों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राष्ट्र में एकानुभूति और देशभक्ति का स्वर पुराणों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इनमें जहाँ एक ओर जन्मभूमि की वंदना के रूप में तदयुगीन राष्ट्रीयता की भावना प्राप्त होती है। वही दूसरी ओर इसी भूमि की रमणीयता सरस, सुहानी, ऋतुएं सघन-वन-सम्पत्ति तथा पवित्र नदियों के गुणगान एवं शशयश्यामला भूमि की ‘देवभूमि’, ‘स्वर्गभूमि’ आदि संज्ञाओं में देखा जा सकता है। गुण सम्पन्न ऐसी धरती पर जन्म लेने के लिए देवताओं का लालायित होना स्वाभाविक ही है।

‘गायन्ति देवाकिल गीतकानि धन्यास्तुते भरतभूमि भागे,
स्वर्गापमस्दि मार्ग भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।’⁹

अर्थात् ‘भारत भूमि में जन्म लेने वाले धन्य हैं। देवता भी उनका गुणगान करते हैं। भारत ऐसी भूमि है जहाँ जन्म लेने से स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त हो जाते हैं। भारतवासी स्वर्ग के देवताओं से भी भाग्यशाली हैं। भारतीयों के लिए यह भूमि-जन्मभूमि, पुन्यभूमि, मातृभूमि तथा स्वर्गभूमि सभी कुछ है। ‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’।

सामान्य दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति देशोन्नति एवं देश प्रेम के रूप में मुखरित हुई है। संस्कृत साहित्य का उद्देश्य जन्मभूमि का गौरवगान, उदारता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार था। संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय की भावना का प्रसार था। संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को लेकर चलने वाला साहित्य समष्टि के कल्याण की कामना करता है। यह साहित्य भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आधारशिला है। आजादी के बाद कई पत्र-पत्रिकाएं कलकत्ता से प्रकाशित हुईं जिनमें ज्ञानोदय और नया समाज को राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठा मिली। साहित्य को नई दिशा देने में निश्चय ही ज्ञानोदय पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।¹⁰

क्रान्तिकारी युग और पत्रकारिता- जातीय अस्मिता के उद्धार की चिन्ता पूरे उत्कर्ष बिन्दु पर दिखाई पड़ती है जब लोकमान्य बालगंगाधर तिलक स्वतंत्रता के लिए इतने व्याकुल हो उठते हैं कि उसे प्राप्त करने के लिए सत्य का भी परित्याग करने के लिए उतारू हो जाते हैं।¹¹ इसी उग्र राष्ट्रवाद के साथ कर्जन की साम्राज्यशाही दमन- नीति की सीधी मुठभेड़ थी। भारतीय सन्दर्भ में बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक देशव्यापी उद्वेलन का दशक था, जिसका सूत्रपात कर्जन के बंग-भंग-कांड से हुआ था।

‘वन्देमातरम्’ (26 दिसम्बर 1906) के माध्यम से श्री अरविन्द के दादा भाई नौरोजी को सचेत किया था कि विदेशी सरकार से पूर्ण मुक्ति हो भारतीय राजनीति का प्रधान आदर्श हो सकता है। राष्ट्रवाद की नई उष्मा को जीवित रखने के लिए प्राणाहुति देने को उत्साह-स्फूर्ति स्वदेशी आन्दोलन के नायक तिलक-पथ को ही देश की मुक्ति की राह मानते थे। कुशासन-सुशासन का प्रश्न उनकी दृष्टि में गौण हो गया था, स्वराज्य उनका एकमात्र लक्ष्य था।¹² इस आदर्श से अनुप्राणित राजनीति के देशमान्य नायक बालगंगाधर तिलक थे।¹³

तिलक युग की इसी संवेदना को उस काल की पत्र-पत्रिकाओं ने नाना विध समृद्ध किया। 11 अप्रैल 1903 में ‘भारतमित्र’ के माध्यम से बालमुकुन्द गुप्त ने लार्ड कर्जन को पहली बार संबोधित किया था, ‘अपने भाई लार्डः जब से भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलो का स्वप्न ही देखा है या ‘सचमुच’ कोई करने योग्य काम भी किया है। खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहा की प्रजा के लिए भी कुछ कर्तव्य पालन किया भडकावाजी के सिवा ड्यूटी और कर्तव्य की ओर आपना इस देश में आकर कब ध्यान रहा है।’¹⁴

उग्र राष्ट्रवाद को उसके प्रमुख पुरस्कर्ता ‘वन्देमातरम्’ सम्पादक श्री अरविन्द घोष लोकतांत्रिक राष्ट्रवाद कहना उचित मानते थे। इसी राष्ट्रवाद के प्रमुख प्रवक्ता थे अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराडकर, माधवराय सपे, सुन्दरलाल, लक्ष्मणनारायण गर्दे और झावरमल्ल शर्मा। इसी राष्ट्रीय चेतना को जगाने की जोखिम भरी भूमिका में हिन्दी पत्र-पत्रिकाये-हितवाता, नृसिंह, हिन्दी केसरी और कर्मयोगी क्रियाशील थी। श्री अरविन्द ने खुली भाषा में लिखा था, देश के दारिद्र्य-मोचन का एक

ही उपाय है उसके कारण को दूर करना। दारिद्र्य और भारत की यातना का मूल कारण है अंग्रेजी शासन। इससे मुक्त हुए बिना दीन दशा से उत्तीर्ण होना असम्भव है। स्वातंत्र्य का पथ संघर्ष, त्याग और आत्माहुति की अपेक्षा करता है। इतिहास सरल राह का पक्षधर नहीं होता। एक दूसरे प्रसंग में श्री अरविन्द ने लिखा था यदि कोई जाति अपने दोष से पराधीनता में जा पड़े तो अविकल और पूर्णांग स्वराज्य ही उसका प्रथम उद्देश्य और राजनीतिक आदर्श होना चाहिए।¹⁵

आज हमारे लिए जैसा समय और जैसी अवस्था उपस्थित हुई है, उसको देखते हुए हमारा इस समय प्रधान कर्तव्य हो गया है- रजः और सत्त्व यानी प्रवृत्ति और ज्ञान को जगाकर देश और जगत की सेवा के लिए अपनी जाति की आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक बल को पुनर्जीवित करना है। वेदान्त के प्रवक्ता स्वामी विवेकाकन्द इसी चेतना के आग्रही थे और लोकमान्य तिलक इसी जातीय संस्कार के पोषक थे, हमारी धर्म और ज्ञान की परम्पराएं अत्यंत प्राचीन हैं। धर्म और ज्ञान की परम्पराएं हमारी अन्य सभी देशों से उत्कृष्ट हैं। यदि हम इन परम्पराओं को मानना छोड़ दें तो हमारी जातिवादी विचारधारा को जोड़ने का कोई भी साधन हमारे पास नहीं बचेगा। प्राचीन मान्यताओं को तोड़ने का परिणाम यह होगा कि जाति का शीरजा ही बिखर जायेगा। यह बात हमें हमेशा याद रखनी चाहिए।¹⁶

पुनर्जागरण का यही संस्कार सांस्कृतिक पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की सम्पादन-दृष्टि में दिखाई पड़ती है। तिलक-युग की जातीय ओज- ऊष्मा की प्रभावी अभिव्यक्ति लोचन प्रसाद पाण्डेय और गया गसाद शुक्ल 'सनेही' की कविताओं तथा बालमुकुन्द गुप्त, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराडकर सुन्दरलाल इत्यादि सम्पादकों के तत्कालीन गद्य-लेखन सम्पादकीय टिप्पणियों में दिखाई पड़ती है। 'नृसिंह' में प्रकाशित छबीलदास (मधुर) के पद्यों में तिलक युग के जातीय की सीधी-सरल अभिव्यक्ति हुई है। काशी से 1920 में छपने वाले हिन्दी दैनिक 'आज' के सम्पादक पराडकरजी लोकमान्य तिलक से सम्पादन सम्बन्धी मंत्रणा कर अपेक्षित मार्ग दर्शन लेकर लौटे ही थे तभी तिलक की लोकयात्रा शेष हो गयी।¹⁷

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद एवं भारत जन मानस को जगाने में भारतीय हिन्दी पत्रकारिता का एक अविस्मरणीय योगदान रहा जिसका ऋणी प्रत्येक भारतीय है और हमेशा ही रहेगा।

संदर्भ

1. कविवचन सुधा, सं० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 23-03-1874
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, तदीय- समाज को सम्बोधित करते हुए
3. ब्राह्मण, सं० प्रताप नारायण मिश्र
4. अर्जुन तिवारी 'पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास' पृ० 31
5. पंडित मदन मोहन मालवीय का वक्तव्य
6. पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास - पृ० सं० 31, अर्जुन तिवारी
7. डॉ० विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, राजनीति और दर्शन- पृ० 23
8. अर्थवेदकाण्ड- 12 सूक्त 1/12
9. विष्णु पुराण- 2/3/25/
10. ज्ञानोदय पत्रिका की भूमिका
11. रोमा रोमाः, महात्मा गाँधी जीवन और दर्शन पृ० 19
12. दृष्टव्यः श्री अरविन्दो एवं दन्यू भात इन इण्डियन पॉलिटिक्स नामक आंकलन ग्रन्थ में संकलित श्री अरविन्द द्वारा लिखित 'वन्देमातरम' का सम्पादकीय वक्तव्य (दिसम्बर 1906)
13. डॉ० रमेश चन्द्र मजुमदारः द ब्रिटिश पार्लियामेन्ट्री एवं भारतीय रिलेसन्स पृ० 250
14. 'भारत मित्र' 11 अप्रैल 1903 बालमुकुन्द गुप्त
15. श्री अरविन्दः धर्म और जातीयता, पृ० 88-89
16. लोकमान्य तिलक और उनका युग, पृ० 141
17. दृष्टव्यः सम्पादक- पराडकर पृ० 13

भारतीय राष्ट्रवाद बनाम विश्व

मंगल देव सिंह

पी.जी.डी.ए.वी. (सांध्य) महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र राष्ट्रियता और राष्ट्रवाद क्रमशः अंग्रेजी शब्द Nation, Nationality और Nationalism के हिंदी रूपांतरण हैं जिसका अर्थ जन्म या वंश आधारित एकता की भावना का स्वाभाविक विकास होता है। राष्ट्र के स्वरूप को समझने से पहले राष्ट्र और राष्ट्रियता के अंतर को समझना आवश्यक है। राष्ट्रियता प्रायः ऐसे लोगों के समूह को कहा जाता है जो एक ही प्रजाति, भाषा, धर्म, संस्कृति, भौगोलिक निकटता इत्यादि के कारण जुड़े होते हैं और एक जैसी राजनीतिक आकांक्षाओं तथा ऐतिहासिक विकास के कारण एकता की भावना से प्रेरित होते हैं। परंतु राष्ट्रियता की तुलना में राष्ट्र का आधार बहुत व्यापक है वही राज्य के संगठन की प्रमुख इकाई भी है। राष्ट्र लोगों के समूह को कहा जाता है जो स्थाई रूप से एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं और सामान्य राजनीतिक आकांक्षाओं, सामान्य इतिहास और चेतना के कारण एकता के सूत्र में जुड़ाव का अनुभव करते हैं। हो सकता है कि उनका संबंध भिन्न भिन्न राष्ट्रियताओं से हो अर्थात् भिन्न भिन्न प्रजाति, धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग जब एक ही राज्य के नागरिक के रूप में रहते हैं और राज्य के प्रति अपनी निष्ठा रखते हैं।

वही राष्ट्रवाद एक भावना भी है और विचारधारा भी है। भावनात्मक रूप से व्यक्ति राष्ट्र के प्रति आस्था रखता है और राष्ट्रहित को प्रधानता देता है। एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद यह मांग करता है कि राज्य के ढांचे या राजनीतिक संगठन का निर्माण राष्ट्र की आधारशिला पर होनी चाहिए। जो लोग एक स्वाभाविक समुदाय के रूप में अपने आप को पहचानते हैं और एक राष्ट्र के सदस्य होने का दावा करते हैं उन्हें एक स्वाधीन राजनीतिक प्रणाली के रूप में रहना चाहिए और विश्व व्यवस्था के अंतर्गत अन्य राष्ट्रों के साथ बराबरी का दर्जा और किसी अन्य राष्ट्र के प्रभुत्व या आधिपत्य के अधीन नहीं होना चाहिए।

राष्ट्रवाद के उद्भव के संदर्भ में भारत और पाश्चात्य देशों में मतभिन्नता दिखाई देती है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार राष्ट्रवाद एक आधुनिक संकल्पना है। पाश्चात्य विचारक 'गैलनर' ने अपनी पुस्तक "नेशनल एंड नेशनलिज्म" (1983) में राष्ट्रवाद को आधुनिकता से जोड़कर देखा है और राष्ट्रवाद के उदय को औद्योगिक समाज की आवश्यकता के रूप में वर्णन किया है। वही 'जी.पी. गूच' ने राष्ट्रवाद को फ्रांसीसी क्रांति की संतान माना है। अधिकतर पाश्चात्य विचारक पूंजीवाद के उदय के संदर्भ में ही राष्ट्रवाद की अवधारणा को व्याख्यायित करते हैं। इनके अनुसार राष्ट्रवाद आत्मचेतना का राष्ट्रीय जागरण नहीं है अपितु राष्ट्रवाद राष्ट्र की खोज वहां भी कर लेता है जहां उसका अस्तित्व नहीं होता है। एंडरसन राष्ट्रवाद को एक 'काल्पनिक समुदाय' के रूप में उल्लेख करते हैं। आधुनिक समाज विज्ञान में राष्ट्रवाद को एक आधुनिक चेतना माना जाता है। जिस जिसका उदय 18वीं शताब्दी में यूरोप में हुआ इसके उदय में अन्य कारकों के साथ साथ प्रकाशन पूंजीवाद की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। (एंडरसन 1991; 7-8)

परंतु भारतीय परंपरा में राष्ट्र वैदिक काल से ही अस्तित्व में ऐसा उल्लेख मिलता है। वैदिक संहिताओं में राष्ट्र संघ सामाजिक जीवन का एक भाग था जहां राष्ट्र के संदर्भ में चिंतन सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग समझा जाता था और इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद के विभिन्न मंत्र संहिताओं में विशिष्ट अर्थों में हुआ सलेकिन जिस राष्ट्रवाद की चर्चा वर्तमान संदर्भ में की जाती है भारत में उसका उदय औपनिवेशिक शासन के विरोध में माना जाता है। अंग्रेजी शासन के विरोध में भारतीय जनमानस में राष्ट्रियता की भावना अत्यंत प्रबलता से तरंगित हुई और आधुनिक भारतीय साहित्य में भी उसकी तीव्र गूंज सुनाई दीस उस समय के संस्कृत और हिंदी के विद्वानों ने राष्ट्रियता की भावना को प्रमुखता दीस न केवल प्रमुखता दी लार्ड मैकाले की अंग्रेजी भाषा नीति के विरोध में आंदोलन भी चलाया। इसी राष्ट्रवादी सोच का परिणाम 1885 में कांग्रेस पार्टी की स्थापना के रूप में हुआ।

राष्ट्रवाद को एक भावना के रूप में देखा जाए अथवा विचारधारा के रूप में यह निर्भर करता है राष्ट्रवाद की परिभाषा पर परंतु प्रश्न यह उठता है कि किसी जनसमूह को किन किन लक्षणों के आधार पर एक राष्ट्र के रूप में मान्यता दी जा सकती है? ऐसे अनेक लक्षण बताए जा सकते हैं परंतु जितने विविध रूपों में मानव सभ्यता और आधुनिक राज्य का विकास हुआ है उसे ध्यान में रखते हुए इन लक्षणों की कोई प्रमाणिक और सर्वमान्य सूची नहीं बताई जा सकतीस किसी जनसमूह को राष्ट्रत्व

प्रदान करने की अनेक आधार हो सकते हैं जैसे कि सामान्य भाषाएँ जातिएँ धर्मएँ रीति रिवाजएँ संस्कृतिएँ इत्यादिस ऐसा ही हो सकता है उस समूह के सदस्य एक ही भूत क्षेत्र में एक साथ रहते हैं एक राज्य के नागरिक हूँ एक ही कानूनों से शासित होस लेकिन विश्लेषण करने पर इसके अपवाद भी दिखाई देते हैं।

जहाँ तक सामान्य भाषा का प्रश्न है ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में एक ही भाषा बोली जाती है या एक ही राष्ट्र में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। उदाहरण अंग्रेजी ब्रिटेनएँ ऑस्ट्रेलियाएँ अमेरिका सहित विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में बोली जाती है। स्विट्जरलैंड के लोग 4 भाषाओं का प्रयोग करते हैं फिर भी एक ही राष्ट्र के सदस्य हैं। भारत जैसे राष्ट्र में 300 से अधिक भाषाएँ बोली जाती है उनमें से 22 भाषाओं को संवैधानिक मान्यता भी मिली हुई है। इसके बाद भी भारत एक राष्ट्र के रूप में स्थापित है। अमेरिका में ईसाई और यहूदी एक ही राष्ट्र के सदस्य के रूप में मिल जुल कर रहते हैं; भारत में भी हिंदूएँ मुस्लिमएँ सिखएँ इसाईएँ पारसी बहुत इत्यादि एक ही राष्ट्र की छत्रछाया में रहते हैं। वैश्वीकरण के दौर में तो बहुसंस्कृतिवाद को बढ़ावा मिला है और विश्व के अधिकतर बड़े शहरों में बहु संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है लेकिन इसके बाद भी राष्ट्रवादी भावनाएँ कम नहीं हुई हैं। इस प्रकार राष्ट्र उस जनसमूह का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने आप को एक स्वाभाविक समुदाय के रूप में पहचानते हैं और उनकी सामान्य राजनीतिक आकांक्षाएँ सामान्य हित, और सामान्य नियति की चेतना के कारण एकता के सूत्र में बंधे हुए अनुभव करते हैं।

भारतीय राष्ट्रवाद

विविधताओं से परिपूर्ण भारतीय सभ्यता और संस्कृति अत्यंत प्राचीन रही है। जिस भाषा में भारतीय संस्कृति विकसित हुई वह विश्व की सबसे प्राचीनतम भाषा मानी जाती है। भारतवर्ष एक प्राचीन गौरवशाली राष्ट्र है। आज भारत राष्ट्र की उन्नति और प्रगति वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आत्मसम्मान का आधार है। यद्यपि राष्ट्र और राष्ट्रियता की अवधारणा को लोग आधुनिक संकल्प के रूप में देखते हैं। परंतु प्राचीन भारतीय साहित्य में राष्ट्र के स्वरूप उसके महत्व और तत्व का व्यापक चिंतन दिखाई देता है। लेकिन आधुनिक राजनीतिक चिंतकों का मानना है कि भारत रूढ़ अर्थों में राष्ट्र नहीं थाएँ क्योंकि इसमें राष्ट्रत्व की कमी थी। परंतु औपनिवेशिक शासन के दौरान उन लोगों की ओर से राष्ट्रत्व प्राप्त करने के सतत प्रयास किए गए थे जो राष्ट्रवादी आकांक्षाओं को प्रदर्शित करना चाहते थे। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति 1857 की प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और उसके आसपास के वर्षों में घटी घटनाओं में देखा जा सकता है। जिसमें भारतीय जनमानस में राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ उस समय राष्ट्रवाद की परिभाषा औपनिवेशिक शासन के आसपास ही घूम रही थीस जब जनगणना में अंग्रेजी सरकार ने हिंदू धर्म की एकरूपता और उसके स्वरूप पर सवाल उठाया तो भारतीय नेतृत्व ने इसकी काट प्रतीकों और उसके संस्कारों में खोजना शुरू किया जिसकी परिणति हिंदू धर्म सुधार आंदोलन के रूप में दिखाई दियास जिसका उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों को खिलाफ अभियानएँ और हिंदू धर्म शुद्धि जैसे आंदोलन शुरू हुए। इन आंदोलनों के माध्यम से जहाँ एक और हिंदू धर्म में प्रचलित कुरीतियों से लड़ा जा रहा था वही दूसरी ओर हिंदू धर्म की छतरी को मजबूती से प्रसार करने का प्रयास किया जा रहा थाएँ ताकि इसके स्वरूप में एकरूपता लाकर इसे और मजबूत कर राष्ट्रवादी भावना का विकास किया जाए।

राष्ट्रवाद की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति धर्म के क्षेत्र में प्रस्फुटित होने का कारण जहाँ एक तरफ पश्चिमी शिक्षाएँ संस्कृतिएँ धर्मएँ नई अर्थव्यवस्था वहीं दूसरी तरफ भारत की वर्ण व्यवस्था आधारित परंपरागत धार्मिक दृष्टिकोण तथा व्यवहार से उत्पन्न होने वाली विरोधाभासों ने कई धार्मिक सामाजिक सुधार आंदोलनों को जन्म दियास यूरोपीय धार्मिक सुधार आंदोलन की तरह भारत में भी राष्ट्रीय चेतना को राजनीतिक चेतना से पहले कई धार्मिक तथा सामाजिक आंदोलनों के अनुभव से गुजरना पड़ास इस क्रम में राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाजएँ स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाजएँ विवेकानंद द्वारा संचालित रामकृष्ण मिशन और एनी बेसेंट द्वारा थियोसोफिकल सोसायटी के विचारों का प्रसार प्रमुख था। इनकी शुरुआत तो धार्मिक व सामाजिक सुधार के रूप में हुई लेकिन इनके विचार ने भारत में राष्ट्रवाद की नींव रख दीएँ जिस आधार पर आगे चलकर भारत का स्वतंत्रता संघर्ष लड़ा गया।

धार्मिक संदर्भ में राष्ट्रवाद की भावना को जगाने के लिए बंकिम चंद्र चटर्जी द्वारा वंदे मातरम और तिलक द्वारा गणपति उत्सव का आयोजन भी प्रारंभ किया गया। इस दिशा में थोड़ा और आगे बढ़ते हुए स्वामी विवेकानंद जिन्हें भारतीय राष्ट्रवाद का प्रवक्ता माना जाता हैएँ उन्होंने भारतवासियों को जगाने का प्रयास किया। वे ऐसा शक्तिशाली और आत्मनिर्भर भारत का उदय चाहते थे जो विश्व को वेदांत का संदेश दे सके। वे मानते थे कि भारतीयों को अपने इतिहासएँ संस्कृत और धर्म पर गर्व होना चाहिए और उन्हें समय की आवश्यकताओं के अनुसार अपने को सुधारने का भी प्रयास करना चाहिए। उन्होंने कहा कि “उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त करने तक मत रुको।” विवेकानंद का मत था कि भारत का राष्ट्रीय पुनर्जीवन तभी आरंभ होगा जब लोग निडर हो जाएँ और अपने अधिकारों की मांग करें। इसके अतिरिक्त उन्होंने एकता पैदा करने और सामाजिक बुराइयों अंधविश्वासों तथा जातीय घमंड दूर कर एकता उत्पन्न करने के लिए भी कहा। उनका मानना था कि जातीय व्यवस्था ने भारतीय समाज को विभिन्न वर्गों में बांट दिया है और उनमें हीनता और श्रेष्ठ भावना पैदा कर दी है।

विवेकानंद मानते थे कि भारत में अनेक जातियाँ भाषाएँ धर्म एवं संस्कृतियाँ मौजूद हैएँ परंतु भारतीय लोगों के बीच

एक समान आधार भी है – वह है साझा धार्मिक परंपराएं और संस्कृति जो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रवाद की भावना का आधार है। वही श्री अरविंद घोष का राष्ट्रवाद नव वेदांत दर्शन पर आधारित था जिसमें मानव एकता और ईश्वर में एक तत्वों का विचार किया गयास बंकिम चंद्र से सूत्र लेकर उन्होंने घोषित किया कि भारत वास्तव में भारत माता है जो अपनी करोड़ों संतानों की संयुक्त शक्ति और सत्ता को व्यक्त करती है। भारत माता अपने लोगों की असीम ऊर्जा को दर्शाती है। उन्होंने भारत माता की ईश्वर से तुलना की और कहा कि भारत को मुक्त करना ईश्वर की इच्छा है। इसके अतिरिक्त 30 करोड़ भारतीय लोगों की सेवा करना परम कार्य है। भारत की स्वतंत्रता में एक गहरा ईश्वरी उद्देश्य है क्योंकि भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में समय की उस भावना को अभिव्यक्त किया जो पुनरुत्थान स्थल एशिया और विश्व में सभी परतंत्र लोगों को स्वाधीन करेगी। अरविंद उन लोगों के आलोचक थे जिनका दावा था कि सांस्कृतिक जातीय और भाषाई विविधता और भारतीय समाज में विभाजन के कारण भारत कभी भी एक राष्ट्र नहीं बन सकतास उनका मानना था कि हम पिछले दो शताब्दियों के यूरोप और इंग्लैंड का इतिहास का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि उनकी स्थिति भारत की स्थिति से किसी भी प्रकार अलग नहीं थी। परंतु इंग्लैंड और यूरोप के कई अन्य देश राष्ट्र के रूप में उभरकर सामने आए भारत भी एक राष्ट्र बनाने में सफल हो जाएगा क्योंकि यह इतिहास का नियम है। उनका मानना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता के बिना देश की प्रगति संभव नहीं है और राष्ट्रीय चेतना के विकास में शिक्षा ने मुख्य भूमिका निभाई है।

अरविंद घोष की ही भांति सावरकर के राजनीतिक विचार भी हिंदू दर्शन और संस्कृति पर आधारित हैं। सावरकर हिंदुत्व हिंदू राष्ट्र के प्रबल समर्थक थे अपनी पुस्तक हिंदुत्व में हिंदू की परिभाषा करते हुए लिखा है कि हिंदू वह है जो सिंधु से कन्याकुमारी तक अपनी पितृभूमि या पुण्यभूमि मानता है। उन्होंने हिंदुत्व अथवा हिंदू होने की तीन कसौटियां बताईं। उनके अनुसार पहली कसौटी राष्ट्रीय प्रादेशिक एकता का भाव होना है अर्थात् क्षेत्रीय प्रादेशिक निकटता एकता की भावना का संचार करती है। अतः एक हिंदू के मन में सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक संपूर्ण भौगोलिक प्रदेश के प्रति अनुराग होना चाहिए। उनके अनुसार हिंदुत्व की दूसरी कसौटी जातीय व रक्त संबंधों का जुड़ाव है इन जातियों रक्त संबंधों के जुड़ाव के कारण ही हिंदुओं में ऐसी विशेषताएं विकसित हो गईं जो जर्मन चीनी व इथोपिया से अलग हैं। इसके अतिरिक्त सावरकर के अनुसार हिंदुत्व की तीसरी कसौटी संस्कृति से जुड़ाव है। जिस व्यक्ति को हिंदू सभ्यता और संस्कृति पर गर्व है वह हिंदू है इस प्रकार सावरकर ने राष्ट्र अथवा प्रादेशिकता एकताएँ जाति रक्त संबंध और संस्कृति को हिंदू राष्ट्रवाद के विकास के लिए आधारभूत एवं अनिवार्य तत्व बताया। सावरकर ने कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित भारतीय राष्ट्रवाद से असहमति प्रकट की। उनके अनुसार राष्ट्रवाद मुख्यतः प्रादेशिक होता है अर्थात् भारत में उत्पन्न और पोषित सभी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के भारतीय राष्ट्र का निर्माण करते हैं। सावरकर ने कहा कि राष्ट्रवाद के लिए केवल एक समान प्रदेश का होना अनिवार्य नहीं है प्रजातीय भाषाई धार्मिक व अन्य प्रकार की एकता का होना भी अनिवार्य है। यदि जनता पर सिर्फ प्रादेशिक राष्ट्रवाद आरोपित किया जाएगा जैसा कि पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया में किया गया तो ऐसा राष्ट्र सही अर्थों में जीवित नहीं रह सकतास सावरकर का मानना था कि हिंदुत्व की उपेक्षा करके भारतीय राष्ट्र जैसी कोई चीज ना है ना हो सकती है।

विवेकानंद अरविंद घोष और सावरकर से अलग मत रखते हुए रविंद्र नाथ टैगोर ने राष्ट्र को राजनीति और वाणिज्य के संगठन के सिवाय कुछ नहीं माना। राष्ट्र क्या है? What is Nation? (1901) में उन्होंने रेनन के विचारों का विश्लेषण किया और साम्राज्यवाद को एक राष्ट्र की तार्किक परिणति के रूप में घोषित किया तथा मूलवंश भाषाएँ व्यवसायिक हित धार्मिक एकता तथा भौगोलिक अवस्थिति में मानवता का निर्माण नहीं किया। उन्होंने उदारवाद की कीमत पर संकरण धार्मिक विश्वासों और आक्रामक राष्ट्रवाद के खतरों के प्रति सावधान किया और सर्व मुक्तिवाद अर्थात् बंधुता को एक प्रभावशाली विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। साथ ही टैगोर ने यूरोप में राष्ट्रवाद की धारणा को भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज के लिए बिल्कुल अपर्याप्त बताया। टैगोर कबीर के समन्वयवाद रामानुज रामदास और चैतन्य के भक्तिवाद को भारतीय सभ्यता के एकीकरण में ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। टैगोर ने राष्ट्र को राष्ट्र राज्य और समाज में वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार राष्ट्र-राज्य अपनी भू क्षेत्रीयता यात्रिक नौकरशाही और राजनीति पर आलंबित है जबकि निस्वार्थ वह सृजनात्मक सामाजिक जन की सहजीविता पर आधारित है। इसलिए टैगोर राष्ट्र विचारधारा को स्वदेशी समाज विचारधारा से प्रतिस्थापित करते हैं। टैगोर का स्वदेशी समाज प्यार व सहयोग के ताने-बाने से बुना है।

गांधी जी की राष्ट्रवाद के संदर्भ में मान्यता परंपरागत मान्यताओं के विरुद्ध थी। उनके अनुसार सशस्त्र राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद है जो फासीवाद के रूप में अभिव्यक्त होता है। आशीष नंदी ने गांधी की राष्ट्रवादी अवधारणा की व्याख्या करते हुए कहा कि गांधी हमेशा राष्ट्रवाद को न्याय और समानता के अपने सार्वभौमिक संघर्ष के रूप में परिभाषित करते थे। गांधी का राष्ट्रवाद भारत को राष्ट्रीय सशक्तता प्रदान करने का प्रयास था। गांधी के अनुसार गांव भारतीय सभ्यता की मूलभूत इकाई है। ग्राम स्वराज स्वदेशी चरखा हमें राष्ट्रीय सशक्तता की ओर ले जाएंगे। गांधी हमेशा वैश्विक शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के समर्थक थे। गांधी का राष्ट्रवाद सभी जातियों जनजातियों भाषाओं धर्म एवं अस्मिताओं से बने समुदायों के प्रति सम्मान और सह अस्तित्व पर आधारित था।

वैश्वीकरण एवं राष्ट्र-राज्य

वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्र राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण किया। इसके परिणामस्वरूप आप्रवासियों एवं अल्पसंख्यकों की पहचान एवं हित का मुद्दा महत्वपूर्ण हो गया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने नागरिकता की भूक्षेत्रीयता एवं राष्ट्र राज्य की संप्रभुता के आधुनिकता को चुनौती प्रस्तुत की। वैश्वीकरण और राष्ट्रवाद अपने आप में ही एक विरोधाभासी प्रक्रिया है। सोवियत संघ का विघटन यूरोपियन यूनियन का गठन अमेरिका द्वारा संरक्षण वादी नीतियों की घोषणा ब्रिटेन द्वारा ब्रेजिट का निर्णय जो राष्ट्र राज्य उन्मुखी राष्ट्रवाद के जटिल पक्षों को उजागर करते हैं। आज पाश्चात्य विचारकों में यह विमर्श जारी है के राष्ट्र राज्य के बजाय परराष्ट्रीय निकाय जैसे यूरोपीय यूनियन होना चाहिए तथा सार्वभौमिक मानवीय हितों को प्रधानता दी जानी चाहिए वही दूसरा मत यह है कि राष्ट्र राज्यों को आधिकारिक रूप से समायोजित किया जाए ताकि सभी सामुदायिक समूह अल्पसंख्यकों और छोटे राष्ट्रों की हितों की रक्षा की जा सकती है। इसी परिप्रेक्ष में थामस पागी (2001) और जोसेफ कारस (2013) वैश्विक न्याय एवं खुली सीमा की बात करते हैं। इनका मानना है कि समकालीन वैश्वीकरण में गरीबों के साथ अन्याय किया इसलिए न्याय की पुनर्स्थापना के लिए गरीबों के हितों का पुनर्वितरण होस और अर्थव्यवस्थाओं के बीच सीमाओं को समाप्त करने के पहल होए साक्षी शरणार्थियों को कहीं भी आने-जाने और बचने का अधिकार होना चाहिए सइस प्रकार वर्तमान परिपेक्ष में जहां कुछ विचारक वैश्वीकरण की प्रक्रिया को आवश्यक बता रहे हैं और उसका समर्थन कर रहे हैं तो दूसरी तरफ राष्ट्रवादी भावनाएं भी उतनी ही तीव्रता से उभर रही।

भारत विश्व का विशालतम प्रजातांत्रिक राष्ट्र है। राष्ट्र के रूप में भारत उत्तरोत्तर मजबूती प्राप्त कर रहा है। इसका इतिहास नदी घाटी सभ्यता से लेकर मुगल काल तथा साम्राज्यवाद से होते हुए राष्ट्रवाद के उत्कर्ष की ओर अग्रसर है। विभिन्न समुदाय के एकल सांस्कृतिक मूल्य भारतीय सांस्कृतिक दर्शन एवं संस्थाओं की उर्जा है। जो वेदों उपवेदों उपनिषदों पुराणों स्मृतियों एवं मठ ए धाम ए पीठ ए आश्रम ए महाकुंभ आदि द्वारा अभिव्यक्त होता है। शंकर की ज्ञान मीमांसाए रामानुज ए मीराबाई और चैतन्य की भक्ति मीमांसाए गांधी और टैगोर की सभ्यता मीमांसा अरविंद घोष और सावरकर की धर्म मीमांसा तथा अंबेडकर की न्याय मीमांसा भारतीय राष्ट्रवाद के वैश्विक दृष्टि का परिचायक है। भारतीय राष्ट्र पाश्चात राष्ट्र आज से भिन्न है क्योंकि इसके मूल में दर्शन ए नैतिकताए संस्कृति एवं समन्वय का आधार स्तंभ है। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत की पहचान ही विश्व बंधुत्व और वसुधैव कुटुंबकम की रही है अर्थात भारतीय राष्ट्रवाद संकीर्णता से दूर वैश्विक सहयोग ए न्याय और मानवता का समर्थक रहा है। आज भी भारतीय राष्ट्र की पहचान भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है।

संदर्भ

1. Gupta, k.S.,(2005) The Philosophy of Rabindranath Tagore, Aldershot _ Ashgate
2. Neilson, k, (1995) On Nationalism, Oñford University ,Press
3. Karltn, J,h, (1926) Essays on Nationalism , Mac Milan -p 29
4. Agrawal-V,S, (1952) Arte and Culture ,Sahitya Bhavan Publication Allahabad, p 32
5. Grover, B, & Mehta, Alka , (2010) Modern Indian History , S-Chand and Company , New Delhi-p 26
6. Chaterjee- Parth, (1986) Nationalist Thought and the Colonial World - London
7. Chandra- Bipin, (2004) Modern India _ NCERT -P45
8. Tagor- Ravindranath, (1994) Nationalism , Collection Original in 1917 ,Rupa , Delhi
9. Singh, Abhay,Prasad,(2017) (Ed-) Rashtravaad ka Bharathnama, Orient Blackswan, New Delhi
10. Virmani R,C, (2003) Bharat mein Upniveshvaad aur Rashtravaad , Geetangalee Publication House, New Delhi -p 146

गुरु गोबिंद सिंह के साहित्य में राष्ट्रवाद

डॉ. शोभा कौर

किरोड़ीमल महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

गुरु गोबिंद सिंह के साहित्य में राष्ट्रवाद का अवधारणात्मक रूप तो नहीं है, लेकिन राष्ट्रीय चेतना उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सर्वत्र विद्यमान है। राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद को ठीक-ठीक समझना होगा, तभी गोबिंद साहित्य में विद्यमान राष्ट्रीय चेतना की समुचित पहचान हो पाएगी। राष्ट्र शब्द की अनेक परिभाषाएं विद्वानों ने समय समय पर की हैं, हालाँकि मूल बात सबने एक ही कही है, पर अलग अलग तरीके से। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने राष्ट्र का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'भूमि-भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।' **वासुदेवशरण अग्रवाल, राष्ट्र का स्वरूप, पश्चिमी-पुत्र, पृष्ठ 91**

श्री अरविन्द का मत है कि 'राष्ट्र एक भूमि का टुकड़ा, शब्द अथवा मस्तिष्क की कल्पना मात्र नहीं है। वह एक महत शक्ति है जो कि करोड़ों शक्तियों के योग से बनती है जो राष्ट्र को बनाते हैं, जिस प्रकार भवानी महिषमर्दनी एक विशाल शक्ति के संग्रह और एकता के रूप में लाखों देवताओं की शक्ति से उत्पन्न हुई थी। भारत में जिस शक्ति को हम भवानी भारती कहते हैं, वह तीस करोड़ जनता की शक्तियों की जीवित एकता है।' **श्री अरविन्द, डॉ. रामनाथ शर्मा, पृष्ठ 107**

कुल मिलाकर राष्ट्र केवल एक भौगोलिक इकाई का नाम नहीं है अपितु सभी मनुष्यों की आस्था का सर्वाधिक प्रबल कारक है। राष्ट्र की चेतना प्राचीन काल से चली आ रही है। मुझे लगता है कि जिस बिंदु पर किसी देश के नागरिक सभी प्रकार की विभिन्नताओं को भूला कर एक हो जाते हैं, वह चेतना राष्ट्रीयता है।

राष्ट्रवाद का विषय भारतीय चिन्तन में कदापि सम्भव नहीं है। भारत विभिन्न मिश्रित संस्कृतियों का देश है। समय-समय पर यहाँ आने वाले विदेशी आक्रान्ता चाहे हुण हों या शक, या ईरानी, पठानी, या मुगल, सब लूटपाट और खूनखराबे के बाद इसी धरती पर रच बस कर यहाँ की संस्कृति का अंग बन गए। पर 18वीं शताब्दी के अंत में आने वाले अंग्रेज व्यापारी एक सुनिश्चित सोच को लेकर भारत आये। उन्होंने पहले भारत की संस्कृति का अध्ययन-मनन कर उसमें मनचाहा बदलाव किया और भारतीयों को उनकी जड़ों से काटकर विदेशी सोच और संस्कृति को प्रत्यारोपित कर दिया। उपनिवेशवाद के साथ राष्ट्रवाद की अवधारणा ने जन्म लिया। भारतीय समाज का एक ऐसा वर्ग जो अंग्रेजीदां समाज का समर्थक था उसने राष्ट्र को वाद बनाने वाली अवधारणा का समर्थन किया।

इस प्रकार राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद अलग अलग अर्थ सन्दर्भ युक्त अवधारणाएँ हैं चूँकि गुरु गोबिंद सिंह जी का मुख्य साहित्य काल 17वीं शताब्दी (1666-1709) है, अतः उनके साहित्य में आधुनिक राष्ट्रवाद का स्वरूप नहीं है किन्तु उनका सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्र बोध से ओत-प्रोत है। गुरु गोबिंद सिंह जी की रचनाएँ श्री दशम ग्रन्थ में संग्रहित हैं, जो इस प्रकार है - 1. जापु 2. अकाल स्तुति 3. विचित्र नाटक (आत्मकथा) 4. चंडी चरित्र (प्रथम) 5. चंडी चरित्र 6. वार भगउती जी की (चंडी दी वार) 7. ज्ञान प्रबोध 8. चौबीस अवतार 9. महंदा मीर 10. ब्रह्मावतार 11. रुद्रावतार 12. रुट 13. शस्त्रनाम माला 14. चरित्रेपाख्यान (405 चरित्र) 15. जफरनामा 16. हिकायतें 17. उग्रदंती। ये रचनाएँ मध्ययुग में रची जरूर गई किन्तु यह किसी एक युग, कौम, भाषा, देश और समाज तक सीमित ग्रन्थ नहीं है। मिश्रित संस्कृतियों, मिश्रित धर्मों और मिश्रित भाषाओं तथा मानवीय मूल्यों के समन्वय के कारण इस ग्रन्थ का महत्त्व न केवल राष्ट्रीय अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी है। यू.एन.ओ. ने आधुनिक समय में समानता, स्वतंत्रता और न्याय के जिन सिद्धांतों को किसी राष्ट्र के लिए अनिवार्य घोषित किया, गुरु गोबिंद सिंह जी ने उन्हें न केवल अपने साहित्य में व्यक्त किया अपितु अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाया।

आज जब दुनिया अपने निहित स्वार्थ के चलते फिर से एक विश्व-युद्ध के कगार पर खड़ी है तो ऐसे में गुरु गोबिंद सिंह जी की राष्ट्रीय चेतना को समझना प्रासंगिक होगा क्योंकि उन्होंने अपने समय में मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित किया था और आज 21 वीं सदी के दूसरे दशक में वह मूल्य व्यवस्था बहुत आवश्यक हो गई है। तथाकथित आधुनिकतावाद के शिकार भारतीय जनमानस के मन मस्तिष्क में एक मिथ्या अवधारणा बैठा दी गई है कि जो कुछ भी आधुनिक है वही अच्छा है और

मध्यकाल बिल्कुल अवांछित है क्योंकि मध्यकाल के साहित्य का केंद्र-बिंदु ईश्वर है और आधुनिक उन्नति और तकनीक के विकासशील इस समाज में अध्यात्म की कोई आवश्यकता नहीं। जबकि सच्चाई यह की भारत का मध्यकाल यूरोप का मध्यकाल नहीं है। दूसरे, आधुनिकता को समय सीमा में कैद कर दिया है कि सन 1800 से आधुनिक युग आरम्भ माना जाता है, जबकि यदि आधुनिकता की परिभाषा देखें तो वह सब लक्षण हमें संत कवियों के साहित्य में बखूबी देखने को मिल जाते हैं। जैसे-मानवीयता की अवधारणा या परम्पराओं पर प्रश्नचिह्न लगाना या भाग्य की अपेक्षा कर्म पर बल देना। इस दृष्टि से देखा जाये तो चाहे कबीर का साहित्य हो या संत रैदास का या नानक जी का या गुरु गोबिंद सिंह जी का, सभी में आधुनिक चेतना विद्यमान है।

गोबिंद साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीयता के स्वयं की पड़ताल के पूर्व मैकाले के इन शब्दों पर गौर करना अनिवार्य है, जो उनकी डायरी में प्रकाशित हुए, 'मैं भारत के कोने-कोने में घूमा हूँ और मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं दिया जो भिखारी हो, चोर हो, इस देश में मैंने इतनी धन दौलत देखी है, इतने उच्चे चारित्रिक आदर्श और इतने गुणवान मनुष्य देखे हैं कि मैं नहीं समझता कि हम कभी इस देश को जीत पाएंगे, जब तक कि उसकी रीढ़ की हड्डी को नहीं तोड़ देते जो हैं। उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत। इसलिए मैं प्रस्ताव रखता हूँ कि हम इसकी पुरातन शिक्षा व्यवस्था, उसकी संस्कृति को बदल डालें : क्योंकि यदि भारतीय सोचने लगेंगे कि जो भी विदेशी है और अंग्रेजी है, वह अच्छा है और उनकी अपनी चीजों से बेहतर है तो वे अपने आत्मगौरव और अपनी ही संस्कृति को भुलाने लगेंगे और वैसे ही बन जायेंगे जैसे हम चाहते हैं - एक पूरी तरह से दमित देश।'

1708 में गुरु गोबिंद सिंह जी का देहावसान हुआ और 1835 में मैकाले का यह वक्तव्य आता है। सोचना जरूरी है कि गुरु जी के देहावसान के लगभग सवा सौ साल के अंदर अंग्रेज मैकाले भारत के उच्च आदर्श चरित्र, धनवान स्थिति को बताते हुए आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक विरासत की बात कर रहा है तो अब मूल्यांकन करना होगा कि गुरु गोबिंद सिंह के समय देश की क्या परिस्थितियाँ थी और उन्होंने क्या आमूलचूल परिवर्तन किये कि भारत की उपरोक्त तस्वीर हो पाई जिसका जिक्र मैकाले कर रहा है।

वास्तव में 'निश्चय कर अपनी जीत करों' के उद्घोषक गुरु गोबिंद सिंह जी ने भारतीय इतिहास और संस्कृति की उस जीत को निश्चित करके दिखाया जो इस राष्ट्र की वास्तविक पहचान थी, पर पिछली 8-10 शताब्दियों से विदेशी आक्रांताओं के कारण वह पहचान धूमिल पड़ गई थी। लम्बे समय तक शक, हूण, पठान, तुर्क, मुगलों की गुलामी के कारण भारतीय यह भूल गए थे कि उनका कोई अस्तित्व भी था या कोई स्वर्णिम अतीत भी था। 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' हजारों बार गाया जाता है, लेकिन ये कुछ बात थी क्या, इसी का विस्तार ही सम्पूर्ण गोबिंद साहित्य में विद्यमान है। मध्यकालीन घोर सांस्कृतिक अवमूल्यन के समय गुरु जी ने अपनी तलवार के अतिरिक्त कलम के माध्यम से भी एक सशक्त योद्धा की भूमिका निभाई। भारतीय अध्यात्म, धर्म नीति, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थनीति, पर्यावरण और साहित्य को उन्होंने न केवल बचाया अपितु संरक्षण और संवर्धन भी किया। साथ ही उन्होंने एक नया इतिहास भी रचा जिससे भारतीय राष्ट्र में नई संस्कृति ने जन्म लिया।

उन्होंने समय की नब्ज को पहचानते हुए भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम अतीत पर पड़ी सदियों की धूल को साफ कर उसकी वास्तविक तस्वीर को प्रस्तुत किया। परम्परा पर प्रश्नचिह्न लगाना आधुनिकता बोध है और गुरु गोबिंद सिंह जी इस दृष्टि से पूर्ण रूपेण आधुनिक हैं क्योंकि उन्हें जहाँ आवश्यकता पड़ी वहीं उन्होंने सड़ी-गली परम्परों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने मूर्ति-पूजा और नकली पाखंडों का घोर विरोध किया तो साथ ही स्वस्थ विकल्प के रूप में वैदिक और उपनिषदिक मूल्यों को पुनः स्थापित किया। यह ज्ञातव्य है कि वैदिक समय में मूर्ति पूजा नहीं थी। इस प्रकार गुरु जी ने हमें हमारी जड़ों से जोड़ा।

तथाकथित आधुनिक काल में अंग्रेजों के षड्यंत्र के कारण भारतीय शिक्षा व्यवस्था से अध्यात्म की शिक्षा को हटा दिया गया और हम अंग्रेजों की समझ पर फूले नहीं समाते.... पर दुर्भाग्यवश अध्यात्म प्रधान इस देश ने अपने आत्मिक विकास को फिर से ढोंगी बाबाओं के हाथ सौंप दिया जिनके सेक्स स्कैंडल रोज निकलते हैं। जबकि गुरु गोबिंद सिंह जी ने भारत की आत्मा अध्यात्म को सरल ढंग से प्रस्तुत किया था। उन्होंने एक ईश्वर के नाम स्मरण को महत्त्व दिया जिसका उल्लेख वेदों और उपनिषदों में मिलता है।

गुरु गोबिंद सिंह जी की सबसे बड़ी भूमिका इस देश से जाति के आधार पर भेदभाव को दूर कर समानता के आधार पर वापिस एक समाज का संगठन निर्मित किया जिसे खालसा पंथ कहते हैं। वास्तव में गुरु जी एक सच्चे सोशल इंजीनियर थे, उन्होंने भारतीय समाज को फिर से नींव से ठीक किया। कर्म के आधार पर जातियाँ बनी थी, जो बाद में जातिवाद में जकड़ गई। गुरु जी ने फिर से दलितों के हाथ में शस्त्र और शास्त्र पकड़ा कर उन्हें क्षत्रियों की कौम में बदल दिया। आधुनिक युग में भले ही दलित सिर्फ अम्बेडकर को अपना भगवान माने पर गुरु गोबिंद सिंह जी ने यह कार्य बहुत पहले कर दिखाया था। भजन, भोजन और युद्ध में उन्होंने जाति के सारे नियमों को बिल्कुल बदल दिया।

गुरु जी भारतीय राष्ट्र में भाषा के वर्चस्व को समाप्त कर संस्कृत के सभी श्रेष्ठ ग्रन्थों का जनमानस की भाषा में अनुवाद किया और अखिल भारतीय स्तर के विद्वानों को अपने दरबार में प्रश्रय देकर उनसे भी यही कार्य करवाया।

अतीत में सब कुछ स्वर्णिम और ग्राह्य नहीं होता, परिवर्तन और निरन्तरता ही किसी संस्कृति को जीवंत बनाये रखने में सक्षम होते हैं। गुरु जी ने अपने मन्तव्य की पूर्ति हेतु भारतीय वैदिक औपनिषदिक, पौराणिक और ऐतिहासिक ज्ञान को युगीन मांग के अनुरूप प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने साहित्य में भारत की श्रेष्ठ उपलब्धियों के विषय में बताया कि भारत खेती और सिंचाई की सबसे प्राचीन भूमि है। सुजलाम-सुफलाम इस धरती पर हजारों वर्ष पहले अनेक प्रकार के धन-धान्य की खेती होती थी। विचित्र नाटक रचना में लव कुश के वंशजों का उल्लेख करते हुए वे उस स्वर्णिम अतीत की बात करते हैं। सभ्यता के इतिहास में ऋतुओं के ज्ञान के साथ खेती का ज्ञान सिद्ध करने में भारतीय सबसे पहले थे। लोकशाही की जन्मभूमि भी भारत ही है।

अन्तरिक्ष विद्या का ज्ञान सबसे पहले भारत में हुआ था जिस समय विश्व के कई देश अज्ञान की नींद में सोये थे तब भारतीय नक्षत्रों को नाप रहे थे। चौबीस अवतार नामक रचना में गुरु जी इस पृथ्वी पर मानव के विकास की वैज्ञानिक अवस्थाओं का परिचय देते हैं। अंकशास्त्र और गणित का उद्भव भी भारत में हुआ था। विश्व के इतिहास में रामायण और महाभारत सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ हैं। गुरु जी ने इन रचनाओं का पुनर्लेखन अपने योद्धा जोश को जगाने के लिए किया। भारतीय आयुर्वेद विश्व का सबसे प्राचीन आरोग्य विज्ञान है। महर्षि चरक विश्व के पहले फिजिशियन थे और महर्षि सुश्रुत विश्व के पहले प्लास्टिक सर्जन। चरित्रोपाख्यान में इसका जिक्र विस्तार से मिलता है। इन सबका उल्लेख गोविंद साहित्य का सबसे सुदृढ़ पक्ष है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि भारत राष्ट्र की सम्पूर्ण संकल्पना हमें गोविंद साहित्य में मिलती है। उन्होंने अपनी कथनी और करनी के माध्यम से भारत की कायाकल्प करके दिखाई। सदियों से जो जड़ता फैली थी उन्होंने कर्म के सिद्धान्त से उसे झकझोर कर सक्रिय कर दिखाया। 'मानस की जात सबै एको पहिचानिबो' का सूत्र वाक्य प्रदान किया। शुभ कर्मन को जीवन का लक्ष्य बनाया। सोच बदल देने से सचमुच क्या नहीं बदला जा सकता! पूरे भारत में संत सिपाही के नए रूप में उनकी राष्ट्र संकल्पना आज नितान्त प्रासंगिक है, इसे राष्ट्रवाद के संकुचित दायरे में नहीं समझा जा सकता। राष्ट्रवाद पश्चिम के अन्धानुकरण से आई विचारधारा है, जबकि राष्ट्रीयता के मूल्य भारत वर्ष वैदिक समय से चले आ रहे हैं। गुरु गोविंद सिंह भारतीय राष्ट्र के पुनर्निर्माता हैं। उनके दिखाए रास्ते पर चलते हुए ही भारत ने पुनः अपना खोया हुआ स्वाभिमान प्राप्त किया। लेकिन भारतीय समाज की इस विडम्बना को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि बहुत तुच्छ स्वार्थों के चलते गुरु जी के इस संसार से जाते ही सौ सवा सौ सालों के अंदर हम फिर से अंग्रेजों के गुलाम बन गए और आज हम जिस नव साम्राज्यवाद की लपेट में ग्रस्त हैं हमें फिर से अपने इतिहास और संस्कृति के उन पन्नों में झांकना होगा कि हम आखिर एक तरह की गलती बार-बार क्यों दोहरा रहे हैं। अन्यथा गुरुओं की हमें स्वतंत्र कराने में की गई कुरबानी व्यर्थ साबित होगी।

संदर्भ

- 1 डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, राष्ट्र का स्वरूप, पृथ्वी-पुत्र, पृष्ठ 91.
- 2 श्री अरविन्द, डॉ. रामनाथ शर्मा, पृष्ठ 107.
- 3 डॉ. महीप सिंह, गुरु गोविंद सिंह की हिंदी कविता, पृष्ठ 120.
- 4 डॉ. हरीश अरोड़ा, गुरु गोविंद सिंह के काव्य में राष्ट्रीय अस्मिता, पृष्ठ 53-54.
- 5 डॉ. धर्मपाल मैनी, गुरु गोविंद सिंह के साहित्य में भारतीय संस्कृति के तत्व, पृष्ठ 36.
- 6 डॉ. हुकुमचंद राजपाल, गुरु गोविंद सिंह की नैतिक मान्यताएं, पृष्ठ 62-63.
- 7 डॉ. शोभा कौर, संस्कृति नियंता : गुरु गोविंद सिंह (सम्पादित)
- 8 डॉ. शोभा कौर, भारतीय समाज और सिख गुरु
- 9 डॉ. शोभा कौर, गुरु गोविंद सिंह कृत रुद्रावतार : एक अध्ययन

भारतीय जीवन मूल्य और पं.दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता

सोनम शर्मा

मैट्स विश्वविद्यालय
रायपुर (छत्तीसगढ़)

यू तो इस धरा पर ईश्वर अनेक विभूतियों को जन्म देता है, सृजन करता है। इनमें प्रत्येक को कोई न कोई विशिष्ट गुण अवश्य प्रदान करता है। पर कुछ ऐसे विभूतियां भी जन्म लेती हैं जिनकी प्रतिभा बहुआयामी होती है। यदि उन्हें विकसित होने का अवसर मिलें तो वे महान् होने का गौरव प्राप्त करते हैं। पं.दीनदयाल उपाध्याय जी ऐसे ही बहुआयामी महान् व्यक्तित्व में कुशल अर्थचिन्तक, संगठन शास्त्री, शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ, वक्ता, लेखक और पत्रकार आदि कितनी ही प्रतिभाएं समाहित थी। ये अलग बात है कि प्रमुख रूप से उनका संगठन कौशल ही उजागर हो सका। हालांकि उनकी गिनती उस दौर के प्रतिष्ठित पत्रकारों में भी होती थी। उनके पत्रकारीय व्यक्तित्व को समझने के लिए सर्वप्रथम यह बात ध्यान रखनी होगी कि दीनदयाल जी उस युग की पत्रकारिता का प्रतिनिधित्व करते थे। जब पत्रकारिता एक मिशन हुआ करता थी न कि व्यवसाय। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के जीवन, दर्शन और उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला जाए तो उनका एक मात्र लक्ष्य था अंत्योदय अर्थात् अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति को समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। जिसके लिए वे सदैव प्रतिबद्ध थे।

दीनदयाल जी ने अपने राजनीतिक लेखों में एक नयावाद पैदा किया जिसे समन्वयवाद नाम दिया। अत्यंत महत्वकांक्षी लोगों के लिए उन्होंने लिखा कि शिखर पर बैठने की इच्छा तो सबकी होती है मगर मंदिर के शिखर पर तो कौए भी बैठते हैं, हमें तो उस नींव का पत्थर बनने की आकांक्षा करनी चाहिए, जो अपने कंधों पर मंदिर को भव्य स्वरूप देता है। दीनदयाल जी ने इसे खुद पर भी लागू किया। अनेकता में एकता और विभिन्न रूपों में एकता की अभिव्यक्ति, भारतीय संस्कृति की सोच रही है उनकी पत्रकारिता और लेखन के माध्यम से उन्होंने हमेशा सामाजिक समरसता का कार्य किया है।

भारतीय लोकतंत्र और समाज के प्रति उनके विचार

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी की अवधारणा थी कि आजादी के बाद भारत के विकास का आधार भारतीय संस्कृति हो न कि अंग्रेजों द्वारा छोड़ी गई पश्चिमी विचारधारा, हालांकि भारत में लोकतंत्र आजादी के तुरंत बाद ही स्थापित कर दिया गया था। पर दीनदयाल जी के मन में आशंका थी कि लम्बे समय तक गुलामी के बाद भारत ऐसा नहीं कर पाएगा। उनका विचार था कि लोकतंत्र भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है न कि पश्चिम का उपहार। वे इस बात पर बल दिया करते थे कि कर्मचारियों और मजदूरों को भी सरकार की शिकायतों पर ध्यान देना चाहिए। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान करना प्रशासन का कर्तव्य होना चाहिए। उनके अनुसार लोकतंत्र अपनी सीमाओं से परे नहीं जाना चाहिए। जनता की राय उनके विश्वास और धर्म के आलोक में सुनिश्चित करना चाहिए।

एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल

पं.दीनदयाल जी द्वारा स्थापित “एकात्म मानववाद” की अवधारणा पर आधारित राजनीतिक दर्शन, भारतीय जनसंघ की देन है। उनके अनुसार “एकात्म मानववाद” प्रत्येक मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एक एकीकृत कार्यक्रम है। उन्होंने कहा कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत पश्चिमी अवधारणों जैसे-व्यक्तिवाद लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद पर निर्भर नहीं हो सकता है। उनका विचार था कि भारतीय मेधा पश्चिमी सिद्धांतों और विचारधाराओं से घुटन महसूस कर रही है। परिणाम स्वरूप मौलिक भारतीय विचारधारा के विकास और विस्तार में बाधा आ रही है। ऐसे समय में जब देश को सशक्त राजनीतिक विकल्प एवं विपक्ष की आवश्यकता थी, तब दीनदयाल उपाध्याय जी ने श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ मिलकर देश की राजनीति को दो ध्रुवीय करने का कार्य किया था, उन्होंने राजनीति को समाज कल्याण के मार्ग के रूप में चुना था। एकात्म मानववाद के रचयिता पं.दीनदयाल उपाध्याय जी ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों को पुनः व्याख्यायित करते हुए अंत्योदय की बात की।

सुप्रसिद्ध राष्ट्रवादी चिंतक प्रो.मुरली मनोहर जोशी ने दीनदयाल जी के एकात्म मानवदर्शन का विश्लेषण करते हुए लिखा है- ‘एकात्म मानववाद किसी एक विशेष राजनैतिक नारे से नहीं बंधा है। यह विचार मानव और मानव के समाज के मूल प्रकृति के विश्लेषण पर आधारित है।’

लेखक व चिंतक के रूप में दीनदयाल

पं.दीनदयाल उपाध्याय जी एक प्रखर विचारक तो थे ही वे एक उच्च श्रेणी के लेखक भी थे। एक बार तो वे 16 घण्टे लगातार बैठकर एक लघु उपन्यास 'चन्द्रगुप्त मौर्य' ही लिख डाला। बाद में उन्होंने हिन्दी में 'शंकराचार्य का जीवन चरित्र' भी लिखा। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक डॉ. हेडगेवार के अधिकृत जीवन चरित्र का मराठी से हिन्दी अनुवाद भी किया। वे समसामयिक विषयों पर अपने विचारों को केवल भाषण के माध्यम से ही नहीं व्यक्त करते थे बल्कि समाचार पत्रों के माध्यमों से अपने पाठकों तक पहुंचाते थे। दीनदयाल जी सरल हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक थे। वे संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षधर नहीं थे। उनकी भाषा इतनी सरल थी कि उसे बड़े ही आसानी से समझा जा सकता था। सरल भाषा के संदर्भ में उनका कहना था कि इस बात से इनकार नहीं करता कि भाषा सरल होनी चाहिए, पर सरलता का मापदण्ड क्या है? उसे सर्वाधिक जनता की समझ में आना चाहिए। यदि यही हमारा उद्देश्य हो तो नई हिन्दी संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिए।

पं.दीनदयाल और पत्रकारिता

पं.दीनदयाल उपाध्याय जी का परिचय बस इतना ही नहीं है कि वे जनसंघ के अध्यक्ष थे व एकात्म मानववाद के प्रणेता। वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारक ही नहीं बल्कि एक ऐसे पत्रकार थे जिनका नाम किसी समाचार पत्र-पत्रिका में सम्पादक के रूप में कभी प्रकाशित नहीं हुआ और न ही कभी किसी कार्यालय में उनके लिए कुर्सी लगी। वे किसी पत्र के प्रतिनिधि के रूप में कभी सरकारी मान्यता भी नहीं पाये। न ही किसी समाचार पत्र से लेखन के लिए कोई मानदेय प्राप्त किया फिर भी उन्होंने भारतीय पत्रकारिता में अनेक वरिष्ठ पत्रकारों का मार्गदर्शन किया और सच्चे अर्थों में मिशनरी भाव से पत्रकारिता के दायित्वों का निर्वहन किया। उन्होंने पत्रकारिता को आदर्श मानते हुए अपनाया था न कि किसी व्यवसाय के रूप में। उनकी दृष्टि पत्रकार की थी पर लेखनी साहित्यकार की। दीनदयाल जी ने अपने विचारों को पत्रकारिता के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाने का कार्य किया था। वह पत्रकारिता जो आजादी के उपरांत अपने लिए किसी लक्ष्य अथवा सन्मार्ग की तलाश में थी। उसे दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राह दिखाने का कार्य किया था। सन् 1947 में दीनदयाल जी ने राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी। जिसके अंतर्गत स्वदेश, राष्ट्रधर्म और पांचजन्य नामक पत्र प्रकाशित होते थे। राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड ने वचनेश त्रिपाठी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चन्द्र मिश्र, अटल बिहारी बाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री जैसे श्रेष्ठ पत्रकारों को तैयार किया था। पं.दीनदयाल जी ने 'पांचजन्य', 'राष्ट्रधर्म' एवं 'स्वदेश' के माध्यम से राष्ट्रवादी जनमत निर्माण करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनके लेख पांचजन्य के घोष वाक्य के अनुरूप ही राष्ट्र जागरण का शंखनाद करते थे। राष्ट्रीय एकता के मर्म को समझाते हुए उन्होंने लिखा था "यदि हम एकता चाहते हैं तो भारतीय राष्ट्रीयता जो हिंदू राष्ट्रीयता है तथा भारतीय संस्कृति जो हिंदू संस्कृति है उसका दर्शन करें। उसे मानदंड बनाकर चलें। भागीरथी की पुण्यधाराओं में सभी प्रवाहों का संगम होने दें। यमुना भी मिलेगी और अपनी सभी कालिमा खोकर गंगा में एकरूप हो जाएगी।" वे देश में बदलाव के लिए नारे एवं बेवजह प्रदर्शनों को कभी प्राथमिकता नहीं दी। देश की समस्याओं के निवारण के लिए वह पुरुषार्थ को ही महत्वपूर्ण मानते थे। पं.दीनदयाल उपाध्याय जी ने राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु राष्ट्रधर्म प्रकाशन की स्थापना की थी। अपने इस ध्येय पथ पर वे संपूर्ण जीवन अनवरत चलते रहे। जीवन में अनेक दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी दीनदयाल जी ने अपने पत्रकारीय जीवन के प्रवाह को कहीं रुकने नहीं दिया था।

स्वतंत्रता के पश्चात् जब भारत का पत्रकारिता जगत लक्ष्यविहीन अनुभव कर रहा था। जब दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को उसका ध्येय मार्ग दिखलाने का कार्य किया था। धीरे-धीरे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ख्याति प्राप्त करता जा रहा था और इन पत्रों के माध्यम से देश में संघ का प्रचार-प्रसार और भी तेजी पकड़ता जा रहा था। दूसरी ओर कांग्रेस सरकार ने संघ पर लगाम लगाने का निर्णय लिया और शासन ने इन समाचार पत्रों प्रतिबंधित कर दिया। लेकिन पं.दीनदयाल जी ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए कार्य किया। सरकार द्वारा पांचजन्य पर प्रतिबंध लगाए जाने पर उन्होंने 'हिमालय पत्रिका', नाम से दूसरा समाचार पत्र प्रकाशित करना प्रारंभ कर दिया। यह समाचार पत्र भी लोकप्रिय हो गया। सरकार ने इसे भी प्रतिबंधित कर दिया। तब उन्होंने 'देशभक्त' नाम से प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। सरकार के समझ में नहीं आया कि आखिर क्या किया जाए? वह दीनदयाल जी की कुशाग्र बुद्धि के समक्ष निःसहाय-सी हो गई। लेकिन दीनदयाल जी को रोक नहीं पाई। अंततः सरकार ने उन्हें पकड़ने की योजना बनाई, किन्तु वह दीनदयाल जी को तब तक नहीं पकड़ पाई जब तक दीनदयाल जी ने स्वयं को न पकड़वा दिया। ये देख राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने इसके विरोध में सत्याग्रह किया।

इस विरोध का संचालन दीनदयाल जी के हाथों में था। उन्होंने इसका संचालन शांतिपूर्वक इस प्रकार किया कि सरकार ने कार्यकर्ताओं को कई प्रकार से उत्तेजित करना चाहा, लेकिन कोई भी उत्तेजित नहीं हुआ और विरोध शांतिपूर्वक हुआ और दीनदयाल जी ने अपनी नेतृत्व क्षमता की प्रतिभा प्रदर्शित की। इस प्रकार पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने कदम रखे और इस क्षेत्र में भी नए आयाम स्थापित किए। समाचार पत्रों का सम्पादन किया। उनके माध्यम से लोगों को प्रेरित किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण लेख भी लिखे जो समय-समय पर उनके समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहे। सादा जीवन, उच्च विचार और व्यवहार में सरलता के धनी पंडित दीनदयाल उपाध्याय

जी आजीवन ब्रह्मचारी रहे।

वे बोलते कम थे, सुनते अधिक थे। अतिशयोक्ति और प्रचार में उनकी रुचि नहीं थी। वे समन्वयवादी थे, समझौतावादी थे, किन्तु सिद्धांतों से गिरकर और परिस्थिति से पराजित होकर उन्होंने न समझौता किया, न समन्वय। जनसंघ को नवपथ की ओर अग्रसर कर राजनीति के विशाल प्रांगण में खड़े कर देने का साहस और जीवटता केवल दीनदयाल जी में ही थी। इस मुखर और सच्चे राष्ट्रभक्त की लखनऊ से पटना जाते हुए रात्रि के अंधकार में चलती गाड़ी में क्रूरतापूर्वक हत्या कर दी गई। 11 फरवरी 1968 को सभी भारतवासियों ने यह दुखद समाचार सुना कि पं. दीनदयाल जी का शव मुगलसराय स्टेशन के निकट पाया गया। यह समाचार सुनकर भारत का जनमानस हिल गया। भारत शोक सागर में डूब गया।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी पत्रकारिता में किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करते थे, वे आत्म-साक्षात्कारी थे। लिखते समय मानों उनकी समाधि लग जाती थी जनकल्याण और देशहित उनकी लेखनीय में सर्वोपरि होता था। उनका मत था कि जब तक विदेशी समाचार, अंग्रेजी भाषा, राजनीति, एक ही समाचार एजेंसी और सरकारी सूचना विभाग के एकाधिकार को समाप्त नहीं किया जाएगा, तब तक इसका विकास संभव नहीं है। इसके लिए उन्होंने हिन्दुस्तान समाचार को परिपुष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। दीनदयाल जी के सहयोगियों और परिचितों की यह आम राय रही है कि यदि वे राजनीति पर नहीं जाते तो निश्चित ही एक सफल पत्रकार और लेखक होते। राजनीति के उलझन भरे माहौल में निरंतर काम करते हुए भी पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका योगदान अतुलनीय है। आज पत्रकारिता का पूरी तरह व्यवसायीकरण हो चुका है। संस्था के मालिक लाभ और राजनीतिक शक्ति अर्जित करने के लिए मीडिया के स्वामी बने हुए हैं। पत्रकार की मूल प्रेरणा भी आज अर्थोपार्जन और राजनीतिक शक्ति अर्जित करने का माध्यम बन गया है। संस्था के स्वामी और पत्रकारों की यह प्रेरणा गैर-वाजिब है, या नहीं यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु इनता निश्चित है कि राष्ट्रीय और सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ मीडिया को कोई समझौता नहीं करना चाहिए।

संदर्भ

1. पं. दीनदयाल व्यक्तित्व एवं कर्तव्य, डॉ. श्रीकांत सिंह, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन तत्व जिज्ञासा, दत्तोपंत ठेंगड़ी, सुरुचि प्रकाशन नई दिल्ली।
3. पं. दीनदयाल विचार दर्शन राजनीतिक चिंतन, भालचन्द्र कझणाजी केलकर सुरुचि प्रकाशन नई दिल्ली।
4. एकात्म मानववाद विवेचना दीनदयाल उपाध्याय, पं. दीनदयाल उपाध्याय मानव अध्ययन शोधपीठ, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय काठाडीह रायपुर (छ.ग.)
5. दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार, डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, वसुधा पब्लिकेशन नई दिल्ली।

भारतीय पत्रकारिता और राष्ट्रवाद चिन्तन

श्रीमती स्नेहलता

शोधार्थी, नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय

शिकोहाबाद, फिरोजाबाद

‘एक समय आयेगा, जब हिन्दी पत्र रोटेरी पर छपेंगे, सम्पादक को ऊँची तनखाहें मिलेगी, सब कुछ होगा किन्तु उनकी आत्मा मर जायेगी, सम्पादक, सम्पादक न होकर मालिक का नौकर होगा।’ –बाबूराव विष्णु पराडकर।

जन भावनाओं को उभारने, जनता को जागरूक करने और जनमत का निर्माण करने का महत्वपूर्ण कार्य, लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ पत्रकारिता द्वारा किया जाता है। बाद में इन्हीं जनभावनाओं को सदन में रखा जाता है जिनके आलोक में विभिन्न नियम, कायदे कानून बनते हैं और ये कायदे कानून पत्रकारिता पर भी समान रूप से लागू होते हैं। पत्रकारिता कोई साधारण वस्तु नहीं है। वह अपने अन्तर में अनेक प्रकार की शक्तियाँ सजोये हुए हैं। यह मानव को निरन्तर सन्देश देने वाली एक विधि है। वस्तुतः यह एक वैज्ञानिक पद्धति है जिसके द्वारा हम देशकाल, वातावरण, जाति, लिंग और धर्म से परिचित होते हैं। हम चाहे किसी नगर, किसी घर के किसी कोने में बैठे हों पत्रकारिता के जरिए वहाँ से हम सम्पूर्ण विश्व की गतिविधियों से सीधा साक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं।

पत्रकारिता एक ऐसा दर्पण है जिसमें समाज की, जनजीवन की विविध छवियों रंग-रेखाओं को स्पष्टतः उभरता हुआ देखा जा सकता है। जनतंत्र में जनता सब की कसौटी है, पहले पत्रकारिता के विशेष साधन नहीं थे सन्देश या वार्ता पहुँचाने में समय लगता था फिर भी मनुष्य के विचार देश-विदेश में फैले, परिवर्तन आये, जनजीवन कभी कृषि युग में तथा विज्ञान युग में प्रभावित होता चला गया, साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रान्ति आई। पत्रकारिता के क्षेत्र का बहुआयामी प्रचार और प्रसार हुआ। ‘लोकतन्त्र पर आधारित देश की प्रगति और उन्नति के लिए आधुनिक तौर-तरीकों पर अमल आवश्यक है। इसी से देश, समाज और देशवासियों का हित होगा।’ स्वतंत्रता आन्दोलन को सफल करने में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस समय पत्रकारिता को मिशन के तौर पर किया जाता था और पत्रकारिता के माध्यम से निस्वार्थ भाव से सेवा की जाती थी। भारत में पत्रकारिता की नींव रखने वाले अंग्रेज ही थे। भारत में सबसे पहला समाचार पत्र जेम्स अगस्टस हिक्की ने वर्ष 1780 में निकाला था जिसका नाम बंगाल गजट था। अंग्रेज होते हुए भी उन्होंने अपने पत्र के माध्यम से अंग्रेजी शासन की आलोचना जिससे परेशान गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने उन्हें प्राप्त डाक सेवाएं बन्द कर दी और उनके पत्र प्रकाशन के अधिकार समाप्त कर दिए।

“सांस्कृतिक पुनर्जागरण को जिस आँधी का नेतृत्व 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु केशव चन्द्र सेन राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द जैसे लोगों ने किया उसके विस्तार में पत्रकारिता के माध्यमों ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति का परिचय दिया। हिन्दी भाषा के परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को पत्रकारिता के माध्यम ने नई दिशा दी।”² राजा राममोहन राय ने पत्रकारिता द्वारा सामाजिक पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण योगदान किया। राजा राममोहन राय द्वारा प्रकाशित अखबार ‘हिन्दू हेराल्ड’ था जो कि बंगला, फारसी और हिन्दी में निकला जिसे आज भी ‘बंगदूत’ के नाम से जाना जाता है।

हिन्दी भाषा में प्रथम समाचार पत्र का सम्पादन पं० जुगलकिशोर को जाता है उन्होंने 1826 में ‘उदन्त मार्तण्ड’ पत्र निकाला और अंग्रेजों की दमनकारी नीति की आलोचना की। उन्हें अंग्रेजों ने प्रलोभन देने की भी कोशिश की लेकिन उन्होंने इसे टुकरा दिया और आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए भी पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रवाद की मशाल को और तीव्र किया। सम्पादक गोविन्द रघुनाथ और संचालक सुप्रसिद्ध मनीषी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के नेतृत्व में बनारस अखबार का प्रकाशन हुआ।

“बनारस अखबार के लगभग 1 वर्ष बाद 11 जून 1845 को कलकत्ते से ही ‘इण्डियन सन’ पत्र प्रकाशित हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था जो पाँच भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक मौलाना नसीरुद्दीन थे। इस वर्ष ज्ञानदीप नामक एक पत्र और आरम्भ हुआ। सन् 1848 में इन्दौर से पं० प्रेमनारायण के प्रयत्नों से मालवा अखबार प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी तथा उर्दू भाषा में निकलता था।”³

लोकमान्य तिलक ने पत्रकारिता के माध्यम से उग्र राष्ट्रवाद की स्थापना की। उनके समाचार पत्र मराठा और केसरी उग्र-प्रवृत्ति का जीता जागता उदाहरण है। ‘सन् 1900 में सर्वाधिक युगान्तकारी पत्रिका सरस्वती का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका

का प्रकाशन काशी की नागरी प्रचारिणी सभा और प्रयाग से हुआ। इसके सम्पादक मण्डल में बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, किशोरी दास गोस्वामी और बाबू श्यामसुन्दर दास थे। 1903 में इसके सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हुए।⁴

हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के इतिहास में राष्ट्रवाद हित की दृष्टि से सरस्वती पत्रिका का स्थान बहुत प्रतिष्ठित माना जाता है। इसके प्रकाशन से हिन्दी पत्रकारिता में एक नये युग की चेतना का सूत्रपात हुआ। गाँधी जी ने पत्रकारिता के माध्यम से पूरे समाज को एकजुट करने का कार्य किया और स्वाधीनता संग्राम की दिशा तय की। नवभारत, नवजीवन, हरिजन, हरिजन सेवक, हरिजन बन्धु, यंग इण्डिया आदि समाचार पत्र गाँधी जी के विचारों के संवाहक थे। गाँधी जी राजनीति के माध्यम से समाज की कुरीतियों को भी उजागर कर इसे समाप्त करने पर बल दिया। गणेश शंकर विद्यार्थी ने कानपुर से 'प्रताप' नामक पत्र निकाला जो अंग्रेजी सरकार का घोर विरोधी बना तथा राष्ट्रचिन्तन का मुखौटा बना। अरविन्द घोश ने 'वन्दे मातरम' युगान्तर, कर्मयोगी और 'धर्म' आदि का सम्पादन किया।

स्वतन्त्रता से पहले पत्रकारिता को मिशन माना जाता था। भारत के पत्रकारों ने देश को आजादी दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आजादी से पूर्व जो आदर्श थे, तेजस्विता थी और राष्ट्रीय चेतना थी आजादी के बाद अनेक रंगों में रंग गई। समाचार पत्रों को आजादी प्राप्त हुई जिससे बड़ी संख्या में समाचार पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। साथ ही रेडियो एवं टेलीविजन के विकास के कारण पत्रकारिता जगत में बड़ा बदलाव देखा गया। स्वतन्त्रता से पहले जिस पत्रकारिता को मिशन माना जाता था। अब धीरे-धीरे वह प्रोफेशन में बदल चुकी थी।

अक्सर भाषा की उपमा बहती नदी से दी जाती है। सचमुच दूरदर्शन पर प्रयोग की जाने वाली भाषा सतत गतिशील है। 'सभ्य समाज या राष्ट्र में एक ऐसी भाषा की आवश्यकता हमेशा रहती है जो एक छोर से दूसरे छोर तक को एकता के सूत्र में पिरो सके। दूरदर्शन हिन्दी स्थानीय भाषाओं के प्रभावों को पीछे धकेलने के बजाय आत्मसात करने का प्रयास कर रही है।'⁵

1947 से लेकर 1975 तक पत्रकारिता जगत में विकासोन्मुख पत्रकारिता का दौर रहा। नये उद्योगों के खुलने और तकनीकी विकास के कारण उस समाचार पत्र पत्रिकाओं में भारत के विकास की खबरें प्रमुखता से छपती थीं। समाचार पत्रों में टेलीविजनों में विज्ञापनों की संख्या बढ़ रही थी। इसे रोजगार का साधन माना जाने लगा। 'विज्ञापन हमारे युग की वैज्ञानिक जरूरत है। वह हमारे आचार-व्यवहार को नियंत्रित करने का अनकहा सर्वमान्य माध्यम है। आधुनिक जीवन शैली में विज्ञापनों ने अपने महती भूमिका बना ली है। विज्ञापन आज किसी भी उत्पादन के स्तरीयता का प्रतिमान बन गये हैं आज विज्ञापन के लिए अनेकानेक तरीकों एवं माध्यमों का प्रयोग किये जाने लगा है।'⁶

पत्रकारिता और साहित्य एक दूसरे से गुँथे-बिंधे हैं। पत्रकारिता यदि साहित्य की निर्माण भूमि है तो साहित्य भी पत्रकारिता का अलंकार है। ये दोनों ही समाज को प्रभावित करते हैं समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। पत्रकारिता जहाँ साहित्य को जनसाधारण तक पहुँचाने का कार्य करती है- वहीं साहित्य भी पत्रकारिता को शृंगार तथा गरिमा प्रदान करता है। 'साहित्य का प्रचार-प्रसार पत्रकारिता के माध्यम से सम्भव हुआ। अनेक विख्यात साहित्यकारों की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँची हैं। अनेक साहित्यिक आन्दोलनों में पत्रकारिता की वजह से ही गति आयी है।'⁷

वर्तमान में जनसम्पर्क के माध्यमों ने सूचना के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है। साधारण शब्दों में समाचार पत्रों के लिए प्रेस शब्द का प्रयोग किया जाता है। भारत में लाखों पत्रों के माध्यम से सजगता तथा राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिल रहा है। वर्तमान समय औद्योगिक समाज है फिर भी भारत में सुदूर गाँवों में अभी भी पत्रकारिता के माध्यम नहीं पहुँच पाए हैं। यहाँ परम्परागत तरीकों का प्रयोग अभी भी हो रहा है। इस तरह जनमत सृजन में जितनी अहम भूमिका रेडियो और टेलीविजन निभा सकते हैं उतना अत्याधुनिक संचार माध्यम नहीं। "टेलीविजन पत्रकारिता का सबसे नवीन उद्भव है। देश की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या टेलीविजन का उपयोग करती है। इस तरह टेलीविजन ने पत्रकारिता की व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं।"⁸

भारत में आज भी सभाओं तथा सेमिनारों के माध्यमों से अपनी विचारधारा का प्रचार किया जाता है। लोग अपनी बात शोध-पत्रों का प्रकाशन करवा के लोगों को प्रसारित करते हैं। 'प्रकाशन सुशिक्षित लोगों के बीच अपने विचारों एवं प्रभावों को रखने का बहुत प्रभावशाली माध्यम है। शोधपत्रों, लेखों तथा सम्पादकीय के माध्यम से संस्थानों की नीतियों तथा नियमों एवं जनता की समस्याओं को जनमत सृजन हेतु उपयोग में लाया जाता है।'⁹

15 अगस्त सन् 1947 में हमारे लाखों स्वतन्त्रता सेनानियों की कुर्बानियों की बदौलत देश आजाद हुआ तो आम जनता के साथ-साथ प्रेस ने भी खुली हवा में सांस ली। तब से लेकर पत्रकारिता सम्बन्धी कई कानून आ चुके हैं। 'सन् 1956 में भारत सरकार ने 'समाचार पत्र अधिनियम' बनाया तो सन् 1961 में आपराधिक विधि संशोधन विधेयक अस्तित्व में आया। सन् 1962 में भारत रक्षा अधिनियम लागू किया गया। सन् 1965 में 'भारतीय प्रेस परिषद' अधिनियम पारित किया गया जिसके कारण आजाद भारत में पहली बार 'प्रेस परिषद' की स्थापना की गई।'¹⁰

वर्ष 1975 में एक बार फिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर काले बादल छा गए। जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी

ने आपातकालीन घोषणा कर मीडिया पर सेंसरशिप लगा दी। विपक्ष की ओर से भ्रष्टाचार, कमजोर, आर्थिक नीति को लेकर उनके खिलाफ उठ रहे सवालियों के कारण इन्दिरा गाँधी ने प्रेस से अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन ली। लगभग 19 महीनों तक भारतीय पत्रकारिता शिथिल अवस्था में रही। उस समय दो समाचार पत्रों 'द इण्डियन एक्सप्रेस' और 'द स्टेट्समैन' ने उनके खिलाफ आवाज उठाई तो उनकी वित्तीय सहायता रोक दी। इन्दिरा गाँधी जी ने भारतीय पत्रकारिता की नस पकड़ ली थी उन्होंने पत्रकारिता को अपने पक्ष में करने के लिए उनको दी जाने वाली वित्तीय सहायता बढ़ा दी। उस समय कुछ पत्रकार सरकार की चाटुकारिता में भटक गए और चाहकर अपने स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति नहीं कर पाए। ये सब देखकर लालकृष्ण आडवाणी ने उस समय अपनी पुस्तक में लिखा था-

उन्होंने हमें झुकने के लिए कहा।

और हमने रेंगना शुरू कर दिया।।

1977 में जब चुनाव हुए तो मोरारजी की सरकार आयी और उन्होंने प्रेस पर लगी सेंसरशिप को हटा दिया। तब उन्होंने आपातकाल की स्थिति को छापा। पत्रकारिता के द्वारा आजादी के दौरान किया गया संघर्ष बहुत पीछे छूट गया और पत्रकारिता अब पेशे में तब्दील हो चुकी है। आजादी से पहले पत्रकारों ने किसी भी प्रलोभन में आये बिना निस्वार्थ भाव से अपना कर्तव्य निभाया था। अंग्रेजों द्वारा प्रेस पर रोक लगने के बाद भी अपनी कलम को नहीं रोका लेकिन आज परिस्थितियाँ बदलती नजर आ रही हैं। पत्रकारिता आज सेवा से आगे बढ़कर व्यवसाय में परिवर्तित हो चुकी है।

राष्ट्रवादी चिन्तन

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी राष्ट्रीयता अर्थात् राष्ट्रवाद की कहानी है। दरअसल पत्रकारिता का स्वरूप ही राष्ट्रवादी है। पत्रकारिता का उदय ही राष्ट्रवाद को प्रखर करने के उद्देश्य से हुआ था। इसे शाब्दिक रूप से एक शब्द संरचना में बाँध सकते हैं कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता। वरना पत्रकारिता शब्द स्वयं राष्ट्रवाद का बिम्ब है छाया है। पत्रकारिता को राष्ट्रवाद से अलग नहीं देखा जा सकता है। राष्ट्रवादी प्रमुख ध्वज वाहक पं० दीनदयाल उपाध्याय ने 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य ही राष्ट्रवाद को विस्तार देना था। इसी प्रकाशन के अधीन स्वदेश, राष्ट्रधर्म, पाँचजन्य प्रकाशित हुए जो आज भी भारतीय राष्ट्रवाद की प्रमुख आवाज बने हुए हैं।

भारत एक सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई विविधता वाला देश है। राष्ट्रवाद ही वह धागा है जो लोगों को उनके विभिन्न सांस्कृतिक जातीय पृष्ठभूमि से सम्बन्धित होने के बावजूद यह एकता के सूत्र में बाँधता है। यह कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सभी को एकता के एक सूत्र में बाँधने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रवाद यानि राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना का विकास किसी भी देश के नागरिकों की एकजुटता के लिए आवश्यक है। यही वजह है कि स्कूलों में राष्ट्रगान का अभ्यास कराया जाता है। आजकल तो सिनेमाघरों में भी फिल्म शुरू होने से पहले राष्ट्रगान चलाया जाता है। साथ ही देश के वीर सपूतों की गाथा विद्यालय के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया गया है।

राष्ट्र चेतना और राष्ट्रवाद के विचार को मानव की सर्वोच्च आकांक्षा की अभिव्यक्ति माना जाता है। यह आधुनिक विश्व की सबसे शक्तिशाली वैचारिक शक्ति है। आधुनिक राष्ट्रवाद फ्रांस की क्रान्ति के बाद विकसित हुआ जहाँ राष्ट्र राज्य के रूप में फ्रांस का उदय हुआ। राष्ट्रवाद राष्ट्र का चिन्तन है। राष्ट्र की यूरोपीय अवधारणा से काफी पहले से भारत के पास अपना एक राष्ट्रबोध था जिसका आधार सांस्कृतिक भौगोलिक चेतना थी।

राष्ट्रवाद का विचार एक सर्वकालिक और सार्वभौमिक विचार है। राष्ट्रवाद एक निश्चित राष्ट्रीयता का हिस्सा होने का एक अनुभव है राष्ट्रीयता के बोध से व्यक्ति राष्ट्र के एक हिस्से के रूप में स्वयं की पहचान स्थापित करता है व्यक्ति एक राष्ट्रीय समूह के साथ स्वयं की पहचान बनाता है और इस पहचान को अद्वितीय बनाता है। यह सकारात्मक जनचेतना उत्पन्न करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत के महान आदर्शों का व्यापार दृष्टिकोण लोगों के सामने रखा। उन्होंने भारतीय जनमानस की आत्म विस्मृति दूर करने का कार्य किया। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनमानस में इस विचार को जन्म दिया कि हम एक विशिष्ट सांस्कृतिक इकाई हैं, हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र हैं और स्वतंत्रता हमारा अधिकार है। भारतीय नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना सर्वोपरि है और इसीलिए जब यहाँ के नागरिकों से देश के राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रगान जो कि देश की अखण्डता, एकता के राष्ट्रीय प्रतीक हैं के प्रति सम्मान की अपेक्षा की जाती है तो वे पूरी एकता के साथ खुलकर इन सभी के लिए अपना सम्मान प्रकट करते हैं।

चूँकि वर्तमान में पत्रकारिता अब अतीत की भाँति राष्ट्रहित के लिए संकल्पित न होकर व्यापार के लिए बाजार के अनुरूप सजी धजी है तो हम राष्ट्रवादी पत्रकारिता को वर्तमान परिप्रेक्ष्य से जोड़े तो निराशा ही हाथ लगेगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र में राष्ट्रवादी पत्रकारिता ही अब एक आरोपित या कुठित कार्य जैसी मानी जा चुकी है। राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर ये प्रहार चिन्तनीय और निन्दनीय है। दरअसल थोड़ा बारीकी से सोचना पड़ेगा। राष्ट्रवादी पत्रकारिता के जो एक तयशुदा पक्षपात की परिभाषा गढ़ चुके हैं वो और पत्रकार या संस्थान जो राष्ट्रवादी पत्रकारिता के मुख्य अंगुआकार है दोनों को राष्ट्रवादी

पत्रकारिता के ध्येय को समझना होगा। शायद तब राष्ट्रवादी पत्रकारिता वर्तमान में भी अतीत की तरह अलौकिक होकर किसी अवांछित और तथाकथित आरोपों से मुक्त हो पाए। व्यापक परिदृश्य में देखें तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवादी पत्रकारिता की नितान्त आवश्यकता है जिससे व्यावसायिक होता मीडिया दूरी बनाता जा रहा है।

सन्दर्भ

1. जनसंचार माध्यमों में हिन्दी, चन्द्रकुमार प्रकाशन क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, करमपुरा नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 2.
2. वही, पृष्ठ सं० प्रस्तावना से।
3. पत्रकारिता के प्रतिमान, प्रेमचन्द गोस्वामी, प्रकाशन यूनिक टेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1985, पृष्ठ सं० 38.
4. वही, पृष्ठ सं० 43.
5. दूरदर्शन एवं मीडिया विविध आयाम, अमरनाथ 'अमर' प्रकाशन, अमर सत्य, प्रीतविहार दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 17.
6. विज्ञापन और उपभोक्ता व्यवहार, प्रा० ;तु सारस्वत, प्रकाशन गौरांश पब्लिकेशन्स, अजमेर, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 18.
7. मीडिया और हमारा समाज, प्रांजल धर, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 310.
8. जन संचार माध्यम एवं महिलाएं, डॉ० मंजूलता प्रकाशन, अर्जुन पब्लिकेशन्स हाउस, दरियायगंज, नई दिल्ली, पृष्ठ सं० 26.
9. आधुनिक विज्ञापन और जनसम्पर्क, डी०के० राव, प्रकाशन, नेहा पुस्तक केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 158.
10. मीडिया विधि, डॉ० निशान्त सिंह, प्रकाशन नमन प्रकाशन, दरियायगंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं० 17.

भूमंडलीकरण, सोशल मीडिया और राष्ट्रवाद

ममता कुमारी

शोधार्थी, हैदराबाद सैन्ट्रल यूनिवर्सिटी
हैदराबाद (तेलंगाना)

हम सभी जानते हैं कि आज का समय उच्च तकनीक और भूमंडलीकरण का वाहक है जिसके तहत नई-नई प्रेरणाएँ, परिकल्पनाएँ और विचार-धाराएँ आती हैं जो देश, समाज, राष्ट्र एवं मनुष्य को आन्दोलित कर रही हैं। उच्च प्रौद्योगिकी और सूचना संचार क्रांति एवं मीडिया ने विश्व-ग्राम की उस परिकल्पना को साकार कर दिया है। वास्तव में भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण अथवा जगतीकरण राष्ट्रों के मध्य घटती दूरियों का पर्याय है, एक मुक्त बाजार व्यवस्था है। किन्तु भूमंडलीकरण के निहितार्थ इसके ठीक विपरीत इससे निकलने वाली “सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय” की ध्वनि के विपरीत सम्पूर्ण व्यवस्था समूचे विश्व को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके संकेन्द्रण के प्रबल दावेदार अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बना हुआ पूँजीवाद की मृत्यु की कामना करते हुए कार्लमार्क्स ने 1848 में ही कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में भूमंडलीकरण के गुणों का बखान करते हुए कहा था- “अपने उत्पादों के बाजार की तलाश बर्जुआ को भूरे भूमंडल में दौड़ाती है। इसे अपना नीड सर्वत्र बना है, इसे हर जगह बसना है, इसे अपना संबंध सर्वत्र फैलाना है।” आज भूमंडलीकरण की शुरुआत के इतने वर्षों बाद भी इसका चरित्र यथावत है। भूमंडलीकरण का सबसे सशक्त हथियार मीडिया एवं सोशल मीडिया है।

सोशल मीडिया आज के दौर में हमारी जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन गया है। जिसके बहुत सारे फीचर हैं, जो हमें सूचनाएँ प्रदान करता है, मनोरंजन करता है तथा साथ ही साथ हमें शिक्षित भी करता है। भारत ही नहीं अपितु पूर्ण विश्व सोशल मीडिया से जुड़ चुका है या यूँ कहें कि पूर्णरूपेण इसके आधीन हो चुका है। यह एक अपरंपरागत मीडिया (Nontraditional media) है जो वर्चअल वर्ल्ड बनाता है जिसे हम इंटरनेट के माध्यम से अपनी पहुँच में प्राप्त कर लेते हैं। सोशल मीडिया के नेटवर्क ने सम्पूर्ण विश्व को जोड़ दिया है। द्रुतगति से सूचनाओं का आदान-प्रदान जिसमें प्रत्येक क्षेत्र की खबरें शामिल हैं। सोशल मीडिया के जरिए कई विकासात्मक कार्य किये गए जिनसे कि लोकतंत्र को समृद्ध बनाने का काम हुआ है। हम ऐसे कई उदाहरण अपने आस-पास देखते हैं जिन्हें सोशल मीडिया ने रातों-रात घर-घर तक पहुँचा दिया। कुछ समय पहले भ्रष्टाचार के खिलाफ 'India Against Corruption' महाअभियान चला था जिसमें फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम के जरिये लाखों-करोड़ों लोगों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर अभियान को सफल बनाया था। इस आंदोलन व सोशल मीडिया के चलते 'अन्ना हजारे' देश-विदेश के घर-घर तक पहुँच गये थे। इसी तरह 2014 के आम-चुनावों के दौरान राजनीतिक पार्टियों ने जमकर सोशल मीडिया का उपयोग कर आमजन को वोट डालने के लिए घरों से निकलने पर बाध्य कर दिया था। वास्तव में सोशल मीडिया चीज ही ऐसी है कि देखने-सुनने वाला दर्शक व श्रोता इसके वशीभूत हो जाता है। इन चुनावों ने वोटिंग प्रतिशत बढ़ने का मुख्य कारण चुनावी पार्टियों द्वारा सोशल मीडिया का जमकर इस्तेमाल करना ही था।

सोशल मीडिया के माध्यम से ही 'निर्भया' को न्याय दिलाने के लिए एक विशाल जन-समूह जिसमें बच्चे, बूढ़े, छात्र-छात्राएँ सभी शामिल थे, सड़कों पर उतर आए जिससे सरकार पर दबाव बढ़ गया और आज जो स्त्रियों के हित में नये कानून बने हैं वे इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप संभव हुआ।

मीडिया को भूमंडलीकरण के लिए आवश्यक मानते हुए जवाहरलाल कौल ने अपने लेख-‘वैश्वीकरण-सवाल सांस्कृतिक क्षरण का’ में लिखते हैं- “सारी दुनिया एक बाजार हो, ग्राम हो उसमें कोई अड़चन न हो। टेक्नॉलॉजी का एक बाजार हो, तो इसमें भावनाओं का मूल्यों का कोई सम्बन्ध नहीं, केवल ‘ग्लोबल विलेज’, एक बाजार की अवधारणा है जहाँ बिना किसी राष्ट्रीय, जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रीय अवरोधों के बावजूद माल बिकता रहे और उसके रास्ते में जो अवरोध आएँ वो हट जाएँ।”² वास्तव में मीडिया की स्थिति आज के समय में ऐसी ही बनी हुई है बिना मीडिया के विश्वग्राम या वैश्वीकरण संभव नहीं था चाहे वह सोशल मीडिया हो, प्रिंट मीडिया या फिर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया हो। इस बाजार में सब कुछ बाजार के इशारों पर बिकता है। लोकप्रियता के प्रसार में सोशल मीडिया एक बेहतरीन प्लेटफॉर्म है जहाँ व्यक्ति स्वयं को अथवा अपने किसी उत्पाद को ज्यादा से ज्यादा लोकप्रिय बना सकता है। आज हमें अपनी ऑनलाइन वेबसाइट बनाकर कुछ भी काम शुरू कर सकते हैं मसलन छोटे-से छोटे व्यापार की शुरुआत के लिए ‘वेबसाइट’ एक सुलभ व उम्दा प्लेटफॉर्म है। देखते ही देखते

अनेक 'लाइक्स' और 'कॉमेंट्स' से आपकी वेबसाइट का प्रचार हो जाता है। आज फिल्मों के ट्रेलर, टी.वी. प्रोग्राम का प्रसारण भी सोशल मीडिया के माध्यम से किया जा रहा है। छोटे परदे वह बड़े परदे के सितारे अपनी फिल्मों के लिए नाचते-गाते एवं लोगों से फिल्म देखने का अनुरोध करते नजर आते हैं। डांस इंडिया डांस, नच बलिये, सुपरस्टार आदि अनेकों कार्यक्रमों में आम जनता की वोट माँगी जाती है जिसके आधार पर नं. 1 प्रत्याशी का चुनाव होता है। आज वीडियो चैट तथा ऑडियो चैट भी सोशल मीडिया के माध्यम से सुगम हो गयी है। जिसमें फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम कुछ प्रमुख प्लेटफार्म हैं।

एक तरफ सोशल मीडिया जहाँ लोगों को लोगों से जोड़ता है नहीं कुछ लोग इसका गलत इस्तेमाल कर दुर्भावनाएँ फैलाकर साम्प्रदायिकता फैलाने की कोशिश करते हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से भ्रामक और नकारात्मक जानकारी साझा की जाती है जिससे कि जनमानस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हाल ही में गौ-माँस निषेध की घटना पर रोजाना व्हाट्सएप पर मरी गायों को दिखाकर साम्प्रदायिक दंगे फैलाने की कोशिशें जारी थीं। सामान्य जनमानस के हृदय-प्रसार किया जा रहा था। आवश्यकता है ऐसे साम्प्रदायिक दंगों व दुर्भावनाओं को फैलाने वाली ताकतों का विरोध करने की। कई बार तो देखा गया है कि बात इतनी बढ़ जाती है कि सरकार सोशल मीडिया के गलत इस्तेमाल करने पर सख्त हो जाती है जैसे सरकार को जम्मू-कश्मीर जैसे राज्य में सोशल मीडिया पर प्रतिबंध तक लगाना पड़ता है। मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में हुए किसान आंदोलन में भी सोशल मीडिया कवरेज पर रोक लगा दी गयी थी ताकि असमाजिक तत्व किसान आंदोलन की आड़ में किसी बड़ी घटना को अंजाम न दे पाएँ।

आज कुछ हद तक मीडिया का बाजारीकरण भी हुआ है। बाजारी ताकतों के द्वारा आज कुछ हद तक मीडिया का बाजारीकरण भी हुआ है। बाजारी ताकतों के हाथों का खिलौना बना मीडिया खबरों को सनसनीखेज, चटपटा व मसालेदार बनाकर दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रसिद्ध पत्रकार एवं समाजविज्ञानी रामशरण जोशी अपने लेख-करटून रेजर : मीडिया, हम और बाजारवाद में कहते हैं- "मीडिया कवरेज आतंकवाद तथा युद्ध के प्रति जरूरी घृणा करने में सरासर नाकाम रहा। शायद यही उसका असली मकसद था, और यही उसकी नियति। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि मीडिया कवरेज की बदोलत ओसामा बिन लादेन की 'जिन्दा शहीद' के रूप में ख्याति हुई। मीडिया के विवेकहीन एवं सनसनीखेज कवरेज के कारण यह फर्क कर पाना मुश्किल था कि लादेन और अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू. बुश में से कौन नायक और कौन खलनायक? क्योंकि मीडिया का ध्यान घटनाओं के 'उपभोक्ताकरण' पर अधिक केन्द्रित था। वह दर्शकों उर्फ ग्राहकों में आतंकवाद और युद्ध के प्रति एक प्रकार का 'थ्रिल' पैदा करना चाहता था।" वास्तव में कई बार मीडिया अपने वास्तविक उत्तरदायित्व से हटकर प्रत्येक कवरेज का 'मास प्रोडक्शन' करते हुए प्रत्येक घटना को 'प्रोडक्ट' एवं 'पैकेजिंग' की शकल में देखते हुए उसे उसी ढंग से सम्प्रषित करता है। ऐसे मीडिया का लक्ष्य बिन्दु मात्र ग्राहक होते हैं।

अब बात करते हैं भूमंडलीकरण, मीडिया और राष्ट्रवाद के सूत्रों की तो इससे पहले राष्ट्रवाद को समझना आवश्यक होगा। राष्ट्रवाद का उदय विद्वानों द्वारा भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान ही हुआ था। जब देश को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाने के लिए जन-जन में राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। ए. आर. देसाई के शब्दों को मैं यहाँ रखना चाहूँगी। वे कहते हैं- "भारतीय राष्ट्रवाद अर्वाचीन तथ्य है। ब्रिटिश शासन और विश्व शक्तियों के कारण तथा भारतीय समाज में उत्पन्न और विकसित अनेक भावनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ कारकों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ब्रिटिश काल में भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।" राष्ट्रवाद की परिकल्पना एक ऐसे जनसमूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता है। सम्मान परम्पराओं, आदर्श, मूल्यों, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की प्रबल उत्सुकता एवं समान राजनैतिक महत्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। राष्ट्रवाद एक सामुदायिक भावना है जो संगठन सुदृढ़ करती है। भारत में अंग्रेजी शासनकाल के दौरान अनेक समस्याएँ थी जिनसे भारतीय रोज दो-चार हो रहे थे। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में पश्चिमी देशों की भाँति अपने देश को भी सर्वोपरि बनाने की भावना जागृत होने लगी। देश में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए नवोदित विशिष्ट वर्ग ने ही राष्ट्रवाद का झंडा बुलन्द किया। भारत में राष्ट्रीयता का उदय पश्चिमी देशों की तुलना में देरी से हुआ जिसका मुख्य कारण भारतीय सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना का विशाल आकार था। धर्मनिरपेक्ष देश होने के कारण देश विभिन्न प्रान्तों, उपप्रान्तों, भाषाओं व बोलियों में विभक्त था जिस कारण अपने प्रान्त अपनी बोली, भाषा के लिए स्नेह व आदर का भाव राष्ट्र की भावना से अधिक था।

भारतीय राष्ट्रवाद वास्तव में आधुनिक तत्व है। इस राष्ट्रवाद को हम अनेक दृष्टिकोणों से देख सकते हैं। जैसे भारत विविध भाषा भाषी और अनेक धर्मानुयायियों वाला विशाल जनसंख्या का देश है। वहीं हिन्दू धर्म में किसी एक ही प्रकार के देवी-देवता व पूजा पद्धति न होकर प्रान्तीय व क्षेत्रीय आधार पर स्थापित है। यहाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि और कुटीर उद्योगों पर आधारित थी। आधुनिक तकनीकी विकास तो किसानों ने जाना ही नहीं था। सामाजिक क्षेत्र में परिवार, जाति पंचायत और ग्रामीण पंचायत सामाजिक नियंत्रण का कार्य करती थी। नगरीय क्षेत्र भी राजनैतिक धार्मिक तथा कुछ व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। राज्यों की राजधानी भी किसी न किसी नगर में थी। अधिकतर गाँवों और शहरों व नगरों में परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान बहुत कम होता था क्योंकि यातायात के साधन बहुत कम और अविश्वसित थे। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि स्वाधीनता

आन्दोलन की प्रक्रिया हो राष्ट्रवाद की डोर को मजबूत करने की प्रबल कड़ी है। गांधी जी ने भारतीय राष्ट्रवाद को जन राष्ट्रवाद का स्वरूप प्रदान करते हुए कहा- “मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा, जिसमें सबसे निर्धन व्यक्ति भी इसे अपना देश समझने और इसमें निर्माण में उसकी प्रभावी भूमिका हो- एक ऐसा भारत जिसमें लोगों का कोई उच्च वर्ग और निम्न वर्ग न हो, जिसमें सभी समुदाय पूरे सद्भाव के साथ रहते हों... इस प्रकार के भारत में छुआछूत नामक कोढ़ के लिए कोई जगह नहीं होगी.. स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार होंगे... मेरे सपनों का भारत यही है।”⁵ गांधी जी ने स्वदेशी वस्तुओं पर अधिकाधिक बल दिया। देश में मैला प्रथा व छुआछूत दूर करने में गांधी जी का सर्वाधिक योगदान रहा है। यह राष्ट्रवाद की तरफ बढ़ता एवं बढ़ा कदम माना जा सकता है। सन् 1919 के आसपास भारत में अभूतपूर्व राजनीतिक जागरण हुआ और डॉ. इकलाब ने एक अमरजयी रचना की जिसे गुनगुनाते हुए आज भी प्रत्येक भारतीय गौरव का अनुभव करता है- “सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।” आगे उन्होंने लिखा-

तंग आके मैंने आखिर देरो-हरम को छोड़ा

वाइज का बाज छोड़ा, छोड़े तेरे फसाने।

डॉ. इकबाल ने देश के हर कण-कण को देवता सदृश मानते हुए कहा-

“पत्थर की मूर्तों में समझा है तू खुदा है,

खाके वतन का मुझको हर जर्जा देवता है।”

यह पूरा दौर राष्ट्रवाद की भावना से परिपूर्ण था। मैथिलीशरण गुप्त की ‘भारत भारती’ रचना इस जन राष्ट्रवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। जिसने जन-जन में राष्ट्रवादी भावना का संचार किया। हसरत मोहानी, जोश मलीहाबादी जहाँ राष्ट्रवादी साहित्य लिख रहे थे। वहीं प्रेमचंद इस दौर की सबसे बड़ी उपलब्धि है। राजनीतिक राष्ट्रवाद में यदि नेहरू, गांधी और सुभाष जैसे सूरमा हुए तो देश में इसी अवधि में साहित्य में टैगोर, प्रेमचन्द और निराला जैसे धुरंधर साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा जन-जन को राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत किया।

यही राष्ट्रीयता की भावना आज के भूमंडलीकृत युग की माँग है। किन्तु जहाँ तक प्रश्न सोशल मीडिया का है तो आज के बाजारीकरण के युग में भारत जैसे बड़ी आबादी वाले उपभोक्ता बाजार में सोशल मीडिया भी बाजार के हाथों की कठपुतली बन चुका है। यह जमीनी हकीकत है कि सोशल मीडिया और इंटरनेट ने भारतीय मीडिया को अत्यंत गतिशीलता प्रदान की है। आज भारतीय सोशल मीडिया का बाजार एक लाख करोड़ से अधिक हो चुका है। सी.आई.आई.पी.डब्ल्यू.सी. की 2015 में जारी रिपोर्ट के अनुसार 2018 तक यह लगभग 2 लाख 27 हजार करोड़ तक पहुँच जाएगा। एक तथ्य यह भी है कि आज जब साक्षरता दर बढ़ी है और सम्पूर्ण विश्व एक ‘ग्लोबल विलेज’ बन चुका है तो फिर भारतीय मीडिया ही क्यों पीछे रहे। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में भी सोशल मीडिया ने धड़ल्ले से अपना परिचय लहराया है। एफ.एम. रेडियो युवाओं को रेडियो से जोड़ने में कामयाब रहा। आज तो विदेशी मीडिया भी भारतीय मीडिया में घुसपैठ कर चुका है। भूमंडलीकृत युग में आज जहाँ देश-विदेशों की दूरियाँ समाप्त हो गयी हैं। एक देश की संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति अर्थव्यवस्था दूसरे देश की संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति एवं अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रही है। एक देश की तकनीक पल भर में दूसरे देश में पहुँच जाती है। यातायात के साधनों ने भूमंडलीकरण के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वहीं सोशल मीडिया जैसे अभिव्यक्ति के माध्यम ने मुख्य मीडिया को आईना दिखा दिया है। साथ ही साथ सोशल मीडिया समाज को जागरूक और सशक्त बना रहा है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 91(1) के तहत प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त है। जिसके तहत कोई भी व्यक्ति अपने भावों, विचारों के साथ-साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान करने का अधिकार भी रखता है। एक समय था जब लोग किसी भी खबर के लिए रेडियो, टी.वी. या अखबार पर निर्भर रहते थे किन्तु बदलते दौर और समय की मांग के चलते सोशल मीडिया ने एक क्रांति ला दी है। आज व्यक्ति अपनी बात को किसी भी रूप में अभिव्यक्त कर सकता है। 21वीं सदी में कम्प्यूटर आम जन का अनिवार्य उपकरण बन गया है। सोशल मीडिया के विभिन्न मंच जैसे फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यू ट्यूब ने मीडिया जगत में क्रांति ला दी। आज सोशल मीडिया हर व्यक्ति की आवाज है। लोग हर समय अपडेट रहते हैं। जिस दौड़ में मुख्य मीडिया पीछे जाता नजर आता है वर्तमान समय में भारत में पत्रकारिता के इतिहास, स्वरूप और मूल्यों की गिरावट की स्थिति को देख ऐसा लगता है कि अब पत्रकारिता केवल व्यवसाय का एक जरिया मात्र है। एक अनुमान के मुताबिक भारत की सवा अरब जनसंख्या में लगभग 70 करोड़ लोगों के पास फोन है। इनमें से 25 करोड़ लोगों के पास स्मार्टफोन है। सोशल मीडिया पर लगभग 50 प्रतिशत लोग अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

एक ओर जहाँ सोशल मीडिया और भूमंडलीकरण के अनेक सकारात्मक प्रभाव हैं। वहीं कई नकारात्मक प्रभाव भी हैं। सोशल मीडिया का अत्याधिक व अनियंत्रित प्रयोग एक गंभीर लत बन जाता है। सोशल मीडिया के वाहक इंटरनेट के जरिये आनंद लेने की भावना हमारे मस्तिष्क के केन्द्र की उत्तेजना के कारण जागृत होती है। आजकल स्वयं की पहचान की चोरी, डाटा चोरी, साइबर धोखाधड़ी, हैकिंग और वायरस के हमलों की संभावना अत्यधिक बढ़ गयी है। यदि आप अपना फोन नं,

पता, कार्यस्थल और परिवार की जानकारी किसी भी सोशल मीडिया की साइट पर अपडेट कर रहे हैं तो आपकी गोपनीयता कब तक सुरक्षित रहेगी। इसकी कोई गारंटी नहीं है। कई सर्वे यह बताते हैं कि सोशल मीडिया पारस्परिक व्यवहार और नवीनीकरण ईर्ष्या की भावना को बढ़ाते हैं। इसलिए सोशल मीडिया की कार्यपद्धति और इसमें इस्तेमाल करने के तरीके को समझना जरूरी है। यह सूचना का एक भंडार है जिसे बुद्धिमानी से उपयोग करना पड़ेगा।

अंत में हम पाते हैं कि भूमंडलीकरण ने जहाँ राष्ट्रों की दूरियाँ समाप्त कर पूरे विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' या 'ग्लोबल मार्केट' में तब्दील कर दिया है। वहीं भूमंडलीकरण के वाहक सोशल मीडिया के विभिन्न मंचों ने सम्पूर्ण विश्व के जनों को एक दूसरे के समीप ला दिया है। चाहे बात राष्ट्रवाद की हो, देखते ही देखते आपस में जुड़ते हुए सब लोग राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हो जाते हैं। विभिन्न राष्ट्रीय पर्वों या किसी भी राष्ट्रीय स्वर को भूमंडलीकरण की देन सोशल मीडिया के जरिये सम्पूर्ण विश्व व जन समुदाय तक पलक झपकते पहुँचाया जा सकता है। किन्तु हमें प्रत्येक वस्तु व सूचना-संचार माध्यम की अतिवादिता से बचना होगा। भूमंडलीकरण बाजार के जरिये संध लगाकार हमारे घरों में घुस गया है। इसका सही इस्तेमाल करना होगा राष्ट्र की भावना को सोशल मीडिया के माध्यम से सर्वोपरि रखते हुए हमें कुछ ठोस कदम उठाने होंगे। साम्प्रदायिक ताकतों व धर्मान्धता की भावना से स्वयं को दूर रखते हुए राष्ट्रीयता की भावना को सर्वोपरि रखकर देशहित एवं समाजहित में संलग्न होकर विश्व के नवनिर्माण की नींव रखनी होगी।

संदर्भ

1. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, पृ. 7 से उद्धृत
2. जवाहर कौल, मीडिया और बाजारवाद, पृ. 22
3. रामशरण जोशी, मीडिया और बाजारवाद, पृ. 16
4. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ. 4
5. बिपिनचन्द्र, आधुनिक भारत, पृ. 196

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सूत्र और हिन्दी पत्रकारिता

डॉ. के.वी. उमाशंकर (शव)

प्रवक्ता, सिल्वर जूबिली स्नातक पूर्व महाविद्यालय
भद्रावति, शिवमोग्गा

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता यानि राष्ट्रवाद की कहानी है। दरअसल पत्रकारिता का स्वरूप ही राष्ट्रवादी है। पत्रकारिता का उदय ही राष्ट्रवाद को प्रखर करने के उद्देश्य से हुआ था। अब आप चाहें तो इसे शाब्दिक रूप से एक शब्द संरचना में बांध सकते हैं कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता। वरना पत्रकारिता शब्द स्वयं राष्ट्रवाद का बिम्ब है छाया है। आप पत्रकारिता को राष्ट्रवाद से अलग करके नहीं देख सकते। पत्रकारिता और राष्ट्रवाद परस्पर एक दूसरे के पूरक ही माने जा सकते हैं। दोनों का उद्देश्य जनमत निर्माण ही है। पत्रकारिता अतीत से लेकर वर्तमान तक राष्ट्रवाद को प्रबल बनाने का कार्य करती रही है, कुछेक अपवादों को छोड़ दें। पत्रकारिता का यही नैतिक धर्म भी है। आजादी के ठीक बाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय, मदन मोहन मालवीय, अटल बिहारी वाजपेयी आदि ने राष्ट्रवादी पत्रकारिता से जो प्रकाश पुंज प्रकट किया था उसका उजियाला राष्ट्र निर्माण और विकास में कितनी तेजी से फैला है ये किसी से छिपा नहीं।

राष्ट्रवादी पत्रकारिता के प्रमुख ध्वजावाहक पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने 1947 में राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य ही राष्ट्रवादी पत्रकारिता को विस्तार देना था। इसी प्रकाशन के अधीन स्वदेश, राष्ट्रधर्म, पांचजन्य प्रकाशित हुए। जो आज भी हिंदूराष्ट्र की प्रखर आवाज बने हुए हैं।

राष्ट्रवादी पत्रकारिता के मर्म को जानने के लिए भारतीय पत्रकारिता के इतिहास की ओर चलते हैं। 'हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता यानि राष्ट्रवाद की कहानी है। अठारहवीं शताब्दी यानि भारत में आधुनिक ढंग की पत्रकारिता का उदय। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास इन शहरों में कलकत्ता गजट, उदंत मार्तण्ड का प्रारंभ। फिर 1810 में मौलवी इकराम ने कलकत्ता से हिंदोस्तानी, पादरियों ने समाचार दर्पण, बंगला में समाचार चंद्रिका, संवाद कौमुदी, फारसी में जामे जहानुमा और शमशुल अखबार तथा गुजराती के मुंबई समाचार आदि आए।'

इन तमाम समाचार पत्रों की उत्पत्ति का कारण जानेंगे तो राष्ट्रवादी पत्रकारिता की सुगंध पहले आने लगेगी। भारतीय पत्रकारिता के ये संक्षिप्त संदर्भ देने का आशय यही था कि दरअसल पत्रकारिता का स्वरूप ही राष्ट्रवादी है। पत्रकारिता का उदय ही राष्ट्रवाद को प्रखर करने के उद्देश्य से हुआ। अब आप चाहें तो इसे शाब्दिक रूप से एक शब्द संरचना में बांध सकते हैं कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता। वरना पत्रकारिता शब्द स्वयं राष्ट्रवाद का बिम्ब है छाया है। आप पत्रकारिता को राष्ट्रवाद से अलग करके नहीं देख सकते। पत्रकारिता का मतलब जन चेतना, जनमत निर्माण, राष्ट्र विकास, राष्ट्रवाद ही है। राजा मोहन राय, महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय फिर कालांतर में स्वतंत्रता पश्चात दीन दयाल उपाध्याय, अटल बिहारी वाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री, महेंद्र कुलश्रेष्ठ, गिरीश चंद्र मिश्र, वचनेश त्रिपाठी घोषित रूप से राष्ट्रवादी पत्रकारिता के अगुवा बने रहे।

चूँकि राष्ट्रवादी पत्रकारिता के आधार स्तंभ पत्रकार स्वतंत्रता के बाद घोषित रूप से हिंदू संगठनों के प्रभाव में रहे तो इनको वैचारिक पत्रकारिता से जोड़कर देखा जाने लगा। ऐसा माने जाने लगा कि राष्ट्रवादी पत्रकारिता का दम भरने वाले पत्रकार एक सोच विशेष, एक कौम विशेष (हिंदू), एक धर्म विशेष के लिए कार्यरत हैं। जबकि राष्ट्र का हिस्सा तो हर वो कौम, जाति, वर्ग, धर्म है जो हमारे देश में है। चाहे वो हिंदू, मुसलमान, सिक्ख ईसाई या पारसी हों।

अगर राष्ट्रवादी पत्रकारिता की बात होगी तो उसे आप जाति, वर्ग, धर्म, मजहब, कौम के नाम पर बांट नहीं सकते। राष्ट्रवादी पत्रकारिता राष्ट्र के हित के लिए कार्य करने के उद्देश्य के लिए होनी चाहिए न कि एक धर्म व कौम विशेष के लिए। जब राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर ऐसे धब्बे लगने लगे, तबसे राष्ट्रवादी पत्रकारिता पर उंगली उठने लगी। और अपने अपने तरीके से चिंतन मंथन होने लगा कि वाकई राष्ट्रवादी पत्रकारिता है क्या, होनी क्या चाहिए। इसे नए नए तरीके से परिभाषित किया जाने लगा। और मूल राष्ट्रवादी पत्रकारिता आरोपों के घेरे में आ गई।

पत्रकारिता का ही एक धड़ा है जो आज भी इस पक्ष में नहीं है पत्रकारिता को किसी उपनाम (राष्ट्रवादी) के साथ जोड़कर कहने की जरूरत है। क्योंकि पत्रकारिता का ध्येय राष्ट्रवाद ही है। पत्रकारिता का उदय राष्ट्रहित के लिए हुआ था, चाहे गणेश शंकर विद्यार्थी हों या महात्मा गांधी, पंडित मालवीय सभी ने जनमत निर्माण और देश की अखंडता और एकता की रक्षा के लिए पत्रकारिता का प्रारंभ किया। हां ये और बात है समय के साथ हर रोज बदलती पत्रकारिता वर्तमान में राष्ट्रवादी पत्रकारिता से इतर व्यावसायिक पत्रकारिता हो गई है इसमें कोई शक नहीं है।

भारत की अवधारणा एक ऐसे राष्ट्र की अवधारणा है जिसके लिए संघर्ष को निर्माण का आधार रूप में कभी स्वीकार नहीं किया गया। यहाँ आदि काल से ही चिंतन को प्राथमिकता दी गई और अनेक भाषा, समुदाय, जाति इत्यादि के मस्तिष्क और शरीर यहाँ आएँ और यहीं के होकर रह गए। ऐसे में सम्पूर्ण विश्वजगत की विवधता को स्तम्भ में समेटे भारत 1947 ईस्वी में एक संवैधानिक राष्ट्र बनने की और अग्रसर हुआ, राष्ट्र का स्वरूप लिया और भारतीय राष्ट्रवाद की नई अवधारणा का नया चक्र शुरू हुआ। राष्ट्र के बोध की नींव रखी, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उपजी पत्रकारिता ने जिसका उद्देश्य था जनजागरण और राष्ट्रहित में राष्ट्रीय चेतना का विस्तार। लोगों में यह भाव जाग्रत करना कि कैसे वह एक ही भू-भाग में रहने वाले हैं, उनके हित-अहित एक ही हैं और ऐसे में राष्ट्र चेतना को विस्तार देने वाली पत्रकारिता ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में अहम भूमिका अदा की।

भारत के आजाद होने के बाद लोकतंत्र की स्थापना हुई। लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए तीन आधार स्तंभों को प्रतिष्ठापित किया गया। कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका। लेकिन जब हम आज के सन्दर्भ में बात करते हैं, तो पत्रकारिता को चतुर्थ स्तम्भ के रूप में देखा जाता है। लोकतंत्र के तीनों स्तंभ एक दूसरे पर नियंत्रण स्थापित करते हैं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में पारदर्शिता लाने में पत्रकारिता की अहम भूमिका है। पत्रकारिता जनता और लोकतान्त्रिक व्यवस्था के मध्य सेतु का कार्य करता है। यह लोकतान्त्रिक व्यापक की जनहित की खबरों को जनसामान्य में उजागर करता है, जिससे लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर जनता का नियंत्रण स्थापित हो पाता है।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में यह समझना अत्यावश्यक है कि लोकतंत्र है क्या? इसका उद्देश्य क्या है? एक ऐसा देश जहाँ लोकतान्त्रिक व्यवस्था हो, वहाँ लोकतंत्र का उद्देश्य जनता है, राष्ट्र है या स्वयं लोकतान्त्रिक व्यवस्था है? लोकतंत्र का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र होना चाहिए, क्योंकि राष्ट्र है तो लोकतंत्र भी है और वहाँ की जनता भी। ठीक इसी प्रकार राष्ट्रवादी पत्रकारिता में भी राष्ट्र सर्वोपरि होना चाहिए, राष्ट्र चेतना की विषय-वस्तु को प्रमुखता दी जानी चाहिए।

पत्रकारिता सत्यम शिवम् सुन्दरम की अभिव्यक्ति है। आज यह समझना नितांत आवश्यक है कि पत्रकारिता का मूल धर्म क्या है? सच को सच दिखाना, सच को अपने तरीके से दिखाना या टीआरपी की होड़ में सच को मिर्च मसाला लगाकर पेश करना या स्वयं ही निर्णायक बनकर न्यूज रूम में बैठकर सही और गलत तय करना। आज की वास्तविकता यहीं है कि सभी दूसरों को पत्रकार और पक्षकार का सर्टिफिकेट देने लगते हैं।

मीडिया के स्वयं ही निर्णायक होने के इस दौर में राष्ट्र की एकता, अखंडता एवं संप्रभुता को ध्यान में रखकर पत्रकारिता की मूल अवधारणा को प्रतिष्ठापित करने की आवश्यकता है। राष्ट्रवादी पत्रकारिता की जिम्मेदारी वर्तमान परिदृश्य में और भी बढ़ जाती है, जब एक लोकतान्त्रिक देश में राष्ट्रविरोधी नारे लगे जाते हैं, जब एक नई सरकार के आते ही देश का कथित बुद्धिजीवी वर्ग भारत में असहिष्णुता दर्ज कराने लगता है। इस प्रकार पत्रकारिता में राष्ट्र चेतना के मूल्यों को स्थापित करके आम जन को इन सभी तरह के दुष्प्रचारों से अवगत कराया जा सकता है।

हिंदी समाचार पत्रों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रस्तुति पर किए गए एक अध्ययन में सामने आया कि देश के प्रमुख मीडिया संस्थान सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति आज भी उदासीन बने हुए हैं। कुछ मीडिया संस्थान तो हमेशा विरोध में ही स्वर बुलंद किए रहते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब पत्रकारिता में पूंजी का दखल बढ़ने लगा तो पत्रकारीय मूल्यों का तेजी से ह्रास भी हुआ। इसी कारण मुख्य धारा की पत्रकारिता में भी विकृतियाँ आने लगी। इसी दौरान देश में अनैतिक और सामाजिक मुद्दों में तेजी से परिवर्तन हो रहा था। स्वाभाविक था कि इससे पत्रकारिता कैसे अछूती रहती?

पत्रकारिता राष्ट्र के विभिन्न घटकों के मध्य संवाद स्थापित करता है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय पत्रकारिता का नवसृजन प्रस्फुटित हुआ। इसी दौरान धीरे-धीरे उसका विकास होता रहा। उस समय में जब तक पत्रकारिता में पूंजी का दखल नहीं था, पत्रकारिता मूल्य आधारित होती थी। व्यवसायीकरण के इस आधुनिक युग में आज पत्रकारिता भी व्यवसायीकृत हो गई है। उस समय मुख्यधारा की पत्रकारिता ही राष्ट्रवादी पत्रकारिता थी। जब भूमिगत पत्रकारिता के माध्यम से भी खबरें जन-सामान्य तक पहुँचती थी। आज के आधुनिक युग में पत्रकारिता में पूंजी के निवेश के बाद पत्रकारिता में नियंत्रण कुछ रसिकदार लोगों के पास चली गई है।

समय बीतता गया और टेलीविजन का दौर आया, इसने पत्रकारिता को नई ऊचाईयाँ प्रदान की, वहीं दूसरी तरफ पत्रकारिता अपने मूल उद्देश्यों से भी भटक गई। एक वक्त ऐसा आया टेलीविजन की दुनिया का, जब सनसनीखेज पत्रकारिता का दौर चल गया। जो आज भी जारी है। लेकिन संचार क्रांति के बाद वेब पत्रकारिता के दौर में पत्रकारिता का स्वरूप भी करवट ले रहा है। धीरे-धीरे राष्ट्रवादी पत्रकारिता का उदय हो रहा है। आज-कल पत्रकारिता में राष्ट्र-चेतना की खबरों को पर्याप्त जगह दी जा रही है।

किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए राष्ट्र के विभिन्न घटक उत्तरदाई होते हैं। आज-कल मीडिया संस्थान को राष्ट्र की एकता, अखंडता और संप्रभुता पर प्रश्न चिह्न नहीं खड़ा किया जाना चाहिए। समाज में, देश में, राष्ट्र में राष्ट्र चेतना का विस्तार किया जाना चाहिए, इसके लिए मीडिया संस्थानों को नए-नए रचनात्मक प्रयास किए जाने चाहिए। इन प्रयासों के माध्यम से राष्ट्रवाद की भावना को प्रसारित किया जाना चाहिए।

भारतीय पत्रकारिता का मूल चरित्र और राष्ट्र-बोध

डॉ. आसिफ उमर

जामिया मिल्लिया इस्लामिया

नई दिल्ली

पत्रकारिता एक रचनाशील विधा रही है। यह समाज की गतिविधियों पर अपनी दृष्टि बनाए रहती है। विभिन्न प्रदेशों से 1857 ई. के पूर्व अनेक पत्र प्रकाशित हुए। इन पत्रों में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य छिपे हुए हैं। भारतीय पत्रकारिता का स्वरूप राष्ट्रीयता के विकास का द्योतक है। दोनों का विकास एक-दूसरे के लिए सहायक रही है। यदि राष्ट्रीयता ने पत्रकारिता को प्रेरित किया तो पत्रकारिता ने भी राष्ट्रीयता के विकास की भूमि तैयार की। चन्द्रदेव यादव ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप और संरचना' में लिखा है कि, "भारतीयों में जातीय चेतना विकसित करना हिन्दी पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य था।" सन 1857 की क्रांति भारतीय इतिहास, समाज, साहित्य और संस्कृति में एक नया मोड़ लाने वाली घटना थी। पूरे भारत में उपनिवेश-विरोधी चेतना और स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना जग उठी। पढ़े-लिखे तबके ने साहित्य और पत्रकारिता के जरिए समाज की कुरीतियों और तत्कालीन परिवेश से लोगों को अवगत कराने का प्रयास किया। प्राचीन काल में समाचार-पत्र जैसी कोई चीज नहीं थी, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि तब सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं होता था। जिज्ञासा और सूचनाओं का आदान-प्रदान मानव की सहज प्रवृत्ति है। मनुष्य कुछ भी देखता-सुनता है तो वह दूसरे तक उस बात को पहुँचाता है, साथ ही सबकी बातों को जानना चाहता है। प्रत्येक युग में इसका अस्तित्व रहा है चाहे स्वरूप जैसा भी हो। प्रेस के अभाव में आधुनिक पत्रकारिता का सूत्रपात असंभव था। मुद्रण की कला से ही पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव माना जाता है। भारत में मुद्रण कला पुर्तगाली मिशनरियों द्वारा सन 1550 में धर्म प्रचार के उद्देश्य से लाई गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्रेस 1550 में गोवा में स्थापित किया था। उसके बाद 1578 (तमिलनाडु) ई, 1602 (मालाबार), 1616 (मुंबई) में प्रेस स्थापित हुए। काठियावाड के भीम जी पारेख प्रथम भारतीय थे जिन्होंने दवि में 1670 में एक उद्योग के रूप में प्रेस शुरू किया। "मुगलकाल में 1660 ई में 'सिराज-उल-अखबार' और 'उर्दू अखबार' नामक हस्तलिखित पत्रों की भी चर्चा आती है। प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के समय 1857 ई में चुन्नी भाई के संपादन में निकला पत्र 'तिलस्म' हस्तलिखित था।"

भारतवर्ष में प्रथम मुद्रित अंग्रेजी पत्र कलकत्ता से सन् 1786 ई में 'कलकत्ता जनरल एडवाइजर' के नाम से निकाला गया, जो बाद में 'हिक्की गजट' और 'बंगाल गजट' के नाम से चर्चित हुआ। हिक्की ने निर्भयतापूर्वक अपने पत्र में कंपनी के प्रशासन और भारत में बसे तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया। परिणामस्वरूप सरकार ने सबसे पहले पोस्ट ऑफिस में 'बंगाल गजट' को रोक लिया। उसके विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया। उसके बाद चार महीने की जेल तथा 500 रु का जुर्माने की सजा भुगतनी पड़ी। हिक्की ने जेल में ही अपने गजट का संपादन किया और अपने बर्ताव में कोई परिवर्तन नहीं आने दिया। बाद में पत्र को बंद कर दिया गया। प्रेस को जन्म देने का श्रेय हिक्की को दिया जा सकता है। यह केवल दो वर्ष तक ही चला लेकिन जिस ऐतिहासिक काम की शुरुआत हिक्की ने की थी, उसे बाद में आगे बढ़ाया गया।

अंग्रेजी पत्रकारिता की शुरुआत जिन परिस्थितियों में हुई लगभग वैसी ही परिस्थितियाँ हिंदी पत्रकारिता के लिए भी थी। संपूर्ण भारत अंग्रेजों के शोषण का शिकार था। अंग्रेजों का अत्याचार दिन-ब-दिन बढ़ता गया। 'फूट डालो और राज करो की नीति' के दुष्परिणाम गरीब जनता भुगत रही थी। ऐसे में हिंदी पत्रकारिता के बारे में सोचना भी नामुमकिन था लेकिन यह संभव हुआ। हिंदी में पत्रकारिता को सबसे पहले 'बंगदूत' ने शुरू किया। इसमें भी विद्वानों की सहमति नहीं है। विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। युगल किशोर के 'उदंत मार्तंड' को भी हिंदी का पहला पत्र माना जाता है।

1857 के असफल राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि देश में एक स्थाई राजनीतिक आधर वाला संगठन खड़ा होना चाहिए। इस बात को पत्रकारिता की भाषा में सभी पत्रकारों ने माना कि अंग्रेजों की प्रेस का गला घोटने की नीति का डटकर मुकाबला करने के लिए किसी राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता है। "1857 के बाद दस-ग्यारह वर्षों तक हिंदी पत्रकारिता के स्वरूप में कोई विशेष बदलाव नहीं आया, फिर भी हिंदी पत्रकारिता में उपनिवेश-विरोधी स्वर तीव्र हो गया। हिंदी के पत्रकार अंग्रेजों की मंशा को समझ गए थे, इसलिए एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की नीतियों को उजागर करते हुए देशवासियों को उनके आर्थिक शोषण और दमनात्मक रवैये से परिचित करा रहे थे, तो दूसरी ओर विभिन्न समाज सुधार

आंदोलनों के सामयिक विचारों को जनता तक पहुँचा रहे थे।” पत्रकारों तथा राजनीतिक नेताओं ने मिलकर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की।

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय भावना का प्रथम स्वर भारतेन्दु जी की रचनाओं में सुनाई पड़ा था, जब उन्होंने ‘भारत दुर्दशा’ की पीड़ा व्यक्त की थी। भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने इस स्वर को सशक्त बनाया।

सन 1826 से 1857 तक की अवधि में राष्ट्रीयता को उत्तेजित करने वाले अनेक पत्र निकले। पत्रों में अंग्रेजी प्रशासन पर छींटाकशी होती रही। जबकि 15 मई सन 1799 ई में लॉर्ड वेलेस्ली ने एक कानून बनाया और अंग्रेजों के खिलाफ, समाचार के प्रकाशन पर रोक लगा दी थी। इस समय तक भारतीय भी पत्रकारिता के क्षेत्र में आने लगे थे। राजाराम मोहन राय को देशी भाषाओं के पत्रों का प्रवर्तक कहा जाता है। उन्होंने 1821 में बंगला अखबार ‘संवाद कोमुदी’ निकाला। लॉर्ड वेलेस्ली द्वारा बनाए गए कानून के विरुद्ध समाचार प्रकाशन के लिए राजाराम मोहन राय को अपना फारसी पत्र ‘मरित-उल-अखबार’ बंद करना पड़ा। उर्दू का सबसे पहला पत्र 1822 में ‘जागे जहानुमा’ निकला।

आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता और पत्रकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उस दौर में शायद ही कोई ऐसा बड़ा राजनीतिज्ञ या क्रांतिकारी रहा होगा, जो किसी न किसी रूप में पत्रकारिता से जुड़ा न रहा हो। राजकिशोर ने अपनी पुस्तक ‘पत्रकारिता के नए परिप्रेक्ष्य में’ इस दौर के महत्व को रेखांकित किया है, “स्वतंत्रता संघर्ष को पत्रकारिता सिर्फ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के राजनीतिक पहलू का वाहक नहीं थी। वह एक संपूर्ण पत्रकारिता थी, जिसके माध्यम से अर्थनीति, समाज और संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर खोजा जा रहा था।”

गणेशशंकर विद्यार्थी इस युग के प्रखर पत्रकार रहे। ‘प्रताप,’ ‘अभ्युदय,’ ‘प्रभा’ इनके मुख्य पत्रों में हैं। इसके अलावा महत्वपूर्ण पत्रकार शिवपूजन सहाय (‘जागरण,’ ‘बालक,’ ‘हिमालय,’ ‘साहित्य’) नारायण प्रसाद (‘योगी’) रूपनारायण पाण्डेय, पं. झाबरमल्ल शर्मा, लक्ष्मी नारायण गर्दे, श्रीकांत ठाकुर विद्यालंकार, (‘स्वतंत्र,’ ‘लोकमाय,’ ‘विश्वामित्र,’ ‘आज,’ ‘आर्यावर्त’) प्रेम (‘हंस’) आदि गांधी युग के प्रमुख पत्रकारों में रहे हैं।

भारतीय पत्रकारिता का दस्तावेज भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों का विकास एक-दूसरे का पूरक रहा है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व के पत्रों ने आंदोलन को खूब हवा दी। अंग्रेज सरकार को भी रौंद दिया। “राष्ट्रीयता को प्रखर करने वाली घटनाओं, विप्लवी भावनाओं तथा विदेशी शासन के प्रति विद्रोह बढ़ाने वाले समाचारों को इन पत्रों में प्रमुख स्थान प्राप्त होता है।” आजादी से पूर्व पत्रकारिता, हथियार थी अंग्रेजों से लड़ने के लिए। देश अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुआ और इस आजादी में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान था। आजादी के साथ हुकूमत भी बदली और गद्दी पर देशी जनता का कब्जा हुआ। इसके साथ पत्रकारिता में भी मूलभूत परिवर्तन हुआ। “आजादी के कुछ वर्षों बाद तक भी पत्रकारिता अपने मूल्यों पर टिकी हुई थी। कालान्तर में पत्रकारिता में सत्ता के खिलाफ विरोध के स्वर मंद होते गए और इस पर व्यावसायिकता होती चली गई।”

भारत की स्वतंत्रता से पूर्व जो माहौल जातीय एकता, देश प्रेम तथा स्वदेशी बातों का बना था, हमारे नेता लोग उसे बरकरार नहीं रख पाये। स्वतंत्रता से अपने अन्य प्रश्नों में भारत की एकता, अखण्डता, नए राज्यों का भारत में विलय, नए भारत का आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए पत्रकारों पर दायित्व बढ़ गया जिससे हिन्दी पत्रकारिता को बढ़ने तथा फलने-फूलने का अवसर मिला।

स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय राष्ट्रीयता को मुखर करने में पत्रकारिता महत्वपूर्ण प्रक्रिया रही है। राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना हर भारतीय के हृदय में पत्रकारिता जागृत कर रही थी। पत्रकारिता से सरकार के विरोध में स्वर मुखरित होने लगा। स्वतंत्रता पूर्व पत्रकारिता का इतिहास राष्ट्रीय नवजागरण और स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास रहा है। भारत का कोई ऐसा प्रांत नहीं था जिसे राष्ट्रीयता का प्रचार करने वाले पत्रों और पत्रकारों को जन्म न दिया हो। देश को आजाद कराने की भावना से प्रेरित होकर हिन्दी पत्रकार संघर्ष की मुद्रा में उतरे थे। कई यशस्वी पत्रकारों ने जेल की यातनाएँ भी सहनीं। फिर भी, उनके लिए पत्रकारिता एक जुनून थी। एक मिशन थी।

असहयोग आन्दोलन और हिन्दी की राष्ट्रवादी पत्रकारिता (प्रेमचंद के विशेषांक सन्दर्भ)

डॉ. रामपाल गंगवार

एसो0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
सी0एम0पी0 पी0जी0 कॉलेज, इलाहाबाद

सन् 1857 के बाद हिन्दुस्तान में पहला अखिल भारतीय स्तर पर चलने वाला देश की आजादी का आन्दोलन असहयोग (1920-22) था जिसके कर्ताधर्ता महात्मागाँधी थे। प्रथमबार इतनी बड़ी तादाद में स्त्रियां और अल्पसंख्यक (मुसलमान) इस आन्दोलन में सम्मिलित हुए। गाँधी जी का आश्वासन था कि यदि अनुशासित रहे तो एक साल में 'स्वराज' दिला देंगे। इसको व्यापक बनाने हेतु कृषक, मजदूर, जमींदार सभी को जोड़ने को प्रयास हुआ। मगर 'चौरी चौरा काण्ड' से गाँधी आहत हुए और आनन फानन में आन्दोलन जो धीरे-धीरे तेजी से फैल रहा था, मनमाने तरीके से स्थगित कर दिया गया। नेहरू, बोस आदि सभी बड़े नेता गाँधी जी के मनमानेपन से आहत हुए। इस आन्दोलन पर आमसहमति तो थी ही, जनता में लोकप्रियता थी, विश्वास था गाँधी में मगर उस समय के बड़े लेखक एवं पत्रकार किस नजरिये से इसे देख रहे थे? प्रेमचन्द हिन्दी की नही अखिल भारतीय शख्सियत थे जो रवीन्द्रनाथ टैगोर के समान, भले ही वैश्विक छवि नहीं थी, समादृत थे साहित्य एव पत्रकारिता के क्षेत्र में भी। हिन्दी पट्टी की प्रेमचन्द धड़कन थे, यह पहचान थे, आइकॉन थे। उनके उपन्यास, कहानियाँ जन-जन तक पहुँच हुए थे जो सीधे ग्रामीण किसान मजदूर दलित स्त्री अल्पसंख्यक की समस्याओं से रूबरू करते थे।

मैं यहाँ पर प्रेमचन्द को इसलिए भी महत्ता दे रहा हूँ क्योंकि उन्होंने गाँधी और असहयोग से प्रेरित होकर सरकारी नौकरी (DIOS) से इस्तीफा दे दिया था और इस आन्दोलन में बड़ी आशा और सम्भावना देशी जनों के लिए देख रहे थे। क्योंकि प्रथमबार गाँधी ने 'भारत के कोटि-कोटि गरीबों के द्वार पर उनकी बातें उनका अपनी भाषा में कहीं। परिणामतः देश के हृदय में प्रेम छलक उठा'। पहली बार हिन्दी गोबर पट्टी में 1857 के बाद सुगबुगाहट हुई जिसकी राष्ट्रव्यापी प्रतिक्रिया हुई। 'प्रेमचन्द जो हिन्दी नवजागरण की कथित लहर से बहुत कम प्रभावित और हिन्दी क्षेत्र के आर्य समाजी ने असहयोग आन्दोलन पर अपनी प्रतिक्रिया जिन छः लेखों में व्यक्त की उनमें तीन लेख रवीन्द्रनाथ टैगोर, जो बंगला नवजागरण की अंतिम और सर्वाधिक दैदीप्यमान शख्सियत की प्रतिक्रिया के पूर्व के और शेष तीनों लेख बाद के हैं। 'मौजूदा तहरीक के रास्ते में रुकावटें'² उर्दू लेख टैगोर के भाषण के तुरन्त बाद की प्रतिक्रिया स्वरूप है जिसमें रवीन्द्रनाथ का दोबार जिक्र आया है। इसके बाद जब असहयोग आन्दोलन स्थगित हो गया, तब प्रेमचन्द ने 13 अप्रैल 1922 के पत्र 'आज' अंक मई 1922 के पत्र 'मर्यादा' में असहयोग सम्बन्धित लेख लिखे। वे निराश नहीं हुए स्थगित होने पर भी जैसा कि 'स्वराज की पोषण और विरोधक व्यवस्थाएँ'³ लेख पढ़ने से लगता है। वे अपनी प्रतिक्रिया में 'अनुक्रम परिस्थितियों और उसकी प्रायिक' मार्ग में उपस्थिति बाधाओं, को जिम्मेदार बता रहे थे। किन्तु अंतिम लेख में दुःखी है- 'यदि वास्तव में असहयोग का अन्त हो गया तो खुश होने का अवसर नही लज्जा से डूब मरने का अवसर है। और इस हत्या का कलंक उन्हीं लोगों के माथे पर लगेगा जिन्होंने देश के आत्मसम्मान को अपने स्वार्थ पर बलिदान कर दिया।' प्रेमचन्द, टैगोर से भिन्न, शिक्षा असहयोग पर हिन्दी सप्ताहिक 'आज'⁴ में पक्ष में लिखते हैं कि 'असहयोग आध्यात्मिक आन्दोलन है'। क्योंकि आध्यात्मिक पतन के प्रमुख चार कारणों में सर्वप्रमुख कारण भारत में विश्वासहीनता है जो औपनिवेशिक शासन के कारण इतना घर कर गयी है कि जो वस्तु पश्चिमी थी, वह अच्छी थी, जो वस्तु जातीय थी, वह बुरी थी'। और ऐसी स्थिति बन गयी अपनी प्रत्येक 'जातीय वस्तु आँखों में खटकने लगी। वह 'राष्ट्रीय भाषा और भाव को त्यागने पर सहमत हो गई।' 'जमाना' पत्र में इन्हीं शंकाओं को समझाया। 'किसी जाति का पराधीन होना उसके आध्यात्मिक पतन और अधोगति का प्रमाण है।' इस आध्यात्मिक पतन के लिए प्रेमचन्द ने नेता-शिक्षक, वकील, जमींदार तीनों को जिम्मेदार बताया। नेताओं की मतिहरण पर पश्चिमी गुलामी का सर्वाधिक प्रभाव है और उनकी देखादेखी साधारण जनता भी इसी जाल में फँस गयी।.... यही लोग जिन पर जाति के उद्धार का भार था, शासन के सबसे बड़े भक्त बन बैठे हैं।' आगे उनके अनुसार 'शिक्षित समुदाय आज शासक जाति का दाहिना हाथ बना हुआ है। उसके आत्मदोर्बल्य और नैतिक पतन का यह हाल है कि वह सच्चाई में, ईमानदारी में, सद्ब्यवहार में युरोप को ही आदर्श मानता है।' प्रेमचन्द यहाँ पर टैगोर की तरह ही स्वदेशी समर्थक हैं कि "हमें सब कुछ के लिए सरकार पर आश्रित नहीं होने की बात करके अपने पर विश्वास करने का आह्वान करते हैं वे लिखते हैं कि 'हम अपने ऊपर विश्वास करना सीखें'। क्योंकि 'आत्म विश्वास राष्ट्रीयता का

प्रारम्भिक लक्षण है और कदाचित अंतिम लक्ष्य भी।' जैसा कि प्रमोद कुमार लिखते हैं, "चूँकि प्रेमचंद को शिक्षित तबके और नेतृत्व वर्ग से कोई विशेष उम्मीद नहीं है, इसलिए वे राष्ट्रीयता की भावना का उन्मेष करने के लिए विद्यार्थियों और युवाओं को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं।⁶ क्योंकि "युवकों में उत्साह है, ताजा खून है। वे आदर्श के लिए' जाति के लिए कर्तव्य क लिए अपने को समर्पण कर देते हैं। वे स्वार्थपरता के भार से मुक्त हैं। वहाँ जाति-धर्मप्रधान है। उन्हीं पर राष्ट्र के उद्धार का भार है, और वे स्वयं अपने कर्तव्य को समझते हैं।"⁷ प्रेमचन्द आंग्ल शिक्षा व्यवस्था को पूर्णतः दूषित मानकर त्याज्य मानते हैं क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली इस आत्मभिरूता का मुख्य साधन है। वह हमारे व्यक्तित्व का, हमारे पुरुषत्व का, हमारे आत्मगौरव का नाश कर देती है। जिस शिक्षा प्रणाली के हाथों जाति का यों सर्वनाश हो रहा हो, क्या उसे छोड़ना और उसे छोड़ने की प्रेरणा करना पाप है, कहा जा सकता है?"⁸ प्रेमचन्द, टैगोर से भिन्नमत रखते हैं यहाँ पर जब वे कहते हैं, 'क्या एक दो वर्ष के लिए शिक्षा को स्थगित कर देना इतना बड़ा अनर्थ है, जिस पर इतना बाबेला मचाया जाता है? राष्ट्रीय आवश्यकता के सम्मुख कुछ महीने के लिए पुस्तकों को ताक पर रख देना क्या वास्तव में घोर पाप है?' वे टैगोर से कही ज्यादा सही है। जब सवाल करते हैं कि 'और क्या सारी शिक्षा कॉलेजों के भीतर और ग्रन्थों के पृष्ठों के अन्दर ही भरी हुई है? क्या विस्तृत जगत् में, राष्ट्रीय संग्राम में, जनता की सेवा में, निर्बलों की सहायता में, प्रतिकूल अवस्थाओं का सामना करने में आत्मिक और नैतिक शिक्षा उपलब्ध नहीं होती? ... यथार्थ में यही वास्तविक शिक्षा है, जो हमें आने वाले स्वराज्य के लिए तैयार करेगी। बी०ए० और एल-एल०बी की डिग्रियाँ स्वराज्य के प्रश्न को हल नहीं कर सकतीं। अधिक से अधिक उनसे उदरपूर्ति हो सकती है।

'स्वराज की पोषक और विरोधक व्यवस्थाएँ' लेख में जो आज 13 अप्रैल 1922 में छपा, प्रेमचन्द आरम्भ करते हैं 'आत्मविश्वास की जरूरत' से, बिना उसके उत्साह नहीं हो सकता जो सफलता प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। मगर स्वराज्य को कुछ लोग न ध्येय बनाते हैं और कुछ लोग इतने हतोत्साह हो गये हैं कि वे स्वराज्य को अलभ्य, दुःप्राप्य वस्तु समझकर विरक्त हो गये हैं।¹⁰ स्वराज्य समझते हुए प्रेमचन्द', अपने देश का पूरा-पूरा इतजाम जब प्रजा के हाथों में हो तो उसे स्वराज्य कहते हैं।' और पराधीनता है जहाँ 'अधिकारी लोग प्रजा पर उसके हित के लिए नहीं, बल्कि अपने प्रभुत्व जमाने और भोग विलास करने के लिए राज करते हैं।'¹¹ स्वराज्य के लिए 'मुख्य साधन स्वावलम्बन' है यानी प्रेमचंद की नजर में स्वावलम्बन अर्थात् अपने देश की सब जरूरतों को आप पूरा कर लेना है, जो प्राणी अपने खेत का अनाज खाता है, अपने काते हुए सूत का कपड़ा पहनता है और अपने झगड़े-बखेड़े अपनी पंचायत में चुका लेता है उसे हम स्वाधीन कह सकते हैं।¹² प्रेमचंद की चिंता के केन्द्र है किसान, मजदूर, ग्राम, भूमि, लघु उद्योग। इसी लिए वे टैगोर के प्रतिकूल, गाँधी के 'चरखे' का समर्थन करते हुए उसे देहमुक्ति के साथ-साथ आत्मा की मुक्ति के साधन के रूप में स्थापित करते हैं। स्वराज्य के अगणित फायदों में प्रेमचंद दो प्रमुख फायदे बताते हैं। एक भारतीय जीवन का पुनरुद्धार और दूसरा आर्थिक सुदशा' प्रथम को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि भारत का प्रधानगुण धर्म परागता है। हमारे जीवन का मुख्य आधार धर्म था।' आर्थिक सुदशा पर वे लिखते हैं कि 'धन का स्रोत हमारी भूमि' है। हमारा देश कृषि प्रधान है। शिल्प और उद्योग यहाँ सदैव कृषि के नीचे ही रहेगा। अतः एव हम अपने यहाँ बहुत बड़े-बड़े कारखाने कायम नहीं कर सकते क्योंकि इससे मजदूर लोग शहर में बसने लगते हैं और नाना प्रकार की आदतों में पड़कर अपने शरीर और आत्मा दोनों का ही सर्वनाश करते हैं।' 'हमारा ग्राम्य जीवन जो स्वास्थ्य, रक्षा और आचरण की पवित्रता का पोषक है, नष्ट न होने पावे'। लघु उद्योगों की पराक्षरता का प्रमुख कारण 'जरूरत भर' का सामान उत्पन्न करना न कि 'सस्ता माल बनाकर निर्बल देशों पर पटकें और व्यवसाय के बहाने उन पर आधिपत्य जमाएँ।' क्योंकि व्यावसायिक चढ़ा ऊपरी के कारण यूरोप की जातियों में नित्य वैमनस्य बना रहता है। उसका भयंकर परिणाम यह महासमर था... हम इस महासमर से दूर रहना चाहते।¹³ लेकिन प्रेमचन्द स्वराज्य प्राप्ति की गाँधी जी के नेतृत्व में लड़ी जाने वाली लड़ाई में शामिल होने के लिए सभी का आह्वान करते हैं कि यह आपत्ति धर्म है। प्रमोद कुमार उनके मत को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि 'स्वराज्य के सुख भोगना चाहते हो तो चरखे चलाओ, स्वदेशी वस्तुओं को ग्रहण करो, अदालतों को छोड़ पंचायतों द्वारा अपने कलहों का फैसला कराओ, नशे की चीजों को त्यागो, वकालत के निकृष्ट पेशों को छोड़ो और राष्ट्रीय शिक्षा का उचित प्रबन्ध करो। तभी 'धार्मिक और मानसिक उन्नति' संभव होगी।'¹⁴ 'स्वराज्य पोषक और विरोधक व्यवस्थाएँ'¹⁵ लेख में व्यापक छानबीन की है और बताया कि कांग्रेस के 30 वर्ष के लगातार शिक्षण कार्य का फल है हमारा वर्तमान एक राजनैतिक विकास। वर्तमान स्थिति में विकास क्रम की एक अवस्था है। जो सम्पूर्ण संसार की बदली हुई परिस्थिति के कारण है। आगे वे बताते हैं कि अब अंतरराष्ट्रीय भावों ने व्यापक रूप धारण कर लिया है। प्रत्येक राष्ट्र में ऐसी जनसंस्थाएँ पैदा हो गयी है जो केवल अपने ही सुख और स्वार्थ को जीवन का आदर्श नहीं समझती, जो दीन और पददलित जातियों पर भी सहानुभूति की दृष्टि डालती रहती है। कम-से-कम लोकमत किसी जाति को दासत्व की दलदल में फँसे हुए देखना पसन्द नहीं करता, उसे राज्यविस्तार, राष्ट्रीय गौरव या जातीय व्यापार की उन्नति के लिए किसी जाति के शरीर की जाँक बनना हल नहीं है। नहीं तो आयलैण्ड जैसा देश इंग्लैण्ड जैसे सबल साम्राज्य का इतने दिनों तक प्रतिकार न कर सकता।... वे यह मानते हैं कि 'अभी तक प्रायः सभी बड़े राष्ट्रों की बागडोर लक्ष्मीपतियों के हाथों में ही है, और राज्य के विधायक उन्हीं के इशारों पर नाचते हैं और निर्बल राष्ट्रों का भक्षण करने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते तथापि वह समय बहुत दूर नहीं है जब लोकमत का दबाव निश्चयात्मक

सिद्ध होगा। आगे वे अंतर्राष्ट्रीय लोकमत को अपने पक्ष में करने के लाला लाजपत राय के अमरीका में भारतउद्धार के प्रयास की सराहना करते हैं।¹⁶ इस लेख में उन्होंने मजदूर दलों, कश्शकों एवं मुस्लिमों के ऐक्य पर जोर दिया। असुलताथ जाति भेद और शिक्षित लोगों के स्वार्थ एवं दम्भ को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम के प्रश्न को नाजुक मानकर तीसरी शक्ति (अंग्रेज) को इसके लिए जिम्मेदार ठहराते हुए हिन्दुओं को ज्यादा सजग रहकर मुस्लिमों का साथ देने की बात की। गौरतलब है कि ये तीसरा पक्ष टैगोर के यहाँ नामौजूद है। वे सभी से अपने देश के जीर्णोद्धार व्रत में अपने कर्म परायण भाइयों का योग देने का आह्वान करते हैं। ऐसी जागृति बार-बार नहीं होती। बहुत दिनों के बाद भारत को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस जागृति का यथेष्ट उपयोग न करना एक महान राष्ट्रीय पाप है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता। आत्मस्वातन्त्र्य के सम्मुख उनकी दृष्टि में उनकी सांसारिक वस्तुओं का कोई महत्व नहीं। जिस दिन हमारी जनता को यह विदित हो गया कि आत्म-गौरवका, देश-स्वातन्त्र का महत्व आत्म स्वातन्त्र से कम नहीं है, बल्कि वह इसका पोशक और निर्माता है, उस दिन वह नये लक्ष्य पर अपना सर्वस्व उसी प्रेम उत्सर्ग सर्व से बलिदान कर देगी। जैसे अभी धर्म पथ पर करती हैं।

स्वराज्य का अर्थ कुछ-कुछ उसकी समझ में आने लगा है, उसके भौतिक और अध्यात्मिक महत्व को वह समझने लगी है। राजनैतिक क्षेत्र में उसने कदम रख दिया है, यही जागृति हमारी आशाओं को पूरा रखेगी। .. जिस सजीव भक्ति से महात्मा जी के आदेश को (जनता ने शिरोधार्य किया है, उससे यह आशा होती है कि हम विजय-लक्ष्य से बहुत दूर नहीं हैं। हमारी सद्भक्ति) हमारी धर्म परायणता अभी लुप्त नहीं हुई, केवल उसे नये आदर्श की ओर प्रवृत्त कर देना है। प्रेमचन्द असहयोगियों पर व्यंग्य करने वाले सहयोगियों को मुहतोड़ जबाब देते हैं। 'सहयोग चाहे सर्वथा निष्फल हो गया है लेकिन कम-से-कम उसने आपकी सम्मान प्रतिष्ठा का जादू तोड़ दिया, आप जनता की निगाहों में गिर गये, अब आप पर 'न कहा जीया बुरे हवाल' की मसल चरितार्थ हो गयी। देश को मालूम हो गया कि किससे आशा रखनी चाहिए और किनसे चौकस रहना चाहिए। कौन देश के लिए है, कौन देश के द्रोही। आपने मैकाले की शिक्षा विषयक दूरदर्शिता का बहुत ही उत्तम प्रमाण दे दिया।¹⁸ प्रेमचन्द ऐसे ही लोगों पर लिखते हैं कि "याद रखिए, हमें अंग्रेज जाति से स्वराज्य नहीं लेना है, हमें अपने ही भाइयों से, अपने ही देश बंधुओं से स्वराज्य लेना है। हमें अपनी शक्तियाँ नौकरशाही से सत्याग्रह करने में नहीं, अपने भाइयों से सत्याग्रह करने में लगानी चाहिए।"¹⁹ प्रेमचन्द खुलकर पक्ष लेते हैं आंदोलन के हर कार्यक्रम का। भले पूर्ण सफलता न मिली है उसमें जैसे सबसे निंदा किये जाने वाले पक्ष 'शिक्षा बहिष्कार' पर 'विद्यार्थियों ने सामूहिक रूप से स्कूल कॉलेज छोड़े हैं लेकिन उसमें आजादी और सच्चाई की चेतना सेवा और बलिदान भावना जरूर पैदा हो गयी है जो आगे चल कर राष्ट्र के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इसी प्रकार सरकारी नौकरियाँ परित्याग एवं वकालत छोड़ने की विफलता पर प्रेमचन्द के सटीक तर्क हैं। गरज कि जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिस पर असहयोग का असर कमोवेश न पड़ा हो। खास तौर पर स्वदेशी आंदोलन और मद्यनिषेध में तो इस आंदोलन को बधाई के योग्य सफलता मिली है प्रेमचन्द को पता था कि बुद्धि और आध्यात्मिकता की खींचतान वर्तमान आंदोलन के रास्ते में भयानक रुकावट होगी और जब उसके समर्थक रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे दूरदर्शी, गहरी नजर वाले लोग हैं तो इस रुकावट को रास्ते से हटाना आसान न साबित होगा। ... इसी प्रकार खिलाफत को लेकर हिन्दू मुस्लिम ऐक्य में बाधा पर वे सचेत करते हैं लोगों को राष्ट्रीयता का प्रश्न कोई सनातन प्रश्न नहीं है। बहुत मुमकिन है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीयता की समस्या गायब हो जाय और सारी दुनिया में भाईचारा की एक ही व्यवस्था फैल जाय। प्रेमचन्द को कोई भ्रम नहीं कि कोई मजहबी ख्याल दुनियादारी से खाली नहीं होता। केवल आध्यात्मिक और वैयक्तिक उन्नति के लिए किसी धर्म की जरूरत ही नहीं, उसके लिए आत्मा का परिष्कार ही काफी है। हिन्दुओं को स्वराज्य की जरूरत अगर सांसारिक शक्ति के लिए नहीं तो और किसलिए है, आध्यात्मिकता के शिखर का द्वार तो अब भी बंद नहीं है। इसलिए अगर मुसलमानों को अपने देश से अपना मजहब चौगुना ज्यादा प्यारा हो तो हिन्दुओं को शिकायत या बदगुमानी का कोई मौका नहीं है। हिन्दुओं के लिए मुसलमानों के हृदय परिवर्तन की इससे अच्छी कोई सूत नहीं है कि वह यथाशक्ति खिलाफत की सहायता करें और आपस में ऐसी एकता की बुनियाद डालें जो हमेशा कायम रहे।²⁰ असहयोग आन्दोलन पर प्रमोदकुमार, तब के दो बड़े व्यक्तित्वों प्रेमचन्द और टैगोर की प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं दोनों का लक्ष्य स्वराज्य प्राप्ति है। दोनों की नियति और निष्ठा में भी कोई फर्क नहीं है। लेकिन दोनों की पृष्ठभूमि अलग-अलग है। दोनों का समाज भी भिन्न है। रवीन्द्रनाथ बंगाली नवजागरण की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति हैं। तीन पीढ़ियों से उनका परिवार बंगाल के संभ्रान्त भद्रलोक में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उनके परिवार के सभी धर्मों की पुस्तकें मूल भाषा में ही पढ़ी जाती हैं। किसी बंगाली लड़के के लिए सबसे लज्जास्पद गाली हो सकती है यदि वह अंग्रेजी नहीं जानता। जीवन की जो महानतम देन है उसका पूर्ण विकास हमारी आंतरिक प्रकृति में ही होता है।

असहयोग आन्दोलन के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ की पूरी प्रतिक्रिया इसी आन्तरिक प्रकृति के पूर्ण विकास की धारणा पर आधारित है। वे असहयोग आन्दोलन में इसी आंतरिक पक्ष की हानि देखकर उसकी आलोचना करते हैं। असहयोग के कार्यक्रमों में निहित आज्ञाकारिता और अनुशासन को इस चित्त के विकास में बाधा मानते हैं। आंदोलन की आलोचना का तीसरा तर्क उनका है सभी शक्तियों (हृदयवृत्ति, बुद्धिइच्छावृत्ति) के मिलन का अभाव जिनके बिना राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। इस आन्दोलन

में उन्हें 'प्रेम-सत्य' तो दिखता है लेकिन 'बुद्धि-सत्य' का अभाव दिखता है। चौथा तर्क वैश्विक स्थिति के प्रति नजरिये पर आधारित है। वे लोग अफ़नेशन और भारत सुधार विधायक को पश्चिम की सत्य की ओर अभिमुख दृष्टि का समाज मानते हैं। जब पश्चिम 'सत्य की ओर अभिमुख है तो भारत से उसके मिलन की यथार्थभूमि निर्मित हो रही है। ऐसे में असहयोग आन्दोलन उचित नहीं है। प्रमोदकुमार का मत है कि रवीन्द्रनाथ उसके सत्य की शक्ति तो देखते हैं मगर सत्य के संधान की प्रक्रिया की उपेक्षा करते हैं। इसके विपरीत प्रेमचंद यहीं से अपने समर्थन का तर्क गढ़ते हैं। प्रेमचन्द का आध्यात्मिक आंदोलन किसी पुस्तकीय ज्ञान से पैदा नहीं हुआ बल्कि राजनीति के क्षेत्र में पैदा हुआ है। असहयोग आन्दोलन पहला राजनीतिक आंदोलन है जिसने आम आदमी के अंदर अपने होने का विश्वास पैदा किया है। जो एक पाश्चात्य सभ्यता का प्रतिलोम है तो वही दूसरी तरफ उसकी जड़ें भारतीय भावभूमि में गहरे जमी हुई हैं। रवीन्द्रनाथ पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान और बुद्धि तत्व में समस्याओं का समाधान देखते हैं, वहीं प्रेमचंद बुद्धि और हृदय के मिलन में, राजनीतिक क्षेत्र में समस्याओं का समाधान देखते हैं। प्रेमचंद की चिंता के केन्द्र में भारत के गाँव में रहने वाला आदमी, किसान मजदूर है।' इसके अंदर विश्वास राजनीतिक प्रयोग द्वारा ही पैदा किया जा सकता है और वही स्वराज्य प्राप्ति का रास्ता होगा। रवीन्द्रनाथ जहाँ भारतीय शास्त्रों में, ज्ञान परम्परा में समाधान देखते हैं, वही प्रेमचंद भारत में जीवन शैली में समाधान देखते हैं। वही वे उन मूल्यों को देखते हैं जिससे पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता का मुकाबला किया जा सकता है।²¹ इस प्रकार प्रेमचंद की दृष्टि समस्याओं के समाधान के प्रति वास्तविक है न कि रूमानि। हिंदी पट्टी में राष्ट्रव्यापी अभिव्यक्ति प्रथम बार असहयोग आन्दोलन के दौरान होती है। इसी से ऊर्जा ग्रहण कर वे 'रंगभूमि' जैसी कामयाब औपन्यासिक कृति की रचना करते हैं। प्रमोद कुमार के शब्दों में 'यहाँ प्रेमचंद' हिन्दी पट्टी के राष्ट्रवाद की कमान हाशिए पर पड़े निरक्षर तबके के हाथों में सौंप कर भविष्य का संकेत दे देते हैं।²² पर ध्यान रहे कि प्रेमचन्द के लिए 'राष्ट्रवाद नये जमाने का कोढ़ है'। वे मजबूरी में उपनिवेशवाद का मुकाबला करने के लिए सहारा राष्ट्रवाद का ही लेते हैं जबकि उनका यकीन राष्ट्रीयता में है जिसे परिभाषित करते रहे है कि 'राष्ट्रीयता की पहली शर्त है साम्यभाव का दृढ़ होना' जैसा कि प्रमोद कुमार लिखते हैं कि रवीन्द्रनाथ को वह साधना राष्ट्रवाद की मृगतृष्णा तक ले जाती है। प्रेमचंद राष्ट्रवाद को नए जमाने को कोढ़ मानते हुए भी अंत तक संघर्षरत रहते हैं। जो शायद गाँधी भी कहते हैं जो 'राष्ट्र राज्य' के सबसे बड़े आलोचक हैं लेकिन राष्ट्र कैसे आजाद हो, इसका संधान जीवन पर्यन्त करते हैं।²³

सन्दर्भ

1. हिन्दी आधुनिकता : एक पुनर्विचार, खण्ड दो, सम्पा0 अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 424
2. देखें पत्र, जमाना, सितम्बर-अक्टूबर, 1912 अविकल रूप में संकलित 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, खण्ड दो, डॉ0 कमलकिशोर गोयनका, संस्करण-1988, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
3. देखें पत्र, आज, 13 अप्रैल 1922
4. देखें- 14 मई 1921 का हिन्दी साप्ताहिक 'आज'
5. देखें- हिन्दी आधुनिकता : एक पुनर्विचार, खण्ड दो, पृष्ठ 431-432, देखें आज, हिन्दी साप्ताहिक 14 मई 1921
6. वही0 432
7. आज हिन्दी साप्ताहिक पत्र 14मई 1921 अविकल रूप में संकलित 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, खण्ड दो
8. वही0, पृष्ठ 404
9. वही0, पृष्ठ 404, 405
10. वही0, पृष्ठ 405
11. प्रेमचंद का पुस्तकाकार लेख 'स्वराज्य के फायदे' जुलाई 1921 में हिन्दी पुस्तक ऐजेंसी कलकत्ता से प्रकाशित। (हिन्दी आधुनिकता : एक पुनर्विचार, खण्ड दो, सम्पा0 अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ 433)
12. वही0, पृष्ठ 433
13. वही0, पृष्ठ 434-435
14. वही0, पृष्ठ 435
15. आज 13 अप्रैल 1922 अविकल रूप में संकलित 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य, खण्ड दो
16. वही0, पृष्ठ 406-407
17. वही0, पृष्ठ 409-410
18. प्रेमचंद के विचार भाग एक, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली सं0 2003 पृष्ठ 31, 32, 33 में संकलित लेख विभाजक रेखा, मर्यादा बैशाख 1979 वि0 में प्रकाशित
19. वही0, पृष्ठ 29, मर्यादा बैशाख 1979 वि0 में प्रकाशित लेख 'नया वर्ष'
20. वही, पृष्ठ 16-17-19-21-22-26-27, जमाना, दिसम्बर-1922
21. हिन्दी आधुनिकता : एक पुनर्विचार, खण्ड दो, पृष्ठ 440-441
22. वही, पृष्ठ 441
23. वही, पृष्ठ 450

लोक और मीडिया (राष्ट्रीयता के संदर्भ में)

डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता
माता सुन्दरी महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

मीडिया एक संवाद है हम और हमसे। मीडिया एक संवाद है हम और तुम के मध्य। सूदूर एकांत में बैठकर समग्र समाज की प्रस्तुति का आभास मीडिया कराता था। मीडिया की संकल्पना में व्यक्ति और लोक के मध्य पनप रहे अलगाव से मुक्ति थी। व्यक्ति और लोक के पारस्परिक साहचर्य को व्यक्त करना मीडिया का धर्म था। उसका धर्म था स्वतंत्रता को व्यक्त करना, धर्म था मानवता की मुक्ति के राग प्रस्तुत करना, धर्म था लोकधर्म के निर्वाह का, धर्म था उपेक्षित मानवता के पक्ष को उपस्थित करने का, धर्म था हाशिये की आवाज को बुलंद करने का, धर्म था बढ़ रहे मानवीय रिश्तों की दूरियों को कम करने का। मीडिया की संकल्पना में संभवतः विभिन्न स्रोतों विभिन्न प्रकार की चर्चाओं और चर्याओं से रूबरू कराना था।

मीडिया ही माध्यम है जो व्यक्ति और लोक के संबंध को मजबूत करने की पुरजोर कोशिश करता है। उसके राग के साथ, लोकराग के साथ। लोकधुन को पकड़ने और जमाने की रफ्तार के साथ, ठहराव के साथ उस लोक की संस्कृति और साहित्य को उपस्थित करने की संकल्पना भी थी। संभवतः मीडिया को इस प्रकार की संकल्पना से संपृक्त होना चाहिए। तभी चाल, चरित्र और चलन में मीडिया की राष्ट्रीय छवि को उभारा जा सकता है। बात मीडिया की संकल्पनाओं को स्मृत करते हुए वर्तमान समाज में लोक साहित्य-संस्कृति की है।

मीडिया का चरित्र वर्तमान परिदृश्यों में ग्लोकल बनाने का प्रयास है। ग्लोकलीकरण से सभ्यताओं के स्वरूप परिवर्तित हो रहे हैं। वर्तमान में मीडिया में ग्लोबल गांव की अवधारणा प्रकट है। जैसे-जैसे दुनिया में सोशल मीडिया हावी होता जा रहा है और आई टी इंफ्रास्ट्रक्चर प्रभावी होता जा रहा जैसे-जैसे वैश्विक समाज के बीच की दूरियां निरंतर कम हो रही हैं। हो सकता है ये सही हो लेकिन इस निरंतर कम होती दुनियावी दूरियों और ग्लोकल होते समाज में आंचलिक लोक उपेक्षा के साये में खड़ा है। आज मीडिया इंस्टीट्यूट्स और सोशल मीडिया दोनों ही तीव्र गति के साथ ग्लोकलीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। वर्तमान मीडिया और उसके भिन्न आयाम इसी ग्लोकल सभ्यता का प्रसार भी कर रहे हैं। मीडिया में भारतीय लोक और उसकी पृष्ठभूमि के साक्षात्कार आंशिक है।

यदि इस संदर्भ में बात करते हुए आगे बढ़ें तो जिस प्रकार आज ग्लोकल की अवधारणा का विस्तार हो रहा है उससे भविष्य में स्थानिकता, गांव और लोक का मरना सुनिश्चित है। ये उन लोगों के लिए चुनौती है जो विकास का एक मात्र रास्ता ग्लोकलीकरण में खोजते हैं। ग्लोकल को विकास का एकमात्र रास्ता कहने वाले वैश्विक विकास को तो समझ रहे होंगे लेकिन ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता आज भी इंतजार में बैठी है विकास के रास्तों का। वर्तमान समय और समाज को इंटरनेट ने पूरी दुनिया से जोड़ा है लेकिन देश के अनेक ऐसे ठौर हैं जो अभी सड़क से भी जुड़ना बाकी है। हम अभी भी ऐसे अंचलों को जानते हैं जहाँ ज्ञान और प्रकाश की व्यवस्था भी नहीं। अनुपस्थित अधुनातनता के साथ जिंदा समाज की दास्तानों को समाये हुए है। ऐसे में उस लोकसाहित्य का संरक्षण और कठिन हो जाता है जो सुविधाओं और संरक्षण के अभाव में क्षीण होता जा रहा है। संभवतः भारतीय मीडिया समाज इस ओर अपनी दृष्टि करने की कोशिश करेगा ताकि राष्ट्रीय समाज के उपेक्षित को भी प्रवेश समाज की धारा में मिल सके।

लोक नई पहचान का मोहताज नहीं है। लोक अपनी तमाम प्रकार की स्वीकृति और अस्वीकृति में लोक बना रहना स्वीकार करना चाहेगा। वह किसी प्रकार की ग्लोकल अवधारणा और मीडियाई बनावटी अवधारणा से कोसों दूर रहना चाहता है। वह नहीं चाहता कि उसकी संस्कृति, सभ्यता तथा उसके अस्तित्व के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश की जाए। लोक यथास्थितिवादी नहीं होते हैं। मीडिया से अनुरोध इतना है कि मुख्य धारा से लोक को संलग्न किया जाए किन्तु उसके मूल चरित्र और चित्त के साथ किसी प्रकार के अतिवाद के साथ व्याख्यायित न किया जाए।

आज का दौर गांधी के द्वारा प्रदर्शित राष्ट्र राज्य की अवधारणा को खंडित करता है। अस्वीकृत करता है। वर्तमान में हम मात्र पश्चिमी मॉडल का अनुकरण कर रहे हैं। राष्ट्र राज्य की अवधारणा में भी उसी मॉडल को अपनाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता अधिकांशतः एकोन्मुखी सभ्यताएं हैं जबकि भारतीय सभ्यता का विकास बहुरूप में हुआ है। भाषाई,

धार्मिक के साथ-साथ अन्य प्रकार की विविधताएं वर्तमान है। अब हम किस प्रकार सुनिश्चित करें कि अखंड भारत को एक पक्षीय नजर से उकरें। वर्तमान परिदृश्य में हम आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर बढ़ रहे हैं। जैसे-जैसे आधुनिकता और उत्तरआधुनिकता की ओर बढ़ रहे वैसे-वैसे हम अपनी पारंपरिक सभ्यता और संस्कार से व्यक्ति को उपेक्षित करते जा रहे। सनातनता से दूर जा रहे हैं। पारिवारिक गठन का विघटन और न्युक्लियर फैमिली की अवधारणा हमारे समक्ष है। पेज श्री और लाइफ इन मेट्रो फिल्म इस समय इस प्रकार के संदेश प्रदर्शित करती है तो डोर सदृश फिल्म वर्तमान आधुनिक समाज में भी परंपरा, रूढ़ियों के निदर्शन प्रस्तुत करते हैं। मीडिया इस संपूर्ण का विश्लेषण बहुत दूर तक व्यक्त करता है। इन बदलते परिवेशों में मीडिया का दायित्व बनता है कि वह सही स्वरूप से व्यक्ति-समाज को अवगत कराए।

ग्रामीण संस्कृति में किसी प्रकार की चकाचौंध अथवा ग्लेमरस जीवन का अभाव पाया जाता है संभवतः मीडिया का आकर्षण उस कथ्य में नहीं बनता। मीडिया टी आर पी और ग्लेमर के पीछे दौड़ता है या फिर ऐसे रहस्य को तलाशने की कोशिश करता है जो किसी प्रकार के सस्पेंस को छुपाये बैठा हो।

मीडिया को हम चाहे इंस्टीट्यूशनाइज्ड करने की कोशिश करें किन्तु वह आज भी असंगठित स्वरूप में ही हमारे समक्ष है। उसका कोई संगठन नहीं है जो समाज के सुदूर इलाकों में अपनी पहुंच रखता हो। दूरदराज की सामाजिक उपस्थिति को प्रकट करता हो। मीडिया को अपना राष्ट्रीय स्वरूप व्यक्त करना है तो प्रथमतः उसे अपना राष्ट्रीय संगठन खड़ा करना होगा। वर्तमान में चाहे जितनी भी एजेन्सियां कार्यरत हैं वे सब बहुत दूर तक अपने संगठन का विकास नहीं कर पा रही है इसीलिए संभवतः आज दूरदराज को व्यक्त करने में कहीं सोशल मीडिया पारंपरिक मीडिया से आगे है। मीडिया संगठनों और एजेन्सियों को अपना स्वरूप संगठित और विस्तृत करना होगा।

मीडिया लोकवृत्त का सही विश्लेषण नहीं है। मीडिया का राष्ट्रीय चरित्र तभी समक्ष आएगा जब वह लोक की समझ को जनता में उकरने का प्रयास करेगा। लोकवृत्त को व्याख्यायित करता हुआ, लोक की संरचनात्मक व्यवस्था के प्रति स्नेह और संवेदना को व्यक्त करता मीडिया। मीडिया में लोक ज्ञांकी के रूप में रहा। लोक को शहरी मनोरंजन के साधन के रूप में दिखाया जाता है। उनकी परंपरा और संस्कृति को दूर की, सड़ी गली और दकियानुसी बताकर मीडिया आज भी हंसी करने की कोशिश करता है। राष्ट्र और मीडिया के रिश्ते लोक की ज्ञांकी नहीं बल्कि उसकी व्यवस्थागत संरचना की कमियों को दूर करने का प्रयास करें तो अच्छा था। यदि किसी प्रकार की सामाजिक समस्या, वैषम्य अथवा समरसता का अभाव है तो उसके लिए मीडिया को जन समाज को जागरूक करने के प्रयास करने चाहिए। राष्ट्रीय भावना के प्रसार के लिए व्यक्ति हृदय में स्वतन्त्र अस्मिता और उन्मुक्त समाज का स्वप्न दिखाने का मीडिया प्रयास कर सकता है। डिस्कवरी या अन्य खोजी मीडिया चैनल वर्तमान लोक परंपराओं को विरासत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रदर्शन में नगरीय बोध के समक्ष लोक के बोध को कम करके आंका जाता है। मीडिया में लोक का देशी अंदाज तो है लेकिन लोक की वास्तविक छवि गायब है। धूमिल है। समाचारों की हेडलाइन्स में भी लोक नहीं है।

पत्रकारिता एक नगरीय भाव और अवधारणा रही। इसीलिए वह नगरीय आवेश और आगोश में रही। संभवतः इसी कारण से और लोक संदर्भित संरचना के अभाव के कारण लोक मीडिया में निरंतर उपेक्षित होता रहा। मीडिया गांवों से विस्थापन की समस्या को कम रेखांकित करता है। ना ही उस विस्थापन को रोकने का कोई प्रयास और सुझाव मीडिया प्रस्तुत करता है। वर्तमान मीडिया पारस्परिक सौहार्द्र के भाव को व्यक्त और प्रस्तुत करने में भी असमर्थ हैं।

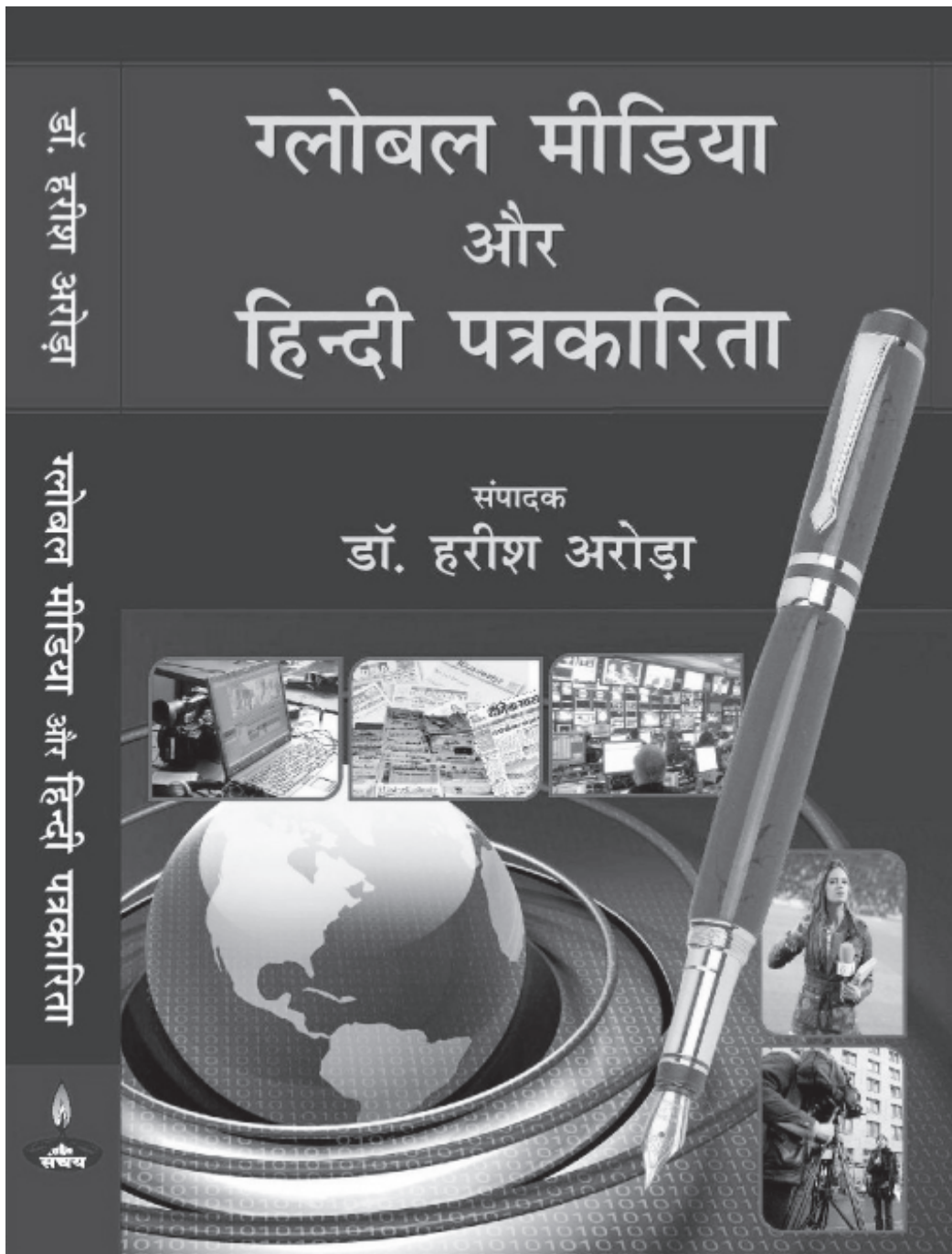
मीडिया को अपनी मुहिम चलानी चाहिए जिसमें लोकभाषाओं और बोलियों के संरक्षण के प्रयास करने होंगे। यदि लोक भाषाएं और बोलियां सुरक्षित रहेगी तो आने वाले समय में हमारी सभ्यता और संस्कृति भी जीवित रहेगी। लेकिन वर्तमान में हिन्दी और अंग्रेजी को ज्ञान प्रसार की भाषा के रूप में अधिकृत किये जाने के बाद संभवतः लोकभाषाएं शनैः-शनैः विलुप्त हो रही है। यहाँ मात्र भाषाएं नहीं मर रही हैं बल्कि उस भाषा से संदर्भित ज्ञान, संस्कृति और संस्कार ही नहीं मर रहे बल्कि एक जीता जागता समूल समाज नष्ट हो जाता है। अतएव मीडिया को लोक को बचाने की मुहिम में लोकभाषाओं के संरक्षण के सवाल को निरंतर जीवित रखना चाहिए। ये सही बात है कि अखंड भारत के निर्माण के लिए एक आवश्यक भाषा होती है लेकिन ये भी सच है कि एक भाषा के जीवित रहने से समाज अपनी विविधता में जीवित रहता है तथा विविध सभ्यताओं और संस्कृतियों के समागम से लोकतांत्रिक व्यवस्था की बुनावट मजबूत होती है।

मीडिया अब समाचारों के अतिरिक्त अब सब कुछ दिखाता है। जिसमें अपराध है, सिनेमा है तो क्रिकेट भी, वास्तुशास्त्र है तो अस्ट्रोलोजी है, सैक्स स्कैणल के खुलासे भी। ईश्वरीय आस्थाओं को तलाशता मीडिया वर्तमान वैयक्तिक सामाजिक आस्थाओं को दरकिनार करता हुआ चलता है। मंदिर और मस्जिद के गुणगान करता मीडिया मंदिरों और मस्जिदों में पल रहे अनैतिक कर्मों से संभवतः अवगत कराने का प्रयास कम ही करता है। वर्तमान मीडिया आज की बड़ी बहस में चुपके से सरकार को पूरा अवसर प्रदान कर देता है कि वह नीतिगत बदलावों को मीडिया की बड़ी बहस के शोर में प्रस्तुत कर सके।

ग्लोबलाइजेशन का भावविचार सांफ्रांसिस्को, लंदन और युनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका से संचालित है। हाल में भारतीय राजनीति में आ रहे बदलाव को इस संदर्भ में परखा जा सकता है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और राहुल गांधी के द्वारा विदेशों में

जाकर दिये गए उद्बोधन काफी मायने रखते हैं। उक्त उद्बोधन भारतीय राजनीति में अपना स्थान विशेष ही नहीं रखते हैं बल्कि राजनीति को एक मोड़ भी प्रदान करते हैं। लोक संस्कृति के विकास और विन्यास को समझाने का प्रयास अन्य से कम है। राष्ट्रवादी मीडिया अपने सभी प्रकार के संदर्भों में लोक विन्यास को समझाते हुए संस्कृति का विनाश बचाने की पुरजोर कोशिश करेगा। मीडिया देश और परदेश में लोक को जीवित रखता है तो मीडिया लोक के रचनात्मक कलेवर को उपस्थित करने का प्रयास करेगा।

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तक



मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रबोध

डॉ सरिता सिन्हा

हिंदी विभागाध्यक्ष

सी.बी.बी.जैन कॉलेज, बैंगलोर

प्रत्येक साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब स्वरूप होता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरम्भ भारतेन्दु के समय (1857-1900 ईस्वी तक) से माना जाता है। जिसमें राजभक्ति, देशभक्ति और समाज सुधार की कविता होती थी। द्विवेदी युग (1900-1920) में आकर राजभक्ति फीकी पड़ गयी और तात्कालीन राजनैतिक पार्टियों को सुगठित करने में देश की जनता ने देशभक्ति का परिचय दिया। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, थियोसोफिकल संस्थाओं ने भारतीयता को पुनः जीवित किया। राष्ट्रीयता की जो भावनाएं राजनीति के क्षेत्र में पनपीं साहित्य में उन्हीं की अभिव्यक्ति का सुअवसर साहित्यकारों ने भी पाया। ठीक ऐसे ही समय में द्विवेदी युगीन कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साहित्य के माध्यम से देश और समाज की उन्नति हेतु हताश जनता में जागरण के प्राण फूंक दिए। सम्पूर्ण राष्ट्र की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण और स्वदेश प्रेम के स्वरो को मुखरित करते रहने के कारण उन्हें राष्ट्रकवि माना गया।

मैथिलीशरण गुप्त ने हिंदी कविता को रीतिकालीन शृंगार परंपरा से निकालकर तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संजीवनी से अभिसंचित करके लगभग छह दशक तक हिंदी काव्यधारा का नेतृत्व किया। गुप्त जी के लिए भारतीय होने का अर्थ था -समग्रता में देश प्रेम, देशभक्ति और मातृभूमि के प्रति पावन पूजा का भाव। राष्ट्र प्रेम की अजस्र धारा को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि-

‘जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नहीं
वह हृदय नहीं पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।’¹

भारत-भारती के माध्यम से स्वदेश प्रेम को दर्शाते हुए कवि ने भारत के वर्तमान दुर्दशा पर चिंता व्यक्त की है --

‘ठीक ऐसी ही दशा हतभाग्य भारतवर्ष की
कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।’²

कवि का यह कथन 21वीं सदी के भारत में भी उतना ही प्रासंगिक है। जिस भारत की आजादी के लिए इतनी कुर्बानियां दी गयीं, आज उसी भारतवर्ष में जाति और धर्म के नाम पर देश को बांटने की साजिश हो रही है। कभी काश्मीर का राग आलाप कर ‘भारत तेरे टुकड़े होंगे’ का नारा लगाया जाता है, तो कभी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धरोहर ताजमहल पर (वक्फ बोर्ड द्वारा) दावा ठोका जाता है। देश के प्रति श्रद्धा का भाव आतंरिक होता है। इसी भाव के तहत प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को उस देश के इतिहास, परंपरा, भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एक जुट मानता है। इसी भाव से वशीभूत हो कवि कहता है-

‘हे मातृभूमि तेरे निकट सब का सब सम्बन्ध है
जो भेद मानता वह अहो ! लोचनयुक्त भी अंध है।’³

कवि की दृष्टि में यह वही प्राचीन भूमि है जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनाई थी। यह वही भारत है जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल उसके बहने वाले समुद्राकार नदियाँ हैं, जहाँ चिरंतन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण-रज पड़ चुकी है। यहीं धर्म एवं दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। कवि कहते हैं कि हमारे पूर्वज महान थे, पहले यह बात हमें याद करनी होगी। जिन महान पूर्वजों का खून हमारी नसों में बह रहा है, हमें उस खून पर विश्वास करना होगा और अतीत के उनके कृतित्व पर भी हमें दृष्टि डालनी होगी। इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से देश के प्रति लोप होती आस्था एवं भारत की श्रेष्ठता को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। अतः कवि देश की जनता का आह्वान करते हुए कहते हैं-

‘हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।’⁴

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय राष्ट्रवाद को उसकी प्राचीन महिमा की उच्च वेदी पर प्रतिष्ठित किया। उनके मन में

सदा-सर्वदा यही विचार घूमता था कि किस प्रकार भारतवासियों की मृतप्राय, परन्तु सोई हुई आध्यात्मिक ऊर्जा को जगाकर भारत की प्राचीन महिमा को पुनः स्थापित किया जाए। अतः कवि कहते हैं --

‘हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भाव मूर्तियों का यह प्रथम भण्डार है
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।⁵

कवि का यह आह्वान हर पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक है। वर्तमान भारत में भी कवि के नायकत्व की सख्त दरकार है क्योंकि ‘आज हम केवल अपने देश के नहीं, अपितु सारे विश्व के इतिहास में एक संकट के दौर से गुजर रहे हैं। बहुतों का मत है कि इस समय हम एक अथाह गर्त के कगार पर खड़े हैं। आदर्शों में विकृति आ गयी है, नैतिकता में गिरावट आ गयी है, पलायनवाद का विस्तार हो रहा है। जनमानस इस पर विचार करता हुआ निराशा, पराजय तथा व्यर्थता की अनुभूति से अवसन्न होता जा रहा है।⁶

कवि ने भारत के विभिन्न सम्प्रदायों - हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि सभी को समान भाव से देखकर साम्प्रदायिक सद्भाव को अक्षुण्ण बनाये रखने की अपील की। सर्वधर्म सद्भाव ही तो भारतीय संस्कृति की पहचान है। कवि कहते हैं -

‘जाति धर्म या सम्प्रदाय का नहीं भेद व्यवधान यहाँ
सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम सम्मान यहाँ।⁷

आज देश में जैसे हालात बने हुए हैं, इसमें पुनः अंग्रेजी राज वाली भयावहता दिखाई दे रही है। विकासवाद का विरोध, वास्तविकता से परहेज, उहापोह, फूट डालो और राज करो की स्थिति ने लोगों का जीना मुश्किल कर दिया है। ऐसे में गुप्त जी के काव्य की युगानुकूलता सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक और धार्मिक चारों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। देश में व्याप्त सामाजिक विभेदकारी कुरीतियों को दूर करने के लिए जब देश में कई प्रकार के सुधारवादी आंदोलन चले थे, उस समय गुप्त जी ने देखा कि समाज की प्रगति में ऊँच-नीच की भावना बड़ा व्याघात उत्पन्न कर रही है। कवि ने समाज के प्रत्येक वर्ग को श्रेष्ठ एवं महान बनने एवं उत्तरोत्तर प्रगति के लिए प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा-

‘पूत, कर्म कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत,
छूत बुरी है, अहो भाग्य है यदि हम हुए अछूत।⁸

कवि की इस पंक्ति की व्याख्या को आज कुछ लोग राजनैतिक प्रतिक्रिया के दायरे में घसीट लें तो इसमें आश्चर्य नहीं। मुझे व्यक्तिगत तौर पर ऐसा लगता है कि कवि जरूरतमंदों के लिए आरक्षण के विरुद्ध नहीं थे, लेकिन रूढ़िवादी जड़ परम्पराओं और मान्यताओं के प्रति उनमें आसक्ति नहीं थी। गुप्त जी जानते थे कि जब तक भारत के सभी वर्ग, सभी जातियाँ मिलकर अपनी प्रगति के लिए प्रयत्नशील नहीं होगी तब तक न तो हम आजाद हो सकते हैं और न ही हमारा व्यक्तिगत या सामाजिक विकास संभव हो पायेगा। ऐसे समय में डॉ. भीमराव आंबेडकर उपर्युक्त पंक्ति के मर्म को साकार करते हुए नजर आते हैं। सड़क पर निकलकर तमाशा करने, तोड़-फोड़ मचाने से कुछ हासिल नहीं होता। कुछ हासिल करना हो तो ईमानदार प्रयत्न का वो जज़्बा, वह जूनून चाहिए जो बदलाव ला सके। कवि ने भारतीयों को आशावादी भावना में जीना सिखाया है। उनका कहना है कि आलस्य से रहित होकर हर कार्य करना होगा जिससे कार्य में सफलता मिले और हम आगे बढ़ें, इसी में जीवन की सार्थकता है’

‘यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो
कुछ तो उपयुक्त करो तन को
नर हो, न निराश करो मन को।’

अखंड चेतना का पर्याय है भारत। यह सिर्फ भौगोलिक इकाई नहीं जिसे नदियों, पहाड़ों या समुद्र तटों से परिभाषित किया जा सके। ‘इस्लाम के आक्रमण ने मध्य काल में जिस प्रकार भक्ति भावना को उभारा, आधुनिक काल में अंग्रेजी शासन ने उसी प्रकार राष्ट्रीयता की भावना को। क्रमशः ऐहिकता की ओर उन्मुख समाज में राष्ट्र भावना जैसे भक्ति भावना की स्थानापन्न बन गयी हो, विविध वर्गों की एकता और समानता जिसका घोषित लक्ष्य थी।⁹

इतना ही नहीं, कवि ने यह भी कहा कि अन्याय और अत्याचार के खिलाफ निर्भय होकर आवाज उठाओ, आंदोलन करो-
‘न्याय धर्म के लिए लड़ो तुम, ऋत -हित समझो बूझो,
अनय राज, निर्दय समाज से निर्भय होकर जूझो।¹⁰

आज तो सवाल यह है कि न्याय किसके लिए - सिर्फ पुरुष वर्ग के लिए या भारत के प्रत्येक जनमानस के लिए? .. भारत की आधी आबादी भारतीय नारी - क्या है उसका यथार्थ। भारतीय संस्कृति में नारी का अत्यंत महत्वपूर्ण तथा सम्मानस्पद स्थान रहा है। अबला नारी के प्रति गहरी सहानुभूति रखने वाले कवि गुप्त जी ने नारी के अनेक तथा विविध प्रकार के चरित्र

अपने काव्यों में उपस्थित किये हैं। सीता, उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया आदि उनके नारी पात्र इतने महामहिम हैं हैं, जिनपर हमें नाज है। भारतीय नारी की गौरव-गाथा प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं -

केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था
गृह देवियां भी थी हमारी देवियां ही सर्वथा।
था अत्रि -अनुसूया सदृश गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में,
दाम्पत्य में वह सौख्य था जो सौख्य था अपवर्ग में।¹¹

अत्रि -अनुसूया सदृश नारियाँ भारतीय संस्कृति का गौरव हैं, फिर भी आज की नारी बलात्कार और हिंसा का दंश झेलने के लिए मजबूर क्यों हैं ? ऐसे में अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने की बात बेमानी लगती है। फिर इस समस्या का निराकरण कैसे हो? इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानंद के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनका मानना था कि -‘वेद काल में नारी स्वतंत्र थी। उसे पुरुष के ही समान अधिकार प्राप्त थे। वह वेदों का अध्ययन करती थी, शास्त्रार्थ करती थी। उसका उपनयन संस्कार होता था। वह भारत का स्वर्ण युग था। वे मानते थे कि स्त्रियां स्वयं अपनी समस्याओं को सुलझा लेंगी। उन्हें सोचने और करने की स्वतंत्रता दो। उनके मार्ग की बाधाओं को दूर कर दो। बाकी काम वे स्वयं कर लेंगी।’¹²

गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता। भारतेन्दु के समय में स्वदेश प्रेम की भावना जिस रूप में चली आ रही थी, उसका विकास भारत-भारती में मिलता है। इधर के राजनितिक आन्दोलनों ने जो रूप धारण किया उसका पूरा आभास उनकी रचनाओं में मिलता है। सत्याग्रह, अहिंसा, मनुष्यत्ववाद, विश्व प्रेम, किसानों और श्रमजीवियों के प्रति प्रेम और सम्मान, सबकी झलक हम पाते हैं।

गांधीजी के सत्याग्रह की प्रशंसा करते हुए गुप्त जी कहते हैं ----

‘सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखो कोई भी वार
हार मानकर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार।’¹³

गुप्त जी को गणतंत्र में आस्था थी क्योंकि इसमें शासन सूत्र कभी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं रहता है। आज तो मजदूर या किसान भी राष्ट्रपति बन सकता है। परन्तु इन गुणों के रहते हुए भी कवि ने आधुनिक प्रजातान्त्रिक प्रणाली को स्वार्थपरता एवं भ्रष्टाचार की वृद्धि करनेवाला बताया किन्तु सर्वोदय की भावना का सर्वथा समर्थन किया और मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए राजनैतिक आदर्श को व्यक्त करते हुए कहा -

‘जगती तेरे जात सभी हम, जननी तेरी जय है।
विश्व-राज के प्रजातंत्र में किसको किसका भय है।
हैं व्यक्तित्व स्वतंत्र हमारे, पर समष्टि-मय मन्त्र हमारे।
हुए हृदय-युत यन्त्र हमारे, साधित सर्वोदय है।
सीमाओं के बंधन टूटे, प्रलय-युद्ध सब पीछे छूटे
जन-जन के जीवन रस लुटे हिंसा रहित हृदय है।’¹⁴

राजनैतिक व्यवस्था तब तक अर्थहीन है जब तक वह जनता के भरण-पोषण के प्रश्न को हल नहीं करती। किसी भी राष्ट्र का विकास तभी संभव है, जब उसके नागरिक सुखी व संपन्न हों। आज भारत की सबसे बड़ी समस्या है कि वर्तमान व्यवस्था व्यक्ति को अच्छा बनने ही नहीं देती। वह चाह कर भी अच्छा नहीं बन सकता। वर्तमान व्यवस्था सुधार के बिना क्या व्यक्ति निर्माण हो पायेगा ? देश में दिखाई देने वाली घोर विषमता घटे, धन का केन्द्रीयकरण न हो, अमीर-गरीब के बीच की खाई निरन्तर घटे। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपना दृष्टिकोण बदलें और देश के सभी लोगों को समान धरातल पर अपना आत्मीय मानकर उनके प्रति समानता का व्यवहार करें। भारत की सर्वसमावेशी विकास की कल्पना करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था - ‘गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चांडाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं। सभी भारतवासी मेरे प्राण हैं। भारत के देव-देवियां मेरे ईश्वर हैं। भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है। भाई बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है और भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।’¹⁵ मैथिलीशरण गुप्त भी अपने काव्य को आधार बनाकर हर भारतवासी से ऐसी ही आकांक्षा रखते हैं।

इस प्रकार ‘गुप्त जी में भारतीय दार्शनिक चिंतन की सभी विशेषताएं आ गयी हैं। कर्मवाद, अवतारवाद, अहिंसा, भक्ति, वर्णाश्रम व्यवस्था, आदर्शवाद, नैतिकता, शिष्टाचार, गांधीवाद, सर्वधर्म समभाव तथा सबसे ऊपर गुप्त जी मानवतावाद के कवि हैं।’¹⁶ मैथिलीशरण गुप्त का काव्य सिर्फ भौतिक परिवेश तक ही सीमित नहीं है। इन्होंने विभिन्न परिवर्तित युगों से भी आवश्यक सामग्री ली और उस सामग्री का समुचित उपयोग करते हुए अपने युगानुकूल नूतन काव्य की सृष्टि की। वे कभी अतिगम्य नहीं हुए और न गतानुगतिक होकर प्राचीनता के आवर्त में ही पड़े रहे, अपितु वे जागरूक प्रहरी की भांति प्रत्येक नूतन परिवर्तन की ओर दृष्टिपात करते हुए सदैव नूतन काव्य दृष्टि की ओर कदम बढ़ाते रहे और समय की मांग के अनुसार अपने साहित्य का सृजन करके राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में सहयोग प्रदान करते रहे।

सन्दर्भ

- 1 मैथिलीशरण गुप्त - प्रासंगिकता के अंतःसूत्र --कृष्णदत्त पालीवाल -वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
- 2 हिंदी कविता.कॉम/ उपक्रमणिका - भारत -भारती
- 3 मातृभूमि कविता -- हिंदी कविता.कॉम
- 4 हिंदी साहित्य का इतिहास --डॉ श्रीनिवास शर्मा --अशोक प्रकाशन नयी सड़क, पृष्ठ 720
- 5 हिंदी कविता.कॉम/ भारत -भारती
- 6 विवेकानंद के सपनों का भारत - बजरंगलाल गुप्ता, लक्ष्मीनारायण भाली -प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली,पृष्ठ 26
- 7 'भारत माता का मंदिर' कविता से / हिंदी कविता.कॉम
- 8 हिंदी साहित्य के प्रतिनिधि कवि -डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना, अग्रवाल प्रकाशन आगरा -- पृष्ठ 80
- 9 हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास -रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 97
- 10 हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि पृष्ठ 81
- 11 हिंदी कविता.कॉम/ भारत-भारती
- 12 विवेकानंद के सपनों का भारत - पृष्ठ 33
- 13 हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ -85
- 14 हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृष्ठ -86
- 15 विवेकानंद के सपनों का भारत - पृष्ठ 73
- 16 हिंदी साहित्य का इतिहास-श्यामचंद्र कपूर, पृष्ठ -219

जयशंकर प्रसाद के नाटक स्कन्दगुप्त में राष्ट्रीय भावना

डॉ. छाया रानी

जैन कन्या पाठशाला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मुजफ्फरनगर

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में सामाजिक, इतिहासिक एवं राष्ट्रीयता, भावना का चित्रण देखने को मिलता है। इनके नाटकों में राष्ट्रवादी एवं मानवतावादी, दृष्टिकोण बराबर उभरा है। इस सम्बन्ध में प्रसाद जी स्वयं कहते हैं कि “मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंग से उन घटनाओं का दिग्दर्शन कराने का है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत-कुछ प्रयत्न किया है। क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने में हमारी जलवायु के अनुरूप जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा या नहीं इसलिए मुझे पूर्ण सन्देह है।”¹ भारत के अतीतिय गौरव गाथाओं को लेकर भारत की जातीयता, संस्कृति, राष्ट्रीयता, महानता, सन्देश को लेकर प्रसाद के नाटक स्कन्दगुप्त में ऐसी भावना देखी जा सकती है। इस सम्बन्ध में ब्रजरत्नदास लिखते हैं कि “प्रसाद जी का हृदय देश प्रेम से भरा हुआ था इसलिए देश हितकारी कार्यों में रचनाओं से ही देश का जो उपकार कर सकते थे वही उन्होंने यथा शक्ति पूरे तौर पर किया।” उनका स्कन्दगुप्त नाटक सर्वोपरि प्रमाण है। इस नाटक का सृजन ही आत्म गौरव, आत्म निषेध और विश्व या मानव प्रेम के त्रिवेणी तौर पर हुआ है जो भारतीय संस्कृति, भारत की जातीयता एवं मुख्यतः भारत की प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता के मूलभूत तत्व रहे हैं। यह प्रसाद जी की राष्ट्रीय भावना ही नाटक की विशेषता है।²

स्कन्दगुप्त नाटक के रचना प्रकाशनकाल में भारत पराधीन था क्योंकि देश आंग्ल-सत्ता का शिकार था जिसमें खुलकर राष्ट्रीय प्रेम भावना को कोई भी स्त्री-पुरुष अभिव्यक्त नहीं कर पाता था। यह घोर राजनीतिक अपराध माना जाता था इसलिए लोग डरकर राष्ट्र प्रेम को व्यक्त नहीं कर पाते थे। अतः जयशंकर प्रसाद ने देश के वातावरण की स्थिति को देखकर ऐसे पात्रों द्वारा राष्ट्रीय प्रेम को उजागर किया है कि जिन्होंने देश के विभिन्न वस्तुओं से प्रेम, आत्म गौरव और दुरावस्था से प्रति क्षोभ से उनको सुधारने के लिए त्याग, बलिदान की शिक्षाएँ दी है। स्कन्दगुप्त नाटक देवसेना, भट्टार्क, मातृगुप्त, बन्धुवर्मा आदि ऐसे पात्र हैं जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए बहुत समय तक संघर्ष किया और हूणादि शत्रुओं, देशद्रोहियों को उखाड़ने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी है। यहाँ तक देखा जाता है कि पारिवारिक लोगों तक से निरन्तर संघर्ष करने, जूझने और उनपर विजय प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया है। इस सम्बन्ध में मातृगुप्त का यह कथन देखिए - “जन्मभूमि जिसकी धूल में लोटकर खड़े होना सीखा जिससे खेल खेलकर शिक्षा प्राप्त की जिससे जीवन के परमाणु संघटित हुए थे वही छूट गया, वसुन्धरा का हृदय भारत किस मूर्ख का प्यारा नहीं है।³ इसी प्रकार से भीमवर्मा भी राष्ट्रीय प्रेम के सम्बन्ध में स्पष्ट कहता है कि “आर्य साम्राज्य का उद्धार हुआ, लौहिय से सिन्धु तक हिमाचल की कन्दराओं में भी स्वच्छन्दतापूर्वक राष्ट्रगान होने लगा। धन्य हैं हम लोग जो इस दृश्य को देखने के लिए जीवित हैं।”⁴ इसी प्रकार भट्टार्क की माता का उसका द्रोही रूप देखकर उसको धिक्कारना तथा बन्धुवर्मा विजय का मालव-राज्य तक को त्यागना और विजय का अपना अपार रत्न-भण्डार स्कन्दगुप्त को सौंपना आदि उनके राष्ट्र प्रेम भावना के सूचक हैं। यहाँ अतीत का गौरव गान पग-पग पर देखने को मिलता है। क्या संवाद, क्या पात्र के विभिन्न कार्यकलाप, क्या घटना संयोजन तथा क्या देश का चित्रण इन सभी में राष्ट्र भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। देव सेना द्वारा गाया गया गीत ‘हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार’ अकेला ही इसका प्रमाण है। इस ओर गोविन्दगुप्त जैसे पात्र का प्रशंसात्मक कथन देखने योग्य है, “वत्स इन आर्य जाति के रत्नों की कौन-सी प्रशंसा करूँ इनका स्वार्थ त्याग दधीचि के दान से कम नहीं।”⁵ जयशंकर प्रसाद ने स्कन्दगुप्त नाटक में शक और हूणों के माध्यम से जहाँ उन्होंने विदेशी सत्ता और उसके अत्याचारों का चित्रण किया है वहीं पर ब्राह्मण-बौद्ध संघर्ष के द्वारा तत्कालीन, साम्प्रदायिकता और खण्डित राष्ट्रीयता का उल्लेख भी किया है। यहाँ स्कन्द, चक्र, पर्णदत्त, बन्धुवर्मा और देव सेना को क्रान्तिकारी देश दीवानों का चित्रण किया गया है। इस राष्ट्रीयता जागरण के मूल में आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। देवकी की समाधि पर रहते हुए पर्णदत्त और देव सेना द्वारा भीख मांगकर देश के बिखरे रत्नों को संघटित करने आदि के रूप में गांधी जी तथा अन्य आधुनिक नेताओं के प्रयास की स्थिति दिखलाई देती है। इसी तरह भट्टार्क जैसे लोगों की गद्दारी में अंग्रेजों का चाटूकार भारतीय वर्ग देव सेना की सक्रियता में सरोजिनी नायडू प्रभृति नारी-नेताओं, स्कन्दगुप्त देव सेना, बन्धुवर्मा आदि के जोश और सशस्त्र युद्धों में समकालीन क्रान्तिकारियों अथवा गरम दल, स्कन्द के अहिंसा विरोध में गांधी अहिंसा से असहमति, विश्व प्रेम और मानव प्रेम में थियोसोफिकल सोसाइटी जनसामान्य के निर्धनता एवं शोषणादि में कार्लमार्क्सिय प्रभाव देखने को मिलता

है तथा साथ ही साथ स्कन्द के संयम भरे जीवन में आर्य समाजी प्रभाव को भी देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह उदाहरण देखिए - “यवनों से उधार ली हुई सभ्यता नाम की विलासिता के पीछे आर्य जाति उसी तरह पड़ी है, जैसे कुल वधू को छोड़कर कोई नागरिक वेश्याओं के चरणों में देश पर बर्बर हूणों की चढ़ाई और जिसपर भी यह निर्लज आमोद जातीय जीवन के निर्वाणोमुख प्रदीप का यह दृश्य है। आह! मेरी तो यह इच्छा होती है कि मैं आत्म हत्या कर लूँ। दक्षिणाओं की योग्यता से स्वर्ग, पुत्र, धन, यश, विजय और मोक्ष तुम बेचने लगे जिस धर्म के आचरण के लिये पुष्कल स्वर्ण चाहिये, वह धर्म जन-साधारण की सम्पत्ति नहीं। धर्म-वृक्ष के चारों ओर स्वर्ण के काँटेदार जाल फैलाये गये हैं।”⁶ देश की ऐसी स्थिति के सन्दर्भ में नाटककार यह दृश्य प्रस्तुत करता है। देश के हरे कानन चिता बन रहे हैं। धधकती हुई नाश की प्रचण्ड ज्वाला दिग्दाह कर रही है। अपने ज्वालामुखियों को वर्षा की मोटी चादर में छिपाये हिमालय में मौन है, पिघलकर क्यों नहीं समुद्र से जा मिलता? ऐसी भयावह स्थिति में स्त्री-पुरुषों की क्या दशा होती है यह भी नाटककार ने स्कन्दगुप्त में दिखलाया है जैसे “अन्न पर स्वत्व है भूखों का और धन पर स्वत्व है देशवासियों का विलास के लिए उनके पास पुष्कल धन है और दरिद्रों के लिए नहीं।”⁷

ऐसी परिस्थितियों का चित्रण नाटककार ने किया है जिसमें ऐसी अनेक घटनाएँ हैं कि दरिद्र स्त्री-पुरुष भी राष्ट्रीय प्रेम से जाकर अपनी भूख, प्यास को अनदेखा करके देशद्रोहियों से जूझ पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव लिखते हैं कि “स्कन्द का विजय की ओर आकर्षित होना और विजय का उससे विरत होना ही राष्ट्र की ओर मोड़ देता है।”⁸ ऐसी घटनाओं के सन्दर्भ में डॉ० शान्ति स्वरुप गुप्त भी स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि “स्कन्दगुप्त की घटनाएँ दूर-दूर और बिखरी-बिखरी सी होने पर भी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं।”⁹

प्रसाद जी ने स्कन्दगुप्त नाटक में राष्ट्रीय चेतना को जगाकर देश प्रेम के प्रति प्रत्येक युवक, बच्चे, बूढ़े को जाग्रत किया है। ‘विजया चलो देश के प्रत्येक बच्चे, बूढ़े, युवक को उसकी भलाई में लगाना होगा।’ कल्याण का मार्ग प्रस्तुत करना होगा। हम देश की प्रत्येक गली को झाड़ू देकर इतना स्वच्छ कर दें कि उसपर चलने वाले राजमार्ग का सुख पावें। इस सम्बन्ध में मातृगुप्त भी कहता है कि “हम-तुम गली-गली, कोने-कोने पर्यटन करेंगे, पैर पड़ेंगे, लोगों को जगाएँगे। भारत के कल्याण के लिए मेरा सर्वस्व समर्पित है। क्या रोने से, भीख मांगने से कुछ अधिकार मिलता है जिसके हाथों में बल नहीं उसका अधिकार ही कैसा? कौन वीर इस तरह जन्मभूमि की रक्षा में प्राण देता है यही मैं देखना चाहता हूँ? जियो तो उसी के लिये यही अभिमान रहे। यह हर्ष न्यौछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।”¹⁰ यह प्रसाद की राष्ट्रीय भावना आग्रहविहीन है। इसमें न अनुकरण की प्रवृत्ति है और न आबद्धता की मुक्त हृदय से नाटककार की चरित्रों का निर्माण किया है जो प्रत्येक अवस्था में अपने कर्तव्यों को पूरा करते हैं वह युद्ध के समय अपने शौर्य का चमत्कार दिखाते हैं और संकट के समय भीख मांगकर अपमान सहकर भी देश सेवा के लिए बराबर लगे हुए हैं। नाटककार ने देश प्रेम के लिए प्रत्येक पात्र में बलिदान, त्याग, प्रेम, करुणा जैसे मानवीय गुण भरे हैं वहीं कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो देश सेवा के नाम पर धोखा दे रहे हैं और शत्रुओं से मिले हुए हैं। ऐसे पात्रों की घोर निन्दा भी की है जिससे उन्हें कहीं सम्मान नहीं मिलता है बल्कि उन्हें सभी दुत्कारते हैं इसलिए राष्ट्र प्रेम में स्त्री-पुरुष को हमेशा त्याग और बलिदान के लिए तत्पर रहना चाहिए तभी कहीं जाकर राष्ट्र की रक्षा की जा सकती है कि जहाँ पर अनेक स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े और जवान सुरक्षित रहकर अपनी जीविकोपार्जन कर सकते हैं। जब राष्ट्र की ऐसी स्थिति होती है तभी प्रत्येक प्रत्येक स्त्री-पुरुष नाना प्रकार के कार्य क्षेत्रों में परिश्रम से कार्य करने लगते हैं तो वह देश तरक्की की ओर अग्रसर होने लगता है। जवान राष्ट्र सीमा पर अपनी पूर्ण ईमानदारी और सच्चाई के साथ अपने कर्तव्य को निभाता है तो किसान अपने खेत-खलियान में महनत के साथ कार्य करता है तब उसकी ऋसल लहरा उठती है जिससे अन्न धन की देश में कोई कमी नहीं रहती तो नाना प्रकार के उद्योग धन्धे चलाकर सेठ-साहूकार उत्तम व्यापार करते हैं तब उन्हें एक सच्चा राष्ट्र भक्त और देश प्रेमी कहा जा सकता है इसलिए जयशंकर प्रसाद जी ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर स्कन्दगुप्त नाटक में लिखा है कि “जियो तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष, न्यौछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष।” अतः स्कन्दगुप्त नाटक में प्रसाद का राष्ट्रीय आदर्श और राष्ट्र यज्ञ में सब कुछ होम कर देने का भावपूर्ण वैभव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

सन्दर्भ

1. जयशंकर प्रसाद नाटक स्कन्दगुप्त पृष्ठ 4
2. प्रो० राजेश्वर अर्गल प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक पृष्ठ 19
3. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त पृष्ठ 61
4. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त पृष्ठ 79
5. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त पृष्ठ 81
6. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त पृष्ठ 83
7. जयशंकर प्रसाद-स्कन्दगुप्त पृष्ठ 12
8. ब्रजलाल दास-प्रसाद नाटक एवं परिदृश्य पृष्ठ 10
9. डॉ० शान्ति स्वरुप गुप्त प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प पृष्ठ 18
10. जयशंकर प्रसाद-नाटक स्कन्दगुप्त पृष्ठ 104

स्वतंत्रता का दौर और हिन्दी पत्रकारिता

अनीता देवी

बी.पी.एस.एम.वी. रीजनल सैन्टर
लूला अहीर, रेवाड़ी

“खीचों न कमानों को न तलवार निकालो।

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।।”

अकबर इलाहाबादी की ये पंक्तियाँ हिन्दी पत्रकारिता और देश की आजादी में अपना विशेष स्थान रखती हैं। वर्तमान युग सूचना क्रांति एवं संचार क्रांति का युग है। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति से कम्प्यूटर, इंटरनेट, सेटेलॉइट, छापेखाने तथा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रचार बढ़ गया है। 21वीं सदी में अखबारों की संख्या अधिक होती जा रही है। हम पत्रकारिता के उस समय की ओर देखना चाहेंगे जब उसका शैशवकाल और यौवनावस्था गुलामी की जंजीरों से बाहर आने में प्रयासरत थी और वह स्वयं को मुक्त करने के साथ-साथ देश को भी इन बेड़ियों से मुक्त करा पाई। हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय जनमानस की कहानी है। यह जन-जागरण राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ सार्वदेशिक रही। यह अपने आरम्भिक दौर में भी क्षेत्रीय या सकुचित दायरे से बाहर निकलकर कार्य करती रही। आज यह सूचना, प्रसार, सामाजिक एवं शासकीय व्यवस्था की रक्षक एवं उसके बदलाव का हथियार बनकर कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधानपालिका के साथ संविधान के चौथे स्तम्भ के रूप में खड़ी है।

पत्रकारिता के संदर्भ में इन्द्र विद्यावाचस्पति ने कहा है, “पत्रकारिता पाँचवाँ वेद है, जिसके द्वारा हम ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी बातों को जानकर अपने बंद मस्तिष्क को खोलते हैं।”¹ जेम्स मैकडोनाल्ड ने कहा है कि, “पत्रकारिता को मैं रणभूमि से भी अधिक बड़ी चीज समझता हूँ। यह कोई पेशा नहीं बल्कि पेशे से कोई ऊँची चीज है। यह एक जीवन है, जिसे मैंने अपने को स्वेच्छापूर्वक समर्पित किया।”² लोकमान्य तिलक के शब्दों में, “मैंने बहुत गरीबी में काम शुरू किया। अखबार के जिस दफ्तर में काम करता था, उसी में रात को सोता भी था और जमीन पर बिछे गद्दे को औँधा कर उसी पर कागज रखकर लिखता था। गद्दा झुक जाता, लेकिन ख्याल नहीं झुक पाते थे। सो ऐसा ही समझो। शरीर झुक गया है लेकिन ख्याल है कि नहीं झुक पाते। सच पूछो तो गरीबी का व्रत लेकर ही प्रखर राष्ट्र सेवा और सार्वजनिक सेवा की जा सकती है।”³

प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की कहानी है। इस काल खंड में साहित्यकार पत्रकारिता के साथ स्वतंत्रता सेनानी की भूमिका का भी निर्वहन कर रहे थे। जिसके कारण इनको अनेक बार जेलों में जमा पड़ा। यह कार्य जोखिम भरा था। अनेक प्रकार के कष्टों को उठाकर इन देशभक्त वीर सेनानियों ने जनभाषा हिन्दी के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम की चिन्तनी सम्पूर्ण देश में तैला दी। डॉ० कृष्ण बिहारी ने सत्य ही कहा है, “हिन्दी पत्रकारिता की कहानी वास्तव में भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है।”⁴ केशवचन्द्र चन्द्रसेन ने कहा था कि “हिन्दी के सम्पर्क भाषा बनने से लोग भारतवर्ष में नई शक्ति का अनुभव कर सकेंगे। विद्वानों ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषा से बाहर निकलकर राष्ट्रवाद की प्रबल धारा में अपने आपको समाहित कर दिया। इस क्रम में नवाबराय अर्थात् मुंशी प्रेमचन्द ने उर्दू से आगे बढ़ जनभाषा अर्थात् हिन्दी को लेखन का माध्यम बनाकर अनुकरणीय कार्य किया।”⁵

30 मई 1826 को कलकत्ता से निकला ‘उदन्त मार्तण्ड’ को पहला हिन्दी समाचार-पत्र होने का गौरव प्राप्त है। पं० जुगल किशोर इसके सम्पादक थे। पत्रकारिता के बीज बोने वाला यह पत्र ‘एक वर्ष सात माह’ चलकर बन्द हो गया। ‘उदन्त मार्तण्ड’ ने हिन्दी पत्रकारिता की जिस परम्परा को शुरू किया। उसका उद्देश्य देशवासियों को मध्यकालिलता से मुक्त कर एक नई सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि के निर्माण के साथ-साथ अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ जनजागरण करना था। इस समय पत्रकारिता और अंग्रेजी राज के बीच एक फासला बन गया था। ‘उदन्तमार्तण्ड’ से प्रेरणा प्राप्त कर बंगदूत (1828) ‘बनारस अखबार’ (1845ई०), ‘सुधारक’ (1850ई०) ‘बुद्धिप्रकाश’ (1852) ‘मजरूल सरूर’ (1852ई०) ‘पयामे आजादी’ (1857ई०), ‘कविवचन सुधा’ (1874) ‘उचितवक्ता’ (1880ई०), ‘भारत जीवन’ (1884ई०) आदि पत्रों के द्वारा तोड़ों ‘गुलामी की जंजीर’, ‘बरसाओ अंगारा’ और ‘सत्य निज भारत गहे’ का नारा बुलन्द किया गया। “प्रारम्भिक दौर के जो समाचार-पत्र निकले उनके नामों से उनके उद्देश्यों का पता चलता है। ‘समाचार दर्पण’, ‘संवाद कौमुदी’, ‘समाचार, चन्द्रिका’,

‘बंगदूत’, ‘संवाद प्रभाकर’, ‘ज्ञानदीपक’, ‘ज्ञानान्वेषण’, ‘संवादपूर्ण’, ‘चन्द्रोदय’, ‘संवाद भास्कर’, ‘ज्ञानदीपक’, ‘ज्ञानान्वेषण’, ‘ज्ञान प्रकाश’, ‘बुद्धि प्रकाश’, ‘मालवा अखबार’, ‘हिन्दी प्रदीप’, ‘ग्वालियर गजट’, ‘बनारस अखबार’, ‘सरस्वती’, ‘नवभारत’, ‘उचितवक्ता’, ‘शुभचिंतक’, ‘बुंदेलखण्ड अखबार’, ‘भारत मित्र’, ‘भारत जीवन’, ‘भारत माता’, ‘देवनागरी प्रचारक’, ‘हिन्दुस्तान’।¹⁶

हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में सबसे बड़ा योगदान, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का रहा है। 1867 ई0 से 1874 ई0 के मध्य ‘हरिश्चन्द्र चन्द्रिका’, ‘हरिश्चन्द्र मैगजीन’, ‘कविचन सुधा’ व ‘बाला बोधिनी’ नामक पत्र आरम्भ किये। उनके पक्षों का प्रमुख स्वर राष्ट्रीय चेतना, निर्भीकता तथा प्रगतिशील आदर्शों का हुआ करता था। भारतीय संस्कृति के प्रसार को राष्ट्रीयता को शर्त माना जाता था। ब्रिटिश राज के दमन के कारण ‘चन्द्रिका’ का प्रकाशन बन्द करना पड़ा था। 1889 ई0 में सार ‘सुधानिधि’ साप्ताहिक पत्र के सम्पादक श्री राधाकृष्ण गोस्वामी ने लिया “हम देशी पत्र सम्पादक हैं। हमारा सत्य कहना बुरा लगता है। हमसे खुशामद कराने के लिए प्रैस-एक्ट की घुड़की दी गयी। पर तुम्हें क्या? हम झूठ तो नहीं बोलते, वशथा खुशामद तो नहीं करते। टैक्स पर टैक्स, अकाल पर अकाल और भुखमरी पर भुखमरी। यही देखी जाती है। नित्य नई स्पीचों से नोन छिड़का जाता है।” उन सम्पादकों पत्रकारों ने विदेशी नीति का क्षेत्र भी नहीं छोड़ा और लिखा। काल्पनिक भय दिखाकर एक युद्ध छेड़ा गया था और दरिद्र प्रजा को सताकर पैसा वसूल किया गया था।¹⁷

सम्पादकाचार्य बाबू राव विष्णु पराङ्कर ने कहा है, ‘सच्चे भारतीय पत्रकार के लिए पत्रकारी केवल कला या जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं होनी चाहिए। उसके लिए वह कर्तव्य-साधन की पुनीतवृत्ति भी होनी चाहिए। क्योंकि अपने राष्ट्र में जन-जागृति का आवश्यक और अनिवार्य कार्य करना भारतीय पत्रकार का उत्तरदायित्व है।’¹⁸ लोकमान्य तिलक की बातों पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक हो जाता है। वे कहते थे, “हम शासकों के लिए नहीं लिखते हैं। हम लिखते हैं अपने पाठकों के लिए ताकि वे हमारी भावनाओं को अपने मन में धारण कर सकें और हमारे रोष को समझ सकें।” उनकी लेखनी ने ही देश की जनता को उजागर उसे यह अहसास कराया और आत्मविश्वास जगाया कि ‘स्वराज्यप्राप्ति उसका जन्मसिद्ध अधिकार है’, जिसे वह लेकर ही रहेंगे। उनके ये विचार पत्रकारिता को एक नई दिशा दिलाने में सफल हुए।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही पत्रकारिता राष्ट्रीय आंदोलन का पुरजोर समर्थन कर रही थी। राष्ट्रीयता और जन-जागृति दो ऐसे प्रमुख तत्व थे जिनको केन्द्र में रखकर ही उस युग के नेता आगे बढ़ रहे थे और उनके इन विचारों को आगे बढ़ाने का कार्य पत्रकारिता ने किया। उस समय का कोई भी नेता, समाज सुधारक या साहित्यकार नहीं था। जो किसी न किसी पत्रिका से सम्बन्ध न रहा हो। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे राजनेता भी पत्रकार थे। पं0 प्रताप नारायण मिश्र, ‘ब्राह्मण’, ‘पं0 बालकृष्ण भट्ट’, ‘हिन्दी प्रदीप’, राष्ट्रीय भावना का सरोकार ही इन पत्रों का उद्देश्य रहा। “साहित्यिक चेतना सम्पन्न पत्रिकाओं में ‘सिपाही’ (1904ई0 प्रयाग), ‘प्रताप’ (1913ई0 कानपुर), ‘प्रभा’ (1913ई0 खण्डवा) प्रमुख हैं।

इस तरह सन् 1870 ई0 से 1910 तक का समय हिन्दी पत्रकारिता का सक्रांति युग था। धार्मिक और सामाजिक सुधार से आरम्भ कर 1910 तक राष्ट्रीयता या देशभक्ति हेतु पूर्ण रूप से प्रखर रहा।¹⁰ 1925 ई0 में वृन्दावन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प्रथम हिन्दी सम्पादक सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए ‘पराङ्कर’ जी के इस कथन से हिन्दी पत्रकारिता के दायित्वों की ओर संकेत है- “हम हिन्दी सम्पादकों का कार्य बहुत कठिन है। गोदानी और कैंची हमारी सहायता नहीं कर सकती, करती भी है तो बहुत कम। हमारा संबंध केवल उन लोगों से नहीं है जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पाकर भारतीय समाज में एक प्रकार से संबंधों का त्याग कर दिया है। उनके कृत्रिम जीवन की आवश्यकताएँ इन कश्त्रि इंडों- इंग्लिश पत्रों से पूरी हो जाती है। हमारा संबंध प्रत्यक्ष समाज से है और उसका चित्र हम कहीं से चुराकर नहीं ला सकते हैं। वह हमें स्वयं खींचना पड़ेगा।¹¹ मुंशी प्रेमचन्द की ‘हंस’ जैसी पत्रिका में जब प्रेमचन्द जी की कहानी ‘समर यात्रा’ छपी, तो सरकार में सन् 1930 ई0 में सरस्वती प्रेस से एक हजार रुपये की जमानत मांगी। तब तक ‘हंस’ के कुछ ही फरमे छपे थे। इसके अधूरे फरमें ही पाठकों तक भेज दिए गए। 1936 ई0 में सरकार ने फिर आपत्ति की तथा फिर से एक हजार की जमानत मांगी। प्रेमचन्द जी उस समय बीमार थे। उन्होंने शिवरानी देवी (पत्नी) से जमानत देने के लिए कहा, जमानत भी हुई, ‘हंस’ का अंक भी निकला, लेकिन प्रेमचन्द जी नहीं रहे। कालान्तर में ‘हंस’ का प्रकाशन हिन्दी के विकास के रास्ते का ‘मील का पत्थर’ प्रमाणित हुआ। “राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी बुन्देलखण्ड से हिन्दी की ओर बढ़ चले, महान राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर मगधी से हिन्दी की ओर अग्रसर हुए महादेवी वर्मा ने ब्रज से आगे बढ़ मानव की संवेदना को कविताओं का रूप देवनागरी लिपि व हिन्दी में प्रदान किया, जयशंकर प्रसाद ने भोजपुरी से आगे बढ़ हिन्दी को अपनाया, पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने बैसवाडी से हिन्दी में प्रवेश किया।”¹²

प्रेमचन्द जी के ‘हंस’ ने मार्च 1930 के अपने अंक में लिखा था, “भारत ने शांतिमय युद्ध की रणभेरी बजा दी है। हंस भी मानसरोवर की शांति को छोड़कर अपनी नन्हीं-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए समुद्र को पाटने आजादी की जंग में भाग लेने चला है।”¹³ उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि पत्रकारिता ने जन-सामान्य को जागृत करने का कार्य कर दिया

था और देश का प्रत्येक नागरिक देश की आजादी के लिए प्राणों को देने के लिए तत्पर था। हिन्दी पत्रकारिता जैसे-जैसे युवा होती गयी ब्रिटिश सरकार ने भय और आशंका के कारण शिंकजा कसने के कदम उठा लिए थे। “सरकार द्वारा 1870 ई० में प्रेस के आपत्तिजनक लेखकों को दण्डित करने के लिए इंडियन पैनल कोड में एक नयी धारा 124अ जोड़ी गयी। 14 मार्च 1878 को वर्नाक्यूलर एक्ट पारित किया गया। इसके तहत पत्रों को सरकार से इकरार करना होता था कि कोई ऐसी सामग्री प्रकाशित नहीं करेंगे जो लोगों के अन्दर सरकार के प्रति घृणा या द्रोह का भाव पैदा करें। यह कानून केवल भाषायी अखबारों के लिए बनाया गया। ब्रिटिश हुकूमत ने 1889 ई० में ऑफिशियल सीक्रेट्स एक्ट तथा 1898ई० में राजद्रोह कानूनों में ऐसे प्रावधान किये कि किसी भी प्रेस के मुद्रक से पाँच हजार रुपये तक की जमानत मांगी जा सके। 1919 ई० के रोलेक्ट एक्ट के बाद 8-9 वर्षों के भीतर ही करीब 350 प्रेस और 300 अखबारों के कानून के अंतर्गत मुकद्मा चलाकर बंद कर दिया गया।”¹⁴ 1930ई० में प्रेस एंड अनआथराइज्ड न्यूज पेपर्स के नाम पर नया कानून बना। जिससे हैंडबिल और पर्चे भी सरकारी कानून के नियंत्रण में आ गये। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान कई अखबार जब्त हुए। कई बंद हुए लेकिन अब तक हिन्दी पत्रकारिता जनमानस को इतना मजबूत बना चुकी थी कि सेंसर के बावजूद कलम की गति रुक नहीं पाई। 1945 ई० में सेंसर हटा और पुनः समाचार-पत्र अपनी नई ऊर्जा लेकर पाठकों के सामने आया।

माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में, “पत्र हमारा शस्त्र है, शत्रु हमारा शस्त्र ही तोड़ डाले ऐसा अवसर जहाँ तब बने, मत आने दो। फिर भी यह सत्य है कि सत्य को प्रकाशित न करें तो सत्य से विचलित होंगे। तुम्हारा यह खेल मंहगा भी पड़ जाये तो मुझे पश्चाताप नहीं होगा।”¹⁵ उनका ‘कर्मवीर’ पत्र जो त्याग, तप आहुत और क्रांति का उद्घोषक था।¹⁵ इसका प्रकाशन कई बार स्थगित किया गया। अपनी कविता ‘पुष्प की अभिलाषा’ के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता और स्वतंत्रता के आंदोलन को नया रूप प्रदान किया-

“मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जायें वीर अनेक।”

उनकी यह कविता देश की आजादी में अपने प्राणों का पण लगा देने वालों इन शहीदों का अर्पण करते हैं जो अपनी मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करते हैं। “1919 ई० में पं० दशरथ” प्रसाद द्विवेदी ने स्वदेश पत्र का प्रकाशन किया, जिसका मूल सिद्धांत था-

“जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।”

गोरखपुर से प्रकाशित इस पत्र के प्रत्येक अंक के सम्पादकीय स्तंभ में ‘जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’ सूक्ति अंकित रहती थी।”¹⁶ एक सच्चा पत्रकार साहित्यकार होता है। हरिकृष्ण जोहरे की ये पंक्तियाँ इस संदर्भ में समीचीन हैं-

“कट गई जिन्दगी साहित्य की फुलवारी में,
तीसरपन है इस बाग की फुलवारी में।
कागज ओढना और बिछौना कागज में ही छपाना।
कागज लिखते-लिखते साधो, कागज में मिल जाना।”

असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आन्दोलन के समय प्रकाशित हिन्दी पत्रों स्वदेश प्रेम छलकता है-

क्रांति की उषा से होगा, रक्त भारतीय व्योम,
ताप भरा नेह का, तरणि तमके होगा।
कायरों क्यों लेते हो, कलंक को अकारथ ही,
भारत के भाग्य का सितारा चमके ही गा।”

अथवा

चढ़ रहे हो शीश अगणित
एक सिर मेरा चढ़ा लो।¹⁷

दूसरी ओर देश की युवा पीढ़ी को जागरूक करने में लगे पत्रकार अपनी लेखनी से उनमें देश पर मर मिटने का। जज्बा भर रहे थे। अपनी आन, बान और शान को बचाने के लिए वे उन्हें सम्बोधित करते हुए कहते हैं-

“नौजवानों वक्त है मिट जाओ कौमी आन पर।
देखना बट्टा न लग जाये वतन की शान पर।”

‘गदर’ पत्रिका के प्रथम अंक में छपी करतार सिंह क्रांतिकारी की कविता में स्वयं को देश के लिए बागी कहलाने से कोई भी परहेज नहीं है-

“जो पूछे कि कौन हो, तुम,

तो कह दो बागी है नाम अपना।
जुल्म मिटाना हमारा पेशा,
गदर करना है काम अपना।
नमाज संध्या यहीं हमारी,
यही पाठ पूजा भी सब यही है।
धरम करम, सब यही प्यारों,
यही खुदा और है राम अपना।”¹⁸

“हो उथल-पुथल खून जवानों का।
बलिदेवी पर बलि चढ़ने को,
अब चले झुण्ड मर्दानों का।”¹⁹

ये वीर देश भक्त अपने प्राणों की आहुति स्वतंत्रता के यज्ञ में डाल रहे थे। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता ‘झांसी की रानी’ राष्ट्रभक्ति की महागाथा है। उनकी यह कविता भारतीय इतिहास में शौर्यगीत के लिए स्वर्णिम अक्षरों में अंकित था, अंकित है और अंकित रहेगा। उनकी इस कविता की पंक्तियाँ जन-जन का कण्ठाहार बन चुकी हैं-

“सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में आई, फिर से नयी जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत, सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी की करने की, सबने मन में ठानी थी।”²⁰

साहित्य सर्जकों एवं पत्रकारों की आन्दोलनकारी एवं परिवर्तनकारी भूमिका से भयभीत होकर अंग्रेजी सरकार उनकी रचनाओं एवं पत्र-पत्रिकाओं को जब्त कर रही थी। लेखकों, पत्रकारों और साहित्यकारों से जेलों को भरा जा रहा था, परन्तु विरोध जनजागृति और स्वतंत्रता के भावों के कारण मुक्ति की कामना और बलिदान का सिलसिला जारी रहा। वे किसी भी कीमत पर इस लड़ाई को हारना नहीं चाहते थे। उनका एक मात्र हथियार कलम ही थी। स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी कहा करते थे कि “हमें चुपचाप भरकर नीव के कंकड़ों की तरह बलिदान करना चाहिए। तुम्हें अपने बलिदानों के लिए शोहरत नहीं चाहिए, बल्कि अभिमान रहित होकर गुप्त रूप में किए गए बलिदान ही ईश्वर को सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए तुम्हें स्वयं अपना बलिदान करके बलपूर्वक स्वतंत्रता प्राप्त करनी होगी। स्वतंत्रता/याद रहे कि यह दैवी शक्ति की प्रेरणा है और इसका यह मतलब है कि बलिदानों का तांता न टूटने पाए। तुम देखोगे कि स्वतंत्रता अविलंब आएगी।”²¹

पत्रकारिता यदि एक बड़ी शक्ति है, तो उसका उत्तरदायित्व भी बहुत बड़ा है। लेखनी अगर भटक जाए तो गजब ढा सकती है। अविश्वास पैदा करके यह विघटन पैदा कर सकती है। अगर यह लोगों में गलत सूचनाएँ देकर नफरत-उत्तेजना पैदा कर दे तो हिंसा और रक्तपात कर सकती है। इसकी कलम पर व्यक्ति, समाज और देश को जोड़ने तथा तोड़ने दोनों कार्य निर्भर है। लोकतंत्र में पत्रकारिता की स्वतंत्रता होना अति आवश्यक है। साम्प्रदायिक सौहार्थ के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले गणेश शंकर विद्यार्थी के ये शब्द महत्वपूर्ण हैं- “मैं पत्रकार को सत्य का पुजारी मानता हूँ। सत्य को प्रकाशित करने के लिए वह मोमबत्ती की भाँति जलता है।” वास्तव में पत्रकार पूरे समाज की ओर देखकर ही कार्य करता है। वर्तमान समय में उसे अपने कर्तव्यों के प्रति और अधिक सचेत होने की आवश्यकता हो रही है। अब हमारे पत्रकार हिन्दी के न रहकर हिंगलिश के हो गये हैं। अब वे अपने अखबार आम जनता के लिए नहीं, बल्कि इन मुट्ठी भर हिन्दी के क्लासी कुपड़ों के लिए निकालते हैं जो उनके अखबारों को पढ़ते ही नहीं। “निराला, पं० मदनमोहन मालवीय, भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी, महात्मा गांधी जिन्होंने बीबी सी लन्दन के पत्रकार से कह दिया था कि दुनिया से कह दो गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता, बा. वि. पराडकर और हम सबकी आत्मा तड़प रही है ... कि ‘उग्र’ के ‘राम रोजगार’ को किस तरह ‘व्यापार’ बना दिया गया है।”²²

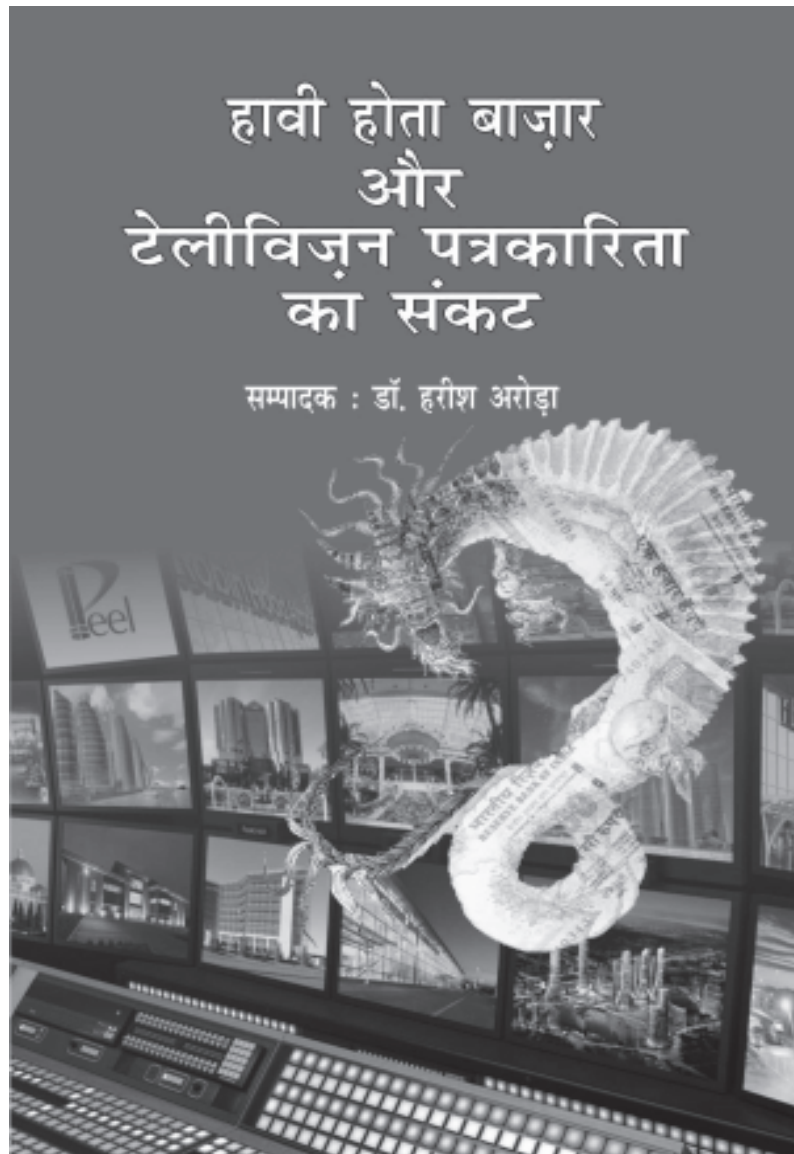
“जब तक जिए लिये खबर नामें,
चल दिए हाथ में खबर थामे।”

संदर्भ

1. डॉ० प्रणव शर्मा, डॉ० पुनीत बिसरिया, हिन्दी पत्रकारिता कल, आज और कल वहीं, उपरिवत् पृ०-13
2. राधे श्याम शर्मा, हिन्दी पत्रकारिता उद्भव और विकास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, पृ०-17
3. राधे श्याम शर्मा, हिन्दी पत्रकारिता उद्भव और विकास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला पृ०-17
4. डॉ० प्रणव शर्मा, डॉ० पुनित बिसरिया, हिन्दी पत्रकारिता कल, आज और कल पृ०-38
5. वहीं, उपरिवत्- पृ०-40
6. राधे श्याम शर्मा, हिन्दी पत्रकारिता उद्भव और विकास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, पृ० 5
7. सोच-विचार, साहित्यिक पारिवारिक मासिकी पत्रिका द्दहिन्दी पत्रकारिता दिवस पर विशेषांक जून, 2013, पृ० 11-12

8. वही उपरिवत्, पृ० 12
9. राधे श्याम शर्मा, हिन्दी पत्रकारिता उद्भव ओर विकास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, पृ० 21-22
10. महाराष्ट्र मानस- विष्णु पराडकर विशेषांक, श्री नारायण चतुर्वेदी, पृ० 14
11. राष्ट्रीय नवजागरण और पराडकर जी, पराडकर अंक, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृ० 6
12. डॉ० प्रणव शर्मा, डॉ० पुनीत बिसरिया, हिन्दी पत्रकारिता कल आज और कल, पृ० - 40
15. वही, उपरिवत् पृ० - 17
16. डॉ० प्रणव शर्मा, डॉ० पुनीत बिसरिया, हिन्दी पत्रकारिता कल आज और कल, पृ० 342
17. वही, उपरिवत्, पृ० - 132
18. वही, उपरिवत्, पृ० - 132-133
19. वही, उपरिवत्, पृ०- 134
20. राजेन्द्र उपाध्याय, आजकल मार्च 2008 पृ०- 6
21. डॉ० प्रणव शर्मा, डॉ० पुनीत बिसरिया, हिन्दी पत्रकारिता कल आज और कल, पृ०- 193-194
22. सोच-विचार, साहित्यिक पारिवारिक मासिकी पत्रिका द्विहिन्दी पत्रकारिता दिवस पर विशेषांक

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तक



राष्ट्रवाद के निर्माण में मीडिया की भूमिका

मोनिका दुबे
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष का एक महत्वपूर्ण प्रतिवाद औपनिवेशिक क्षेत्रों में राष्ट्रवाद का उदय था। ये राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन जिनके परिणाम स्वरूप औपनिवेशिक क्षेत्रों को राजनितिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई कई रूपों में उभरे जिनमें भारत के अहिंसावादी राष्ट्रवाद से लेकर फ्रांस के विरुद्ध अल्जेरिया का उग्र राष्ट्रवाद सभी निहित हैं। राष्ट्रवाद को 19 शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी का धर्म कहा गया है। पिछले 200 सालों में राष्ट्रवाद सभी प्रकार की विचारधाराओं जैसे उदारवाद, समाजवाद, फासीवाद तथा पूर्व-उपनिवेशी राज्यों के साथ जुड़ा रहा है और कई चुनौतियों के बावजूद एक विजेता के रूप में उभरा है। संसार में प्रत्येक देश में राष्ट्रवाद पहले नंबर पर आता है तथा विचारधारा दूसरे स्थान पर। 90 के दशक में सोवियत यूनियन के विघटन और वैश्वीकरण के दौर में राष्ट्रवाद एक जरूरी तत्व के रूप में उभरा।

राष्ट्रवाद एक आधुनिक परिघटना है। राष्ट्र या राष्ट्रवाद एक कल्पना मात्र है¹ जो कि किसी भू-भाग के लोगों की आपसी सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने का काम करती है। आधुनिक अर्थ में यह – “अपनी जानी-पहचानी भूमि तथा लोगो की अभिव्यक्ति माना जाता है जिन्हें देशभक्ति का सार माना जाता है।² हेयस के अनुसार – ‘राष्ट्रवाद एक ऐसी मानसिक अवस्था जिसमें राष्ट्रीयता के प्रति गर्व की भावना, निष्ठा विचार सभी अन्य निष्ठाओं से ऊंचा होता है तथा अपनी राष्ट्रीयता के प्रति गर्व की भावना इसकी अंतर्निहित श्रेष्ठता एवं इसके लक्ष्य इसके अभिन्न अंग होते हैं।³ इसके विपरीत ग्लेनर का विचार है कि राष्ट्रवाद मूलतः एक राजनैतिक सिद्धांत है। गिदंस ने राष्ट्रवाद के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर बल दिया है।⁴

राष्ट्रवाद के दो पक्ष हैं पहला राजनैतिक सिद्धांत से प्रेरित दूसरा है अस्मिता। एक में राष्ट्र राज्य की सामानांतर पक्ष सामान होना चाहिए दूसरे में सांझी अतीत संस्कृति भूमि से जुड़ाव इत्यादि। राष्ट्रवाद की एक महत्वपूर्ण भूमिका भिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर लोगो को इकट्ठा करने की क्षमता है। राष्ट्रवाद केवल शासक वर्ग द्वारा अपने लिए बिना शर्त निष्ठा प्राप्त करने के लिए किया गया एक साधन मात्र नहीं है बल्कि विश्वास पैदा करना है कि लोगो में उन्हें जोड़ने वाले सांझे तत्व अधिक हैं तोड़नेवाले कम।⁵ राष्ट्रवाद की निरंतरता को समझने के लिए यह एक मूलभूत तत्व है कि राष्ट्र को भौगोलिक इकाई से निकाल कर उसको सांस्कृतिक और जातीय बोध से युक्त किया जाये। इस जातीय बोध का निर्माण करने के लिए कई बार उनको एक सामान धर्मी धर्म संस्कृति परंपरा और कलाओं का हवाला दिया जाता है तो कभी एक तरह की जीवन शैली का।⁶

आज बदलते युग और तकनीक ने एक नये तरह की राष्ट्रवाद की संकल्पना को जन्म दिया है जो कि टेलीविजन या मीडिया की देन कही जा सकती है। पूरी दुनिया में मीडिया, पत्रकारिता और समाचार की हालत ठीक नहीं है। शायद यह दौर ही है तोड़-मरोड़ कर बोलने वालों का। यहाँ मिर्च-मसाला लगी और चटपटी बातों को लाजवाब माना जाता है और यह हाल पूरी दुनिया का है, किसी एक देश का नहीं। जब मीडिया की भूमिका आज के परिप्रेक्ष्य में जितनी सकारात्मक है उससे कहीं ज्यादा नकारात्मक रूप में हमारे सामने आ रही है। मीडिया ने सूचना एवं तकनीकी को बहुत ही वृहद स्तर पर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। हम मीडिया की उन उपलब्धियों को दरकिनार नहीं कर सकते जो उसने लोगो तक हर बात पहुंचाकर उनमें देश और राष्ट्र के प्रति प्यार और एकता की भावना को विकसित किया है। परन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मीडिया ने ही अपने फायदे या टीआरपी बढ़ाने के लिए धर्म व संस्कृति के मूल्यों को तोड़ने मरोड़ने का काम किया है।⁷ आजकल एक बात बहुत ध्यान देने योग्य है और वह ये कि मीडिया राष्ट्रहित व अन्य जरूरी मुद्दों को छोड़कर केवल सत्ता की सेवा में लगी हुई है अर्थात् वह केवल सरकार के इशारे पर प्रायोजित रिपोर्टिंग कर रही है। इसके अतिरिक्त ये फिल्मी हीरो-हीरोइनो की कवरेज को प्रमुखता देकर देश की अन्य ज्वलंत खबरों को उपेक्षित कर रही है जैसा कि प्रामाणिक है कि आज के सौ-दो साल पहले तक छोटे राज्य और कबीले हुआ करते थे जो अपने अस्तित्व के लिए लड़ा करते थे और उस वक्त उन्हें राष्ट्रीयता से कोई सरोकार नहीं था। परन्तु वैश्वीकरण के इस दौर में सूचना एवं तकनीकी के कारण प्रत्येक व्यक्ति का जुड़ाव अपने ही देश रहा है और इससे कट्टर राष्ट्रवाद ने पूरी दुनिया को अपनी जद में लिया तब से मीडिया और पत्रकारिता ने भी दम तोड़ना शुरू कर दिया।⁸ एक-एक करके कई देशों ने अपने लिए हिटलर के समान शासक का चुनाव कर लिया। अब जब हिटलर आपका

शासक होगा तो “हिटलर-गिरी” भी होगी ही। हिटलर के दौर को पढ़ेंगे तब जानेंगे कि वह स्वयं को बहुत बड़ा देशभक्त बताता था। वह जनता के सामने रोता था, गिड़गिड़ाता था, जनता को बहलाता और फुसलाता है। वह दिखलाता था कि उसके लिए देश पहले है और वह सिर्फ देश के लिए समर्पित है। आप जब हिटलर को पढ़ेंगे तो जानेंगे कि उसको जनता का अपार समर्थन प्राप्त था। उसकी बातें सभी को सच लगती थीं। फिर धीरे-धीरे हिटलर ने अपना असली रंग दिखाना शुरू किया। मगर जबतक जनता जागती तब तक उनका देश बर्बाद हो चुका था। इतिहास गवाह है कि जब भी दुनिया में कहीं भी क्रूर शासनकाल आया तब शासक घोर राष्ट्रवादी हुआ करता था। इतिहास इस बात का भी गवाह कि “कलम” क्रूर शासकों का निशाना हुआ करती थी। निडर होकर लिखने-बोलने वालों को दबाया जाता था ताकि उनकी कलम जनता को सच ना पढ़ा सके। लेकिन पत्रकारिता ने हमेशा झूठ को बेनकाब किया। हर देश में यह होना चाहिए। आखिर देश की जनता अपने देश से प्यार नहीं करेगी तो सुरक्षा कैसे करेगी ? राष्ट्रवाद की भावना ने ही हिंदुस्तान को आजाद करवाया। राष्ट्रवाद एक जरूरी तत्त्व है लेकिन कट्टर राष्ट्रवाद की कहीं जगह नहीं होनी चाहिए। अगर आपका राष्ट्रवाद मानवाधिकार को कुचल रहा है तो वह राष्ट्रवाद नहीं हिटलर-वाद है। आपको फर्क समझना होगा। पहले कम-से-कम इस बात की संतुष्टि होती थी कि चलो कुछ न सही मगर पत्रकार हमें हकीकत से रूबरू करवायेगा, सच दिखाएगा, पढ़ायेगा। लेकिन पेड मीडिया संस्कृति ने हमारे न्यूज चौनलों, अखबारों, पत्रिकाओं और पत्रकारों को भी बदल दिया। अब पूरी दुनिया रियल और फेक न्यूज के जाल में फंसी है। कभी-कभी तो दिन की सारी खबरें फर्जी होती हैं। भारत में 4-5 सालों में बहुत हद तक मीडिया के रूप-रंग में अविश्वसनीय परिवर्तन आया है।

भारत में अब मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ की जगह दल विशेष का चौथा हाथ बन गई है। यहाँ पहले से ही सोशल मीडिया का इस्तेमाल फर्जी खबरों को फैलाने के लिए किया जा रहा था, अब तो प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी इसी काम को अंजाम दे रहे। अब जो पत्रकार और पत्रकारिता का जो स्वरूप उभरा है उसमें पत्रकार पार्टी विशेष के पैरोकार या प्रवक्ता नजर आने लगे हैं वो अब निष्पक्ष नजर नहीं आते हैं न ही जनता के करीब बल्कि जनता के लिए पत्रकारिता करने से ज्यादा राष्ट्र निर्माण होता। एक राष्ट्र को एक मुद्दे या एक सूत्र में बाँधने का काम जो मीडिया कर सकती थी वो कोई और नहीं कर सकता। एक चैनल जहाँ कहता है कि फलां नेता ने घोटाला किया तो सभी चैनलों का ये कर्तव्य होना चाहिए था कि वो जनता के संसाधनों के दुरुपयोग करने वाले इस नेता के खिलाफ एक राष्ट्र व्यापी मुहिम बनाते न कि उसके खिलाफ माहौल बनाते और उसकी लीपा-पोती करते। ऐसे में उनको जनता के बीच जा कर एक जनमत निर्मित करना चाहिए था।

एक समय एक फिल्म आयी थी मैं आजाद हूँ उस फिल्म का नायक जब एक व्याख्यान देता है और भ्रष्टाचार के खिलाफ उठ खड़ा होता है तब वो मीडिया ही थी जो उसे बनाती है और जब वह जनता को एक सूत्र में बंधता देखती है तो उसको तोड़ने के लिए उसके खिलाफ लिखना शुरू करती है क्योंकि उसको कॉर्पोरेट घराने चीनी मिल के मालिको से अपने लिए चन्दा लेना होता है वो सरकार से पेपर पर सब्सिडी लेना चाहती है। मनु भंडारी कृत महाभोज में तो मीडिया के इस पूरे चरित्र को उघाड़कर रख दिया है। मनु भंडारी जी ने महाभोज उपन्यास में बताया है कि मीडिया एक महाभोज है जिसकी पंगत में मंत्री से संतरी सब शामिल है सबकी सांठ-गाँठ मीडिया से है। आज यह बात शत प्रतिशत सही है कि आज मीडिया से जन पत्रकारिता का लोप हो गया है। ऐसे में क्या मीडिया के लिए संभव है कि वो राष्ट्र के प्रति वो अपना कर्तव्य निर्वाह कर पाएगा या समभाव पूर्ण संस्कृति को बिना क्षति पहुँचाए राष्ट्र निर्माण कर पाएगा। मीडिया अगर चौथा स्तम्भ कहा जाती है तो उसे अपनी उस गरिमा को बचाना होगा। अन्यथा एक वक्त ऐसा आएगा कि न ही राष्ट्र का अस्तित्व बचेगा और न ही मीडिया का ही अस्तित्व। मीडिया का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वो इस तरह प्रत्येक मानस पटल ऐसी छाप छोड़े और भोली नादान जनता का इस तरह मार्गदर्शन करे कि जिससे प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र निर्माण में यथा शक्ति योगदान दे और सांस्कृतिक व सामाजिक सद्भाव का माहौल पैदा करे। जिससे समस्त व्यक्तियों को एक भयमुक्त माहोल मिल सके और उसको राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका नजर आ सके।

संदर्भ

- 1 उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
- 2 उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
- 3 उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
- 4 उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद
- 5 भारतीय शासन एवं राजनीति (जैन एवं फड़िया)
- 6 समाचार लेखन और वेब पत्रकारिता (अपूर्व कुलश्रेष्ठ प्रसून) नटराज प्रकाशन
- 7 मीडिया के बदलते तेवर (अनामीशरण बबल) नटराज प्रकाशन
- 8 www.google.com/article on nationalism

पण्डित दीन दयाल उपाध्याय की राष्ट्रवाद की अवधारणा

अनीता कैमी

एम.ए. हिंदी, एम.ए. पत्रकारिता

भारतीय संस्कृति और उनमें व्याप्त जीवन मूल्य संपूर्ण भारतीयता के पोषक हैं। मानव जीवन अमूल्य है और जीवन एवं मरण के मध्य संघर्षरत् व्यक्ति की यात्रा जिन विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरती है, उन्हें उपयुक्त और निर्दिष्ट दिशा प्रदान करने में मानवीय जीवन मूल्य की भूमिका अग्रणी है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बहु-विस्तृत विधान को समझना, परखना और उसका अवलोकन करना आसान कार्य नहीं है। मानवीय जीवन मूल्यों की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि संपूर्ण विश्व में भारत वर्ष जीवन एवं मानवीय मूल्यों की व्याख्या करता है। यही अन्यत्र किसी अन्य रूप में विश्व की विभिन्न और बहुआयामी संस्कृतियों के द्वारा एक आदर्श रूप ग्रहण किया जाता है। आदर्श संस्कृति, इतिहास, मानवता और मानवीय मूल्यों के पोषक और एकात्म दर्शन के प्रणेता हैं - युगपुरुष पंडित दीनदयाल उपाध्याय। आदरणीय दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति और उनमें व्याप्त मूल्यों को न एक चेतना संपन्न व्यक्ति की निष्ठा, दूरदर्शिता, मौलिक चिंतन और समाज एवं देश के प्रति एक निष्ठा का ही परिणाम था।

एकात्म मानववाद मानव जीवन व संपूर्ण सृष्टि के एकमात्र संबंध का दर्शन है। इसका वैज्ञानिक विवेचन पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने किया था। एकात्म मानवतावाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मार्गदर्शक दर्शन है। पं दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारत की तत्कालीन राजनीति और समाज को उस दिशा में मुड़ने की सलाह दी जो पूर्ण रूप से भारतीय है।

एकात्म मानववाद के विषय पर अपने वैचारिक मत रखने वाले एकमात्र या यूँ कहिए एकात्म मानव दर्शन के जनक पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने मुंबई में 22 से 25 अप्रैल 1965 में चार अध्यायों में दिये गये भाषण में समझाया। इसमें पं दीनदयाल दयाल जी ने एक मानव के संपूर्ण सृष्टि से संबंध पर व्यापक दृष्टिकोण रखने का काम किया था। उनके विचारों में मानव को विभाजित नहीं किया जा सकता। वे मानवतावाद की वह दृष्टि से मूल्यांकन करने की बात करते हैं जो मानव के संपूर्ण जीवन में छोटी अथवा बड़ी जरूरत के रूप में संबंध रखता है। उनके अनुसार इतिहास केवल मानव मात्र के लिये नहीं है। अगर किसी का एक विचार दर्शन समग्रता में चिंतन जगजाहिर करता तो वो एकात्म मानववाद का दर्शन ही होगा।

पं दीनदयाल ने समाजवाद और साम्यवाद को एक पेपर और अव्यावहारिक सिद्धांतों में बंधें देखा था। भाजपा रूपी वटवृक्ष की जड़ों को जनसंघ के रूप में सींचने वाले पं दीनदयाल उपाध्याय ही एकमात्र ऐसे शख्स हैं जिन्होंने वैचारिक धरातल को जन्म दिया। जनसंघ की जब स्थापना हुई तो इसके संस्थापक डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी बने और दो वर्षों के अंतराल में ही कश्मीर जेल में उनकी मृत्यु गयी थी जो कि कथित तौर पर आशंका तो हत्या की भी बतायी जा रही थी। तत्पश्चात पं दीनदयाल उपाध्याय जी ने विभिन्न मतभेदों जैसी परिस्थितियों में 16वर्षों तक कठिन परिश्रम किया और जनसंघ को फिर से खड़ा किया। उन्होंने स्व के लिये कुछ नहीं किया बल्कि अपना तमाम जीवन संगठन और देश को समर्पित कर दिया।

1968 में अध्यक्ष बनने के ठीक दो महीने बाद रेलयात्रा के दौरान बड़ी बेरहमी से इनको मौत के घाट उतार दिया और तभी हमारा देश ने एक प्रखर चिंतक और विलक्षण राजनेता को हमेशा-हमेशा के लिये खो दिया। जिस संगठन को पं दीनदयाल जी ने अपने खून-पसीने सींचा वह आज के दौर में भारतीय जनता पार्टी के रूप में हमारे समक्ष खड़ी है लेकिन जो विचार पंडित जी ने दिये थे वे सिर्फ एक पार्टी के लिये नहीं थे बल्कि पूरे देश के लिये और जनता के हित के लिये थे। जिनमें से मुख्य उनका विचार हमसे रू-ब-रू हो रहा था-**एकात्म मानव दर्शन का सिद्धांत** इसी सिद्धांत को भारतीय जनता पार्टी अपने विचारों में बनाये हुये है।

सामान्यतः प्रश्न उठता है कि एकात्म मानव दर्शन क्या है? एकात्म मानव दर्शन भारतीय संस्कृति, विचार और दर्शन का निचोड़ है। जिस समय पूंजीवाद और साम्यवाद अखाड़े में था तब पं दीनदयाल ने हस्तक्षेप करते हुये दोनों प्रतिद्वंद्वी विचारधाराओं को मात देने के लिये एक नई विचार का उद्गम किया। जिसका नाम था- एकात्म मानववाद वैचारिक अवधारणा। जहां पूंजीवाद ने मानव को एक आर्थिक इकाई माना और समाज से इसके रिश्ते को ज्यादा तवज्जों नहीं दी। वही साम्यवाद ने व्यक्ति को केवल एक राजनीतिक और कार्मिक इकाई माना।

साम्यवादी मार्क्स ने साम्यवाद में मानव को समाज में एक विखंडित संबंधी विहीन भीड़ कहा है जहां एक वर्ग अपना अधिपत्य जमाने हेतु स्वार्थपूर्ण नियम और प्रथा चलाते हैं वही समाजवाद में भी व्यक्ति अकेला ही रहा। साफ-साफ तौर पर

सभी पश्चिमी विचारधाराएं कन्सेंट्रिक है। जो कि उनके लिये परिवार, समुदाय और राज्य को अलग करती है। लेकिन एकात्म मनाववाद में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राज्य और राष्ट्र का निर्माण हुआ और भी एक सृष्टि का दृश्य हमारे दृष्टिपटली पर नजर आता है।

एकात्म मानववाद इन सभी इकाइयों को एक-दूसरे के पूरक समझता है। ठीक इसी रूप में आदरणीय दीन दयाल जी ने मानव, समाज और उसकी प्रकृति तथा संबंध को समग्र रूप में देखा। मनुष्य को एकात्म मानव-दर्शन में शरीर आत्मा, बुद्धि का मिश्रण है और मानव की यही समग्रता ही उसे समाज के लिये उपयुक्त और उपादेय बनाती है। मानव विचार द्वारा मानव के धर्म, काम के प्रतीक के और अर्थ के रूप में ही मानव आत्मा को मोक्ष की ओर प्रवृत्त करने वाला विचार ही 'एकात्म मानववाद' है।

इन्हीं के अनुसार मानव को मानव बनाने में चार तत्वों का धर्म, कर्म, अर्थ और प्रतीक का बड़ा योगदान है। पं. दीन दयाल उपाध्याय की विचारधारा में प्राचीन और नूतन का विशिष्ट समावेश है एक तरफ पत्रकारों के साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध जहां उनकी वाणी प्रखर हो उठती है वहीं दूसरी तरफ समाज और राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता को व्यक्त वह स्वयं के लिये 'सन्याय' की मांग करते हैं। आधुनिक युग का यह 'युगपुरुष' राष्ट्र की वेदी पर स्वयं को समर्पित कर राष्ट्र एवं भारतीय जीवन मूल्यों की रक्षा के लिये प्रतिबद्ध है। इस संबंध में उन्होंने अपने विचार 'जगद्गुरु शंकराचार्य' पुस्तक में व्यक्त किये हैं। ऐसा नहीं कि इनका एकात्म मानववाद अवधारणा मात्र विचार है इनकी इस अवधारणा में सामाजिक, राजनीतिक, अर्थव्यवस्था, उद्योग, उत्पादन, शिक्षा, लोकनीति, व्यावहारिक आदि नीति-निर्देश भी सम्मिलित थे। दीनदयाल जी पर शुरू की गई भारी-भरकम योजनायें पं. दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना, स्टार्ट-अप व स्टैंड-अप इंडिया, सांसद आदर्श ग्राम योजना, मेंक-इन-इंडिया, मुद्रा बैंक योजना, दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना सभी विशेष रूप से एकात्म मानववाद को बढ़ावा देती है।

विशेष रूप से 'सबका साथ, सबका विकास' जैसा नारा भी उन्हीं की 'अंत्योदय' (समाज के अंतिम व्यक्ति का उत्थान) की वैचारिक अवधारणा पर निर्भर है। पं दीनदयाल जी ग्रामीण विकास के लिये ग्रामीणों के विकास के लिये लघु-उद्योगों को बढ़ावा दिया जिससे ग्रामीणों की आर्थिक स्थितियों में सुधार हो सकें। वे मानते थे कि औद्योगिकरण का आधार उसकी परिस्थितियों व इच्छायें, जरूरतें होनी चाहियें न कि दूसरों की कॉपी करना। आज 60 वर्ष पश्चात भी ग्रामीणों की स्थिति ज्यों की त्यों पड़ी है। जैसे प्रधानमंत्री ग्रामीण योजनायें अपने ग्रामीण लघु उद्योगों पर ध्यान दे रही है काश यही जागरूता पहले के समय पर दिखाई होती तो शायद आज का रुख ही कुछ होता और किसान हर रोज नहीं मरता और न ही उसे शहर ओर मुख करना होता। इसीलिये उनके चिंतन विचार एकात्म मानववाद की ओर चलें।

संदर्भ ग्रंथ

1. पुस्तक -जगद्गुरु शंकराचार्य
2. पांचजन्य, भाद्रपद कृष्ण 9, वि.सं, 2006
3. दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा छिंदवाडा में, मध्यप्रदेश जनसंघ अधिवेशन का उद्घाटन भाषण
4. विशाल कुमार यादव लेख (प्रवक्ता- हिंदी विभाग संस्था राजकीय महाविद्यालय गुरुग्राम हरियाणा)

रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रीय भावना

चंचल सिंह

शोधार्थी, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

राष्ट्रीयता वह मनोदशा है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने अन्दर की राष्ट्रीयता और राज्य के प्रति भक्ति भावना को अनुभव करने लगता है, और राष्ट्रभूमि के प्रति असीम श्रद्धा भावना रखता है। 'राष्ट्रीयता उस भावना विशेष का नाम है, जिसके कारण कोई व्यक्ति या समुदाय पारस्परिक एकता की भावना का अनुभव करता है। वह श्रद्धा और निष्ठा पर आधारित एक ऐसा आदर्श है जिसका केन्द्र राष्ट्र होता है।'

मैथिलीशरण गुप्त के उपरान्त दिनकर को ही राष्ट्रकवि पुकारा गया। आज़ादी के आन्दोलन के समय दिनकर ने लिखना शुरू किया था अपने काव्य संकलन 'चक्रवात' में उन्होंने अपने लेखन के विषय में कहा है- 'मैं वैसा कवि अवश्य बनना चाहता था, जिसकी रचना उसके सामाजिक कर्तव्य-ज्ञान से आती है, किंतु, विप्लव और राष्ट्रीयता का वरण मेरा उद्देश्य न था।' परन्तु तत्कालीन राष्ट्रीय परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व एवं लेखन कला पर गहरा प्रभाव डाला जिसके कारण राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति उनके लेखन का गुण बनती चली गई। बारदोली सत्याग्रह के समय उनका पहला लघु-गति संग्रह 'बारदोली विजय' प्रकाश में आया जिसमें राष्ट्रीयता के गीत थे। 1939-40 में प्रकाशित 'हुंकार' पुस्तक से उन्हें यश मिला, जिसमें राष्ट्रीय भावना की जबरदस्त अभिव्यक्ति थी वह इसके बारे में स्पष्ट कहते हैं- 'राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया।'

दिनकर छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि हैं। स्वतंत्रता पूर्व एक विद्रोही भाव के कवि हैं और स्वतंत्रता उपरान्त राष्ट्रकवि के रूप में दिखाई देते हैं। आज़ादी से पूर्व का समय एक सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी सारे देश का एक कर्तव्य-स्वतंत्रता संग्राम को सबल बनाना था, राष्ट्रीय भावना क्रान्तिकारी भावना थी। गाँधीवाद, समाजवाद या सशस्त्र क्रान्ति के ज़रिए आज़ादी ढूँढने वाले सब शामिल थे। माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन पहले से ही अपनी कविताओं के माध्यम से स्वाधीनता के लिए जोर लगाए थे। रामधारी सिंह दिनकर का आविर्भाव उसी समय हुआ जब भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और सारा भारत स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था। इस संघर्ष में मध्यवर्ग सबसे आगे था जो पराधीनता को एक अभिशाप मानता था और माँ भारती को स्वाधीन कराना अपना धर्म समझे था। इसी मध्यवर्ग के दिनकर जी एक संवेदनशील नवयुवक थे और गाँधी की अहिंसावादी विचारधारा के पक्षधर न होकर क्रान्ति के लिए सीधे संघर्ष के आवाहनकर्ता थे। तत्कालीन समय में हथियार उठाकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले जो नवयुवक रहे वे ही दिनकर की राष्ट्रीयता और क्रान्तिकारी कवियों के उत्स हैं। भारत माता का झुका हुआ भाल उन्हें स्वीकार नहीं होता। इसी कारण वे राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर क्रान्ति का आह्वान करते हुए कहते हैं-

'नहीं जीते जी सकता देख
विश्व में झुका तुम्हारा भाल
वेदना मधु का भी कर पान
आज उगलूँगा गरल कराल।'

दिनकर अपनी युवावस्था से ही विलासमयी वस्तुओं के आक्रमण से दूर रहकर राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए प्रतिबद्ध थे। आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त की ही भांति यह राष्ट्रीय भावना के प्रखर कवि बने। विदेशी शासन की क्रूरता एवं अमानुषिक खेमे के ही कारण इनका यह मानना था कि क्रान्ति का मार्ग संघर्ष का कठिन मार्ग है, गाँधीवादी युधिष्ठिरपन से स्वाधीनता संभव नहीं। अपनी 'हिमालय' कविता में वह कहते हैं-

'रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर पर,
फिरा हमें गाँडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।'

दिनकर दलित-दमित मनुष्यों के जीवन में आशा का दीप जलाने का प्रयास करते हैं साथ ही उनमें राष्ट्रीय चेतना को प्रतिष्ठित करते दिखाई देते हैं। सामाजिक साम्य के प्रति उनका आग्रह उनकी राष्ट्रीय चेतना का आधार कहा जा सकता है। 'कविता की पुकार' में वह कहते हैं'

‘विद्युत छोड़ दीप साजँगी, महल छोड़ तृण-कुटी-प्रवेश,
तुम गाँवों के बनो भिखारी, मैं भिखारिणी का लूँ वेश।’

कवि दिनकर क्रान्ति के कवि होने के कारण उपनिवेशवाद के विरोधी हैं। स्वाधीनता आन्दोलन ज्यों-ज्यों बढ़ता गया उनका आत्मसंघर्ष भी बढ़ता गया। राजस्व विभाग में नौकरी करते-करते तीसरे देशक के अन्तिम वर्षों में मात्र तीन साल में उनका 23 बार तबादला किया गया, कारण था सरकार उनकी देशभक्तिपरक कविताओं से खफा थी। इसी कारण उन्हें बाद में पटना के सचिवालय में युद्ध-प्रचार विभाग में पदस्थापित कर दिया। दिनकर काम तो अंग्रेजी सरकार के आधीन कर रहे थे यानि अपनी देह अंग्रेजी उपनिवेशवाद को सौंप दी थी। इसका कारण उनकी जीविकापरक विवशता थी दूसरी ओर उनका मन राष्ट्रवादियों को समर्पित था। ‘कुरुक्षेत्र’ कविता में दिनकर का अपना अंतर्द्वन्द्व भीष्म के चरित्र में सामने आता है जिसमें एक और उपनिवेशवाद का विरोध है, वे युद्ध का संबंध उपनिवेशवादी शोषण से जोड़ते हैं और इसका कारण उपनिवेशवादी अनीति और स्वत्व का अपहरण मानते हैं और दूसरी ओर भीष्म में अपने ही अंतर्द्वन्द्व की छवि दिखती है उपनिवेशवाद को लक्ष्य बनाकर वह कहते हैं कि किसी का स्व अनीतिपूर्वक छीन लेना ही युद्ध का मूल कारण है-

‘पर जिनकी अस्थियाँ चबाकर शोणित पीकर तन का
जाती है यह शांति, दाह समझो कुछ उसके मन का।
स्वत्व माँगने से न मिलें, संघात पाप हो जाएँ,
बोलो धर्मराज शोषित में जाएँ या कि मिट जाएँ।’

दिनकर के साहित्य में विश्वशान्ति की चिन्ता कम और अपने भारतवासियों की विचार-दिशा बदलने की भावना अधिक है। ‘भारत छोड़ो’ का नारा जब लग रहा था, जिस समय सारे संसार में उपनिवेशवाद के खिलाफ मुक्ति के लिए संघर्ष चल रहा था भारत के साम्यवादी सोवियत संघ की रक्षा के लिए बेहाल थे उस समय कवि दिनकर अपने देश की स्वाधीनता के लिए तत्पर थे। ‘साहित्य और राजनीति’ नामक निबंध में वे कहते हैं - ‘हम पराधीन जाति के सदस्य हैं अंतर्राष्ट्रीयता की अनुचित उपासना से हमारी राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होगा। राष्ट्रीयता हमारा सबसे महान धर्म और पराधीनता हमारी सबसे बड़ी समस्या है। जो लोग हमें अंतर्राष्ट्रीयता के भुलावे में डालकर हमारी आँखों को दिल्ली से हटाकर अन्यत्र ले जाना चाहते हैं, वे अवश्य ही हमें धोखा दे रहे हैं।’

दिनकर की विचारधारा में कायरता, समझौता, पराजय, झुकना निराशा का एवं पलायनवादिता का समावेश नहीं है अपितु ललकार के साथ जय का उदघोष है। चीन का भारत पर आक्रमण को लेकर दिनकर ने ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ कविता में परशुराम के माध्यम से देश को बलवान राष्ट्र के रूप में विकसित होने का आवाहन किया है और हर स्थिति में भारत को आक्रमण का उत्तर देने में सक्षम रहना है-

‘वे देश शान्ति के सबसे शत्रु प्रबल है,
जो बहुत बड़े होने पर भी दुर्बल हैं।’

दिनकर की राष्ट्रीय भावना के अन्तर्गत राजतन्त्र का विरोध और लोकतन्त्र का स्वागत स्पष्ट दृष्टिगत होता है। उनका यह मानना है कि मेहनत मजदूरी का काम करने वाली आम जनता ही सिंहासन की सच्ची अधिकारी है। जो जागरूक होकर अपने हकों की माँग कर रही है। ‘जनतन्त्र का जन्म’ कविता में दिनकर आम जनता की आवाज़ बनकर स्पष्ट उदघोष करते हैं-

‘सदियों की ठंढी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।’

उपर्युक्त चिन्तन मनन से यह तथ्य सिद्ध होता है कि दिनकर अपने समय की पराधीन स्थितियों को पहचान गए थे जिसके कारण उनका मन अपने देश की स्वाधीनता के प्रति कुछ करने को लालायित हो उठा जिसकी अभिव्यक्ति वे अपने साहित्य के माध्यम से करते हैं। अपने समय के दुःख दर्द को पहचान कर पराधीन हुई भारतीय जनमानस को स्वाधीनता के प्रति जागरूक करना उनका मूल मन्तव्य रहा। राष्ट्र के प्रति प्रेम की इसी विचारधारा के कारण समाज को एक नई दिशा प्रदान करने में दिनकर के साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिंदी रंगमंच की दशा और दिशाएं : मीडिया की सक्रियता

डॉ. मनीषा बत्रा

व्यावसायिक भाषाविद् पंजाबी अनुवादक
राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान

यह कहने की जरूरत नहीं कि नाटक अपने आपमें एक प्रयोगधर्मी कला है। दूसरे कला, काव्य-रूपों की तरह नाटक की रचना और उसकी प्रस्तुति में प्रयोगशीलता अनिवार्य है। यह प्रयोगशीलता पर्याप्त प्रयोगों के द्वारा ही संभव और कार्यशील होगी, क्योंकि परंपरागत शब्दानुसार में नाटक एक 'करत विद्या' है। ऐसी स्थिति में मुख्य महत्व नाटक 'करने' या 'करते रहने' का होता है, सफलता और विफलता के महत्व और उसका पैमाना यह सब अन्य बिंदु है। परंतु शायद रंगकर्म के सिलसिले में इन्हें बिलकुल अलग ढंग से लागू किया जाता है। नाटक एक मिश्रित कला है - मूर्तिशिल्प, संगीत, चित्रकला, साहित्य और वास्तुकला का सुमेल, इन सभी गतिविधियों के मेल द्वारा अनोखी कला विकसित होती है, जिसे रंगकर्म कहना गलत न होगा। यह एक सामूहिक प्रस्तुति है। लेखक, अभिनेता, निर्देशक, गीत-संगीत, मंच सज्जा, रूप सज्जा, प्रकाश व दर्शक- ये सभी मिलकर नाटक का निर्माण करते हैं। इस कारण एकल नाट्य प्रस्तुति भी व्यक्तिगत नहीं होती है। रंगकर्म दर्शकों से सीधे संवाद करता है, मीडिया के अन्य रूपों की भांति यह दर्शकों की प्रतिक्रिया का इंतजार नहीं करता है। एक मायने में रंगकर्म मानव जाति द्वारा उपलब्ध सभी कला रूपों का सामूहिक निवेश ही होता है।

बाकी कलारूपों की तुलना में नाटक तथा उसकी प्रदर्शन कला में कहीं अधिक ढलनशीलता आ गयी है। यह दार्शनिक विवेचना का विषय-वस्तु है, कि संगीत, साहित्य, नृत्य और चित्रकला द्विपक्षी स्तर पर काम करते हैं, अर्थात् रचना और उसके रसिक के बीच का संबंध बिलकुल उसी प्रकार है, जैसे नाटकी-आलेख और दर्शक के बीच अभिनेता नामक घटक का होता है, जो नाटककार के मंतव्य को रसिक तक पहुंचाने में एक माध्यम का कार्य करता है। एक सामूहिक कला होने के कारण इसमें बहुत-से लोगों का योगदान रहता है। नाट्य रचना का हर प्रदर्शन पहले के प्रदर्शन से भिन्न होता है और हर बार नये अर्थ उदघाटित होते हैं। यही नहीं, बल्कि अलग-अलग रंगकर्मों उसी आलेख को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं। यह सारे कारण रंगकर्म से संबंधित विशेष प्रकार की जटिलताओं को पैदा करते हैं।

हिंदी रंगमंच के परिपेक्ष्य में मीडिया की सक्रियता के बारे बात करने से पहले रंग मंच की मौजूदा अर्थात् आधुनिक स्थिति के बारे पर विचार करना बहुत ही अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि मीडिया का कार्य-क्षेत्र हमारे समकालीन समाज की उभरती तस्वीर की व्याख्या करना है। हिंदी मंच में बीसवीं शताब्दी के पांचवें दशक से रंगमंचीय गतिशीलता देखने को मिलती है। जहां एक तरफ संगीत नाटक अकादमी और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जैसे संस्थानों की स्थापना द्वारा राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना की, वहीं स्वतंत्र रूप से नाटककारों, निर्देशकों और अभिनेताओं का आगमन हुआ, जिन्होंने रंगमंच को गति प्रदान की और सत्तर के दशक तक आते-आते इसने 'रंगादोलन' की शकल ले ली। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रंगमंच में पहला दौर नाटककारों का था, जो अपनी-अपनी विचारधारा के प्रयोगकर्ता एवं रंगमंच के सूत्रधार थे। यह निर्देशक इन नाटकों के व्याख्याकार और अभिनेता, इन के रंगमंची अनुकर्ता थे। भारतीय रंगमंच में राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना की जो मुहिम शुरु हुई, उसके परिणामस्वरूप उसमें हिंदी केंद्रीय भाषा बनी। हिंदी में विभिन्न भारतीय भाषाओं के नाटक मंचित हुए। मूल भाषा से पहले हिंदी में नाटक मंचित हुए।

सत्तर के दशक में यह अनुभव किया गया, कि नाट्य-लेखन का ढर्रा पश्चिमी है। भारतीय रंगमंच में भारतीयता की खोज इसकी पारंपरिक जड़ों से जुड़ कर ही हो सकती है। इस विचारधारा से ही थियेटर आफ रूट्स (जड़ों का रंगमंच) का मुहावरा सामने आया। नाट्य लेखन और मंचन में पारंपरिक भाषा की तलाश होने लगी। इस तलाश के लिये अनेक युवा रंगकर्मियों को प्रोत्साहित किया गया, उत्सवों का आयोजन करके इस प्रकार के प्रयोगों को मंच भी दिया गया।

इप्ता के जमाने के बाद फिर से राजनीतिक मुहावरे के रंगमंच को जनता के बीच ले जाया गया। इस समय हिंदी रंगमंच पर कई संस्कृत नाटकों की भी आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुति की गई। इसके साथ-साथ नुक्कड़ नाटकों की भी परंपरा में भी कई प्रकार के परिवर्तन सामने आये। अस्सी के दशक के बाद इस परंपरा ने और अधिक जोर पकड़ा और कई महत्वपूर्ण निर्देशकों ने प्रोसेनियम से बाहर निकल कर सड़कों पर नाटक किये। विषय की दृष्टि से भी हिंदी रंगमंच में पर्याप्त विविधता विद्यमान

है। इसमें जहाँ एक तरफ मिथक और इतिहास के बहाने आधुनिक मनुष्य की समस्याओं को मंच पर उतारा गया वहीं आजादी के बाद के राष्ट्रीय-आत्म खोज की रंगमंचीय पहल की भी शुरुआत की गई।

आजादी के बाद से नब्बे के दशक तक, हिंदी में रंगमंच की कई वैचारिक धाराएं और प्रवृत्तियां कार्यरत रहीं हैं। एक तरफ आधुनिक मुहावरे से प्रेरित रंगमंच था, जिसमें नाटककार ही रंगमंच का प्रस्तावक था, निर्देशक अपनी व्याख्या कर अभिनेता से मंच पर अनुकृति कराते थे। इस मंच पर सब कुछ नियमबद्ध और यंत्रचालित था। यह दर्शकों को यथार्थ के भ्रम का अनुभव करवाता था।

आधुनिकता के प्रभाव में बदलते मानवीय रिश्तों और नियति से जुझते हुए मनुष्यों की संवेदनाओं को कई नाटककारों ने अपनी रचनाओं के विषय के रूप में अपनाया। आधुनिक हिंदी रंगमंच के स्वरूप का आधार शहरी, संभ्रांत और मध्यवर्गीय है। इस दशक के कई निर्देशक इस प्रकार के विषय-वस्तु को विस्तार देते हुए, इसे निम्न तबके के लोगों और कस्बों तक ले जाते हैं और कस्बाई कलाकारों को आधुनिक रंगमंच पर प्रतिभा दिखाने एवं उपस्थित होने का अवसर प्रदान करते हैं।

नब्बे के दशक उपरांत रंगमंच में नाटककार की स्थिति हाशिये पर जाती दिखाई देती है, जिसमें आलेख और निर्देशक केंद्र की भूमिका अदा करते हैं। इस प्रकार की स्थिति के कारण ही निर्देशक जिन समाजिक, आर्थिक, राजनितिक मसलों जैसे कि भूमंडलीकरण प्रभाव, अस्मिताओं का उदय या अन्य किसी ऐतिहासिक तथ्य को सामने लाने के लिये, जिस प्रकार की प्रस्तुति रंगमंच पर करना चाहता था, उसे उस प्रकार के आलेखों की प्राप्ति नहीं हो पा रही थी।

इक्कसवीं सदी के आरंभ में चाहें रंगमंचीय सक्रियता बढ़ी, लेकिन इसके बावजूद रंगमंच प्रदर्शन करने के पीछे विचार और दृष्टि का अभाव दिखता है। प्रस्तुतियों की भरमार के बीच उल्लेखनीय प्रस्तुतियों का अभाव होने लगा है। भारत के रंग महोत्सव जैसे महत्वाकांक्षी उत्सवों में हिंदी की गुणवत्तापूर्ण उपस्थिति दर्ज नहीं होती है। रंगकर्म का विस्तार बड़े शहरों की अपेक्षाकृत छोटे शहरों में होने लगा है। इस दौरान रंगमंच को तकनीकी साधनों ने भी सबसे अधिक प्रभावित किया। ध्वनि और प्रकाश उपकरणों के साथ वीडियो और डिजिटल तकनीक ने मंच पर अपना प्रभाव बढ़ाया है।

मीडिया मूलतः दो श्रेणियों में विभाजित है - प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक। इस समय सब से ज्यादा चर्चा का विषय मीडिया है, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन जिस का साहित्य लंबे समय से चल रहा "संवादी रिश्ता" अब "विवादी रिश्ता" बन गया है। अजीब संयोग है कि साहित्य विशेष रंगमंच इन तीनों माध्यमों का आधार-तत्व नहीं बल्कि प्राण-तत्व है। ये माध्यम विचारों की ताकत रंगमंच से प्राप्त करते हुए, उनका संचार अपने-अपने तकनीकी माध्यमों द्वारा करते हैं। यह संबंध उस समय तक सही रहा जब तक रेडियो-टेलीविजन सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत और सिनेमा स्वतंत्र निर्माता के हाथ में था। जब से रेडियो-टेलीविजन निजीकरण के दायरे में आया और सिनेमा करोड़ों डॉलर का घटना-क्रम होने के कारण कॉरपोरेट सेक्टर के हाथों में पहुंचा तो समीकरण ही बदल गए।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विभिन्न संसाधन जैसे कि रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन से जुड़ने के लिये शुरुआती मंच के रूप में अभिनेता रंगमंच को छोड़कर इन आधुनिक साधनों से जुड़ रहे हैं। विद्वानों का मतानुसार रंगमंच भी मूलतः दो प्रकार है 'शौकिया' और 'व्यावसायिक'। रास लीला, लोकनाट्य, नौटंकी के साथ पारंपरिक रंगमंच लगभग लुप्तप्राय हो चुके हैं। भारतीय रंगमंच का मूल स्वरूप शौकिया होने के कारण हिंदुस्तानी रंगमंच का स्वरूप भी व्यावसायिक हो चुका है।

मीडिया का दायरा जहाँ दिन-प्रतिदिन और ज्यादा विस्तृत हो रहा है वहीं रंगमंच का दायरा तमाम सरकारी सहयोगों के बावजूद सिमटता जा रहा है। वर्तमान दौर में यह सिमटन का स्वरूप सामाजिक, राजनैतिक, व्यक्तिगत तथा वैचारिक आदि स्तरों पर देखा जा सकता है, पर यह प्रभाव सब से ज्यादा रंगमंच को ही क्यों प्रभावित कर रहा है? इस सवाल का जवाब शिक्षाशास्त्रियों, आलोचकों के साथ-साथ रंगकर्मियों और समाज के पास भी नहीं है। इस तथ्य के पीछे कई प्रमुख कारण हो सकते हैं, जिनमें से कई छात्रों का मुख्य मकसद सिर्फ और सिर्फ नाट्य विद्यालय में दाखिला लेना ही होता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के बाद किसी एक बिंदु पर पहुंच कर इन छात्रों को आत्म-संतुष्टि प्राप्त हो जाती है, परन्तु नाट्य विद्यालयों से निकलने वाले छात्र एकाएक बेमकसद होकर खाक छानने को अभिशप्त हो जाते हैं, क्योंकि बिना मकसद के संचालित होने वाला कला-कर्म हर स्तर पर व्यक्तिवाद और अराजकता को ही बढ़ावा देता है।

प्रिंट मीडिया के सन्दर्भ में रंगमंच एक समय में एक स्थान पर होनेवाला कला-कर्म है, जबकि मीडिया किसी भी चीज या विचार को घर-घर पहुंचाने वाले माध्यम के रूप में कार्यशील रहता है। सूचनाएं, न्यूज और व्यूज के सहारे चलने वाला मीडिया ज्यादा से ज्यादा लोगों को रंगमंच से अधिक जोड़ने, समीक्षात्मक चिंतन और इसके दस्तावेजीकरण में एक प्रखर भूमिका अदा करता है। वैसे प्रिंट मीडिया की आधुनिक स्थिति में भी कई प्रकार के परिवर्तन आए हैं। एक वक्त था जब अधिकतर प्रतिष्ठित अखबार साप्ताहिक कला और संस्कृति नामक पन्नों को प्रकाशित किया करते थे, जिनमें गीत-संगीत, नृत्य और नाटक आदि सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर समीक्षात्मक आलेखों की सूचनाओं का प्रकाशन किया जाता था। अब प्रिंट मीडिया में छपने वाले विज्ञापनों का भी व्यावसायीकरण हो चुका है। क्रिकेट और सिनेमा की खबरें हर अखबार को अपने कब्जे में जकड़ चुकी हैं, वहीं नाटकों के मंचन से लेकर समीक्षा जैसी खबरें मुश्किल ही किसी भी पन्ने पर अपना स्थान बना पाती हैं।

तत्कालीन समय में खबरों के संचार एवं प्रसारण का मूल माध्यम रेडियो, अखबार तथा दूरदर्शन हुआ करते थे। निजीकरण, उदारीकरण और बाजारवाद की नवीन विचारधारा का ऐसा दौर आया कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रभाव अधीन लगा, अखबार का समय बीत गया है, पर ऐसा नहीं हुआ। यह सच है कि, इस दौरान अखबारों का स्वरूप बदला, धीरे-धीरे 'गंभीरता' की श्रेणी में आने वाली वह खबरें विलुप्त होने लगी है। कला-संस्कृति भी विलुप्त होने लग गई, पर किसी भी बौद्धिक वर्ग ने मीडिया की इस प्रतिक्रिया का सामूहिक विरोध नहीं किया। यहां नीति बिल्कुल साफ थी कि अखबार अब सनसनी खबरों को छाप कर ज्यादा से ज्यादा प्रलोभन का केंद्र स्थापित करेंगे, जिससे उनकी टी.आर.पी अधिक से अधिक बढ़ सकें, क्योंकि कहीं न कहीं संपादकों के मन में यह विचार आने लगा है, कि उदारीकरण और बाजारवाद के समय कला-संस्कृति की खबरें पढ़ने में कौन रुचि लेता है?

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की स्थिति तो इससे भी अधिक जटिल है क्योंकि मीडिया के इस साधन ने अभी तक रंगमंच को कोई खास जगह प्रदान नहीं की। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया संचार का नवीन साधन होने के कारण फिलहाल टी.आर.पी, ब्रेकिंग-न्यूज और पेड-न्यूज की चपेट में फंसा हुआ है। यहाँ हर प्रकार का एक अलग चैनल है जो किसी विशेष विचारधारा या कार्यक्रम का चौबीस घंटे प्रसारण करता है, सिवाय पारंपरिक कला और रंगमंच के।

इस स्थिति में रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा एक तरफ और रंगमंच दूसरी तरफ का रुख कर लेते हैं। रंगमंच चाहे वह राष्ट्रीय भाषा, प्रादेशिक भाषा या अन्य किसी भाषा में हो उसका मूल मकसद सामाजिक प्रतिबद्धता के एवज में मिली संतुष्टि ही होता है। जहां हर भाषा में सामाजिक प्रतिबद्धता आर्थिक रूप से डावांडोल है। वही दूसरी ओर रेडियो, टीवी और सिनेमा की आय सिर्फ और सिर्फ "आर्थिकता" है, इसने सामाजिक प्रतिबद्धता को हिलाकर रख दिया। अब मुख्य मसला यह है कि ये दोनों पक्ष आपस में किस प्रकार मिल सकते हैं। दूसरे शब्दों में रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा की घर वापसी किस प्रकार हो सकती है ताकि वह रंगमंच की तरह अपनी पहली जिम्मेदारियों और नैतिक कर्तव्यों को समझ सकें। हमारी आदर्श सोच के अनुसार शायद यह संभव नहीं है क्योंकि इतिहास कभी उल्टा नहीं हो सकता। निजीकरण, उदारीकरण और बाजारवाद में ओर अधिक विस्तार हुआ है, अब यह किसी भी हालत में सिकुड़ नहीं सकता। आर्थिक मंदी के बावजूद रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा ने अपने जिस चरित्र का निर्माण किया है वह वापिस नहीं मुड़ेगा।

लेकिन हथियार फेंकने से कुछ नहीं होगा, एल.पी.जी के इस युग में हमें कोई सार्थक समाधान ढूंढना ही हो होगा। विकास का आधार केवल आर्थिकता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिकता भी होता है, जिसकी प्रक्रिया अंदर से शुरू होती है, जो विकास बाहर से थोपा जाय वो अराजकता, विनाश और विस्थापन को बढ़ावा देता है। समाज का कोई भी अंग यदि अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह नहीं करता है तो निरर्थक है। सार्थक मीडिया और सार्थक रंगमंच का मूल कार्य व्यवसाय से ज्यादा लोगों की चेतना को जागृत करने से है, यह पारस्परिक सहयोग से चलने वाली प्रक्रिया है। निरपेक्षता का भाव समर्थन और विरोध दोनों होते हैं। सनद रहे, मुक्ति अकेले में अकेले की नहीं बल्कि सबके साथ होती है। अब रंगकर्म भी इसी मीडिया में अपनी जगह तलाश रहा है, लेकिन उसकी यह तलाश इसलिए पूरी नहीं हो रही है, क्योंकि अभी रंगकर्म का कार्पोरेटीकरण उतना नहीं हुआ है जितना मीडिया का हो चुका है। रंगकर्म आज भी जनकर्म से जुड़ी हुई विचारधारा है। जब तक यह विचार जनता से संवाद रचाता रहेगा और उनसे जुड़ा रहेगा, तब तक कार्पोरेट नियंत्रित मीडिया में उसको स्थान नहीं मिलेगा। इसीलिए रंगकर्म को अपनी राह खुद तलाशनी होगी।

विभिन्न साहित्यकारों के साहित्य में राष्ट्रबोध

सरिता

हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय
श्रीनगर, गढ़वाल परिसर पौड़ी

संस्कृत के सहित शब्द व्यञ् प्रत्यय के योग से साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है साहचर्य, भाईचारा, मेल-मिलाप, सयोगिता आदि। साहित्य - सहित+यत् प्रत्यय के मेल से साहित्य शब्द की उत्पत्ति हुई है। साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है। बाबू गुलाबराय के अनुसार- 'साहित्य संसार के प्रति मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है जो हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाती है।'¹

साहित्य एक ओर तो सामाजिक परिवेश पूर्व परम्परा, युग-बोध युगीन-अपेक्षा और युगीन मांगों आदि से प्रभावित होकर रूपाकार ग्रहण करता है। दूसरी ओर वह विशिष्ट प्रतिभाओं द्वारा सृजित होकर मानवीय व्यवहार मानवीय अन्तर्सम्बन्धों, मानवीय संस्थाओं, नैतिक मूल्यों तथा व्यक्ति और समूह की जीवन-दिशाओं को गम्भीरता से प्रभावित करके उनके लिए प्रभाव व नियामक और प्रवर्तक की मुद्रा में भी अवतरित होता है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध को हम भारतीय नवजागरण का काल कहते हैं। उन्नीसवीं सदी में इसका प्रारम्भ सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधार आन्दोलनों के रूप में हुआ। बाद में इसी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। इसी राष्ट्रीय धारणा को आम जनता तक पहुंचाने के लिए हिन्दी साहित्य के अनेक विद्वानों ने अपनी लेखनी के माध्यम से जनता तक इस धारणा को पहुंचाने का प्रयास किया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया गया। रीति काल के अन्त में भारत में अंग्रेजों का शासन हो गया था अंग्रेजों ने भारतीय पर अनेक तरह से कर वसूल कर यहां के भारतीयों को गधे की उपाधि देने लगे थे। तब उस समय के आधुनिक साहित्यकारों ने जनता को जागृति करने के लिए लेखन का प्रयोग करके जनता तक राष्ट्रीय बोध कराने का सन्देश पहुंचाया। सर्वप्रथम राष्ट्रीय चेतना जागृति करने वाले साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी हैं। जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से जनता को राष्ट्र के प्रति जागरूक रहने का सन्देश दिया।

भारतीय संस्कृति में जननी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी उत्कृष्ट एवं आदरणीय माना गया है। जहां पृथ्वी मानव का पालन पोषण करती है, वहां मानव पर भी अपनी भूमि की रक्षा का दायित्व होता है। इसी दायित्व को जब एक जन समुदाय ने ग्रहण किया तभी से राष्ट्र का अस्तित्व प्रत्यक्ष हुआ।

आज हम 'राष्ट्र' को अंग्रेजी के नेशन शब्द का पर्यायवाची मानकर प्रयुक्त करते हैं। 'NATION' शब्द को लेटिन भाषा के 'NATIO' शब्द से उद्भूत माना गया है। जिसका अर्थ जन्म अथवा वंश है। किन्तु इसका अधिकांशतः प्रयोग राजनीति के सन्दर्भ में किया गया है। राजनीति के विद्वानों में किसी ने भौगोलिक एकता पर किसी ने भाषा और साहित्य पर तथा किसी ने राजनीतिक संगठन पर बल देते हुए राष्ट्र शब्द की महत्ता स्वीकार की है। वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में- 'भूमि भूमिवासी जन और जन संस्कृति- तीनों के सम्मेलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता जन अर्थात् जनगण की राजनीतिक एकता और जन संस्कृति अर्थात् सांस्कृतिक एकता -तीनों का समुच्चय का नाम राष्ट्र है।'²

हिन्दी साहित्य के इतिहास को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 4 भागों में विभक्त किया है। सर्वप्रथम साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का बीज उत्पन्न आदिकाल के चारण साहित्य से हुआ जो डिगल साहित्य के नाम से भी जाना जाता है। इस साहित्य का प्रादुर्भाव, मुसलमानों के आक्रमण और देशी राजाओं के प्रतिकार की भावना तथा युद्धों से हुआ। दलपति विजय का 'खुमान रासो' एवं नरपतिनाल्ह का 'बीसलदेव रासो' इस काल की प्रारम्भिक रचनाएं हैं।

चारण साहित्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं तत्कालीन परिस्थितियों को अंकित करने वाला ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' है। तत्कालीन परिस्थितियों को व्यक्त करने वाली कृति मान सकते हैं। रासो साहित्य के उपरान्त 'आल्लाखंड' 'विजयरासो', 'रगयल छन्द' आदि भी इस युग की प्रमुख राष्ट्रीय विचारधारा से अनुप्राणित काव्य-कृतियां हैं।

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहूँ दिसि।

सकल सूर सामन्त समर बल जन्त्र मन्त्र तिसि।

उट्टि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनहु वीर नट।
कदत तेग मन बेग लगत मनहु बीजु झट्ट घट्ट।³

इस काल के चारण कवि राज्याश्रित थे और वे राजाओं का गुणगान करने में ही अपने काव्य की इतिश्री समझते थे। राजा लोग भी छोटे राज्यों में बंटकर आपस में लड़ झगड़कर राष्ट्रीयता की महती भावना को संकुचित कर रहे थे। परन्तु उस समय के साहित्य में जो उदबोधन एवं जागृति युक्त वीर-गति, रास आदि लिखे गये वे भारत की अतीत से चली आ रही राष्ट्रीयता की अखण्ड धार से आप्लावित प्रतीत जीवनोत्सर्ग करने की प्रेरणा देती रही।

वीरगाथाकाल के समाप्त होते-होते देश में मुगल-साम्राज्य स्थिर होने लगा। हिन्दु-मुसलमानों का पारस्परिक कम होने लगा संस्कृतियों के संगम से नबनी राष्ट्रीयता का अभ्युदय हुआ। अकबर ने दोनों जातियों को एकसूत्र में बांधने का भगीरथ कार्य किया। भक्तिकान में विशेषकर संत साहित्य में राष्ट्रीयता का रूप सामाजिक उत्थान का विशेष परिचायक है। इसमें धर्म, जाति और वर्ण की एकता पर विशेष महत्त्व दिया गया।

जात- पात पूछे नहीं कोई / हरि को भजे सौ हरि को होई।⁴

तुलसीदास ने अयोध्यानगरी, सरयू नदी आदि का वर्णन किया है जिसमें हम उनकी अटूट श्रद्धा और तन्मयता पाते हैं-
राम के मुख से जन्मभूमि के उद्गार इस प्रकार व्यक्त कराते हैं-

जघपि सब बैकुंठ बरवाना, वेद पुरान विदित लगु जाना
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ यह प्रसंग जानइ कोऊ कोऊ
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि, उत्तर दिसी वहसर जू पावनि।⁵

अकबर के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों को अटूट दृष्टि से हिन्दू और दक्षिण के मुसलमान पुनः साम्राज्य के दुश्मन बनने लगे। छोटे-छोटे राजा छोटी-छोटी इकाइयों में स्वतन्त्र होने लगे और अपने राज्य तक ही सीमित होकर, भोग-विलास में डूबने लगे।

रीतिकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता के दर्शन भूषण की रचनाओं में ही हुए हैं। यद्यपि इस काल को राष्ट्रीय रचनाएं, राष्ट्रीय धारा को विशेष रूप से वेग प्रदान नहीं कर सकी तथापि शृंगार के युग में भी जिस वीरता और राष्ट्रीय एकता के कतिपय प्रयास किये गये वे सराहनीय हैं। संक्षेप में 'मुगल साम्राज्यकाल में दक्षिण भाग के कतिपय सन्त और कवि भारतीय राष्ट्रीय भावना को पनपते लक्षित होते हैं।⁶ घर-घर में राष्ट्रीयता जगाने वाले राष्ट्रगुरु रामदास प्रमुख हैं। रामदास ने दो तत्व अपनाए थे। एक था राष्ट्र में राजनीतिक जागृति करना और दूसरा समस्त शक्ति के साथ स्वाधीनता-संग्राम के लिए राष्ट्र को तत्पर करना। एकान्त वैयक्तिक साधना का सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय राष्ट्रगुरु रामदास को ही है।

भारतेन्दु तक तो भक्तिपरक भजनों चरितकाव्यों और लक्षण ग्रन्थों आदि का ही निरन्तर निर्माण होता रहा। भारतेन्दु युग में कला और साहित्य का प्रचार शिक्षित जनता में होने लगा। भारतेन्दु ने कविता को निश्चित परम्परा के साथ गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया इस युग में कवियों ने अंग्रेजी राज्य को ईश्वर की कृपा मानकर उसकी वन्दना की। इसका तात्पर्य कदापि नहीं कि इन कवियों में राष्ट्रीय चेतना का अभाव था।

भारतेन्दु युग में जो राष्ट्रीय साहित्य लिखा गया, उसमें मूलतः अतीत का गुणगान और वर्तमान के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया है। इन दो विशेषताओं के अलावा स्वदेशी का समर्थन और जागरण गीत भी इस युग में लिखे गए 'स्वयं भारतेन्दुजी ने 'नीलदेवी' नाटक में बहादुरों को देश स्वतन्त्र करने के लिए प्रेरित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस काल की काव्यधारा के विषय में लिखते हैं। 'नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊंचा स्वर देशभक्ति का था।'⁷ भारतेन्दु द्वारा रचित नाटक 'नीलदेवी' भारत दुर्दशा आदि नाटकों के भीतर आयी हुई कविताओं में देश-दशा का जो आर्थिक प्रसंग आया है वह तो है ही बहुत सी स्वतन्त्र कविताएं उन्होंने लिखी, जिनमें कहीं देश की अतीत गौरव गाथा का गर्व, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभ भरी वेदना, कहीं भविष्य की भावना से जागी हुई चिन्ता आदि अनेक पुनीत भावों का संचार पाया है।

द्विवेदी युग में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात् हिन्दी साहित्य को नई दिशा मिली। भारतेन्दु युग में निर्मित काव्य पृष्ठभूमि का विस्तार हुआ इस समय देश की राजनीतिक हलचल जोरों पर थी। हिन्दी साहित्य पर राष्ट्रीय तत्वों का पर्याप्त रूप से प्रभाव पड़ चुका था। काव्य साहित्य राजभक्ति, देशभक्ति की ओर जाने लगा। काव्य में राष्ट्रीयता की अनेक प्रवृत्तियों का वर्णन होने लगा - अतीत प्रेम, इतिहास के गौरव का गान, सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्स्थापना, भूमि-प्रेम, प्रकृति प्रेम, स्वदेशी भावना, नैतिक मूल्यों की स्थापना, महापुरुषों का गौरवगान, भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति आकर्षण, धर्म और साहित्य के प्रति आदर्श, बलिदान एवं त्याग की भावनाओं का विकास आदि प्रमुख हैं।

अतीत वर्णन के द्वारा देश के सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के प्रयत्न किए गए हैं। 'भारत भारती' में गुप्तजी ने देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता का उल्लेख किया है। इस युग के कवियों में अपनी भूमि (भारत भूमि) और प्रकृति के प्रति प्रेम दृष्टिगोचर होता है। गुप्तजी मातृभूमि का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य, चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकार हैं,

नदियां प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल है,
बन्दी जन खग वृन्दशेष – फल सिंहासन है
करते अभिषेक पर्याय है, बलिहारी इस देश की
है मातृभूमि व सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।⁸

अंग्रेजों की आर्थिक नीति के कारण स्वदेशी आन्दोलन का जन्म हुआ। विदेशी प्रभाव को नष्ट करने के लिए जनता को स्वदेशी- प्रयोग के लिए उत्साहित किया गया। जिससे तत्कालीन कवि भी प्रभावित हुए। स्वराज्य और विदेशी वस्त्र बहिष्कार का उल्लेख प्रेमघन ने 'चरखे की चमत्कारी' के गीत में किया है। इस युग में कवियों ने अतीत का गौरव गान, आध्यात्मिक उत्कर्ष, नैतिकता, उच्च चरित्र सुसंस्कृत समाज, वैभवशाली नगर संस्कृति का वर्णन करते हुए अनेक रचनाएं प्रस्तुत की हैं। भारतियों के नैतिकता पूर्ण चरित्र के सम्बन्ध में मैथिलीशरण गुप्तजी ने लिखा है-

एक तरु के विविध-सुमनों से खिले, / पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।

स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट उद्योगी सभी / बाह्यपभोगी, आन्तरिक योगी सभी।⁹

भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति आकर्षण भी द्विवेदी युग के कवियों में दिखाई देता है। मूल भारतीय मूल्य इस युग में नष्ट प्रायः हो चुके थे। अन्धविश्वास और पाखंड में जकड़े हुए भारतीय समाज की पतित अवस्था का उल्लेख करते हुए एक मानवधर्म की स्थापना करने का प्रयास भी इस काल में दृष्टिगत होता है।

धर्म राष्ट्र की रीढ़ है। द्विवेदी काल में धर्म का वास्तविक रूप जनता की आंखों से ओझल हो चुका था। धर्माडम्बर चारों तरफ फैल रहे थे। समाज की नैतिकता पर धर्म का कोई अंकुश नहीं था। भारत से सच्चे धर्म या मानवधर्म का लोप हो गया था। कवियों ने अपने प्राचीन धर्म की स्थापना के लिए यथासम्भव राम और कृष्ण को मानव चरित्र के रूप में चित्रित किया। बलिदान इस युग की राष्ट्रीय कविताओं का सार्वभौम भाव रहा है। बलि जाने की भावना आधुनिक युग में गांधीवाद की देन है। देशभर में राजनैतिक हलचल हो रही थी। ज्यों-ज्यों शासन कठोर होता जाता था त्यों-त्यों बलिदान की भावना तीव्रतर होती जाती थी। यही बलिदान की अंग इस युग की कविताओं की प्रमुख विशेषता है हिन्दी के रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने बलिदान के गीत गाए हैं। बलिदान की सर्वोत्तम कविता है 'पुष्प की अभिलाषा' कवि स्वाधीनता संग्राम में बलिदान होने वाले वीरों के पथ की धूल को देवताओं से श्रेष्ठ मानता है। अपनी इस भावना को चतुर्वेदी जी पुष्प के माध्यम से व्यक्त करते हैं -

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊं

चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं

चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे, हरि डाला जाऊं

मुझे तोड़ लेना, वनमाली उस पथ में देना तुम फेंक

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जावें वीर अनेक।¹⁰

कथाकार अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में भी राष्ट्रीय चेतना का उल्लेख किया है। उनका जन्म ब्रिटिश शासन के समय हुआ था जिस कारण उन्होंने अपने उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति के लिए भी लिखा है। 'गदर' के बाद यूरोपीय राष्ट्रीय बोध के साथ जब नई पीढ़ी ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न आरम्भ किया तब उसे सबसे बड़ा बल जो मिला वह पुरानी अर्थ खो चुकी राष्ट्रीयता से मिला। असल में पुराने राष्ट्रबोध को ही नया जामा पहनाया गया। आज अपनी राष्ट्रीयता को सही परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए हमें विकास के इस विश्व को नहीं भूलना चाहिए। ऋग्वेद में भी कहा गया है। 'राष्ट्रे जाग्रयाम् वयमु तब कबीला ही उनका राष्ट्र रहा होगा।'¹¹

डॉ० रामविलास शर्मा गदर का स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी नवजागरण का प्रेरक मान कर कहते हैं - 'इस आन्दोलन को विकृत करने के लिए न जाने कितने प्रयत्न सरकारी स्तर पर हुए, लेकिन वे सब स्वतः ही नष्ट हो गए, जनता में उनका कोई महत्व नहीं है। जनता अब भी गदर की स्मृति को उसके पुण्य रूप में अपने हृदय में संजोये हुए है। शहीद रामप्रसाद विस्मिल ने इसे क्रान्तिकारी आन्दोलन का जनक कहा है।'¹²

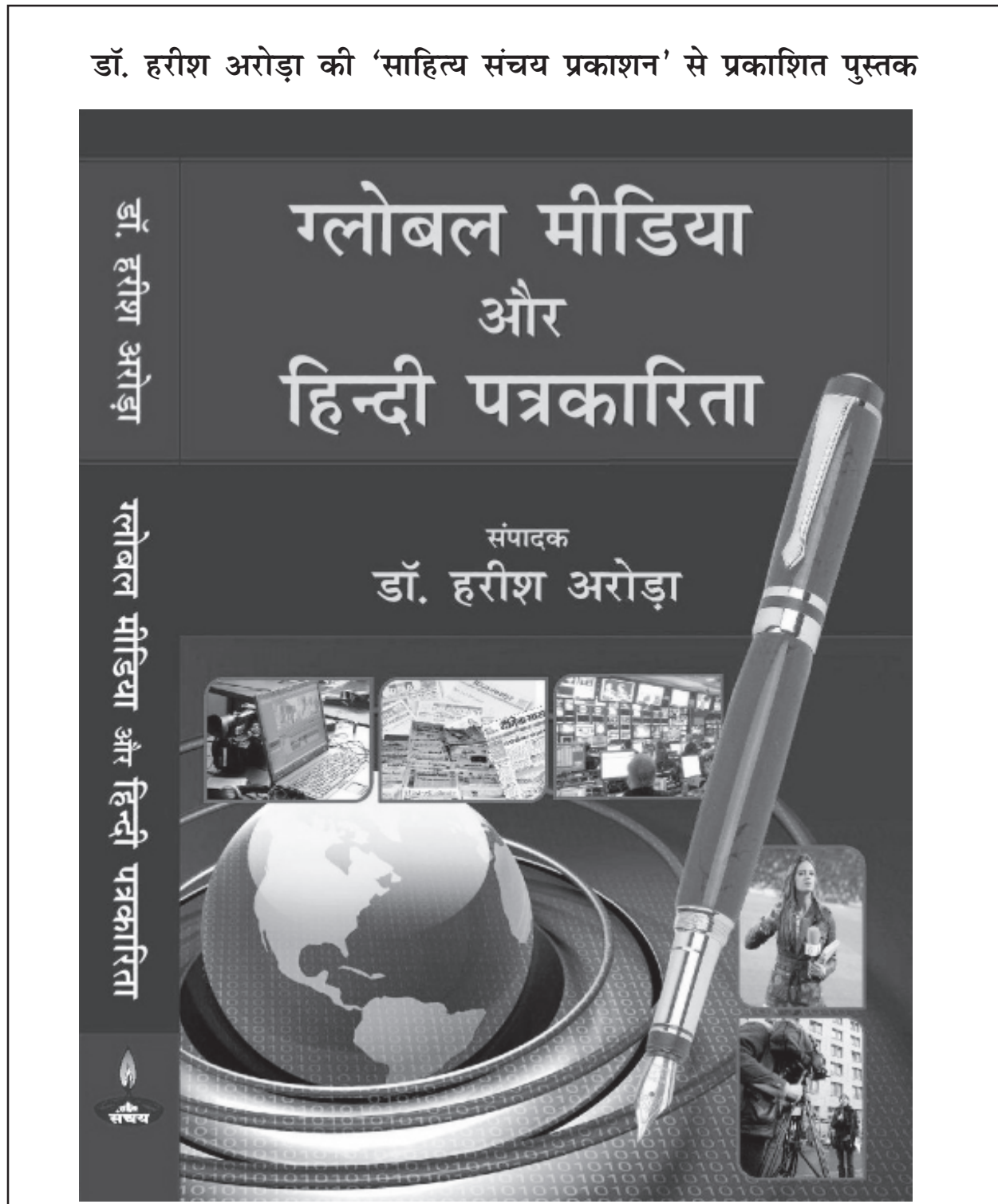
निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि साहित्य किसी भी राष्ट्र या जाति की वह आधारभूत धरोहर है, जिसके माध्यम से उस राष्ट्र और जाति के सामाजिक एवं संस्कृति उत्थान-पतन को समझा जा सकता है और विकास की गति का आकलन किया जा सकता है। साहित्यकार अपने राष्ट्र और अपनी जाति का सजग प्रहरी होता है। साथ ही वह राष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों की स्थापना और संरक्षण भी करता है। इसीलिये देश की संस्कृति और राष्ट्रीय गौरव को प्रेरणा प्रदान करने वाला साहित्य ही स्वस्थ साहित्य कहलाता है।

सन्दर्भ

1. डॉ० राजरानी, महादेवी वर्मा के साहित्य में अनुभूति एवं विचार - पृष्ठ संख्या - 7
2. डॉ० सावित्री भरतिया- सुभद्राकुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना-पृष्ठ संख्या-111
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ० नगेन्द्र डॉ० हरदयाल - पृष्ठ संख्या- 70

4. हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ० नगेन्द्र, डॉ० हरदयाल, पृष्ठ संख्या- 148
5. डॉ० सावित्री भरतिया - सुभद्राकुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना - पृष्ठ संख्या -128
6. डॉ० सावित्री भरतिया - सुभद्राकुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना - पृष्ठ संख्या -128
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृष्ठ संख्या - 542
8. डॉ० सावित्री भरतिया - सुभद्राकुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना - पृष्ठ संख्या -131
9. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत पृष्ठ संख्या- 6
10. डॉ० सावित्री भरतिया - सुभद्राकुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना - पृष्ठ संख्या -132
11. अमृतलाल नागर - मेरे साक्षात्कार - पृष्ठ संख्या - 219
12. डॉ० मुरलीधर नायक अमृतलाल नागर: जीवन और साहित्य पृष्ठ संख्या- 85

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'साहित्य संचय प्रकाशन' से प्रकाशित पुस्तक



स्वातंत्र्योत्तर साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप

डॉ. कैलाशी मीना

कालीबाड़ी मार्ग, गोल मार्किट

नई दिल्ली

स्वतंत्रता के बाद बड़ी तीव्रगति से पत्र-पत्रिकाओं का विकास और प्रचार हुआ। इस प्रचार और विकास के मूल में परिवर्तित परिस्थितियाँ स्वातंत्र्य भावना और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के मनोभाव प्रबल रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर वर्षों में प्रायः यह धारणा प्रबल हुई कि लेखकीय अभिव्यक्ति की निर्भीकता प्रेरक स्वाधीनता ने अनेक दैनिक साप्ताहिक पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया। यदि दैनिक जीवन की उथल-पुथल और सामाजिक घटनाक्रम को प्रस्तुत करती हैं। ये पत्र अपने शीर्षक से सूचित कर देते हैं कि दैनिक जीवन में जो गतिविधियाँ हैं। उनमें साहित्य का स्थान अपेक्षाकृत कम है। इस कमी की पूर्ति दैनिक पत्रों के विशेषांक, रविवारीय परिशिष्ट आदि से हो जाती है। ये परिशिष्ट और विशेषांक या तो वर्ष के अंत में फिर सप्ताह के मध्य और अन्त में प्रकाशित होते हैं।

साप्ताहिक पत्र दैनिक सामयिकी की तुलना में अधिक साहित्यिक होते हैं, क्योंकि उनमें अधिक पृष्ठ व चिंतन-प्रधान होने के कारण साहित्यिक, सामाजिक और विविध प्रकार की सामग्री को अधिक स्थान प्राप्त हो सकता है। यही स्थिति पाक्षिक और मासिक पत्रों की है जो पत्र जितना अधिक अवधि के अन्तराल से प्रकाशित होता है उसमें उतना ही अधिक वैविध्य होता है। स्वातंत्र्योत्तर पत्र-पत्रिकाएँ साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करती हैं। इन पत्रिकाओं की स्थिति, महत्ता, प्रसार संख्या उपयोगिता और सामग्री के विशद अध्ययन से हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर के वर्तमान स्वरूप को समझा जा सकता है तथा भावी विकास का दिशाबोध ग्रहण किया जा सकता है। यहाँ हम कुछ पत्र-पत्रिकाओं के बारे में चर्चा करेंगे

हिन्दुस्तान हिन्दी का राष्ट्रीय दैनिक हिन्दुस्तान 12 अप्रैल सन् 1936 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन के अवसर पर प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम सम्पादक सत्यदेव विद्यालंकार थे। विद्यालंकार के बाद सन् 1946 से 1963 तक मुकुट बिहारी ने इसका सम्पादन किया। उनके पश्चात् कुछ दिनों तक हरिकृष्ण त्रिवेदी ने स्थानापन्न सम्पादक के रूप में कार्य किया और इसके पश्चात् रतनलाल जोशी इसके सम्पादक बने। जोशी जी ने 1976 में अवकाश ग्रहण किया।

राज्यों की राजधानियों में हिन्दुस्तान को अपने विशेष संवाददाता व कार्यालय संवाददाता नियुक्त है जो कि अपने-अपने जिलों के समाचार भेजते हैं। हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि घटनास्थल पर समाचार एकत्र करके उसे पूर्ण विवरण के साथ देना है। 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध राजस्थान व बंगाल के शरणार्थियों के आगमन के समय हिन्दुस्तान के सम्पादक तथा संवाददाताओं ने युद्ध मोर्चे पर जाकर जो समाचार दिये, वे वास्तव में सराहनीय हैं और सभी अखबारों के प्रति प्रतिस्पर्द्धा का विषय हैं। देवदास गांधी के मार्गदर्शन में इस पत्र के उच्च आदर्शों को अपने समक्ष रखा और स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित कीं। हिन्दुस्तान का संचालन प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत लोगों के हाथ में रहा।

नवभारत टाइम्स बनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी ने दिल्ली से 4 अप्रैल 1947 को प्रारम्भ किया। 1950 में कलकत्ता व बम्बई से भी इसके संस्करण प्रकाशित किये गए पर 1953 में कलकत्ता संस्करण बंद कर दिया गया और बम्बई संस्करण अभी निकल रहा है। नवभारत टाइम्स में अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रीय प्रादेशिक स्थानीय समाचारों को बिना लाग-लपेट के नियमित रूप से उचित स्थान मिलता है।

अमर उजाला दैनिक पत्रों की लम्बी शृंखला में अमर उजाला का भी अपना स्थान है। वर्तमान में यह आगरा, बरेली, मेरठ, मुरादाबाद, कानपुर अर्थात् पश्चिमी उत्तर प्रदेश के प्रमुख जिलों में सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र अमर उजाला ही है। इसका प्रकाशन व सम्पादन सन् 1947 में डोरी लाल अग्रवाल और मुरारीलाल माहेश्वरी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ। अनिल कुमार अग्रवाल भी इसके सम्पादक रहे हैं।

कानपुर से **दैनिक जागरण** का प्रारम्भ सन् 1947 में पूर्णचन्द्र गुप्त ने किया पर, आजकल इसका सम्पादक श्री नरेन्द्र मोहन कर रहे हैं। कानपुर के अलावा यह पत्र गोरखपुर, लखनऊ, वाराणसी, झांसी, मेरठ आदि से भी निकल रहा है। **दैनिक जागरण** के स्थायी स्तम्भ में मुख्य है भाई साहब, कानपुर समाचार, कला संस्कृति लोग, अर्थ-कौटिल्य, स्वास्थ्य देश चर्चा,

महिला, व्यापार जगत सिनेमा, खेलकूद, समाचार, मौसम आदि।

पंजाब केसरी लाल जगतनारायण ने 1965 में पंजाब में 'पंजाब केसरी' नामक दैनिक पत्र की नींव डाली। पंजाब केसरी के साथ उसका उर्दू दैनिक पत्र भी छपता है। उसका नाम दैनिक हिन्दी समाचार है। पंजाब केसरी स्वतन्त्र नीति का समर्थक है और इसके सम्पादक श्री रमेशचन्द्र रहे हैं। इसके नियमित स्तम्भों में मुख्य हैं - चलते-चलते, सम्पादकीय, कल क्या होगा, आज का दिन, खेल-कूद मण्डी आदि पर इन सब स्तम्भों के अतिरिक्त पंजाब केसरी अपना संस्करण भी निकालता रहता है।

पंजाब केसरी अन्य दैनिकों के कुछ पश्चकता लिए है तथा जिसका हर बार किसी न किसी के लिए होता है। इसके जो संस्करण निकलते हैं उनमें रविवार को छोड़कर सभी संस्करणों का मूल्य वही होता है। जो कि साधारण पत्रिका है। **नवभारत** मध्य प्रदेश की लोकप्रिय दैनिक नवभारत सर्वप्रथम नागपुर से सन् 1938 में प्रकाशित हुआ। मायाराम सुरजन इसके प्रथम सम्पादक होकर आये। इसके बाद कालका प्रसाद दीक्षित, मदनलाल माहेश्वरी, रामगोपाल माहेश्वरी इसके सम्पादक बने। नवभारत ने धीरे-धीरे कान्ही ख्याति अर्जित की, अतः 1950 में जबलपुर से 1956 से भोपाल, 1959 में रायपुर और 1960 में इन्दौर बिलासपुर से भी इसके संस्करण निकल रहे हैं। नवभारत स्वतन्त्र विचारधारा का दैनिक पत्र है जो समाचार व सामयिक विषयों के लिए होता है।

दैनिक भास्कर बिशम्बर दयाल अग्रवाल द्वारा नोबल प्रिंटिंग प्रेस, इब्राहिमपुरा, भोपाल से मुद्रित तथा प्रकाशित होता है। इसका प्रथम प्रकाशन 1958 में हुआ। पहले इसके सम्पादक काशीनाथ चतुर्वेदी थे, बाद में इसके प्रधान सम्पादक महेशचन्द्र अग्रवाल रहे। यह अखबार मध्यप्रदेश में दिन-प्रतिदिन लोकप्रियता प्राप्त करता जा रहा है। उत्तम छपाई व सफ़ नोटो देना इसकी अपनी विशेषता है। दैनिक भास्कर ने राजस्थान में भी अपने पैर-पसार लिए हैं। राजस्थान में जयपुर से 1915 से प्रकाशित होने लगा है। इसके अलावा जोधपुर, उदयपुर, अजमेर, बीकानेर व कोटा से भी निकलने लगा है।

जनसत्ता सन् 1952 से 1954 तक स्व. इन्द्र विद्यावाचस्पति एवं श्री वेंकटेश नारायण तिवारी के सम्पादन में चलकर बन्द हो गया। इण्डिया एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड ने 17 नवम्बर 1983 को दिल्ली ने जनसत्ता हिन्दी दैनिक का प्रकाशन पुनः किया। इस पत्र में अलग-अलग बार को पुस्तक समीक्षा किताबों मिली, देखी-सुनी, क्रय-विक्रय आदि स्तम्भ भी होते हैं।

राष्ट्रदूत हनुमान सहाय शर्मा द्वारा राष्ट्र दूत प्रेस, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित राष्ट्र दूत दैनिक सन् 1951 में जयपुर से प्रकाशित हुआ। सन् 1975 से यह कोटा से भी निकलने लगा और वर्तमान में बीकानेर, उदयपुर, अजमेर से भी प्रकाशित हो रहा है। इसके स्थायी स्तम्भों में देश-विदेश-प्रदेश चलते-चलते राहरी प्रादेशिक समाचार आदि अंक निकलते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता ने जहाँ जनजागरण का संदेश दिया है, वहीं सुधार और परिष्कार का काम भी किया है। समानता, भ्रातृत्व, स्वतंत्रता और उन्मुक्तता की नींव पर निर्मित मानव समाज का ढाँचा खड़ा करने और उसे मजबूत बनाने में स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता ने विशेष योगदान किया। ऐसी शायद ही कोई पत्रिका हो जिसमें मानवता, स्वतंत्रता और मानवीय सम्बन्धों का सुदृढ़ और यथार्थ स्थिति को किसी-न-किसी रूप में विश्लेषित न किया जाता हो। विभिन्न विचारों के प्रगतिशील पत्र आज भी मानव जीवन को नई धारा की ओर उन्मुख करने में लगे हुए हैं।

वस्तुतः पत्रकारिता ने आज समाज में नैली हुई अनेक बुराइयों के विरुद्ध अपना सशक्त अभियान चलाया है। शिशु हत्या, बाल विवाह, दहेज प्रथा, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं को दूर करने में हिन्दी पत्रकारिता ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। पत्रकारिता ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक अर्थात् समग्र राष्ट्रीय चेतना को गहन रूप में परिवर्तित किया है।

भारतीय जनजागरण का अनुभव सर्वप्रथम बंगभूमि ने किया, इसलिए स्वाभाविक रूप से भारतीय पत्रकारिता जिस नवजागरण और सुधार परिष्कार की भावना को लेकर चली उसका क्रम आज भी जारी है। 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ही हिन्दी पत्रकारिता ने इस दिशा में नवीन चेतना को जागृत किया। नलस्वयंप स्वातंत्र्योत्तर भारत में विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति मिल गई। सभी कुप्रथाओं के कुपरिणामों और त्रसद परिणामों का विवेचन बड़ी-छोटी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने खूब लिखा है, हिन्दी पत्रकारिता ने नवजीवन में अनेक प्रकार से नवचेतना का मंच तैयार किया है। हिन्दी पत्रकारिता ने जहाँ देश और समाज का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया, वही जनजागृति नवोन्मेष और समाज सुधार व परिष्कार के क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय कार्य किया है। स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारितायुगीन चेतना की अभिव्यक्ति है उसमें लोकमानस प्रतिरूपित हुआ और यही युगधारा स्वातंत्र्योत्तर पत्रिकाओं की प्राणधारा बन गई है।

संदर्भ

1. हिन्दी पत्रकारिता - कृष्ण बिहारी मिश्र
2. हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम - वेद प्रताप वैदिक
3. हिन्दी पत्रकारिता विकास और विविध आयाम - डॉ. सुशीला जोशी

भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में राष्ट्रवाद

सपना

शोधार्थी, हिन्दी-विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

राष्ट्रवाद से अभिप्राय, राष्ट्र को आधार मानकर चिंतन और क्रिया करने से है। किसी देश के निवासियों द्वारा जब अपने देश की भूमि और उस से जुड़े सांस्कृतिक तथ्यों को सर्वोपरी मानते हुए, अपने विचारों, भावनाओं और क्रियाओं का समन्वय करना ही राष्ट्रवादी कहलाता है और राष्ट्रवादी व्यवहार को प्रेरित करने वाली भावात्मक शक्ति को राष्ट्रवाद कहा जाता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो, अपने राष्ट्र के प्रति अटूट प्रेम ही राष्ट्रवाद है। राष्ट्र के प्रति निष्ठा और राष्ट्र की रक्षा के लिये त्याग और बलिदान तो प्राचीन काल में ही प्रचलित रहे हैं, किन्तु राष्ट्रवाद की अवधारणा सोलहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो इंग्लैंड को ही राष्ट्रीयता का विकास करने वाला पहला देश माना जाता है। राष्ट्रीय भावनाओं की उत्पत्ति और प्रसार ने इंग्लैंड को एक अत्यंत शक्तिशाली और विश्व विजेता देश के रूप में खड़ा कर दिया था। इंग्लैंड से ही प्रभावित होकर यूरोप के अन्य देशों में भी राष्ट्रवाद की लहर चल पड़ी और जर्मनी, फ्रांस, डेनमार्क, पुर्तगाल आदि अनेक यूरोपीय देश सबल राष्ट्रों के रूप में स्थापित होने लगे। भारत में राष्ट्रवाद का उदय अठारहवीं सदी से माना जाता है। राष्ट्रवादी भावना का उदय का मुख्य कारण विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति का विरोध था।

राष्ट्रवाद की परिभाषा को लेकर साहित्यकारों में भिन्न-भिन्न मतभेद हैं। गार्नर राष्ट्रवाद के संबंध में कहते हैं कि- 'यह आधुनिक राष्ट्रवाद का विशिष्ट लक्षण है कि राष्ट्रीयता का निर्माण करने वाले अधिकतर लोग या तो स्वतन्त्र होना अथवा अपनी पसंद और रचना को राज्य संगठन के अधीन होना चाहते हैं या फिर जहाँ उन्हें एक ही राज्य में अन्य राष्ट्रीयता या राष्ट्रीयताओं के साथ जोड़ दिया गया है, तो एक बृहत् स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं।' हेन के कथन के अनुसार- राष्ट्रीयता कोई मूल प्रवृत्ति अथवा प्राकृतिक वस्तु नहीं है। यह कृत्रिम है और प्रचार अथवा कृत्रिम उद्दीपन से ही इसका विकास और प्रसार होता है।² स्मिथ के अनुसार- 'राष्ट्रवाद अपने को एक वास्तविक अथवा आकांक्षित राष्ट्र का संघटक मानने वाले किसी सामाजिक समूह के सदस्यों की स्वायत्तता संलाग तथा वैयक्तिकता की उपलब्धि तथा सम्पोषण के लिये वैचारिक आन्दोलन है।'³

भारतेंदु का जन्म 9 सितम्बर 1850 ई. में वाराणसी में हुआ था इनके पिता 'बाबू गोपाल चन्द्र' भी एक कवि थे। भारतेंदु को काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत में मिली थी। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम भारतेंदु ने अपने आँखों से देखा था। देश में अनेक स्थानों पर इस आन्दोलन की चिंगारी फैल चुकी थी। लेकिन कुछ समय बाद इसे कुचल दिया गया, इसी क्रांति के चलते परवर्ती समय में राष्ट्रवाद की चेतना बहुत अधिक न फैली। इसके फलस्वरूप समाज और साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। तो ऐसे समय में भारतेंदु राष्ट्रीयता की भावना से कैसे अछूते रह सकते थे। भारतेंदु के समय में देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। देश में अंग्रेजी शिक्षा की हुकुमत थी। भारतीय लोगों ने विदेशी सभ्यता के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा था। ब्रिटिश आधिपत्य में लोग अंग्रेजी पढ़ना और समझना गौरव की बात समझते थे। विदेशी हमारी संस्कृति के साथ खिलवाड़ कर रहे थे। ऐसे वातावरण में भारतेंदु भला कैसे चुप बैठते उन्होंने अपनी रचनाओं में न केवल राष्ट्रवाद चेतना का चित्रण किया बल्कि लोगों को इसके लिए प्रेरित भी किया। भारतेंदु ने अपने रचनाओं में देश की गरीबी, पराधीनता के दंश, शासकों के अमानवीय शोषण का भी वर्णन किया है। भारतेंदु की महत्ता यह भी है कि वह अंग्रेजी राज्य के सच्चे और कटु आलोचक थे। भारतेंदु ने अपने नाटकों, कविताओं और निबंधों के द्वारा जनता को अंग्रेजी राज्य के अन्याय और शोषण से सचेत भी किया है। भारतेंदु के समय अंग्रेजों की दमनकारी नीतियाँ पूरे देश में फैली हुई थी। इसके बावजूद भी वे अंग्रेजों से कभी डरे नहीं उन्होंने अंग्रेजों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने मुखर होकर लिखा-

'भीतर-भीतर सब रस चूसै, हंसि-हंसि के तन मन धन मूसै।

जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज।'⁴

इन पंक्तियों में भारतेंदु द्वारा अंग्रेजों के शोषण-निति का प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख किया गया है। वे देश की पीड़ा को अभिव्यक्त करने से कभी हिचकिचाए नहीं, उन्होंने समाज में जो देखा उसे यथार्थ रूप में वैसे ही प्रस्तुत किया। इस पंक्ति में वे कहना चाहते हैं कि अंग्रेज कुशल शासन व्यवस्था कर रहे थे, पर भीतर-ही भीतर भारत का आर्थिक शोषण भी कर रहे हैं।

'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु लिखते हैं, जिस भारत देश को पूरे विश्व में सर्वोत्तम माना जाता था उसी देश में आज अंग्रेजों की वजह से खुशियाँ गायब सी हो चुकी हैं। उनसे भारत की यह दुर्दशा देखी ही नहीं जा रही है -

'रोवहू सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा। हा। भारत-दुर्दशा न देखी जाई।'⁵

आगे वे लिखते हैं कि भारतीयों का इन अंग्रेजों पर विश्वास करना ही मूर्खता है, क्योंकि जब तक यह भारत में हैं तब तक भारत देश की दशा सुधरने वाली नहीं हैं। क्योंकि टैक्स कौन लगा रहा था? अन्न किसने महंगा किया था? देश कौन उजाड़ रहा था? यह देखना मुश्किल नहीं है क्योंकि भारत में यह सब कम अंग्रेजी राज्य ही कर रहा था। जितना ज्यादा उन पर भरोसा किया जाएगा, उतनी ही भारत की दुर्दशा और बिगड़ती जाएगी-

'मरी बुलाऊँ देस उजाड़ू, मँहगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मनो जी।'⁶

भारतेन्दु ने अपनी कविता 'प्रबोधिनी' में देशवासियों से विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने की प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा दी है और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने और स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन के लिए कहा है, क्योंकि वे जानते थे कि यदि देशवासी विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं तो स्वदेशी उद्योगों को नुकसान होगा और मजबूर होकर उन्हें भी विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना पड़ेगा। वे लिखते हैं कि-

'जीवन विदेश की वस्तु लै।
ता बिन कछु नहिं करि सकता।'⁷

भारतेन्दु कहते हैं कि अंग्रेजों ने भारतवासियों को अपने लगाए गए कारखानों के बल पर ही जीता है। इसका परिणाम यह हुआ कि हम पूरी तरह से अंग्रेजों पर निर्भर हो गए। मनुष्य होते हुए भी हम उनके गुलाम और वे हमारे शासक बने। उन्हें शासक भी हमने ही बनने दिया है, न हम उनके गुलाम बनते और न ही वे हमारे शासक। हमारी निर्भरता के कारण ही यह सब हुआ है। भारतेन्दु भारतवासियों से प्रश्न करते हैं-

'परदेसी की बुद्धि अरु वस्तुन की करि आस।
पर बस हवै कब लौं कहो रहि हौ तुम हवै दास।'⁸

इतना कुछ होने के बाद भी भारतीयों का मानना था कि अंग्रेजों ने चाहे जैसा भी व्यवहार देश-वासियों के साथ किया हो लेकिन उनके आने पर देश का विकास भी हुआ है, वही भारत में तकनीकी उद्योग और रेल लेकर आए हैं। भारतीयों ने तो इस और कभी ध्यान ही नहीं दिया। इस संबंध में भारतेन्दु ने तो लिखा ही है, भट्टाचार्य ने भी अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास' में लिखा है कि- 'आधुनिक सड़के, बंदरगाह, रेलपथ, मशीनें, जहाज इत्यादि ब्रिटिश साम्राज्य की देन हैं। इसके लिए कृतज्ञता का अभाव साहब लोगों को पीड़ा देता है। चलो ठीक है, पर पहली बात यह है कि ये चीजें मुक्त में नहीं आई थी। करदाता अथवा उपभोक्ता भारतीयों के पैसों के बदले ही आई थी। व्यवस्थापक रूप में अंग्रेज प्रशासकों को मोटे वेतन और व्यापारियों को लाभ मिला था।'⁹ इस प्रकार अंग्रेजों ने जो भी काम भारत में किया उसमें केवल अपना लाभ ही देखा है और उन कामों के पीछे भी उनका ही स्वार्थ छिपा था। क्योंकि उस से अंग्रेजों को भी उतना ही लाभ हुआ था जितना भारतीयों को वे भी उन संसाधनों का उतना ही उपयोग कर रहे थे। सरल शब्दों में कहे तो अपनी सुविधाओं के लिए ही उन्होंने भारत में इस तरह के काम किये।

भारतेन्दु के नाटकों में राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'अंधेर नगरी' नाटक में अंधेर नगर प्रतीक है भारत का और चौपट रजा वर्तमान राज्य व्यवस्था से है। इस नाटक में भारतेन्दु ने चना बेचने वाले पात्र के माध्यम से पूरी शासन व्यवस्था पर करारा व्यंग किया है। चना वाला गाते हुए चना बेचता है, वह मनोरंजन के लिए नहीं गता बल्कि वह जन-चेतना को जागृत करने के लिए गाता है -

'चना हाकिम सब जो खाते,
सब पर दूना टिक्स लगाते।'¹⁰

इसी प्रकार चूरन वाला साहब लोगों और पुलिस वालों के लिए कहता है-

चूरन साहब लोग जो खाते।
सारा 'हिन्द' हजम कर जाता।
चूरन पुलिस वाले जो खाते।
बस कानून हजम कर जाते।'¹¹

इस प्रकार भारतेन्दु ने व्यंग्यपरक रचनाओं के महत्त्व को समझते हुए अपने रचनाओं के द्वारा अंग्रेजी शासक पर करारी चोट की है।

'वैष्णवता और भारतवर्ष' निबंध में भारतेन्दु ने लिखा है, 'अंग्रेजों से जो नौकरी बच जाती है, उस पर मुसलमान आदि विधर्मी भर्ती होते जाते हैं।' मित्र की लड़ाई में अंग्रेजों की जीत होने पर भी आर्य वीरों की प्रशंसा में उन्होंने लिखा है-

'यवन-हृदय पत्री पर बरबसा लिखै लोह लेखनि भारतजस।

पुनि भारत-जस करि विस्तार। मन मुख फेर करै ऊजियारा।'¹²

इसी तरह भारतेन्दु ने अपने निबंध 'बादशाह दर्पण' में मुसलमानों और अंग्रेजी राज्य की तुलना करते हुए पहले को हैजे का रोग और दूसरे को क्षय बताया है। अंग्रेजों ने भारतवासियों को जो विद्या सिखाई थी उसे भीख मांगने की विद्या कहा है। अंग्रेजों के आगे जो अपने आत्म-सम्मान को खोकर नाक रगड़ते थे, भारतेन्दु को उन लोगों से घृणा होती थी। इस बात की पुष्टि उनके प्रसिद्ध लेख 'लेवी प्राणलेवी' से भी जाहिर हो जाता है। लोग किस तरह मजिस्ट्रेट के 'सिट डाउन', 'स्टैंड अप' कहने से भी उठते बैठते थे, इसका जिक्र भी उन्होंने किया है - 'वाह-वाह दर्बार् क्या था कठपुतली का तमाशा था या बल्लमटेरों की 'कबायत' थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतना ठस या फौजदारी की सजा थी।'¹³

अंत में उन्होंने अपने भारतवासियों से इस कायरता को छोड़ने के लिए भी प्रार्थना की है- 'हाय-पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और इनको परमेश्वर यह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंड के वासियों में पाई है।'¹⁴

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु ने अपने साहित्य के माध्यम से न केवल राष्ट्रीय भावना का चित्रण किया बल्कि भारतवासियों को राष्ट्रवाद के प्रति प्रेरित भी किया है। भारतेन्दु की राष्ट्रीय भावनाओं में एक छोर पर गौरवशाली परम्परा है तो दूसरे छोर पर उचित धर्म पालन का आग्रह भी है। उनकी राष्ट्रवादी भावनाओं का एक केंद्र समाज सुधार से जुड़ा है तो दूसरा केंद्र देश की अन्यतम उन्नति की आकांक्षा से। भारतेन्दु ने अपने साहित्य में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य भी किया है। वे व्यंग्य के महत्त्व को अच्छी तरह समझते थे और इसका प्रयोग उन्होंने रचनाओं में भी किया है। व्यंग्य के द्वारा उन्होंने महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी नहीं छोड़ा है। भारतेन्दु के साहित्य का अधिकांश भाग हमें देश-सुधार से अनुप्रेरित करता है।

संदर्भ

1. डॉ. ओमप्रकाश, आधुनिक भारतीय समाज की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ संख्या-5
2. त्रिपाठी सत्येन्द्र, द्विवेदी कृष्णदत्त, भारतीय राष्ट्रवाद स्वरूप और विकास, वाराणसी, पृष्ठ संख्या-3
3. एन्थोनी स्मिथ, नेशनलिस्ट मूवमेंट्स, मैकमिलन, दक्षिण कैरोलिना विश्वविद्यालय, 1976, पृष्ठ संख्या-1
4. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2017, पृष्ठ संख्या-440
5. वही, पृष्ठ संख्या-442
6. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृष्ठ संख्या-63
7. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2017, पृष्ठ संख्या-441
8. शर्मा, हेमन्त (संपादक), भारतेन्दु समग्र, वाराणसी, हिन्दी प्रचारक संस्थान, 1989, पृष्ठ संख्या-230
9. भट्टाचार्य, सव्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850-1947, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1997, पृष्ठ संख्या-25
10. ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु ग्रन्थावली (पहला खंड), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1950, पृष्ठ संख्या-661
11. वही, पृष्ठ संख्या-663
12. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृष्ठ संख्या-61
13. वही, पृष्ठ संख्या-66
14. वही, पृष्ठ संख्या-66

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद के संदर्भ में राष्ट्रवाद

रेखा

श्रीलाल नाथ हिन्दु कॉलेज
रोहतक, हरियाणा

हिन्दी साहित्य आदिकाल से परिवर्तनशील रहा है। परिवर्तन ही जीवन का लक्ष्य माना गया है। जब तक जीवन की चैतन्यधारा प्रवाहित रहेगी तब तक परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया भी निरंतर चलती रहेगी। इसी कारण साहित्य में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। विश्व के समस्त साहित्यकार इतिहास इसी विचारधारा की पुष्टि करता है। हिन्दी साहित्य में भी इस प्रकार जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन का क्रम दिखाई देता है। उस का तात्पर्य यह है कि हिन्दी साहित्य की गतिविधियाँ जीवन की आवश्यकताओं व परिस्थितियों के अनुसार उस का निर्माण हुआ। मार्क्सवाद क्रांतिकारी दर्शन है। इसकी माँग है कि जीवन और समाज को बदलने के लिए उसमें सचेत और सक्रिय रूप से हस्तक्षेप किया जाए। अपने मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धान्तों के अनुसार साहित्य का काम समाज के गतिशील यथार्थ का कलात्मक अंकन, सामाजिक अन्तर्विरोधी और अंतःसंबंधों की व्याख्या और परिवर्तनकारी अग्रगामी प्रगतिशील शक्तियों के सामाजिक परिवर्तन हेतु किए जाने वाले संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करना।

कीवर्ड्स : मार्क्सवाद, संघर्ष, राष्ट्रवाद, गतिशील, यथार्थ, कलात्मक, दर्शन, सौन्दर्य शास्त्र, दार्शनिक

प्रगतिवाद काव्य में राष्ट्रवाद विषय को अच्छी तरह से समझने के लिए आवश्यक है कि प्रगतिवाद और राष्ट्रवाद का संदर्भ समझा जाए। राष्ट्रवाद लोगों के किसी समूह की उस आस्था का नाम है जिसके तहत वे खुद को साझी इतिहास, परम्परा, भाषा, जातीयता और संस्कृति के आधार पर एकजुट मानते हैं। इन्ही बंधनों के कारण वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्हें आत्म-निर्भर के आधार पर अपने सम्प्रभु राजनीतिक समुदाय अर्थात् राष्ट्र की स्थापना करने का आधार है। राष्ट्रवाद के आधार पर बना राष्ट्र उस समय तक कल्पनाओं में ही रहता है जब तक उसे एक राष्ट्र-राज्य का रूप नहीं दे दिया जाता। हाँलाकि दुनिया में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं है जो इन कसौटियों पर पूरी तरह से फिट बैठता हो, इसके बावजूद अगर विश्व की एटलस उठा कर देखी जाए तो धरती की एक-एक इंच जमीन राष्ट्रों की सीमाओं की बीच बंटी हुई मिलेगी।

राष्ट्रवाद का उदय अठारवीं और उन्नीसवीं सदी के यूरोप में हुआ था। राष्ट्रीय सीमाओं के रहने वाले लोगों को अपने-अपने राष्ट्र का अस्तित्व, प्राचीन, चिरन्तन और स्थिर लगता है। इस विचार की ताकत का अंदाजा इस हकीकत से भी लगाया जा सकता है कि इसके आधार पर बने राष्ट्रीय समुदाय वर्गीय, जातिगत और धार्मिक विभाजनों को भी लांघ जाते हैं। राष्ट्रवाद के आधार बने। कार्यक्रम और राजनीतिक परियोजना के हिसाब से जब किसी राष्ट्र-राज्य की स्थापना हो जाती है तो उसकी सीमाओं में रहने वालों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी विभिन्न आस्मिताओं के ऊपर राष्ट्र के प्रति निष्ठा को ही अहमियत देंगे। वे राष्ट्र के कानून का पालन करेंगे और उसकी आंतरिक और बाह्य सुरक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान भी दे देंगे। आपस में समानताएं होने के बावजूद राष्ट्रवाद और देशभक्ति में अंतर है। राष्ट्रवाद अनिवार्य तौर पर किसी न किसी कार्यक्रम और परियोजना का वाहक होता है; जबकि देशभक्ति की भावना ऐसी किसी भी शर्त की मोहताज नहीं होती है। एक महाख्यान के तौर पर राष्ट्रवाद छोटी पहचानों को दबाकर पृष्ठभूमि में धकेल देता है। अंग्रेजों के खिलाफ चले राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसी हस्तियाँ इस विचार को संदेह के निगाह से देखती थीं। राष्ट्रवाद के ज्यादातर आलोचक राष्ट्र की सीमा में रहने के लिए ही विवश नहीं हैं, पर उनमें से कई हस्तियाँ किसी न किसी राष्ट्र की स्थापना में योगदान करते हुए नजर आती हैं। राष्ट्रवाद विभिन्न विचारधाराओं को भी अपने अंदर समेट लेते हैं। भारत में संदर्भ में देखे तो आधुनिकतावादी, जवाहरलाल नेहरू, मार्क्सवादी कृष्ण मेनन, उद्योगवाद विरोधी महात्मा गांधी और इसी तरह कई तरह की विचारधाराओं के पैरोकार ने मिलकर भारतीय राष्ट्रवादी का निर्माण किया है।

राष्ट्रवाद के साथ कई सैद्धांतिक प्रश्न और उलझनें जुड़ी हुई हैं। मसलन राष्ट्रवाद और आधुनिक संस्कृति व पूंजीवाद का आपसी संबंध क्या है? पश्चिमी और पूर्वी राष्ट्रवाद के बीच क्या फर्क है ? एक राजनीतिक परिघटना के तौर पर राष्ट्रवाद प्रगतिशील है, या प्रतिगामी? हालांकि धर्म को राष्ट्र के बुनियादी आधार के तौर पर मान्यता प्राप्त नहीं है, फिर भी भाषा के साथ-साथ धर्म के आधार पर भी राष्ट्रों की रचना होती है।

मार्क्सवाद भी राष्ट्रवाद से संबंधित सिद्धांत मुहैया कराने में नाकाम रहा है। दुनियाभर के मजदूरों को एक होने का नारा देने वाले मार्क्स और एंगेल्स मानते हो कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता। अपने लेखन में उन्होंने विभाजन के परे जाकर राजनीतिक-सामाजिक और सांस्कृतिक एकता करने वाली परिघटना को तरजीह नहीं दी है। अपने युग के कुछ राष्ट्रीय संघर्षों के बारे में तो उनकी तिरस्कारपूर्ण धारणा यह थी कि वे नष्ट हो जाने के लिए अभिशप्त हैं राष्ट्रियवाद का कोई मुकम्मल सिद्धांत देने के बजाय उनकी रचनाएं अपने युग की व्यावहारिक राजनीति के गहन राष्ट्रीय प्रश्न पर विचार करती हैं। लेकिन वे एक विशाल बहुजातीय साम्राज्य में क्रांति करने की समस्याओं से जूझते हुए राजनीतिक लोकतंत्र की आवश्यकता को अपने राष्ट्रवाद संबंधी विश्लेषण के केन्द्र में रखा। उनका निष्कर्ष था कि राष्ट्रों को आत्मनिर्णय का अधिकार मिलना चाहिए। इसके बाद 'स्वालिन' की विख्यात रचना 'मार्क्सिजम एण्ड नेशनल क्वेश्चन' सामने आई जिसमें उन्होंने राष्ट्रवाद की थियरी देने की कोशिश की। स्वालिन ने राष्ट्र के मुख्य तत्व बताये स्थिर और नैरवर्य से युक्त समुदाय भू-क्षेत्र समान भाषा, आर्थिक सुसंगति, सामूहिक चरित्र। क्योंकि स्वालिन राष्ट्रों के आधार को औद्योगिकरण की जरूरतों से जोड़कर देख रहे थे इसलिए उनका सिद्धांत राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उससे उभरने वाले बहुत से प्रश्नों की उपेक्षा कर देता था। मार्क्सवादी मानते रहे कि राष्ट्रवाद पूंजीवाद के विकास में उसका सहयोगी बनकर उभरा है। राष्ट्रवाद प्रभुत्ववादी वर्गों के एकजुट करके राजनीतिक समुदाय भी एक भ्रांत अनुभूति पैदा करता है। ताकि पूंजीपतियों द्वारा किये जाने वाले निर्धनों के शोषण और दरिद्रीकरण के बावजूद के आम लोग धनी वर्ग के साथ एकता का एहसास करते हैं। मार्क्सवादी विमर्श का एक विरोधाभास यह है कि राष्ट्रवाद को पूंजीवादी वर्ग की विचारधारा मानने के बाद भी क्रांतिकारी राजनीति के धरातल पर कई कम्यूनिस्ट पार्टियों ने राष्ट्रवाद को अपनी गोलबंदी के आधार पर बनाया है। क्रांति के पश्चात समाजवादी समाज की रचना के लिए भी राष्ट्रवादी भावनाओं का इस्तेमाल किया गया है। पश्चिमी और पूर्वी राष्ट्रवादों की तुलना करने के दौरान कुछ विद्वानों ने पूर्वी राष्ट्रवाद को पश्चिमी राष्ट्रवाद के स्वस्थ मूल्य की कमी का शिकार बताया है। कुछ विद्वान पश्चिमी राष्ट्रवाद को राजनीतिक और पूर्वीराष्ट्रवादों की तुलना करने के दौरान कुछ विद्वानों ने पूर्वी राष्ट्रवाद को पश्चिमी राष्ट्रवाद के स्वस्थ मूल्यों की कमी का शिकार बताया है। कुछ विद्वान पश्चिमी राष्ट्रवाद को राजनीतिक और पूर्वी राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक की श्रेणी में रखते हैं और साहित्य में यही श्रेणी प्रगतिवाद से ही संबंधित है।

प्रगति का अर्थ पहले जान लेना आवश्यक है। प्रगति शब्द का अर्थ है 'आगे बढ़ना' उन्नति। प्रगतिवाद है समाज, साहित्य आदि की निरंतर उन्नति पर जोर देने का सिद्धांत। साहित्य के संदर्भ में यह 'साहित्य का एक आधुनिक सिद्धांत जिसका लक्ष्य जनवादी को संपादित कर मार्क्सवाद सामाजिक यथार्थवादी के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आंदोलन है, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी। प्रगतिवाद का उद्देश्य था साहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद के प्रतिष्ठित करना, जो छायावाद के पतनोन्मुख काल की विपत्तियों को नष्ट करके एक नये साहित्य और नये मानव की स्थापना करे और उस सामाजिक सत्य को उनके विभिन्न स्तरों को साहित्य में प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे। वर्ग-संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा और उस संदर्भ में नये मानव, नये हीरों की कल्पना इस साहित्य का उद्देश्य था। इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुई थी।

प्रगतिवादी साहित्य की मूलधारा कार्लमार्क्स (1818-1883 ई0) की विचारधारा है। इस विचारधारा को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है-

द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद - मार्क्स के अनुसार इस जगत की उत्पत्ति एवं भौतिक शक्तियों के इस संघर्ष से होता है। दो वस्तुओं एवं शक्तियों के इस संघर्ष से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति होती है और यह क्रम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इस प्रकार इस विकास-क्रम के योग्यता की सत्ता बनी रहती है। मार्क्ससृष्टि की उत्पत्ति के पीछे किसी आध्यात्मिक शक्ति को स्वीकार नहीं करता है।

मूल्य वृद्धि का सिद्धांत - मार्क्स ने किसी वस्तु के विकास के लिए चार अंगों का उल्लेख किया है- मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य वृद्धि। इस प्रक्रिया में पूंजीपति द्वारा मूल-पदार्थ और मशीनें जुटाई जाती हैं, जिन पर उनका व्यय होता है। सामाजिक आवश्यकता के अनुसार श्रमिक-वर्ग अधिकाधिक परिश्रम से अधिकाधिक मात्र में वस्तु उत्पादन करता है। इस उत्पादन-कर्म में बलिदान तो होता है। श्रमिक के श्रम पर उसका अधिकार था। कार्ल मार्क्स के अनुसार, किसान और मजदूर शोषित हैं और मालिक, जमींदार और पूंजीपति शोषक हैं।

अर्थ व्यवस्थानुसार विश्व सभ्यता की व्याख्या- मार्क्स ने विश्व-मानवता को दो वर्गों में विभाजित किया है-शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। वर्ग, जाति धर्म, देश एवं सम्प्रदायगत भेद उन्हें मान्य नहीं है, उन्होंने विश्व-सभ्यता के इतिहास को चार युगों में बांटा है- पहला युग दास प्रथा का युग था जबकि श्रमिक की सब वस्तुओं पर उसके स्वामी का एकमात्र अधिकार था। दूसरा, सामन्ती प्रथा का युग है जिनमें श्रमिक की व्यक्तिगत बातों में वो स्वतंत्रता मिल गई है किन्तु बाकी सब कुछ पूर्ववत बना रहा। तीसरा पूंजीवादी व्यवस्था का युग आया जिसमें मजदूर के व्यक्तित्व और उसके श्रम पर तो उसका अधिकार हो गया, किन्तु उत्पादन और लाभ पर पूंजीपति का अधिकार बना रहा। चौथा है साम्यवादी व्यवस्था का युग जिसमें मजदूरों द्वारा

उत्पादन के समस्त उपकरणों पर नियंत्रण होगा और प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम के अनुरूप ही नल मिलेगा। कार्ल मार्क्स साम्यवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा करना चाहते थे।

हमारे राष्ट्रीय आंदोलनों का लक्ष्य जहाँ भारत को अंग्रेजों की राजनीतिक दासता से मुक्त करना था, वहाँ हर प्रकार के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण, भेदभाव और अन्याय का अंत करके शोषण विहीन प्रजातन्त्र की प्रतिष्ठा करना भी था और इस दिशा में आज भी राष्ट्रवादी नेता प्रयत्नशील हैं। 1936 का वर्ष हिंदी-साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण वर्ष है। इस समय छायावाद पूर्ण उत्कर्ष के साथ हास की प्रक्रिया की ओर अग्रसर होने लगा था। व्यक्तिवाद की जो व्यापक-चेतना लोक संग्रह, आशा और उल्लास का स्वर, प्रसाद, महादेवी, निराला और पंत में मिलता है। सन् 1936ई0 में ही प्रेमचंद की अध्यक्षता में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की गई।

प्रगतिवादी कविता कुछ मुख्य बिन्दुओं पर स्वयं को राष्ट्रवाद से सदैव जोड़ लेती है-

रूढ़ि विरोध - प्रगतिवादी साहित्यकार ईश्वर को सृष्टि का कर्ता न मानकर द्वन्द्व को सृष्टि के विकास का कारण स्वीकार करता है। इसे ईश्वर सत्ता, धर्म, स्वर्ग, नरक, कर्मकाण्ड से कोई अभिप्राय: नहीं है। उसके लिए मंदिर, मस्जिद, गीता, कुरान कोई महत्व नहीं रखते हैं

'भ्रात का यह अतिरंजित इतिहास?

व्यर्थ के गौरव गान।'

शोषितों का करुणगान - निर्मम शोषण के चक्की में पिसने वाले शोषित वर्ग मजदूरों, किसानों, पीड़ितों की दशा की प्रगतिवादी कलाकार सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करते हैं। मजदूर सुख के सब उपकरणों का स्रष्टा है और वही स्वयं उससे वंचित है -

ओ मजदूर! ओ मजदूर !

तू सब चीजों का कर्ता, तू ही सब चीजों से दूर,

... इस खलवत का खाजिन तू है, तू चाहे तो पल में कर दे,

इस दुनिया को चकनाचूर !

शोषकों के प्रति घृणा और रोष - इस संसार में केवल दो ही जातियाँ हैं - शोषक और शोषित। शोषकवर्ग - व्यापारी, जमींदार, उद्योगपति-प्रारब्ध के नाम पर पूँजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है और जब तक यह पूँजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक शोषण का अंत असंभव है। प्रगतिवादी राष्ट्र के विकास के हित में इसे हानि व क्षति के रूप में देखते हुए ऐसे समाज को नष्ट कर देना चाहते हैं -

'श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।

माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।

युवती के लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं।

मालिक जब तेल फूलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं,

पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण।' - दिनकर जी

क्रांति की भावना - साम्यवादी और राष्ट्रवाद की प्रतिष्ठा के लिए सामंतवादी परम्पराओं का समूल नाश आवश्यक है केवल परम्परा ही नहीं अपितु व्यक्ति को भी परिवर्तित करने की आवश्यकता है। जिनसे राष्ट्र में पनपी जीर्ण शीर्ण रूढ़ियाँ, परम्पराएं सदैव के लिए लुप्त हो जाए -

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं,

जिससे उथल-पुथल मच जावे।- नवीन

मानवतावाद - प्रगतिवादी कवियों के दो समुदाय हैं - एक तो अपनी मातृभूमि के लिए और दूसरा समस्त मानवता के उद्धार के लिए। उसे संसार के सब पीड़ित लोगों से प्यार व सहानुभूति है। उसे संसार के किसी भी कोने में होने वाले अत्याचार के विरुद्ध रोष और लोगों के प्रति सहानुभूति और प्यार है।

'नहीं छोड़ सकते रे यदि जन

देश राष्ट्र राज्यों के हित नित्य युद्ध करना। - पन्त

'जाने जब तक घाव भरेंगे इस घायल मानवता के।' - नरेन्द्र शर्मा

नारी चित्रण - मजदूर और किसान की तरह नारी थी शोषित और मस्त थी वह समाज में अधिक शोषित है क्योंकि वह शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, व्यक्तित्व संबंधी सभी शोषणों का शिकार थी। वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व खोकर पुरुष की वासना-तृप्ति का उपकरण बन चुकी थी -

'योन नही है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित।

उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित।' - पन्त

सामाजिक जीवन का यथार्थपूर्ण चित्रण - निम्नवर्ग के जीवन को इसी काव्य में स्थान प्राप्त हुआ। वर्तमान वैज्ञानिक युग में जहाँ देश को हर ओर तरक्की प्राप्त हो रही थी वही कुछ जनता भूख से बेहाल थी। यही तत्कालीन राष्ट्र की सच्चाई थी। जीवन में अनाचार, भूख की पुकार ने मानव जीवन को पीड़ित कर दिया था-

‘यह तो मानव लोक नहीं हैं, यह है नरक अपरिचित।’ - पंत

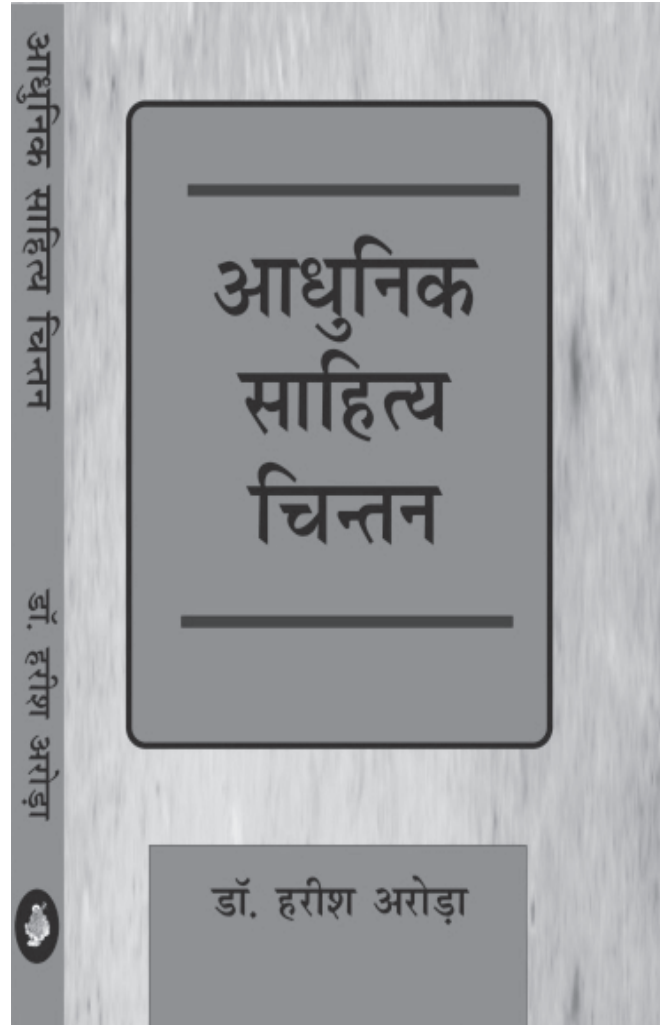
सामयिक समस्याओं का चित्रण - प्रगतिवाद राष्ट्रवाद से तभी जुड़ा है जब वह सभी पहलुओं पर बारीकी से ध्यान देता है। देश और विदेश की समस्याएं उसे और सजग व कर्तव्यनिष्ठ बनाती हैं। उनके लिए विश्व-संस्कृति और मानवतावाद की प्रतिष्ठा करने के लिए आवश्यक है। बंगाल का अकाल, भारत विभाजन, कश्मीर समस्या, महंगाई, दरिद्रता, बेकारी, चरित्रहीनता सभी विषयों पर बात करने को तैयार थे।

अतः इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। रूढ़िवाद जड़ता और परंपरा से राष्ट्र को मुक्त कराने की आवश्यकता थी। देश की सामाजिक-आर्थिक अवनति को पहचानकर उसे दूर करने पर बल देने का कार्य किया। पंत जी रूपाभ के संपादकीय में लिखते हैं, ‘इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं अतः इस युग की कविता स्वप्नों से नहीं पल सकती, उसकी जड़ों को पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर आश्रय लेना पड़ा है। राष्ट्रवाद को तभी प्रगति ने पल्लवित व पोषित किया।’

संदर्भ-ग्रंथ

1. मार्क्स सिद्धांत
2. प्रगतिवादी विकास
3. रूपाभ पत्रिका

डॉ. हरीश अरोड़ा की ‘युवा साहित्य चेतना मण्डल’ से प्रकाशित पुस्तक



उत्तर मध्यकालीन साहित्य में राष्ट्रवाद

डॉ० सरिता

शिवाजी कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला भाग पूर्व मध्यकाल एवं दूसरा भाग उत्तर मध्यकाल के रूप में जाना जाता है। उत्तर मध्यकाल पर अगर हम दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि इस काल में मुख्य रूप से शृंगारिक साहित्य ही लिखा गया। उत्तर मध्यकाल का परिवेश बदल रहा था। अधिकतर हिन्दू राजा प्रायः मुस्लिम शासकों कि अधीनता स्वीकार कर चुके थे। इस काल का अभिजात्य वर्ग वैभव-विलास कि ओर मुड़ रहा था। परन्तु सुरा और सुन्दरी में डूबे हुए इस काल में रीतिकालीन काव्य केवल नारी केन्द्रित, शृंगार केन्द्रित काव्य नहीं है। इस काल कि कविता में जीवन, समाज, राष्ट्रीयता, नैतिकता, इतिहास कला से भरपूर खजाना भी है। आवश्यकता है दुराग्रही दृष्टि को छोड़कर उसे सही दृष्टि से जांचने-परखने की।

उत्तर मध्यकाल साहित्य में शृंगारिक साहित्य के साथ-साथ भक्ति, नीति एवं वीरता का साहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। यद्यपि रीतिकाल में अधिकांश हिन्दू राजाओं ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी फिर भी कई राजा ऐसे थे जो मुगलों से टक्कर ले रहे थे और हताश निराश जनता के लिए रौशनी कि उम्मीद बने हुए थे। रीतिकाल में कई कवि ऐसे हैं जिन्होंने इस काल कि राष्ट्रीय चेतना को अपने काव्य के माध्यम से प्रतिध्वनित किया है। उत्तर मध्यकाल में ये कवी विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

‘राष्ट्र’ शब्द हमें किसी देश कि राजनैतिक एकता का बोध कराता है। श्री नर्मदोश्वरप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है – “राष्ट्र के लिए एक निश्चित भूखण्ड का होना अनिवार्य है, जिसके आधार पर वह अपने राजनैतिक अस्तित्व का बोध कराता है, उसके अपने आंतरिक लगाव का अनुभव कराता है, इसी को केंद्र मानकर भाषा, धर्म, संस्कृति, आर्थिक-सामाजिक और शास्त्रीय व्यवस्था का राष्ट्रीय स्तर निर्माण होता है। इन सबके मूल में एकीकरण कि भावना प्रधान होती है। इस प्रकार प्राकृतिक भौगोलिक, एक इतिहास, एक भाषा, समान साहित्य और संस्कृति एवं समान मैत्री अथवा शत्रुता इन पाँचों सिद्धांतों पर एक मत रहने कि इच्छा से संगठित जनसमूह को राष्ट्र कहते हैं।”

अपने देश के प्रति अनुराग ही राष्ट्रीयता का मूल है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता कि भावना बाहरी आक्रमणों के फलस्वरूप पनपीछ इन आक्रमणों के फलस्वरूप सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में जो प्रतिक्रिया हुई उसका उद्देश्य केवल राष्ट्रीय भावना कि सुरक्षा मात्र था। उत्तरमध्यकाल कि अगर हम बात करें तो पाते हैं कि इस काल में कई ऐसे कवि हुए जैसे भूषण, जोधराज, मानकवि, सूडान जिन्होंने ऐसे वीर पुरुषों को अपने काव्य नायक बनाया जिन्होंने मुगलों से टक्कर ली और हताश-निराश जनता में उत्साह का संचार किया।

भूषण की अगर हम बात करें तो इनका काव्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। इन्होंने अपनी संस्कृति और परम्परा के प्रति दृढ़ आस्था रखने वाले ऐसे जननायक की वीरता का वर्णन अपनी कविता के माध्यम से किया जिन्होंने मुगलों के अत्याचारों के विरुद्ध शंखनाद किया था। शिवाजी ने मुगलों के अत्याचारों को थामने में बहुत रोक लगाई थी। भूषण कहते हैं कि राम और कृष्ण ने धर्म की रक्षा के लिए जो काम किया था वही छत्रपति शिवाजी भी कर रहे हैं। राम ने जिस तरह रावण से संघर्ष किया और कृष्ण ने जिस तरह कंस से संघर्ष किया उसी प्रकार शिवाजी ने औरंगजेब से संघर्ष किया –

“दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबो कौ,
भयौ नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषण भनत त्यों ही रावन के मारिबे कौ
रामचन्द्र भयौ रघुकुल-सरदार है।
कंस के कुटिल बल-बंसन विंधसिबे कौ,
भयौ जदुराय वासुदेव को कुमार है।

पृथ्वी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छने के मारिबे कौं तेरो अवतार है।”²

शिवाजी ने विदेशी शक्तियों के इरादों को भांप लिया था। जब भी इन्हें मौका मिला इन्होंने लोहों के चने चबवाए। विदेशी लोग शिवाजी से बहुत आतंकित रहते थे -

“तेरी धाक ही ते नित हवसी फिरंगी औ’
बिलपती बिलंडे करै बारिकी- बिहरनो।
भूषनभनत बीजापुर भागनेर दिल्ली।
तेरे वौर भयौ उमरावन को मरनो।”³

तत्कालीन समय में मुगल बादशाह हिन्दू राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर रहे थे। बातचीत के माध्यम से अगर ऐसा सम्भव नहीं हो पाटा था तो युद्ध, होता था। लेकिन जोधराज कृत ‘हम्मीर रासो’ में ऐसे वीर राजा का वर्णन मिलता है जो मुख्य बादशाह के फरमान से तनिक भी नहीं घबराते और बादशाह के दूत को कहते हैं -

“दूजा हजरति का लिख्या, बाँचि राव फरमान।
बार-बार क्यों लिखत है, तजुँ न हठ कि बान।।
पच्छिम सूरज उगवैं, उलटि गंग बह नीर।
कहो दूत पातिसाह सों, तो हठ न तजै हम्मीर।”⁴

हम्मीरदेव अलाउद्दीन के दूसरे पत्र को पढ़कर कहते हैं कि क्यों बार-बार पत्र लिख रहे हो मैं अपनी हठ छोड़ने वाला नहीं हूँ। चाहे सूरज पूरब की बजाय पश्चिम दिशा से निकले या फिर गंगा नदी का जल विपरीत दिशा में बहने लगे तो भी हे दूत तुम अल्लाउद्दीन बादशाह को बतला दो कि यह हम्मीर अपनी हठ छोड़ने वाला नहीं हूँ।

मुगल शासकों के क्रूर रवैये एवं अन्य आक्रमणकारियों ने उस समय के मानचित्र को काफी तितर-बितर कर रखा था। इस प्रकार विदेशी शासकों के प्रति विद्रोह का स्वर रीति-भिन्न कवियों को कि राष्ट्रीय चेतना को दर्शाता है। कवि ‘सूर्यमल्ल’ कृत ‘वीरसतसई’ में अपनी मातृभूमि अपर किसी को भी अधिकार न करने देने कि शिक्षा एक माँ अपने बेटे को दे रही है -

“इला न देगी आपणी, हालरियाँ हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माप।”⁵

यह माँ अपने पुत्र को पालने में झुलाती हुई उसे लोरी सुनाती हुई दुलारती हुई पालने में ही सिखाती है कि अपनी भूमि किसी को नहीं देनी चाहिए। यदि ऐसा समय आ भी जाय तो रणक्षेत्र में जान गंवा देने में इस माँ की बड़ाई समझना। इस तरह का वर्णन अपने राष्ट्र के पार्टी भक्ति, सम्मान, प्रेम की उच्चता को दर्शाता है। ऐसी माँ जो अपने पुत्र को मातृभूमि पर प्राण न्यौछावर करने की शिक्षा दे रही है। अपने आप में देशभक्ति का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत करती है।

सत्रहवीं शताब्दी में छत्रपति शिवाजी ने मुगल सत्ता को विरोध आरम्भ किया। संघर्ष की इस कथा को इस काल के वीर कवियों ने अपने काव्यों में अपने चरित्रनायकों को आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। कवि खुद भी इन युद्धों में हिस्सा लेते थे इसलिए इन संघर्षों का आँखों देखा वर्णन उन्होंने अपने काव्य में किया है। वीरों को जोश उत्साह दिलाने के लिए उनके वेश, इतिहास आदि का वर्णन भी इन कवियों ने किया है। इस काल में हिन्दू स्वयं अपने ही देश में उपेक्षित सा हो गया। अभिजात्य वर्ग के अंतर्गत प्रमुखतः विदेशी मुसलमान ही आते थे। इसलिए इन कवियों ने हिन्दुत्व का उदघोष किया है। ये कवि जाति पर होने वाले अत्याचार और उत्पीड़न के प्रति अत्यंत सजग थे। इन्होंने अपने चरित्रनायक को हिन्दुत्व का रक्षक घोषित किया है। ये कवि वास्तविकता के प्रति अधिक संवेदनशील है। ‘राजविलास’ में महाराज राजसिंह को हिन्दुत्व का रक्षक और नेता कहा गया है। हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा करते हुए यवनों और मुसलमानों का संहार करने वाले हिन्दू राजा की प्रशंसा यहाँ की गई है -

“जय हिन्दू धनी यवने सहिं जीवन मारन तू ही यु मलेच्छ मही
अवतार तू ही इल भार उतारनते कर खग्ग प्रयान कही
जगते यु नेद ज्यौं जगनायक बंस विभूषन बीर बरं।”⁶

शाशिप्रभा प्रसाद के अनुसार - “पराजित जाति के वीर काव्य का मूल स्वर प्रायः प्रतिरोध की भावना का हुआ करता है। आलोच्य काल के वीर कवियों में हमें यह बात दृष्टिगत होती है। आलोच्यकालीन वीर कवियों ने प्रायः कोई न कोई ऐसा चरित्र नायक चुन लिया है जिसे वे हिन्दू जाति और हिन्दुत्व का रक्षक मानकर उसका गुणगान करते हैं। स्वभावतः उनके काव्य में उनके चरित्र नायक से सम्बद्ध प्रदेश की सामाजिक अवस्था और विभाग का चित्र राजा की कीर्ति के वर्णन के साथ आ जाना स्वाभाविक था।”⁷

कविवर सूर्यमल्ल ने ‘वीर सतसई’ में औपनिवेशिक दासता के विरोध को वाणी प्रदान कि है। औपनिवेशिक दासता के

प्रतिरोध हेतु योद्धा वर्ग में सुषुप्त शौर्य को जाग्रत करने वाले सूर्यमल्ल ने मातृशक्ति को अपनी काव्यांजलि अर्पित की है-

“ हूँ बलिहारी राणियां, थाल बजानै दीह
वीर जमी राजे जणै, सांकल हीहा सीहा।”⁸

अर्थात् मैं उन रानियों के थाल बजाए जाने वाले दिन अर्थात् ‘पुत्र जन्मोत्सव’ पर बलिहारी हूँ जो शृंखलाओं (दासता की) को तोड़ फेंकनेवाले सिंहों के समान वीरों को जन्म देती है।

कवि गोरेलाल ने तत्कालीन मुगल शासकों के अत्याचारों का ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्यपरक वर्णन किया है। उन्होंने अपने देश और जाति के प्रति सजगता का परिचय देते हुए औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता और उसके द्वारा हिन्दू तीर्थ स्थानों पर लगाये गये जजिया जैसे करो, वेद आदि ग्रंथों के विध्वंस, मंदिरों के विनाश आदि अत्याचारों का उल्लेख किया है-

“जबते साह तखत पर बैठे, तबतै हिन्दुन सौं उर एंठें
महँगे कर तीरथाने लगाए, बेद दिवाले निदर दसर
घर घर बाँधि जजिया लीने, अपने मन भाए सब कीने।”

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राज्याश्रय में रहते हुए भी कवियों की कविता में देश के प्रति राष्ट्रभक्ति का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। समाज के प्रत्येक पक्ष को देखकर समझकर अपने काव्य में वर्णित किया है। मुगल सत्ता के अत्याचारों के प्रति आक्रोश ओर उससे मुक्ति पाने की छटपटाहट इन कविता में दिखाई देती है। इन कवियों ने शोशित उत्पीड़ित हिन्दुओं का उद्धार करने वाले महापुरुषों शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, छत्रसाल, महाराजा राजसिंह, सुजान सिंह आदि को अपनी काव्य रचनाओं का नायक बनाकर निराश जनता में उत्साह का संचार करते हुए राष्ट्रीयता की भावना जगाई।

संदर्भ

1. राष्ट्र की उन्नति ओर भारतीय राष्ट्रीयता - श्री नर्मदोश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, त्रिपथगा, जनवरी 1962, पृष्ठ - 25
2. भूषण, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छंद 395
3. भूषण, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छंद 454
4. हम्मीर रासो, सम्पादक श्यामसुन्दरदास, छंद 325, पृष्ठ- 57
5. वीर सतसई, सम्पादक शम्भुसिंह मनोहर, छंद 234, पृष्ठ 257
6. राजविलास, सम्पादक मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ 71
7. शशिप्रभा प्रसाद रीति-कालीन हिंदी कविता में समाज चित्रण, पृष्ठ 73
8. मधुनती (अक्टूबर 2006) पृष्ठ 42

डॉ. अम्बेडकर की पत्रकारिता और राष्ट्रवाद

डॉ. सुमन देवी
असिस्टेंट प्रोफेसर

डॉ० भीमराव अम्बेडकर सही अर्थों में एक बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनका लालन पालन कड़े अनुशासन के वातावरण में होने कारण वे बहुत ही संयमी एवं अनुशासित व्यक्ति थे। चूंकि अस्पृश्य परिवार में जन्म लेने के कारण जीवन में न जाने कितनी बार धार्मिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं का सामना करना पड़ा। जीवन के प्रारम्भ में जाति सूचक एवं अपमान जनक बातों के तीर से व्याकुल होकर सनातन हिन्दु धर्म से मोह भंग होने के कारण उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया।

डॉ० अम्बेडकर ने अपमानों एवं तिरस्कारों से विचलित हुए बिना अपने आप को राष्ट्र की सेवा में समर्पित कर दिया। अपने एवं अपने समाज के सम्मान के साथ-साथ राष्ट्र के सम्मान के प्रति हरदम सचेत रहे जिस कारण आज वो भारत रत्न के रूप में सुशोभित हो रहे हैं। आज सारा देश डॉ० अम्बेडकर को शत-शत नमन करता है और स्मरण करता है, लेकिन क्या ये उनकी परिपूर्णता है? शायद नहीं। आमतौर पर शोधरत्न विद्यार्थी, शिक्षाविद एवं बुद्धिजीवियों ने और खासतौर पर दलितों ने उनके कद को एक दलित नेता तक सीमित कर दिया है कुछ प्रगतिशील बुद्धिजीवी हद से हद उन्हे भारतीय संविधान का मुख्य रचनाकार मानते हैं, इसमें भी उन्हे कुछ झिझक है। व्यक्ति, जाति, हिन्दू सामाजिक ढाँचा, सामाजिक न्याय, हिन्दू महिलाओं, की समस्याओं और भारतीय अल्पसंख्यकों को समझने में उनके योगदान के अलावा देश तथा राष्ट्र निर्माण के संबंध में उनके विचारों में गहनता से अध्ययन की आवश्यकता है।

जब हम राष्ट्र और राष्ट्र निर्माण के संबंध में डॉ० अम्बेडकर के विचारों को देखते हैं तो पहली बात यह सामने आती है कि वह भारत को एक राष्ट्र नहीं, निर्माणाधीन राष्ट्र के रूप में देखते थे। 1930 में दलितों के लिए अलग सीटों के प्रावधान के बारे में महात्मा गांधी के साथ छिड़ी बहस में उन्होंने यह मत साफ कर दिया था। डॉ० अम्बेडकर ने कहा था कि वास्तव में भारतीयों का कोई देश नहीं है। एक बार फिर 26 नवम्बर 1949 को जब सदन स्वतंत्र भारत के संविधान को पारित करने जा रहा था तो उन्होंने अपनी राय जाहिर की थी कि हम एक देश हैं, यह सोच बड़ा भुलावा है। उन्होंने आश्चर्य जताया कि हजारों जातियों में बंटे लोग एक राष्ट्र का हिस्सा कैसे हो सकते हैं? जातियाँ राष्ट्रीयता विरोधी होती हैं, एक तो वे सामाजिक जीवन में भेद-भाव को बढ़ावा देती हैं। दूसरे विभिन्न समूहों में ईर्ष्या एवं विलगाव पैदा करती हैं। अगर हम राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो हमें इन कठिनाईयों को दूर करना होगा। भाई चारे की बात तभी हो सकती है जब राष्ट्र विद्यमान हो। इससे भी बढ़कर डॉ० अम्बेडकर ने यह बहस छेड़ी की जाति, भाषा और स्थान के बूते ही राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार राष्ट्र एक जीती जागती आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धान्त – एक भूत में है तथा दूसरा वर्तमान में। एक के पास खुशनुमा यादों की विरासत है तो दूसरे की मात्र सम्मति साथ-साथ रहने की इच्छा अविभाजित धरोहर, जिससे वंचित कर दिया गया, को सहेज कर रखने की इच्छा शक्ति व्यक्ति की तरह राष्ट्र भी प्रयास, बलिदान और आस्था के लम्बे भूतकाल की तरह है, शौर्य से भरा भूत, महान व्यक्ति, गौरव ये सब सामाजिक पूंजी का निर्माण करते हैं और राष्ट्रीय विचार की आधारशिला बनते हैं।

डॉ० अम्बेडकर लोकतांत्रिक भारत के साथ लोकतांत्रिक समाज चाहते थे, जिसमें कि स्वतंत्रता, समता, बंधुता, जीवन के अभिन्न अंग हो। वे ऐसे राष्ट्र का निर्माण नहीं चाहते थे, जिसमें स्वतंत्रता तो हो लेकिन आपसी भाईचारा, समता एवं बंधुता न हो। महात्मा गांधी और देश के अन्य नेता, देश में स्वतंत्रता चाहते थे इसके अलावा कुछ नहीं जिसकी कीमत हमको अपना देश बांट का चुकानी पड़ी। डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि समाजवाद में समता का उच्च स्थान होता है, तानाशाही में समता व बंधुता उसके नीचे रहते हैं। पूंजीवाद में स्वतंत्रता ऊपर समता नीचे रहती है। लोकतांत्रिक समाज में राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विषमता का अन्त होता है। इसका अंत भी दलित व पिछड़े समाज की अपने को छोटा समझने की भावना का अन्त होता है। यही कारण है कि डॉ० अम्बेडकर प्रजातंत्र के साथ-साथ आर्थिक प्रजातंत्र भी चाहते थे, जहां हर हाथ को अर्थ की प्राप्ति हो, और राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक बंधुत्वमय एकता भाव हो।

मुसलमानों को आखिरी बार समझाते हुए डॉ० अम्बेडकर ने कहा था कि “वे पाकिस्तान बनाने के बजाय ‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ की भाँति ‘संयुक्त भारत’ नाम से सुलह समझौते का फार्मूला निकाल लें। दूसरी तरफ हिन्दुओं से अपील की कि यदि वे वर्णगत आधार का अन्त कर सामाजिक समता के आधार पर संगठित हो जाये तो मुसलमान भी अखण्ड राष्ट्र के निर्माण

में शरीक हो जायेंगे इससे भारत एक समृद्ध राष्ट्र बनेगा।

मानवाधिकारों की बात करता हूँ। मैं सम्पूर्ण भारत में आहिंसात्मक व लोकतांत्रिक आंदोलन प्रारम्भ कर सही रूप में नया इंकलाब लाऊंगा। भारत की स्वतंत्रता के साथ यहाँ लोकतंत्र की स्थापना एवं समाजवाद लाने के लिए उन्होंने पूँजीवादी व जमींदारी प्रथा का विरोध किया। भूमि व उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर जोर इसलिए दिया कि पूँजीपति व जमींदार मजदूरों का शोषण न कर सकें। डॉ० अम्बेडकर ने चन्द लोगो के कब्जे में कैद सत्ता, धन व सम्पत्ति पर बपौती रखने वालों से इन्हे छीनने का अभियान चलाया और कहा “जब तब राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विषमता का अन्त नही कर लूंगा, चैन से नही बैदूँगा।” लोकतंत्र के स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि जाति विहीन व वर्ग विहीन समाज की स्थापना हो’ यह यथार्थ है कि विषमता विद्वेष की जननी है, विद्वेष, विध्वंस को जन्म देता है। ऐसे हालात में जहाँ विषमता पनपती हो राष्ट्र और राष्ट्रीयता के भाव का उदय संभव ही नही है। डॉ० अम्बेडकर ने भारतीय राष्ट्रवाद के उन्नयन के उद्देश्य से इस विषमता की प्रवृत्ति पर व्यापक प्रहार किया।

डॉ० अम्बेडकर हर एक स्थित को अपने देश की जमीनी हकीकत से जोड़कर देखते और मूल्यांकन करते थे चाहे राजनीति का काम हों या समाज का डॉ० अम्बेडकर सदैव राष्ट्र परक रहे। उनका कोई भी कार्य कभी राष्ट्र हित के विरुद्ध नहीं रहा। उन्होंने एक बार कहा था, “अपनी विचारधारा के प्रति मेरी निष्ठा अन्तर्निहित है। अपना यह देश प्रचुर सम्भावनाओं वाला देश है, जिसमें हम एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। परन्तु देश के महान कट्टर नेता इस महान राष्ट्र के निर्माण में अपनी सौ फीसदी महती भूमिका का निर्वाह करे। आगे आपने कहा कि “मैं गांधी और जिन्ना दोनो को ही नापसंद करता हूँ, किन्तु मैं उनसे घृणा नही करता, क्योंकि भारत को मैं बहुत ज्यादा प्यार करता हूँ हर राष्ट्रवादी का यही सच्चा धर्म है। मैं आशा करता हूँ कि कोई दिन आयेगा कि जब मेरे देशवासी यह जानेगे कि देश लोगो से कही बड़ा होता है। अपने देश की संविधान सभा में 25 नवम्बर 1949 में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था, “धर्मों और जातियों के रूप में हमारे पुराने शत्रु तो मौजूद थे ही अब उनके साथ जुड़ रहे हैं अनेक राजनीतिक दल जिनकी भिन्न-भिन्न विरोधी विचारधाराये होगी। क्या भारतीय अपने देश को विचार धारा से बड़ा मानेगे या विचारधारा को ऊपर तरजीह देंगे? मुझे नही मालूम पर इतना तो पक्का है कि यदि राजनीतिक दलो ने अपनी विचारधारा को देश के ऊपर माना तो हमारी स्वतंत्रता न केवल दुबारा खतरे में पड़ जायेगी बल्कि शायद हमेशा के लिए खो जायेगी। हमें सतर्क रहना है ताकि ऐसा कभी न हो पाये। अपने रक्त की आखिरी बूँद तक हमें अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए।”

‘एनिहिलेशन ऑफ कास्ट’ नामक अपनी पुस्तक में डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर ने लिखा है, “मैं निस्संशय यह कह सकता हूँ कि समाज व्यवस्था को बदले बगैर प्रगति संभव नहीं है। इसे किये बगैर समाज रक्षा अथवा अभिक्रमण के लिये भी तैयार नहीं किया जा सकता। जाति प्रथा की नींव पर कुछ भी निर्माण नहीं हो सकता। न तो राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। और न ही नैतिकता का। जाति प्रथा की नींव पर जो कुछ भी बनाया जायेगा। उसमें दरारे पड़ जायेगी वह कभी भी पूरी नही हो पायेगा।”

डॉ० अम्बेडकर का मत था कि परम्परागत धार्मिक मूल्यों का परित्याग किया जाये और नये विचारों को अपनाया जाये। उन्होंने संविधान में उल्लिखित प्रावधानों में सभी के लिये सम्मान, एकता, स्वतंत्रता, अधिकारों एवं नागरिक अधिकारों पर विशेष जोर दिया। डॉ० अम्बेडकर जीवन के हर क्षेत्र, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक में लोकतंत्र के पक्षधर थे। उनके अनुसार सामाजिक न्याय का अर्थ-ज्यादा से ज्यादा लोगो को अधिक से अधिक खुशियाँ मिलना था। उन्होंने लोकतंत्र की अपनी अवधारणा में हर व्यक्ति की गरिमा को बहुत महत्व दिया है। हर एक व्यक्ति स्वयं में विलक्षण होता है।

डॉ० अम्बेडकर केन्द्र को और अधिक शक्तियाँ प्रदान कर देश की एकता एवं अखण्डता के हित में उसे मजबूत देखना चाहते थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि भारतीय समाज न केवल जाति तथा वर्गों में बंटा हुआ है बल्कि इसमें क्षेत्रीय, भाषायी, परम्परागत, संस्कृति और विचारों की भी विभिन्नतायें हैं। इसलिये प्रादेशिक एकता और प्रशासनिक अनुशासन के लिये एक प्रबल केन्द्र अत्यंत आवश्यक है।

डॉ० अम्बेडकर का राष्ट्रवाद दलितों और निर्धनों तथा देश-प्रेम के उद्धार के साथ प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने उन्हें समानता और नागरिक अधिकार दिलाने के लिये संघर्ष किया राष्ट्रीयता संबंधी उनके विचार केवल गुलाम देशों की मुक्ति तक ही सीमित नही है, वरन् वह प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता चाहते हैं। उनके अनुसार समता के बिना स्वतंत्रता अधूरा लोकतंत्र है।

डॉ० अम्बेडकर एक सच्चे देश भक्त एवं राष्ट्रवादी थे आप के दिमाग में हर वक्त भारत देश की उन्नति कैसे हो यही विचार कौंधते रहते थे लेकिन जाति प्रथम से परेशान रहते थे। उनके विचारों में नये भारत की कल्पना में भूत एवं वर्तमान का एक सुन्दर समन्वय मिलता है। उन्होंने भारत की बौद्ध संस्कृति की धरोहर को संभाला और संविधान की भूमिका में निहित मूल्यों की प्राप्ति पर बल दिया। आधुनिक प्रगति से लाभ उठाया जाना चाहिये जाना चाहिये। डॉ० साहब ने अतिवादी दृष्टिकोण को पसंद नही किया। अतीत में जो मूल्य हीन है उसे त्याग दिया जाये और जो आज प्रासंगिक है उसे ग्रहण किया जाये। वह चाहते थे कि जाति विहीन की स्थापना हो जिसमें कौमी एकता, राष्ट्रीय भावना, वैयक्तिक, स्वतंत्रता, सामाजिक समता और धार्मिक

सहिष्णुता जैसे आदर्शों का अनुसरण किया जाये। किसी के साथ छुआ-छूत तथा ऊँच-नीच का व्यवहार न हो और सभी नागरिक निर्भय होकर शान्ति एवं सद्भावना पूर्ण जीवन यापन करें। 'बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय' के बौद्ध सिद्धान्त को वह व्यावहारिक बनाना चाहते थे। डॉ० अम्बेडकर की प्रत्येक रचना तथा भाषण में दीन हीन, दलित-पीडित, लोगों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। डॉ० अम्बेडकर ने अपने मानववादी दर्शन में न केवल भारतीय दर्शन, विशेषकर बौद्ध धर्म एवं चिंतन को आधार बनाया अपितु पाश्चात्य विचार धारा को भी ध्यान में रखा। वह धर्म तथा दर्शन के रहस्यवादी पक्षों से दूर रहे और विज्ञान तथा धर्म के उन्हीं पहलुओं पर -ध्यान केन्द्रित किया जिसमें मानव कल्याण संभव है।

निःसंदेह उनका कथन आज भी उतना ही प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है और जितना तब था, क्योंकि बाद में टुकड़े करके और अनेक, परिवर्तनों के साथ जो हिन्दू कोड बिल पास हुआ वह अभी परस्परवाद, अंधविश्वास, कानूनी अज्ञानता, पारिवारिक दबावों आदि के कारण किताबों में ही बंद पड़ा है। उसे क्रियान्वित करने के लिए और उत्कृष्ट परिवर्तन लाने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

संदर्भ

1. जाटव डी० आर०, डॉ० अम्बेडकर : एक प्रखर विद्रोही, ए० बी० डी० पब्लिशर्स, नटराज नगर, जयपुर 2004
2. गुप्ता नीलम, हरिजन से दलित, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन 1994
3. जाटव डी० आर०, राष्ट्रीय आंदोलन में डॉ० अम्बेडकर की भूमिका, जयपुर 1993
4. सिंह रेणुका, शुद्ध मन की ओर, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2000
5. सिंह रघुवीर, डॉ० अम्बेडकर और दलित चेतना, कामना प्रकाशन दिल्ली, 1999

भारतीय पत्रकारिता का मूल चरित्र और राष्ट्रबोध

डॉ. शिखा लखानी

असिस्टेंट प्रोफेसर

जन आंदोलनों को प्रेरणा देने तथा जनमत तैयार करने में पत्रकारिता की प्रमुख भूमिका होती है। पत्रकारिता वस्तुतः जनता की अभिव्यक्ति है। उसे जन कल्याण तथा जनविचारधारा का प्रतिनिधि बनना होता है। पत्रकारिता में वह शक्ति निहित होती है जिससे कि वह समाज को सशक्त नेतृत्व देती हुई निराशा और थके मांटे जीवन में उत्साह तथा विश्वास का सम्बल प्रदान कर सकती है। समाज के रचनात्मक विकास को प्रोत्साहन देते हुए विभिन्न धर्मो-जातियों एवं संस्कृतियों की विकास यात्रा को अंकित करते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक एकता की दिशा में वर्तमान पत्रकारिता विशेष प्रभावी हो सकती है।

पत्रकार कलम का धनी होता है। इस कलम से वह जहाँ निर्माण का आह्वान कर सकता है वहीं विद्रोह की अग्नि भी प्रज्वलित कर सकता है। समाज को विकास के सुनहरे उद्यान में ले जा सकता है तो दूसरी ओर विनाश के गर्त में भी धकेल सकता है। यदि वह राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में योगदान दे सकता है तो चरित्र हनन तथा सनसनीपूर्ण पत्रकारिता में लिप्त होकर नैतिक मूल्यों के समक्ष भी प्रश्न चिह्न लगा सकता है। सस्ती लोकप्रियता एवं व्यावसायिकता के चक्कर में लोकमत की उपेक्षा करते हुए ऐसे पत्रकार समाज को सांस्कृतिक विघटन की ओर भी ले जा सकते हैं। इस प्रकार की विध्वंसात्मक प्रवृत्ति से पत्रकारों को दूर रहकर यह सोचना चाहिए कि पत्रकारिता शिक्षा, नए समाज के विद्यार्थियों और नागरिकों का आधारभूत सांस्कृतिक उपकरण है।

पत्रकारिता-व्यावसाय से जुड़े लोगों के पास विशेष प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। उन्हीं के प्रयासों से जनता यह जान पाती है कि विश्व रंगमंच पर कहां, क्या, कैसे घटित हो रहा है? इस शक्ति के उपयोग से न सिर्फ पत्रकारिता का विकास होता है वरन राष्ट्र का हित भी इसी में निहित है। आजकल अधिकाधिक विज्ञापन पाने की दौड़ से तथा पाठकों को आकर्षित करने की दृष्टि से समाचारों को नाटकीयता के साथ अतिरंजित बना कर प्रस्तुत करने की होड़ बढ़ती जा रही है। तत्काल प्रसिद्धि तथा मान-सम्मान एवं धन की लालसा में व्यर्थ ही काटा बना कर उन्हें प्रस्तुत किया जाने लगा है। अन्वेषणात्मक समाचार अखबार की लोकप्रियता में अवश्य वृद्धि करते हैं। किन्तु यदि ये समाचार व्यक्ति विशेष के चरित्र हनन का साधन बनकर सामाजिक-राजनैतिक जीवन में शुद्धता कायम करने के उद्देश्य से नहीं दिए जाएंगे तो समाज में पत्र व पत्रकारों की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचना स्वाभाविक है। तथ्यों की प्रमाणिकता तथा विश्वसनीयता पत्रकारिता के आवश्यक गुण हैं।

भारतीय पत्रकारिता तथा पत्रकारों के लिए आचार-संहिता बनाने के प्रश्न पर काफी वर्षों से विचार-विमर्श होता रहा है। एक मत के अनुसार प्रेस जगत को स्वयं अपने लिए एक आचार-संहिता का निर्धारण करना चाहिए किन्तु दूसरा मत यह मानता है कि किसी भी प्रकार की आचार-संहिता का निर्माण अप्रत्यक्ष रूप से पत्र-पत्रकारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर नियंत्रण करना है। एक बार नई दिल्ली में राज्यों के सूचना मंत्रियों के सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि प्रेस के लिए एक आचार-संहिता का निर्माण किया जाना चाहिए। यह आचार-संहिता प्रेस स्वयं तैयार करे। इसमें केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें किसी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करेंगी।

नैतिकता के निर्माण की दिशा में सन 1982 में परिषद ने यही महत्वपूर्ण निर्णय लिया कि परिषद विचारित विवादों के अंत में उल्लिखित कारणों, तत्प्रभावी व्यापक सिद्धान्तों और निर्णय आदेशों पर आधारित एक सार संग्रह का निर्माण कर उसे प्रकाशित करें। इस आधार पर परिषद ने 1982 में भारतीय विधि संस्थान के साथ संयुक्त रूप से ऐसा प्रकाशन किया है जिसका नाम है 'पत्रकारिता की आचार संहिता और जन रुचि में उल्लंघन' यह पुस्तक छह भागों में विभाजित है। साम्प्रदायिक लेखन उत्तम का अधिकार आदि शीर्षक में विभाजित इन भागों में परिषद द्वारा विभिन्न शिकायतों पर दिए गए निर्णय तथा उनसे संबंधित सिद्धान्तों को उल्लेखित किया गया है।

अखबार का काम सरकार बनाना या गिराना नहीं बल्कि वास्तविक तथ्यों को सामने लाना है। अखबारों के लिए सरकारों की नीतियों का वास्तविक विश्लेषण जनता के समक्ष रखना चाहिये तथा तर्कों सहित अधिकांशतः यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करना चाहिए कि इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा? उन्हें किसी भी नीति का विरोध, समर्थन या आलोचना करने के पूर्व उसके सामाजिक प्रभाव का गहरा अध्ययन करने के उपरान्त ही उस विषय पर अपनी टीका टिप्पणी और कलम चलाती चाहिए।

आज के इस दौर में देखने को मिलता है कि कुछ समाचार पत्र हमेशा ही सरकार की नीतियों का गुणगान करते रहते हैं तथा कुछ उसके विरोध में कुतर्कों का सहारा लेकर उसकी आलोचना में लगे रहते हैं।

श्री विष्णुदत्त शुक्ल की पुस्तक “पत्रकार कला” में छपी हुई पक्तियाँ आज के इस समय में बड़ी सटीक व सत्य नजर आती हैं कि “संसार के अधिकांश समाचार पत्र धन कमाने और झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करने के काम में उतने ही लगे हुए हैं जितने कि संसार के बहुत से चरित्रहीन व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचार धनवान लोगों द्वारा संचालित होते हैं, इस प्रकार के संचालन या किसी दल की विशेष प्रेरणा से ही उनका निकलना संभव है। अपने संचालकों या अपने दल के विरुद्ध सत्य बात कहना तो बहुत दूर की वस्तु है, उनके पक्ष समर्थन के लिए हर तरह के हथकण्डों से काम लेना वे अपना धर्म समझते हैं। इस काम में तो वे इस बात का विचार रखना भी आवश्यक नहीं समझते कि सत्य क्या है, सत्य उनके लिए ग्रहण करने की वस्तु नहीं है। संसार भर में यही हो रहा है, इन कुछ गिने चुने पत्रों को छोड़कर सब ऐसा कर रहे हैं।

ऐसी स्थिति में अखबारों को भी एक आचार संहिता की आवश्यकता महसूस होने लगी है जिस कारण समाचार पत्र संस्थान से जुड़े व्यक्ति अपने पदों का दुरुपयोग न कर सकें। आज समाचार पत्रों में पत्रकारिता के तमाम मानदण्डों को एक तरफ रखकर तथ्यों को तोड़ मरोड़कर जनता के समक्ष रखा जाने लगा है जिसके कारण जनता की दृष्टि में अखबार अपनी प्रतिष्ठा व गरिमा खोते जा रहे हैं। पत्रकारों की भूमिका संदिग्ध नजर आने लगी है। आज के समय में कुछ ही अखबारों को छोड़कर बचे हुए सभी अखबार इस पक्षाघात की बीमारी से ग्रसित होते साफ नजर आते हैं। अखबार आजकल गुमराह करने वाले शीर्षक का भी बहुतायत में इस्तेमाल करने लगे हैं।

आज पत्रकार किसी भी व्यक्ति के विषय में कुछ भी छाप देते हैं। वे यह नहीं सोचते कि किसी भी व्यक्ति की चारित्रिक हत्या कर रहे हैं। जबकि यह एक ऐसा संगीन अपराध है, जिसकी सजा जितनी भी दी जाए उतनी ही कम है। पत्रकारों को यह भली भाँति हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि आम जनता का अखबार और पत्रकारिता पर अटूट विश्वास होता है। अतः ऐसे समाचार न प्रकाशित करें। जिससे जनता के विश्वास पर चोट पहुँचे। कई बार यह देखने को मिलता है, कि समाचार पत्रों में ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते हैं, जिनसे समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।”

आजकल समाचार पत्र अपराध और अपराधी से घृणा करने के बजाए उन्हें महिमा मंडित करने लगे हैं तथा वह यह भूल गया कि उसके आचरण व नैतिकता के नियमों के विरुद्ध है। समाचार पत्रों के लिए अपराध और अपराधी दोनों के विरुद्ध जोरदार तरीके से घृणा पैदा करना चाहिये। ताकि समाज में अपराध और अपराधी दोनों ही न बढ़ सकें। सामाजिक नियमों को ध्यान में रखकर अखबारों को हमेशा सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए।

आज तक किसी पत्रकार ने समाचार पत्रों के मालिकों के द्वारा हो रहे शोषण के बारे में एक भी खबर प्रकाशित नहीं की है और न ही मालिकों के अनैतिक कार्यों का भण्डाफोड किया है, जबकि समस्त जानकारी होने के बावजूद भी अपने समाचार पत्र में न सही दूसरों के समाचार पत्रों में भी प्रकाशित आज कोई भी व्यक्ति संपादक बन सकता है उसके लिए किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है, जबकि कोई भी व्यक्ति अध्ययन एवं प्रशिक्षण के बिना डॉक्टर, इंजीनियर, एडवोकेट, आर्किटेक्ट नहीं बन सकता है तो फिर पत्रकार और संपादक कैसे बन सकता है?

छोटे-छोटे शहरों में आज पत्रकारों को समाज में दूषित दृष्टि से देखा जाने लगा है। पत्रकारिता व्यवसाय को भी लोगों ने दूषित कर दिया है, बिना पढ़े-लिखे अनुभवहीन व्यक्तियों ने इस व्यवसाय की यह स्थिति बना दी है कि लोग पत्रकार कहलाना भी पसंद नहीं करते हैं। इन पत्रकारों ने सामाजिक दायित्वों का भी निर्वाह नहीं किया है। गंदी भाषा शैली का खुला प्रयोग करना आम बात हो गयी है। आज के अखबार नवीसों ने अपने आप को समाज का ठेकेदार समझना आरंभ कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप समाज और अधिक दूषित होता जा रहा है।

यही कारण है कि आज समाचार पत्र वाले ‘अपराध और अपराधी’ के प्रति घृणा पैदा करने के बदले उन्हें महिमा मंडित करने लगे हैं। छोटे-छोटे अखबार आजकल किसी व्यक्ति विशेष के लिए प्रकाशित किए जाते हैं तथा ये किसी भी व्यक्ति के ऊपर कोई भी दोषारोपण बिना सोचे समझे कर देते हैं।

बात है प्रेस को ऐसे वर्ग के प्रति विशेष ध्यान देना होगा, क्योंकि ऐसे वर्ग के पास सत्ता की शक्ति नहीं है और दूसरी ओर प्रेस अपने आप में आजाद है, जो बिना किसी दबाव के अल्पसंख्यकों की बात को असरदार ढंग से पूरे राष्ट्रवासियों के सामने रख सकता है। पत्रकारिता में ईमानदारी का बना रहना बहुत आवश्यक है पर साथ ही यह बात भी ठीक है कि हर रोज के कार्य में कार्य में ईमानदारी को बनाए रखना कोई आसान बात नहीं है। अच्छा चरित्र बनाए रखना एक तरह से हर रोज संघर्ष जैसा ही होता है। शायद ही कोई ऐसा अन्य व्यावसाय होगा जहाँ हर रोग अलग-अलग संदर्भ के साथ लोगों से तालमेल करना होता हो जितना की पत्रकारिता में।

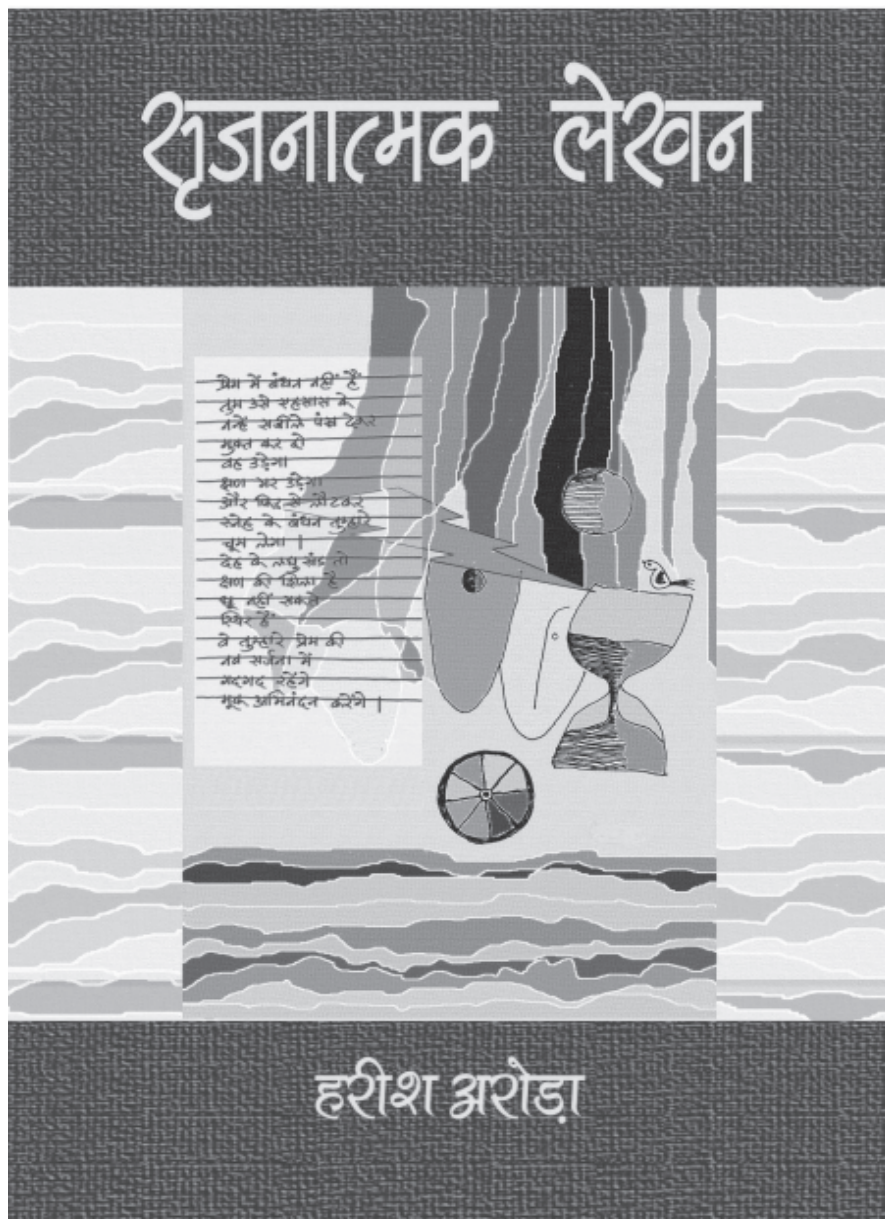
समाचार जगत की एक और नैतिक जिम्मेदारी यह भी है कि उसे समाचार तथा चित्र प्रकाशित करते समय शालीनता बनाए रखनी होगी। कहीं भी और किसी भी स्तर पर छिछलापन नहीं लाना होगा। आज भारत देश की अखंडता बनाए रखना, राष्ट्रीय भावना को मजबूत करना, सामाजिक-आर्थिक बुराइयों को दूर करना, धर्म निरपेक्ष भावना को बल देना, समाज के विभिन्न

लोगों को एक-दूसरे के करीब लाना और क्षेत्रीय भावना को समाप्त करना तथा जनतांत्रिक ढांचे को बरकरार रखना नितान्त आवश्यक है। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति और जनमत मजबूत करने के लिए पत्रकारिता की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

1. ज्ञानेन्द्र रावत, प्रैस : प्रहार और प्रतिशोध श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली 2005
2. डॉ० क्षमा शर्मा, पत्रकारिता और साहित्य श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली 2002
3. डॉ० अर्जुन तिवारी, आधुनिक पत्रकारिता विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1984
4. सुधीर रंजन सिंह, हिन्दी समुदाय और राष्ट्रवाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2009
5. शिवानी किंकर चौबे, भारत में उपनिवेशवाद, स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, अनुवादक मिलिन्द भारद्वाज, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2000
6. एन० सी० पंथ, हिन्दी पत्रकारिता का विकास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008
7. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सूचना समाज, अनामिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2000

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तक



भारतीय राष्ट्रवाद बनाम विश्व

तरुण कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर

अवधारणात्मक दृष्टिकोण से राष्ट्रवाद को भारतीय विचारकों ने अपने-अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है विभिन्न राष्ट्रवादियों द्वारा भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या इस प्रकार की गई है। अरविन्द घोष भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समर्थक थे। वे भारत के हिन्दुत्व के प्राचीन मूल्यों को अधिक महत्व देते थे तथा राष्ट्रनिर्माण के लिए इनकी स्थापना को राष्ट्रवाद का आधार मानते थे। अरविन्द घोष राष्ट्रवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि सनातन धर्म ही राष्ट्रीयता है। अतः अध्यात्म को वे भारतीय राष्ट्रीय एकता का आधार मानते थे। भारतीय संदर्भ में उनके राष्ट्रवाद का अभिप्राय था कि भारतीयों को अपने धर्म में व्याप्त आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना करके नवराष्ट्र का निर्माण करना। अरविन्द घोष के अनुसार – “जिस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सहारे जीवित रहता है, वैसे ही राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से अपने मानसिक, आर्थिक तथा शारीरिक जीवन के लिए सामग्री ग्रहण करके जीवित रहता है।”

अरविन्द के अनुसार राष्ट्रवाद का मूलतत्त्व वह निरन्तर रहने वाली मनोवैज्ञानिक एकता है, जो कि देश की मौलिक एकता से उत्पन्न होती है और यह एक सामान्य आर्थिक जीवन है, जो कि उसकी भौगोलिक एकता पर निर्भर करता है। इस एकता का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है देश की सामान्य संस्कृति। युग युगान्तरों से प्रत्येक राष्ट्र अपना एक विशिष्ट मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण विकसित कर लेता है। भारत की सदैव एक जीवन पद्धति रही है, जिसने उन सब लोगों को प्रभावित किया है जो बाहर से आकर बसे हैं इसलिए भारत में राष्ट्रवाद की भावना प्राचीन काल से रही है। विपिन चन्द्रपाल ने ‘इण्डियन नेशनेलिज्म’ तथा ‘नेशनेलिटी एण्ड एम्पायर’ के माध्यम से राष्ट्रवाद का विवेचन किया। उनके अनुसार राष्ट्रवाद का अपना अवयवी स्वरूप है। वह समस्त जनमानस को अपने अन्तराल में लिये हुए है। राष्ट्र तथा व्यक्ति पृथक नहीं है। एक आध्यात्मिक इकाई के रूप में राष्ट्र ऐतिहासिक धरोहर को अपने साथ लिये हुए निरन्तर गतिमान है। राष्ट्र एक अजर अमर धारण है। वे राष्ट्रवाद की धारणा को हिन्दू-धर्म से संयुक्त कर उसे आध्यात्मिकता के साथ-साथ लौकिक गुणों से भी युक्त मानते हैं।

विपिन चन्द्रपाल के अनुसार राष्ट्र की धारणा मनुष्य के सामाजिक विकास की एक आवश्यक अवस्था है, मानव जाति को संघात्मक अन्तर्राष्ट्रवाद के आदर्श तक पहुंचने के लिये इसमें से होकर गुजरना है। उनके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र का अपना एक निजी व्यक्तित्व होता है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी निजी आत्मा, अपना निजी मानस, तथा अपनी निजी संस्कृति रखता है। इन्हीं के प्रति निष्ठा रखना राष्ट्रवाद है। इस प्रकार विपिन चन्द्र के अनुसार राष्ट्रवाद का लक्ष्य व्यक्ति विशेष का कल्याण करना नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण करना है।

बाल गंगाधर तिलक भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के उन पुरोधा व्यक्तियों के सरताज थे जो मनसा, वाचा, कर्मणा राष्ट्र और केवल राष्ट्र के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो। प्रखर देशभक्ति, स्वदेशी की भावना, सतत् संघर्ष और अन्ततोगत्वा स्वराज्य की प्राप्ति –संक्षेप में यही तिलक के जीवन और दर्शन का मूलमंत्र है। तिलक, अरविन्द एवं विपिन चन्द्र पाल के समान पुनरुत्थानवादी राष्ट्रवादी थे। वह प्राचीन भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म से प्रेरणा लेकर राष्ट्र की सुप्त आत्मा को जगाना चाहते थे।

वैश्वीकरण बनाम राष्ट्रवाद कई दशकों से ये विवाद- ‘एक विश्व एक स्वप्न’ और ‘मेरा देश मेरा गौरव’ हमारे बीच प्रचलन में है। एक ओर राष्ट्र वैश्विक गाँव की भाँति लगने लगे हैं तो दूसरी ओर राष्ट्र अपनी पहचान अपना अस्तित्व बचने के लिए संघर्ष कर रहा है। एक ओर देश अपनी सीमा को खोल रहा है तो कहीं कोई देश अपनी सीमा का विस्तार कर रहा है। संचार क्रान्ति ने गत दशक में विश्व को और भी करीब ला दिया है। परिवहन क्षेत्र का तेजी से विकास ने देशों की दूरी मिटा दी है। दूर देशों की भाषा, संस्कृति, साहित्य, इतिहास हमारे राष्ट्र पर प्रभाव डाल रहे हैं। देश आपस में जुड़ रहे हैं, आपस में एक समानता ढूँढने का प्रयास हर देश कर रहा है और चाहे सांस्कृतिक, आर्थिक या सुरक्षा संबंध के नाम पर सुसंगठित राष्ट्र का गठन हो रहा है। क्या राष्ट्रीयवादी विचारको का विरोध अनायास ही है या कोई बड़े संग्राम की पहल?

देश का आपस में जुड़ने का सबसे बड़ा कारण है संसाधन की कमी और व्यापार व वाणिज्य का विकास। विश्व में कोई ऐसा राष्ट्र नहीं जो की अपने संसाधनों से सम्पूर्ण हो, आर्थिक प्रगति के लिए नए टेक्नोलॉजी का आना जरूरी है ताकि संसाधनों

के उच्चतम तरीके से इस्तेमाल हो और कम से कम हानि हो। कोई देश टेक्नोलॉजी में आगे है तो कोई संसाधन में और इसी लिए ऐसे देश एक दूजे के पूरक है, न तो बिना टेक्नोलॉजी के संसाधन का उपयोग संभव है न ही बिना संसाधन के टेक्नोलॉजी का कोई उपयोग, इस कारण विश्व एक हो रहा है, मलेशिया के रबर अमेरिका जा रहे हैं तो भारत का स्टील जापान, इजराइल के टेक्नोलॉजी से हम मिसाइल बना रहे हैं तो सिंगापुर हमारे राकेट से अपने सैटेलाइट अंतरिक्ष में भेजता है। ये प्रगति फिर आपसी देशों में प्रतियोगिता कराती है और जहाँ प्रतियोगिता है वहाँ विकास की गति और तेज हो जाती है। इस कारण यह जरूरी है कि देश अपनी सीमा के आगे बढ़े और अपने और जगत के विकास के लिए आपस में जुड़े। पर इन्हीं मसलों में मतभेद भी होता है और व्यापार विधिवत रूप से चले इसलिए फिर IMF, WTO जैसे संगठन बनते हैं। समझौते से थोड़ी स्वाधीनता (आर्थिक या मौद्रिक) छिन जाती है पर वह समझौता उस राष्ट्र को भी बचाती है। बड़े-बड़े देश ऐसे संगठनों को अपने निजी हित के दृष्टिगत चलाने में सफल हो जाते हैं।

जब विश्व एक बाजार है तो हम आर्थिक और मौद्रिक स्वाधीनता को बचाने के लिए ऐसे संस्थानों से दूर नहीं रह सकते। छोटे बड़े राष्ट्रों को एक जुट होकर इस वैश्विक बाजार में अपना मत रखकर विश्व को प्रगति की ओर बढ़ाने के लिए अग्रसर रहना ही होगा। और निश्चित रूप से राजनैतिक संप्रभुता पर कोई खतरा नहीं है। आर्थिक संबंधों के दरमियान लोगों के आवागमन बढ़ा इससे न सिर्फ देश एक दूसरे के संस्कृति से रूबरू हुए अपितु भाषा रहन-सहन विचार ने एक दूसरे पर प्रभाव डाला फिर कहीं दो भाषाओं के संगम से उर्दू जन्म लिया तो कहीं दो पहनावे ने इंडो-वेस्टर्न जैसे पहनावे दिए। थिएटर और संगीत में भी मिश्रण हुआ और कई नए सुर बने। राष्ट्रवादी विचारको ने इस अपने संस्कृति पर घात जाना और बड़े पैमानों पर विरोध हुआ और आज भी होता है। न सिर्फ पश्चिम की बल्कि पूर्व की भी संस्कृति हम अपना रहे हैं पश्चिम के पहनावा अगर हम पर हावी हुआ तो पूर्व की 'मार्टिल आर्ट' भी हम बड़े चाव से सीखते हैं। वैश्वीकरण इस संकीर्ण विचारधारा से परे है उसका मत सिर्फ सीमाओं को अदृश्य बनाकर विश्व को जोड़ना है। किसकी संस्कृति महान है? किसकी भाषा? किसकी साहित्य या किसका इतिहास सबसे महान ये सब राष्ट्र ही तय करें। ये राष्ट्र और उसके विचार पर निर्भर करता है और यही राष्ट्रवादी अपनी राष्ट्र की पहचान अपनी अस्मिता को पहचान दिलाने के लिए आक्रामक हो जाते हैं। पाश्चात्यकरण को वे वैश्वीकरण का परिणाम मानते हैं और बड़े पैमाने पर प्रतिरोध होता है फिर वो वस्त्र हो या लिव-इन-रिलेशन इन सब को संस्कार का हनन और संस्कृति का पतन का कारण माना जाता है।

क्या जब उर्दू पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा बनी तो पस्तो, सिंधी बलूची क्या इसे अपना पाए? राष्ट्र लोगों से बनता है लोग ही राष्ट्र की पहचान हैं, भारत जैसे देश में यह बहुत कठिन होगा कि किसी एक वस्त्र, एक भाषा, एक नृत्य या एक इतिहास से लोगों को जाना जाय। भारत में यही विविधता ही हमारी पहचान है। इतिहास ने सबको स्थान दिया और भारत की पहचान उसके सहिष्णु होने में है। इस कारण जापान का जुड़ो या फिर अरबी आयते रूस की राजनैतिक विचार या ब्रिटेन का थेटर ये सब हमारे विविधता को और विविध करने का प्रयास है। और किसी ने रोका नहीं है किसी को ये लोगों के स्वाद लोगों के चयन का मसला है भारत का संविधान उसके नागरिकों को स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार देता है। वैश्वीकरण के कारण ही भारत अपनी पहचान अपनी संस्कृति को और बचा पा रहा है योग जब अंतर्राष्ट्रीय मंच तक पहुँचा तो ही हमें अकस्मात याद आया कि ये हमारी संस्कृति है और धर्म की बाँध तोड़ते हुए ये अब सब सारा राष्ट्र इसकी उपयोगिता को जनता समझती है।

यदि हम राष्ट्रीयता का बोध लिए वैश्विक समाज से अलग थलग हो जाएंगे तो इन समस्याओं से लड़ना बहुत मुश्किल हो जाएगा। वैश्वीकरण एक पहल है विश्व अब मानव विकास की बात करता है प्रकृति और उसके संसाधन को बचाने की बात करता है विश्व तो ये भी कहता है कि बिहार की गरीबी न रहे, हिमालय का अस्तित्व न विलीन हो जाए, हमारे पास शायद इतना धन और इतना संसाधन नहीं है कि हम अकेले लड़ सकें इन वैश्विक उत्पीडनों से। इस कारण अब कहीं न कहीं वैश्वीकरण हमारी जरूरत हो चुकी है। वही राष्ट्र उसके विचारों उसकी मान्यता उसके संस्कृति उसके भाषा उसके राजनीतिक व्यवस्था से जाना जाता है। राष्ट्र को तत्पर रहना चाहिए और हर संभव प्रयत्न करना चाहिए कि अपनी पहचान अपना अस्तित्व को बचते हुए हर क्षेत्र में अभिव्यक्ति करना चाहिए।

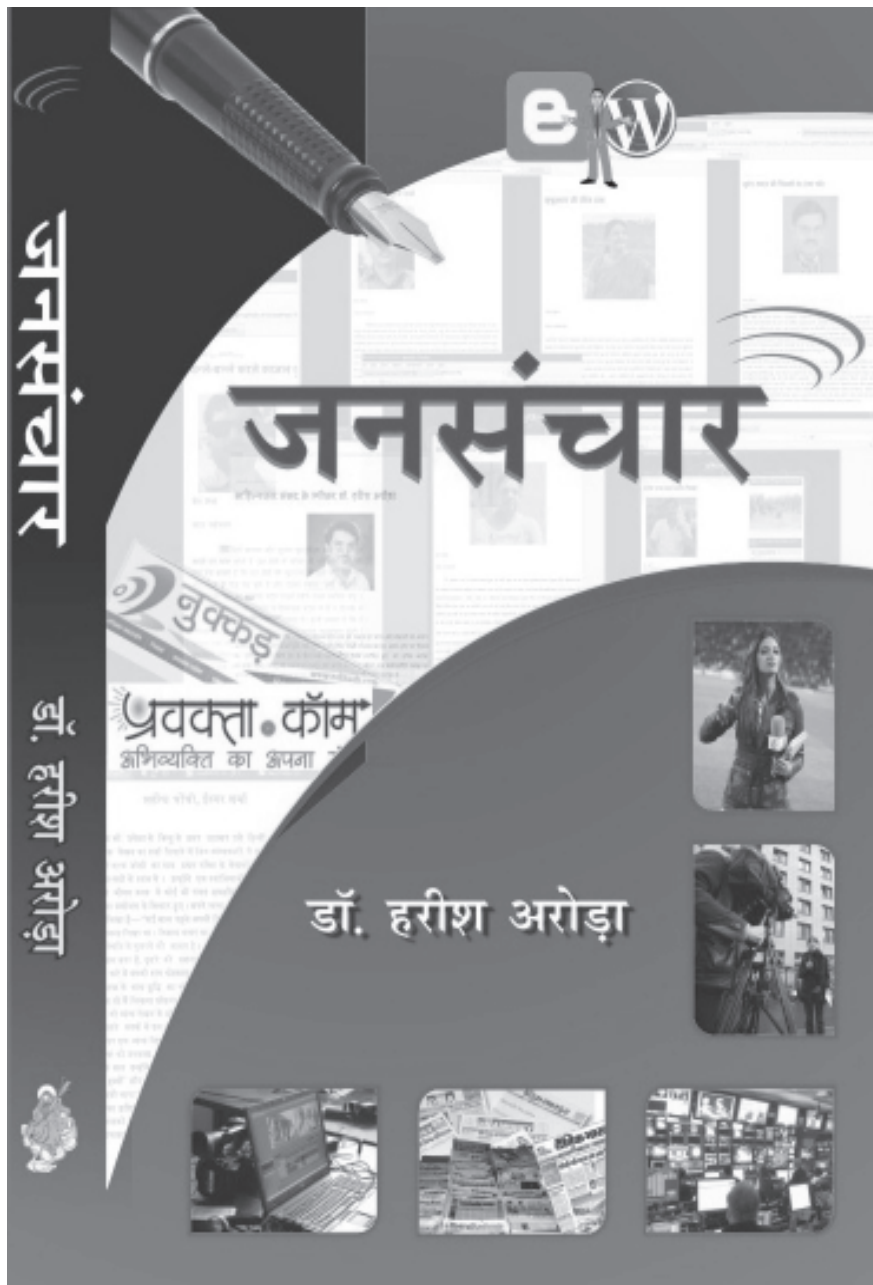
वैश्वीकरण और राष्ट्रवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विश्व एक मंच है और वैश्वीकरण ने सीमाओं को तोड़ा है। एक ओर जब वैश्वीकरण से कहीं न कहीं आर्थिक संप्रभुता में कमी आती है वही दूसरी ओर वैश्वीकरण देशों को जोड़ता भी तो है। हम सब मानव और प्रकृति का विकास चाहते हैं और एक दूजे के पूरक बनकर यह प्रयास और भी सफल हो सकता है। शक्तिशाली राष्ट्रों पर ये नैतिक जिम्मेदारी है कि विश्व का हर एक मानव सुखी और संपन्न रहे उनके निजी स्वार्थ के कारण किसी राष्ट्र का हनन न हो, न तो आर्थिक रूप से न सामाजिक न सांस्कृतिक और न ही उसके अस्मिता पर ठेस लगे। वर्ना फिर गरीबी ही आतंकवाद की जननी बनेगी और असमानता इसका जनक। विश्व एक समूह के जैसा हो जहाँ हर राष्ट्र सामान हो और अपनी अपनी अभिदान से संपूर्ण जगत का कल्याण करने में अग्रसर रहें। राष्ट्रवाद और वैश्वीकरण में इतना ही निष्कर्ष है कि भारत अपने ध्वज को लेकर ओलंपिक में परेड करता है और हर खिलाड़ी अपना श्रेष्ठ प्रदर्शन कर न सिर्फ खेल को

ऊँचा करता है बल्कि अपने ध्वज और राष्ट्रगान को विश्व मंच को सुनाता है। इसी आदर्श के साथ राष्ट्र और विश्व का संबंध हो तो मानव और प्रकृति दोनों सफल हो जाएंगे।

संदर्भ सूची

1. आशिष नंदी, राष्ट्रवाद बनान देशभक्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
2. कर्ण सिंह, प्रोफेट ऑफ इंडियन नेशनलिज्म: श्री अरविन्द घोष, भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1967
3. एस0 एन0 दूबे, डवलपमेन्ट ऑफ पॉलिटिकल थॉट ऑफ, इंडिया, अक्मे पब्लिकेशन्स, दिल्ली
4. विपिन चन्द पाल, मेमोयर्स ऑफ माई लाइफ एण्ड टाइम्स
5. ए0 आर0 देसाई, सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई 1966
6. प्रो0 के0 एल0 कमल, भारतीय राजनीतिक चिन्तक राजस्थान, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2010
7. ज्ञानसिंह संधु, राजनीति सिद्धान्त, हिन्दी माध्यम निर्देशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 2009

डॉ. हरीश अरोड़ा की 'युवा साहित्य चेतना मण्डल' से प्रकाशित पुस्तक



भूमण्डलीकरण के दौर में मीडिया और राष्ट्रवाद

सुशील कुमार

शोधार्थी, लहदी विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वर्तमान समय भूमण्डलीकरण, बाजारवाद और वैश्वीकरण का समय है। हर व्यक्ति सत्ता के लिए संघर्ष कर रहा है, दिन-प्रतिदिन वह आत्मकेन्द्रित और अर्थकेन्द्रित होता चला जा रहा है। समाज, राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय भावना और मानवीयता जैसी भावनाएं खत्म होती नजर आ रही हैं। ऐसे में राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी भावना को जागृत करना और उस पर विचार विमर्श करना अत्यावश्यक है ताकि राष्ट्रवाद के समक्ष जो चुनौतियाँ उभर रही हैं, उसके रास्ते में जो अड़चने हैं उनको दूर किया जा सके। वर्तमान बाजारवाद के समय में जब राष्ट्रवादी भावना खत्म होती जा रही है तब राष्ट्रवाद की परिभाषा बदल रही है। सही अर्थों में यदि देखें तो राष्ट्रवाद किसी के विरुद्ध नहीं होता बल्कि जो सम्पूर्ण मानवता का द्योतन करवाता है, वह राष्ट्रवाद कहलाता और भारत का राष्ट्रवाद इसी मानवता के धरातल पर ही खड़ा है। लेकिन आज उसके समक्ष कुछ चुनौतियाँ उभर आई हैं जिनमें मीडिया एक प्रबल एवं महत्वपूर्ण चुनौती है। यह बहुत सी समस्याओं को जन्म देता साबित हो रहा है जो राष्ट्र और राष्ट्रवाद के समक्ष एक मुख्य चुनौती है। आज भूमण्डलीकरण के इस दौर में मीडिया की भूमिका बदलती हुई नजर आ रही है और वह अपना कार्य राष्ट्र को आगे बढ़ाने के बजाय, राष्ट्र के स्वरूप को धुंधला करने की ओर प्रेरित है। इसका सबसे बड़ा कारण है उसका अर्थकेन्द्रित हो जाना।

मीडिया एक ऐसा माध्यम होता है जो समाज व राष्ट्र हित में रचनात्मक खबरों को प्रमुखता देता है और राष्ट्रीय भावना को जागृत करता है। वह ऐसी चीजें समाज को दिखाता है जिससे समाज तक सही व सटीक खबर पहुंच सके, जो किसी भी प्रकार की राजनीतिक या धार्मिक भावनाएं भड़काने वाली खबरें न दिखाकर, मानवतावादी दृष्टि से सही व सर्वजनहिताय चीजों को प्रस्तुत करता है। लेकिन वैश्वीकरण की दौड़ में सब बदल गया है, मीडिया व्यापार का साधन बनता जा रहा है। अधिकतर न्यूज पेपर, न्यूज चैनल्स और पत्रिकाओं में राष्ट्रवाद से प्रेरित खबरों को कम और बाकी की तमाम ऊलजलूल खबरों को अधिक महत्ता दी जा रही है। अधिकतर लहदी समाचार पत्र विज्ञापनों और गन्दी तस्वीरों से भरे होते हैं जिन खबरों का आमजन और राष्ट्र से कोई लेना देना नहीं होता। आज के बाजारीकरण व अर्थकेन्द्रित समाज में राष्ट्रवाद के स्थान पर व्यक्तिवाद ने जन्म ले लिया है। अधिकतर समाचार पत्र, पत्र-पत्रिकाएं और न्यूज चैनल्स मात्र अर्थकेन्द्रित हो गए हैं और पैसा कमाना उनका एक मात्र लक्ष्य हो चला है। राष्ट्र से उनका कोई वास्ता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे समाजहित के स्थान पर स्वयं का हित अधिक हावी होता नजर आ रहा है।

कहने को मीडिया भारतीय राष्ट्र का चौथा स्तंभ जरूर है लेकिन इस चौथे स्तम्भ का जो काम है उसे कुछ लोग ही सही रूप में अंजाम देने में लगे हैं। अधिकतर भूमण्डलीकरण और बाजारवाद में पैसे की अंधी दौड़ में राष्ट्रहित को भूल चुके हैं। सर्वप्रथम बात करते हैं टी. वी. न्यूज चैनल्स की। न्यूज चैनल्स समाज व राष्ट्रहित को आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्तमान तकनीकी युग में जब कोई भी हादसा हॉस्पिटल बाद में पहुंचता है जनता तक उससे पहले पहुंच जाता है। कहीं भी कुछ भी हो, छोटी से छोटी घटना क्यों न हुई हो न्यूज चैनल्स वाले सबसे पहले और सबसे तेज वहां पहुंच जाते जैसे फिल्मों में कोई प्रेत या आत्मा प्रकट हो जाती है न जाने उन्हें घटना होते ही उसकी घटना कौन दे देता है ? सबसे पहले वे वहां पहुंचकर उस घटना का लाइव टेलीकास्ट बार बार और अलग अलग तरह से दिखाते हैं। राष्ट्रवाद की चूँकि आज बहुत आवश्यकता है क्योंकि देश में राष्ट्रवादी भावना, राष्ट्रहित, राष्ट्रकल्याण आदि भावनाएं दरकिनार कर दी जा रही हैं। इनको जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं लेकिन भूमण्डलीकरण के इस दौर में बाजारवाद इतना हावी हो चुका है कि इसके चंगुल में अधिकतर न्यूज चैनल्स फंस चुके हैं। आर्थिक लाभ के लिए मनमानी, बेतुकी और मानवीय भावनाओं को आहत करने वाली खबरों को अपने चैनल्स पर दिखाने का चलन भूमण्डलीकरण के इस दौर में राष्ट्रवाद के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है। इसके अतिरिक्त चैनल्स पर आए दिन कराए जाने चर्चाएं, बहसों और वार्ताएँ सभी इसलिए कराई जाती हैं ताकि राष्ट्रवादी भावना और राष्ट्र को एकत्रित करने के लिए सब मिलकर एक सुदृढ़ विचार सामने ला सके लेकिन ये सब राष्ट्रवाद के लिए समस्याएं खड़े करते हुए नजर आते हैं। मैं बात कर रहा हूँ उन प्राइवेट चैनल्स की जिनमें राजनीतिक पार्टियों के प्रवक्ता, धार्मिक गुरु, विभिन्न

क्षेत्रों के विशेषज्ञ को बुलाकर, आए दिन हुई नई-ताज़ा घटनाओं पर चर्चा करने के लिए बुलाया जाता है लेकिन चर्चा करते करते सभी व्यक्ति राष्ट्रहित को भूलकर अपनी पार्टी या धर्म की बढ़ाई करने में लीन हो जाते हैं। कभी कभी तो बहस इतनी बढ़ जाती है कि गाली-गलौच और मारने तक नौबत आ जाती है। ऐसे में चिंतन का विषय है कि चैनल्स वाले ऐसे लोगों को ही क्यों बुलाते हैं जिनमें ज़रा भी सहनशीलता नहीं कि किसी की बात को सुन भी न सकें समझना तो दूर की बात है और इन्हीं लोगों को चैनल्स पर एक बार नहीं बार बार बुलाया जाता है। राष्ट्रवाद को ऐसे स्थानों पर धुंधला किया जाता है।

वैसे तो 'राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकता का पर्याय है। जब किसी राष्ट्र के नागरिक स्थान, वेशभूषा, खान पान, रहन सहन, भाषा साहित्य, मूल्य और मान्यताओं, जाति, समूह और धर्म के अंतर होते हुए भी सभी को एक समझते हैं और राष्ट्रहित के समक्ष अपने व्यक्तिगत एवं सामूहिक हितों का परित्याग करते हैं, यही भावना राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता कहलाती है।' लेकिन इस भावना को इन चैनल्स पर कुछ तथाकथित धर्मगुरु और राजनीतिक प्रवक्ता धुंधला कर देने की कोशिश करते हैं। पाकिस्तान द्वारा जम्मू-कश्मीर में आये दिन जब गोलीबारी होती है और उसके बाद जब न्यूज़ चैनल्स वाले उस पर खबर दिखाते हैं तो उसे इस प्रकार तोड़-मरोड़कर पेश किया जाता है कि जैसे कुछ हुआ ही न हो। जबकि मेरे जैसे सीमा के पास रहने वाले व्यक्तियों को पता होता है कि गोलीबारी के दौरान कितने जवान शहीद हुए, कितने घर उजड़े और लोग मरे व घायल हुए, गोलों से कितने पशु मारे गए। भूमण्डलीकरण के दौर में यह सबसे बड़ी चुनौती हमारे समक्ष खड़ी है कि इन चैनल्स को सच दिखाने के लिए कैसे प्रेरित किया जा सके ताकि इन न्यूज़ चैनल्स पर राष्ट्रहित और राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित खबरों को सही और प्रामाणिक ढंग से दिखाया जाए, राष्ट्र कल्याण इनका मुख्य मुद्दा हो, समाजहित इनका धर्म बने और मानवीयता लक्ष्य।

अब हम बात करते हैं सोशल मीडिया के माध्यमों की कि राष्ट्रवाद के समक्ष ये माध्यम कौन-कौन सी चुनौतियां खड़ी कर रहे हैं। न्यूज़ चैनल्स से भी अधिक तीव्र गति से कोई अगर खबर फैलती है तो फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप्प, इंस्टाग्राम आदि सोशल माध्यमों से। इन सब का प्रयोग आज भूमण्डलीकरण के इस दौर में अशिक्षित से लेकर शिक्षित व्यक्ति दोनों द्वारा किया जा रहा है। बच्चों और बूढ़ों को इनकी लत नशे की तरह लग रही है। अधिकतर लोग इन सोशल माध्यमों का प्रयोग बिना सोचे समझे गलत कामों के लिए व गलत चीजों का प्रचार करने में करते हैं जिससे समाज व राष्ट्र को इस बात का खतरा है भविष्य में हम कैसे होंगे? सबसे पहले बात करते हैं धार्मिक पक्ष के प्रचार की। आये दिन मैं देखता हूँ कि फेसबुक व व्हाट्सएप्प पर देवी-देवताओं के फोटोज भेजे जाते हैं जिसमें लिखा होता है कि 'अगर मां के सच्चे भक्त हो इसे 10 लोगों को शेयर करो, कोई नास्तिक ही होगा जो इसे आगे नहीं भेजेगा' अगर शिव को मानते हो तो 10 लोगों को शेयर करो आपका बिगड़ा काम बनेगा, नहीं तो अपशकुन या बुरा होगा। आज जब हम 21वीं सदी में पहुंच गए हैं, वर्तमान युग तकनीक का युग है जिसमें हम घर बैठे साक्षात् कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी के किसी भी धार्मिक स्थल की सैर कर सकते हैं, देवी-देवता को देख सकते हैं तब भी ऐसे अंधविश्वासों को सोशल माध्यमों पर फैलाने का काम राष्ट्र के समक्ष एक गहन एवं गंभीर चुनौती है क्योंकि भारतीय देवी-देवताओं को किसी प्रचार की आवश्यकता नहीं है। भारतीय राष्ट्र उन्हें पल भर भी न तो भूला है न भूल सकता है। एक अन्य बात और जो मैं सोशल माध्यमों में देखता हूँ वह है देवी-देवताओं को धार्मिक उन्माद फैलाने के लिए इस्तेमाल करना। जैसे पिछले दिनों हनुमानजी की मूर्ति को लात मारते एक व्यक्ति की फोटो सोशल माध्यमों पर बहुत तेजी से प्रचारित की जा रही थी। और भी न जाने कितनी गलत फोटोज इन माध्यमों पर आए दिन भेजी जाती हैं जो धार्मिक उन्माद फैलाने का कार्य करती हैं और जो बाद में दंगों जैसी स्थिति भी पैदा कर सकते हैं।

मेरा यहां यह सब बताने का आशय यह है कि ऐसी बहुत सी झूठी खबरें सोशल माध्यमों पर आए दिन फैलती हैं। जिससे हिन्दू-मुस्लिम दोनों कर बीच जमकर गाली-गलौच होते। फेसबुक व व्हाट्सएप्प पर इन पोस्टों के कमेंट बॉक्स में मैं देखता रहता हूँ। इस प्रकार राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय भावना, भाईचारा और राष्ट्रवादी विचारधारा आदि चीजें सोशल माध्यमों पर खत्म होती नज़र आ रही हैं जो राष्ट्रवाद के समक्ष चुनौती बन कर खड़ी है और सबके लिए यह चिंतन का विषय है। सोशल माध्यमों पर न जाने कितने जाली एकाउंट बनाकर लोग ऐसे गलत कामों को अंजाम दे रहे हैं जो राष्ट्रवादी भावना को खत्म करने के इरादे से किया जा रहा है और इसमें कुछ शरारती तत्वों का हाथ है। हम सभी सभी विद्वतजनों को चाहिए कि चिंतन करें कि इस चुनौती का सामना किस प्रकार किया जाए क्योंकि भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण और बाज़ारवाद के इस दौर में सोशल माध्यम राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने व उसे जड़ से खत्म कर देने दोनों में अहम भूमिका निभा सकता, निभा रहा है और निभाएगा भी।

अब अंत में बात आती है समाचार पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं और अन्य खबरी पुस्तकों की। हालांकि अगर देखा जाए तो बहुत सी पत्रिकाएं समाज व राष्ट्र के हित के लिए सराहनीय कार्य कर रही हैं। राष्ट्रवाद के लिए यह एक सुखद अनुभव है लेकिन इसके साथ ही बहुत से अखबार व पत्र गलत, ऊलजलूल और भड़कीली व बेकार बातों को अपने समाचार-पत्रों में छापते हैं घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना, उन्हें तोड़-मरोड़कर इस तरह पेश करना कि छोटी सी बात का बखेड़ा बना देना आज के समाचार-पत्रों का पेशा बन गया है। कुछ समाचार-पत्र तो किसी राजनीतिक पार्टी के पक्ष में ही खबरें छापने के आदी हो जाते हैं क्योंकि उन्हीं से उनको पैसा आता है। इसलिए न चाहते हुए भी उनकी अच्छाई के गुणगान उनकी आदत बन जाती

है। पत्रिकाओं को यदि बात करें तो राष्ट्रवाद के समक्ष पत्रिकाओं को भूमिका बहुत हद तक अच्छी है और राष्ट्रहित व समाजहित से जुड़े इन पत्रिकाओं के संपादक अपनी पत्रिकाओं में छपने वाले पत्रों को अच्छी प्रकार जान-समझकर छापते हैं ताकि उनकी पत्रिका कोई गलत बात न छापे जिससे राष्ट्र या समाज का कोई अहित हो या राष्ट्रीय भावनाएं आहत हों। यदि हम टी. वी. और पत्रिकाओं की पत्रकारिता पर नज़र दौड़ाएं तो दोनों में ज़मीन आसमान का फर्क नज़र आएगा। टी. वी. पत्रकारिता से इतर बहुत सी पत्रिकाएं तो राष्ट्रहित के लिए लगातार वर्षों से काम करने में जुटी हैं उनका उद्देश्य ही यही है कि सही बातों को राष्ट्र के समक्ष लाकर राष्ट्रीय भावना व धार्मिक सौहार्द को बनाये रखना। लेकिन साथ ही साथ कुछ पत्रिकाएं ऐसी भी हैं जिनको सिर्फ़ पैसे से मतलब है बाकी उनकी पत्रिका में कुछ भी कूड़ा करकट छपवा लो उससे, राष्ट्र का भला हो या बुरा उससे उनको कुछ लेना देना नहीं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रवाद का प्रादुर्भाव, उसके विकास एवं प्रतिष्ठा के निश्चित कारणों के बारे में कुछ भी निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों, भिन्न-भिन्न कालों और भिन्न-भिन्न कारणों ने राष्ट्रवादी भावना के प्रोत्साहन में योगदान दिया। भौगोलिक एकता, नस्ल की एकता, राजनीतिक एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता, विजय-पराजय, प्रतिस्पर्धा और शोषण एवं उसका विरोध - इन सबको राष्ट्रवाद के विकास में योगदान देने का श्रेय दिया जा सकता है।'² लेकिन आज वर्तमान भूमण्डलीकरण के दौर में यह श्रेय मुख्य रूप से मीडिया को दिया जा सकता है जिनमें टी. वी. पत्रकारिता, न्यूज़ चैनल्स, सोशल माध्यम, इंटरनेट आदि बहुत महत्व रखते हैं। राष्ट्रवाद के योगदान में यह सब अपनी अहम भूमिका निभा सकते हैं बस इनको सही दिशा प्रदान करने हेतु प्रेरित करना बाकी है। भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, वैश्वीकरण और व्यापारीकरण के इस इस दौर में इंटरनेट की तेज तरार आभासी दुनिया में राष्ट्रवादी भावना को बढ़ावा देने में इनका बहुत महत्व है। इसलिए चिंतन का विषय है कि हम उपर्युक्त विवेचित चुनौतियों से लड़ते हुए मीडिया को राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी भावना को प्रेरित करने में किस प्रकार प्रेरित करें ताकि हर व्यक्ति देशहित के लिए कार्य करे।

सन्दर्भ

1. सामान्य अध्ययन - आधुनिक भारत का इतिहास, अध्याय-भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, उपकार प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 97
2. इंटरनेट से उपलब्ध जानकारी से उद्धृत

भारत में राष्ट्रवाद और अम्बेडकर

राम बिलाश यादव

राजनीति विज्ञान विभाग

श्यामलाल कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत के वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक विमर्श में जितने भी विषय केंद्र में रहे हैं, “राष्ट्रवाद” का मुद्दा उनमें प्रमुख रहा है। देश के शैक्षिक संस्थानों, सामाजिक स्थलों, चौक-चौराहों हर जगह यह विषय चर्चा के केंद्र में रहा है और भारत के सामाजिक ताने-बाने को देखते हुए यह अंदाजा लगाना कठिन नहीं है की आजादी के लगभग 70 सालों बाद भी यह मुद्दा आगे भी चर्चा के केंद्र में रहेगा। समय-समय पर इसकी परिभाषा भी सुविधा के हिसाब से बदलती रही है, जबकि भारतीय संविधान में इसके मूल तत्वों को बखूबी समाहित किया गया है। भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता बाबा साहेब डॉक्टर भीम राव अम्बेडकर ने अपनी समय की भारतीय परिस्थितियों को भांपकर ही भारत को एक सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं बल्कि ‘सम्पूर्णता की ओर अग्रसर’ एक राष्ट्र कहा था और वह प्रक्रिया आज भी अनवरत जारी है।

डॉक्टर अम्बेडकर के ‘राष्ट्रवादी अवधारणा’ पर नजर डालने से पहले भारत में राष्ट्रवाद की अन्य दूसरी प्रचलित मान्यताओं पर प्रकाश डालना समीचीन होगा। ऐतिहासिक साक्ष्यों और मान्यताओं के अनुसार वर्तमान भारत का स्वरूप इससे अलग रहा है। वैदिक काल से लेकर अब तक भारत की भौगोलिक संरचना में कई परिवर्तन हुए हैं। इस बहस में पीछे जाने से अच्छा होगा इसके वर्तमान भौगोलिक संरचना को एक राष्ट्र में परिवर्तित होने और उसके निरंतर विकास पर प्रकाश डाला जाये।

वर्तमान भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की प्रक्रिया 19वीं शताब्दी के मध्य में देखी जा सकती है। औपनिवेशिक शासन के दौरान विभिन्न दस्तावेजों से पता चलता है कि अंग्रेज भारत को एक समरूप राष्ट्र के रूप में नहीं देखते थे। इस बात की पुष्टि भारत की प्रथम जनगणना के आकड़ों के निष्कर्ष से देखे जा सकते हैं। भारत की पहली जनगणना 1871 में हुयी जिसमें धर्म और जाति को भी अलग-अलग श्रेणी में रखा गया था। जनगणना अधिकारी ट्रिस्टेले ने हिन्दू धर्म के विभिन्न जातियों और समुदायों की विभिन्नता को देखकर उन्हें एक ही श्रेणी में रखने की कठिनाईयों को स्वीकार किया। इसी प्रकार 1901 की जनगणना में केंद्रीय प्रान्त के निदेशक आर. वी. रसेल ने तो हिन्दू धर्म को ही एक धर्म मानने से इनकार कर दिया। रसेल के अनुसार हिन्दू धर्म एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में धर्म नहीं बल्कि जाति द्वारा शासित एक व्यवस्था है। हालांकि इस बात में कोई शक नहीं कि अंग्रेज शासक राष्ट्रवाद को पश्चिमी नजरिए से ‘एकरूप’ राष्ट्र की अवधारणा को भारत जैसे देश में देखने की कोशिश कर रहे थे जबकि भारत अनेक भाषाओं, धर्मों, जातियों और समुदायों का संगम रहा है।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता अभियान और उसके आस-पास के वर्षों में कई ऐसी घटनायें घटी जिसमें भारतीय जनमानस में ‘राष्ट्रवाद’ का बीजारोपण कर रही थी। उस समय राष्ट्रवाद की परिभाषा ‘औपनिवेशिक’ शासन के आसपास ही घूम रही थी। जब जनगणना में अंग्रेजों ने हिन्दू धर्म की एकरूपता और उसके स्वरूप पर सवाल उठाया तो भारतीय नेतृत्व ने इसकी काट हिन्दू धर्म के प्रतीको और उसके संस्कारों में खोजना शुरू किया जिसकी परिणति हिन्दू धर्म सुधार आन्दोलनों, सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ अभियान और हिन्दू धर्म शुद्धि जैसे आन्दोलन शुरू हुए। इन आन्दोलनों के माध्यम से जहाँ एक ओर हिन्दू धर्म में प्रचलित कुरीतियों से लड़ा जा रहा था वहीं दूसरी ओर हिन्दू धर्म की छतरी को मजबूती से फैलाने का प्रयास किया जा रहा था ताकि इसके स्वरूप में एकरूपता लाकर इसे और मजबूत किया जा सके।

इसी अभियान की कड़ी में हिन्दू धर्म के अनुयायियों ने ‘गाय और गोवंश’ को भी हिन्दू धर्म से जोड़कर इसे एक प्रतीक के रूप में स्थापित करने का प्रयास शुरू किए। हिन्दू धर्म के अन्य कार्यक्रमों के मुकाबले ‘गौ रक्षा’ अभियान ज्यादा सफल दिखाई दिया। इसका कारण एक बहुत बड़े मध्यवर्गीय भारतीय परिवारों से गौ वंश का जुड़ाव माना जा सकता है। 19वीं शताब्दी के आखिरी दशकों से लेकर 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक तक ‘गौ रक्षा’ अभियान ने न केवल हिन्दू धर्म के विभिन्न समुदायों को एकत्रित किया और उनको राष्ट्रवाद, जिसे की कुछ विद्वान ‘हिन्दू राष्ट्रवाद’ कहते हैं, की अवधारणा में न केवल समाहित किया बल्कि एक नए तरह के विवाद को भी जन्म दे दिया। गौरक्षा अभियान आगे चलकर एक सांप्रदायिक रूप ले गया जिससे हिन्दू-मुस्लिम विवाद और ज्यादा होने लगे। अन्य कार्यक्रमों के अलावा जगह-जगह पर गणेश पूजा और अन्य ऐतिहासिक विभूतियों जैसे शिवाजी आदि की जयंती मनाने का कार्यक्रम होने लगे। कुल मिलाकर राष्ट्रवाद की यह धारा हिन्दू धर्म की

मान्यताओं से प्रेरित और प्रभावित रही।

भारतीय राष्ट्रवाद की दूसरी धारा 'कांग्रेस' के नेतृत्व में दिखाई देती है। 1885 में अपनी स्थापना से लेकर 1920 के दशक में महात्मा गाँधी के भारतीय राजनीतिक पटल पर आने तक कांग्रेस एक 'शिक्षित उच्चवर्गीय' लोगों का संगठन बना रहा। कांग्रेस की राष्ट्रवाद की अवधारणा में औपनिवेशिक शासन से बातचीत के माध्यम और संवैधानिक सुधारों के माध्यम से 'स्वराज' प्राप्त करना प्रमुख था। यह संगठन महाराष्ट्र से लेकर बंगाल और तमिलनाडु से लेकर उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रान्त तक फैला हुआ था तथा यह विभिन्न धर्मों, समुदायों, बहुभाषी लोगों सबका प्रतिनिधित्व करता था। इसके सदस्य वे संगठन भी थे जो धार्मिक आधार पर राष्ट्रवाद की परिकल्पना को मूर्त रूप देने की कोशिश कर रहे थे। ऐसे संगठनों में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों के संगठन शामिल थे।

तीसरी अवधारणा भारत के उग्र राष्ट्रवादियों की थी जो औपनिवेशिक शासन से आजादी हिंसक तरीके से छीनने में यकीन करते थे और उनके लिए 'क्रांति' का मार्ग ही आखिरी रास्ता था क्योंकि उनके अनुसार अंग्रेजी राज्य का इकबाल ही हिंसक तरीकों पर आधारित रहा है। अतः अनुनय विनय से स्वराज्य की प्राप्ति संभव नहीं है।

भारत के विभाजन तक राष्ट्रवाद की ये तीनों ही धाराएं औपनिवेशिक शासन और अंग्रेजी हुकूमत के सापेक्ष थीं। परन्तु इन्हीं बहसों और अवधारणाओं के बीच कांग्रेस के भीतर भी राष्ट्रवाद को लेकर महात्मा गाँधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, मोहम्मद अली जिन्ना और बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर की अपनी-अपनी समझ थी। 1940 के दशक में, भारत-पाकिस्तान बंटवारे की परिदृश्य में, भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा का केंद्र औपनिवेशिक शासन से हटकर पाकिस्तान के सापेक्ष हो गया। इसका कारण जिन्ना द्वारा 'दो राष्ट्र के सिद्धांत' और भारत के बंटवारे पर टिका रहना प्रमुख है। डॉ अम्बेडकर ने भी राष्ट्रवाद का सिद्धांत और उसकी परिकल्पना पर अपने विचार भारत के बंटवारे और पाकिस्तान के सन्दर्भ में ही दिया है।

डॉ अम्बेडकर के राष्ट्रवादी विचारों की मजबूत झलक मुस्लिम लीग के 26 मार्च 1940 के लाहौर अधिवेशन में पारित उस अध्यादेश के विश्लेषण में मिलती है जिसमें लीग ने भारत से अलग पाकिस्तान राष्ट्र की मांग की थी। इस अध्यादेश में मुस्लिम धर्म बहुल क्षेत्रों को अलग करने और पाकिस्तान के रूप में संप्रभु देश बनाने की मांग की गयी थी। अम्बेडकर ने धर्म आधारित 'दो राष्ट्रों' के मांग की आलोचना की। वे कहते हैं कि 'अगर भारत के मुस्लिम एक अलग राष्ट्र है तो निश्चित रूप से भारत एक राष्ट्र नहीं हो सकता'। इस सन्दर्भ में डॉ अम्बेडकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों से असहमत दिखाई देते हैं जिसमें कांग्रेस का मानना था कि भारत हमेशा से ही एक राष्ट्र रहा है जबकि मुस्लिम लीग का मानना था कि यह कभी भी न एक राष्ट्र रहा है न हो सकता है। अम्बेडकर का तर्क है कि 'सामाजिक सम्मिश्रण की प्रक्रिया (Process of social amalgamation) से हम एक राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

डॉ अम्बेडकर के अनुसार 'राष्ट्रवाद एक सामाजिक अनुभव है। यह एकता की भावना से ओत-प्रोत भाईचारा को बढ़ावा देता है। यह एक दोहरा अनुभव है। एक तरह जहाँ यह अपने भाईचारे को बढ़ावा देता है और उन्हें जोड़कर रखता है वही दूसरी तरफ उनके अन्दर भी भावना लाता है जो अपने निकट सम्बन्धी नहीं है। यह एक तरह की मानवीय चेतना है और जिसके अन्दर यह चेतना होती है उनको एक तरफ तो बांध के रखती है और सामाजिक-आर्थिक विरोधाभासों को खत्म कर देती है, वही दूसरी तरफ जिसके अन्दर यह भावना नहीं होती है उन्हें अलग कर देती है। यह एक ऐसी इच्छा है जो किसी विशेष समूह की सहभागी नहीं होती है।'

सैद्धांतिक तौर पर भारत के बंटवारे के सन्दर्भ में जो तीन बातें महत्वपूर्ण रही वो थी जातीय एकता (Unity of race), भाषाई एकता और एक विशेष भूमि-क्षेत्र में रहने वाले लोग। डॉ अम्बेडकर इन तीनों ही बातों को राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक नहीं मानते हैं। इस मामले में उनके विचार 19वीं सदी के फ्रांसिसी दार्शनिक जोसफ अर्नेस्ट रेनों से बहुत प्रभावित लगते हैं। रेनों का मानना है कि सिर्फ जाति, भाषा और भूखंड से किसी राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता और ये तीनों ही घटक प्राथमिक नहीं हैं।

उनका मानना है कि कोई भी जाति (Race) शुद्ध नहीं है अतः इसे एक राष्ट्र के भीतर समाहित नहीं किया जा सकता। भाषा भी लोगों को जोड़ती है, इसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर ब्रिटेन और अमेरिका एक ही भाषा बोलते हैं फिर भी वे दो राष्ट्र हैं जबकि स्विट्जरलैंड में चार से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं फिर भी वह एक राष्ट्र है। उनके अनुसार भाषा की एकरूपता या विविधता से भी कोई ज्यादा महत्वपूर्ण बात है तो वह है लोगों की 'इच्छा' (Will)। यह स्विट्जरलैंड के लोगों की एक राष्ट्र के रूप में रहने की 'इच्छा' है जो उन्हें एक किये हुए है ना कि उनकी भाषा। सामूहिक रहवास के बारे में उनका कहना है कि भूमि, जाति की तुलना में किसी राष्ट्र को बनाने में महत्वपूर्ण है। भूमि एक आधार प्रदान करती है जिसपर युद्ध भी लड़ा जाता है और आजीविका भी चलती है। जबकि व्यक्ति उसको 'आत्मा' प्रदान करता है। व्यक्ति ही सबकुछ है जो की 'लोगों' (People) का निर्माण करता है। और कोई भी दूसरी भौतिक वस्तु इसका निर्माण नहीं करती है। अतः राष्ट्र एक जीवित आत्मा और एक आध्यात्मिक सिद्धांत है।

तात्कालिक राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों, भारत-पाकिस्तान टकराव और हिन्दू मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में

अम्बेडकर ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही जो की किसी भी राष्ट्र निर्माण में सहायक होती है और वह है विस्मृति (Forgetfulness) या भूलने की आदत। उन्होंने कहा कि भारतीय राष्ट्र निर्माण में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही महत्वपूर्ण घटक हैं और दोनों ही को एक दूसरे के कड़वे इतिहास को भुलाकर एक नये 'राष्ट्र' के निर्माण में सहयोग करना चाहिए लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो रहा है।

राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रवाद की भावना बढ़ाने में डॉ अम्बेडकर दो महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देते हैं। पहला, उनके अनुसार राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता में अंतर होता है और दोनों ही जनमानस की अलग अलग मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ हैं। राष्ट्रीयता एक मानवीय चेतना है जिसमें व्यक्ति अपने निकट संबंधों के अस्तित्व को स्वीकार करता है जबकि राष्ट्रवाद का मतलब एक अलग राष्ट्रीय अस्तित्व की इच्छा से जिसमें व्यक्ति निकट-संबंधियों से जुड़कर रहने को प्रतिबद्ध होता है।

दूसरे बिंदु में वे इस बात को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि राष्ट्रीयता के अभाव में राष्ट्रवाद की भावना का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। परन्तु यह बात हमेशा सही हो यह जरूरी नहीं। कई बार ऐसा भी हो सकता है कि राष्ट्रीयता की भावना मौजूद तो रहती है परन्तु राष्ट्रवाद की भावना का कोई अता-पता नहीं होता है। अतः राष्ट्रीयता हमेशा राष्ट्रवाद की भावना का संचार करे यह जरूरी नहीं है।

राष्ट्रीयता दो परिस्थितियों में राष्ट्रवाद की भावना का संचार कर सकती है। पहला, लोगो के मध्य 'एक राष्ट्र के रूप में रहने की इच्छा' का संचार। दूसरा, एक भूक्षेत्र जिसपर राष्ट्रवाद की भावना निवास कर सके और एक राज्य का निर्माण कर उस राष्ट्र की सांस्कृतिक स्थापना कर सके।

डॉ अम्बेडकर राष्ट्रवाद के निर्माण में सहायक संस्थानिक उपागमों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि राष्ट्र एक लोकतान्त्रिक एकता का प्रतिफल होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक लोकतंत्र की स्थापना से ही सामाजिक लोकतंत्र का निर्माण होता है। इस प्रकार वह लोकतंत्र की अवस्थापना राष्ट्र-राज्य के साथ करते हैं। उनके अनुसार लोकतंत्र के दो आयाम होते हैं- सामाजिक और राजनीतिक। सामाजिक आयाम वो होता है जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और भाईचारे का भाव प्रधान होता है जो की एक राष्ट्र का गुण होता है। जबकि राजनीतिक आयाम में संस्थाओं, कानून का राज, नौकरशाही और एकीकृत नागरिकता का भाव प्रमुख होता है जो की एक राज्य के प्रभावी गुण होते हैं। इस प्रकार सामाजिक लोकतंत्र के स्थापना से डॉ अम्बेडकर कई आधुनिक विमर्शों जैसे राष्ट्र, राष्ट्रवाद, राज्य, लोकतंत्र सामान्य इच्छा, सामाजिक न्याय आदि को एक नया आधार प्रदान करते हैं।

इन ऊपर की सैद्धांतिक बातों के अलावा डॉ अम्बेडकर ने तत्कालीन भारत में व्याप्त कुछ व्यावहारिक पक्षों पर भी महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ की जो कि भारतीय राष्ट्रवाद के रास्ते में बाधक थीं। उनके अनुसार ग्रामीण भारत की पंचायत व्यवस्था भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा है और सभी बुराईयों की जड़, जिसमें भेदभाव और छुवाछुत भी शामिल हैं, गाँव की व्यवस्था में है। ग्रामीण लोग स्थानीय स्तर पर अपनी निष्ठा का ज्यादा प्रदर्शन करते हैं न की देश के प्रति। गोलमेज सम्मलेन में जब वे दलित शोषण और सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था में उनके हिस्सेदारी की बात कर रहे थे तो अंग्रेजी हुकुमत के सामने उन्होंने एक बात स्पष्ट कर दी की कही ऐसा न हो की स्वराज्य का सपना सिर्फ सत्ता के हस्तांतरण तक ही सीमित हो कर रह जाये। और औपनिवेशिक शासन की समाप्ति के बाद भारतीय शासन की कमान मुट्ठी भर उच्च जाति के लोगो के हाथ में आ जाये और दलित-वंचित समुदाय फिर उनके साथ अपनी हिस्सेदारी के लिए संघर्ष करता रहे।

डॉ अम्बेडकर ने साफ किया कि किसी भी राष्ट्र के निर्माण में उसके सभी समुदायों का उचित प्रतिनिधित्व जरूरी है। उन्होंने स्वीकार किया कि दलितों-पिछड़ों के मुख्य धारा से वंचित होने का कारण सदियों से चली आ रही हिन्दूवादी सामाजिक व्यवस्था में ही व्याप्त है परन्तु जब तक उन्हें राजनीतिक सत्ता और शक्ति नहीं मिल जाती तब तक उनका सामाजिक उत्थान नहीं हो सकता है।

अम्बेडकर ने भारत के उच्च वर्ग के राष्ट्रवादियों की भी कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि भारत एक विचित्र देश है और उसके देशभक्त और राष्ट्रवादी भी बहुत विचित्र हैं। राष्ट्रवादियों के सामने ही उनसे नीचे की जाति के व्यक्ति के साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार होता है और राष्ट्रवादी कुछ नहीं बोलते। उनको सिर्फ अधिक से अधिक सत्ता और पैसे की भूख रहती है। लेकिन डॉ अम्बेडकर ने कहा कि मुझे गर्व है कि मैं उस वर्ग के राष्ट्रवादियों से नहीं आता। मैं उस वर्ग से आता हूँ जो सामाजिक लोकतंत्र के लिए लड़ता है और हर तरह के एकाधिकारवाद के खिलाफ आवाज उठाता है। हमारा लक्ष्य है 'एक व्यक्ति, एक मूल्य' और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना।

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक लोकतंत्र और सभी वर्गों की समुचित भागीदारी के अभाव में भारत का राष्ट्रवाद और स्वराज एक तरह से दूसरा साम्राज्यवाद ही होगा जो कि उच्च वर्ग और जातियों द्वारा संचालित होगा। अतः बिना समुचित हिस्सेदारी और आत्मनिर्णय के बिना राष्ट्रवाद की परिकल्पना अधूरी ही रह जाएगी। यहाँ आत्मनिर्णय का मतलब लोगो द्वारा चुनी हुयी अपनी सरकार और शासन प्रणाली से है।

कुल मिलाकर देखा जाये तो डॉ भीमराव अम्बेडकर का राष्ट्रवाद भारत जैसे देश और भारतीयता के सन्दर्भ में आज के

समय में अधिक महत्वपूर्ण है। एक तरफ तो वे भारत को एक सम्पूर्ण राष्ट्र की जगह पर 'सम्पूर्णता की ओर बढ़ता हुआ राष्ट्र' (Nation In Making) मानते हैं, वहीं वह मजबूत सैद्धांतिक तर्क उदाहरण सहित देते हैं कि कोई भी देश सिर्फ एक समरूप भाषा, धर्म, समुदाय (Ethnicity) और भूभाग के आधार पर एक राष्ट्र नहीं बन सकता। भारत जैसा देश तो कदापि नहीं जिसमें इतनी सारी विविधताये, बहुलताये और सामाजिक भेदभाव हो। भारत को एक राष्ट्र बनने के लिए डॉ अम्बेडकर सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना का सुझाव देते हैं जिससे की सामाजिक बुराईयों और भेदभाव, छुआछूत जैसे कुरीतियों को राजनीतिक सत्ता में भागीदारी देकर समाप्त किया जा सके और एक सम्पूर्ण राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।